ਠਾਣੰ

भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में

ठाणं

(मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)

वाचना प्रमुख

आचार्य तुलसी

सपादक-विवेचक

मुनि नथमल

प्रकाशक

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

प्रबन्ध सम्पादक
श्रीचन्द रामपुरिया

निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जै० वि० भा०)

प्रथम संस्करण
महावीर जन्म-तिथि
विक्रम संवत् २०३३

पृष्ठ
१०६०

मूल्य
[redacted]० रुपये

मुद्रक
मॉडर्न प्रिंटर्स
के-३०, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

ṬHĀṆAṂ

(Text, Sanskrit Rendering & Hindi Version With Notes)

Vāçanā Pramukh
ĀCHĀRYA TULSI

Editor and Commentator
MUNI NATHMAL

PUBLISHER
JAIN VISHVA BHĀRATI
LADNUN (RAJASTHAN)

Publisher
Jain Vishva Bharati
Ladnun (Rajasthan)

Managing Editor
Shreechand Rampuria
Director :
Agama and Sahitya Prakashan

First Edition
1976

Pages : 1090

Price : Rs [redacted] 125 00

Printers
Modern Printers
K-30, Naveen Shahdara,
Delhi 110032

समर्पण

पुट्ठो वि पण्णापुरिसो सुदक्खो,	जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
आणापहाणो जणि जस्स निच्च ।	होकर भी आगम-प्रधान था।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,	सत्य-योग मे प्रवर चित्त था,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्व ॥	उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥
विलोडिय आगमदुद्धमेव,	जिसने आगम-दोहन कर-कर,
लद्ध सुलद्ध णवणीयमच्छ ।	पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्च,	श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिन्तन,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्व ॥	जयाचार्य को विमल भाव से ॥
पवाहिया जेण सुयस्स धारा,	जिसने श्रुत की धार वहाई,
गणे समत्थे मम माणसे वि ।	सकल सघ मे मेरे मन मे ।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,	हेतुभूत श्रुत-सम्पादन मे,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्व ॥	कालुगणी को विमल भाव से ॥

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का, जो अपने हाथों से उप्त और सिंचित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का, जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का, जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना मे भरा था कि जैन-आगमो का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगे। सकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य मे सलग्न हो गया। अत मेरे इस अन्तस्तोष मे मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में सविभागी रहे हैं। सक्षेप मे यह सविभाग इस प्रकार है

सपादक-विवेचक		मुनि नथमल
सहयोगी		मुनि सुखलाल
	,,	मुनि श्रीचन्द्र
	,,	मुनि दुलहराज
सस्कृत-छाया	,,	मुनि दुलीचन्द 'दिनकर'
	,,	मुनि हीरालाल

सविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिन ने इस गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना सविभाग समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

आचार्य तुलसी

प्रकाशकीय

'ठाण' तृतीय अग है। जैनो के द्वादशाङ्गो मे विषय की दृष्टि से इसका वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्य गणना से इसमे कम-से-कम १२०० विषयो का वर्गीकरण है, भेद-प्रभेद की दृष्टि से इसके द्वारा लाखो विषयो की ओर दृष्टि जाती है।

'ठाण' में विषय-सामग्री दस स्थानो में विभक्त है। प्रथम स्थान मे सख्या से एक-एक विषयों की सूची है। दूसरे स्थान मे दो-दो विषयो का सकलन है। तीसरे मे सख्या मे तीन-तीन विषयों की परिगणना है। इस तरह उत्तरोत्तर क्रम से दसवें स्थान मे दस-दस तक के विषयों का प्रतिपादन हुआ है। इस एक अङ्ग का परिशीलन कर लेने पर हजारों विविध प्रतिपाद्यो के भेद-प्रभेदो का गभीर ज्ञान प्राप्त हो जाता है। व्यापकता की दृष्टि से इसका विषय ज्ञान के अनगिनत विविध पहलुओ का स्पर्श करता है। भारतीय ज्ञान-गरिमा और सौष्टव का इससे वडा अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

इस अग की प्रतिपादन शैली का बौद्ध पिटक अगुत्तर निकाय मे अनुकरण देखा जाता है। इसके परिशीलन से ठाण के अनेक विषयों का स्पष्टीकरण होता है।

विज्ञान के एक विद्यार्थी के नाते यह कहने मे जरा भी हिचकिचाहट का बोध नहीं होता कि इस अग मे वस्तु-तत्त्व के प्रागण मे ऐसे अनेक सार्वभौम सिद्धान्तो का सकलन है जो आधुनिक विज्ञान जगत मे मूलभूत सिद्धान्तो के रूप मे स्वीकृत हैं।

हर ज्ञान-पिपासु और अभिसन्धित्सु व्यक्ति के लिए यह अत्यन्त हर्ष का ही विषय होगा कि ज्ञान का एक विशाल सपुट सशोधित मूल पाठ, संस्कृत छायानुवाद एव प्राजल हिन्दी अनुवाद और विस्तृत टिप्पणों से अलकृत होकर उनके सम्मुख उपस्थित हो रहा है। जैन विश्व भारती ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री तुलसी एव उनके इगित-आकार पर सब कुछ नयौछावर कर देने के लिए प्रस्तुत मुनिवृन्द की यह समवेत उपलब्धि आगमों के हिन्दी रूपान्तरण के क्षेत्र में युग कृति है। बहुमुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र तपोमूर्ति आचार्य श्री तुलसी ज्ञान-क्षितिज के देदीप्यमान् सूर्य हैं और उनका मुनि-मण्डल ज्योतिर्मय नक्षत्रों का प्रकाशपुज, यह श्रमसाध्य प्रस्तुतीकरण से अपने-आप स्पष्ट है।

आचार्यश्री ने विविध पहलुओ से आगम-सम्पादन के कार्य को हाथ में लेने की घोषणा २०११ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को की। इसके पूर्व ही श्रीचरणों मे विनम्र निवेदन रहा—आपके तत्वावधान मे आगमो का सम्पादन और अनुवाद हो—यह भारत के सांस्कृतिक अनुवाद की एक मूल्यवान कडी के रूप मे अपेक्षित है। यह एक अत्यन्त स्थायी कार्य होगा, जिसका लाभ एक-दो-तीन नहीं, अचिन्त्य भावी पीढियो को प्राप्त होता रहेगा।

मुझे हर्ष है कि आगम ग्रन्थों के ऐसे प्रकाशनों के साथ मेरी मनोकामना फलवती हो रही है।

मुनि श्री नथमलजी तेरापथ सघ और आचार्य श्री तुलसी के अप्रतिम मेधावी श्रमण और शिष्य हैं। उनका श्रम पद-पद पर मुखरित हो रहा है। आचार्य श्री तुलसी की दीर्घ पैनी दृष्टि और नेतृत्व एव मुनि श्री नथमल जी की सृष्टि

सौष्ठव—यह मणिकांचन योग है। अन्तस्तोष, भूमिका और सम्पादकीय मे अन्य मुनियों के सहयोग का स्मरण हुआ है।

जहाँ तक मेरी परिक्रमा का प्रश्न है, मैं तीन संतो का नामोल्लेख किए बिना नहीं रह सकता—मुनि श्री दुलहराज जी, हीरालालजी और सुमेरमलजी। मुनि श्री दुलहराजजी आरम्भ से अन्त तक अपनी अनन्य कलात्मक दृष्टि से कार्य को निहारते और निखारते रहे हैं, मुनि श्री हीरालाल जी अथक परिश्रम करते हुए अशुद्धियों के आस्रव को रोकते रहे हैं, मुनि श्री सुमेरमलजी तो ऐसे सजग प्रहरी रहे हैं जिन्होंने कभी आलस्य की नींद नहीं लेने दी।

दुरूह कार्य सम्पन्न हो पाया, इसकी आनन्दानुभूति हो रही है। प्रकाशन मे सामान्य विलम्ब हुआ, उसके लिए तो क्षमा-प्रार्थना ही है। केवल इतना स्पष्ट कर दूँ कि वह आलस्य अथवा प्रमाद पर आधारित नहीं है।

श्री देवीप्रसाद जायसवाल मेरे अनन्य सहयोगी रहे है। ग्रन्थो के प्रकाशन-कार्य और प्रूफ के संशोधन आदि विविध श्रमसाध्य कार्यों मे उनके सहयोग से मेरा परिश्रम काफी हल्का रहा।

श्री मन्नालाल जी बोरड भी प्रूफ-संशोधन मे सहयोगी रहे हैं।

माडर्न प्रिन्टर्स के निर्देशक श्री रघुवीरशरण बंसल एवं संचालक श्री अरुण बंसल के सौजन्य ने कृति को सुन्दर रूप दे पाने मे जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए उन्हें तथा प्रेस के सम्बन्धित कर्मचारियो के प्रति धन्यवाद व्यक्त करना नहीं भूल सकता।

जैन विश्व भारती के पदाधिकारी गण भी परोक्ष भाव से मेरे सहभागी रहे हैं। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

आशा है, जैन विश्व भारती का यह प्रकाशन सभी के लिए उपादेय सिद्ध होगा।

दिल्ली
महावीर जन्म-तिथि
(चैत्र शुक्ला १३)
वि० सं० २०३३

श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन

भूमिका

जैन आगम चार वर्गों में विभक्त हैं—१ अग, २ उपाग, ३ मूल और ४ छेद। यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४ वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है। नदी सूत्र में दो वर्गीकरण प्राप्त होते हैं—

पहला वर्गीकरण—१ गमिक—दृष्टिवाद
२ अगमिक—कालिकश्रुत—आचाराग आदि।

दूसरा वर्गीकरण—१ अगप्रविष्ट
२. अगबाह्य।

अग बारह हैं—१. आचार, २ सूत्रकृत्, ३ स्थान, ४ समवाय, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति—भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथा, ७ उपासकदशा, ८ अन्तकृतदशा, ९ अनुत्तरोपपातिकदशा, १० प्रश्नव्याकरणदशा, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद।

भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर गौतम आदि गणधरो ने अग-साहित्य की रचना की। अगो की सख्या बारह है, इसलिए उन्हे द्वादशाङ्गी कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र उसका तीसरा अग है। इसका नाम 'स्थान' [प्रा० ठाण] है। इसमे एक स्थान से लेकर दश स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित हैं, इसलिए इसका नाम 'स्थान' रखा गया है।[1]

सख्या के अनुपात से एक द्रव्य के अनेक विकल्प करना, इस आगम की रचना का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। उदाहरणस्वरूप प्रत्येकशरीर की दृष्टि से जीव एक है।[2] ससारी और मुक्त इस अपेक्षा से जीव दो प्रकार के हैं,[3] अथवा ज्ञानचेतना और दर्शनचेतना की दृष्टि से वह द्विगुणात्मक है। कर्म-चेतना, कर्मफल-चेतना और ज्ञान-चेतना की दृष्टि से वह त्रिगुणात्मक है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—इस त्रिपदी से युक्त होने के कारण वह त्रिगुणात्मक है। गतिचतुष्टय में सचरणशील होने के कारण वह चार प्रकार का है। पारिणामिक तथा कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय जनित भावों के कारण वह पचगुणात्मक है। मृत्यु के उपरान्त वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अध —इन छहो दिशाओं में गमन करता है, इसलिए उसे षड्विकल्पक कहा जाता है। उसकी सत्ता सप्तभगी के द्वारा स्थापित की जाती है—

१ स्यात् अस्त्येव जीव—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा जीव है ही।

२ स्यात् नास्त्येव जीव —परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा जीव नहीं ही है।

---

१ (क) नन्दी, सूत्र ८२ ठाणेणं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाण भावाण परूवणया आघविज्जति।
(ख) कसायपाहुड, भाग १, पृ० १२३
ठाण णाम जीवपुद्गलादीणमेगादिएगुत्तरकमेण ठाणाणि वण्णेदि।

२ ठाण, १।१७
एगे जीवे पाडिक्कएण सरीरएण।

३ ठाण, २।४०९
दुविहा सव्व जीवा पण्णत्ता, त जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव।

३ स्यात् अवक्तव्य एव जीव —अस्तित्व और नास्तित्व—दोनो एक साथ नही कहे जा सकते। इस अपेक्षा से जीव अवक्तव्य ही है।

४ स्यात् अस्त्येव जीव, स्यात् नास्त्येव जीव —अस्तित्व और नास्तित्व की क्रमिक विवक्षा से जीव है ही और नहीं ही है।

इस प्रकार अस्तित्व धर्म की प्रधानता और अवक्तव्य, नास्तित्व धर्म की प्रधानता और अवक्तव्य तथा अस्तित्व और नास्तित्व की क्रम-विवक्षा और अवक्तव्य—ये तीन सायोगिक भग बनते हैं। इस सप्तभगी से निरूपित होने के कारण जीव सात विकल्प वाला है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि आठ कर्मों से युक्त होने के कारण जीव आठ विकल्प वाला है।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय—इन विविध कार्यों मे उत्पत्तिशील होने के कारण वह नौ प्रकार का है। वनस्पतिकाय के दो विकल्प होते हैं—साधारण वनस्पति-काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय। उक्त आठ स्थानों तथा द्विविध वनस्पतिकाय मे उत्पत्तिशील होने के कारण वह दश प्रकार का है।[1] इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे सख्यात्मक दृष्टिकोण से जीव, अजीव आदि द्रव्यों की स्थापना की गई है।

प्रस्तुत सूत्र मे भूगोल, खगोल तथा नरक और स्वर्ग का भी विस्तृत वर्णन है। इसमे अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। बौद्धपिटकों मे जो स्थान अगुत्तरनिकाय का है वही स्थान अग-साहित्य मे प्रस्तुत सूत्र का है।

प्रस्तुत सूत्र मे सख्या के आधार पर विषय सकलित हैं, अत यह नाना विषय वाला है। एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध नही खोजा जा सकता। द्रव्य, इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, आचार, मनोविज्ञान, सगीत आदि विषय किसी क्रम के बिना पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र मे केशी-गौतम का एक सवाद-प्रकरण है। केशी ने गौतम से पूछा—"जो चातुर्याम-धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है और जो यह पच-शिक्षात्मक-धर्म है उसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है। एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है? मेधाविन्! धर्म के इन दो प्रकारों मे तुम्हें सन्देह कैसे नही होता?"[2] केशी के प्रश्न की पृष्ठभूमि मे जो तथ्य है उसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत सूत्र मे मिलता है। चतुर्थ स्थान के एक सूत्र मे यह निरूपित है—भरत और ऐरवत क्षेत्र मे प्रथम और अन्तिम को छोडकर शेष बाईस अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं। वह इस प्रकार है—

सर्व प्राणातिपात से विरमण करना।

सर्व मृषावाद से विरमण करना।

सर्व अदत्तादान से विरमण करना।

सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।[3]

प्रस्तुत सूत्र मे वस्त्र धारण के तीन प्रयोजन बतलाए गए हैं—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और शीत आदि से बचाव।[4] वस्त्र का विधान होने पर भी वस्त्र-त्याग को प्रशसनीय बतलाया गया है। पाचवें स्थान मे कहा है—पाच कारणों से निर्वस्त्र होना प्रशस्त है—१ उसके प्रतिलेखना अल्प होती है। २ उसका लाघव प्रशस्त होता है। ३ उसका

---

१ कसायपाहुड, भाग १, पृष्ठ १२३

एक्को चेय महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिओ।
चदुसकमणाजुत्तो पचग्गगुणप्पहाणो य ॥६४॥
छक्कायक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसट्ठाणिओ भणिओ ॥६५॥

२ उत्तरज्झयणाणि, २३।२३,२४।

३ ठाण, ४।१३६,१३७।

४ ठाण, ३।३४७।

रूप (वेष) वैश्वासिक होता है। ४. उसका तप अनुज्ञात—जिनानुमत होता है। ५ उसके विपुल इन्द्रिय-निग्रह होता है।[१]

भगवान् महावीर के समय मे श्रमणो के अनेक सघ विद्यमान थे। उनमे आजीवको का सघ बहुत शक्तिशाली था। वर्तमान मे उसकी परपरा विच्छिन्न हो चुकी है। उसका साहित्य भी लुप्त हो चुका है। जैन साहित्य में उस परम्परा के विषय मे कुछ जानकारी मिलती है। प्रस्तुत सूत्र में भी आजीवकों की तपस्या के विषय में एक उल्लेख मिलता है।[२]

प्रस्तुत सूत्र मे भगवान् महावीर के समकालीन और उत्तरकालीन—दोनों प्रकार के प्रसग और तथ्य सकलित हैं। जहा धर्म का सगठन होता है वहाँ व्यवहार होता है। जहाँ व्यवहार होता है वहा विचारो की विविधता भी होती है। विचारो की विविधता और स्वतन्त्रता का इतिहास नया नहीं है। भगवान् महावीर के समय में भी जमालि ने वैचारिक भिन्नता प्रदर्शित की थी। उनकी उत्तरकालीन परम्परा मे भी वैचारिक भिन्नता प्रकट करने वाले कुछ व्यक्ति हुए। ऐसे सात व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। उन्हें निन्हव कहा गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ, अश्वमित्र, गग, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल।[३]

इसी प्रकार नौवें स्थान मे भगवान् महावीर के नौ गणों का उल्लेख है। उनके नाम इस प्रकार हैं—गोदासगण, उत्तरवलिस्सहगण, उद्देहगण, चारणगण, उद्दवाइयगण, विस्सवाइयगण, कामड्डियगण, माणवगण, कोडियगण।[४]

ये सब भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकालीन हैं। इन उत्तरवर्ती तथ्यों का आगमों के सकलन-काल में समावेश किया गया। प्रस्तुत सूत्र मे ज्ञान-मीमासा का भी लबा प्रकरण मिलता है। इसमे ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष—ये दो भेद किए गए हैं। प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—केवलज्ञान और नो-केवलज्ञान—अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान।[५] परोक्ष ज्ञान के दो प्रकार हैं—आभिनिबोधिज्ञान और श्रुतज्ञान।[६] भगवती सूत्र में ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष—ये विभाग नहीं हैं। ज्ञान के पाँच प्रकारो का वर्गीकरण प्रत्यक्ष और परोक्ष—इन दो विभागो में होता है। यह विभाग नदी सूत्र में तथा उत्तरवर्ती समग्र प्रमाण-व्यवस्था में समादृत हुआ है।

रचनाकार—

अगो की रचना गणधर करते हैं। इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि गणधरों के द्वारा जो ग्रन्थ रचे गए उनकी सज्ञा अग है। उपलब्ध अग सुधर्मास्वामी की वाचना के हैं। सुधर्मास्वामी भगवान् महावीर के अनन्तर शिष्य होने के कारण उनके समकालीन हैं, इसलिए प्रस्तुत सूत्र का रचनाकाल ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी है। आगम-सकलन के समय अनेक सूत्र सकलित हुए हैं। इसलिए सकलन-काल की दृष्टि से इसका समय ईसा की चौथी शताब्दी है।

कार्यसंपूर्ति—

प्रस्तुत आगम की समग्र निष्पत्ति में अनेक मुनियो का योग रहा है। उन सबको मैं आशीर्वाद देता हू कि उनकी कार्यजाशक्ति और अधिक विकसित हो।

इसकी निष्पत्ति का बहुत कुछ श्रेय शिष्य मुनि नथमल को है क्योंकि इस कार्य मे अहर्निश वे जिस मनोयोग से लगे हैं, उसी से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अन्यथा यह गुरुतर कार्य बडा दुरूह होता। इनकी वृत्ति मूलत योगनिष्ठ होने से मन की एकाग्रता सहज बनी रहती है। आगम का कार्य करते-करते अन्तर्रहस्य पकडने मे इनकी मेधा

---

१ ठाण, ५।२०१।
२ ठाण, ४।३५०।
३ ठाण, ७।१४०।
४ ठाणं, ९।२९।
५. ठाणं, २।८६,८७।
६ ठाण, २।१००।

काफी पैनी हो गई है। विनयशीलता, श्रम-परायणता और गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव ने इनकी प्रगति में बड़ा सहयोग दिया है। यह वृत्ति इनकी बचपन से ही है। जब से मेरे पास आए, मैंने इनकी इस वृत्ति मे क्रमश वर्धमानता ही पाई है। इनकी कार्य-क्षमता और कर्त्तव्यपरता ने मुझे बहुत सन्तोष दिया है।

मैंने अपने सघ के ऐसे शिष्य साधु-साध्वियों के बल-बूते पर ही आगम के इस गुरुतर कार्य को उठाया है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे शिष्य साधु-साध्वियों के निस्स्वार्थ, विनीत एव समर्पणात्मक सहयोग से इस वृहत् कार्य को असाधारणरूप से सम्पन्न कर सकूँगा।

भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर उनकी वाणी को राष्ट्रभाषा हिन्दी में जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है।

जयपुर
२०३२, निर्वाण शताब्दी वर्ष

आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

वि० स० २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पूना से नारायणगाव की ओर जाते-जाते मध्यावधि में एक दिन का प्रवास मचर मे हुआ। आचार्यश्री एक जैन परिवार के भवन मे ठहरे थे। वहा मासिक पत्रों की फाइलें पडी थीं। गृह-स्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ रहे थे। साझ की वेला, लगभग छ बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अश का निवेदन करने के लिए आचार्यश्री के पास गया। आचार्यश्री पत्रो को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुचा, आचार्यश्री ने 'धर्मदूत' के सद्यस्क अंक की ओर सकेत करते हुए पूछा—"यह देखा कि नहीं ?" मैंने उत्तर मे निवेदन किया—"नही, अभी नहीं देखा।" आचार्यश्री बहुत गम्भीर हो गए। एक क्षण रुककर बोले—"इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बडी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा मे पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।" आचार्यश्री की वाणी मे अन्तर्-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकडने में समय की अपेक्षा थी।

आगम-सम्पादन का सकल्प

रात्रि-कालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्यश्री ने साधुओं को आमत्रित किया। वे आए और वन्दना कर पक्तिबद्ध बैठ गए। आचार्यश्री ने साय-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—"जैन आगमो का कायाकल्प किया जाए, ऐसा सकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा। बोलो, कौन तैयार है ?"

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—"सब तैयार हैं ?"

आचार्यश्री ने कहा—"महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी मे लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमे गति करो।"

मचर से विहार कर आचार्यश्री सगमनेर पहुचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियो की परिषद् बुलाई गई। आचार्यश्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-सपादन के सकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्यश्री ने पूछा—"क्या इस सकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए ?"

समलय से प्रार्थना का स्वर निकला—"अवश्य, अवश्य।" आचार्यश्री औरगाबाद पधारे। सुराना भवन, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (वि० स० २०११), महावीर जयन्ती का पुण्य-पर्व। आचार्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध सघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० स० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया। न तो सम्पादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् 'धर्मदूत' का निमित्त पा आचार्यश्री के मन मे सकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिन्तन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से कम नहीं है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

प्रथम दो-तीन वर्षों मे हम अज्ञात दिशा मे यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाए और कार्य पद्धतिया निश्चित व सुस्थिर हो गई। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल व गुरुतर कठिनाइयो से परिपूर्ण है, यह कह-कर मैं स्वल्प भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हू। आचार्यश्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गति-शील हो रहा है। इस कार्य मे हमे अन्य अनेक विद्वानो की सद्भावना, समर्थन व प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्यश्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नही होगी।

सम्पादन का कार्य सरल नही है—यह उन्हें सुविदित है, जिन्होने उस दिशा मे कोई प्रयत्न किया है। दो-ढाई हजार वर्ष पुराने ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य और भी जटिल है, क्योंकि उनकी भाषा और भावधारा आज की भाषा और भाव-धारा से बहुत व्यवधान पा चुकी है। इतिहास की यह अपवाद-शून्य गति है कि जो विचार या आचार जिस आकार मे आरब्ध होता है, वह उसी आकार मे स्थिर नही रहता। या तो वह बडा हो जाता है या छोटा। यह ह्रास और विकास की कहानी ही परिवर्तन की कहानी है। और कोई भी आकार ऐसा नहीं है, जो कृत है और परिवर्तनशील नहीं है। परिवर्तन-शील घटनाओं, तथ्यों, विचारों और आचारों के प्रति अपरिवर्तनशीलता का आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य का केन्द्र-बिन्दु यह है कि जो कृत है, वह सब परिवर्तनशील है। अकृत या शाश्वत भी ऐसा क्या है, जहा परिवर्तन का स्पर्श न हो। इस विश्व मे जो है, वह वही है जिसकी सत्ता शाश्वत और परिवर्तन की धारा से सर्वथा विभक्त नही है।

शब्द की परिधि में बधने वाला कोई भी सत्य क्या ऐसा हो सकता है, जो तीनों कालो मे समान रूप से प्रकाशित रह सके ? शब्द के अर्थ का उत्कर्ष या अपकर्ष होता है—भाषा-शास्त्र के इस नियम को जानने वाला यह आग्रह नहीं रख सकता कि दो हजार वर्ष पुराने शब्द का आज वही अर्थ सही है, जो आज प्रचलित है। 'पाषण्ड' शब्द का जो अर्थ आगम-ग्रन्थों और अशोक के शिलालेखो मे है, वह आज के श्रमण साहित्य मे नही है। आज उसका अपकर्ष हो चुका है। आगम साहित्य के सैकडों शब्दो की यही कहानी है कि वे आज अपने मौलिक अर्थ का प्रकाश नहीं दे रहे हैं। इस स्थिति मे हर चिन्तनशील व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि प्राचीन साहित्य के सम्पादन का काम कितना दुरूह है।

मनुष्य अपनी शक्ति में विश्वास करता है और अपने पौरुष से खेलता है, अत वह किसी भी कार्य को इसलिए नही छोड देता कि वह दुरूह है। यदि यह पलायन की प्रवृत्ति होती तो प्राप्य की सभावना नष्ट ही नहीं हो जाती किन्तु आज जो प्राप्त है, वह अतीत के किसी भी क्षण मे विलुप्त हो जाता। आज से हजार वर्ष पहले नवागी टीकाकार (अभयदेव सूरि) के सामने अनेक कठिनाइयाँ थी। उन्होंने उनकी चर्चा करते हुए लिखा है—

१ सत् सम्प्रदाय (अर्थ-बोध की सम्यक् गुरु-परम्परा) प्राप्त नहीं है।

२ सत् ऊह (अर्थ की आलोचनात्मक कृति या स्थिति) प्राप्त नहीं है।

३ अनेक वाचनाएँ (आगमिक अध्यापन की पद्धतिया) हैं।

४ पुस्तकें अशुद्ध हैं।

५ कृतियाँ सूत्रात्मक होने के कारण बहुत गभीर हैं।

६ अर्थ विषयक मतभेद भी है।[1]

इन सारी कठिनाइयों के उपरान्त भी उन्होंने अपना प्रयत्न नही छोडा और वे कुछ कर गये।

कठिनाइया आज भी कम नही हैं, किन्तु उनके होते हुए भी आचार्य श्री तुलसी ने आगम-सम्पादन के कार्य को अपने हाथो में ले लिया। उनके शक्तिशाली हाथों का स्पर्श पाकर निष्प्राण भी प्राणवान् बन जाता है तो भला आगम-साहित्य, जो स्वय प्राणवान् है, उसमें प्राण-सचार करना क्या बडी बात है ? बडी बात यह है कि आचार्यश्री ने उसमे प्राण-सचार मेरी

---

१ स्थानांगवृत्ति, प्रशस्ति श्लोक, १,२ ·

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगत ।
सर्वस्वपरशास्त्राणा-मदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धित ।
सूत्राणामतिगाम्भीर्याद्, मतभेदाश्च कुत्रचित् ॥

और मेरे सहयोगी साधु-साध्वियों की असमर्थ अगुलियों द्वारा कराने का प्रयत्न किया है। सम्पादन-कार्य में हमे आचार्यश्री का आशीर्वाद ही प्राप्त नहीं है किन्तु मार्ग-दर्शन और सक्रिय योग भी प्राप्त है। आचार्यवर ने इस कार्य को प्राथमिकता दी है और इसकी परिपूर्णता के लिए अपना पर्याप्त समय दिया है। उनके मार्ग-दर्शन, चिन्तन और प्रोत्साहन का मवल पा हम अनेक दुस्तर धाराओं का पार पाने मे समर्थ हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ ठाण का सानुवाद सस्करण है। आगम साहित्य के अध्येता दोनों प्रकार के लोग हैं, विद्वद्जन और साधारण जन। मूल पाठ के आधार पर अनुसधान करने वाले विद्वानों के लिए मूल पाठ का सम्पादन अगसुत्ताणि भाग १ में किया गया। प्रस्तुत सस्करण में मूल पाठ, सस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और टिप्पण हैं और टिप्पणों के सन्दर्भस्थल भी उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका बहुत ही लघुकाय है। हमारी परिकल्पना है कि सभी अगो और उपागों की बृहद् भूमिका एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे हो।

सस्कृत छाया

सस्कृत छाया को हमने वस्तुत छाया रखने का ही प्रयत्न किया है। टीकाकार प्राकृत शब्द की व्याख्या करते हैं अथवा उसका सस्कृत पर्यायान्तर देते हैं। छाया में वैसा नही हो सकता।

हिन्दी अनुवाद और टिप्पण

'ठाण' का हिन्दी अनुवाद मूलस्पर्शी है। इसमें कोरे शब्दानुवाद की-सी विरसता और जटिलता नहीं है तथा भावानुवाद जैसा विस्तार भी नही है। सूत्र का आशय जितने शब्दो मे प्रतिबिम्बित हो सके, उतने ही शब्दो की योजना करने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्दो की सुरक्षा के लिए कहीं-कहीं उनका प्रचलित अर्थ कोष्ठको में दिया गया है। सूत्रगत-हार्द की स्पष्टता टिप्पणो में की गई है। वि० स० २०१७ के चैत्र में अनुवाद कार्य शुरू हुआ। आचार्यश्री बाडमेर की यात्रा में पधारे और हम लोग जोधपुर में रहे। आचार्यश्री जोधपुर पहुचे तब तक, तीन मास की अवधि में, हमारा अनुवाद कार्य सम्पन्न हो गया। उस समय कुछ विशिष्ट स्थलो पर टिप्पण लिखे।

व्यापक स्तर पर टिप्पण लिखने की योजना भविष्य के लिए छोड दी गई। वर्षों तक वह कार्य नही हो सका। अन्यान्य आगमो के कार्य में होने वाली व्यस्तता ने इस काय को अवकाश नहीं दिया। वि० स० २०२७ रायपुर मे मुनि दुलहराजजी ने अवशिष्ट टिप्पण लिखे और प्रस्तुत सूत्र का कार्य पूर्णत सम्पन्न हो गया। किन्तु कोई ऐसा ही योग रहा कि प्रस्तुत आगम प्रकाश मे नही आ सका। भगवान् महावीर की पचीसवी निर्वाण शताब्दी के वर्ष में जैन विश्व भारती ने अगसुत्ताणि के तीन भागों के साथ इसका प्रकाशन भी शुरू किया। वे तीन भाग प्रकाशित हो गए। इसके प्रकाशन मे अवरोध आते गए। न जाने क्यों? पर यह सच है कि अवरोधों की लम्बी यात्रा के बाद प्रस्तुत ग्रन्थ जनता तक पहुच रहा है। इस सम्पादन मे हमने जिन ग्रन्थों का उपयोग किया है उनके लेखको के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत सम्पादन मे सहयोगी

प्रस्तुत आगम के अनुवाद और टिप्पण-लेखन मे मुनि सुखलाल जी, मुनि श्रीचन्द्रजी और मुख्यतया मुनि दुलहराजजी ने बडी तत्परता से योग दिया है। इसकी सस्कृत छाया मे मुनि दुलीचन्दजी 'दिनकर' का योगदान रहा है। मुनि हीरालाल जी ने सस्कृत छाया, प्रति-शोधन आदि प्रवृत्तियों मे अथक परिश्रम किया है। विषयानुक्रम और प्रयुक्त-ग्रन्थसूची मुनि दुलहराजजी ने तैयार की है। विशेषनामानुक्रम का परिशिष्ट मुनि हीरालालजी ने तैयार किया है।

'अगसुत्ताणि' भाग १ में प्रस्तुत सूत्र का सपादित पाठ प्रकाशित है। इसलिए इस सस्करण में पाठान्तर नहीं दिए गए हैं। पाठान्तरो तथा तत्सबधी अन्य सूचनाओं के लिए 'अगसुत्ताणि' भाग १ द्रष्टव्य है। प्रस्तुत सूत्र के पाठ-सपादन मे मुनि सुदर्शनजी, मुनि मधुकरजी और मुनि हीरालालजी सहयोगी रहे हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक साधुओं की पवित्र अगुलियों का योग है। आचार्यश्री के वरदहस्त की छाया मे बैठकर कार्य करने वाले हम सब सभागी हैं, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्‌भावना व्यक्त करता हू, जिनका इस कार्य मे योग है और आशा करता हू कि वे इस महान् कार्य के अग्रिम चरण मे और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमों के प्रबन्ध-सम्पादक श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय श्री मदनचन्दजी गोठी का भी इस कार्य मे निरन्तर सहयोग रहा है।

आदर्श साहित्य सघ के सचालक व व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री हनूतमलजी सुराना व जयचन्दलालजी दफ्तरी का भी अविरल योग रहा है। आदर्श साहित्य सघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। एक लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम-प्रवृत्ति मे योगदान की परम्परा का उल्लेख व्यवहार-पूर्ति मात्र है। वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्त्तव्य है और उसी का हम सबने पालन किया है।

आचार्यश्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं। हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग दोनो प्राप्त हैं इसलिए हमारा कार्य-पथ बहुत ऋजु हुआ है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की गुरुता को बढा नही पाऊँगा। उनका आशीर्वाद दीप बनकर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशसा है।

सुजानगढ़
२०३३ चैत्र
महावीर जन्म-जयन्ती

—मुनि नथमल

विषय-सूची

पहला स्थान

दूसरा स्थान

चौथा स्थान

पाचवा स्थान

छठा स्थान

सातवां स्थान

आठवा स्थान

पढमं ठाणं

प्रथम स्थान

आमुख

स्थानांग सख्या-निवद्ध आगम है। इसमें समग्र प्रतिपाद्य का समावेश एक से दस तक की सख्या मे हुआ है। इसी आधार पर इसके दस अध्ययन है। प्रथम अध्ययन मे एक मे सम्वन्धित विपय प्रतिपादित है।

प्रतिपादन और नयदृष्टि

एक और अनेक सापेक्ष हैं। इनकी विचारणा नयदृष्टि से की जाती है। सग्रहनय अभेददृष्टि है। उनके द्वारा जव हम वस्तुतत्त्व का विचार करते हैं, तव भेद अभेद मे आवृत हो जाता है। व्यवहारनय भेददृष्टि है। उसके द्वारा वस्तुतत्त्व का विचार करने पर अभेद भेद से आवृत हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन मे वस्तुतत्त्व का सग्रहनय की दृष्टि से विचार किया गया है। तीसरे अध्ययन मे दण्ड के तीन प्रकार वतलाए गए हैं और प्रस्तुत अध्ययन[1] के अनुसार दण्ड एक है। ये दोनों सूत्र परस्पर विरोधी नहीं हैं, किन्तु सापेक्ष दृष्टि से प्रतिपादित हैं।

आत्मा एक है।[2] यह एकत्व द्रव्य की दृष्टि से है। जम्बूद्वीप एक है।[3] यह एकत्व क्षेत्र की दृष्टि से है।

एक समय मे एक ही मन होता है।[4] यह काल-सापेक्ष एकत्व का प्रतिपादन है। एक समय मे मन की दो प्रवृत्तिया नहीं होतीं, इसलिए यह एकत्व काल की दृष्टि से है।

शब्द एक है।[5] यह एकत्व भाव (पर्याय, अवस्था-भेद) की दृष्टि से है। शब्द पुद्गल का एक पर्याय है। प्रस्तुत अध्ययन मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन चारों दृष्टियों से वस्तुतत्त्व का विमर्श किया गया है।

विषय-वस्तु

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य तत्त्ववाद (द्रव्यानुयोग) है। कुछ सूत्र आचार (चरण-करणानुयोग) से भी सम्वन्धित हैं।[6]

भगवान् महावीर अकेले ही निर्वाण को प्राप्त हुए थे। इस ऐतिहासिक तथ्य की सूचना भी प्रस्तुत अध्ययन मे मिलती है।[7]

इसमे कालचक्र[8] और ज्योतिश्चक्र[9] सम्वन्धी सूत्र भी उपलब्ध हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन मे अनेक विपय सगृहीत हैं।

रचना-शैली

प्रस्तुत अध्ययन के अधिकांश सूत्र विशेपण और वर्णन रहित हैं। जम्बूद्वीप[10] का लम्वा वर्णन किया है। वह समूचे अध्ययन के रचनाक्रम से भिन्न-सा प्रतीत होता है। किन्तु प्रस्तुत स्थान मे वर्णन अनावश्यक नहीं है। अभयदेव सूरी ने उसकी सार्थकता वतलाते हुए लिखा है—"उक्त वर्णन वाला जम्बूद्वीप एक ही है। इस वर्णन से भिन्न आकार वाले जम्बूद्वीप वहुत हैं।"[11]

---

१ १।३
२ १।२
३ १।२४८
४ १।४१
५ १।४५
६ १।१०९-१२६
७ १।२४६
८ १।१२७-१४०
९ १।२५१-२५३
१० १।२४८
११ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३
उत्तरविशेषणश्च जम्बूद्वीप एक एव, अन्यथा अनेकेऽपि ते सन्तीति।

स्थान या अध्ययन ?

स्थानांग के विभाग अधिकांशतया स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। वृत्तिकार ने उन्हें 'अध्ययन' भी कहा है।[1] प्रत्येक अध्ययन में एक ही संख्या के लिए स्थान है, इसलिए अध्ययन का नाम स्थान रखना भी उचित है। प्रस्तुत विभाग को प्रथम स्थान या प्रथम अध्ययन दोनों कहा जा सकता है।

निक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का आकार छोटा है। इसका कारण विषय का संक्षेप है। इसके अनेक विषयों का विस्तार अग्रिम अध्ययनों में मिलता है। आधार-संकलन की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३
तत्र च दशाध्ययनानि।

पढम ठाणं · प्रथम स्थान

मूल	सस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सुय मे आउस ! तेण भगवता एवमक्खाय—	श्रुत मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एव आख्यातम्—	१ आयुष्मान् ! मैंने सुना, भगवान् ने ऐसा कहा है—
अत्थिवाय-पदं	**अस्तिवाद-पदम्**	**अस्तिवाद-पद**
२ एगे आया।	एक आत्मा।	२ आत्मा[1] एक है।
३ एगे दडे।	एको दण्ड ।	३ दण्ड[2] एक है।
४. एगा किरिया।	एका क्रिया।	४ क्रिया[3] (प्रवृत्ति) एक है।
५. एगे लोए।	एको लोक ।	५ लोक[4] एक है।
६ एगे अलोए।	एको ऽलोक ।	६ अलोक[5] एक है।
७. एगे धम्मे।	एको धर्म ।	७ धर्म[6] (धर्मास्तिकाय) एक है।
८ एगे अहम्मे।	एको ऽधर्म ।	८ अधर्म[7] (अधर्मास्तिकाय) एक है।
९. एगे वधे।	एको वन्ध ।	९ वन्ध[8] एक है।
१०. एगे मोक्खे।	एको मोक्ष ।	१० मोक्ष[9] एक है।
११ एगे पुण्णे।	एक पुण्यम्।	११ पुण्य[10] एक है।
१२ एगे पावे।	एक पापम्।	१२ पाप[11] एक है।
१३ एगे आसवे।	एक आश्रव ।	१३ आस्रव[12] एक है।
१४ एगे सवरे।	एक सवर ।	१४ सवर[13] एक है।
१५ एगा वेयणा।	एका वेदना।	१५ वेदना[14] एक है।
१६ एगा णिज्जरा।	एका निर्जरा।	१६ निर्जरा[15] एक है।
पइण्णग-पदं	**प्रकीर्णक-पदम्**	**प्रकीर्णक-पद**
१७. एगे जीवे पाडिक्कएण सरीरएण।	एको जीव प्रत्येककेन शरीरकेण।	१७ प्रत्येक शरीर मे जीव एक है।[16]
१८ एगा जीवाण अपरिआइत्ता विगुव्वणा।	एका जीवाना अपर्यादाय विकरणम्।	१८ अपर्यादाय (वाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना होने वाली विक्रिया) एक है।
१९. एगे मणे।	एक मन ।	१९ मन[17] एक है।
२०. एगा वई।	एका वाक्।	२० वचन[18] एक है।
२१. एगे काय-वायामे।	एक काय-व्यायाम ।	२१ कायव्यायाम[19] एक है।

२२ एगा उप्पा ।	एक उत्पाद ।	२२ उत्पत्ति[20] एक है।
२३ एगा वियती ।	एका विगति ।	२३ विगति[21] (विनाश) एक है।
२४. एगा वियच्चा ।	एका विगतार्चा ।	२४ विशिष्ट चित्तवृत्ति[22] एक है।
२५. एगा गती ।	एका गति ।	२५ गति[23] एक है।
२६ एगा आगती ।	एका आगति ।	२६ आगति[24] एक है।
२७ एगे चयणे ।	एक च्यवनम् ।	२७ च्यवन[25] एक है।
२८ एगे उववाए ।	एक उपपात ।	२८ उपपात[26] एक है।
२९. एगा तक्का ।	एक तर्क ।	२९ तर्क[27] एक है।
३० एगा सण्णा ।	एका मज्ञा ।	३० सज्ञा[28] एक है।
३१ एगा मण्णा ।	एका मति ।	३१ मनन[29] एक है।
३२ एगा विण्णू ।	एको विज्ञ ।	३२ विद्वत्ता[30] एक है।
३३ एगा वेयणा ।	एका वेदना ।	३३ वेदना[31] एक है।
३४. एगे छेयणे ।	एक छेदनम् ।	३४ छेदन[32] एक है।
३५ एगे भेयणे ।	एक भेदनम् ।	३५ भेदन[33] एक है।
३६ एगे मरणे अतिमसारीरियाण ।	एक मरण अन्तिमशारीरिकाणाम् ।	३६ अन्तिमशरीरी[34] जीवो का मरण एक है।
३७ एगे ससुद्धे अहाभूए पत्ते ।	एक मगुद्ध यथाभूत पात्रम् ।	३७ जो सशुद्ध यथाभूत[35] और पात्र है, वह एक है।
३८ एगे दुक्खे जीवाण एगभूए ।	एक दु ख जीवाना एकभूतम् ।	३८ प्रत्येक जीव का दु ख एक और एकभूत है[36]।
३९ एगा अहम्मपडिमा, ज से आया परिकिलेसति ।	एका अधर्म-प्रतिमा यत् तस्या आत्मा परिक्लिश्यते ।	३९ अधर्मप्रतिमा[37] एक है, जिसमे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है।
४० एगा धम्मपडिमा, जं से आया पज्जवजाए ।	एका धर्म-प्रतिमा यत् तस्या आत्मा पर्यवजात ।	४० धर्मप्रतिमा[38] एक है, जिससे आत्मा पर्यवजात होता है (ज्ञान आदि की विशेष शुद्धि को प्राप्त होता है) ।
४१ एगे मणे देवासुरमणुयाण तसि तसि समयसि ।	एक मन देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये ।	४१ देव, असुर और मनुष्य जिस समय चिंतन करते हैं, उस समय उनके एक मन होता है।[39]
४२ एगा वई देवासुरमणुयाणं तसि तसि समयसि ।	एका वाक् देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये ।	४२ देव, असुर और मनुष्य जिस समय बोलते हैं, उस समय उनके एक वचन होता है।[40]
४३ एगे काय-वायामे देवासुर-मणुयाण तंसि तंसि समयसि ।	एक काय—व्यायाम देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये ।	४३ देव, असुर और मनुष्य जिस समय काय-व्यापार करते हैं, उस समय उनके एक कायव्यायाम होता है।[41]
४४ एगे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसकार-परक्कमे देवासुर-मणुयाणं तंसि तंसि समयसि ।	एक उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये ।	४४ देव, असुर और मनुष्यो के एक समय मे एक ही उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुष-कार अथवा पराक्रम होता है।[42]

४५ एगे णाणे।	एक ज्ञानम्।	४५ ज्ञान एक है।
४६ एगे दसणे।	एक दर्शनम्।	४६ दर्शन एक है।
४७ एगे चरित्ते।	एक चरित्रम्।	४७ चरित्र एक है।
४८ एगे समए।	एक समय।	४८ समय एक है।
४९ एगे पएसे।	एक प्रदेश।	४९ प्रदेश एक है।
५० एगे परमाणू।	एक परमाणु।	५० परमाणु एक है।
५१ एगा सिद्धी।	एका सिद्धि।	५१ सिद्धि एक है।
५२ एगे सिद्धे।	एक सिद्ध।	५२ सिद्ध एक है।
५३ एगे परिणिव्वाणे।	एक परिनिर्वाणम्।	५३ परिनिर्वाण एक है।
५४ एगे परिणिव्वुए।	एक परिनिर्वृत।	५४ परिनिर्वृत एक है।
पोग्गल-पदं	**पुद्गल-पदम्**	**पुद्गल-पद**
५५ एगे सद्दे।	एक शब्द।	५५ शब्द एक है।
५६ एगे रूवे।	एक रूपम्।	५६ रूप एक है।
५७ एगे गंधे।	एको गन्ध।	५७ गंध एक है।
५८ एगे रसे।	एको रस।	५८ रस एक है।
५९. एगे फासे।	एक स्पर्श।	५९ स्पर्श एक है।
६०. एगे सुब्भिसद्दे।	एक सुशब्द।	६० शुभ-शब्द एक है।
६१. एगे दुब्भिसद्दे।	एक दुःशब्द।	६१ अशुभ-शब्द एक है।
६२ एगे सुरूवे।	एक सुरूपम्।	६२ शुभ-रूप एक है।
६३. एगे दुरूवे।	एक दूरूपम्।	६३ अशुभ-रूप एक है।
६४ एगे दीहे।	एको दीर्घ।	६४ दीर्घ एक है।
६५. एगे हस्से।	एको ह्रस्व।	६५ ह्रस्व एक है।
६६. एगे वट्टे।	एको वृत्त।	६६ वृत्त एक है।
६७. एगे तंसे।	एक त्र्यस्र.।	६७ त्रिकोण एक है।
६८. एगे चउरंसे।	एक चतुरस्र।	६८ चतुष्कोण एक है।
६९ एगे पिहुले।	एक पृथुल।	६९ विस्तीर्ण एक है।
७० एगे परिमंडले।	एक परिमण्डल।	७० परिमण्डल एक है।
७१. एगे किण्हे।	एक कृष्ण।	७१ कृष्ण एक है।
७२ एगे णीले।	एको नील।	७२ नील एक है।
७३. एगे लोहिए।	एको लोहित।	७३ लोहित एक है।
७४ एगे हालिद्दे।	एको हारिद्र।	७४ हारिद्र एक है।
७५. एगे सुक्किल्ले।	एक शुक्ल।	७५ शुक्ल एक है।
७६ एगे सुब्भिगंधे।	एक सुगन्ध।	७६ शुभ-गंध एक है।

७७ एगे दुब्भिगंधे।
७८ एगे तित्ते।
७९ एगे कडुए।
८० एगे कसाए।
८१ एगे अंबिले।
८२ एगे महुरे।
८३ एगे कक्खडे।
८४ •एगे मउए।
८५ एगे गरुए।
८६ एगे लहुए।
८७ एगे सीते।
८८ एगे उसिणे।
८९ एगे णिद्धे।
९० एगे° लुक्खे।

अट्ठारसपाव-पदं

९१ एगे पाणातिवाए।
९२ •एगे मुसावाए।
९३ एगे अदिण्णादाणे।
९४ एगे मेहुणे°।
९५ एगे परिग्गहे।
९६ एगे कोहे।
९७ •एगे माणे।
९८ एगा माया°।
९९ एगे लोभे।
१०० एगे पेज्जे।
१०१ एगे दोसे।
१०२ •एगे कलहे।
१०३ एगे अब्भक्खाणे।
१०४ एगे पेसुण्णे°।
१०५ एगे परपरिवाए।
१०६ एगा अरतिरती।
१०७ एगे मायामोसे।
१०८ एगे मिच्छादंसणसल्ले।

एको दुर्गन्धः।
एक: तिक्तः।
एक: कटुकः।
एक: कषायः।
एक: अम्लः।
एको मधुरः।
एक: कर्कशः।
एको मृदुकः।
एको गुरुकः।
एको लघुकः।
एक: शीतः।
एक: उष्णः।
एक: स्निग्धः।
एको रूक्षः।

अष्टादशपाप-पदम्

एक: प्राणातिपातः।
एको मृषावादः।
एक: अदत्तादानम्।
एक: मैथुनम्।
एक: परिग्रहः।
एक: क्रोधः।
एक: मानः।
एका माया।
एको लोभः।
एक: प्रेयान्।
एको दोषः।
एक: कलहः।
एक: अभ्याख्यानम्।
एक: पैशुन्यम्।
एक: परपरिवादः।
एका अरतिरतिः।
एका मायामृषा।
एक: मिथ्यादर्शनशल्यम्।

७७ अशुभ-गंध[७१] एक है।
७८ तीता[७२] एक है।
७९ कडुआ[७३] एक है।
८० कसैला[७४] एक है।
८१ आम्ल[७५] (खट्टा) एक है।
८२ मधुर[७६] एक है।
८३ कर्कश[७७] एक है।
८४ मृदु[७८] एक है।
८५ गुरु[७९] एक है।
८६ लघु[८०] एक है।
८७ शीत[८१] एक है।
८८ उष्ण[८२] एक है।
८९ स्निग्ध[८३] एक है।
९० रूक्ष[८४] एक है।

अष्टादशपाप-पद

९१ प्राणातिपात एक है।
९२ मृषावाद एक है।
९३ अदत्तादान एक है।
९४ मैथुन एक है।
९५ परिग्रह एक है।
९६ क्रोध एक है।
९७ मान एक है।
९८ माया एक है।
९९ लोभ एक है।
१०० प्रेम एक है।
१०१ द्वेष एक है।
१०२ कलह एक है।
१०३ अभ्याख्यान एक है।
१०४ पैशुन्य एक है।
१०५ परपरिवाद एक है।
१०६ अरति-रति एक है।
१०७ मायामृषा[८५] एक है।
१०८ मिथ्यादर्शनशल्य एक है।

अट्ठारसपाव-वेरमण-पदं	अष्टादशपाप-विरमण-पदम्	अष्टादशपाप-विरमण-पद
१०९ एगे पाणाइवाय-वेरमणे।	एक प्राणातिपात-विरमणम्।	१०९ प्राणातिपात-विरमण एक है।
११० •एगे मुसावाय-वेरमणे।	एक मृषावाद-विरमणम्।	११० मृषावाद-विरमण एक है।
१११ एगे अदिण्णादाण-वेरमणे।	एक अदत्तादान-विरमणम्।	१११ अदत्तादान-विरमण एक है।
११२ एगे मेहुण-वेरमणे।	एक मैथुन-विरमणम्।	११२ मैथुन-विरमण एक है।
११३ एगे° परिग्गह-वेरमणे।	एक परिग्रह-विरमणम्।	११३ परिग्रह-विरमण एक है।
११४ एगे कोह-विवेगे।	एक क्रोध-विवेक।	११४ क्रोध-विवेक एक है।
११५ •एगे माण-विवेगे।	एको मान-विवेक।	११५ मान-विवेक एक है।
११६ एगे माया-विवेगे।	एको माया-विवेक।	११६ माया-विवेक एक है।
११७ एगे लोभ-विवेगे।	एको लोभ-विवेक।	११७ लोभ-विवेक एक है।
११८ एगे पेज्ज-विवेगे।	एक प्रेयो-विवेक'।	११८ प्रेम-विवेक एक है।
११९ एगे दोस-विवेगे।	एको दोष-विवेक।	११९ द्वेष-विवेक एक है।
१२० एगे कलह-विवेगे।	एक कलह-विवेक।	१२० कलह-विवेक एक है।
१२१ एगे अब्भक्खाण-विवेगे।	एको ऽभ्याख्यान-विवेक।	१२१ अभ्याख्यान-विवेक एक है।
१२२ एगे पेसुण्ण-विवेगे।	एक पैशुन्य-विवेक'।	१२२ पैशुन्य-विवेक एक है।
१२३ एगे परपरिवाय-विवेगे।	एक परपरिवाद-विवेक।	१२३ परपरिवाद-विवेक एक है।
१२४ एगे अरतिरति-विवेगे।	एको ऽरतिरति-विवेक'।	१२४ अरति-रति-विवेक एक है।
१२५ एगे मायामोस-विवेगे।	एको मायामृषा-विवेक।	१२५ मायामृषा-विवेक एक है।
१२६ एगे° मिच्छादंसणसल्ल-विवेगे।	एको मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक।	१२६ मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक एक है।

ओसप्पिणी-उस्सप्पिणी-पदं	अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-पदम्	अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-पद
१२७ एगा ओसप्पिणी।	एका अवसर्प्पिणी।	१२७ अवसर्पिणी' एक है।
१२८ एगा सुसम-सुसमा।	एका सुषम-सुषमा।	१२८ सुषमसुषमा एक है।
१२९ •एगा सुसमा।	एका सुषमा।	१२९ सुषमा एक है।
१३० एगा सुसम-दूसमा।	एका सुषम-दुष्षमा।	१३० सुषमदुषमा एक है।
१३१ एगा दूसम-सुसमा।	एका दुष्षम-सुषमा।	१३१ दुषमसुषमा एक है।
१३२ एगा दूसमा°।	एका दुष्षमा।	१३२ दुषमा एक है।
१३३ एगा दूसम-दूसमा।	एका दुष्षम-दुष्षमा।	१३३ दुषमदुषमा एक है।
१३४ एगा उस्सप्पिणी।	एका उत्सर्पिणी।	१३४ उत्सर्पिणी' एक है।
१३५ एगा दुस्सम-दुस्समा।	एका दुष्षम दुष्षमा।	१३५ दुषमदुषमा एक है।
१३६ •एगा दुस्समा।	एका दुष्षमा।	१३६ दुषमा एक है।
१३७ एगा दुस्सम-सुसमा।	एका दुष्षम-सुषमा।	१३७ दुषमासुषमा एक है।
१३८ एगा सुसम-दुस्समा।	एका सुषम-दुष्षमा।	१३८ सुषमदुषमा एक है।

१३९ एगा सुसमा°।	एका सुषमा।	१३९ सुषमा एक है।
१४० एगा सुसम-सुसमा।	एका सुषम-सुषमा।	१४० सुषमसुषमा एक है।

चउवीसदंडग-पद	चतुर्विंशतिदण्डक-पदम्	चतुर्विंशतिदण्डक-पद
१४१ एगा णेरइयाणं वग्गणा।	एका नैरयिकाणा वर्गणा।	१४१ नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।[६]
१४२ एगा असुरकुमाराण वग्गणा।	एका असुरकुमाराणा वर्गणा।	१४२ असुरकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४३ •एगा णागकुमाराण वग्गणा।	एका नागकुमाराणा वर्गणा।	१४३ नागकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४४ एगा सुवण्णकुमाराण वग्गणा।	एका सुपर्णकुमाराणा वर्गणा।	१४४ सुपर्णकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४५ एगा विज्जुकुमाराण वग्गणा।	एका विद्युत्कुमाराणा वर्गणा।	१४५ विद्युत्कुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४६ एगा अग्गिकुमाराण वग्गणा।	एका अग्निकुमाराणा वर्गणा।	१४६ अग्निकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४७ एगा दीवकुमाराण वग्गणा।	एका द्वीपकुमाराणा वर्गणा।	१४७ द्वीपकुमार देवों की वगणा एक है।
१४८ एगा उदहिकुमाराण वग्गणा।	एका उदधिकुमाराणा वर्गणा।	१४८ उदधिकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४९ एगा दिसाकुमाराण वग्गणा।	एका दिक्कुमाराणा वर्गणा।	१४९ दिशाकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१५० एगा वायुकुमाराण वग्गणा।	एका वायुकुमाराणा वर्गणा।	१५० वायुकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१५१ एगा थणियकुमाराण वग्गणा।	एका स्तनितकुमाराणा वर्गणा।	१५१ स्तनितकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१५२ एगा पुढविकाइयाण वग्गणा।	एका पृथिवीकायिकाना वर्गणा।	१५२ पृथ्वीकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
१५३ एगा आउकाइयाण वग्गणा।	एका अप्कायिकाना वर्गणा।	१५३ अप्कायिक जीवों की वर्गणा एक है।
१५४ एगा तेउकाइयाण वग्गणा।	एका तेजस्कायिकाना वर्गणा।	१५४ तेजस्कायिक जीवों की वर्गणा एक है।
१५५ एगा वाउकाइयाण वग्गणा।	एका वायुकायिकाना वर्गणा।	१५५ वायुकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
१५६ एगा वणस्सइकाइयाण वग्गणा।	एका वनस्पतिकायिकाना वर्गणा।	१५६ वनस्पतिकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
१५७ एगा बेइंदियाणं वग्गणा।	एका द्वीन्द्रियाणा वर्गणा।	१५७ द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१५८ एगा तेइंदियाण वग्गणा।	एका त्रीन्द्रियाणा वर्गणा।	१५८ त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१५९ एगा चउरिंदियाण वग्गणा।	एका चतुरिन्द्रियाणा वर्गणा।	१५९ चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१६० एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण वग्गणा।	एका पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना वर्गणा।	१६० पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की वर्गणा एक है।
१६१ एगा मणुस्साण वग्गणा।	एका मनुष्याणा वर्गणा।	१६१ मनुष्यों की वर्गणा एक है।
१६२ एगा वाणमंतराण वग्गणा।	एका वानमन्तराणा वर्गणा।	१६२ वानमंतर देवों की वर्गणा एक है।
१६३ एगा जोइसियाण वग्गणा°।	एका ज्योतिष्काणा वर्गणा।	१६३ ज्योतिष्क देवों की वर्गणा एक है।
१६४ एगा वेमाणियाण वग्गणा।	एका वैमानिकाना वर्गणा।	१६४ वैमानिक देवों की वर्गणा एक है।

भव-अभव-सिद्धिय-पद	भव-अभव-सिद्धिक-पदम्	भव-अभव सिद्धिक पद
१६५ एगा भवसिद्धियाण वग्गणा।	एका भवसिद्धिकाना वर्गणा।	१६५ भवसिद्धिक[७] जीवों की वर्गणा एक है।
१६६ एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा।	एका अभवसिद्धिकाना वर्गणा।	१६६ अभवसिद्धिक[८] जीवों की वर्गणा एक है।

१६७	एगा भवसिद्धियाण णेरइयाणं वग्गणा।	एका भवसिद्धिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।	१६७	भवसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१६८	एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाण वग्गणा।	एका अभवसिद्धिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।	१६८	अभवसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१६९	एवं जाव एगा भवसिद्धियाण वेमाणियाणं वग्गणा। एगा अभवसिद्धियाणं वेमाणियाण वग्गणा।	एव यावत् एका भवसिद्धिकाना वैमानिकाना वर्गणा। एका अभवसिद्धिकाना वैमानिकाना वर्गणा।	१६९	इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक तक के सभी दण्डकों की वर्गणा एक है।

दिट्ठि-पद / दृष्टि-पदम् / दृष्टि-पद

१७०	एगा सम्मद्दिट्ठियाण वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकाना वर्गणा।	१७०	सम्यक्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७१	एगा मिच्छद्दिट्ठियाण वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकाना वर्गणा।	१७१	मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७२	एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाण वग्गणा।	एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाना वर्गणा।	१७२	सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७३	एगा सम्मद्दिट्ठियाण णेरइयाणं वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकाना नैरयिकाणा। वर्गणा।	१७३	सम्यक्दृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७४	एगा मिच्छद्दिट्ठियाण णेरइयाण वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।	१७४	मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७५	एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाण वग्गणा।	एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।	१७५	सम्यक्मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७६	एवं जाव थणियकुमाराण वग्गणा।	एव यावत् स्तनितकुमाराणा वर्गणा।	१७६	इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक के सम्यक्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यक्मिथ्यादृष्टि देवों की वर्गणा एक-एक है।
१७७	एगा मिच्छद्दिट्ठियाण पुढविक्काइयाण वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकाना पृथिवी कायिकाना वर्गणा।	१७७	पृथ्वीकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७८	एव जाव वणस्सइकाइयाण।	एव यावत् वनस्पतिकायिकानाम्।	१७८	इसी प्रकार अप्कायिक जीवों से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीवों की वगणा एक-एक है।
१७९	एगा सम्मद्दिट्ठियाण वेइंदियाण वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकाना द्वीन्द्रियाणा वर्गणा।	१७९	सम्यक्दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वगणा एक है।
१८०	एगा मिच्छद्दिट्ठियाण वेइंदियाण वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकाना द्वीन्द्रियाणा वर्गणा।	१८०	मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वगणा एक है।

१८१ °एगा सम्मद्दिट्ठियाण तेइंदियाण वग्गणा	एका सम्यग्दृष्टिकाना त्रीन्द्रियाणा वर्गणा।	१८१ सम्यक्दृष्टि त्रीन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है।
१८२ एगा मिच्छद्दिट्ठियाण तेइंदियाण वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकाना त्रीन्द्रियाणा वर्गणा।	१८२ मिथ्यादृष्टि त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८३ एगा सम्मद्दिट्ठियाण चउरिंदियाण वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकाना चतुरिन्द्रियाणा वर्गणा।	१८३ सम्यक्दृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है।
१८४ एगा मिच्छद्दिट्ठियाण चउरिंदियाण वग्गणा°।	एका मिथ्यादृष्टिकाना चतुरिन्द्रियाणा वर्गणा।	१८४ मिथ्यादृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८५ सेसा जहा णेरइया जाव एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाण वेमाणियाण वग्गणा।	शेपा यथा नैरयिका यावत् एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाना वैमानिकाना वर्गणा।	१८५ सम्यक्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यक्-मिथ्यादृष्टि शेप दण्डकों (पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको) की वर्गणा एक-एक है।

कण्ह-सुक्क-पक्खिय-पद	**कृष्ण-शुक्ल-पाक्षिक-पदम्**	**कृष्ण-शुक्ल-पाक्षिक-पद**
१८६ एगा कण्हपक्खियाण वग्गणा।	एका कृष्णपाक्षिकाणा वर्गणा।	१८६ कृष्ण पाक्षिक[11] जीवो की वर्गणा एक है।
१८७ एगा सुक्कपक्खियाण वग्गणा।	एका शुक्लपाक्षिकाणा वर्गणा।	१८७ शुक्ल-पाक्षिक[12] जीवो की वर्गणा एक है।
१८८ एगा कण्हपक्खियाण णेरइयाण वग्गणा।	एका कृष्णपाक्षिकाणा नैरयिकाणा वर्गणा।	१८८ कृष्ण-पाक्षिक नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।
१८९ एगा सुक्कपक्खियाण णेरइयाण वग्गणा।	एका शुक्लपाक्षिकाणा नैरयिकाणा वर्गणा।	१८९ शुक्ल-पाक्षिक नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।
१९० एव—चउवीसदडओ भाणियव्वो।	एवम्—चतुर्विंशतिदण्डक भणितव्य।	१९० इसी प्रकार शेप सभी कृष्ण-पाक्षिक और शुक्ल-पाक्षिक दण्डको की वर्गणा एक-एक है।

लेसा-पदं	**लेश्या-पदम्**	**लेश्या-पद**
१९१ एगा कण्हलेसाण वग्गणा।	एका कृष्णलेश्याना वर्गणा।	१९१ कृष्णलेश्या[13] वाले जीवों की वर्गणा एक है।
१९२ एगा णीललेसाण वग्गणा।	एका नीललेश्याना वर्गणा।	१९२ नीललेश्या[14] वाले जीवो की वर्गणा एक है।
१९३ एगा काउलेसाण वग्गणा।	एका कापोतलेश्याना वर्गणा।	१९३ कापोतलेश्या[15] वाले जीवो की वर्गणा एक है।

१९४ एगा तेउलेसाण वग्गणा।

एका तेजोलेश्याना वर्गणा।

१९४ तेजोलेश्या[१६] वाले जीवो की वर्गणा एक है।

१९५ एगा पम्ह[म्म ?]लेसाण वग्गणा।

एका पद्मलेश्याना वर्गणा।

१९५ पद्मलेश्या[१७] वाले जीवो की वर्गणा एक है।

१९६ एगा° सुक्कलेसाणं वग्गणा।

एका शुक्ललेश्याना वर्गणा।

१९६ शुक्ललेश्या[१८] वाले जीवो की वर्गणा एक है।

१९७ एगा कण्हलेसाण णेरइयाण वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना नैरयिकाणा वर्गणा।

१९७ कृष्णलेश्या वाले नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।

१९८ *एगा णीललेसाण णेरइयाणं वग्गणा।

एका नीललेश्याना नैरयिकाणा वर्गणा।

१९८ नीललेश्या वाले नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।

१९९ एगा° काउलेसाण णेरइयाणं वग्गणा।

एका कापोतलेश्याना नैरयिकाणा वर्गणा।

१९९ कापोतलेश्या वाले नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।

२०० एव—जस्स जइ लेसाओ—भवणवइ-वाणमतर-पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेसाओ, तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण तिण्णि लेसाओ, पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं मणुस्साण छल्लेसाओ, जोतिसयाण एगा तेउलेसा, वेमाणियाणं तिण्णि उवरिमलेसाओ।

एवम्—यस्य यति लेश्या — भवनपति-वानमन्तर-पृथिव्यव्-वनस्पति-कायिकाना च चतस्रः लेश्या, तेजोवायु-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणा तिस्रः लेश्या, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकाना मनुष्याणा षड्लेश्या, ज्योतिष्काणा एका तेजोलेश्या, वैमानिकाना तिस्रः उपरितनलेश्या।

२०० इसी प्रकार जिनमे जितनी लेश्याए होती हैं (उनके अनुपात से उनकी एक-एक वर्गणा है)।
भवनपति, वानमतर, पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिक जीवो मे प्रथम चार लेश्याए होती हैं। अग्नि, वायु, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो मे प्रथम तीन लेश्याए होती हैं। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिज और मनुष्यों के छहो लेश्याए होती हैं। ज्योतिष्क देवो के एक तेजोलेश्या होती है। वैमानिक देवो के अन्तिम तीन लेश्याए होती हैं।

२०१ एगा कण्हलेसाण भवसिद्धियाण वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना भवसिद्धिकाना वर्गणा।

२०१ कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक जीवो की वगणा एक है।

२०२ एगा कण्हलेसाण अभवसिद्धियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना अभवसिद्धिकाना वर्गणा।

२०२ कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।

२०३ एव—छसुवि लेसासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि।

एवम्—षट्स्वपि लेश्यासु द्वौ द्वौ पदौ भणितव्यौ।

२०३ इसी प्रकार छहो (कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल) लेश्या वाले भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवो की वर्गणा एक-एक है।

२०४ एगा कण्हलेसाण भवसिद्धियाण णेरइयाण वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना भवसिद्धिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।

२०४ कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।

२०५ एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाण णेरइयाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना अभवसिद्धिकाना नैरयिकाणा वर्गणा । २०५ कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक नारकीय जीवो की वर्गणा एक है ।

२०६ एवं—जस्स जति लेसाओ तस्स ततियाओ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाण । एवम्—यस्य यति लेश्या तस्य तावत्य भणितव्या यावत् वैमानिकानाम् । २०६ इसी प्रकार जिनके जितनी लेश्याए होती हैं, उनके अनुपात से भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको की वर्गणा एक-एक है ।

२०७ एगा कण्हलेसाण सम्मद्दिट्ठियाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना सम्यग्दृष्टिकाना वर्गणा । २०७ कृष्णलेश्या वाले सम्यक्दृष्टिक जीवों की वर्गणा एक है ।

२०८ एगा कण्हलेसाण मिच्छद्दिट्ठियाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना मिथ्यादृष्टिकाना वर्गणा । २०८ कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टिक जीवो की वर्गणा एक है ।

२०९ एगा कण्हलेसाण सम्मामिच्छ-द्दिट्ठियाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना सम्यग्मिथ्या-दृष्टिकाना वर्गणा । २०९ कृष्णलेश्या वाले सम्यक्मिथ्यादृष्टिक जीवो की वर्गणा एक है ।

२१० एव—छसुवि लेसासु जाव वेमाणियाण जेसिं जइ दिट्ठीओ । एवम्—षट्स्वपि लेश्यासु यावत् वैमानिकाना यस्मिन् यति दृष्टय । २१० इसी प्रकार कृष्ण आदि छहो लेश्या वाले वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों मे, जिन जीवो मे जितनी दृष्टिया होती हैं, उनके अनुपात से उनकी एक-एक वर्गणा है ।

२११ एगा कण्हलेसाणं कण्हपक्खियाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना कृष्णपाक्षिकाणा वर्गणा । २११ कृष्णलेश्या वाले कृष्ण-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है ।

२१२ एगा कण्हलेसाण सुक्कपक्खियाण वग्गणा । एका कृष्णलेश्याना शुक्लपाक्षिकाणा वर्गणा । २१२ कृष्णलेश्या वाले शुक्ल-पाक्षिक जीवो की वर्गणा एक है ।

२१३ जाव वेमाणियाण जस्स जति लेसाओ । एए अट्ठ, चउवीसदडया । यावत् वैमानिकाना यस्य यति लेश्या । एते अष्ट, चतुर्विंशतिदण्डका । २१३ इसी प्रकार जिनमे जितनी लेश्याए होती हैं, उनके अनुपात से कृष्ण-पाक्षिक और शुक्ल-पाक्षिक जीवो की वर्गणा एक-एक है । ये ऊपर वताए हुए चौवीस दण्डकों की वर्गणा के आठ प्रकरण हैं ।

सिद्ध-पद / सिद्ध-पदम् / सिद्ध-पद

२१४ एगा तित्थसिद्धाण वग्गणा । एका तीर्थसिद्धाना वर्गणा । २१४ तीर्थ-सिद्धों[१९] की वर्गणा एक है ।

२१५ एगा अतित्थसिद्धाण वग्गणा । एका अतीर्थसिद्धाना वर्गणा । २१५ अतीर्थ-सिद्धो[२०] की वर्गणा एक है ।

२१६ *एगा तित्थगरसिद्धाण वग्गणा । एका तीर्थकरसिद्धाना वर्गणा । २१६ तीर्थङ्कर-सिद्धो[२१] की वर्गणा एक है ।

२१७ एगा अतित्थगरसिद्धाण वग्गणा । एका अतीर्थकरसिद्धाना वर्गणा । २१७ अतीर्थङ्कर-सिद्धो[२२] की वर्गणा एक है ।

२१८ एगा सयवुद्धसिद्धाणं वग्गणा । एका स्वयवुद्धसिद्धाना वर्गणा । २१८ स्वयवुद्ध-सिद्धो[२३] की वर्गणा एक है ।

२१९ एगा पत्तेयवुद्धसिद्धाण वग्गणा । एका प्रत्येकवुद्धसिद्धाना वर्गणा । २१९ प्रत्यकवुद्ध-सिद्धो[२४] की वर्गणा एक है ।

२२० एगा वुद्धवोहियसिद्धाणं वग्गणा । एका वुद्धवोधितसिद्धाना वर्गणा । २२० वुद्धवोधित-सिद्धो[२५] की वगणा एक है ।

२२१ एगा इत्थीलिंगसिद्धाण वग्गणा । एका स्त्रीलिङ्गसिद्धाना वर्गणा । २२१ स्त्रीलिंग-सिद्धो[२६] की वर्गणा एक है ।

२२२	एगा पुरिसलिंगसिद्धाण वग्गणा।	एका पुरुषलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।	पुरुषलिंग-सिद्धों[107] की वर्गणा एक है।
२२३	एगा णपुंसकलिंगसिद्धाण वग्गणा।	एका नपुंसकलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।	नपुंसकलिंग-सिद्धों[108] की वर्गणा एक है।
२२४	एगा सलिंगसिद्धाण वग्गणा।	एका स्वलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।	स्वलिंग-सिद्धों[109] की वर्गणा एक है।
२२५	एगा अण्णलिंगसिद्धाण वग्गणा।	एका अन्यलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।	अन्यलिंग-सिद्धों[110] की वर्गणा एक है।
२२६	एगा गिहिलिंगसिद्धाण वग्गणा॰।	एका गृहिलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।	गृहिलिंग-सिद्धों[111] की वर्गणा एक है।
२२७	एगा एक्कसिद्धाण वग्गणा।	एका एकसिद्धाना वर्गणा।	एक-सिद्धों[112] की वर्गणा एक है।
२२८	एगा अणिक्कसिद्धाण वग्गणा।	एका अनेकसिद्धाना वर्गणा।	अनेक-सिद्धों[113] की वर्गणा एक है।
२२९	एगा अपढमसमयसिद्धाण वग्गणा, एवं—जाव अणंतसमयसिद्धाण वग्गणा।	एका अप्रथमसमयसिद्धाना वर्गणा, एवम्—यावत् अनन्तसमयसिद्धाना वर्गणा।	दूसरे समय के सिद्धों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार तीसरे, चौथे यावत् अनन्त समय के सिद्धों की वर्गणा एक-एक है।
	पोग्गल-पद	**पुद्गल-पदम्**	**पुद्गल-पद**
२३०	एगा परमाणुपोग्गलाण वग्गणा, एवं—जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।	एका परमाणुपुद्गलाना वर्गणा, एवम्—यावत् एका अनन्तप्रदेशिकाना स्कन्धाना वर्गणा।	परमाणु-पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कंधों की वर्गणा एक-एक है।
२३१	एगा एगपएसोगाढाण पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपए-सोगाढाणं पोग्गलाण वग्गणा।	एका एकप्रदेशावगाढाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेयप्रदेशाव-गाढाना पुद्गलाना वर्गणा।	एक प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्य-प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।
२३२	एगा एगसमयठितियाण पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असंखेज्जसमयठितियाण पोग्गलाणं वग्गणा।	एका एकसमयस्थितिकाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेयसमय-स्थितिकाना पुद्गलाना वर्गणा।	एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्य-समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।
२३३	एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असंखेज्जगुणकालगाण पोग्गलाणं वग्गणा, एगा अणंतगुणकालगाण पोग्गलाण वग्गणा।	एका एकगुणकालकाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेय-गुणकालकाना पुद्गलाना वर्गणा, एका अनन्तगुणकालकाना पुद्गलाना वर्गणा।	एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो या तीन यावत् असंख्य गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है। अनन्त गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है।
२३४	एवं—वण्णा गंधा रसा फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुण-लुक्खाण पोग्गलाण वग्गणा।	एवम्—वर्णा गन्धा रसा स्पर्शा भणितव्या यावत् एका अनन्तगुण-रूक्षाणा पुद्गलाना वर्गणा।	इसी प्रकार सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले यावत् अनन्त गुण रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

२३५	एगा जहण्णपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।	एका जघन्यप्रदेशिकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२३५ जघन्य-प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२३६	एगा उक्कस्सपएसियाण खंधाण वग्गणा।	एका उत्कर्षप्रदेशिकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२३६ उत्कृष्ट-प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२३७	एगा अजहण्णुक्कस्सपएसियाण खधाण वग्गणा।	एका अजघन्योत्कर्षप्रदेशिकानां स्कधानां वर्गणा।	२३७ मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२३८	•एगा जहण्णोगाहणगाण खधाणं वग्गणा।	एका जघन्यावगाहनकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२३८ जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२३९	एगा उक्कोसोगाहणगाण खधाणं वग्गणा।	एका उत्कर्षावगाहनकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२३९ उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।
२४०	एगा अजहण्णुक्कोसोगाहणगाण खधाण वग्गणा।	एका अजघन्योत्कर्षावगाहनकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४० मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) अवगाहना वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४१	एगा जहण्णठितियाण खधाण वग्गणा।	एका जघन्यस्थितिकानां स्कन्धाना वर्गणा।	२४१ जघन्य स्थिति वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४२	एगा उक्कस्सठितियाण खधाण वग्गणा।	एका उत्कर्षस्थितिकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४२ उत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४३	एगा अजहण्णुक्कोसठितियाण खधाण वग्गणा।	एका अजघन्योत्कर्षस्थितिकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४३ मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) स्थिति वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४४	एगा जहण्णगुणकालगाण खधाण वग्गणा।	एका जघन्यगुणकालकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४४ जघन्य गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है।
२४५	एगा उक्कस्सगुणकालगाण खधाण वग्गणा।	एका उत्कर्षगुणकालकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४५ उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४६	एगा अजहण्णुक्कस्सगुणकालगाण खधाण वग्गणा°।	एका अजघन्योत्कर्षगुणकालकाना स्कन्धाना वर्गणा।	२४६ मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) गुण काले स्कन्धो की वर्गणा एक है।
२४७	एव-वण्ण-गध-रस-फासाण वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहण्णुक्कस्सगुणलुक्खाण पोग्गलाण (खधाण ?) वग्गणा।	एवम्—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाना वर्गणा भणितव्या यावत् एका अजघन्योत्कर्ष-गुणरूक्षाणा पुद्गलाना (स्कन्धाना ?) वर्गणा।	२४७ इसी प्रकार शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के जघन्यगुण,उत्कृष्टगुण और मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) गुण वाले पुद्गलों(स्कन्धो ?)की वर्गणा एक-एक है।
	जंबुद्दीव-पदं	**जम्बूद्वीप-पदम्**	**जम्बूद्वीप-पद**
२४८	एगे जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं •सव्वब्भतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसठाणसंठिए, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिए, वट्टे	एको जबूद्वीपो द्वीप सर्वद्वीपसमुद्राणा सर्वाभ्यन्तरक सर्वक्षुद्रक, वृत्त तैलापूपसस्थानसस्थित, वृत्त रथ-चक्रवालसस्थानसस्थित, वृत्त पुष्कर-	२४८ सब द्वीपो और समुद्रोंमें जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है। वह सब द्वीपसमुद्रों के मध्य में है। वह सबसे छोटा है। वह तेल के पूड़े के सस्थान जैसा, रथ के

पुक्खरकण्णियासठाणसंठिए, वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिए, एग जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस-सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरसअगुलाइ° अद्धगुलग च किचिविसेसाहिए परिक्खेवेण ।

कर्णिकासस्थानसस्थित, वृत्त परिपूर्ण-चन्द्रमस्थानसस्थित, एक योजनशत-सहस्र आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडपसहस्राणि द्वे च सप्तविंशति योजनशत त्रयश्च क्रोशा अष्टाविंशति च धनु शत त्रयोदशागुलानि अर्धाङ्गुल च किंचिद्विशेषाधिक परिक्षेपेण ।

चक्के के सस्थान जैसा, कमल की कर्णिका के सस्थान जैसा तथा प्रतिपूर्ण चन्द्र के सस्थान जैसा वृत्त है। वह एक लाख योजन लम्बा-चौडा है। उसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, अट्ठाईस धनुप, तेरह अगुल और अर्द्धाङ्गुल से कुछ अधिक है।

महावीर-णिव्वाण-पद

२४६ एगे समणे भगव महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराण चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते •अतगडे परिणिव्वुडे° सव्वदुक्खप्पहीणे ।

महावीर-निर्वाण-पदम्

एक श्रमण भगवान् महावीरः अस्या अवसर्पिण्या चतुर्विंशते स्तीर्थकराणा चरमतीर्थकर सिद्ध वुद्ध मुक्त अन्तकृत परिनिर्वृत सर्वदु खप्रक्षीण ।

महावीर-निर्वाण-पद

२४६ इस अवसर्पिणी के चौवीस तीर्थकरो में चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर अकेले ही सिद्ध, वुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिवृत और सव दु खो से रहित हुए।

देव-पदं

२५० अणुत्तरोववाइया ण देवा एगं रयणि उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

देव-पदम्

अणुत्तरोपपातिका देवा एक रत्नि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता ।

देव-पद

२५० अनुत्तरोपपातिक देवो की ऊचाई एक हाथ की होती है।

णक्खत्त-पद

२५१ अद्दाणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते ।

२५२ चित्ताणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते ।

२५३ सातिणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते ।

नक्षत्र-पदम्

आर्द्रानक्षत्र एकतार प्रज्ञप्तम् ।

चित्रानक्षत्र एकतार प्रज्ञप्तम् ।

स्वातिनक्षत्र एकतार प्रज्ञप्तम् ।

नक्षत्र-पद

२५१ आर्द्रा नक्षत्र का तारा एक है।

२५२ चित्रा नक्षत्र का तारा एक है।

२५३ स्वाति नक्षत्र का तारा एक है।

पोग्गल-पदं

२५४. एगपदेसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता ।

२५५ •एगसमयठितिया पोग्गला अणंता पण्णत्ता° ।

२५६ एगगुणकालगा पोग्गला अणता पण्णत्ता जाव एगगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता ।

पुद्गल-पदम्

एकप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

एकसमयस्थितिका पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

एकगुणकालका पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता यावत् एकगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

पुद्गल-पद

२५४ एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।

२५५ एक समय स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।

२५६ एक गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-१

१—आत्मा (सू० २)

जैन पद्धति के अनुसार आगम-सूत्र का प्रतिपादन और उसकी व्याख्या नय दृष्टि के आधार पर की जाती है। प्रस्तुत सूत्र सग्रहनय की दृष्टि से लिखा गया है। जैन तत्त्ववाद के अनुसार आत्मा अनत हैं। सग्रहनय अनत का एकत्व मे समाहार करता है। इसीलिए अनत आत्माओ का एक आत्मा के रूप मे प्रतिपादन किया गया है।

अनुयोगद्वार (सू० ६०५) में तीन प्रकार की वक्तव्यता वतलाई गई है—

१ स्वसमयवक्तव्यता—जैन दृष्टिकोण का प्रतिपादन।

२ परसमयवक्तव्यता—जैनेतर दृष्टिकोण का प्रतिपादन।

३ स्वसमय-परसमयवक्तव्यता—जैन और जैनेतर दोनो दृष्टिकोणो का एक साथ प्रतिपादन।

नदी सूत्रगत स्थानाग के विवरण मे वतलाया गया है[1]—स्थानाग मे स्वसमय की स्थापना, परसमय की स्थापना और स्वसमय-परसमय की स्थापना की जाती है। इसके आधार पर जाना जा सकता है कि स्थानांग मे तीनो प्रकार की वक्तव्यताए हैं।

'एगे आया' यह सूत्र उभयवक्तव्यता का है। अनुयोगद्वारचूर्णि मे इस सूत्र की जैन और वेदान्त दोनों दृष्टिकोणों मे व्याख्या की गई है। जैन-दृष्टि के अनुसार उपयोग (चेतना का व्यापार) सब आत्मा का सदृश लक्षण है, अत उपयोग (चेतना का व्यापार) की दृष्टि मे आत्मा एक है। वेदान्त-दृष्टि के अनुसार आत्मा या ब्रह्म एक है[2]।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे स्वसमय और परसमय दोनों स्थापित हैं।

जैन आगमो मे आत्मा की एकता और अनेकता दोनों प्रतिपादित हैं। भगवान् महावीर की दृष्टि मे उपनिषद् का एकात्मवाद और साख्य का अनेकात्मवाद दोनो समन्वित हैं। उस समन्वय के मूल मे दो नय हैं—सग्रह और व्यवहार। सग्रह अभेद-प्रधान और व्यवहार भेद-प्रधान नय है। सग्रहनय के अनुसार आत्मा एक है और व्यवहारनय के अनुसार आत्मा अनन्त हैं। आत्मा की इस एकानेकात्मकता का प्रतिपादन भगवान् महावीर के उत्तरकाल में भी होता रहा है। आचार्य अकलक ने नाना ज्ञान-स्वभाव की दृष्टि से आत्मा की अनेकता और चैतन्य के एक स्वभाव की दृष्टि से उसकी एकता का प्रतिपादन कर उसके एकानेकात्मक स्वरूप का प्रतिपादन किया है।[3] साख्य-दर्शन के महान् आचार्य ईश्वर कृष्ण ने अनेकात्मवाद के समर्थन में तीन तत्त्व प्रस्तुत किये हैं[4]—

१—जन्म, मरण और करण (इद्रिय) की विशेषता सब जीवो का एक साथ जन्म लेना, एक साथ मरना और एक साथ इन्द्रियविकल होना दृष्ट नहीं है।

---

१ नंदीसूत्र, ८३

ससमए ठाविज्जई, परसमए ठाविज्जई, ससमयपरसमए-ठाविज्जई।

२ अनुयोगद्वारचूर्णि, पृ ८६

एव उभयसमयवक्तव्यतास्वरूपमपीच्छति जधा ठाणागे 'एगे आता' इत्यादि, परसमयव्यवस्थिता ब्रुवति—

एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते प्रतिष्ठित ।
एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥१॥

स्वसमयव्यवस्थिता पुन ब्रुवति उवयोगादिक सव्वजीवाण सरिस लक्खण अतो सव्वभिचारिपरसमयवत्तव्वया स्वरूपेण ण घडति, श्वेताश्वतरउपनिषद् (६।११) मे एक आत्मा का निरूपण इस प्रकार है—

एको देव सवभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सवभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्ष सवभूताधिवास, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

३ स्वरूपसंबोधन, श्लोक ६

नाना ज्ञानस्वभावत्वात् एकोऽनेकोपि नैव स ॥
चेतनैकस्वभावत्वात्—एकानेकात्मको भवेत् ॥

४ सांख्यकारिका, १८

जन्ममरणकरणानां, प्रतिनियमात् अयुगपत् प्रवृत्तेश्च
पुरुषबहुत्वं सिद्ध, त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥

२—अयुगपत् प्रवृत्ति—सब जीवों मे एक साथ एक प्रवृत्ति का न होना।

३—त्रिगुण का विपर्यय—सत्व, रजस् और तमस् का विपर्यय होना, सब जीवों मे उनकी एकरूपता का न होना।

जैन आगमो मे नानात्मवाद के समर्थन मे जो तर्क दिये गए हैं उनमे से कुछ ये हैं, जिनकी तुलना साख्यदर्शन के तर्कों से की जा सकती है, और कुछ उनसे भिन्न हैं। जैन आगमो मे प्रस्तुत तर्क वर्गीकृत रूप में पाच हैं—

१—एक व्यक्ति के दुःख को दूसरा व्यक्ति अपने मे सक्रान्त नही कर सकता।

२—एक व्यक्ति के द्वारा कृत कर्म के फल का दूसरा व्यक्ति प्रतिसवेदन—अनुभव नही कर सकता।

३—मनुष्य अकेला जन्म लेता है, अकेला मरता है—सब न एक साथ जन्म लेते हैं और न एक साथ मरते हैं।

४—परित्याग और स्वीकार प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना होता है।

५—क्रोध आदि का आवेग, सज्ञा, मनन, विज्ञान और वेदना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी होती है[1]।

इन व्यक्तिगत विशेषताओं को देखते हुए एक समष्टि आत्मा को स्वीकार करने मे अनेक सैद्धान्तिक बाधाए उपस्थित होती है।

वेदान्त के आचार्यों ने प्रत्यग्-आत्मा को अपारमार्थिक सिद्ध करने मे जो तर्क दिये हैं, वे बहुत समाधानकारक नहीं हैं।

२—दण्ड (सू० ३) :

दण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्य दण्ड और भाव दण्ड।

द्रव्य दण्ड—लाठी आदि मारक सामग्री।

भाव दण्ड के तीन प्रकार हैं—

१ मनोदण्ड—मन की दुष्प्रवृत्ति।

२ वाक्-दण्ड—वचन की दुष्प्रवृत्ति।

३ काय-दण्ड—शरीर की दुष्प्रवृत्ति।

सूत्रकृताग[2] सूत्र में क्रिया के १३ स्थान बतलाये गये हैं। वहा पाच स्थानों पर दण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है—अर्थ दण्ड, अनर्थ दण्ड, हिंसा दण्ड, अकस्मात् दण्ड और दृष्टिविपर्यास दण्ड। यहा दण्ड शब्द हिंसा के अर्थ मे प्रयुक्त है। विशेष जानकारी के लिए देखें उत्तराध्ययन, अ० ३१ श्लोक ८ के दण्ड शब्द का टिप्पण।

३—क्रिया (सू० ४) .

क्रिया का सामान्य अर्थ प्रवृत्ति है। आगम साहित्य मे इसका अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। सदर्भ के अनुसार क्रिया का प्रयोग सत्प्रवृत्ति और असत्प्रवृत्ति—दोनो के अर्थ में मिलता है। प्रथम आचाराग (१।५) मे चार प्रकार के वादो का उल्लेख है। उनमे एक क्रियावाद है। भगवान् महावीर स्वय क्रियावादी थे। दार्शनिक जगत् मे यह एक प्रश्न था कि आत्मा अक्रिय है या सक्रिय? कुछ दार्शनिक आत्मा को अक्रिय या निष्क्रिय मानते थे[3]। भगवान् महावीर आत्मा को सक्रिय मानते थे।

इस विश्व मे ऐसी कोई वस्तु नहीं हो सकती, जिसमे क्रियाकारित्व न हो। वस्तु की परिभाषा इसी आधार पर की गई है। वस्तु वही है, जिसमें अर्थक्रिया की क्षमता है। जिसमे अर्थक्रिया की क्षमता नही है, वह अवस्तु है। यहा 'क्रिया' का प्रयोग वस्तु की अर्थक्रिया (स्वाभाविक क्रिया) के अर्थ में नहीं है, किन्तु वह विशेष प्रवृत्ति के अर्थ मे है।

दूसरे स्थान (सू० २-३७) में क्रिया के वर्गीकृत प्रकार मिलते हैं।

---

१ सूत्रकृतांग, २।१।५१

अण्णस्स दुक्खं अण्णो णो परियाइयइ अण्णेण कत अण्णो णो पडिसंवेदेइ, पत्तेयं जायइ, पत्तेयं मरइ, पत्तेय चयइ, पत्तेय उववज्जइ, पत्तेयं झंझा, पत्तेय सण्णा, पत्तेय मण्णा, पत्तेय विण्णू, पत्तेयं वेदणा।

२ सूत्रकृतांग, २।२।२।

३ सूत्रकृतांग, १।१।१३

कुव्वं च कारयं चेव, सव्वं कुव्वं न विज्जइ।
एवं अकारओ अप्पा, ते उ एवं पगब्भिया॥

४-७—लोक, अलोक, धर्म, अधर्म (सू० ५-८)

आकाश लोक और अलोक, इन दो भागो मे विभक्त है[1]। जिस आकाश मे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये पाचो द्रव्य मिलते हैं, उसे लोक कहा जाता है और जहा केवल आकाश ही होता है, वह अलोक कहलाता है[2]।

लोक और अलोक की सीमा रेखा धर्म (धर्मास्तिकाय) और अधर्म (अधर्मास्तिकाय) के द्वारा होती है। धर्म का लक्षण गति और अधर्म का लक्षण स्थिति है[3]। जीव और पुद्गल की गति धर्म और स्थिति अधर्म के आलम्बन मे होती है।

८-१३—बध यावत् सवर (सू० ९-१४)

सख्याकित छह सूत्रो (९-१४) मे नव तत्त्वो मे से परस्पर प्रतिपक्षी छह तत्त्वो का निर्देश किया गया है।

बन्धन के द्वारा आत्मा के चैतन्य आदि गुण प्रतिबद्ध होते हैं। मोक्ष आत्मा की उस अवस्था का नाम है, जिसमें आत्मा के चैतन्य आदि गुण मुक्त हो जाते हैं, इसलिए बध और मोक्ष मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है।

पुण्य के द्वारा जीव को सुख की अनुभूति होती है और पाप के द्वारा उसे दुःख की अनुभूति होती है, इसलिए पुण्य और पाप मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है।

आश्रव कर्म पुद्गलो को आकर्षित करता है और सवर उनका निरोध करता है, इसलिए आश्रव और सवर मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है। दूसरे स्थान (सू० १) मे इनका प्रतिपक्षी युगल के रूप मे उल्लेख मिलता है।

१४-१५—वेदना, निर्जरा (सू० १५-१६)

प्रस्तुत स्थान मे वेदना शब्द का दो स्थानों (१५वें सूत्र मे और ३३वें सूत्र में) पर उल्लेख हुआ है। तेतीसवें सूत्र मे वेदना का अर्थ अनुभूति है। यहा उसका अर्थ कर्मशास्त्रीय परिभाषा से सबद्ध है। निर्जरा नौ तत्त्वो में एक तत्त्व है। वेदना उसका पूर्वरूप है। पहले कर्म-पुद्गलों की वेदना होती है, फिर उनकी निर्जरा होती है। वेदना का अर्थ है स्वभाव से या उदीरणाकरण के द्वारा उदय क्षण मे आए हुए कर्म-पुद्गलो का अनुभव करना। निर्जरा का अर्थ है अनुभूत कर्म-पुद्गलों का पृथक्करण और आत्मशोधन।

१६-जीव (सू० १७)

आत्मा और जीव पर्यायवाची शब्द हैं। भगवती सूत्र (२०।१७) मे जीव के तेईस नाम बतलाए गए हैं[4]। उनमे पहला नाम जीव और दशवा नाम आत्मा है। सामान्य दृष्टि से ये पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु विशेष दृष्टि (समभिरूढनय की दृष्टि) मे कोई भी शब्द दूसरे शब्द का पर्यायवाची नहीं होता। इस दृष्टि से आत्मा और जीव में अर्थ-भेद है। आत्मा का अर्थ है—अपने चैतन्य आदि गुणो और पर्यायो मे सतत परिणमन करने वाला चेतनतत्त्व।

जीव का अर्थ है—शरीर और आयुष्य को धारण करने वाला चेतनतत्त्व[5]।

एगे आया (१।२) मे आत्मा का निर्देश देह-मुक्त चेतनतत्त्व के अर्थ मे और प्रस्तुत सूत्र मे जीव का निर्देश देह-बद्ध चेतनतत्त्व के अर्थ मे हुआ प्रतीत होता है।

---

१ स्थानांग, २।१५२
दुविहे आगासे पण्णत्ते, त जहा—
लोगागासे चेव, अलोगागासे चेव।

२ (क) उत्तराध्ययन, २८।७
धम्मो अहम्मो आगास कालो पुग्गल जतवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदसिहि॥
(ख) उत्तराध्ययन, ३६।२
जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए॥

३ उत्तराध्ययन, २८।९
गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।

४ भगवती, २०।१७
जीवत्थिकायस्स णं भते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?
गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, त जहा—जीवेत्ति वा
आयाति वा।

५ भगवती २।१५
जम्हा जीवे जीवेति जीवत्त आउयं च कम्म उवजीवति तम्हा
जीवेति वत्तव्वं सिया।

प्रस्तुत सूत्र में जीव के एकत्व का हेतु प्रत्येक शरीर बतलाया गया है। जैनतत्त्ववाद के अनुसार मुक्त और बद्ध—दोनों प्रकार के चेतनतत्त्व संख्या-परिमाण की दृष्टि से अनन्त हैं, किन्तु यहां जीव का एकत्व संख्या की दृष्टि से विवक्षित नहीं है। एक चेतन मे दूसरे चेतन को व्यवच्छिन्न करने वाला शरीर है। 'यह एक जीव है'—यह इकाई शरीर के द्वारा ही अभिज्ञात होती है। अत इसी दृष्टि से जीव का एकत्व विवक्षित है। इसकी तुलना वेदान्त-सम्मत प्रत्यग् आत्मा से होती है। उसके अनुसार परमार्थदृष्टि से आत्मा एक है, जिसे विश्वग् आत्मा कहा जाता है और व्यवहार-दृष्टि से आत्मा अनेक हैं, जिन्हें प्रत्यग् आत्मा कहा जाता है[1]।

वेदान्त का दृष्टिकोण अद्वैतपरक है[2]। अत उसके आचार्य प्रत्यग् आत्मा को मानते हुए भी आत्मा के नानात्व को स्वीकार नहीं करते। उनका सिद्धान्त है कि प्रत्यग् आत्माओं का अस्तित्व विश्वग् आत्मा से निष्पन्न होता है। जो वस्तु जिससे अस्तित्व (आत्म-लाभ) को प्राप्त करती है वह उससे भिन्न नहीं हो सकती, जैसे—मिट्टी से अस्तित्व पाने वाले घट आदि उससे भिन्न नहीं हो सकते[3]। इसी प्रकार समुद्र से अस्तित्व पाने वाले तरङ्ग आदि उससे भिन्न नहीं हो सकते[4]।

जैनदर्शन के अनुसार भी आत्मा एक और अनेक—ये दोनो सम्मत हैं, किन्तु एक आत्मा से अनेक आत्माएं निष्पन्न होती हैं, यह जैनदर्शन को मान्य नही है। चैतन्य के सादृश्य की दृष्टि से आत्मा एक है और चैतन्य की विभिन्न स्वतंत्र इकाइयों और देह-बद्धता के कारण वे अनेक हैं। दोनों अभ्युपगम दूसरे और प्रस्तुत सूत्र (१७) मे फलित होते हैं।

१७-१९—मन, वचन, कायव्यायाम (सू० १९-२१)

जीव की प्रवृत्ति के तीन स्रोत हैं—मन, वचन और काय। इन तीनों को एक शब्द में योग कहा जाता है[5]। आगम-साहित्य मे इनमें से प्रत्येक के साथ भी योग शब्द का प्रयोग मिलता है[6]।

आगम-साहित्य मे प्राय काययोग शब्द का प्रयोग किया गया है। काय-व्यायाम शब्द का प्रयोग दो बार इसी स्थान (१।२१,४३) में हुआ है। बौद्धसाहित्य[7] मे सम्यग् व्यायाम शब्द का प्रयोग प्राप्त है। उस समय मे सामान्यप्रवृत्ति के अर्थ मे भी व्यायाम शब्द का प्रयोग किया जाता था, ऐसा उक्त उद्धरणो से प्रतीत होता है। आयुर्वेद के ग्रन्थो में व्यायाम शब्द का प्रयोग काय की एक विशेष प्रवृत्ति के अर्थ मे रूढ है[8]।

२०-२१—उत्पत्ति, विगति (सू० २२-२३) :

जैन तत्त्ववाद के अनुसार विश्व की व्याख्या त्रिपदी के द्वारा की गई है। त्रिपदी के तीन अंग हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद और व्यय—ये दोनो परिवर्तन और ध्रौव्य वस्तु के स्थायित्व का सूचक है। इन दो सूत्रों मे त्रिपदी के दो अंगों—उत्पाद और व्यय का निर्देश है—ऐसा अभयदेव सूरि का अभिमत है।

उन्होंने 'वियती' पद की व्याख्या मे एक विकल्प भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि 'विगती' पद की व्याख्या विकृति आदि भी की जा सकती है, किन्तु इससे पहले सूत्र मे उत्पाद का उल्लेख है, उसी के आधार पर उसकी व्याख्या व्यय की गई है[9]।

---

१ कठोपनिषद्, ४।१।

२ माण्डूक्यकारिकाभाष्य, ३।१७ १८
अस्माक अद्वैतदृष्टि ।

३ बृहदारण्यकभाष्य, ३।५
यस्य च यस्मादात्मलाभो भवति, स तेन अविभक्तो दृष्ट,
यथा घटादीनि मृदा ।

४ शाकरभाष्य, ब्रह्मसूत्र, २।१।१३
न च समुद्रात् उदकात्मनोऽनन्यत्वेपि तद्विकाराणां फेनतरंगादीनां इतरेतरभावापत्ति भवति । न च तेषां इतरेतरभावानापत्तावपि समुद्रात्मनोऽन्यत्व भवति ।

५ तत्त्वार्थसूत्र, ६।१
कायवाङ्मन कर्म योग ।

६ स्थानांग, ३।१३ तिविहे जोगे पण्णत्ते, त जहा—
मणजोगे वइजोगे कायजोगे ।

७ दीघनिकाय, पृ० १९७ ।

८ चरक, सूत्रस्थान, अ० ७, श्लोक ३१
लाघव कर्मसामर्थ्यं, स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता ।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च, व्यायामादुपजायते ॥

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
'उप्प' त्ति प्राकृतत्वादुत्पाद , स चैक एकसमये एकपर्यायापेक्षया, नहि तस्य युगपदुत्पादव्ययादिरस्ति, अनपेक्षिततद्विशेषकपदार्थतया चैकोऽसाविति ॥ वियइ त्ति विगतिर्विगम , सा चैकोत्पादवदिति विकृतिर्विगतिरित्यादिव्याख्यान्तरमप्युचितमायोज्यम्, अस्माभिस्तु उत्पादसूत्रानुगुण्यतो व्याख्यातमिति ।

वाईसवें सूत्र मे 'उप्पा' पद है। अभयदेव सूरि ने प्राकृत भाषा का विशेष प्रयोग मानकर उसका अर्थ उत्पाद किया है। इसका अर्थ उत्पाद किया इसीलिए उन्होंने 'विगती' पद का अर्थ व्यय किया। 'उप्पा' एक स्वतन्त्र शब्द है। तब उसका उत्पाद रूप मानकर उसकी व्याख्या करने का अर्थ समझ मे नही आता। 'उप्पा' शब्द 'ओप्पा' का रूपान्तर प्रतीत होता है। ह्रस्वीकरण होने पर 'ओप्पा' का 'उप्प' बना है। 'ओप्पा' का अर्थ है शाण आदि पर मणि आदि का घर्षण करना[1]।

इस अर्थ के सदर्भ मे 'उप्पा' का अर्थ परिकर्म होना चाहिए। इसका प्रतिपक्ष है विकृति।

विकृति की सभावना अभयदेव सूरि ने भी प्रकट की है। किन्तु पाचवें स्थान के दो सूत्रों[2] का अवलोकन करने पर यहा 'उप्पा' का अर्थ उत्पाद और 'विगति' का अर्थ व्यय ही सगत लगता है।

२२-विशिष्ट चित्तवृत्ति (सू० २४)

अभयदेव सूरि ने 'वियच्चा' शब्द का अर्थ मृत शरीर किया है। 'वि' का अर्थ विगत और 'अच्चा' का अर्थ शरीर—विगतार्चा अर्थात् मृतशरीर। इसका दूसरा सस्कृत रूप 'विवर्चा' मानकर दो अर्थ किए है—विशिष्ट उपपत्ति की पद्धति और विशिष्टभूषा[3]।

अर्चा का एक अर्थ चित्तवृत्ति (लेश्या) भी है[4]। विगतार्चा अथवा मृत जीव की अर्चा—यह अर्थ सहज प्राप्त नही है। विशिष्ट चित्तवृत्ति— यह अर्थ सहज प्राप्त है। इसलिए हमने यही अर्थ मान्य किया है।

२३-२६—गति, आगति, च्यवन, उपपात (सू० २५-२८)

गति, आगति, च्यवन और उपपात—यहा ये चारो शब्द पारिभाषिक हैं।

गति—जीव का वर्तमान भव से आगामी भव मे जाना।

आगति—जीव का पूर्वभव से वर्तमान भव मे आना।

च्यवन—ऊपर से गिरकर नीचे आना। ज्योतिष्क और वैमानिक देव आयुष्य पूर्ण कर ऊपर से नीचे आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनका मरण च्यवन कहलाता है।

उपपात—देव और नारको का जन्म उपपात कहलाता है[5]।

२७-३०—तर्क, सज्ञा, मनन, विद्वत्ता (सू० २९-३२) :

इन चार सूत्रो (२९-३२) में ज्ञान के विविध पर्यायो का निरूपण किया गया है—

तर्क—ईहा से उत्तरवर्ती और अवाय (निर्णय) से पूर्ववर्ती विमर्श को तर्क कहा जाता है, जैसे—यह सिर को खुजला रहा है, इसलिए यह पुरुष होना चाहिए। यह तर्क की आगमिक व्याख्या है[6]। तर्क का एक अर्थ न्यायशास्त्रीय भी है। परोक्ष प्रमाण के पाच प्रकारो मे तीसरा प्रकार तर्क है। इसका अथ है—उपलब्धि और अनुपलब्धि से उत्पन्न होने वाला व्याप्तिज्ञान तर्क कहलाता है[7]।

---

१ देशीनाममाला, १।१४८
एलविलो धणिओसहा अधम्मरोरप्पिएसु एक्कमुहो।
भोली कुलपरिपाडी ओज्झमचोक्खम्मि विमलणे ओप्पा ॥
टि० ओप्पा शाणादिना मण्यादेर्मार्जनम् ॥

२ स्थानांग, ५।२१५, २१६।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
वियच्च त्ति विगते प्रागुक्तन्यादिह विगतस्य विगमवतो न थस्य मृतस्येत्यर्थ: अर्चा—शरीर विगतार्चा, प्राकृतत्वादिति, विवर्चा वा—विशिष्टोपपत्तिपद्धतिर्विशिष्टभूषा वा।

४ सूत्रकृतांग, १।१५।१८, वृत्ति, पत्र २६७
अर्चा—लेश्याऽन्त करणपरिणति।

५ स्थानाग, २।२५०।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
तर्कणं तर्को—विमर्श अवायात् पूर्वा ईहाया उत्तरा प्राय शिर कण्डूयनादय पुरुषधर्म्मा इह घटन्त इति-सम्प्रत्ययरूपा।

७ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, ३।७
उपलम्भानुपलम्भसभव त्रिकालीकलितसाध्यसाधनसंबन्धाद्या-लम्बन इदमस्मिन् सत्येव भवतीत्याकार संवेदनमूहापरनामा तर्क ।

सन्ना—इसके दो अर्थ होते हैं—प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति। नंदीसूत्र में मति (आभिनिबोधिक) ज्ञान का एक नाम सन्ना निर्दिष्ट है[1]। उमास्वाति ने मति, स्मृति, सन्ना, चिन्ता और अभिनिबोध इन्हें एकार्थक माना है[2]। मलयगिरि तथा अभयदेव सूरि दोनों ने सन्ना का अर्थ व्यञ्जनावग्रह के बाद होनेवाली एक प्रकार की मति किया है[3]। अभयदेव सूरि ने इसका दूसरा अर्थ अनुभूति भी किया है[4]। इस अर्थ में प्रयुक्त सन्ना के दस प्रकार दसवें स्थान में बतलाए गए हैं[5]। किन्तु यहां तर्क, मनन और विज्ञान के साथ प्रयुक्त तथा नंदी में मतिज्ञान के एक प्रकार के रूप में निर्दिष्ट होने के कारण सन्ना का अर्थ मतिज्ञान का एक प्रकार—प्रत्यभिज्ञान ही होना चाहिए। प्रत्यभिज्ञान का अर्थ उत्तरवर्ती न्यायग्रन्थों में इस प्रकार किया गया है—

मनन—वस्तु के सूक्ष्म धर्मों का पर्यालोचन करनेवाली बुद्धि आलोचना या अभ्युपगम।

विन्नता या विज्ञान—अभयदेव सूरि ने 'विन्नु' शब्द का अर्थ विद्वान् या विज्ञ किया है, और वैकल्पिक रूप में विद्वता या विज्ञता किया है[6]। श्रुत-निश्रित मतिज्ञान के चार प्रकार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा[7]। अवाय का अर्थ है—विमर्श के बाद होने वाला निश्चय। उसके पांच पर्यायवाची नाम हैं। उनमें पांचवां नाम विज्ञान है[8]। आचार्य मलयगिरि के अनुसार जो ज्ञान निश्चय के बाद होनेवाली धारणा को तीव्रतर बनाने में निमित्त बनता है, वह विज्ञान है[9]। प्रस्तुत विषय में 'विन्नु' शब्द का यही अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है। स्थानांग के तीसरे स्थान में ज्ञान के पश्चात् विज्ञान का उल्लेख मिलता है[10]। वहां अभयदेव सूरि ने विज्ञान का अर्थ हेयोपादेय का विनिश्चय किया है।[11] इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि विज्ञान का अर्थ निश्चयात्मक ज्ञान है।

३१—वेदना (सू० ३३)

वेदना—प्रस्तुत स्थान में वेदना शब्द का दो स्थानों पर उल्लेख है एक पन्द्रहवें सूत्र में और दूसरा तेतीसवें सूत्र में। पन्द्रहवें सूत्र में वेदना का प्रयोग कर्म का अनुभव करने के अर्थ में हुआ है[12], और यहां उसका प्रयोग पीडा अथवा सामान्य अनुभूति के अर्थ में हुआ है[13]।

३२-३३—छेदन, भेदन (सू० ३४-३५)।

छेदन-भेदन—छेदन का सामान्य अर्थ है टुकडे करना और भेदन का सामान्य अर्थ है विदारण करना। कर्मशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार छेदन का अर्थ है—कर्मों की स्थिति का घात करना—उदीरणा के द्वारा कर्मों की दीर्घ स्थिति को कम करना।

भेदन का अर्थ है—कर्मों के रस का घात करना—उदीरणा के द्वारा कर्मों के तीव्र विपाक को मंद करना[14]।

---

१ नंदी, सूत्र ५४, गा० ६
ईहाअपोहवीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्वं आभिणिबोहियं ॥

२ तत्त्वार्थसूत्र, १।१३
मति स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

३ क—नंदीवृत्ति, पत्र १८७
संज्ञानं संज्ञा व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः।
ख—स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
संज्ञानं संज्ञा व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेषः।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७
आहारभयाद्युपाधिका वा चेतना संज्ञा।

५. स्थानांग, १०।१०५।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
एगा विन्नु त्ति विद्वान् विज्ञो वा तुल्यबोधत्वादेक इति, स्त्रीलिंगत्वं प्राकृतत्वात् च उत्पाद (स्य) वत्पादवत्, लुप्तभावप्रत्ययत्वाद्वा एका विद्वत्ता विज्ञता वेत्यर्थः।

७ नंदी, सूत्र ३९।

८ नंदी, सूत्र ४७।

९ नंदीवृत्ति पत्र १७६
विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं—क्षयोपशमविशेषादेवावधारितार्थ विषय एव तीव्रतरधारणाहेतुर्बोधविशेषः।

१० स्थानांग, ३।४१८।

११ स्थानांगवृत्ति, पत्र १४६
विज्ञानम्—अर्थादीनां हेयोपादेयत्वविनिश्चयः।

१२ देखें १४, १५ का टिप्पण

१३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
प्राग्वेदना सामान्यकर्मानुभवलक्षणोक्ता इह तु पीडालक्षणैव।

१४ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९
छेदनं कर्मणः स्थितिघातः, भेदनं तु रसघात इति।

३४—अन्तिम शरीरी (सू० ३६)

प्रत्येक प्राणी के दो प्रकार के शरीर होते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। मृत्यु के समय स्थूलशरीर छूट जाता है, किन्तु सूक्ष्मशरीर नही छूटता। जब तक सूक्ष्मशरीर रहता है, तब तक जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। सूक्ष्मशरीर से छुटकारा विशिष्ट साधना से मिलता है। जिस व्यक्ति का सूक्ष्मशरीर विलीन हो जाता है, वह अन्तिमशरीरी होता है। स्थूल-शरीर की प्राप्ति का निमित्त सूक्ष्मशरीर बनता है। उसके विलीन हो जाने पर शरीर प्राप्त नहीं होता, इसीलिए वह अन्तिमशरीरी कहलाता है। उसका मरण भी अन्तिम होने के कारण एक होता है। वह फिर जन्म धारण भी नहीं करता इसीलिए उसका मरण भी नही होता।

३५—सशुद्ध यथाभूत (सू० ३७)

प्रस्तुत सूत्र मे एकत्व का हेतु सख्या नही, किन्तु निर्लेपता या सहाय-निरपेक्षता है। जो व्यक्ति सशुद्ध होता है—जिसका चरित्र दोष-मुक्त होता है, जो यथाभूत—शक्ति सम्पन्न होता है और जो पात्र—अतिशायी ज्ञान आदि गुणों का आश्रयी होता है, वह अकेला अर्थात् निर्लिप्त या सहाय-निरपेक्ष होता है।

३६—एकभूत (सू० ३८)

दुःख जीवो के साथ अग्नि और लोह की भांति लोलीभूत या अन्योन्य प्रविष्ट होता है, इसलिए उसे एकभूत कहा है। जैन साख्यदर्शन की भाति दुःख को बाह्य नही मानता।

३७-३८—प्रतिमा (सू० ३९-४०)

प्रतिमा शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—

१ तपस्या का विशेष मानदण्ड।

२ साधना का विशेष नियम।

३ कायोत्सर्ग।

४ मूर्ति।

५ प्रतिबिंब।

यहा उक्त अर्थों मे से प्रतिबिंब का अर्थ ही अधिक सगत प्रतीत होता है। अधर्मप्रतिमा अर्थात् मन पर होनेवाला अधर्म का प्रतिबिंब। यही आत्मा के लिए क्लेश का हेतु बनता है। धर्मप्रतिमा अर्थात् मन पर होनेवाला धर्म का प्रतिबिंब। यही आत्मा के लिए शुद्धि का हेतु बनता है।

३९—एक मन (सू० ४१)

एक क्षण मे मानसिक ज्ञान एक ही होता है—यह सिद्धान्त जैन-दर्शन को आगम-काल से ही मान्य रहा है। नैयायिक-वैशेपिक-दर्शन मे भी यह सिद्धान्त सम्मत है। इस सिद्धान्त के समर्थन मे दोनो के हेतु भी समान हैं। जैन-दर्शन के अनुसार एक क्षण मे दो उपयोग (ज्ञान-व्यापार) एक साथ नही होते, इसलिए एक क्षण मे मानसिक ज्ञान एक ही होता है। एक आदमी नदी मे खडा है, नीचे से उसके पैरो को जल की ठडक का सवेदन हो रहा है और ऊपर से सिर को धूप की उष्णता का संवेदन हो रहा है। इस प्रकार एक व्यक्ति एक ही क्षण में शीत और उष्ण दोनो स्पर्शों का सवेदन करता है, किन्तु वस्तुत यह सही नही है। क्षण और मन की सूक्ष्मता के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक ही क्षण मे शीत और उष्ण दोनों स्पर्शों का सवेदन करता है, किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। जिस क्षण मे शीत-स्पर्श का अनुभव होता है, उस क्षण मे मन शीत-स्पर्श की अनुभूति में ही व्याप्त रहता है, इसलिए उसे उष्ण-स्पर्श की अनुभूति नहीं हो सकती और जिस क्षण मे वह उष्ण-स्पर्श की अनुभूति मे व्यापृत रहता है, उस क्षण उसे शीत-स्पर्श की अनुभूति नही हो सकती।[1]

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २० एकत्वं च तस्यैकोपयोगत्वात् जीवानाम्।

एक क्षण मे दो ज्ञानो और दो अनुभूतियो के न होने का कारण मन की शक्ति का सीमित विकास होना है[1]। नयायिक-वैशेपिक दर्शन के अनुसार एक क्षण में एक ही ज्ञान और एक ही क्रिया होती है, इसलिए मन एक है[2]। न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम तथा वैशेपिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद मन की एकता के सिद्धान्त के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचे कि मन अणु है[3]। यदि मन अणु नहीं होता, तो प्रतिक्षण मनुष्य को अनेक ज्ञान होते। वह अणु है, इसलिए वह एक क्षण मे ही इन्द्रिय के साथ सयोग स्थापित कर सकता है[4]। इन्द्रिय के साथ उसका सयोग हुए विना ज्ञान होता नही, इसलिए वह एक क्षण में एक ही ज्ञान कर सकता है।

४०—एक वचन (सू० ४२) ·

मानसिक ज्ञान की भाति एक क्षण मे एक ही वचन होता है। प्रस्तुत सूत्र के छठे स्थान मे छह असम्भव क्रियाए वतलाई गई हैं। उनमे तीसरी काल की क्रिया यह है कि एक क्षण मे कोई भी प्राणी दो भापाए नही वोल सकता[5]। जैन न्याय मे 'स्यात्' शब्द का प्रयोग इसी सिद्धान्त के आधार पर किया गया। वस्तु अनतधर्मात्मक होती है। एक क्षण में उसके एक धर्म का ही प्रतिपादन किया जा सकता है। शेप अनतधर्म अप्रतिपादित रहते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य वस्तु के एक पर्याय का प्रतिपादन कर मकता है, किन्तु समग्र वस्तु का प्रतिपादन नही कर सकता। इस ममस्या को सुलझाने के लिए 'स्यात्' शब्द का सहारा लिया गया।

'स्यात्' शब्द इस वात का सूचक है कि प्रतिपाद्यमान धर्म को मुख्यता देकर और शेप धर्मो की उपेक्षा करें, तभी वस्तु वाच्य होती है। एक साथ अनेक धर्मों की अपेक्षा से वस्तु अव्यक्तव्य हो जाती है। सप्तभगी का चतुर्थ भग इसी आधार पर वनता है[6]।

४१—शरीर (सू० ४३) ·

शरीर पौद्गलिक है। वह जीव की शक्ति के योग से क्रिया करता है। उसके पाच प्रकार हैं—

१ औदारिक—अस्थिचर्ममय शरीर।

२ वैक्रिय—विविध रूप निर्माण में समर्थ शरीर।

३ आहारक—योगशक्ति से प्राप्त शरीर।

४ तैजस—तेजोमय शरीर।

५ कार्मण—कर्ममय शरीर।

इन्हें सचालित करनेवाली जीव की शक्ति को काययोग कहा जाता है। एक क्षण में काययोग एक ही होता है। उपयोग (ज्ञान का व्यापार) एक क्षण मे दो नही हो सकता, किन्तु काया की प्रवृत्ति एक क्षण मे दो हो सकती हैं। यहा उसका निपेध नहीं है। यहा एक क्षण मे दो काययोगों का निपेध है। क्योकि जिस जीव-शक्ति मे औदारिकशरीर का सचालन होता है, उसी मे वैक्रियशरीर का सचालन नही हो सकता। उसके लिए कुछ विशिष्ट शक्ति की अपेक्षा होती है। इस दृष्टि से जव एक काययोग सक्रिय होता है, तव दूसरा काययोग क्रियाशील नहीं हो सकता।

---

१ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, ४।४६
तद् द्विभेदमपि प्रमाणमात्मीयप्रतिबन्धकापगमविशेपस्वभाव-
सामर्थ्यत प्रतिनियतमर्थमवद्योतयति।

२ (क) न्यायदर्शन, ३।२।६०-६२
ज्ञानायोगपद्यादेक मन।
न युगपदनेकक्रियोपलब्धे।
अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धि राशुसञ्चारात्।
(ख) वैशेपिकदर्शन, ३।२।३
प्रयत्नायोगपद्यात् ज्ञानायोगपद्याच्चैकम्।

३ (क) न्यायदर्शन, ३।२।६२
तदभावादणु मन।
(ख) यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु।

४ न्यायदर्शन, ३।२।६
क्रमवृत्तित्वादयुगपद् ग्रहणम्।

५ स्थानांग, ६।५
एगसमए ण वा दो भासाओ भसित्तए।

६ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, ४।१८
स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद्विधिनिपेधकल्पनया चतुर्थ।

४२—(सू० ४४) .

भगवान् महावीर पुरुषार्थवादी थे। वे उत्थान आदि को कार्य-सिद्धि केलिए आवश्यक मानते थे। आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य नियतिवादी थे। वे कार्य-सिद्धि के लिए उत्थान आदि को आवश्यक नहीं मानते थे और अपने अनुयायीगण को यही पाठ पढ़ाते थे। भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र से पूछा—ये तुम्हारे वर्तन उत्थान आदि से बने हैं या अनुत्थान आदि से ?

इसके उत्तर में सद्दालपुत्र ने कहा—भंते ! ये वर्तन अनुत्थान आदि से बने हैं। सब कुछ नियत है, इसलिए उत्थान आदि का कोई प्रयोजन नहीं है[1]। इस पर भगवान ने कहा—सद्दालपुत्र ! कोई व्यक्ति तुम्हारे वर्तन को फोड डालता है, उसके साथ तुम कैसा व्यवहार करते हो ?

सद्दालपुत्र—भंते ! मैं उसे दण्डित करता हूं।

भगवान्—सद्दालपुत्र ! सब कुछ नियत है, उत्थान आदि का कोई अर्थ नहीं है, तब तुम उस व्यक्ति को किसलिए दण्डित करते हो[2] ?

इस संवाद में भगवान् का पुरुषार्थवादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। उत्थान आदि का शब्दार्थ इस प्रकार है—

उत्थान—उठना, चेष्टा करना।

कर्म—भ्रमण आदि की क्रिया।

बल—शरीर-सामर्थ्य।

वीर्य—जीव की शक्ति, आन्तरिक सामर्थ्य।

पुरुषकार—पौरुष आत्मोत्कर्ष।

पराक्रम—कार्य-निष्पत्ति में सक्षम प्रयत्न।

४३-४५—ज्ञान, दर्शन, चरित्र (सू० ४५-४७) .

ज्ञान, दर्शन और चरित्र—ये तीनों मोक्ष मार्ग हैं। उमास्वाति ने इसी आधार पर 'सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्ग' (तत्त्वार्थ सूत्र १।१) यह प्रसिद्ध सूत्र लिखा था। उत्तराध्ययन (२८।२) में तप को भी मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। यहां उसका उल्लेख नहीं है। वह वस्तुतः चरित्र का ही एक प्रकार है, इसलिए वह यहां विवक्षित नहीं है।

४६-४८—समय, प्रदेश, परमाणु (सू० ४८-५०)

विश्व में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं—सूक्ष्म और स्थूल। सापेक्ष दृष्टि से अनेक पदार्थ सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों में होते हैं, किन्तु चरमसूक्ष्म और चरमस्थूल निरपेक्ष दृष्टि से होते हैं। निर्दिष्ट तीन सूत्रों में चरमसूक्ष्म का निरूपण किया गया है। काल का चरमसूक्ष्म भाग समय कहलाता है। यह काल का अन्तिम खण्ड होता है। इसे फिर खण्डित नहीं किया जा सकता। वस्तु का चरमसूक्ष्म भाग प्रदेश कहलाता है।

यह वस्तु का अविभक्त अंतिम खंड होता है। पुद्गल द्रव्य का चरमसूक्ष्म भाग परमाणु कहलाता है। इसे विभक्त नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों ने परमाणु का विखण्डन किया है, किन्तु जैन-दृष्टि से उसका विखण्डन नहीं होता। परमाणु दो प्रकार के होते हैं—निश्चयपरमाणु और व्यवहारपरमाणु[3]।

व्यवहारपरमाणु भी बहुत सूक्ष्म होता है। वह साधारणतया चक्षुगम्य नहीं होता। उसका विखण्डन हो सकता है, किन्तु निश्चयपरमाणु विखण्डित नहीं हो सकता। भगवती में चार प्रकार के परमाणु बतलाए गए हैं—द्रव्यपरमाणु, क्षेत्र-परमाणु, कालपरमाणु और भावपरमाणु। इसमें समय को कालपरमाणु कहा गया है[4]।

---

१ उवासगदसाओ, ७।२३,२४।

२ उवासगदसाओ, ७।२५,२६।

३ अनुयोगद्वार, ३६६ से किं त परमाणू ? परमाणू दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुहुमे य वावहारिए य।

४ भगवती, २०।४०।

तीसरे स्थान मे समय, प्रदेश और परमाणु को अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनर्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य बतलाया गया है[1]।

४९-८४—शब्द, रूक्ष (सू० ५५-९०)

निर्दिष्ट सूत्रों (५५-९०) मे पुद्गल के लक्षण, कार्य, सस्थान और पर्याय का प्रतिपादन किया गया है। रूप, गध, रस और स्पर्श—ये चार पुद्गल के लक्षण हैं[2]। शब्द पुद्गल का कार्य है। जैन दशन वैशेषिक दशन की भाति शब्द को आकाश का गुण व नित्य नहीं मानता। उसके अनुसार पौद्गलिक होने के कारण वह अनित्य है। दूसरे स्थान मे शब्द की उत्पत्ति के दो कारण बतलाए गए हैं—सघात और भेद[3]। जब पुद्गल सहति को प्राप्त होते हैं, तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—घटा का शब्द। जब पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं, तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—वास के फटने का शब्द।

दीर्घ, ह्रस्व, वृत्त (गेंद की तरह गोल), त्रिकोण, चतुष्कोण, विस्तीर्ण और परिमडल (वलयाकार)—ये पुद्गल के सस्थान हैं। कृष्ण, नील आदि पुद्गल के लक्षणों का विस्तार है।

८५—मायामृषा (सू० १०७)

मायामृषा—मायायुक्त असत्य को मायामृषा कहा जाता है। कुछ व्याख्याकारों ने इसका अर्थ वेश बदलकर लोगो को ठगना किया है[4]।

८६-८७—अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी (सू० १२७-१३४)

काल अनादि अनन्त है। इस दृष्टि से वह निर्विभाग है, किन्तु व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से उसके अनेक वर्गीकरण किए गए हैं। उसका एक वर्गीकरण काल-चक्र है। उसके दो विभाग हैं—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। इन दोनो के रथ-चक्र के आरों की भाति छह-छह आरे हैं। अवसर्पिणी के छह आरे ये हैं—

१ सुषम-सुषमा—एकान्त सुखमय।
२ सुषमा—सुखमय।
३ सुषम-दुषमा—सुख-दुःखमय।
४ दुषम-सुषमा—दुःख-सुखमय।
५ दुषमा—दुःखमय।
६ दुषम-दुषमा—एकान्त दुःखमय।

उत्सर्पिणी के छह आरे ये हैं—

१ दुषम दुषमा—एकान्त दुःखमय।
२ दुषमा—दुःखमय।
३ दुषम-सुषमा—दुःख सुखमय।
४ सुषम दुषमा—सुख दुःखमय।
५ सुषमा—सुखमय।
६ सुषम-सुषमा—एकान्त सुखमय।

अवसर्पिणी मे वर्ण, गन्ध आदि गुणों की क्रमश हानि और उत्सर्पिणी में उनकी क्रमश वृद्धि होती है।

---

१ स्थानांग, ३।३२८-३३५।
२ उत्तराध्ययन, २८।१२।
३ स्थानांग, २।२२०।
४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४
मायया वा सह मृषा मायामृषा प्राकृतत्वान्मायामोस, दोषद्वययोग, इदं च मानमृषादिसयोगदोषोपलक्षण, वेषान्तरकरणेन लोकप्रतारणमित्यन्ये।

८८—नारकीय (सू० १४१)

(१।२१३) मे चौवीस दडकों का उल्लेख है। दण्डक का अर्थ है—समान जाति वाले जीवों का वर्गीकरण। ससार के सभी जीवो को चौवीस वर्गों मे विभक्त किया गया है। यहा उन चौवीस वर्गों के नाम दिए गए है।

८९-९०—भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक (सू० १६५-१६६)

ससारी जीव दो प्रकार के होते हैं—

१ भवसिद्धिक—जिसमे मुक्त होने की योग्यता हो।

२ अभवसिद्धिक—जिसमे मुक्त होने की योग्यता न हो।

भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक की भेद रेखा अनादि है[1]।

९१-९२—कृष्ण-पाक्षिक, शुक्ल-पाक्षिक (सू० १८६-१८७)

मोक्ष की प्रक्रिया बहुत लम्बी है, उसमे आनेवाली बाधाओ को अनेक काल-चरणों मे पार किया जाता है। कृष्ण और शुक्ल—ये दोनो पक्ष उसी शृखला के काल-चरण हैं। जब तक जिस जीव की मोक्ष की अवधि निश्चित नही होती, तब तक वह कृष्ण-पक्ष की कोटि मे होता है और उस अवधि की निश्चितता होने पर जीव शुक्ल-पक्ष की कोटि मे आ जाता है। इसी कालावधि के आधार पर प्रस्तुत दोनो पक्षो की व्याख्या की गई है। जो जीव अपार्ध पुद्गलपरावर्त तक ससार मे रहकर मुक्त होता है, वह शुक्ल-पाक्षिक और इससे अधिक अवधि तक ससार मे रहनेवाला कृष्ण-पाक्षिक कहलाता है[2]।

यद्यपि अपार्ध पुद्गल परावर्त बहुत लम्बा काल है, फिर भी निश्चितता के कारण उसका कम महत्त्व नहीं है। शुक्ल-पक्ष की स्थिति प्राप्त होने पर ही आध्यात्मिक विकास के द्वार खुलते हैं, इस दृष्टि से भी उसका बहुत महत्त्व है।

९३-९८—लेश्या (सू० १९१-१९६)

विचार और पुद्गल द्रव्य मे गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार के पुद्गल गृहीत होते हैं, उसी प्रकार की विचारधारा का निर्माण होता है। हर प्राणी के आस-पास पुद्गलो का एक वलय होता है। उनमें वर्ण, गध, रस और स्पर्श होते हैं, और वे प्रशस्त एव अप्रशस्त दोनो प्रकार के होते हैं। प्रशस्त वर्ण, गध, रस और स्पर्शवाले पुद्गल प्रशस्त विचार उत्पन्न करते हैं तथा अप्रशस्त वर्ण, गध, रस और स्पर्श वाले पुद्गल अप्रशस्त विचार उत्पन्न करते हैं। लेश्या को उत्पन्न करनेवाले पुद्गलो मे गध आदि के होने पर भी उनमे विशेषता वर्णों (रगो) की होती है, ऐसा उनके नामकरण से प्रतीत होता है। लेश्याओं का नामकरण रगो के आधार पर किया गया है। रगो का हमारे जीवन तथा चिंतन पर बहुत बडा प्रभाव है। इस तथ्य को प्राचीन एव आधुनिक सभी तत्त्वविदो और मानसशास्त्रियों ने मान्यता दी है। उक्त विवरण के सदर्भ में हम लेश्या को इस भाषा मे बाध सकते है—विचारो को उत्पन्न करनेवाले पुद्गल लेश्या कहलाते हैं। उन पुद्गलो से उत्पन्न होनेवाले विचार भी लेश्या कहलाते हैं। हमारे शरीर का वर्ण तथा शरीर के आस-पास निर्मित होनेवाला पौद्गलिक आभा-वलय भी लेश्या कहलाता है। इस प्रकार अनेक अर्थ लेश्या शब्द के द्वारा अभिहित किए गए हैं।

प्राचीन आचार्यों ने योग परिणाम को लेश्या कहा है[3]।

---

१ अनुयोगद्वार, २८८
अणाइ-पारिणामिए—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभवसिद्धिया।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २६
कृष्णपाक्षिकेतरयोर्लक्षण—
"जेसिमवड्ढो पोग्गलपरियट्टो सेसओ उ ससारो।
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण किण्हपक्खीआ॥"

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २६
लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या, यदाह—"श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधात्र्य" तथा
कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मन।
स्फटिकस्येव तत्राय, लेश्याशब्द प्रयुज्यते॥
इति, इय च शरीरनामकर्मपरिणतिरूपा योगपरिणतिरूपत्वात्, योगस्य च शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषत्वात् यत उक्त प्रज्ञापनावृत्तिकृता—'योगपरिणामो लेश्या'।

योग तीन हैं—काययोग, वचनयोग और मनोयोग। लेश्या के पुद्गलों का ग्रहणात्मक सम्बन्ध काययोग से होता है, क्योंकि सभी प्रकार की पुद्गल-वर्गणाओं का ग्रहण और परिणमन उसी (काययोग) के द्वारा होता है और उनका प्रभावात्मक सम्बन्ध मनोयोग से होता है, क्योंकि काययोग द्वारा गृहीत पुद्गल मन के विचारों को प्रभावित करते हैं। इस परिभाषा के अनुसार विचारों की उत्पत्ति मे निमित्त बननेवाले पुद्गल तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विचार ही लेश्या कहलाते हैं। किंतु भगवती, प्रज्ञापना आदि सूत्रों से शारीरिक वर्ण और आभा-वलय व तैजस-वलय भी लेश्या के रूप में फलित होते हैं, अत 'योगपरिणामो लेश्या', यह लेश्या की सापेक्ष परिभाषा है, किन्तु परिपूर्ण परिभाषा नहीं है। इस तथ्य को स्मृति मे रखना आवश्यक है—प्रशस्त और अप्रशस्त पुद्गलों के द्वारा हमारी विचार-परिणति होती है और शरीर के आसपास निर्मित आभा-वलय हमारी विचार-परिणति का प्रतिबिंब होता है।

प्रस्तुत सूत्र के तीसरे स्थान मे लेश्या के गध आदि के आधार पर दो वर्गीकरण किए गए हैं। प्रथम वर्गीकरण मे प्रथम तीन लेश्याए हैं—कृष्ण, नील और कापोत। दूसरे वर्गीकरण में अग्रिम तीन लेश्याए हैं—तेज, पद्म और शुक्ल। देखिए यन्त्र—

प्रथम वर्गीकरण	द्वितीय वर्गीकरण
अनिष्ट गध	इष्ट गध
दुर्गतिगामिनी	सुगतिगामिनी
सक्लिष्ट	असक्लिष्ट
अमनोज्ञ	मनोज्ञ
अविशुद्ध	विशुद्ध
अप्रशस्त	प्रशस्त
शीत-रूक्ष	स्निग्ध-उष्ण[1]

९९-११३—सिद्ध (सू० २१४-२२८) :

५२वें सूत्र में सिद्ध की एकता का प्रतिपादन किया गया है और यहा उनके पन्द्रह प्रकार बतलाए गए हैं। जीव दो प्रकार के होते हैं—सिद्ध और ससारी[2]। कर्मबंधन से बधे हुए जीव ससारी और कर्ममुक्त जीव सिद्ध कहलाते हैं।

सिद्धों में आत्मा का पूर्ण विकास हो चुकता है, अत आत्मिक विकास की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। इस अभेद की दृष्टि से कहा गया है कि सिद्ध एक हैं। उनमे भेद का प्रतिपादन पूर्वजन्म के विविध सम्बन्ध-सूत्रों के आधार पर किया गया है—

१ तीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना के पश्चात् तीर्थ मे दीक्षित होकर सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभदेव के गणधर ऋषभसेन आदि।

२ अतीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना के पहले सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी माता।

३ तीर्थंकरसिद्ध—जो तीर्थंकर के रूप में सिद्ध होते हैं, जैसे—ऋषभ आदि।

४ अतीर्थंकरसिद्ध—जो सामान्य केवली के रूप मे सिद्ध होते हैं।

५ स्वयबुद्धसिद्ध—जो स्वय बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो किसी एक बाह्य निमित्त से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं।

७ बुद्धबोधितसिद्ध—जो आचार्य आदि के द्वारा बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं।

---

१ स्थानांग, ३।५१५,५१६।

२ उत्तराध्ययन, ३६।४८।
ससारत्था य सिद्धा य।
दुविहा जीवा वियाहिया।

८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध—जो स्त्री के शरीर से सिद्ध होते हैं।

९ पुरुषलिङ्गसिद्ध—जो पुरुष के शरीर से सिद्ध होते हैं।

१० नपुसकलिङ्गसिद्ध—जो कृत नपुसक के शरीर से सिद्ध होते हैं।

११ स्वलिङ्गसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ के वेश मे सिद्ध होते हैं।

१२ अन्यलिङ्गसिद्ध—जो निर्ग्रन्थेतर भिक्षु के वेश मे सिद्ध होते हैं।

१३. गृहलिङ्गसिद्ध—जो गृहस्थ के वेश मे सिद्ध होते हैं।

१४ एकसिद्ध—जो एक समय में एक सिद्ध होता है।

१५ अनेकसिद्ध—जो एक समय मे दो से लेकर उत्कृष्टत एक सौ आठ तक एक साथ सिद्ध होते हैं।

इन पन्द्रह भेदा के छह वर्ग बनते हैं। प्रथम वर्ग से यह ध्वनित होता है कि आत्मिक निर्मलता प्राप्त हो तो सघबद्धता और सघमुक्तता—दोनों अवस्थाओं मे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

दूसरे वर्ग की ध्वनि यह है कि आत्मिक निर्मलता प्राप्त होने पर हर व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है, फिर वह धर्म-सघ का नेता हो या उसका अनुयायी।

तीसरे वर्ग का आशय यह है कि बोधि की प्राप्ति होने पर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, फिर वह (बोधि) किसी भी प्रकार से प्राप्त हुई हो।

चौथे वर्ग का हार्द यह है कि स्त्री और पुरुष दोनो शरीरो से यह सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

पाचवें वर्ग से यह ध्वनित होता है कि आत्मिक निर्मलता और वेशभूषा का घनिष्ठ सम्बन्ध नही है। साधना की प्रखरता प्राप्त होने पर किसी भी वेश मे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

छठा वर्ग सिद्ध होने वाले जीवो की सख्या और समय से सम्बद्ध है।

वेदान्त का अभिमत यह है कि मुक्तजीव ब्रह्म के साथ एक-रूप हो जाता है, इसलिए मुक्तावस्था में सख्याभेद नहीं होता। उपनिषद् का एक प्रसग है—

महर्षि नारद ने सनत्कुमार से पूछा—मुक्त जीव किसमें प्रतिष्ठित है?

सनत्कुमार ने कहा—वह स्वय की महिमा मे अर्थात् स्वरूप मे प्रतिष्ठित है[1]।

इसका तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म के साथ एकरूप है। जैन-दर्शन आत्म-स्वरूप की दृष्टि से सिद्धो में भेद का प्रतिपादन नही करता, किन्तु सख्या की दृष्टि से उनकी अनेकता का प्रतिपादन करता है। जैन दर्शन के अनुसार मुक्तजीवों मे कोई वर्गभेद नहीं है, जिससे कि एक कोई आत्मा प्रतिष्ठापक बनी रहे और दूसरी सब आत्माए उसमे प्रतिष्ठित हो जाए। एक ब्रह्म या ईश्वर हो तथा दूसरी मुक्त आत्माए उसमे विलीन हो, यह सम्मत नहीं है। सब मुक्त आत्माओं का स्वतत्र अस्तित्व है। उनकी समानता मे कोई अन्तर नहीं है।

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन्! सिद्ध कहा प्रतिष्ठित होते हैं?

भगवान् ने कहा—मुक्तजीव लोक के अतिम भाग मे प्रतिष्ठित होते हैं[2]।

एक मुक्तजीव दूसरे मुक्तजीव म प्रतिष्ठित नहीं होता, इसीलिए भगवान् ने अपने उत्तर मे उनकी क्षेत्रीय प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है।

---

१ छान्दोग्य उपनिषद्, ७।२४।१
स भगव कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।

२ ओवाइय, सूत्र १६५
कहि सिद्धा पइट्ठिया? (गाथा १)
लोयग्गे य पइट्ठिया। (गाथा २)

बीअं ठाण

द्वितीय स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे दो की सख्या से सबद्ध विषय वर्गीकृत हैं। जैन न्याय का तर्क है कि जो सार्थक शब्द होता है, वह सप्रतिपक्ष होता है। इसका आधार प्रस्तुत स्थान का पहला सूत्र है। इसमे बताया गया है—

"जदत्थि ण लोगे तं सव्वं दुपओआर"

जैनदर्शन द्वैतवादी है। उसके अनुसार चेतन और अचेतन दो मूल तत्त्व हैं। शेष सब इन्हीं के अवान्तर प्रकार हैं। जैनदर्शन अनेकान्तवादी है। इसलिए वह केवल द्वैतवादी नहीं है। वह अद्वैतवादी भी है। उसकी दृष्टि मे केवल द्वैत और केवल अद्वैत-वाद की सगति नहीं है। इन दोनों की सापेक्ष सगति है। कोई भी जीव चैतन्य की मर्यादा से मुक्त नहीं है। अत चैतन्य की दृष्टि से जीव एक है। अचैतन्य की दृष्टि से अजीव भी एक है। जीव या अजीव कोई भी द्रव्य अस्तित्व की मर्यादा से मुक्त नहीं है। अत अस्तित्व की दृष्टि से द्रव्य एक है। इस सग्रहनय से अद्वैत सत्य है।

चेतन में अचैतन्य और अचेतन मे चैतन्य का अत्यन्ताभाव है। इस दृष्टि से द्वैत सत्य है।

पहले स्थान मे अद्वैत और प्रस्तुत स्थान मे द्वैत का प्रतिपादन है। पहले स्थान मे उद्देशक नहीं है। इसमे चार उद्देशक हैं। आकार में भी यह पहले से बड़ा है।

प्रस्तुत स्थान का प्रथम सूत्र सम्पूर्ण स्थान की सक्षिप्त रूपरेखा है। शेष प्रतिपादन उसी का विस्तार है। उदाहरण के लिए दो से सैंतीसवें सूत्र तक क्रियाओं का वर्गीकरण है। वह प्रथम सूत्र के आस्रव का विस्तार है। इसी प्रकार अन्य विषयों की योजना की जा सकती है।

मोक्ष के साधनों के विषय मे अनेक धारणाए प्रचलित हैं। कुछ दार्शनिक विद्या को मोक्ष का साधन मानते हैं, तो कुछ दार्शनिक आचरण को। जैनदर्शन का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी है, इसलिए वह न केवल विद्या को मोक्ष का साधन मानता है और न केवल आचरण को। वह दोनों के समन्वितरूप को मोक्ष का साधन मानता है[1]। कुछ विद्वानों का मत है कि जैनदर्शन का अपना कुछ नहीं है। उसने दूसरे दर्शनों के सिद्धान्तों का समन्वय कर अपने दर्शन का प्रसाद खड़ा किया है। जैनदर्शन का आकार-प्रकार देखने पर इस प्रकार का मत फलित होना बहुत कठिन नहीं है। किन्तु यह वस्तु-सत्य से परे है। कोई भी दर्शन सर्वात्मना दूसरों का ऋणी होकर अपने अस्तित्व को मौलिकता व महानता प्रदान नहीं कर सकता। जैनदर्शन का जगत् के अध्ययन का अपना मौलिक दृष्टिकोण है। उसका नाम अनेकान्त है। उस दृष्टिकोण के कारण वह विरोधी प्रतीत होने वाली विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय कर सकता है, करता है और उसने अतीत मे ऐसा किया है। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि जैनदर्शन के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण मे अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का समन्वय हो सकता है और हुआ है।

भगवान् महावीर की दृष्टि मे सारी समस्याओं का मूल था हिंसा और परिग्रह। उनका दृढ अभिमत था कि जो व्यक्ति हिंसा और परिग्रह की वास्तविकता को नहीं जानता, वह न धर्म सुन सकता है, न बोधि को प्राप्त कर सकता है और न सत्य का साक्षात्कार ही कर सकता है[2]।

हिंसा और परिग्रह का त्याग करने पर ही व्यक्ति सही अर्थ मे धर्म सुनता है, बोधि को प्राप्त करता है और सत्य का अनुभव करता है[3]।

आगम-साहित्य मे प्रमाण के दो वर्गीकरण मिलते हैं—एक स्थानांग और दूसरा नदी का। स्थानाग का वर्गीकरण

---

१ २।४०

२ २।४१-५१

३ २।५२-६२

नदी के वर्गीकरण से प्राचीन प्रतीत होता है[1]। इसमें सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष का उल्लेख नहीं है। प्रत्यक्ष के दो प्रकार निर्दिष्ट हैं—केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान। नंदी के अनुसार प्रत्यक्ष के दो प्रकार ये हैं—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष। नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन प्रकार हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान[2]।

स्थानांग के केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष इन दोनों का समावेश नंदी के नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष में होता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का अभ्युपगम जैनप्रमाण के क्षेत्र में उत्तरकालीन विकास है। उत्तरवर्ती जैन तर्कशास्त्रों में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

स्थानांग सूत्र संख्या-प्रधान होने के कारण संकलनात्मक है। इसलिए इसमें तत्त्व, आचार, क्षेत्र, काल आदि अनेक विषय निरूपित हैं। कहीं अतिरिक्त संख्या का दो में प्रकारांतर से निवेश किया गया है। उदाहरण के लिए आचार के प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। आचार के पांच प्रकार हैं—ज्ञानआचार, दर्शनआचार, चरित्रआचार, तपआचार और वीर्य-आचार। प्रस्तुत स्थान में इनका निरूपण इस प्रकार है[3]—

नो-ज्ञानाचार के दो प्रकार—दर्शनाचार, नो-दर्शनाचार। नो-दर्शनाचार के दो प्रकार—चरित्राचार, नो-चरित्राचार। नो-चरित्राचार के दो प्रकार—तपआचार, वीर्यआचार।

विविध विषयों के अध्ययन की दृष्टि से यह स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

---

१ २।८६-१०६

२ नंदी ३-६

३ २।२३६-२४२

बीअं ठाणं · पढमो उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
दुपओआर-पदं	**द्विपदावतार-पदम्**	**द्विपदावतार-पद**
१ जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा—	यदस्ति लोके तत् सर्वं द्विपदावतारम्, तद्यथा—	१. लोक में जो कुछ है, वह सब द्विपदावतार [दो-दो पदों में अवतरित] होता है,—
जीवच्चेव अजीवच्चेव।	जीवाश्चैव अजीवाश्चैव।	जीव और अजीव।
तसच्चेव थावरच्चेव।	त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव।	त्रस और स्थावर।
सजोणियच्चेव अजोणियच्चेव।	सयोनिकाश्चैव अयोनिकाश्चैव।	सयोनिक और अयोनिक।
साउयच्चेव अणाउयच्चेव।	सायुष्काश्चैव अनायुष्काश्चैव।	आयु-सहित और आयु-रहित।
सइंदियच्चेव अणिंदियच्चेव।	सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव।	इन्द्रिय-सहित और इन्द्रिय-रहित।
सवेयगा चेव अवेयगा चेव।	सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव।	वेद[1]-सहित और वेद-रहित।
सरूवी चेव अरूवी चेव।	सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव।	रूप[2]-सहित और रूप-रहित।
सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव।	सपुद्गलाश्चैव अपुद्गलाश्चैव।	पुद्गल-सहित और पुद्गल-रहित।
संसारसमावण्णगा चेव असंसारसमावण्णगा चेव।	संसारसमापन्नकाश्चैव असंसारसमापन्नकाश्चैव।	संसार समापन्नक [संसारी] असंसार समापन्नक [सिद्ध]।
सासया चेव असासया चेव।	शाश्वताश्चैव अशाश्वताश्चैव।	शाश्वत और अशाश्वत।
आगासे चेव णोआगासे चेव।	आकाशं चैव नो-आकाशं चैव।	आकाश और नो-आकाश[3]।
धम्मे चेव अधम्मे चेव।	धर्मश्चैव अधर्मश्चैव।	धर्म[4] और अधर्म[5]।
बंधे चेव मोक्खे चेव।	बन्धश्चैव मोक्षश्चैव।	बन्ध और मोक्ष।
पुण्णे चेव पावे चेव।	पुण्यं चैव पापं चैव।	पुण्य और पाप।
आसवे चेव संवरे चेव।	आश्रवश्चैव संवरश्चैव।	आस्रव और संवर।
वेयणा चेव णिज्जरा चेव।	वेदना चैव निर्जरा चैव।	वेदना और निर्जरा।
किरिया-पदं	**क्रिया-पदम्**	**क्रिया-पद**
२ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२. क्रिया दो प्रकार की है—
जीवकिरिया चेव,	जीवक्रिया चैव,	जीव क्रिया—जीव की प्रवृत्ति।
अजीवकिरिया चेव।	अजीवक्रिया चैव।	अजीव क्रिया—पुद्गल समुदाय का कर्म रूप में परिणत होना[6]।

३ जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	जीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३ जीव क्रिया दो प्रकार की है—
सम्मत्तकिरिया चेव।	सम्यक्त्वक्रिया चैव,	सम्यक्त्व क्रिया—सम्यक् क्रिया।
मिच्छत्तकिरिया चेव।	मिथ्यात्वक्रिया चैव।	मिथ्यात्व क्रिया—मिथ्या क्रिया[1]।
४ अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	अजीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	४ अजीव क्रिया दो प्रकार की है—
इरियावहिया चेव,	ऐर्यापथिकी चैव,	ऐर्यापथिकी—वीतराग के [illegible] समुदाय।
संपराइगा चेव।	सांपरायिकी चैव।	सांपरायिकी—कषाय युक्त जीव के होने वाला कर्मबन्ध।
५ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	५. क्रिया दो प्रकार की है—
काइया चेव,	कायिकी चैव,	कायिकी—काया की प्रवृत्ति।
अहिगरणिया चेव।	आधिकरणिकी चैव।	आधिकरणिकी—शस्त्र आदि की प्रवृत्ति[2]।
६ काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	कायिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	६ कायिकी क्रिया दो प्रकार की है—
अणुवरयकायकिरिया चेव,	अनुपरतकायक्रिया चैव,	अनुपरतकायक्रिया—विरति-रहित व्यक्ति की काया की प्रवृत्ति।
दुपउत्तकायकिरिया चेव।	दुष्प्रयुक्तकायक्रिया चैव।	दुष्प्रयुक्तकायक्रिया—इन्द्रिय और मन के विषयों में आसक्त मुनि की काया की प्रवृत्ति[3]।
७ अहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	आधिकरणिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	७ आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की है—
संजोयणाधिकरणिया चेव,	संयोजनाधिकरणिकी चैव,	संयोजनाधिकरणिकी—पूर्व-निर्मित भागों को जोड़कर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया।
णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव।	निर्वर्तनाधिकरणिकी चैव।	निर्वर्तनाधिकरणिकी—नये सिरे से शस्त्र निर्माण करने की क्रिया[4]।
८ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	८ क्रिया दो प्रकार की है—
पाओसिया चेव,	प्रादोषिकी चैव,	प्रादोषिकी—मात्सर्य की प्रवृत्ति।
पारियावणिया चेव।	पारितापनिकी चैव।	पारितापनिकी—परिताप देने की प्रवृत्ति[5]।

९ पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	प्रादोषिकी क्रिया द्विवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	९ प्रादोषिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपाओसिया चेव,	जीवप्रादोपिकी चैव,	जीवप्रादोपिकी—जीव के प्रति होनेवाला मात्सर्य।
अजीवपाओसिया चेव।	अजीवप्रादोपिकी चैव।	अजीवप्रादोपिकी—अजीव के प्रति होनेवाला मात्सर्य[13]।
१० पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	पारितापनिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१० पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की है—
सहत्थपारियावणिया चेव,	स्वहस्तपारितापनिकी चैव,	स्वहस्तपारितापनिकी—अपने हाथ मे स्वय या दूसरे को परिताप देना।
परहत्थपारियावणिया चेव।	परहस्तपारितापनिकी चैव।	परहस्तपारितापनिकी—दूसरे के हाथ से स्वय या दूसरे को परिताप दिलाना[14]।
११ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	११ क्रिया दो प्रकार की है—
पाणातिवायकिरिया चेव,	प्राणातिपातक्रिया चैव,	प्राणातिपातक्रिया—जीव-वध मे होनेवाला कर्म-बंध।
अपच्चक्खाणकिरिया चेव।	अप्रत्याख्यानक्रिया चैव।	अप्रत्याख्यानक्रिया—अविरति से होनेवाला कर्म-बंध[15]।
१२. पाणातिवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	पाणातिपातक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१२ प्राणातिपातक्रिया दो प्रकार की है—
सहत्थपाणातिवायकिरिया चेव,	स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया चैव,	स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया—अपने हाथ मे अपने या दूसरे के प्राणो का अतिपात करना।
परहत्थपाणातिवायकिरिया चेव।	परहस्तप्राणातिपातक्रिया चैव।	परहस्तप्राणातिपातक्रिया—दूसरे के हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का अतिपात करवाना[16]।
१३ अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	अप्रत्याखानक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१३ अप्रत्याख्यानक्रिया दो प्रकार की है—
जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव,	जीवअप्रत्याख्यानक्रिया चैव,	जीवअप्रत्याख्यानक्रिया—जीवविषयक अविरति से होनेवाला कर्म-बंध।
अजीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव।	अजीवअप्रत्याख्यानक्रिया चैव।	अजीवअप्रत्याख्यानक्रिया—अजीवविषयक अविरति से होनेवाला कर्म-बंध[17]।
१४ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	१४ क्रिया दो प्रकार की है—

आरभिया चेव,	आरम्भिकी चैव,	आरभिकी—उपमर्दन की प्रवृत्ति।
पारिग्गहिया चेव।	पारिग्रहिकी चैव।	पारिग्रहिकी—परिग्रह मे प्रवृत्ति[१८]।
१५ आरभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	आरम्भिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१५ आरभिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवआरभिया चेव,	जीवारम्भिकी चैव,	जीव-आरभिकी—जीव के उपमर्दन की प्रवृत्ति।
अजीवआरभिया चेव।	अजीवारम्भिकी चैव।	अजीव-आरभिकी—जीवकलेवर, जीवाकृति आदि के उपमर्दन की प्रवृत्ति[१९]।
१६ °पारिग्गहिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	पारिग्रहिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१६ पारिग्रहिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपारिग्गहिया चेव,	जीवपारिग्रहिकी चैव,	जीवपारिग्रहिकी—सजीव परिग्रह मे प्रवृत्ति।
अजीवपारिग्गहिया चेव।°	अजीवपारिग्रहिकी चैव।	अजीवपारिग्रहिकी—निर्जीव परिग्रह मे प्रवृत्ति[२०]।
१७ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये, प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	१७ क्रिया दो प्रकार की है—
मायावत्तिया चेव,	मायाप्रत्यया चैव,	मायाप्रत्यया—माया से होनेवाली प्रवृत्ति।
मिच्छादसणवत्तिया चेव।	मिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव।	मिथ्यादर्शनप्रत्यया—मिथ्यादर्शन से होनेवाली प्रवृत्ति[२१]।
१८ मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	मायाप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१८ मायाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
आयभाववकणता चेव,	आत्मभाववक्रता चैव,	आत्मभाव वञ्चना—अप्रशस्त आत्मभाव को प्रशस्त प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति।
परभाववकणता चेव।	परभाववक्रता चैव।	परभाव वञ्चना—कूटलेख आदि के द्वारा दूसरे को छलने की प्रवृत्ति[२२]।
१९ मिच्छादसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१९ मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
ऊणाइरियमिच्छादसणवत्तिया चेव,	ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव,	ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया—जिसमे तत्त्व के स्वरूप का न्यून या अधिक स्वीकार हो, जैसे शरीरव्यापी आत्मा को अगुष्ठ प्रमाव या सर्वव्यापी स्वीकार करना।

तव्वइरित्तमिच्छादसणवत्तिया चेव ।	तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव ।	तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया—सद्भूत पदार्थ के अस्तित्व का अस्वीकार, जैसे आत्मा है ही नहीं[२३] ।
२० दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२० क्रिया दो प्रकार की है—
दिट्ठिया चेव,	दृष्टिजा चैव,	दृष्टिजा—देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति ।
पुट्ठिया चेव ।	स्पृष्टिजा चैव ।	स्पृष्टिजा—स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२४] ।
२१ दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	दृष्टिजा क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तदयथा—	२१ दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की है—
जीवदिट्ठिया चेव,	जीवदृष्टिजा चैव,	जीवदृष्टिजा—सजीव पदार्थों को देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति।
अजीवदिट्ठिया चेव ।	अजोवदृष्टिजा चैव ।	अजीवदृष्टिजा—निर्जीव पदार्थों को देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२५] ।
२२ °पुट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	स्पृष्टिजा क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२२ स्पृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपुट्ठिया चेव,	जीवस्पृष्टिजा चैव,	जीवस्पृष्टिजा—जीव के स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति ।
अजीवपुट्ठिया चेव ।°	अजीवस्पृष्टिजा चैव ।	अजीवस्पृष्टिजा—अजीव के स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२६] ।
२३ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२३ क्रिया दो प्रकार की है—
पाडुच्चिया चेव,	प्रातीत्यिकी चैव,	प्रातीत्यिकी—बाह्यवस्तु के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति ।
सामंतोवणिवाइया चेव ।	सामन्तोपनिपातिकी चैव ।	सामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की वस्तुओं के बारे में जनसमुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति[२७] ।
२४ पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	प्रातीत्यिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२४ प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपाडुच्चिया चेव,	जीवप्रातीत्यिकी चैव,	जीवप्रातीत्यिकी—जीव के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति ।
अजीवपाडुच्चिया चेव ।	अजीवप्रातीत्यिकी चैव ।	अजीवप्रातीत्यिकी—अजीव के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति[२८] ।

२५ °सामंतोवणिवाइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	सामन्तोपनिपातिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२५ सामन्तोपनिपातिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवसामतोवणिवाइया चेव,	जीवसामन्तोपनिपातिकी चैव,	जीवसामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की सजीव वस्तुओ के बारे मे जनसमुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति।
अजीवसामतोवणिवाइया चेव।°	अजीवसामन्तोपनिपातिकी चैव।	अजीवसामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की निर्जीव वस्तुओ के बारे मे जन-समुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति[९]।
२६ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२६ क्रिया दो प्रकार की है—
साहत्थिया चेव,	स्वाहस्तिकी चैव,	स्वाहस्तिकी—अपने हाथ से होनेवाली क्रिया।
णेसत्थिया चेव।	नैसृष्टिकी चैव।	नैसृष्टिकी—किसी वस्तु के फेंकने से होने-वाली क्रिया[१०]।
२७ साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	स्वाहस्तिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२७ स्वाहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवसाहत्थिया चेव,	जीवस्वाहस्तिकी चैव,	जीवस्वाहस्तिकी—अपने हाथ मे रहे हुए जीव के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया।
अजीवसाहत्थिया चेव।	अजीवस्वाहस्तिकी चैव।	अजीवस्वाहस्तिकी—अपने हाथ मे रहे हुए निर्जीव शस्त्र के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया[११]।
२८ °णेसत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	नैसृष्टिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२८ नैसृष्टिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवणेसत्थिया चेव,	जीवनैसृष्टिकी चैव,	जीवनैसृष्टिकी—जीव को फेंकने से होने-वाली क्रिया।
अजीवणेसत्थिया चेव।°	अजीवनैसृष्टिकी चैव।	अजीवनैसृष्टिकी—अजीव को फेंकने से होनेवाली क्रिया[१२]।
२९. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२९ क्रिया दो प्रकार की है—
आणवणिया चेव,	आज्ञापनिका चैव,	आज्ञापनी—आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया।
वेयारणिया चेव।	वैदारणिका चैव।	वैदारिणी—स्फोट से होनेवाली क्रिया[१३]।

३०. *आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	आज्ञापनिका क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३० आज्ञापनी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवआणवणिया चेव,	जीवाज्ञापनिका चैव,	जीवआज्ञापनी—जीव के विषय मे आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया।
अजीवआणवणिया चेव।	अजीवाज्ञापनिका चैव।	अजीवआज्ञापनी—अजीव के विषय मे आज्ञा देने मे होनेवाली क्रिया[१४]।
३१ वेयारणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	वैदारणिका क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३१ वैदारिणी क्रिया दो प्रकार की है—
जीववेयारणिया चेव,	जीववैदारणिका चैव,	जीववैदारिणी—जीव के स्फोट से होनेवाली क्रिया।
अजीववेयारणिया चेव।°	अजीववैदारणिका चैव।	अजीववैदारिणी—अजीव के स्फोट से होनेवाली क्रिया[१५]।
३२ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	३२ क्रिया दो प्रकार की है—
अणाभोगवत्तिया चेव,	अनाभोगप्रत्यया चैव,	अनाभोगप्रत्यया—असावधानी मे होनेवाली क्रिया।
अणवकखवत्तिया चेव।	अनवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव।	अनवकाक्षाप्रत्यया—अपेक्षा न रखकर (परिणाम की चिंता किये विना) की जानेवाली क्रिया[१६]।
३३ अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	अनाभोगप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३३ अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
अणाउत्तआइयणता चेव,	अनायुक्तादानता चैव,	अनायुक्तआदानता—असावधानी से वस्त्र आदि लेना।
अणाउत्तपमज्जणता चेव।	अनायुक्ताप्रमार्जनता चैव।	अनायुक्तप्रमार्जनता—असावधानी से पात्र आदि का प्रमाजन करना[१७]।
३४ अणवकखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	अनवकाङ्क्षाप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३४ अनवकाक्षाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
आयसरीरअणवकखवत्तिया चेव,	आत्मशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव,	आत्मशरीरअनवकाक्षाप्रत्यया — अपने शरीर की अपेक्षा न रखकर की जानेवाली क्रिया।
परसरीरअणवकखवत्तिया चेव।	परशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव।	परशरीरअनवकाक्षाप्रत्यया—दूसरे के शरीर की अपेक्षा न रखकर की जानेवाली क्रिया[१८]।
३५. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	३५ क्रिया दो प्रकार की है—

पेज्जवत्तिया चेव,	प्रेय प्रत्यया चैव,	प्रेय प्रत्यया—प्रेयस् के निमित्त से होने-वाली क्रिया।
दोसवत्तिया चेव।	द्वेषप्रत्यया चैव।	दोपप्रत्यया—द्वेप के निमित्त से होने-वाली क्रिया[४९]।
३६ पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	प्रेय प्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३६ प्रेय प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
मायावत्तिया चेव,	मायाप्रत्यया चैव,	मायाप्रत्यया।
लोभवत्तिया चेव।	लोभप्रत्यया चैव।	लोभप्रत्यया[५०]।
३७ दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	द्वेपप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३७ दोपप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है -
कोहे चेव, माणे चेव।	क्रोधश्चैव, मानश्चैव।	क्रोधप्रत्यया। मानप्रत्यया[५१]।

गरहा-पदं	**गर्हा-पदम्**	**गर्हा-पद**
३८ दुविहा गरिहा पण्णत्ता त जहा—	द्विविधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३८ गर्हा दो प्रकार की है—
मणसा वेगे गरहति,	मनसा वैक गर्हते,	कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं।
वयसा वेगे गरहति।	वचसा वैक गर्हते।	कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं।
अहवा— गरहा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—	अथवा—गर्हा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	अथवा—गर्हा दो प्रकार की है—
दीह वेगे अद्ध गरहति,	दीर्घं वैक अद्ध्वान गर्हते,	कुछ लोग दीर्घकाल तक गर्हा करते हैं।
रहस्स वेगे अद्ध गरहति।	ह्रस्व वैक अद्ध्वान गर्हते।	कुछ लोग अल्पकाल तक गर्हा करते हैं[५२]।

पच्चक्खाण-पदं	**प्रत्याख्यान-पदम्**	**प्रत्याख्यान-पद**
३९ दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—	द्विविध प्रत्याख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	३९ प्रत्याख्यान दो प्रकार का है—
मणमा वेगे पच्चक्खाति,	मनसा वैक प्रत्याख्याति,	कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान करते हैं।
वयसा वेगे पच्चक्खाति।	वचसा वैक प्रत्याख्याति।	कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं।
अहवा—पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—	अथवा—प्रत्याख्यान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	अथवा—प्रत्याख्यान दो प्रकार का है—
दीह वेगे अद्ध पच्चक्खाति,	दीर्घं वैक अद्ध्वान प्रत्याख्याति,	कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं।
रहस्स वेगे अद्ध पच्चक्खाति।	ह्रस्व वैक अद्ध्वान प्रत्याख्याति।	कुछ लोग अल्पकाल तक प्रख्यात्यान करते हैं।

विज्जाचरण-पदं

४० दोहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अणादीय अणवयग्ग दीहमद्ध चाउरतं ससारकतार वीति-वएज्जा, त जहा—
विज्जाए चेव, चरणेण चेव।

विद्याचरण-पदम्

द्वाभ्या स्थानाभ्या सम्पन्न अनगार अनादिक अनवदग्र दीर्घाद्ध्वान चातुरन्त ससारकान्तार व्यतिव्रजेत, तद्यथा—
विद्यया चैव, चरणेन चैव।

विद्याचरण-पद

४० विद्या और चरण[१] (चरित्र) इन दो स्थानों से सम्पन्न अनगार अनादि-अनत प्रलव मार्गवाले तथा चार अन्तवाले ससार-रूपी कान्तार को पार कर जाता है—मुक्त हो जाता है।

आरभ-परिग्गह-पदं

४१ दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव।

४२. दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल वोधि वुज्झेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव।

४३. दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव।

४४. •दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल वभचेरवासमावसेज्जा, त जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४५ दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलेण सजमेण सजमेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४६. दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलेण सवरेणं सवरेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव।

४७ दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया

आरम्भ-परिग्रह-पदम्

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलिप्रज्ञप्त धर्मं लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवला वोधि वुध्येत, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल व्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलेन सयमेन सयच्छेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलेन सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल

आरम्भ-परिग्रह-पद

४१ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे विना आत्मा केवली-प्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन पाता।

४२ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो के जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध-वोधि का अनुभव नही करता।

४३ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे विना आत्मा मुड होकर, घर को छोडकर सम्पूर्ण अनगारिता (साधुपन) को नही पाता।

४४ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे विना आत्मा सम्पूर्ण व्रह्मचर्यवास (आचार) को प्राप्त नहीं करता।

४५ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोड़े विना आत्मा सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत नहीं होता।

४६ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे विना आत्मा सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत नहीं होता।

४७ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को

णो केवलमाभिणिवोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

आभिनिवोधिकज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिकज्ञान को प्राप्त नही करता ।

४८. दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

४८. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त नही करता ।

४९ दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल ओहिणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत् तद्यथा—
आरम्भाश्चै, परिग्रहाश्चैव ।

४९ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त नही करता ।

५०. दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल मन पर्यवज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५० आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त नही करता ।

५१ दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।°

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५१ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त नहीं करता ।

५२. दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५२ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा केवली-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है ।

५३ •दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल वोधि वुज्झेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवला वोधि वुध्येत, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५३ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध वोधि का अनुभव करता है ।

५४ दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५४ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा मुड होकर, घर छोडकर सम्पूर्ण अनगारिता(साधुपन) को पाता है ।

५५ दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल वंभचेरवासमावसेज्जा, त जहा—
आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल व्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव ।

५५ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोडकर आत्मा सम्पूर्ण व्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है ।

५६ दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेण संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलेन सयमेन सयच्छेत्, तद्यथा—	५६ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत होता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
५७ दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलेणं संवरेणं सवरेज्जा, त जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलेन सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—	५७ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत होता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
५८. दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिवोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल आभिनिवोधिकज्ञान उत्पादयेत् तद्यथा—	५८ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
५९ दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, त जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—	५९ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
६०. दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, त जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—	६० आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
६१ दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा तं जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल मनःपर्यवज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—	६१ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
६२ दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—	द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—	६२ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है।
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।°	आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।	
सोच्चा-अभिसमेच्च-पदं	**श्रुत्वा-अभिसमेत्य-पदम्**	**श्रुत्वा-अभिसमेत्य-पद**
६३ दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, त जहा—	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—	६३ सुनने और जानने—इन दो स्थानो मे
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।	श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।	आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है।

६४. •दोहिं ठाणेहिं आया केवल बोधि बुज्झेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवला बोधि बुध्येत, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६४ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध-बोधि का अनुभव करता है।

६५. दोहिं ठाणेहिं आया केवल मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६५ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा मुड होकर, घर छोडकर, सम्पूर्ण अनगारिता (साधुपन) को पाता है।

६६ दोहिं ठाणेहिं आया केवल बभचेर-वासमावसेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल ब्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६६ सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है।

६७ दोहिं ठाणेहिं आया केवल सजमेण सजमेज्जा त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल सयमेण सयच्छेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६७ सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत होता है।

६८ दोहिं ठाणेहिं आया केवल सवरेण सवरेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६८ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत होता है।

६९ दोहिं ठाणेहिं आया केवल-माभिणिवोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल आभिनिवोधिकज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६९ सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है।

७० दोहिं ठाणेहिं आया केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल श्रुत-ज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७० सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।

७१ दोहिं ठाणेहिं आया केवल ओहि-णाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७१ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है।

७२ दोहिं ठाणेहिं आया केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल मन पर्यवज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७२ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है।

७३ दोहिं ठाणेहिं आया केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।°

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल केवल-ज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७३ सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

कालचक्क-पदं

७४ दो समाओ पण्णत्ताओ, तजहा—

ओसप्पिणी समा चेव,

उस्सप्पिणी समा चेव।

कालचक्र-पदम्

द्वे समे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—

अविसर्पिणी समा चैव,

उत्सर्पिणी समा चैव।

कालचक्र-पद

७४ समा (कालमर्यादा) दो प्रकार की है—

अवसर्पिणी समा—इसमे वस्तुओ के रूप, रस, गन्ध, आयु आदि का क्रमश ह्रास होता है।

उत्सर्पिणी समा—इसमे वस्तुओ के रूप, रस, गन्ध, आयु आदि का क्रमश विकास होता है।

उम्माय-पदं

७५ दुविहे उम्माए पण्णत्ते, त जहा—
जक्खाएसे चेव,

मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।
तत्य ण जे से जक्खाएसे, से ण सुहवेयतराए चेव सुहविमोयतराए चेव।
तत्य ण जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण, से ण दुहवेयतराए चेव दुहविमोयतराए चेव।

उन्माद-पदम्

द्विविध उन्माद प्रज्ञप्त, तद्यथा—
यक्षावेशश्चैव,

मोहनीयस्य चैव कर्मण उदयेन।
तत्र योऽसौ यक्षावेश, स सुखवेद्यतरकश्चैव सुखविमोच्यतरकश्चैव।
तत्र योऽसौ मोहनीयस्य कर्मण उदयेन, स दु खवेद्यतरकश्चैव दु खविमोच्यतरकश्चैव।

उन्माद-पद

७५ उन्माद दो प्रकार का होता है—
यक्षावेश—शरीर मे यक्ष के आविष्ट होने से उत्पन्न।
मोहनीय—कर्म के उदय से उत्पन्न।
जो यक्षावेशजनित उन्माद है वह मोहजनित उन्माद की अपेक्षा सुख से भोगा जाने वाला और सुख से छूट सकने वाला होता है।
जो मोहजनित उन्माद है वह यक्षावेशजनित उन्माद की अपेक्षा दु ख से भोगा जाने वाला और दु ख से छूट सकने वाला होता है।

दंड-पदं

७६ दो दडा पण्णत्ता, त जहा—
अट्ठादडे चेव,
अणट्ठादडे चेव।
७७. णेरइयाण दो दडा पण्णत्ता, त जहा—
अट्ठादडे य,
अणट्ठादडे य।

दण्ड-पदम्

द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
अर्थदण्डश्चैव,
अनर्थदण्डश्चैव।
नैरयिकाणा द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
अर्थदण्डश्च,
अनर्थदण्डश्च।

दण्ड-पद

७६ दण्ड दो प्रकार का होता है—
अर्थदण्ड।
अनर्थदण्ड।
७७ नैरयिको के दो दण्ड होते हैं—
अर्थदण्ड।
अनर्थदण्ड।

७८ एव—चउवीसादंडओ जाव वेमाणियाण।	एवम्—चतुर्विशतिदण्डक यावत् वैमानिकानाम्।	७८ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभ दण्डकों मे दो दण्ड होते हैं— अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड।
दंसण-पद	**दर्शन-पदम्**	**दर्शन-पद**
७९ दुविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा— सम्मद्दसणे चेव, मिच्छादसणे चेव।	द्विविध दर्शन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— सम्यग्दर्शनञ्चैव, मिथ्यादर्शनञ्चैव।	७९ दर्शन दो प्रकार का है— सम्यग्दर्शन। मिथ्यादर्शन[५४]।
८० सम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, तजहा— णिसग्गसम्मद्दसणे चेव,	सम्यग्दर्शन द्विविध प्रज्ञप्तम् तद्यथा— निसर्गसम्यग्दर्शनञ्चैव,	८० सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है— निसर्गसम्यग्दर्शन—आन्तरिक दोपो की शुद्धि होने पर किसी वाह्य निमित्त के विना सहज ही प्राप्त होनेवाला सम्यग्दर्शन।
अभिगमसम्मद्दंसणे चेव।	अभिगमसम्यग्दर्शनञ्चैव।	अभिगमसम्यग्दर्शन—उपदेश आदि निमित्तो से प्राप्त होनेवाला सम्यग्दर्शन।[५५]
८१. णिसग्गसम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव।	निसर्गसम्यग्दर्शन द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— प्रतिपाती चैव, अप्रतिपाती चैव।	८१ निसगसम्यग्दर्शन दो प्रकार का है— प्रतिपाती—जो वापस चला जाए। अप्रतिपाती—जो वापस न जाए।[५६]
८२ अभिगमसम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव।	अभिगमसम्यग्दर्शन द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— प्रतिपाती चैव, अप्रतिपाती चैव।	८२ अभिगमसम्यग्दर्शन दो प्रकार का है— प्रतिपाती। अप्रतिपाती।[५७]
८३ मिच्छादसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— अभिग्गहियमिच्छादसणे चेव,	मिथ्यादर्शन द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— आभिग्रहिकमिथ्यादर्शनञ्चैव,	८३ मिथ्यादर्शन दो प्रकार का है— आभिग्रहिक—विपरीत सिद्धान्त के आग्रह से उत्पन्न।
अणभिग्गहियमिच्छादसणे चेव।	अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शनञ्चैव।	अनाभिग्रहिक—सहज या गुण-दोप की परीक्षा किये विना उत्पन्न।[५८]
८४ अभिग्गहियमिच्छादसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव।	आभिग्रहिकमिथ्यादर्शन द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— सपर्यवसितञ्चैव, अपर्यवसितञ्चैव।	८४ आभिग्रहिकमिथ्यादर्शन दो प्रकार का है— सपर्यवसित—सान्त। अपर्यवसित—अनन्त।[५९]

८५ •अणभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव।°

अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सपर्यवसितञ्चैव, अपर्यवसितञ्चैव।

८५ अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शन दो प्रकार का है—
सपर्यवसित, अपर्यवसित।

णाण-पदं

ज्ञान-पदम्

ज्ञान-पद

८६ दुविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव।

द्विविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—प्रत्यक्षञ्चैव, परोक्षञ्चैव।

८६ ज्ञान दो प्रकार का है—
प्रत्यक्ष, परोक्ष।[51]

८७ पच्चक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—केवलणाणे चेव, णोकेवलणाणे चेव।

प्रत्यक्षं ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—केवलज्ञानञ्चैव, नोकेवलज्ञानञ्चैव।

८७ प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का है—
केवलज्ञान।
नोकेवलज्ञान।

८८ केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवत्थकेवलणाणे चेव, सिद्धकेवलणाणे चेव।

केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—भवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, सिद्धकेवलज्ञानञ्चैव।

८८ केवलज्ञान दो प्रकार का है—
भवस्थकेवलज्ञान—संसारी जीवों का केवलज्ञान। सिद्धकेवलज्ञान—मुक्त जीवों का केवलज्ञान।

८९. भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव,
अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।

भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,
अयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।

८९ भवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
सयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

९०. सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।
अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।

सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।
अथवा—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।

९० सयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अथवा—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

९१. •अजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।
अहवा—चरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव,

अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, अप्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।
अथवा—चरमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,

९१ अयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
प्रथमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अप्रथमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अथवा—चरमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

अचरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव ।°	अचरमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव ।	अचरमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान ।
९२. सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अणतरसिद्धकेवलणाणे चेव, परपरसिद्धकेवलणाणे चेव ।	सिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, परम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव ।	९२ सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान । परम्परसिद्धकेवलज्ञान ।
९३ अणतरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— एक्काणतरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्काणतरसिद्धकेवलणाणे चेव ।	अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— एकानन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, अनेकानन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव ।	९३ अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— एकअनन्तरसिद्धकेवलज्ञान । अनेकअनन्तरसिद्धकेवलज्ञान ।
९४ परपरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— एक्कपरपरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्कपरपरसिद्धकेवलणाणे चेव ।	परम्परसिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— एकपरम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, अनेकपरम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव ।	९४ परम्परसिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— एकपरम्परसिद्धकेवलज्ञान । अनेकपरम्परसिद्धकेवलज्ञान ।
९५ णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव ।	नोकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवधिज्ञानञ्चैव, मन पर्यवज्ञानञ्चैव ।	९५ नोकेवलज्ञान दो प्रकार का है— अवधिज्ञान । मन पर्यवज्ञान ।
९६ ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—भवपच्चइए चेव, खओवसमिए चेव ।	अवधिज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— भवप्रत्ययिकञ्चैव, क्षायोपशमिकञ्चैव ।	९६ अवधिज्ञान दो प्रकार का है— भवप्रत्ययिक—जन्म के साथ, उत्पन्न होने वाला । क्षायोपशमिक—ज्ञानावरण कर्म के क्षयउपशम से उत्पन्न होनेवाला ।
९७ दोण्ह भवपच्चइए पण्णत्ते, त जहा—देवाण चेव, णेरइयाणं चेव ।	द्वयोर्भवप्रत्ययिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव ।	९७ दो के भवप्रत्ययिक होता है— देवताओ के, नैरयिको के ।
९८. दोण्ह खओवसमिए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव ।	द्वयो क्षायोपशमिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव ।	९८ दो के क्षायोपशमिक होता है— मनुष्यो के । पञ्चेन्द्रियतिर्यंचो के ।
९९. मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते, तजहा—उज्जुमति चेव, विउलमति चेव ।	मन पर्यवज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ऋजुमति चैव, विपुलमति चैव ।	९९ मन पर्यवज्ञान दो प्रकार का है— ऋजुमति—मानसिक चिन्तन के पुद्गलों को सामान्य रूप से जाननेवाला ज्ञान । विपुलमति—मानसिक चिन्तन के पुद्गलो की विविध पर्यायो को विशेष रूप से जाननेवाला ज्ञान ।
१०० परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिवोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव ।	परोक्ष ज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम् तद्यथा— आभिनिवोधिकज्ञानञ्चैव, श्रुतज्ञानञ्चैव ।	१०० परोक्ष ज्ञान दो प्रकार का है— आभिनिवोधिकज्ञान । श्रुतज्ञान ।

१०१. आभिणिवोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुयणिस्सिए चेव, असुयणिस्सिए चेव।

आभिनिवोधिकज्ञानं द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—श्रुतनिश्रितञ्चैव, अश्रुतनिश्रितञ्चैव ।

१०१ आभिनिवोधिकज्ञान दो प्रकार का है—
श्रुतनिश्रित ।
अश्रुतनिश्रित ।[52]

१०२. सुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थोग्गहे चेव, वजणोग्गहे चेव ।

श्रुतनिश्रित द्विविध प्रज्ञप्तम् तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहञ्चैव ।

१०२ श्रुतनिश्रित दो प्रकार का है—
अर्थावग्रह।
व्यञ्जनावग्रह ।[53]

१०३ असुयणिस्सिते *दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव ।°

अश्रुतनिश्रित द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहश्चैव ।

१०३ अश्रुतनिश्रित दो प्रकार का है—
अर्थावग्रह ।
व्यञ्जनावग्रह ।[54]

१०४ सुयणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अगपविट्ठे चेव, अगवाहिरे चेव ।

श्रुतज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टञ्चैव, अङ्गवाह्यञ्चैव ।

१०४ श्रुतज्ञान दो प्रकार का है—
अगप्रविष्ट ।
अगवाह्य ।

१०५ अगवाहिरे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आवस्सए चेव, आवस्सयवतिरित्ते चेव ।

अङ्गवाह्य द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवश्यकञ्चैव, आवश्यकव्यतिरिक्तञ्चैव ।

१०५ अगवाह्य दो प्रकार का है—
आवश्यक ।
आवश्यकव्यतिरिक्त ।

१०६ आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—कालिए चेव, उक्कालिए चेव ।

आवश्यकव्यतिरिक्त द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कालिकञ्चैव, उत्कालिकञ्चैव ।

१०६ आवश्यकव्यतिरिक्त दो प्रकार का है—
कालिक—जो दिन रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही पढा जा सके।
उत्कालिक—जो अकाल के सिवाय सभी प्रहरों मे पढा जा सके ।

धम्म-पदं

धर्म-पदम्

धर्म-पद

१०७ दुविहे धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव ।

द्विविध धर्म. प्रज्ञप्त , तद्यथा—श्रुतधर्मश्चैव, चरित्रधर्मश्चैव ।

१०७ धर्म दो प्रकार का है—
श्रुतधर्म, चारित्रधर्म ।

१०८ सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थसुयधम्मे चेव।

श्रुतधर्म द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—सूत्रश्रुतधर्मश्चैव, अर्थश्रुतधर्मश्चैव ।

१०८ श्रुतधर्म दो प्रकार का है—
सूत्रश्रुतधर्म, अर्थश्रुतधर्म ।

१०९. चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव ।

चरित्रधर्म द्विविध प्रज्ञप्त , तद्यथा—अगारचरित्रधर्मश्चैव, अनगारचरित्रधर्मश्चैव ।

१०९ चारित्रधर्म दो प्रकार का है—
अगार (गृहस्थ) का चारित्रधर्म ।
अनगार (मुनि) का चारित्रधर्म ।

संजम-पदं

सयम-पदम्

संयम-पद

११०. दुविहे सजमे पण्णत्ते, त जहा—सरागसजमे चेव, वीतरागसजमे चेव ।

द्विविध सयम प्रज्ञप्त , तद्यथा—सरागसयमश्चैव, वीतरागसयमश्चैव ।

११० सयम दो प्रकार का है—
सरागसयम ।
वीतरागसयम ।

१११. सरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
सुहुमसपरायसरागसजमे चेव,
वादरसपरायसरागसजमे चेव।

सरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
सूक्ष्मसपरायसरागसयमश्चैव,
वादरसपरायसरागसयमश्चैव।

१११ सरागमयम दो प्रकार का है—
सूक्ष्मसपरायसरागसयम।
वादरसपरायसरागसयम।

११२ सुहुमसपरायमरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयसुहुमसपरायसराग-सजमे चेव,
अपढमसमयसुहुमसपरायसराग-सजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयसुहुमसपराय-सरागसजमे चेव, अचरिमसमय-सुहुमसपरायसरागसजमे चेव।
अहवा—सुहुमसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
सकिलेसमाणए चेव,
विसुज्झमाणए चेव।

सूक्ष्मसपरायसरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—
प्रथमसमयसूक्ष्मसपरायसराग-सयमश्चैव,
अप्रथमसमयसूक्ष्मसपरायसराग-सयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयसूक्ष्मसपराय-सरागसयमश्चैव,
अचरमसमयसूक्ष्ममपरायसराग-सयमश्चैव।
अथवा—सूक्ष्मसपरायमरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
सक्लिश्यमानकश्चैव,
विशुद्ध्यमानकश्चैव।

११२ सूक्ष्मसपरायसरागसयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयसूक्ष्मसपरायसरागसयम।
अप्रथममममयसूक्ष्मसपरायसरागसयम।
अथवा—चरमसमयसूक्ष्मसपरायसराग-सयम।
अचरमसमयसूक्ष्मसपरायसरागसयम।
अथवा—सूक्ष्मसपरायसरागसयम दो प्रकार का है—
सक्लिश्यमान।
विशुद्ध्यमान।

११३ वादरसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयवादर-सपरायसरागसजमे चेव,
अपढमसमयवादरसपरायसराग-सजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयवादरसपराय-सरागसजमे चेव,
अचरिमसमयवादरसंपरायसराग-सजमे चेव।
अहवा—वायरसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पडिवातिए चेव, अपडिवातिए चेव।

वादरसपरायसरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा— प्रथमसमयवादर-सपरायसरागसयमश्चैव,
अप्रथमसमयवादरसपरायसराग-सयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयवादरसपराय-सरागमयमश्चैव,
अचरमसमयवादरसपरायसराग-सयमश्चैव।
अथवा—वादरसपरायसरागनयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रतिपातिकश्चैव, अप्रतिपातिकश्चैव।

११३ वादरसपरायसरागसयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयवादरसपरायसरागसयम।
अप्रथमसमयवादरसपरायसरागसयम।
अथवा—चरमसमयवादरसपरायसराग-सयम।
अचरमसमयवादरसपरायमरागसयम।
अथवा—वादरसपरायसरागसयम दो प्रकार का है—
प्रतिपाती, अप्रतिपाती।

११४ वीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
उवसतकसायवीयरागसजमे चेव,
खीणकसायवीयरागसजमे चेव।

वीतरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
उपशान्तकपायवीतरागसयमश्चैव,
क्षीणकपायवीतरागमयमश्चैव।

११४ वीतरागसयम दो प्रकार का है—
उपशान्तकपायवीतरागसयम।
क्षीणकपायवीतरागसयम।

११५. उवसंतकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—	उपशान्तकषायवीतरागसंयमं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	११५ उपशान्तकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
पढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव,	प्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव,	प्रथमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।
अपढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव।	अप्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव।	अप्रथमसमयउपशान्तकषायवीतराग-संयम।
अहवा—चरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव,	अथवा—चरमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव,	अथवा—चरमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।
अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव।	अचरमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव।	अचरमसमयउपशान्तकषायवीतराग-संयम।
११६. खीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—	क्षीणकषायवीतरागसंयमं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	११६ क्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव,	छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,	छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
केवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव।	केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।	केवलीक्षीणकषायवीतरागसंयम।
११७. छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—	छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	११७ छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,	स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,	स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,	बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।	बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
११८ सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—	स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	११८ स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,	प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,	प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव।	अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।	अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अहवा—चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,	अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,	अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव।	अचरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,	अचरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।

११९. वुद्धवोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयवुद्धवोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव,
अपढमसमयवुद्धवोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयवुद्धवोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अचरिमसमयवुद्धवोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

वुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।
अप्रथमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव,
अचरमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।

११९. वुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयम।
अप्रथमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसयम।
अथवा—चरमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागगयम।
अचरमसमयवुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागमयम।

१२०. केवलिखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव,
अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

केवलिक्षीणकपायवीतरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।
अयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।

१२० केवलीक्षीणकपायवीतरागसयम दो प्रकार का है—
सयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागमयम।
अयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।

१२१. सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव,
अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव,
अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव,
अप्रथमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव,
अचरमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।

१२१ सयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयसयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।
अप्रथमसमयसयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसमम।
अथवा—चरमसमयसयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।
अचरमसमयसयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।

१२२ अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव,
अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

अयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयम द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव,
अप्रथमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसयमश्चैव।

१२२. अयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयअयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।
अप्रथमसमयअयोगीकेवलीक्षीणकपायवीतरागसयम।

अहवा—चरिमसमयअजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अचरिमसमयअजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरागसजमे चेव।

अथवा—चरमसमयायोगिकेवलिक्षीण-कषायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयायोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागसंयमश्चैव।

अथवा—चरमसमयअयोगीकेवली-क्षीणकषायवीतरागसंयम। अचरमसमयअयोगीकेवलीक्षीणकषाय-वीतरागसंयम।

जीव-णिकाय-पदं

जीव-निकाय-पदम्

जीव-निकाय-पद

१२३. दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव।
द्विविधा पृथिवीकायिका प्रज्ञप्ता तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।
१२३ पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर।

१२४ *दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव।
द्विविधा अप्कायिका प्रज्ञप्ता तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।
१२४ अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर।

१२५. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव।
द्विविधा तेजस्कायिका प्रज्ञप्ता तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।
१२५ तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर।

१२६. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव।°
द्विविधा वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।
१२६ वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर।

१२७ दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव।
द्विविधा वनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।
१२७ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर।

१२८ दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव।
द्विविधा पृथिवीकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव।
१२८ पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१२९. *दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव।
द्विविधा अप्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव।
१२९ अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१३०. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव।
द्विविधा तेजस्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव।
१३० तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१३१ दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव।
द्विविधा वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव।
१३१ वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१३२ दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव°।
द्विविधा वनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव।
१३२ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१३३. दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।
द्विविधा पृथिवीकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।
१३३ पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—परिणत—बाह्य हेतुओं से जो अन्य रूप में बदल गया हो—निर्जीव हो गया हो। अपरिणत।

१३४ °दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्विविधा अप्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।

१३४ अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—परिणत और अपरिणत।

१३५ दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्विविधा तेजस्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।

१३५. तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—परिणत और अपरिणत।

१३६. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्विविधा वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।

१३६ वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—परिणत और अपरिणत।

१३७ दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव°।

द्विविधा वनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।

१३७ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—परिणत और अपरिणत।

दव्व-पद

द्रव्य-पदम्

द्रव्य-पद

१३८ दुविहा दव्वा पण्णत्ता, त जहा—परिणता चेव, अपरिणता चेव।

द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—परिणतानि चैव, अपरिणतानि चैव।

१३८ द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—परिणत—बाह्य हेतुओं से जिसका रूपान्तर हुआ हो। अपरिणत।

जीव-णिकाय-पदं

जीव-निकाय-पदम्

जीव-निकाय-पद

१३९ दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्विविधा पृथिवीकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।

१३९ पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—गतिसमापन्नक—एक जन्म से दूसरे जन्म मे जाते समय अन्तराल गति में वर्तमान। अगतिसमापन्नक—वर्तमान जीवन मे स्थित।

१४० °दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्विविधा अप्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।

१४० अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।

१४१. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्विविधा तेजस्कायिका प्रज्ञप्ता तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।

१४१ तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।

१४२. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्विविधा वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।

१४२ वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।

१४३. दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव ।°

द्विविधा वनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव ।

१४३ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—
गतिसमापन्नक ।
अगतिसमापन्नक ।

दव्व-पदं

द्रव्य-पदम्

द्रव्य-पद

१४४. दुविहा दव्वा पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव ।

द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—गतिसमापन्नकानि चैव, अगतिसमापन्नकानि चैव ।

१४४ द्रव्य दो प्रकार के हैं—
गतिसमापन्नक—गमन मे प्रवृत्त ।
अगतिसमापन्नक—अवस्थित ।

जीव-णिकाय-पदं

जीव-निकाय-पदम्

जीव-निकाय-पद

१४५. दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव ।

द्विविधा पृथिवीकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।

१४५ पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ—वर्तमान समय मे किमी आकाशदेश मे स्थित ।
परम्परावगाढ—दो या अधिक नमयो से किसी आकाशदेश मे स्थित ।

१४६ •दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव ।

द्विविधा अप्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।

१४६ अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ ।
परम्परावगाढ ।

१४७ दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणतरोगाढा चेव । परपरोगाढा चेव ।

द्विविधा तेजस्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।

१४७ तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ ।
परम्परावगाढ ।

१४८ दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव ।

द्विविधा वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।

१४८ वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ ।
परम्परावगाढ ।

१४९ दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव ।

द्विविधा वनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।

१४९ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ ।
परम्परावगाढ ।

दव्वं-पदं

द्रव्य-पदम्

द्रव्य-पद

१५०. दुविहा दव्वा पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव ।°

द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अनन्तरावगाढानि चैव, परम्परावगाढानि चैव ।

१५० द्रव्य दो प्रकार के हैं—
अनतरावगाढ ।
परम्परावगाढ ।

१५१ दुविहे काले पण्णत्ते, त जहा—
ओसप्पिणीकाले चेव,
उस्सप्पिणीकाले चेव।

द्विविध काल प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अवसर्प्पिणीकालश्चैव,
उत्सर्प्पिणीकालश्चैव।

१५१ काल दो प्रकार का है—
अवसर्पिणीकाल।
उत्सर्पिणीकाल।

१५२ दुविहे आगासे पण्णत्ते त जहा—
लोगागासे चेव।
अलोगागासे चेव।

द्विविध आकाश प्रज्ञप्त, तद्यथा—
लोकाकाशश्चैव,
अलोकाकाशश्चैव।

१५२ आकाश दो प्रकार का है—
लोकाकाश और
अलोकाकाश।

सरीर-पद

शरीर-पदम्

शरीर-पद

१५३ णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव,
वाहिरगे चेव।
अब्भतरए कम्मए,
वाहिरए वेउव्विए।

नैरयिकाणा द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव,
वाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक,
वाह्यक वैक्रियम्।

१५३. नैरयिकों के दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक (सब शरीरों का हेतुभूत शरीर)।
वाह्य शरीर—वैक्रिय।

१५४ °देवाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव,
वाहिरगे चेव।
अब्भतरए कम्मए,
वाहिरए वेउव्विए।°

देवाना द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव,
वाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक,
वाह्यक वैक्रियम्।

१५४ देवों के दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
वाह्य शरीर—वैक्रिय।

१५५. पुढविकाइयाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—
अब्भतरगे चेव, वाहिरगे चेव।
अब्भतरगे कम्मए,
वाहिरगे ओरालिए जाव वणस्सइकाइयाण।

पृथिवीकायिकाना द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव, वाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक,
वाह्यक औदारिकम् यावत् वनस्पतिकायिकानाम्।

१५५ पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के दो-दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
वाह्य शरीर—औदारिक।[५८]

१५६ वेइदियाण दो सरीरा पण्णत्ता, त जहा—
अब्भतरए चेव, वाहिरए चेव।
अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितवद्धे वाहिरए ओरालिए।

द्वीन्द्रियाणा द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव, वाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितवद्ध वाह्यक औदारिकम्।

१५६ दो इन्द्रिय वाले जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
वाह्य शरीर—हाड, मास और रक्तयुक्त औदारिक।[५९]

१५७ °तेइदियाण दो सरीरा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरए चेव,
वाहिरए चेव।
अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणितवद्धे वाहिरए ओरालिए।

त्रीन्द्रियाणा द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव,
वाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितवद्ध वाह्यक औदारिकम्।

१५७. तीन इन्द्रिय वाले जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड, मांस और रक्तयुक्त औदारिक।[६०]

१५८ चउरिंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमंस-सोणितबद्धे बाहिरए ओरालिए।°

चतुरिन्द्रियाणा द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमास-शोणितबद्ध बाह्यक औदारिकम्।

१५८ चार इन्द्रिय वाले जीवो के दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड, मास और रक्तयुक्त औदारिक।[1]

१५९. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरए ओरालिए।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितस्नायुशिराबद्ध बाह्यक औदारिकम्।

१५९ पाच इन्द्रिय वाले तिर्यञ्चो के दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड, मास, रक्त, स्नायु और शिरायुक्त औदारिक।[1]

१६० °मणुस्साणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरए ओरालिए।°

मनुष्याणा द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितस्नायुशिराबद्ध बाह्यक औदारिकम्।

१६० मनुष्यो के दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड, मास, रक्त, स्नायु और शिरायुक्त औदारिक।[1]

१६१. विग्गहगइसमावण्णगाणं णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—तेयए चेव, कम्मए चेव। णिरतरं जाव वेमाणियाणं।

विग्रहगतिसमापन्नकाना नैरयिकाणा द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—तैजसञ्चैव, कर्मकञ्चैव। निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।

१६१ विग्रहगति[1] समापन्न नैरयिको तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डको के जीवो के दो-दो शरीर होते हैं—
तैजस और कर्मक।

१६२. णेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा—रागेण चेव, दोसेण चेव जाव वेमाणियाणं।

नैरयिकाणा द्वाभ्या स्थानाभ्या शरीरोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा—रागेण चैव, दोषेण चैव यावत् वैमानिकानाम्।

१६२ नैरयिको तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डकों के जीवो के दो-दो स्थानों से शरीर की उत्पत्ति (आरम्भ मात्र) होती है—
राग से और द्वेष से।

१६३. णेरइयाणं दुट्ठाणणिव्वत्तिए सरीरगे पण्णत्ते, तं जहा—रागणिव्वत्तिए चेव, दोसणिव्वत्तिए चेव जाव वेमाणियाणं।

नैरयिकाणा द्विस्थाननिर्वर्तित शरीरक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—रागनिर्वर्तितञ्चैव, दोषनिर्वर्तितञ्चैव यावत् वैमानिकानाम्।

१६३ नैरयिको तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डको के जीवो के दो-दो स्थानो से शरीर की निष्पत्ति (पूर्णता) होती है—
राग से और द्वेष से।

काय-पदं

काय-पदम्

काय-पद

१६४ दो काया पण्णत्ता, तं जहा—तसकाए चेव, थावरकाए चेव।

द्वौ कायौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—त्रसकायश्चैव, स्थावरकायश्चैव।

१६४ काय दो प्रकार के हैं—
त्रसकाय और स्थावरकाय।

१६५ तसकाए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
भवसिद्धिए चेव,
अभवसिद्धिए चेव ।

त्रसकाय द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
भवसिद्धिकश्चैव,
अभवसिद्धिकश्चैव ।

१६५ त्रसकाय दो प्रकार के हैं—
भवसिद्धिक—मुक्ति के लिए योग्य ।
अभवसिद्धिक—मुक्ति के लिए अयोग्य ।

१६६ •थावरकाए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—भवसिद्धिए चेव,
अभवसिद्धिए चेव ।°

स्थावरकाय द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
भवसिद्धिकश्चैव,
अभवसिद्धिकश्चैव ।

१६६ स्थावरकाय दो प्रकार के हैं—
भवसिद्धिक और
अभवसिद्धिक ।

दिसादुगे करणिज्ज-पद

दिशाद्विके करणीय-पदम्

दिशाद्विक मे करणीय-पद

१६७ दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा पव्वावित्तए—
पाईण चेव, उदीण चेव ।

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा प्रव्राजयितुम्—
प्राचीनाञ्चैव,
उदीचीनाञ्चैव ।

१६७ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ की ओर मुह कर प्रव्रजित करें ।

१६८ •दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा°—
मुडावित्तए सिक्खावित्तए
उवट्ठावित्तए सभुजित्तए
सवासित्तए सज्झायमुद्दिसित्तए
सज्झाय समुद्दिसित्तए
सज्झायमणुजाणित्तए आलोइत्तए
पडिक्कमित्तए णिंदित्तए गरहित्तए
विउट्टित्तए विसोहित्तए
अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए
अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म
पडिवज्जित्तए—
•पाईण चेव, उदीणं चेव ।°

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा—
मुण्डयितु शिक्षयितु उपस्थापयितु सभोजयितु सवासयितु स्वाध्यायमुद्देष्टु स्वाध्याय समुद्देष्टु स्वाध्याय अनुज्ञातु आलोचयितु प्रतिक्रमितु निन्दितु गर्हितु व्यतिवर्तयितु विशोधयितु अकरणतया अभ्युत्थातु यथार्हं प्रायश्चित्त तप कर्म्म प्रतिपत्तुम्—
प्राचीनाञ्चैव, उदीचीनाञ्चैव ।

१६८ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ की ओर मुह कर—
मुडित करें, शिक्षा दें, महाव्रतो मे आरोपित करें, भोजन-मडली में सम्मिलित करें, सस्तारक-मडली में सम्मिलित करें, स्वाध्याय का उद्देश दें, स्वाध्याय का समुद्देश दें, स्वाध्याय की अनुज्ञा दें, आलोचना करें, प्रतिक्रमण करें, निंदा करें, गर्हा करें, व्यतिवर्तन करें, विशोधि करें, सावद्य-प्रवृत्ति न करने के लिए उठें, यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करें ।[५]

१६९ दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अपच्छिम-मारणतियसलेहणा-जूसणा-जूसियाण भत्तपाणपडिया-इक्खिताण पाओवगताण काल अणवकखमाणाण विहरित्तए, त जहा—पाईण चेव, उदीण चेव ।

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अपश्चिम-मारणान्तिकसलेखना-जोषणा-जूषिताना भक्तपानप्रत्याख्याताना प्रायोपगताना काल अनवकाङ्क्षता विहर्त्तु, तद्यथा—
प्राचीनाञ्चैव उदीचीनाञ्चैव ।

१६९ जो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया अपश्चिम मारणान्तिक-सलेखना की आराधना से युक्त हैं, जो भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर चुके हैं, जो प्रायोपगत अनशन[६] से युक्त हैं, जो मरणकाल की आकाक्षा नही करते हुए विहर रहे हैं, वे पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ की ओर मूह कर रहें ।

बीओ उद्देसो

वेदणा-पदं

१७० जे देवा उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितिया गतिरतिया गतिसमावण्णगा, तेसि ण देवाण सता समित जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदण वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेअण वेदेंति ।

१७१ णेरइयाण सता समिय जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेयण वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयणं वेदेंति जाव पचेंदियतिरिक्खजोणियाण ।

१७२ मणुस्साण सता समितं जे पावे कम्मे कज्जति, इहगतावि एगतिया वेयणं वेयति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयणं वेयति । मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा ।

वेदना-पदम्

ये देवा ऊद्ध्र्वोपपन्नका कल्पोपपन्नका विमानोपपन्नका चारोपपन्नका चारस्थितिका गतिरतिका गतिसमापन्नका, तेपा देवाना सदा समित यत् पाप कर्म क्रियते, तत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति ।

नैरयिकाणा सदा समित यत् पाप कर्म क्रियते, तत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति ।
यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम् ।

मनुष्याणा सदा समित यत् पाप कर्म क्रियते, इहगताअपि एके वेदना वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति । मनुष्यवर्जा शेपा एकगमा ।

वेदना-पद

१७० ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न देव, जो कल्प[17] मे उपपन्न हैं, जो विमान[18] मे उपपन्न हैं, जो चार[19] मे उपपन्न हैं, जो चार मे स्थित[20] हैं, जो गतिशील[21] और सतत गति वाले हैं, उन देवो के सदा, समित (परिमित) जो पाप कर्म का वन्ध होता है, कई देव उसका उसी भव में वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते हैं ।

१७१ नैरयिक तथा द्वीन्द्रिय से तिर्यंचपञ्चेन्द्रिय तक के दण्डको के सदा, समित (परिमित) जो पाप-कर्म का वध होता है, कई उसका उसी भव में वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते हैं ।

१७२ मनुष्यों[22] के सदा समित (परिमित) जो पाप-कर्म का वध होता है, कई मनुष्य उसका इसी भव मे वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते हैं ।

गति-आगति-पदं

१७३ णेरइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, त जहा—णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंतो वा पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वा उववज्जेज्जा ।
से चेव ण से णेरइए णेरइयत्त विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा पचेंदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा ।

१७४ एव—असुरकुमारावि ।
णवर—से चेव ण से असुरकुमारे

गति-आगति-पदम्

नैरयिका द्विगतिका द्व्यागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिक नैरयिकेपु उपपद्यमान मनुष्येभ्यो वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेभ्यो वा उपपद्येत ।
स चैव असौ नैरयिक नैरयिकत्व विप्रजहत् मनुष्यतया वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकतया वा गच्छेत् ।

एवम्—असुरकुमारा अपि ।
नवर—स चैव असौ असुरकुमार

गति-आगति-पद

१७३ नैरयिक जीवो की दो गति और दो आगति होती हैं। नरक में उत्पन्न होने वाले जीव—
मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि से आकर उत्पन्न होते हैं।
नैरयिक नारक अवस्था को छोडकर—मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनि मे जाते हैं।

१७४ असुरकुमार आदि देवों की दो गति और दो आगति होती हैं—देव गति मे उत्पन्न

असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्ख-जोणियत्ताए वा गच्छेज्जा। एवं—सव्वदेवा।

असुरकुमारत्वं विप्रजहत् मनुष्यतया वा तिर्यग्योनिकतया वा गच्छेत्। एवम्—सर्वदेवाः।

होने वाले जीव मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्च योनि से आकर उत्पन्न होते हैं। वे देव अवस्था को छोड़कर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च[1] योनि में जाते हैं।

१७५ पुढविकाइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णो पुढविकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णो पुढविकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथिवीकायिकाः द्विगतिकाः द्व्यागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यमानः पृथिवीकायिकेभ्यो वा नो पृथिवीकायिकेभ्यो वा उपपद्येत। स चैव असौ पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा नो पृथिवीकायिकतया वा गच्छेत्।

१७५ पृथ्वीकायिक जीवों की दो गति और दो आगति होती हैं—
पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाले जीव पृथ्वीकाय अथवा अन्य योनियों से आकर उत्पन्न होते हैं।
वे पृथ्वी की अवस्था को छोड़कर पृथ्वीकाय अथवा अन्य योनियों में जाते हैं।

१७६ एवं—जाव मणुस्सा।

एवम्—यावत् मनुष्याः।

१७६ अप्काय से मनुष्य तक के सभी दण्डकों की दो गति और दो आगति होती हैं—
वे अपने-अपने काय से अथवा अन्य योनियों से आकर उत्पन्न होते हैं।
वे अपनी-अपनी अवस्था को छोड़कर, अपने-अपने काय में अथवा अन्य योनियों में जाते हैं।

दंडग-मग्गणा-पदं

दण्डक-मार्गणा-पदम्

दण्डक-मार्गणा-पद

१७७ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भवसिद्धिया चेव, अभवसिद्धिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवसिद्धिकाश्चैव, अभवसिद्धिकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७७ नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार हैं—
भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक।

१७८. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोववण्णगा चेव, परंपरोववण्णगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरोपपन्नकाश्चैव, परम्परोपपन्नकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७८ नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार हैं—
अनन्तरोपपन्नक।
परम्परोपपन्नक।

१७९. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७९ नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार हैं—गतिसमापन्नक[2]—अपने-अपने उत्पत्ति स्थान की ओर जाते हुए। अगतिसमापन्नक[3]—अपने-अपने भव में स्थित।

१८० दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमओववण्णगा चेव, अपढमसमओववण्णगा चेव जाव वेमाणिया।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—प्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, अप्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव यावत् वैमानिका।	१८० नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—प्रथमसमयोपपन्नक। अप्रथमसमयोपपन्नक।
१८१ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—आहारगा चेव, अणाहारगा चेव। एवं—जाव वेमाणिया।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव। एवम्—यावत् वैमानिका।	१८१ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—आहारक। अनाहारक।[५१]
१८२. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—उस्सासगा चेव, णोउस्सासगा चेव जाव वेमाणिया।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उच्छ्वासकाश्चैव, नोउच्छ्वासकाश्चैव यावत् वैमानिका।	१८२ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—उच्छ्वासक—उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त। नोउच्छ्वासक—जिनके उच्छ्वास-पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो।
१८३. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सइंदिया चेव, अणिंदिया चेव जाव वेमाणिया।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सेन्द्रियाश्चैव, अनिन्द्रियाश्चैव यावत् वैमानिका।	१८३ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—सइन्द्रिय। अनिन्द्रिय।
१८४ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव जाव वेमाणिया।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव यावत् वैमानिका।	१८४ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—पर्याप्तक। अपर्याप्तक।
१८५. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सण्णी चेव, असण्णी चेव। एवं—पचेंदिया सव्वे विगलिंदिय-वज्जा जाव वाणमंतरा।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सञ्ज्ञिनश्चैव, असञ्ज्ञिनश्चैव। एवम्—पञ्चेन्द्रिया सर्वे विकलेन्द्रिय-वर्जा यावत् वानमन्तरा।	१८५ विकलेन्द्रियो को छोडकर नैरयिक से वानमन्तर तक के सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—सञ्ज्ञी, असञ्ज्ञी।[७७]
१८६ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भासगा चेव, अभासगा चेव। एवमेगिंदियवज्जासव्वे।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भाषकाश्चैव, अभाषकाश्चैव। एवं एकेन्द्रियवर्जा सर्वे।	१८६ एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—भाषक—भाषापर्याप्ति-युक्त। अभाषक—भाषापर्याप्ति-रहित।
१८७ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठिया चेव, मिच्छद्दिट्ठिया चेव। एगिंदियवज्जासव्वे।	द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सम्यग्दृष्टिकाश्चैव, मिथ्यादृष्टिकाश्चैव। एकेन्द्रियवर्जा सर्वे।	१८७ एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—सम्यग्दृष्टि। मिथ्यादृष्टि।

१८८. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—परित्तससारिता चेव, अणतससारिता चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—परीतससारिकाश्चैव, अनन्तससारिकाश्चैव यावत् वैमानिका ।

१८८ नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—परीतससारी—वे जीव जिनके भव सीमित हो गए हो। अनन्तससारी—वे जीव जिनके भव सीमित न हो।

१८९ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव, असखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव। एव—पचेंदिया एगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वाणमतरा।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सख्येयकालस्थितिकाश्चैव, असख्येयकालस्थितिकाश्चैव। एवम्—पञ्चेन्द्रिया एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जा यावत् वानमन्तरा ।

१८९ नैरयिक दो प्रकार के हैं—सख्येयकालसमय की स्थिति वाले। असख्येयकालसमय की स्थिति वाले। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोडकर वानमन्तर पर्यन्त[३८] सभी पञ्चेन्द्रिय जीव दो-दो प्रकार के हैं।

१९० दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सुलभबोधिया चेव, दुलभबोधिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सुलभबोधिकाश्चैव, दुर्लभबोधिकाश्चैव यावत् वैमानिका ।

१९० नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—सुलभबोधिक, दुर्लभबोधिक।

१९१. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—कण्हपक्खिया चेव, सुक्कपक्खिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णपाक्षिकाश्चैव, शुक्लपाक्षिकाश्चैव यावत् वैमानिका ।

१९१ नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—कृष्णपाक्षिक शुक्लपाक्षिक।

१९२ दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव यावत् वैमानिका ।

१९२ नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—चरम, अचरम।

आहोहि-णाण-दंसण-पदं

अधोऽवधि-ज्ञान-दर्शन-पदम्

अधोऽवधि-ज्ञान-दर्शन-पद

१९३. दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१ समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ,
२ असमोहतेणं चेव, अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ।
१,२ आहोहि समोहतासमोहतेणं

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—
१ समवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति,
२ असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति।
१,२ अधोवधि समवहताऽसम-

१९३ दो स्थानो से आत्मा अधोलोक को जानता-देखता है—
वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।
वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।
अधोवधि[३९] (नियत क्षेत्र को जानने वाला

चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ। | वहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोक जानाति पश्यति। | अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।

१९४ •दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोग जाणइ पासइ, त जहा— | द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति, तद्यथा— | १९४ दो स्थानो से आत्मा तिर्यग्लोक को जानता-देखता है—

१ समोहतेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोग जाणइ पासइ, | १ समवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति, | वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

२. असमोहतेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोगं जाणइ पासइ। | २. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति। | वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

१,२ आहोहि समोहतासमोहतेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोग जाणइ पासइ। | १,२. अधोऽवधि समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति। | अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए विना भी अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

१९५ दोहिं ठाणेहिं आया उड्ढलोग जाणइ पासइ, त जहा— | द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति, तद्यथा— | १९५ दो स्थानो से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

१. समोहतेण चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ पासइ, | १. समवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति, | वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

२. असमोहतेण चेव अप्पाणेण आया उड्ढलोग जाणइ पासइ। | २. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति। | वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

१,२. आहोहि समोहतासमोहतेण चेव अप्पाणेण आया उड्ढलोग जाणइ पासइ। | १,२. अधोऽवधि समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति। | अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

१९६. दोहिं ठाणेहिं आया केवलकप्पं लोग जाणइ पासइ, त जहा— | द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति, तद्यथा— | १९६ दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है—

१ समोहतेण चेव अप्पाणेण आया केवलकप्प लोगं जाणइ पासइ, | १ समवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति, | वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है—

२. असमोहतेण चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्प लोग जाणइ | २. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति | वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को

पासइ।

१,२ आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेण आया केवलकप्प लोग जाणइ पासइ।°

पश्यति।

१,२. अधोऽवधि समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति।

जानता-देखता है।

अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।

१९७ दोहिं ठाणेहिं आता अहेलोग जाणइ पासइ, त जहा—

१ विउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता अहेलोग जाणइ पासइ,

२ अविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता अहेलोग जाणइ पासइ।

१,२ आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता अहेलोग जाणइ पासइ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा अधोलोक जानाति पश्यति, तद्यथा—

१ विकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोक जानाति पश्यति,

२ अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोक जानाति पश्यति।

१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोक जानाति पश्यति।

१९७ दो स्थानो से आत्मा अधोलोक को जानता-देखता है—

वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।

वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।

अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।

१९८. •दोहिं ठाणेहिं आता तिरियलोग जाणइ पासइ, त जहा—

१ विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता तिरियलोग जाणइ पासइ,

२ अविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता तिरियलोग जाणइ पासइ।

१,२. आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता तिरियलोग जाणइ पासइ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति, तद्यथा—

१. विकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति,

२. अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति।

१,२. अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोक जानाति पश्यति।

१९८ दो स्थानो से आत्मा तिर्यग्लोक को जानता-देखता है—

वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

१९९. दोहिं ठाणेहिं आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—

१ विउव्विण चेव अप्पाणेण आता उड्ढलोग जाणइ पासइ,

२. अविउव्वितेण चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोग जाणइ पासइ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति, तद्यथा—

१ विकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति,

२ अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति।

१९९ दो स्थानो से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है—वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

१,२ आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ।

१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोक जानाति पश्यति।

अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

२००. दोहिं ठाणेहिं आता केवलकप्पं लोग जाणइ पासइ, तं जहा—
१. विउव्वितेण चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ,
२. अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेण आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ।
१,२ आहोहि विउव्वियाविअव्वितेण चेव अप्पाणेण आता केवलकप्पं लोग जाणइ पासइ।[10]

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति, तद्यथा—
१ विकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति,
२ अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति।
१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति।

२०० दो स्थानो से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है—
वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।
वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।
अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।

देसेण सव्वेण पदं

देशेन सर्वेण पदम्

देशेन सर्वेण पद

२०१ दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेति, त जहा—
देसेणवि आया सद्दाइ सुणेति,
सव्वेणवि आया सद्दाइं सुणेति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्या आत्मा शब्दान् शृणोति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शब्दान् शृणोति,
सर्वेणापि आत्मा शब्दान् शृणोति।

२०१ दो प्रकार से आत्मा शब्दो को सुनता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा शब्दो को सुनता है।
समूचे शरीर से भी आत्मा शब्दो को सुनता है।[11]

२०२. दोहिं ठाणेहिं आया रुवाइ पासइ, त जहा—
देसेणवि आया रूवाइं पासइ,
सव्वेणवि आया रूवाइं पसाइ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा रूपाणि पश्यति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा रुपाणि पश्यति,
सर्वेणापि आत्मा रूपाणि पश्यति।

२०२ दो प्रकार से आत्मा रूपो को देखता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा रुपो को देखता है।
समूचे शरीर से भी आत्मा रूपो को देखता है।[12]

२०३ दोहिं ठाणेहिं आया गधाइं अग्घाति, त जहा—
देसेणवि आया गधाइं अग्घाति,
सव्वेणवि आया गंधाइ अग्घाति।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा गन्धान् आजिघ्रति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा गन्धान् आजिघ्रति,
सर्वेणापि आत्मा गन्धान् आजिघ्रति।

२०३ दो प्रकार से आत्मा गधों को सूघता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा गधो को सूघता है।
समूचे शरीर से भी आत्मा गधों को सूघता है।[13]

२०४ दोहिं ठाणेहिं आया रसाइ आसादेति, त जहा—
देसेणवि आया रसाइ आसादेति,
सव्वेणवि आया रसाइ आसादेति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा रसान् आस्वादयति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा रसान् आस्वादयति,
सर्वेणापि आत्मा रसान् आस्वादयति ।

२०४ दो प्रकार से आत्मा रसो का आस्वाद लेता है—शरीर के एक भाग से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है ।
समूचे शरीर से भी आत्मा रसो का आस्वाद लेता है ।[८]

२०५ दोहिं ठाणेहिं आया फासाइ पडिसवेदेति, त जहा—
देसेणवि आया फासाइ पडिसवेदेति,
सव्वेणवि आया फासाइ पडिसवेदेति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति,
सर्वेणापि आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति ।

२०५ दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है ।[८]
समूचे शरीर से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है ।

२०६ दोहिं ठाणेहिं आया ओभासति, त जहा—
देसेणवि आया ओभासति,
सव्वेणवि आया ओभासति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा अवभासते, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा अवभासते,
सर्वेणापि आत्मा अवभासते ।

२०६ दो प्रकारो से आत्मा अवभास करता है—शरीर के एक भाग से भी आत्मा अवभास करता है ।
समूचे शरीर से भी आत्मा अवभास करता है ।[८]

२०७ एव पभासति, विकुव्वति, परियारेति, 'भास भासति', आहारेति, परिणामेति, वेदेति, णिज्जरेति ।

एवम्—प्रभासते, विकुरुते, परिचारयति, भापा भापते, आहरति, परिणामयति, वेदयति, निर्ज्जरयति ।

२०७ इसी तरह दो प्रकारो से शरीर के एक भाग से भी और समूचे शरीर से भी आत्मा—प्रभास करता है, वैक्रिय करता है, मैथुन सेवन करता है, भापा वोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है, उसका उत्सर्ग करता है ।

२०८ दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइ सुणेति, तं जहा—
देसेणवि देवे सद्दाइ सुणेति,
सव्वेणवि देवे सद्दाइ सुणेति जाव णिज्जरेति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या देव शव्दान् शृणोति, तद्यथा—
देशेनापि देव शव्दान् शृणोति,
सर्वेणापि देव शव्दान् शृणोति यावत् निर्ज्जरयति ।

२०८ दो स्थानो से देव शव्द सुनता है—
शरीर के एक भाग से भी देव शव्द सुनता है ।
समूचे शरीर से भी देव शव्द सुनता है ।
इसी प्रकार दो स्थानो से—शरीर के एक भाग से भी और समूचे शरीर से भी देव—प्रभास करता है, वैक्रिय करता है, मैथुन सेवन करता है, भापा वोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है, उसका उत्सर्ग करता है ।

सरीर-पदं

२०९. मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—एगसरीरी चेव, दुसरीरी चेव।
२१० एव—किण्णरा किंपुरिसा गधव्वा णागकुमारा सुवण्णकुमारा अग्गि-कुमारा वायुकुमारा।
२११. देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा एगसरीरी चेव, दुसरीरी चेव।

शरीर-पदम्

मरुतो देवा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एकशरीरिणश्चैव, द्विशरीरिणश्चैव ।
एवम्—किन्नरा, किंपुरुपा, गन्धर्वा, नागकुमारा, सुपर्णकुमारा, अग्नि-कुमारा, वायुकुमारा ।
देवा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एकशरीरिणश्चैव, द्विशरीरिणश्चैव ।

शरीर-पद

२०९ मरुत्‌देव[९] दो प्रकार के हैं—
एक शरीर वाले ।
दो शरीर वाले ।
२१० इसी प्रकार—किन्नर, किंपुरुप, गन्धर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार ये देव दो-दो प्रकार के हैं—
एक शरीर वाले, दो शरीर वाले ।
२११ देव दो प्रकार के हैं—
एक शरीर वाले, दो शरीर वाले ।

तइओ उद्देसो

सद्द-पदं

२१२. दुविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा—भासासद्दे चेव, णोभासासद्दे चेव ।
२१३ भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, त जहा अक्खरसवद्धे चेव, णोअक्खरसवद्धे चेव।
२१४. णोभासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आउज्जसद्दे चेव, णोआउज्जसद्दे चेव।
२१५. आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—तते चेव, वितते चेव।
२१६ तते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव।
२१७ •वितते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव।°

शब्द-पदम्

द्विविध शब्द प्रज्ञप्त, तद्यथा—भापाशब्दश्चैव, नोभापाशब्दश्चैव।
भापाशब्द द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—अक्षरसवद्धश्चैव, नोअक्षरसवद्धश्चैव ।
नोभापाशब्द द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—आतोद्यशब्दश्चैव, नोआतोद्यशब्दश्चैव ।
आतोद्यशब्द द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—ततश्चैव, विततश्चैव।
तत द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—घनश्चैव, शुपिरश्चैव ।
वितत द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—घनश्चैव, शुपिरश्चैव ।

शब्द-पद

२१२ शब्द[९] दो प्रकार का है—
भापा-शब्द, नोभापा-शब्द ।
२१३ भापा-शब्द दो प्रकार का है—
अक्षर सवद्ध—वर्णात्मक ।
नोअक्षर सवद्ध ।
२१४ नोभापा-शब्द दो प्रकार का है—
आतोद्यशब्द,
नोआतोद्यशब्द ।
२१५ आतोद्य शब्द दो प्रकार का है—
तत, वितत ।
२१६ तत शब्द दो प्रकार का है—
घन, शुपिर ।
२१७ वितत शब्द दो प्रकार का है—
घन, शुपिर ।

२१८ णोआउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
भूसणसद्दे चेव, णोभूसणसद्दे चेव।

२१९ णोभूसणसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
तालसद्दे चेव, लत्तिआसद्दे चेव।

२२०. दोहिं ठाणेहिं सद्दुप्पाते सिया, तं जहा—
साहण्णताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया,
भिज्जताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया।

२१८ नोआतोद्यशब्दः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
भूषणशब्दश्चैव, नोभूषणशब्दश्चैव।

२१९ नोभूषणशब्दः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
तालशब्दश्चैव, लतिकाशब्दश्चैव।

२२०. द्वाभ्यां स्थानाभ्यां शब्दोत्पातः स्यात्, तद्यथा—
संहन्यमानानां चैव पुद्गलानां शब्दोत्पातः स्यात्,
भिद्यमानानां चैव पुद्गलानां शब्दोत्पातः स्यात्।

२१८ नोआतोद्य शब्द दो प्रकार का है—
भूषणशब्द नोभूषणशब्द।

२१९ नोभूषणशब्द दो प्रकार का है—
तालशब्द लतिकाशब्द।

२२०. दो कारणों से शब्द की उत्पत्ति होती है—
जब पुद्गल संहति को प्राप्त होते हैं तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—घंटी का शब्द। जब पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—बांस के फटने का शब्द।

पोग्गल-पदं

२२१ दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तं जहा—
सइं वा पोग्गला साहण्णंति,
परेण वा पोग्गला साहण्णंति।

२२२. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति, तं जहा—
सइं वा पोग्गला भिज्जंति,
परेण वा पोग्गला भिज्जंति।

२२३. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिपडंति, तं जहा—
सइं वा पोग्गला परिपडंति,
परेण वा पोग्गला परिपडंति।

२२४. •दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिसडंति, तं जहा—
सइं वा पोग्गला परिसडंति,
परेण वा पोग्गला परिसडंति।

पुद्गल-पदम्

२२१ द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते, तद्यथा—
स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते,
परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते।

२२२ द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः भिद्यन्ते, तद्यथा—
स्वयं वा पुद्गलाः भिद्यन्ते,
परेण वा पुद्गलाः भिद्यन्ते।

२२३ द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः परिपतन्ति, तद्यथा—
स्वयं वा पुद्गलाः परिपतन्ति,
परेण वा पुद्गलाः परिपतन्ति।

२२४ द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः परिशटन्ति, तद्यथा—
स्वयं वा पुद्गलाः परिशटन्ति,
परेण वा पुद्गलाः परिशटन्ति।

पुद्गल-पद

२२१ दो स्थानों से पुद्गल संहत होते हैं—
स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल संहत होते हैं।
दूसरे निमित्तों से पुद्गल संहत होते हैं।

२२२ दो स्थानों से पुद्गलों का भेद होता है—
स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गलों का भेद होता है। दूसरे निमित्तों से पुद्गलों का भेद होता है।

२२३ दो स्थानों से पुद्गल नीचे गिरते हैं—
स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल नीचे गिरते हैं।
दूसरे निमित्तों से पुद्गल नीचे गिरते हैं।

२२४ दो स्थानों से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं—
स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं। दूसरे निमित्तों से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं।

२२५. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला विद्धंसति,
तं जहा—
सइं वा पोग्गला विद्धंसति,
परेण वा पोग्गला विद्धंसति ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः विध्वसते,
तद्यथा—
स्वयं वा पुद्गलाः विध्वसते,
परेण वा पुद्गलाः विध्वसते ।

२२५ दो स्थानों से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं—
स्वयं अपने स्वभाव से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं। दूसरे निमित्तों से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं।

२२६. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा
भिण्णा चेव, अभिण्णा चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भिन्नाश्चैव, अभिन्नाश्चैव ।

२२६ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
भिन्न, अभिन्न ।

२२७ दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
भेउरधम्मा चेव,
णोभेउरधम्मा चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भिदुरधर्माणश्चैव,
नोभिदुरधर्माणश्चैव ।

२२७ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
भिदुर धर्मवाले,
नोभिदुर धर्मवाले ।

२२८ दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
परमाणुपोग्गला चेव,
णोपरमाणुपोग्गला चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
परमाणुपुद्गलाश्चैव,
नोपरमाणुपुद्गलाश्चैव ।

२२८ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
परमाणु पुद्गल,
नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध) ।

२२९. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
सुहुमा चेव, बायरा चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव ।

२२९ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
सूक्ष्म- बादर ।

२३०. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
बद्धपासपुट्ठा चेव,
णोबद्धपासपुट्ठा चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
बद्धपार्श्वस्पृष्टाश्चैव,
नोबद्धपार्श्वस्पृष्टाश्चैव ।

२३० पुद्गल दो प्रकार के हैं—
बद्धपार्श्वस्पृष्ट,
नोबद्धपार्श्वस्पृष्ट ।[१०]

२३१. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
परियादितच्चेव,
अपरियादितच्चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पर्यादत्ताश्चैव,
अपर्यादत्ताश्चैव ।

२३१ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
पर्यादत,
अपर्यादत ।[११]

२३२. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
अत्ता चेव,
अणत्ता चेव ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आत्ताश्चैव,
अनात्ताश्चैव ।

२३२ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
आत्त—जीव के द्वारा गृहीत,
अनात्त—जीव के द्वारा अगृहीत ।

२३३. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव ।
•कंता चेव, अकंता चेव ।
पिया चेव, अपिया चेव ।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव ।
मणामा चेव, अमणामा चेव° ।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव ।
कान्ताश्चैव, अकान्ताश्चैव ।
प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव ।
मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव ।
मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव ।

२३३ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
इष्ट, अनिष्ट ।
कान्त, अकान्त ।
प्रिय, अप्रिय ।
मनोज्ञ, अमनोज्ञ ।
मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय ।

इंदिय-विसय-पदं	इन्द्रिय-विषय-पदम्	इन्द्रिय-विषय-पद
२३४ दुविहा सद्दा पण्णत्ता, त जहा—	द्विविधा शब्दा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२३४ शब्द दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
•इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कता चेव, अकता चेव।	कान्ताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव°।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३५ दुविहा रूवा पण्णत्ता, त जहा—	द्विविधानि रूपाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	२३५ रूप दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्तानि चैव, अनात्तानि चैव।	आत्त, अनात्त।
•इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टानि चैव, अनिष्टानि चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कता चेव, अकता चेव।	कातानि चैव, अकातानि चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियानि चैव, अप्रियानि चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञानि चैव, अमनोज्ञानि चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव°।	मन 'आमानि' चैव, अमन 'आमानि' चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३६ •दुविहा गधा पण्णत्ता, त जहा—	द्विविधा गधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२३६ गन्ध दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कता चेव, अकता चेव।	काताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३७ दुविहा रसा पण्णत्ता, त जहा—	द्विविधा रसा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२३७ रस दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कता चेव, अकता चेव।	काताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिवा चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३८ दुविहा फासा पण्णत्ता, त जहा—	द्विविधा स्पर्शा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२३८ स्पर्श दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कता चेव, अकता चेव।	काताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।

पिया चेव, अपिया चेव ।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव ।	प्रिय, अप्रिय
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव ।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव ।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ
मणामा चेव, अमणामा चेव° ।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव ।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय ।

आयार-पदं	आचार-पदम्	आचार-पद
२३९. दुविहे आयारे पण्णत्ते, त जहा— णाणायारे चेव, णोणाणायारे चेव।	द्विविध आचार प्रज्ञप्त, तद्यथा— ज्ञानाचारश्चैव, नोज्ञानाचारश्चैव ।	२३९ आचार दो प्रकार का है— ज्ञानाचार, नोज्ञानाचार[९२] ।
२४०. णोणाणायारे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—दसणायारे चेव, णोदंसणायारे चेव ।	नोज्ञानाचार द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—दर्शनाचारश्चैव, नोदर्शनाचारश्चैव ।	२४० नोज्ञानाचार दो प्रकार का है— दर्शनाचार नोदर्शनाचार[९३] ।
२४१ णोदसणायारे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—चरित्तायारे चेव, णोचरित्तायारे चेव ।	नोदर्शनाचार द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—चरित्राचारश्चैव, नोचरित्राचारश्चैव ।	२४१ नोदर्शनाचार दो प्रकार का है— चरित्राचार नोचरित्राचार[९४] ।
२४२. णोचरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—तवायारे चेव, वीरियायारे चेव ।	नोचरित्राचार द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—तपआचारश्चैव, वीर्याचारश्चैव।	२४२ नोचरित्राचार दो प्रकार का है— तप आचार वीर्याचार ।[९५]

पडिमा-पदं	प्रतिमा-पदम्	प्रतिमा-पद
२४३ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समाहिपडिमा चेव, उवहाणपडिमा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा— समाधिप्रतिमा चैव, उपधानप्रतिमा चैव ।	२४३ प्रतिमा[९६] दो प्रकार की है— समाधिप्रतिमा[९७] उपधानप्रतिमा ।[९८]
२४४ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—विवेगपडिमा चेव, विउसग्गपडिमा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा— विवेकप्रतिमा चैव, व्युत्सर्गप्रतिमा चैव ।	२४४ प्रतिमा दो प्रकार की है— विवेकप्रतिमा[९९] व्युत्सर्गप्रतिमा ।[१००]
२४५ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—भद्दा चेव, सुभद्दा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा— भद्रा चैव, सुभद्रा चैव ।	२४५ प्रतिमा दो प्रकार की है— भद्रा[१०१], सुभद्रा ।[१०२]
२४६ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—महाभद्दा चेव, सव्वतोभद्दा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा— महाभद्रा चैव, सर्वतोभद्रा चैव ।	२४६ प्रतिमा दो प्रकार की है— महाभद्रा[१०३] सर्वतोभद्रा ।[१०४]
२४७ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—खुड्डिया चेव मोयपडिमा, महल्लिया चेव मोयपडिमा ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा— क्षुद्रिका चैव 'मोय' प्रतिमा, महती चैव 'मोय' प्रतिमा ।	२४७ प्रतिमा दो प्रकार की है— क्षुद्रकप्रस्रवणप्रतिमा[१०५] महत्प्रस्रवणप्रतिमा ।[१०६]

२४८ दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जवमज्झा चेव चदपडिमा, वइरमज्झा चेव चदपडिमा ।

द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—यवमध्या चैव चद्रप्रतिमा, वज्रमध्या चैव चद्रप्रतिमा ।

२४८ प्रतिमा दो प्रकार की है—
यवमध्याचन्द्रप्रतिमा[107]
वज्रमध्याचन्द्रप्रतिमा ।[108]

सामाइय-पदं

सामायिक-पदम्

सामायिक-पद

२४९ दुविहे सामाइए पण्णत्ते, त जहा—अगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव ।

द्विविध सामायिक प्रज्ञप्त, तद्यथा—अगारसामायिकश्चैव, अनगारसामायिकश्चैव ।

२४९. सामायिक दो प्रकार का है—
अगारसामायिक
अनगारसामायिक ।

जन्म-मरण-पदं

जन्म-मरण-पदम्

जन्म-मरण-पद

२५०. दोण्ह उववाए पण्णत्ते, तं जहा—देवाण चेव, णेरइयाण चेव ।

द्वयोरुपपात प्रज्ञप्त, तद्यथा—देवानाञ्चैव, नारकाणाञ्चैव ।

२५० दो का उपपात[109] होता है—
देवताओ का, नैरयिको का ।

२५१ दोण्ह उव्वट्टणा पण्णत्ता, त जहा—णेरइयाण चेव, भवणवासीण चेव ।

द्वयोरुद्वर्तना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैरयिकाणाञ्चैव, भवनवासिनाञ्चैव ।

२५१ दो का उद्वर्तन[110] होता है—
नैरयिको का
भवनवासी देवताओं का ।

२५२. दोण्ह चयणे पण्णत्ते, तं जहा—जोइसियाण चेव, वेमाणियाण चेव ।

द्वयोश्च्यवन प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्योतिष्काणाञ्चैव, वैमानिकानाञ्चैव ।

२५२ दो का च्यवन[111] होता है—
ज्योतिष्कदेवो का
वैमानिकदेवो का ।

२५३ दोण्हं गब्भवक्कती पण्णत्ता, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव ।

द्वयोर्गर्भावक्रान्ति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव ।

२५३ दो की गर्भ-अवक्रान्ति[112] होती है—
मनुष्यो की
पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की ।

गब्भत्थ-पदं

गर्भस्थ-पदं

गर्भस्थ-पद

२५४. दोण्ह गब्भत्थाण आहारे पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव ।

द्वयोर्गर्भस्थयोराहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—मनुष्याणञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव ।

२५४ दो गर्भ मे रहते हुए आहार लेते हैं—
मनुष्य
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च ।

२५५ दोण्ह गब्भत्थाण वुड्ढी पण्णत्ता, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाण चेव ।

द्वयोर्गर्भस्थयोर्वृद्धि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव ।

२५५ दो की गर्भ मे रहते हुए वृद्धि होती है—
मनुष्यो की
पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की ।

२५६. •दोण्ह गब्भत्थाण°—णिवुड्ढी विगुव्वणा गतिपरियाए समुग्घाते कालसजोगे आयाती मरणे° पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाण चेव° ।

द्वयोर्गर्भस्थयो —निवृद्धि विकरणम् गतिपर्याय समुद्घात कालसयोग आयाति मरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव ।

२५६ दो की गर्भ मे रहते हुए हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसयोग, गर्भ से निर्गमन और मृत्यु होती है—
मनुष्यो की
पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की[113] ।

२५७. दोण्ह छविपव्वा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साण चेव, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

द्वयोश्छविपर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५७ दो के चर्मयुक्त पर्व (सन्धि-बन्धन) होते हैं—मनुष्यों के पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के।

२५८ दो सुक्कसोणितसंभवा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्सा चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया चेव।

द्वौ शुक्रशोणितसभवौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—मनुष्याश्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चैव।

२५८ दो शुक्र और रक्त से उत्पन्न होते हैं—मनुष्य पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च।

ठिति-पदं / स्थिति-पदम् / स्थिति-पद

२५९ दुविहा ठिती पण्णत्ता, त जहा—कायट्ठिती चेव, भवतिट्ठी चेव।

द्विविधा स्थिति. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कायस्थितिश्चैव, भवस्थितिश्चैव।

२५९ स्थिति दो प्रकार की है—कायस्थिति—एक ही काय (जाति) में निरन्तर जन्म लेना। भवस्थिति—एक ही जन्म की स्थिति।[११४]

२६० दोण्ह कायट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—मणुस्साण चेव, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

द्वयो कायस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६० दो के कायस्थिति होती है—मनुष्यों के पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो के।

२६१. दोण्ह भवट्ठिती पण्णता, तं जहा—देवाण चेव, णेरइयाण चेव।

द्वयोर्भवस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव।

२६१ दो के भवस्थिति होती है—देवताओ के, नैरयिकों के।

आउय-पदं / आयुः-पदम् / आयु-पद

२६२ दुविहे आउए पण्णत्ते, त जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव।

द्विविध आयु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अद्ध्वायुश्चैव, भवायुश्चैव।

२६२ आयुष्य दो प्रकार का है—अद्धवायुष्य, भवायुष्य।[११५]

२६३. दोण्हं अद्धाउए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साण चेव, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

द्वयोरद्ध्वायु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६३ दो के अद्धवायुष्य होता है—मनुष्यो के पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो के।

२६४. दोण्ह भवाउए पण्णत्ते, त जहा—देवाण चेव, णेरइयाणं चेव।

द्वयोर्भवायु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव।

२६४ दो के भवायुष्य होता है—देवताओं के, नैरयिको के।

कम्म-पदं / कर्म-पदम् / कर्म-पद

२६५. दुविहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—पदेसकम्मे चेव, अणुभावकम्मे चेव।

द्विविव कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रदेशकर्म चैव, अनुभावकर्म चैव।

२६५ कर्म दो प्रकार का है—प्रदेशकर्म, अनुभावकर्म।[११६]

२६६ दो अहाउय पालेंति, तं जहा—देवच्चेव, णेरइयच्चेव।

द्वौ यथायु पालयत, तद्यथा—देवश्चैव, नैरयिकश्चैव।

२६६ दो यथायु (पूर्णायु)[११७] का पालन करते हैं—देव, नैरयिक।

२६७ दोण्ह आउय-सवट्टए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

द्वयोरायु—सवर्त्तक प्रज्ञप्त, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६७ दो के आयुष्य का सवर्त्तन[११८] (अकाल मरण) होता है—मनुष्यो के पचेन्द्रियतिर्यंचो के।

खेत्त-पदं

क्षेत्र-पदम्

क्षेत्र-पद

२६८ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला अविसेस-मणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्टति आयाम-विक्खभ-संठाण-परिणाहेण, त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—वहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे-अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भ-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—भरत चैव, ऐरवत चैव।

२६८ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र हैं—
भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेष (भेद) नहीं है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्वाई, चौडाई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२६९ एवमेएणमभिलावेणं—
हेमवते चेव, हेरण्णवते चेव।
हरिवासे चेव, रम्मयवासे चेव।

एवमेतेनअभिलापेन—
हैमवत चैव, हैरण्यवत चैव।
हरिवर्ष चैव, रम्यकवर्ष चैव।

२६९ इसी प्रकार हैमवत, हैरण्यवत, हरि और रम्यकक्षेत्र की स्थिति भी भरत और ऐरवत के समान है—

हैमवत, हरि } दक्षिण में।
हैरण्यवत, रम्यक } उत्तर में।

२७०. जंवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण दो खेत्ता पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला अविसेस* मणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्टति आयाम-विक्खभ-सठाण-परिणाहेण, त जहा°—
पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्य-पाश्चात्ये द्वे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते—वहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भ-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—
पूर्वविदेहश्चैव, अपरविदेहश्चैव।

२७० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम में दो क्षेत्र हैं—
पूर्वविदेह—पूर्व में।
अपरविदेह—पश्चिम मे।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नहीं है। वे लम्वाई, चौडाई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२७१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो कुराओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव, देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्ण णाइवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—
कूडसामली चेव, जंबू चेव सुदंसणा।
तत्थ णं दो देवा महड्डिया •महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा पलिओवमट्ठितीया परिवसंति तं, जहा—गरुले चेव वेणुदेवे, अणाढिते चेव जंबुद्दीवाहिवती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ कुरू प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्,
देवकुरुश्चैव,
उत्तरकुरुश्चैव।
तत्र द्वौ महातिमहान्तौ महाद्रुमौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-संस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—
कूटशाल्मली चैव, जम्बू चैव सुदर्शना।
तत्र द्वौ देवौ महर्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासौख्यौ पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—
गरुडश्चैव वेणुदेवः,
अनादृतश्चैव, जम्बूद्वीपाधिपतिः।

२७१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो कुरु हैं—देवकुरु—दक्षिण मे। उत्तरकुरु—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेष (भेद) नहीं है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।
वहां (देवकुरु मे) कूटशाल्मली और सुदर्शना जम्बू नाम के दो अतिविशाल महाद्रुम हैं। वे दोनों प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नहीं है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नहीं है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते। उन पर महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले, महान् शक्ति वाले, महान् यश वाले, महान् बल वाले, महान् सुख को भोगने वाले और एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—कूट शाल्मली पर सुपर्णकुमार जाति का वेणुदेव और सुदर्शना पर जम्बूद्वीप का अधिकारी 'अनादृत देव'।

पव्वय-पदं

२७२ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासहर-पव्वया पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—
चुल्लहिमवंते चेव, सिहरिच्चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ वर्षधरपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-संस्थान-परिणाहेन तद्यथा—
क्षुल्लहिमवांश्चैव, शिखरी चैव,

२७२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो वर्षधर पर्वत हैं—क्षुल्लहिमवान्—दक्षिण मे। शिखरी—उत्तर में। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२७३. एवं—महाहिमवंते चेव, रुप्पिच्चेव।
एवं—णिसढे चेव, णीलवंते चेव।

एवम्—महाहिमवाश्चैव, रुक्मी चैव।
एवम्—निषधश्चैव, नीलवांश्चैव।

२७३. इसी प्रकार महाहिमवान्, रुक्मी, निषध और नीलवान् पर्वत की स्थिति क्षुल्लहिमवान् और शिखरी के समान है—
महाहिमवान्, निषध—दक्षिण मे।
रुक्मी, नीलवान्—उत्तर में।

२७४ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हेमवत-हेरण्णवतेसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढ-पव्वता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता •अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खं-भुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं तं जहा—
सद्दावाती चेव, वियडावाती चेव।
तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती चेव, पभासे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे हैमवत-हैरण्यवतयो वर्षयो द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-संस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—
शब्दापाती चैव, विकटापाती चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसत, तद्यथा—
स्वातिश्चैव, प्रभासश्चैव।

२७४ जम्बूद्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र मे शब्दापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है और उत्तर मे ऐरण्यवत क्षेत्र मे विकटापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।
उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—शब्दापाती पर स्वातीदेव और विकटापाती पर प्रभासदेव।

२७५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हरिवास-रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—गंधावाती चेव,
मालवंतपरियाए चेव।
तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—अरुणे चेव, पउमे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे हरिवर्ष-रम्यकयो वर्षयो द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—
गंधापाती, चैव, माल्यवत्पर्यायश्चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसत, तद्यथा—
अरुणश्चैव, पद्मश्चैव।

२७५ जम्बूद्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण में हरि क्षेत्र मे गन्धापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है और उत्तर मे रम्यक् क्षेत्र में माल्यवत्पर्याय नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।
उन पर महान् ऋद्धिवाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—गंधापाती पर अरुणदेव।
माल्यवत्पर्याय पर पद्मदेव।

२७६ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ ण आस-क्खंधगसरिसा अद्धचद-संठाण-संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—
सोमणसे चेव विज्जुप्पभे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे देवकुरौ कुरौ पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र अश्व-स्कन्धक-सदृशौ अर्धचन्द्र-सस्थान-सस्थितौ द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—
सौमनसश्चैव, विद्युत्प्रभश्चैव।

२७६ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे देवकुरु के पूर्व पार्श्व में सौमनस और पश्चिम पार्श्व मे विद्युत्प्रभ नाम के दो वक्षार पर्वत हैं। वे अश्वस्कध के सदृश (आदि मे निम्न तथा अन्त में उन्नत) और अर्द्धचन्द्र के आकार वाले हैं।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२७७ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आस-क्खधगसरिसा अद्धचंद-सठाण-सठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—
गंधमायणे चेव, मालवते चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे उत्तरकुरौ कुरौ पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र अश्व-स्कन्धक-सदृशौ अर्धचन्द्र-सस्थान-सस्थितौ द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ यावत्,
तद्यथा—
गन्धमादनश्चैव, माल्यवाश्चैव।

२७७ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे उत्तरकुरु के पूर्व पार्श्व मे गन्धमादन और पश्चिम पार्श्व मे माल्यवत् नाम के दो वक्षार पर्वत हैं। वे अश्वस्कध के सदृश (आदि मे निम्न तथा अन्त मे उन्नत) और अर्द्धचन्द्र के आकार वाले हैं।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२७८ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण दो दीहवेयड्ढ-पव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—
भारहे चेव दीहवेयड्ढे,
एरवते चेव दीहवेयड्ढे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ दीर्घवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत् तद्यथा—
भारतश्चैव दीर्घवैताढ्य,
ऐरवतश्चैव दीर्घवैताढ्य।

२७८ जम्बूद्वीप द्वीप मे दो दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं—
मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग—भरत मे।
मन्दर पर्वत के उत्तर भाग—ऐरवत् मे।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

गुहा-पदं

२७९. भारहए ण दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ—
बहुसमतुल्लाओ अविसेस-मणाणत्ताओ अण्णमण्ण णाति-

गुहा-पदम्

भारतके दीर्घवैताढ्ये द्वे गुहे प्रज्ञप्ते—
बहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योऽन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्व-सस्थान-परिणाहेन,

गुहा-पद

२७९ भरत के दीर्घ वैताढ्य पर्वत मे तमिस्रा और खण्ड प्रपात नाम की दो गुफाए हैं।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नही

वट्टति आयाम-विक्खभुच्चत्त-सठाण-परिणाहेण, त जहा—
तिमिसगुहा चेव,
खडगप्पवायगुहा चेव।
तत्थ ण दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—
कयमालए चेव, णट्टमालए चेव।

तद्यथा—तमिस्रगुहा चैव,
खण्डक-प्रपातगुहा चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसत., तद्यथा—
कृतमालकश्चैव, नृत्तमालकश्चैव।

है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करती।
वहा महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—तमिस्रा में—कृतमालक देव और खण्ड प्रपात में—नृत्तमालक देव।

२८० एरवए ण दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ—जाव, त जहा—
कयमालए चेव, णट्टमालए चेव।

ऐरवते दीर्घवैताढ्ये द्वे गुहे प्रज्ञप्ते—यावत्, तद्यथा—
कृतमालकश्चैव, नृत्तमालकश्चैव।

२८० ऐरवत के दीर्घ वैताढ्य पर्वत मे तमिस्रा और खण्ड प्रपात नाम की दो गुफाए हैं। वहा दो देव रहते हैं—
तमिस्रा मे—कृतमालक देव
खण्ड प्रपात मे—नृत्तमालक देव।

कूड-पद

कूट-पदम्

कूट-पद

२८१ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण चुल्लहिमवते वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला जाव विक्खभुच्चत्त-सठाण-परिणाहेणं, त जहा—
चुल्लहिमवतकूडे चेव,
वेसमणकूडे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—
बहुसमतुल्ये यावत् विषकम्भोच्चत्व-सस्थान- परिणाहेन, तद्यथा—
क्षुल्लहिमवत्कूटञ्चैव,
वैश्रमणकूटञ्चैव।

२८१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट [शिखर] हैं—क्षुल्लहिमवान् कूट और वैश्रमण कूट।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२८२ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण महाहिमवते वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसम-तुल्ला जाव, त जहा—
महाहिमवतकूडे चेव,
वेरुलियकूडे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्स पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
महाहिमवत्कूटञ्चैव, वैडूर्यकूटञ्चैव।

२८२ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—महाहिमवान् कूट, वैडूर्य कूट।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२८३ एव—णिसढे वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—णिसढकूडे चेव,
रुयगप्पभे चेव।

एवम्—निषधे वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
निषधकूटञ्चैव, रुचकप्रभकूटञ्चैव।

२८३ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध-वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—
निषध कूट, रुचकप्रभ कूट।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा

सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण णीलवते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—णीलवतकूडे चेव, उवदंसणकूडे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे नीलवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—नीलवत्कूटञ्चैव, उपदर्शनकूटञ्चैव।

२८४ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—नीलवान् कूट, उपदर्शन कूट।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८५ एव—रुप्पिमि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—रुप्पिकूडे चेव, मणिकचणकूडे चेव।

एवम्—रुक्मिणि वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—रुक्मिकूटञ्चैव, मणिकाञ्चनकूटञ्चैव।

२८५ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे रुक्मी वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—रुक्मी कूट, मणिकाञ्चन कूट।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२८६. एवं—सिहरिमि वासहरपव्वते दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—सिहरिकूडे चेव, तिगिंछिकूडे चेव।

एवम्—शिखरिणि वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—शिखरिकूटञ्चैव, तिगिञ्छिकूटञ्चैव।

२८६ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—शिखरी कूट, तिगिंछि कूट।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊचाई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

महादह-पदं

२८७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण चुल्लहिमवत-सिहरीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्टति आयाम विक्खभ-उव्वेह-सठाण-परिणाहेण, त जहा—पउमद्दहे चेव, पोंडरीयद्दहे चेव।

महाद्रह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे क्षुल्लहिमवच्छिखरिणो वर्षधर-पर्वतयो द्वौ महाद्रहौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोद्वेध-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—पद्मद्रहश्चैव, पुण्डरीकद्रहश्चैव।

महाद्रह-पद

२८७ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर पद्मद्रह और उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत पर पौंडरीक द्रह नाम के दो महान् द्रह हैं—वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई नानात्व नही है। वे लम्बाई,

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसति तं जहा—
सिरी चेव, लच्छी चेव।

तत्र द्वे देवते महर्द्धिके यावत् पल्योपमस्थितिके परिवसत तद्यथा—
श्रीश्चैव, लक्ष्मीश्चैव।

चौडाई, गहराई सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।
वहा महान् ऋद्धि वाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली दो देविया रहती हैं—
पद्मद्रह में श्री, पौंडरीकद्रह मे लक्ष्मी।

२८८ एव—महाहिमवत-रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—महापउमद्दहे चेव, महापोंडरीयद्दहे चेव।
तत्थ ण दो देवताओ हिरिच्चेव बुद्धिच्चेव।

एवम्—महाहिमवत् रुक्मिणो वर्षधरपर्वतयो द्वौ महाद्रहौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—
महापद्मद्रहश्चैव,
महापुण्डरीकद्रहश्चैव।
तत्र द्वे देवते ह्रीश्चैव, बुद्धिश्चैव।

२८८ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर महापद्मद्रह और उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत पर महापौंडरीकद्रह नाम के दो महान् द्रह हैं। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते। वहा दो देविया रहती हैं—महापद्मद्रह मे ह्री और महापौंडरीक द्रह मे बुद्धि।

२८९ एव—णिसढ-णीलवतेसु तिगिंछिद्दहे चेव, केसरिद्दहे चेव।
तत्थ ण दो देवताओ धिती चेव, कित्ती चेव।

एवम्—निषध-नीलवतो तिगिञ्छिद्रहश्चैव केसरीद्रहश्चैव।
तत्र द्वे देवते धृतिश्चैव, कीर्तिश्चैव।

२८९ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध वर्षधर पर्वत पर तिगिंछिद्रह और उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत पर केसरीद्रह नाम के दो महान् द्रह हैं यावत् वहां एक पल्योपम की स्थिति वाली दो देविया रहती हैं—
तिगिंछि द्रह मे धृति, केसरी द्रह मे कीर्ति।

महाणदी-पदं

२९० जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, तं जहा—
रोहियच्चेव, हरिकतच्चेव।

२९१ एव—णिसढाओ वासहरपव्वताओ तिगिंछिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, तं जहा—
हरिच्चेव, सीतोदच्चेव।

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवत वर्षधरपर्वतात् महापद्मद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहत, तद्यथा—
रोहिता चैव, हरिकान्ता चैव।

एवम्—निषधात् वर्षधरपर्वतात् तिगिञ्छिद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहत, तद्यथा—
हरिच्चैव, शीतोदा चैव।

महानदी-पद

२९० जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्मद्रह से रोहिता और हरिकान्ता नाम की दो महानदिया प्रवाहित होती हैं।

२९१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछि द्रह से हरित् और सीतोदा नाम की दो महानदिया प्रवाहित होती हैं।

२९२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णीलवंताओ वासहर-पव्वताओ केसरिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, त जहा— सीता चेव, णारिकंता चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे नीलवत वर्षधरपर्वतात् केशरीद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहत तद्यथा— शीता चैव, नारीकान्ता चैव।

२९२ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरीद्रह से सीता और नारीकान्ता नाम की दो महा-नदिया प्रवाहित होती हैं।

२९३. एव—रुप्पीओ वासहरपव्वताओ महापोंडरीयद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, त जहा— णरकंता चेव, रुप्पकूला चेव।

एवम्—रुक्मिण वर्षधरपर्वतात् महापुण्डरीकद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहत, तद्यथा— नरकान्ता चैव, रूप्यकूला चैव।

२९३ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत के महापौंडरीक द्रह से नरकान्ता और रूप्यकूला नाम की दो महानदिया प्रवाहित होती हैं।

पवाय-दह-पदं

प्रपात-द्रह-पदम्

प्रपात-द्रह-पद

२९४ जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला, त जहा— गगप्पवायद्दहे चेव, सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— वहुसमतुल्यौ, तद्यथा— गङ्गाप्रपातद्रहश्चैव, सिन्धुप्रपातद्रहश्चैव।

२९४ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो प्रपात द्रह हैं— गगाप्रपातद्रह, सिन्धुप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई,सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२९५ एव—हेमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला, त जहा—रोहियप्पवायद्दहे चेव, रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

एवम्—हैमवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—वहुसमतुल्यौ, तद्यथा— रोहितप्रपातद्रहश्चैव, रोहिताशप्रपातद्रहश्चैव।

२९५ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण में हैमवत क्षेत्र में दो प्रपात द्रह हैं— रोहितप्रपातद्रह, रोहिताशप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९६ जंवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण हरिवासे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला, त जहा—हरिपवायद्दहे चेव, हरिकतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे हरिवर्षे वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— वहुसमतुल्यौ, तद्यथा— हरित्प्रपातद्रहश्चैव, हरिकान्तप्रपातद्रहश्चैव।

२९६ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे 'हरि' क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह हैं— हरित्प्रपातद्रह, हरिकान्तप्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९७ जंवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं महाविदेहे

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे महाविदेहे वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ

२९७ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे महाविदेह क्षेत्र में दो प्रपात

वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—
वहुसमतुल्ला जाव, त जहा—
सीतप्पवायद्दहे चेव,
सीतोदप्पवायद्दहे चेव ।

प्रज्ञप्तौ—वहुसमतुल्यौ यावत् तद्यथा—
शीताप्रपातद्रहश्चैव,
शीतोदाप्रपातद्रहश्चैव ।

द्रह हैं—सीताप्रपातद्रह, सीतोदाप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते ।

२९८ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रम्मए वासे दो पव्वायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—णरकतप्पवायद्दहे चेव, णारिकतप्पवायद्दहे चेव ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रम्यके वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—वहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—नरकान्तप्रपातद्रहश्चैव, नारीकान्तप्रपातद्रहश्चैव ।

२९८ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर मे रम्यक क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह हैं—नरकान्ताप्रपातद्रह, नारीकान्ताप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते ।

२९९ एव—हेरण्णवते वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला जाव, त जहा—सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव, रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव ।

एवम्—हैरण्यवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—वहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—स्वर्णकूलप्रपातद्रहश्चैव, रूप्यकूलप्रपातद्रहश्चैव ।

२९९ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह हैं—सुवर्णकूलप्रपातद्रह, रूप्यकूलप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते ।

३०० जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—वहुसमतुल्ला जाव, त जहा—रत्तप्पवायद्दहे चेव, रत्तावईपवायद्दहे चेव ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे ऐरवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—वहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—रक्ताप्रपातद्रहश्चैव, रक्तवतीप्रपातद्रहश्चैव ।

३०० जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर मे ऐरवत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह हैं—रक्ताप्रपातद्रह, रक्तवतीप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते ।

महाणदी-पदं

महानदी-पदम्

महानदी-पद

३०१. जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—वहुसमतुल्लाओ जाव, त जहा—गगा चेव, सिंधू चेव ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते वर्षे द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते—वहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—गङ्गा चैव, सिन्धूश्चैव ।

३०१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे भरत-क्षेत्र मे दो महानदिया हैं—गगा, सिन्धू। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती ।

३०२. एव—जहा पवातद्दहा, एव णईओ भाणियव्वाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव, तं जहा—रत्ता चेव, रत्तावती चेव।

एवम्—यथा प्रपातद्रहा, एवं नद्य भणितव्या यावत् ऐरवते वर्षे द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—रक्ता चैव, रक्तवती चैव।

३०२ प्रपातद्रह की भांति नदियां वक्तव्य हैं।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

३०३. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम-दूसमाए समाए दो सागरोवम-कोडाकोडीओ काले होत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमदुःषमाया द्वे सागरोपमकोटिकोटी काल अभवत्।

३०३ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम था।

३०४. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अस्या अवसर्पिण्या सुषमदुःषमाया समाया द्वे सागरोपमकोटिकोटी काल प्रज्ञप्त।

३०४ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम कहा गया है।

३०५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-दूसमाए समाए दो सागरोवम-कोडाकोडीओ काले° भविस्सति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषम-दुःषमाया समाया द्वे सागरोपमकोटि-कोटी काल भविष्यति।

३०५ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम होगा।

३०६ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था। दोण्णि य पलिओवमाइ परमाउं पालइत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमाया समाया मनुजा द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवन्। द्वे च पल्योपमे परमायु अपालयन्।

३०६ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी सुषमा नामक आरे में मनुष्यो की ऊचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी।

३०७. एवमिमीसे ओसप्पिणीए जाव पालयित्था।

एवम् अस्या अवसर्पिण्या यावत् अपालयन्।

३०७ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे मे मनुष्यो की ऊचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी।

३०८ एवमागमेस्साए उस्सप्पिणीए जाव पालयिस्संति।

एवम् आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या यावत् पालयिष्यन्ति।

३०८ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की होगी।

सलागा-पुरिस-वंस-पदं

३०९ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहतवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

३१० °जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टि-वंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

३११ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।°

शलाका-पुरुष-वंश-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ अर्हद्वंशौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ चक्रवर्त्तिवंशौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ दसारवंशौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते व उत्पत्स्येते वा।

शलाका-पुरुष-वंश-पद

३०९ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे अरहतो के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

३१० जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे चक्रवर्तियो के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

३११ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दसारो के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

सलागा-पुरिस-पदं

३१२ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

३१३ °जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

३१४ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

३१५ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जति वा° उप्पज्जिस्सति वा।

शलाका-पुरुष-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ अर्हन्तौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ चक्रवर्त्तिनौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ बलदेवौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ वासुदेवौ उदपदिपाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

शलाका-पुरुष-पद

३१२ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय में एक युग में दो अरहन्त उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

३१३ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय मे एक युग मे दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

३१४ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग में दो बलदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

३१५ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय मे एक युग में दो वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न हाते हैं और उत्पन्न होंगे।

कालाणुभव-पदं

३१६. जंबुद्दीवे दीवे दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव।

३१७. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तम इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—हरिवासे चेव, रम्मगवासे चेव।

३१८. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदूसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—हेमवए चेव, हेरण्णवए च।

३१९. जंबुद्दीवे दीवे दोसु खेत्तेसु मणुया सया दूसमसुसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा— पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

३२०. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरति, तद्यया— भरहे चेव, एरवते चेव।

कालानुभव-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो कुर्वो मनुजा सदा सुपमसुपमोत्तमा र्द्धि प्राप्ता. प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा— देवकुरौ चैव, उत्तरकुरौ चैव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो वर्पयो मनुजा सदा सुपमोत्तमा ऋद्धि प्राप्ता प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा— हरिवर्पे चैव, रम्यकवर्पे चैव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो वर्पयो मनुजा सदा सुपमदु पमोत्तमा ऋद्धि प्राप्ता प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा— हैमवते चैव, हैरण्यवते चैव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो क्षेत्रयो मनुजा सदा दु पमसुपमोत्तमा ऋद्धि प्राप्ता प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा— पूर्वविदेहे चैव, अपरविदेहे चैव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो वर्पयो मनुजा पड्विधमपि काल प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा भरते चैव, ऐरवते चैव।

कालानुभव-पद

३१६ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण और उत्तर के देवकुरु और उत्तरकुरु में रहने वाले मनुष्य सदा सुपम-सुपमा नाम के प्रथम आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३१७ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हरि क्षेत्र तथा उत्तर मे रम्यक् क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा सुपमा नाम के दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३१८ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र मे तथा उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा 'सुपम-दु पमा' नाम के तीसरे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३१९ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे पूर्व-विदेह तथा पश्चिम मे अपर-विदेह क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा 'दु पम-सुपमा' नाम के चौथे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३२० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भरत मे और उत्तर-ऐरवत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य छह प्रकार के काल[111] का अनुभव करते हैं।

चद-सूर-पदं

३२१ जंबुद्दीवे दीवे— दो चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा।

३२२ दो सूरिआ तविसु वा तवति वा तविस्सति वा।

चन्द्र-सूर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे— द्वौ चन्द्रौ प्राभासिपाता वा प्रभासेते वा प्रभासिष्येते वा।

द्वौ सूर्यौ अताप्ता वा तपतो वा तपिष्यतो वा।

चन्द्र-सूर-पद

३२१ जम्बूद्वीप द्वीप मे दो चन्द्रमाओ ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे।

३२२ जम्बूद्वीप द्वीप मे दो सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे।

णक्खत्त-पदं

३२३. दो कित्तियाओ, दो रोहिणीओ, दो मग्गसिराओ, दो अद्दाओ,* दो पुणव्वसू, दो पूसा, दो अस्सलेसाओ, दो महाओ, दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो उत्तराफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ताओ, दो साईओ, दो विसाहाओ, दो अणुराहाओ, दो जेट्ठाओ, दो मूला, दो पुव्वासाढाओ, दो उत्तरासाढाओ, दो अभिईओ, दो सवणा, दो धणिट्ठाओ, दो सयभिसया, दो पुव्वाभद्दवयाओ, दो उत्तराभद्दवयाओ, दो रेवतीओ, दो अस्सिणीओ°, दो भरणीओ [जोय जोएसु वा जोएति वा जोइस्सति वा ?]।

नक्षत्र-पदम्

द्वे कृत्तिके, द्वे रोहिण्यौ, द्वौ मृगशिरसौ, द्वे आर्द्रे, द्वौ पुनर्वसू, द्वौ पुष्यौ, द्वे अश्लेषे, द्वे मघे, द्वे पूर्वफाल्गुन्यौ, द्वे उत्तरफाल्गुन्यौ, द्वौ हस्तौ, द्वे चित्रे, द्वे स्वाती, द्वे विशाखे, द्वे अनुराधे, द्वे जेष्ठे, द्वौ मूलौ, द्वे पूर्वासाढे, द्वे उत्तरापाढे, द्वे अभिजितौ, द्वौ श्रवणौ, द्वे धनिष्ठे, द्वौ शतभिषजौ, द्वे पूर्वभद्रपदे, द्वे उत्तरभद्रपदे, द्वे रेवत्यौ, द्वे अश्विन्यौ, द्वे भरण्यौ (योग अजुयन् वा युञ्जन्ति वा योक्ष्यन्ति वा ?)।

नक्षत्र-पद

३२३ जम्बूद्वीप द्वीप मे दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशिरा, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसु, दो पुष्य, दो अश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वफल्गुनी, दो उत्तरफल्गुनी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा, दो उत्तराषाढा, दो अभिजित, दो श्रवण, दो धनिष्ठा, दो शतभिषक् (शतभिषा), दो पूर्वाभाद्रपद, दो उत्तराभाद्रपद, दो रेवति, दो अश्विनी, दो भरणी—इन नक्षत्रो ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते है और करेंगे।

णक्खत्तदेव-पदं

३२४ दो अग्गी, दो पयावती, दो सोमा, दो रुद्दा, दो अदिती, दो वहस्सती, दो सप्पा, दो पिती, दो भगा, दो अज्जमा, दो सविता, दो तट्ठा, दो वाऊ, दो इदग्गी दो मित्ता, दो इदा, दो णिरती, दो आऊ, दो विस्सा, दो वह्मा, दो विण्हू, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विविद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा, दो यमा।

नक्षत्रदेव-पदम्

द्वौ अग्नी, द्वौ प्रजापती, द्वौ सोमौ, द्वौ रुद्रौ, द्वौ अदिती, द्वौ बृहस्पती, द्वौ सर्पौ, द्वौ पितरौ, द्वौ भगौ, द्वौ अर्यमणौ, द्वौ सवितारौ, द्वौ त्वष्टारौ, द्वौ वायू, द्वौ इन्द्राग्नी, द्वौ मित्रौ, द्वौ इन्द्रौ, द्वौ निर्ऋती, द्वे आप, द्वौ विश्वौ, द्वौ ब्रह्माणौ, द्वौ विष्णू, द्वौ वसू, द्वौ वरुणौ, द्वौ अजौ, द्वे विवृद्धी, द्वौ पूषणौ, द्वौ अश्वौ, द्वौ यमौ।

नक्षत्रदेव-पद

३२४ नक्षत्रो[१२] के दो-दो देव हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—दो अग्नि, दो प्रजापति, दो सोम, दो रुद्र, दो अदिति, दो बृहस्पति, दो सर्प, दो पितृदेवता, दो भग, दो अर्यमा, दो सविता, दो त्वष्टा, दो वायु, दो इन्द्राग्नि, दो मित्र, दो इन्द्र, दो निऋति, दो अप्, दो विश्व, दो ब्रह्म, दो विष्णु, दो वसु, दो वरुण, दो अज, दो विवृद्धि, (अहिर्बुध्नीय), दो पूषन्, दो अश्व, दो यम।

महग्गह-पदं

३२५. दो इंगालगा, दो वियालगा, दो लोहितक्खा, दो सणिच्चरा,

महाग्रह-पदम्

द्वौ अङ्गारकौ, द्वौ विकालकौ, द्वौ लोहिताक्षौ, द्वौ शनिश्चरौ, द्वौ आहुतौ,

महाग्रह-पद

३२५ जम्बूद्वीप द्वीप मे—

दो अंगारक, दो विकालक, दो लोहिताक्ष,

दो आहुणिया, दो पाहुणिया दो कणा, दो कणगा, दो कणकणगा, दो कणगविताणगा, दो कणगसताणगा, दो सोमा, दो सहिया, दो आसासणा, दो कज्जोवगा, दो कव्वडगा दो अयकरगा, दो दुंदुभगा, दो सखा, दो सखवण्णा, दो सखवण्णाभा, दो कसा, दो कंसवण्णा, दो कंसवण्णाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पाभासा, दो णीला, दो, णीलोभासा, दो भासा, दो भासरासी दो तिला, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगा, दो दगपचवण्णा, दो काका, दो कक्कधा, दो इंदग्गी, दो धूमकेऊ, दो हरी, दो पिंगला, दो बुद्धा, दो सुक्का, दो बहस्सती, दो राहू, दो अगत्थी, दो माणवगा, दो कासा, दो फासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियडा, दो विसधी, दो णियल्ला, दो पइल्ला, दो जडियाइलगा, दो अरुणा, दो अग्गिल्ला, दो काला, दो महाकालगा, दो सोत्थिया, दो सोवत्थिया, दो वद्धमाणगा, दो पलबा, दो णिच्चालोगा, दो णिच्चुज्जोता, दो सयपभा, दो ओभासा, दो सेयकरा दो खेमकरा, दो आभंकरा, दो पभकरा, दो अपराजिता, दो अरया, दो असोगा, दो विगतसोगा, दो विमला, दो वितता, दो वितत्था, दो विसाला, दो साला, दो सुव्वता, दो अणियट्टी, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करकरिगा, दो रायग्गला,

द्वौ प्राहुतौ, द्वौ कनौ, द्वौ कनकौ, द्वौ कनकनकौ, द्वौ कनकवितानकौ, द्वौ कनकसतानकौ, द्वौ सोमौ, द्वौ सहितौ, द्वौ आश्वासनौ, द्वौ कार्योपगौ, द्वौ कर्वटकौ, द्वौ अजकरकौ, द्वौ दुन्दुभकौ, द्वौ शङ्खौ द्वौ शङ्खवर्णौ, द्वौ शङ्खवर्णाभौ, द्वौ कसौ, द्वौ कसवर्णौ, द्वौ कसवर्णाभौ, द्वौ रुक्मिणौ, द्वौ रुक्माभासौ, द्वौ नीलौ, द्वौ नीलाभासौ, द्वौ भस्मानौ, द्वौ भस्माराशी, द्वौ तिलौ, द्वौ तिलपुष्पवर्णौ, द्वौ दकौ, द्वौ दकपञ्चवर्णौ, द्वौ काकौ, द्वौ कर्कन्धौ, द्वौ इन्द्राग्नी, द्वौ धूमकेतू, द्वौ हरी, द्वौ पिङ्गलौ, द्वौ बुद्धौ, द्वौ शुक्रौ, द्वौ बृहस्पती, द्वौ राहू, द्वौ अगस्ती, द्वौ मानवकौ, द्वौ काशौ, द्वौ स्पर्शौ, द्वौ धुरौ, द्वौ प्रमुखौ, द्वौ विकटौ, द्वौ विसन्धी, द्वौ णियल्लौ, द्वौ 'पइल्लौ', द्वौ 'जडियाइलगौ', द्वौ अरुणौ, द्वौ अग्निलौ, द्वौ कालौ, द्वौ महाकालकौ, द्वौ स्वस्तिकौ, द्वौ सौवस्तिकौ, द्वौ वर्द्धमानकौ, द्वौ प्रलम्बौ, द्वौ नित्यालोकौ, द्वौ नित्योद्योतौ, द्वौ स्वयप्रभौ, द्वौ अवभासौ, द्वौ श्रेयस्करौ, द्वौ क्षेमंकरौ, द्वौ आभकरौ, द्वौ प्रभकरौ, द्वौ अपराजितौ द्वौ अरजसौ, द्वौ अशोकौ, द्वौ विगतशोकौ, द्वौ विमलौ, द्वौ विततौ, द्वौ विस्रस्तौ, द्वौ विशालौ, द्वौ शालौ, द्वौ सुव्रतौ, द्वौ अनिवृत्ती, द्वौ एकजटिनौ, द्वौ द्विजटिनौ, द्वौ करकरिकौ, द्वौ राजार्गलौ, द्वौ पुष्पकेतू, द्वौ भावकेतू (चार अचरन् वा चरन्ति वा चरिष्यन्ति वा ?)।

दो शनिश्चर, दो आहुत, दो प्राहुत, दो कन, दो कनक, दो कनकनक, दो कनकवितानक, दो कनकसतानक, दो सोम, दो सहित, दो आश्वासन, दो कार्योपग, दो कर्वटक, दो अजकरक, दो दुन्दुभक, दो शख, दो शखवर्ण, दो शखवर्णाभ, दो कस, दो कसवर्ण, दो कसवर्णाभ, दो रुक्मी, दो रुक्माभास, दो नील, दो नीलाभास, दो भस्म, दो भस्मराशि, दो तिल, दो तिलपुष्पवर्ण, दो दक, दो दकपञ्चवर्ण, दो काक, दो कर्कन्ध, दो इन्द्राग्नि, दो धूमकेतु, दो हरि, दो पिंगल, दो बुद्ध, दो शुक्र, दो बृहस्पति, दो राहु, दो अगस्ति, दो मानवक, दो काश, दो स्पर्श, दो धुर, दो प्रमुख, दो विकट, दो विसन्धि, दो णियल्ल, दो पइल्ल, दो जडियाइलग, दो अरुण, दो अग्निल, दो काल, दो महाकालक, दो स्वस्तिक, दो सौवस्तिक, दो वर्द्धमानक, दो प्रलव, दो नित्यालोक, दो नित्योद्योत, दो स्वयप्रभ, दो अवभास, दो श्रेयस्कर, दो क्षेमकर, दो आभकर, दो प्रभकर दो अपराजित, दो अरजस्, दो अशोक, दो विगतशोक, दो विमल, दो वितत, दो वित्रस्त, दो विशाल, दो शाल, दो सुव्रत, दो अनिवृत्ति, दो एकजटिन्, दो जटिन्, दो करकरिक, दो दोराजार्गल, दो पुष्पकेतु, दो भावकेतु।

इन ८८ महाग्रहों[१११] न चार किया था, करते हैं और करेंगे।

दो पुप्फकेतू, दो भावकेऊ [चारं चरिंसु वा चरति वा चरिस्सति वा ?]।

जंबुद्दीव-वेइआ-पदं

३२६ जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स वेइआ दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप-वेदिका-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

जम्बूद्वीप-वेदिका-पद

३२६ जम्बूद्वीप द्वीप की वेदिका दो कोस ऊंची है।

लवण-समुद्द-पदं

३२७ लवणे णं समुद्दे दो जोयणसय-सहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

३२८ लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

लवण-समुद्र-पदम्

लवण समुद्र द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

लवणस्य समुद्रस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

लवण-समुद्र-पद

३२७ लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ (वलयाकार चौडाई) दो लाख योजन का है।

३२८ लवण समुद्र की वेदिका दो कोस ऊंची है।

धायइसंड-पदं

३२९ धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता— बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा— भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्ड-पदम्

धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते— बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा— भरतं चैव, ऐरवतं चैव।

धातकीषण्ड-पद

३२९ धातकीषंड द्वीप के पूर्वार्द्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र हैं— भरत—दक्षिण में, ऐरवत—उत्तर में। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौडाई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

३३० एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा— भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं—कूडसामली चेव, धायई-रुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, सुदंसणे चेव।

एवम्—यथा जम्बूद्वीपे तथा अत्रापि भणितव्यं यावत् द्वयोः वर्षयोः मनुजाः षड्विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा— भरते चैव, ऐरवते चैव। नवरं— कूटशाल्मली चैव, धातकीरुक्षश्चैव। देवौ गरुडश्चैव वेणुदेवः, सुदर्शनश्चैव।

३३० इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण में आये हुए सूत्र २।२६९-३२० तक का वर्णन यहां वक्तव्य है। विशेष इतना ही है कि यहां वृक्ष दो हैं—कूट शाल्मली और धातकी। देव दो हैं—कूट शाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और धातकी पर सुदर्शन देव।

३३१ धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—
भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्डे द्वीपे पाश्चात्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
भरत चैव, ऐरवत चैव।

३३१ धातकीषडद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र हैं—
भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

३३२ एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्व जाव छव्विहंपि काल पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं—कूडसामली चेव महाधायईरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे पियदंसणे चेव।

एवम्—यथा जम्बूद्वीपे तथा अत्रापि भणितव्य यावत् पड्विधमपि काल प्रत्युनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—
भरते चैव, ऐरवते चैव।
नवरं—कूटशाल्मली चैव महाधातकीरुक्षश्चैव। देवौ गरुडश्चैव वेणुदेव प्रियदर्शनश्चैव।

३३२ इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण मे आये हुए सूत्र २।२६९-३२० तक का वर्णन यहा वक्तव्य है। विशेष इतना ही है कि यहा वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली, और महाधातकी। देव दो हैं—कूटशाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव, महाधातकी पर प्रियदर्शन देव।

३३३ धायइसडे ण दीवे—
दो भरहाइ, दो एरवयाइ, दो हेमवयाइ, दो हेरण्णवयाइं, दो हरिवासाइ, दो रम्मगदासाइं, दो पुव्वविदेहाइ, दो अवरविदेहाइ, दो देवकुराओ, दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी देवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमा, दो उत्तरकुरुमहद्दुमवासी देवा।

धातकीषण्डे द्वीपे—
द्वे भरते, द्वे ऐरवते, द्वे हैमवते, द्वे हैरण्यवते, द्वे हरिवर्षे, द्वे रम्यकवर्षे, द्वौ पूर्वविदेहौ, द्वौ अपरविदेहौ, द्वौ देवकुरू, द्वौ देवकुरुमहाद्रुमौ द्वौ देवकुरुमहाद्रुमवासिनौ देवौ, द्वौ उत्तरकुरू, द्वौ उत्तरकुरुमहाद्रुमौ, द्वौ उत्तरकुरुमहाद्रुमवासिनौ देवौ।

३३३ धातकीषड द्वीप मे—
भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, देवकुरुमहाद्रुम, देवकुरुमहाद्रुमवासी देव, उत्तरकुरु, उत्तरकुरुमहाद्रुम, उत्तरकुरुमहाद्रुमवासी देव—दो-दो हैं।

३३४ दो चुल्लहिमवंता, दो महाहिमवंता, दो णिसढा, दो णीलवंता, दो रुप्पी, दो सिहरी।

द्वौ क्षुल्लहिमवन्तौ, द्वौ महाहिमवन्तौ, द्वौ निषधौ, द्वौ नीलवन्तौ, द्वौ रुक्मिणौ, द्वौ शिखरिणौ।

३३४ क्षुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी और शिखरी—ये वर्षधर पर्वत दो-दो हैं।

३३५ दो सद्दावाती, दो सद्दावातिवासी साती देवा, दो वियडावाती, दो वियडावातिवासी पभासा देवा, दो गंधावाती, दो गंधावातिवासी अरुणा देवा, दो मालवंतपरियागा, दो मालवंतपरियागवासी पउमा देवा।

द्वौ शब्दापातिनौ, द्वौ शब्दापातिवासिनौ स्वातिदेवौ, द्वौ विकटापातिनौ, द्वौ विकटापातिवासिनौ प्रभासौ देवौ, द्वौ गन्धापातिनौ, द्वौ गन्धापातिवासिनौ अरुणौ देवौ, द्वौ माल्यवत्पर्यायौ, द्वौ माल्यावत्पर्यायवासिनौ पद्मौ देवौ।

३३५ शब्दापाती, शब्दापातिवासी स्वाति देव, विकटापाती, विकटापातिवासी प्रभास देव, गधापाती, गधापातिवासी अरुण देव, माल्यवत्पर्याय, माल्यवत्पर्यायवासी पद्म देव—ये वृत्तवैताढय पर्वत तथा उन पर रहने वाले देव दो-दो हैं।

३३६ दो मालवता, दो चित्तकूडा, दो पम्हकूडा, दो णलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा, दो वेसमणकूडा, दो अंजणा, दो मातजणा, दो सोमणसा, दो विज्जुप्पभा, दो अकावती, दो पम्हावती, दो आसीविसा, दो सुहावहा, दो चदपव्वता, दो सूरपव्वता, दो णागपव्वता, दो देवपव्वता, दो गधमायणा, दो उसुगारपव्वया, दो चुल्ल-हिमवंतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवतकूडा, दो वेरुलियकूडा, दो णिसढकूडा, दो रुयगकूला, दो णीलवतकूडा, दो उवदसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकचणकूडा, दो सिहरिकूडा, दो तिगिंछिकूडा।

द्वौ माल्यवन्तौ, द्वे चित्रकूटे, द्वे पक्ष्मकूटे, द्वे नलिनकूटे, द्वौ एकशैलौ, द्वे त्रिकूटे, द्वे वैश्रमणकूटे, द्वौ अञ्जनौ, द्वौ माताञ्जनौ, द्वौ सोमनसौ, द्वौ विद्युत्प्रभौ, द्वे अकावत्यौ, द्वे पक्ष्मावत्यौ, द्वौ आसीविषौ, द्वौ सुखावहौ, द्वौ चन्द्रपर्वतौ, द्वौ सूर्यपर्वतौ, द्वौ नागपर्वतौ, द्वौ देवपर्वतौ, द्वौ गन्धमादनौ, द्वौ इषुकारपर्वतौ, द्वे क्षुल्लहिमवत्कूटे, द्वे वैश्रमणकूटे, द्वे महाहिमवत्कूटे, द्वे वैडूर्यकूटे, द्वे निषधकूटे, द्वे रुचककूटे, द्वे नीलवत्कूटे, द्वे उपदर्शनकूटे, द्वे रुक्मिकूटे, द्वे मणिकाञ्चनकूटे, द्वे शिखरिकूटे, द्वे तिगिंछिकूटे।

३३६ माल्यवान्, चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अजन, माताजन, सौमनस, विद्युत्प्रभ, अकावती, पक्ष्मावती, आसीविष, सुखावह, चन्द्र पर्वत, सूर्य पर्वत, नाग पर्वत, देव पर्वत, गधमादन, इषुकार पर्वत, क्षुल्लहिमवत्कूट, वैश्रमणकूट, महाहिमवत्कूट, वैडूर्यकूट, निषधकूट, रुचककूट, नीलवत्कूट, उपदर्शनकूट, रुक्मीकूट, मणिकाचनकूट, शिखरीकूट, तिगिंछिकूट—ये सभी कूट दो-दो हैं।

३३७ दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीओ देवीओ, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ, एव जाव दो पुडरीयद्दहा, दो पोडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीओ देवीओ।

द्वौ पद्मद्रहौ, द्वे पद्मद्रहवासिन्यौ श्रियौ देव्यौ,
द्वौ महापद्मद्रहौ, द्वे महापद्मद्रहवासिन्यौ ह्रियौ देव्यौ,
एव यावत् द्वौ पौण्डरीकद्रहौ, द्वे पौण्डरीकद्रहवासिन्यौ लक्ष्म्यौ देव्यौ।

३३७ पद्मद्रह, पद्मद्रहवासिनी श्री देवी, महापद्मद्रह, महापद्मद्रहवासिनी ह्री देवी, तिगिंछिद्रह, तिगिंछिद्रहवासिनी धृति देवी, केशरीद्रह, केशरीद्रहवासिनी कीर्ति देवी, महापौंडरीकद्रह, महापौंडरीकद्रहवासिनी बुद्धि देवी, पौंडरीकद्रह, पौंडरीकद्रहवासिनी लक्ष्मी देवी—ये सभी द्रह और द्रहवासिनी देविया दो-दो हैं।

३३८ दो गगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तावती पवातद्दहा।

द्वौ गगाप्रपातद्रहौ यावत् द्वौ रक्तवती-प्रपातद्रहौ।

३३८ गगा, सिन्धु, रोहित, रोहिताश, हरित्, हरिकान्त, सीता, सीतोदा, नरकान्त, नारीकान्त, सुवर्णकूल, रुप्यकूल, रक्त और रक्तवती—ये सभी प्रपातद्रह दो-दो हैं।

३३९ दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहवतीओ, दो दहवतीओ, दो पकवतीओ,

द्वे रोहिते यावत् द्वे रुप्यकूले, द्वे ग्राहवत्यौ, द्वे द्रहवत्यौ, द्वे पङ्कवत्यौ, द्वे तप्तजले, द्वे मत्तजले, द्वे उन्मत्तजले,

३३९ रोहिता, हरिकान्ता, हरित्, सीतोदा, सीता, नारीकान्ता, नरकान्ता, रुप्यकूला, ग्राहवती, द्रहवती, पकवती,

दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ, दो खीरोयाओ, दो सीहसोताओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, दो गंभीरमालिणीओ ।

द्वे क्षीरोदे, द्वे सिंहस्रोतस्यौ, द्वे अन्तर्वाहिन्यौ, द्वे उर्मिमालिन्यौ, द्वे फेनमालिन्यौ, द्वे गम्भीरमालिन्यौ ।

तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला, क्षीरोदा, सिंहस्रोता, अन्तोमालिनी, उर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीरमालिनी—ये सभी नदिया दो-दो हैं ।

३४० दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छावती, दो आवत्ता, दो मंगलावत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावती, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मगलावती, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावती, दो संखा, दो णलिणा, दो कुमुया, दो सलिलावती, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावती, दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गंधिला, दो गंधिलावती ।

द्वौ कच्छौ, द्वौ सुकच्छौ, द्वौ महाकच्छौ, द्वे कच्छकावत्यौ, द्वौ आवर्त्तौ, द्वौ मगलावर्त्तौ, द्वौ पुष्कलौ, द्वे पुष्कलावत्यौ, द्वौ वत्सौ, द्वौ सुवत्सौ, द्वौ महावत्सौ, द्वे वत्सकावत्यौ, द्वौ रम्यौ, द्वौ रम्यकौ, द्वौ रमणीयौ, द्वे मगलावत्यौ, द्वे पक्ष्मणी, द्वे सुपक्ष्मणी, द्वे महापक्ष्मणी, द्वे पक्ष्मकावत्यौ, द्वौ शखौ, द्वौ नलिनौ, द्वौ कुमुदौ, द्वे सलिलावत्यौ, द्वौ वप्रौ, द्वौ सुवप्रौ, द्वौ महावप्रौ, द्वे वप्रकावत्यौ, द्वौ वल्गू, द्वौ सुवल्गू, द्वौ गान्धिलौ, द्वे गान्धिलावत्यौ ।

३४० कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त्त, मगलावर्त्त, पुष्कल, पुष्कलावती, वत्स, सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय, मगलावती, पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शख, नलिन, कुमुद, सलिलावती, वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गधिल, गधिलावती—ये बत्तीस विजय-क्षेत्र दो-दो हैं ।

३४१ दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मजूसाओ, दो ओसधीओ, दो पोंडरिगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अवराजिताओ, दो अवराओ,

द्वे क्षेमे, द्वे क्षेमपुर्यौ, द्वे रिष्टे, द्वे रिष्टपुर्यौ, द्वे खड्ग्यौ, द्वे मञ्जूषे, द्वे औषध्यौ, द्वे पौण्डरीकिण्यौ, द्वे सुसीमे, द्वे कुण्डले, द्वे अपराजिते, द्वे प्रभाकरे, द्वे अङ्कावत्यौ, द्वे पक्ष्मावत्यौ, द्वे शुभे, द्वे रत्नसचये, द्वे अश्वपुर्यौ, द्वे सिंहपुर्यौ, द्वे महापुर्यौ, द्वे विजयपुर्यौ, द्वे अपराजिते, द्वे अपरे, द्वे अशोके, द्वे विगतशोके, द्वे विजये, द्वे वैजयन्त्यौ, द्वे जयन्त्यौ, द्वे अपराजिते, द्वे चक्रपुर्यौ, द्वे खड्गपुर्यौ, द्वे अवध्ये, द्वे अयोध्ये ।

३४१ क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गी, मजूषा, औषधी, पौंडरीकिणी, सुसीमा, कुडला, अपराजिता, प्रभाकरा, अकावती, पक्ष्मावती, शुभा, रत्नसचया, अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अपरा, अशोका, विगतशोका, विजया, वैजयती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या और अयोध्या—ये विजय-क्षेत्र की बत्तीस नगरिया दो-दो हैं ।

दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ,
दो विजयाओ, दो वेजयतीओ,
दो जयतीओ, दो अपराजियाओ,
दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ,
दो अवज्झाओं, दो अउज्झाओं।

३४२. दों भद्दसालवणा, दों णदणवणा, दों सोमणसवणा, दो पडगवणाइ ।

द्वे भद्रशालवने, द्वे नदनवने, द्वे सौमनसवने, द्वे पण्डकवने ।

३४२ भद्रशालवन, नदनवन, सौमनसवन और पडकवन—ये वन दो-दो हैं।

३४३ दो पंडुकवलसिलाओ, दों अतिपडुकवलसिलाओ, दों रत्तकवलसिलाओ, दो अइरत्तकवलसिलाओ।

द्वे पाण्डुकम्बलशिले, द्वे अतिपाण्डुकम्बलशिले, द्वे रक्तकम्बलशिले, द्वे अतिरक्तकम्बलशिले ।

३४३ पाडुकवलशिला, अतिपाडुकवलशिला, रक्तकवलशिला, अतिरक्तकवलशिला—ये पडकवन की शिलाए दो-दो हैं।

३४४ दो मदरा, दो मदरचूलिआओ।

द्वौ मन्दरौ, द्वे मन्दरचूलिके ।

३४४ मन्दर और मन्दरचूलिका दो-दो हैं।

३४५ धायइसडस्स ण दीवस्स वेदिया दो गाउयाइ उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ता।

धातकीषण्डस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता ।

३४५ धातकीषड द्वीप की वेदिका दो कोस ऊची है।

३४६ कालोंदस्स ण समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

कालोदस्य समुद्रस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्व उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता ।

३४६ कालोद समुद्र की वेदिका दो कोस ऊची है।

पुक्खरवर-पदं

पुष्करवर-पदम्

पुष्करवर-पद

३४७ पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, त जहा—
भरहे चेव, एरवए चेव।

पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
भरत चैव, ऐरवत चैव ।

३४७ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र हैं—
भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

३४८ तहेव जाव दो कुराओ पण्णत्ताओ—
देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।
तत्थ णं दो महतिमहालया महद्दुमा पण्णत्ता, त जहा—
कूडसामली चेव, पउमरुक्खे चेव।
देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पउमे चेव जाव छव्विहपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरति।

तथैव यावत् द्वौ कुरू प्रज्ञप्तौ—
देवकुरुश्चैव, उत्तरकुरुश्चैव ।
तत्र द्वौ महातिमहान्तौ महाद्रुमौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
कूटशालमली चैव पद्मरुक्षश्चैव ।
देवौ—गरुडश्चैव वेणुदेव, पद्मश्चैव यावत् षड्विधमपि काल प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ।

३४८ इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण मे आए हुए सूत्र २।२६९-२७१ तक का वर्णन यहां वक्तव्य है यावत् दो कुरु हैं
—वहा दो विशाल महाद्रुम हैं—
कूटशाल्मली और पद्म।
देव दो हैं—
कूटशालमली पर गरुड जाति का वेणुदेव, पद्म पर पद्म देव।
छ प्रकार के काल का अनुभव करते हैं।

३४९. पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—तहेव णाणत्त—कूडसामली चेव, महापउमरुक्खे चेव।
देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पुंडरीए चेव।

पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—तथैव नानात्वम्—कूटशाल्मली चैव, महापद्मरुक्षश्चैव।
देवो गरुडश्चैव वेणुदेव, पुण्डरीकश्चैव।

३४९ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र हैं—भरत—दक्षिण में, ऐरवत—उत्तर में। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के प्रकरण में आए हुए सूत्र २।२६८-३२० तक का वर्णन यहा वक्तव्य है।
विशेप इतना ही है कि यहा दो विशाल महाद्रुम हैं—कूटशाल्मली, महापद्म।
देव दो हैं—कूटशाल्मली पर गरुड जाति का वेणुदेव, महापद्म पर पुण्डरीक देव।

३५० पुक्खरवरदीवड्ढे ण दीवे दो भरहाइ, दो एरवयाइ जाव दो मंदरा, दो मदरचूलियाओ।

पुष्करवरद्वीपार्धे द्वीपे द्वे भरते, द्वे ऐरवते यावत् द्वौ मन्दरौ, द्वे मन्दर-चूलिके।

३५० अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में भरत, ऐरवत से मन्दर और मन्दरचूलिका तक के सभी दो-दो हैं।

वेदिका-पदं

वेदिका-पदम्

वेदिका-पद

३५१ पुक्खरवरस्स ण दीवस्स वेइया दो गाउयाइ उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ता।

३५२ सव्वेसिपि णं दीवसमुद्दाण वेदियाओ दो गाउयाइ उड्ढमुच्च-त्तेण पण्णत्ताओ।

पुष्करवरस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।
सर्वेपामपि द्वीपसमुद्राणा वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

३५१ पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो कोस ऊची है।
३५२ सभी द्वीपो और समुद्रो की वेदिका दो-दो कोस ऊची है।

इंद-पदं

इन्द्र-पदम्

इन्द्र-पद

३५३ दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरे चेव, वली चेव।
३५४ दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धरणे चेव, भूयाणदे चेव।
३५५. दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—वेणुदेवे चेव, वेणुदाली चेव।
३५६ दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—हरिच्चेव, हरिस्सहे चेव।
३५७. दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अग्गिसिहे चेव, अग्गिमाणवे चेव।

द्वौ असुरकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—चमरश्चैव, वलिश्चैव।
द्वौ नागकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—धरणश्चैव, भूतानन्दश्चैव।
द्वौ सुपर्णकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—वेणुदेवश्चैव, वेणुदालिश्चैव।
द्वौ विद्युत्कुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—हरिश्चैव, हरिसहश्चैव।
द्वौ अग्निकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अग्निशिखश्चैव, अग्निमाणवश्चैव।

३५३ असुरकुमारों के इन्द्र दो हैं—चमर, वली।
३५४ नागकुमारो के इन्द्र दो हैं—धरण, भूतानन्द।
३५५ सुपर्णकुमारो के इन्द्र दो हैं—वेणुदेव, वेणुदाली।
३५६ विद्युत्कुमारो के इन्द्र दो हैं—हरि, हरिसह।
३५७ अग्निकुमारो के इन्द्र दो हैं—अग्निशिख, अग्निमानव।

३५८ दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे चेव, विसिट्ठे चेव।	द्वौ द्वीपकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पूर्णश्चैव, विशिष्टश्चैव।	३५८ द्वीपकुमारों के इन्द्र दो हैं—पूर्ण, विशिष्ट।
३५९ दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—जलकंते चेव, जलप्पभे चेव।	द्वौ उदधिकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—जलकान्तश्चैव, जलप्रभश्चैव।	३५९. उदधिकुमारों के इन्द्र दो हैं—जलकान्त, जलप्रभ।
३६०. दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अमियगती चेव, अमितवाहणे चेव।	द्वौ दिशाकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अमितगतिश्चैव, अमितवाहनश्चैव।	३६० दिशाकुमारों के इन्द्र दो हैं—अमितगति, अमितवाहन।
३६१. दो वायुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेलंबे चेव, पभंजणे चेव।	द्वौ वायुकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—वेलम्बश्चैव, प्रभञ्जनश्चैव।	३६१ वायुकुमारों के इन्द्र दो हैं—वेलम्ब, प्रभंजन।
३६२. दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—घोसे चेव, महाघोसे चेव।	द्वौ स्तनितकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—घोषश्चैव, महाघोषश्चैव।	३६२ स्तनितकुमारों के इन्द्र दो हैं—घोष, महाघोष।
३६३. दो पिसाइंदा पण्णत्ता, तं जहा—काले चेव, महाकाले चेव।	द्वौ पिशाचेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—कालश्चैव, महाकालश्चैव।	३६३ पिशाचों के इन्द्र दो हैं—काल, महाकाल।
३६४. दो भूइंदा पण्णत्ता, तं जहा—सुरूवे चेव, पडिरूवे चेव।	द्वौ भूतेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सुरूपश्चैव, प्रतिरूपश्चैव।	३६४ भूतों के इन्द्र दो हैं—सुरूप, प्रतिरूप।
३६५. दो जक्खिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णभद्दे चेव, माणिभद्दे चेव।	द्वौ यक्षेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पूर्णभद्रश्चैव, माणिभद्रश्चैव।	३६५ यक्षों के इन्द्र दो हैं—पूर्णभद्र, माणिभद्र।
३६६ दो रक्खसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—भीमे चेव, महाभीमे चेव।	द्वौ राक्षसेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—भीमश्चैव, महाभीमश्चैव।	३६६. राक्षसों के इन्द्र दो हैं—भीम, महाभीम।
३६७. दो किण्णरिंदा पण्णत्ता, तं जहा—किण्णरे चेव, किंपुरिसे चेव।	द्वौ किन्नरेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—किन्नरश्चैव, किंपुरुषश्चैव।	३६७ किन्नरों के इन्द्र दो हैं—किन्नर, किंपुरुष।
३६८. दो किंपुरिसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—सप्पुरिसे चेव, महापुरिसे चेव।	द्वौ किंपुरुषेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सत्पुरुषश्चैव, महापुरुषश्चैव।	३६८ किंपुरुषों के इन्द्र दो हैं—सत्पुरुष, महापुरुष।
३६९. दो महोरगिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अतिकाए चेव, महाकाए चेव।	द्वौ महोरगेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अतिकायश्चैव, महाकायश्चैव।	३६९ महोरगों के इन्द्र दो हैं—अतिकाय, महाकाय।
३७० दो गधव्विंदा पण्णत्ता, तं जहा—गीतरती चेव, गीयजसे चेव।	द्वौ गन्धर्वेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—गीतरतिश्चैव, गीतयशाश्चैव।	३७० गन्धर्वों के इन्द्र दो हैं—गीतरति, गीतयशा।
३७१. दो अणपण्णिंदा पण्णत्ता, तं जहा—सण्णिहिए चेव, सामण्णे चेव।	द्वौ अणपन्नेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सन्निहितश्चैव, सामान्यश्चैव।	३७१ अणपन्नों के इन्द्र दो हैं—सन्निहित, सामान्य।
३७२ दो पणपण्णिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धाए चेव, विहाए चेव।	द्वौ पणपन्नेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—धाता चैव, विधाता चैव।	३७२ पणपन्नों के इन्द्र दो हैं—धाता, विधाता।

३७३. दो इसिवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा— इसिच्चेव, इसिवालए चेव।	द्वौ ऋषिवादीन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ऋषिश्चैव, ऋषिपालकश्चैव ।	३७३ ऋषिवादियों के इन्द्र दो हैं— ऋषि, ऋषिपालक।
३७४. दो भूतवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा— इस्सरे चेव, महिस्सरे चेव।	द्वौ भूतवादीन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ईश्वरश्चैव, महेश्वरश्चैव ।	३७४ भूतवादियों के इन्द्र दो हैं— ईश्वर, महीश्वर ।
३७५. दो कंदिंदा पण्णत्ता, तं जहा— सुवच्छे चेव, विसाले चेव ।	द्वौ स्कन्देन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— सुवत्सश्चैव, विशालश्चैव ।	३७५ स्कन्दकों के इन्द्र दो हैं— सुवत्स, विशाल।
३७६ दो महाकंदिंदा पण्णत्ता, तं जहा— हस्से चेव, हस्सरती चेव ।	द्वौ महास्कन्देन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— हास्यश्चैव, हास्यरतिश्चैव ।	३७६ महास्कन्दकों के इन्द्र दो हैं— हास्य, हास्यरति।
३७७. दो कुंभंडिंदा पण्णत्ता, तं जहा— सेए चेव, महासेए चेव ।	द्वौ कुष्माण्डेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— श्वेतश्चैव, महाश्वेतश्चैव ।	३७७ कूष्माण्डकों के इन्द्र दो हैं— श्वेत, महाश्वेत ।
३७८. दो पतइंदा पण्णत्ता, तं जहा— पतए चेव, पतयवई चेव ।	द्वौ पतगेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— पतगश्चैव, पतगपतिश्चैव ।	३७८ पतगों के इन्द्र दो हैं— पतग, पतगपति ।
३७९. जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— चंदे चेव, सूरे चेव ।	ज्योतिष्काणां देवानां द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— चन्द्रश्चैव, सूरश्चैव ।	३७९. ज्योतिषों के इन्द्र दो हैं— चन्द्र, सूर्य।
३८० सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— सक्के चेव, ईसाणे चेव ।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— शक्रश्चैव, ईशानश्चैव ।	३८०. सौधर्म और ईशान कल्प के इन्द्र दो हैं— शक्र, ईशान।
३८१ सणकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— सणकुमारे चेव, माहिंदे चेव ।	सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— सनत्कुमारश्चैव, माहेन्द्रश्चैव ।	३८१ सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के इन्द्र दो हैं—सनत्कुमार, माहेन्द्र।
३८२ बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— बंभे चेव, लंतए चेव।	ब्रह्मलोक-लान्तकयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ब्रह्म चैव, लान्तकश्चैव ।	३८२ ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के इन्द्र दो हैं—ब्रह्म, लान्तक।
३८३. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव ।	महाशुक्र-सहस्रारयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— महाशुक्रश्चैव सहस्रारश्चैव ।	३८३ महाशुक्र और सहस्रार कल्प के इन्द्र दो हैं—महाशुक्र, सहस्रार।
३८४ आणत-पाणत-आरण-अच्चुतेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—पाणते चेव, अच्चुते चेव।	आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु कल्पेषु द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा प्राणतश्चैव, अच्युतश्चैव।	३८४ आनत और प्राणत तथा आरण और अच्युत कल्प के इन्द्र दो हैं— प्राणत, अच्युत।

विमाण-पदं	विमान-पदम्	विमान-पद
३८५ महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता, तं	महाशुक्र-सहस्रारयोः कल्पयोः विमानानि द्विवर्णानि प्रज्ञप्तानि,	३८५ महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान दो प्रकार के हैं—पीले, सफेद।

जहा—हालिद्दा चेव,
सुकिल्ला चेव।

तद्यथा—
हारिद्राणि चैव, शुक्लानि चैव।

देव-पदं

३८६ गेविज्जगा ण देवा दो रयणीओ उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ता।

देव-पदम्

ग्रैवेयका देवा द्वे रत्नी ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

देव-पद

३८६ ग्रैवेयक देवो की ऊंचाई दो रत्नि की है।

चउत्थो उद्देसो

जीवाजीव-पदं

३८७ समयाति वा आवलियाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

३८८ आणापाणूति वा थोवेति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

३८६ खणाति वा लवाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।
एव—मुहुत्ताति वा अहोरत्ताति वा पक्खाति वा मासाति वा उडूति वा अयणाति वा संवच्छराति वा जुगाति वा वाससयाति वा वाससहस्साइ वा वाससतसहस्साइ वा वासकोडीइ वा पुव्वगाति वा पुव्वाति वा तुडियंगाति वा तुडियाति वा अडडगाति वा अडडाति वा अववगाति वा अववाति वा हूहूअगाति वा हूहूयाति वा उप्पलगाति वा उप्पलाति वा पउमगाति वा पउमाति वा णलिणगाति वा णलिणाति वा

जीवाजीव-पदम्

समयइति वा आवलिकाइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।

आनप्राणइति वा स्तोकइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।

क्षणइति वा लवइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।
एवम्—मुहूर्त्तइति वा अहोरात्रइति वा पक्षइति वा मासइति वा ऋतुइति वा अयनमिति वा सवत्सरइति वा युगमिति वा वर्षशतमिति वा वर्षसहस्रमिति वा वर्षशतसहस्रमिति वा वर्षकोटिरिति वा पूर्वाङ्गमिति वा पूर्वमिति वा त्रुटिताङ्गमिति वा त्रुटितमिति वा अटटाङ्गमिति वा अटटमिति वा अववाङ्गमिति वा अववमिति वा हूहूकाङ्गमिति वा हूहूकमिति वा उत्पलाङ्गमिति वा उत्पलमिति वा पद्माङ्गमिति वा पद्ममिति वा नलिनाङ्गमिति वा नलिनमिति वा

जीवाजीव-पद

३८७ समय और आवलिका—
ये जीव-अजीव दोनो हैं।[१२२]

३८८ आनप्राण और स्तोक—
ये जीव-अजीव दोनो हैं।[१२३]

३८६ क्षण और लव
मुहूर्त्त और अहोरात्र
पक्ष और मास
ऋतु और अयन
सवत्सर और युग
सौ वर्ष और हजार वर्ष
लाख वर्ष और करोड वर्ष
पूर्वाङ्ग और पूर्व
त्रुटिताङ्ग और त्रुटित,
अटटाग और अटट
अववाग और अवव
हूहूकाग और हूहूक
उत्पलाग और उत्पल
पद्माग और पद्म
नलिनाग और नलिन

अत्थणिकुरगाति वा अत्थणिकुराति वा अउअगाति वा अउआति वा णउअगाति वा णउआति वा पउतगाति वा पउताति वा चूलियगाति वा चूलियाति वा सीसपहेलियगाति वा सीसपहेलियाति वा पलिओवमाति वा सागरोवमाति वा ओसप्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

अर्थनिकुराङ्गमिति वा अर्थनिकुरमिति वा अयुताङ्गमिति वा अयुतमिति वा नयुताङ्गमिति वा नयुतमिति वा प्रत्युताङ्गमिति वा प्रयुतमिति वा चूलिकाङ्गमिति वा चूलिकाइति वा शीर्षप्रहेलिकाङ्गमिति वा शीर्षप्रहेलिकाइति वा पल्योपममिति वा सागरोपममिति वा अवसर्पिणीति वा उत्सर्पिणीति वा—जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।

अर्थनिकुराग और अर्थनिकुर
अयुताग और अयुत
नयुताग और नयुत
प्रयुताग और प्रयुत
चूलिकाग और चूलिका
शीर्षप्रहेलिकाग और शीर्षप्रहेलिका
पल्योपम और सागरोपम
अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी—
ये सभी जीव-अजीव दोनों हैं।[१४]

३९० गामाति वा णगराति वा णिगमाति वा रायहाणीति वा खेडाति वा कव्वडाति वा मडंबाति वा दोणमुहाति वा पट्टणाति वा आगराति वा आसमाति वा संवाहाति वा सण्णिवेसाइ वा घोसाइ वा आरामाइ वा उज्जाणाति वा वणाति वा वणसंडाति वा वावीति वा पुक्खरणीति वा सराति वा सरपंतीति वा अगडाति वा तलागाति वा दहाति वा णदीति वा पुढवीति वा उदहीति वा वातखंधाति वा उवासंतराति वा वलयाति वा विग्गहाति वा दीवाति वा समुद्दाति वा वेलाति वा वेइयाति वा दाराति वा तोरणाति वा णेरइयाति वा णेरइयावासाति वा जाव वेमाणियाइ वा वेमाणियावासाइ वा कप्पाति वा कप्पविमाणावासाति वा वासाति वा

ग्रामाइति वा नगराणीति वा निगमाइति वा राजधान्यइति वा खेटानीति वा कर्वटानीति वा मडम्बानीति वा द्रोणमुखानीति वा पत्तनानीति वा आकराइति वा आश्रमाइति वा संवाधाइति वा सन्निवेशाइति वा घोषाइति वा आरामाइति वा उद्यानानीति वा वनानीति वा वनषण्डाइति वा वाप्यइति वा पुष्करिण्यइति वा सरासीति वा सरपङ्क्तयइति वा अवटाइति वा तडागा इति वा द्रहाइति वा नद्यइति वा पृथिव्यइति वा उदधयइति वा वातस्कन्धाइति वा अवकाशान्तराणीति वा वलयाइति वा विग्रहाइति वा द्वीपाइति वा समुद्राइति वा वेलाइति वा वेदिकाइति वा द्वाराणीति वा तोरणानीति वा नैरयिकाइति वा नैरयिकावासाइति वा यावत् वैमानिकाइति वा वैमानिकावासाइति वा कल्पाइति वा कल्पविमानावासाइति वा वर्षाणीति वा वर्षधरपर्वताइति वा कूटानीति वा कूटागाराणीति वा

३९० ग्राम और नगर
निगम और राजधानी
खेट और कर्वट
मडंब और द्रोणमुख
पत्तन और आकर
आश्रम और संवाह
सन्निवेश और घोष
आराम और उद्यान
वन और वनषंड
वापी और पुष्करिणी
सर और सरपंक्ति
कूप और तालाब
द्रह और नदी
पृथ्वी और उदधि
वातस्कन्ध और अवकाशान्तर
वलय और विग्रह
द्वीप और समुद्र
वेला और वेदिका
द्वार और तोरण
नैरयिक और नैरयिकावास तथा वैमानिक तक के सभी दण्डक और उनके आवास
कल्प और कल्पविमानावास
वर्ष और वर्षधर-पर्वत

वासधरपव्वताति वा कूडाति वा कूडागाराति वा विजयाति वा रायहाणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति ।

विजयाइति वा राजधान्यइति वा— जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते ।

कूट और कूटागार
विजय और राजधानी—
ये सभी जीव-अजीव दोनों हैं।[११८]

३६१ छायाति वा आतवाति वा दोसिणाति वा अधकाराति वा ओमाणाति वा उम्माणाति वा अतियाणगिहाति वा उज्जाण-गिहाति वा अवलिंवाति वा सणिप्पवाताति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ ।

छायेति वा आतपइति वा ज्योत्स्नेति वा अन्धकारमिति वा अवमानमिति वा उन्मानमिति वा अतियानगृहाणीति वा उद्यानगृहाणीति वा अवलिम्बाइति वा सनिष्प्रवाता इति वा— जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते ।

३६१ छाया और आतप
ज्योत्सना और अन्धकार
अवमान और उन्मान
अतियानगृह[१२१] और उद्यानगृह
अवलिम्ब[१२२] और सनिष्प्रवात[१२८]—
ये सभी जीव-अजीव दोनों हैं।

३६२ दो रासी पण्णत्ता, त जहा— जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव ।

द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— जीवराशिश्चैव, अजीवराशिश्चैव ।

३६२ राशि दो हैं—
जीवराशि, अजीवराशि ।

कम्म-पदं

कर्म-पदम्

कर्म-पद

३६३ दुविहे वधे पण्णत्ते, त जहा— पेज्जवधे चेव, दोसवधे चेव ।

द्विविधो वन्ध प्रज्ञप्त , तद्यथा— प्रेयोवन्धश्चैव दोपवन्धश्चैव ।

३६३ वन्ध दो प्रकार का है—
प्रेयो वन्ध, द्वेप वन्ध ।

३६४ जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म वधति, त जहा— रागेण चेव, दोसेण चेव ।

जीवा द्वाभ्या स्थानाभ्या पाप कर्म वन्धन्ति, तद्यथा— रागेण चैव, दोपेण चैव ।

३६४ जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का वन्ध करते हैं—
राग से, द्वेप से ।

३६५ जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पावं कम्म उदीरेंति, त जहा— अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्या स्थानाभ्या पाप कर्म उदीरयन्ति, तद्यथा— आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया, औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६५ जीव दो स्थानो से पाप-कर्म की उदीरणा करते हैं—आभ्युपगमिकी (स्वीकृत तपस्या आदि) वेदना से, औपक्रमिकी (रोग आदि) वेदना से ।

३६६ •जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म वेदेंति, त जहा— अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्या स्थानाभ्या पाप कर्म वेदयन्ति, तद्यथा— आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया, औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६६ जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का वेदन करते हैं—
आभ्युपगमिकी वेदना से,
औपक्रमिकी वेदना से ।[१२९]

३६७ जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म णिज्जरेंति, त जहा°— अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्या स्थानाभ्या पाप कर्म निर्जरयन्ति तद्यथा— आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया, औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६७ जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का निर्जरण करते हैं—
आभ्युपगमिकी वेदना से,
औपक्रमिकी वेदना से ।

अत्त-णिज्जाण-पदं

३९८ दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुसित्ता ण णिज्जाति, त जहा—
देसेणवि आता सरीर फुसित्ता ण णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं फुसित्ता ण णिज्जाति ।

३९९ •दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुरित्ता ण णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीर फुरित्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरग फुरित्ता ण णिज्जाति ।

४०० दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुडित्ता ण णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीर फुडित्ता ण णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरग फुडित्ता ण णिज्जाति ।

४०१ दोहिं ठाणेहिं आता सरीर सवट्ट-इत्ता णं णिज्जाति, त जहा—
देसेणवि आता सरीरं सवट्टइत्ता ण णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरग संवट्ट-इत्ता ण णिज्जाति ।

४०२ दोहिं ठाणेहिं आता सरीर णिवट्टइत्ता ण णिज्जाति, त जहा—
देसेणवि आता सरीर णिवट्टइत्ता ण णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं णिवट्ट-इत्ता णं णिज्जाति ।°

आत्म-निर्याण-पदम्

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा शरीर स्पृष्ट्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीर स्पृष्ट्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरक स्पृष्ट्वा निर्याति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा शरीर स्फोरयित्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरक स्फोरयित्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरक स्फोरयित्वा निर्याति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा शरीर स्फोटयित्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीर स्फोटयित्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरक स्फोटयित्वा निर्याति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा शरीर सवर्त्त्य निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीर सवर्त्त्य निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरक सवर्त्त्य निर्याति ।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा शरीर निवर्त्त्य निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीर निवर्त्त्य निर्याति
सर्वेणापि आत्मा शरीरक निवर्त्त्य निर्याति ।

आत्म-निर्याण-पद

३९८ दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श कर वाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशो से आत्मा शरीर का स्पर्श कर वाहर निकलती है,
सव प्रदेशो से आत्मा शरीर का स्पर्श कर वाहर निकलती है ।

३९९ दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्फुरित (स्पन्दित) कर वाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशो से आत्मा शरीर को स्फुरित कर वाहर निकलती है,
सव प्रदेशो से आत्मा शरीर को स्फुरित कर वाहर निकलती है ।

४०० दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुटित (स्फोट-युक्त) कर वाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशो से आत्मा शरीर को स्फुटित कर वाहर निकलती है,
सव प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुटित कर वाहर निकलती है ।

४०१ दो प्रकार से आत्मा शरीर को सवर्तित (सकुचित) कर वाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशो से आत्मा शरीर को सवर्तित कर वाहर निकलती है,
सव प्रदेशो से आत्मा शरीर को सवर्तित कर वाहर निकलती है ।

४०२ दो प्रकार से आत्मा शरीर को निर्वतित (जीव प्रदेशो से अलग) कर वाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशो से आत्मा शरीर को निर्वतित कर वाहर निकलती है,
सव प्रदेशों से आत्मा शरीर को निर्वतित कर वाहर निकलती है ।

खय-उवसम-पदं

४०३ दोहिं ठाणेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—
खएण चेव, उवसमेण चेव।

४०४ •दोहिं ठाणेहिं आता—
केवलं बोधिं बुज्झेज्जा,
केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा,
केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा,
केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा,
केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा,
केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
खएण चेव, उवसमेण चेव।

क्षयोपशम-पदम्

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
क्षयेण चैव, उपशमेन चैव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा—
केवलां बोधिं बुध्येत,
केवलं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत्,
केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसेत्,
केवलेन संयमेन संयच्छेत्,
केवलेन संवरेण संवृणुयात्,
केवलमाभिनिबोधिकज्ञानं उत्पादयेत्,
केवलं श्रुतज्ञानं उत्पादयेत्,
केवलं अवधिज्ञानं उत्पादयेत्,
केवलं मनःपर्यवज्ञानं उत्पादयेत्,
तद्यथा—
क्षयेण चैव, उपशमेन चैव

क्षयोपशम-पद

४०३ दो स्थानों से आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म को सुन पाती है—
कर्मपुद्गलों के क्षय से
कर्मपुद्गलों के उपशम से] क्षयोपशम से[111]

४०४ दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करती है—
मुंड होकर, घर छोड़कर सम्पूर्ण अनगारिता—साधुपन को पाती है।
सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करती है।
सम्पूर्ण संयम के द्वारा संयत होती है।
सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होती है।
विशुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करती है—
क्षय से
और उपशम से] क्षयोपशम से।

ओवमिय-काल-पदं

४०५ दुविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे चेव, सागरोवमे चेव।
से किं तं पलिओवमे? पलिओवमे—
संगहणी-गाहा—
१ जं जोयणविच्छिण्णं, पल्लं एगाहियपरूढाणं।
होज्ज णिरंतरणिचितं, भरितं वालग्गकोडीणं॥
२ वाससए वाससए, एक्केक्के अवहडंमि जो कालो।

औपमिक-काल-पदम्

द्विविधं अद्ध्वौपमिकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पल्योपमञ्चैव, सागरोपमञ्चैव।
तत् किं पल्योपमम्? पल्योपमम्—
संग्रहणी-गाथा—
१. यत् योजनविस्तीर्णं, पल्यं एकाहिकप्ररूढानाम्।
भवेत् निरन्तरनिचितं, भरितं वालाग्रकोटीनाम्॥
२ वर्षशते वर्षशते, एकैकस्मिन् अपहृते यः कालः।

औपमिक-काल-पद

४०५ औपमिक[111] अद्धा-काल दो प्रकार का है—पल्योपम, सागरोपम।
भंते! पल्योपम किसे कहा जाता है?
संग्रहणी-गाथा—
एक अनाज भरने का गड्ढा है। वह एक योजन लम्बा-चौड़ा है। उसमें एक से सात दिन के उगे हुए वालाग्रों के खण्ड ठूस-ठूसकर भरे हुए हैं। सौ-सौ वर्षों से उनमें से एक-एक वालाग्र-खण्ड निकाला जाता है। इस प्रकार उस

सो कालो बोद्धव्वो,
उवमा एगस्स पल्लस्स ॥
३ एएसिं पल्लाणं,
कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिता।
तं सागरोवमस्स उ,
एगस्स भवे परीमाणं ॥

स काल बोद्धव्य,
उपमा एकस्य पल्यस्य ॥
३ एतेषां पल्यानां,
कोटाकोटी भवेत् दश गुणिता।
तत् सागरोपमस्य तु,
एकस्य भवेत् परिमाणम् ॥

गड्ढे को खाली होने में जितना समय लगे उसे पल्योपमकाल कहा जाता है। दस कोटी-कोटी पल्योपम जितने काल को सागरोपमकाल कहा जाता है।

पाव-पदं

४०६ दुविहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—
आयपइट्ठिए चेव,
परपइट्ठिए चेव।

४०७ °दुविहे माणे, दुविहा माया,
दुविहे लोभे, दुविहे पेज्जे,
दुविहे दोसे, दुविहे कलहे,
दुविहे अब्भक्खाणे, दुविहे पेसुण्णे,
दुविहे परपरिवाए,
दुविहा अरतिरती,
दुविहे मायामोसे,

दुविहे मिच्छादंसणसल्ले पण्णत्ते,
तं जहा—आयपइट्ठिए चेव,
परपइट्ठिए चेव।
एवं णेरइयाणं जाव वेमाणि-
याणं°।

पाप-पदम्

द्विविध क्रोध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
आत्मप्रतिष्ठितश्चैव,
परप्रतिष्ठितश्चैव।

द्विविध मान, द्विविधा माया,
द्विविध लोभ, द्विविध प्रेयान्,
द्विविध दोष, द्विविध कलह,
द्विविध अभ्याख्यानम्, द्विविध पैशुन्यम्,
द्विविध परपरिवाद,
द्विविधा अरतिरति,
द्विविधा मायामृषा,

द्विविध मिथ्यादर्शनशल्य प्रज्ञप्तम्,
तद्यथा—आत्मप्रतिष्ठितं चैव,
परप्रतिष्ठितं चैव।
एव नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

पाप-पद

४०६ क्रोध दो प्रकार का होता है—
आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित।[111]

४०७ मान दो प्रकार का, माया दो प्रकार की,
लोभ दो प्रकार का, प्रेम दो प्रकार का,
द्वेष दो प्रकार का, कलह दो प्रकार का,
अभ्याख्यान दो प्रकार का,
पैशुन्य दो प्रकार का,
परपरिवाद दो प्रकार का,
अरति-रति दो प्रकार की,
मायामृषा दो प्रकार की।
मिथ्यादर्शनशल्य दो प्रकार का होता है—
आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित।

इसी प्रकार नैरयिको तथा वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के जीवों के क्रोध आदि दो-दो प्रकार के होते हैं।

जीव-पदं

४०८ दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
तसा चेव, थावरा चेव।

४०९ दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव।

जीव-पदम्

द्विविधा संसारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
त्रसाश्चैव, स्थावराश्चैव।

द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सिद्धाश्चैव, असिद्धाश्चैव।

जीव-पद

४०८ संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—
त्रस, थावर।

४०९ सब जीव दो प्रकार के होते हैं—
सिद्ध, असिद्ध।

४१० दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
सइंदिया चेव, अणिंदिया चेव।
•सकायच्चेव, अकायच्चेव।
सजोगी चेव, अजोगी चेव।
सवेया चेव, अवेया चेव।
सकसाया चेव, अकसाया चेव।
सलेसा चेव, अलेसा चेव।
णाणी चेव, अणाणी चेव।
सागारोवउत्ता चेव,
अणागारोवउत्ता चेव।
आहारगा चेव, अणाहारगा चेव।
भासगा चेव, अभासगा चेव।
चरिमा चेव, अचरिमा चेव।
ससरीरी चेव, असरीरी चेव°।

द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सेन्द्रियाश्चैव, अनिन्द्रियाश्चैव।
सकायाश्चैव, अकायाश्चैव।
सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव।
सवेदाश्चैव, अवेदाश्चैव।
सकषायाश्चैव, अकषायाश्चैव।
सलेश्याश्चैव, अलेश्याश्चैव।
ज्ञानिनश्चैव, अज्ञानिनश्चैव।
साकारोपयुक्ताश्चैव,
अनाकारोपयुक्ताश्चैव।
आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव।
भाषकाश्चैव, अभाषकाश्चैव।
चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव।
सशरीरिणश्चैव, अशरीरिणश्चैव।

४१० सब जीव दो-दो प्रकार के होते हैं[११३]—
सइन्द्रिय और अनिन्द्रिय।
सकाय और अकाय।
सयोगी और अयोगी।
सवेद और अवेद।
सकषाय और अकषाय।
सलेश्य और अलेश्य।
ज्ञानी और अज्ञानी।
साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त।
आहारक और अनाहारक।
भाषक और अभाषक।
चरम और अचरम।
सशरीरी और अशरीरी।

मरण-पदं

४११ दो मरणाइं समणेण भगवता महावीरेण समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं णो णिच्चं वुइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति, त जहा—
वलयमरणे चेव,
वसट्टमरणे चेव।

४१२ एवं—णियाणमरणे चेव,
तब्भवमरणे चेव।
गिरिपडणे चेव,
तरुपडणे चेव।
जलपवेसे चेव,
जलणपवेसे चेव।
विसभक्खणे चेव,
सत्थोवाडणे चेव।

मरण-पदम्

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नो नित्यं वर्णिते नो नित्यं कीर्त्तिते नो नित्यं उक्ते नो नित्यं प्रशस्ते नो नित्यं अभ्यनुज्ञाते भवत, तद्यथा—
वलन्मरणञ्चैव,
वशार्त्तमरणञ्चैव।

एवम्—निदानमरणञ्चैव,
तद्भवमरणं चैव।
गिरिपतनं चैव,
तरुपतनं चैव।
जलप्रवेशश्चैव,
ज्वलनप्रवेशश्चैव।
विषभक्षणं चैव,
शस्त्रावपाटनं चैव।

मरण-पद

४११ श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए दो प्रकार के मरण[११४] श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अनुमत नहीं हैं—
वलन्—परिषहो से बाधित होने पर जो व्यक्ति सयम से निवर्तमान होते हैं, उनका मरण। वशार्त—इन्द्रियो के अधीन बने हुए पुरुष का मरण।

४१२ इसी प्रकार—निदानमरण,
तद्भवमरण
गिरिपतन—पहाड से गिरकर मरना
तरुपतन—वृक्ष से गिरकर मरना
जलप्रवेश कर मरना
अग्निप्रवेश कर मरना
विषभक्षण कर मरना
शस्त्र से घात कर मरना।

४१३ दो मरणाइ °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाण णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइ णो णिच्च कित्तियाइ णो णिच्च बुइयाइं णो णिच्च पसत्याइं° णो णिच्च अब्भणुण्णायाइ भवंति । कारणे पुण अप्पडिकुट्ठाइ, तं जहा—
वेहाणसे चेव, गिद्धपट्ठे चेव ।

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थानां नो नित्य वर्णिते नो नित्य कीर्त्तिते नो नित्य उक्ते नो नित्य प्रशस्ते नो नित्य अभ्यनुज्ञाते भवत । कारणे पुन अप्रतिक्रुष्टे, तद्यथा—वैहायसञ्चैव,
गृद्धस्पृष्टञ्चैव ।

४१३ ये दो-दो प्रकार के मरण श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अनुमत नहीं है । किन्तु शील-रक्षा आदि प्रयोजन होने पर वे अनुमत भी हैं—
वैहायस—फासी लेकर मरना ।
गृद्धस्पृष्ट—कोई व्यक्ति हाथी आदि बृहत्काय वाले जानवरो के शव मे प्रवेश कर शरीर का व्युत्सर्ग करता है, वहा गीध आदि पक्षी शव के साथ-साथ उम शरीर को भी नोच डालते हैं। इस प्रकार उसका मरण होता है ।

४१४ दो मरणाइ समणेणं भगवया महावीरेण समणाण णिग्गयाण णिच्च वण्णियाइ °णिच्चं कित्तियाइ णिच्चं बुइयाइं णिच्च पसत्याइ णिच्च° अब्भणुण्णाताइं भवति, तं जहा—
पाओवगमणे चेव,
भत्तपच्चक्खाणे चेव ।

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णिते नित्य कीर्त्तिते नित्य उक्ते नित्य प्रशस्ते नित्य अभ्यनुज्ञाते भवत, तद्यथा—
प्रायोपगमनञ्चैव,
भक्तप्रत्याख्यानञ्चैव ।

४१४ श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अनुमत हैं—
प्रायोपगमन, भक्तप्रत्याख्यान ।

४१५. पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णीहारिमे चेव,
अणीहारिमे चेव ।
णियमं अपडिकम्मे ।

प्रायोपगमनं द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निर्हारि चैव, अनिर्हारि चैव ।
नियम अप्रतिकर्म ।

४१५ प्रायोपगमन दो प्रकार का होता है—
निर्हारि, अनिर्हारि ।
प्रायोपगमन नियमत अप्रतिकर्म होता है।

४१६. भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—णीहारिमे चेव,
अणीहारिमे चेव ।
णियम सपडिकम्मे ।

भक्तप्रत्याख्यान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निर्हारि चैव, अनिर्हारि चैव ।
नियम सप्रतिकर्म ।

४१६ भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का होता है—
निर्हारि, अनिर्हारि ।
भक्तप्रत्याख्यान नियमत सप्रतिकर्म होता है ।

लोग-पदं

४१७ के अय लोगे ?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

४१८ के अणता लोगे ?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

लोक-पदम्

को य लोक. ?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव ।

के अनन्ता लोके ?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव ।

लोक-पद

४१७ भते ! यह लोक क्या है ?
जीव और अजीव ही लोक है ।

४१८ भते ! लोक मे अनन्त क्या है ?
जीव और अजीव ।

४१९ के सासया लोगे ?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।

के शाश्वता लोके ?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव।

४१९ भते ! लोक मे शाश्वत क्या है ?
जीव और अजीव।

वोधि-पद

४२० दुविहा वोधी पण्णत्ता, त जहा—
णाणवोधी चेव, दसणवोधी चेव।
४२१ दुविहा वुद्धा पण्णत्ता, त जहा—
णाणवुद्धा चेव, दसणवुद्धा चेव।

बोधि-पदम्

द्विविधा वोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ज्ञानवोधिश्चैव, दर्शनवोधिश्चैव।
द्विविधा वुद्धा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ज्ञानवुद्धाश्चैव, दर्शनवुद्धाश्चैव।

वोधि-पद

४२० वोधि दो प्रकार की है—
ज्ञान-वोधि, दर्शन-वोधि।
४२१ बुद्ध दो प्रकार के हैं—
ज्ञानवुद्ध, दर्शनवुद्ध।

मोह-पदं

४२२ °दुविहे मोहे पण्णत्ते, त जहा—
णाणमोहे चेव, दसणमोहे चेव।
४२३ दुविहा मूढा पण्णत्ता, त जहा—
णाणमूढा चेव, दसणमूढा चेव।°

मोह-पदम्

द्विविधो मोह प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानमोहश्चैव, दर्शनमोहश्चैव।
द्विविधा मूढा प्रज्ञप्ता तद्यथा—
ज्ञानमूढाश्चैव, दर्शनमूढाश्चैव।

मोह-पद

४२२ मोह दो प्रकार का है—
ज्ञानमोह, दर्शनमोह।[११५]
४२३ मूढ दो प्रकार के हैं—
ज्ञानमूढ, दर्शनमूढ।

कम्म-पद

४२४ णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
देसणाणावरणिज्जे चेव,
सव्वणाणावरणिज्जे चेव।
४२५ दरिसणावरणिज्जे कम्मे° दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
देसदरिसणावरणिज्जे चेव,
सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव।°
४२६ वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सातावेयणिज्जे चेव,
असातावेयणिज्जे चेव।
४२७ मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—दसणमोहणिज्जे चेव,
चरित्तमोहणिज्जे चेव।
४२८ आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अद्धाउए चेव,
भवाउए चेव।

कर्म-पदम्

ज्ञानावरणीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
देशज्ञानावरणीयञ्चैव,
सर्वज्ञानावरणीयञ्चैव।
दर्शनावरणीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
देशदर्शनावरणीयञ्चैव,
सर्वदर्शनावरणीयञ्चैव।
वेदनीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सातवेदनीयञ्चैव,
असातवेदनीयञ्चैव।
मोहनीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—दर्शनमोहनीयञ्चैव,
चरित्रमोहनीयञ्चैव।
आयु कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अद्ध्वायुश्चैव, भवायुश्चैव।

कर्म-पद

४२४ ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का है—
देशज्ञानावरणीय, सर्वज्ञानावरणीय।
४२५ दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का है—
देशदर्शनावरणीय, सर्वदर्शनावरणीय।
४२६ वेदनीयकर्म दो प्रकार का है—
सातवेदनीय, असातवेदनीय।
४२७ मोहनीयकर्म दो प्रकार का है—
दर्शनमोहनीय, चरित्रमोहनीय।
४२८ आयुष्यकर्म दो प्रकार का है—
अद्ध्वायुष्य—कायस्थिति की आयु
भवायुष्य—उसी जन्म की आयु।[११६]

४२९ णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा— सुभणामे चेव, असुभणामे चेव।

नाम कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— शुभनाम चैव, अशुभनाम चैव।

४२९ नामकर्म दो प्रकार का है— शुभनाम, अशुभनाम।

४३० गोत्ते कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—उच्चागोते चेव, णीयागोते चेव।

गोत्र कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— उच्चगोत्रञ्चैव, नीचगोत्रञ्चैव।

४३० गोत्र कर्म दो प्रकार का है— उच्चगोत्र, नीचगोत्र।

४३१ अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहति य आगामिपह चेव।

अन्तरायिक कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रत्युत्पन्नविनाशित चैव, पिधत्ते च आगामिपथ चैव।

४३१ अन्तराय कर्म दो प्रकार का है— प्रत्युत्पन्न-विनाशित—वर्तमान मे प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला, भविष्य मे होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला[117]।

मुच्छा-पदं

मूर्च्छा-पदम्

मूर्च्छा-पद

४३२ दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, तं जहा— पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव।

द्विविधा मूर्च्छा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— प्रेयोवृत्तिका चैव, दोपवृत्तिका चैव।

४३२ मूर्च्छा दो प्रकार की है—प्रेयस्प्रत्यया— प्रेम के कारण होने वाली मूर्च्छा, द्वेपप्रत्यया—द्वेप के कारण होने वाली मूर्च्छा।

४३३ पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—माया चेव, लोभे चेव।

प्रेयोवृत्तिका मूर्च्छा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—माया चैव, लोभश्चैव।

४३३ प्रेयस्प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की है— माया, लोभ।

४३४ दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

दोपवृत्तिका मूर्च्छा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्रोधश्चैव, मानश्चैव।

४३४ द्वेपप्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की है— क्रोध, मान।

आराहणा-पदं

आराधना-पदम्

आराधना-पद

४३५ दुविहा आराहणा पण्णत्ता, त जहा—धम्मियाराहणा चेव, केवलिआराहणा चेव।

द्विविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा— धार्मिक्याराधना चैव, कैवलिक्याराधना चैव।

४३५ आराधना दो प्रकार की है— धार्मिकी आराधना—धार्मिकों के द्वारा की जाने वाली आराधना, कैवलिकी आराधना[118]—केवलियो के द्वारा की जाने वाली आराधना।

४३६ धम्मियाराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुयधम्माराहणा चेव, चरित्रधम्माराहणा चेव।

धार्मिक्याराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रुतधर्माराधना चैव, चरित्रधर्माराधना चैव।

४३६ धार्मिकी आराधना दो प्रकार की है— श्रुतधर्म की आराधना, चरित्रधर्म की आराधना।

४३७ केवलिआराहणा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अतकिरिया चेव, कप्पविमाणोववत्तिआ चेव।

कैवलिक्याराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अन्तक्रिया चैव, कल्पविमानोपपत्तिका चैव।

४३७ कैवलिकी आराधना दो प्रकार की है— अन्तक्रिया, कल्पविमानोपपत्तिका।[119]

तित्थगर-वण्ण-पदं

४३८ दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेण पण्णत्ता, त जहा—
मुणिसुव्वए चेव, अरिट्ठणेमी चेव।

४३९ दो तित्थगरा पियगुसामा वण्णेण, पण्णत्ता, त जहा—मल्ली चेव, पासे चेव।

४४० दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेण पण्णत्ता, त जहा—पउमप्पहे चेव, वासुपुज्जे चेव।

४४१ दो तित्थगरा चदगोरा वण्णेण पण्णत्ता, त जहा—चदप्पभे चेव, पुप्फदते चेव।

तीर्थंकर-वर्ण-पदम्

द्वौ तीर्थंकरौ नीलोत्पलसमौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
मुनिसुव्रतश्चैव, अरिष्टनेमिश्चैव।

द्वौ तीर्थंकरौ प्रियङ्गुश्यामौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—मल्ली चैव, पार्श्वश्चैव।

द्वौ तीर्थंकरौ पद्मगौरौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पद्मप्रभुश्चैव, वासुपूज्यश्चैव।

द्वौ तीर्थंकरौ चन्द्रगौरौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—चन्द्रप्रभश्चैव, पुष्पदन्तश्चैव।

तीर्थंकर-वर्ण-पद

४३८ दो तीर्थंकर नीलोत्पल के समान नीलवर्ण वाले थे—
मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमी।

४३९ दो तीर्थंकर प्रियङ्गु—कागनी के समान श्यामवर्ण वाले थे—
मल्लीनाथ, पार्श्वनाथ।

४४० दो तीर्थंकर पद्म के समान गौरवर्ण वाले थे—पद्मप्रभु, वासुपूज्य।

४४१ दो तीर्थंकर चन्द्र के समान गौरवर्ण वाले थे—चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त।

पुव्ववत्थु-पदं

४४२ सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दुवे वत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वे वस्तुनी प्रज्ञप्ते।

पूर्ववस्तु-पद

४४२ सत्यप्रवाद पूर्व के दो वस्तु—विभाग हैं।

णक्खत्त-पदं

४४३ पुव्वाभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४४ उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४५. •पुव्वफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४६ उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।°

नक्षत्र-पदम्

पूर्वभाद्रपदानक्षत्र द्वितार प्रज्ञप्तम्।

उत्तरभाद्रपदानक्षत्र द्वितारं प्रज्ञप्तम्

पूर्वफल्गुनीनक्षत्र द्वितार प्रज्ञप्तम्।

उत्तरफल्गुनीनक्षत्र द्वितार प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

४४३ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे हैं।

४४४ उत्तरभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे हैं।

४४५ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे हैं।

४४६ उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे हैं।

समुद्द-पदं

४४७ अतो ण मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, त जहा—लवणे चेव, कालोदे चेव।

समुद्र-पदम्

अन्तर्मनुष्यक्षेत्रस्य द्वौ समुद्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—लवणश्चैव, कालोदश्चैव।

समुद्र-पद

४४७ मनुष्यक्षेत्र के मध्य मे दो समुद्र हैं—
लवण, कालोद।

चक्कवट्टि-पदं

४४८. दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा—
सुभूमे चेव, बंभदत्ते चेव।

चक्रवर्त्ति-पदम्

द्वौ चक्रवर्तिनौ अपरित्यक्तकामभोगौ कालमासे कालं कृत्वा अधःसप्तमायां पृथिव्यां अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वाय उपपन्नौ, तद्यथा—
सुभूमश्चैव, ब्रह्मदत्तश्चैव।

चक्रवर्त्ति-पद

४४८ दो चक्रवर्ती काम-भोगों को छोड़े बिना, मरणकाल में मरकर नीचे की ओर सातवीं पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए—
सुभूम[१४०], ब्रह्मदत्त[१४१]।

देव-पदं

४४९ असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५०. सोहम्मे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५१. ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५२ सणकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५३. माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५४ दोसु कप्पेसु कप्पित्थियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५५ दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५६ दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५७ दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
सणकुमारे चेव, माहिंदे चेव।

देव-पदम्

असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवानां उत्कर्षेण देशोने द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सौधर्मे कल्पे देवानां उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

ईशाने कल्पे देवानां उत्कर्षेण सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सनत्कुमारे कल्पे देवानां जघन्येन द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

माहेन्द्रे कल्पे देवानां जघन्येन सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

द्वयोः कल्पयोः कल्पस्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः तेजोलेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः कायपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः स्पर्शपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सनत्कुमारे चैव, माहेन्द्रे चैव।

देव-पद

४४९ असुरेन्द्र वर्जित[१४२] भवनवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो पल्योपम से कुछ कम है।

४५० सौधर्म कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की है।

४५१ ईशान कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४५२ सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

४५३ माहेन्द्र कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४५४ दो कल्पों में कल्प-स्त्रियां [देवियां] होती हैं—सौधर्म में, ईशान में।

४५५ दो कल्पों में देव तेजोलेश्या से युक्त होते हैं—सौधर्म में, ईशान में।

४५६ दो कल्पों में देव काय-परिचारक [संभोग करने वाले] होते हैं—
सौधर्म में, ईशान में।

४५७ दो कल्पों में देव स्पर्श-परिचारक [देवी के स्पर्श मात्र से वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—सनत्कुमार में, माहेन्द्र में।

४५८ दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
बम्भलोगे चेव, लंतगे चेव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः रूपपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ब्रह्मलोके चैव, लान्तके चैव।

४५८ दो कल्पों में देव रूप-परिचारक [देवी का रूप देखकर वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
ब्रह्मलोक में, लांतक में।

४५९. दोसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः शब्दपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
महाशुक्रे चैव, सहस्रारे चैव।

४५९ दो कल्पों में देव शब्द-परिचारक [देवी के शब्द सुनकर वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
महाशुक्र में, सहस्रार में।

४६०. दो इंदा मणपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—पाणए चेव, अच्चुए चेव।

द्वौ इन्द्रौ मनःपरिचारकौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—प्राणते चैव, अच्युते चैव।

४६० दो इन्द्र[११] मनःपरिचारक [संकल्प मात्र से वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
प्राणत, अच्युत।

पावकम्म-पदं

४६१ जीवा णं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवाः द्विस्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
त्रसकायनिर्वर्त्तिताश्च,
स्थावरकायनिर्वर्त्तिताश्च।

पापकर्म-पद

४६१ जीवों ने द्वि-स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पाप-कर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे—
त्रसकाय निर्वर्तित—त्रसकाय के रूप में उपार्जित पुद्गलों का,
स्थावरकाय निर्वर्तित—स्थावरकाय के रूप में उपार्जित पुद्गलों का।

४६२. °जीवा णं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए°—
उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा, बंधिंसु वा बंधेंति वा बंधिस्संति वा, उदीरिंसु वा उदीरेंति वा उदीरिस्संति वा, वेदेंसु वा वेदेंति वा वेदिस्संति वा, णिज्जरिंसु वा णिज्जरेंति वा णिज्जरिस्संति वा, °तं जहा—
तसकायणिव्वत्तिए चेव,
थावरकायणिव्वत्तिए चेव।°

जीवाः द्विस्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया—
उपाचैषुः वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा, अभान्त्सुः वा बध्नन्ति वा भन्त्स्यन्ति वा, उदैरिषुः वा उदीरयन्ति वा उदीरयिष्यन्ति वा, अवेदिषुः वा वेदयन्ति वा वेदयिष्यन्ति वा, निरजरिषुः वा निर्जरयन्ति वा निर्जरयिष्यन्ति वा, तद्यथा—त्रसकायनिर्वर्त्तिताश्च,
स्थावरकायनिर्वर्त्तिताश्च।

४६२ जीवों ने द्वि-स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पाप-कर्म के रूप में—
उपचय किया है, करते हैं और करेंगे।
बन्धन किया है, करते हैं और करेंगे।
उदीरण किया है, करते हैं और करेंगे।
वेदन किया है, करते हैं और करेंगे।
निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे—
त्रसकाय निर्वर्तित
स्थावरकाय निर्वर्तित।

पोग्गल-पदं

४६३. दुपएसिया खंधा अणता पण्णत्ता ।

४६४ दुपदेसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता ।

४६५. एवं जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

पुद्गल-पदम्

द्विप्रादेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

द्विप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

एव यावत् द्विगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

पुद्गल-पद

४६३ द्वि-प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।

४६४ द्वि-प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।

४६५ इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले और दो गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं, तथा शेष सभी वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शो के दो गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-२

१—वेद सहित (सू० १)

वेद का शाब्दिक अर्थ है अनुभूति। प्रस्तुत प्रकरण में वेद का अर्थ है—काम-वासना की अनुभूति। वेद के तीन प्रकार हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

पुरुषवेद—स्त्री के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

स्त्रीवेद—पुरुष के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

नपुंसकवेद—स्त्री और पुरुष दोनो के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

पुरुष मे पुरुष के प्रति, स्त्री के प्रति और नपुंसक के प्रति विकार भावना हो सकती है, इसलिए पुरुष मे तीनो ही वेद होते हैं। स्त्री और नपुंसक के लिए भी यही बात है।

२—रूप सहित (सू० १)

हजारो-हजारो वर्ष पहले [सुदूर अतीत मे] यह प्रश्न चर्चा का विषय रहा है कि जगत् जो दृश्यमान है, वही है या उसके अतिरिक्त भी है। जैन, बौद्ध, वैदिक आदि सभी दर्शनों में इस प्रश्न पर चिन्तन हुआ है। प्रस्तुत सूत्र में जैनदर्शन का चिन्तन है कि दृश्यमान जगत् रूपी और अरूपी दोनो हैं। संस्थान, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श सहित वस्तु को रूपी कहा जाता है। जिसमें संस्थान आदि न हो वह अरूपी होता है। वैदिक दर्शन ने भी जगत् को मूर्त और अमूर्त माना है।[1]

३—नो आकाश (सू० १)

'नो' शब्द के दो अर्थ होते हैं—

१ निषेध।

२ भिन्नार्थ।

निषेधार्थक 'नो' शब्द के द्वारा वस्तु का सर्वथा निषेध द्योतित होता है। भिन्नार्थक 'नो' शब्द के द्वारा उस वस्तु से भिन्न वस्तुओ का अस्तित्व द्योतित होता है।

प्रस्तुत प्रकरण में 'नो' शब्द का दूसरा अर्थ इष्ट है। अत 'नो आकाश' के द्वारा आकाश के अतिरिक्त पांच द्रव्यों—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय का प्रतिपादन किया गया है।

---

१ (क) शतपथब्राह्मण, १४।५।३।१
द्वे एव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैवाऽमूर्तञ्च।

(ख) बृहदारण्यक, २।३।१
द्वे वा व ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैवाऽमूर्तञ्च।

(ग) विष्णुपुराण, १।२२।५३
द्वे रूपे ब्रह्मणो रूपे, मूर्तञ्चामूर्तमेव च।

४-५—धर्म-अधर्म (सू० १)

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल की गति का उदासीन किन्तु अनिवार्य माध्यम।

अधर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल की स्थिति का उदासीन किन्तु अनिवार्य माध्यम।

६-४१—क्रिया (सू० २-३७)

प्रस्तुत आलापक में प्राणी की मुख्य-मुख्य सभी प्रवृत्तिया सकलित हैं। प्राणी-जगत् मे सर्वाधिक प्रवृत्तिशील मनुष्य है। उसकी मुख्य प्रवृत्तिया तीन हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। प्रयोजन के आधार पर इनके अनेक रूप बन जाते हैं। जीवन का अनिवार्य प्रश्न है जीविका। उसके लिए मनुष्य आरम्भ और परिग्रह की प्रवृत्ति करता है। आरम्भ और परिग्रह की प्रवृत्ति के साथ सुरक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। उसके लिए शस्त्र-निर्माण की प्रवृत्ति विकसित होती है।

मनुष्य मे मानसिक आवेग होते हैं। सामाजिक जीवन मे उन्हें प्रस्फुट होने का अवसर मिलता है। एक मनुष्य का किसी के साथ प्रेयस् का सम्बन्ध होता है और किसी के साथ द्वेष-पूर्ण। इस प्रवृत्ति-चक्र में वह किसी के प्रति अनुरक्त होता है और किसी को परितप्त करता है। किसी को शरण देता है और किसी का हनन करता है।

मनुष्य कुछ प्रवृत्तिया ज्ञानवश करता है और कुछ अज्ञानवश। कुछ आकाक्षा से प्रेरित होकर करता है और कुछ आकस्मिक ढग से कर लेता है।

मनुष्य अज्ञान या मोह की अवस्था मे असमीचीन प्रवृत्ति करता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर वह उनसे निवृत्त होता है। निवृत्ति-काल मे प्रमाद और आलस्य द्वारा बाधा उपस्थित किए जाने पर वह फिर असमीचीन प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार आत्यन्तिक निवृत्ति के पूर्व प्रवृत्ति का चक्र चलता रहता है। प्रस्तुत प्रकरण मे प्रवृत्ति की प्रेरणा, प्रकार और परिणाम—तीनो उपलब्ध होते हैं। अप्रत्याख्यान, आकाक्षा और प्रेयस्—ये प्रवृत्ति की प्रेरणाएं हैं। ईर्यापथिक और सापरायिक—ये कर्म-बध उसके परिणाम हैं। इनके मध्य मे उसके प्रकार सगृहीत हैं। प्रवृत्तियो का इतना बडा सकलन कर सूत्रकार ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की अवस्थाओं का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम स्थान के चौथे सूत्र के टिप्पण मे क्रिया के विषय मे सक्षिप्तसा लिखा गया है। प्रस्तुत प्रकरण मे उसके वर्गी-करणों पर विस्तार से विचार-विमर्श करना है।

क्रिया के तीन वर्गीकरण मिलते हैं। प्रथम वर्गीकरण सूत्रकृताग का है। उसमें तेरह क्रियाएं निर्दिष्ट हैं[1]—

१ अर्थदण्ड	८ अध्यात्म (मन) प्रत्ययिक
२. अनर्थदण्ड	९ मानप्रत्ययिक
३ हिंसादण्ड	१० मित्रद्वेषप्रत्ययिक
४ अकस्मात्दण्ड	११ मायाप्रत्ययिक
५. दृष्टिदोषदण्ड	१२ लोभप्रत्ययिक
६ मृषाप्रत्ययिक	१३. ऐर्यापथिक
७ अदत्तादानप्रत्ययिक	

दूसरा वर्गीकरण प्रस्तुत सूत्र (स्थानांग) का है। इसमें क्रियाओ के मुख्य और गौण भेद बहत्तर हैं।

तीसरा वर्गीकरण तत्त्वार्थसूत्र का है। उसमें पचीस क्रियाओ का निर्देश है[2]। वे इस प्रकार हैं[3]—

(१) सम्यक्त्व (२) मिथ्यात्व (३) प्रयोग (४) समादान (५) ईर्यापथ (६) काय (७) अधिकरण

---

१ सूत्रकृतांग, २।२।२।

२ तत्त्वार्थसूत्र, ६।६
अव्रत कषायेन्द्रियक्रिया पञ्च चतु पञ्च पञ्चविंशति संख्या पूर्वस्य भेदा।

३ तत्त्वार्थसूत्रभाष्य, ६।६।

(८) प्रदोष (९) परितापन (१०) प्राणातिपात (११) दर्शन (१२) स्पर्शन (१३) प्रत्यय (१४) समन्तानुपात (१५) अनाभोग (१६) स्वहस्त (१७) निसर्ग (१८) विदारण (१९) आनयन (२०) अनवकांक्षा (२१) आरम्भ (२२) परिग्रह (२३) माया (२४) मिथ्यादर्शन (२५) अप्रत्याख्यान।

प्रज्ञापना का बाईसवा पद क्रिया-पद है। उसमे कुछ क्रियाओं पर विस्तार से विचार किया गया है। भगवती सूत्र के अनेक स्थलो मे क्रिया का विवरण मिलता है, जैसे—भगवती शतक १, उद्देशक २, शतक ८, उद्देशक ४, शतक ३, उद्देशक ३।

प्रस्तुत वर्गीकरण पर समीक्षात्मक अर्थ-मीमासा

जीवक्रिया और अजीवक्रिया—ये दोनो क्रिया के सामान्य प्रकार हैं। इनके द्वारा सूत्रकार यह बताना चाहते हैं कि क्रियाकारित्व जीव और अजीव दोनो का समान धर्म है। प्रस्तुत प्रकरण मे वही अजीवक्रिया विवक्षित है, जो जीव के निमित्त से अजीव (पुद्‌गल) का कर्मबंध के रूप मे परिणमन होता है।

पचीस क्रिया के वर्गीकरण मे इन दोनों क्रियाओ का उल्लेख नही है। जीव क्रिया के दो भेद—सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया वहा उल्लिखित हैं। अभयदेव सूरि ने सम्यक्त्वक्रिया का अर्थ तत्त्व में श्रद्धा करना और मिथ्यात्वक्रिया का अर्थ अतत्त्व मे श्रद्धा करना किया है।[1] आचार्य अकलक ने सम्यक्त्वक्रिया का अर्थ सम्यक्त्ववर्धिनीप्रवृत्ति और मिथ्यात्व क्रिया का अर्थ मिथ्यात्वहेतुकप्रवृत्ति किया है।[2]

ऐर्यापथिकी—ईर्यापथ शब्द का प्रयोग जैन और बौद्ध दोनो के साहित्य मे मिलता है। बौद्धपिटको मे कायानुपश्यना का दूसरा प्रकार ईर्यापथ है। उसकी व्याख्या इस प्रकार[3] है—

फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुए 'जाता हूं'—जानता है। बैठे हुए 'बैठा हूं'—जानता है। सोये हुए 'सोया हूं'—जानता है। जैसे-जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसे ही उसे जानता है। इसी प्रकार काया के भीतरी भाग मे कायानुपश्यी हो विहरता है, काया के बाहरी भाग में कायानुपश्यी विहरता है। काया के भीतरी और बाहरी भागो मे कायानुपश्यी विहरता है। काया मे समुदय-(=उत्पत्ति) धर्म देखता विहरता है, काया में व्यय-(=विनाश) धर्म देखता विहरता है, काया मे समुदय-व्ययधर्म देखता विहरता है।

भगवती सूत्र मे उल्लिखित एक चर्चा से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के युग में ईर्यापथिकी और सापरायिकी क्रिया का प्रश्न अनेक धर्म-सम्प्रदायो मे चर्चित था। भगवान् से पूछा गया—भंते! अन्यतीर्थिक यह मानते हैं कि एक ही समय मे एक जीव ऐर्यापथिकी और सापरायिकी दोनो क्रियाए करता है, क्या यह सही है?

भगवान् ने कहा—यह सही नहीं है। मैं इसे इस प्रकार कहता हू कि जिस समय एक जीव ऐर्यापथिकी क्रिया करता है उस समय वह सापरायिकी क्रिया नहीं करता है और जिस समय वह सापरायिकी क्रिया करता है उस समय वह ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं करता। एक जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है।[4]

जीवाभिगम सूत्र मे सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्वक्रिया के विषय में भी इसी प्रकार की चर्चा मिलती है। वहा भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि एक समय मे दो क्रियाए नही की जा सकती।[5]

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो विरोधी क्रियाए हैं। इसलिए वे दोनो एक समय मे नही की जा सकतीं। ऐर्यापथिकी क्रिया उस जीव के होती है जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ विच्छिन्न हो जाते हैं। सापरायिकी क्रिया उस जीव के होती हैं, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ विच्छिन्न नही होते।[6]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७
सम्यक्त्व—तत्त्वश्रद्धान तदेव जीवव्यापारत्वात् क्रिया सम्यक्त्व-क्रिया, एव मिथ्यात्वक्रियाऽपि, नवरं मिथ्यात्वम्—अतत्त्व-श्रद्धान तदपि जीवव्यापारएव।

२ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्व-क्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्ति-मिथ्यात्वक्रिया।

३ दीघनिकाय, पृ० १९१।

४ भगवती, १।४४४, ४४५।

५ जीवाभिगम, प्रतिपत्ति ३, उद्देशक २।

६ भगवती, ७।२०, २१, ७।१२५, १२६।

ऐर्यापथिकी क्रिया केवल शुभयोग के कारण होती है[1]। बौद्धो के कायानुपश्यनागत ईर्यापथ का स्वरूप भी लगभग ऐसा ही है। सापरायिकी क्रिया—यह कषाय और योग के कारण होती है।[2]

इन दोनों क्रियाओ में जीव का व्यापार निश्चित रूप से रहता है, किन्तु कर्म-बध की दो अवस्थाओ पर प्रकाश डालने के लिए जीव के व्यापार को गौण मानकर इन्हे अजीव क्रिया कहा गया है[3]।

कर्म-बध की दृष्टि से क्रिया के सभी प्रकारो का ऐर्यापथिकी और सापरायिकी—इन दो प्रकारो मे समावेश हो जाता है।

ऐर्यापथिकीक्रिया—वीतराग के होने वाला कर्म-बध।

सापरायिकीक्रिया—कषाय-युक्त जीव के होने वाला कर्म-बध।

कायिकीक्रिया—शरीर की प्रवृत्ति से होने वाली क्रिया कायिकीक्रिया है। यह इसका सामान्य शब्दार्थ है। इसकी परिभाषा इसके दो प्रकारों से निश्चित होती है। इसके दो प्रकार ये हैं—

अनुपरतकायक्रिया और दुष्प्रयुक्तकायक्रिया।

अविरत व्यक्ति (भले फिर वह मिथ्यादृष्टि हो या सम्यक्‌दृष्टि) कर्म-बध की हेतुभूत कायिक प्रवृत्ति करता है वह अनुपरतकायिकीक्रिया है। स्थानाग, भगवती और प्रज्ञापना की वृत्तियो का यह अभिमत है[4]। हरिभद्र सूरि का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार अनुपरतकायिकीक्रिया मिथ्यादृष्टि के शरीर से होने वाली क्रिया है और दुष्प्रयुक्तकायिकीक्रिया प्रमत्तसयति के शरीर से होने वाली क्रिया है[5]। यदि अनुपरतकायिकीक्रिया मिथ्यादृष्टि के ही मानी जाए तो अविरतसम्यक्-दृष्टि देशविरति के लिए कोई निर्देश प्राप्त नही होता, इसलिए यही अर्थ सगत लगता है कि मिथ्यादृष्टि अविरतसम्यक्-दृष्टि और देशविरति की कायिकीक्रिया अनुपरतकायिकीक्रिया और प्रमत्तसयति की कायिकीक्रिया दुष्प्रयुक्त-कायिकीक्रिया है।

आचार्य अकलक ने कायिकीक्रिया का अर्थ प्रद्वेष-युक्त व्यक्ति के द्वारा किया जाने वाला शारीरिक उद्यम किया है[6]।

आधिकरिणीकीक्रिया—इस प्रवृत्ति का सम्बन्ध शस्त्र आदि हिंसक उपकरणो के सयोजन और निर्माण से है[7]। इसके दो प्रकार हैं—

सयोजनाधिकरणिकी—पूर्वनिर्मित शस्त्र आदि के पुर्जों का सयोजन करना।

निर्वर्तनाधिकरणिकी—शस्त्र आदि का नए सिरे से निर्माण करना। तत्त्वार्थवृत्ति के अनुसार इसका अर्थ है—हिंसक उपकरणो का ग्रहण करना[8]। इस अर्थ में प्रस्तुत क्रिया के दोनो प्रकार सूचित नही हैं।

प्रादोषिकीक्रिया—स्थानागवृत्तिकार ने प्रदोष का अर्थ मत्सर किया है। उससे होने वाली क्रिया प्रादोषिकी कहलाती है[9]। आचार्य अकलक के अनुसार प्रदोष का अर्थ क्रोधावेश है[10]। क्रोध अनिमित्तक होता है और प्रदोष निमित्त-

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७
यत्केवलयोगप्रत्ययमुपशान्तमोहादित्रयस्य सातवेदनीयकर्म्मतया अजीवस्य पुद्गलराशेर्भवन सा ऐर्यापथिकी क्रिया।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७
संपराया —कषाया स्तेषु भवा सांपरायिकी।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७
(क) इह जीवव्यापारेऽप्यजीवप्रधानत्वविवक्षयाऽजीवक्रियेयमुक्ता, कर्म्मविशेषो वैर्यापथिकीक्रियोच्यते।
(ख) सा (सांपरायिकी) ह्यजीवस्य पुद्गलराशे कर्म्मतापरिणतिरूपा जीवव्यापारस्याविवक्षणादजीवक्रियेति।

४ (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ३८।
(ख) भगवती, ३।१३५, वृत्ति, पत्र १८१।
(ग) प्रज्ञापना, पद २२, वृत्ति।

५ तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति, ६।६
कायक्रिया द्विविधा—अनुपरतकायक्रिया दुष्प्रयुक्तकायक्रिया, आद्या मिथ्यादृष्टे द्वितीया प्रमत्तसयतस्य।

६ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यम कायिकीक्रिया।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८।

८ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकीक्रिया।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८
प्रद्वेषो—मत्सरा स्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी।

१० तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
क्रोधावेशात् प्रादोषिकीक्रिया।

वान् होता है। यह क्रोध और प्रदोष मे भेद बतलाया गया है।[1] इसके दो प्रकार हैं—

जीवप्रादोषिकी—जीव सम्बन्धी प्रदोष से होने वाली क्रिया।

अजीवप्रादोषिकी—अजीव सम्बन्धी प्रदोष से होने वाली क्रिया।

स्थानाग वृत्तिकार ने अजीव प्रादोषिकी क्रिया का जो अर्थ किया है उसमे प्रदोष का अर्थ क्रोधावेश ही फलित होता है। अजीव के प्रति मात्सर्य होना स्वाभाविक नही है। इसीलिए वृत्तिकार ने लिखा है कि पत्थर से ठोकर खाने वाला व्यक्ति उसके प्रति प्रदुष्ट हो जाता है, यह अजीवप्रादोषिकीक्रिया है[2]।

पारितापनिकीक्रिया—दूसरे को परितापन (ताडन आदि दुःख) देने वाली क्रिया पारितापनिकी कहलाती है। इसके दो प्रकार हैं—

स्वहस्तपारितापनिकी—अपने हाथों अपने या पराए शरीर को परिताप देना।

परहस्तपारितापनिकी—दूसरे के हाथो अपने या पराए शरीर को परितापन देना।

प्राणातिपातक्रिया के दो प्रकार हैं—

स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया—अपने हाथो अपने प्राणों या दूसरे के प्राणो का अतिपात करना।

परहस्तप्राणातिपात क्रिया—दूसरे के हाथो अपने या पराए प्राणो का अतिपात करना।

अप्रत्याख्यानक्रिया का वृत्तिकार ने अर्थ नहीं किया है। इसके दो प्रकारो का अर्थ किया है। उसमे अप्रत्याख्यान-क्रिया का यह अर्थ फलित होता है—जीव और अजीव सम्बन्धी अप्रत्याख्यान से होने वाली प्रवृत्ति। तत्त्वार्थवार्तिक मे इसकी कर्मशास्त्रीय व्याख्या मिलती है—संयमघाती कर्मोदय के कारण विषयो से निवृत्त न होना अप्रत्याख्यानक्रिया है।[3]

आरम्भिकीक्रिया—यह हिंसा-सम्बन्धी क्रिया है। जीव और अजीव दोनो इसके निमित्त बनते हैं। वृत्तिकार ने अजीव आरंभिकीक्रिया का आशय स्पष्ट किया है। उनके अनुसार जीव के मृत शरीरो, पिष्ट आदि से निर्मित जीवाकृतियो या वस्त्र आदि मे हिंसक प्रवृत्ति हो जाती है।[4]

पारिग्रहिकीक्रिया—वृत्तिकार के अनुसार यह क्रिया जीव और अजीव के परिग्रह से उत्पन्न होती है।[5] तत्त्वार्थवार्तिक मे इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की गई है। उसके अनुसार पारिग्रहिकीक्रिया का अर्थ है—परिग्रह की सुरक्षा के लिए होने वाली प्रवृत्ति।[6]

स्थानागवृत्ति मे मायाप्रत्ययाक्रिया के दो अर्थ किए गए हैं—

१ माया के निमित्त से होने वाली कर्म-बंध की क्रिया।

२ माया के निमित्त से होने वाला व्यापार।[7]

तत्त्वार्थवार्तिककार ने ज्ञान दर्शन और चारित्र सम्बन्धी प्रवचना को मायाक्रिया माना है[8], किन्तु व्यापक अर्थ मे प्रत्येक प्रकार की प्रवचना माया होती है। ज्ञान, दर्शन आदि को उदाहरण के रूप मे ही समझा जाना चाहिए।

मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया का अर्थ स्थानागवृत्ति और तत्त्वार्थवार्तिक में बहुत भिन्न है। स्थानागवृत्ति के अनुसार मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) के निमित्त से होने वाली प्रवृत्ति मिथ्यादर्शन क्रिया है।[9] तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार मिथ्यादर्शन

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८ :
अजीवे—पाषाणादौ स्खलितस्य प्रद्वेषादजीवप्राद्वेषिकीति।

३ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
संयमघातिकर्मोदयवशाद निवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८
यच्चाजीवान् जीवकडेवराणि पिष्टादिमयजीवाकृतीश्च वस्त्रादीन् वा आरभमाणस्य सा अजीवारम्भिकी।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८
जीवाजीवपरिग्रहप्रभवत्वात् तस्या।

६ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८
माया—शाठ्य प्रत्ययो—निमित्त यस्या कर्मबन्धक्रियाया व्यापारस्य वा सा तथा।

८ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिवञ्चन मायाक्रिया।

९ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८
मिथ्यादर्शन—मिथ्यात्व प्रत्ययो यस्या सा तथा।

की क्रिया करने वाले व्यक्ति को प्रशंसा आदि के द्वारा समर्थन देना, जैसे—तू अच्छा कार्य कर रहा है—मिथ्यादर्शन क्रिया है।[1]

इन दोनों अर्थों में तत्त्वार्थवार्तिक का अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। दृष्टिजा और स्पृष्टिजा इन दोनों क्रियाओं के स्थान में तत्त्वार्थवार्तिक में दर्शनक्रिया और स्पर्शनक्रिया—ये दो क्रियाएं प्राप्त हैं। स्थानांगवृत्ति के अध्ययन से ऐसा लगता है कि इनकी अर्थपरम्परा वृत्तिकार के सामने स्पष्ट नहीं रही है। उन्होंने इन दोनों के अनेक अर्थ किए हैं, जैसे—दृष्टिजा दृष्टि से होने वाली क्रिया। वृत्तिकार ने इनका दूसरा अर्थ दृष्टिका किया है। इसका अर्थ है दृष्टि के निमित्त से होने वाली क्रिया। दर्शन के लिए जो गतिक्रिया होती है अथवा दर्शन से जो कर्म का उदय होता है वह दृष्टिजा या दृष्टिका कहलाता है। इसी प्रकार पुट्ठिया के भी उन्होंने पृष्टिजा, पृष्टिका, स्पृष्टिजा और स्पृष्टिका—ये चार अर्थ किए हैं।[2]

तत्त्वार्थवार्तिक में दर्शनक्रिया और स्पर्शनक्रिया के अर्थ बहुत स्पष्ट मिलते हैं। दर्शनक्रिया—राग के वशीभूत होकर प्रमादी व्यक्ति का रमणीय रूप देखने का अभिप्राय। स्पर्शनक्रिया—प्रमादवश छूने की प्रवृत्ति।[3]

तत्त्वार्थवार्तिक में प्रातीत्यिकीक्रिया का उल्लेख नहीं है। उसमें प्रात्यायिकीक्रिया उल्लिखित है। लगता है कि पडुच्च का ही संस्कृतीकरण प्रत्यय किया गया है। प्रात्यायिकीक्रिया का अर्थ है, नए-नए कलहों को उत्पन्न करना।[4]

सामन्तोपनिपातिकीक्रिया का अर्थ स्थानांगवृत्ति और तत्त्वार्थवार्तिक में आपाततः बहुत ही भिन्न लगता है। स्थानांगवृत्ति के अनुसार सामन्तोपनिपात—जनमिलन में होने वाली क्रिया सामन्तोपनिपातिकी है।[5]

तत्त्वार्थवार्तिककार ने इसका अर्थ किया है—स्त्री-पुरुष, पशु आदि से व्याप्त स्थान में मलोत्सर्ग करना समन्तानुपात-क्रिया है।[6] तत्त्वार्थवार्तिक में मलोत्सर्ग करने की बात कही है वह प्रस्तुत क्रिया की व्याख्या का एक उदाहरण हो सकता है। स्थानांगवृत्ति में जीवसामन्तोपनिपातिकी और अजीवसामान्तोपनिपातिकी का अर्थ किया है—अपने आश्रित बैल आदि जीव तथा रथ आदि अजीव पदार्थों की जनसमूह से प्रशंसा सुन खुश होना।[7] यह भी एक उदाहरण प्रतीत होता है। वस्तुतः प्रस्तुत क्रिया का आशय यह होना चाहिए कि जीव, अजीव आदि द्रव्यसमूह के संपर्क से होने वाली मानसिक उतार-चढाव की प्रवृत्ति अथवा उनके प्रतिकूल आचरण।

हरिभद्र सूरि ने समन्तानुपातक्रिया का अर्थ किया है—स्थण्डिल आदि में भक्त आदि विसर्जित करने की क्रिया।[8] यह भी एक उदाहरण के द्वारा उसकी व्याख्या की गई है।

स्वाहस्तिकी और नैसृष्टिकीक्रिया की व्याख्या दोनों (तत्त्वार्थवार्तिक और स्थानांगवृत्ति) में समान नहीं है। स्थानांगवृत्ति के अनुसार स्वहस्तक्रिया का अर्थ है—अपने हाथ से निष्पन्न क्रिया।[9] वृत्तिकार ने नैसृष्टिकीक्रिया के दो अर्थ किए हैं—फेंकना और देना।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया।

२, स्थानांगवृत्ति, पत्र ३६
दृष्टेर्जाता दृष्टिजा अथवा दृष्टं—दर्शनं वस्तु वा निमित्ततया यस्यामस्ति सा दृष्टिका—दर्शनार्थं या गतिक्रिया, दर्शनाद् वा यत्कर्मोदितिं सा दृष्टिजा दृष्टिका वा, तथा 'पुट्ठिया चेव' त्ति पृष्टि—पृच्छा ततो जाता पृष्टिजा प्रश्नजनितो व्यापार, अथवा पृष्टं—प्रश्नः वस्तु वा तदस्ति कारणत्वेन यस्या सा पृष्टिकेति, अथवा स्पृष्टिः स्पर्शनं ततो जाता स्पृष्टिजा, तथैव स्पृष्टिकाऽपीति।

३ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
रागार्द्रीकृतत्वात् प्रमादिनः रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात् स्पृष्टव्यसञ्चेतनानुबन्धः स्पर्शनक्रिया।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अपूर्वाधिकरणोत्पादनात् प्रात्ययिकी क्रिया।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
समन्तात—सर्वत उपनिपातो—जनमीलकस्तस्मिन् भवा सामन्तोपनिपातिकी।

६ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
स्त्रीपुरुषपशुसपातिदेशे अन्तर्मलोत्सर्गकरणं समन्तानुपातक्रिया।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
कस्यापि षण्ढो रूपवानस्ति तं च जनो यथा यथा प्रलोकयति प्रशंसयति च तथा तथा तत्स्वामी हृष्यतीति जीवसामन्तोपनिपातिकीति।

८ तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति, ६।६
समन्तानुपातक्रिया स्थण्डिलादौ भक्तादित्याग क्रिया।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
स्वहस्तेन निर्वृत्ता स्वाहस्तिकी।

तत्त्वार्थवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि मे नैसृष्टिकीक्रिया के स्थान में निसर्गक्रिया का उल्लेख है। वृत्तिकार ने भी नैसृष्टिकी का वैकल्पिक अर्थ निसर्ग किया है। इस आधार पर नेसग्गिया (नैसर्गिकी) पाठ का भी अनुमान किया जा सकता है।[1] तत्त्वार्थवार्तिक में स्वहस्तक्रिया का अर्थ है—दूसरे के द्वारा करने योग्य क्रिया को स्वय करना[2]। निसर्गक्रिया का अर्थ है—पापादान आदि प्रवृत्ति के लिए अपनी सम्मति देना[3]। अथवा आलस्यवश प्रशस्त क्रियाओ को न करना। श्लोकवार्तिक में भी इसके ये दोनो अर्थ मिलते हैं[4]।

उक्त क्रियाओ के अग्रिम वर्ग में दो क्रियाए निर्दिष्ट हैं—आज्ञापनिका और वैदारिणी। वैदारिणीक्रिया का दोनो ग्रन्थो मे अर्थभेद है, किन्तु आज्ञापनिकाक्रिया मे शब्द और अर्थ दोनो का महान् भेद है। वृत्तिकार ने 'आणवणिया' पाठ के दो अर्थ किए हैं—आज्ञा देना और मगवाना[5]।

तत्त्वार्थवार्तिक मे इसके स्थान पर आज्ञाव्यापादिकाक्रिया उल्लिखित है। इसका अर्थ है—चारित्र मोह के उदय से आवश्यक आदि क्रिया करने में असमर्थ होने पर शास्त्रीय आज्ञा का अन्यथा निरूपण करना।

वैदारिणीक्रिया की व्याख्या देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्तिकार के सामने उसकी निश्चित अर्थ-परपरा नहीं रही है। इसीलिए उन्होंने विदारण, विचारण और वितारण—इन तीन शब्दो के द्वारा उसकी व्याख्या की है[6]। और 'वेयारणिया' इस पाठ के आधार पर उक्त तीनो शब्दो के द्वारा उसकी व्याख्या की जा सकती है। तत्त्वार्थभाष्य तथा उसकी सभी व्याख्याओ मे विदारणक्रिया का उल्लेख मिलता है। और उसका अर्थ किया गया है—दूसरो के द्वारा आचरित निंदनीय-कर्म का प्रकाशन[7]। यहा विदारण का अर्थ स्फोट है। इसका तात्पर्य है—गुप्त बात का विस्फोट करना। यह अर्थ विचारण शब्द के द्वारा ही किया जा सकता है।

स्थानागवृत्ति मे अनाभोगप्रत्ययाक्रिया का केवल शाब्दिक अर्थ मिलता है। अनाभोगप्रत्ययाक्रिया—अज्ञान के निमित्त से होने वाली क्रिया।[8] इसका आशय तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्याओं मे मिलता है। अप्रमार्जित और अदृष्टभूमि में शरीर, उपकरण आदि रखना अनाभोगप्रत्ययाक्रिया है[9]।

वृत्तिकार ने शाब्दिक व्याख्या से सतोष इसलिए माना है कि उसका आशय मूलसूत्र से ही स्पष्ट हो जाता है। सूत्र पाठ में प्रस्तुत क्रिया के दो भेद निर्दिष्ट हैं। उनमें प्रथम भेद का अर्थ है—असावधानीपूर्वक उपकरण आदि उठाना और द्वितीय भेद का अर्थ है—असावधानीपूर्वक प्रमार्जन करना। इनमे निक्षेप—उपकरण आदि रखने का अर्थ समाहित नहीं है। उसे आदान के द्वारा गृहीत करना सूत्रकार को विवक्षित है—ऐसी सभावना की जा सकती है।

अनवकाक्षाप्रत्ययाक्रिया की व्याख्या वृत्तिकार ने सूत्रपाठ के आधार पर की है। उसका आशय है—स्व या पर शरीर से निरपेक्ष होकर क्रिया जाने वाला क्षतिकारीकर्म[10]। तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्याओ मे इसका अर्थ भिन्न मिलता है। उनके

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३९
निसर्जन निसृष्ट, क्षेपणमित्यर्थ., तत्र भवा तदेव वा नैसृष्टिकी, निसृजतो य कर्म्मबन्ध इत्यर्थ, निसर्ग एव।

२ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वय करोति सा स्वहस्तक्रिया।

३ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। आलस्याद्वा प्रशस्तक्रियाणामकरणम्।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
पापप्रवृत्ता वन्येषामभ्यनुज्ञानमात्मना।
स्यान्निसर्गक्रियालस्यादकृति र्या सुकर्मणाम्॥

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
आज्ञापनस्य—आदेशनस्येयमाज्ञापनमेव वेत्याज्ञापनी सैवाज्ञापनिका तज्ज कर्मबन्ध, आदेशनमेव वेति, आनायन वा आनायनी।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
विदारणं विचारण वितारण वा स्वार्थिकप्रत्ययोपादानाद् वैदारिणीत्यादि वाच्यमिति।

७ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
पराचरित सावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया।

८ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०
अनाभोग —अज्ञानं प्रत्ययो—निमित्त यस्या सा तथा।

९. (क) तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादि निक्षेपोऽनाभोग क्रिया।
(ख) तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ भाष्यानुसारिणी टीका-
अनाभोगक्रिया अप्रत्यवेक्षिता प्रमार्जिते देशे शरीरोपकरणनिक्षेप।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९
अनवकांक्षा—स्वशरीराद्यनपेक्षत्वं सैव प्रत्ययो यस्या. साऽनवकांक्षाप्रत्यया।

अनुसार इसका अर्थ है—शठता और आलस्य के कारण शास्त्रोपदिष्ट विधि-विधानों का अनादर करना[1]।

क्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन में दो निष्कर्ष हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं—

१. क्रियाओं के व्याख्यान की दो परम्परा रही हैं। एक परम्परा आगमिक व्याख्या के परिपार्श्व की है, जिसका अनुसरण स्थानांग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने किया है और दूसरी परम्परा तत्त्वार्थभाष्य के आधार पर विकसित हुई है। इस परम्परा में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के आचार्य लगभग एक रेखा पर चले हैं। सर्वार्थसिद्धि के कर्ता पूज्यपाद देवनन्दी, तत्त्वार्थवार्तिक के कर्ता आचार्य अकलङ्क, श्लोकवार्तिक के कर्ता आचार्य विद्यानंद—ये तीनों दिगम्बर आचार्य हैं। इनका एक रेखा पर चलना आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु तत्त्वार्थटीका के कर्ता हरिभद्र सूरि और भाष्यानुसारिणी-टीका के कर्ता सिद्धसेन गणी—ये दोनों श्वेताम्बर आचार्य हैं, फिर भी इन्होंने व्याख्या की एकरूपता का निर्वाह किया है। सिद्धसेन गणी ने तत्त्वार्थ की व्याख्याओं का अनुसरण करते हुए भी स्थानांगवृत्तिगत व्याख्या के प्रति जागरूक रहे हैं।

२. तत्त्वार्थवार्तिक में पचीस क्रियाओं के नाम निर्दिष्ट हैं, वे स्थानांग निर्दिष्ट नामों से कहीं-कहीं भिन्न भी हैं, जैसे—

स्थानांग	तत्त्वार्थसूत्र
जीवक्रिया	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व
अजीवक्रिया	ईर्यापथ
कायिकीक्रिया	कायिकीक्रिया
आधिकरणिकीक्रिया	आधिकरणिकीक्रिया
प्राद्वेषिकीक्रिया	प्रादोषिकीक्रिया
पारितापनिकीक्रिया	पारितापिकीक्रिया
प्राणातिपातक्रिया	प्राणातिपातिकीक्रिया
अप्रत्याख्यानक्रिया	अप्रत्याख्यानक्रिया
आरम्भिकीक्रिया	आरम्भक्रिया
पारिग्रहिकीक्रिया	पारिग्रहिकीक्रिया
मायाप्रत्ययाक्रिया	मायाक्रिया
मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया	मिथ्यादर्शनक्रिया
दृष्टिजाक्रिया	दर्शनक्रिया
स्पृष्टिजाक्रिया	स्पर्शनक्रिया
प्रातीत्यिकीक्रिया	प्रात्ययिकीक्रिया
सामन्तोपनिपातिकीक्रिया	सामन्तानुपातक्रिया
स्वाहस्तिकीक्रिया	स्वाहस्तक्रिया
नैसृष्टिकीक्रिया	निसर्गक्रिया
आज्ञापनिकाक्रिया	आज्ञाव्यापादिकाक्रिया
वैदारिणीक्रिया	विदारणक्रिया
अनवकांक्षाप्रत्ययाक्रिया	अनाकांक्षाक्रिया
अनाभोगप्रत्ययाक्रिया	अनाभोगक्रिया
प्रेयस्प्रत्ययाक्रिया	×
दोषप्रत्ययाक्रिया	×
×	समादान
×	प्रयोग

---

१ (क) तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादर अनाकांक्षक्रिया।
(ख) तत्त्वार्थसूत्र, ६।६, भाष्यानुसारिणी टीका।

४२—गर्हा (सू० ३८)

गर्हा का अर्थ है—दुश्चरित के प्रति कुत्सा का भाव। यह प्रायश्चित्त का एक प्रकार है। साधन की अपेक्षा से गर्हा के दो भेद हैं—

१ मानसिक गर्हा।

२ वाचिक गर्हा।

किसी के मन मे गर्हा के भाव जागते हैं और कोई वाणी के द्वारा गर्हा करते हैं।

काल की अपेक्षा से भी उसके दो प्रकार होते हैं—

१ दीर्घकालीन गर्हा।

२ अल्पकालीन गर्हा।

सूत्रकार ने तीसरे स्थान में गर्हा का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रकार निर्दशित किया है। वह है काय का प्रतिसंहरण। इसका अर्थ है—दुबारा अकरणीय कार्य मे प्रवृत्त न होना। कोई आदमी अकरणीय की गर्हा भी करता जाए और उसका आचरण भी करता जाए, यह वस्तुत गर्हा नहीं है। वास्तविक गर्हा है—अकरणीय का अनाचरण[1]।

४३ विद्या और चरण (सू० ४०)

मोक्ष की उपलब्धि के साधनो के विषय मे सब दार्शनिक एकमत नहीं रहे हैं। ज्ञानवादी दार्शनिकों ने ज्ञान को मोक्ष का साधन माना है, और क्रियावादी दार्शनिकों ने क्रिया को और भक्तिमार्ग के अनुयायियों ने भक्ति को। जैनदर्शन अनेकान्त-वादी है, इसलिए वह ऐकान्तिक-दृष्टि से न ज्ञानवादी है, न क्रियावादी है और न भक्तिवादी ही। उसके मतानुसार ज्ञान, क्रिया और भक्ति का समन्वय ही मोक्ष का साधन है। प्रस्तुत सूत्र मे विद्या और चरण इन दो शब्दो के द्वारा उसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

उत्तराध्ययन (२८।२) में मोक्ष के चार मार्ग बतलाए गए हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इन्हें क्रमश ज्ञानयोग, भक्तियोग, आचारयोग और तपोयोग कहा जा सकता है। प्रस्तुत सूत्र मे मार्ग-चतुष्टयी का सक्षेप है। विद्या में ज्ञान और दर्शन तथा चरण में चारित्र और तप समाविष्ट होते हैं। उमास्वाति का प्रसिद्ध सूत्र—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्ग'—इन्हीं दोनो के आधार पर सचरित है।

४४-५० (सू० ७९-८५)

दर्शन का सामान्य अर्थ होता है—दृष्टि, देखना। उसके पारिभाषिक अर्थ दो होते हैं, सामान्यग्राहीबोध और तत्त्वरुचि।

बोध दो प्रकार का होता है—

१ विशेषग्राही, २ सामान्यग्राही।

विशेषग्राही को ज्ञान और सामान्यग्राही को दर्शन कहा जाता है।[2]

प्रस्तुत प्रकरण मे दर्शन का अर्थ तत्त्वरुचि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दर्शन दो प्रकार का होता है—

१ सम्यग्दर्शन—वस्तु-सत्य के प्रति यथार्थश्रद्धा।

२ मिथ्यादर्शन—वस्तु-सत्य के प्रति अयथार्थश्रद्धा।

उत्पत्ति की दृष्टि से सम्यक्दर्शन दो प्रकार का होता है—

१ निसर्गसम्यक्दर्शन—आत्मा की सहज निर्मलता से उत्पन्न होने वाला।

---

१ स्थानांग, ३।२६।

२ सम्मतिप्रकरण, २।१ ज सामण्णग्गहण, दसणमेय विसेसियं णाण।

२ अभिगमसम्यक्दर्शन—शास्त्र-अध्ययन अथवा उपदेश से उत्पन्न होने वाला।

ये दोनो प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनो प्रकार के होते हैं। मिथ्यादर्शन भी दो प्रकार का होता है—

१ आभिग्रहिक—आग्रहयुक्त।

२ अनाभिग्रहिक—सहज।

कुछ व्यक्ति आग्रही होते हैं। वे जिस बात को पकड लेते हैं उसे छोडना नहीं चाहते। कुछ व्यक्ति आग्रही नही होते किन्तु अज्ञान के कारण किसी भी बात पर विश्वास कर लेते हैं। प्रथम प्रकार के व्यक्ति न केवल मिथ्यादर्शन वाले होते हैं किन्तु उनमे अयथार्थ के प्रति आग्रह भी उत्पन्न हो जाता है। उनकी सत्यशोध की दृष्टि विलुप्त हो जाती है। वे जो मानते हैं उससे भिन्न सत्य हो सकता है, इस सम्भावना को वे स्वीकार नहीं करते।

दूसरे प्रकार के व्यक्तियो मे स्व-सिद्धान्त के प्रति आग्रह नहीं होता, इसलिए उनमे सत्य-शोध की दृष्टि शीघ्र विकसित हो सकती है।

आग्रह और अज्ञान—ये दोनो काल-परिपाक और समुचित निमित्तों के मिलने पर दूर हो सकते हैं और उनके न मिलने पर वे दूर नहीं होते, इसीलिए उन्हें सपर्यवसित और अपर्यवसित दोनो कहा गया है।

निसर्गसम्यग्दर्शन जैसे सहज होता है, वैसे अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शन भी सहज ही होता है। अभिगमसम्यग्दर्शन उपदेश या अध्ययन से प्राप्त होता है, वैसे ही आभिग्रहिकमिथ्यादर्शन भी उपदेश या अध्ययन से प्राप्त होता है। इन दोनो में स्वरूप-भेद है, किन्तु उत्पन्न होने की प्रक्रिया दोनो की एक है।

५१–प्रत्यक्ष-परोक्ष (सू० ८६)

इन्द्रिय आदि साधनो की सहायता के विना जो ज्ञान केवल आत्ममात्रापेक्ष होता है, वह 'प्रत्यक्ष ज्ञान' कहलाता है। अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान—ये तीन प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान परोक्ष होता है। मति, श्रुत—ये दो ज्ञान परोक्ष हैं।

स्वरूप की अपेक्षा सब ज्ञान स्पष्ट होता है। प्रमाण के स्पष्ट और अस्पष्ट ये लक्षण वाहरी पदार्थों की अपेक्षा से किए जाते हैं। वाह्य पदार्थों का निश्चय करने के लिए जिसे दूसरे ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, वह ज्ञान स्पष्ट कहलाता है और जिसे ज्ञानान्तर की अपेक्षा रहती है, वह अस्पष्ट। परोक्ष प्रमाण मे दूसरे ज्ञान की आवश्यकता रहती है, जैसे—स्मृति-ज्ञान धारणा की अपेक्षा रखता है, प्रत्यभिज्ञान अनुभव और स्मृति की, तर्क व्याप्ति की, अनुमान हेतु की तथा आगम शब्द और सकेत आदि की अपेक्षा रखता है, इसलिए वह अस्पष्ट है। दूसरे शब्दों में जिसका ज्ञेय पदार्थ निर्णय काल मे छिपा हुआ रहता है, उस ज्ञान को अस्पष्ट या परोक्ष कहते हैं। जैसे—स्मृति का विषय स्मृतिकर्ता के सामने नहीं रहता। प्रत्यभिज्ञान का भी 'वह' इतना विषय अस्पष्ट रहता है। तर्क मे त्रिकालकलित साध्य-साधन अर्थात् त्रिकालीन सर्व धूम और अग्नि प्रत्यक्ष नहीं रहते। अनुमान का विषय अग्निमान प्रदेश सामने नहीं रहता। आगम के विषय मेरु आदि अस्पष्ट रहते हैं।

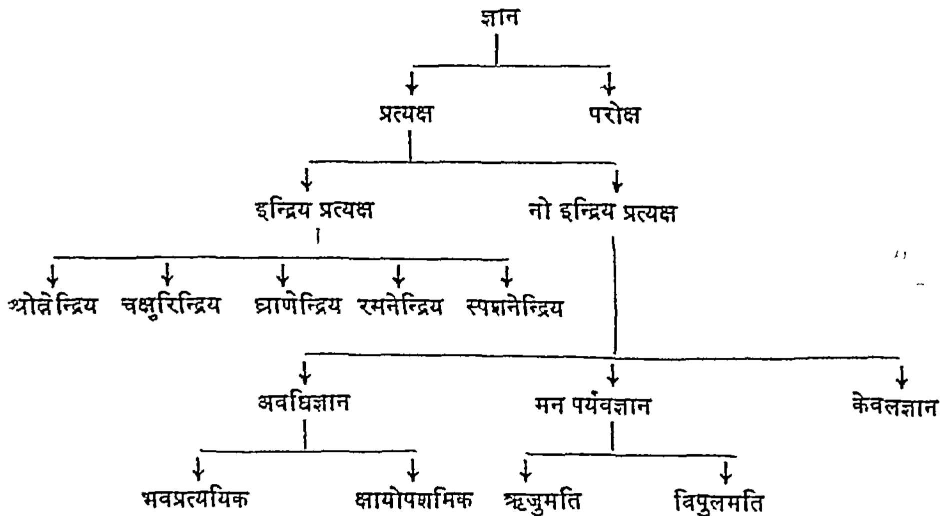
अवग्रह आदि को आत्ममात्रापेक्ष न होने के कारण जहा परोक्ष माना जाता है, वहा उसके मति और श्रुत—ये दो भेद किए जाते हैं और जहा लोक-व्यवहार से अवग्रह आदि को साव्यवहारिकप्रत्यक्ष की कोटि में रखा जाता है, वहा परोक्ष के स्मृति आदि पाच भेद किए जाते हैं।

आगम-साहित्य मे ज्ञान का वर्गीकरण दो प्रकार का मिलता है। एक वर्गीकरण नन्दीसूत्र का और दूसरा वर्गीकरण

स्थानाग का है । स्थानांग मे ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—

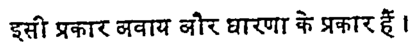
- ज्ञान
  - प्रत्यक्ष
    - केवलज्ञान
    - नो-केवलज्ञान
      - अवधिज्ञान
        - भवप्रत्ययिक
        - क्षायोपशमिक
      - मन पर्यवज्ञान
        - ऋजुमति
        - विपुलमति
  - परोक्ष
    - आभिनिबोधिक
      - श्रुतनिश्रित
        - अर्थावग्रह
        - व्यञ्जनावग्रह
      - अश्रुतनिश्रित
        - अर्थावग्रह
        - व्यञ्जनावग्रह
    - श्रुतज्ञान
      - अग प्रविष्ट
      - अगवाह्य
        - आवश्यक
        - आवश्यक व्यतिरिक्त
          - कालिक
          - उत्कालिक

नदी सूत्र मे ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—



- परोक्ष
  - आभिनिवोधिक
    - श्रुतनिश्रित
      - अवग्रह
        - अर्थावग्रह
          - श्रोत्रे०
          - चक्षु०
          - घ्राणे०
          - रसने०
          - स्पर्शने०
          - नोइंदिय०
        - व्यञ्जनावग्रह
          - श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जन०
          - चक्षु०
          - घ्राणे०
          - रसने०
          - स्पर्शने०
      - ईहा
      - अवाय
      - धारणा
    - अश्रुतनिश्रित
      - औत्पत्तिकी
      - वैनयिकी
      - कार्मिकी
      - पारिणामिकी
  - श्रुतज्ञान

- ईहा
  - श्रोत्रे० ईहा
  - चक्षु० ईहा
  - घ्राणे० ईहा
  - जिह्वे० ईहा
  - स्पर्श० ईहा
  - नोइंदिय ईहा



इसी प्रकार अवाय और धारणा के प्रकार हैं।

५२ (सू० १०१)

श्रुत-निश्रित—जो विषय पहले श्रुत शास्त्र के द्वारा ज्ञात हो, किन्तु वर्तमान मे श्रुत का आलम्वन लिये विना ही उसे जानना श्रुत-निश्रित अभिनिवोधिकज्ञान है, जैसे—किसी व्यक्ति ने आयुर्वेदशास्त्र का अध्ययन कर यह जाना कि त्रिफला से कोष्ठ वद्धता दूर होती है। जव कभी वह कोष्ठ वद्धता से ग्रस्त होता है तव उसे त्रिफला-सेवन की वात सूझ जाती है। उसका यह ज्ञान श्रुत-निश्रित आभिनिवोधिकज्ञान है।

अश्रुत-निश्रित—जो विषय श्रुत के द्वारा नही किन्तु अपनी सहज विलक्षण-वुद्धि के द्वारा जाना जाए वह अश्रुत-निश्रित आभिमनिवोधिकज्ञान है।

नदी में जो ज्ञान का वर्गीकरण है, उसके अनुसार श्रुत-निश्रित आभिनिवोधिकज्ञान के २८ प्रकार हैं।[1] तथा अश्रुत-निश्रित आभिनिवोधिकज्ञान के ४ प्रकार हैं—

औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी।[2]

---

१ नदीसूत्र, ४०-४६।
२ नदीसूत्र, ३८।

५३-५४ (सू० १०२-१०३)

अवग्रह इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान-क्रम में पहला अग है। अनिर्देश्य (जिमका निर्देश न किया जा सके) सामान्य धर्मात्मक अर्थ के प्रथम ग्रहण को अर्थावग्रह कहा जाता है[1]। अर्थ शब्द के दो अर्थ हैं—द्रव्य और पर्याय अथवा सामान्य और विशेष। अर्थावग्रह का विषय किसी भी शब्द के द्वारा कहा नही जा सकता। इसमे केवल 'वस्तु है' का ज्ञान होता है। इससे वस्तु के स्वरूप, नाम, जाति, क्रिया आदि की शाब्दिक प्रतीति नही होती।

उपकरण इन्द्रिय के द्वारा इन्द्रिय के विषयभूत द्रव्यों के ग्रहण को व्यञ्जनावग्रह कहा जाता है[2]। क्रम की दृष्टि से पहले व्यञ्जनावग्रह, फिर अर्थावग्रह होता है। अर्थावग्रह सभी इन्द्रियों का होता है जबकि व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियों का होता है। चक्षु और मन का व्यञ्जनावग्रह नही होता। उत्तरवर्ती न्याय-ग्रन्थों मे व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् अर्थावग्रह का उल्लेख किया गया है। नदी तथा प्रस्तुत सूत्र से उसका व्युत्क्रम मिलता है[3]। यह किस दृष्टि से किया गया, इस विषय में वृत्तिकार ने चर्चा नहीं की है, फिर भी वृत्ति से यह फलित होता है कि अर्थावग्रह प्रत्यक्ष को मुख्य मानकर सूत्रकार ने उसे प्रथम स्थान दिया है। नदी के अनुसार अवग्रह आदि केवल श्रुत-निश्रित मति के ही प्रकार हैं। स्थानाग के अनुसार अवग्रह दोनो (श्रुत-निश्रित और अश्रुत-निश्रित) का होता है। वृत्तिकार ने अश्रुत-निश्रित मति के दो प्रकार बतलाए हैं—

१ श्रोत्र आदि इन्द्रियों से उत्पन्न।

२ औत्पत्तिकी आदि बुद्धि-चतुष्टय।

प्रथम प्रकार मे अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह दोनों होते हैं। दूसरे प्रकार मे केवल अर्थावग्रह होता है, क्योकि व्यञ्जनावग्रह इन्द्रिय-आश्रित होता है। बुद्धि-चतुष्टय मानस ज्ञान है, इसलिए वहा व्यञ्जनावग्रह नही होता[4]। व्यञ्जनावग्रह की इस अव्यापकता और गौणता को ध्यान मे रखकर सूत्रकार ने प्राथमिकता अर्थावग्रह को दी, ऐसी सम्भावना की जा सकती है।

अर्थावग्रह निर्णयोन्मुख होता है, तब यह प्रमाण माना जाता है और जब निर्णयोन्मुख नहीं होता तब वह अनध्यवसाय—अनिर्णायक ज्ञान कहलाता है।

अर्थावग्रह के दो भेद और हैं—नैश्चयिक और व्यावहारिक। नैश्चयिक-अर्थावग्रह का कालमान एक समय और व्यावहारिक-अर्थावग्रह का कालमान अन्तर्मुहूर्त्त माना गया है[5]। अर्थावग्रह के छ प्रकार प्रस्तुत आगम (६।६८) में बतलाए गए हैं।

५५—सूक्ष्म-वादर (सू० १२३)

सूक्ष्म का अर्थ है छोटा और वादर का अर्थ है स्थूल।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७

अर्यते—अधिगम्यतेऽर्यते या अन्विष्यत इत्यर्थ, तस्य सामान्यरूपस्य अशेषविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यस्य रूपादेरवग्रहण—प्रथमपरिच्छेदनमर्थावग्रह इति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७

व्यज्यतेऽनेनार्थं प्रदीपनेव घट इति व्यञ्जन—तच्चोपकरणेन्द्रियं शब्दादिरवपरिणतद्रव्यसघातो वा ततश्च व्यञ्जनेन उपकरणेन्द्रियेण शब्दादित्वपरिणतद्रव्याणा व्यञ्जनानामवग्रहो, व्यञ्जनावग्रह इति।

३ नंदी सूत्र ४०

से किं तं उग्गहे ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—

अत्थुग्गहे य

वंजणुग्गहे य।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहभेदेनाश्रुतनिश्रितमपि द्विधैवेति, इद च श्रोत्रादिप्रभवमेव, यत्तु औत्पत्तिक्याद्यश्रुतनिश्रित तत्रार्थावग्रह सम्भवति, यदाह—

किह पडिकुक्कुडहीणो, जुज्झे बिंबेण उग्गहो ईहा।

किं सुसिलिट्ठमवाओ, दप्पणसंकंतबिंबंति॥

न तु व्यञ्जनावग्रह, तस्येन्द्रियाश्रितत्वात्, बुद्धीनां तु मानसत्वात्, ततो बुद्धिभ्योऽन्यत्र व्यञ्जनावग्रहो मन्तव्य इति।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५१।

यहा सूक्ष्म और वादर आपेक्षिक नहीं है, जैसे चने की तुलना में गेहू सूक्ष्म और राई की तुलना में वह स्थूल होता है। यहा सूक्ष्मता और स्थूलता कर्मशास्त्रीय परिभाषा द्वारा निश्चित है। जिन जीवो के सूक्ष्मनामकर्म का उदय होता है वे सूक्ष्म और जिन जीवो के वादरनामकर्म का उदय होता है वे वादर कहलाते हैं। सूक्ष्म जीव समूचे लोक मे व्याप्त होते हैं और वादर जीव लोक के एक भाग मे रहते हैं[1]। सूक्ष्म जीव इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य नहीं होते। वादर जीव इन्द्रियो तथा वाह्य उपकरण-सामग्री द्वारा गृहीत होते हैं।

५६ पर्याप्तक-अपर्याप्तक (सू० १२८)

जन्म के आरम्भ मे प्राप्त होने वाली पौद्गलिक शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। वे छ हैं। जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियो से युक्त होते हैं वे पर्याप्तक कहे जाते हैं।

जो स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण न कर पाए हो, वे अपर्याप्तक कहे जाते हैं।

५७ परिणत, अपरिणत (सू० १३३)

प्रस्तुत छ सूत्रो मे परिणत और अपरिणत का तत्त्व समझाया गया है। परिणत का अर्थ है—वर्तमान परिणति (पर्याय) से भिन्न परिणति मे चले जाना और अपरिणत का अर्थ है— वर्तमान परिणति मे रहना। इनमे पूर्ववर्ती पाच सूत्रों का सम्बन्ध पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय से है और छठे सूत्र का सम्बन्ध द्रव्य मात्र से है। पृथ्वीकाय आदि परिणत और अपरिणत दोनो प्रकार के होते हैं—इसका अर्थ है कि वे सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार के होते हैं।

५८-६३ (सू० १५५-१६०)

शारीरिक दृष्टि से जीव छ प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। विकासक्रम के आधार पर वे पाच प्रकार के होते हैं—

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

इन्द्रिय और मन से होने वाला ज्ञान शरीर-रचना से सम्बन्ध रखता है। जिस जीव मे इन्द्रिय और मानसज्ञान की जितनी क्षमता होती है, उसी के आधार पर उनकी शरीर-रचना होती है और शरीर-रचना के आधार पर ही उस ज्ञान की प्रवृत्ति होती है। प्रस्तुत आलापक में शरीर-रचना और इन्द्रिय तथा मानसज्ञान के विकास का सम्बन्ध प्रदर्शित है—

जीव	वाह्य शरीर (स्थूल शरीर)	इन्द्रिय ज्ञान
१ एकेन्द्रिय—(पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति)	(औदारिक)	स्पर्शनज्ञान
२ द्वीन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमास शोणितयुक्त)	रसन, स्पर्शनज्ञान
३ त्रीन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमास शोणितयुक्त)	घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
४ चतुरिन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमास शोणितयुक्त)	चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
५ पचेन्द्रिय (तिर्यंच)	औदारिक (अस्थिमास शोणित स्नायु शिरायुक्त)	श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
६ पचेन्द्रिय (मनुष्य)	औदारिक (अस्थिमास शोणित स्नायु शिरायुक्त)	श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान

१ उत्तराध्ययन, ३६।७८
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य वायरा।

६४— विग्रहगति (सू० १६१)

जीव की एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते समय बीच में होने वाली गति दो प्रकार की होती है—ऋजु और विग्रह (वक्र)।

ऋजु गति एक समय की होती है। मृत जीव का उत्पत्ति-स्थान विश्रेणि मे होता है तब उसकी गति विग्रह (वक्र) होती है[1]। इसीलिए वह दो से लेकर चार समय तक की होती है। जिस विग्रहगति में एक घुमाव होता है उसका कालमान दो समय का, जिसमे दो घुमाव हो उसका कालमान तीन समय का और जिसमे तीन घुमाव हों उसका कालमान चार समय का होता है।

६५ (सू० १६८)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द विवेचनीय हैं। वे ये हैं—

१ शिक्षा—इसके दो प्रकार हैं—

ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा।

ग्रहणशिक्षा—सूत्र और अर्थ का ग्रहण करना।

आसेवनशिक्षा—प्रतिलेखन आदि का प्रशिक्षण लेना[2]।

२ भोजनमडली—प्राचीनकाल मे साधुओं के लिए सात मडलिया होती थीं[3]—

१ सूत्रमडली।

२ अर्थमडली।

३ भोजनमडली।

४ कालप्रतिलेखनमडली।

५ आवश्यक (प्रतिक्रमण) मडली।

६ स्वाध्यायमडली।

७ सस्तारकमडली।

३ उद्देश—यह अध्ययन तुम्हे पढना चाहिए—गुरु के इस निर्देश को उद्देश कहा जाता है[4]।

४ समुद्देश—शिष्य भली-भांति पाठ पढकर गुरु को निवेदित करता है। गुरु उस समय उसे स्थिर, परिचित करने का निर्देश देते हैं। यह निर्देश समुद्देश कहलाता है[5]।

५ अनुज्ञा—पढे हुए पाठ के स्थिर परिचित हो जाने पर शिष्य फिर उसे गुरु को निवेदित करता है। इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर गुरु उसे सम्यक् प्रकार से धारण करने और दूसरो को पढाने का निर्देश देते हैं। इस निर्देश को अनुज्ञा कहा जाता है[6]।

६ आलोचना—गुरु को अपनी भूलों का निवेदन करना।

७ व्यतिवर्तन—अतिचारो के क्रम का विच्छेदन करना।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५२

विग्रहगति—वक्रगतिर्यदा विश्रेणिव्यवस्थितमुत्पत्तिस्थानं गन्तव्यं भवति तदा सा स्यात्।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५३।

३ प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६६।

४ अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

इदमध्ययनादि त्वया पठितव्यमिति गुरुवचनविशेष उद्देश।

५ अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

तस्मिन्नेव शिष्येण अहीनादिलक्षणोपेतेऽधीते गुरो निवेदिते स्थिरपरिचितं कुर्विदमिति गुरुवचनविशेष एव समुद्देश।

६ अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

तथा कृत्वा गुरोर्निवेदिते सम्यगिद धारयान्यांश्चाध्यापयेति तद्वचनविशेष एवानुज्ञा।

६६ प्रायोपगत अनशन (सू० १६६)

प्रायोपगत अनशन—देखें, उत्तराध्ययन, ३०/१२-१३ का टिप्पण।

६७ कल्प मे उपपन्न (सू० १७०)

सौधर्म से लेकर अच्युत तक के बारहदेवलोक कल्प कहलाते हैं। इनमे स्वामी, सेवक आदि का कल्प (व्यवस्था) होता है, इसलिए इनमे उपपन्न होने वाले देवो को कल्पोपपन्न कहा जाता है।

६८ विमान मे उपपन्न (सू० १७०)

नवग्रैवेयक और पाच अनुत्तरविमान मे उपपन्न होने वाले देव कल्पातीत होते हैं। इनमे स्वामी, सेवक आदि का कल्प नही होता, अतएव वे कल्पातीत कहलाते हैं। ये सब ऊर्ध्वलोक में होते हैं।

६९ चार मे उपपन्न (सू० १७०)

चार का अर्थ है—ज्योतिश्चक्र। इसमें उत्पन्न होने वाले देवो को चारोपपन्न कहा जाता है।

७० चार मे स्थित (सू० १७०)

समयक्षेत्र के बाहर रहने वाले ज्योतिष्क देव।

७१ गतिशील (सू० १७०)

समयक्षेत्र के भीतर रहने वाले ज्योतिष्क देव।

७२ मनुष्यो के (सू० १७२)

सूत्रकार स्वय मनुष्य है, अत उन्होंने मनुष्य के सूत्र मे 'तत्य' के स्थान मे 'इह' का प्रयोग किया है।

७३ तिर्यंच (सू० १७४)

यहा पचेन्द्रिय का ग्रहण इसलिए नही किया गया है कि देव अपने स्थान से च्युत होकर पृथ्वी, अप् और वनस्पति—इन एकेन्द्रिय योनियो मे भी जा सकते हैं।

७४-७५ गतिसमापन्नक-अगतिसमापन्नक (सू० १७९)

गति का अर्थ होता है—जाना। यहा गति शब्द का अर्थ है, जीव का एक भव से दूसरे भव मे जाना।

गतिसमापन्नक—अपने-अपने उत्पत्ति-स्थान की ओर जाते हुए।

अगतिसमापन्नक—अपने-अपने भव मे स्थित।

७६ (सू० १८१)

आहार तीन प्रकार के होते हैं—

१ ओजआहार।

२ लोमआहार।

३ प्रक्षेपआहार (कवलआहार)।

जीव उत्पत्ति के समय सर्वप्रथम जो आहार ग्रहण करता है उसे ओज आहार कहते हैं। यह आहार सब अपर्याप्तक जीव लेते हैं।

शरीर के रोमकूपो के द्वारा वाह्य पुद्गलो को ग्रहण किया जाता है, उसे लोम आहार कहते हैं। यह सभी जीवों के द्वारा लिया जाता है।

कवल के द्वारा जो आहार ग्रहण किया जाता है, उसे प्रक्षेप या कवल आहार कहते हैं। एकेन्द्रिय, देव और नरक के जीव कवल आहार नही करते। शेष सभी (मनुष्य और तिर्यंच) जीव कवल आहार करते हैं।

जो जीव तीन आहारो मे से किसी भी आहार को लेता है वह आहारक और जो किसी भी आहार को नही लेता वह अनाहारक होता है।

सिद्ध अनाहारक होते हैं। ससारी जीवों मे अयोगी केवली अनाहारक होते हैं। सयोगी केवली समुद्घात के समय तीसरे, चौथे और पाचवें समय मे अनाहारक होते हैं।

मोक्ष मे जाने वाले जीव अन्तरालगति के समय सूक्ष्म तथा स्थूल सब शरीरो से मुक्त होते हैं, अत उन्हें आहार लेने की आवश्यकता नही होती। ससारी जीव सूक्ष्म शरीर सहित होते हैं, अत उन्हें आहार की आवश्यकता होती है।

ऋजुगति करने वाले जीव जिस समय मे पहला शरीर छोडते हैं, उसी समय मे दूसरे जन्म मे उत्पन्न होकर आहार लेते हैं। किन्तु वक्रगति करने वाले जीवों की दो समय की एक घुमाव वाली, तीन समय की दो घुमाव वाली और चार समय की तीन घुमाव वाली वक्रगति मे अनाहारक स्थिति पाई जाती है। दो समय वाली वक्रगति मे पहला समय अनाहारक और दूसरा समय आहारक होता है। तीन समय वाली वक्रगति मे पहला और दूसरा समय अनाहारक और तीसरा समय आहारक होता है। चार समय वाली वक्रगति मे दूसरा और तीसरा समय अनाहारक तथा पहला और चौथा समय आहारक होता है।

७७—(सू० १८५)

विकलेन्द्रिय

सामान्यत विकलेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का ही ग्रहण होता है, किन्तु यहाँ एकेन्द्रिय का भी ग्रहण किया गया है। यहा 'विकल' शब्द 'अपूर्ण' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इस सूत्र में सज्ञी और असज्ञी का कथन पूर्वजन्म की अवस्था की प्रधानता से हुआ है। जो असज्ञी जीव नारक आदि के रूप मे उत्पन्न होते हैं वे अपनी पूर्वावस्था के कारण असज्ञी कहे जाते हैं। असज्ञी जीव नारक से व्यन्तर तक के दडकों मे ही उत्पन्न होते हैं, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे नहीं होते।

संज्ञी

दसवें स्थान में सज्ञा के दस प्रकार वतलाए गए हैं। उन सज्ञाओ के कारण सभी जीव सज्ञी होते हैं, किन्तु यहां सज्ञी उन सज्ञाओं के सम्बन्ध से विवक्षित नही है। यहा सज्ञी का अर्थ समनस्क है। इस सज्ञा का सम्बन्ध कालिकोपदेशिकी सज्ञा से है। नदीसूत्र मे तीन प्रकार के सज्ञी निर्दिष्ट हैं—

कालिकोपदेशेन सज्ञी, हेतुवादोपदेशेन सज्ञी, दृष्टिवादोपदेशेन सज्ञी[1]। प्रस्तुत प्रकरण में कालिकोपदेशेन सज्ञी विवक्षित है। जिस व्यक्ति में ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेपणा, चिन्ता और विमर्श प्राप्त होता है, वह कालिकोपदेशेन सज्ञी होता है[2]। कालिकोपदेशिकी सज्ञा के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान—त्रैकालिक ज्ञान होता है, इसलिए इसकी मूल सज्ञा दीर्घकालिकी है[3]। हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा वाले जीव इष्ट विपय मे प्रवृत्त और अनिष्ट विपय में निवृत्त होते हैं, अत उनका ज्ञान वर्तमाना-

---

१ नदी, सूत्र ६१
से किं त सण्णिसुय ?
सण्णिसुय तिविहं पण्णत्तं त जहा—
कालिओवएसेण हेउवएसेण दिट्ठिवाओवएसेणं।

२ नंदी, सूत्र ६२
से किं त कालिओवएसेण ?
कालिओवएसेणं—जस्स णं अत्थि ईहा, अपोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिन्ता, वीमसा—से णं सण्णीति लब्भइ।

३ नदीवृत्ति, पत्र १८६
इह दीर्घकालिकी सज्ञा कालिकीति व्यपदिश्यते आदिपदलोपाद्युपदेशेनमुपदेश —कथनमित्यर्थ दीर्घकालिक्या उपदेश दीर्घकालिक्युपदेश।

वलम्बी होता है। ज्ञान की विशिष्टता के आधार पर दीर्घकालिकी सज्ञा का नाम मनोविज्ञान है[1]।

७८ (सू० १८६)

ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की स्थिति असख्येय काल की होती है अत इस आलापक मे उन्हें छोडा गया है।

७६ अघोवधि (सू० १६३)

अवधि ज्ञान के ११ द्वार हैं—भेद, विपय, सस्थान, आभ्यन्तर, वाह्य, देश, सर्व, वृद्धि, हानि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति।

इन ग्यारह द्वारो में देश और सर्व दो द्वार हैं। देशावधि का अर्थ है—अवधि ज्ञान द्वारा प्रकाशित वस्तुओ के एक देश (अश) को जानना।

सर्वावधि का अर्थ है—अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित वस्तुओ के सर्व देश (सभी अशो) को जानना[2]।

प्रज्ञापना (पद ३३) मे अवधिज्ञान के ये दो प्रकार मिलते हैं—देशावधि और सर्वावधि। जयधवला मे अवधिज्ञान के तीन भेद किए गए हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि[3]। देशावधि से परमावधि और परमावधि से सर्वावधि का विषय व्यापक होता है। आचार्य अकलक के अनुसार परमावधि का सर्वावधि मे अन्तर्भाव होता है, अत वह सर्वावधि की तुलना में देशावधि ही है। इस प्रकार अवधि के मुख्य भेद दो ही हैं—देशावधि और सर्वावधि[4]।

अधोवधि देशावधि का ही एक नाम है। देशावधि परमावधि व सर्वावधि से अधोवर्ती कोटि का होता है, इसलिए यहा देशावधि के लिए अधोवधि का प्रयोग किया गया है। अधोवधिज्ञान जिसे प्राप्त होता है उसे भी अधोवधि कहा गया है। अधोवधि का फलितार्थ होता है, नियत-क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी[5]।

८० (सू० १६६)

वृत्तिकार ने केवलकल्प के तीन अर्थ किए हैं।

केवलकल्प—१ अपना कार्य करने की सामर्थ्य के कारण परिपूर्ण।
२ केवलज्ञान की भाति परिपूर्ण।
३ सामयिकभाषा (आगमिक-सकेत) के अनुसार केवलकल्प अर्थात् परिपूर्ण[6]।

प्रस्तुत प्रसग मे यह बताया गया है कि अधोवधि पुरुप सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।

तत्त्वार्थवार्तिक में भी देशावधि का क्षेत्र जघन्यत उत्सेधागुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्टत सम्पूर्ण लोक बतलाया गया है[7]।

---

१ नदीचूर्णि, पृ० ३४
सा य सज्ञा मनोविज्ञान।

२ समवायागवृत्ति, पत्र १७४।

३ कपायपाहुड भाग १, पृ० १७।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, १।२३
सर्वशब्दस्य साकल्यवाचित्वात् द्रव्यक्षेत्रकाल भावै सर्वावधेरन्त पाती परमावधि, अत परमावधि रपि देशावधिरेवेति द्विविध एवावधि—सर्वावधि र्देशावधिश्च।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५७
यत्प्रकारोऽवधिरस्येति यथावधि, प्रादिदीर्घत्व प्राकृतत्वात् परमावधेर्वाऽधोवर्त्यवधियस्य सोऽधोऽवधिरात्मानियतक्षेत्रविपयावधिज्ञानी।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५७
केवल —परिपूर्ण स चासौ स्वकार्यसामर्थ्यात् कल्पश्च केवलज्ञानमिव वा परिपूर्णतयेति केवलकल्प, अथवा केवलकल्प समयभापया परिपूर्ण।

७ तत्त्वार्थवार्तिक, १।२२
उत्सेधाङ्गुलासख्येयभागक्षेत्रो देशावधि जघन्य। उत्कृष्ट कृत्स्नलोक।

८१-८६ (सू० २०१-२०६)

वृत्तिकार ने 'देशेन शृणोति' और सर्वेण शृणोति' की साधना और विषय के आधार पर अर्थ-योजना की है। जिसका एक कान उपहृत होता है वह देशेन सुनता है और जिसके दोनो कान स्वस्थ होते हैं वह सर्वेण सुनता है। शेष इन्द्रियो के लिए निम्न यत्र द्रष्टव्य हैं—

	देशेन	सर्वेण
स्पर्शन	एक भाग से स्पर्श करना	सम्पूर्ण शरीर से स्पर्श करना
रसन	जीभ के एक भाग से चखना	सम्पूर्ण जीभ से चखना
घ्राण	एक नथुने से सूघना	दोनो नथुनो से सूघना
चक्षु	एक आख से देखना	दोनो आंखो से देखना

देशेन और सर्वेण का अर्थ इन्द्रियो की नियतार्थग्रहणशक्ति और सभिन्नश्रोतोलब्धि के आधार पर भी किया जा सकता है।

सामान्यत इन्द्रियो का कार्य निश्चित होता है। सुनना श्रोत्रेन्द्रिय का कार्य है। देखना चक्षु इन्द्रिय का कार्य है। सूघना घ्राण इन्द्रिय का कार्य है। स्वाद लेना रसनेन्द्रिय का कार्य है और स्पर्श ज्ञान करना स्पर्शनेन्द्रिय का कार्य है। जिसे सभिन्न श्रोतोलब्धि प्राप्त होती है उसके लिए इन्द्रियो की अर्थग्रहण की प्रतिनियतता नहीं रहती। वह एक इन्द्रिय से सब इन्द्रियो का कार्य कर सकता है—आखो से सुन सकता है, कान से देख सकता है, स्पर्श से सुन सकता है, देख सकता है, सूघ सकता है, एक इन्द्रिय से पाचो इन्द्रियो का कार्य कर सकता है।[1] आवश्यकचूर्णिकार ने लिखा है कि सभिन्न श्रोतोलब्धि-सपन्न व्यक्ति शरीर के एक देश से पाचों इन्द्रियो के विषयो को ग्रहण कर लेता है।[2]

उन्होंने दूसरे स्थान पर यह लिखा है कि सभिन्न श्रोतोलब्धिसपन्न व्यक्ति शरीर के किसी भी अगोपाग से सब विषयो को ग्रहण कर सकता है[3]।

विषय की दृष्टि से देशेन सुनने का अर्थ है, श्रव्य शब्दो में से अपूर्णशब्दो को सुनना और सर्वेण सुनने का अर्थ है श्रव्यशब्दो में से सब शब्दो को सुनना।[4] यहा दोनो अर्थ घटित हो सकते हैं, फिर भी सूत्र का प्रतिपाद्य सभिन्न श्रोतोलब्धि की जानकारी देना प्रतीत होता है।

८७ (सू० २०६)

मरुत्‌देव लोकान्तिक देव हैं।[5] ये एक शरीरी और दो शरीरी दोनो प्रकार के होते हैं।

भवधारणीय शरीर की अपेक्षा अथवा अन्तरालगति मे सूक्ष्म शरीर की अपेक्षा उनको एक शरीरी कहा गया है।

भवधारणीय और उत्तरवैक्रियशरीर की अपेक्षा दो शरीरी कहा गया है।

८८ (सू० २१०)

किन्नर, किंपुरुष और गन्धर्व—ये तीन वानमतर जाति के देव हैं।

नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार—ये भवनपति देव हैं। वृत्तिकार के अनुसार ये भेद व्यवच्छेद

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ५७
देशेन च शृणोत्येकेन श्रोत्रेणैकश्रोत्रोपघाते सति, सर्वेण चानुपहतश्रोत्रेन्द्रियो, यो वा सम्भिन्नश्रोतोऽभिधानलब्धियुक्त स सर्वैरिन्द्रियै शृणोतीति सर्वेणेति व्यपदिश्यते।

२ आवश्यकचूर्णि, पृ० ६८
संभिन्न सोयरिद्धी नाम जो एगतरेण वि सरीर देसेन पंच वि इंदियविसए उवलभति सो संभिन्नसोय त्ति भन्नति।

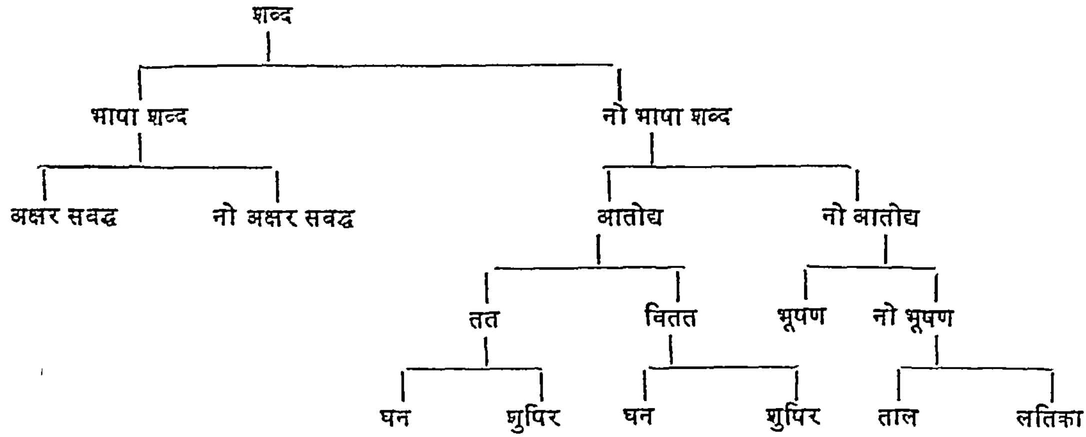
३ आवश्यकचूर्णि, पृ० ७०
एगेण वा इदिएण पंच वि इंदियत्थे उवलभति, अहवा सव्वेहि अंगोवगेहि।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ५८
देशतोऽपि शृणोति विवक्षितशब्दानां मध्ये कांश्चिच्छृणोतीति, 'सर्वेणापी' ति सर्वतश्च सामस्त्येन, सर्वानित्यर्थ।

५ तत्त्वार्थराजवार्तिक, ४।२६

के लिए नही, किन्तु समानजातीय भेदों के उपलक्षण हैं। इमीलिए अनन्तर सूत्र मे सामान्यत देवो के दो प्रकार वतलाए हैं।

८९ (सू० २१२-२१९)



भाषा शब्द—जीव के वाक्-प्रयत्न से होने वाला शब्द।
नो भाषा शब्द—वाक्-प्रयत्न मे भिन्न शब्द।
अक्षर मवद्ध शब्द—वर्णों के द्वारा व्यक्त होने वाला शब्द।
नो अक्षर मवद्ध शब्द—अवर्णों के द्वारा होने वाला शब्द।
अतोद्य शब्द—वाजे आदि का शब्द।
नो आतोद्य शब्द—वास आदि के फटने से होने वाला शब्द।
तत शब्द—तार वाले वाजे—वीणा, सारगी आदि से होने वाला शब्द।
वितत शब्द—तार-रहित वाजे से होने वाला शब्द।
तत घन शब्द—झाझ जैसे वाजे से होने वाला शब्द।
तत शुषिर शब्द—वीणा से होने वाला शब्द।
वितत घन शब्द—भाणक का शब्द।
वितत शुषिर शब्द—नगाडे, ढोल आदि का शब्द।
भूषण शब्द—नूपुर आदि से होने वाला शब्द।
नो भूषण शब्द—भूषण से भिन्न शब्द
ताल शब्द—ताली वजाने से होने वाला शब्द।
लतिका शब्द—(१) कासी का शब्द।
(२) लात मारने से होने वाला शब्द।[1]

९० (सू० २३०)

वद्धपार्श्वस्पृष्ट—जो पुद्‌गल शरीर के साथ गाढ सम्वन्ध किए हुए हों, वे वद्ध कहलाते हैं और जो शरीर से चिपके रहते हैं, वे पुद्‌गल पार्श्वस्पृष्ट कहलाते हैं।

घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय—इन तीनो इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य पुद्‌गल 'वद्धपार्श्वस्पृष्ट' होते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५८, ५९।

नो वद्ध-पार्श्वस्पृष्ट—श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पुद्‌गल 'नोवद्धपार्श्वस्पृष्ट' होते हैं।

९१ (सू० २३१)

पर्यादत्त—जो पुद्‌गल विवक्षित अवस्था को पार कर चुके हैं।

अपर्यादत्त—जो पुद्‌गल विवक्षित अवस्था मे हैं।

९२-९५ (सू० २३९-२४२)

पाचवें स्थान (सूत्र १४७) मे आचार के पाच प्रकार वतलाए गए हैं—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपआचार और वीर्याचार। प्रस्तुत चार सूत्रो (२३९-२४२) मे द्विस्थानक पद्धति से उन्हीं का उल्लेख है।

देखें—(५।१४७ का टिप्पण)।

९६-१०८ प्रतिमा (सू० २४३-२४८)

प्रस्तुत ६ सूत्रो मे वारह प्रतिमाओ का निर्देश है। चतुर्थ स्थान (४।९६-९८) मे तीन वर्गों मे इसका निर्देश प्राप्त है। पाचवें स्थान (५।१८) में केवल पाच प्रतिमाए निर्दिष्ट हैं—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा।

समवायागसूत्र मे उपासक के लिए ग्यारह और भिक्षु के लिए वारह प्रतिमाए निर्दिष्ट हैं।[1] वहा पर वैयावृत्त्य कर्म की ९१ प्रतिमाए[2] तथा ९२ प्रतिमाए[3] नाम-निर्देश के विना निर्दिष्ट हैं। इस सूचि के अवलोकन से पता चलता है कि जैन साधना-पद्धति मे प्रतिमाओ का वहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वृत्तिकार ने प्रतिमा का अर्थ प्रनिपत्ति, प्रतिज्ञा या अभिग्रह किया है।[4] शाब्दिक मीमासा करने पर इसका अर्थ साधना का मानदण्ड प्रतीत होता है। साधना की भिन्न-भिन्न पद्धतिया और उनके भिन्न-भिन्न मानदण्ड होते हैं। उन सवका प्रतिमा के रूप मे वर्गीकरण किया गया है। इनमे से कुछ प्रतिमाओं का अर्थ प्राप्त होता है और कुछ की अर्थ-परम्परा विस्मृत हो चुकी है। वृत्तिकार ने सुभद्राप्रतिमा के विषय मे लिखा है कि उसका अर्थ उपलव्ध नहीं है।[5] उपलव्ध अर्थ भी मूलग्राही हैं, यह कहना कठिन है। वृत्तिकार ने समाधिप्रतिमा के दो प्रकार किए हैं—श्रुतसमाधिप्रतिमा और चरित्रसमाधिप्रतिमा।[6]

उपधानप्रतिमा—उपधान का अर्थ है तपस्या। भिक्षु की १२ प्रतिमाओ और श्रावक की ११ प्रतिमाओ को उपधान प्रतिमा कहा जाता है।

विवेकप्रतिमा—प्रस्तुत प्रतिमा भेदज्ञान की प्रक्रिया है। इस प्रतिमा के अभ्यासकाल मे आत्मा और अनात्मा का विवेचन किया जाता है। इसका अभ्यास करने वाला क्रोध, मान, माया और लोभ की भिन्नता का अनुचिंतन (ध्यान) करता है। ये आत्मा के सर्वाधिक निकटवर्ती अनात्म तत्त्व हैं। इनका भेदज्ञान पुष्ट होने पर वह वाह्यवर्ती सयोगो की भिन्नता का अनुचिंतन करता है। वाह्य सयोग के मुख्य प्रकार तीन हैं—१ गण (सगठन), २ शरीर, ३ भक्तपान।[7] इनका भेदज्ञान पुष्ट होने पर वह व्युत्सर्ग की भूमिका में चला जाता है।

---

१ समवाओ, ११।१, १२।१।

२ समवाओ, ९१।१।

३ समवाओ, ९२।१ तया देखें समवाओ, पृ० २७३-२७४ का टिप्पण।

४ (क) स्यानांगवृत्ति, पत्र ६१

प्रतिमा प्रतिपत्ति: प्रतिज्ञेतियावत्।

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र १८४

प्रतिमा—प्रतिना अभिग्रह:।

५ स्यानागवृत्ति, पत्र ६१

सुभद्राऽप्येवप्रकारैव सम्भाव्यते, अदृष्टत्वेन तु नोक्तेति।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१

समाधानं समाधि—प्रशस्तभावलक्षण: तस्य प्रतिमा समाधिप्रतिमा दशाश्रुतस्कन्धोक्ता द्विभेदा—श्रुतसमाधिप्रतिमा सामायिकादिचारित्रसमाधिप्रतिमा च।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१

विवेक—त्याग, स चान्तराणा कपायादीनां वाह्यानां गणशरीरभक्तपानादीनामनुचितानां तत्प्रतिपत्तिर्विवेकप्रतिमा।

विवेकप्रतिमा की तुलना योगसूत्र की विवेकख्याति से होती है। महर्षि पतञ्जलि ने इसे हानोपाय बतलाया है।[1]

व्युत्सर्गप्रतिमा—यह प्रतिमा विसर्जन की प्रक्रिया है। विवेकप्रतिमा के द्वारा हेय वस्तुओं का भेदज्ञान पुष्ट होने पर उनका विसर्जन करना ही व्युत्सर्गप्रतिमा है।

औपपातिक सूत्र में व्युत्सर्ग के सात प्रकार बतलाए गए हैं—

१ शरीरव्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग, शिथिलीकरण।

२ गणव्युत्सर्ग—विशिष्ट साधना के लिए एकल विहार का स्वीकार।

३ उपाधिव्युत्सर्ग—वस्त्र आदि उपकरणों का विसर्जन।

४ भक्तपानव्युत्सर्ग—भक्तपान का विसर्जन।

५ कषायव्युत्सर्ग—क्रोध, मान, माया और लोभ का विसर्जन।

६ संसारव्युत्सर्ग—संसार-भ्रमण के हेतुओं का विसर्जन।

७ कर्मव्युत्सर्ग—कर्म-बन्ध के हेतुओं का विसर्जन।

भद्राप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारों दिशाओं में चार-चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना।

भगवान् महावीर ने सानुलष्ठि ग्राम के बाहर जाकर भद्राप्रतिमा स्वीकार की। उनकी विधि के अनुसार भगवान् ने प्रथम दिन पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। रात भर दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। दूसरे दिन पश्चिम दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। दूसरी रात्रि को उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया।[2] इस प्रकार षष्ठ भक्त (दो उपवास) के तप तथा दो दिन-रात के निरन्तर कायोत्सर्ग द्वारा भगवान् ने भद्राप्रतिमा सम्पन्न की।

सुभद्राप्रतिमा—इस प्रतिमा की साधना-पद्धति वृत्तिकार के समय से पहले ही विच्छिन्न हो गई थी।[3]

महाभद्रप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। इसका कालमान चार दिन-रात का होता है। दशमभक्त (चार दिन के उपवास) से यह प्रतिमा पूर्ण होती है।[4] भद्राप्रतिमा के अनन्तर ही भगवान् ने महाभद्रा प्रतिमा की आराधना की थी।[5]

सर्वतोभद्राप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारों दिशाओं, चारों विदिशाओं तथा ऊर्ध्व और अध—इन दशों दिशाओं में एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। ऊर्ध्व दिशा के कायोत्सर्ग काल में ऊर्ध्वलोक में अवस्थित द्रव्यों का ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार अधो दिशा के कायोत्सर्ग काल में अधोलोक में अवस्थित द्रव्य ध्यान के विषय बनते हैं। इस प्रतिमा का कालमान १० दिन-रात का है। यह २२ भक्त (दस दिन का उपवास) से पूर्ण होती है।[6] भगवान् महावीर ने इस प्रतिमा की भी आराधना की थी।[7]

यह प्रतिमा दूसरी पद्धति से भी की जाती है। इसके दो भेद हैं—क्षुद्रिकासर्वतोभद्रा और महतीसर्वतोभद्रा। इसमें एक उपवास से लेकर पांच उपवास किए जाते हैं। इसकी पूर्ण प्रक्रिया ७५ दिवसीय तपस्या से पूर्ण होती है। और पारणा के दिन २५ होते हैं। कुल मिलाकर १०० दिन लगते हैं।[8] इसकी स्थापना-विधि इस प्रकार है—

---

१ योगदर्शन २।२६
विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९५, ४९६
तावत्यो वास चित्ततवो साणुलट्ठि बहिं।
पडिमाभद्द महाभद्द सव्वओभद्द पढमिमा चउरो।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१
सुभद्राप्येव प्रकारैव सम्भाव्यते अदृष्टत्वेन तु नोक्ता।

४ आवश्यकनिर्युक्तिअवचूर्णि, पृ० २८६
महाभद्रायां पूर्वदिश्येकमहोरात्र, एवं शेषदिश्वपि एषा दशमेन पूर्यते।

५ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९६।

६ आवश्यकनिर्युक्तिअवचूर्णि, पृ० २८६
सर्वतोभद्रायां दशस्वपि दिक्ष्वेकैकमहोरात्र, तत्रोर्ध्वदिशमधिकृत्य यदा कायोत्सर्गं कुरुते तदोर्ध्वलोकव्यवस्थितान्येव कानिचिद्द्रव्याणि ध्यायति, अधोदिशि त्वधोव्यवस्थितानि, एवमेषा द्वाविंशतिभक्तेन समाप्यते।

७ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९६।

८ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७८
सर्वतोभद्रा तु प्रकारान्तरेणाप्युच्यते, द्विधेयं—क्षुद्रिका महती च, तत्राद्या चतुर्थादिना द्वादशावसानेन पञ्चसप्ततिदिनप्रमाणेन तपसा भवति।

आदि में १ की और अन्त में ५ की स्थापना कीजिए। शेप सख्या को भर दीजिए। दूसरी पक्ति मे प्रथम पक्ति के मध्य को आदि मानकर क्रमश भर दीजिए। तीसरी पक्ति मे दूसरी पक्ति के मध्य को आदि मानकर क्रमश भर दीजिए। इन पद्धति से पाचो पक्तियो को भर दीजिए।[1] इसका यन्त्र इस प्रकार है—

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

कोष्ठक मे जो अक सख्या है उसका अर्थ है उतने दिन का उपवास। प्रत्येक तप के बाद पारणा आता है, जैसे—

पहले उपवास, फिर पारणा, फिर दो दिन का उपवास, फिर पारणा। इस पद्धति से ७५ दिन का तप और २५ दिन का पारणा होता है।

महतीसर्वतोभद्रा—इसमें यह चतुर्थभक्त (उपवास) से लेकर ७ दिन के तप किए जाते हैं। इसकी पूर्ण प्रक्रिया १९६ दिवसीय तप से पूर्ण होती है और पारणा के दिन ४९ लगते हैं। कुल मिलाकर २४५ दिन लगते हैं।[2] इसकी स्थापना-पद्धति इस प्रकार है—

आदि में एक और अन्त मे ७ के अक की स्थापना कीजिए। बीच की सख्या क्रमश भर दीजिए। उसमे आगे की पक्ति मे पहले की पक्ति का मध्य अक लेकर अगली पक्ति के आदि मे स्थापित कर दीजिए। फिर क्रमश सख्या भर दीजिए। इस प्रकार सात पक्तिया भर दीजिए।[3] यन्त्र इस प्रकार है—

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७८

एगाई पचंते ठविउ, मज्झं तु आइमणुपंति।
उचियकमेण य सेसं, जाण लहुं सव्वओभद्दं॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९

महती तु चतुर्थादिना पोडशावसानेन षण्णवत्यधिकदिन-शतमानेन भवति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९

एगाई सत्तंते, ठविउ मज्झं च आदिमणुपंति।
उचियकमेण य, सेसे जाण महं सव्वओभद्दं॥

अक सख्या का अर्थ है उतने दिन का तप। इसकी विधि पूर्ववत् है।

क्षुद्रिकाप्रस्रवणप्रतिमा, महतीप्रस्रवणप्रतिमा—प्रस्तुत सूत्र में इनका केवल नामोल्लेख है। व्यवहारसूत्र के नवें उद्देशक मे इनकी पद्धति निर्दिष्ट है। व्यवहार-भाष्य मे इनका विस्तृत विवेचन है। उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विचार किया गया है।

द्रव्यत —प्रस्रवण पीना।

क्षेत्रत —गाव मे बाहर रहना।

कालत —दिन मे, अथवा रात्रि मे, प्रथम निदाघ-काल में अथवा अन्तिम निदाघकाल मे।

स्थानाग के वृत्तिकार ने कालत शरद् और निदाघ दोनों समयों का उल्लेख किया है।[1]

व्यवहारभाष्य मे प्रथमशरद् का उल्लेख मिलता है।[2]

भावत —स्वाभाविक और इतर प्रस्रवण। प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि स्वाभाविक को पीता है और इतर को छोडता है। कृमि तथा शुक्रयुक्त प्रस्रवण इतर प्रस्रवण होता है।

स्थानाग वृत्तिकार ने भावत की व्याख्या में देव आदि का उपसर्ग सहना ग्रहण किया है।[3] यदि यह प्रतिमा खा कर की जाती है तो ६ दिन के उपवास से समाप्त हो जाती है और न खाकर की जाती है तो ७ दिन के उपवास से पूर्ण होती है।

इस प्रतिमा की सिद्धि के तीन लाभ बतलाए गए हैं—

१ सिद्ध होना।

२ महर्द्धिक देव होना।

३ रोगमुक्त होकर शरीर का कनक वर्ण हो जाना।

प्रतिमा पालन करने के बाद आहार-ग्रहण की प्रक्रिया इस प्रकार निर्दिष्ट है—

प्रथम सप्ताह मे गर्म पानी के साथ चावल।

दूसरे सप्ताह मे यूष-माड।

तीसरे सप्ताह मे त्रिभाग उष्णोदक और थोडे से मधुर दही के साथ चावल।

चतुर्थ सप्ताह मे दो भाग उष्णोदक और तीन भाग मधुर दही के साथ चावल।

पाचवें सप्ताह मे अर्द्ध उष्णोदक और अर्द्ध मधुर दही के साथ चावल।

छठे सप्ताह मे त्रिभाग उष्णोदक और दो भाग मधुर दही के साथ चावल।

सातवें सप्ताह मे मधुर दही में थोडा सा उष्णोदक मिलाकर उसके साथ चावल।

आठवें सप्ताह मे मधुर दही अथवा अन्य जूपों के साथ चावल।

सात सप्ताह तक रोग के प्रतिकूल न हो वैसा भोजन दही के साथ किया जा सकता है। तत्पश्चात् भोजन का प्रतिबंध समाप्त हो जाता है। महतीप्रस्रवणप्रतिम । विधि भी क्षुद्रिकाप्रस्रवणप्रतिमा के समान ही है। केवल इतना अन्तर है कि जब वह खा-पीकर स्वीकार की जाती है तब वह ७ दिन के उपवास से पूरी होती है अन्यथा वह आठ दिन के उपवास से।[4]

यवमध्यचन्द्रप्रतिमा, वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा—प्रस्तुत सूत्र में इनका केवल नामोल्लेख है। व्यवहार के दसवें उद्देशक में इनकी पद्धति निर्दिष्ट है। व्यवहार भाष्य मे इनका विस्तृत विवेचन है।

यवमध्यचन्द्रप्रतिमा—इस चन्द्रप्रतिमा मे मध्यभाग यव की तरह स्थूल होता है इसलिए इसको यवमध्यचन्द्रप्रतिमा कहते हैं। इसका भावार्थ है जिसका आदि-अन्त कृश और मध्य स्थूल हो वह प्रतिमा।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१
  कालत शरदि निदाघे वा प्रतिपद्यते।

२ व्यवहारभाष्य, ६।१०७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१
  भावतस्तु दिव्याद्युपसर्गसहनमिति।

४ व्यवहार सूत्र, उद्देशक ६, भाष्यगाथा ८८-१०७।

(११ दिन के उपवास) होता है। इस प्रतिमा में ३९२ दिन का तप होता है और ४९ दिन पारणा के लगते हैं। कुल मिलाकर ४४१ दिन लगते हैं।[1] इसकी स्थापना-विधि इस प्रकार है—

प्रथम पंक्ति के आदि मे ५ का अंक स्थापित कीजिए और अन्त में ११ का अंक स्थापित कीजिए। बीच की संख्या क्रमशः भर दीजिए। अगली पंक्ति के आदि में पूर्व पंक्ति का मध्य अंक स्थापित कर उसे क्रमशः भर दीजिए। इसी क्रम से सातों पंक्तियां भर दीजिए।[2]

इसका यन्त्र इस प्रकार है—

५	६	७	८	९	१०	११
८	९	१०	११	५	६	७
११	५	६	७	८	९	१०
७	८	९	१०	११	५	६
१०	११	५	६	७	८	९
६	७	८	९	१०	११	५
९	१०	११	५	६	७	८

कोष्ठक में जो अंक हैं उनका अर्थ है—उतने दिन का उपवास।

१०९-११२ उपपात, उद्वर्तन, च्यवन, गर्भ अवक्रान्ति (सू० २५०-२५३)

प्रस्तुत चार सूत्रों में जन्म और मृत्यु के लिए परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे—देव और नारक जीवों का जन्म गर्भ से नहीं होता। वे अन्तर्मुहूर्त्त में ही अपने पूर्ण शरीर का निर्माण कर लेते हैं। इसलिए उनके जन्म को उपपात कहा जाता है।

नैरयिक और भवनवासी देव अधोलोक में रहते हैं। वे मरकर ऊपर आते हैं, इसलिए उनके मरण को उद्वर्तन कहा जाता है।

ज्योतिष्क और वैमानिक देव ऊर्ध्वस्थान में रहते हैं। वे आयुष्य पूर्ण कर नीचे आते हैं, इसलिए उनके मरण को च्यवन कहा जाता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९

महती तु द्वादशादिना चतुर्विंशतितमान्तेन द्विनवत्यधिकदिनशतत्रयमानेन तपसा भवति। पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशदिति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९

पञ्चादिगारसंते, ठविउं मज्झं तु आइमणुपंतिं।
उचियकमेण य, सेसे महई भद्दोत्तरं जाण॥

मनुष्य और तिर्यञ्च गर्भ से पैदा होते हैं, इसलिए उनके गर्भाशय मे उत्पन्न होने को गर्भ—अवक्रान्ति कहा जाता है।

११३ (सू० २५६)

प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो के गर्भ की अवस्था उनके गर्भ मे रहते हुए उसकी गतिविधियो, गर्भ से निष्क्रमण और मृत्यु की अवस्था का वर्णन है।

निवृद्धि—वात, पित आदि दोषो के द्वारा होने वाली शरीर की हानि।

विक्रिया—जिन्हे वैक्रिय लब्धि प्राप्त हो जाती है, वे गर्भ मे रहते हुए भी उस लब्धि के द्वारा विभिन्न शरीरो की रचना कर लेते हैं।

गतिपर्याय—वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए हैं—

१ गति का सामान्य अर्थ है जाना।

२ इसका दूसरा अर्थ है—वर्तमानभव से मरकर दूसरे भव मे जाना।

३ गर्भस्थ मनुष्य और तिर्यंच का वैक्रिय शरीर के द्वारा युद्ध के लिए जाना। यहा गति के उत्तरवर्ती दो अर्थ विशेष सन्दर्भों में किए गए हैं।

कालसयोग—देव और नैरयिक अन्तर्मुहूर्त्त मे पूर्णांग हो जाते हैं, किन्तु मनुष्य और तिर्यंच काल-क्रम के अनुसार अपने अगो का विकास करते हैं—विभिन्न अवस्थाओ में से गुजरते हैं।

आयाति—गर्भ से बाहर आना।

११४ (सू० २५९-२६१)

जीव एक जन्म मे जितने काल तक जीते हैं उसे 'भव-स्थिति' और मृत्यु के पश्चात् उसी जीव-निकाय के शरीर में उत्पन्न होने को 'काय-स्थिति' कहा जाता है।

मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यञ्च लगातार सात-आठ जन्मों तक मनुष्य और तिर्यञ्च हो सकते हैं। इसलिए उनके कायस्थिति और भवस्थिति—दोनो होती है। देव और नैरयिक मृत्यु के अनन्तर देव और नैरयिक नही बनते, इसलिए उनके केवल भवस्थिति होती है, कायस्थिति नही होती।

११५ (सू० २६२)

जो लगातार कई जन्मो तक एक ही जाति मे उत्पन्न होता रहता है, उसकी पारम्परिक आयु को अद्व-आयुष्य या कायस्थिति का आयुष्य कहा जाता है। पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु के जीव उत्कृष्टत असख्यकाल तक अपनी-अपनी योनि मे रह सकते हैं। वनस्पतिकाय अनन्तकाल तक तीन विकलेन्द्रिय सख्यात वर्षों तक और पचेन्द्रिय सात या आठ जन्मो तक अपनी-अपनी योनि में रह सकते हैं।[1]

जिस जाति मे जीव उत्पन्न होता है उसके आयुष्य को भव-आयुष्य कहा जाता है।

११६ (सू० २६५)

कर्म-बध की चार अवस्थाए होती हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाव (भाग) और प्रदेश[2]। प्रस्तुत सूत्र में इनमें से दो अवस्थाए प्रतिपादित हैं। प्रदेश-कर्म का अर्थ है—कर्म परमाणुओ की सख्या का परिमाण। अनुभावकर्म का अर्थ है, कर्म की फल देने की शक्ति।

कर्म का उदय दो प्रकार का होता है—प्रदेशोदय और विपाकोदय। जिस कर्म के प्रदेशो (पुद्गलो) का ही वेदन

---

१ देखें उत्तराध्ययन १०।५ से १३

२ उत्तराध्ययन, अध्ययन ३३।

होता है, रस का नही होता उसे प्रदेशकर्म कहते हैं।

जिस कर्म के बधे हुए रस के अनुसार वेदन होता है उसे अनुभावकर्म कहते हैं। वृत्तिकार ने यहा प्रदेशकर्म और अनुभावकम का यही (उदय सापेक्ष) अर्थ किया है[1]। किन्तु यहा कर्म की दो मूल अवस्थाओ का अर्थ सगत होता है, तव फिर उसकी उदय अवस्था का अर्थ करने की अपेक्षा ज्ञात नही होती।

११७ (सू० २६६)

समुच्चयदृष्टि से विचार करने पर आयुष्य के दो रूप फलित होते हैं—पूर्णआयु और अपूर्णआयु। देव और नैरयिक ये दोनो पूर्णआयु वाले होते हैं। मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच अपूर्णआयु वाले भी होते हैं। इनमे असख्येय वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंच और मनुष्य तथा उत्तम पुरुष और चरम शरीरी मनुष्य पूर्णआयु वाले ही होते हैं। इनका यहा निर्देश नही है।

११८ आयुष्य का सवर्तन (सू० २६७)

सातवें स्थान (७।७२) मे आयु सवर्तन के सात कारण निर्दिष्ट हैं।

११९ काल (सू० ३२०)

छठे स्थान (६।२३) मे ६ प्रकार के काल का निर्देश मिलता है—सुषम-सुषमा, सुषमा, सुषम-दु षमा, दु षमसुषमा, दुषमा, दु षम-दु षमा।

१२० नक्षत्र (सू० ३२४)

यजुर्वेद के एक मत्र में २७ नक्षत्रो को गन्धर्व कहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय २७ नक्षत्रो की मान्यता थी। अथववेद (अध्याय सख्या १९।७) मे कृत्तिकादि २८ नक्षत्रो का वर्णन है। इसी प्रकार तैत्तिरीयश्रुति मे २७ नक्षत्रो के नाम, देवता, वन्दन और लिङ्ग भी वताए गए हैं। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का नाम छोडा गया है। नक्षत्रों का क्रम इस सूत्र के अनुसार ही है और देवताओ के नाम भी वहुलाश में मिलते-जुलते हैं[2]।

१२१ (सू० ३२५)

तिलोयपण्णत्ती मे ८८ नक्षत्रो के निम्नोक्त नाम हैं—

वुध, शुक्र, वृहस्पति, मगल, शनि, काल, लोहित, कनक, नील, विकाल, केश, कवयव, कनकसस्थान, दुन्दुभक रक्तनिभ, नीलाभास, अशोकसस्थान, कस, रूपनिभ, कसकवर्ण, शखपरिणाम, तिलपुच्छ, शखवर्ण, उदकवर्ण, पचवर्ण, उत्पात, धूमकेतु, तिल, नभ, क्षारराशि, विजिष्णु, सदृश, सन्धि, कलेवर, अभिन्न, ग्रन्थि, मानवक, कालक, कालकेतु, निलय, अनय, विद्युज्जिह, सिंह, अलख, निर्दु ख, काल, महाकाल, रुद्र, महारुद्र, सतान, विपुल, सम्भव, सर्वार्थी, क्षेम, चन्द्र, निर्मन्त्र, ज्योतिषमान्, दिशसस्थित, विरत, वीतशोक, निश्छल, प्रलम्व, भासुर, स्वयप्रभ, विजय, वैजयन्त, सीमकर, अपराजित, जयत, विमल, अभयकर, विकस, काष्ठी, विकट, कज्जली, अग्निज्वाल, अशोक, केतु, क्षीरस, अघ, श्रवण, जलकेतु, केतु, अन्तरद, एक सस्थान, अश्व, भावग्रह, महाग्रह।

सूर्यप्रज्ञप्ति मे नील और नीलाभास ग्रह रुक्मी और रुक्माभास से पहले है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ६३

प्रदेशा एव पुद्गला एव यस्य वेद्यन्ते न यथा बद्धो रसस्तत्प्रदेशमात्रतया वेद्य कम प्रदेशकर्म, यस्य त्वनुभावो यथावद्धरसो वेद्यते तदनुभावतो वेद्य कर्मानुभावकर्मेति।

२ भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द्रकृत, पत्र ६६।

१२२-१२४ (सू० ३८७-३८६)

काल वास्तविक द्रव्य नही है। वह औपचारिक द्रव्य है। वस्तुत वह जीव और अजीव दोनो का पर्याय है। इसीलिए उसे जीव और अजीव दोनो कहा गया है।

ऋग्वेद १।१५५।६ मे काल के ६४ अश बतलाए गए हैं—सवत्सर, दो अयन, पाच ऋतु (हेमत और शिशिर को एक मानकर), १२ माम, २४ पक्ष, ३० अहोरात्र, आठ प्रहर और १२ राशिया।

जैन आगमो के अनुसार काल का सूक्ष्मतम भाग समय है। समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक का काल गण्यमान है, उसकी राशि अको मे निश्चित है।

समय—काल का सर्वसूक्ष्म भाग, जो विभक्त न हो सके, को समय कहा जाता है। इसे कमल-पत्र-भेद के उदाहरण द्वारा समझाया गया है।

एक-दूसरे से सटे हुए कमल के सौ पत्तो को कोई बलवान व्यक्ति सुई से छेदता है, तब ऐसा ही लगता है कि सब पत्ते साथ ही छिद गए, किन्तु ऐसा होता नहीं है। जिस समय पहला पत्ता छिदा उस समय दूसरा नही। इस प्रकार सबका छेदन क्रमश होता है।

दूसरा उदाहरण जीर्ण वस्त्र के फाडने का है—

एक कलाकुशल युवा और बलिष्ठ जुलाहा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र या साडी को इतनी शीघ्रता से फाड डालता है कि दर्शक को ऐसा लगता है मानो सारा वस्त्र एक साथ फाड डाला। किन्तु ऐसा होता नहीं। वस्त्र अनेक ततुओ से बनता है। जब तक ऊपर के ततु नहीं फटते तब तक नीचे के ततु नही फट सकते। अत यह निश्चित है कि वस्त्र के फटने मे काल-भेद होता है।

वस्त्र अनेक ततुओ से बनता है। प्रत्येक ततु में अनेक रोए होते हैं। उनमे भी ऊपर का रोआ पहले छिदता है। तब कहीं उसके नीचे का रोआ छिदता है। अनन्त परमाणुओं के मिलन का नाम सघात है। अनन्त सघातो का एक समुदाय और अनन्त समुदायो की एक समिति होती है। ऐसी अनन्त समितियों के सगठन से ततु के ऊपर का एक रोआ बनता है। इन सबका छेदन क्रमश होता है। ततु के पहले रोए के छेदन मे जितना समय लगता है, उसका अत्यन्त सूक्ष्म अश यानी असख्यातवां भाग 'समय' कहलाता है। वर्तमान विज्ञान के जगत् मे काल की सूक्ष्म-मर्यादा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमे से एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है। बर्कशायर (इंग्लैंड) के ऐल्डरमेस्टन अस्त्र-अनुसधान केन्द्र मे एक ऐसा कैमरा बनाया गया है, जो एक सेकड मे ५ करोड चित्र खींच लेता है।

असख्येय समय—आवलिका।

सख्यात आवलिका (एक उच्छ्वास-नि श्वास)—आन प्राण।

रोग-रहित स्वस्थ व्यक्ति को एक उच्छ्वास और एक नि श्वास में जो समय लगता है उसको 'आन प्राण' कहते हैं।

सात प्राण (सात उच्छ्वास-नि श्वास)—स्तोक।

सात स्तोक—लव।

सतहत्तर लव (३७७३ उच्छ्वास-नि श्वास)—मुहूर्त्त।

३० मुहूर्त्त—अहोरात्र।

१५ अहोरात्र—पक्ष।

२ पक्ष—मास।

२ मास—ऋतु।

३ ऋतु—अयन।

२ अयन—सवत्सर।

५ सवत्सर—युग।

२० युग—शतवर्ष।

१० शतवर्ष—सहस्रवर्ष।

१०० सहस्रवर्ष—शत सहस्रवर्ष।
८४ लाख वर्ष—पूर्वाङ्ग।
८४ लाख पूर्वाङ्ग—पूर्व।
८४ लाख पूर्व—त्रुटितांग।
८४ लाख त्रुटितांग—त्रुटित।
८४ लाख त्रुटित—अटटांग।
८४ लाख अटटांग—अटट।
८४ लाख अटट—अववांग।
८४ लाख अववांग—अवव।
८४ लाख अवव—हूहूकांग।
८४ लाख हूहूकांग—हूहूक।
८४ लाख हूहूक—उत्पलांग।
८४ लाख उत्पलांग—उत्पल।
८४ लाख उत्पल—पद्मांग।
८४ लाख पद्मांग—पद्म।
८४ लाख पद्म—नलिनांग।
८४ लाख नलिनांग—नलिन।
८४ लाख नलिन—अच्छनिकुरांग[1]।
८४ लाख अच्छनिकुरांग—अच्छनिकुर।
८४ लाख अच्छनिकुर—अयुतांग।
८४ लाख अयुतांग—अयुत।
८४ लाख अयुत—नयुतांग।
८४ लाख नयुतांग—नयुत।
८४ लाख नयुत—प्रयुतांग।
८४ लाख प्रयुतांग—प्रयुत।
८४ लाख प्रयुत—चूलिकांग।
८४ लाख चूलिकांग—चूलिका।
८४ लाख चूलिका—शीर्षप्रहेलिकांग।
८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांग—शीर्षप्रहेलिका।

जैनो मे लिखी जाने वाली सबसे बडी सख्या शीर्षप्रहेलिका है, जिससे ५४ अक और १४० शून्य होते हैं। १९४ अकात्मक सख्या सबसे बडी सख्या है।

शीर्षप्रहेलिका अको मे इस प्रकार है—

७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इसके आगे १४० शून्य होते हैं।[2]

वीर निर्वाण के ८२७-८४० वर्ष बाद मथुरा और वल्लभी मे एक साथ दो सगीतिया हुई थी। माथुरी वाचना के

---

१ अनुयोगद्वारसूत्र की टीका तथा लोकप्रकाश (सर्ग २९, श्लोक २९) में अर्थनिपुरांग और अर्थनिपुर संख्या स्वीकार की है।

२ काललोकप्रकाश, २८।१२
शीर्षप्रहेलिकाङ्का स्युश्चतुर्णवतियुक्शतं।
अङ्कस्थानाभिधाश्चेमा, श्रित्वा माथुरवाचनाम्॥

अध्यक्ष नागार्जुन थे और वलभी वाचना के अध्यक्ष स्कंदिलाचार्य थे।

वलभी वाचना मे २५० अकों की सख्या मिलती है। इसका उल्लेख ज्योतिष्करड मे हुआ है। उसके कर्ता वलभी वाचना की परम्परा के आचार्य हैं, ऐसा आचार्य मलयगिरि ने कहा है। उसमे काल के नाम इस प्रकार हैं—

लताग, लता, महालताग, महालता, नलिनाग, नलिन, महानलिनाग, महानलिन, पद्माग, पद्म, महापद्माग, महापद्म, कमलाग, कमल, महाकमलाग, महाकमल, कुमुदाग, कुमुद, महाकुमुदाग, महाकुमुद, त्रुटिताग, त्रुटित, महात्रुटिताग, महात्रुटित, अडडाग, अडड महाअडडाग, महाअडड, ऊहाग, ऊह, महाऊहाग, महाऊह, शीर्षप्रहेलिकाग, शीर्षप्रहेलिका।

प्रत्येक सख्या पूर्व सख्या को ८४ लाख से गुणा करने मे प्राप्त होती है। शीर्षप्रहेलिका मे ७० अक (१८७९५५१७९-५५०११२५९५४१९००९९९९८१३४३०७७०७९७४६५४९४२६१९७७७४७६५७२५७३४५७१८६८१६) और १८० शून्य अर्थात् २५० अक होते हैं।

शीर्षप्रहेलिका की यह सख्या अनुयोगद्वार मे दी गई सख्या से नहीं मिलती[1]।

जीव और अजीव पदार्थो के पर्यायकाल के निमित्त से होते हैं। इसलिए इसे जीव और अजीव दोनो कहा गया है।

सख्यातकाल शीर्षप्रहेलिका से आगे भी है, किन्तु सामान्यज्ञानी के लिए व्यवहार्य शीर्षप्रहेलिका तक ही है इसलिए आगे के काल को उपमा के माध्यम से निरूपित किया गया है। पल्योपम, सागरोपम, अवसर्प्पिणी, उत्सर्प्पिणी—ये औपम्य-काल के भेद हैं।

शीर्षप्रहेलिका तक के काल का व्यवहार प्रथम पृथ्वी के नारक, भवनपति, व्यन्तर तथा भरत-ऐरवत मे सुषमदु षमा आरे के पश्चिम भागवर्ती मनुष्यों और तिर्यंचो के आयुष्य को मापने के लिए किया जाता है।[2]

यजुर्वेद १७।२ में १ पर १२ शून्य रखकर दस खर्व तक की सख्या का उल्लेख है। वहां शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, अन्त, परार्द्ध तक का उल्लेख है।

इस गणितशास्त्र मे महासख तक की सख्या का व्यवहार होता है। वे २० अक इस प्रकार हैं—इकाई, दस, शत, सहस्र, दस-सहस्र, लक्ष, दस लक्ष, करोड, दस करोड, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, सख, दस सख, महा सख।

१२५ (सू० ३९०)

ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, आश्रम, सबाह, सन्निवेश और घोष—ये शब्द बस्ती के प्रकार हैं।

ग्राम—ग्राम शब्द के अनेक अर्थ हैं—

१ जो बुद्धि आदि गुणो को ग्रसित करे अथवा जहा १८ प्रकार के कर लगते हो।[3]

२ जहा कर लगते हों।[4]

---

१ लोकप्रकाश सर्ग २९, श्लोक २१ के बाद पृ० १४४

ज्योतिष्करडवृत्तौ श्रीमलयगिरिपूज्या इति स्माहु—"इह स्कंदिलाचार्यप्रवृत्तौ (प्रतिपत्तौ) दु.षमानुभावतो दुर्भिक्ष-प्रवृत्त्या साधूना पठनगुणनादिक सर्वमप्यनेशत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयो स्थानयो सघमेलकोऽभवत् तद्यथा—एको वलभ्यामेको मथुरायां। तत्र च सूत्रार्थ—सघटने परस्पर वाचनाभेदो जातो, विस्मृतयो हि सूत्रार्थयो स्मृत्वा सघटने भवत्यवश्य वाचनाभेद इति न काचिद् अनुपपत्ति', तत्रानुयोगद्वारादिकमिदानीं वर्तमान माथुर—वाचनानुगत, ज्योतिष्करड सूत्रकर्ता चाचार्यो वालभ्यस्तत इदं सख्यानप्रतिपादन वालभ्य-वाचनानुगतमिति नास्यानुयोगद्वारादिप्रतिपादितसख्यास्थानै सह विसदृशत्वमुपलभ्य विचिकित्सितव्यमिति।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र ८२।

३ (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५

ग्रसति गुणान् गम्यो वाऽष्टादशानां कराणामितिग्राम।

(ख) दशवैकालिकहारिभद्री टीका, पत्र १४७

ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति ग्राम।

४ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६

करादियाण गम्मो गामो।

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८२

करादिगम्या ग्रामा।

३ जिसके चारो ओर काटो की बाड हो अथवा मिट्टी का परकोटा हो।[१]

४ कृपक आदि लोगो का निवासस्थान।[२]

नगर—१ जिसमे कर नही लगता हो।[३]

२ जो राजधानी हो।[४]

अर्थ-शास्त्र मे राजधानी के लिए नगर या दुर्ग और साधारण कस्वो के लिए ग्राम शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रस्तुत प्रकरण मे नगर और राजधानी दोनो का उल्लेख है। इससे जान पडता है कि नगर वडी वस्तियो का नाम है, भले फिर वे राजधानी हो या न हो। राजधानी वह होती है जहा से राज्य का सचालन होता है।

निगम—व्यापारियो का गाव।[५]

राजधानी—१ वह वस्ती जहा राजा रहता हो।[६]

२ जहा राजा का अभिषेक हुआ हो।[७]

३ जनपद का मुख्य नगर।[८]

खेट—जिसके चारों ओर धूलि का प्राकार हो।[९]

कर्वट—१ पर्वत का ढलान।[१०]

२ कुनगर।[११]

चूर्णिकार ने कुनगर का अर्थ किया—जहा क्रय-विक्रय न होता हो।[१२]

३. वहुत छोटा सन्निवेश।[१३]

४ जिले का प्रमुख नगर।[१४]

५ वह नगर जहा वाजार हो।[१५]

दशवैकालिक की चूर्णियो मे कर्वट का मूल अर्थ माया, कूटसाक्षी आदि अप्रामाणिक या अनैतिक व्यवसाय होता हो—किया है।[१६]

---

१ दशवैकालिक एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२०।

२ उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

३ (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ८२
नैतेषु करोऽस्तीति नकराणि।
(ख) दशवैकालिकहारिभद्री टीका, पत्र १४७
नास्मिन् करो विद्यते इति नकरम्।
(ग) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४७
ण केरा जत्थ तं णगर।
(घ) उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

४ लोकप्रकाश, सर्ग ३१, श्लोक ६
नगरे राजधानी स्यात्।

५ (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८२
निगमा —वणिग्निवासा।
(ख) उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५
निगमयन्ति तस्मिन्ननेकविधभाण्डानीति निगम।
(ग) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
वणिय वग्गो जत्थ वसति त णेगम।

६ निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
जत्थ राया वसति सा रायहाणी।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८२-८३
राजधान्यो—यासु राजानोऽभिषिच्यन्ते।

८ उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

९ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
खेड णाम धूलीपागार परिक्खित्त।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
खेटानि—धूलिप्राकारोपेतानि।
(ग) उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१० A Sanskrit English Dictionary, p 259, by Sir Monier Williams

११ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
कुणगरो कव्वड।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
कवटानि—कुनगराणि।

१२ दशवैकालिकजिनदासचूर्णि, पृष्ठ ३६०।

१३ (क) उत्तराध्ययनवृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) दशवैकालिकहारिभद्रीटीका, पत्र २७५।

१४ A Sanskrit English Dictionary, p 259, by Sir Monier Williams

१५ दशवैकालिक एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२०।

१६ जिनदासचूर्णि, पृष्ठ ३६०।

मडंब—मडंब के तीन अर्थ किए गए हैं—

१ जिसके एक योजन तक कोई दूसरा गांव न हो।[1]

२ जिसके ढाई योजन तक कोई दूसरा गांव न हो।[2]

३ जिसके चारों ओर आधे योजन तक गांव न हो।[3]

द्रोणमुख—१ जहां जल और स्थल दोनों निर्गम और प्रवेश के मार्ग हों।[4]

उत्तराध्ययन के वृत्तिकार ने इसके लिए भृगुकच्छ और ताम्रलिप्ति का उदाहरण दिया है।[5]

२ समुद्र के किनारे बसा हुआ गांव, ऐसा गांव जिसमें जल और स्थल से पहुंचने के मार्ग हो।

३ ४०० गांवों की राजधानी।[6]

पत्तन—(क)—जलपत्तन—जलमध्यवर्ती द्वीप।

(ख)—स्थलपत्तन—निर्जलभूभाग में होने वाला।[7]

उत्तराध्ययन के वृत्तिकार ने जलपत्तन के प्रसंग में काननद्वीप और स्थलपत्तन के प्रसंग में मथुरा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आकर—१ सोना, लोहे आदि की खान।[8]

२ खान का समीपवर्ती गांव, मजदूर-बस्ती।[9]

आश्रम—१ तापसों का निवासस्थान।[10]

२ तीर्थ-स्थान।[11]

संबाह—१ जहां चारों वर्णों के लोगों का अति मात्रा में निवास हो।[12]

२ पहाड़ पर बसा हुआ गांव, जहां किसान समभूमि से खेती करके धान्य को रक्षा के लिए ऊपर की भूमि में ले जाते हैं।[13]

संनिवेश—१ यात्रा से आए हुए मनुष्यों के रहने का स्थान।[14]

२ सार्थ और कटक का निवास-स्थान।[15]

घोष—आभीर-बस्ती।[16]

---

१ निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६ :
[illegible] जस्स गामादी णत्थि तं मडंब।

२ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
मडम्बानि सर्वतोऽर्द्धयोजनात् [illegible]ग्रामाणि।

४ (क) निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६ :
दोण्णि मुहा जस्स तं दोणमुहं जलेण वि थलेण वि भंडमागच्छति।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३।

५ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

६ कौटिलीय अर्थशास्त्र २२
चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखम्।

७ (क) निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६।
(ख) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ग) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३।

८ (क) निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६ :
सुवर्णादि आगरो।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
लोहाद्युत्पत्तिभूमयः।

९ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१० (क) निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६।
(ख) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

११ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३।

१२ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१३ (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
समभूमौ कृषिं कृत्वा येषु दुर्गभूमिभूतेषु धान्यानि कृषीवला संवहन्ति रक्षार्थमिति।
(ख) निशीथचूर्णि, भाग २, पृष्ठ ३४६
अण्णत्थ किसिं करेत्ता अण्णत्थ वोढुं वसंति तं संबाहं भण्णति।

१४ (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) निशीथचूर्णि, भाग २, पृ० ३४६-३४७।

१५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
सार्थकटकादेः।

१६ (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
घोषा—गोष्ठानि।

आराम—जहा विविध प्रकार के वृक्ष और लताए होती हैं और जहा कदली आदि के प्रच्छन्नगृह निर्मित होते हैं और जहा दम्पतियों की क्रीडा के लिए प्रच्छन्नगृह निर्मित होते हैं, उसे आराम कहा जाता है।[1]

उद्यान—वह स्थान जहा लोग गोठ (Picnic) आदि के लिए जाते हो और जो ऊचाई पर बना हुआ हो।[2]

वन—जहा एक जाति के वृक्ष हो।[3]

वनखण्ड—जहा अनेक जाति के वृक्ष हो।[4]

वापी, पुष्करिणी, सर, सरपक्ति, कूप, तालाव, द्रह और नदी—प्रस्तुत प्रकरण में जलाशयों के इतने शब्द व्यवहृत हुए हैं। वापी, पुष्करिणी—ये दोनो एक ही कोटि के जलाशय हैं, इनमे वापी चतुष्कोण और पुष्करिणी वृत्त होती है।

वृत्तिकार ने पुष्करिणी का एक अर्थ पुष्करवती—कमल-प्रधान जलाशय किया है।[5]

सर—सहज बना हुआ।[6]

तडाग—जो ऊचा और लम्बा खोदा हुआ हो।[7]

अभिधानचिन्तामणि में सर और तडाग दोनो को पर्यायवाची माना है। यहा एक ही प्रसग मे दोनो नाम आए हैं, इससे लगता है इनमे कोई सूक्ष्मभेद अवश्य है। 'सर' सहज बना हुआ होता है और तडाग—ऊचा तथा लम्बा खोदा हुआ होता है।

सरपक्ति—सरो की श्रेणी।[8]

द्रह—नदियों का निम्नतर प्रदेश।[9]

वातस्कध—घनवात तनुवात आदि वातो के स्कध।

अवकाशान्तर—घनवात आदि वात स्कधो के नीचे वाला आकाश।

वलय—पृथ्वी के चारो ओर घनोदधि घनवात, तनुवात आदि का वेष्टन।

विग्रह—लोक नाडी के घुमाव।

वेला—समुद्र के जल की वृद्धि।

कूटागार—शिखरों पर रहे हुए देवायतन।

विजय—महाविदेह के क्षेत्र, कच्छादि क्षेत्र, जो चक्रवर्ती के लिए विजेतव्य।

इनमे जीव-अजीव दोनो व्याप्त हैं, इसलिए ये जीव-अजीव दोनो हैं।

१२६-१२८ अतियानगृह, अवलिंब, सनिष्प्रवात (सू० ३९१)

अतियानगृह—

अतियान का अर्थ है नगर-प्रवेश। वृत्तिकार ने ३।५०३ की वृत्ति मे यही अर्थ किया है।[10] नगर-प्रवेश करते समय

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
आरामा—विविधवृक्षलतोपशोभिता कदल्यादिप्रच्छन्न-गृहेषु स्त्रीसहिताना पुसा रमणस्थानभूता इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
उद्यानानि पत्रपुष्पफलच्छायोपगादिवृक्षोपशोभितानि बहुजनस्य विविधवेषस्योन्नतमानस्य भोजनार्थं यान गमन येष्विति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
वनानीत्येकजातीयवृक्षाणि।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
वनखण्डा—नेकजातीयोत्तमवृक्षा।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
वापी चतुरस्रा पुष्करिणी वृत्ता पुष्करवती वेति।

६ उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
सर. स्वभावनिष्पन्न।

७ उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
खननसपन्नमुत्तान विस्तीर्णजलस्थान।

८ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
सरपती वा एग महाप्रमाण सर, ताणि चेव बहूणि पतीठियाणि पत्तेयवाहुजुत्ताणि सरपती।

९ उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
नद्यादीनां निम्नतर प्रदेश।

१० स्थानागवृत्ति, पत्र १९२
अतियान नगरप्रवेश।

जो घर सबसे पहले आते हैं, वे अतियानगृह कहलाते हैं। प्राचीनकाल मे प्रवेश और निर्गम के द्वार भिन्न-भिन्न होते थे। ये घर प्रवेश-द्वार के समीपवर्ती होते थे।

अवलिंव और सनिष्प्रवात—

वृत्तिकार ने इनका कोई अर्थ नही किया है। उन्होंने यह सूचना दी है कि इनका अर्थ रूढि से जान लेना चाहिए।[1]

अवलिंव का दूसरा प्राकृतरूप 'ओलिंव' हो सकता है। दीमक का एक नाम ओलिमा है।[2] यदि वर्णपरिवर्तन माना जाए तो अवलिंव का अर्थ दीमक का ढूह हो सकता है और यदि पाठ-परिवर्तन की सम्भावना मानी जाए तो ओलिंद पाठ की कल्पना की जा सकती है। इसका अर्थ होगा बाहर के दरवाजे का प्रकोष्ठ। अतियानगृह और उद्यानगृह के अनन्तर प्रकोष्ठ का उल्लेख प्रकरण-सगत भी है।

सनिष्प्रवात—

सणिप्पवाय के सस्कृत रूप दो किए जा सकते हैं—

१ शनैः प्रपात।

२ सनिष्प्रवात।

शनैः प्रपात का अर्थ धीमी गति से पडने वाला झरना और सनिष्प्रवात का अर्थ भीतर का प्रकोष्ठ (अपवरक) होता है। प्रकरणसगति की दृष्टि से यहा सनिष्प्रवात अर्थ ही होना चाहिए। अभिधानराजेन्द्र मे 'सण्णिप्पवाय' पाठ मिलता है। इसका अर्थ किया गया है—सज्ञी जीवों के अवपतन का स्थान। यदि 'मणि' शब्द को देशी भाषा का शब्द मानकर उसका अर्थ गीला किया जाए तो प्रस्तुत पाठ का अर्थ गीलाप्रपात भी किया जा सकता है।

१२९ (सू० ३९६)

वेदना दो प्रकार की होती है—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी। अभ्युपगम का अर्थ है—अगीकार। हम सिद्धान्तत कुछ बातों का अगीकार करते हैं। तपस्या किसी कर्म के उदय से नही होती, किन्तु अभ्युपगम के कारण की जाती है। तपस्या काल मे जो वेदना होती है वह आभ्युपगमिकी वेदना है, स्वीकृत वेदना है।

उपक्रम का अर्थ है—कर्म की उदीरणा का हेतु। शरीर मे रोग होता है, उससे कर्म की उदीरणा होती है, इसलिए वह उपक्रम है—कर्म की उदीरणा का हेतु है। उपक्रम के निमित्त से होने वाली वेदना को औपक्रमिकी वेदना कहा जाता है।[3]

१३० (सू० ४०३)

आत्मा का स्वरूप कर्म परमाणुओं से आवृत्त रहता है। उनके उपशम, क्षय-उपशम और क्षय से वह (आत्म-स्वरूप) प्रकट होता है।

क्षय और उपशम—ये दोनो स्वतन्त्र अवस्थाए हैं। क्षय-उपशम मे दोनो का मिश्रण है। इसमे उदयप्राप्त कर्म के क्षय और उदयप्राप्त का उपशम—ये दोनों होते हैं, इसलिए क्षय-उपशम कहलाता है। इस अवस्था मे कर्म के विपाक की अनुभूति नहीं होती।[4]

१३१ (सू० ४०५)

जो काल उपमा के द्वारा जाना जाता है, उसे औपमिक काल कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है—पल्योपम और

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३

अवलिंवा सणिप्पवाया य रूढितोऽवसेया इति।

२ पाइयसद्दमहण्णवो।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८४

अभ्युपगमेन—अङ्गीकरणेन निर्वृत्ता तत्र या भवा आभ्युपगमिकी तया—शिरोलोचतपश्चरणादिकया वेदनया—पीडया उपक्रमेण—कर्मोदीरणकारणेन निर्वृत्ता तत्र या भवा औपक्रमिकी तया—ज्वरातीसारादिजन्यया।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ८५।

सागरोपम। जिसको पल्य (धान्य मापने की गोलाकार प्याली) की उपमा से उपमित किया जाता है उसे पल्योपम कहते हैं। जिसको सागर की उपमा से उपमित किया जाता है उसे सागरोपम कहते हैं।

पल्योपम के तीन भेद हैं—उद्धारपल्योपम, अद्धापल्योपम और क्षेत्रपल्योपम। इनमे से प्रत्येक के बादर (सव्यवहार) और सूक्ष्म—ये दो-दो भेद होते हैं।

बादरउद्धारपल्योपम—

कल्पना कीजिए एक पल्य है। वह एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा है। इस योजन का परिमाण उत्सेध आगुल से है। उस पल्य की परिधि तीन योजन से कुछ अधिक है। शिर-मुडन के बाद एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए बालो के अग्रभाग से उस पल्य को पूर्ण भरा जाए। पल्य को बालो से इतना ठूस कर भरा जाए, जिसमें न अग्नि प्रवेश कर सके और न वायु उन बालो को उडा सके। अधिक निचित होने के कारण उसमे अग्नि और वायु प्रवेश नहीं पा सकती। प्रति समय एक-एक बालाग्र को निकालें। जितने समय मे वह पल्य पूर्णतया खाली हो जाए, उस समय को बादर (व्यावहारिक) उद्धारपल्योपम कहा जाता है। वे बालाग्र चर्म चक्षुओ के द्वारा ग्राह्य और प्ररूपणा करने मे व्यवहारत उपयोगी होते हैं इसलिए इसे व्यावहारिक भी कहा जाता है। व्यवहार के माध्यम से सूक्ष्म का निरूपण सरलता से हो जाता है।

सूक्ष्मउद्धारपल्योपम—

बादरउद्धारपल्योपम में पल्य को बालों के अग्रभाग से भरा जाता है। यहा वैसे पल्य को बालो के असख्य टुकडे कर भरा जाए। प्रति समय एक-एक बालखण्ड को निकाला जाए। जितने समय मे वह पल्य खाली हो उसको सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम कहा जाता है।

पल्य में बालाग्र सख्यात होते हैं। उनका उद्धार सख्येय काल मे किया जा सकता है। इसलिए इसे उद्धारपल्योपम कहा जाता है।

बादरअद्धापल्योपम—

इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया बादरउद्धारपल्योपम के समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहा प्रति समय एक-एक बालाग्र को निकाला जाता है, यहा प्रति सौ वर्ष मे एक-एक बालाग्र को निकाला जाता है।

सूक्ष्मअद्धापल्योपम—

सूक्ष्मउद्धारपल्योपम की प्रक्रिया यहा होती है। अन्तर केवल इतना ही कि वहा प्रति समय एक-एक बालखड को निकाला जाता है यहा प्रति सौ वर्ष मे एक-एक बालखड को निकाला जाता है।

बादर क्षेत्रपल्योपम—

बादरउद्धारपल्योपम मे वर्णित पल्य के समान एक पल्य है। उसे शिर-मुडन के बाद एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए बालाग्रो के असख्यातवें भाग से भरा जाए।

बालाग्र का असख्यातवा भाग पनक (फफूदी) जीव के शरीर से असख्यात गुने स्थान का अवगाहन करता है। प्रति समय बाल-खण्डो से स्पृष्ट एक-एक आकाश प्रदेश का उद्धार किया जाए। जितने समय मे पल्य के सारे स्पृष्ट-प्रदेशो का उद्धार होता है, उस समय को बादरक्षेत्रपल्योपम कहा जाता है। बालाग्र-खण्ड सख्येय होते हैं इसलिए उनके उद्धार मे सख्येय वर्ष ही लगते हैं।

सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम—

इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया बादरक्षेत्रपल्योपम के समान है। अन्तर केवल इतना ही कि वहा बालाग्र-खण्ड से स्पृष्ट आकाश के प्रदेशो का उद्धार किया जाता है, लेकिन यहा बालाग्र-खण्ड मे स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो आकाश-प्रदेशो का उद्धार किया जाता है। इस प्रक्रिया मे व्यावहारिक उद्धारपल्योपम काल से असख्यगुण काल लगता है।

प्रश्न आता है—पल्य को बालाग्र के खडो से ठूस कर भरा जाता है, फिर उसमे उनसे अस्पृष्ट आकाश-प्रदेश कैसे रह सकते हैं?

उत्तर—आकाश-प्रदेश अति सूक्ष्म होते हैं इसलिए वे बाल-खडो से भी अस्पृष्ट रह जाते हैं। स्थूल उदाहरण से इस

तथ्य को समझा जा सकता है।

एक कोष्ठ कूष्माड से पूर्ण भरा हुआ है। स्थूल-दृष्टि मे वह भरा हुआ प्रतीत होता है परन्तु उसमे बहुत छिद्र रहते हैं। उन छिद्रो मे विजोरे समा सकते हैं। विजोरों के छिद्रो मे वेल समा जाती है। वेल के छिद्रो मे सरसों के दाने समा जाते हैं। सरसो के दानो मे गगा की मिट्टी समा सकती है। इस प्रकार भरे हुए कोष्ठक मे भी स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम छिद्र रह जाते हैं।

प्रश्न होता है—सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम मे वालखण्डों से स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो आकाश-प्रदेशो का ग्रहण किया गया है। वादरक्षेत्रपल्योपम मे वालखण्डो से स्पृष्ट आकाश-प्रदेश का ही ग्रहण किया गया है। जव स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो आकाश-प्रदेशों का ग्रहण किया गया है, तव केवल स्पृष्ट आकाश-प्रदेशो के ग्रहण का क्या प्रयोजन है ?

दृष्टिवाद मे द्रव्यो के मान का उल्लेख है। उसमे से कई द्रव्य वालाग्र से स्पृष्ट आकाश-प्रदेशो मे मापे जाते हैं और कई द्रव्य वालाग्र मे अस्पृष्ट आकाश-प्रदेशो से मापे जाते हैं। इसलिए इनकी भिन्न-भिन्न उपयोगिता है।

सागरोपम—

सागरोपम के तीन भेद हैं—उद्धारसागरोपम, अद्धासागरोपम और क्षेत्रसागरोपम। प्रत्येक के दो-दो भेद हैं—वादर (व्यावहारिक) और सूक्ष्म।

करोड × करोड × १० = १०००००००००००००००

१ पद्म (१०००००००००००००००) पल्योपम का एक सागरोपम होता है। सागरोपम के सारे भेदो की व्याख्या-पद्धति पल्योपम की भाति ही है।

१३२ (सू० ४०६)

इस सूत्र मे सूत्रकार ने एक मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया है। एक समस्या दीर्घकाल से उपस्थित होती रही है कि क्रोध का सम्बन्ध मनुष्य के अपने मस्तिष्क से ही है या वाह्य परिस्थितियो से भी है। वर्तमान के वैज्ञानिक भी इस शोध मे लगे हुए हैं। उन्होंने मस्तिष्क के वे विन्दु खोज निकाले हैं, जहा क्रोध का जन्म होता है। डॉक्टर जोस० एम० आर० डेलगाडो ने अपने परीक्षणो द्वारा दूर शान्त वैठे वन्दरो के विद्युत्-धारा से उन विशेष बिन्दुओ को छूकर लड़वा दिया। यह विद्युत्-धारा के द्वारा मस्तिष्क के विशेप विन्दु की उत्तेजना से उत्पन्न क्रोध है। इसी प्रकार अन्य वाह्य निमित्तो से भी मस्तिष्क का क्रोध विन्दु उत्तेजित होता है और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यह पर-प्रतिष्ठित क्रोध है। आत्म-प्रतिष्ठित क्रोध अपने ही आन्तरिक निमित्तों से उत्पन्न होता है।

१३३ (सू० ४१०)

देखें २।१८१ का टिप्पण।

१३४ मरण (सू० ४११)

मरण के प्रकारो की जानकारी के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन ५ का आमुख।

१३५ (सू० ४२२)

प्रस्तुत सूत्र मे मोह के दो प्रकार वतलाए गए हैं। तीसरे स्थान (३।१७८) मे इसके तीन प्रकार निर्दिष्ट हैं—

ज्ञानमोह, दर्शनमोह और चारित्रमोह। वृत्तिकार ने ज्ञानमोह का अर्थ ज्ञानावरण का उदय और दर्शनमोह का अर्थ सम्यग्दर्शन का मोहोदय किया है।[1] दोनो स्थलो मे वोधि और वुद्ध के निरूपण के पश्चात् मोह और मूढ का निरूपण

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१

ज्ञान मोहयति—आच्छादयतीति ज्ञानमोहो—ज्ञानावरणोदय, एवं 'दंसणमोहे चेव' सम्यग्दर्शनमोहोदय इति।

है। इसमे प्रतीत होता है कि मोह वोधि का प्रतिपक्ष है। यहा मोह का अर्थ आवरण नहीं किन्तु दोप है। ज्ञानमोह होने पर मनुष्य का ज्ञान अयथार्थ हो जाता है। दृष्टिमोह होने पर उसका दर्शन भ्रान्त हो जाता है। चरित्रमोह होने पर आचार-मूढता उत्पन्न हो जाती है। चेतना में मोह या मूढता उत्पन्न करने का कार्य ज्ञानावरण नही, किन्तु मोह कर्म करता है।

१३६ (सू० ४२८)

देखें २।२५६-२६१ का टिप्पण।

१३७ (सू० ४३१)

उत्तराध्ययन सूत्र[1] (३३।१५) मे अन्तराय कर्म के पाच प्रकार वतलाए गए हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। प्रस्तुत सूत्र मे उसके दो प्रकार निर्दिष्ट हैं—

१ प्रत्युत्पन्न विनाशित—इसका कार्य है, वर्तमान लब्ध वस्तु को विनष्ट करना, उपहत करना।

२ पिधत्ते आगामि पथ—इसका कार्य है, भविष्य में प्राप्त होने वाली वस्तु की प्राप्ति के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करना।

ये दोनो प्रकार अनन्तराय कर्म के व्यापक स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, दानान्तराय आदि इसके उदाहरण मात्र हैं।

१३८ कैवलिकी आराधना (सू० ४३५)

कैवलिकी आराधना का अर्थ है—केवली द्वारा की जाने वाली आराधना। यहा केवली शब्द के द्वारा श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी—इन चारो का ग्रहण किया गया है।[2]

श्रुतकेवली और केवली ये दो शब्द आगम-साहित्य मे अनेक स्थानो मे प्रयुक्त हैं, परन्तु अवधिकेवली और मन पर्यव-केवली इनका प्रयोग विशेष नही मिलता। केवल स्थानाग मे एक जगह मिलता है।[3] स्थानाग के तीसरे स्थानक मे तीन प्रकार के जिन वतलाए गए हैं—अवधिजिन, मन पर्यवजिन और केवलीजिन। जिस प्रकार अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी को प्रत्यक्षज्ञानी होने के कारण जिन कहा गया है उसी प्रकार उन्हें प्रत्यक्षज्ञानी होने के कारण केवली कहा गया है।

१३९ (सू० ४३७)

कैवलिकी आराधना दो प्रकार की होती है—

१ अन्तक्रिया—(देखें टिप्पण ४।१)

२ कल्पविमानोपपत्तिका—ग्रैवेयक अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होने योग्य ज्ञान आदि की आराधना। यह श्रुतकेवली आदि के ही होती है।[4]

१४०—सुभूम (सू० ४४८)

परशुराम के पिता को कार्त्तवीर्य ने मार डाला। इससे परशुराम का क्रोध तीव्र हो गया और उसने युद्ध मे कार्त्तवीर्य को मारकर उसका राज्य ले लिया। उस समय महारानी तारा गर्भवती थी। उसने वहा से पलायन कर एक आश्रम मे शरण ली। एक दिन उसने पुत्र का प्रसव किया। उस वालक ने अपने दातों से भूमि को काटा। इससे उसका नाम सुभूम रखा।

अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए परशुराम ने सात वार पृथ्वी को नि:क्षत्रिय वना डाला। जिन राजाओ

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र, ३३।१५
दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा।
पचविहमन्तराय, समासेण वियाहियं॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६३
केवलिनां—श्रुतावधिमन पर्यायकेवलज्ञानिनामिय कैव-लिकी सा चासावाराधना चेति कैवलिक्याराधनेति।

३ स्थानांग सूत्र ३।५१३।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ६३
कल्पाश्च—सौधर्मादया विमानानि च—तदुपरिवर्त्ति-ग्रैवेयकादीनि कल्पविमानानि तेषूपपत्ति—उपपातो जन्म यस्या सकाशात् सा कल्पविमानोपपत्तिका ज्ञानाद्याराधना, एषा च श्रुतकेवल्यादीनां भवति।

को वह मार डालता, उनकी दाढाओ को एकत्रित कर रखता था। इस प्रकार दाढाओ के ढेर लग गए।

सुभूम उसी आश्रम में बढने लगा। मेघनाद विद्याधर ने उससे मित्रता कर ली। जब विद्याधर ने यह जाना कि सुभूम भविष्य मे चक्रवर्ती होगा, तव उसने अपनी पुत्री पद्मश्री का विवाह उससे करना चाहा। इस निमित्त से वह वही रहने लगा।

एक बार परशुराम ने नैमित्तिक से पूछा—मेरा विनाश किससे होगा ? नैमित्तिक ने कहा—'जो व्यक्ति इस सिंहासन पर बैठेगा और थाल मे रखी हुई इन दाढाओ को खा लेगा वही तुमको मारने वाला होगा।'

परशुराम ने उस व्यक्ति की खोज के लिए एक उपाय ढूढ निकाला। उसने एक दानशाला खोल दी। वहा प्रत्येक आगतुक को भोजन दिया जाने लगा। उसके द्वार पर एक सिंहासन रखा और उस पर दाढाओ से भरा थाल रख दिया।

इस प्रकार कुछ काल बीता। एक बार सुभूम ने अपनी माता से पूछा—मा ! क्या ससार इतना ही है (इस आश्रम जितना ही है) ? या दूसरा भी है ? मा ने अपने पति की मृत्यु से लेकर घटित सारी घटनाए उसे एक-एक कर बता दी। सुभूम का अहभाव जाग उठा। वह उसी क्षण आश्रम से चला और हस्तिनागपुर मे आ पहुचा। उसने एक परिव्राजक का रूप बनाया और परशुराम की दानशाला मे दान लेने गया। वहा द्वार पर रखे हुए सिंहासन पर जा बैठा। उसका स्पर्श पाते ही वे दाढाए पक्वान के रूप में परिणत हो गईं। यह देख वहा के ब्राह्मणो ने उस पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। विद्याधर मेघनाद के विद्या के बल से वे प्रहार उन्ही पर होने लगे।

सुभूम विश्वस्त होकर भोजन करने लगा। वहा के ब्राह्मणो ने परशुराम से जाकर सारी बात कही। परशुराम का क्रोध जाग उठा। वह सन्नद्ध होकर वहा आया। उसने विद्याबल से अपने परशु को सुभूम पर फेंका।

सुभूम ने भोजन का थाल अपने हाथ मे लिया। वह चक्र के रूप में परिणत हो गया। उसने उस चक्र को परशुराम पर फेंका। परशुराम का सिर कटकर धड से अलग हो गया।

सुभूम का अभिमान और अधिक उत्तेजित हुआ और उसने इक्कीस बार भूमि को नि ब्राह्मण बना डाला। मरकर वह नरक मे गया।

१४१—ब्रह्मदत्त (सू० ४४८)

कापिल्यपुर में ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी भार्या का नाम चुलनी और पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त था। जब राजा की मृत्यु हुई तब ब्रह्मदत्त की अवस्था छोटी थी। अत राजा के मित्र कोशलदेश के नरेश दीर्घ ने राज्यभार सभाला और व्यवस्था मे सलग्न हो गया। रानी चुलनी के साथ उसका अवैध सम्बन्ध हो गया। यह बात कुमार ब्रह्मदत्त ने अपने मन्त्री धनु से जान ली। उसने प्रकारान्तर से यह बात अपनी मा चुलनी से कही। दीर्घ और चुलनी को इससे आघात पहुचा। उन्होंने ब्रह्मदत्त को मारने का षड्यन्त्र रचा। किन्तु मन्त्री के पुत्र वरधनु की बुद्धि-कौशल से वह बच गया।

वाराणसी के राजा कटक से मिलकर ब्रह्मदत्त ने अनेक राजाओ को अपने पक्ष में कर लिया। जब सारी शक्ति जुट गई तब एक दिन कापिल्यपुर पर चढाई कर दी। राजा दीर्घ के साथ घमासान युद्ध हुआ। दीर्घ युद्ध मे मारा गया। ब्रह्मदत्त वहाँ का राजा हो गया।

एक बार मधुकरी गीत नामक नाट्य-विधि को देखते-देखते उसे जातिस्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने पूर्वभव देखा और अपने महामात्य वरधनु से कहा—'आस्व दासौ मृगौ हसौ, मातगावमरौ तथा'—इस श्लोकार्द्ध का सर्वत्र प्रसार करो और यह घोषणा करो कि जो कोई इसकी पूर्ति करेगा उसे आधा राज्य दिया जाएगा।

कापिल्यपुर के बाहर मनोरम नामक कानन मे एक मुनि ध्यानस्थ खडे थे। वहा एक रहट चलाने वाला व्यक्ति घोषित श्लोकार्द्ध को बार-बार दुहराने लगा। मुनि ने कायोत्सर्ग सम्पन्न किया और ध्यानपूर्वक श्लोकार्द्ध को सुना। उन्हें सारी घटनाए स्मृत हो गईं। उन्होने इस श्लोक की पूर्ति करते हुए कहा—

'एषा नो षष्ठिका जाति , अन्योन्याभ्या वियुक्तयो ।

रहट चलाने वाले ने ये दोनो चरण एक पत्ते पर लिख दिए और दौडा-दौडा वह राज्यसभा मे पहुचा। श्लोक का अवशिष्ट भाग सुनाया। सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर वह कानन मे आया और अपने भाई को मुनि वेश मे देख गद्गद् हो गया।

मुनि ने राजा को ससार की अनित्यता और भोगो की क्षणभगुरता का उपदेश दिया और उसे प्रव्रजित हो जाने के लिए कहा। राजा ब्रह्मदत्त ने कहा—'मुने ! आपका कथन यथार्थ है। भोग आसक्ति पैदा करते हैं, यह मैं जानता हू। किन्तु आर्य ! हमारे जैसे व्यक्तियो के लिए वे दुर्जेय हैं। मेरा कर्म बधन निकाचित है। पिछले भव में मैं चक्रवर्ती सनत्कुमार की अपार ऋद्धि को देखकर भोगों मे आसक्त हो गया था। उस समय मैंने अशुभ निदान (भोग-सकल्प) कर डाला कि यदि मेरी तपस्या और सयम का फल है तो मैं अगले जन्म मे चक्रवर्ती बनू। इसका मैंने प्रायश्चित्त नहीं किया। उसी का यह फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी काम-भोगो में मूर्च्छित हो रहा हू। जैसे दलदल मे फसा हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे पर नही पहुच पाता, वैसे ही काम-गुणों में फसे हुए हम श्रमण-धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नहीं कर सकते।' मुनि राजा के गाढ मोहावरण को जान मौन हो गए।

राजा ब्रह्मदत्त बारहवा चक्रवर्ती हुआ। उसने अनुत्तर काम-भोगो का सेवन किया और अन्त मे मरकर नरक मे उत्पन्न हुआ।[1]

१४२ असुरेन्द्र वर्जित (सू० ४४६)

असुरेन्द्र चमर और बली के सामानिक देवो की आयु भी उन्ही के समान होती है, इसलिए चमर और बलि के साथ उनको भी वर्णित समझना चाहिए।

१४३ दो इन्द्र (सू० ४६०)

आनत और आरण तथा प्राणत और अच्युत—इन चारों देवलोको के दो इन्द्र हैं। इसलिए चारो कल्पो के देवो का दो इन्द्रो मे सग्रह किया है।

---

१ विस्तृत कथानक के लिए देखें—
उत्तरज्झयणाणि तेरहवें अध्ययन का आमुख।

तइयं ठाणं

तृतीय स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे तीन की सख्या से सवद्ध विपय सकलित हैं। यह चार उद्देशकों मे विभक्त है। इसमे तात्त्विक विपयों के साथ-साथ साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक विपयों की अनेक त्रिभगियां मिलती हैं। उनमे मनुष्य की शाश्वत मनोभूमिकाओं तथा वस्तु-सत्यों का वहुत मार्मिक ढग से उद्घाटन हुआ है। मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—सुमनस्क, दुर्मनस्क और तटस्थ। प्रत्येक मनुष्य वोलता है पर वोलने की प्रतिक्रिया सवमे समान नहीं होती। कुछ मनुष्य वोलने के पश्चात् मन मे सुख का अनुभव करते हैं, कुछ लोग दु ख का अनुभव करते हैं और कुछ लोग उक्त दोनों अनुभवों से मुक्त रहते हैं—तटस्थ रहते हैं।[1] इस प्रकार की मनोभूमिका प्रत्येक प्रवृत्ति के परिणामकाल मे पाई जाती है। इसी प्रकार कुछ लोग देकर मन मे सुख का अनुभव करते हैं, कुछ लोग दु ख का अनुभव करते हैं और कुछ लोग उक्त दोनों अनुभवों मे मुक्त रहते हैं।[2]

कजूस व्यक्ति नहीं देकर सुख का अनुभव करते हैं। सस्कृत कवि माघ जैसे व्यक्ति नहीं देकर दु ख का अनुभव करते हैं। कुछ व्यक्ति उपेक्षाप्रधान स्वभाव के होते हैं, वे न देकर सुख-दु ख किसी का भी अनुभव नहीं करते।[3]

जो लोग सात्त्विक और हित-मित भोजन करते हैं, वे खाने के वाद सुख का अनुभव करते हैं। जो लोग अहितकर या मात्ना मे अधिक खा लेते हैं, वे खाने के वाद दु ख का अनुभव करते हैं। साधक व्यक्ति खाने के वाद सुख-दु ख का अनुभव किए विना तटस्थ रहते हैं।[4]

जिनके मन मे करुणा का स्रोत सूखा होता है, वे लोग युद्ध करने के वाद मन मे सुख का अनुभव करते है। इस मनोवृत्ति के सेनापतियों और राजाओं के उदाहरणों से इतिहास भरा पडा है।

जिनके मन मे करुणा का स्रोत प्रवाहित होता है, वे लोग युद्ध करने के वाद दु ख का अनुभव करते हैं। सम्राट् अशोक का अन्त करण युद्ध के वीभत्स दृश्य से द्रवित हो गया था। कलिंग-विजय के वाद उनका करुणार्द्र मन कभी युद्ध-रत नहीं हुआ।

जो लोग युद्ध मे वेतन पाने के लिए सलग्न होते हैं, वे युद्ध के पश्चात् सुख या दु ख का अनुभव नहीं करते।[5]

प्रस्तुत आलापक मे इस प्रकार की विभिन्न मनोवृत्तियों का विश्लेपण किया गया है।

प्रस्तुत स्थान मे कहीं-कहीं सवाद भी सकलित हैं।[6] कुछ सूत्र छेदसूत्र विपयक भी हैं। मुनि तीन पात्र रख सकता है।[7] वह तीन कारणों से वस्त्र धारण कर सकता है। दशवैकालिक मे वस्त्र-धारणा के दो कारण निर्दिप्ट हैं—सयम और लज्जानिवारण।[8] उत्तराध्ययन मे वस्त्र-धारणा के तीन कारण निर्दिप्ट हैं—लोक-प्रतीति, सयम-यात्ना का निर्वाह और ग्रहण-स्वय मुनित्व की अनुभूति।[9] यहां तीन कारण ये निर्दिप्ट हैं—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और परिपहनिवारण।[10]

---

१ ३।२२५

२ ३।२३७

३ ३।२४०

४ ३।२४३

५ ३।२६७

६ ३।३३६, ३३७

७ ३।३४६

८ दसवेआलिय ६।१९

ज पि वत्थं व पाय वा कवल पायपुछण।
त पि सजमलज्जट्ठा धारति परिहरति य॥

९ उत्तरज्झयणाणि २३।३२

पच्चयत्थ च लोगस्स नाणाविहविगप्पण।
जत्तत्थ गहणत्थ च लोगे लिंगप्पओयण॥

१० ३।३४७

इनमे 'जुगुप्सा का निवारण' यह नया हेतु है। लज्जा स्वय की अनुभूति है। जुगुप्सा लोकानुभूति है। लोक नग्नता से घृणा करते थे। यह इससे ज्ञात है। भगवान् महावीर को नग्नता के कारण कई कठिनाइयां झेलनी पडी। आचारांगचूर्णिकार ने यह स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत स्थान मे कुछ प्राकृतिक विषयों का सकलन भी मिलता है, जो उस समय की धारणाओं का सूचक है, जैसे—अल्पवृष्टि और महावृष्टि के तीन-तीन कारणों का निर्देश।[1]

व्यवसाय के आलापक मे लौकिक, वैदिक और सामयिक तीनों व्यवसाय निरूपित हैं।[2] उसमे त्रिवर्ग [अर्थ, धर्म और काम] और अर्थयोनि [साम, दड और भेद] जैसे विषय उल्लिखित है। वैदिक व्यवसाय के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये तीन ही उल्लिखित हैं। अथर्ववेद इन तीनों से उद्धृत है। मूलत वेद तीन ही हैं। इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रस्तुत स्थान में मिलती हैं। विषयों की विविधता के कारण इसे पढने मे रुचि और ज्ञान, दोनों परिपुष्ट होते हैं।

---

१ ३।३५६, ३६०   २ ३।३६५-४००

तइय ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
इंद-पदं	**इन्द्र-पदम**	**इन्द्र-पद**
१. तओ इदा पण्णत्ता, त जहा— णामिंदे, ठवणिंदे, दव्विंदे।	त्रय इन्द्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र, द्रव्येन्द्र।	१ इन्द्र तीन प्रकार के हैं—१ नामइन्द्र—केवल नाम से इन्द्र, २ स्थापनाइन्द्र—किसी वस्तु मे इन्द्र का आरोपण, ३ द्रव्यइन्द्र—भूत या भावी इन्द्र।
२ तओ इदा पण्णत्ता, त जहा— णाणिंदे, दसणिंदे, चरित्तिंदे।	त्रय इन्द्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र, चरित्रेन्द्र.।	२ इन्द्र तीन प्रकार के हैं— १ ज्ञानइन्द्र २ दर्शनइन्द्र ३ चरित्रइन्द्र।
३. तओ इदा पण्णत्ता, त जहा— देविंदे, असुरिंदे, मणुस्सिंदे।	त्रय इन्द्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देवेन्द्र, असुरेन्द्र, मनुष्येन्द्र।	३ इन्द्र तीन प्रकार के हैं— १ देवइन्द्र २ असुरइन्द्र ३ मनुष्यइन्द्र।
विकुव्वणा-पद	**विकरण-पदम्**	**विकरण-पद**
४ तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, त जहा—बाहिरए पोग्गलए परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।	त्रिविध विकरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—बाह्यान् पुद्गलकान् पर्यादाय—एक विकरणम्, बाह्यान् पुद्गलान् अपर्यादाय—एक विकरणम्, बाह्यान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एक विकरणम्।	४ विक्रिया[1] तीन प्रकार की होती है— १ बाह्य पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली, २ बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किए विना की जाने वाली, ३ बाह्य पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनों के द्वारा की जाने वाली।
५ तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।	त्रिविध विकरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादाय—एक विकरणम्, आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् अपर्यादाय—एक विकरणम्, आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एक विकरणम्।	५ विक्रिया तीन प्रकार की होती है— १ आन्तरिक पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली, २ आन्तरिक पुद्गलो को ग्रहण किए विना की जाने वाली, ३ आन्तरिक पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनो के द्वारा की जाने वाली।

६ तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, त जहा—
वाहिरब्भतरए पोग्गले परिया-दित्ता—एगा विकुव्वणा,
वाहिरब्भतरए पोग्गले अपरिया-दित्ता—एगा विकुव्वणा,
वाहिरब्भतरए पोग्गले परिया-दित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

त्रिविध विकरण प्रज्ञप्तम्, नद्‌यथा—
वाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्‌गलान् पर्यादाय—एक विकरणम्, वाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्‌गलान् अपर्यादाय—एक विकरणम्, वाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्‌गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एक विकरणम्।

६ विक्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्‌गलों को ग्रहण कर की जाने वाली,
२ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्‌गलों के ग्रहण और अग्रहण के द्वारा की जाने वाली।

सचित-पद

७ तिविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—
कतिसचिता, अकतिसचिता, अवत्तव्वगसचिता।
८ एवमेगिंदियवज्जा जाव वेमा-णिया।

सचित-पदम्

त्रिविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्‌यथा—
कतिसचिता, अकतिसचिता, अवक्तव्यकसचिता।
एवमेकन्द्रियवर्जा यावत् वैमानिका।

सचित-पद

७ नैरयिक तीन प्रकार के हैं—
१ कतिसचित—संख्यात,
२ अकतिसचित—असंख्यात,
३ अवक्तव्यसचित—एक।[1]
८ इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर[2] वैमा-निक देवों तक के सभी दण्डकों में तीन-तीन प्रकार हैं।

परियारणा-पदं

६. तिविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा—
१ एगे देवे अण्णे देवे, अण्णेसिं देवाण देवीओ अ अभिजुजिय-अभिजुजिय परियारेति,
अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभि-जुजिय-अभिजुजिय परियारेति,
अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति।
२ एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णसिं देवाण देवीओ अभि-जुजिय-अभिजुजिय परियारेति,
अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभि-जुजिय-अभिजुजिय परियारेइ,

परिचारणा-पदम्

त्रिविधा परिचारणा पण्णत्ता, तद्‌यथा—
१ एको देव अन्यान् देवान्, अन्येपा देवाना देवीश्च अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मीया देवी अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य परिचारयति।
२ एको देव नो अन्यान् देवान्, नो अन्येपा देवाना देवी अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मीया देवी अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य

परिचारणा-पद

६ परिचारणा[3] तीन प्रकार की है—
१ कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का आश्लेप कर-कर परिचारणा करते हैं, कुछ देव अपनी देवियो का आश्लेप कर-कर परिचारणा करते हैं, कुछ देव अपने बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते हैं।
२ कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का आश्लेप कर-कर परिचारणा नही करते, अपनी देवियो का आश्लेप कर-कर परिचारणा करते हैं, अपने बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा

अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति ।

परिचारयति ।

करते हैं ।

३ एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसिं देवाण देवीओ अभिजुजिय-अभिजुजिय परियारेति, णो अप्पणिज्जिताओ देवीओ अभिजुजिय-अभिजुजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पाण विउव्विय-विउव्विय परियारेति ।

३ एको देव नो अन्यान् देवान्, नो अन्येपा देवाना देवी अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, नो आत्मीया देवी अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य परिचारयति ।

३ कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियों से आश्लेप कर-कर परिचारणा नहीं करते, अपनी देवियो का भी आश्लेप कर-कर परिचारणा नही करते, केवल अपने बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते हैं।

मेहुण-पदं

१० तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, त जहा— दिव्वे, माणुस्सए, तिरिक्खजोणिए ।

११ तओ मेहुण गच्छंति, त जहा— देवा, मणुस्सा, तिरिक्खजोणिया ।

१२ तओ मेहुण सेवति, तं जहा— इत्थी, पुरिसा, णपुसगा ।

मैथुन-पदम्

त्रिविध मैथुन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— दिव्य, मानुष्यक, तिर्यग्योनिकम् ।

त्रयो मैथुन गच्छन्ति, तद्यथा— देवा , मनुष्या , तिर्यग्योनिका ।

त्रयो मैथुन सेवन्ते, तद्यथा— स्त्रिय , पुरुषा , नपुसका ।

मैथुन-पद

१० मैथुन तीन प्रकार का है— १ दिव्य, २ मानुष्य, ३ तिर्यक्योनिक ।

११ तीन मैथुन को प्राप्त करते हैं— १ देव, २ मनुष्य, ३ तियञ्च।

१२ तीन मैथुन को सेवन करते हैं— १ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक ।[5]

जोग-पदं

१३ तिविहे जोगे पण्णत्ते, त जहा— मणजोगे, वइजोगे, कायजोगे । एव—णेरइयाण विगलिंदिय-वज्जाण जाव वेमाणियाणं ।

१४ तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा— मणपओगे, वइपओगे, कायपओगे । जहा जोगो विगलिंदियवज्जाण जाव तहा पओगोवि ।

योग-पदम्

त्रिविधो योग प्रज्ञप्त , तद्यथा— मनोयोग , वाग्योग , काययोग । एवम्—नैरयिकाणा विकलेन्द्रिय-वर्जाना यावत् वैमानिकानाम् ।

त्रिविध प्रयोग प्रज्ञप्त , तद्यथा— मन प्रयोग , वाक्प्रयोग, कायप्रयोग । यथा योगो विकलेन्द्रियवर्जाना यावत् तया प्रयोगोऽपि ।

योग-पद

१३ योग[1] तीन प्रकार का है— १ मनोयोग, २ वचनयोग, ३ काययोग। विकलेन्द्रियो (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीवो) को छोडकर शेष सभी दण्डको मे तीनो ही योग होते हैं।

१४ प्रयोग[2] तीन प्रकार का है— १ मन प्रयोग, २ वचनप्रयोग, ३ कायप्रयोग । विकलेन्द्रियो (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियो वाले जीवो) को छोडकर शेष सभी दण्डको में तीनो ही प्रयोग होते हैं।

करण-पदं

१५ तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा— मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे ।

करण-पदम्

त्रिविध करण प्रज्ञप्तम् तद्यथा— मन करण, वाक्करण, कायकरणम् ।

करण-पद

१५ करण[3] तीन प्रकार का है— १ मन करण, २ वचनकरण, ३ कायकरण।

एव—विगलिदियवज्ज जाव वेमाणियाण ।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम् ।

विकलेन्द्रियो (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियो वाले जीवो) को छोडकर शेष सभी दण्डको मे तीनो ही करण होते हैं।

१६ तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा—आरभकरणे, सरभकरणे, समारभकरणे । णिरतर जाव वेमाणियाण ।

त्रिविध करण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आरम्भकरण, सरम्भकरण, समारम्भकरणम् । निरन्तर यावत् वैमानिकानाम् ।

१६ करण तीन प्रकार का है—
१. आरभ (वध) करण,
२ सरभ (वध का सकल्प) करण,
३ समारभ (परिताप) करण ।
—ये सभी दण्डको मे होते हैं।

आउय-पगरण-पद

आयुष्क-प्रकरण-पदम्

आयुष्क-प्रकरण-पद

१७ तिहि ठाणेहि जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—
पाणे अतिवातित्ता भवति,
मुस वइत्ता भवति,
तहारूव समण वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता भवति—इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पगरेंति।

त्रिभि स्थानै जीवा अल्पायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति,
मृषा वदिता भवति,
तथारूप श्रमण वा माहन वा अस्पर्शुकेन अनेषणीयेन अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इति एतै त्रिभि स्थानै जीवा अल्पायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

१७ तीन प्रकार से जीव अल्पआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं—
१ जीवहिंसा से,
२ मृषावाद से,
३ तथारूप श्रमण माहन को अस्पर्शुक तथा अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से।'
इन तीन प्रकारो मे जीव अल्पआयुष्य-कर्म का बन्धन करते हैं।

१८ तिहि ठाणेहि जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति, तं जहा—
णो पाणे अतिवातित्ता भवइ,
णो मुस वइत्ता भवइ,
तहारूव समण वा माहणं वा फासुएण एसणिज्जेण असण-पाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति।

त्रिभि स्थानै जीवा दीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति,
नो मृपा वदिता भवति,
तथारूप श्रमण वा माहन वा स्पर्शुकेन एषणीयेन अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इतिएतै त्रिभि स्थानै जीवा दीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

१८. तीन प्रकार से जीव दीर्घआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं—
१ जीव-हिंसा न करने से,
२ मृषावाद न बोलने से,
३ तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक तथा एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से ।
इन तीन प्रकारो से जीव दीर्घआयुष्य-कर्म का बन्धन करते हैं।

१६ तिहि ठाणेहि जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—
पाणे अतिवातित्ता भवइ,
मुस वइत्ता भवइ,
तहारूव समण वा माहण वा

त्रिभि स्थानै जीवा अशुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति,
मृषा वदिता भवति,
तथारूप श्रमण वा माहन वा हीलित्वा निन्दित्वा खिंसयित्वा

१६ तीन प्रकार से जीव अशुभदीर्घआयुष्य-कर्म का बधन करते हैं—
१ जीव-हिंसा से,
२ मृषावाद से,
३ तथारूप श्रमण माहन की अवहेलना

हीलित्ता णिंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेण अमणुण्णेणं अपीतिकारतेण असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति ।

गर्हित्वा अवमान्य अन्यतरेण अमनोज्ञेन अप्रीतिकारकेण अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इतिएतैः त्रिभिः स्थानैः जीवाः अशुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

निन्दा, अवज्ञा, गर्हा और अपमान कर किसी अमनोज्ञ तथा अप्रीतिकर, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से ।

इन तीन प्रकारो से जीव अशुभदीर्घ-आयुष्यकर्म का वन्धन करते हैं ।

२० तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
णो पाणे अतिवातित्ता भवइ,
णो मुसं वदित्ता भवइ,
तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं देवतं चेतितं पज्जुवासेत्ता मणुण्णेणं पीतिकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति ।

त्रिभिः स्थानैः जीवाः शुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति,
नो मृषा वदिता भवति,
तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा वन्दित्वा नमस्कृत्य सत्कृत्य सम्मान्य कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्य मनोज्ञेन प्रीतिकारकेण अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इतिएतैः त्रिभिः स्थानैः जीवाः शुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

२० तीन प्रकार से जीव शुभदीर्घआयुष्यकर्म का वंधन करते हैं—
१ जीव-हिंसा न करने से,
२ मृषावाद न वोलने से,
३ तथा रूप श्रमण माहन को वंदना, नमस्कार कर, उनका सत्कार, सम्मान कर, कल्याण कर, मंगल—देवरूप तथा चैत्यरूप की पर्युपासना कर, उन्हें मनोज्ञ तथा प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से ।
इन तीन प्रकारों से जीव शुभदीर्घआयुष्य-कर्म का वन्धन करते हैं ।

गुत्ति-अगुत्ति-पदं

२१ तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती ।

२२ संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती ।

२३ तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणअगुत्ती, वइअगुत्ती, कायअगुत्ती ।
एवं—णेरइयाणं जाव थणियकुमाराणं पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं असंजतमणुस्साणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं ।

गुप्ति-अगुप्ति-पदम्

तिस्रः गुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोगुप्तिः, वाग्गुप्तिः, कायगुप्तिः ।

संयतमनुष्याणां तिस्रः गुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोगुप्तिः, वाग्गुप्तिः, कायगुप्तिः ।

तिस्रः अगुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोऽगुप्तिः, वागऽगुप्तिः, कायाऽगुप्तिः ।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् स्तनितकुमाराणां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां असंयतमनुष्याणां वानमन्तराणां ज्योतिष्काणां वैमानिकानाम् ।

गुप्ति-अगुप्ति-पद

२१ गुप्ति[11] तीन प्रकार की है—१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति, ३ कायगुप्ति ।

२२ संयत मनुष्य के तीनों ही गुप्तियां होती हैं—१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति, ३ कायगुप्ति ।

२३ अगुप्ति तीन प्रकार की है—
१ मनअगुप्ति, २ वचनअगुप्ति, ३ कायअगुप्ति ।
नैरयिक, दस भवनपति, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, असंयत मनुष्य, वानमंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवो में तीनों ही अगुप्तियां होती हैं ।

दंड-पदं

२४. तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा— मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे।

२५. णेरइयाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे। विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

दण्ड-पदम्

त्रयो दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोदण्डः, वाग्दण्डः, कायदण्डः।

नैरयिकाणां त्रयो दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोदण्डः, वाग्दण्डः, कायदण्डः।

विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

दण्ड-पद

२४. दण्ड तीन प्रकार का है— १. मनोदंड, २. वचनदंड, ३. कायदंड।"

२५. नैरयिकों में तीन दण्ड होते हैं— १. मनोदण्ड, २. वचनदण्ड, ३. कायदण्ड। विकलेन्द्रिय (एक, दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले) जीवों को छोड़कर वैमानिक देवों तक के सभी दण्डकों में तीनों ही दण्ड होते हैं।

गरहा-पदं

२६. तिविहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा—
मणसा वेगे गरहति,
वयसा वेगे गरहति,
कायसा वेगे गरहति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।
अहवा—गरहा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
दीहंपेगे अद्धं गरहति,
रहस्संपेगे अद्धं गरहति,
कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।

गर्हा-पदम्

त्रिविधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनसा वा एके गर्हन्ते,
वचसा वा एके गर्हन्ते,
कायेन वा एके गर्हन्ते—पापानां कर्मणाम् अकरणतया।
अथवा—गर्हा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दीर्घमप्येके अद्ध्वानं गर्हन्ते,
ह्रस्वमप्येके अद्ध्वानं गर्हन्ते,
कायमप्येके प्रतिसंहरन्ति—पापानां कर्मणाम् अकरणतया।

गर्हा-पद

२६. गर्हा तीन प्रकार की है—
१. कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं,
२. कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं,
३. कुछ लोग काया से गर्हा करते हैं, इसलिए पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करते।
अथवा गर्हा तीन प्रकार की है—
१. कुछ लोग दीर्घकाल तक पाप-कर्मों की गर्हा करते हैं, २. कुछ लोग अल्पकाल तक पाप-कर्मों की गर्हा करते हैं, ३. कुछ लोग काया को प्रतिसंहृत (संवृत) करते हैं, इसलिए पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करते।"

पच्चक्खाण-पदं

२७. तिविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति,
वयसा वेगे पच्चक्खाति,
कायसा वेगे पच्चक्खाति—
•पावाणं कम्माणं अकरणयाए।
अहवा—पच्चक्खाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
दीहंपेगे अद्धं पच्चक्खाति,
रहस्संपेगे अद्धं पच्चक्खाति,
कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं

प्रत्याख्यान-पदम्

त्रिविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
मनसा वैके प्रत्याख्यान्ति,
वचसा वैके प्रत्याख्यान्ति,
कायेन वैके प्रत्याख्यान्ति—
पापानां कर्मणाम् अकरणतया।
अथवा—प्रत्याख्यानं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—दीर्घमप्येके अद्ध्वानं प्रत्याख्यान्ति,
ह्रस्वमप्येके अद्ध्वानं प्रत्याख्यान्ति,
कायमप्येके प्रतिसंहरन्ति—पापानां

प्रत्याख्यान-पद

२७. प्रत्याख्यान" (त्याग) तीन प्रकार का है—
१. कुछ जीव मन से प्रत्याख्यान करते हैं,
२. कुछ जीव वचन से प्रत्याख्यान करते हैं,
३. कुछ जीव काया से प्रत्याख्यान करते हैं, इसलिए पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करते।
अथवा प्रत्याख्यान तीन प्रकार का है—
१. कुछ जीव दीर्घकाल तक पाप-कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं, २. कुछ जीव अल्पकाल तक पाप-कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं, ३. कुछ जीव काया को प्रतिसंहृत

कम्माण अकरणयाए।[०]

कर्मणा अकरणतया।

करते हैं, दुवारा पाप-कर्मों मे प्रवृत्ति नहीं करते।

उपकार-पदं

२८ तओ रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—
पत्तोवगे, पुप्फोवगे, फलोवगे।
एवामेव तओ पुरिसजाता पण्णत्ता,
त जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे,
पुप्फोवारुक्खसमाणे,
फलोवारुक्खसमाणे।

उपकार-पदम्

त्रयो रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पत्रोपग, पुष्पोपग, फलोपग।
एवमेव त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—पत्रोपगरुक्षसमान,
पुष्पोपगरुक्षसमान.,
फलोपगरुक्षसमान।

उपकार-पद

२८ वृक्ष तीन प्रकार के होते हैं—१ पत्रो वाले, २ पुष्पों वाले, ३ फलो वाले। इसी प्रकार पुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष पत्रो वाले वृक्षों के समान होते हैं—अल्प उपकारी,
२ कुछ पुरुष पुष्पो वाले वृक्षो के समान होते हैं—विशिष्ट उपकारी,
३ कुछ पुरुष फलों वाले वृक्षो के समान होते हैं—विशिष्टतर उपकारी।[१५]

पुरिसजात-पदं

२९ तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, त जहा—णामपुरिसे, ठवणपुरिसे, दव्वपुरिसे।
३० तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपुरिसे, दंसणपुरिसे, चरित्तपुरिसे।
३१ तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—वेदपुरिसे, चिंधपुरिसे, अभिलावपुरिसे।
३२ तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, त जहा—उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, जहण्णपुरिसा।
३३ उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा।
धम्मपुरिसा अरहंता, भोगपुरिसा चक्कवट्टी, कम्मपुरिसा वासुदेवा।
३४ मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता,

पुरुषजात-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नामपुरुष, स्थापनापुरुष, द्रव्यपुरुष।
त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ज्ञानपुरुष, दर्शनपुरुष, चरित्रपुरुष।
त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वेदपुरुष, चिन्हपुरुष, अभिलापपुरुष।
त्रिविधा पुरुषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्तमपुरुषा मध्यमपुरुषा, जघन्यपुरुषा।
उत्तमपुरुषा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
धर्मपुरुषा, भोगपुरुषा, कर्मपुरुषा।
धर्मपुरुषा अर्हन्त, भोगपुरुषा चक्रवर्तिन, कर्मपुरुषा वासुदेवा।
मध्यमपुरुषा त्रिविधा. प्रज्ञप्ता,

पुरुषजात-पद

२९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ नामपुरुष, २ स्थापनापुरुष, ३ द्रव्यपुरुष।[१६]
३० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ ज्ञानपुरुष, २ दर्शनपुरुष, ३ चरित्रपुरुष।[१७]
३१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ वेदपुरुष, २ चिह्नपुरुष, ३ अभिलापपुरुष।[१८]
३२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ उत्तमपुरुष, २ मध्यमपुरुष, ३ जघन्यपुरुष।[१९]
३३ उत्तम-पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ धर्मपुरुष—अर्हत,
२ भोगपुरुष—चक्रवर्ती,
३ कर्मपुरुष—वासुदेव।[२०]
३४ मध्यम-पुरुष तीन प्रकार के हैं—

तं जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा। | तद्यथा—उग्रा, भोजा, राजन्या। | १ उग्र—आरक्षक, २ भोज—गुरुस्थानीय, ३ राजन्य—वयस्य।[31]

३५ जहण्णपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—
दासा, भयगा, भाइल्लगा।

जघन्यपुरुषा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—दासा, भृतका, भागिन।

३५ जघन्य-पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ दास, २ भृतक—नौकर
३ भागीदार।[32]

मच्छ-पद

मत्स्य-पदम्

मत्स्य-पद

३६ तिविहा मच्छा पण्णत्ता, त जहा—अंडया, पोयया, समुच्छिमा।

त्रिविधा मत्स्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अण्डजा, पोतजा, सम्मूर्च्छिमा।

३६ मत्स्य तीन प्रकार के होते हैं—
१ अडज—अडे से पैदा होने वाले,
२ पोतज—बिना आवरण के पैदा होने वाले—ह्वेल मछली आदि।
३ सम्मूर्च्छिम[33]—सहज सयोगो से पैदा होने वाले।

३७ अडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

अण्डजा मत्स्या त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

३७ अडज मत्स्य तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २, पुरुष, ३ नपुसक।

३८ पोतया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

पोतजा मत्स्या त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

३८ पोतज मत्स्य तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

पक्खि-पद

पक्षि-पदम्

पक्षि-पद

३९ तिविहा पक्खी पण्णत्ता, त जहा—अडया, पोयया, समुच्छिमा।

त्रिविधा पक्षिण प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अण्डजा, पोतजा, सम्मूर्छिमा।

३९ पक्षी तीन प्रकार के होते हैं—
१ अडज, २ पोतज, ३ सम्मूर्च्छिम।

४०. अडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

अण्डजा पक्षिण त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

४० अडज पक्षी तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

४१ पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

पोतजा पक्षिण त्रिविधा, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

४१ पोतज पक्षी तीन प्रकार के होते है—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

परिसप्प-पदं

परिसर्प-पदम्

परिसर्प-पद

४२. °तिविहा उरपरिसप्पा पण्णत्ता, त जहा—
अडया, पोयया, संमुच्छिमा।

त्रिविधा उरपरिसर्पा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अण्डजा, पोतजा, सम्मूर्च्छिमा।

४२ उरपरिसर्प[34] तीन प्रकार के होते हैं—
१ अडज, २ पोतज, ३ सम्मूर्च्छिम।

४३ अडया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

अण्डजा उरपरिसर्पा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

४३ अडज उरपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

४४ पोयया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा— इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।	पोतजा उरपरिसर्पा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— स्त्रियः, पुरुषा, नपुंसकाः।	४४ पोतज उरपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं— १ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुंसक।
४५ तिविहा भुजपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा।	त्रिविधा भुजपरिसर्पा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अण्डजा, पोतजा, सम्मूर्च्छिमाः।	४५ भुजपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं— १ अंडज, २ पोतज, ३ सम्मूर्च्छिम।
४६ अंडया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा— इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।	अण्डजा भुजपरिसर्पा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— स्त्रियः, पुरुषा, नपुंसकाः।	४६ अंडज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं— १ स्त्री, २ पुरुष, ६ नपुंसक।
४७ पोयया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा— इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।	पोतजा भुजपरिसर्पा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— स्त्रियः, पुरुषा, नपुंसकाः।	४७ पोतज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं— १ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुंसक।

इत्थी-पदं	स्त्री-पदम्	स्त्री-पद
४८ तिविहाओ इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तिरिक्खजोणित्थीओ, मणुस्सित्थीओ, देवित्थीओ।	त्रिविधाः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— तिर्यग्योनिस्त्रियः, मनुष्यस्त्रियः, देवस्त्रियः।	४८ स्त्रियां तीन प्रकार की होती हैं— १ तिर्यक्योनिकस्त्री २ मनुष्यस्त्री, ३ देवस्त्री।
४९ तिरिक्खजोणीओ इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— जलचरीओ, थलचरीओ, खहचरीओ।	तिर्यग्योनिकाः स्त्रियः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— जलचर्यः, स्थलचर्यः, खेचर्यः।	४९ तिर्यक्योनिकस्त्रियां तीन प्रकार की होती हैं— १ जलचरी, २ स्थलचरी, ३ खेचरी।
५० मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— कम्मभूमियाओ, अकम्मभूमियाओ, अंतरदीविगाओ।	मनुष्यस्त्रियः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः, आन्तरद्वीपिकाः।	५० मनुष्यस्त्रियां तीन प्रकार की होती हैं— १ कर्मभूमिजा, २ अकर्मभूमिजा, ३ अन्तर्द्वीपजा।[३१]

पुरिस-पदं	पुरुष-पदम्	पुरुष-पद
५१ तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा— तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्स-पुरिसा, देवपुरिसा।	त्रिविधाः पुरुषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— तिर्यग्योनिकपुरुषाः, मनुष्यपुरुषाः, देवपुरुषाः।	५१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ तिर्यक्योनिकपुरुष, २ मनुष्यपुरुष, ३ देवपुरुष।
५२ तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरा, थलचरा, खहचरा।	तिर्यग्योनिकपुरुषाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः, स्थलचराः, खेचराः।	५२ तिर्यक्योनिकपुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१ जलचर, २ स्थलचर, ३ खेचर।

५३. मणुस्सपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—कम्मभूमिया, अकम्मभूमिया, अतरदीवगा।

मनुष्यपुरुषा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कर्मभूमिजा, अकर्मभूमिजा, आन्तरद्वीपका।

५३. मनुष्यपुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कर्मभूमिज, २ अकर्मभूमिज,
३ अन्तर्द्वीपज।

णपुंसग-पद

नपुसक-पदम्

नपुंसक-पद

५४ तिविहा णपुसगा पण्णत्ता, त जहा—णेरइयणपुंसगा, तिरिक्खजोणियणपुसगा, मणुस्सणपुसगा।

त्रिविधा नपुसका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैरयिकनपुसका, तिर्यग्योनिकनपुसका, मनुष्यनपुसका।

५४ नपुसक तीन प्रकार के होते हैं—
१ नैरयिकनपुसक, २ तिर्यक्योनिकनपुसक, ३ मनुष्यनपुसक।

५५. तिरिक्खजोणियणपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—
जलयरा, थलयरा, खहयरा।

तिर्यग्योनिकनपुसका त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जलचरा, स्थलचरा, खेचरा।

५५ तिर्यकयोनिक नपुसक तीन प्रकार के होते हैं—
१ जलचर, २ स्थलचर, ३ खेचर।

५६ मणुस्सणपुसगा तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अतरदीवगा।

मनुष्यनपुसका त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कर्मभूमिजा, अकर्मभूमिजा, आन्तरद्वीपका।

५६ मनुष्यनपुसक तीन प्रकार के होते हैं—
१ कर्मभूमिज, २ अकर्मभूमिज,
३ अन्तर्द्वीपज।

तिरिक्खजोणिय-पद

तिर्यग्योनिक-पदम्

तिर्यग्योनिक-पद

५७ तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

त्रिविधा तिर्यग्योनिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका।

५७ तिर्यक्योनिक जीव तीन प्रकार के होते हैं—१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

लेसा-पद

लेश्या-पदम्

लेश्या-पद

५८. णेरइयाण तओ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

नैरयिकाणा तिस्र लेश्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

५८ नैरयिको मे तीन लेश्याए होती हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

५९ असुरकुमाराण तओ लेसाओ सकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

असुरकुमाराणा तिस्र लेश्या सक्लिष्टा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

५९ असुरकुमार[४] के तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

६० एव—जाव थणियकुमाराण।

एवम्—यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

६० इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देवों के तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं।

६१ एव—पुढविकाइयाण आउ-वणस्सतिकाइयाणवि।

एवम्—पृथिवीकायिकाना अव्-वनस्पति-कायिकानामपि।

६१ इसी प्रकार पृथ्वीकायिक[५], अप्कायिक, वनस्पतिकायिक जीवो के भी तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

६२ तेउकाइयाण वाउकाइयाणं बेंदियाण तेंदियाणं चउरिंदिआणवि तओ लेस्सा, जहा णेरइयाण।

तेजस्कायिकाना वायुकायिकाना द्वीन्द्रियाणा त्रीन्द्रियाणा चतुरिन्द्रियाणामपि तिस्र लेश्या, यथा नैरयिकाणाम्।

६२ तेजस्कायिक[१], वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो मे तीन लेश्याए होती हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या।

६३ पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ सकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना तिस्र लेश्या सक्लिष्टा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६३ पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीवो के तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

६४ पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ असकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना तिस्र लेश्याः असक्लिष्टा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६४ पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीवो के तीन लेश्याए असक्लिष्ट होती हैं—
१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

६५ •मणुस्साण तओ लेसाओ सकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

मनुष्याणा तिस्र लेश्या सक्लिष्टा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६५ मनुष्यो के तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

६६ मणुस्साण तओ लेसाओ असकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।°

मनुष्याणा तिस्र लेश्या असक्लिष्टा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६६ मनुष्यों के तीन लेश्याए असक्लिष्ट होती हैं—१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

६७ वाणमतराण जहा असुरकुमाराण।

वानमन्तराणा यथा असुरकुमाराणाम्।

६७ वानमतरो के तीन लेश्याए सक्लिष्ट होती हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६८ वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ, त जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

वैमानिकाना तिस्र लेश्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६८ वैमानिक देवो के तीन लेश्याए होती हैं—
१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

तारारूव-चलण-पद

तारारूप-चलन-पदम्

तारारूप-चलन-पद

६९. तिहिं ठाणेहिं तारारूवे चलेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा,
परियारेमाणे वा,
ठाणाओ वा ठाण सकममाणे—
तारारूवे चलेज्जा।

त्रिभि स्थानै तारारूप चलेत, तद्यथा—विकुर्वाण वा, परिचारयमाण वा, स्थानाद् वा स्थान सक्रमत्—तारारूप चलेत्।

६९ तीन कारणो मे तारा चलित होते हैं—
१ वैक्रिय रूप करते हुए, २ परिचारणा करते हुए, ३ एक स्थान से दूसरे स्थान मे सक्रमण करते हुए।

देवविक्किया-पदं

७०. तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढिं जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे—देवे विज्जुयारं करेज्जा।

७१. तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, •परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढिं जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे—देवे थणियसद्दं करेज्जा।°

देवविक्रिया-पदम्

त्रिभिः स्थानैः देवः विद्युत्कारं कुर्यात्, तद्यथा—विकुर्वाणे वा, परिचारयमाणे वा, तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा ऋद्धिं द्युतिं यशः बलं वीर्यं पुरुषकारपराक्रमं उपदर्शयमानः—देवः विद्युत्कारं कुर्यात्।

त्रिभिः स्थानैः देवः स्तनितशब्दं कुर्यात्, तद्यथा—विकुर्वाणे वा, परिचारयमाणे वा, तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा ऋद्धिं द्युतिं यशः बलं वीर्यं पुरुषकारपराक्रमं उपदर्शयमानः—देवः स्तनितशब्दं कुर्यात्।

देवविक्रिया-पद

७० तीन कारणों से देव विद्युत्कार (विद्युत्-प्रकाश) करते हैं—
१ वैक्रिय रूप करते हुए, २ परिचारणा करते हुए, ३ तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का उपदर्शन करते हुए।

७१ तीन कारणों से देव गर्जारव करते हैं—
१ वैक्रिय रूप करते हुए, २ परिचारणा करते हुए, ३ तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का उपदर्शन करते हुए।

अंधयार-उज्जोयाइ-पदं

७२. तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे।

७३. तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

७४ तिहिं ठाणेहिं देवंधकारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे।

अन्धकार-उद्योतादि-पदम्

त्रिभिः स्थानैः लोकान्धकारं स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने।

त्रिभिः स्थानैः लोकोद्योतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

त्रिभिः स्थानैः देवान्धकारं स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्यच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने।

अन्धकार-उद्योत आदि-पद

७२ तीन कारणों से मनुष्यलोक में अंधकार होता है—
१ अर्हन्तों के व्युच्छिन्न (मुक्त) होने पर, २ अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३ पूर्वगत (चतुर्दश पूर्वों) के व्युच्छिन्न होने पर।

७३ तीन कारणों से मनुष्यलोक में उद्योत होता है—१ अर्हन्तों का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर।

७४ तीन कारणों से देवलोक में अंधकार होता है—१ अर्हन्तों के व्युच्छिन्न होने पर, २ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३ पूर्वगत का विच्छेद होने पर।

७५ तिहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवोद्योतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७५ तीन कारणो से देवलोक मे उद्योत होता है—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवल-ज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

७६ तिहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवसन्निपातः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७६ तीन कारणो से देव-सन्निपात [मनुष्य-लोक मे आगमन] होता है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

७७ °तिहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवोत्कलिका स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७७ तीन कारणो से देवोत्कलिका [देवताओ का समवाय] होता है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

७८. तिहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

त्रिभिः स्थानैः देव 'कहकहकः' स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७८ तीन कारणो से देवकहकहा [कलकल ध्वनि] होता है—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

७९ तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवेन्द्रा मानुषं लोकं अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७९ तीन कारणो से देवेन्द्र तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८० एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति,

एवम्—सामानिकाः, तावत्त्रिंशकाः, लोकपालाः देवाः, अग्रमहिष्यो देव्यः, परिषदुपपन्नकाः देवाः, अनिकाधिपतयो देवाः, आत्मरक्षकाः देवाः मानुषं लोकं अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—

८० इसी प्रकार सामानिक[१], तावत्त्रिंशक[२], लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, सभासद, सेनापति तथा आत्मरक्षक देव तीन कारणों से तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,

°त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु ।°

अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८१ तिहि ठाणेहि देवा अब्भुट्ठिज्जा, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, °अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु ।°

त्रिभि स्थानै देवा अभ्युत्तिष्ठेयु, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

८१ तीन कारणो से देव अपने सिंहासन से अभ्युत्थित होते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८२ °तिहि ठाणेहि देवाणं आसणाइ चलेज्जा, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु ।

त्रिभि स्थानै देवाना आसनानि चलेयु, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

८२ तीन कारणो से देवो के आसन चलित होते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८३ तिहि ठाणेहि देवा सीहणाय करेज्जा, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु ।

त्रिभि स्थानै देवा सिंहनाद कुर्यु, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

८३ तीन कारणो से देव सिंहनाद करते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८४ तिहिं ठाणेहि देवा चेलुक्खेव करेज्जा, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहंतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु ।°

त्रिभि स्थानै देवा चेलोत्क्षेप कुर्यु, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

८४ तीन कारणो से देव चलोत्क्षेप करते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८५ तिहि ठाणेहि देवाण चेइयरुक्खा चलेज्जा, त जहा—अरहतेहि °जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताणं णाणुप्पायमहिमासु ।°

त्रिभि स्थानै देवाना चैत्यरुक्षा चलेयु तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु ।

८५ तीन कारणो से देवताओ के चैत्यवृक्ष चलित होते हैं—१ अर्हन्तों का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८६ तिहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुस लोग हव्वमागच्छेज्जा, त जहा—अरहतेहिं जायमाणेहिं, अरहतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभि स्थानै लोकान्तिका देवा मानुष लोक अर्वाक् आगच्छेयु, तद्यथा— अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८६ तीन कारणो से लोकान्तिक[१३] देव तत्क्षण मनुष्यलोक मे आते हैं—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

दुप्पडियार-पदं

दुष्प्रतिकार-पदम्

दुष्प्रतिकार-पद

८७ तिण्ह दुप्पडियार समणाउसो! त जहा—अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।

त्रिविध दुष्प्रतिकार आयुष्मन्! श्रमण!, तद्यथा—अम्वापितु, भर्त्तु, धर्माचार्यस्य।

८७ भगवान् ने कहा—आयुष्मान श्रमणो! तीन पद दुष्प्रतिकार हैं—उनसे ऊर्ऋण होना दु शक्य है—१ मातापिता, २ भर्ता—पालन-पोषण करने वाला, ३, धर्माचार्य।

१ सपातोवि य ण केइ पुरिसे अम्मापियर सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भगेत्ता, सुरभिणा गधट्टएण उव्वट्टित्ता, तिहिं उदगेहिं मज्जावेत्ता, सव्वालकारविभूसिय करेत्ता, मणुण्ण थालीपागसुद्ध अट्ठारसवंजणाउल भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीव पिट्ठिवडेंसियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियार भवइ।

(१) सप्रातरपि च कश्चित् पुरुष अम्वापितर शतपाकसहस्रपाकाभ्या तैलाभ्या अभ्यज्य, सुरभिना गन्धाट्टकेन उद्वर्त्त्य, त्रिभि उदकै मज्जयित्वा, सर्वालङ्कारविभूपित कृत्वा, मनोज्ञ स्थालीपाकशुद्ध अप्टादशव्यञ्जनाकुल भोजन भोजयित्वा यावज्जीव पृष्ठ्यवतसिकया परिवहेत्, तेनाऽपि तस्य अम्वापितु दुष्प्रतिकार भवति।

१ कोई पुत्र अपने माता-पिता का प्रात - काल में शतपाक[१४], सहस्रपाक[१५] तेलो से मर्दन कर, सुगन्धित चूर्ण से उवटन कर, गधोदक, शीतोदक तथा उष्णोदक से स्नान करवा कर, सर्वालकारो से उन्हें विभूपित कर, अठारह प्रकार के स्थालीपाक[१६]-शुद्ध व्यञ्जनो से युक्त भोजन करवा कर, जीवन-पर्यन्त कावर [वहगी] में उनका परिवहन करे तो भी वह उनके उपकारों से ऊर्ऋण नहीं हो सकता।

अहे ण से त अम्मापियर केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइता भवति, तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियार भवति समणाउसो!

अथ स त अम्वापितर केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य अम्वापितु सुप्रतिकार भवति आयुष्मन्! श्रमण!

वह उनसे तभी ऊर्ऋण हो सकता है जबकि उन्हें समझा-बुझाकर, प्रवुद्ध कर, विस्तार से वताकर केवलीप्रज्ञप्त धर्म मे स्थापित करता है।

२ केइ महच्चे दरिद्द समुक्कसेज्जा। तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुर च ण विउलभोगसमितिसमण्णागते यावि विहरेज्जा।

(२) कश्चित् महार्घो दरिद्र समुत्कर्पयेत्। तत स दरिद्र समुत्कृष्ट सन् पश्चात् पुरश्च विपुलभोगसमितिसमन्वागतश्चापि विहरेत्।

२ कोई अर्थपति किसी दरिद्र का धन आदि से समुत्कर्प करता है। सयोगवश कुछ समय वाद या शीघ्र ही वह दरिद्र विपुल भोगसामग्री से युक्त हो जाता है और वह अर्थपति किसी समय दरिद्र होकर सहयोग की कामना मे उसके पास आता है। उस समय वह भूतपूर्व दरिद्र

तए ण से महच्चे अण्णया कयाइ दरिद्दीहूए समाणे तस्स दरिद्दस्स

तत स महार्घ अन्यदा कदापि दरिद्रीभूत सन् तस्य दरिद्रस्य अन्तिके अर्वाक्

अतिए हव्वमागच्छेज्जा। तए ण से दरिद्दे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियार भवति। अहे ण से त भट्टि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइता ठावइता भवति, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियार भवति [समणाउसो !?]।

आगच्छेत्। तत स दरिद्र तस्मै भर्त्रे सर्वस्वमपि ददत् तेनापि तस्य दुष्प्रतिकार भवति। अथ स त भर्त्तार केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य भर्तु सुप्रतिकार भवति [आयुष्मान्! श्रमण!?]।

अपने स्वामी को सब कुछ अर्पण करके भी उसके उपकारो से ऊर्ऋण नही हो सकता। वह उससे तभी ऊर्ऋण हो सकता है जबकि उसे समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर, विस्तार से बताकर केवलीप्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।

३ केति तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमवि आरिय धम्मिय सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे। तए ण से देवे त धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्ख देस साहरेज्जा, कताराओ वा णिक्कतार करेज्जा, दीहकालिएण वा रोगातकेण अभिभूत समाण विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियार भवति। अहे ण से त धम्मायरियं केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठ समाणं भुज्जोवि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता °पण्णवइत्ता परूवइत्ता° ठावइता भवति, तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियार भवति [समणाउसो !?]।

३ कश्चित् तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिके एकमपि आर्यं धार्मिक सुवचन श्रुत्वा निशम्य कालमासे काल कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपन्न। तत स देव त धर्माचार्यं दुर्भिक्षात् वा देशात् सुभिक्ष देश सहरेत्, कान्तारात् वा निष्कान्तार कुर्यात्, दीर्घकालिकेन वा रोगातङ्केन अभिभूत सन्त विमोचयेत् तेनापि तस्य धर्माचार्यस्य दुष्प्रतिकार भवति। अथ स त धर्माचार्यं केवलिप्रज्ञप्तात् धर्मात् भ्रष्टं सन्त भूयोपि केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य धर्माचार्यस्य सुप्रतिकार भवति [आयुष्मन्! श्रमण!?]।

३ कोई व्यक्ति तयारूप श्रमण-माहन के पास एक भी आर्य तथा धार्मिक वचन सुनकर, अवधारण कर, मृत्युकाल मे मरकर, किसी देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होता है। किसी समय वह धर्माचार्य को अकाल-ग्रस्त देश से सुभिक्ष देश मे सहृत कर देता है, जगल से वस्ती मे ले आता है या लम्बी बीमारी तथा आतक [सद्योघाती रोग] से अभिभूत बने हुए को विमुक्त कर देता है, तो भी वह धर्माचार्य के उपकार से ऊर्ऋण नहीं हो सकता। वह उससे तभी ऊर्ऋण हो सकता है जबकि कदाचित् उसके केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाने पर उसे समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर, विस्तार से बताकर पुन केवलीप्रज्ञप्त धर्म मे स्थापित कर देता है।

ससार-वीईवयण-पद

८८ तिहिं ठाणेहि सपण्णे अणगारे अणादीय अणवदग्ग दीहमद्ध

ससार-व्यतिव्रजन-पदम्

त्रिभि स्थानै सम्पन्न अनगार अनादिकं अनवदग्र दीर्घाद्ध्वान

संसार-व्यतिव्रजन-पद

८८ तीन स्थानो से सम्पन्न अनगार अनादि अनत अतिविस्तीर्ण चातुर्गतिक ससार-

चाउरतं संसारकतार वीईवएज्जा, त जहा—अणिदाणयाए, दिट्ठिसपण्णयाए, जोगवाहियाए।

चातुरन्त ससारकान्तारं व्यतिव्रजेत् तद्यथा—अनिदानतया, दृष्टिसम्पन्नतया, योगवाहितया।

कातार से पार हो जाता है—
१ अनिदानता—भोग-प्राप्ति के लिए सकल्प नहीं करने से, २ दृष्टिसम्पन्नता—सम्यग्दृष्टि से, ३ योगवाहिता[६]—योग का वहन करने या समाधिम्थ रहने से।

कालचक्क-पद

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

८९ तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

त्रिविधा अवसर्प्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्पा, मध्यमा, जघन्या।

८९ अवसर्पिणी तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

९० °तिविहा सुसम-सुसमा—
तिविहा सुसमा—
तिविहा सुसम-दूसमा—
तिविहा दूसम-सुसमा—
तिविहा दूसमा—
तिविहा दूसम-दूसमा पण्णत्ता, त जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।°

त्रिविधा सुपम-सुपमा—
त्रिविधा सुपमा—
त्रिविधा सुपम-दुष्पमा—
त्रिविधा दुष्पम-सुपमा—
त्रिविधा दुष्पमा—
त्रिविधा दुष्पम-दुष्पमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्कर्पा, मध्यमा, जघन्या।

९० सुपमसुपमा तीन प्रकार की होती है—
सुपमा तीन प्रकार की होती है—
सुपमदुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्पमसुपमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्पमदुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

९१ तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

त्रिविधा उत्सर्प्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्कर्पा, मध्यमा, जघन्या।

९१ उत्सर्पिणी तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

९२ °तिविहा दुस्सम-दुस्समा—
तिविहा दुस्समा—
तिविहा दुस्सम-सुसमा—
तिविहा सुसम-दुस्समा—
तिविहा सुसमा—
तिविहा सुसम-सुसमा पण्णत्ता, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।°

त्रिविधा दुष्पम-दुष्षमा—
त्रिविवा दुष्पमा—
त्रिविधा दुष्पम-सुपमा—
त्रिविधा सुपम-दुष्पमा—
त्रिविधा सुपमा—
त्रिविधा सुपम-सुपमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्पा, मध्यमा, जघन्या।

९२ दुष्पमदुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्पमसुपमा तीन प्रकार की होती है—
सुपमदुष्पमा तीन प्रकार की होती है—
सुपमा तीन प्रकार की होती है—
सुपमसुपमा तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

अच्छिण्ण-पोग्गल-चलण-पद

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पदम्

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पद

९३ तिहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, त जहा—
आहारिज्जमाणे वा पोग्गले

त्रिभि स्थानै अच्छिन्न पुद्गल चलेत्, तद्यथा—आह्रियमाणो वा पुद्गल चलेत्, विक्रियमाणो वा पुद्गल चलेत्,

९३ अच्छिन्न पुद्गल [स्कध सलग्न पुद्गल] तीन कारणो से चलित होता है—
१ जीवो द्वारा आकृष्ट होने पर चलित

चलेज्जा, विकुव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाण सकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा।

स्थानात् वा स्थान सक्रम्यमाण पुद्गल चलेत्।

होता है, २ विक्रियमाण होने पर चलित होता है, ३ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सक्रमित किए जाने पर चलित होता है।

उपधि-पद

९४ तिविहे उवधी पण्णत्ते, त जहा— कम्मोवही, सरीरोवही, बाहिरभडमत्तोवही। एवं—असुरकुमाराण भाणियव्व। एव—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाण। अहवा—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाण णिरतर जाव वेमाणियाणं।

उपधि-पदम्

त्रिविध उपधि प्रज्ञप्त, तद्यथा— कर्मोपधि, शरीरोपधि, बाह्यभाण्डामत्रोपधि। एवम्—असुरकुमाराणा भणितव्यम्। एवम्—एकेन्द्रियनैरयिकवर्ज यावत् वैमानिकानाम्। अथवा—त्रिविध उपधि प्रज्ञप्त, तद्यथा—सचित्त, अचित्त, मिश्रक। एवम्—नैरयिकाणा निरतर यावत् वैमानिकानाम्।

उपधि-पद

९४ उपधि तीन प्रकार की होती है—
१ कर्मउपधि, २ शरीरउपधि,
३ वस्त्र-पात्र आदि बाह्य उपधि।
एकेन्द्रिय तथा नैरयिको को छोडकर सभी दण्डको के तीन प्रकार की उपधि होती है।
अथवा—उपधि तीन प्रकार की होती है—१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र।
सभी दण्डको के तीन प्रकार की उपधि होती है।

परिग्गह-पद

९५ तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, त जहा— कम्मपरिग्गहे, सरीरपरिग्गहे। बाहिरभडमत्तपरिग्गहे। एव—असुरकुमाराणं। एव—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाण। अहवा—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, त जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एव—णेरइयाण निरतर जाव वेमाणियाण।

परिग्रह-पदम्

त्रिविध परिग्रह प्रज्ञप्त, तद्यथा— कर्मपरिग्रह, शरीरपरिग्रह, बाह्यभाण्डामत्रपरिग्रह। एवम्— असुरकुमाराणाम्। एवम्—एकेन्द्रियनैरयिकवर्ज यावत् वैमानिकानाम्। अथवा—त्रिविध परिग्रह प्रज्ञप्त, तद्यथा—सचित्त, अचित्त, मिश्रक। एवम्—नैरयिकाणा निरतर यावत् वैमानिकानाम्।

परिग्रह-पद

९५ परिग्रह तीन प्रकार का होता है—
१ कर्मपरिग्रह, २ शरीरपरिग्रह,
३ वस्त्र-पात्र आदि बाह्य परिग्रह।
एकेन्द्रिय तथा नैरयिको को छोडकर सभी दण्डकों के तीन प्रकार का परिग्रह होता है।
अथवा—परिग्रह तीन प्रकार का होता है—१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र।
सभी दण्डकों के तीन प्रकार का परिग्रह होता है।

पणिहाण-पद

९६ तिविहे पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा— मणपणिहाणे, वयपणिहाणे, कायपणिहाणे। एव—पचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

प्रणिधान-पदम्

त्रिविध प्रणिधान प्रज्ञप्तम, तद्यथा— मन प्रणिधान, वच प्रणिधान। कायप्रणिधानम्। एवम्—पञ्चेन्द्रियाणा यावत् वैमानिकानाम्।

प्रणिधान-पद

९६ प्रणिधान[११] तीन प्रकार का होता है—
१ मनप्रणिधान, २ वचनप्रणिधान,
३ कायप्रणिधान।
सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डको मे तीनो प्रणिधान होते हैं।

६७ तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे।

त्रिविध सुप्रणिधान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— मन सुप्रणिधान, वच सुप्रणिधान, कायसुप्रणिधानम्।

६७ सुप्रणिधान तीन प्रकार का होता है— १ मनसुप्रणिधान, २ वचनसुप्रणिधान, ३ कायसुप्रणिधान।

६८ सजयमणुस्साणं तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा— मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे।

सयतमनुष्याणा त्रिविध सुप्रणिघान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मन सुप्रणिवान, वच सुप्रणिवान, कायसुप्रणिधानम्।

६८ सयत मनुष्यो के तीन सुप्रणिधान होते हैं— १ मनसुप्रणिधान, २ वचनसुप्रणिधान, ३ कायसुप्रणिधान।

६९ तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

त्रिविध दुष्प्रणिधान प्रज्ञप्तम् तद्यथा— मनोदुष्प्रणिधान, वचोदुष्प्रणिवान, कायदुष्प्रणिवानम्। एवम्—पञ्चेन्द्रियाणा यावत् वैमानिकानाम्।

६९ दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का होता है— १ मनदुष्प्रणिधान, २ वचनदुष्प्रणिधान, ३ कायदुष्प्रणिधान। सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डको मे तीनो दुष्प्रणिधान होते हैं।

जोणि-पदं

योनि-पदम्

योनि-पद

१०० तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा— सीता, उसिणा, सीओसिणा। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाण तेउकाइयवज्जाण समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं समुच्छिममणुस्साण य।

त्रिविधा योनि प्रज्ञप्ता, तद्यथा— शीता, उष्णा, शीतोष्णा। एवम्—एकेन्द्रियाणा विकलेन्द्रियाणा तेजस्कायिकवर्जाना सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना सम्मूर्च्छिममनुष्याणा च।

१०० योनि [उत्पत्ति स्थान] तीन प्रकार की होती है—१ शीत, २ उष्ण, ३ शीतोष्ण। तेजस्कायवर्जित एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा समूर्च्छिममनुष्य के तीनो ही प्रकार की योनिया होती हैं।

१०१ तिविहा जोणी पण्णत्ता, तजहा— सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाण समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण समुच्छिममणुस्साण य।

त्रिविधा योनि प्रज्ञप्ता, तद्यथा— सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता। एवम्—एकेन्द्रियाणा विकलेन्द्रियाणा सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना सम्मूर्च्छिममनुष्याणा च।

१०१ योनि तीन प्रकार की होती है— १ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा समूर्च्छिममनुष्यो में तीनों ही प्रकार की योनिया होती हैं।

१०२. तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा— सवुडा, वियडा, सवुडवियडा।

त्रिविधा योनि प्रज्ञप्ता, तद्यथा— सवृता, विवृता, सवृतविवृता।

१०२ योनि तीन प्रकार की होती है— १ सवृत—सकडी, २ विवृत—चौडी, ३ सवृतविवृत—कुछ सकडी तथा कुछ चौडी।

१०३ तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा— कुम्मुण्णया, संखावत्ता, वसीवत्तिया। १. कुम्मुण्णया ण जोणी उत्तमपुरिसमाऊण कुम्मुण्णयाते ण

त्रिविधा योनि प्रज्ञप्ता, तद्यथा— कूर्मोन्नता, शखावर्त्ता, वशीपत्रिका। १ कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषमातॄणाम्। कूर्मोन्नताया योनौ त्रिविधा

१०३ योनि तीन प्रकार की होती है— १ कूर्मोन्नत—कछुए के समान उन्नत, २ सखावर्त—शख के समान आवर्त [घुमाव] वाली, ३ वशीपत्रिका—

जोणिए तिविहा उत्तमपुरिसा गब्भं वक्कमति, त जहा—अरहता, चक्कवट्टी, वलदेववासुदेवा ।

उत्तमपुरुषा गर्भं अवक्रामन्ति, तद्यथा—अर्हन्त, चक्रवर्तिन, वलदेववासुदेवा ।

बास की जाली के पत्तो के आकार वाली।
१ कूर्मोन्नत योनि उत्तम पुरुषो की माता के होती है । कूर्मोन्नत योनि से तीन प्रकार के उत्तम पुरुष पैदा होते हैं—१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ वलदेव-वासुदेव ।

२ सखावत्ता ण जोणी इत्थीरयणस्स । सखावत्ताए ण जोणीए वहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमति, विउक्कमति, चयति, उववज्जति, णो चेव ण णिप्फज्जति ।

२ शखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्नस्य । शखावर्त्तायां योनौ वहवो जीवाश्च पुद्गलाश्च अवक्रामन्ति, व्युतक्रामन्ति, च्यवन्ते, उत्पद्यन्ते, नो चैव निष्पद्यन्ते ।

२ शखावर्त योनि स्त्री-रत्न की होती है। शखावर्त योनि मे अनेक जीव तथा पुद्गल उत्पन्न और नष्ट होते हैं तथा नष्ट और उत्पन्न होते हैं, किन्तु निष्पन्न नही होते।

३ वसीवत्तित्ता ण जोणी पिहज्जणस्स । वसीवत्तिताए णं जोणीए वहवे पिहज्जणा गब्भ वक्कमति ।

३ वशीपत्रिका योनि पृथग्जनस्य । वशीपत्रिकाया योनौ वहव पृथग्जना गर्भं अवक्रामन्ति ।

३ वशीपत्रिका योनि सामान्य-जनों की माता के होती है। वशीपत्रिका योनि मे अनेक सामान्य-जन पैदा होते हैं।

तणवणस्सइ-पद

१०४ तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जजीविका, असंखेज्जजीविका, अणतजीविका।

तृणवनस्पति-पदम्

त्रिविधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सख्येयजीविका, असख्येयजीविका, अनन्तजीविका ।

तृणवनस्पति-पद

१०४ तृणवनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के होते हैं—१ सख्यात जीव वाले—नाल से बधे हुए फूल, २ असख्यात जीव वाले—वृक्ष के मूल, कद, स्कध, त्वक् शाखा और प्रवाल। ३ अनत जीव वाले—फफूदी आदि।

तित्थ-पदं

१०५. जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे ।

१०६ एव—एरवएवि ।

तीर्थ-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे त्रय तीर्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मागध, वरदाम, प्रभास ।

एवम्—ऐरवतेऽपि ।

तीर्थ-पद

१०५ जम्बूद्वीप द्वीप के भारत क्षेत्र मे तीन तीर्थ हैं—
१ मागध, २ वरदाम, २ प्रभास ।

१०६ इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र मे भी तीन तीर्थ हैं—
१ मागध, २ वरदाम, ३ प्रभास ।

१०७ जबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजये तओ तित्था पण्णत्ता, त जहा—मागहे, वरदामे, पभासे ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे एकैकस्मिन् चक्रवर्त्तिविजये त्रय तीर्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मागध, वरदाम, प्रभास ।

१०७ जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे एक-एक चक्रवर्ती-विजय मे तीन-तीन तीर्थ हैं—
१ मागध, २ वरदाम, ३ प्रभास ।

१०८ एव—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धेवि, पच्चत्थिमद्धेवि। पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धेवि, पच्चत्थिमद्धेवि।

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धेऽपि, पाश्चात्यार्धेऽपि। पुष्करवरद्वीपार्धे पौरस्त्यार्धेऽपि, पाश्चात्यार्धेऽपि।

१०८ इसी प्रकार धातकीषड नामक द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे, अर्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे भी तीन-तीन तीर्थ हैं—
१ मागध, २ वरदाम, ३ प्रभास।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

१०९ जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले होत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमाया समाया तिस्र सागरोपमकोटिकोटी काल अभवत्।

१०९ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी कोटी सागरोपम था।

११० जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अस्या अवसर्पिण्या सुषमाया समाया तिस्र सागरोपमकोटिकोटी काल प्रज्ञप्त।

११० जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी-कोटी सागरोपम कहा गया है।

१११ जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले भविस्सति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषमाया समाया तिस्र सागरोपमकोटिकोटी काल भविष्यति।

१११ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी कोटी सागरोपम होगा।

११२ एवं—धायइसडे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धेवि। एव—पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धेवि—कालो भाणियव्वो।

एवम्—धातकीषण्डे पौरस्त्यार्धे पाश्चात्यार्धेऽपि। एवम्—पुष्करवरद्वीपार्धे पौरस्त्यार्धे पाश्चात्यार्धेऽपि—काल भणितव्य।

११२ इसी प्रकार धातकीषड तथा अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे भी उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के सुषमा आरे का काल तीन कोटी-कोटी सागरोपम होता है।

११३ जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइ उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था। तिण्णि पलिओवमाइ परमाउं पालइत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमसुषमाया समाया मनुजा तिस्र गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवन्। त्रीणि पल्योपमानि परमायु अपालयन्।

११३ जम्बूद्वीप द्वीप मे भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नाम के आरे मे मनुष्यो की ऊचाई तीन गाऊ की और उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

११४ एव—इमीसे ओसप्पिणीए, आगमिस्साए उस्सप्पिणीए।

एवम्—अस्या अवसर्पिण्याम्, आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्याम्।

११४ इसी प्रकार वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी मे भी ऐसा जानना चाहिए।

११५ जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउआइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालयंति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुर्वोः मनुजाः तिस्रः गव्यूतीः ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता। त्रीणि पल्योपमानि परमायुः पालयन्ति।

११५ जम्बूद्वीप द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु मे मनुष्यों की ऊंचाई तीन गाऊ की और उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की होती है।

११६ एवं—जाव पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे।

११६ इसी प्रकार धातकीषड तथा अर्धपुष्कर-वर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे जानना चाहिए।

सलागा-पुरिस-वंस-पदं

शलाका-पुरुष-वंश-पदम्

शलाका-पुरुष-वंश-पद

११७ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीए तओ वंसाओ उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः एकैकस्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यां त्रयः वंशाः उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा—अर्हद्वंशः, चक्रवर्तिवंशः, दशारवंशः।

११७ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र तथा ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी मे तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होंगे—

१ अर्हन्त-वंश, २ चक्रवर्ती-वंश, ३ दशार-वंश।

११८ एवं—जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्च-त्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे।

११८ इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होंगे।

सलागा-पुरिस-पदं

शलाका-पुरुष-पदम्

शलाका-पुरुष-पद

११९ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीए तओ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः एकैकस्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यां त्रयः उत्तमपुरुषाः उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेवाः।

११९ जम्बूद्वीप द्वीप मे भरत क्षेत्र तथा ऐरवत क्षेत्र मे प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी मे तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होंगे—

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३ बलदेव-वासुदेव।

१२० एवं—जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्च-त्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चा-त्यार्धे।

१२० इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्कर-वर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे जानना चाहिए।

आउय-पदं

आयुः-पदम्

आयु-पद

१२१. तओ अहाउ[illegible]ति, तं

त्रयः यथायुः पालयन्ति, तद्यथा—

१२१. तीन अपनी पूर्ण आयु का पालन करते हैं—

अरहता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा ।

अर्हन्त, चक्रवर्तिन, बलदेववासुदेवा ।

१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव-वासुदेव ।

१२२ तओ मज्झिममाउय पालयति, त जहा—अरहता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा ।

त्रय मध्यममायु पालयन्ति, तद्यथा—अर्हन्त, चक्रवर्तिन, बलदेववासुदेवा ।

१२२ तीन मध्यम (अपने समय की आयु से मध्यम) आयु का पालन करते हैं—
१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव-वासुदेव ।

१२३ बायरतेउकाइयाण उक्कोसेणं तिण्णि राइदियाइं ठिती पण्णत्ता ।

बादरतेजस्कायिकाना उत्कर्षेण त्रीणि रात्रिंदिवानि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

१२३ बादर तेजस्कायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की है ।

१२४. बायरवाउकाइयाण उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता ।

बादरवायुकायिकाना उत्कर्षेण त्रीणि वर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

१२४ बादर वायुकायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की है ।

जोणि-ठिइ-पद

योनि-स्थिति-पदम्

योनि-स्थिति-पद

१२५ अह भते ! सालीण वीहीण गोघूमाणा जवाण जवजवाण—एतेसिणं धण्णाण कोट्ठाउत्ताण पल्लाउत्ताण मचाउत्ताण मालाउत्ताणं ओलित्ताण लित्ताण लछियाण मुद्दियाण पिहिताण केवइय कालं जोणी सचिट्ठति ?
जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि सवच्छराइ । तेण पर जोणी पमिलायति । तेण पर जोणी पविद्धसति । तेण पर जोणी विद्धसति । तेण पर बीए अबीए भवति । तेण पर जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते ।

अथ भगवन् ! शालीना व्रीहीणा गोधूमाना यवाना यवयवाना—एतेषा धान्याना कोष्ठागुप्ताना पल्यागुप्ताना मञ्चागुप्ताना मालागुप्ताना अवलिप्ताना लिप्ताना लाञ्छिताना मुद्रिताना पिहिताना कियन्त काल योनि सतिष्ठते ?
जघन्येन अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्षेण त्रीणि सवत्सराणि । तेन पर योनि प्रम्लायति । तेन पर योनि प्रविध्वसते । तेन पर योनि विध्वसते । तेन पर बीज अबीज भवति । तेन पर योनिव्यवच्छेद प्रज्ञप्त ।

१२५ भगवन् ! शाली, व्रीहि, गेहू, जौ तथा यवयव अन्नो को कोठे, पल्य[18], मचान और माल्य[19] मे डालकर उनके द्वारदेश को ढक देने, लीप देने, चारो ओर से लीप देने, रेखाओ से लाछित कर देने तथा मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?
जघन्य अन्तर्मुहूर्त[20] तथा उत्कृष्ट तीन वर्ष । उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का विच्छेद हो जाता है ।

णरय-पद

नरक-पदम्

नरक-पद

१२६ दोच्चाए ण सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाण उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

द्वितीयाया शर्कराप्रभाया पृथिव्या नैरयिकाणा उत्कर्षेण त्रीणि सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

१२६ दूसरी नरकपृथ्वी—शर्करा प्रभा के नैरयिको की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है ।

१२७ तच्चाए ण वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

तृतीया वालुकाप्रभाया पृथिव्या जघन्येन नैरयिकाणा त्रीणि सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

१२७ तीसरी नरकपृथ्वी—वालुका प्रभा के नैरयिको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है ।

१२८ पचमाए ण धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

पञ्चम्या धूमप्रभाया पृथिव्या त्रीणि निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।

१२८ पाचवी नरकपृथ्वी—धूम प्रभा में तीन लाख नरकावास हैं ।

१२९ तिसु ण पुढवीसु णेरइयाण उसिण-वेयणा पण्णत्ता, त जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए ।

तिसृषु पृथिवीषु नैरयिकाणा उष्णवेदना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—प्रथमाया, द्वितीयाया, तृतीयायाम् ।

१२९ प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नरक भूमियो मे नैरयिको के उष्ण-वेदना होती है ।

१३० तिसु ण पुढवीसु णेरइया उसिण-वेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए ।

तिसृषु पृथिवीषु नैरयिका उष्णवेदना प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—प्रथमाया, द्वितीयाया, तृतीयायाम् ।

१३० प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नरक भूमियो में नैरयिक उष्ण-वेदना का अनुभव करते हैं ।

सम-पदं

सम-पदम्

सम-पद

१३१ तओ लोगे समा सपक्खि सपडि-दिसिं पण्णत्ता, त जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जबुद्दीवे दीवे, सव्वट्ठसिद्धे विमाणे ।

त्रीणि लोके समानि सपक्ष सप्रतिदिक् प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अप्रतिष्ठानो नरक, जम्बूद्वीप द्वीप, सर्वार्थसिद्ध विमानम् ।

१३१ लोक मे तीन समान, सपक्ष तथा सप्रति-दिश हैं[१]— १ अप्रतिष्ठा ननरकावास, २ जम्बूद्वीप द्वीप, ३ सर्वार्थसिद्ध विमान ।

१३२ तओ लोगे समा सपक्खि सपडि-दिसिं पण्णत्ता, त जहा—सीमतए ण णरए, समयक्खेत्ते, ईसीपब्भारा पुढवी ।

त्रीणि लोके समानि सपक्ष सप्रतिदिक् प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सीमन्तक नरक, समयक्षेत्र, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ।

१३२ लोक मे तीन समान, सपक्ष तथा सप्रतिदिश है—१ सीमतकनरकावास, २ समयक्षेत्र, २ ईपत्प्राग्भारापृथ्वी ।[२]

समुद्द-पदं

समुद्र-पदम्

समुद्र-पद

१३३ तओ समुद्दा पगईए उदगरसेण पण्णत्ता, त जहा—कालोदे, पुक्खरोदे, सयभुरमणे ।

त्रय समुद्रा प्रकृत्या उदकरसेन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कालोद, पुष्करोद, स्वयभूरमण ।

१३३ तीन समुद्र प्रकृति से ही उदकरस से परि-पूर्ण हैं—१ कालोदधि, २ पुष्करोदधि, ३ स्वयभूरमण ।

१३४ तओ समुद्दा वहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, त जहा—लवणे, कालोदे, सयभुरमणे ।

त्रय समुद्रा वहुमत्स्यकच्छपाकीर्णा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—लवण, कालोद, स्वयभूरमण ।

१३४ तीन समुद्र वहुत मत्स्यो व कछुओ से आकीर्ण हैं—१ लवण, २ कालोदधि, ३ स्वयभूरमण ।

उववाय-पदं

उपपात-पदम्

उपपात-पद

१३५ तओ लोगे णिस्सीला णिव्वता णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाण-पोसहोववासा कालमासे काल किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए

त्रय लोके निःशीला निर्व्रता निर्गुणा निर्मर्यादा निष्प्रत्याख्यानपोषधोपवासा कालमासे काल कृत्वा अध सप्तमाया पृथिव्या अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकतया

१३५ लोक मे ये तीन—जो दुःशील, अविरत, निर्गुण, अमर्यादित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित हैं—मृत्यु-काल मे मरकर सातवीं अप्रतिष्ठान नरकभूमि मे

अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जति, तं जहा—
रायाणो, मडलीया,
जे य महारंभा कोडुंबी।

उपपद्यन्ते, तद्यथा—
राजान, माण्डलिका,
ये च महारम्भा कौटुम्बिन।

नैरयिक के रूप मे उत्पन्न होते हैं—
१ राजा—चक्रवर्ती आदि, २ माण्डलिक राजा, ३ महारम्भ करने वाला कौटुम्बिक।

१३६ तओ लोए सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा सपच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे काल किच्चा सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा—
रायाणो परिचत्तकामभोगा,
सेणावती, पसत्थारो।

त्रय लोके सुशीला सुव्रता सगुणा समर्यादा सप्रत्याख्यानपोपधोपवासा कालमासे काल कृत्वा सर्वार्थसिद्धे विमाने देवतया उपपत्तारो भवन्ति, तद्यथा—राजान परित्यक्तकामभोगा, सेनापतय प्रशास्तार.।

१३६ लोक मे ये तीन—जो सुशील, सुव्रत, सगुण, मर्यादित, प्रत्याख्यान और पौपधोपवास सहित हैं—मृत्यु-काल मे मरकर सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवता के रूप मे उत्पन्न होते हैं—
१ कामभोगो को त्यागने वाला राजा,
२ सेनापति, ३ प्रशास्ता—मत्री।

विमाण-पदं

१३७ बंभलोग-लंतएसु ण कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—कीण्हा, णीला, लोहिया।

विमान-पदम्

ब्रह्मलोक-लातकयो कल्पयो विमानानि त्रिवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि।

विमान-पद

१३७ ब्रह्मलोक तथा लांतक देवलोक मे विमान तीन वर्णों के होते हैं—
१ कृष्ण, २ नील, ३ रक्त।

देव-पदं

१३८. आणयपाणयारणच्चुतेसु ण कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

देव-पदम्

आनतप्राणतारणाच्युतेपु कल्पेपु देवाना भवधारणीयशरीरकाणि उत्कर्पेण तिस्र रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

देव-पद

१३८ आनत, प्राणत, आरण तथा अच्युत देवलोको के देवो के भवधारणीय शरीर की ऊचाई उत्कृष्टत तीन रत्नि की है।

पण्णत्ति-पदं

१३९ तओ पण्णत्तीओ कालेण अहिज्जति, तं जहा—चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

प्रज्ञप्ति-पदम्

तिस्र प्रज्ञप्तय कालेन अधीयन्ते, तद्यथा—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूरप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।

प्रज्ञप्ति-पद

१३९ तीन प्रज्ञप्तिया यथाकाल पढी जाती हैं—
१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूर्यप्रज्ञप्ति,
३ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।[1]

बीओ उद्देसो

लोग-पदं

१४० तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—
णामलोगे, ठवणलोगे, दव्वलोगे।

१४१. तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—
णाणलोगे,दसणलोगे, चरित्तलोगे।

१४२ तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—
उड्ढलोगे, अहोलोगे, तिरियलोगे।

परिसा-पदं

१४३. चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
समिता, चडा, जाया।
अब्भितरिता समिता,
मज्झिमिता चडा, वाहिरिता जाया।

१४४ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सामाणिताण देवाण तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समिता जहेव चमरस्स।

१४५ एव—तावत्तीसगाणवि।

१४६ लोगपालाण—तुवा, तुडिया, पव्वा।

१४७ एव—अग्गमहिसीणवि।

१४८ वलिस्सवि एव चेव जाव अग्गमहिसीण।

लोक-पदम्

त्रिविध लोक प्रज्ञप्त, तद्यथा—
नामलोक, स्थापनालोक, द्रव्यलोक।

त्रिविध लोक प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानलोक, दर्शनलोक, चरित्रलोक।

त्रिविध लोक प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक।

परिषद्-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तिस्र परिषद प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समिता, चण्डा, जाता।
आभ्यन्तरिकी समिता,
माध्यमिकी चण्डा, वाहिरिकी जाता।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सामानिकाना देवाना तिस्र परिषद. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समिता यथैव चमरस्य।

एवम्—तावत्त्रिंशकानामपि।

लोकपालानाम्—तुम्वा, त्रुटिता, पर्वा।

एवम्—अग्रमहिषीणामपि।

वलिनोपि एव चैव यावत् अग्रमहिषीणाम्।

लोक-पद

१४० लोक तीन प्रकार का है—१ नामलोक, २ स्थापनालोक ३ द्रव्यलोक।

१४१ लोक तीन प्रकार का है—
१ ज्ञानलोक, २ दर्शनलोक, चरित्रलोक।

१४२ लोक तीन प्रकार का है—१ ऊर्ध्वलोक, २, अधोलोक, ३ तिर्यक्लोक।

परिषद्-पद

१४३ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
आन्तरिक परिषद् का नाम समिता है,
मध्यम परिषद् का नाम चण्डा है,
वाह्य परिषद् का नाम जाता है।

१४४ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के सामानिक देवों के तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३, जाता।

१४५ इसी प्रकार असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के तावत्त्रिंशकों के तीन परिषदें हैं—१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।

१४६ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के लोकपालो के तीन परिषदें हैं—
१. तुम्वा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१४७ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर की अग्रमहिषियो के तीन परिषदें हैं—
१ तुम्वा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१४८ वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज वली तथा उसके सामानिको और तावत्त्रिंशकों के तीन-तीन परिषदें हैं—

१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
उसके लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के भी तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१४९. धरणस्स य सामाणिय-तावत्तीसगाणं च—समिता, चडा, जाता।

धरणस्य च सामानिक-तावत्त्रिंशकाना च—समिता, चण्डा, जाता।

१४९ नागेन्द्र, नागकुमारराज धरण तथा उसके सामानिकों और तावत्त्रिंशाको के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।

१५०. लोगपालाण अग्गमहिसीण—ईसा, तुडिया, दढरहा।

लोकपालाना अग्रमहिषीणाम्—ईषा, त्रुटिता, दृढरथा।

१५० नागेन्द्र, नागकुमारराज धरण के लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के भी तीन-तीन परिषदें हैं—
१ ईषा, २ त्रुटिता, ३ दृढरथा।

१५१. जहा धरणस्स तहा सेसाण भवणवासीणं।

यथा धरणस्य तथा शेषाणा भवनवासिनाम्।

१५१ शेष भवनवासी देवो का क्रम धरण की तरह ही है।

१५२. कालस्स ण पिसाइदस्स पिसायरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—ईसा, तुडिया, दढरहा।

कालस्य पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य तिस्र परिषद प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ईषा, त्रुटिता, दृढरथा।

१५२ पिशाचेन्द्र, पिशाचराज काल के तीन परिषदें हैं—
१ ईषा, २ त्रुटिता, ३ दृढरथा।

१५३. एव—सामाणिय-अग्गमहिसीण।

एवम्—सामानिकाऽग्रमहिषीणाम्।

१५३ इसी प्रकार उनके सामानिको और अग्रमहिषियो के भी तीन तीन परिषदें हैं—
१ ईषा, २ त्रुटिता, ३ दृढरथा।

१५४ एव—जाव गीयरतिगीयजसाणं।

एवम्—यावत् गीतरतिगीतयशसो।

१५४ इसी प्रकार गधर्वेन्द्र गीतरति और गीतयशा तक के सभी वानमन्तर देवेन्द्रो के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ ईषा, २ त्रुटिता, ३ दृढरथा।

१५५ चंदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—तुंबा, तुडिया, पव्वा।

चन्द्रस्य ज्योतिरिन्द्रस्य ज्योतीराजस्य तिस्र परिषद प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तुम्बा, त्रुटिता, पर्वा।

१५५ ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज चन्द्र के तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१५६ एव—सामाणिय-अग्गमहिसीण।

एवम्—सामानिकाऽग्रमहिषीणाम्।

१५६ इसी प्रकार उसके सामानिकों तथा अग्रमहिषियो के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१५७ एव—सूरस्सवि।

एवम्—सूरस्यापि।

१५७ ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज सूर्य के तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।
इसी प्रकार उसके सामानिको तथा अग्र-

महिषियो के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१५८ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता, चंडा, जाया।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तिस्रः परिषदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समिता, चण्डा, जाता।

१५८ देवेन्द्र, देवराज शक्र के तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।

१५९ एवं—जहा चमरस्स जाव अग्गमहिसीणं।

एवम्—यथा चमरस्य यावत् अग्रमहिषीणाम्।

१५९ इसी प्रकार देवेन्द्र, देवराज शक्र के सामानिको तथा तावत्त्रिंशको के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
उसके लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्वा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१६०. एवं—जाव अच्चुतस्स लोगपालाणं।

एवम्—यावत् अच्युतस्य लोकपालानाम्।

१६० इसी प्रकार देवेन्द्र, देवराज ईशान के तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
उसके सामानिको तथा तावत्त्रिंशको के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
उसके लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्वा, २. त्रुटिता, ३ पर्वा।
इसी प्रकार सनत्कुमार से लेकर अच्युत तक के देवेन्द्रो, सामानिको तथा तावत्त्रिंशको के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २ चण्डा, ३ जाता।
उनके लोकपालो के तीन-तीन परिषदें हैं—१ तुम्वा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

जाम-पदं

याम-पदम्

याम-पद

१६१. तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

त्रय यामा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथम याम, मध्यम याम, पश्चिम याम।

१६१- याम[77] तीन हैं—१ प्रथम याम, २ मध्यम याम, ३ पश्चिम याम।

१६२ तिहिं जामेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—

त्रिभि यामैः आत्मा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणतया, तद्यथा—

१७२ तीनो ही यामो मे आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण लाभ करता है—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१ प्रथम याम में, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१६३ तिहिं जामेहिं आया केवल बोधिं बुज्झेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवला बोधि बुध्येत, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६३ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध बोधि-लाभ करता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम में, ३ पश्चिम याम मे ।

१६४. तिहिं जामेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत् तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६४ तीनो ही यामो में आत्मा मुण्ड होकर अगार से विशुद्ध अनगारत्व मे प्रव्रजित होता है—१. प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१६५ तिहिं जामेहिं आया केवलं बंभचेर-वासमावसेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल ब्रह्मचर्य-वासमावसेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६५ तीनो ही यामों मे आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्य-वास करता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१६६ तिहिं जामेहिं आया केवलेण सजमेणं संजमेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवलेन सयमेन सयच्छेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६६ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध सयम से सयत होता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम में, ३ पश्चिम याम मे ।

१६७ तिहिं जामेहिं आया केवलेण सवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवलेन सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६७ तीनो ही यामों मे आत्मा विशुद्ध सवर से सवृत होता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१६८ तिहिं जामेहिं आया केवलमाभिणि-बोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवलमाभिनि-बोधिकज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६८ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध आभि-निबोधिकज्ञान को प्राप्त करता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१६९ तिहिं जामेहिं आया केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१६९ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे ।

१७० तिहिं जामेहिं आया केवल ओहि-णाण उप्पाडेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१७० तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध अवधि-ज्ञान को प्राप्त करता है—१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे, ३ पश्चिम याम मे ।

१७१. तिहिं जामेहिं आया केवल मण-
पज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
पढमे जामे, मज्झिमे जामे,
पच्छिमे जामे ।

१७२ तिहिं जामेहिं आया केवल केवल-
णाण उप्पाडेज्जा, त जहा—
पढमे जामे, मज्झिमे जामे,
पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल मन पर्यवज्ञान
उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे,
मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

त्रिभि यामै आत्मा केवल केवलज्ञान
उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथम यामे,
मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१७१ तीनो ही यामों मे आत्मा विशुद्ध
मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है—
१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे,
३ पश्चिम याम मे ।

१७२ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध केवल-
ज्ञान को प्राप्त करता है—
१ प्रथम याम मे, २ मध्यम याम मे,
३ पश्चिम याम मे ।

वय-पद

१७३ तओ वया पण्णत्ता, त जहा—
पढमे वए, मज्झिमे वए,
पच्छिमे वए ।

१७४ तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्त
धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—
पढमे वए, मज्झिमे वए,
पच्छिमे वए ।

१७५ •तिहिं वएहिं आया—
केवल वोधि वुज्झेज्जा,
केवल मुडे भवित्ता अगाराओ
अणगारिय पव्वइज्जा,
केवल वभचेरवासमावसेज्जा,
केवलेणं सजमेण संजमेज्जा,
केवलेणं संवरेण सवरेज्जा,
केवलमाभिणिवोहियणाणं
उप्पाडेज्जा,
केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा,
केवल ओहिणाणं उप्पाडेज्जा,
केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा,
केवल केवलणाणं उप्पाडेज्जा,
तं जहा—पढमे वए,
मज्झिमे वए, पच्छिमे वए° ।

वय-पदम्

त्रीणि वयासि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रथम वय , मध्यम वय , पश्चिम वय ।

त्रिभि वयोभि आत्मा केवलिप्रज्ञप्त
धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
प्रथमे वयसि, मध्यमे वयसि, पश्चिमे
वयसि ।

त्रिभि वयोभि आत्मा—
केवला वोधि वुध्येत,
केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता
प्रव्रजेत्,
केवल ब्रह्मचर्यवासमावसेत्,
केवलेन सयमेन सयच्छेत्,
केवलेन सवरेण सवृणुयात्,
केवलमाभिनिवोधिकज्ञान उत्पादयेत्,
केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्,
केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत्,
केवल मन पर्यवज्ञान उत्पादयेत्,
केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्,
तद्यथा—प्रथमे वयसि, मध्यमे वयसि,
पश्चिमे वयसि ।

वय-पद

१७३ वय तीन हैं—१ प्रथम वय,
२ मध्यम वय, ३ पश्चिम वय ।

१७४ तीनो ही वयो मे आत्मा केवली-प्रज्ञप्त
धर्म का श्रवण-लाभ करता है—
१ प्रथम वय मे, २ मध्यम वय मे,
३ पश्चिम वय मे ।

१७५ तीनो ही वयो मे आत्मा विशुद्ध-वोधि का
अनुभव करता है—
मुण्ड होकर घर छोडकर सम्पूर्ण अनगा-
रिता—साधुपन को पाता है ।
सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है
सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत होता है
सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत होता है
विशुद्ध आभिनिवोधिकज्ञान को प्राप्त
करता है
विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—
१ प्रथम वय मे, २ मध्यम वय मे,
३ पश्चिम वय मे ।

वोधि-पद

१७६ तिविधा वोधी पण्णत्ता, तं जहा—
णाणवोधी, दसणवोधी,
चरित्तवोधी ।

१७७ तिविहा बुद्धा पण्णत्ता, त जहा—
णाणवुद्धा, दसणवुद्धा, चरित्तवुद्धा ।

वोधि-पदम्

त्रिविधा वोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ज्ञानवोधि, दर्शनवोधि, चरित्रवोधि ।

त्रिविधा वुद्धा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ज्ञानवुद्धा, दर्शनवुद्धा, चरित्रवुद्धा ।

बोधि-पद

१७६ वोधि[११] तीन प्रकार की है—
१ ज्ञान वोधि, २ दर्शन वोधि,
३ चरित्र वोधि ।

१७७ वुद्ध तीन प्रकार के होते है—
१ ज्ञान वुद्ध, २ दर्शन वुद्ध,
३ चरित्र वुद्ध ।

मोह-पदं

१७८. *तिविहे मोहे पण्णत्ते, त जहा—
णाणमोहे, दसणमोहे, चरित्तमोहे ।

१७९ तिविहा मूढा पण्णत्ता, त जहा—
णाणमूढा, दमणमूढा,
चरित्तमूढा ।°

मोह-पदम्

त्रिविध मोह प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानमोह, दर्शनमोह, चरित्रमोह ।

त्रिविधा मूढा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ज्ञानमूढा., दर्शनमूढा, चरित्रमूटा. ।

मोह-पद

१७८ मोह तीन प्रकार का है—१ ज्ञान मोह,
३ दर्शन मोह, ३ चरित्र मोह ।[१०]

१७९ मूढ तीन प्रकार के होते हैं—१ ज्ञान मूढ,
२ दर्शन मूढ, ३ चरित्र मूढ ।

पव्वज्जा-पदं

१८०. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त
जहा—इहलोगपडिवद्धा,
परलोगपडिवद्धा, दुहतो [लोग?]
पडिवद्धा ।

प्रव्रज्या-पदम्

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकप्रतिवद्धा, परलोकप्रतिवद्धा,
द्वय [लोक ?] प्रतिवद्धा ।

प्रव्रज्या-पद

१८० प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है—
१ इहलोक प्रतिवद्धा—ऐहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए की जाने वाली,
२ परलोक प्रतिवद्धा—पारलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए की जाने वाली,
३ उभयत प्रतिवद्धा—दोनो के सुखों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली ।

१८१ तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—
पुरतोपडिवद्धा, मग्गतोपडिवद्धा,
दुहओपडिवद्धा ।

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुरत प्रतिवद्धा, 'मग्गतो' [पृष्ठत]
प्रतिवद्धा, द्वयप्रतिवद्धा ।

१८१ प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है—
१ पुरत प्रतिवद्धा, २ पृष्ठत प्रतिबद्धा,
३ उभयत प्रतिवद्धा ।

१८२. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त
जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता,
वुआवइत्ता ।

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तोदयित्वा, प्लावयित्वा, वाचयित्वा ।

१८२ प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है—
१ तोदयित्वा—कष्ट देकर दी जाने वाली
२ प्लावयित्वा[१८]—दूसरे स्थान मे ले जाकर दी जाने वाली, ३ वाचयित्वा—वातचीत करके दी जाने वाली ।

१८३ तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त
जहा—ओवातपव्वज्जा,

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अवपातप्रव्रज्या,

१८३ प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है—
१ अवपात प्रव्रज्या—गुरु सेवा से प्राप्त,

अक्खातपव्वज्जा, संगारपव्वज्जा। आख्यातप्रव्रज्या, सङ्गरप्रव्रज्या।

२. आख्यात प्रव्रज्या[१७]—उपदेश से प्राप्त, ३ सगर प्रव्रज्या—परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होकर ली जाने वाली।[१८]

णियठ-पदं / निर्ग्रन्थ-पदम् / निर्ग्रन्थ-पद

१८४ तओ णियठा णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, त जहा—पुलाए, णियठे, सिणाए।

त्रय निर्ग्रन्था नोसञ्ज्ञोपयुक्ता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पुलाक, निर्ग्रन्थ, स्नातक।

१८४ तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ नोसज्ञा से उपयुक्त होते हैं—आहार आदि की चिन्ता से मुक्त होते हैं[१९]—
१ पुलाक—पुलाक लब्धि उपजीवी,
२ निग्रन्थ—मोहनीय कर्म से मुक्त,
३ स्नातक—घात्य कर्मों से मुक्त।

१८५ तओ णियंठा सण्ण-णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, तं जहा—वउसे, पडिसेवणाकुसीले, कसायकुसीले।

त्रय निर्ग्रन्था सज्ञा-नोसञ्ज्ञोपयुक्ता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—वकुश, प्रतिषेवणाकुशील, कषायकुशील।

१८५ तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ संज्ञा और नोसज्ञा दोनो से उपयुक्त होते हैं—आहार आदि की चिन्ता से युक्त भी होते हैं और मुक्त भी होते हैं—१ वकुश—चरित्र में धब्बे लगाने वाला, २ प्रतिषेवणाकुशील—उत्तर गुणो मे दोष लगाने वाला, ३ कषाय-कुशील—कषाय से दूषित चरित्र वाला।

सेहभूमी-पदं / शैक्षभूमी-पदम् / शैक्षभूमी-पद

१८६ तओ सेहभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। उक्कोसा छम्मासा, मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्त राइंदिया।

तिस्र शैक्षभूमय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या। उत्कर्षा षड्मासा, मध्यमा चतुर्मासा, जघन्या सप्तरात्रिदिवम्।

१८६ तीन शैक्ष-भूमिया[२०] हैं—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।
उत्कृष्ट छह महीनो की, मध्यम चार महीनो की, जघन्य सात दिन-रात की।

थेरभूमी-पद / स्थविरभूमी-पदम् / स्थविरभूमी-पद

१८७ तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—जातिथेरे, सुयथेरे, परियायथेरे। सट्ठिवासजाए समणे णिग्गथे जातिथेरे, ठाणसमवायधरे ण समणे णिग्गथे सुयथेरे, वीसवासपरियाए ण समणे णिग्गथे परियायथेरे।

तिस्र स्थविरभूमय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जातिस्थविर, श्रुतस्थविर, पर्यायस्थविर। षष्ठिवर्षजात श्रमण निर्ग्रन्थ जातिस्थविर, स्थानसमवायधर श्रमण निर्ग्रन्थ श्रुतस्थविर, विंशतिवर्षपर्याय श्रमण निर्ग्रन्थ पर्यायस्थविर।

१८७ तीन स्थविर-भूमिया[२१] हैं—
१ जाति-स्थविर, २ श्रुत-स्थविर,
३ पर्याय-स्थविर।
साठ वर्षों का होने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ जाति-स्थविर होता है।
स्थान और समवायाग का धारक श्रमण-निर्ग्रन्थ श्रुत-स्थविर होता है।
बीस वर्ष मे साधुत्व पालने वाला श्रमण-निग्रन्थ पर्याय-स्थविर होता है।

गता-अगंता-पद

गत्वा-अगत्वा-पदम्

गत्वा-अगत्वा-पद

१८८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुमणे, दुम्मणे, णोसुमणे-णोदुम्मणे।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सुमना, दुर्मना, नोसुमना-नोदुर्मना।

१८८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ सुमनस्क, २ दुर्मनस्क,
३ नोसुमनस्क-नोदुर्मनस्क।[54]

१८९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंता णामेगे सुमणे भवति, गंता णामेगे दुम्मणे भवति, गंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—गत्वा नामैकः सुमना भवति, गत्वा नामैकः दुर्मना भवति, गत्वा नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

१८९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष जाने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जामीतेगे सुमणे भवति, जामीतेगे दुम्मणे भवति, जामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—यामीत्येकः सुमना भवति, यामीत्येकः दुर्मना भवति, यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

१९० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष जाता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९१ °तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, जाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति°।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
यास्यामीत्येकः सुमना भवति, यास्यामीत्येकः दुर्मना भवति, यास्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

१९१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अगंता णामेगे सुमणे भवति, अगंता णामेगे दुम्मणे भवति, अगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अगत्वा नामैकः सुमना भवति, अगत्वा नामैकः दुर्मना भवति, अगत्वा नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

१९२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न जाने पर सुमनस्क होते हैं,
२ कुछ पुरुष न जाने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३ कुछ पुरुष न जाने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९३ तओ पुरिसजाता पण्णत्ता तं जहा—ण जामि एगे सुमणे भवति, ण जामि एगे दुम्मणे भवति, ण जामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न याम्येकः सुमना भवति, न याम्येकः दुर्मना भवति, न याम्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

१९३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न जाता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न जाता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न जाता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवति,
ण जाइस्सामि एगे दुम्मणे भवति,
ण जाइस्सामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,—तद्यथा—
न यास्याम्येक सुमना भवति,
न यास्याम्येक दुर्मना भवति,
न यास्याम्येक नोसुमना -नोदुर्मना. भवति ।

१९४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नहीं जाऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नही जाऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष नही जाऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

आगता-अणागता-पद

आगत्य-अनागत्य-पदम्

आगत्य-अनागत्य-पद

१९५ •तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आगता णामेगे सुमणे भवति,
आगता णामेगे दुम्मणे भवति,
आगता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—आगत्य नामैक सुमना भवति,
आगत्य नामैक दुर्मना' भवति,
आगत्य नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

१९५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष आने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष आने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

१९६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—एमीतेगे सुमणे भवति,
एमीतेगे दुम्मणे भवति,
एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—एमीत्येक सुमना भवति,
एमीत्येक दुर्मना भवति,
एमीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

१९६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष आता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष आता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं, और न दुर्मनस्क होते हैं ।

१९७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—एस्सामीतेगे सुमणे भवति,
एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति° ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—एष्यामीत्येक मुमना भवति,
एष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
एष्यामीत्येक नोमुमना -नोदुर्मना भवति ।

१९७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष आऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष आऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

१९८ •तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अणागता णामेगे सुमणे भवति,
अणागता णामेगे दुम्मणे भवति,
अणागता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—
अनागत्य नामैक सुमना' भवति,
अनागत्य नामैक दुर्मना भवति,
अनागत्य नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

१९८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न आने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न आने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न आने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

१९९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण एमीतेगे सुमणे भवति,
ण एमीतेगे दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—नैमीत्येक सुगना भवति,
नैमीत्येक दुर्मना भवति,

१९९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न आता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न आता हू

ण एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

नैमीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न आता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण एस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नैष्यामीत्येक सुमना भवति,
नैष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
नैष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न आऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न आऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न आऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

चिट्ठित्ता-अचिट्ठित्ता-पद

स्थित्वा-अस्थित्वा-पदम्

स्थित्वा-अस्थित्वा-पद

२०१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
चिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति,
चिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्थित्वा नामैक सुमना भवति,
स्थित्वा नामैक दुर्मना भवति,
स्थित्वा नामैक नो सुमना-नोदुर्मना भवति।

२०१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ठहरने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष ठहरने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष ठहरने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति,
चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तिष्ठामीत्येक सुमना भवति,
तिष्ठामीत्येक दुर्मना भवति,
तिष्ठामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ठहरता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष ठहरता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष ठहरता हू, इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्थास्यामीत्येक सुमना भवति,
स्थास्यामीत्येक दुर्मना भवति,
स्थास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ठहरूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष ठहरूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष ठहरूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अचिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अचिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अचिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अस्थित्वा नामैक सुमना भवति,
अस्थित्वा नामैक दुर्मना भवति,
अस्थित्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न ठहरने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न ठहरने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न ठहरने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति,
ण चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण चिट्ठामीतेगे णो सुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न तिष्ठामीत्येकः सुमना भवति,
न तिष्ठामीत्येकः दुर्मना भवति,
न तिष्ठामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न ठहरता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न ठहरता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न ठहरता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्थास्यामीत्येकः सुमना भवति,
न स्थास्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
न स्थास्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

णिसिइत्ता-अणिसिइत्ता-पद

निषद्य-अनिषद्य-पदम्

निषद्य-अनिषद्य-पद

२०७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
णिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
णिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निषद्य नामैकः सुमना भवति,
निषद्य नामैकः दुर्मना भवति,
निषद्य नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बैठने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बैठने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बैठने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिसीदामीतेगे सुमणे भवति,
णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति,
णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—निषीदामीत्येकः सुमना भवति,
निषीदामीत्येकः दुर्मना भवति,
निषीदामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बैठता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बैठता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बैठता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निषत्स्यामीत्येकः सुमना भवति,
निषत्स्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
निषत्स्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२०९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अणिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनिषद्य नामैकः सुमना भवति,

२१० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न बैठने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न बैठने पर दुर्मनस्क

अणिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अणिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

अनिषद्य नामैक दुर्मना भवति,
अनिषद्य नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

होते हैं, ३ कुछ पुरुप न वैठने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२११. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण णिसीदामीतेगे सुमणे भवति,
ण णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न निपीदामीत्येक सुमना भवति,
न निपीदामीत्येक दुर्मना भवति,
न निपीदामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२११ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप न वैठता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप न वैठता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप न वैठता हू इसलिए न सुमनम्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न निपत्स्यामीत्येक सुमना भवति,
न निषत्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न निषत्स्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२१२ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप नही वैठूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप नही वैठूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप नहीं वैठूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

हंता-अहंता-पदम्

हत्वा-अहत्वा-पदम्

हत्वा-अहत्वा-पद

२१३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हंता णामेगे सुमणे भवति,
हंता णामेगे दुम्मणे भवति,
हंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—हत्वा नामैक सुमना भवति,
हत्वा नामैक दुर्मना भवति,
हत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२१३ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप मारने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप मारने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप मारने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हणामीतेगे सुमणे भवति,
हणामीतेगे दुम्मणे भवति,
हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हन्मीत्येक सुमना भवति,
हन्मीत्येक दुर्मना भवति,
हन्मीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२१४ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप मारता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप मारता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप मारता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हनिष्यामीत्येक सुमना भवति,
हनिष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
हनिष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२१५ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप मारूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप मारूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप मारूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अहता णामेगे सुमणे भवति, अहता णामेगे दुम्मणे भवति, अहता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२१७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण हणामीतेगे सुमणे भवति,
ण हणामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२१८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अहत्वा नामैक सुमना भवति, अहत्वा नामैक दुर्मना भवति, अहत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न हन्मीत्येक सुमना भवति,
न हन्मीत्येक दुर्मना भवति,
न हन्मीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न हनिष्यामीत्येक मुमना भवति,
न हनिष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न हनिष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२१६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न मारने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न मारने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न मारने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१७ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप न मारता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप न मारता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप न मारता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१८ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप न मारूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप न मारूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप न मारूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

छिंदित्ता-अछिंदित्ता-पद

२१९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
छिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति,
छिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
छिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२२०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
छिंदामीतेगे सुमणे भवति,
छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति,
छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२२१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,

छित्त्वा-अछित्त्वा-पदम्

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
छित्त्वा नामैक सुमना भवति,
छित्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
छित्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
छिनद्मीत्येक सुमना भवति,
छिनद्मीत्येक दुर्मना भवति,
छिनद्मीत्येक नोमुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
छेत्स्यामीत्येक सुमना भवति,

छित्त्वा-अछित्त्वा-पद

२१९ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप छेदन करने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप छेदन करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२० पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप छेदन करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप छेदन करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप छेदन करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२१ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप छेदन करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप छेदन करूगा

छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

छेत्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,
छेत्स्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अछिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अछिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अछिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अछित्त्वा नामैक सुमना भवति,
अछित्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
अछित्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२२२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष छेदन न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष छेदन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण छिंदामीतेगे सुमणे भवति,
ण छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न छिनद्मीत्येक सुमना भवति,
न छिनद्मीत्येक दुर्मना भवति,
न छिनद्मीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२२३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न छेत्स्यामीत्येक सुमना भवति,
न छेत्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न छेत्स्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२२४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष छेदन नहीं करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष छेदन नहीं करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन नहीं करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

बूइत्ता-अबूइत्ता-पद

उक्त्वा-अनुक्त्वा-पदम्

उक्त्वा-अनुक्त्वा-पद

२२५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बूइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
बूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
बूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उक्त्वा नामैक सुमना भवति,
उक्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
उक्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२२५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बोलने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बोलने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बोलने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बेमीतेगे सुमणे भवति,
बेमीतेगे दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ब्रवीमीत्येक सुमना भवति,
ब्रवीमीत्येक दुर्मना भवति,

२२६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बोलता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बोलता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बोलता हू

बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति,

ब्रवीमीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वोच्छामीतेगे सुमणे भवति,
वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति,
वोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
वक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
वक्ष्यामीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२२७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अबूइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
अबूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अबूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णो दुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुक्त्वा नामैक सुमना भवति,
अनुक्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
अनुक्त्वा नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२२८ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष न बोलने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न बोलने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न बोलने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण बेमीतेगे सुमणे भवति,
ण बेमीतेगे दुम्मणे भवति,
ण बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न ब्रवीमीत्येक सुमना भवति,
न ब्रवीमीत्येक दुर्मना भवति,
न ब्रवीमीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२२९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बोलता नहीं हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बोलता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष बोलता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण वोच्छामीतेगे सुमणे भवति,
ण वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण वोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न वक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
न वक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न वक्ष्यामीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२३० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नही बोलूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नही बोलूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही बोलूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

भासित्ता-अभासित्ता पदम्

भाषित्वा-अभाषित्वा-पदम्

भाषित्वा-अभाषित्वा-पद

२३१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
भासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
भासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
भासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणिपुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,तद्यथा—
भाषित्वा नामैक सुमना भवति,
भाषित्वा नामैक दुर्मना भवति,
भाषित्वा नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२३१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सभाषण करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष सभाषण करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष सभाषण करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भासामीतेगे सुमणे भवति,
भासामीतेगे दुम्मणे भवति,
भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भापे इत्येक सुमना भवति,
भापे इत्येक दुर्मना भवति,
भापे इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२३२ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सभापण करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप सभापण करता हू, इसलिए दुर्मनस्क होते हैं ३ कुछ पुरुप सभापण करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भापिप्ये इत्येक सुमना भवति,
भापिप्ये इत्येक दुर्मना भवति,
भापिप्ये इत्येक. नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२३३ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सभापण करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप सभापण करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप सभापण करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अभासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अभासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अभासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभापित्वा नामैक सुमना भवति,
अभापित्वा नामैक दुर्मना भवति,
अभापित्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२३४ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सभापण न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप सभापण न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप सभापण न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
ण भासामीतेगे सुमणे भवति,
ण भासामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भापे इत्येक सुमना भवति,
न भापे इत्येक दुर्मना भवति,
न भापे इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२३५ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सभापण नहीं करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप सभापण नही करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप सभापण नही करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भापिप्ये इत्येक सुमना भवति,
न भापिप्ये इत्येक दुर्मना भवति,
न भापिप्ये इत्येक नोसुमना-नो दुर्मना भवति।

२३६. पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सभापण नहीं करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप सभापण नहीं करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप सभापण नहीं करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

दच्चा-अदच्चा-पद

२३७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दच्चा णामेगे सुमणे भवति, दच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, दच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२३८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— देमीतेगे सुमणे भवति, देमीतेगे दुम्मणे भवति, देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२३९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दासामीतेगे सुमणे भवति, दासामीतेगे दुम्मणे भवति, दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अदच्चा णामेगे सुमणे भवति, अदच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, अदच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण देमीतेगे सुमणे भवति, ण देमीतेगे दुम्मणे भवति, ण देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण दासामीतेगे सुमणे भवति,

दत्त्वा-अदत्त्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—दत्त्वा नामैक सुमना भवति, दत्त्वा नामैक दुर्मना भवति, दत्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— ददामीत्येक सुमना भवति, ददामीत्येक दुर्मना भवति, ददामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दास्यामीत्येक सुमना भवति, दास्यामीत्येक दुर्मना भवति, दास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— अदत्त्वा नामैक सुमना भवति, अदत्त्वा नामैक दुर्मना भवति, अदत्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा— न ददामीत्येक सुमना भवति, न ददामीत्येक दुर्मना भवति, न ददामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— न दास्यामीत्येक सुमना भवति,

दत्त्वा-अदत्त्वा-पद

२३७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष देने के बाद सुमनस्क होते हैं २ कुछ पुरुष देने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष देने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष देता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष देता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं ३ कुछ पुरुष देता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष देऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष देऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष देऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष न देने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न देने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न देने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष देता नही हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष देता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष देता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष नहीं देऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नही

ण दासामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे
भवति ।

न दास्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न दास्यामीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना
भवति ।

देऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप नही देऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

भुंजित्ता-अभुंजित्ता-पदम्

भुक्त्वा-अभुक्त्वा-पदम्

भुक्त्वा-अभुक्त्वा-पद

२४३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति,
भुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
भुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भुक्त्वा नामैक सुमना भवति,
भुक्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
भुक्त्वा नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

२४३ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप भोजन करने के वाद सुमनस्क होते हैं, कुछ पुरुप भोजन करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप भोजन करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा ।
भुंजामीतेगे सुमणे भवति,
भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति,
भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भुनज्मीत्येक सुमना भवति,
भुनज्मीत्येक दुर्मना भवति,
भुनज्मीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

२४४ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप भोजन करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप भोजन करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप भोजन करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भोक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
भोक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
भोक्ष्यामीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

२४५ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप भोजन करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप भोजन करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप भोजन करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अभुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अभुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अभुंजित्ता णामेगे, णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभुक्त्वा नामैक सुमना भवति,
अभुक्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
अभुक्त्वा नामैक नोसुमना -नोदुर्मना भवति ।

२४६ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप भोजन न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप भोजन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप भोजन न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण भुंजामीतेगे सुमणे भवति,
ण भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे

त्रीणि पुरुपजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भुनज्मीत्येक सुमना भवति,
न भुनज्मीत्येक दुर्मना भवति,
न भुनज्मीत्येक नोसुमना -नोदुर्मना

२४७ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप भोजन नही करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप भोजन नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप भोजन नहीं करता

भवति।

भवति।

हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भोक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
न भोक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न भोक्ष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२४८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष भोजन नहीं करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष भोजन नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष भोजन नही करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

लभित्ता-अलभित्ता-पद

लब्ध्वा-अलब्ध्वा-पदम्

लब्ध्वा-अलब्ध्वा-पद

२४९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
लभित्ता णामेगे सुमणे भवति,
लभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
लभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लब्ध्वा नामैक सुमना भवति,
लब्ध्वा नामैक दुर्मना भवति,
लब्ध्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२४९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त करने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
लभामीतेगे सुमणे भवति,
लभामीतेगे दुम्मणे भवति,
लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लभे इत्येक सुमना भवति,
लभे इत्येक दुर्मना भवति,
लभे इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२५० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२५१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लप्स्ये इत्येक सुमना भवति,
लप्स्ये इत्येक दुर्मना भवति,
लप्स्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना: भवति।

२५१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अलभित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अलभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अलभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अलब्ध्वा नामैक सुमना भवति,
अलब्ध्वा नामैक दुर्मना भवति,
अलब्ध्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२५२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण लभामीतेगे सुमणे भवति,
ण लभामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न लभे इत्येक सुमना भवति,
न लभे इत्येक दुर्मना भवति,
न लभे इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति,

२५३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त नही करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न लप्स्ये इत्येक सुमना भवति,
न लप्स्ये इत्येक दुर्मना भवति,
न लप्स्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२५४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्राप्त नही करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त नही करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त नही करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

पिबित्ता-अपिबित्ता-पद

पीत्वा-अपीत्वा-पदम्

पीत्वा-अपीत्वा-पद

२५५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पिबित्ता णामेगे सुमणे भवति,
पिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
पिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पीत्वा नामैक सुमना भवति,
पीत्वा नामैक दुर्मना भवति,
पीत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२५५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पीने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पीने के वाद दुर्मनस्क होते हैं ३ कुछ पुरुष पीने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पिवामीतेगे सुमणे भवति,
पिवामीतेगे दुम्मणे भवति,
पिवामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पिवामीत्येक सुमना भवति,
पिवामीत्येक दुर्मना भवति,
पिवामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२५६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पीता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पीता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पीता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पास्यामीत्येक सुमना भवति,
पास्यामीत्येक दुर्मना भवति,
पास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना. भवति ।

२५७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पीऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पीऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पीऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

२५८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष न पीने पर सुमनस्क होते हैं,

अपिबित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अपिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अपिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

अपीत्वा नामैक सुमना भवति,
अपीत्वा नामैक दुर्मना भवति,
अपीत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२ कुछ पुरुष न पीने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष न पीने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण पिवामीतेगे सुमणे भवति,
ण पिवामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पिवामीत्येक सुमना भवति,
न पिवामीत्येक दुर्मना भवति,
न पिवामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२५९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नही पीता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नही पीता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष नही पीता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण पिविस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण पिविस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पिविस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पास्यामीत्येक सुमना भवति,
न पास्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न पास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नही पीऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नहीं पीऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष नही पीऊगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

सुइत्ता-असुइत्ता-पद

सुप्त्वा-असुप्त्वा-पदम्

सुप्त्वा-असुप्त्वा-पद

२६१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सुप्त्वा नामैक सुमना भवति,
सुप्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
सुप्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सोने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष सोने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष सोने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुआमीतेगे सुमणे भवति,
सुआमीतेगे दुम्मणे भवति,
सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वपिमीत्येक सुमना भवति,
स्वपिमीत्येक दुर्मना भवति,
स्वपिमीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष सोता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सुइस्सामीतेगे, दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वप्स्यामीत्येक सुमना भवति,
स्वप्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,

२६३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सोऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष सोऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष सोऊगा

सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

स्वप्स्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
असुइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
असुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
असुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असुप्त्वा नामैक सुमना भवति,
असुप्त्वा नामैक दुर्मना भवति,
असुप्त्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न सोने पर सुमनस्क होते हैं,
२ कुछ पुरुष न सोने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३ कुछ पुरुष न सोने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२६५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण सुआमीतेगे सुमणे भवति,
ण सुआमीतेगे दुम्मणे भवति,
ण सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्वपिमीत्येक सुमना भवति,
न स्वपिमीत्येक दुर्मना भवति,
न स्वपिमीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सोता नही हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष सोता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष सोता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
ण सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्वप्स्यामीत्येक सुमना भवति,
न स्वप्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न स्वप्स्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नही सोऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष नही सोऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष नही सोऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

जुज्झित्ता-अजुज्झित्ता-पद

युद्ध्वा-अयुद्ध्वा-पदम्

युद्ध्वा-अयुद्ध्वा-पद

२६७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति,
जुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युद्ध्वा नामैक सुमना भवति,
युद्ध्वा नामैक दुर्मना भवति,
युद्ध्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध करने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष युद्ध करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
जुज्झामीतेगे सुमणे भवति,
जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युद्ध्ये इत्येक सुमना भवति,
युद्ध्ये इत्येक दुर्मना भवति,
युद्ध्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष युद्ध करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२७० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अजुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अजुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अजुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२७१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण जुज्झामीतेगे सुमणे भवति,
ण जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२७२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
योत्स्ये इत्येक सुमना भवति,
योत्स्ये इत्येक दुर्मना भवति,
योत्स्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अयुद्ध्वा नामैक सुमना भवति,
अयुद्ध्वा नामैक दुर्मना भवति,
अयुद्ध्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न युद्ध्ये इत्येक सुमना भवति,
न युद्ध्ये इत्येक दुर्मना भवति,
न युद्ध्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न योत्स्ये इत्येक सुमना भवति,
न योत्स्ये इत्येक दुर्मना भवति,
न योत्स्ये इत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष युद्ध न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युद्ध नही करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष युद्ध नहीं करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

जइत्ता-अजइत्ता-पद

२७३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—जइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
जइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
जइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२७४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जिणामीतेगे सुमणे भवति,

जित्वा-अजित्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जित्वा नामैक सुमना भवति,
जित्वा नामैक दुर्मना भवति,
जित्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जयामीत्येक सुमना भवति,

जित्वा-अजित्वा-पद

२७३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जीतने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष जीतने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष जीतने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जीतता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष जीतता हू इसलिए

जिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे
भवति ।

जयामीत्येक दुर्मना भवति,
जयामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना
भवति ।

दुर्मनम्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप जीतता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनम्क होते हैं।

२७५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जेप्यामीत्येक सुमना भवति,
जेप्यामीत्येक दुर्मना भवति,
जेप्यामीत्येक नोमुमना-नोदुर्मना भवति ।

२७५ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं।
१ कुछ पुरुप जीतूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप जीतूगा इसलिए दुर्मनम्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप जीतूगा इसलिए न मुमनम्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अजइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
अजइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अजइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अजित्वा नामैक सुमना भवति,
अजित्वा नामैक दुर्मना भवति,
अजित्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२७६ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप न जीतने पर सुमनम्क होते हैं, २ कुछ पुरुप न जीतने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप न जीतने पर न सुमनम्क होते हैं और न दुर्मनम्क होते हैं।

२७७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण जिणामीतेगे सुमणे भवति,
ण जिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न जयामीत्येक सुमना भवति,
न जयामीत्येक दुर्मना भवति,
न जयामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२७७ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप जीतता नहीं हू इसलिए सुमनम्क होते हैं, २ कुछ पुरुप जीतता नहीं हू इमलिए दुर्मनम्क होत हैं, ३ कुछ पुरुप जीतता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न जेप्यामीत्येक सुमना भवति,
न जेप्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न जेप्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

२७८ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप नही जीतूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप नही जीतूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप नही जीतूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

पराजिणित्ता-अपराजिणित्ता-पदं

पराजित्य-अपराजित्य-पदम्

पराजित्य-अपराजित्य-पद

२७९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति,
पराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
पराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पराजित्य नामैक सुमना भवति,
पराजित्य नामैक दुर्मना भवति,
पराजित्य नामैक नोसुमना-

२७९ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप पराजित करने के वाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप पराजित करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप पराजित करने के वाद न सुमनस्क

णोदुम्मणे भवति ।	नोदुर्मना भवति ।	हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।
२८० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।	त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पराजये इत्येकः सुमना भवति, पराजये इत्येकः दुर्मना भवति, पराजये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।	२८० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष पराजित करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पराजित करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।
२८१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।	त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पराजेष्ये इत्येकः सुमना भवति, पराजेष्ये इत्येकः दुर्मना भवति, पराजेष्ये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।	२८१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष पराजित करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पराजित करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।
२८२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अपराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।	त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— अपराजित्य नामैकः सुमना भवति, अपराजित्य नामैकः दुर्मना भवति, अपराजित्य नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।	२८२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष पराजित नही करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पराजित नही करने पर दुमनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित नहीं करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।
२८३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।	त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— न पराजये इत्येकः सुमनाः भवति, न पराजये इत्येकः दुर्मना भवति, न पराजये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।	२८३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।
२८४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।°	त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— न पराजेष्ये इत्येकः सुमना भवति, न पराजेष्ये इत्येकः दुर्मना भवति, न पराजेष्ये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।	२८४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष पराजित नहीं करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष पराजित नहीं करूगा इसलिए दुमनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित नहीं करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

सुणेत्ता-असुणेत्ता-पदं

श्रुत्वा-अश्रुत्वा-पदम्

श्रुत्वा-अश्रुत्वा-पद

२८५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्द सुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सद्दं सुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सद्द सुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द श्रुत्वा नामैक सुमना भवति,
शब्द श्रुत्वा नामैक दुर्मना भवति,
शब्द श्रुत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२८५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द सुनने के वाद सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष शब्द सुनने के वाद दुर्मनम्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द सुनने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनम्क होते हैं।

२८६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सद्दं सुणामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं सुणामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं सुणामीतेगे, णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द शृणोमीत्येक सुमना भवति,
शब्द शृणोमीत्येक दुर्मना भवति,
शब्द शृणोमीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२८६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द मुनता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष शब्द सुनता हू इसलिए दुर्मनम्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द सुनता हू इसलिए न सुमनम्क होते हैं और न दुर्मनम्क होते है।

२८७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सद्द सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सद्द सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्द सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द श्रोप्यामीत्येक मुमना भवति,
शब्द श्रोप्यामीत्येक दुर्मना भवति,
शब्द श्रोप्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२८७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द सुनूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द सुनूगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष शब्द मुनूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनम्क होते हैं।

२८८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
सद्दं असुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सद्द असुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सद्द असुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द अश्रुत्वा नामैक सुमना भवति,
शब्द अश्रुत्वा नामैक दुर्मना भवति,
शब्द अश्रुत्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना, भवति।

२८८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनने पर दुर्मनम्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२८९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्द ण सुणामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं ण सुणामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं ण सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द न शृणोमीत्येक सुमना भवति,
शब्द न शृणोमीत्येक दुर्मना भवति,
शब्द न शृणोमीत्येक नोमुमना-नोदुर्मना भवति।

२८९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हू इसलिए सुमनम्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द नही सुनता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हू इसलिए न मुमनम्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।°

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्दं न श्रोष्यामीत्येकः सुमना भवति,
शब्दं न श्रोष्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
शब्दं न श्रोष्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

पासित्ता-अपासित्ता-पदं

दृष्ट्वा-अदृष्ट्वा-पदम्

दृष्ट्वा-अदृष्ट्वा-पद

२९१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
रूवं पासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं दृष्ट्वा नामैकः सुमना भवति,
रूपं दृष्ट्वा नामैकः दुर्मना भवति,
रूपं दृष्ट्वा नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप देखने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप देखने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप देखने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं पासामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं पश्यामीत्येकः सुमना भवति,
रूपं पश्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
रूपं पश्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप देखता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप देखता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप देखता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं द्रक्ष्यामीत्येकः सुमना भवति,
रूपं द्रक्ष्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
रूपं द्रक्ष्यामीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप देखूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप देखूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप देखूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
रूवं अपासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
रूवं अपासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रूवं अपासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं अदृष्ट्वा नामैकः सुमना भवति,
रूपं अदृष्ट्वा नामैकः दुर्मना भवति,
रूपं अदृष्ट्वा नामैकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप न देखने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप न देखने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप न देखने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं ण पासामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं ण पासामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं ण पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूप न पश्यामीत्येक सुमना भवति,
रूप न पश्यामीत्येक दुर्मना भवति,
रूप न पश्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप नहीं देखता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप नही देखता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप नहीं देखता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं ण पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं ण पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं ण पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूप न द्रक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
रूप न द्रक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
रूप न द्रक्ष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप नही देखूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रूप नही देखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप नहीं देखूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

अग्घाइत्ता-अणग्घाइत्ता-पदं

घ्रात्वा-अघ्रात्वा-पदम्

घ्रात्वा-अघ्रात्वा-पद

२९७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध घ्रात्वा नामैक सुमना भवति,
गन्ध घ्रात्वा नामैक दुर्मना भवति,
गन्ध घ्रात्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध लेने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध लेने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध लेने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घामीतेगे सुमणे भवति,
गंधं अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध जिघ्रामीत्येक सुमना भवति,
गन्ध जिघ्रामीत्येक दुर्मना भवति,
गन्ध जिघ्रामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२९८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध लेता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध लेता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध लेता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध घ्रास्यामीत्येक सुमना भवति,
गन्ध घ्रास्यामीत्येक दुर्मना भवति,

२९९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध लेऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध लेऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध लेऊगा

गध अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
गध अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

गन्ध घ्रास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
गंध अणग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
गध अणग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
गध अणग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध अघ्रात्वा नामैक सुमना भवति,
गन्ध अघ्रात्वा नामैक दुर्मना भवति,
गन्ध अघ्रात्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध नही लेने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध नहीं लेने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध नही लेने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०१ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
गध ण अग्घामीतेगे सुमणे भवति,
गध ण अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति,
गध ण अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध न जिघ्रामीत्येक सुमना भवति,
गन्ध न जिघ्रामीत्येक दुर्मना भवति,
गन्ध न जिघ्रामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध नही लेता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध नहीं लेता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध नहीं लेता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
गध ण अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
गध ण अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
गधं ण अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्ध न घ्रास्यामीत्येक सुमना भवति,
गन्ध न घ्रास्यामीत्येक दुर्मना भवति,
गन्ध न घ्रास्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गध नही लेऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गध नही लेऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गध नही लेऊगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

आसाइत्ता-अणासाइत्ता-पदं

आस्वाद्य-अनास्वाद्य-पदम्

आस्वाद्य-अनास्वाद्य-पद

३०३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रस आसाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
रस आसाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रस आसाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस आस्वाद्य नामैक सुमना भवति,
रस आस्वाद्य नामैक. दुर्मना भवति,
रस आस्वाद्य नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस चखने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस चखने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस चखने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रस आसादेमीतेगे सुमणे भवति,
रस आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति,
रसं आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस आस्वादयामीत्येक सुमना भवति,
रस आस्वादयामीत्येक दुर्मना भवति,
रस आस्वादयामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस चखता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस चखता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस चखता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

३०५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रस आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रस आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रसं आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस आस्वादयिष्यामीत्येक सुमना भवति,
रस आस्वादयिष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
रस आस्वादयिष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०५ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रसं अणासाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
रस अणासाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रसं अणासाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस अनास्वाद्य नामैक सुमना भवति,
रस अनास्वाद्य नामैक दुर्मना भवति,
रस अनास्वाद्य नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०६ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस न चखने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस न चखने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस न चखने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०७ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रस ण आसादेमीतेगे सुमणे भवति,
रस ण आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति,
रस ण आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस नास्वादयामीत्येक सुमना भवति,
रस नास्वादयामीत्येक दुर्मना भवति,
रस नास्वादयामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०७ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस नही चखता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस नही चखता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस नही चखता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०८ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रस ण आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रसं ण आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति
रस ण आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस नास्वादयिष्यामीत्येक सुमना भवति,
रस नास्वादयिष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
रस नास्वादयिष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

३०८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस नही चखूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस नही चखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं ३ कुछ पुरुष रस नहीं चखूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

फासेत्ता-अफासेत्ता-पदं

३०९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
फास फासेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
फास फासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
फास फासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१० तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
फास फासेमीतेगे सुमणे भवति,
फासं फासेमीतेगे दुम्मणे भवति,
फास फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३११ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
फासं फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
फास फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
फास फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
फासं अफासेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
फास अफासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
फास अफासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
फासं ण फासेमीतेगे सुमणे भवति,
फासं ण फासेमीतेगे दुम्मणे भवति,
फास ण फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

स्पृष्ट्वा-अस्पृष्ट्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्श स्पृष्ट्वा नामैक सुमना भवति,
स्पर्शं स्पृष्ट्वा नामैक दुर्मना भवति,
स्पर्शं स्पृष्ट्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं स्पृशामीत्येक सुमना भवति,
स्पर्शं स्पृशामीत्येक दुर्मना भवति,
स्पर्शं स्पृशामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं स्प्रक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
स्पर्श स्प्रक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
स्पर्शं स्प्रक्ष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं अस्पृष्ट्वा नामैक सुमना भवति,
स्पर्श अस्पृष्ट्वा नामैक दुर्मना भवति,
स्पर्शं अस्पृष्ट्वा नामैक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं न स्पृशामीत्येक सुमना भवति,
स्पर्श न स्पृशामीत्येक दुर्मना भवति,
स्पर्शं न स्पृशामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

स्पृष्ट्वा-अस्पृष्ट्वा-पद

३०९ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप स्पर्श करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप स्पर्श करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१० पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप स्पर्श करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप स्पर्श करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुमनस्क होते हैं।

३११ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप स्पर्श करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष स्पर्श करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१२ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप स्पर्श न करने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप स्पर्श न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप स्पर्श न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१३ पुरुप तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष स्पर्श नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुप स्पर्श नही करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुप स्पर्श नही करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१४ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
फासं ण फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
फास ण फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
फास ण फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति°।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्श न स्प्रक्ष्यामीत्येक सुमना भवति,
स्पर्शं न स्प्रक्ष्यामीत्येक दुर्मना भवति,
स्पर्श न स्प्रक्ष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मना भवति ।

३१४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श नही करूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

गरहिअ-पदं

३१५ तओ ठाणा णिसीलस्स णिव्वयस्स णिग्गुणस्स णिम्मेरस्स णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासस्स गरहिता भवति, तं जहा—
अस्सि लोगे गरहिते भवइ,
उववाते गरहिते भवइ,
आयाती गरहिता भवइ।

गर्हित-पदम्

त्रीणि स्थानानि नि शीलस्य निर्व्रतस्य निर्गुणस्य निर्मर्यादस्य निष्प्रत्याख्यान-पोपधोपवासस्य गर्हितानि भवन्ति, तद्यथा—
अय लोको गर्हितो भवति,
उपपातो गर्हितो भवति,
आजाति गर्हिता भवति।

गर्हित-पद

३१५ शील, व्रत, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पोपधोपवास से रहित पुरुष के तीन स्थान गर्हित होते हैं—
१ इहलोक [वर्तमान] गर्हित होता है, २ उपपात [देवलोक तथा नर्क का जन्म] गर्हित होता है, ३ आगामी जन्म [देवलोक या नरक के वाद होने वाला मनुष्य या तिर्यञ्च का जन्म] गर्हित होता है।

पसत्थ-पदं

३१६ तओ ठाणा सुसीलस्स सुव्वयस्स सगुणस्स समेरस्स सपच्चक्खाण-पोसहोववासस्स पसत्या भवति, तं जहा—
अस्सि लोगे पसत्थे भवति,
उववाए पसत्थे भवति,
आजाती पसत्या भवति।

प्रशस्त-पदम्

त्रीणि स्थानानि सुशीलस्य सुव्रतस्य सगुणस्य समर्यादस्य सप्रत्याख्यान-पोपधोपवासस्य प्रशस्तानि भवन्ति, तद्यथा—
अय लोक प्रशस्तो भवति,
उपपात प्रशस्तो भवति,
आजाति प्रशस्ता भवति।

प्रशस्त-पद

३१६ शील, व्रत, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पोपधोपवास से युक्त पुरुष के तीन स्थान प्रशस्त होते हैं—
१ इहलोक प्रशस्त होता है, २ उपपात प्रशस्त होता है, ३ आगामी जन्म [देवलोक या नरक के वाद होने वाला मनुष्य जन्म] प्रशस्त होता है।

जीव-पदं

३१७ तिविधा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुसगा।

३१८ तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठी, मिच्छाद्दिट्ठी,

जीव-पदम्

त्रिविधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
स्त्रिय, पुरुषा, नपुसका ।

त्रिविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सम्यग्दृष्टय, मिथ्यादृष्टय,

जीव-पद

३१७ ससारी जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुसक।

३१८ सव जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१ सम्यग्-दृष्टि, २ मिथ्या-दृष्टि,

सम्मामिच्छद्दिट्ठी। अहवा—तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, णोपज्जत्तगा-णोऽपज्जत्तगा। °परित्ता, अपरित्ता, णोपरित्ता-णोऽपरित्ता। सुहुमा, बायरा, णोसुहुमा-णोबायरा। सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोऽसण्णी। भवी, अभवी, णोभवी-णोऽभवी°।

सम्यग्मिथ्यादृष्टय। अथवा—त्रिविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पर्याप्तका, अपर्याप्तका, नोपर्याप्तका-नोअपर्याप्तका। परीता, अपरीता, नोपरीता-नोअपरीता। सूक्ष्मा, बादरा, नोसूक्ष्मा-नोबादरा। संज्ञिन, असंज्ञिन, नोसंज्ञिन-नोअसंज्ञिन। भविन, अभविन, नोभविन-नोअभविन।

३ सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि।
अथवा—सब जीव तीन प्रकार के होते हैं—१ पर्याप्त, २ अपर्याप्त, ३ न पर्याप्त न अपर्याप्त—सिद्ध।
१ प्रत्येक शरीरी [एक शरीर में एक जीव वाला], २ साधारण शरीरी [एक शरीर में अनन्त जीव वाला], ३ न प्रत्येक शरीर न साधारण शरीर—सिद्ध।
१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ न सूक्ष्म न बादर—सिद्ध।
१ संज्ञी—समनस्क, २ असंज्ञी—अमनस्क, ३ न संज्ञी न असंज्ञी—सिद्ध।
१ भव्य, २ अभव्य, ३ न भव्य न अभव्य—सिद्ध।

लोगठिति-पदं

३१९ तिविधा लोगठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपइट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदही, उदहिपतिट्ठिया पुढवी।

लोकस्थिति-पदम्

त्रिविधा लोकस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आकाशप्रतिष्ठितो वात, वातप्रतिष्ठित उदधि, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी।

लोकस्थिति-पद

३१९ लोक स्थिति तीन प्रकार की है—
१ आकाश पर वायु प्रतिष्ठित है,
२ वायु पर समुद्र प्रतिष्ठित है,
३ समुद्र पर पृथ्वी प्रतिष्ठित है।

दिसा-पदं

३२० तओ दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उड्ढा, अहा, तिरिया।

३२१ तिहिं दिसाहिं जीवाण गती पवत्तति—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।

३२२ °तिहिं दिसाहिं जीवाण°—आगती वक्कती आहारे वुड्ढी णिवुड्ढी गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे दंसणाभिगमे णाणाभिगमे जीवाभिगमे °पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।°

दिशा-पदम्

तिस्र दिश प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ऊर्ध्वं, अध, तिर्यक्।

तिसृषु दिक्षु जीवाना गति प्रवर्तते—ऊर्ध्वं, अध, तिरश्चि।

तिसृषु दिक्षु जीवाना—आगति अवक्रान्ति आहार वृद्धि निर्वृद्धि गतिपर्याय समुद्घात कालसंयोग दर्शनाभिगम ज्ञानाभिगम जीवाभिगम प्रज्ञप्त, तद्यथा—ऊर्ध्वं, अध, तिरश्चि।

दिशा-पद

३२० दिशाएं तीन हैं—
१ ऊर्ध्व, २ अध, ३ तिर्यक्।

३२१ तीन दिशाओं में जीवों की गति होती है—
१ ऊर्ध्व दिशि में, २ अधो दिशि में, ३ तिर्यक् दिशि में।

३२२ तीन दिशाओं में जीवों की आगति, अवक्रान्ति, आहार, वृद्धि, हानि, गति-पर्याय, समुद्घात, काल-संयोग, दर्शनाभिगम, ज्ञानाभिगम, जीवाभिगम होता है—
१ ऊर्ध्व दिशि में, २ अधो दिशि में, ३ तिर्यक् दिशि में।[५५]

३२३ तिहिं दिसाहिं जीवाण अजीवाभिगमे पण्णत्ते, त जहा—
उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।

तिसृषु दिक्षु जीवाना अजीवाभिगम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ऊर्ध्वं, अध, तिरश्चि।

३२३ तीन दिशाओ मे जीवो का अजीवाभिगम होता है—१ ऊर्ध्व दिशि मे, २ अधो दिशि में, ३ तिर्यक् दिशि में।

३२४. एवं—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

एवम्—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम्।

३२४ इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियो की गति, आगति आदि तीनो ही दिशाओ मे होती है।

३२५ एव—मणुस्साणवि।

एवम्—मनुष्याणामपि।

३२५ इसी प्रकार मनुष्यों की गति, आगति आदि तीनो ही दिशाओ मे होती है।

तस-थावर-पदं

त्रस-स्थावर-पदम्

त्रस-स्थावर-पद

३२६ तिविहा तसा पण्णत्ता, त जहा—
तेउकाइया, वाउकाइया, उराला तसा पाणा।

त्रिविधा त्रसा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तेजस्कायिका, वायुकायिका, उदारा त्रसा प्राणा।

३२६ त्रस[४६] जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१ तेजस्कायिक, २ वायुकायिक, ३ उदार त्रस प्राणी—द्वीन्द्रिय आदि।

३२७ तिविहा थावरा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया।

त्रिविधा स्थावरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, वनस्पतिकायिका।

३२७ स्थावर[४७] जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वनस्पतिकायिक।

अच्छेज्जादि-पदं

अच्छेद्यादि-पदम्

अच्छेद्यआदि-पद

३२८ तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रय अच्छेद्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३२८ तीन अच्छेद्य होते हैं—
१ समय—काल का सबसे छोटा भाग, २ प्रदेश—निरंश देश, वस्तु का सबसे छोटा भाग, ३ परमाणु—पुद्गल का सबसे छोटा भाग।

३२९ •तओ अभेज्जा पण्णत्ता त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अभेद्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३२९ तीन अभेद्य होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३०. तओ अडज्झा पण्णत्ता, त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रय अदाह्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३३० तीन अदाह्य होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३१ तओ अगिज्झा पण्णत्ता, त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रय अग्राह्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३३१ तीन अग्राह्य होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३२ तओ अणड्ढा पण्णत्ता, त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रय अनर्घा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३३२ तीन अनर्घ होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३३ तओ अमज्झा पण्णत्ता, त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

त्रय अमध्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

३३३ तीन अमध्य होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३४ तओ अपएसा पण्णत्ता त जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।

३३५. तओ अविभाइमा, पण्णत्ता त जहा—समए, पदेसे, परमाणु।

त्रय अप्रदेशा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश, परमाणु।

त्रय अविभाज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समय, प्रदेश परमाणु।

३३४ तीन अप्रदेश होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३५ तीन अविभाज्य होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

दुक्ख-पदं

३३६ अज्जोति ! समणे भगव महावीरे गोतमादी समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एव वयासी—
किंभया पाणा ? समणाउसो ! गोतमादी समणा णिग्गथा समण भगव महावीर उवसंकमति, उवसकमित्ता वदति णमसति, वंदित्ता णमंसित्ता एव वयासी—
णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठ जाणामो वा पासामो वा। त जदि ण देवाणुप्पिया ! एयमट्ठ णो गिलायति परिकहित्ताए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाण अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।
अज्जोति ! समणे भगव महावीरे गोतमादी समणे निग्गथे आमतेत्ता एव वयासी—
दुक्खभया पाणा समणाउसो ! से ण भते ! दुक्खे केण कडे ? जीवेण कडे पमादेणं।
से णं भते ! दुक्खे कहं वेइज्जति ? अप्पमाएणं।

दुःख-पदम्

आर्या अयि ! श्रमण भगवान् महावीर गौतमादीन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एव अवादीत्—
किंभया प्राणा ? आयुष्मन्त ! श्रमणा ! गौतमादय श्रमणा निर्ग्रन्था श्रमण भगवन्त महावीर उपसक्रामन्ति, उपसक्रम्य वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एव अवादिषु—
न खलु वय देवानुप्रिया ! एतमर्थं जानीमो वा पश्यामो वा। तद् यदि देवानुप्रिया ! एतमर्थ न ग्लायन्ति परिकथितुम्, तद् इच्छामो देवानुप्रियाणा अन्तिके एतमर्थं ज्ञातुम्।
आर्या अयि ! श्रमण भगवान् महावीर गौतमादीन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एव अवादीत्—
दु खभया प्राणा आयुष्मन्त ! श्रमणा ! तद् भन्ते ! दु ख केन कृतम् ? जीवेन कृत प्रमादेन।
तद् भन्ते ! दु ख कथ वेद्यते ? अप्रमादेन।

दुःख-पद

३३६ आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को आमन्त्रित कर कहा—
आयुष्मान् ! श्रमणो ! जीव किससे भय खाते हैं ?
गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के निकट आए, निकट आकर वन्दन-नमस्कार किया, वदन-नमस्कार कर बोले—
देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नही जान रहे हैं, नही देख रहे हैं। यदि देवानुप्रिय को इस अर्थ का परिकथन करने में खेद न हो तो हम देवानुप्रिय के पास इसे जानना चाहेंगे।
आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थो को आमन्त्रित कर कहा—
आयुष्मान् ! श्रमणो ! जीव दु ख से भय खाते हैं।
तो भगवान् ! दु ख किसके द्वारा किया गया है ?
जीवो के द्वारा, अपने प्रमाद से।
तो भगवान् ! दु खो का वेदन [क्षय] कैसे होता है ?
जीवों के द्वारा, अपने ही अप्रमाद से।

३३७ अण्णउत्थिया णं भते ! एवं आइक्खति एवं भासति एवं पण्णवेंति एव परूवेंति कहण्णं

अन्ययूथिका भदन्त ! एव आख्यान्ति एव भाषन्ते एव प्रज्ञापयन्ति एव प्ररूपयन्ति कथ श्रमणाना निर्ग्रन्थाना

३३७ भन्ते ! कुछ अन्य यूथक सम्प्रदाय [दूसरे सम्प्रदाय वाले] ऐसा आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, प्रज्ञापन करते हैं,

समणाण णिग्गथाण किरिया कज्जति ?
तत्थ जा सा कडा कज्जइ, णो त पुच्छति।
तत्थ जा सा कडा णो कज्जति, णो त पुच्छति।
तत्थ जा सा अकडा णो कज्जति, णो तं पुच्छति।
तत्थ जा सा अकडा कज्जति, त पुच्छंति।
से एव वत्तव्व सिया ?
अकिच्चं दुक्खं, अफुस दुक्ख,
अकज्जमाणकड दुक्खं,
अकट्टु-अकट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयण वेदेंतित्ति वत्तव्व।
जे ते एवमाहंसु, मिच्छा ते एवमाहसु।
अह पुण एवमाइक्खामि एव भासामि एव पण्णवेमि एवं परूवेमि—किच्चं दुक्खं,
फुस दुक्ख, कज्जमाणकड दुक्ख,
कट्टु-कट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयण वेयतित्ति वत्तव्वय सिया।

क्रिया क्रियते ?
तत्र या सा कृता क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति।
तत्र या सा कृता नो क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति।
तत्र या सा अकृता नो क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति।
तत्र या मा अकृता क्रियते, तत् पृच्छन्ति।
तस्यैव वक्तव्य स्यात् ?
अकृत्य दु ख, अस्पृष्ट दु ख,
अक्रियमाणकृत दु ख,
अकृत्वा-अकृत्वा प्राणा भूता जीवा सत्त्वा वेदना वेदयन्ति इति वक्तव्यम्।
ये ते एव अवोचन्, मिथ्या ते एवं अवोचन्।
अह पुन एव आख्यामि एव भापे एव प्रज्ञापयामि एव प्ररूपयामि—
कृत्य दु ख, स्पृष्ट दु ख,
क्रियमाणकृत दु ख,
कृत्वा-कृत्वा प्राण भूता जीवा सत्त्वा वेदना वेदयन्ति इति वक्तव्यक स्यात्।

प्ररूपण करते हैं कि क्रिया करने के विपय मे श्रमण-निर्ग्रन्थो का क्या अभिमत है ?
जो की हुई होती है, उसका यहा प्रश्न नही है।[58]
जो की हुई नही होती, उसका भी यहा प्रश्न नही है।
जो नहीं की हुई नहीं होती, उसका भी यहा प्रश्न नही है।
किन्तु जो नही की हुई है, उसका यहा प्रश्न है। उनकी वक्तव्यता ऐसी है—
१ दु ख अकृत्य है—आत्मा के द्वारा नही किया जाता, २ दु ख अस्पृश्य है—आत्मा से उसका स्पर्श नही होता,
३ दु ख अक्रियमाण-कृत है—वह आत्मा के द्वारा नही किए जाने पर होता है।
उसे विना किए ही प्राण-भूत-जीव-सत्त्व उसका वेदन करते हैं।
आयुष्मान ! श्रमणो ! जिन्होंने ऐसा कहा है उन्होंने मिथ्या कहा है।
मैं ऐसा आख्यान करता हू, भापण करता हू, प्रज्ञापन करता हू, प्ररूपण करता हू कि—
दु ख कृत्य है—आत्मा के द्वारा किया जाता है।
दु ख स्पृश्य है—आत्मा से उसका स्पर्श होता है।
दु ख क्रियमाण-कृत है—वह आत्मा के द्वारा किए जाने पर होता है।
उसे कर-कर के ही प्राण-भूत-जीव-सत्त्व उसका वेदन करते हैं।

तइओ उद्देसो

आलोयणा-पद

३३८. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा णो पडिक्कमेज्जा
णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं,
करिस्सामि वाहं।

३३९. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा णो पडिक्कमेज्जा
•णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
अकित्ती वा मे सिया,
अवण्णे वा मे सिया,
अविणए वा मे सिया

३४०. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा• णो पडिक्कमेज्जा
णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
कित्ती वा मे परिहाइस्सति,
जसे वा मे परिहाइस्सति,
पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सति।

आलोचना-पदम्

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत् नो निन्देत्
नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो विशोधयेत्
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत
नो यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—
अकार्षं वाहं, करोमि वाहं,
करिष्यामि वाहं।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत् नो निन्देत्
नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो विशोधयेत्
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत नो यथार्हं
प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अकीर्तिः वा मम स्यात्,
अवर्णो वा मम स्यात्,
अविनयो वा मम स्यात्।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत्
नो निन्देत् नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो
विशोधयेत् नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत
नो यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—
कीर्तिः वा मम परिहास्यति,
यशो वा मम परिहास्यति,
पूजासत्कारो वा मम परिहास्यति।

आलोचना-पद

३३८. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार नहीं करता—मैंने अकरणीय किया है, मैं अकरणीय कर रहा हूं, मैं अकरणीय करूंगा।

३३९. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार नहीं करता—मेरी अकीर्ति होगी, मेरा अवर्ण होगा, दूसरों के द्वारा मेरा अविनय होगा।

३४०. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार नहीं करता—मेरी कीर्ति कम होगी, मेरा यश कम होगा, मेरा पूजा-सत्कार कम होगा।

३४१ तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा
°णिदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्म°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
माइस्स णं अस्सिं लोगे गरहिए भवति,
उववाए गरहिए भवति,
आयाती गरहिया भवति।

त्रिभिः स्थानैः मायी माया कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
मायिनः अयं लोकः गर्हितो भवति,
उपपातः गर्हितो भवति,
आजातिः गर्हिता भवति।

३४१ तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है—
मायावी का वर्तमान जीवन गर्हित हो जाता है, उपपात गर्हित हो जाता है,
आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य या तिर्यञ्च का जन्म] गर्हित हो जाता है।

३४२ तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा °पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—अमाइस्स णं अस्सिं लोगे पसत्थे भवति,
उववाते पसत्थे भवति,
आयाती पसत्था भवति।

त्रिभिः स्थानैः मायी माया कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अमायिनः अयं लोकः प्रशस्तो भवति,
उपपातः प्रशस्तो भवति,
आजातिः प्रशस्ता भवति।

३४२ तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है—
ऋजु मनुष्य का वर्तमान जीवन प्रशस्त होता है, उपपात प्रशस्त होता है,
आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य जन्म] प्रशस्त होता है।

३४३ तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा °पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए।

त्रिभिः स्थानैः मायी माया कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञानार्थाय, दर्शनार्थाय, चरित्रार्थाय।

३४३ तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है—
ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए,
चरित्र के लिए।

सुयधर-पद

३४४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे।

श्रुतधर-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सूत्रधरः, अर्थधरः, तदुभयधरः।

श्रुतधर-पद

३४४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ सूत्रधर, २ अर्थधर,
३ तदुभय—सूत्रार्थधर।

उपधि-पदं

३४५ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा तओ वत्थाइ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, त जहा—
जगिए, भगिए, खोमिए।

३४६ कप्पइ णिग्गयाण वा णिग्गथीण वा तओ पायाइ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, त जहा—
लाउयपादे वा, दारुपादे वा, मट्टियापादे वा।

३४७ तिहि ठाणेहि वत्य धरेज्जा, त जहा— हिरिपत्तिय, दुगुछापत्तिय, परीसहवत्तिय।

उपधि-पदम्

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा त्रीणि वस्त्राणि धर्तु वा परिधातु वा, तद्यथा—
जाङ्गिक, भाङ्गिक, क्षौमिकम्।

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा त्रीणि पात्राणि धर्तु वा परिधातु वा, तद्यथा—
अलावुपात्र वा, दारुपात्र वा, मृत्तिका-पात्र वा।

त्रिभि स्थानै वस्त्र धरेत्, तद्यथा— ह्लीप्रत्यय, जुगुप्साप्रत्यय, परीषहप्रत्ययम्।

उपधि-पद

३४५ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन प्रकार के वस्त्र धारण कर सकते हैं और काम मे ले सकते हैं—१ ऊन के, २ अलसी के, ३ रुई के।

३४६ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन प्रकार के पात्र धारण कर सकते हैं—१ तुम्बा, २ काष्ठ पात्र, ३ मृत् पात्र।

३४७ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन कारणों मे वस्त्र धारण कर सकते हैं—
१ लज्जा निवारण के लिए, २ जुगुप्सा [घृणा] निवारण के लिए,
३ परीषह निवारण के लिए।

आयरक्ख-पद

३४८ तओ आयरक्खा पण्णत्ता, त जहा—
धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवति,
तुसिणीए वा सिया,
उट्ठित्ता वा आताए एगतमतमवक्कमेज्जा।

आत्मरक्ष-पदम्

त्रय आत्मरक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— धार्मिक्या प्रतिचोदनया प्रतिचोदिता भवति, तुष्णीको वा स्यात्, उत्थाय वा आत्मना एकान्तमन्त अवक्रामेत्।

आत्मरक्ष-पद

३४८ तीन आत्म-रक्षक होते हैं—
१ अकरणीय कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति को धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित करने वाला,
२ प्रेरणा न देने की स्थिति मे मौन रहने वाला,
३ मौन और उपेक्षा न करने की स्थिति मे वहा से उठकर एकान्त मे चले जाने वाला।

वियड-दत्ति-पद

३४९ णिग्गथस्स ण गिलायमाणस्स कप्पति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तते, त जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

विकट-दत्ति-पदम्

निर्ग्रन्थस्य ग्लायत कल्प्यन्ते तिस्र [दे० विकट] दत्तय प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

विकट-दत्ति-पद

३४९ ग्लान निर्ग्रन्थ तीन प्रकार की विकट-दत्तियां" ले सकता है—
१ उत्कृष्ट—पर्याप्त जल या कलमी चावल की कांजी, २ मध्यम—कई वार किन्तु अपर्याप्त जल या साठी चावल की काजी,

३ जघन्य—एक बार पीए उतना जल, तृण धान्य की काजी या गर्म पानी।

विसभोग-पदं

३५० तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे साहम्मिय सभोगिय विसभोगिय करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—सय वा दट्ठु, सड्ढयस्स वा णिसम्म तच्चं मोसं आउट्टति, चउत्थ णो आउट्टति।

विसम्भोग-पदम्

त्रिभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ सार्वमिक साम्भोगिक वैसम्भोगिक कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—स्वय वा दृष्ट्वा, श्राद्धकस्य वा निशम्य, तृतीय मृपा आवर्तते, चतुर्थं नो आवर्नते।

विसम्भोग-पद

३५० तीन कारणो से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक, साभोगिक[५८] को विसभोगिक करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—१ स्वय किसी को सामाचारी के प्रतिकूल आचरण करते हुए देखकर, २ श्राद्ध [विश्वास पात्र] से सुनकर, ३ तीन वार मृपा—[अनाचार] का प्रायश्चित्त देने के वाद चौथी वार प्रायश्चित्त विहित नहीं होने के कारण।

अणुण्णादि-पद

३५१ तिविधा अणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५२ तिविधा समणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५३ °तिविधा उवसपया पण्णत्ता, त जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५४. तिविधा विजहणा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।°

अनुज्ञादि-पदम्

त्रिविधा अनुज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविधा समनुज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविधा उपसपदा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविध विहान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

अनुज्ञआदि-पद

३५१ अनुज्ञा[५९] तीन प्रकार की होती है—१ आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५२ समनुज्ञा[६०] तीन प्रकार की होती है—१ आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५३ उपसम्पदा[६१] तीन प्रकार की होती है—१ आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५४ विहान[६२] तीन प्रकार का होता है—१ आचार्यत्व का, २ उपाध्यायत्व का, ३ गणित्व का।

वयण-पद

३५५ तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—तव्वयणे, तदण्णवयणे, णोअवयणे।

वचन-पदम्

त्रिविध वचन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—तद्वचन तदन्यवचन नोअवचनम्।

वचन-पद

३५५ वचन तीन प्रकार का होता है—१. तद्वचन—विवक्षित वस्तु का कथन, २ तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वस्तु का कथन, ३ नोअवचन—शब्द का अर्थहीन व्यापार।

३५६ तिविहे अवयणे पण्णत्ते, त जहा—
णोतव्वयणे, णोतदण्णवयणे, अवयणे ।

त्रिविधम् अवचन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नोतद्वचन, नोतदन्यवचन, अवचनम् ।

३५६ अवचन तीन प्रकार का होता है—
१ नोतद्वचन—विवक्षित वस्तु का अकथन, २ नोतदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वन्तु का कथन, ३ अवचन—वचन-निवृत्ति ।

मण-पदं

मनः-पदम्

मनः-पद

३५७ तिविहे मणे पण्णत्ते, त जहा—
तम्मणे, तयण्णमणे, णोअमणे ।

त्रिविध मन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
तन्मन , तदन्यमन , नोअमन ।

३५७ मन तीन प्रकार का होता है—
१ तन्मन—लक्ष्य मे लगा हुआ मन, २ तदन्यमन—अलक्ष्य मे लगा हुआ मन, ३ नोअमन—मन का लक्ष्य हीन व्यापार ।

३५८ तिविहे अमणे पण्णत्ते, त जहा—
णोतम्मणे, णोतयण्णमणे, अमणे ।

त्रिविध अमन , प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नोतन्मन , नोतदन्यमन , अमन ।

३५८ अमन तीन प्रकार का होता है—
१ नोतन्मन—लक्ष्य मे नही लगा हुआ मन, २ नोतदन्यमन—लक्ष्य मे लगा हुआ मन, ३ अमन—मन की अप्रवृत्ति ।

वुट्ठि-पदं

वृष्टि-पदम्

वृष्टि-पद

३५९ तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठीकाए सिया, त जहा—
१ तस्सि च ण देससि वा पदेसंसि वा णो वहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताते वक्कमति विउक्कमति चयति उववज्जंति,
२ देवा णागा जक्खा भूता णो सम्ममाराहिता भवति, तत्थ समुट्ठिय उदगपोग्गल परिणत वासितुकाम अण्ण देस साहरति,
३. अब्भवद्दलग च ण समुट्ठित परिणत वासितुकाम वाउकाए विधुणति—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिगाए सिया ।

त्रिभि. स्थानै अल्पवृष्टिकाय स्यात्, तद्यथा—
१. तस्मिञ्च देशे वा प्रदेशे वा नो वहव उदकयोनिका जीवाश्च पुद्गलाश्च उदकतया अवक्रामन्ति व्युत्क्रामन्ति च्यवन्ते उपपद्यन्ते,
२. देवा नागा यक्षा भूता नो सम्यगाराधिता भवन्ति, तत्र समुत्थित उदकपुद्गल परिणत वर्षितुकाम अन्य देश सहरन्ति,
३ अभ्रवार्दलक च समुत्थित परिणत वर्षितुकाम वायुकाय विधुनाति—
इतिएतै त्रिभि स्थानै अल्पवृष्टिकाय स्यात् ।

३५९ तीन कारणों से अल्प वृष्टि होती है—
१ किसी देश या प्रदेश मे [क्षेत्र या स्वभाव से] पर्याप्त मात्रा मे उदकयोनिक जीव और पुद्गलो के उदक रूप मे उत्पन्न और नष्ट तथा नष्ट और उत्पन्न होने से ।
२ देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार मे आराधित न होने पर उस देश मे समुत्थित वर्षा मे परिणत तथा वरसने ही वाले उदक-पुद्गलो [मेघो] का उनके द्वारा अन्य देश मे सहरण होने से ।
३. समुत्थित वर्षा मे परिणत तथा वरसने ही वाले अभ्रवार्दलों के वायु द्वारा नष्ट होने से—
इन तीन कारणो से अल्प-वृष्टि होती है ।

३६० तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठीकाए सिया, त जहा—
१ तंसि च णं देससि वा पदेसंसि वा वहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमति विउक्कमंति चयति उववज्जति,
२ देवा णागा जक्खा भूता सम्ममाराहिता भवंति, अण्णत्य समुट्ठितं उदगपोग्गल परिणय वासिउकामं त देसं साहरंति,
३ अब्भवद्दलग च ण समुट्ठित परिणयं वासितुकाम णो वाउआए विधुणति—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिया।

त्रिभि स्थानै महावृष्टिकाय स्यात्, तद्यथा—
१ तस्मिश्च देशे वा प्रदेशे वा वहव उदकयोनिका जीवाश्च पुद्गलाश्च उदकत्वाय अवक्रामन्ति व्युत्क्रामन्ति च्यवन्ते उपपद्यन्ते,
२ देवा नागा यक्षा भूता सम्यगाराधिता भवति, अन्यत्र समुत्थितं उदकपुद्गल परिणत वर्पितुकाम त देश सहरन्ति
३ अभ्रवार्दलक च समुत्थित परिणतं वर्पितुकाम नो वायुकाय विधुनाति—
इति एतै त्रिभि स्थानै महावृष्टिकाय स्यात्।

३६० तीन कारणो से महावृष्टि होती है—
१ किसी देश या प्रदेश मे [क्षेत्र स्वभाव से] पर्याप्त मात्रा मे उदकयोनिक जीव और पुद्गलो के उदक रूप मे उत्पन्न और नष्ट होने तथा नष्ट और उत्पन्न होने से,
२ देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित होने पर अन्यत्र समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा वरसने ही वाले उदक-पुद्गलो का उनके द्वारा उस देश मे सहरण होने से,
३ समुत्थित वर्षा मे परिणत तथा वरसने ही वाले अभ्रवार्दलों के वायु द्वारा नष्ट न होने से—
इन तीन कारणो से महावृष्टि होती है।

अहुणोववण्ण-देव-पदं

३६१ तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए, त जहा—
१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से ण माणुस्सए कामभोगे णो आढाति, णो परियाणाति, णो अट्ठ वधति, णो णियाण पगरेति, णो ठिइपकप्प पगरेति,
२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स ण माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे सकते भवति,

अधुनोपपन्न-देव-पदम्

त्रिभि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु इच्छेत् मानुप लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्, तद्यथा—
१ अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु दिव्येपु कामभोगेपु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, स मानुष्यकान् कामभोगान् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अर्थं वध्नाति, नो निदान प्रकरोति, नो स्थितिप्रकल्प प्रकरोति,
२ अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु दिव्येपु कामभोगेपु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, तस्य मानुष्यक प्रेम व्युच्छिन्न दिव्य सक्रान्त भवति,

अधुनोपपन्न-देव-पद

३६१ तीन कारणो से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता—
१ देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित गृद्ध वद्ध तथा आसक्त होकर मानवीय कामभोगो को न आदर देता है, न अच्छा जानता है, न प्रयोजन रखता, न निदान [उन्हें पाने का सकल्प] करता है और न स्थिति प्रकल्प [उनके वीच रहने की इच्छा] करता है,
२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित गृद्ध वद्ध तथा आसक्त देव का मानुष्य-प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है तथा उसमे दिव्य-प्रेम सक्रात हो जाता है।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते॰ गिद्धे गढिते॰ अज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेण कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा सजुत्ता भवंति—

३ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, तस्य एव भवति—इदानी गच्छामि मुहूर्त्तेन गच्छामि, तस्मिन् काले अल्पायुषो मनुष्या कालधर्मेण सयुक्ता भवन्ति—

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव सोचता है—मैं अभी मनुष्य लोक मे जाऊ, मुहूर्त्त भर मे जाऊ। इतने में अल्पायुष्क[16] मनुष्य कालधर्म को प्राप्त हो जाता है—

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतै त्रिभि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकात् इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, न चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नहीं सकता।

३६२ तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, सचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

त्रिभि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

३६२ तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेण मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइयं पज्जुवासामि।

१ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे आचार्य इति वा उपाध्याय इति वा प्रवर्त्ती इति वा स्थविर इति वा गणीति वा गणधर इति वा गणावच्छेदक इति वा, येषा प्रभावेण मया इय एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युति दिव्य देवानुभाव लब्ध प्राप्त अभिसमन्वागत, तद् गच्छामि तान् भगवत वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मगल दैवत चैत्य पर्युपासे,

१ देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य लोक मे मेरे मनुष्य भव के आचार्य[17], उपाध्याय[17], प्रवर्तक[18], स्थविर[19], गणी[20], गणधर[21], गणावच्छेदक[22] हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत [भोग्य अवस्था को प्राप्त] हुआ है, अत मैं जाऊ और उन भगवान् को वदन करू, नमस्कार करू, सत्कार करू, सम्मान करू तथा उन कल्याणकर, मगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करू।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए॰ अगिद्धे अगढिते॰ अणज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—

२ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है कि मनुष्य भव मे अनेक ज्ञानी, तपस्वी तथा अति-

एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अतिदुक्कर-दुक्करकारगे, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि णमसामि* सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय° पज्जुवासामि।

एतस्मिन् मानुष्यके भवे ज्ञानीति वा तपस्वीति वा अतिदुष्कर-दुष्करकारक, तद् गच्छामि तान् भगवत वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मगल दैवत चैत्य पर्युपासे

दुष्कर तपस्या करने वाले हैं, अत मैं जाऊ और उन भगवान् को वदन करू, नमस्कार करू, सत्कार करू, सम्मान करू तथा उन कल्याणकर, मगल, ज्ञान-स्वरूप देव की पर्युपासना करू।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु* दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे माताति वा *पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा° सुण्हाति वा, त गच्छामि ण तेसिमतियं पाउब्भवामि, पासतु ता मे इम एतारूव दिव्व देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभाव लद्ध पत्त अभिसमण्णागय—

३ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा पुत्र इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा, तद् गच्छामि तेषा अन्तिक प्रादुर्भवामि, पश्यन्तु तावत् मम इमा एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युति दिव्य देवानुभाव लब्ध प्राप्त अभिसमन्वागतम्—

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्र-वधू हैं, अत मैं उनके पास जाऊ और उनके सामने प्रकट होऊ, जिससे मेरी इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को—जो मुझे मिली है, प्राप्त हुई है, अभिसमन्वागत हुई है—देखें

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुस लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतै त्रिभि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है।

देवस्स मणट्ठिइ-पदं

३६३ तओ ठाणाइ देवे पीहेज्जा, त जहा—
माणुस्सग भव, आरिए खेत्ते जम्म, सुकुलपच्चायातिं।

३६४. तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा, त जहा—
१ अहो! ण मए सते बले सते वीरिए सते पुरिसक्कारपरक्कमे खेमसि सुभिक्खसि आयरिय-

देवस्य मन.स्थिति-पदम्

त्रीणि स्थानानि देव स्पृहयेत्, तद्यथा—
मानुष्यक भवम्, आर्ये क्षेत्रे जन्म, सुकुलप्रत्याजातिम्।

त्रिभि स्थानै देव परितप्येत्, तद्यथा—
१ अहो! मया सति बले सति वीर्ये सति पुरुपकारपराक्रमे क्षेमे सुभिक्षे आचार्योपाध्याययो विद्यमानयो कल्यशरीरेण नो बहुक श्रुत अधीतम्

देव-मनःस्थिति-पद

३६३ देव तीन स्थानों की स्पृहा करता है—
१ मनुष्य भव की, २ आर्य क्षेत्र मे जन्म की, ३ सुकुल मे प्रत्याजाति—उत्पन्न होने की।

३६४ तीन कारणो से देव परितप्त होता है—
१ अहो! मैंने बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, क्षेम, सुभिक्ष तथा आचार्य और उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का पर्याप्त

उवज्झाएहि विज्जमाणेहि कल्लसरीरेण णो बहुए सुते अहीते,

अध्ययन नही किया।

२ अहो ! ण मए इहलोगपडिवद्धेण परलोगपरमुहेण विसयतिसितेण णो दीहे सामण्णपरियाए अणुपालिते,

२ अहो ! मया इहलोकप्रतिवद्धेन परलोकपराङ्मुखेन विषयतृषितेन नो दीर्घ श्रामण्यपर्याय अनुपालित

२ अहो ! मैंने विषय—तृषित, इहलोक मे प्रतिवद्ध और परलोक से विमुख होकर, श्रामण्य के दीर्घ पर्याय का पालन नही किया।

३. अहो ! ण मए इड्ढि-रस-सायगरुएण भोगासंसगिद्धेण णो विसुद्धे चरित्ते फासिते—

३ अहो! मया ऋद्धि-रस-सात-गुरुकेण भोगाशसागृद्धेन नो विशुद्ध चरित्र स्पृष्टम्—

३ अहो ! मैंने ऋद्धि, रस, सात को वडा मानकर, अप्राप्त भोगो की अभिलाषा, और प्राप्त भोगो मे गृद्ध होकर विशुद्ध चरित्र का स्पर्श नही किया—

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा।

इत्येतै त्रिभि स्थानै देव परितप्येत्

इन तीन कारणो से देव परितप्त होता है।

३६५ तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, त जहा—

त्रिभि स्थानै देव च्यविष्ये इति जानाति, तद्यथा—

३६५ तीन हेतुओ से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊगा—

विमाणाभरणाइ णिप्पभाइ पासित्ता, कप्परुक्खग मिलायमाण पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्स परिहायमाणि जाणित्ता—

विमानाभरणानि निष्प्रभाणि दृष्ट्वा, कल्पवृक्षक म्लायन्त दृष्ट्वा, आत्मन तेजोलेश्या परिहीयामाना ज्ञात्वा—

१ विमान के आभरण को निष्प्रभ देखकर।
२ कल्प वृक्ष को मुर्झाया हुआ देखकर।
३ अपनी तेजोलेश्या [कान्ति] को क्षीण होती हुई जानकर—

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ।

इति एतै त्रिभि स्थानै देव च्यविष्ये इति जानाति।

इन तीन हेतुओ से देव यह जान लेता है— मैं च्युत होऊंगा।

३६६ तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, त जहा—

त्रिभि स्थानै देव. उद्वेगमागच्छेत्, तद्यथा—

३६६ तीन कारणो से देव उद्वेग को प्राप्त होता है—

१ अहो ! ण मए इमाओ एतारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ दिव्वाओ देवजुतीओ दिव्वाओ देवाणुभावाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागताओ चइयव्वं भविस्सति,

१ अहो ! मया अस्या एतद्रूपाया दिव्याया देवद्ध्या दिव्याया देवद्युत्या दिव्यात् देवानुभावात् लब्धाया प्राप्ताया अभिसमन्वागताया च्यवितव्य भविष्यति,

१ अहो ! मुझे इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त तथा अभिसमन्वागत दिव्य देवर्धि, दिव्य देवद्युति दिव्य देवानुभाव को छोडना पडेगा।

२ अहो ! ण मए माउओय पिउसुक्क त तदुभयसंसट्ठ तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सति,

२ अहो ! मया मातु ओज पितु शुक्र तत् तदुभयससृष्ट तत्प्रथमतया आहार आहर्त्तव्य भविष्यति,

२ अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज तथा पिता के शुक्र के घोल का आहार लेना होगा।

३ अहो ! ण मए कलमलजबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्व

३. अहो ! मया कलमल-जम्वालाया अशुचौ उद्वेजनीयाया भीमाया गर्भवसत्या वस्तव्य भविष्यति—

३ अहो ! मुझे असुरभि-पकवाले, अपवित्र, उद्वेजनीय और भयानक गर्भाशय में रहना होगा—

भविस्सइ—
इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेग-मागच्छेज्जा ।

इति एतैः त्रिभिः स्थानैः देवः उद्वेगम् आगच्छेत् ।

इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है।

विमाण-पदं

३६७ तिसंठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
वट्टा, तंसा, चउरंसा।
१ तत्थ णं जे ते वट्टा विमाणा, ते णं पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया सव्वओ समंता पागार-परिक्खित्ता एगदुवारा पण्णत्ता,
२ तत्थ णं जे ते तंसा विमाणा, ते णं सिंघाडगसंठाणसंठिता दुहतोपागार-परिक्खित्ता एगतो वेइया-परिक्खित्ता तिदुवारा पण्णत्ता,
३ तत्थ णं जे ते चउरंसा विमाणा, ते णं अक्खाडगसंठाण-संठिता सव्वतो समंता वेइया-परिक्खित्ता चउदुवारा पण्णत्ता।

विमान-पदम्

त्रिसंस्थितानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वृत्तानि, त्र्यस्राणि, चतुरस्राणि ।
१ तत्र यानि वृत्तानि विमानानि, तानि पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि सर्वतः समन्तात् प्राकार-परिक्षिप्तानि एक-द्वाराणि प्रज्ञप्तानि,
२ तत्र यानि त्र्यस्राणि विमानानि, तानि शृंगाटकसंस्थानसंस्थितानि द्वय-प्राकार-परिक्षिप्तानि एकतः वेदिका-परिक्षिप्तानि त्रिद्वाराणि प्रज्ञप्तानि,
३ तत्र यानि चतुरस्राणि विमानानि, तानि अक्षाटकसंस्थानसंस्थितानि सर्वतः समन्तात् वेदिका-परिक्षिप्तानि चतुर्द्वा-राणि प्रज्ञप्तानि ।

विमान-पद

३६७ विमान तीन प्रकार के संस्थान वाले होते हैं—
१ वृत्त, २ त्रिकोण, ३ चतुष्कोण।
१ जो विमान वृत्त होते हैं वे पुष्कर-कर्णिका [पद्म-मध्य-भाग] संस्थान से संस्थित होते हैं, सब दिशाओं और हुए विदिशाओं में चाहारदिवारी से घिरे होते हैं तथा उनके एक ही द्वार होता है।
२ जो विमान त्रिकोण होते हैं, वे सिंघाड़े के संस्थान से संस्थित होते हैं, दो ओर से चाहारदिवारी में घिरे हुए तथा एक ओर से वेदिका से घिरे हुए होते हैं तथा उनके तीन द्वार होते हैं।
३ जो विमान चतुष्कोण होते हैं, वे अखाड़े के संस्थान से संस्थित होते हैं, सब दिशाओं और विदिशाओं में वेदिकाओं से घिरे हुए होते हैं तथा उनके चार द्वार होते हैं।

३६८. तिपतिट्ठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
घणोदधिपतिट्ठिता,
घणवातपइट्ठिता।
ओवासंतरपइट्ठिता।

त्रिप्रतिष्ठितानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
घनोदधिप्रतिष्ठितानि,
घनवातप्रतिष्ठितानि,
अवकाशान्तरप्रतिष्ठितानि ।

३६८ विमान त्रिप्रतिष्ठित होते हैं—
१ घनोदधि-प्रतिष्ठित,
२ घनवात-प्रतिष्ठित,
३ अवकाशांतर-[आकाश] प्रतिष्ठित।

३६९ तिविधा विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
अवट्ठिता वेउव्विता,
पारिजाणिया।

त्रिविधानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अवस्थितानि, विकृतानि, पारियानिकानि ।

३६९ विमान तीन प्रकार के होते हैं—
१ अवस्थित—स्थायी वास के लिए,
२ विकृत—अस्थायी वास के लिए निर्मित
३ पारियानिक—यात्रार्थ निर्मित।

दिट्ठि-पदं

३७० तिविधा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सम्मादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी।

३७१. एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

दृष्टि-पदम्

त्रिविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सम्यग्दृष्टय, मिथ्यादृष्टय, सम्यग्मिथ्यादृष्टय।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्ज यावत् वैमानिकानाम्।

दृष्टि-पद

३७० नैरयिक तीन प्रकार के होते हैं—
१. सम्यग्-दृष्टि, २ मिथ्या-दृष्टि,
३ सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि।

३७१ इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर सभी दण्डकों के तीन-तीन प्रकार हैं।

दुग्गति-सुगति-पदं

३७२ तओ दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुयदुग्गती।

३७३. तओ सुगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोगती, देवसोगती, मणुस्ससोगती।

३७४ तओ दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गया, मणुस्सदुग्गता।

३७५ तओ सुगता पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसोगता, देवसुग्गता, मणुस्ससुग्गता।

दुर्गति-सुगति-पदम्

तिस्र दुर्गतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैरयिकदुर्गति, तिर्यग्योनिकदुर्गति, मनुजदुर्गति।

तिस्र सुगतय प्रज्ञप्ता तद्यथा—सिद्धसुगति, देवसुगति, मनुष्यसुगति।

त्रय दुर्गता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैरयिकदुर्गता, तिर्यग्योनिकदुर्गता, मनुष्यदुर्गता।

त्रय सुगता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सिद्धसुगता, देवसुगता, मनुष्यसुगता।

दुर्गति-सुगति-पद

३७२. दुर्गति तीन प्रकार की है—
१ नरक दुर्गति, २ तिर्यक योनिक दुर्गति,
३ मनुज दुर्गति।

३७३ सुगति तीन प्रकार की है—
१ सिद्ध सुगति, २ देव सुगति,
३ मनुष्य सुगति।

३७४ दुर्गत तीन प्रकार के हैं—
१ नैरयिक दुर्गत, २ तिर्यक-योनिक दुर्गत,
३ मनुष्य दुर्गत।

३७५ सुगत तीन प्रकार के हैं—१ सिद्ध-सुगत,
२ देव-सुगत, ३. मनुष्य-सुगत।

तव-पाणग-पद

३७६ चउत्थभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—उस्सेइमे संसेइमे चाउलधोवणे।

३७७ छट्ठभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—तिलोदए, तुसोदए, जवोदए।

३७८ अट्ठमभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए,

तपः-पानक-पदम्

चतुर्थभक्तिकस्य भिक्षो कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—उत्स्वेदिम ससेकिम तन्दुलधावनम्।

षष्ठभक्तिकस्य भिक्षो कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—तिलोदक, तुषोदक, यवोदकम्।

अष्टमभक्तिकस्य भिक्षो कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—

तपः-पानक-पद

३७६ चतुर्थभक्त [उपवास] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक[91] ग्रहण कर सकता है—
१ उत्स्वेदिम—आटे का धोवन,
२ ससेकिम—सिझाए हुए केर आदि का धोवन, ३ चावल का धोवन।

३७७ छट्ठभक्त [बेले की तपस्या] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक ले सकता है—
१ तिलोदक, २ तुषोदक, ३ यवोदक।

३७८ अट्ठभक्त [तेले की तपस्या] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक ले सकता है—

त जहा—आयामए, सोवीरए, सुद्धवियडे ।

आचामक, सौवीरक, शुद्धविकटम् ।

१. आयामक—अवस्रावण—ओसामन ।
२. सौवीरक—काजी,
३. शुद्धविकट—उष्णोदक ।

पिंडेसणा-पदं

पिण्डैषणा-पदम्

पिण्डैषणा-पद

३७९ तिविहे उवहडे पण्णत्ते, त जहा—फलिओवहडे, सुद्धोवहडे ससट्ठोवहडे ।

त्रिविध उपहृत प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—फलिकोपहृत शुद्धोपहृत ससृष्टोपहृतम् ।

३७९ उपहृत भोजन तीन प्रकार का होता है—
१ फलिकोपहृत[७४]—खाने के लिए थाली आदि मे परामा हुआ भोजन—अवगृहीत नाम की पाचवीं पिण्डैषणा ।
२ शुद्धोपहृत[७५]—खाने के लिए साथ मे लाया हुआ लेप रहित भोजन—अल्पलेपा नाम की चौथी पिण्डैषणा ।
३ ससृष्टोपहृत—खाने के लिए हाथ मे उठाया हुआ भोजन ।

३८० तिविहे ओग्गहिते पण्णत्ते, तं जहा—ज च ओगिण्हति, ज च साहरति, ज च आसगसि पक्खिवति ।

त्रिविध अवगृहीत प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—यच्च अवगृण्हाति, यच्च सहरति, यच्च आस्यके प्रक्षिपति ।

३८० अवगृहीत भोजन तीन प्रकार का होता है—
१ परोसने के लिए उठाया हुआ,
२ परोसा हुआ, ३ पुन पाक-पात्र के मुह मे डाला हुआ ।

ओमोयरिया-पदं

अवमोदरिका-पदम्

अवमोदरिका-पद

३८१. तिविधा ओमोयरिया पण्णत्ता, त जहा—
उवगरणोमोयरिया, भत्तपाणोमोदरिया, भावोमोदरिया ।

त्रिविधा अवमोदरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उपकरणावमोदरिका,
भक्तपानावमोदरिका,
भावावमोदरिका ।

३८१ अवमोदरिका—कम करने की वृत्ति तीन प्रकार की होती है—
१ उपकरण अवमोदरिका,
२ भक्तपान अवमोदरिका,
३ भाव अवमोदरिका—क्रोध आदि का परित्याग ।

३८२ उवगरणोमोदरिया तिविहा पण्णत्ता, त जहा—
एगे वत्थे, एगे पाते, चियत्तोवहि-साइज्जणया ।

उपकरणावमोदरिका त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एक वस्त्र, एक पात्र, 'चियत्त' [सम्मत] उपधि-स्वादनम् ।

३८२ उपकरण अवमोदरिका तीन प्रकार की होती है—१. एक वस्त्र रखना,
२ एक पात्र रखना,
३ सम्मत उपकरण रखना ।

णिग्गथ-चरिया-पदं

निर्ग्रन्थ-चर्या-पदम्

निर्ग्रन्थ-चर्या-पद

३८३ तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अहियाए असुभाए

त्रीणि स्थानानि निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अहिताय अशुभाय

३८३ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम [अनुपयुक्तता],

अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—
कूअणता, कक्करणता,
अवज्झाणता।

अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, त जहा—
कूजनता, 'कर्करणता', अपध्यानता।

अनिःश्रेयस् तथा अनानुगामिता [अशुभ बन्धन] के हेतु होते हैं—
१. कूजनता—आर्त्त स्वर करना,
२. कर्करणता—परदोषोद्भावन के लिए प्रलाप करना,
३. अपध्यानता—अशुभ चिन्तन करना।

३८४. तओ ठाणा णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा हिताए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भवति, त जहा—अकूअणता,
अकक्करणता, अणवज्झाणता।

त्रीणि स्थानानि निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
अकूजनता, 'अकर्करणता', अनपध्यानता।

३८४ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस तथा आनुगामिता के हेतु होते हैं—१ अकूजनता, २ अकर्करणता, ३ अनपध्यानता।

सल्ल-पदं

३८५ तओ सल्ला पण्णत्ता, त जहा—
मायासल्ले, णियाणसल्ले, मिच्छादसणसल्ले।

शल्य-पदम्

त्रीणि शल्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मायाशल्य, निदानशल्य
मिथ्यादर्शनशल्यम्।

शल्य-पद

३८५ शल्य तीन प्रकार का है—१ माया शल्य, २ निदान शल्य, ३. मिथ्यादर्शन शल्य।

तेउलेस्सा-पदं

३८६ तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे सखित्तविउलतेउलेस्से भवति, त जहा—आयावणताए, खंतिखमाए,
अपाणगेण तवोकम्मेण।

तेजोलेश्या-पदम्

त्रिभि स्थानैः श्रमण निर्ग्रन्थ सक्षिप्त-विपुलतेजोलेश्यो भवति, तद्यथा—
आतापनया, क्षान्तिक्षमया,
अपानकेन तपःकर्मणा।

तेजोलेश्या-पद

३८६ तीन स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ सक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्या वाले होते हैं—
१ आतापना लेने से,
२ क्रोधविजयी होने के कारण समर्थ होते हुए भी क्षमा करने से,
३ जल रहित तपस्या करने से।

भिक्खुपडिमा-पदं

३८७ तिमासियं ण भिक्खुपडिम पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पति तओ दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहेत्तए, तओ पाणगस्स।

भिक्षुप्रतिमा-पदम्

त्रिमासिकी भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पते तिस्र दत्ती भोजनस्य प्रतिग्रहीतु, तिस्र पानकस्य।

भिक्षुप्रतिमा-पद

३८७ त्रैमासिक भिक्षु प्रतिमा से प्रतिपन्न अनगार भोजन और पानी की तीन दत्तियां ले सकता है।

३८८ एगरातियं भिक्खुपडिमं सम्म अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहिताए असुभाए

एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमां सम्यग् अननुपालयत अनगारस्य इमानि त्रीणि स्थानानि अहिताय अशुभाय अक्षमाय

३८८ एक रात्रि की बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा का सम्यग् अनुपालन नहीं करने वाले भिक्षु के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम,

अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, तं जहा—
उम्माय वा लभिज्जा,
दीहकालिय वा रोगातक पाउणेज्जा,
केवलीपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति तद्यथा—उन्माद वा लभेत, दीर्घकालिक वा रोगातक प्राप्नुयात्, केवलिप्रज्ञप्तात् वा धर्मात् भ्रश्येत्।

अनिःश्रेयस तथा अनानुगामिता के हेतु होते हैं—
१ या तो वह उन्माद को प्राप्त हो जाता है,
२ या लम्बी बीमारी या आतक से ग्रसित हो जाता है।
३ या केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

३८९. एगरातियं भिक्खुपडिम सम्म अणुपालेमाणस्स अणगारस्स तओ ठाणा हिताए सुभाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
ओहिणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा,
मणपज्जवणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा,
केवलणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा।

एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमां सम्यग् अनुपालयन अनगारस्य त्रीणि स्थानानि हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—अवधिज्ञान वा तस्य समुत्पद्येत, मनःपर्यवज्ञान वा तस्य समुत्पद्येत, केवलज्ञान वा तस्य समुत्पद्येत।

३८९ एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का सम्यग् अनुपालन करने वाले भिक्षु के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस् तथा आनुगामिता के हेतु होते हैं—
१ या तो उसे अवधि ज्ञान प्राप्त हो जाता है,
२ या मन पर्यव ज्ञान प्राप्त हो जाता है,
३ या केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

कम्मभूमी-पदं

३९० जंबुद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
भरहे, एरवए, महाविदेहे।
३९१. एव—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

कर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे तिस्र कर्मभूमय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भरत, ऐरवत, महाविदेह।

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे।

कर्मभूमि-पद

३९० जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में तीन कर्म-भूमियां हैं—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ महाविदेह।
३९१ इसी प्रकार धातकीषड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे तीन-तीन कर्म भूमियां हैं।

दसण-पदं

३९२ तिविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा—
सम्मद्दसणे, मिच्छद्दसणे,
सम्मामिच्छद्दसणे।
३९३ तिविहा रुई पण्णत्ता, त जहा—
सम्मरुई, मिच्छरुई,
सम्मामिच्छरुई।

दर्शन-पदम्

त्रिविध दर्शन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन,
सम्यग्मिथ्यादर्शनम्।
त्रिविधा रुचि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सम्यग्रुचि, मिथ्यारुचि,
सम्यग्मिथ्यारुचि।

दर्शन-पद

३९२ दर्शन[७१] तीन प्रकार का होता है—
१ सम्यग्दर्शन, २ मिथ्यादर्शन,
३ सम्यग्-मिथ्यादर्शन।
३९३ रुचि[७२] तीन प्रकार की होती हैं—
१ सम्यग्रुचि, २ मिथ्यारुचि,
३ सम्यग्-मिथ्यारुचि।

पओग-पदं

३९४ तिविधे पओगे पण्णत्ते, त जहा— सम्मपओगे, मिच्छपओगे, सम्मामिच्छपओगे ।

प्रयोग-पदम्

त्रिविध प्रयोग प्रज्ञप्त, तद्यथा— सम्यक् प्रयोग, मिथ्याप्रयोग, सम्यग्मिथ्याप्रयोग ।

प्रयोग-पद

३९४ प्रयोग[७६] तीन प्रकार का होता है— १ सम्यग्प्रयोग, २ मिथ्याप्रयोग, ३ सम्यग्मिथ्याप्रयोग ।

ववसाय-पदं

३९५ तिविहे ववसाए पण्णत्ते, त जहा— धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मियाधम्मिए ववसाए ।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, त जहा— पच्चक्खे, पच्चइए, आणुगामिए ।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, त जहा—इहलोइए, परलोइए, इहलोइय-परलोइए ।

३९६ इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—लोइए, वेइए, सामइए ।

३९७ लोइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, त जहा—अत्थे, धम्मे, कामे ।

३९८ वेइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, त जहा—रिव्वेदे, जउव्वेदे, सामवेदे ।

३९९ सामइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते त जहा— णाणे, दसणे, चरित्ते ।

व्यवसाय-पदम्

त्रिविध व्यवसाय प्रज्ञप्त, तद्यथा— धार्मिक व्यवसाय, अधार्मिक व्यवसाय, धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय ।

अथवा—त्रिविध व्यवसाय प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रत्यक्ष, प्रात्ययिक, आनुगामिक ।

अथवा—त्रिविध व्यवसाय प्रज्ञप्त, तद्यथा—ऐहलौकिक, पारलौकिक, ऐहलौकिक-पारलौकिक ।

ऐहलौकिको व्यवसाय त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—लौकिक, वैदिक, सामयिक ।

लौकिको व्यवसाय त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—अर्थ, धर्म, काम ।

वैदिक व्यवसाय त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ।

सामयिक व्यवसाय त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञान, दर्शन, चरित्रम् ।

व्यवसाय-पद

३९५ व्यवसाय[७७] तीन प्रकार का होता है— १ धार्मिक व्यवसाय, २ अधार्मिक व्यवसाय, ३ धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय ।

अथवा—व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ प्रत्यक्ष, २ प्रात्ययिक—व्यवहार प्रत्यक्ष, ३ आनुगामिक—आनुमानिक ।

अथवा—व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ इहलौकिक, २ पारलौकिक, ३ इहलौकिक-पारलौकिक ।

३९६ इहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ लौकिक, २ वैदिक, ३ सामयिक—श्रमणो का व्यवसाय ।

३९७ लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ अर्थ, २ धर्म, ३ काम ।

३९८ वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है— १ ऋग्वेद, २ यजुर्वेद, ३ सामवेद ।

३९९ सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चरित्र ।

अत्थजोणी-पदं

४०० तिविधा अत्थजोणी पण्णत्ता, त जहा—सामे, दडे, भेदे ।

अर्थयोनि-पदम्

त्रिविधा अर्थयोनि प्रज्ञप्ता, तद्यथा— साम, दण्ड, भेद ।

अर्थयोनि-पद

४०० अर्थयोनि[७८] [अर्थ प्राप्ति के उपाय] तीन प्रकार की होती है— १ साम, २ दण्ड, ३ भेद ।

पोग्गल-पद

४०१ तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा—
पओगपरिणता, मीसापरिणता, वीससापरिणता।

पुद्गल-पदम्

त्रिविधा पुद्गला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रयोगपरिणता, मिश्रपरिणता, विस्रसापरिणता।

पुद्गल-पद

४०१ पुद्गल तीन प्रकार के होते हैं—
१ प्रयोग-परिणत—जीव के द्वारा गृहीत पुद्गल,
२ मिश्र-परिणत—जीव के प्रयोग तथा स्वाभाविक रूप से परिणत पुद्गल,
३ विस्रसा—स्वभाव से परिणत पुद्गल।

णरग-पदं

४०२. तिपतिट्ठिया णरगा पण्णत्ता, त जहा—पुढविपतिट्ठिता, आगास-पतिट्ठिता, आयपइट्ठिया।
णेगम-सगह-ववहाराण पुढवि-पइट्ठिया, उज्जुसुतस्स आगास-पतिट्ठिया, तिण्ह सद्दणयाण आयपतिट्ठिया।

नरक-पदम्

त्रिप्रतिष्ठिता नरका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीप्रतिष्ठिता, आकाशप्रतिष्ठिता, आत्मप्रतिष्ठिता।
नैगम-सग्रह-व्यवहाराणा पृथिवी-प्रतिष्ठिता, ऋजुसूत्रस्य आकाश-प्रतिष्ठिता, त्रयाणा शब्दनयाना आत्मप्रतिष्ठिता।

नरक-पद

४०२ नरक त्रिप्रतिष्ठित है[७७]—
१ पृथ्वी प्रतिष्ठित, २ आकाश प्रतिष्ठित, ३ आत्म प्रतिष्ठित।
नैगम, सग्रह तथा व्यवहार-नय की अपेक्षा से वे पृथ्वी प्रतिष्ठित हैं
ऋजु-सूत्रनय की अपेक्षा से वे आकाश प्रतिष्ठित हैं
तीन शब्द—नयो की अपेक्षा से वे आत्म-प्रतिष्ठित हैं।

मिच्छत्त-पद

४०३ तिविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, त जहा—
अकिरिया, अविणए, अण्णाणे।

मिथ्यात्व-पदम्

त्रिविध मिथ्यात्व प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अक्रिया, अविनय, अज्ञानम्।

मिथ्यात्व-पद

४०३ मिथ्यात्व[७८]—असमीचीनता—तीन प्रकार का होता है—
१ अक्रिया—असमीचीनक्रिया,
२ अविनय—असमीचीनसबधविच्छेद,
३ अज्ञान—असमीचीन ज्ञान।

४०४ अकिरिया तिविधा पण्णत्ता, त जहा—पओगकिरिया, समुदाण-किरिया, अण्णाणकिरिया।

अक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रयोगक्रिया, समुदानक्रिया, अज्ञानक्रिया।

४०४ अक्रिया[७९] तीन प्रकार की होती है—
१ प्रयोगक्रिया—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति,
२ समुदानक्रिया—कर्म पुद्गलों का आदान
३ अज्ञानक्रिया—असम्यग्ज्ञान की, प्रवृत्ति।

४०५ पओगकिरिया तिविधा पण्णत्ता, त जहा—मणपओगकिरिया,

प्रयोगक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मन प्रयोगक्रिया, वाक्प्रयोगक्रिया,

४०५ प्रयोग क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ मनप्रयोग क्रिया,

वइपओगकिरिया, कायपओग-किरिया।

कायप्रयोगक्रिया।

२ वचनप्रयोग क्रिया,
३ कायप्रयोग क्रिया।

४०६ समुदाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, त जहा—अणतरसमुदाणकिरिया, परपरसमुदाणकिरिया, तदुभयसमुदाणकिरिया।

समुदानक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरसमुदानक्रिया, परम्परसमुदानक्रिया, तदुभयसमुदानक्रिया।

४०६ समुदान क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ अनन्तरसमुदान क्रिया,
२ परम्परसमुदान क्रिया,
३ तदुभयसमुदान क्रिया।

४०७ अण्णाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, त जहा—मतिअण्णाणकिरिया, सुतअण्णाणकिरिया, विभंगअण्णाणकिरिया।

अज्ञानक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मत्यज्ञानक्रिया, श्रुताज्ञानक्रिया, विभङ्गाज्ञानक्रिया।

४०७ अज्ञान क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ मतिअज्ञान क्रिया,
२ श्रुतअज्ञान क्रिया,
३ विभगअज्ञान क्रिया।

४०८ अविणए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—देसच्चाई, णिरालवणता, णाणापेज्जदोसे।

अविनय त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—देशत्यागी, निरालम्बनता, नानाप्रेयोदोप।

४०८ अविनय तीन प्रकार का होता है—
१ देश-त्याग—देश को छोडकर चले जाना,
२ निरालम्बन—समाज से अलग हो जाना,
३ नानाप्रेयोद्वेपी—प्रेम और द्वेप का नाना रूप से प्रयोग करना, प्रिय के साथ प्रेम और अप्रिय के साथ द्वेप—इस सामान्य नियम का अतिक्रमण करना।

४०९. अण्णाणे तिविधे पण्णत्ते, त जहा—देसण्णाणे, सव्वण्णाणे, भावण्णाणे।

अज्ञान त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—देशाज्ञान, सर्वाज्ञान, भावाज्ञान।

४०९ अज्ञान तीन प्रकार का होता है—
१ देश अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु के किसी एक अश को न जानना,
२ सर्व अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु को सर्वत न जानना,
३ भाव अज्ञान—वस्तु के ज्ञातव्य पर्यायो को न जानना।

धम्म-पद

धर्म-पदम्

धर्म-पद

४१० तिविहे धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

त्रिविध धर्म प्रज्ञप्त, तद्यथा—श्रुतधर्म, चरित्रधर्म, अस्तिकायधर्म।

४१० धम तीन प्रकार का होता है—
१ श्रुत-धर्म, २ चरित्र-धर्म,
३ अस्तिकाय-धर्म।

उवक्कम-पदं

उपक्रम-पदम्

उपक्रम-पद

४११ तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, त जहा—

त्रिविध उपक्रम प्रज्ञप्त तद्यथा—

४११ उपक्रम [उपायपूर्वक आरम्भ] तीन

धम्मिए उवक्कमे, अधम्मिए उवक्कमे, धम्मियाधम्मिए उवक्कमे

धार्मिक उपक्रम., अधार्मिक उपक्रम, धार्मिकाधार्मिक उपक्रम ।

प्रकार का होता है—
१ धार्मिक—सयम का उपक्रम,
२ अधार्मिक—असयम का उपक्रम,
३ धार्मिकाधार्मिक—सयम और असयम का उपक्रम।

अहवा—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—आओवक्कमे, परोवक्कमे, तदुभयोवक्कमे ।

अथवा—त्रिविध उपक्रम प्रज्ञप्त तद्यथा—आत्मोपक्रम, परोपक्रम, तदुभयोपक्रम ।

अथवा—उपक्रम तीन प्रकार का होता है—१ आत्मोपक्रम—अपने लिए,
२ परोपक्रम—दूसरो के लिए,
३ तदुभयोपक्रम—दोनो के लिए।

४१२. °तिविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, त जहा—आयवेयावच्चे, परवेयावच्चे, तदुभयवेयावच्चे ।

त्रिविध वैयावृत्त्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आत्मवैयावृत्त्य, परवैयावृत्त्य, तदुभयवैयावृत्त्यम् ।

४१२ वैयावृत्त्य तीन प्रकार का होता है—
१ आत्म-वैयावृत्त्य, २ पर-वैयावृत्त्य,
३ तदुभय वैयावृत्त्य।

४१३ तिविधे अणुग्गहे पण्णत्ते त जहा—आयअणुग्गहे, परअणुग्गहे, तदुभयअणुग्गहे ।

त्रिविध अनुग्रह प्रज्ञप्त, तद्यथा—आत्मानुग्रह, परानुग्रह, तदुभयानुग्रह ।

४१३ अनुग्रह तीन प्रकार का होता है—
१ आत्मानुग्रह, २ परानुग्रह,
३ तदुभयानुग्रह ।

४१४ तिविधा अणुसट्ठी पण्णत्ता, त जहा—आयअणुसट्ठी, परअणुसट्ठी, तदुभयअणुसट्ठी।

त्रिविधा अनुशिष्टि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आत्मानुशिष्टि, परानुशिष्टि, तदुभयानुशिष्टि ।

४१४ अनुशिष्टि तीन प्रकार की होती है—
१ आत्मानुशिष्टि, २ परानुशिष्टि,
३ तदुभयानुशिष्टि।

४१५. तिविधे उवालंभे पण्णत्ते त जहा—आओवालंभे, परोवालंभे, तदुभयोवालंभे° ।

त्रिविध उपालम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—आत्मोपालम्भ, परोपालम्भ, तदुभयोपालम्भ ।

४१५ उपालम्भ तीन प्रकार का होता है—
१ आत्मोपालम्भ, २ परोपालम्भ,
३ तदुभयोपालम्भ।

तिवग्ग-पद

त्रिवर्ग-पदम्

त्रिवर्ग-पद

४१६ तिविहा कहा पण्णत्ता, त जहा—अत्थकहा, धम्मकहा, कामकहा ।

त्रिविधा कथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अर्थकथा, धर्मकथा, कामकथा।

४१६ कथा तीन प्रकार की होती है—
१ अर्थ कथा, २ धर्म कथा, ३ कामकथा।

४१७ तिविहे विणिच्छए पण्णत्ते, तं जहा—अत्थविणिच्छए, धम्मविणिच्छए, कामविणिच्छए ।

त्रिविध विनिश्चय प्रज्ञप्त, तद्यथा—अर्थविनिश्चय, धर्मविनिश्चय, कामविनिश्चय ।

४१७ विनिश्चय तीन प्रकार का होता है—
१ अर्थ विनिश्चय, २ धर्म विनिश्चय,
३ काम विनिश्चय।

४१८ तहारूव ण भते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणया ?

तथारूप भदन्त ! श्रमण वा माहन वा पर्युपासमानस्य किंफला पर्युपासना ?

४१८. भन्ते ! तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना करने का क्या फल है ?

सवणफला ।

श्रवणफला ।

आयुष्मन् ! उसका फल है धर्म का श्रवण।

से णं भते ! सवणे किंफले ?

तद् भदन्त ! श्रवण किंफलम् ?

भते ! श्रवण का क्या फल है ?

णाणफले ।

ज्ञानफलम्।

आयुष्मन् ! श्रवण का फल है ज्ञान।

से ण भते ! णाणे किंफले ? तद् भदन्त ! ज्ञान किंफलम् ? भते ! ज्ञान का क्या फल है ?
विण्णाणफले। विज्ञानफलम्। आयुष्मन् ! ज्ञान का फल है विज्ञान।
•से ण भते ! विण्णाणे किंफले ? तद् भदन्त ! विज्ञान किंफलम् ? भते ! विज्ञान का क्या फल है ?
पच्चक्खाणफले। प्रत्याख्यानफलम्। आयुष्मन् ! विज्ञान का फल है प्रत्याख्यान।
से ण भते ! पच्चक्खाणे किंफले ? तद् भदन्त ! प्रत्याख्यान किंफलम् ? भते ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ?
सजमफले। सयमफलम्। आयुष्मन् ! प्रत्याख्यान का फल है। सयम
से ण भते ! सजमे किंफले ? स भदन्त ! सयम ! किंफल ? भते ! सयम का क्या फल है ?
अणण्हयफले। अनाश्रवफल। आयुष्मन् ! सयम का फल है अनाश्रव—कर्मनिरोध।
से ण भते ! अणण्हए किंफले ? स भदन्त ! अनाश्रव किंफल ? भते ! अनाश्रव का क्या फल है !
आयुष्मन् ! अनाश्रव का फल है तप।
तवफले। तप फल। भते ! तप का क्या फल है ?
से णं भते ! तवे किंफले ? तद् भदन्त ! तप किंफलम् ? आयुष्मन् ! तप का फल है व्यवदान—निर्जरा।
वोदाणफले। व्यवदानफलम्। भते ! व्यवदान का क्या फल है ?
से ण भते ! वोदाणे किंफले ? तद् भदन्त ! व्यवदान किंफलम् ? आयुष्मन् ! व्यवदान का फल है अक्रिया—
अकिरियफले।° अक्रियाफलम्। मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध।
सा ण भते ! अकिरिया किंफला ? सा भदन्त ! अक्रिया किंफला ? भंते ! अक्रिया का क्या फल है ?
णिव्वाणफला। निर्वाणफला। आयुष्मन् ! अक्रिया का फल है निर्वाण।
से ण भते ! णिव्वाणे किंफले ? तद् भदन्त ! निर्वाण किंफलम् ? भते ! निर्वाण का क्या फल है ?
सिद्धिगइ-गमण-पज्जवसाण-फले समणाउसो ! सिद्धिगति-गमन-पर्यवमान-फल आयुष्मन् ! श्रमण ! आयुष्मन् ! श्रमणो ! निर्वाण का फल है सिद्धिगति-गमन।

चउत्थो उद्देसो

पडिमा-पद

४१९ पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया पडिलेहित्तए, त जहा—
अहे आगमणगिहसि वा,
अहे वियडगिहसि वा,
अहे रुक्खमूलगिहसि वा।

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रय उपाश्रया प्रतिलेखितुम्, तद्यथा—
अध आगमनगृहे वा,
अध विकटगृहे वा,
अध रुक्षमूलगृहे वा।

प्रतिमा-पद

४१९ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के आवासो का प्रतिलेखन [गवेषणा] कर सकता है—
१ आगमन गृह—सभा, पौ आदि मे,
२ विवृत गृह—खुले घर मे,
३ वृक्ष के नीचे।

४२० •पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया अणुण्णवेत्तए, तं जहा—
अहे आगमणगिहंसि वा,
अहे वियडगिहंसि वा,
अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रय उपाश्रया अनुज्ञातुम्, तद्यथा—
अध आगमनगृहे वा,
अध विकटगृहे वा,
अध रुक्षमूलगृहे वा।

४२० प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के स्थानो की अनुज्ञा [आज्ञा] ले सकता है—
१ आगमन गृह मे, २ विवृत गृह मे,
३ वृक्ष के नीचे।

४२१. पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया उवाइणित्तए, त जहा—अहे आगमणगिहंसि वा,
अहे वियडगिहंसि वा,
अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।°

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रय उपाश्रया उपादातुम्, तद्यथा—
अध आगमनगृहे वा,
अध विकटगृहे वा,
अध' रुक्षमूलगृहे वा।

४२१ प्रतिमा-प्रनिपन्न अनगार तीन प्रकार के स्थानो मे रह सकता है—
१ आगमन गृह मे, २ विवृत गृह मे,
३ वृक्ष के नीचे।

४२२ पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ सथारगा पडिलेहित्तए, त जहा—
पुढविसिला, कट्ठसिला,
अहासंथडमेव।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सम्स्तारकाणि प्रतिलेखितुम्, तद्यथा—पृथिवीशिला, काष्ठशिला, यथासंस्तृतमेव।

४२२ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के सस्तारको का प्रतिलेपन कर सकता है—
१ पृथ्वी शिला,
२ काष्ठ शिला—तख्ता आदि।
३ यथा-सस्तृत—घास आदि।

४२३. •पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ सथारगा अणुण्णवेत्तए त जहा— पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासंथडमेव।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सस्तारकाणि अनुज्ञातुम्, तद्यथा—
पृथिवीशिला, काष्ठशिला,
यथासंस्तृतमेव।

४२३ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के सस्तारकों की अनुज्ञा ले सकता है—
१ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला,
३ यथा-सस्तृत।

४२४ पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ संथारगा उवाइणित्तए, त जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासंथडमेव।°

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सस्तारकाणि उपादातुम्, तद्यथा—
पृथिवीशिला, काष्ठशिला,
यथासस्तृतमेव।

४२४ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के सस्तारको का उपयोग कर सकता है—
१ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला,
३ यथा-सस्तृत।

काल-पदं

काल-पदम्

काल-पद

४२५ तिविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—
तीए, पडुप्पण्णे, अणागए।

त्रिविध काल प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अतीत, प्रत्युत्पन्न, अनागत।

४२५ काल तीन प्रकार का होता है—
१ अतीत—भूतकाल,
२ प्रत्युत्पन्न—वर्तमान।
३ अनागत—भविष्य।

४२६ तिविहे समए पण्णत्ते, त जहा—
तीते, पडुप्पण्णे, अणागए।

त्रिविध समय प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अतीत, प्रत्युत्पन्न, अनागत।

४२६ समय तीन प्रकार का है—
१ अतीत, २ प्रत्युत्पन्न, ३ अनागत।

४२७ एव—आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते जाव वाससत-

एवम्—आवलिका आनप्राण स्तोक लव मुहूर्त्त अहोरात्र यावत् वर्षशत-

४२७ इसी प्रकार आवलिका आन-प्राण स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र यावत् लाखवर्ष,

सहस्से पुव्वंगे पुव्वे जाव ओसप्पिणी।

सहस्र पूर्वाङ्ग पूर्व यावत् अवसर्पिणी।

पूर्वांग, पूर्व यावत् अवसर्पिणी तीन-तीन प्रकार की होती हैं।[८]

४२८ तिविधे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, त जहा—तीते, पडुप्पण्णे, अणागते।

त्रिविध पुद्गलपरिवर्त्त प्रज्ञप्त, तद्यथा—अतीत, प्रत्युत्पन्न, अनागत।

४२८ पुद्गल परिवर्त तीन प्रकार का है—
१ अतीत, २ प्रत्युत्पन्न, ३ अनागत।

वयण-पदं

वचन-पदम्

वचन-पद

४२९ तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे।
अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—इत्थिवयणे, पुवयणे, णपुसगवयणे।
अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—तीतवयणे, पडुप्पण्णवयणे, अणागयवयणे।

त्रिविध वचन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकवचन, द्विवचन, बहुवचनम्।
अथवा—त्रिविध वचन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—स्त्रीवचन, पुवचन, नपुसकवचनम्।
अथवा—त्रिविध वचन प्रज्ञप्तम् तद्यथा—अतीतवचन, प्रत्युत्पन्नवचन, अनागतवचनम्।

४२९ वचन तीन प्रकार का होता है—
१ एकवचन, २ द्विवचन, ३ बहुवचन।
अथवा—वचन तीन प्रकार का होता है—
१ स्त्रीवचन, २ पुरुषवचन
३ नपुसकवचन।
अथवा—वचन तीन प्रकार का होता है—
१ अतीतवचन, २ प्रत्युत्पन्नवचन,
३ अनागतवचन।

णाणादीणं पण्णवणा-सम्म-पदं

ज्ञानादीनां प्रज्ञापना-सम्यक्-पदम्

ज्ञान आदि की प्रज्ञापना-सम्यक्-पद

४३० तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता, त जहा—णाणपण्णवणा, दसणपण्णवणा, चरित्तपण्णवणा।

त्रिविधा प्रज्ञापना प्रज्ञप्ता तद्यथा—ज्ञानप्रज्ञापना, दर्शनप्रज्ञापना, चरित्रप्रज्ञापना।

४३० प्रज्ञापना तीन प्रकार की होती है—
१ ज्ञान प्रज्ञापना, २ दर्शन प्रज्ञापना,
३ चरित्र प्रज्ञापना।

४३१ तिविधे सम्मे पण्णत्ते, त जहा—णाणसम्मे, दसणसम्मे, चरित्तसम्मे।

त्रिविध सम्यक् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ज्ञानसम्यक्, दर्शनसम्यक्, चरित्रसम्यक्।

४३१ सम्यक् तीन प्रकार का होता है—
१ ज्ञान-सम्यक्, २ दर्शन सम्यक्,
३ चरित्र सम्यक्।

उवघात-विसोहि-पदं

उपघात-विशोधि-पदम्

उपघात-विशोधि-पद

४३२ तिविवे उवघाते पण्णत्ते, त जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते।

त्रिविध उपघात प्रज्ञप्त, तद्यथा—उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात, एषणोपघात।

४३२ उपघात [चरित्र की विराधना] तीन प्रकार की होती है—
१ उद्गम उपघात,
२ उत्पादन उपघात,
३ एषणा उपघात।[९]

४३३. •तिविधा विसोही पण्णत्ता, त जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणाविसोही।°

त्रिविधा विशोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उद्गमविशोधि, उत्पादनविशोधि, एषणाविशोधि।

४३३ विशोधि तीन प्रकार की होती है—
१ उद्गम की विशोधि,
२ उत्पादन की विशोधि,
३ एषणा की विशोधि।

आराहणा-पदं

४३४ तिविहा आराहणा पण्णत्ता, त जहा—णाणाराहणा, दसणाराहणा, चरित्ताराहणा।

४३५ णाणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—उक्कोमा, मज्झिमा, जहण्णा।

४३६ •दसणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

४३७ चरित्ताराहणा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

आराधना-पदम्

त्रिविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना।

ज्ञानाराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

दर्शनाराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

चरित्राराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

आराधना-पद

४३४ आराधना तीन प्रकार की होती है—१ ज्ञान आराधना, २ दर्शन आराधना, ३ चरित्र आराधना।

४३५ ज्ञान आराधना तीन प्रकार की होती है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

४३६ दर्शन आराधना तीन प्रकार की होती है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

४३७ चरित्र आराधना तीन प्रकार की होती है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३ जघन्य।

संकिलेस-असंकिलेस-पदं

४३८ तिविधे सकिलेसे पण्णत्ते तं जहा—णाणसकिलेसे, दसणसकिलेसे, चरित्तसकिलेसे।

४३९ •तिविधे असकिलेसे पण्णत्ते, त जहा—णाणअसकिलेसे, दसणअसंकिलेसे, चरित्तअसकिलेसे।

सक्लेश-असक्लेश-पदम्

त्रिविध सक्लेश प्रज्ञप्त तद्यथा—ज्ञानसक्लेश, दर्शनसक्लेश, चरित्रसक्लेश।

त्रिविध असक्लेश प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञानासक्लेश, दर्शनासक्लेश, चरित्रासक्लेश।

सक्लेश-असक्लेश-पद

४३८ सक्लेश[७९] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान सक्लेश, २ दर्शन सक्लेश, ३ चरित्र सक्लेश।

४३९ असक्लेश तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान असक्लेश, २ दर्शन असक्लेश, ३ चरित्र असक्लेश।

अइक्कम-आदि-पद

४४० तिविधे अतिक्कमे पण्णत्ते, त जहा—णाणअतिक्कमे, दसणअतिक्कमे, चरित्तअतिक्कमे।

४४१ तिविधे वइक्कमे पण्णत्ते, त जहा—णाणवइक्कमे, दसणवइक्कमे, चरित्तवइक्कमे।

४४२ तिविधे अइयारे पण्णत्ते, त जहा—णाणअइयारे, दसणअइयारे, चरित्तअइयारे।

अतिक्रम-आदि-पदम्

त्रिविध अतिक्रम प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञानातिक्रम, दर्शनातिक्रम, चरित्रातिक्रम।

त्रिविध व्यतिक्रम प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञानव्यतिक्रम, दर्शनव्यतिक्रम, चरित्रव्यतिक्रम।

त्रिविध अतिचार प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार, चरित्रातिचार।

अतिक्रम-आदि-पद

४४० अतिक्रम[८०] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान अतिक्रम, २ दर्शन अतिक्रम, ३ चरित्र अतिक्रम।

४४१ व्यतिक्रम[८१] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान व्यतिक्रम, २ दर्शन व्यतिक्रम, ३ चरित्र व्यतिक्रम।

४४२ अतिचार[८२] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान अतिचार, २ दर्शन अतिचार, ३ चरित्र अतिचार।

४४३ तिविधे अणायारे पण्णत्ते, त जहा—
णाणअणायारे, दसणअणायारे,
चरित्तअणायारे।°

त्रिविध अनाचार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानानाचार, दर्शनानाचार,
चरित्रानाचार।

४४३ अनाचार" तीन प्रकार का होता है—
१ ज्ञान अनाचार, २ दर्शन अनाचार,
३ चरित्र अनाचार।

४४४. तिण्हमतिक्कमाण—आलोएज्जा
पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा गरहेज्जा
•विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म°
पडिवज्जेज्जा, त जहा—
णाणातिक्कमस्स, दसणातिक्कमस्स,
चरित्तातिक्कमस्स।

त्रीन् अतिक्रमान्—आलोचयेत् प्रति-
क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशो-
धयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं
प्रायश्चित्त तप कर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञानातिक्रम, दर्शनातिक्रम,
चरित्रातिक्रमम्।

४४४ तीन प्रकार के अतिक्रमो की—
आलोचना करनी चाहिए
प्रतिक्रमण करना चाहिए
निन्दा करनी चाहिए
गर्हा करनी चाहिए
व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा नही करने का सकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म
स्वीकार करना चाहिए—
१ ज्ञानातिक्रम की, २ दर्शनातिक्रम की,
३ चरित्रातिक्रम की।

४४५ •तिण्ह वइक्कमाण—आलोएज्जा
पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा गरहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म
पडिवज्जेज्जा, त जहा—
णाणवइक्कमस्स, दसणवइक्कमस्स,
चरित्तवइक्कमस्स।

त्रीन् व्यतिक्रमान्—आलोचयेत् प्रति-
क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत्
अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं
प्रायश्चित्त तप कर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञानव्यतिक्रम, दर्शनव्यतिक्रम,
चरित्रव्यतिक्रमम्।

४४५ तीन प्रकार के व्यतिक्रमो की—
आलोचना करनी चाहिए
प्रतिक्रमण करना चाहिए
निन्दा करनी चाहिए
गर्हा करनी चाहिए
व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा न करने का सकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म
स्वीकार करना चाहिए—
१ ज्ञान व्यतिक्रम की,
२ दर्शन व्यतिक्रम की,
३ चरित्र व्यतिक्रम की।

४४६ तिण्हमतिचाराण—
आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा

त्रीन् अतिचारान्—आलोचयेत् प्रति-
क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत्
अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्राय-
श्चित्त तप कर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार,

४४६ तीन प्रकार के अतिचारो की—
आलोचना करनी चाहिए
प्रतिक्रमण करना चाहिए
निन्दा करनी चाहिए
गर्हा करनी चाहिए

अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
णाणातिचारस्स, दंसणातिचारस्स चरित्तातिचारस्स।

चरित्रातिचारम्।

व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करना चाहिए—
१ ज्ञानातिचार की, २ दर्शनातिचार की,
३ चरित्रातिचार की।

४४७. णिग्गंथाणं तओ अणायाराणं—
आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
णाण-अणायारस्स,
दंसण-अणायारस्स,
चरित्त-अणायारस्स।[8]

त्रीन् अनाचारान्—आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञान-अनाचारं, दर्शन-अनाचारं,
चरित्र-अनाचारम्।

४४७ तीन प्रकार के अनाचारों की—
आलोचना करनी चाहिए
प्रतिक्रमण करना चाहिए
निन्दा करनी चाहिए
गर्हा करनी चाहिए
व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए—
१ ज्ञान अनाचार की,
२ दर्शन अनाचार की,
३ चरित्र अनाचार की।

पायच्छित्त-पद

४४८ तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे,
पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

त्रिविधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

४४८ प्रायश्चित्त तीन प्रकार का होता है—
१ आलोचना के योग्य,
२. प्रतिक्रमण के योग्य, ३ तदुभय योग्य।

अकम्मभूमी-पद

४४९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते,
हरिवासे, देवकुरा।

अकर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे तिस्रः अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हैमवतं, हरिवर्षं, देवकुरुः।

अकर्मभूमि-पद

४४९ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन अकर्मभूमियां हैं—
१ हैमवत, २ हरिवर्ष, ३ देवकुरु।

४५० जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उत्तरकुरा, रम्मगवासे, हेरण्णवए।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे तिस्र अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उत्तरकुरुः, रम्यकवर्षं, हैरण्यवतम्।

४५० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग में तीन अकर्मभूमियां हैं—
१ उत्तरकुरु, २ रम्यक्वर्ष, ३ ऐरण्यवत।

वास-पद

वर्ष-पदम्

वर्ष-पद

४५१ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, हेमवए, हरिवासे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, हैमवत, हरिवर्षम्।

४५१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन वर्ष हैं—
१ भरत, २ हैमवत, ३ हरिवर्ष।

४५२ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—रम्मगवासे, हेरण्णवासे, एरवए।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे त्रीणि वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रम्यकवर्षं, हैरण्यवत, ऐरवतम्।

४५२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग में तीन वर्ष हैं—१. रम्यक् वर्ष, २ हैरण्यवत ३ ऐरवत।

वासहरपव्वय-पद

वर्षधरपर्वत-पदम्

वर्षधरपर्वत-पद

४५३ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रयः वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषधः।

४५३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन वर्षधर पर्वत हैं—
१ क्षुल्लहिमवान्,
२ महाहिमवान्, ३ निषध।

४५४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे त्रयः वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नीलवान्, रुक्मी, शिखरी।

४५४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग में तीन वर्षधर पर्वत हैं—
१ नीलवान्, २ रुक्मी, ३ शिखरी।

महादह-पद

महाद्रह-पदम्

महाद्रह-पद

४५५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ महादहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमदहे, महापउमदहे, तिगिंछदहे।
तत्थ णं तओ देवताओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी, हिरी, धिती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रयः महाद्रहाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
पद्मद्रहः, महापद्मद्रः, तिगिञ्छद्रहः।
तत्र तिस्रः देवताः महर्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—श्रीः, ह्रीः, धृतिः।

४५५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन महाद्रह हैं—१ पद्मद्रह, २ महापद्मद्रह, ३ तिगिंछद्रह।
वहां पर महर्धिक [यावत्] पल्योपम की स्थितिवाली तीन देवियां परिवास करती हैं—१ श्री, २ ह्री, ३ धृति।

४५६ एव—उत्तरे णवि, णवर—
केसरिदहे, महापोंडरीयदहे,
पोंडरीयदहे ।
देवताओ—कित्ती, बुद्धी, लच्छी ।

एवम्—उत्तरे अपि, नवर—केशरीद्रह, महापुण्डरीकद्रह, पुण्डरीकद्रह । देवता—कीर्त्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ।

४५६ इसी प्रकार—जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे तीन द्रह हैं—
१ केशरी द्रह, २ महापुण्डरीक द्रह,
३ पुण्डरीक द्रह ।
यहा तीन देविया हैं—
१ कीर्ति, २ बुद्धि, ३ लक्ष्मी ।

महाणदी-पदं

महानदी-पदम्

महानदी-पद

४५७ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण चुल्लहिमवताओ वासधरपव्वताओ पउमदहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहति, त जहा—
गगा, सिंधू, रोहितसा ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवत वर्षधरपर्वतात् पद्मद्रहात् महाद्रहात् तिस्र महानद्य प्रवहन्ति, तद्यथा—गङ्गा, सिन्धू, रोहिताशा ।

४५७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पवत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवान् वपधर पर्वत से पद्मद्रह नाम के महाद्रह से तीन महानदिया प्रवाहित होती हैं—
१ गगा, २ सिंधू ३ रोहिताशा ।

४५८ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण सिहरीओ वासहरपव्वताओ पोंडरीयद्दहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहति, त जहा—
सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवत्ती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे शिखरिण वर्षधरपर्वतात् पुण्डरीकद्रहात् महाद्रहात् तिस्र महानद्य प्रवहन्ति, तद्यथा—सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तवती ।

४५८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पवत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदिया प्रवाहित होती हैं—
१ सुवर्णकूला, २ रक्ता, ३ रक्तवती ।

४५९ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
गाहावती, दहवती, पंकवती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरे तिस्र अन्तर्नद्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ग्राहवती, द्रहवती, पकवती ।

४५९ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीता महानदी के उत्तर भाग मे तीन अन्तनदियां प्रवाहित होती हैं—
१ ग्राहावती, २ द्रहवती, ३ पकवती ।

४६० जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या दक्षिणे तिस्र अन्तर्नद्य प्रज्ञप्ता तद्यथा—
तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला ।

४६० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पूव में सीता महानदी के दक्षिण भाग मे तीन अन्तर्नदिया प्रवाहित होती हैं—
१ तप्तजला, २ मत्तजला,
३ उन्मत्तजला ।

४६१ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोदाए महाणईए दाहिणे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
खीरोदा, सीहसोता, अतोवाहिणी ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे तिस्र अन्तर्नद्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षीरोदा, सिंहस्रोता, अन्तर्वाहिनी ।

४६१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के उत्तर भाग मे तीन अन्तनदिया प्रवाहित होती हैं—
१ क्षीरोदा, २ सिंहस्रोता,
३ अन्तर्वाहिनी ।

४६२ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोदाए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
उम्मिमालिणी, फेणमालिणी,
गभीरमालिणी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्य उत्तरे तिस्र अन्तर्नद्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उर्मिमालिनी, फेनमालिनी,
गम्भीरमालिनी।

४६२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग मे तीन अन्तनदियां प्रवाहित होती है—
१ ऊर्मिमालिनी, २ फेनमालिनी,
३ गम्भीरमालिनी।

धायइसड-पुक्खरवर-पदं

४६३ एव—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धेवि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अतरणदीओत्ति णिरवसेस भाणियव्व जाव पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेस भाणियव्व।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धेऽपि अकर्मभूमी आदृत्य यावत् अन्तर्नद्य-इति निरवशेष भणितव्यम् यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे तथैव निरवशेष भणितव्यम्।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

४६३ इसी प्रकार—धातकीषण्ड तथा अर्द्ध-पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे तीन अकर्मभूमि आदि [३।४४६-४६२ सूत्र तक] शेष सभी विषय वक्तव्य है।

भूकप-पदं

४६४ तिहि ठाणेहि देसे पुढवीए चलेज्जा, त जहा—
१. अहे ण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा। तते णं उराला पोग्गला णिवतमाणा देस पुढवीए चालेज्जा,
२ महोरगे वा महिड्ढीए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्ज-णिमज्जिय करेमाणे देसं पुढवीए चालेज्जा,
३ णागसुवण्णाण वा सगामसि वट्टमाणसि देसं [देसे ?] पुढवीए चलेज्जा—
इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि देसे पुढवीए चलेज्जा।

भूकम्प-पदम्

त्रिभि स्थानै देश पृथिव्या चलेत्, तद्यथा—
१ अव अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या उदारा पुद्गला नियतेयु। तत उदारा पुद्गला निपतन्त देश पृथिव्या चालयेयु,
२ महोरगो वा महर्धिको यावत् महेशाख्य अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या अव उन्मग्न-निमग्निका कुर्वत् देश पृथिव्या चालयेत्,
३ नागसुपर्णाणा वा सग्रामे वर्त्तमाने देश पृथिव्या चलेत्—
इति एतै त्रिभि स्थानै देश पृथिव्या चलेत्।

भूकम्प-पद

४६४ तीन कारणों से पृथ्वी का देश [एक भाग] चलित [कम्पित] होता है—
१ इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के निचले भाग मे स्वभाव-परिणत स्थूल पुद्गल आकर टकराते है। उनके टकराने मे पृथ्वी का देश चलित हो जाता है।
२ महर्धिक, महाद्युति, महावल तथा महानुभाग महेश नाम के महोरग—व्यतर देव रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे उन्मज्जन निमज्जन करता हुआ पृथ्वी के देश को चलित कर देता है।
३ नाग और सुपर्ण [भवनवासी] देवों के बीच सग्राम हो जाने से पृथ्वी का देश चलित हो जाता है—
इन तीन कारणो से पृथ्वी का देश चलित होता है।

४६५. तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, त जहा—
१. अधे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा। तए ण से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा। तए ण से घणोदही एइए समाणे केवलकप्पं पुढवि चालेज्जा,
२ देवे वा महिड्ढिए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढि जुति जस बल वीरिय पुरिसक्कार-परक्कम उवदसेमाणे केवलकप्पं पुढवि चालेज्जा,
३ देवासुरसगामसि वा वट्टमाणसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

त्रिभि स्थानै केवलकल्पा पृथिवी चलेत्, तद्यथा—
१. अध अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या घनवात 'क्षुभ्येत्'। तत स घनवात 'क्षुब्ध' सन् घनोदधि एजयेत्। तत स घनोदधि एजित सन् केवलकल्पा पृथिवी चालयेत्,
२ देवो वा महर्धिको यावत् महेशाख्य तथारूपस्य श्रमणस्य माहनस्य वा ऋद्धि द्युति यश बल वीर्य पुरुषकार-पराक्रम उपदर्शयन् केवलकल्पा पृथिवी चालयेत्,
३ देवासुरसग्रामे वा वर्त्तमाने केवल-कल्पा पृथिवी चलेत्—
इति एतै त्रिभि स्थानै केवलकल्पा पृथिवी चलेत्।

४६५. तीन कारणो से केवल-कल्पा—प्राय-प्राय सारी ही पृथ्वी चलित होती है—
१ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के निचले भाग मे घनवात उद्वेलित हो जाता है। घनवात के उद्वेलित होने से घनोदधि कम्पित हो जाता है। घनोदधि के कम्पित होने पर केवल-कल्पा पृथ्वी चलित हो जाती है।
२ कोई महर्द्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाग महेश नामक देव तथा-रूप श्रमण-माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का उपदर्शन करने के लिए केवल-कल्पा पृथ्वी को चलित कर देता है।
३ देवो तथा असुरो के परस्पर सग्राम छिड जाने से केवल-कल्पा पृथ्वी चलित हो जाती है—
इन तीन कारणो से केवलकल्पा पृथ्वी चलित होती है।

देवकिब्बिसिय-पद

४६६. तिविधा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितीया, तिसागरोवमट्ठितीया, तेरससागरोवमट्ठितीया।
१ कहि ण भते ! तिपलिओवम-ट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसति ?
उप्पि जोइसियाण, हिट्ठि सोहम्मी-साणेसु कप्पेसु, एत्थ ण तिपलि-ओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसति।
२. कहि ण भते ! तिसागरोवम-ट्ठितीया देवकिब्बिसिया

देवकिल्विषिक-पदम्

त्रिविधा देवकिल्विषिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—त्रिपल्योपमस्थितिका, त्रिसागरोपमस्थितिका, त्रयोदशसागरोपमस्थितिका।
१ कुत्र भदन्त ! त्रिपल्योपमस्थितिका देवकिल्विषिका परिवसन्ति ?
उपरिज्योतिष्काणा, अध सौधर्मे-शानाना कल्पाना, अत्र त्रिपल्योपम-स्थितिका- देवकिल्विषिका परिवसन्ति।
२ कुत्र भदन्त ! त्रिसागरोपम-स्थितिका देवकिल्विषिका

देवकिल्विषिक-पद

४६६ किल्विषिक देव तीन प्रकार के होते हैं—
१ तीन पल्योपम की स्थिति वाले,
२ तीन सागरोपम की स्थिति वाले,
३ तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।
१ भन्ते ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहा परिवास करते हैं ?
आयुष्मन् ! ज्योतिषी देवो से ऊपर तथा सौधर्म और ईशान देवलोक से नीचे, यहा तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्वि-षिक देव परिवास करते हैं।
२ भन्ते ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहा परिवास

परिवसति ?
उप्पिं सोहम्मीसाणाण कप्पाणं, हेट्ठिं सणकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिसागरोवमट्ठितीया देवकिव्विसिया परिवसति।

परिवसन्ति ?
उपरि सौधर्मेशानाना कल्पाना, अध सनत्कुमारमाहेन्द्राणा कल्पाना, अत्र त्रिसागरोपमस्थितिका देवकिल्विपिका, परिवसन्ति।

करते हैं ?
आयुष्मन् ! सौधर्म और ईशान देवलोक से ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देव-लोक से नीचे, यहा तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विपिक देव परिवास करते हैं।

३ कहि ण भते ! तेरससागरोवम-ट्ठितीया देवकिव्विसिया परिवसति ?
उप्पिं वभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लतगे कप्पे, एत्थ ण तेरससागरो-वमट्ठितीया देवकिव्विसिया परिवसति ?

३ कुत्र भदन्त ! त्रयोदशसागरोपम-स्थितिका देवकिल्विपिका परिवसन्ति?
उपरि ब्रह्मलोकस्य कल्पस्य, अध लान्तकस्य कल्पस्य, अत्र त्रयोदश-सागरोपमस्थितिका देवकिल्विपिका परिवसन्ति।

३ भन्ते ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विपिक देव कहा परिवास करते हैं ?
आयुष्मन् ! ब्रह्मलोक देवलोक से ऊपर तथा लातक देवलोक से नीचे, यहाँ तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विपिक देव परिवास करते हैं।

देवठिति-पदं

४६७ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वाहिरपरिसाए देवाण तिण्णि पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।
४६८. सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवीण तिण्णि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।
४६९ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वाहिरपरिसाए देवीण तिण्णि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवस्थिति-पदम

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वाह्य-परिपद देवाना त्रीणि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।
शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आभ्यतर-परिपद देवीना त्रीणि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।
ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वाह्य-परिपद देवीना त्रीणि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

देवस्थिति-पद

४६७ देवेन्द्र देवराज शक्र के वाह्य परिपद् के देवो की स्थिति तीन पल्योपम की है।
४६८ देवेन्द्र देवराज शक्र के आभ्यन्तर परिपद की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम की है।
४६९ देवेन्द्र देवराज ईशान के वाह्य परिपद् की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम की है।

पायच्छित्त-पदं

४७० तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—णाणपायच्छित्ते, दसणपायच्छित्ते, चरित्तपायच्छित्ते।
४७१ तओ अणुग्घातिमा पण्णत्ता, त जहा—हत्यकम्म करेमाणे, मेहुण सेवेमाणे, राईभोयण भुजमाणे।

प्रायश्चित्त-पदम्

त्रिविध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त, चरित्रप्रायश्चित्तम्।
त्रय अनुद्घात्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—हस्तकर्म कुर्वन्, मैथुन सेवमान, रात्रिभोजन भुञ्जान।

प्रायश्चित्त-पद

४७० प्रायश्चित्त तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञानप्रायश्चित्त, २ दर्शनप्रायश्चित्त, ३ चरित्रप्रायश्चित्त।
४७१ तीन अनुद्घात्य [गुरु प्रायश्चित्त] के भागी होते हैं—१ हस्त कर्म करने वाला, २ मैथुन का सेवन करने वाला, ३ रात्रि भोजन करने वाला।

४७२ तओ पारंचिता पण्णत्ता, त जहा—दुट्ठे पारचिते, पमत्ते पारंचिते, अण्णमण्ण करेमाणे पारचिते ।

त्रय पाराञ्चिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—दुप्ट पाराञ्चित, प्रमत्त पाराञ्चित, अन्योन्य कुर्वन् पाराञ्चित ।

४७२ तीन पाराञ्चित [दशवें प्रायश्चित्त के भागी] होते हैं—१ दुष्टपाराञ्चित, २ प्रमत्तपाराञ्चित—स्त्यानर्धि निद्रा वाला, ३ अन्योन्यमैथुन सेवन करने वाला।

४७३ तओ अवट्ठप्पा पण्णत्ता, त जहा—साहम्मियाणं तेणिय करेमाणे, अण्णधम्मियाण तेणिय करेमाणे, हत्थाताल दलयमाणे ।

त्रय अनवस्थाप्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सार्धमिकाणा स्तैन्य कुर्वन्, अन्यधार्मिकाणा स्तैन्य कुर्वन्, हस्तताल ददत् ।

४७३ तीन अनवस्थाप्य [नवें प्रायश्चित्त के भागी] होते हैं—
१ सार्धमिको की चोरी करने वाला,
२ अन्यधार्मिको की चोरी करने वाला,
३ हस्तताल देने वाला—मारक प्रहार करने वाला।

पव्वज्जादि-अजोग्ग-पद

प्रव्रज्यादि-अयोग्य-पदम्

प्रव्रज्या आदि-अयोग्य-पद

४७४ तओ णो कप्पति पव्वावेत्तए, त जहा—पंडए, वातिए, कीवे ।

त्रय नो कल्पन्ते प्रव्रजयितुम्, तद्यथा—पण्डक, वातिक, क्लीव ।

४७४ तीन प्रव्रज्या के अयोग्य होते हैं—
१ नपुंसक,
२ वातिक—तीव्र वात रोगो से पीडित,
३ क्लीव—वीर्य-धारण मे असक्त।

४७५ •तओ णो कप्पति°—मुंडावित्तए सिक्खावित्तए उवट्ठावेत्तए संभुजित्तए संवासित्तए, •त जहा—पंडए, वातिए, कीवे ।°

त्रय नो कल्पन्ते—मुण्डयितु शिक्षयितु उपस्थापयितु सभोजयितु सवासयितुम्, तद्यथा—पण्डक, वातिक, क्लीव ।

४७५ तीन—मुडन, शिक्षण, उपस्थापन, सभोग और सहवास के अयोग्य होते हैं—१ नपुसक, २ वातिक, ३ क्लीव।

अवायणिज्ज-वायणिज्ज-पदं

अवाचनीय-वाचनीय-पदम्

अवाचनीय-वाचनीय-पद

४७६ तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—अविणीए, विगतीपडिबद्धे, अविओसवितपाहुडे ।

त्रय अवाचनीया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अविनीत, विकृतिप्रतिबद्ध, अव्यवशमितप्राभृत ।

४७६ तीन वाचना देने [अध्यापन] के अयोग्य होते हैं—१ अविनीत,
२ विकृति मे प्रतिबद्ध—रसलोलुप,
३ अव्यवशमितप्राभृत—कलह को उपशान्त न करने वाला।

४७७ तओ कप्पति वाइत्तए, त जहा—विणीए, अविगतीपडिबद्धे, विओसवियपाहुडे ।

त्रय कल्पन्ते वाचयितुम्, तद्यथा—विनीत, अविकृतिप्रतिबद्ध, व्यवशमितप्राभृत ।

४७७ तीन वाचना के योग्य होते हैं—
१ विनीत, २ विकृति मे अप्रतिबद्ध,
३ व्यवशमितप्राभृत ।

दुसण्णप्प-सुसण्णप्प-पदं

दु.सज्ञाप्य-सुसज्ञाप्य-पदम्

दु संज्ञाप्य-सुसज्ञाप्य-पद

४७८ तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता, त जहा—

त्रय दु सज्ञाप्या प्रज्ञप्ता तद्यथा—

४७८ तीन दु सज्ञाप्य—दुर्बोध्य होते हैं—

दुट्ठे, मूढे, वुग्गाहिते।

दुष्ट, मूढ, व्युद्ग्राहित।

१ दुष्ट, २ मूढ—गुण-दोष विवेकशून्य, ३ व्युद्ग्राहित—कदाग्रही के द्वारा भड़काया हुआ।

४७९ तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिते।

त्रय सुसंज्ञाप्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अदुष्ट, अमूढ, अव्युद्ग्राहित।

४७९ तीन सुसंज्ञाप्य—सुबोध्य होते हैं—१ अदुष्ट, २ अमूढ, ३ अव्युद्ग्राहित।

मंडलिय-पव्वय-पद

माण्डलिक-पर्वत-पदम्

माण्डलिक-पर्वत-पद

४८० तओ मंडलिया पव्वता पण्णत्ता, तं जहा—माणुसुत्तरे, कुंडलवरे, रुयगवरे।

त्रय माण्डलिका पर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मानुषोत्तर, कुण्डलवर, रुचकवर।

४८० माण्डलिक पर्वत तीन हैं—१ मानुषोत्तर, २ कुण्डलवर, ३ रुचकवर।

महतिमहालय-पद

महामहत्-पदम्

महामहत्-पद

४८१ तओ महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—जंबुद्दीवए मंदरे मंदरेसु, सयंभूरमणे समुद्दे समुद्देसु, बंभलोए कप्पे कप्पेसु।

त्रय महामहान्त प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जम्बूद्वीपगो मन्दर मन्दरेषु, स्वयंभूरमण समुद्र समुद्रेषु, ब्रह्मलोक कल्प कल्पेषु।

४८१ तीन [अपनी-अपनी कोटि में] सबसे बड़े हैं—१ मंदर पर्वतों में जम्बूद्वीप का मंदर-मेरु, २. समुद्रों में स्वयंभूरमण, ३ देवलोकों में ब्रह्मलोक।

कप्पठिति-पद

कल्पस्थिति-पदम्

कल्पस्थिति-पद

४८२. तिविधा कप्पठिती पण्णत्ता तं जहा—सामाइयकप्पठिती, छेदोवट्ठावणियकप्पठिती, णिव्विसमाणकप्पठिती। अहवा—तिविहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती, थेरकप्पट्ठिती।

त्रिविधा कल्पस्थिति- प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सामायिककल्पस्थिति, छेदोपस्थापनिककल्पस्थिति, निर्विशमानकल्पस्थिति। अथवा—त्रिविधा कल्पस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—निर्विष्टकल्पस्थिति, जिनकल्पस्थिति, स्थविरकल्पस्थिति।

४८२ कल्पस्थिति [आचार-मर्यादा] तीन प्रकार की होती है"—१ सामायिक कल्पस्थिति, २ छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति, ३ निर्विशमान कल्पस्थिति। अथवा—कल्पस्थिति तीन प्रकार की होती है—१ निर्विष्ट कल्पस्थिति, २ जिन कल्पस्थिति, ३ स्थविर कल्पस्थिति।

सरीर-पद

शरीर-पदम्

शरीर-पद

४८३. णेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

नैरयिकाणां त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वैक्रिय, तैजस, कर्मकम्।

४८३ नैरयिकों के तीन शरीर होते हैं—१ वैक्रिय—विविध क्रिया करने में समर्थ-पुद्गलों से निष्पन्न शरीर, २ तैजस—तैजस-पुद्गलों से निष्पन्न सूक्ष्म शरीर, ३ कार्मण—कर्म-पुद्गलों से निष्पन्न सूक्ष्म शरीर।

४८४ असुरकुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

असुरकुमाराणां त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वैक्रियं, तैजसं, कर्मकम्।

४८४ असुरकुमारों के तीन शरीर होते हैं—१ वैक्रिय, २ तैजस, ३ कार्मण।

४८५ एवं—सव्वेसिं देवाणं।

एवम्—सर्वेषां देवानाम्।

४८५ इसी प्रकार सभी देवों के ये तीन शरीर होते हैं।

४८६ पुढविकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए।

पृथिवीकायिकानां त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—औदारिकं, तैजसं, कर्मकम्।

४८६ पृथ्वीकायिक जीवों के तीन शरीर होते हैं—१ औदारिक—स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न अस्थिचर्ममय शरीर, २ तैजस, ३ कार्मण।

४८७ एवं—वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं।

एवम्—वायुकायिकवर्जानां यावत् चतुरिन्द्रियाणाम्।

४८७ इसी प्रकार वायुकाय को छोड़कर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीवों के तीन शरीर होते हैं।

पडिणीय-पद

प्रत्यनीक-पदम्

प्रत्यनीक-पद

४८८ गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए।

गुरु प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्यप्रत्यनीकः, उपाध्यायप्रत्यनीकः, स्थविरप्रत्यनीकः।

४८८ गुरु की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक[12] [प्रतिकूल व्यवहार करने वाले] होते हैं—१ आचार्य प्रत्यनीक, २ उपाध्याय प्रत्यनीक, ३ स्थविर प्रत्यनीक।

४८९ गतिं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए, दुहओलोगपडिणीए।

गतिं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—इहलोकप्रत्यनीकः, परलोकप्रत्यनीकः, द्वयलोकप्रत्यनीकः।

४८९ गति की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१ इहलोक प्रत्यनीक, २ परलोक प्रत्यनीक, ३ उभय प्रत्यनीक [इहलोक और परलोक दोनों का प्रत्यनीक]।

४९० समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए।

समूहं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कुलप्रत्यनीकः, गणप्रत्यनीकः, संघप्रत्यनीकः।

४९० समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१ कुल प्रत्यनीक २ गण प्रत्यनीक, ३ संघ प्रत्यनीक।

४९१ अणुकंपं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए।

अनुकम्पां प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तपस्विप्रत्यनीकः, ग्लानप्रत्यनीकः, शैक्षप्रत्यनीकः।

४९१ अनुकम्पा की दृष्टि से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१ तपस्वी प्रत्यनीक, २ ग्लान प्रत्यनीक, ३ शैक्ष प्रत्यनीक।

४९२ भावं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए।

भावं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानप्रत्यनीकः, दर्शनप्रत्यनीकः, चरित्रप्रत्यनीकः।

४९२ भाव की दृष्टि से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१ ज्ञान प्रत्यनीक, २ दर्शन प्रत्यनीक, ३ चरित्र प्रत्यनीक।

४९३ सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए।

श्रुतं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूत्रप्रत्यनीकः, अर्थप्रत्यनीकः, तदुभयप्रत्यनीकः।

४९३ श्रुत की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१ सूत्र प्रत्यनीक, २ अर्थ प्रत्यनीक, ३ तदुभय प्रत्यनीक।

अग-पद

४६४ तओ पितियगा, पण्णत्ता, त जहा—
अट्ठी, अट्ठिमिजा, केसमसुरोमणहे।

४६५ तओ माउयगा पण्णत्ता, त जहा—
मसे, सोणिते, मत्थुलिंगे।

अङ्ग-पदम्

त्रीणि पित्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अस्थि, अस्थिमज्जा,
केशश्मश्रुरोमनखा।

त्रीणि मात्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मास, शोणित, मस्तुलिङ्गम्।

अङ्ग-पद

४६४ तीन अग पिता से प्राप्त [वीर्य-परिणत] होते हैं—१ अस्थि, २ मज्जा, ३ केश, दाढ़ी, रोम और नख।

४६५ तीन अग माता से प्राप्त [रज परिणत] होते हैं—
१ मास, २ शोणित, ३ मस्तिष्क।

मणोरह-पद

४६६ तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—
१ कया ण अह अप्पं वा बहुय वा सुय अहिज्जिस्सामि ?
२ कया ण अह एकल्लविहार-पडिम उवसपज्जित्ता ण विहरिस्सामि ?
३ कया ण अह अपच्छिम-मारणतियसलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते काल अणवकखमाणे विहरिस्सामि ?
एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणे निग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

मनोरथ-पदम्

त्रिभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ महा-निर्जर महापर्यवसानो भवति, तद्यथा—
१ कदा अह अल्प वा बहुकं वा श्रुत अध्येष्ये ?
२ कदा अह एकलविहारप्रतिमा उपसपद्य विहरिष्यामि ?
३ कदा अह अपश्चिममारणान्तिक-सलेखना-जोषणा-जुष्ट भक्तपानप्रत्या-ख्यात प्रायोपगत काल अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि ?
एव समनसा सवचसा सकायेन प्रकटयन् श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जर महापर्य-वसानो भवति।

मनोरथ-पद

४६६ तीन स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिजरा तथा महापर्यवसान[१] वाला होता है—
१ कब मैं अल्प या बहुत श्रुत का अध्ययन करूगा ?
२ कब मैं एकल विहार प्रतिमा का उपसपादन कर विहार करूगा ?
३ कब मैं अपश्चिम मारणातिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्त-पान का परित्याग कर, प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा नही करता हुआ विहरण करूगा ?
इस प्रकार शोभन मन, वचन और काया से उक्तभावना व्यक्त करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है।

४६७ तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—
१ कया ण अहं अप्प वा बहुय वा परिग्गह परिचइस्सामि ?
२. कया ण अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइस्सामि?

त्रिभि स्थानै श्रमणोपासक महानिर्जर महापर्यवसानो भवति, तद्यथा—
१ कदा अह अल्प वा बहुक वा परिग्रह परित्यक्षामि ?
२. कदा अह मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यामि ?

४६७ तीन स्थानो से श्रमणोपासक महानिजरा तथा महापर्यवसान वाला होता है—
१ कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह का परित्याग करूगा ?
२ कब मैं मुण्डित होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होऊगा।

३. कया ण अह अपच्छिममारणतियसलेहणा-भूसणा-भूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते काल अणवकखमाणे विहरिस्सामि ?
एव समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति ।

३. कदा अह अपश्चिममारणतिकसलेखना-जोषणा-जुष्ट- भक्तपानप्रत्याख्यात प्रायोपगत काल अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि ?
एव समनसा सवचसा सकायेन प्रकटयन् श्रमणोपासक महानिर्जर महापर्यवसानो भवति ।

३ कब मैं अपश्चिम मारणातिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्तपान का परित्याग कर, प्रायोपगमन अनशन कर मृत्यु की आकाक्षा नहीं करता हुआ विहरण करूगा ?
इस प्रकार शोभन मन, वचन और काया से उक्त भावना करता हुआ श्रमणोपासक महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है।

पोग्गलपडिघात-पद

४९८ तिविहे पोग्गलपडिघाते पण्णत्ते, तं जहा—परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलं पप्प पडिहण्णिज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहण्णिज्जा, लोगते वा पडिहण्णिज्जा।

पुद्गलप्रतिघात-पदम्

त्रिविध पुद्गलप्रतिघात प्रज्ञप्त, तद्यथा—परमाणुपुद्गल परमाणुपुद्गल प्राप्य प्रतिहन्येत, रूक्षतया वा प्रतिहन्येत, लोकान्ते वा प्रतिहन्येत ।

पुद्गलप्रतिघात-पद

४९८ तीन कारणो से पुद्गल का प्रतिघात गति-स्खलन होता है—
१ एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से टकरा कर प्रतिहत हो जाता है,
२ रूक्ष होकर प्रतिहत हो जाता है,
३ लोकात तक जाकर प्रतिहत हो जाता है।

चक्खु-पद

४९९ तिविहे चक्खू पण्णत्ते, तं जहा—एगचक्खू, बिचक्खू, तिचक्खू।
छउमत्थे ण मणुस्से एगचक्खू, देवे बिचक्खू,
तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पण्णणाणदसणधरे तिचक्खुत्ति वत्तव्व सिया।

चक्षुः-पदम्

त्रिविध चक्षु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकचक्षु, द्विचक्षु, त्रिचक्षु ।
छद्मस्थ मनुष्य एकचक्षु, देव द्विचक्षु,
तथारूप श्रमणो वा माहनो वा उत्पन्नज्ञानदर्शनधर त्रिचक्षु इति वक्तव्य स्यात् ।

चक्षुः-पद

४९९ चक्षुष्मान तीन प्रकार के होते हैं—
१ एक चक्षु, २ द्वि चक्षु, ३ त्रि चक्षु।
छद्मस्थ मनुष्य एक चक्षु होता है।
देवता द्वि चक्षु होते हैं।
अतिशायी ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाला तथारूप श्रमण-माहन त्रि चक्षु होता है।

अभिसमागम-पद

५०० तिविधे अभिसमागमे पण्णत्ते, त जहा—उड्ढ, अह, तिरियं।
जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जति, से ण तप्पढमताए

अभिसमागम-पदम्

त्रिविध अभिसमागम प्रज्ञप्त, तद्यथा—ऊर्ध्व, अध, तिर्यक् ।
यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पद्यते, तत् तत्प्रथमतया ऊर्ध्वमभिसमेति, तत

अभिसमागम-पद

५०० अभिसमागम तीन प्रकार का होता है—
१ ऊर्ध्व, २ तिर्यक, ३ अध ।
तथारूप श्रमण-माहन को जब अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त होता है तब वह पहले ऊर्ध्व लोक को जानता है, फिर तिर्यक

उड्ढमभिसमेति, ततो तिरिय, ततो पच्छा अहे। अहोलोगे ण दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो।

तिर्यक्, तत पश्चात् अध । अधोलोक दुरभिगम प्रज्ञप्त आयुष्मन् ! श्रमण !

लोक को जानता है और उसके बाद अधोलोक को जानता है । आयुष्मन् श्रमणो ! अधोलोक सबसे अधिक दुरभिगम है।

इड्ढि-पद

५०१ तिविधा इड्ढी पण्णत्ता, तं जहा—देविड्ढी, राइड्ढी, गणिड्ढी।

ऋद्धि-पदम्

त्रिविधा ऋद्धि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देवर्द्धि, राज्यर्द्धि, गणिऋद्धि ।

ऋद्धि-पद

५०१ ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१ देवताओ की ऋद्धि, २ राजाओ की ऋद्धि, ३ आचार्यों की ऋद्धि।

५०२ देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—विमाणिड्ढी, विगुव्वणिड्ढी, परियारणिड्ढी।
अहवा—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

देवर्द्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—विमानर्द्धि, विकरणर्द्धि, परिचारणर्द्धि ।
अथवा—देवर्द्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता अचित्ता मिश्रिता।

५०२ देवताओ की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१ विमान ऋद्धि, २ वैक्रिय ऋद्धि, ३ परिचारण ऋद्धि।
अथवा—देवताओ की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—
१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र।

५०३ राइड्ढी तिविधा पण्णत्ता, त जहा—रण्णो अतियाणिड्ढी, रण्णो णिज्जाणिड्ढी, रण्णो बल-वाहण-कोस-कोट्ठागारिड्ढी।
अहवा—राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

राज्यर्द्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—राज्ञ अतियानर्द्धि, राज्ञ निर्याणर्द्धि, राज्ञ बल-वाहन-कोष-कोष्ठागारर्द्धि ।
अथवा—राज्यर्द्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता।

५०३ राजाओं की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१ अतियान ऋद्धि, २ निर्याण ऋद्धि, ३ सेना, वाहन, कोष और कोष्ठागार की ऋद्धि।
अथवा—राजाओ की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—
१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र।

५०४ गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—णाणिड्ढी, दसणिड्ढी, चरित्तिड्ढी ।
अहवा—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

गणिऋद्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानर्द्धि, दर्शनर्द्धि, चरित्रर्द्धि ।
अथवा—गणिऋद्धि त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता।

५०४ गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१ ज्ञान की ऋद्धि, २ दर्शन की ऋद्धि, ३ चरित्र की ऋद्धि।
अथवा—गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—
१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र।

गारव-पद

५०५ तओ गारवा पण्णत्ता, त जहा—इड्ढीगारवे, रसगारवे, सातागारवे।

गौरव-पदम्

त्रीणि गौरवानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋद्धिगौरव, रसगौरव, सातगौरवम् ।

गौरव-पद

५०५ गौरव तीन प्रकार का होता है—१ ऋद्धि गौरव, २ रस गौरव, ३ सात गौरव।

करण-पदं

५०६ तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा— धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे, धम्मियाधम्मिए करणे।

करण-पदम्

त्रिविध करण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— धार्मिक करण, अधार्मिक करण, धार्मिकाधार्मिक करणम्।

करण-पद

५०६ करण [अनुष्ठान] तीन प्रकार का होता है—धार्मिक करण, २ अधार्मिक करण, ३ धार्मिकाधार्मिक करण।

सुयक्खायधम्मपद

५०७ तिविहे भगवता धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुअधिज्झिते, सुज्झाइते, सुतवस्सिते।
जया सुअधिज्झिन्न भवति तदा सुज्झाइतं भवति,
जया सुज्झाइत भवति तदा सुतवस्सित भवति,
से सुअधिज्झिते सुज्झाइते सुतवस्सिते सुयक्खाते ण भगवता धम्मे पण्णत्ते।

स्वाख्यातधर्म-पदम्

त्रिविध भगवता धर्म प्रज्ञप्त तद्यथा— स्वधीत, सुध्यात, सुतपस्यितम्।
यदा स्वधीत भवति तदा सुध्यात भवति,
यदा सुध्यात भवति तदा सुतपस्यित भवति,
स स्वधीत सुध्यात सुतपस्यित स्वाख्यात भगवता धर्म प्रज्ञप्त।

स्वाख्यातधर्म-पद

५०७ भगवान् ने तीन प्रकार का धर्म प्ररूपित किया है—१ सु-अधीत, २ सु-ध्यात, ३ सु-तपस्यित—सु-आचरित।
जब धर्म सु-अधीत होता है तब वह सु-ध्यात होता है।
जब सु-ध्यात होता है तब सु-तपस्यित होता है।
सु-अधीत, सु-ध्यात और सु-तपस्यित धर्म की भगवान् ने प्रज्ञापना की है यही स्वाख्यात धर्म है।"

जाणु-अजाणु-पद

५०८ तिविधा वावत्ती पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

५०९ °तिविधा अज्झोववज्जणा पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

५१० तिविधा परियावज्जणा पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।°

ज्ञ-अज्ञ-पदम्

त्रिविधा व्यावृत्ति प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।

त्रिविधा अध्युपपादना प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।

त्रिविधा पर्यापादना प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।

ज्ञ-अज्ञ-पद

५०८ व्यावृत्ति [निवृत्ति] तीन प्रकार की होती है—१ ज्ञानपूर्वक, २ अज्ञानपूर्वक, ३ विचिकित्सापूर्वक।

५०९ अध्युपपादन [विषयासक्ति] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञानपूर्वक, २ अज्ञानपूर्वक, ३ विचिकित्सापूर्वक।

५१० पर्यापादन [विषय सेवन] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञानपूर्वक, २ अज्ञानपूर्वक, ३ विचिकित्सापूर्वक।

अत-पद

५११ तिविधे अते पण्णत्ते, त जहा— लोगते, वेयते, समयते।

अन्त-पदम्

त्रिविध अन्त, प्रज्ञप्त, तद्यथा— लोकान्त, वेदान्त, समयान्त।

अन्त-पद

५११ अन्त [निर्णय] तीन प्रकार का होता है—
१ लोकान्त—लौकिक शास्त्रों का निर्णय,
२ वेदान्त—वैदिक शास्त्रों का निर्णय,
३ समयान्त—श्रमण शास्त्रों का निर्णय।

जिण-पद

५१२ तओ जिणा पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे।

५१३. तओ केवली पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलणाणकेवली।

५१४ तओ अरहा पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणअरहा, मणपज्जवणाणअरहा, केवलणाणअरहा।

जिन-पदम्

त्रय जिना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अवधिज्ञानजिन, मन पर्यवज्ञानजिन, केवलज्ञानजिन।

त्रय केवलिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अवधिज्ञानकेवली, मन पर्यवज्ञानकेवली, केवलज्ञानकेवली।

त्रय अर्हन्त प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अवधिज्ञानार्ह, मन पर्यवज्ञानार्ह, केवलज्ञानार्हम्।

जिन-पद

५१२ जिन[१] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अवधिज्ञानी जिन,
२ मन पर्यवज्ञानी जिन,
३ केवलज्ञानी जिन।

५१३ केवली[२] तीन प्रकार के होते हैं—
१ अवधिज्ञानी केवली,
२ मन पर्यवज्ञानी केवली,
३ केवलज्ञानी केवली।

५१४ अर्हन्त[३] तीन प्रकार के होते हैं—
१ अवधिज्ञानी अर्हन्त,
२ मन पर्यवज्ञानी अर्हन्त,
४ केवलज्ञानी अर्हन्त।

लेसा-पद

५१५ तओ लेसाओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

५१६ तओ लेसाओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, त जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

५१७ •तओ लेसाओ—दोग्गतिगामिणीओ, सकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ, अविसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ, सीत-लुक्खाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

५१८ तओ लेसाओ—सोगतिगामिणीओ, असकिलिट्ठाओ, मणुण्णाओ, विसुद्धाओ, पसत्थाओ, णिद्धुण्हाओ पण्णत्ताओ, त जहा—तेउलेसा पम्हलेसा, सुक्कलेसा।°

लेश्या-पदम्

तिस्र लेश्या दुरभिगन्धा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

तिस्र लेश्या सुरभिगन्धा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

तिस्र लेश्या—दुर्गतिगामिन्य, सक्लिष्टा, अमनोज्ञा, अविशुद्धा, अप्रशस्ता, शीत-रूक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

तिस्र लेश्या—सुगतिगामिन्य, असक्लिष्टा, मनोज्ञा विशुद्धा, प्रशस्ता स्निग्धोष्णा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

लेश्या-पद

५१५ तीन लेश्याए दुरभि गंध वाली हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

५१६ तीन लेश्याए सुरभि गंध वाली हैं—
१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

५१७ तीन लेश्याए—दुर्गतिगामिनी, सक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त, शीत-रूक्ष हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या,
३ कापोतलेश्या।

५१८ तीन लेश्याए—सुगतिगामिनी, असक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त, स्निग्ध-उष्ण हैं—
१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

मरण-पदं

५१९. तिविहे मरणे पण्णत्ते, त जहा—
वालमरणे, पडियमरणे,
वालपंडियमरणे ।

मरण-पदम्

त्रिविध मरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
वालमरण, पण्डितमरण,
वालपण्डितमरण ।

मरण-पद

५१९ मरण तीन प्रकार का होता है—
१ वाल-मरण—असयमी का मरण,
२ पडित-मरण—सयमी का मरण,
३ वाल-पडित-मरण—सयमासयमी का मरण।

५२० वालमरणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—ठितलेस्से, सकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से ।

वालमरण त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—स्थितलेश्य, सक्लिष्टलेश्य, पर्यवजातलेश्यम् ।

५२० वाल-मरण तीन प्रकार का होता है—
१ स्थितलेश्य, २ सक्लिष्टलेश्य,
३ पर्यवजातलेश्य ।[१००]

५२१ पडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से ।

पण्डितमरण त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—स्थितलेश्य, असक्लिष्टलेश्य, पर्यवजातलेश्यम् ।

५२१ पडित-मरण तीन प्रकार का होता है—
१ स्थितलेश्य—स्थिर विशुद्ध लेश्या वाला । २ असक्लिष्टलेश्य,
३ पर्यवजातलेश्य—प्रवर्धमान विशुद्ध-लेश्या वाला ।

५२२ वालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—ठितलेस्से, असकिलिट्ठलेस्से, अपज्जवजातलेस्से ।

वालपण्डितमरण त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—स्थितलेश्य, असक्लिष्टलेश्य, अपर्यवजातलेश्यम् ।

५२२ वाल-पडित-मरण तीन प्रकार का होता है—१ स्थितलेश्य—स्थिर लेश्या वाला,
२ असक्लिष्टलेश्य,
३ अपर्यवजातलेश्य ।[१०१]

असद्दहंतस्स पराभव-पद

५२३ तओ ठाणा अव्ववसितस्स अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति त जहा—

१ से ण मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयण णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ ।

अश्रद्दधानस्य पराभव-पदम्

त्रीणि स्थानानि अव्यवसितस्य अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवति, तद्यथा—

१. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित नैर्ग्रन्थ्ये प्रवचने शङ्कित काङ्क्षित विचिकित्सित भेदसमापन्न कलुपसमापन्न नैर्ग्रन्थ प्रवचन नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, त परीपहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीपहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति ।

अश्रद्धावान् का पराभव

५२३ अव्यवसित (अश्रद्धावान) निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस और अनानुगामिता[१०२] के हेतु होते हैं—

१ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे शकित[१०३], काक्षित[१०४], विचिकित्सिक[१०५], भेदसमापन्न[१०६] और कलुपसमापन्न[१०७] होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नही करता । उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत कर देते हैं, वह परीपहो से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत नही कर पाता ।

२ से ण मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए पर्चाह महव्वएहिं सकिते *कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे° कलुससमावण्णे पच महव्वताइ णो सद्दहति *णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजुजिय-अभिजुजिय अभिभवति°, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुजिय अभिभवति।

३. से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं *सकिते कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजुजिय-अभिजुजिय अभिभवति, णो से परिस्सहे अभिजुजिय - अभिजुजिय° अभिभवइ।

२ स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित पञ्चसु महाव्रतेपु शङ्कित काङ्क्षित विचिकित्सित भेदसमापन्न कलुपसमापन्न पञ्चमहाव्रतानि नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, त परीपहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीपहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति।

३ स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित पट्सु जीवनिकायेपु शङ्कित काङ्क्षित विचिकित्सित भेदसमापन्न कलुपसमापन्न पड्जीवनिकायान् नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, त परीपहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीपहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति।

२ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर पाच महाव्रतो मे शकित, काक्षित, विचिकित्सिक, भेद समापन्न और कलुप समापन्न होकर पाच महाव्रतों पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नही करता, रुचि नहीं करता। उसे परीपह जूझ-जूझकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीपहो से जूझ-जूझकर उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

३ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर छ जीव निकाय में शकित, काक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुपसमापन्न होकर छ जीव निकाय पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नही करता। उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत कर देते हैं, वह परीपहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

सद्दहतस्स-विजय-पदं

५२४ तओ ठाणा ववसियस्स हिताए *सुभाए खमाए णिस्सेसाए° आणुगामियत्ताए भवति, तं जहा—

१ से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए णिग्गथे पावयणे णिस्सकिते *णिक्कखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे° णो कलुससमावण्णे णिग्गथ पावयणं सद्दहति पत्तियति रोएति, से परिस्सहे अभिजुजिय-अभिजुजिय अभिभवति, णो त परिस्सहा अभिजुजिय-अभिजुजिय अभिभवति।

श्रद्दधानस्य विजय-पदम्

त्रीणि स्थानानि व्यवसितस्य हिताय शुभाय क्षमाय नि श्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—

१ स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित नैर्ग्रन्थे प्रवचने नि शङ्कित निष्काङ्क्षित निर्विचिकित्सित नो भेदसमापन्न नो कलुपसमापन्न नैर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीपहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो त परीपहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

श्रद्धावान् की विजय

५२४ व्यवस्थित निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, नि श्रेयस और अनुगामिता के हेतु होते हैं—

१ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे नि शकित, निष्काक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न और अकलुपसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है। वह परीपहो से जूझ-जूझकर उन्हे अभिभूत कर देता है, उसे परीपह जूझ-जूझकर अभिभूत नही कर पाते।

२. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए णिक्कंखिए •णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं सद्दहति पत्तियति रोएति, से॰ परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

२. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित सन् पञ्चसु महाव्रतेषु निःशङ्कित निष्काङ्क्षित' निर्विचिकित्सित नो भेदसमापन्न नो कलुषसमापन्न पञ्च महाव्रतानि श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो त परीषहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

२ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर पाच महाव्रतो मे नि शकित, निष्काक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर पाच महाव्रतों मे श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है। वह परीषहो से जूझ-जूझकर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत नही कर पाते।

३. से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं णिस्संकिते •णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए सद्दहति पत्तियति रोएति, से॰ परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति। णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय- अभिजुंजिय अभिभवंति।

३. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित षट्सु जीवनिकायेषु निःशङ्कित निष्काङ्क्षित निर्विचिकित्सित नो भेदसमापन्न नो कलुषसमापन्न षड् जीवनिकायान् श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो त परीषहा अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

३ वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छ जीव निकायो मे नि शकित, निष्काक्षित, निर्विचिकित्सित अभेदसमापण्न और अकलुष समापन्न हो कर छ जीव निकायो मे श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है, वह परीषहों से जूझ-जूझकर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत नही कर पाते।

पुढवी-वलय-पदं

पृथिवी-वलय-पदम्

पृथ्वी-वलय-पद

५२५. एगमेगा णं पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तं जहा—घणोदधिवलएण, घणवातवलएण, तणुवायवलएणं।

एकैका पृथिवी त्रिभि वलयै सर्वत समन्तात् सपरिक्षिप्ता, तद्यथा—घनोदधिवलयेन, घनवातवलयेन, तनुवातवलयेन।

५२५ सभी पृथ्विया तीन वलयो से सर्वत परिक्षिप्त (घिरी हुई) हैं—
१ घनोदधि वलय से,
२ घनवात वलय से,
३ तनुवात वलय से।

विग्गह-गइ-पदं

विग्रह-गति-पदम्

विग्रह-गति-पद

५२६ णेरइया णं उक्कोसेणं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जति।
एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

नैरयिका उत्कर्षेण त्रिसामयिकेन विग्रहेण उत्पद्यन्ते।
एकेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

५२६ एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिको से वैमानिक देवो तक के सभी दण्डको के जीव उत्कृष्ट रूप में तीन समय की विग्रह-गति[१०६] से उत्पन्न होते हैं।

खीणमोह-पद

५२७ खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मसा जुगव खिज्जति, त जहा—णाणावरणिज्ज, दसणावरणिज्ज, अतराइय।

क्षीणमोह-पदम्

क्षीणमोहस्य अर्हत त्रीणि सत्त्कर्माणि युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आन्तरायिकम्।

क्षीणमोह-पद

५२७ क्षीणमोह अर्हन्त के तीन कर्मांश [कर्म-प्रकृतिया] एक साथ क्षीण होते हैं—
१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय,
३ अतराय।

णक्खत्त-पद

५२८ अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।
५२९. एव—सवणे, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जेट्ठा।

नक्षत्र-पदम्

अभिजिद् नक्षत्र त्रितारक प्रज्ञप्तम्।
एवम्—श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा।

नक्षत्र-पद

५२८ अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे हैं।
५२९ इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगसर, पुष्य तथा ज्येष्ठा नक्षत्र के भी तीन-तीन तारे है।

तित्थकर-पद

५३० धम्माओ ण अरहाओ सती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भाग-पलिओवमऊणएहिं वीतिक्कतेहिं समुप्पण्णे।
५३१ समणस्स ण भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगतकरभूमी।
५३२. मल्ली ण अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धि मुडे भवित्ता °अगाराओ अणगारिय° पव्वइए।
५३३ °पासे ण अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धि मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए।°
५३४ समणस्स ण भगवतो महावीरस्स तिण्णि सया चउद्दसपुव्वीण अजिणाणं जिणसकासाण सव्वक्खर-सण्णिवातीण जिणा [जिणाणां?] इव अवितह वागरमाणाण उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसपया हुत्था।

तीर्थंकर-पदम्

धर्माद् अर्हत शान्ति अर्हन् त्रिषु सागरोपमेपु त्रिचतुर्भागपल्योपमोनकेपु व्यतिक्रान्तेपु समुत्पन्न।
श्रमणस्य भगवत महावीरस्य यावत् तृतीय पुरुपयुग युगान्तकरभूमि।
मल्ली अर्हन् त्रिभि पुरुपशतै सार्व मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित।
पार्श्व अर्हन् त्रिभि पुरुपशतै सार्धं मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित।
श्रमणस्य भगवत महावीरस्य त्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्विणा अजिनाना जिन-सकाशाना सर्वाक्षरसन्निपातिना जिना [जिनाना?] इव अवितथ व्याकुर्वाणाना उत्कर्पिका चतुर्दशपूर्विसपदा अभवत्।

तीर्थंकर-पद

५३० अर्हत् शान्ति अर्हत् धर्म के पश्चात् तीन सागरोपम मे से चौथाई भाग कम पल्योपम के बीत जाने पर समुत्पन्न हुए।
५३१ श्रमण भगवान् महावीर के बाद तीसरे पुरुप युग जम्बू स्वामी तक युगान्तकर-भूमि—निर्वाण गमन का क्रम रहा है।
५३२ अर्हत् मल्ली[1] तीन सौ पुरुषो के साथ मुण्डित होकर अगार धर्म से अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुए।
५३३ इसी प्रकार अर्हत् पार्श्व तीन सौ पुरुषो के साथ मुण्डित होकर अगार धर्म से अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुए।
५३४ श्रमण भगवान् महावीर के तीन सौ शिष्य चौदह पूर्वधर थे, जिन नही होते हुए भी जिन के समान थे, सर्वाक्षर-सन्निपाती[11] तथा जिन भगवान् की तरह अवितथ व्याकरण करने वाले थे। यह भगवान् महावीर के उत्कृष्ट चतुर्दश पूर्वी शिष्यो की सम्पदा थी।

५३५. तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था, तं जहा—संती, कुंथू, अरो।

त्रय तीर्थकरा चक्रवर्तिन अभवन्, तद्यथा—शान्ति, कुन्थु, अर।

५३५ तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए—
१ शांति, २ कुंथु, ३ अर।

गेविज्ज-विमाण-पद

ग्रैवेयक-विमान-पदम्

ग्रैवेयक-विमान-पद

५३६ तओ गेविज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, त जहा—
हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

त्रय ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अवस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट।

५३६ ग्रैवेयक विमान के तीन प्रस्तट हैं—
१ अधोग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३७ हिट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—
हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट।

५३७ अधोग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१ अध-अधःग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ अधो-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ अध-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३८. मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, तिविहे पण्णत्ते, त जहा—
मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट त्रिविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट
मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
मध्यम-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट.।

५३८ मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१ मध्यम-अधःग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ मध्यम-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ मध्यम-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३९ उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—
उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट त्रिविध. प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपरितन-अवस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयक—विमान-प्रस्तट, उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट।

५३९ ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१ ऊर्ध्व-अध ग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ ऊर्ध्व-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ ऊर्ध्व-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

पावकम्म-पद

५४०. जीवा ण तिट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा— इत्थिणिव्वत्तिते, पुरिसनिव्वत्तिते, णपुसगनिव्वत्तिते ।
एव—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव ।

पापकर्म-पदम्

जीवा त्रिस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—स्त्रीनिर्वर्तितान्, पुरुषनिर्वर्तितान्, नपुसकनिर्वर्तितान्
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव ।

पापकर्म-पद

५४० जीवो ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलो का कमरूप मे चय किया है, करते हैं तथा करेंगे—१ स्त्री-निर्वर्तित पुद्गलो का, २ पुरुष-निर्वर्तित पुद्गलो का, ३ नपुसक-निर्वर्तित पुद्गलो का ।
इसी प्रकार जीवो ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलो का कमरूप मे उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं तथा करेंगे ।

पोग्गल-पद

५४१. तिपदेसिया खधा अणता पण्णत्ता ।

५४२ एव जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता ।

पुद्गल-पदम्

त्रिप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

एव यावत् त्रिगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता ।

पुद्गल-पद

५४१ त्रिप्रदेशी—[तीन प्रदेश वाले] स्कन्ध अनन्त हैं ।

५४२ इसी प्रकार तीन प्रदेशावगाढ तीन समय की स्थिति वाले और तीन गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं तथा शेष सभी वर्ण, गध, रस और स्पर्शों के तीन गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं ।

टिप्पणियाँ

स्थान-३

१—विक्रिया (सूत्र ४)

विक्रिया का अर्थ है—विविध रूपो का निर्माण या विविध प्रकार की क्रियाओ का सम्पादन। वह दो प्रकार की होती है—भवधारणीय [जन्म के समय होने वाली] और उत्तरकालीन। प्रस्तुत सूत्र मे विक्रिया के तीन प्रकार निर्दिष्ट हैं—

१ पर्यादाय, २ अपर्यादाय, ३ पर्यादाय-अपर्यादाय।

भवधारणीय शरीर से अतिरिक्त रूपो का निर्माण [उत्तरकालीन विक्रिया] वाह्यपुद्गलो का ग्रहण कर की जाती है, इसलिए उसकी सज्ञा पर्यादाय विक्रिया है।

भवधारणीयविक्रिया वाह्यपुद्गलो को ग्रहण किए विना होती है, इसलिए उसकी सज्ञा अपर्यादाय विक्रिया है।

भवधारणीय शरीर का कुछ विशेप सस्कार करने के लिए जो विक्रिया की जाती है उसमे वाह्यपुद्गलो का ग्रहण और अग्रहण—दोनों होते हैं, इसलिए उसकी सज्ञा पर्यादाय-अपर्यादाय विक्रिया है।

वृत्तिकार ने विक्रिया का दूसरा अर्थ किया है—भूपित करना। वाह्यपुद्गलआभरण आदि लेकर शरीर को विभूपित करना पर्यादायविक्रिया होती है और वाह्यपुद्गलो का ग्रहण न करके केश, नख आदि को सवारना अपर्यादाय विक्रिया कहलाती है।

वाह्यपुद्गलो के लिए विना गिरगिट अपने शरीर को नाना रगमय वना लेता है तथा सर्प फणावस्था मे अपनी अवस्था को विशिष्ट रूप दे देता है।

२—कतिसचित (सूत्र ७)

कति शब्द का अर्थ है कितना। यहा वह सख्येय के अर्थ मे प्रयुक्त है। यहा कति, अकति और अवक्तव्य ये तीन शब्द हैं। कति का अर्थ सख्या से है अर्थात् दो से लेकर सख्यात तक। अकति का अर्थ असख्यात और अनन्त से है। अवक्तव्य का अर्थ एक से है, एक को सख्या नही माना जाता।

भगवतीसूत्र, शतक २०, उद्देशक १० के नौवें प्रश्न में वताया गया है कि नरकगति में नैरयिक एक साथ सख्यात उत्पन्न होते हैं। उत्पत्ति की समानता से वुद्धि द्वारा उनका सग्रह करके उन्हें कतिसचित कहा है। नरकगति मे नैरयिक असख्यात भी एक साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन्हें अकतिसचित भी कहा है। नरकगति मे नैरयिक जघन्यत एक ही उत्पन्न होता है, इसलिए उसे अवक्तव्यसचित कहा है।

दिगम्वर सम्प्रदाय में कति शब्द के स्थान पर कदी शब्द आया है। उसका अर्थ कृति किया गया है। इनकी व्याख्या भी भिन्न है। कृति शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग मे से अपने वर्ग के मूल को कम कर वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है उसे कृति कहते हैं।

एक सख्या वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती तथा उसमें से वर्गमूल के कम करने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है, इस कारण एक सख्या नोकृति है। दो सख्या का वर्ग करने पर चूकि वृद्धि देखी जाती है अत दो को नोकृति नहीं कहा जा सकता और चूकि उसके वर्ग मे से मूल को कम करके वर्गित करने पर वह वृद्धि को प्राप्त नही होती, किन्तु पूर्वोक्त राशि ही रहती है अत दो कृति भी नहीं हो सकती, इसलिए दो सख्या अवक्तव्य है।

तीन को आदि लेकर आगे की सख्या वर्गित करने पर चूकि वढती है और उसमें से वर्गमूल को कम करके पुन वर्ग करने पर भी वृद्धि को प्राप्त होती है इस कारण उसे कृति कहा है।[1]

इस व्याख्या से—

नो कृति—१, २, ३, ४, ५

अवक्तव्य कृति—२, ४, ६, ८, १०

कृति—३, ४, ५,

एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से वृद्धि को प्राप्त राशि नो कृतिसकलना है।

दो को आदि लेकर दो अधिक क्रम से वृद्धि को प्राप्त राशि अवक्तव्यसकलना है।

तीन, चार, पाच आदि में अन्यतर को आदि करके उनमे ही अन्यतर के अधिक क्रम मे वृद्धिगत राशि कृतिसकलना है। इसकी स्थापना इस प्रकार है—

नो कृतिसकलना—१, २, ३, ४, ५, ६· ·आदि सख्यात असख्यात।

अवक्तव्यसकलना—२, ४, ६, ८, १०, १२ आदि सख्यात असख्यात।

कृतिसकलना—३, ६, ६, १२, ४, ८, १२, १६, ५, १०, १५, २० आदि सख्यात असख्यात।

श्वेताम्वर और दिगम्वर-परम्परा का यह अर्थ-भेद सचमुच आश्चर्यजनक है। कति और कृति दोनो का प्राकृत रूप कति या कदि वन सकता है।

३—एकेन्द्रिय (सूत्र ८) .

एकेन्द्रिय मे प्रतिसमय असख्यात या [वनस्पति विशेष में] अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। अत वे अकतिसचित ही होते हैं। इसलिए उनके तीन विकल्प नही होते।

४—परिचारणा (सूत्र ६) :

परिचारणा का अर्थ है—मैथुन का सेवन[2]। तत्त्वार्थसूत्र में परिचारणा के अर्थ में प्रवीचार शब्द का प्रयोग किया गया है[3]। प्रवीचार पाच प्रकार का होता है[4]—

१ कायप्रवीचार—कायिक मैथुन।

२ स्पर्शप्रवीचार—स्पर्श मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

३ रूपप्रवीचार—रूप देखने मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

४ शब्दप्रवीचार—शब्द सुनने मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

५ मन प्रवीचार—सकल्प मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

देखें ५।५४ का टिप्पण।

५—मैथुन (सूत्र १२)

वृत्तिकार ने स्त्री, पुरुष और नपुसक के लक्षणो का सकलन किया है। उसके अनुसार स्त्री के सात लक्षण हैं[5]—

१ योनि, २ मृदुता, ३ अस्थिरता, ४ मुग्धता, ५ क्लीवता, ६ स्तन, ७ पुरुष के प्रति अभिलाषा।

---

१ षट्खडागम-वेदनाखण्ड-कृति अनुयोग द्वार।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०० परिचारणा देवमैथुनसेवा।

३ तत्त्वार्थसूत्र, ४।८ कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।

४ तत्त्वार्थसूत्र, ४।६
शेषा स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रवीचारा द्वयो द्वयो।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र १००
योनि मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धत्व क्लीवता स्तनौ।
पुस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते॥

पुरुष के सात लक्षण ये हैं[1]—

१ लिङ्ग, २ कठोरता, ३ दृढता, ४ पराक्रम, ५ दाढी और मूछ, ६ धृष्टता, ७ स्त्री के प्रति अभिलाषा।

नपुसक के लक्षण[2]—

१ स्तन और दाढी-मूछ ये कुछ अशो मे होते हैं, परन्तु पूर्ण विकसित नही होते।

२ प्रज्वलित कामाग्नि।

६-८ योग, प्रयोग, करण (सू० १३-१५)

योग शब्द के दो अर्थ हैं—प्रवृत्ति और समाधि। इनकी निष्पत्ति दो भिन्न-भिन्न धातुओ से होती है। सम्बन्धार्थक 'युज्' धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। समाध्यर्थक युज् धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है—समाधि। प्रस्तुत सूत्र में योग का अर्थ प्रवृत्ति है। उमास्वाति के अनुसार काय, वाङ् और मन के कर्म का नाम योग है।[3] जीव के तीन मुख्य प्रवृत्तियो—कायिकप्रवृत्ति, वाचिकप्रवृत्ति और मानसिकप्रवृत्ति—का सूत्रकार ने योग शब्द के द्वारा निर्देश किया है।

कर्मशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम तथा शरीरनामकर्म के उदय से होने वाला वीर्ययोग कहलाता है। भगवतीसूत्र मे एक प्रसग आता है।[4] वहा गौतम स्वामी ने पूछा—भते ! योग किससे उत्पन्न होता है ?

भगवान—वीर्य से।

गौतम—भते ! वीर्य किमसे उत्पन्न होता है ?

भगवान्—शरीर से।

गौतम—भते ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ?

भगवान्—जीव से।

इस कर्मशास्त्रीय परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि योग जीव और शरीर के साहचर्य से उत्पन्न होने वाली शक्ति है।

वृत्ति मे उद्धृत एक गाथा मे योग के पर्यायवाची नाम इस प्रकार हैं—

१ योग २ वीर्य ३ स्थाम ४ उत्साह ५ पराक्रम ६ चेष्टा ७ शक्ति ८ सामर्थ्य।[5]

योग के अनन्तर प्रयोग का निर्देश है। प्रज्ञापना (पद १६) के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि योग और प्रयोग दोनो एकार्थक हैं।

प्रयोग के अनन्तर सूत्रकार ने करण का निर्देश किया है। वृत्तिकार ने करण का अर्थ—मनन, वचन और स्पदन की क्रियाओ मे प्रवर्तमान आत्मा का सहायक पुद्गल-समूह किया है।[6]

वृत्तिकार ने योग, प्रयोग और करण की व्याख्या करने के पश्चात् यह वतलाया है कि ये तीनो एकार्थक हैं। भगवती

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १००

मेहनं खरता दार्ढ्यं शौण्डीर्यं श्मश्रुधृष्टता।
स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुस्त्वे प्रचक्षते॥

२ वही

स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम्।
नपुसकं बुधा प्राहुर्मोहानलसुदीपितम्॥

३ तत्त्वार्थसूत्र, ६।१ कायवाङ्मनःकर्म योग।

४ भगवतीसूत्र १।१४३-१४५

से ण भते ! जोए किं पवहे ?
गोयमा ! वीरियप्पवहे।
से ण भते ! वीरिए किं पवहे ?
गोयमा ! सरीरप्पवहे।
से ण भंते ! सरीरे किं पवहे ?
गोयमा ! जीवप्पवहे।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०१

जोगो वीरिय थामो, उच्छाह परक्कमा तहा चेट्ठा।
सत्ती सामत्थन्ति य, जोगस्स हवंति पज्जाया॥

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०१ क्रियते येन तत्करण—मननादिक्रियासु प्रवर्तमानस्यात्मन उपकरणभूतस्तथा तथापरिणामवत्पुद्गलसङ्घात इति भाव।

मे योग के पन्द्रह प्रकार वतलाए हैं। वे ही पन्द्रह प्रकार प्रज्ञापना मे प्रयोग के नाम से तथा आवश्यक में करण के नाम से निर्दिष्ट हैं। अत इन तीनो मे अर्थ भेद का अन्वेषण आवश्यक नही है।[1]

६—(सू० १६)

देखें ७/८४-८६ का टिप्पण।

१०—(सू० १७)

प्रस्तुत सूत्र के आलोच्य शब्द ये हैं—

१ तथारूप—जीवनचर्या के अनुरूप वेश वाला।

२ माहन—अहिंसा का उपदेश देने वाला अहिंसक।[2]

३ अस्पर्शुक—यह अफासुय शब्द का अनुवाद है। प्राचीन व्याख्या ग्रन्थो मे फासुय का अर्थ प्रासुक (निर्जीव) और अफासुय का अर्थ अप्रासुक (सजीव) किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण मे वृत्तिकार ने भी यही अर्थ किया है।[3]

पण्डित वेचरदासजी ने फासुय का अर्थ स्पर्शुक अर्थात् अभिलषणीय किया है। उन्होंने इसके समर्थन में जो तर्क दिए हैं, वे बुद्धिगम्य हैं।[4]

४ अनेषणीय—गवेषणा के अयोग्य, अकल्पनीय, अग्राह्य।

५ अशन—पेट भर कर खाया जाने वाला आहार।

६ पान—काजी तथा जल।

७ खाद्य—फल, मेवा आदि।

८ स्वाद्य—लौंग, इलायची आदि।

११—गुप्ति (सू० २१) :

गुप्ति का शाब्दिक अर्थ है—रक्षा। मन, वचन और काय के साथ योग होने पर इसका अर्थ होता है—मन, वचन और काय की अकुशल प्रवृत्तियो से रक्षा और कुशल प्रवृत्तियो मे नियोजन। यह अर्थ सम्यक्प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया गया प्रतीत होता है। असम्यक् की निवृत्ति हुए विना कोई भी प्रवृत्ति सम्यक् नही वनती, इस दृष्टि से सम्यक्प्रवृत्ति में गुप्ति का होना अनिवार्य माना गया है।[5]

सम्यक्प्रवृत्ति ने निरपेक्ष होकर यदि गुप्ति का अर्थ किया जाए तो इसका अर्थ होगा—निरोध। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—'चित्तवृत्ति निरोधो योग (योगदर्शन १।१) जैन-दृष्टि से इसका समानान्तर सूत्र लिखा जाए तो वह होगा 'चित्तवृत्ति निरोधो गुप्ति'।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०१, १०२ अथवा योगप्रयोगकरण-शब्दाना मन प्रभृतिकमभिधेयतया योगप्रयोगकरणसूत्रेष्वभिहितमिति नार्थभेदोऽन्वेपणीय, त्रयाणामप्येपामेकार्थतया आगमे वहुश प्रवृत्तिदर्शनात्, तथाहि-योग पञ्चदशविध शतकादिषु व्याख्यात, प्रज्ञापनायां त्वेवमेवाय प्रयोगशब्देनोक्त, तथाहि—कतिविहे णं भत ! पओगे पण्णत्ते, गातमा ! पण्णरसविहे इत्यादि, तथा आवश्यकेऽयमेव करणतयोक्त, तथाहि—

जुजणकरण तिविह, मणवतिकाए य मणसि सच्चाइ।
सट्ठाणे तेसि भेमा, चउ चउहा सत्तहा चेव॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०३ मा हन इत्याचष्टे य पर स्वय हननिवृत्त सन्निति स माहनो मूलगुणधर.।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०३ प्रगता असव—असुमन्त प्राणिनो यस्मात् तत्प्रासुक तन्निषेधादप्रासुकं सचेतनमित्यर्थ।

४ रत्नमुनिस्मृतिग्रथ, अध्याय २, पृष्ठ १००।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०५, १०६ गोपन गुप्ति—मन प्रभृतीनां कुशलानां प्रवर्त्तनमकुशलाना च निवर्त्तनमिति आह च—

मणगुत्तिमाइयाओ, गुत्तीओ तिन्नि समयकेऊहिं।
परियारेयररूवा, णिद्दिट्ठाओ जओ भणियं॥
समिओ णियमा गुत्तो, गुत्तो समियत्तणमि भइयव्वो।
कुसलवइमुईरतो, ज वइगुत्तोऽवि समिओऽवि॥

१२—दण्ड (सू० २४) :

देखें १।३ का टिप्पण।

१३—गर्हा (सू० २६) :

देखें २।३८ का टिप्पण।

१४—प्रत्याख्यान (सू० २७) :

छब्बीसवें सूत्र में गर्हा का उल्लेख है और प्रस्तुत सूत्र में प्रत्याख्यान का। गर्हा अतीत के अनाचरण का अनुताप है और प्रत्याख्यान भविष्य में अनाचरण का प्रतिषेध।

१५—(सू० २८) :

प्रस्तुत सूत्र में पुरुष की वृक्ष से तुलना की गई है। इस तुलना का निमित्त उपकार की तरतमता है—यह वृत्तिकार ने निर्दिष्ट किया है। इस निर्देश को एक निदर्शन मात्र समझना चाहिए। तुलना के निमित्तों की संघटना अनेक दृष्टिकोणों से की जा सकती है।

पत्रयुक्त वृक्ष की अपेक्षा पुष्पयुक्त वृक्ष की सुषमा अधिक होती है और फलयुक्त वृक्ष उससे भी अधिक महत्त्व रखता है। पत्र छाया (शोभा) का, पुष्प सुगंध का और फल सरसता का प्रतीक है। छायासम्पन्न पुरुष की अपेक्षा वह पुरुष अधिक महत्त्व रखता है जिसके जीवन में गुणों की सुगन्ध होती है और उस पुरुष का और अधिक महत्त्व होता है, जिसके जीवन से गुणों का रस-निर्झर प्रवाहित होता रहता है।

किसी वृक्ष में पत्र, पुष्प और फल तीनों होते हैं। इस दुनिया में ऐसे पुरुष भी होते हैं, जिनके जीवन में गुणों की चमक, महक और सरसता—तीनों एक साथ मिलते हैं।

संत तुलसीदास जी ने रामायण[1] में तीन प्रकार के पुरुषों का वर्णन किया है। कुछ पुरुष पाटल वृक्ष के समान होते हैं। पाटल के केवल फूल होते हैं फल नहीं। पाटल के समान पुरुष केवल कहते हैं, पर करते कुछ नहीं।

कुछ पुरुष आम्रवृक्ष के समान होते हैं। आम्र के फल और फूल दोनों होते हैं। आम्र के समान पुरुष कहते भी हैं और करते भी हैं।

कुछ पुरुष फनस वृक्ष के समान होते हैं। फनस के केवल फल होते हैं। फनस के समान पुरुष कहते नहीं किन्तु करते हैं।

१६-१८—(सू० २९-३१) :

निर्दिष्ट तीन सूत्रों में पुरुष का विभिन्न दृष्टिकोणों से निरूपण किया गया है—

नामपुरुष—जिस सजीव या निर्जीव वस्तु का पुरुष नाम होता है, उसे नामपुरुष कहा जाता है।

स्थापनापुरुष—पुरुष की प्रतिमा अथवा किसी वस्तु में पुरुष का आरोपण।

द्रव्यपुरुष—पुरुषरूप में उत्पन्न होने वाला जीव या पुरुष का मृत शरीर।

ज्ञानपुरुष—ज्ञानप्रधान पुरुष।

दर्शनपुरुष—दर्शनप्रधान पुरुष।

---

१ तुलसीरामायण लंकाकाण्ड पृ० ६७३ :

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीतिसुनहि करहि छमा।
संसारमह पुरुष त्रिविध पाटल, रसाल, पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमनफल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

चरित्रपुरुष—चरित्रप्रधान पुरुष।

वेदपुरुष—पुरुष संबंधी मनोविकार का अनुभव करने वाला। यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक—इन तीनों लिङ्गों में हो सकता है।

चिन्हपुरुष—दाढ़ी आदि पुरुष-चिन्हों से पहचाने जाने वाला अथवा पुरुषवेषधारी स्त्री आदि।

अभिलापपुरुष—लिंगानुशासन के अनुसार पुरुषलिंग से अभिहित होने वाला शब्द।

१६-२२—(सू० ३२-३५)

इन चार सूत्रों में पुरुषों की तीन श्रेणियां निरूपित हैं। प्रथम श्रेणी में धर्म, भोग और कर्म—इन तीनों के उत्तम पुरुषों का निरूपण है। द्वितीय और तृतीय श्रेणी में ऐसा निरूपण प्राप्त नहीं होता। द्वितीय श्रेणी के तीन पुरुषों का सम्बन्ध आवश्यकनिर्युक्ति के आधार पर ऋषभकालीन व्यवस्था के साथ जोड़ा जाता है। ऋषभ की राज्य-व्यवस्था में आरक्षक, उग्र, पुरोहित, भोज और वयस्य राजन्य कहलाते थे।[1]

भगवान् महावीर के समय में भी उग्र, भोग और राजन्यों का उल्लेख मिलता है।[2] इससे यह अनुमान किया जाता है कि ये प्राचीन समय के प्रसिद्ध वंश हैं।

इस वर्गीकरण से यह पता चलता है कि आगम-रचनाकाल में दास, भृतक (कर्मकर) और भागिक—कुछ भाग लेकर खेती आदि का काम करने वाले लोग तीसरी श्रेणी में गिने जाते थे। इन प्राचीन मूल्यों में आज क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान मूल्यों के अनुसार भोगपुरुष चक्रवर्ती को उत्तमपुरुष और खेतीहर मजदूर को जघन्यपुरुष का स्थान नहीं दिया जा सकता।

२३—सम्मूर्च्छिम (सू० ३६)

वृत्तिकार ने सम्मूर्च्छिम का अर्थ अगर्भज किया है।[3] सम्मूर्च्छिम जीव गर्भ से उत्पन्न नहीं होते। वे लोक के किसी भी भाग में उत्पन्न हो जाते हैं। वे जहां उत्पन्न होते हैं वहीं पुद्गलसमूह को आकृष्ट कर अपने देह की समन्तत (चारों ओर से) मूर्च्छना (शारीरिक अवयवों की रचना) कर लेते हैं।[4]

२४-२५—उर परिसर्प, भुजपरिसर्प (सू० ४२-४५)

परिसर्प का अर्थ होता है—चलने वाला प्राणी। वह दो प्रकार का होता है—

१ उर: परिसर्प—पेट के बल रेंगने वाला, जैसे—सर्प आदि।

२ भुजपरिसर्प—भुजा के बल चलने वाला, जैसे—नेवला आदि।[5]

२६—(सू० ५०)

१ कर्मभूमि—कृषि आदि कर्म द्वारा जीविका चलाई जाए, उस प्रकार की भूमि कर्मभूमि कहलाती है।

२ अकर्मभूमि—प्राकृतिक साधनों से जीविका चलाई जाए, उस प्रकार की भूमि अकर्मभूमि कहलाती है।

३ अन्तर्द्वीप—ये लवण समुद्र के अन्तर्गत हैं।

इनमें उत्पन्न होने वाले क्रमश कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं।

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, १६८

उग्गा भोगा राइण्ण खत्तिया संगहा भवे चउहा।
आरक्ख गुरुवयसा, सेसा जे खत्तिया ते उ॥

२ दसाओ, ७।३७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०८ सम्मूर्च्छिमा अगर्भजा।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, २।३१ त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनम्—अवयवप्रकल्पनम्।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०८ उरसा—वक्षसा परिसर्पन्तीति उर:परिसर्पा—सर्पादयस्तेऽपि भणितव्या, तथा भुजाभ्यां—बाहुभ्यां परिसर्पन्ति ये ते तथा नकुलादय।

२७—असुरकुमार के (सू० ५९) :

असुरकुमार आदि भवनपति देवो मे चार लेश्याएँ होती हैं, पर सक्लिष्ट लेश्याएँ तीन ही होती हैं। चौथी लेश्या—तेजोलेश्या सक्लिष्ट नही है, इस दृष्टि से यहा तीन लेश्याए बतलाई गई हैं।[1]

२८—पृथ्वीकाय (सू० ६१) :

पृथ्वीकाय, अप्काय तथा वनस्पतिकाय मे जीव देवगति से आकर उत्पन्न हो सकते हैं, उन जीवों मे तेजोलेश्या भी प्राप्त होती है, किन्तु यह सक्लिष्टलेश्या का निरूपण है, इसलिए उनमे तीन ही लेश्याए निरूपित की गई हैं।

२९—तेजस्कायिक ··(सू० ६२)

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित तेजस्कायिक आदि जीवो मे तीन लेश्याए ही प्राप्त होती हैं, अत ५८वें सूत्र की भाति यहा भी सक्लिष्ट शब्द का प्रयोग अपेक्षित नही है।

३०-३२—सामानिक, तावत्त्रिशक, लोकान्तिक (सू० ८०-८६) ·

सामानिक—समृद्धि मे इन्द्र के समकक्षदेव। तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार आज्ञा और ऐश्वर्य के सिवाय, स्थान, आयु, शक्ति, परिवार और भोगोपभोग आदि मे यह इन्द्र के समान होते हैं। ये पिता, गुरु, उपाध्याय आदि के समान आदरणीय होते हैं।

तावत्त्रिशक—इन्द्र के मन्त्री और पुरोहित स्थानीयदेव।

लोकान्तिक—पाचवें देवलोक में 'रहने वाले देवो' की एक जाति।

३३-३४—शतपाक, सहस्रपाक (सू० ८७) ·

शतपाक—वृत्तिकार ने इसके चार अर्थ किए हैं—

१ सौ औषधिक्वाथ के द्वारा पकाया हुआ।
२ सौ औषधियों के साथ पकाया गया।
३ सौ बार पकाया गया।
४ सौ रुपयों के मूल्य मे पकाया गया।

सहस्रपाक—वृत्तिकार ने इसके भी चार अर्थ किए हैं—

१ सहस्र औषधिक्वाथ के द्वारा पकाया हुआ।
२. सहस्र औषधियो के साथ पकाया गया।
३ सहस्र बार पकाया गया।
४ सहस्र रुपयो के मूल्य से पकाया गया।

३५—स्थालीपाक (सू० ८७)

अट्ठारह प्रकार के स्थालीपाक शुद्ध व्यञ्जन—स्थाली का अर्थ है पकाने की हडिया। शब्दकोष[2] मे इसके पर्यायवाची शब्द हैं—उखा, पिठर, कुड, चरु, कुम्भी।

अट्ठारह प्रकार के व्यञ्जन ये हैं[3]—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०९ असुरकुमाराणां तु धतसृणां भावात् संक्लिष्टा इति विशेषित, चतुर्थी हि तेषां तेजोलेश्याऽस्ति, किन्तु सा न संक्लिष्टेति।

२ अभिधानचिंतामणि, १०१९।

३ प्रवचनसारोद्धार, द्वार २५९, गाथा ११ १७।

१ सूप
२ ओदन
३ यवान्न-यव से बना हुआ परमान्न।
४ जलज-मास
५ स्थलज-मास
६ खेचर-मास
७ गोरस
८ जूप—जीरा आदि डाला हुआ मूग का रस।
९ भक्ष्य—खाजा आदि।
१० गुडपर्पटिका—गुड की बनी हुई पपडी।
११ मूलफल—मूल अर्थात् अश्वगधा आदि की जडें। फल—आम आदि।
१२ हरित—आचाराग वृत्ति के अनुसार तन्दुलीयम [चौलाई], धूपारुह, वस्तुल [वथुआ], वदरक [वैर], मार्जार, पादिका, चिल्ली [लाल पत्तो वाला वथुआ], पालक आदि हरित कहलाते हैं।[1]

चरक के अनुसार हरितवर्ग मे अदरक, जम्वीर (पुदीना वा तुलसी भेद), सुरस (तुलसी), अजवाइन, अजक (श्वेत तुलसी), सहिजन, शालेय (चाणक्य मूल), राई, गण्डीर (गण्डीर दो प्रकार का होता है—लाल और सफेद। लाल हरित-वर्ग मे है और सफेद साकवर्ग में), जलपिप्पली, तुम्वुरु (नेपाली धनियां) शृगवेटी (अदरक सदृश आकृति वाली), भूतृण (गन्धतृण), खराश्वा (पारसी कयमानी), धनिया, अजमोदा, सुमुख (तुलसी भेद), गृञ्जनक (गाजर), पलाण्डु (प्याज) और लशुन (लहसन) है।[2]

१३ डाक—हीग, जीरा आदि मसाले डाली हुई वथुए जैसी पत्तियो की भाजी।
१४ रसाला—दोपल घी, एकपल शहद, आधा आढक दही, २० काली मिर्च और १० पल खाड या गुड—इनको मिलाने से रसाला बनती है। इसे मार्जिता भी कहा जाता है।
१५ पानमदिरा
१६ पानीयजल
१७ पानक—अगूर आदि का पना।
१८ शाक—तरोई आदि का शाक, जो छाछ के साथ पकाया जाता है।

३६—योगवाहिता (सू० ८८)

योगवहन करने वाले मुनि की चर्या को योगवाहिता कहा जाता है। योगवहन का शव्दानुपाती अर्थ है—चित्त-समाधि की विशिष्ट साधना, जैन-परम्परा मे योगवहन की एक दूसरी पद्धति भी रही है। आगम-श्रुत के अध्ययनकाल मे योगवहन किया जाता था। प्रत्येक आगम तपस्यापूर्वक पढा जाता था। आगम के अध्येता मुनि के लिए विशेष प्रकार की चर्या निर्दिष्ट होती थी, जैसे—

१ अल्पनिद्रा लेना।
२ प्रथम दो प्रहरों में श्रुत और अर्थ का वार-वार अभ्यास करना।
३ अध्येतव्य ग्रंथ को छोडकर नया ग्रथ नही पढना।
४ पहले जो कुछ सीखा हो उसे नहीं भुलाना।
५ हास्य, विकथा, कलह आदि न करना।

---

१ आचारांगनिर्युक्ति, १२९ हरितानी—तन्दुलीय का धूमारुह वस्तुल वदरक मार्जार पादिका चिल्ली पालक्यादीनि।

२ चरकसूत्र, अ० २७, हरितवग श्लोक १६३-१७३।

६ धीमे-धीमे शब्दो मे बोलना, जोर-जोर से नहीं बोलना।

७ काम, क्रोध आदि का निग्रह करना।

तपस्या की विधि प्रत्येक शास्त्र-ग्रंथ के लिए निश्चित थी। इसकी जानकारी के लिए विधिप्रपा आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं।

यह योगवहन की पद्धति भगवान् महावीर के समय मे प्रचलित नहीं थी। उस समय के उल्लेखों मे अगों के अध्ययन का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु योगवहन पूर्वक अध्ययन का उल्लेख नहीं मिलता। अध्ययन के साथ योगवहन की परम्परा भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकाल में स्थापित हुई प्रतीत होती है। यदि योगवाहिताका अर्थ श्रुत के अध्ययन के साथ की जाने वाली तपस्या या विशिष्ट चर्या हो तो यह उत्तरकालीन सक्रमण है। और, यदि इसका अर्थ चित्त-समाधि की विशिष्ट साधना हो तो इसे महावीरकालीन माना जा सकता है। प्रसग की दृष्टि से दोनों अर्थसगत हो सकते हैं।

३७—प्रणिधान (सू० ९६)

प्रणिधान का अर्थ है—एकाग्रता। वह केवल मानसिक ही नहीं होती वाचिक और कायिक भी होती है। एकाग्रता का उपयोग सत् और असत् दोनों प्रकार का होता है। इसी आधार पर प्रणिधान के सुप्रणिधान और दुष्प्रणिधान—ये दो भेद किए गए हैं।

३८-४०—पल्य, माल्य, अन्तर्मुहूर्त (सू० १२५)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दों का अर्थ इस प्रकार हैं—

पल्य—बांस आदि से बनाई हुई टोकरी।

माल्य—दूसरी मजिल का मकान।

अन्तर्मुहूर्त—दो समय से लेकर अडतालीस मिनट में से एक समय कम तक का कालमान।

४१—(सू० १२१)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के आशय इस प्रकार हैं—

समान—प्रमाण की दृष्टि से एक लाख योजन।

सपक्ष—समश्रेणी की दृष्टि से सपक्ष—दाए बाए पार्श्व समान।

सप्रतिदिश—विदिशाओं में सम।

४२—(सू० १३२)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

सीमातक नरकावास—पहली नरकभूमि के पहले प्रस्तर का नरकावास।

ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी—सिद्धशिला। इसका क्षेत्रफल पैंतालीस लाख योजन है।

४३—(सू० १३९):

प्रस्तुत सूत्र में तीन कालिक-प्रज्ञप्ति सूत्रों का निरूपण है। नदीसूत्र में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति—इन दोनों को कालिक[1] तथा सूर्यप्रज्ञप्ति को उत्कालिक[2] के वर्ग मे समाविष्ट किया गया है। जयधवला में परिकर्म (दृष्टिवाद के प्रथम अग) के पाच अर्थाधिकार निरूपित हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्या-

---

१ नंदीसूत्र, ७८।

२ नदीसूत्र, ७७।

प्रज्ञप्ति[1]। दृष्टिवाद कालिक सूत्र है, अत इन प्रज्ञप्तियो का कालिक होना स्वत प्राप्त है। श्वेताम्बर आगमों मे प्रज्ञप्तिसूत्र दृष्टिवाद के अग के रूप में निरूपित नहीं है, फिर भी पाच प्रज्ञप्ति सूत्रो की मान्यता रही है, यह वृत्ति मे ज्ञात होता है। वृत्तिकार ने लिखा है कि यह तीसरा स्थान है, इसलिए इसमे तीन ही प्रज्ञप्तियो का उल्लेख है, व्याख्याप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का उल्लेख नही है।[2]

स्थानाग और नदीसूत्र के इस परम्परा-भेद का आधार अभी अन्वेषणीय है।

४४—परिषद् (सू० १४३)

इन्द्र की परिषद् निकटता की दृष्टि से तीन प्रकार की है—

समिता—आन्तरिक परिषद्। इसके सदस्य प्रयोजनवशात् इन्द्र के द्वारा बुलाने पर ही आते हैं।

चडा—मध्यमा परिषद्। इसके सदस्य इन्द्र के द्वारा बुलाने और न बुलाने पर भी आते है।

जाता—बाह्यपरिषद्। इसके सदस्य इन्द्र के द्वारा बिना बुलाये ही आ जाते हैं।

प्रकारान्तर से इसका यह भी अर्थ है—

१ जिनके सम्मुख प्रयोजन की पर्यालोचना की जाए वह आभ्यन्तर या समितापरिषद् है।

२ जिनके सम्मुख पर्यालोचित विषय को विस्तार से बताया जाए वह मध्यमा या चडापरिषद् है।

३ जिनके सम्मुख पर्यालोचित विषय का वर्णन किया जाए वह बाह्य या जातापरिषद् है।

४५—याम (सू० १६१)

यहा वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने 'याम' का अर्थ दिन और रात्रि का तृतीय भाग किया है।[3]

इससे आगे एक पाठ और है—तिहि वतेहि आया केवलिपन्नत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए त जहा—

पढमे वते, मज्झिमे वते, पच्छिमे वते (३।१६२)।

प्रथम, मध्यम और पश्चिम—तीनो वय मे धर्म की प्राप्ति होती है।

आचाराग मे भी धर्म प्रतिपत्ति के प्रसंग मे ऐसा ही पाठ है[4]—

जामा तिण्णि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया सबुज्झमाणा समुट्ठिया—

अर्थात् याम तीन हैं, जिनमें आर्य सबुद्ध होते हैं। आचारागचूर्णि मे 'जाम' और 'वय' को एकार्थक स्वीकार किया है।[5] किन्तु स्थानागसूत्र में 'जाम' और 'वय' के भिन्न पाठ हैं। फिर भी इससे आचारांगचूर्णि का मत खण्डित नहीं होता। क्योकि स्थानाग एक सग्राहक सूत्र है, इसीलिए इसमे सदृश पाठो का भी सकलन कर लिया गया है।

जाम का वयवाची अर्थ भी एक परम्परा का सकेत देता है।

उस समय सन्यास-विषयक यह प्रश्न प्रबल था कि किस अवस्था मे सन्यास लेना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था मे चतुर्थ आश्रम मे सन्यास-ग्रहण का विधान था परन्तु भगवान् महावीर की मान्यता इससे भिन्न थी। वे दीक्षा के साथ वय का योग नही मानते थे। उन्होंने कहा—प्रथम, मध्यम और पश्चिम—तीनो ही वय धर्म-प्रतिपत्ति के लिए योग्य हैं। तीनों वयों का काल-मान इस प्रकार हैं—

प्रथम वय—८ वर्ष से ३० वर्ष तक।

मध्यम वय—३० वर्ष से ६० वर्ष तक।

पश्चिम वय—६० वर्ष से आगे।

---

१ कषायपाहुड, भाग १, पृ० १५०।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १२० व्याख्याप्रज्ञप्तिजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिश्च न विवक्षिता, त्रिस्थानकानुरोधात्।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र १२२ यामो रात्रेर्दिनस्य च चतुर्थभागो यद्यपि प्रसिद्ध तथाऽपीह त्रिभाग एव विवक्षित।

४ आचारांग, १।८।१।१५।

५ आचारांगचूर्णि, पत्र २४४ जामोत्ति वा वयोत्ति वा एगट्ठा।

इसलिए इस भूमिका से भी स्पष्ट होता है कि धर्म-प्रतिपत्ति के प्रसग मे जो 'जाम' शब्द आया है वह वय का ही द्योतक है, व्रत या काल-विशेष का नही।

४६—बोधि (सूत्र १७६)

वृत्तिकार ने बोधि का अर्थ सम्यक्बोध किया है।[1] इस अर्थ मे चारित्रबोधि नहीं हो सकता। वृत्तिकार ने इसका समाधान इस भाषा में दिया है—चारित्र बोधि का फल है, इसलिए अभेदोपचार से उसे बोधि कहा गया है। उन्होंने दूसरा तर्क यह प्रस्तुत किया है—ज्ञान और चारित्र—ये दोनो ही जीव के उपयोग हैं, इसलिए उन्हें बोधि शब्द के द्वारा अभिहित किया गया है।[2]

आचार्य कुदकुद ने बोधि शब्द की सुन्दर परिभाषा दी है। जिस उपाय से सद्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय-चिंता का नाम बोधि है।[3] इस परिभाषा के अनुसार ज्ञानबोधि का अर्थ ज्ञानप्राप्ति की उपायचिंता, दर्शनबोधि का अर्थ दर्शनप्राप्ति की उपायचिंता और चारित्रबोधि का अर्थ चरित्रप्राप्ति की उपायचिंता फलित होता है।

बोधि शब्द बुध् धातु से निष्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है—ज्ञान या विवेक। धर्म के सन्दर्भ मे इसका अर्थ होता है—आत्मबोध या मोक्षमार्ग का बोध। आत्मा को जानना सम्यक्ज्ञान, आत्मा को देखना सम्यक्दर्शन और आत्मा मे रमण करना सम्यक् चारित्र है। एक शब्द में तीनों की सज्ञा आत्मबोध है। और, यह आत्मबोध ही मोक्ष का मार्ग है। यहाँ बोधि शब्द का इसी अर्थ मे प्रयोग किया गया है।

४७—मोह (सूत्र १७८)

देखें २।४२२ का टिप्पण।

४८—दूसरे स्थान पर ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८२)

दशपुर नगर के राजपुरोहित का नाम सोमदेव था। उसके पुत्र का नाम आर्यरक्षित और पत्नी का नाम रुद्रसोमा था। आर्यरक्षित पाटलीपुत्र मे जा चारो वेदों का सांगोपाग अध्ययन कर घर लौटे। माता के कहने पर वे दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए तोसलिपुत्र आचार्य के पास गए। उन दिनो आचार्य दशपुर नगर के इक्षुगृह मे ठहरे हुए थे। आचार्य ने कहा—जो प्रव्रजित होता है उसी को दृष्टिवाद का अध्ययन कराया जाता है। क्या तुम दीक्षा लोगे ? आर्यरक्षित ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। आचार्य ने कहा—इसका अध्ययन क्रमपूर्वक कराया जायेगा। आर्यरक्षित ने कहा—हां, मैं उसका क्रमपूर्वक अध्ययन करूगा। किन्तु मैं यहा प्रव्रजित होने में असमर्थ हू। क्योकि राजा का तथा दूसरे लोगो का मेरे पर बहुत बडा अनुराग है। प्रव्रजित हो जाने पर भी वे मुझे बलात् घर ले जा सकते हैं। अत अन्यत्र कही जाकर दीक्षा प्रदान करें।

आचार्य तोसलिपुत्र आर्यरक्षित को लेकर अन्यत्र गए और उसको प्रव्रजित किया।[4]

४९—उपदेश से ली जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८३)

आर्यरक्षित को प्रव्रजित हुए अनेक वर्ष हो चुके थे। एक बार उनके माता-पिता ने एक सदेश मे कहा—क्या तुम हम सबको भूल गए ? हम तो समझते थे कि तुम हमारे लिए प्रकाश करने वाले हो। तुम्हारे अभाव मे यहाँ अन्धकार ही अन्धकार है। तुम शीघ्र घर आकर हमें सम्हाल लो। आर्यरक्षित अपने अध्ययन मे तन्मय थे, अत इस सदेश पर कोई ध्यान नही दिया। तब माता-पिता ने अपने छोटे पुत्र फल्गुरक्षित को सदेश देकर भेजा। फल्गुरक्षित शीघ्र ही वहाँ गया और

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १२३ बोधि—सम्यक्बोध।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १२३ इह च चारित्र बोधिफलत्वात् बोधिरुच्यते, जीवोपयोगरूपत्वाद्वा।

३ षट्प्राभृतादिसग्रह, पृष्ठ ४४०, द्वादशानुप्रेक्षा ८३ उप्पज्जदि सण्णाण, जेण उवाएण तस्सुवायस्स चिंता हवेइ बोही, अच्चतं दुल्लहं होदि।

४ पूरे कथानक के लिए देखें—आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पत्र ३९४-३९६।

करुण शब्दो मे दशपुर आने के लिए आर्यरक्षित से कहा। आर्यरक्षित ने अपने गुरु वज्रस्वामी से पूछा। आचार्य ने कहा—अभी नही, अध्ययन में बाधा मत डालो। आर्यरक्षित अध्ययन मे पुन सलग्न हो गए। फल्गुरक्षित ने कहा—भ्रात ! तुम घर चलो और अपने कुटुम्बियो को दीक्षित कर अपना कर्त्तव्य निभाओ। आर्यरक्षित ने कहा—यदि सभी दीक्षित होना चाहते है तो पहले तुम प्रव्रज्या ग्रहण करो।'

फल्गुरक्षित ने तत्काल कहा—भगवान् ! मैं तैयार हू। आप मुझे व्रत की दीक्षा दें। आर्यरक्षित ने इसे प्रव्रजित कर दिया।[1]

५०—परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध हो ली जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८३)

देखें—१०।१५ के टिप्पण के अन्तर्गत मेतार्य का कथानक।

५१—(सूत्र १८४)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

पुलाक—यह एक प्रकार की तप-जनित शक्ति है। इसे प्राप्त करने वाला बहुत शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। इस शक्ति का प्रयोग करना मुनि के लिए निषिद्ध होता है। किन्तु कभी क्रुद्ध होने पर वह उसका प्रयोग करता है और इस शक्ति के द्वारा दडो का निर्माण कर बडी-से-बडी सेना को हत-प्रहत कर देता है।[2]

घात्यकर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घात्यकर्म कहलाते हैं।

५२—शैक्ष भूमिया (सूत्र १८६)

शैक्ष का अर्थ है—शिक्षा प्राप्त करने वाला।[3] तत्त्वार्थवार्त्तिक के अनुसार जो मुनि श्रुतज्ञान की शिक्षा में तत्पर और सतत व्रतभावना मे निपुण होता है, वह शैक्ष कहलाता है।[4] प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ सामायिक चारित्र वाला मुनि, नव-दीक्षित मुनि फलित होता है।

शैक्षभूमि का अर्थ है—सामायिक चारित्र का अवस्था-काल। दीक्षा के समय सामायिक चारित्र स्वीकार किया जाता है। उसमे सर्व सावद्य प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान होता है। उसके पश्चात् छेदोपस्थापनीय चारित्र अगीकार किया जाता है। उसमे पाच महाव्रत और रात्रिभोजन-विरमणव्रत को विभागश स्वीकार किया जाता हैं।

सामायिक चारित्र की तीन भूमिया (कालमर्यादाए) प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित हैं। छह महीनो के पश्चात् निश्चित रूप से छेदोपस्थानीय चारित्र स्वीकार करना होता है।

व्यवहारभाष्य में शैक्षभूमियों की प्राचीन परम्परा का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार—कोई मुनि प्रव्रज्या से पृथक् होकर पुन प्रव्रजित होता है, वह पूर्व विस्मृत सामाचारी आदि की एक सप्ताह मे पुन स्मृति या अभ्यास कर लेता है, इसलिए उसे सातवें दिन मे उपस्थापित कर देना चाहिए। यह शैक्ष की जघन्य भूमिका है।

कोई व्यक्ति प्रथम बार प्रव्रजित होता है, उसकी बुद्धि मद है और श्रद्धा-शक्ति भी मद है, उसे सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास छह मास तक करना चाहिए। यह शैक्ष की उत्कृष्ट भूमिका है।

मध्यस्तरीय बुद्धि और श्रद्धा वाले को सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास चार मास तक कराना चाहिए। यदि कोई भावनाशील श्रद्धा-सपन्न और मेधावी व्यक्ति प्रव्रजित हो तो उसे भी सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास चार मास तक कराना चाहिए। यह शैक्ष की मध्यम भूमिका है।[5]

---

१ परिशिष्टपर्व सर्ग १३, पृष्ठ १०७, १०८।

२ देखें—विशेषावश्यकभाष्य ८०६।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १२४ शिक्षां वाऽधीत इति शैक्ष।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, ९।२४ श्रुतज्ञानशिक्षणपर: 'अनुपरतव्रत-भावनानिपुण' शैक्षक इति लक्ष्यते।

५ व्यवहारभाष्य, १०।५३, ५४

पुव्वोवट्ठपुराणे, करणजयट्ठा जहण्णियाभूमी।
उक्कोसा दुम्मेह, पडुच्च असद्दहाण च॥
एमेव य मज्झमिया, अणहिज्जंते य सद्दहते य।
भाविय मेहाविस्सवि, करण जयट्ठा य मज्झमिया॥

५३—स्थविर (सूत्र १८७)

देखें स्थान, १०।१३६ का टिप्पण।

५४—(सूत्र १८८) :

सूत्र १८८ से ३१४ तक मे मनुष्य की विभिन्न मानसिक दशाओ का चित्रण किया गया है। यहाँ मन की तीन अवस्थाए प्रतिपादित हैं—

१ सुमनस्कता—मानसिक हर्ष।

२ दुर्मनस्कता—मानसिक विषाद।

३ मानसिक तटस्थता।

इन सूत्रो से यह फलित होता है कि परिस्थिति का प्रभाव सब मनुष्यो पर समान नहीं होता। एक ही परिस्थिति मानसिक स्तर पर विभिन्न प्रतिक्रियाए उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए युद्ध की परिस्थिति को प्रस्तुत किया जा सकता है—

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं।

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं।

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

५५—(सूत्र ३२२)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द ज्ञातव्य हैं—

१ अवक्रान्ति—उत्पन्न होना, जन्म लेना।

२ हानि—यह निवुड्ढि (निवृद्धि) शब्द का अनुवाद है।

गतिपर्याय और कालसयोग —देखें २।२५६ का टिप्पण

समुद्घात देखें ८।११४ का टिप्पण

दर्शनाभिगम—प्रत्यक्ष दर्शन के द्वारा होने वाला बोध।

ज्ञानाभिगम—प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा होने वाला बोध।

जीवाभिगम—जीवबोध।

५६-५७—त्रस, स्थावर (सूत्र ३२६, ३२७)

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये पाच प्रकार के जीव स्थावर नामकर्म के उदय से स्थावर कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—ये चार प्रकार के जीव त्रस नामकर्म के उदय से त्रस कहलाते हैं। यह स्थावर और त्रस की कर्मशास्त्रीय परिभाषा है। प्रस्तुत सूत्र [३२६, ३२७] तथा उत्तराध्ययन के ३६ वें अध्ययन मे स्थावर और त्रस का वर्गीकरण भिन्न प्रकार से प्राप्त होता है। इस वर्गीकरण के अनुसार पृथ्वी, पानी और वनस्पति—ये तीन स्थावर हैं।[1] अग्नि, वायु और उदार त्रसप्राणी—ये तीन त्रस हैं।[2]

दिगम्बर परम्परा-सम्मत तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये पाचों स्थावर हैं।[3] श्वेताम्बर परम्परा-सम्मत तत्त्वार्थसूत्र मे स्थावर और त्रस का विभाग प्रस्तुत सूत्र जैसा ही है।[4]

इन दोनो परम्पराओ मे कोई विरोध नही है। त्रस दो प्रकार के होते हैं—गतित्रस और लब्धित्रस। जिनमें चलने

१ उत्तराध्ययन, ३६।६९।

२ उत्तराध्ययन, ३६।१०७।

३. तत्त्वार्थसूत्र, २।१३ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय स्थावरा।

४ तत्त्वार्थसूत्र, २।१३, १४ पृथिव्यम्बुवनस्पतय स्थावरा। तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसा।

की क्रिया होती है, वे गतित्रस कहलाते हैं। जो जीव इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट निवारण के लिए इच्छापूर्वक गति करते वे लब्धित्रस कहलाते हैं।[1] प्रथम परिभाषा के अनुसार अग्नि और वायु त्रस हैं, किन्तु दूसरी परिभाषा के अनुसार वे त्रस नहीं हैं। प्रस्तुत सूत्र (३२६) में उनकी गति को लक्ष्य कर उन्हें त्रस कहा गया है।

५८ (सू० ३३७)

प्रस्तुत सूत्र का पूर्वपक्ष अकृततावाद है। आगम-रचनाशैली के अनुसार इसमें अन्ययूथिक शब्द का उल्लेख है, किन्तु इस वाद के प्रवर्त्तक का उल्लेख नही है। आगम साहित्य मे प्राय सभी वादो का अन्ययूथिक या अन्यतीर्थिक ऐसा मानते हैं— इस रूप मे प्रतिपादन किया गया है। बौद्ध पिटको मे विभिन्न वादो के प्रवर्त्तको का प्रत्यक्ष उल्लेख मिलता है। दीघनिकाय के सामञ्जफल-सुत्त से पता चलता है कि प्रक्रुधकात्यायन अकृततावाद का प्रतिपादन करते थे। उसके अनुसार सुख और दु ख अकृत, अनिर्मित, अकूटस्थ और स्तम्भवत् अचल हैं।[2]

भगवान् महावीर का कोई मुनि या श्रावक प्रक्रुधकात्यायन के इस मत को सुनकर आया और उसने भगवान् से इस विषय मे पूछा तब भगवान् ने उसे मिथ्या बतलाया और दु ख कृत होता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

इसके पूर्ववर्ती सूत्र मे भी दु ख कृत होता है, यह प्रतिपादित है।

ये दोनो सवादसूत्र किसी अन्य आगम के मध्यवर्ती अश हैं। तीन की सख्या के अनुरोध से ये यहा सकलित किए गए, ऐसा प्रतीत होता है।

भगवान् बुद्ध ने इस अहेतुवाद की आलोचना की थी। अगुत्तर-निकाय मे इसका उल्लेख मिलता है[3]—

भिक्षुओ! जिन श्रमण-ब्राह्मणो का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दु ख या अदुख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हू— आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दु ख या अदुख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के?

मेरे ऐसा पूछने पर वे "हा" उत्तर देते हैं।

तब मैं उनसे कहता हू—तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी चोरी करने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी अब्रह्मचारी होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी झूठ बोलने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी चुगलखोर होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी कठोर बोलने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी व्यर्थ बकवास करने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी लोभी होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी क्रोधी होते हैं तथा बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी मिथ्यादृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ! इस अहेतुवाद, इस अकारणवाद को ही साररूप ग्रहण कर लेने से यह करना योग्य है, और यह करना अयोग्य है, इस विषय मे सकल्प नहीं होता, प्रयत्न नही होता। जब यह करना योग्य है और यह करना अयोग्य है, इस विषय मे ही यथार्थ-ज्ञान नहीं होता तो इस प्रकार के मूढ-स्मृति असयत लोगो का अपने-आप को धार्मिक-श्रमण कहना सहेतुक नही होता।

५९—(सू० ३४९)

प्रस्तुत सूत्र अपवादसूत्र है। साधारणतया (उत्सर्ग मार्ग मे) मुनि के लिए मादक द्रव्यो का निषेध है। ग्लान अवस्था मे आपवादिक मार्ग के अनुसार मुनि आसव आदि ले सकता है। प्रस्तुत सूत्र मे उसकी मर्यादा का विधान है। दत्ति का अर्थ

---

१ तत्त्वार्थसूत्रभाष्यानुसारिणी टीका, २।१४ त्रसत्वं च द्विविधं क्रियातो लब्धितश्च।

२ दीघनिकाय, १।२, पृ० २१।

३ अंगुत्तरनिकाय, भाग १, पृ० १७९-१८०।

है—अञ्जलि।[1] ग्लान अवस्था मे भी मुनि तीन अञ्जलि से अधिक मादक द्रव्य नही ले सकता। निशीथसूत्र मे ग्लान के लिए तीन अञ्जलि से अधिक मादक द्रव्य लेने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया है—

जे भिक्खू गिलाणस्सऽट्ठाए पर तिण्ह वियडदत्तीण पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंत वा सातिज्जति।[2]

यह अपवाद सूत्र छेद सूत्रो की रचना के पश्चात् स्थानागसूत्र मे सक्रान्त हुआ, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या भिन्न प्रकार से की है।[3] उन्होने विकट का अर्थ पानक और दत्ति का अर्थ एक धार में लिया जा सके उतना द्रव्य किया है। उन्होंने उत्कृष्ट, मध्य और जघन्य के अर्थ मात्रा और द्रव्य इन दोनो दृष्टियो से किए हैं—

उत्कृष्ट—(१) पर्याप्त जल, जिससे दिन-भर प्यास बुझाई जा सके।
(२) कलमी चावल की काजी।

मध्यम—(१) अपर्याप्त जल, जिससे कई बार प्यास बुझाई जा सके।
(२) साठी चावल की काजी।

जघन्य—(१) एक बार पिए उतना जल।
(२) तृणधान्य की काजी या गर्म पानी।

वृत्तिकार ने अपने सामयिक वातावरण के अनुसार प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या की है, किन्तु 'गिलायमाणस्स' इस पाठ के सन्दर्भ मे यह व्याख्या सगत नही लगती। पानक का विधान अग्लान के लिए भी है फिर ग्लान के लिए सूत्र रचना का कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता। दूसरी बात निशीथ सूत्र के उन्नीसवें उद्देशक के सन्दर्भ में इस व्याख्या की सगति नही बिठाई जा सकती।

६०—साभोगिक (सू० ३५०).

देखो समवाओ १२।२ का टिप्पण।

६१-६४—अनुज्ञा, समनुज्ञा, उपसपदा, विहान (सू० ३५१-३५४).

इन चार सूत्रो मे अनुज्ञा, समनुज्ञा, उपसपदा और विहान—ये चार शब्द विमर्शनीय हैं।

आचार्य, उपाध्याय और गणी—ये तीनो साधुसघ के महत्त्वपूर्ण पद हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार ये आचार्य या स्थविरो के अनुमोदन से प्राप्त होते थे। वह अनुमोदन सामान्य और विशिष्ट दोनो प्रकार का होता था। सामान्य अनुमोदन को अनुज्ञा और विशिष्ट अनुमोदन को समनुज्ञा कहा जाता था। अनुमोदनीय व्यक्ति असमग्र गुणयुक्त और समग्र गुणयुक्त दोनो प्रकार के होते थे। असमग्र गुणयुक्त व्यक्ति को दिए जाने वाले अधिकार को अनुज्ञा तथा समग्रगुणयुक्त व्यक्ति को दिये जाने वाले अधिकार को समनुज्ञा कहा जाता था।

प्राचीनकाल मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष उपलब्धि के लिए अपने गण के आचार्य, उपाध्याय और गणी को छोडकर दूसरे गण के आचार्य, उपाध्याय और गणी के शिष्यत्व स्वीकार करने की परम्परा प्रचलित थी। इसे उपसपदा कहा जाता था।

---

१ निशीथचूर्णि, १९।५, भाग ४, पृ० २२१,
दत्तीए पमाण पसती।

२ निसीहज्झयण १९।५।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १३१ तओ त्ति तिस्र 'वियड' त्ति पानकाहार, तस्य दत्तय—एकप्रक्षेपप्रदानरूपा प्रतिग्रहीतुम्—आश्रयितु वेदनोपशमायेति, उत्कर्ष—प्रकर्ष तद्योगादुत्कर्षा उत्कर्षवतीति वोत्कर्षा उत्कृष्टेत्यर्थ, प्रचुरपानकलक्षणा, यया दिनमपि यापयति, मध्यमा ततो हीना, जघन्या यया सकृदेव वितृष्णो भवति यापनामात्र वा लभते, अथवा पानकविशेषादुत्कृष्टाद्यावाच्या, तथाहि—कलमकाञ्जिकावश्रावणाद, द्राक्षापानकादेर्वा प्रथमा १ षष्ठिका [दि] काञ्जिकादेर्मध्यमा २ तृणधान्यकाञ्जिकादेरुष्णोदकस्य वा जघन्येति, देशकालस्वरुचिविशेषाद्वोत्कर्षादि नेयमिति।

आचार्य, उपाध्याय और गणी भी विशिष्ट प्रजयोन उपस्थित होने पर अपने पद का त्याग कर देते थे। इसे विहान कहा जाता था।

६५—अल्पायुष्क (सू० ३६१)

डा० वोरीक्लोसोव्सकी ने सोवियत अथ-पत्रिका मे लिखा है—अन्तरिक्ष मे पृथ्वी की अपेक्षा समय वहुत धीमी गति से वढता है। यह तथ्य इसी तथ्य की ओर सकेत करता है कि देवता का मुहूर्त बीतता है और मनुष्य का जीवन ही बीत जाता है।

६६-७२—(सू० ३६२)

आचार्य—अर्थ की वाचना देने वाला—अनुयोगाचार्य।
उपाध्याय—सूत्र पाठ की वाचना देने वाला।
प्रवर्तक—वैयावृत्त्य तपस्या आदि मे साधुओं की नियुक्ति करने वाला।
स्थविर—सयम में अस्थिर होने वालो को पुन स्थिर करने वाला।
गणी—गणनायक।
गणधर—साध्वियों के विहार आदि की व्यवस्था करने वाला।[1]
गणावच्छेदक—प्रचार, उपाधि-लाभ आदि कारणों से गण से अन्यत्र विहार करने वाला।

७३—पानक (सू० ३७६)

पानक को हिन्दी मे पना कहा जाता है। प्राचीनकाल मे आयुर्वेदिक-पद्धति के अनुसार द्राक्षा आदि अनेक द्रव्यों का पानक तैयार किया जाता था[2]। यहा पानक शब्द धोवन तथा गर्म पानी के लिए भी प्रयुक्त किया गया है।

मूलाराधना[3] मे पानक के छह प्रकार मिलते हैं—

१ स्वच्छ—उष्णोदक, सौवीर आदि।
२ बहल—काजी, द्राक्षारस तथा इमली का सार।
३ लेवड—लेपसहित (दही आदि)।
४ अलेवड—लेपरहित, माड आदि।
५ ससिक्थ—पेया आदि।
६ असिक्थ—मग का सूप आदि।

७४-७५—फलिकोपहृत, शुद्धोपहृत (सू० ३७९)

फलिकोपहृत—कोई अभिग्रहधारी साधु उठाया हुआ लेता है, कोई परोसा हुआ लेता है और कोई पुन. पाकपात्र मे डाला हुआ लेता है—

देखें—आयारचूला १।१४५।
शुद्धोपहृत—देखें आयारचूला १।१४४

७६-७८—(सू० ३९२-३९४)

इन तीन सूत्रो मे मनुष्यो के व्यवहार की क्रमिक भूमिकाओं का निर्देश है। मनुष्य में सर्वप्रथम दृष्टिकोण का निर्माण होता है। उसके पश्चात् उसमें रुचि या श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर वह कार्य करता है। इसका अर्थ होता है—दर्शनानुसारी-

१ विशेष जानकारी के लिए देखें बृहत्कल्पभाष्य।
२ देखें—दसवेआलियं, ५।१।४७ का टिप्पण।
३ मूलाराधना, आश्वास ५।७००।

श्रद्धा और श्रद्धानुसारीप्रयोग। दृष्टिकोण यदि सम्यक् होता है तो श्रद्धा और प्रयोग दोनो सम्यक् होते हैं। उसके मिथ्या और मिश्रित होने पर श्रद्धा और प्रयोग भी मिश्रित होते हैं।

१ सम्यक्दर्शन	मिथ्यादर्शन	सम्यक्मिथ्यादर्शन
२ सम्यक्रुचि	मिथ्यारुचि	सम्यक्मिथ्यारुचि
३ सम्यक्प्रयोग	मिथ्याप्रयोग	सम्यक्मिथ्याप्रयोग

७९—व्यवसाय (सू० ३९५)

इन पाच सूत्रों का (३९५-३९९) विभिन्न व्यवसायो का उल्लेख है। व्यवसाय का अर्थ होता है—निश्चय, निर्णय और अनुष्ठान। निश्चय करने के साधनभूत ग्रन्थो को भी व्यवसाय कहा जाता है। प्रस्तुत पाच सूत्रो में विभिन्न दृष्टिकोणो से व्यवसाय का वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम वर्गीकरण धर्म के आधार पर किया गया है। दूसरा वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। इसे देखते ही वैशेषिकदर्शन-सम्मत तीन प्रमाणो की स्मृति हो आती है।

वैशेषिक सम्मत प्रमाण	प्रस्तुत वर्गीकरण
१ प्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
२ अनुमान	प्रात्ययिक—आगम
३ आगम	आनुगामिक—अनुमान

वृत्तिकार ने प्रत्यक्ष और प्रात्ययिक के दो-दो अर्थ किए हैं। प्रत्यक्ष के दो अर्थ—यौगिक प्रत्यक्ष और स्वसवेदन प्रत्यक्ष। यहा ये दोनों अर्थ घटित होते हैं।

प्रात्ययिक के दो अर्थ—

१ इन्द्रिय और मन के योग से होने वाला ज्ञान (व्यावहारिक प्रत्यक्ष)।

२ आप्तपुरुष के वचन से होने वाला ज्ञान।

तीसरा वर्गीकरण वर्तमान और भावी जीवन के आधार पर किया गया है। मनुष्य के कुछ निर्णय वर्तमान जीवन की दृष्टि से होते हैं, कुछ भावी जीवन की दृष्टि से और कुछ दोनो की दृष्टि से। ये क्रमश इहलौकिक, पारलौकिक और इहलौकिक-पारलौकिक कहलाते हैं।

चौथा वर्गीकरण विचार-धारा या शास्त्र-ग्रन्थो के आधार पर किया गया है। इस प्रकरण मे मुख्यत तीन विचार-धाराए प्रतिपादित हुई हैं—लौकिक, वैदिक और सामयिक।

लौकिक विचारधारा के प्रतिपादक होते हैं—अर्थशास्त्री, धर्मशास्त्री (समाजशास्त्री) और कामशास्त्री। ये लोग अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र (समाजशास्त्र) और कामशास्त्र के माध्यम से अर्थ, धर्म (सामाजिक कर्त्तव्य) और काम के औचित्य तथा अनौचित्य का निर्णय करते हैं। सूत्रकार ने इसे लौकिक व्यवसाय माना है। इस विचारधारा का किसी धर्म-दर्शन से सम्बन्ध नही होता। इसका सम्बन्ध लोकमत से होता है।

वैदिक विचारधारा के आधारभूत ग्रन्थ तीन वेद हैं—ऋक्, यजु और साम। यहा व्यवसाय के निमित्तभूत ग्रन्थो को ही व्यवसाय कहा गया है।

वृत्तिकार ने सामयिक व्यवसाय का अर्थ साख्य आदि दर्शनो के समय (सिद्धान्त) से होने वाला व्यवसाय किया है। प्राचीनकाल मे साख्यदर्शन श्रमण-परम्परा का ही एक अग रहा है। उसी दृष्टि के आधार पर वृत्तिकार ने यहाँ मुख्यता से साख्य का उल्लेख किया है। सामयिक व्यवसाय के तीन प्रकारो का दो नयो से अर्थ किया जा सकता है।

ज्ञानव्यवसाय—ज्ञान का निश्चय या ज्ञान के द्वारा होने वाला निश्चय।

दर्शनव्यवसाय—दर्शन का निश्चय।

चरित्रव्यवसाय—चरित्र का निश्चय।

दूसरे नय के अनुसार ज्ञान, दर्शन और चारित्र—ये श्रमणपरम्परा (या जैनशासन) के तीन मुख्य ग्रथ माने जा सकते

हैं। सूत्रकार ने किन ग्रन्थो की ओर सकेत किया है, यह उनकी उपलब्धि के अभाव मे निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता, पर इस कोटि के ग्रथो की परम्परा रही है, इसकी पुष्टि आचार्य कुदकुद के बोधप्राभृत, दर्शनप्राभृत और चरित्रप्राभृत से होती है। ३।५११ मे तीन प्रकार के अन्त (निर्णय) बतलाए गए हैं, वे प्रस्तुत विषय से ही सम्बन्धित हैं।

८०—(सू० ४००)

प्रस्तुत सूत्र में साम, दण्ड और भेद—ये तीन अर्थयोनि के रूप मे निर्दिष्ट हैं। चाणक्य ने शासनाधीन सधि और विग्रह के अनुष्ठानोपयोगी उपायो का निर्देश किया है। वे चार हैं—साम, उपप्रदातन, भेद और दण्ड।[1] वृत्तिकार ने बताया है—किसी पाठ-परपरा मे दण्ड के स्थान पर प्रदान पाठ माना जाता है। इस पाठान्तर के आधार पर चाणक्य-निर्दिष्ट उपप्रदान भी इसमे आ जाता है।

चाणक्य ने साम के पाच, भेद के दो और दण्ड के तीन प्रकार बतलाए है।

साम के पाच प्रकार—

१ गुणसकीर्तन—स्तुति।

२ सम्बन्धोपाख्यान—सम्बन्ध का कथन करना।

३ परस्परोपकारसन्दर्शन—परस्पर किए हुए उपकारो का वर्णन करना।

४ आपत्तिप्रदर्शन—भविष्य के सुनहले स्वप्न का प्रदर्शन करना।

५ आत्मोपनिधान—सामने वाले व्यक्ति के साथ अपनी एकता प्रदर्शित करना।

भेद के दो प्रकार—

१ शकाजनन—सदेह उत्पन्न कर देना।

२ निर्भर्त्सन—भर्त्सना करना।

दण्ड के तीन प्रकार—

१ वध। २ परिक्लेश। ३ अर्थहरण।

वृत्तिकार ने कुछ श्लोक उद्धृत किए हैं।[2] उनके आधार पर साम के पाच, दण्ड और भेद के तीन-तीन तथा पाठान्तर के रूप मे प्राप्त प्रदान के पाच प्रकार बतलाए हैं।

साम के पाच प्रकार—

१ परस्परोपकारदर्शन। २ गुणकीर्तन। ३ सम्बन्धसमाख्यान। ४ आयतिसप्रकाशन। ५ अर्पण।

दण्ड के तीन प्रकार—

१ वध। २ परिक्लेश। ३ धनहरण।

भेद के तीन प्रकार—

१ स्नेहरागापनयन—स्नेह, राग का अपनयन करना।

२ सहर्षोत्पादन—स्पर्धा उत्पन्न करना।

३ सतर्जन—तर्जना देना।

---

१ कौटलीयार्थशास्त्रम् अध्याय ३१, प्रकरण २८, पृ० ८३
उपाया सामोपप्रदानभेददण्डा।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १४१, १४२
१ परस्परोपकाराणां, दर्शन गुणकीर्तनम्।
सम्बन्धस्य समाख्यान, मायत्या सप्रकाशनम्॥
२ वाचा पेशलया साधु, तवाहमिति चार्पणम्।
इति सामप्रयोगज्ञै, साम पञ्चविधं स्मृतम्॥

३ वधश्चैव परिक्लेशो, धनस्य हरण तथा।
इति दण्डविधानज्ञैर्दण्डोऽपि त्रिविध स्मृत॥
४ स्नेहरागापनयनं, सहर्षोत्पादन तदा।
सन्तर्जन च भेदज्ञैर्भेदस्तु त्रिविध स्मृत॥
५ य सम्प्राप्तो धनोत्सर्गं, उत्तमाधममध्यम।
प्रतिदानं तथा तस्य, गृहीतस्यानुमोदनम्॥
६ द्रव्यदानमपूर्वं च, स्वयग्राहप्रवर्त्तनम्।
देयस्य प्रतिमोक्षश्च, दान पञ्चविध स्मृतम्॥

प्रदान के पाच प्रकार—

१ धनोत्सर्ग—धन का विसर्जन।
२ प्रतिदान—गृहीतधन का अनुमोदन।
३ अपूर्वद्रव्यदान—अपूर्वद्रव्य का दान करना।
४ स्वयग्राहप्रवर्तन—दूसरे के धन के प्रति स्वय ग्रहणपूर्वक प्रवर्तन करना।
५ देयप्रतिमोक्ष—ऋण चुकाना।

८१—(सू० ४०२) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के आशय इस प्रकार हैं—
शुद्धतरदृष्टि से सभी वस्तुए आत्म-प्रतिष्ठित होती हैं।
शुद्धदृष्टि से सभी वस्तुए आकाश-प्रतिष्ठित होती है।
अशुद्धदृष्टि—लोक व्यवहार से सब वस्तुए पृथ्वी प्रतिष्ठित होती है।

८२—मिथ्यात्व (सू० ४०३) :

प्रस्तुत सूत्र मे मिथ्यात्व का प्रयोग मिथ्यादर्शन या विपरीततत्त्वश्रद्धान के अर्थ मे नहीं है। यहा इसका अर्थ असमीचीनता है।

८३—(सू० ४०४)

प्रस्तुत सूत्र में अक्रिया के तीन प्रकार बतलाए गए हैं और उनके प्रकारों में क्रिया शब्द का व्यवहार हुआ है। वृत्तिकार ने उन्ही का समर्थन किया है।[1] ऐसा लगता है यहा अकार लुप्त है। प्रयोग क्रिया का अर्थ प्रयोग अक्रिया अर्थात् असमीचीन प्रयोगक्रिया होना चाहिए। वृत्तिकार ने देसणाण आदि तीनो पदों की देश अज्ञान और देशज्ञान—इन दोनो रूपो मे व्याख्या की है।[2] उनमे जैसे अकार का प्रश्लेप माना है, वैसे पओगकिरिया आदि पदो मे क्यो नहीं माना जा सकता ?

८४—(सू० ४२७)

देखें २।३८७-३८९ का टिप्पण।

८५—(सू० ४३२) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—
उद्गमउपघात—आहार की निष्पत्ति से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो गृहस्थ द्वारा किया जाता है।
उत्पादनउपघात—आहार के ग्रहण से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो साधु द्वारा किया जाता है।
एषणाउपघात—आहार लेते समय होने वाला भिक्षा-दोष, जो साधु और गृहस्थ दोनों द्वारा किया जाता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १४३ अक्रिया हि अशोभना क्रियैवा-तोऽक्रिया त्रिविधेत्यभिधायापि प्रयोगेत्यादिना क्रियैवोक्ता।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र १४४ ज्ञान हि द्रव्यपर्यायविषयो बोधस्त-न्निषेधोऽज्ञान तत्र विवक्षितद्रव्यं देशतो यदा न जानाति तदा देशाज्ञानमकारप्रश्लेपात्, यदा च सर्वतस्तदा सर्वाज्ञान, यदा विवक्षितपर्यायतो न जानाति तदा भावाज्ञानमिति, अथवा देशादिज्ञानमपि मिथ्यात्वविशिष्टमज्ञानमेवेति —अकारप्रश्लेष विनापि न दोष इति।

८६—(सू० ४३८)

संक्लेश शब्द के कई अर्थ होते हैं, जैसे—असमाधि, चित्त की मलिनता, अविशुद्धि, अरति और रागद्वेष की तीव्र परिणति।

आत्मा की असमाधिपूर्ण या अविशुद्ध परिणामधारा से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का पतन होता है, उनकी विशुद्धि नष्ट होती है, इसलिए उसे क्रमश ज्ञानसंक्लेश, दर्शनसंक्लेश और चारित्रसंक्लेश कहा जाता है।

८७-९०—(सू० ४४०-४४३)

ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आठ-आठ आचार होते हैं।[1] उनके प्रतिकूल आचरण करने को अनाचार कहा जाता है। उसके चार चरण हैं। चतुर्थ चरण मे वह अनाचार कहलाता है। उसका प्रथम चरण है प्रतिकूल आचरण का संकल्प, यह अतिक्रम कहलाता है। उसका दूसरा चरण है प्रतिकूल आचरण का प्रयत्न, यह व्यतिक्रम कहलाता है। उसका तीसरा चरण है प्रतिकूल आचरण का आंशिक सेवन, यह अतिचार कहलाता है। प्रतिकूल आचरण का पूर्णत सेवन अनाचार की कोटि मे चला जाता है।

९१—(सू० ४८२)

सामायिक कल्पस्थिति—

यह कल्पस्थिति प्रथम तथा अंतिम तीर्थंकर के समय मे अल्पकाल की होती है तथा शेष बाईस तीर्थंकरो के समय मे और महाविदेह मे यावत्कथिक जीवन पर्यन्त तक होती है।

इस कल्प के अनुसार शय्यातरपिंडपरिहार, चातुर्यामधर्म का पालन, पुरुषज्येष्ठत्व तथा कृतिकर्म—ये चार आवश्यक होते हैं तथा श्वेतवस्त्र का परिधान, औद्देशिक (एक साधु के उद्देश्य से बनाए हुए) आहार का दूसरे सांभोगिक द्वारा अग्रहण, राजपिंड का अग्रहण, नियत प्रतिक्रमण, मास-कल्पविहार तथा पर्युषणाकल्प—ये वैकल्पिक होते है।

छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति—

यह कल्पस्थिति प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के समय मे ही होती है। इस कल्प के अनुसार उपरोक्त दस कल्पो का पालन करना अनिवार्य है।

निर्विशमान कल्पस्थिति, निर्विष्ट कल्पस्थिति—

परिहारविशुद्धचरित्र मे नव साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमें चार साधु पहले तपस्या करते हैं। उन्हें निर्विशमान कल्पस्थिति साधु कहा जाता है। चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं तथा एक साधु आचार्य होते हैं। पूर्व चार साधुओ की तपस्या के पूर्ण हो जाने पर शेष चार साधु तपस्या करते हैं तथा पूर्व तपोभितप्त साधु उनकी परिचर्या करते हैं। उन्हें निर्विष्टकल्प कहा जाता है। दोनो दलों की तपस्या हो जाने के बाद आचार्य तपोवस्थित होते हैं और शेष आठो ही साधु उनकी परिचर्या करते हैं। नवो ही साधु जघन्यत नवें पूर्व की तीसरी आचार नामक वस्तु तथा उत्कृष्टत कुछ न्यून दस पूर्वों के ज्ञाता होते हैं।

निर्विशमान साधुओ की कल्पस्थिति का क्रम निम्ननिर्दिष्ट रहता है—वे ग्रीष्म, शीत तथा वर्षाऋतु मे जघन्य में क्रमश चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त और अष्टमभक्त, मध्यम में क्रमश षष्ठभक्त, अष्टभक्त और दशमभक्त, उत्कृष्ट मे क्रमश अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त की तपस्या करते हैं। पारणा में भी साभिग्रह आयम्बिल की तपस्या करते हैं। शेष साधु भी इस चरित्रावस्था मे आयम्बिल करते हैं।

जिनकल्पस्थिति—

विशेष साधना के लिए जो संघ से अलग होकर रहते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है।

---

१. देखें ५।१४७ का टिप्पण।

वे प्रतिदिन आयंबिल करते हैं, एकाकी रहते हैं, दस गुणोपेत स्थंडिल मे ही उच्चार तथा जीर्ण वस्त्रों का परित्याग करते हैं, विशेष धृति वाले होते है, भिक्षा तीसरे प्रहर मे ग्रहण करते हैं, मासकल्पविहार करते हैं, एक गली मे छह दिनो से पहले भिक्षा के लिए नहीं जाते तथा इनके ठहरने का स्थान एकान्त होता है।

स्थविरकल्पस्थिति—

जो संघ मे रहकर साधना करते हैं, उनकी आचारविधि को स्थविरकल्पस्थिति कहा जाता है। वे पठन-पाठन करते हैं, शिष्यो को दीक्षा देते हैं, उनका वास अनियत रहता है तथा वे दस सामाचारी का सम्यक् अनुपालन करते हैं।

देखें ६।१०३ का टिप्पण

९२–प्रत्यनीक (सू० ४८८-४९३)

प्रत्यनीक का अर्थ है प्रतिकूल। प्रस्तुत आलापक में प्रतिकूल व्यक्तियों के विभिन्न दृष्टियो से वर्गीकरण किए गए हैं।

प्रथम वर्गीकरण तत्त्व-उपदेष्ट या ज्येष्ठा की अपेक्षा से है। आचार्य और उपाध्याय तत्त्व के उपदेष्टा होते है। स्थविर तत्त्व के उपदेष्टा भी हो सकते हैं या जन्मपर्याय आदि मे बडे भी हो सकते हैं। जो व्यक्ति अवर्णवाद, छिद्रान्वेषण आदि के रूप में उनके प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह गुरु की अपेक्षा से प्रत्यनीक होता है।

दूसरा वर्गीकरण जीवन-पर्याय की अपेक्षा से है। इहलोक और परलोक के दो-दो अर्थ किए जा सकते हैं—वर्तमान जीवनपर्याय और आगामी जीवनपर्याय तथा मनुष्य जीवन और तिर्यंचजीवन।

जो मनुष्य वर्तमान जीवन के प्रतिकूल व्यवहार करता है—पचाग्नि साधक तपस्वी की भाति इद्रियो को अज्ञानपूर्ण तप से पीडित करता है या इहलोकोपकारी भोग-साधनो के प्रति अविवेक पूर्ण व्यवहार करता है या मनुष्य जाति के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह इहलोक प्रत्यनीक कहलाता है।

जो मनुष्य इद्रियो के विषयो में आसक्त होता है या ज्ञान आदि लोकोत्तर गुणों के प्रति उपद्रवपूर्ण व्यवहार करता है या पशु-पक्षी जगत् के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह परलोक प्रत्यनीक कहलाता है।

जो मनुष्य चोरी आदि के द्वारा इद्रिय विषयों का साधन करता है या मनुष्य और तिर्यंच दोनो जातियो के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह उभयप्रत्यनीक कहलाता है।

उक्त निरूपण से स्पष्ट होता है कि जैनधर्म इद्रिय-सताप और इन्द्रिय-आसक्ति दोनो के पक्ष मे नही है।

तीसरा वर्गीकरण समूह की अपेक्षा से है। कुल से गण और गण से सघ बृहत् होता है। ये लौकिक और लोकोत्तर दोनों पक्षो में होते हैं। जो मनुष्य इनका अवर्णवाद बोलता है, इन्हें विघटित करने का प्रयत्न करता है, वह कुल आदि का प्रत्यनीक होता है।

चौथा वर्गीकरण अनुकम्पनीय व्यक्तियों की अपेक्षा से है। तपस्वी (मासोपवास आदि तप करने वाला), ग्लान (रोग, वृद्धता आदि से असमर्थ) और शैक्ष (नव दीक्षित)—ये अनुकम्पनीय माने जाते हैं। जो मुनि इनको उपष्टम्भ नहीं देता, इनकी सेवा नहीं करता, वह तपस्वी आदि का प्रत्यनीक होता है।

पाचवा वर्गीकरण कर्मविलय-जनित पर्याय की अपेक्षा से है। जो व्यक्ति ज्ञान को समस्याओं की जड और अज्ञान को सुख का हेतु मानता है, वह ज्ञान-प्रत्यनीक होता है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की व्यर्थता का प्रतिपादन करने वाला दर्शन और चरित्र का प्रत्यनीक होता है। इनकी वितथ व्याख्या करने वाला भी इनका प्रत्यनीक होता है।

छठा वर्गीकरण शास्त्र-ग्रन्थो की अपेक्षा से है। सक्षिप्त मूलपाठ को सूत्र, उसकी व्याख्या को अर्थ, पाठ और अर्थ मिश्रित रचना को तदुभय (सूत्रार्थात्मक) कहा जाता है। सूत्रपाठ का यथार्थ उच्चारण न करने वाला सूत्र-प्रत्यनीक और उसकी तोड-मरोड़ कर व्याख्या करने वाला अर्थ-प्रत्यनीक कहलाता है।

इस प्रतिकूलता का प्रतिपादन सूत्र और अर्थ की प्रामाणिकता नष्ट न हो, इस दृष्टि से किया गया प्रतीत होता। इस प्रकार के प्रयत्न का उल्लेख बौद्ध साहित्य में भी मिलता है—

भगवान् बुद्ध ने कहा—भिक्षुओ ! दो बातें सद्धर्म के नाश का, उसके अन्तर्धान का कारण होती है। कौन सी दो बातें ?

पाली के शब्दो का व्यतिक्रम तथा उनके अर्थ का अनर्थ करना।

भिक्षुओ ! पाली के शब्दो का व्यतिक्रम होने से उनके अर्थ का भी अनर्थ होता है। भिक्षुओ ! ये दो बातें सद्धर्म के नाश का, उसके अन्तर्धान का कारण होती हैं।

भिक्षुओ ! दो बातें सद्धर्म की स्थिति का, उसके नाश न होने का, उसके अन्तर्धान न होने का कारण होती हैं। कौन सी दो बातें ?

पाली के शब्दो का ठीक-ठीक क्रम तथा उनका सही-सही अर्थ।

भिक्षुओ ! पाली के शब्दो का क्रम ठीक-ठीक रहने से उनका अर्थ भी सही सही रहता है।

भिक्षुओ ! ये दो बातें सद्धर्म की स्थिति का, उसके नाश न होने का, उसके अन्तर्धान न होने का कारण होती हैं।[1]

९३—(सू ४९६)

महानिर्जरा—निर्जरा नवसद्भाव पदार्थों मे एक पदार्थ है। इसका अर्थ है बधे हुए कर्मों का क्षीण होना। कर्मों का विपुल मात्रा मे क्षीण होना महानिर्जरा कहलाता है।

महापर्यवसान—इसके दो अर्थ होते हैं—समाधिमरण और अपुनर्मरण। जिस व्यक्ति के महानिर्जरा होती है वह समाधिपूर्ण मरण को प्राप्त होता है। यदि सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा हो जाती है तो वह अपुनर्मरण को प्राप्त होता है—जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

एकलविहारप्रतिमा—

देखें—८।१ का टिप्पण।

९४—अतियानऋद्धि (सू ५०३) :

अतियान ऋद्धि—अतियान का अर्थ है नगर-प्रवेश। ऋद्धि का अर्थ है शोभा या सजावट। जब राजा या राजा के अतिथि आदि विशिष्ट व्यक्ति नगर मे आते थे उस समय नगर के तोरण-द्वार सज्जित किए जाते थे, दुकानें सजाई जाती थी और राजपथ पर हजारो आदमी एकत्रित होते थे, इसे अतियानऋद्धि कहा जाता था।[2]

९५—निर्याणऋद्धि (सू ५०३)

निर्याणऋद्धि—इसका अर्थ है नगर से निर्गमन के समय साथ चलने वाला वैभव। जब राजा आदि विशिष्ट व्यक्ति नगर से निर्गमन करते थे उस समय हाथी, सामन्त, परिवार आदि के लोग उनके साथ चलते थे।[3]

९६—(सू ५०७)

प्रस्तुत सूत्र मे धर्म के तीन अगो—अध्ययन, ध्यान और तपस्या का निर्देश है। इनमे पौर्वापर्य का सबध है। अध्ययन के विना ध्यान और ध्यान के विना तपस्या नही हो सकती। पहले हम किसी बात को अध्ययन के द्वारा जानते है, फिर उसके आशय का ध्यान करते है। चिन्तन, मनन और अनुप्रेक्षा करते हैं। फिर उसका आचरण करते हैं। स्वाख्यात धर्म का यही क्रम है। भगवान् महावीर ने इसी क्रम का प्रतिपादन किया था। दूसरे स्थान मे धर्म के दो प्रकार बतलाए गए हैं[4]—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। यहा निर्दिष्ट तीन प्रकारो मे से सु-अधीत और सु-ध्यात श्रुतधर्म के प्रकार हैं और सु-तपस्यित चरित्रधम का प्रकार है।

---

१ अगुत्तरनिकाय, भाग १, पृ० ६१।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र १६२ अतियान—नगरप्रवेश, तत्र ऋद्धि—तोरणहट्टशोभाजनसम्मर्दादिलक्षणा।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १६२ निर्यान—नगरान्निगमः, तत्र ऋद्धि हस्तिकल्पनसामन्तपरिवारादिका।

४ स्थानांग २।१०७।

९७-९९—जिन, केवली, अर्हत् (सू० ५१२-५१४)

इन तीन सूत्रो मे जिन, केवली और अर्हत के तीन-तीन विकल्प निर्दिष्ट हैं। अर्हत् और जिन ये दोनो शब्द जैन और बौद्ध दोनों के साहित्य मे प्रयुक्त हैं। केवली शब्द का प्रयोग मुख्यत जैन साहित्य मे मिलता है।

ज्ञान की दृष्टि से दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१ परोक्षज्ञानी २ प्रत्यक्षज्ञानी।

जो मनुष्य इद्रियो के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानते हैं, वे परोक्षज्ञानी होते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी इद्रियो का आलम्बन लिए बिना ही ज्ञेय वस्तु को जान लेते हैं। वे अनीन्द्रियज्ञानी भी कहलाते हैं। यहां प्रत्यक्षज्ञानी या अतीन्द्रियज्ञानी को ही जिन, केवली और अर्हत् कहा गया है।

१००—(सू० ५२०)

जिस समय कृष्ण आदि अशुद्ध लेश्याए न शुद्ध होती हैं और न अधिक सक्लिष्टता की ओर बढती है, उस समय स्थितलेश्य मरण होता है। कृष्णलेश्या वाला जीव मरकर कृष्णलेश्या वाले नरक में उत्पन्न होता हैं, तब यह स्थिति होती है।

सक्लिष्टलेश्य—

जब अशुद्ध लेश्या अधिक सक्लिष्ट होती जाती है, तब सक्लिष्टलेश्यमरण होता है। नील आदि लेश्या वाला जीव मरकर जब कृष्णलेश्या वाले नरक मे उत्पन्न होता है तब यह स्थिति होती है।

पर्यवजातलेश्य—

अशुद्धलेश्या जब शुद्ध बनती जाती है, तब पर्यवजातमरण होता है। कृष्ण या नीललेश्या वाला जीव जब मरकर कापोतलेश्या वाले नरक मे उत्पन्न होता है, तब यह स्थिति होती है।

१०१—(सू० ५२२)

प्रस्तुत सूत्र मे दूसरा [असक्लिष्टलेश्य] और तीसरा [अपर्यवजातलेश्य]—ये दोनो भेद केवल विकल्प रचना की दृष्टि से ही है।

१०२—(सू० ५२३)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

अक्षम—असगतता।

अनानुगामिकता—अशुभअनुबध, अशुभ की शृखला।

शकित—ध्येय या कर्त्तव्य के प्रति सशयशील।

काक्षित—ध्येय या कर्त्तव्य के प्रतिकूल सिद्धान्तो की आकाक्षा करने वाला।

विचिकित्सित—ध्येय या कर्त्तव्य मे प्राप्त होने वाले फल के प्रति सदेह करने वाला।

भेदसमापन्न—सदेहशीलता के कारण ध्येय या कर्त्तव्य के प्रति जिसकी निष्ठा खडित हो जाती है, वह भेदसमापन्न कहलाता है।

कलुषसमापन्न—सदेहशीलता के कारण ध्येय या कर्त्तव्य को अस्वीकार कर देता है, वह कलुषसमापन्न कहलाता हैं।

१०३—विग्रहगति (सू० ५२६)

देखें—२।१६१ का टिप्पण।

१०४—मल्ली (सू० ५३२)

देखें—७।७५ का टिप्पण।

१०५—सर्वाक्षरसन्निपाती (सू० ५३४)

अक्षरो के सन्निपात [संयोग] अनन्त होते हैं। जिसका श्रुतज्ञान प्रकृष्ट हो जाता है, वह अक्षरो के सब सन्निपातों को जानने लग जाता है। इस प्रकार का ज्ञानी व्यक्ति सर्वाक्षरसन्निपाती कहलाता है। इसका तात्पर्य होता है सम्पूर्ण-वाङ्मय का ज्ञाता या सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषयो का परिज्ञाता।

चउत्थं ठाणं

चतुर्थ स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे चार की सख्या से सबद्ध विषय सकलित हैं। यह स्थान चार उद्देशकों मे विभक्त है। इस वर्गीकरण मे तात्त्विक, भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक आदि अनेक विषयों की अनेक चतुर्भंगियां मिलती हैं। इसमे वृक्ष, फल, वस्त्र आदि व्यावहारिक वस्तुओं के माध्यम से मनुष्य की मनोदशा का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, जैसे—

कुछ वृक्ष मूल में सीधे रहते हैं परन्तु ऊपर जाकर टेढे बन जाते हैं और कुछ सीधे ही ऊपर बढ जाते हैं। कुछ वृक्ष मूल मे भी सीधे नहीं होते और ऊपर जाकर भी सीधे नहीं रहते, और कुछ मूल मे सीधे न रहने वाले ऊपर जाकर सीधे बन जाते हैं।

व्यक्तियों का स्वभाव भी इसी प्रकार का होता है। कुछ व्यक्ति मन से सरल होते हैं और व्यवहार मे भी सरल होते हैं। कुछेक व्यक्ति सरल हृदय के होने पर भी व्यवहार मे कुटिलता करते हैं। मन मे सरल न रहने वाले भी बाह्य परिस्थिति-वश सरलता का दिखावा करते हैं। कुछ व्यक्ति अन्तर मे कुटिल होते हैं और व्यवहार मे भी कुटिलता दिखाते हैं।[1]

विचारों की तरतमता व पारस्परिक व्यवहार के कारण मन की स्थिति सबकी, सब समय समान नहीं रहती। जो व्यक्ति प्रथम मिलन में सरस दिखाई देते हैं, वे आगे चलकर अपनी नीरसता का परिचय दे देते हैं। कुछ लोग प्रथम मिलन मे इतने सरस नहीं दीखते परन्तु सहवास के साथ-साथ उनकी सरसता भी बढती जाती है। कुछ लोग प्रारम्भ से लेकर अत तक सरस ही रहते हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिनमे प्रारम्भ मिलन से लेकर सहवास तक कभी सरसता के दर्शन नहीं होते।[2]

व्यक्ति की योग्यता अपनी होती है। कुछ व्यक्ति अवस्था मे छोटे होकर भी शात होते हैं तो कुछ बडे होकर भी शात नहीं होते। छोटी अवस्था मे शात नहीं होने वाले मिलते हैं तो कुछ अवस्था के परिपाक मे भी शात रहते हैं।[3]

इस स्थान में सूत्रकार ने प्रसगवश कुछ कथा-निर्देश भी किए हैं। अन्तक्रिया के सूत्र (४।१) मे चार कथाओं के निर्देश मिलते हैं, जैसे—

(१) भरत चक्रवर्ती — (३) सम्राट् सनत्कुमार
(२) गजसुकुमाल — (४) मरुदेवा

वृत्तिकार ने भी अनेक स्थलों पर कथाओं और घटनाओं की योजना की है। सूत्र मे बताया गया है कि पुत्र चार प्रकार के होते हैं—

(१) पिता से अधिक — (३) पिता से हीन
(२) पिता के समान — (४) कुल के लिए अगारे जैसा

वृत्तिकार ने इस सूत्र को लौकिक और लोकोत्तर उदाहरणों द्वारा इसकी स्पष्टता की है—ऋषभ जैसा पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को बढाता है तो कण्डरीक जैसा पुत्र कुल की सम्पदा को ही नष्ट कर देता है। महायश जैसा पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को बनाए रखता है तो आदित्ययश जैसा पुत्र अपने पिता की तुलना मे अल्प वैभववाला होता है।

आचार्य सिंहगिरि की अपेक्षा वज्रस्वामी ने अपनी गण-सम्पदा को बढाया तो कुलवालक ने उदायी राजा को मारकर गण की प्रतिष्ठा को गवा दिया। यशोभद्र ने शय्यभव की सम्पदा को यथावस्थित रखा तो भद्रबाहु स्वामी की तुलना मे स्थूलभद्र की ज्ञान-गरिमा कम हो गई।[4]

---

१ ४।१२
२ ४।१०७
३ ४।१०१
४ ४।३४

भगवान् महावीर सत्य के साधक थे। उन्होंने जनता को सत्य की साधना दी, किन्तु बाहरी उपकरणों का अभिनिवेश नहीं दिया। प्रस्तुत स्थान मे उनकी सत्य-संधित्सा के स्फुलिंग आज भी सुरक्षित हैं—

(१) कुछ पुरुष वेश का त्याग कर देते हैं पर धर्म का त्याग नहीं करते।
(२) कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते हैं पर वेश का त्याग नहीं करते।
(३) कुछ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देते हैं और वेश का भी त्याग कर देते हैं।
(४) कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते हैं और न वेश का ही त्याग करते हैं।
(१) कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते हैं पर गणसंस्थिति का त्याग नहीं करते।
(२) कुछ पुरुष गणसंस्थिति का त्याग कर देते हैं पर धर्म का त्याग नहीं करते।
(३) कुछ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देते हैं और गणसंस्थिति का भी त्याग कर देते हैं।
(४) कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते हैं और न गणसंस्थिति का ही त्याग करते हैं।[1]

साधारणतया सत्य का संबंध वाणी से माना जाता है, किन्तु व्यापक धारणा मे उसका संबंध मन, वाणी और काय तीनों से होता है। प्रस्तुत स्थल मे सत्य का ऐसा ही व्यापक स्वरूप मिलता है, जैसे—

काया की ऋजुता
भाषा की ऋजुता
भावों की ऋजुता
अविसंवादिता—कथनी और करनी की समानता।[2]

प्रस्तुत स्थान मे व्यावहारिक विषयों का भी यथार्थ चित्रण मिलता है। इस जगत् मे विभिन्न मनोवृत्ति वाले लोग होते हैं। यह विभिन्नता किसी युग-विशेष में ही नहीं होती, किन्तु प्रत्येक युग मे मिलती है। सूत्रकार के शब्दों मे पढ़िए—

कुछ पुरुष आम्रप्रलम्बकोरक के समान होते हैं जो सेवा करने वाले का उचित समय मे उचित उपकार करते हैं।

कुछ पुरुष तालप्रलम्बकोरक के समान होते हैं जो दीर्घकाल से सेवा करने वाले का उचित उपकार करते हैं परन्तु बड़ी कठिनाई से।

कुछ पुरुष वल्लीप्रलम्बकोरक के समान होते हैं जो सेवा करने वाले का सरलता से शीघ्र ही उपकार कर देते हैं।

कुछ पुरुष मेषविषाणकोरक के समान होते हैं जो सेवा करने वाले को केवल मधुर वचनों के द्वारा प्रसन्न रखना चाहते हैं, लेकिन उपकार कुछ नहीं करते।[3]

इस प्रकार विविध विषयों से परिपूर्ण यह स्थान वास्तव मे ही ज्ञान-सम्पदा का अक्षय कोश है।

---

१ ४।४१६, ४२०
२ ४।१०२
३ ४।४५

चउत्थं ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल

अंतकिरिया-पदं

१ चत्तारि अंतकिरियाओ, पण्णत्ताओ, त जहा—

१ तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया—
अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से ण मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए सजमवहुले सवरवहुले समाहिवहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणव दुक्खक्खवे तवस्सी।
तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति।
तहप्पगारे पुरिसज्जाते दीहेण परियाएणं सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाणमतं करेइ, जहा—से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी—
पढमा अतकिरिया।

२ अहावरा दोच्चा अंतकिरिया—
महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए सजमवहुले सवरवहुले *समाहिवहुले लूहे तीरट्ठी° उवहाणव दुक्खक्खवे तवस्सी।

संस्कृत छाया

अन्तक्रिया-पदम्

चतस्र अन्तक्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ तत्र खलु इय प्रथमा अन्तक्रिया—
अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित सयमवहुल सवरवहुल समाधिवहुल रूक्ष तीरार्थी उपधानवान् दु खक्षप तपस्वी।
तस्य नो तथाप्रकार तपो भवति, नो तथाप्रकारा वेदना भवति।
तथाप्रकार पुरुपजात दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति वुद्ध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदु खाना अन्त करोति, यथा—स भरत राजा चातुरन्तचक्रवर्ती—
प्रथमा अन्तक्रिया।

२. अथापरा द्वितीया अन्तक्रिया—
महाकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजित सयमवहुल. सवरवहुल समाधिवहुल रूक्ष तीरार्थी उपधानवान् दु खक्षप तपस्वी।

हिन्दी अनुवाद

अन्तक्रिया-पद

१ अन्त क्रिया[1] चार प्रकार की होती है—

१ प्रथम अन्तक्रिया—
कोई पुरुप अल्प कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड अनगार रूप में प्रव्रजित होता है। वह सयम-वहुल, सवर-वहुल और समाधि-वहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दु ख को खपाने वाला और तपस्वी होता है।
उसके न तो तथाप्रकार का घोर तप होता है और न तथाप्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुप दीर्घ-कालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सव दु खो का अन्त करता है। इसका उदाहरण चातुरन्त चक्रवर्ती सम्राट् भरत[2] है।
यह पहली अल्पकर्म के साथ आए हुए तथा दीर्घकालीन मुनि-पर्याय वाले पुरुप की अन्तक्रिया है।

२ दूसरी अन्तक्रिया—
कोई पुरुप वहुत कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड अनगार रूप में प्रव्रजित होता है। वह सयम-वहुल, सवर-वहुल और समाधि-वहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दु ख को खपाने

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेण परियाएण सिज्झति •बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्व-दुक्खाणमंत° करेति, जहा—से गयसूमाले अणगारे—दोच्चा अंतकिरिया।

तस्य तथाप्रकारं तपो भवति, तथाप्रकारा वेदना भवति। तथाप्रकारः पुरुषजातः निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा—स गजसुकुमालः अनगारः—द्वितीया अन्तक्रिया।

वाला और तपस्वी होता है।
उसके तथाप्रकार का घोर तप और तथाप्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुष अल्पकालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दुःखों का अन्त करता है। इसका उदाहरण गज-सुकुमाल[1] है।
यह दूसरी महाकर्म के साथ आए हुए तथा अल्पकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

३ अहावरा तच्चा अंतकिरिया—महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए •संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी।

३. अथापरा तृतीया अन्तक्रिया—महाकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः समाधिबहुलः रूक्षः तीरार्थी उपधानवान् दुःखक्षपः तपस्वी।

३ तीसरी अन्तक्रिया—
कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड़ अनगार रूप में प्रव्रजित होता है। वह संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपाधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला और तपस्वी होता है।
उसके तथाप्रकार का घोर तप और तथा प्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुष दीर्घकालीन मुनिपर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दुःखों का अन्त करता है। इसका उदाहरण चातुरन्त चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार[2] है।
यह तीसरी महाकर्म के साथ आए हुए तथा दीर्घकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति, तहप्पगारे पुरिसजाते° दीहेणं परियाएणं सिज्झति• बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति° सव्व-दुक्खाणमंतं करेति, जहा—से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी—तच्चा अंतकिरिया।

तस्य तथाप्रकारं तपो भवति, तथाप्रकारा वेदना भवति। तथाप्रकारः पुरुषजातः दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा—स सनत्कुमारः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती—तृतीया अन्तक्रिया—

४ अहावरा चउत्था अंतकिरिया—अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता •अगाराओ अणगारियं° पव्वइए संजमबहुले •संवरबहुले समाहिबहुले लूहे

४. अथापरा चतुर्थी अन्तक्रिया—अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः समाधिबहुलः रूक्षः तीरार्थी उपधानवान्

४ चौथी अन्तक्रिया—
कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड़ अनगार रूप में प्रव्रजित होता है। वह संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-

तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी°।
तस्स ण णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति।
तहप्पगारे पुरिसजाए णिरुद्धेण परियाएणं सिज्झति °बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति° सव्व-दुक्खाणमंतं करेति, जहा—सा मरुदेवा भगवती—
चउत्था अंतकिरिया।

दुःखक्षपः तपस्वी।
तस्य नो तथाप्रकारं तपो भवति, नो तथाप्रकारा वेदना भवति।
तथाप्रकारः पुरुषजातः निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति बुद्ध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा—सा मरुदेवा भगवती—
चतुर्थी अन्तक्रिया।

बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला और तपस्वी होता है।
उसके न तथाप्रकार का घोर तप होता है और न तथाप्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुष अल्पकालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दुःखों का अन्त करता है। इसका उदाहरण भगवती मरुदेवा[3] है।
यह चौथी अल्प कर्म के साथ आए हुए तथा अल्पकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

उण्णत-पणत-पदं

२. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णते,
उण्णते णाममेगे पणते,
पणते णाममेगे उण्णते,
पणते णाममेगे पणते।

उन्नत-प्रणत-पदम्

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतः।

उन्नत-प्रणत-पद

२. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से भी उन्नत होते हैं और जाति से भी उन्नत होते हैं, जैसे—शाल,
२ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु जाति से प्रणत होते हैं, जैसे—नीम,
३ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु जाति से उन्नत होते हैं, जैसे—अशोक,
४ कुछ वृक्ष शरीर से भी प्रणत होते हैं और जाति से भी प्रणत होते हैं, जैसे—खैर।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णते,
°उण्णते णाममेगे पणते,
पणते णाममेगे उण्णते,°
पणते णाममेगे पणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से भी उन्नत होते हैं और गुणों से भी उन्नत होते हैं,
२ कुछ पुरुष शरीर से उन्नत, किन्तु गुणों में प्रणत होते हैं,
३ कुछ पुरुष शरीर से प्रणत, किन्तु गुणों से उन्नत होते हैं,
४ कुछ पुरुष शरीर से भी प्रणत होते हैं और गुणों से भी प्रणत होते हैं[1]।

३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते,
उण्णते णाममेगे पणतपरिणते,
पणते णाममेगे उण्णतपरिणते,
पणते णाममेगे पणतपरिणते

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते,
°उण्णते णाममेगे पणतपरिणते,
पणते णाममेगे उण्णतपरिणते,
पणते णाममेगे पणतपरिणते।°

चत्वार रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतपरिणत,
उन्नतो नामैक प्रणतपरिणत,
प्रणतो नामैक उन्नतपरिणत,
प्रणतो नामैक प्रणतपरिणत ।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतपरिणत,
उन्नतो नामैक: प्रणतपरिणत,
प्रणतो नामैक उन्नतपरिणत,
प्रणतो नामैक प्रणतपरिणत ।

३. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत-परिणत होते हैं, अनुन्नतभाव को (अशुभ रस आदि) को छोड, उन्नतभाव (शुभ-रस आदि) मे परिणत होते हैं,
२ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणत-परिणत होते हैं—उन्नतभाव को छोड अनुन्नतभाव मे परिणत होते हैं,
३ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत और उन्नत-भाव मे परिणत होते हैं,
४ कुछ वृक्ष शरीर मे प्रणत और प्रणत-भाव मे परिणत होते हैं।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर से उन्नत और उन्नत-रूप मे परिणत होते हैं—अनुन्नतभाव (अवगुण) को छोड, उन्नतभाव (गुण) मे परिणत होते हैं,
२ कुछ पुरुप शरीर मे उन्नत, किन्तु प्रणत-रूप मे परिणत होते हैं—उन्नतभाव को छोड, अनुन्नतभाव मे परिणत होते हैं,
३ कुछ पुरुप शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नत-रूप मे परिणत होते हैं,
४ कुछ पुरुप शरीर से प्रणत और प्रणत-रूप मे परिणत होते हैं।

४ चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे,
°उण्णते णाममेगे पणतरूवे,
पणते णाममेगे उण्णतरूवे,
पणते णाममेगे पणतरूवे।°

चत्वार रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतरूप,
उन्नतो नामैक प्रणतरूप,
प्रणतो नामैक उन्नतरूप,
प्रणतो नामैक प्रणतरूप ।

४ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत-रूप वाले होते है,
२ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणत-रुप वाले होते हैं,
३ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नत-रूप वाले होते हैं,
४ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत-रूप वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे,
•उण्णते णाममेगे पणतरूवे,
पण्णते णाममेगे उण्णतरूवे,
पणते णाममेगे पणतरूवे।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतरूप,
उन्नतो नामैक प्रणतरूप,
प्रणतो नामैक उन्नतरूप,
प्रणतो नामैक प्रणतरूप।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नतरूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणतरूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नतरूप वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणतरूप वाले होते हैं[८]।

५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतमणे,
उण्णते णाममेगे पणतमणे,
पणते णाममेगे उण्णतमणे,
पणते णाममेगे पणतमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतमना,
उन्नतो नामैक प्रणतमना,
प्रणतो नामैक उन्नतमना,
प्रणतो नामैक प्रणतमना।

५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतमन वाले होते हैं—उदार होते हैं।
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतमन वाले होते हैं—अनुदार होते हैं।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतमन वाले होते है—उदार होते हैं।
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतमन वाले होते हैं—अनुदार होते हैं[९]।

६ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतसकप्पे,
उण्णते णाममेगे पणतसकप्पे,
पणते णाममेगे उण्णतसकप्पे,
पणते णाममेगे पणतसकप्पे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतसकल्प,
उन्नतो नामैक प्रणतसकल्प,
प्रणतो नामैक उन्नतसकल्प,
प्रणतो नामैक प्रणतसकल्प।

६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतसकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतसकल्प वाले होते हैं,
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतसकल्प वाले होते हैं,
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतसकल्प वाले होते हैं।[१०]

७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपण्णे,
उण्णते णाममेगे पणतपण्णे,
पणते णाममेगे उण्णतपण्णे,
पणते णाममेगे पणतपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैक उन्नतप्रज्ञ,
उन्नतो नामैक प्रणतप्रज्ञ,
प्रणतो नामैक उन्नतप्रज्ञ,
प्रणतो नामैक प्रणतप्रज्ञ।

७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतप्रज्ञा वाले होते हैं,
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतप्रज्ञा वाले होते हैं,
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतप्रज्ञा वाले होते हैं,
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतप्रज्ञा वाले होते हैं।[११]

८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— उण्णते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, उण्णते णाममेगे पणतदिट्ठी, पणते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, पणते णाममेगे पणतदिट्ठी।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उन्नतो नामैक उन्नतदृष्टि, उन्नतो नामैक प्रणतदृष्टि, प्रणतो नामैक उन्नतदृष्टि, प्रणतो नामैक प्रणतदृष्टि।	८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य मे उन्नत और उन्नतदृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष ऐश्वर्य मे उन्नत, किन्तु प्रणतदृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतदृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतदृष्टि वाले होते हैं।[12]
९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— उण्णते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, उण्णते णाममेगे पणतसीलाचारे, पणते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, पणते णाममेगे पणतसीलाचारे।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उन्नतो नामैक उन्नतशीलाचार, उन्नतो नामैक प्रणतशीलाचार, प्रणतो नामैक उन्नतशीलाचार, प्रणतो नामैक प्रणतशीलाचार।	९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतशीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतशीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतशीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतशीलाचार वाले होते हैं।[13]
१० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— उण्णते णाममेगे उण्णतववहारे, उण्णते णाममेगे पणतववहारे, पणते णाममेगे उण्णतववहारे, पणते णाममेगे पणतववहारे।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उन्नतो नामैक उन्नतव्यवहार, उन्नतो नामैक प्रणतव्यवहार, प्रणतो नामैक उन्नतव्यवहार, प्रणतो नामैक प्रणतव्यवहार।	१० पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतव्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतव्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतव्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतव्यवहार वाले होते हैं।[14]
११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— उण्णते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, उण्णते णाममेगे पणतपरक्कमे, पणते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, पणते णाममेगे पणतपरक्कमे°।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उन्नतो नामैक उन्नतपराक्रम, उन्नतो नामैक प्रणतपराक्रम, प्रणतो नामैक उन्नतपराक्रम, प्रणतो नामैक प्रणतपराक्रम।	११ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतपराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतपराक्रम वाले होते हैं। ३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतपराक्रम वाले होते हैं। ४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतपराक्रम वाले होते हैं।[15]

उज्जु-वक-पद

१२ चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वंके,
•वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।°

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
•उज्जू णाममेगे वंके,
वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।

१३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते,
उज्जू णाममेगे वंकपरिणते,
वंके णाममेगे उज्जुपरिणते,
वंके णाममेगे वंकपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते,
उज्जू णाममेगे वंकपरिणते,
वंके णाममेगे उज्जुपरिणते,
वंके णाममेगे वंकपरिणते।

ऋजु-वक्र-पदम्

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋजु नामैकः ऋजुः,
ऋजु नामैकः वक्रः,
वक्रो नामैकः ऋजुः,
वक्रो नामैकः वक्रः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैकः ऋजुः,
ऋजु नामैकः वक्रः,
वक्रो नामैकः ऋजुः,
वक्रो नामैकः वक्रः।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋजु नामैकः ऋजुपरिणतः,
ऋजु नामैकः वक्रपरिणतः,
वक्रो नामैकः ऋजुपरिणतः,
वक्रो नामैकः वक्रपरिणतः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैकः ऋजुपरिणतः,
ऋजु नामैकः वक्रोपरिणतः,
वक्रो नामैकः ऋजुपरिणतः,
वक्रो नामैकः वक्रपरिणतः।

ऋजु-वक्र-पद

१२ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से भी ऋजु होते हैं और कार्य से भी ऋजु होते हैं—ठीक समय पर फल देने वाले होते हैं, २ कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु किन्तु कार्य से वक्र होते हैं—ठीक समय पर फल देने वाले नही होते, ३ कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु कार्य से ऋजु होते हैं, ४ कुछ वृक्ष शरीर से भी वक्र होते हैं और कार्य से भी वक्र होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी ऋजु होते हैं और प्रकृति से भी ऋजु होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से ऋजु होते हैं, किन्तु प्रकृति से वक्र होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से वक्र होते हैं, किन्तु प्रकृति से ऋजु होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी वक्र होते हैं और प्रकृति से भी वक्र होते हैं।"

१३ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होते हैं, २ कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होते हैं, ३ कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-परिणत होते हैं, ४ कुछ वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र किन्तु ऋजु-परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होते हैं।

१४. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे,
उज्जू णाममेगे वंकरूवे,
वके णाममेगे उज्जुरूवे,
वंके णाममेगे वकरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे,
उज्जू णाममेगे वकरूवे,
वके णाममेगे उज्जुरूवे,
वंके णाममेगे वकरूवे।

चत्वार रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुरूप,
ऋजु नामैक वक्ररूप,
वक्रो नामैक ऋजुरूप,
वक्रो नामैक वक्ररूप ।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुरूप,
ऋजु. नामैक वक्ररूप,
वक्रो नामैक ऋजुरूप.,
वक्रो नामैक वक्ररूप ।

१४ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-रूप वाले होते हैं, २ कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु-रूप वाले होते हैं २ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-रूप वाले होते है, ३ कुछ पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र-रूप वाले होते हैं।

१५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुमणे,
उज्जू णाममेगे वंकमणे,
वके णाममेगे उज्जुमणे,
वके णाममेगे वकमणे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुमना,
ऋजु नामैक वक्रमना,
वक्रो नामैक ऋजुमना,
वक्रो नामैक वक्रमना ।

१५ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु-मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर मे ऋजु, किन्तु वक्र-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र-मन वाले होते हैं।

१६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुसकप्पे,
उज्जू णाममेगे वंकसंकप्पे,
वके णाममेगे उज्जुसकप्पे,
वके णाममेगे वंकसंकप्पे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुसकल्प,
ऋजु नामैक वक्रसकल्पः,
वक्रो नामैक. ऋजुसकल्प,
वक्रो नामैक. वक्रसकल्प.।

१६ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु-सकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-सकल्प वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र-सकल्प वाले होते हैं।

१७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपण्णे,
उज्जू णाममेगे वंकपण्णे,
वके णाममेगे उज्जुपण्णे,
वके णाममेगे वंकपण्णे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैक ऋजुप्रज्ञः,
ऋजु. नामैक वक्रप्रज्ञ,
वक्रो नामैक ऋजुप्रज्ञ,
वक्रो नामैक वक्रप्रज्ञ ।

१७ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु-प्रज्ञा वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र-प्रज्ञा वाले होते हैं।

१८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
उज्जू णाममेगे वंकदिट्ठी,
वंके णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
वंके णाममेगे वंकदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुदृष्टि,
ऋजु नामैक वक्रदृष्टि,
वक्रो नामैक ऋजुदृष्टि,
वक्रो नामैक वक्रदृष्टि।

१८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-दृष्टि वाले होते हैं।

१९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
उज्जू णाममेगे वंकसीलाचारे,
वंके णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
वंके णाममेगे वंकसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुशीलाचार,
ऋजु नामैक वक्रशीलाचार,
वक्रो नामैक ऋजुशीलाचार,
वक्रो नामैक वक्रशीलाचार।

१९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-शीलाचार वाले होते हैं।

२०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुववहारे,
उज्जू णाममेगे वंकववहारे,
वंके णाममेगे उज्जुववहारे,
वंके णाममेगे वंकववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुव्यवहार,
ऋजु नामैक वक्रव्यवहार,
वक्रो नामैक ऋजुव्यवहार,
वक्रो नामैक वक्रव्यवहार।

२० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-व्यवहार वाले होते हैं।

२१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
उज्जू णाममेगे वंकपरक्कमे,
वंके णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
वंके णाममेगे वंकपरक्कमे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजुपराक्रम,
ऋजु नामैक वक्रपराक्रम,
वक्रो नामैक ऋजुपराक्रम,
वक्रो नामैक वक्रपराक्रम।

२१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-पराक्रम वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-पराक्रम वाले होते हैं।

भासा-पद

२२ पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पति चत्तारि भासाओ भासित्तए, तं जहा—जायणी, पुच्छणी,

भाषा-पदम्

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते चतस्र भाषा भाषितु, तद्यथा—
याचनी, प्रच्छनी, अनुज्ञापनी,

भाषा-पद

२२ भिक्षुप्रतिमाओं को अंगीकार करने वाला मुनि चार विषयों से सम्बन्धित भाषा बोल सकता है—१ याचनी—याचना से

अणुण्णवणी, पुट्ठस्स वागरणी।

पृष्टस्य व्याकरणी।

सम्बन्ध रखने वाली भाषा, २ प्रच्छनी—मार्ग आदि तथा सूत्रार्थ के प्रश्न से सम्बन्धित भाषा, ३ अनुज्ञापनी—स्थान आदि की आज्ञा लेने से सम्बन्धित भाषा, ४ पृष्ट व्याकरणी—पूछे हुए प्रश्नों का प्रतिपादन करने वाली भाषा।

२३. चत्तारि भासाजाता पण्णत्ता, तं जहा—सच्चमेग भासज्जाय, बीय मोस, तइय सच्चमोस, चउत्थ असच्चमोस।

चत्वारि भाषाजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सत्यमेक भाषाजात, द्वितीय मृषा, तृतीय सत्यमृषा, चतुर्थं असत्याऽमृषा।

२३ भाषा के चार प्रकार हैं—
१ सत्य (यथार्थ), २ मृषा (अयथार्थ), ३ सत्य-मृषा (सत्य-असत्य का मिश्रण), ४ असत्य-अमृषा (व्यवहार भाषा)।[१७]

सुद्ध-असुद्ध-पद

शुद्ध-अशुद्ध-पदम्

शुद्ध-अशुद्ध-पद

२४ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धे।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्ध नामैक शुद्ध,
शुद्ध नामैक अशुद्ध,
अशुद्ध नामैक शुद्ध,
अशुद्ध नामैक अशुद्ध।

२४ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से भी शुद्ध होते हैं और स्थिति से भी शुद्ध होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु स्थिति से अशुद्ध होते है, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु स्थिति से शुद्ध होते हैं, ४ कुछ वस्त्र प्रकृति से भी अशुद्ध होते हैं और स्थिति से भी अशुद्ध होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धे,
•सुद्धे णाम एगे असुद्धे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्ध,
शुद्धो नामैक अशुद्ध,
अशुद्धो नामैक शुद्ध,
अशुद्धो नामैक अशुद्ध।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष जाति से भी शुद्ध होते हैं और गुण से भी शुद्ध होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु गुण से अशुद्ध होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु गुण से शुद्ध होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से भी अशुद्ध होते हैं और गुण से भी अशुद्ध होते हैं।[१८]

२५ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए,
सुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए,
असुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए,
असुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्ध नामैक शुद्धपरिणत,
शुद्ध नामैक अशुद्धपरिणत,
अशुद्ध नामैक शुद्धपरिणत,
अशुद्ध नामैक अशुद्धपरिणत।

२५ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होते है, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होते हैं, ४ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए,
सुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए,
असुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए,
असुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धपरिणत,
शुद्धो नामैक अशुद्धपरिणत,
अशुद्धो नामैक शुद्धपरिणत,
अशुद्धो नामैक अशुद्धपरिणत ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति मे अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होते हैं।

२६. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे,
अशुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे°।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्ध नामैक शुद्धरूप,
शुद्ध नामैक अशुद्धरूप,
अशुद्ध नामैक शुद्धरूप,
अशुद्ध नामैक अशुद्धरूप ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धरूप,
शुद्धो नामैक अशुद्धरूप,
अशुद्धो नामैक शुद्धरूप,
अशुद्धो नामैक अशुद्धरूप ।

२६ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-रूप वाले होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-रूप वाले होते हैं। इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष प्रकृति मे शुद्ध और शुद्ध-रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-रूप वाले होते हैं।

२७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धमणे,
•सुद्धे णाम एगे असुद्धमणे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धमणे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धमणे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धमना,
शुद्धो नामैक अशुद्धमना,
अशुद्धो नामैक शुद्धमना,
अशुद्धो नामैक अशुद्धमना ।

२७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जति से अशुद्ध और अशुद्ध-मन वाले होते हैं।

२८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धसकप्पे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धसकप्पे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धसकप्पे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धसकप्पे,

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धसकल्प,
शुद्धो नामैक अशुद्धसकल्प,
अशुद्धो नामैक शुद्धसकल्प,
अशुद्धो नामैक अशुद्धसकल्प ।

२८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-सकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-सकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-सकल्प वाले होते हैं।

२९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धपण्णे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धपण्णे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धपण्णे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धप्रज्ञ,
शुद्धो नामैक अशुद्धप्रज्ञ,
अशुद्धो नामैक शुद्धप्रज्ञ,
अशुद्धो नामैक अशुद्धप्रज्ञ।

२९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-प्रज्ञा वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-प्रज्ञा वाले होते हैं।

३० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धदिट्ठी,
सुद्धे णाम एगे असुद्धदिट्ठी,
असुद्धे णाम एगे सुद्धदिट्ठी,
असुद्धे णाम एगे असुद्धदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धदृष्टि,
शुद्धो नामैक अशुद्धदृष्टि,
अशुद्धो नामैक शुद्धदृष्टि,
अशुद्धो नामैक अशुद्धदृष्टि।

३० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं।

३१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धसीलाचारे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धसीलाचारे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धसीलाचारे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धशीलाचार,
शुद्धो नामैक अशुद्धशीलाचार,
अशुद्धो नामैक शुद्धशीलाचार,
अशुद्धो नामैक अशुद्धशीलाचार।

३१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-शीलाचार वाले होते हैं।

३२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धववहारे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धववहारे,
असुद्धे णाम एगे सुद्धववहारे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धव्यवहार,
शुद्धो नामैक अशुद्धव्यवहार,
अशुद्धो नामैक शुद्धव्यवहार,
अशुद्धो नामैक अशुद्धव्यवहार।

३२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-व्यवहार वाले होते हैं।

३३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुद्धे णाम एगे सुद्धपरक्कमे,
सुद्धे णाम एगे असुद्धपरक्कमे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैक शुद्धपराक्रम,
शुद्धो नामैक अशुद्धपराक्रम,

३३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं,

असुद्धे णाम एगे सुद्धपरक्कमे,
असुद्धे णाम एगे असुद्धपरक्कमे।°

अशुद्धो नामैक शुद्धपराक्रम,
अशुद्धो नामैक अशुद्धपराक्रम ।

३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं।

सुत-पदं

३४ चत्तारि सुता पण्णत्ता, तं जहा—
अतिजाते, अणुजाते, अवजाते, कुलिंगाले।

सुत-पदम्

चत्वार सुता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अतिजात, अनुजात, अवजात, कुलाङ्गार ।

सुत-पद

३४ पुत्र चार प्रकार के होते हैं—
१ अतिजात—पिता से अधिक,
२ अनुजात—पिता के समान,
३ उपजात—पिता से हीन,
४ कुलागार—कुल के लिए अगारे जैसा, कुल दूषक।

सच्च-असच्च-पदं

३५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चे,
सच्चे णाम एगे असच्चे,
असच्चे णाम एगे सच्चे,
असच्चे णाम एगे असच्चे ।

सत्य-असत्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्य,
सत्यो नामैक असत्य,
असत्यो नामैक सत्य,
असत्यो नामैक असत्य ।

सत्य-असत्य-पद

३५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पहले भी सत्य होते हैं और बाद में भी सत्य होते हैं, २ कुछ पुरुष पहले सत्य, किन्तु बाद मे असत्य होते है, ३ कुछ पुरुष पहले असत्य, किन्तु बाद मे सत्य होते हैं, ४ कुछ पुरुष पहले भी असत्य होते हैं और बाद मे भी असत्य होते हैं।

३६ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चपरिणते,
सच्चे णाम एगे असच्चपरिणते,
असच्चे णामं एगे सच्चपरिणते,
असच्चे णाम एगे असच्चपरिणते।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यपरिणत,
सत्यो नामैक असत्यपरिणत,
असत्यो नामैक सत्यपरिणत,
असत्यो नामैक असत्यपरिणत ।

३६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-परिणत होते है, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-परिणत होते हैं।

३७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चरूवे,
सच्चे णाम एगे असच्चरूवे,
असच्चे णाम एगे सच्चरूवे,
असच्चे णाम एगे असच्चरूवे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यरूप
सत्यो नामैक असत्यरूप,
असत्यो नामैक सत्यरूप,
असत्यो नामैक असत्यरूप ।

३७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-रूप वाले होते हैं।

३८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चमणे,
सच्चे णाम एगे असच्चमणे,
असच्चे णाम एगे सच्चमणे,
असच्चे णाम एगे असच्चमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यमना,
सत्यो नामैक असत्यमना,
असत्यो नामैक सत्यमना,
असत्यो नामैक असत्यमना।

३८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-मन वाले होते हैं।

३९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चसकप्पे,
सच्चे णाम एगे असच्चसकप्पे,
असच्चे णाम एगे सच्चसकप्पे,
असच्चे णाम एगे असच्चसकप्पे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यसकल्प,
सत्यो नामैक असत्यसकल्प,
असत्यो नामैक सत्यसकल्प,
असत्यो नामैक असत्यसकल्प।

३९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-सकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-सकल्प वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-सकल्प वाले होते हैं।

४० चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चपण्णे,
सच्चे णाम एगे असच्चपण्णे,
असच्चे णाम एगे सच्चपण्णे,
असच्चे णाम एगे असच्चपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यप्रज्ञ,
सत्यो नामैक असत्यप्रज्ञ,
असत्यो नामैक सत्यप्रज्ञ
असत्यो नामैक असत्यप्रज्ञ।

४० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं।

४१ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चदिट्ठी,
सच्चे णामं एगे असच्चदिट्ठी,
असच्चे णाम एगे सच्चदिट्ठी,
असच्चे णाम एगे असच्चदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातनि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यदृष्टि,
सत्यो नामैक असत्यदृष्टि,
असत्यो नामैक सत्यदृष्टि,
असत्यो नामैक असत्यदृष्टि।

४१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-दृष्टि वाले होते हैं।

४२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चसीलाचारे,
सच्चे णाम एगे असच्चसीलाचारे,
असच्चे णाम एगे सच्चसीलाचारे,
असच्चे णाम एगे असच्चसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यशीलाचार,
सत्यो नामैक असत्यशीलाचार,
असत्यो नामैक सत्यशीलाचार,
असत्यो नामैक असत्यशीलाचार।

४२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-शीलाचार वाले होते हैं।

४३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चववहारे,
सच्चे णामं एगे असच्चववहारे,
असच्चे णाम एगे सच्चववहारे,
असच्चे णाम एगे असच्चववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यव्यवहार,
सत्यो नामैक असत्यव्यवहार,
असत्यो नामैक सत्यव्यवहार,
असत्यो नामैक असत्यव्यवहार ।

४३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-व्यवहार वाले होते हैं।

४४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णाम एगे सच्चपरक्कमे,
सच्चे णाम एगे असच्चपरक्कमे,
असच्चे णाम एगे सच्चपरक्कमे,
असच्चे णाम एगे असच्चपरक्कमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैक सत्यपराक्रम,
सत्यो नामैक असत्यपराक्रम,
असत्यो नामैक सत्यपराक्रम,
असत्यो नामैक असत्यपराक्रम ।

४४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-पराक्रम वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-पराक्रम वाले होते हैं।

सुचि-असुचि-पदं

शुचि-अशुचि-पदम्

शुचि-अशुचि-पद

४५. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुई,
सुई णामं एगे असुई,
•असुई णाम एगे सुई,
असुई णाम एगे असुई।°

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैक शुचि,
शुचि नामैक अशुचि,
अशुचि नामैक शुचि,
अशुचि नामैक अशुचि।

४५ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से भी शुचि होते हैं और परिष्कृत होने के कारण भी शुचि होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अपरिष्कृत होने के कारण अशुचि होते हैं, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु परिष्कृत होने के कारण शुचि होते हैं, ४ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि होते हैं और अपरिष्कृत होने के कारण भी अशुचि होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुई,
•सुई णाम एगे असुई,
असुई णाम एगे सुई,
असुई णाम एगे असुई।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचि,
शुचिर्नामैक अशुचि,
अशुचिर्नामैक, शुचि
अशुचिर्नामैक अशुचि ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से भी शुचि होते हैं और स्वभाव से भी शुचि होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु स्वभाव से अशुचि होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु स्वभाव से शुचि होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से भी अशुचि होते हैं और स्वभाव से भी अशुचि होते हैं।

४६ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइपरिणते,
सुई णाम एगे असुइपरिणते,
असुई णाम एगे सुइपरिणते,
असुई णाम एगे असुइपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइपरिणते,
सुई णाम एगे असुइपरिणते,
असुई णाम एगे सुइपरिणते,
असुई णाम एगे असुइपरिणते।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैक शुचिपरिणत,
शुचि नामैक अशुचिपरिणत,
अशुचि नामैक शुचिपरिणत,
अशुचि नामैक अशुचिपरिणतम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिपरिणत,
शुचिर्नामैक अशुचिपरिणत,
अशुचिर्नामैक शुचिपरिणत,
अशुचिर्नामैक अशुचिपरिणत।

४६. वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-परिणत होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि-परिणत होने है, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होते हैं, ४ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि-परिणत होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-परिणत होते हैं।

४७ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइरूवे,
सुई णाम एगे असुइरूवे,
असुई णाम एगे सुइरूवे,
असुई णाम एगे असुइरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइरूवे,
सुई णाम एगे असुइरूवे,
असुई णाम एगे सुइरूवे,
असुई णाम एगे असुइरूवे।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैक शुचिरूप,
शुचि नामैक अशुचिरूप,
अशुचि नामैक शुचिरूप,
अशुचि नामैक अशुचिरूपम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिरूप,
शुचिर्नामैक अशुचिरूप,
अशुचिर्नामैक शुचिरूप,
अशुचिर्नामैक अशुचिरूप।

४७ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-रूप वाले होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति मे अशुचि, किन्तु शुचिरूप वाले होते हैं, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि-रूप वाले होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-रूप वाले होते हैं।

४८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णाम एगे सुइमणे,
सुई णाम एगे असुइमणे,
असुई णाम एगे सुइमणे,
असुई णाम एगे असुइमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिमना,
शुचिर्नामैक अशुचिमना,
अशुचिर्नामैक शुचिमना,
अशुचिर्नामैक अशुचिमना।

४८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि मन वाले होते हैं।

४९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइसकप्पे,
सुई णाम एगे असुइसकप्पे,
असुई णाम एगे सुइसकप्पे,
असुई णाम एगे असुइसकप्पे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिसकल्प,
शुचिर्नामैक अशुचिसकल्प,
अशुचिर्नामैक शुचिमकल्प,
अशुचिर्नामैक अशुचिसकल्प ।

४९ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर मे शुचि और शुचि-सकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-सकल्प वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि-सकल्प वाले होते हैं।

५० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णाम एगे सुइपण्णे,
सुई णामं एगे असुइपण्णे,
असुई णाम एगे सुइपण्णे,
असुई णाम एगे असुइपण्णे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिप्रज्ञ,
शुचिर्नामैक अशुचिप्रज्ञ,
अशुचिर्नामैक शुचिप्रज्ञ,
अशुचिर्नामैक अशुचिप्रज्ञ ।

५० पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं।

५१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुई णामं एगे सुइदिट्ठी,
सुई णाम एगे असुइदिट्ठी,
असुई णाम एगे सुइदिट्ठी,
असुई णाम एगे असुइदिट्ठी।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिदृष्टि,
शुचिर्नामैक अशुचिदृष्टि,
अशुचिर्नामैक शुचिदृष्टि,
अशुचिर्नामैक अशुचिदृष्टि ।

५१ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि-दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-दृष्टि वाले होते हैं, ६ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि-दृष्टि वाले होते हैं।

५२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुई णाम एगे सुइसीलाचारे,
सुई णाम एगे असुइसीलाचारे,
असुई णाम एगे सुइसीलाचारे,
असुई णाम एगे असुइसीलाचारे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिशीलाचार,
शुचिर्नामैक अशुचिशीलाचार,
अशुचिर्नामैक शुचिशीलाचार,
अशुचिर्नामैक अशुचिशीलाचार ।

५२ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि-शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुप शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि-शीलचार वाले होते हैं।

५३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णाम एगे सुइववहारे,
सुई णाम एगे असुइववहारे,
असुई णाम एगे सुइववहारे,
असुई णाम एगे असुइववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिव्यवहार,
शुचिर्नामैक अशुचिव्यवहार,
अशुचिर्नामैक शुचिव्यवहार,
अशुचिर्नामैक अशुचिव्यवहार ।

५३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-व्यवहार वाले होते हैं।

५४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णाम एगे सुइपरक्कमे,
सुई णाम एगे असुइपरक्कमे,
असुई णाम एगे सुइपरक्कमे,
असुई णामं एगे असुइपरक्कमे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैक शुचिपराक्रम,
शुचिर्नामैक अशुचिपराक्रम,
अशुचिर्नामैक शुचिपराक्रम,
अशुचिर्नामैक अशुचिपराक्रम ।

५४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-पराक्रम वाले होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-पराक्रम वाले होते हैं।

कोरव-पद

कोरक-पदम्

कोरक-पद

५५ चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, तं जहा—
अवपलबकोरवे, तालपलबकोरवे,
वल्लिपलवकोरवे,
मेढविसाणकोरवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अवपलबकोरवसमाणे,
तालपलंबकोरवसमाणे,
वल्लिपलवकोरवसमाणे,
मेढविसाणकोरवसमाणे।

चत्वारि कोरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आम्रप्रलम्बकोरक, तालप्रलम्बकोरक,
वल्लीप्रलम्बकोरक, मेढ्रविषाणाकोरकम्।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आम्रप्रलम्बकोरकसमान,
तालप्रलम्बकोरकसमान,
वल्लीप्रलम्बकोरकसमान,
मेढ्रविषाणाकोरकसमान ।

५५ कली चार प्रकार की होती है—
१ आम्र-फल की कली, २ ताड-फल की कली, ३ वल्लि-फल की कली, ४ मेष-शृंग के फल की कली।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष आम्र-फल की कली के समान होते हैं, २ कुछ पुरुष ताड-फल की कली के समान होते हैं, ३ कुछ पुरुष वल्लि-फल की कली के समान होते हैं, ४ कुछ पुरुष मेष-शृंग के फल की कली के समान होते हैं।[१०]

भिक्खाग-पदं

भिक्षाक-पदम्

भिक्षाक-पद

५६ चत्तारि घुणा पण्णत्ता, तं जहा—
तयक्खाए, छल्लिक्खाए,
कट्ठक्खाए, सारक्खाए।

चत्वारः घुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
त्वक्खाद, छल्लीखाद, काष्ठखाद,
सारखाद ।

५६ घुण चार प्रकार के होते हैं—
१ त्वचा—बाहरी छाल को खाने वाले,
२ छाल—त्वचा के भीतरी भाग को

खाने वाले, ३ काठ को खाने वाले, ४ सार—[काठ के मध्य भाग] को खाने वाले।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—
तयक्खायसमाणे,
•छल्लिक्खायसमाणे,
कट्ठक्खायसमाणे°,
सारक्खायसमाणे।
१ तयक्खायसमाणस्स ण भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
२ सारक्खायसमाणस्स ण भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
३ छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
४. कट्ठक्खायसमाणस्स ण भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

एवमेव चत्वार भिक्षाका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
त्वक्खादसमान, छल्लीखादसमान, काष्ठखादसमान, सारखादसमान।
१ त्वक्खादसमानस्य भिक्षाकस्य सारखादसमान तप प्रज्ञप्तम्।
२. सारखादसमानस्य भिक्षाकस्य त्वक्खादसमान तप प्रज्ञप्तम्।
३. छल्लीखादसमानस्य भिक्षाकस्य काष्ठखादसमान तप प्रज्ञप्तम्।
४ काष्ठखादसमानस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमान तप प्रज्ञप्तम्।

इसी प्रकार भिक्षु भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ भिक्षु त्वचा को खाने वाले घुण के समान—प्राप्त आहार करने वाले होते हैं, २ कुछ भिक्षु छाल को खाने वाले घुण के समान—रूक्ष आहार करने वाले होते हैं, ३ कुछ भिक्षु काठ को खाने वाले घुण के समान—दूध, दही आदि विगयो को आहार न करने वाले होते हैं, ४ कुछ भिक्षु सार को खाने वाले घुण के समान—विगयो से परिपूर्ण आहार करने वाले होते हैं।
१ जो भिक्षु त्वचा को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके सार को खाने वाले घुण के समान तप होता है, २ जो भिक्षु सार को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके त्वचा को खाने वाले घुण के समान तप होता है, ३ जो भिक्षु छाल को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके काठ को खाने वाले घुण के समान तप होता है, ४ जो भिक्षु काठ को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके छाल को खाने वाले घुण के समान तप होता है।[31]

तणवणस्सइ-पदं

५७ चउव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—
अग्गबीया, मूलबीया,
पोरबीया, खघबीया।

तृणवनस्पति-पदम्

चतुर्विधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अग्रवीजा, मूलवीजा,
पर्ववीजा, स्कन्ववीजा।

तृणवनस्पति-पद

५७ तृण वनस्पति-कायिक चार प्रकार के होते हैं—१ अग्रवीज—कोरण्ट आदि। इनके अग्रभाग ही वीज होते हैं अथवा व्रीहि आदि इनके अग्रभाग मे वीज होते हैं, २ मूल वीज—उत्पल, कद आदि। इनके मूल ही वीज होते हैं, ३ पर्ववीज—इक्षु आदि। इनके पर्व ही वीज होते हैं,

४ स्कन्ध-बीज—मल्लकी आदि । इनके स्कन्ध ही बीज होते हैं ।[११]

अहुणोववण्ण-णेरइय-पद

५८ चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

१ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

२ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो-भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए

३ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए

४ °अहुणोववण्णे णेरइए णिरयाउअंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए,° णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए° णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए°, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

अधुनोपपन्न-नैरयिक-पदम्

चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न नैरयिक निरयलोके इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

१ अधुनोपपन्न नैरयिक निरयलोके समुद्भूता वेदना वेदयन् इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

२. अधुनोपपन्न नैरयिक निरयलोके नरकपालै भूय-भूय अधिष्ठीयमान इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम् नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

३ अधुनोपपन्न नैरयिक निरयवेदनीये कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जीर्णे इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

४ अधुनोपपन्न नैरयिक निरयायुषे कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जीर्णे इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

इति एतै चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न नैरयिक निरयलोके इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम् ।

अधुनोपपन्न-नैरयिक-पद

५८ नरक लोक मे तत्काल उत्पन्न नैरयिक चार कारणो से शीघ्र ही मनुष्य लोक म आना चाहता है, किन्तु आ नहीं सकता—

१ तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक मे होने वाली पीडा अनुभव करता है तब वह शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नहीं सकता,

२ तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक मे नरकपालो द्वारा बार-बार आक्रान्त होने पर शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता,

३ तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु नरक मे भोगने योग्य कर्मो के क्षीण हुए बिना, उन्हे भोगे बिना, उनका निर्जरण हुए बिना आ नही सकता,

४ तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु नरक सम्बन्धी आयुष्यकर्म के क्षीण हुए बिना, उसे भोगे बिना, उसका निर्जरण हुए बिना आ नहीं सकता—

इन चार कारणो से नरकलोक मे तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नहीं सकता ।

संघाडी-पद

५९. कप्पंति णिग्गंथीण चत्तारि सघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—
एगं दुहत्थवित्थार,
दो तिहत्थवित्थारं,
एग चउहत्थवित्थारं।

सङ्घाटी-पदम्

कल्पन्ते निर्ग्रन्थीना चतस्र सङ्घाट्य धर्तु वा परिधातु वा, तद्यथा—
एका द्विहस्तविस्तारा, द्वे त्रिहस्तविस्तारे,
एका चतुर्हस्तविस्तारा।

सङ्घाटी-पद

५९ निर्ग्रन्थियां चार सघाटिया रख व ओढ सकती हैं—१ दो हाथ वाली सघाटी—उपाश्रय मे ओढने के काम आती है, २ तीन हाथ विस्तार वाली एक सघाटी—भिक्षा लाए तब ओढने के काम आती है, ३ तीन हाथ विस्तार वाली दूसरी सघाटी—शौचार्थ जाए तब ओढ़ने के काम आती है, ४ चार हाथ विस्तार वाली संघाटी—व्याख्यानपरिषदमे ओढनेके काम आती है

झाण-पदं

६० चत्तारि झाणा पण्णत्ता, त जहा—
अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे,
धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

६१. अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
१ अमणुण्ण-सपओग-सपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति
२ मणुण्ण-सपओग-सपउत्ते, तस्स अविप्पओगसति-समण्णा-गते यावि भवति
३ आतंक-सपओग-सपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति
४. परिजुसित-काम-भोग-संपओग संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।

६२ अट्टस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—
कदणता, सोयणता,
तिप्पणता, परिदेवणता।

ध्यान-पदम्

चत्वारि ध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म्यं ध्यान,
शुक्ल ध्यानम्।

आर्त्त ध्यान चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
१ अमनोज्ञ-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्त, तस्य विप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
२ मनोज्ञ-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्त, तस्य अविप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
३. आतङ्क-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्त, तस्य विप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
४ परिजुष्ट-काम-भोग-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्त, तस्य अविप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति।

आर्त्तस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रन्दनता, शोचनता,
तेपनता, परिदेवनता।

ध्यान-पद

६० ध्यान चार प्रकार का होता है—
१ आर्त्त, २ रौद्र, ३ धर्म्य, ४ शुक्ल।[३३]

६१ आर्त्त ध्यान चार प्रकार का होता है—
१ अमनोज्ञ सयोग से सयुक्त होने पर उस [अमनोज्ञ विषय] के वियोग की चिन्ता मे लीन हो जाना,
२ मनोज्ञ सयोग से सयुक्त होने पर उस [मनोज्ञ विषय] के वियोग न होने की चिन्ता मे लीन हो जाना,
३ आतक [सद्योघाती रोग] के सयोग से सयुक्त होने पर उसके वियोग की चिन्ता मे लीन हो जाना,
४ प्रीति-कर काम-भोग के सयोग से सयुक्त होने पर उसके वियोग न होने की चिन्ता मे लीन हो जाना।[३४]

६२ आर्त्त ध्यान के चार लक्षण हैं—
१ आक्रन्द करना, २ शोक करना,
३ आसू बहाना, ४ विलाप करना।[३५]

६३. रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
हिंसाणुवधि, मोसाणुवधि,
तेणाणुवधि, सारक्खणाणुवधि ।

रौद्र ध्यान चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
हिंसानुवन्धि, मृपानुवन्धि, स्तैन्यानुवन्धि, सरक्षणानुवन्धि ।

६३ रौद्र ध्यान चार प्रकार का होता है—
१ हिंसानुवन्धी—जिसमें हिंसा का अनुवन्ध [सतत प्रवर्तन] हो, २ मृपानुवन्धी—जिसमे मृपा का अनुवध हो, ३ स्तैन्यानुवन्धी—जिसमें चोरी का अनुवध हो, ४ सरक्षणानुवन्धी—जिसमे विपय के साधनो के सरक्षण का अनुरन्ध हो ।[१]

६४ रुद्दस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—
ओसण्णदोसे, वहुदोसे,
अण्णाणदोसे, आमरणतदोसे ।

रौद्रस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—उत्सन्नदोप,
वहुदोप, अज्ञानदोप, आमरणान्तदोप ।

६४ रौद्र ध्यान के चार लक्षण हैं—
१ उत्सन्नदोप—प्राय हिंसा आदि मे प्रवृत्त रहना, २ वहुदोप—हिंसादि की विविध-प्रवृत्तियो मे सलग्न रहना, ३. अज्ञान-दोप—अज्ञानवश हिंसा आदि मे प्रवृत्त होना, ४ आमरणान्तदोप—मरणान्तक हिंसा आदि करने का अनुताप न होना ।[२]

६५ धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, त जहा—
आणाविजए, अवायविजए,
विवागविजए, सठाणविजए ।

धर्म्यं ध्यान चतुर्विध चतुष्प्रत्यवतार प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आज्ञाविचय,
अपायविचय, विपाकविचय,
सस्थानविचयम् ।

६५ धर्म्यं ध्यान चार प्रकार का है, वह चार पदो [स्वरूप, लक्षण, आलम्वन और अनुप्रेक्षा] मे अवतरित होता है। उसके चार प्रकार ये हैं—१ आज्ञा-विचय—प्रवचन के निणय में सलग्न चित्त,
२ उपाय-विचय—दोपो के निर्णय मे सलग्न चित्त, ३ विपाक-विचय—कर्म-फलो के निर्णय मे सलग्न चित्त,
४ सस्थान-विचय—विविध पदार्थों के आकृति-निर्णय मे सलग्न चित्त ।[१८]

६६ धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—
आणारुई, णिसग्गरुई,
सुत्तरुई, ओगाढरुई ।

धर्म्यस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आज्ञारुचि, निसर्गरुचि,
सूत्ररुचि, अवगाढरुचि ।

६६ धर्म्य ध्यान के चार लक्षण हैं—
१ आज्ञा-रुचि—प्रवचन में श्रद्धा होना,
२ निसर्ग-रुचि—सहज ही सत्य मे श्रद्धा होना, ३ सूत्र-रुचि—सूत्र पढने के द्वारा सत्य मे श्रद्धा उत्पन्न होना, ४ अवगाढ-रुचि—विस्तृत पद्धति मे सत्य मे श्रद्धा होना ।[११]

६७ धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलवणा पण्णत्ता, त जहा—
वायणा, पडिपुच्छणा,

धर्म्यस्य ध्यानस्य चत्वारि आलम्वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वाचना,
प्रतिप्रच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा ।

६७ धर्म्यं ध्यान के चार आलम्वन हैं—
१ वाचना—पढ़ाना, २ प्रतिप्रच्छना—शका निवारण के लिए प्रश्न करना,

परियट्टणा, अणुप्पेहा।

३ परिवर्तना—पुनरावर्तन करना, ४ अनुप्रेक्षा—अर्थ का चिन्तन करना।[१०]

६८ धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, ससाराणुप्पेहा।

धर्म्यस्य ध्यानस्य चतस्र अनुप्रेक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एकानुप्रेक्षा, अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा, ससारानुप्रेक्षा।

६८ धर्म्य ध्यान की चार अनुप्रेक्षाए हैं—१ एकत्वअनुप्रेक्षा—अकेलेपन का चिन्तन करना, २ अनित्यअनुप्रेक्षा—पदार्थों की अनित्यता का चिन्तन करना, ३ अशरण-अनुप्रेक्षा—अशरण दशा का चिन्तन करना, ४ ससारअनुप्रेक्षा—ससार-परिभ्रमण का चिन्तन करना।[११]

६९. सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, त जहा—पुहत्तवितक्के सवियारी, एगत्तवितक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अणियट्टी, समुच्छिण्णकिरिए अप्पडिवाती।

शुक्ल ध्यान चतुर्विध चतुष्प्रत्यवतार प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथक्त्ववितर्कं सविचारि, एकत्ववितर्कं अविचारि, सूक्ष्मक्रिय अनिवृत्ति, समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति।

६९ शुक्ल ध्यान के चार प्रकार हैं और वह चार पदो (स्वरूप, लक्षण, आलम्बन, अनुप्रेक्षा) मे अवतरित होता है। उसके चार प्रकार ये हैं—१ पृथकत्ववितक-सविचारी, २ एकत्ववितर्कअविचारी, ३ सूक्ष्मक्रियअनिवृत्ति, ४ समुच्छिन्नक्रियअप्रतिपाति।[१२]

७० सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—अव्वहे, असम्मोहे, विवेगे, विउस्सगे।

शुक्लस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अव्यथ, असम्मोह, विवेक, व्युत्सर्ग।

७० शुक्ल ध्यान के चार लक्षण हैं—१ अव्यथ—क्षोभ का अभाव, २ असम्मोह—सूक्ष्म पदार्थ विषयक मूढता का अभाव, ३ विवेक—शरीर और आत्मा के भेद का ज्ञान, ४ व्युत्सर्ग—शरीर और उपधि में अनासक्त भाव।[१३]

७१ सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि आलबणा पण्णत्ता, त जहा—खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

शुक्लस्य ध्यानस्य चत्वारि आलम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दवम्।

७१ शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन हैं—१ शान्ति—क्षमा, २ मुक्ति—निर्लोभत, ३ आर्जव—सरलता, ४ मार्दव—मृदुता।[१४]

७२ सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—अणतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।

शुक्लस्य ध्यानस्य चतस्र अनुप्रेक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा, विपरिणामानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा, अपायानुप्रेक्षा।

७२ शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाए हैं—१ अनन्तवृत्तिताअनुप्रेक्षा—ससार परम्परा का चिन्तन करना, २ विपरिणाम-अनुप्रेक्षा—वस्तुओ के विविध परिणामो का चिन्तन करना, ३ अशुभअनुप्रेक्षा—पदार्थों की अशुभता का चिन्तन करना, ४ अपायअनुप्रेक्षा—दोपो का चिन्तन करना।[१५]

देव-ठिइ-पद

७३ चउव्विहा देवाण ठिती पण्णत्ता, त जहा—
देवे णाममेगे,
देवसिणाते णाममेगे,
देवपुरोहिते णाममेगे,
देवपज्जलणे णाममेगे।

देव-स्थिति-पदम्

चतुर्विधा देवाना स्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
देव नामैक,
देवस्नातक नामैक,
देवपुरोहित नामैक,
देवप्रज्वलन नामैक।

देव-स्थिति-पद

७३ देवताओ की स्थिति—(पदमर्यादा) चार प्रकार की होती है—
१ देव—राजास्थानीय, २ देव-स्नातक—अमात्य, ३ देव-पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला, ४ देव-प्रज्वलन—मगल पाठक।

संवास-पदं

७४ चउव्विहे सवासे पण्णत्ते, त जहा—
देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, देवे णाममेगे छवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, छवी णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, छवी णाममेगे छवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा।

सवास-पदम्

चतुर्विध सवास प्रज्ञप्त, तद्यथा—
देव नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छेत्, देव नामैक छव्या सार्धं सवास गच्छेत्, छवि नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छेत्, छवि नामैक छव्या सार्धं सवास गच्छेत्।

संवास-पद

७४ सवास (सभोग) चार प्रकार का होता है—१ कुछ देव देवी के साथ सभोग करते हैं, २ कुछ देव नारी या तिर्यञ्च-स्त्री के साथ सभोग करते हैं, ३ कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च-देवी के साथ सभोग करते हैं, ४ कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च मानुषी या तिर्यञ्च स्त्री के साथ सभोग करते हैं।

कसाय-पद

७५ चत्तारि कसाया पण्णत्ता, त जहा—
कोहकसाए, माणकसाए,
मायाकसाए, लोभकसाए।
एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

७६ चउपतिट्ठिते कोहे पण्णत्ते, त जहा—
आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते,
तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते।
एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

कषाय-पदम्

चत्वार कषाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

चतु प्रतिष्ठित क्रोध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित,
तदुभयप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

कषाय-पद

७५, कषाय चार हैं—१ क्रोधकषाय, २ मानकषाय, ३ मायाकषाय, ४ लोभकषाय।
नारिको से लेकर वैमानिकों तक के सभी दण्डको मे चारों कषाय होते हैं।

७६ क्रोध" चतु प्रतिष्ठित होता है—
१ आत्मप्रतिष्ठित [स्व-विषयक]—जो अपने ही निमित्त से उत्पन्न होता है,
२ परप्रतिष्ठित [पर-विषयक]—जो दूसरे के निमित्त से उत्पन्न होता है,
३ तदुभयप्रतिष्ठित—जो स्व और पर दोनो के निमित्त से उत्पन्न होता है,
४ अप्रतिष्ठित—जो केवल क्रोध-वेदनीय के उदय से उत्पन्न होता है, आक्रोश आदि बाह्य कारणो से उत्पन्न नही होता।

७७ •चउपतिट्ठिते माणे पण्णत्ते, त जहा— आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	चतु प्रतिष्ठिता मान प्रज्ञप्त, तद्यथा— आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित, तदुभयप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	७७ मान चतु प्रतिष्ठित होता है— १ आत्मप्रतिष्ठित, २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित, ४ अप्रतिष्ठित। यह चारो प्रकार का मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी खण्डो मे प्राप्त होता है।
७८ चउपतिट्ठिता माया पण्णत्ता, तं जहा— आतपतिट्ठिता, परपतिट्ठिता, तदुभयपतिट्ठिता, अपतिट्ठिता। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	चतु प्रतिष्ठिता माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आत्मप्रतिष्ठिता, परप्रतिष्ठिता, तदुभयप्रतिष्ठिता, अप्रतिष्ठिता। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	७८ माया चतुःप्रतिष्ठित होती है— १ आत्मप्रतिष्ठित, २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित, ४ अप्रतिष्ठित। यह चारो प्रकार की माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होती है।
७९ चउपतिट्ठिते लोभे पण्णत्ते, त जहा— आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।°	चतु प्रतिष्ठित लोभ प्रज्ञप्त, तद्यथा— आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित, तदुभयप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	७९ लोभ चतु प्रतिष्ठित होता है— १ आत्मप्रतिष्ठित, २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित, ४ अप्रतिष्ठित। यह चारो प्रकार का लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
८० चउहिं ठाणेहिं कोवुप्पत्ती सिता, त जहा— खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	चतुर्भि स्थानै क्रोधोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा— क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८० क्रोध की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—१ क्षेत्र—भूमि के कारण, २ वास्तु—घर के कारण, ३ शरीर—कुरूप आदि होने के कारण, ४ उपधि—उपकरणो के नष्ट हो जाने के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों मे इन चार कारणो से क्रोध की उत्पत्ति होती है।
८१ •चउहिं ठाणेहिं माणुप्पत्ती सिता, त जहा— खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	चतुर्भि स्थानै मानोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा— क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८१ मान की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—१ क्षेत्र के कारण, २ वस्तु के कारण, ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों मे इन चार कारणो से मान की उत्पत्ति होती है।
८२ चउहिं ठाणेहिं मायुप्पत्ती सिता, त जहा—	चतुर्भि स्थानै मायोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा—	८२ माया की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—

खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

१ क्षेत्र के कारण, २ वस्तु के कारण, ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे इन चार कारणो से माया की उत्पत्ति होती है।

८३ चउहिं ठाणेहिं लोभुप्पत्ती सिता, जहा—खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एव—णेरयाण जाव वेमाणियाण।°

चतुर्भि स्थानै लोभोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा—क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

८३ लोभ की उत्पत्ति चार कारणों से होती है—१ क्षेत्र के कारण, २ वस्तु के कारण, ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे इन चार कारणो से लोभ की उत्पत्ति होती है।

८४ चउव्विधे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

चतुर्विध क्रोध प्रज्ञप्त, तद्यथा—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, सज्वलन क्रोध। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

८४ क्रोध चार प्रकार का होता है—१ अनन्तानुबन्धी—इसका अनुबन्ध (परिणाम) अनन्त होता है, २ अप्रत्याख्यानकषाय—विरति-मात्र का अवरोध करने वाला, ३ प्रत्याख्यानावरण—सर्व-विरति का अवरोध करने वाला, ४ सज्वलन—यथाख्यात चरित्र का अवरोध करने वाला। यह चतुर्विध क्रोध नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको में प्राप्त होता है।

८५ °चउव्विधे माणे पण्णत्ते, त जहा—अणताणुबंधी माणे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणे माणे, सजलणे माणे। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

चतुर्विध मान प्रज्ञप्त, तद्यथा—अनन्तानुबन्वी मान, अप्रत्याख्यानकषायो मान, प्रत्याख्यानावरणो मान, सज्वलनो मान। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

८५ मान चार प्रकार का होता है—१ अनन्तानुबन्धी, २ अप्रत्याख्यानकषाय, ३ प्रत्याख्यानावरण, ४ सज्वलन। यह चतुर्विध मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको में प्राप्त होता है।

८६ चउव्विधा माया पण्णत्ता, त जहा—अणताणुबधी माया, अपच्चक्खाणकसाया माया, पच्चक्खाणावरणा माया, सजलणा माया।

चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तानुबन्धिनी माया, अप्रत्याख्यानकषाया माया, प्रत्याख्यानावरणा माया, सज्वलना माया।

८६ माया चार प्रकार की होती है—१ अनन्तानुबन्धिनी, २ अप्रत्याख्यानकषाय, ३ प्रत्याख्यानावरणा, ४ संज्वलना।

एवं—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	यह चतुर्विध माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होती है।
८७ चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, त जहा— अणताणुवधी लोभे, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे लोभे, सजलणे लोभे। एवं—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।°	चतुर्विध लोभ प्रज्ञप्त, तद्यथा— अनन्तानुवन्धी लोभ, अप्रत्याख्यानकषायो लोभ, प्रत्याख्यानावरणो लोभ, सज्वलनो लोभ। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८७ लोभ चार प्रकार का होता है— १ अनन्तानुवन्धी, २ अप्रत्याख्यानकषाय, ३ प्रत्याख्यानावरण, ४ सज्वलन। यह चतुर्विध लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
८८. चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, त जहा— आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसते, अणुवसते। एव—णेरइयाणं जाव वेमाणियाण।	चतुर्विध क्रोध प्रज्ञप्त, तद्यथा— आभोगनिर्वर्तित, अनाभोगनिर्वर्तित, उपशान्त, अनुपशान्त। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८८ क्रोध चार प्रकार का होता है— १ आभोगनिर्वर्तित[१७]—स्थिति को जानने पर जो क्रोध निष्पन्न होता है, २ अनाभोगनिर्वर्तित[१८]—स्थिति को न जानने पर जो क्रोध निष्पन्न होता है, ३ उपशान्त—क्रोध की अनुदयावस्था, ४ अनुपशान्त—क्रोध की उदयावस्था। यह चतुर्विध क्रोध नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
८९. °चउव्विहे माणे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसते, अणुवसते। एव—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।	चतुर्विध मान प्रज्ञप्त, तद्यथा— आभोगनिर्वर्तित, अनाभोगनिर्वर्तित, उपशान्त, अनुपशान्त। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८९ मान चार प्रकार का होता है— १ आभोगनिर्वर्तित, २ अनाभोगनिर्वर्तित, ३ उपशान्त, ४ अनुपशान्त। यह चतुर्विध मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
९०. चउव्विहा माया पण्णत्ता, त जहा— आभोगणिव्वत्तिता, अणाभोगणिव्वत्तिता, उवसता, अणुवसता। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।	चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आभोगनिर्वर्तिता, अनाभोगनिर्वर्तिता, उपशान्ता, अनुपशान्ता। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	९० माया चार प्रकार की होती है— १ आभोगनिर्वर्तिता, २ अनाभोगनिर्वर्तिता, ३ उपशान्ता, ४ अनुपशान्ता। यह चतुर्विध माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होती है।
९१ चउव्विहे लोभे पण्णत्ते, त जहा—	चतुर्विध लोभ प्रज्ञप्त, तद्यथा—	९१ लोभ चार प्रकार का होता है—

आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसते, अणुवसते ।
एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।°

आभोगनिर्वर्तित, अनाभोगनिर्वर्तित, उपशान्त, अनुपशान्त ।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम् ।

१ आभोगनिर्वतित, २ अनाभोगनिर्वर्तित, ३ उपशान्त, ४ अनुपशान्त ।
यह चतुर्विध लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों मे प्राप्त होता है।

कम्मपगडि-पदं

९२. जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु, त जहा—
कोहेणं, माणेण, मायाए, लोभेण ।
एवं—जाव वेमाणियाणं ।

९३ *जीवा ण चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणति, त जहा—
कोहेण, माणेण, मायाए, लोभेणं ।
एव—जाव वेमाणियाण ।

९४. जीवा ण चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति, त जहा—
कोहेणं, माणेण, मायाए, लोभेण ।
एव—जाव वेमाणियाणं ।°

९५ एव—उवचिणिसु उवचिणति उवचिणिस्सति ।
बंधिसु बधति बंधिस्संति
उदीरिसु उदीरेति उदीरिस्संति
वेदेंसु वेदेंति वेदिस्सति
णिज्जरेंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्सति
जाव वेमाणियाणं ।

कर्मप्रकृति-पदम्

जीवाश्चतुर्भि स्थानै अष्टौ कर्मप्रकृती अचैषु, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन ।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम् ।

जीवाश्चतुर्भि स्थानै अष्टौ कर्मप्रकृती चिन्वन्ति, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन ।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम् ।

जीवाश्चतुर्भि स्थानै अष्टौ कर्मप्रकृती चेष्यन्ति, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन ।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम् ।

एवम्—उपाचैषु उपचिन्वन्ति उपचेष्यन्ति
अभान्त्सु बध्नन्ति, भन्त्सन्ति
उदैरिषु उदीरयन्ति उदीरयिष्यन्ति
अवेदिषु वेदयन्ति वेदयिष्यन्ति
निरजरिषु निर्जरयन्ति निर्जरयिष्यन्ति
यावत् वैमानिकानाम् ।

कर्मप्रकृति-पद

९२ जीवो ने चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है ।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डको ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है ।

९३ जीव चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करते हैं ।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करते हैं ।

९४ जीव चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करेंगे ।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करेंगे ।

९५ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डको ने आठ कर्म-प्रकृतियो का उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा की थी, करते हैं और करेंगे ।

पडिमा-पदं

९६ चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
समाहिपडिमा, उवहाणपडिमा, विवेगपडिमा, विउस्सग्गपडिमा ।

प्रतिमा-पदम्

चतस्र प्रतिमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, व्युत्सर्गप्रतिमा ।

प्रतिमा-पद

९६ प्रतिमा[1] चार प्रकार की होती है—
१ समाधिप्रतिमा, २ उपधानप्रतिमा, ३ विवेकप्रतिमा, ४ व्युत्सर्गप्रतिमा ।

९७ चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा।

चतस्र प्रतिमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा।

९७ प्रतिमा चार प्रकार की होती है— १ भद्रा, २ सुभद्रा, ३ महाभद्रा, ४ सर्वतोभद्रा।

९८. चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—खुड्डियामोयपडिमा, महल्लियामोयपडिमा, जवमज्झा, वइरमज्झा।

चतस्र प्रतिमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— क्षुद्रिका 'मोय' प्रतिमा, महती 'मोय' प्रतिमा, यवमध्या, वज्रमध्या।

९८ प्रतिमा चार प्रकार की होती है— १ क्षुल्लकप्रश्रवणप्रतिमा, २ महत्प्रश्रवणप्रतिमा, ३ यवमध्या, ४ वज्रमध्या।

अत्थिकाय-पद

अस्तिकाय-पदम्

अस्तिकाय-पद

९९ चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, त जहा— धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

चत्वार अस्तिकाया अजीवकाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय।

९९ चार अस्तिकाय अजीव होते हैं— १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय।

१००. चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, त जहा— धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए।

चत्वार अस्तिकाया अरूपिकाया प्रज्ञप्ता तद्यथा— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय।

१०० चार अस्तिकाय अरूपी होते हैं— १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय।

आम-पक्क-पदं

आम-पक्व-पदम्

आम-पक्व-पद

१०१. चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा— आमे णाममेगे आममहुरे, आमे णाममेगे पक्कमहुरे, पक्के णाममेगे आममहुरे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरे।

चत्वारि फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आम नामैक आममधुर, आम नामैक पक्वमधुर, पक्व नामैक आममधुर, पक्व नामैक पक्वमधुरम्।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा— आमे णाममेगे आममहुरफलसमाणे, आमे णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आम नामैक आममधुरफलसमान, आम नामैक पक्वमधुरफलसमान, पक्व नामैक आममधुरफलसमान, पक्व नामैक पक्वमधुरफलसमान।

१०१ फल चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ फल अपक्व और अपक्व-मधुर होते हैं—थोडे मीठे होते हैं, २ कुछ फल अपक्व और पक्व-मधुर होते हैं—अत्यन्त मीठे होते हैं, ३ कुछ फल पक्व और अपक्व-मधुर होते हैं—थोडे मीठे होते हैं, ४ कुछ फल पक्व और पक्व-मधुर होते हैं—अत्यन्त मीठे होते हैं।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुप वय और श्रुत से अपक्व होते हैं और अपक्व-मधुर फल के समान होते हैं—अल्प उपशम वाले होते है, २ कुछ पुरुप वय और श्रुत से अपक्व होते हैं और पक्व-मधुर फल के समान होते हैं—प्रधान उपशम वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप वय और श्रुत से पक्व होते हैं और अपक्व-मधुर फल के समान होते हैं—अल्प उपशम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप वय और श्रुत से पक्व होते हैं और पक्व-मधुर फल के समान होते हैं—प्रधान उपशम वाले होते हैं।

सच्च-मोस-पदं

१०२ चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा—काउज्जुयया, भासुज्जुयया, भावुज्जुयया, अविसवायणाजोगे।

सत्य-मृषा-पदम्

चतुर्विध सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कायर्जुकता, भाषर्जुकता, भावर्जुकता, अविसवादनायोग।

सत्य-मृषा-पद

१०२ सत्य चार प्रकार का होता है—
१ काय-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाले काया के सकेत, २ भाषा-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाली वाणी का प्रयोग, ३ भाव-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाली मन की प्रवृत्ति, ४ अविसवादनायोग—अविरोधी, धोखा न देने वाली या प्रतिज्ञात अर्थ को निभाने वाली प्रवृत्ति।

१०३. चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, त जहा—कायअणुज्जुयया, भासअणुज्जुयया, भावअणुज्जुयया, विसवादणाजोगे।

चतुर्विधा मृषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कायानृजुकता, भाषानृजुकता, भावानृजुकता, विसवादनायोग।

१०३ असत्य चार प्रकार का होता है—
१ काया की कुटिलता—यथार्थ को ढाकने वाला काया का सकेत, २ भाषा की कुटिलता—यथार्थ को ढाकने वाला वाणी का प्रयोग, ३ भाव की कुटिलता—यथार्थ को छिपाने वाली मन की प्रवृत्ति, ४ विसवादनायोग—विरोधी, धोखा देने वाली या प्रतिज्ञात अर्थ को भग करने वाली प्रवृत्ति।

पणिधाण-पदं

१०४. चउव्विहे पणिधाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणिपणधाणे, वइपणिधाणे, कायपणिधाणे, उवकरणपणिधाणे, एव—णेरइयाण पचिंदियाण जाव वेमाणियाण।

१०५. चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणसुप्पणिहाणे, °वइसुप्पणिहाणे,कायसुप्पणिहाणे,° उवगरणसुप्पणिहाणे। एव—सजयमणुस्साणवि।

१०६. चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणदुप्पणिहाणे,

प्रणिधान-पदम्

चतुर्विधानि प्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मन प्रणिधान, वाक्प्रणिधान, कायप्रणिधान, उपकरणप्रणिधानम्, एवम्—नैरयिकाणा पञ्चेन्द्रियाणा यावत् वैमानिकानाम्।

चतुर्विधानि सुप्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मन सुप्रणिधान, वाक्सुप्रणिधान, कायसुप्रणिधान, उपकरणसुप्रणिधानम्। एवम्—सयतमनुष्याणामपि।

चतुर्विधानि दुष्प्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मन दुष्प्रणिधान,

प्रणिधान-पद

१०४ प्रणिधान चार प्रकार का होता है—
१ मनप्रणिधान, २ वचनप्रणिधान, ३ कायप्रणिधान, ४ उपकरणप्रणिधान। ये नारक आदि सभी पञ्चेन्द्रिय-दण्डको मे प्राप्त होते हैं।

१०५ सुप्रणिधान चार प्रकार का होता है—
१ मनसुप्रणिधान, २ वचनसुप्रणिधान, ३ कायसुप्रणिधान, ४ उपकरणसुप्रणिधान। ये चारो सयत मनुष्य के होते हैं।

१०६ दुष्प्रणिधान चार प्रकार का होता है।
१ मनदुष्प्रणिधान, २ वचनदुष्प्रणिधान,

वइदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे,° उवकरणदुप्पणिहाणे।
एव—पंचिदियाणं जाव वेमाणियाणं।

वाक्दुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान, उपकरणदुष्प्रणिधानम्।
एवम्—पञ्चेन्द्रियाणा यावत् वैमानिकानाम्।

३ कायदुष्प्रणिधान,
४ उपकरणदुष्प्रणिधान।
ये नारक आदि सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डको में प्राप्त होते हैं।

आवात-सवास-पद

१०७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आवातभद्दए णाममेगे, णो सवासभद्दए, सवासभद्दए णाममेगे, णो आवातभद्दए, एगे आवातभद्दएवि, सवासभद्दएवि, एगे णो आवातभद्दए, णो सवासभद्दए।

आपात-संवास-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आपातभद्रक नामैक, नो सवासभद्रक, सवासभद्रक नामैक, नो आपातभद्रक, एक आपातभद्रकोऽपि, सवासभद्रकोऽपि, एक नो आपातभद्रको, नो सवासभद्रक।

आपात-संवास-पद

१०७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आपातभद्र होते हैं, सवासभद्र नहीं होते—प्रथम मिलन मे भद्र होते हैं, चिर सहवास में भद्र नहीं होते, २ कुछ पुरुष सवासभद्र होते हैं, आपातभद्र नहीं होते, ३ कुछ पुरुष आपातभद्र भी होते हैं और सवासभद्र भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न आपातभद्र होते हैं और न सवासभद्र होते हैं।

वज्ज-पद

१०८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्ज पासति, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं पासति, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्ज पासति, परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्ज पासति, णो परस्स।

वर्ज्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
आत्मन नामैक वर्ज्य पश्यति, नो परस्य, परस्य नामैक वर्ज्यं पश्यति, नो आत्मन, एक आत्मनोऽपि वर्ज्यं पश्यति, परस्यापि, एक नो आत्मन वर्ज्यं पश्यति, नो परस्य।

वर्ज्य-पद

१०८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपना वर्ज्य देखते हैं, दूसरे का नहीं, २ कुछ पुरुष दूसरे का वर्ज्य देखते हैं, अपना नही, ३ कुछ पुरुष अपना वर्ज्य देखते हैं और दूसरे का भी, ४ कुछ पुरुष न अपना वर्ज्य देखते हैं न दूसरे का।

१०९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्ज उदीरेइ, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्ज उदीरेइ, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्जं उदीरेइ, परस्स वि, एगे णो अप्पणो वज्ज उदीरेइ, णो परस्स।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मन नामैक वर्ज्यं उदीरयति, नो परस्य, परस्य नामैक वर्ज्यं उदीरयति, नो आत्मन, एक आत्मनोऽपि वर्ज्यं उदीरयति, परस्यापि, एक नो आत्मन वर्ज्यं उदीरयति, नो परस्य।

१०९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करते हैं, दूसरे के वर्ज्य की उदीरणा नही करते, २ कुछ पुरुष दूसरे के वज्य की उदीरणा करते हैं, किन्तु अपने वर्ज्य की उदीरणा नही करते, ३ कुछ पुरुष अपने वर्ज्य की भी उदीरणा करते हैं और दूसरे के वर्ज्य की भी उदीरणा करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने वज्य की उदीरणा करते हैं और न दूसरे के वर्ज्य की उदीरणा करते हैं।

११० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेति, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेति, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्जं उवसामेति, परस्स वि, एगे णो अप्पणो वज्जं उवसामेति णो परस्स।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मनः नामैकः वर्ज्यं उपशामयति, नो परस्य, परस्य नामैकः वर्ज्यं उपशामयति, नो आत्मनः, एकः आत्मनोऽपि वर्ज्यं उपशामयति, परस्यापि, एकः नो आत्मनः वर्ज्यं उपशामयति, नो परस्य।

११० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपने वर्ज्य का उपशमन करते हैं, किन्तु दूसरे के वर्ज्य का उपशमन नहीं करते हैं, २ कुछ पुरुष दूसरे के वर्ज्य का उपशमन करते हैं, किन्तु अपने वर्ज्य का उपशमन नहीं करते, ३ कुछ पुरुष अपने वर्ज्य का भी उपशमन करते हैं और दूसरे के वर्ज्य का भी उपशमन करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने वर्ज्य का उपशमन करते हैं और न दूसरे के वर्ज्य का उपशमन करते हैं।

लोगोपचार-विणय-पदं

लोकोपचार-विनय-पदम्

लोकोपचार-विनय-पद

१११ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अब्भुट्ठेति णाममेगे, णो अब्भुट्ठावेति, अब्भुट्ठावेति णाममेगे, णो अब्भुट्ठेति, एगे अब्भुट्ठेति वि, अब्भुट्ठावेति वि, एगे णो अब्भुट्ठेति, णो अब्भुट्ठावेति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभ्युत्तिष्ठते नामैकः, नो अभ्युत्थापयति, अभ्युत्थापयति, नामैकः, नो अभ्युत्तिष्ठते, एकः अभ्युत्तिष्ठतेऽपि, अभ्युत्थापयत्यपि, एकः नो अभ्युत्तिष्ठते, नो अभ्युत्थापयति।

१११ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अभ्युत्थान करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष अभ्युत्थान करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष अभ्युत्थान करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न अभ्युत्थान करते हैं और न करवाते हैं।

११२ °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वंदति णाममेगे, णो वंदावेति, वंदावेति णाममेगे, णो वंदति, एगे वंदति वि, वंदावेति वि, एगे णो वंदति, णो वंदावेति।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वन्दते नामैकः, नो वन्दयते, वन्दयते नामैकः, नो वन्दते, एकः वन्दतेऽपि, वन्दयतेऽपि, एकः नो वन्दते, नो वन्दयते।

११२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वंदना करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष वंदना करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष वंदना करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न वंदना करते हैं और न करवाते हैं।

११३ °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सक्कारेइ णाममेगे, णो सक्कारावेइ, सक्कारावेइ णाममेगे, णो सक्कारेइ, एगे सक्कारेइ वि, सक्कारावेइ वि, एगे णो सक्कारेइ, णो सक्कारावेइ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्करोति नामैकः, नो सत्कारयति, सत्कारयति नामैकः, नो सत्करोति, एकः सत्करोत्यपि, सत्कारयत्यपि, एकः नो सत्करोति, नो सत्कारयति।

११३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्कार करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष सत्कार करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष सत्कार करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न सत्कार करते हैं और न करवाते हैं।

११४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सम्माणेति णाममेगे, णो सम्माणावेति, सम्माणावेति णाममेगे, णो सम्माणेति, एगे सम्माणेति वि, सम्माणावेति वि, एगे णो सम्माणेति, णो सम्माणावेति।

११५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पूएइ णाममेगे, णो पूयावेति, पूयावेति णाममेगे, णो पूएइ, एगे पूएइ वि, पूयावेति वि, एगे णो पूएइ, णो पूयावेति।

सज्झाय-पद

११६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वाएइ णाममेगे, णो वायावेइ, वायावेइ णाममेगे, णो वाएइ, एगे वाएइ वि, वायावेइ वि, एगे णो वाएइ, णो वायावेइ।

११७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पडिच्छति णाममेगे, णो पडिच्छावेति, पडिच्छावेति णाममेगे, णो पडिच्छति, एगे पडिच्छति वि, पडिच्छावेति वि, एगे णो पडिच्छति, णो पडिच्छावेति।

११८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पुच्छइ णाममेगे, णो पुच्छावेइ, पुच्छावेइ णाममेगे, णो पुच्छइ,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सम्मन्यते नामैक, नो सम्मानयति, सम्मानयति नामैक, नो सम्मन्यते, एक. सम्मन्यतेऽपि, सम्मानयत्यपि, एक. नो सम्मन्यते, नो सम्मानयति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूजयते नामैक, नो पूजापयते, पूजापयते नामैक, नो पूजयते, एक पूजयतेऽपि, पूजापयतेऽपि, एक नो पूजयते, नो पूजापयते।

स्वाध्याय-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाचयति नामैक, नो वाचयते, वाचयते नामैक, नो वाचयति, एक वाचयत्यपि, वाचयतेऽपि, एक नो वाचयति, नो वाचयते।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रतीच्छति नामैक, नो प्रत्येपयति, प्रत्येपयति नामैक, नो प्रतीच्छति, एक प्रतीच्छत्यपि, प्रत्येपयत्यपि, एक नो प्रतीच्छति, नो प्रत्येपयति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पृच्छति नामैक, नो प्रच्छयति, प्रच्छयति नामैक, नो पृच्छति,

११४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सम्मान करते हैं, किन्तु करवाते नहीं, २ कुछ पुरुष सम्मान करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष सम्मान करते भी हैं और करवाते भी है, ४ कुछ पुरुष न सम्मान करते हैं और न करवाते हैं।

११५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पूजा करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष पूजा करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष पूजा करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न पूजा करते हैं और न करवाते हैं।

स्वाध्याय-पद

११६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दूसरो को पढाते हैं, किन्तु दूसरो से पढते नही, २ कुछ पुरुष दूसरो से पढते हैं, किन्तु दूसरो को पढाते नही, ३ कुछ पुरुष दूसरो को पढाते भी हैं और दूसरो से पढते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न दूसरो से पढते हैं और न दूसरो को पढ़ाते हैं।

११७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्रतीच्छा (उप सम्पदा) करते हैं, किन्तु करवाते नहीं, २ कुछ पुरुष प्रतीच्छा करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष प्रतीच्छा करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न प्रतीच्छा करते हैं और न करवाते हैं।

११८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्रश्न करते हैं, किन्तु करवाते नहीं, २ कुछ पुरुष प्रश्न करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष प्रश्न करते भी

एगे पुच्छइ वि, पुच्छावेइ वि,
एगे णो पुच्छइ, णो पुच्छावेइ।

एक पृच्छत्यपि, प्रच्छयत्यपि,
एक नो पृच्छति, नो प्रच्छयति।

हैं, और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न प्रश्न करते हैं और न करवाते हैं।

११९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वागरेति णाममेगे, णो वागरावेति,
वागरावेति णाममेगे, णो वागरेति,
एगे वागरेति वि, वागरावेति वि,
एगे णो वागरेति, णो वागरावेति।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
व्याकरोति नामैक, नो व्याकारयति,
व्याकारयति नामैक, नो व्याकरोति,
एक व्याकरोत्यपि, व्याकारयत्यपि,
एक नो व्याकरोति, नो व्याकारयति।

११९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष व्याकरण [उत्तरदाता] करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष व्याकरण करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष व्याकरण करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न व्याकरण करते हैं और न करवाते हैं।

१२० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुत्तधरे णाममेगे, णो अत्थधरे,
अत्थधरे णाममेगे, णो सुत्तधरे,
एगे सुत्तधरे वि, अत्थधरे वि,
एगे णो सुत्तधरे, णो अत्थधरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सूत्रधर नामैक, नो अर्थधर,
अर्थधर नामैक, नो सूत्रधर,
एक सूत्रधरोऽपि, अर्थधरोऽपि,
एक नो सूत्रधर, नो अर्थधर।

१२० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सूत्रधर होते हैं, किन्तु अर्थधर नही होते, २ कुछ पुरुष अर्थधर होते हैं, किन्तु सूत्रधर नहीं होते, ३ कुछ पुरुष सूत्रधर भी होते हैं और अर्थधर भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न सूत्रधर होते हैं और न अर्थधर होते हैं।

लोगपाल-पदं

लोकपाल-पदम्

लोकपाल-पद

१२१. चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, त जहा—
सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चत्वार लोकपाला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सोम, यम, वरुण, वैश्रमण।

१२१ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के चार लोकपाल होते हैं—१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण।

१२२ एव—वलिस्सवि—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे।

एवम्—वलेरपि—सोम, यम, वैश्रमण, वरुण।

१२२ इसी प्रकार वलि आदि के भी चार-चार लोकपाल होते हैं—
वलि के—सोम, यम, वैश्रवण, वरुण।

धरणस्स—कालपाले कोलपाले सेलपाले सखपाले।

धरणस्य—कालपाल, कोलपाल, शैलपाल, शङ्खपाल।

धरण के—कालपाल, कोलपाल, सेलपाल, शखपाल।

भूयाणदस्स—कालपाले, कोलपाले, सखपाले, सेलपाले।

भूतानन्दस्य—कालपाल, कोलपाल, शङ्खपाल, शैलपाल।

भूतानन्द के—कालपाल, कोलपाल, शखपाल, सेलपाल।

वेणुदेवस्स—चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे।

वेणुदेवस्य—चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष।

वेणुदेव के—चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष।

वेणुदालिस्स—चित्ते, विचित्ते, विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे।

वेणुदाले—चित्र, विचित्र, विचित्रपक्ष, चित्रपक्ष।

वेणुदालि के—चित्र, विचित्र, विचित्रपक्ष, चित्रपक्ष।

हरिकतस्स—पभे, सुप्पभे, पभकते,

हरिकान्तस्य—प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त,

हरिकान्त के—प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त,

सुप्पभकते ।	सुप्रभकान्त ।	सुप्रभकान्त ।
हरिस्सहस्स—पभे, सुप्पभे, सुप्पभकते, पभकते ।	हरिस्सहस्य—प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभकान्त, प्रभकान्त ।	हरिस्सह के—प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभकान्त, प्रभकान्त ।
अग्गिसिहस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउकते, तेउप्पभे ।	अग्निशिखस्य—तेज, तेज शिख, तेजस्कान्त, तेज प्रभ ।	अग्निशिख के—तेज, तेजशिख, तेजस्कात, तेजप्रभ ।
अग्गिमाणवस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउप्पभे, तेउकते ।	अग्निमाणवस्य—तेज, तेज शिख, तेज प्रभ, तेजस्कान्त ।	अग्निमाणव के—तेज, तेजशिख, तेजप्रभ, तेजस्कान्त ।
पुण्णस्स—रूवे, रूवंसे रूवकते, रूवप्पभे ।	पूर्णस्य—रूप, रूपांश, रूपकान्त, रूपप्रभ ।	पूर्ण के—रूप, रूपांश, रूपकान्त, रूपप्रभ
विसिट्ठस्स—रूवे, रूवंसे, रूवप्पभे, रूवकते ।	विशिष्टस्य—रूप, रूपांश, रूपप्रभ, रूपकान्त ।	विशिष्ट के—रूप, रूपांश, रूपप्रभ, रूपकान्त ।
जलकंतस्स—जले, जलरते, जलकते, जलप्पभे ।	जलकान्तस्य—जल, जलरत, जलकान्त, जलप्रभ ।	जलकान्त के—जल, जलरत, जलप्रभ, जलकान्त ।
जलप्पहस्स—जले, जलरते, जलप्पहे, जलकते ।	जलप्रभस्य—जल, जलरत, जलप्रभ, जलकान्त ।	जलप्रभ के—जल, जलरत, जलकान्त, जलप्रभ ।
अमितगतिस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहगती, सीहविक्कमगती ।	अमितगतेः—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति, सिंहविक्रमगति ।	अमितगति के—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति, सिंहविक्रमगति ।
अमितवाहणस्स—तुरियगती, खिप्पगति, सीहविक्कमगती, सीहगती ।	अमितवाहनस्य—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहविक्रमगति, सिंहगति ।	अमितवाहन के—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहविक्रमगति, सिंहगति ।
वेलंबस्स—काले, महाकाले, अंजणे, रिट्ठे ।	वेलम्बस्य—काल, महाकाल, अञ्जन, रिष्ट ।	वेलम्ब के—काल, महाकाल, अंजन, रिष्ट ।
पभंजणस्स—काले, महाकाले, रिट्ठे, अंजणे ।	प्रभञ्जनस्य—काल, महाकाल, रिष्ट, अञ्जन ।	प्रभञ्जन के—काल, महाकाल, रिष्ट, अंजन ।
घोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, णंदियावत्ते, महाणंदियावत्ते ।	घोषस्य—आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त, महानन्द्यावर्त्त ।	घोष के—आवर्त्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त, महानन्दिकावर्त ।
महाघोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, महाणंदियावत्ते, णंदियावत्ते ।	महाघोषस्य—आवर्त्त, व्यावर्त्त, महानन्द्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त ।	महाघोष के—आवर्त्त, व्यावर्त, महानन्दिकावर्त, नन्दिकावत ।
सक्कस्स—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे ।	शक्रस्य—सोम, यम, वरुण, वैश्रमण ।	शक्र, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, शुक्र और आनत-प्रणत के इन्द्रों के—सोम, यम, वैश्रवण, वरुण ।
ईसाणस्स—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे ।	ईशानस्य—सोम, यम, वैश्रमण, वरुण ।	ईशान, माहेन्द्र लान्तक, सहस्रार और आरण-अच्युत के इन्द्रों के—सोम, यम, वरुण, वैश्रवण ।
एवं—एगंतरिता जाव अच्चुतस्स ।	एवम्—एकान्तरिता यावत् अच्युतस्य ।	

देव-पद

१२३ चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, त जहा—
काले, महाकाले, वेलवे, पभजणे।

१२४ चउव्विहा देवा पण्णत्ता, त जहा—
भवणवासी, वाणमतरा, जोइसिया, विमाणवासी।

देव-पदम्

चतुर्विधा वायुकुमारा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
काल, महाकाल, वेलम्ब, प्रभञ्जन।

चतुर्विधा देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भवनवासिन, वानमन्तरा, ज्योतिष्का, विमानवासिन।

देव-पद

१२३. वायुकुमार चार प्रकार के होते हैं—
१ काल, २. महाकाल, ३ वेलम्ब, ४ प्रभञ्जन।

१२४ देवता चार प्रकार के होते हैं—
१ भवनवासी, २ वानमन्तर, ३ ज्योतिष्क, ४ विमानवासी।

पमाण-पदं

१२५ चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, त जहा—
दव्वप्पमाणे, खेत्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे।

प्रमाण-पदम्

चतुर्विध प्रमाण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
द्रव्यप्रमाणं, क्षेत्रप्रमाणं, कालप्रमाण, भावप्रमाण।

प्रमाण-पद

१२५ प्रमाण चार प्रकार का होता है—
१ द्रव्य-प्रमाण—द्रव्य की माप,
२ क्षेत्र-प्रमाण—क्षेत्र की माप,
३ काल-प्रमाण—काल की माप,
४ भाव-प्रमाण—प्रत्यक्ष आदि प्रमाण।

महत्तरिया-पद

१२६ चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
रुया, रुयसा, सुरूवा, रूयावती।

१२७ चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
चित्ता, चित्तकणगा, सतेरा, सोतामणी।

महत्तरिका-पदम्

चतस्र दिशाकुमारीमहत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रूपा, रूपाशा, सुरूपा, रूपवती।

चतस्र विद्युत्कुमारीमहत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चित्रा, चित्रकनका, शतेरा, सौदामिनी।

महत्तरिका-पद

१२६ दिक्कुमारियो की महत्तरिकाए चार हैं—
१. रूपा, २ रूपांशा, ३ सुरूपा, ४ रूपवती।

१२७ विद्युत्कुमारियो की महत्तरिकाए चार है—१ चित्रा, २ चित्रकनका, ३ सतेरा, ४ सौदामिनी।

देव-ठिति-पदं

१२८ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवाणं चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

१२९ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवीण चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देव-स्थिति-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यम-परिषद देवाना चत्वारि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यम-परिषद देवीना चत्वारि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

देव-स्थिति-पद

१२८ देवेन्द्र देवराज शकेन्द्र के मध्यम-परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम की होती है।

१२९ देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र के मध्यम-परिषद् की देवियो की स्थिति चार पल्योपम की होती है।

संसार-पद

१३०. चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वससारे, खेत्तससारे,
कालनसारे, भावसंसारे।

संसार-पदम्

चतुर्विध ससार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
द्रव्यससार, क्षेत्रससार, कालससार,
भावससार।

संसार-पद

१३० ससार चार प्रकार का है—
१. द्रव्य ससार—जीव और पुद्गलो का परिभ्रमण, २ क्षेत्र ससार—जीव और पुद्गलो के परिभ्रमण का क्षेत्र, ३ काल ससार—काल का परिवर्तन अथवा काल मर्यादा के अनुसार होने वाला जीव-पुद्गलो का परिवतन, ४ भाव-ससार—परिभ्रमण की क्रिया।

दिट्ठिवाय-पदं

१३१. चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते, त जहा—
परिकम्मं, सुत्ताइ,
पुव्वगए, अणुजोगे।

दृष्टिवाद-पदम्

चतुर्विध दृष्टिवाद प्रज्ञप्त, तद्यथा—
परिकर्म, सूत्राणि, पूर्वगत, अनुयोग।

दृष्टिवाद-पद

१३१. दृष्टिवाद [बारहवा अग] चार प्रकार का है—१ परिकर्म—इसे पढ़ने से सूत्र आदि को समझने की योग्यता आ जाती है, २ सूत्र—इसमें सब द्रव्यो और पर्यायो की सूचना मिलती है, ३ पूर्वगत—चतुर्दश पूर्व, ४ अनुयोग—इसमें तीर्थंकर आदि के जीवन-चरित्र प्रतिपादित होते हैं।

पायच्छित्त-पदं

१३२. चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—
णाणपायच्छित्ते, दसणपायच्छित्ते,
चरित्तपायच्छित्ते, वियत्तकिच्च-पायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त-पदम्

चतुर्विध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त,
चरित्रप्रायश्चित्त, व्यक्तकृत्य-प्रायश्चित्तम्।

प्रायश्चित्त-पद

१३२ प्रायश्चित्त चार प्रकार का होता है—
१ ज्ञानप्रायश्चित्त—ज्ञान के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए ज्ञान ही प्रायश्चित है, २ दर्शन प्रायश्चित्त—दशन के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए दर्शन ही प्रायश्चित्त है, ३ चरित्र प्रायश्चित्त—चरित्र के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए चरित्र ही प्रायश्चित्त है, ४ व्यक्त-कृत्य-प्रायश्चित्त—गीतार्थ मुनि जागरूकता पूर्वक जो कार्य करता है वह पाप-विशुद्धि कारक होता है, इसलिए वह प्रायश्चित्त है।

१३३ चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—
पडिसेवणापायच्छित्ते,
सजोयणापायच्छित्ते, आरोवणापायच्छित्ते, पलिउचणापायच्छित्ते।

चतुर्विध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रतिसेवनाप्रायश्चित्त,
सयोजनाप्रायश्चित्त,
आरोपणाप्रायश्चित्त,
परिकुञ्चनाप्रायश्चित्तम्।

१३३ प्रायश्चित्त चार प्रकार का होता है—
१ प्रतिषेवणा-प्रायश्चित्त—अकृत्य का सेवन करने पर प्राप्त होने वाला प्रायश्चित्त, २ सयोजना-प्रायश्चित्त—एक जातीय अनेक अतिचारो के लिए प्राप्त होने वाला प्रायश्चित्त, ३ आरोपणा-प्रायश्चित्त—एक दोष का प्रायश्चित्त चल रहा हो, उस बीच मे ही उस दोष को पुन-पुन सेवन करने पर जो प्रायश्चित्त की अवधि बढती है, ४ परिकुञ्चना-प्रायश्चित्त—अपराध को छिपाने का प्रायश्चित्त।

काल-पदं

१३४ चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा—
पमाणकाले, अहाउयनिव्वत्तिकाले, मरणकाले, अद्धाकाले।

काल-पदम्

चतुर्विध काल प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रमाणकाल, यथायुर्निवृत्तिकाल, मरणकाल, अद्ध्वाकाल।

काल-पद

१३४ काल चार प्रकार का होता है—
१ प्रमाणकाल—काल के दिवस, रात्रि आदि विभाग, २ यथायु निवृत्तिकाल—आयुष्य के अनुरूप नरक आदि गतियो मे रहने का काल, ३ मरणकाल—मृत्यु का समय, ४ अद्धाकाल—सूर्य की गति से पहचाना जाने वाला काल।

पोग्गल-परिणाम-पदं

१३५ चव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते त जहा—
वण्णपरिणामे, गधपरिणामे,
रसपरिणामे, फासपरिणामे।

पुद्गल-परिणाम-पदम्

चतुर्विध पुद्गलपरिणाम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
वर्णपरिणाम, गन्धपरिणाम,
रसपरिणाम, स्पर्शपरिणाम।

पुद्गल-परिणाम-पद

१३५ पुद्गल का परिणाम चार प्रकार का होता है—१ वर्णपरिणाम—वर्ण का परिवर्तन,
२ गधपरिणाम—गध का परिवर्तन,
३ रसपरिणाम—रस का परिवर्तन,
४ स्पर्शपरिणाम—स्पर्श का परिवर्तन।

चाउज्जाम-पदं

१३६. भरहेरवएसु ण वासेसु पुरिम-पच्छिमवज्जा मज्झिमगा वावीस अरहता भगवतो चाउज्जाम धम्म पण्णवयति, त जहा—

चातुर्याम-पदम्

भरतैरावतयो वर्पयो पूर्व-पश्चिम-वर्जा मध्यमका द्वाविशति अर्हन्त भगवन्त चातुर्याम धर्मं प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा—

चातुर्याम-पद

१३६ भरत और ऐरवत क्षेत्र मे प्रथम और अन्तिम को छोडकर शेष वाईस अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं, वह इस प्रकार है—

सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं,
सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण,
सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण।

सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमण,
सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमण,
सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमण,
सर्वस्माद् बहिस्तादादानाद् विरमणम्।

१ सर्व प्राणातिपात से विरमण करना,
२ सर्व मृषावाद से विरमण करना,
३ सर्व अदत्तादान से विरमण करना,
४ सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।

१३७ सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—
सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमण,
°सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण,°
सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

सर्वेषु महाविदेहेषु अर्हन्तः भगवन्तः चातुर्याम धर्मं प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा—
सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमण,
सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमण,
सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमण,
सर्वस्माद् बहिस्तादादानाद् विरमणम्।

१३७ सब महाविदेह क्षेत्रों में अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं, वह इस प्रकार है—
१ सर्व प्राणातिपात से विरमण करना।
२ सर्व मृषावाद से विरमण करना,
३ सर्व अदत्तादान से विरमण करना,
४ सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।

दुग्गति-सुगति-पद

दुर्गति-सुगति-पदम्

दुर्गति-सुगति-पद

१३८ चत्तारि दुग्गतिओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुस्सदुग्गती, देवदुग्गती।

चतस्रः दुर्गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गतिः, तिर्यग्योनिकदुर्गतिः, मनुष्यदुर्गतिः, देवदुर्गतिः।

१३८ दुर्गति चार प्रकार की होती है—
१ नैरयिक दुर्गति, २ तिर्यक्योनिक दुर्गति,
३ मनुष्य दुर्गति, ४ देव दुर्गति।

१३९ चत्तारि सोग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोग्गती, देवसोग्गती, मणुयसोग्गती, सुकुलपच्चायाती।

चतस्रः सुगतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धसुगतिः, देवसुगतिः, मनुजसुगतिः, सुकुलप्रत्याजातिः।

१३९ सुगति चार प्रकार की होती है—
१ सिद्ध सुगति, २ देव सुगति,
३ मनुष्य सुगति, ४ सुकुल में जन्म।

१४० चत्तारि दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुयदुग्गता, देवदुग्गता।

चत्वारः दुर्गताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गताः, तिर्यग्योनिकदुर्गताः, मनुजदुर्गताः, देवदुर्गताः।

१४० दुर्गत—दुर्गति में उत्पन्न होने वाले—चार प्रकार के होते हैं—१ नैरयिक दुर्गत,
२ तिर्यक्योनिक दुर्गत, ३ मनुष्य दुर्गत,
४ देव दुर्गत।

१४१ चत्तारि सुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—
सिद्धसुग्गता, °देवसुग्गता, मणुयसुग्गता° सुकुलपच्चायाया।

चत्वारः सुगताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धसुगताः, देवसुगताः, मनुजसुगताः, सुकुलप्रत्याजाताः।

१४१ सुगत—सुगति में उत्पन्न होने वाले चार प्रकार के होते हैं—१ सिद्ध सुगत,
२ देव सुगत, ३ मनुष्य सुगत,
४ सुकुल में जन्म लेने वाला।

कम्मंस-पद

सत्कर्म-पदम्

सत्कर्म-पद

१४२. पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, मोहणिज्जं, अंतराइयं।

प्रथमसमयजिनस्य चत्वारि सत्कर्माणि क्षीणानि भवन्ति, तद्यथा—ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीयं, मोहनीयं, आन्तरायिकम्।

१४२ प्रथम-समय के केवली के चार सत्कर्म क्षीण होते हैं—१ ज्ञानावरणीय,
२ दर्शनावरणीय, ३ मोहनीय,
४ आन्तरायिक।

१४३. उप्पण्णणाणदसणधरे ण अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मसे वेदेति, त जहा—
वेदणिज्ज, आउय, णाम, गोत।

उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली चत्वारि सत्कर्माणि वेदयति, तद्यथा—
वेदनीय, आयु, नाम, गोत्रम्।

१४३ उत्पन्न हुए केवल ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्, जिन, केवली चार सत्कर्मों का वेदन करते हैं—१ वेदनीय, २ आयु, ३ नाम, ४ गोत्र।

१८४. पढमसमयसिद्धस्स ण चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जति, त जहा—
वेयणिज्ज, आउय, णाम, गोत।

प्रथमसमयसिद्धस्य चत्वारि सत्कर्माणि युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा—
वेदनीय, आयु, नाम, गोत्रम्।

१४४ प्रथम समय के सिद्ध के चार सत्कर्म एक साथ क्षीण होते हैं—१ वेदनीय, २ आयु, ३ नाम, ४ गोत्र।

हासुप्पत्ति-पद

हास्योत्पत्ति-पदम्

हास्योत्पत्ति-पद

१४५ चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, त जहा—
पासेत्ता, भासेत्ता, सुणेत्ता, सभरेत्ता।

चतुर्भि स्थानै हास्योत्पत्ति स्यात्, तद्यथा—
दृष्ट्वा, भाषित्वा, श्रुत्वा, स्मृत्वा।

१४५ चार कारणो से हसी आती है—
१ देखकर—विदूषक आदि की चेष्टाओं को देखकर, २ बोलकर—किसी के बोलने की नकल कर, ३ सुनकर—उस प्रकार की चेष्टाओ और वाणी को सुन कर, ४ यादकर—दृष्ट और श्रुत बातो को यादकर।

अंतर-पदं

अन्तर-पदम्

अन्तर-पद

१४६ चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, त जहा—
कट्ठंतरे, पम्हतरे, लोहंतरे, पत्थरतरे।
एवामेव इत्थिए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अतरे पण्णत्ते, तं जहा—
कट्ठतरसमाणे, पम्हतरसमाणे, लोहतरसमाणे, पत्थरंतरसमाणे।

चतुर्विध अन्तर प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
काष्ठान्तर, पक्ष्मान्तर, लोहान्तर, प्रस्तरान्तरम्।
एवमेव स्त्रिय वा पुरुषस्य वा चतुर्विध अन्तर प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
काष्ठान्तरसमान, पक्ष्मान्तरसमान, लोहान्तरसमान, प्रस्तरान्तरसमानम्।

१४६ अन्तर चार प्रकार का होता है—
१ काष्ठान्तर—काष्ठ का अन्तर—रूप-निर्माण आदि की दृष्टि से,
२ पक्ष्मान्तर—धागे से धागे का अन्तर—सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर—लोहे से लोहे का अन्तर—छेदन शक्ति की दृष्टि से, ४ प्रस्तरातर—पत्थर से पत्थर का अन्तर—इच्छा पूर्ण करने की क्षमता [जैसे मणि] आदि की दृष्टि से।
इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का, पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार-चार प्रकार का होता है—१ काष्ठान्तर के समान—विशिष्ट पदवी आदि की दृष्टि से, २ पक्ष्मातर के समान—वचन, सुकुमारता आदि की दृष्टि से, २ लोहान्तर के समान—स्नेह का छेदन करने आदि की दृष्टि से,
४ प्रस्तरातर के समान—मनोरथ पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

भयग-पदं

१४७ चत्तारि भयगा पण्णत्ता, त जहा— दिवसभयए, जत्ताभयए, उच्चत्तभयए, कब्बालभयए।

भृतक-पदम्

चत्वार भृतका प्रज्ञप्ता, तद्यथा— दिवसभृतक, यात्राभृतक, उच्चत्वभृतक, कब्वाडभृतक।

भृतक-पद

१४७ भृतक चार प्रकार के होते हैं— १ दिवश-भृतक—प्रतिदिन का नियत मूल्य लेकर काम करने वाला, २ यात्रा-भृतक—यात्रा मे सहयोग करने वाला, ३ उच्चता-भृतक—घण्टो के अनुपात से मूल्य लेकर काम करने वाला, ४ कब्बाड-भृतक—हाथो के अनुपात से धन लेकर भूमि खोदने वाला।"

पडिसेवि-पदं

१४८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सपागडपडिसेवी णामेगे, णो पच्छण्णपडिसेवी, पच्छण्णपडिसेवी णामेगे, णो सपागडपडिसेवी, एगे संपागडपडिसेवी वि, पच्छण्णपडिसेवीवि, एगे णो सपागडपडिसेवी, णो पच्छण्णपडिसेवी।

प्रतिषेवि-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्प्रकटप्रतिषेवी नामैक, नो प्रच्छन्न प्रतिषेवी, प्रच्छन्नप्रतिषेवी नामैक, नो सम्प्रकटप्रतिषेवी, एक सम्प्रकटप्रतिषेवी अपि, प्रच्छन्नप्रतिषेवी अपि, एक नो सम्प्रकटप्रतिषेवी, नो प्रच्छन्नप्रतिषेवी।

प्रतिषेवि-पद

१४८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष प्रकट में दोष सेवन करते हैं, किन्तु छिपकर नहीं करते, २ कुछ पुरुष छिपकर दोष सेवन करते हैं, किन्तु प्रकट मे नहीं करते, ३ कुछ पुरुष प्रकट मे भी दोष सेवन करते हैं और छिपकर कर भी, ४ कुछ पुरुष न प्रकट मे दोष सेवन करते हैं और न छिपकर ही।

अग्गमहिसी-पद

१४९ चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कणगा, कणगलता, चित्तगुत्ता, वसुंधरा।

१५० एव—जमस्स वरुणस्स वेसमणस्स।

१५१ वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—मितगा, सुभद्दा, विज्जुता, असणी।

अग्रमहिषी-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा— कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता, वसुधरा।

एवम्—यमस्य वरुणस्य वैश्रमणस्य।

बले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा— मितका, सुभद्रा, विद्युत्, अशनि।

अग्रमहिषी-पद

१४९ असुरेन्द्र, असुरराज चमर के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ कनका, २ कनकलता, ३ चित्रगुप्ता, ४ वसुन्धरा।

१५० इसी प्रकार यम आदि के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१५१ वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज बलि के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ मितका २ सुभद्रा, ३ विद्युत, ४ अशनि।

१५२. एव—जमस्स वेसमणस्स वरुणस्स ।

एवम्—यमस्य वैश्रमणस्य वरुणस्य ।

१५२ इसी प्रकार यम आदि के चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं—

१५३ धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—असोगा, विमला, सुप्पभा, सुदसणा ।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालवालस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना ।

१५३ नागकुमारेन्द्र, नागकुमारराज धरणेन्द्र के लोकपाल महाराज कालपाल के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ अशोका, २ विमला, ३ सुप्रभा, ४ सुदर्शना ।

१५४ एव—जाव सखवालस्स ।

एवम्—यावत् शङ्खपालस्य ।

१५४ इसी प्रकार शखपाल तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं ।

१५५ भूताणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुणदा, सुभद्दा, सुजाता, सुमणा ।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालवालस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता तद्यथा—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना ।

१५५ नागकुमारेन्द्र, नागकुमारराज भूतानन्द के लोकपाल महाराज कालपाल के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ सुनन्दा, २ सुभद्रा, ३ सुजाता, ४ सुमना ।

५१६ एव—जाव सेलवालस्स ।

एवम्—यावत् सेलपालस्य ।

१५६ इसी प्रकार सेलपाल तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं ।

१५७ जहा धरणस्स एव सव्वेसिं दाहिंणिद लोगपालाण जाव घोसस्स ।

यथा धरणस्य एव सर्वेषा दक्षिणेन्द्र-लोकपालाना यावत् घोषस्य ।

१५७ दक्षिण दिशा के आठ इन्द्र—वेणुदेव, हरिकान्त, अग्नि-शिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के लोकपालो के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ अशोका, २ विमला, ३ सुप्रभा, ४ सुदशना ।

१५८. जहा भूताणंदस्स एव जाव महाघोसस्स लोगपालाण ।

यथा भूतानन्दस्य एव यावत् महाघोषस्य लोकपालानाम् ।

१५८ उत्तर-दिशा के आठ इन्द्र—वेणुदालि हरिस्सह, अग्नि मानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष के लोकपालो के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१ सुनदा, २ सुभद्रा, ३ सुजाता, ४ सुमना ।

१५९ कालस्स ण पिसाइदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदसणा ।

कालस्य पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कमला, कमलप्रभा, उत्पला, सुदर्शना ।

१५९ पिशाचेन्द्र, पिशाचराज, काल के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१ कमला, २ कमलप्रभा, ३ उत्पला ४ सुदर्शना ।

१६० एवं—महाकालस्सावि ।

एवम्—महाकालस्यापि ।

१६० इसी प्रकार महाकाल के भी चार अग्रमहिषियां होती हैं ।

१६१ सुरूवस्स ण भूतिंदस्स भूतरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रूववती, वहुरूवा, सुरूवा, सुभगा।

सुरूपस्य भूतेन्द्रस्य भूतराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—रूपवती, वहुरूपा, सुरूपा, सुभगा।

१६१ भूतेन्द्र भूतराज, सुरूप के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ रूपवती, २ वहुरूपा, ३ सुरूपा, ४ सुभगा।

१६२ एव—पडिरूवस्सवि।

एवम्—प्रतिरूपस्यापि।

१६२ इसी प्रकार प्रतिरूप के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१६३ पुण्णभद्दस्स णं जक्खिदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुण्णा, वहुपुण्णिता, उत्तमा, तारगा।

पूर्णभद्रस्य यक्षेन्द्रस्य यक्षराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पूर्णा, वहुपूर्णिका, उत्तमा, तारका।

१६३ यक्षेन्द्र, यक्षराज, पूर्णभद्र के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ पूर्णा, २. वहुपूर्णिका, ३ उत्तमा, ४ तारका।

१६४. एव—माणिभद्दस्सवि।

एवम्—माणिभद्रस्यापि।

१६४ इसी प्रकार माणिभद्र के भी चार अग्रमहिषियाँ होती हैं।

१६५ भीमस्स णं रक्खसिंदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पउमा, वसुमती, कणगा, रतणप्पभा।

भीमस्य राक्षसेन्द्रस्य राक्षसराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा।

१६५ राक्षसेन्द्र, राक्षसराज, भीम के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ पद्मा, २ वसुमती, ३ कनका, ४ रत्नप्रभा।

१६६ एव—महाभीमस्सवि।

एवम्—महाभीमस्यापि।

१६६ इसी प्रकार महाभीम के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१६७ किण्णरस्य ण किण्णरिंदस्स [किण्णररण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वडेंसा, केतुमती, रतिसेणा, रतिप्पभा।

किन्नरस्य किन्नरेन्द्रस्य [किन्नरराजस्य ?] चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अवतमा, केतुमती, रतिसेना, रतिप्रभा।

१६७ किन्नरेन्द्र, किन्नरराज, किन्नर के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ अवतसा, २ केतुमती, ३ रतिसेना, ४ रतिप्रभा।

१६८ एव—किंपुरिसस्सवि।

एवम्—किंपुरुपस्यापि।

१६८ इसी प्रकार किंपुरुप के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१६९. सप्पुरिसस्स ण किंपुरिसिंदस्स [किंपुरिसरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रोहिणी, णवमिता, हिरी, पुप्फवती।

सत्पुरुपस्य किंपुरुपेन्द्रस्य [किंपुरुपराजस्य ?] चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—रोहिणी, नवमिका, ह्री, पुष्पवती।

१६९ किंपुरुपेन्द्र, किंपुरुपराज, सत्पुरुप के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ रोहिणी, २ नवमिता, ३ ह्री, ४ पुष्पवती।

१७०. एव—महापुरिसस्सवि।

एवम्—महापुरुपस्यापि।

१७० इसी प्रकार महापुरुप के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१७१. अतिकायस्स णं महोरगिंदस्स [महोरगरण्णो ?] चत्तारि

अतिकायस्य महोरगेन्द्रस्य [महोरगराजस्य ?] चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता,

१७१ महोरगेन्द्र, महोरगराज, अतिकाय के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ भुजगा,

अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भुयगा, भुयगावती महाकच्छा, फुडा।

तद्यथा—भुजगा, भुजगवती, महाकक्षा, स्फुटा।

२ भुजगवती, ३ कक्षा, ४ स्फुटा।

१७२ एव—महाकायस्सवि।

एवम्—महाकायस्यापि।

१७२ इसी प्रकार महाकाय के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१७३. गीतरतिस्स ण गधव्विदस्स [गंधव्वरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सती।

गीतरते गन्धर्वेन्द्रस्य [गन्धर्वराजस्य ?] चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सुघोषा, विमला, सुस्वरा, सरस्वती।

१७३ गन्धर्वेन्द्र, गन्धर्वराज, गीतरति के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ सुघोषा, २ विमला, ३ सुस्वरा, ४ सरस्वती।

१७४ एव—गीयजसस्सवि।

एवम्—गीतयशसोऽपि।

१७४ इसी प्रकार गीतयश के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१७५. चदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—चदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभकरा।

चन्द्रस्य ज्योतीरिन्द्रस्य ज्योतीराजस्य चतस्र, अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता तद्यथा—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमालिनी, प्रभकरा।

१७५ ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज चन्द्र के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ चन्द्रप्रभा, २ ज्योत्स्नाभा, ३ अर्चिमालिनी, ४ प्रभकरा।

१७६ एव—सूरस्सवि, णवरं—सूरप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभकरा।

एवम्—सूरस्यापि, नवर—सूरप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमालिनी, प्रभकरा।

१७६ इसी प्रकार ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज सूर्य के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ सूर्यप्रभा, २ ज्योत्स्नाभा, ३ अर्चिमालिनी, प्रभकरा।

१७७ इगालस्स ण महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—विजया, वेजयती, जयती, अपराजिया।

अङ्गारस्य महाग्रहस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—विजया, वैजयन्ती, जयती, अपराजिता।

१७७ अगार महाग्रह के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ विजया, २ वैजयती, ३ जयती, ४ अपराजिता।

१७८ एव—सव्वेसि महग्गहाण जाव भावकेउस्स।

एवम्—सर्वेषा महाग्रहाणा यावत् भावकेतो।

१७८ इसी प्रकार भावकेतु तक के सभी महाग्रहो के चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१७९ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रोहिणी, मयणा, चित्ता, सामा।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—रोहिणी, मदना, चित्रा, श्यामा।

१७९ देवेन्द्र, देवराज, शक्र के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ रोहिणी, २ मदना, ३ चित्रा, ४ सोमा।

१८० एवं—जाव वेसमणस्स।

एवम्—यावत् वैश्रमणस्य।

१८० इसी प्रकार वैश्रमण तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१८१ ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्ग-

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता,

१८१. देवेन्द्र, देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषिया होती

महिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पुढवी, राती, रयणी, विज्जू।

तद्यथा—पृथ्वी, रात्री, रजनी, विद्युत्।

हैं—१ पृथ्वी, २ रात्री, ३ रजनी, ४ विद्युत्।

१८२. एवं—जाव वरुणस्स।

एवम्—यावत् वरुणस्य।

१८२ इसी प्रकार वरुण तक के भी चार-चार अग्रमहिषियां होती हैं।

विगति-पदं

विकृति-पदम्

विकृति-पद

१८३. चत्तारि गोरसविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीर, दहिं, सप्पि, णवणीत।

चतस्रः गोरसविकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षीर, दधि, सर्पि, नवनीतम्।

१८३ गोरसमय विकृतियां चार हैं—१ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ नवनीत।

१८४ चत्तारि सिणेहविगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
तेल्ल, घयं, वसा, णवणीत।

चतस्रः स्नेहविकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तैल, घृत, वसा, नवनीतम्।

१८४ स्नेह (चिकनाई) मय विकृतियां चार हैं—१ तैल, २ घृत, ३ वसा—चर्बी, ४ नवनीत।

१८५ चत्तारि महाविगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
महुं, मस, मज्ज, णवणीत।

चतस्रः महाविकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मधु, मास, मद्य, नवनीतम्।

१८५ महाविकृतियां चार हैं—
१ मधु, २ मास, ३ मद्य, ४ नवनीत।

गुत्त-अगुत्त-पदं

गुप्त-अगुप्त-पदम्

गुप्त-अगुप्त-पद

१८६ चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, त जहा—
गुत्ते णाम एगे गुत्ते,
गुत्ते णाम एगे अगुत्ते,
अगुत्ते णाम एगे गुत्ते,
अगुत्ते णाम एगे अगुत्ते।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, त जहा—
गुत्ते णाम एगे गुत्ते,
गुत्ते णाम एगे अगुत्ते,
अगुत्ते णाम एगे गुत्ते,
अगुत्ते णाम एगे अगुत्ते।

चत्वारि कूटागाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गुप्त नामैक गुप्त,
गुप्त नामैक अगुप्त,
अगुप्त नामैक गुप्त,
अगुप्तं नामैक अगुप्तम्।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गुप्त नामैक गुप्त,
गुप्त नामैक अगुप्त,
अगुप्त नामैक गुप्त,
अगुप्त नामैक अगुप्त।

१८६ कूटागार [शिखर सहित घर] चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ कूटागार गुप्त होकर गुप्त होते हैं—परकोटे से घिरे हुए होते हैं और उनके द्वार भी वन्द होते हैं, २ कुछ कूटागार गुप्त होकर अगुप्त होते हैं—परकोटे से घिरे हुए होते हैं, किन्तु उनके द्वार वन्द नही होते, ३ कुछ कूटागार अगुप्त होकर गुप्त होते—परकोटे से घिरे हुए नहीं होते, किन्तु उनके द्वार वन्द होते हैं, ४ कुछ कूटागार अगुप्त होकर अगुप्त होते हैं—न परकोटे से घिरे हुए होते हैं और न उनके द्वार ही वन्द होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष गुप्त होकर गुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए होते हैं और उनकी इन्द्रियां भी गुप्त होती हैं, २ कुछ पुरुष गुप्त होकर अगुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए होते हैं, किन्तु उनकी इन्द्रियां गुप्त नहीं होती, ३ कुछ पुरुष अगुप्त होकर गुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए नहीं होते, किन्तु उनकी

इन्द्रिया गुप्त होती हैं, ४ कुछ पुरुष अगुप्त होकर अगुप्त होते हैं—न वस्त्र पहने हुए होते हैं और न उनकी इन्द्रियां ही गुप्त होती हैं।

१८७ चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा,
अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।
एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
गुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया,
अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

चतस्र कूटागारशाला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गुप्ता नामैका गुप्तद्वारा,
गुप्ता नामैका अगुप्तद्वारा,
अगुप्ता नामैका गुप्तद्वारा,
अगुप्ता नामैका अगुप्तद्वारा।
एवमेव चतस्र स्त्रिय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया,
गुप्ता नामैका अगुप्तेन्द्रिया,
अगुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया,
अगुप्ता नामैका अगुप्तेन्द्रिया।

१८७ कूटागार-शालाए चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ कूटागार-शालाए गुप्त और गुप्तद्वार वाली होती हैं, २ कुछ कूटागार-शालाए गुप्त, किन्तु अगुप्तद्वार वाली होती हैं, ३ कुछ कूटागार-शालाए अगुप्त, किन्तु गुप्तद्वार वाली होती हैं, ४ कुछ कूटागार-शालाए अगुप्त और अगुप्तद्वार वाली होती हैं।
इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ स्त्रिया गुप्त और गुप्त-इन्द्रिय वाली होती हैं, २ कुछ स्त्रिया गुप्त, किन्तु अगुप्तइन्द्रिय वाली होती हैं, ३ कुछ स्त्रिया अगुप्त, किन्तु गुप्तइन्द्रिय वाली होती हैं, कुछ स्त्रिया अगुप्त और अगुप्तइन्द्रिय वाली होती हैं।

ओगाहणा-पदं

१८८ चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, त जहा—
दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा,
कालोगाहणा, भावोगाहणा।

अवगाहना-पदम्

चतुर्विधा अवगाहना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
द्रव्यावगाहना, क्षेत्रावगाहना,
कालावगाहना, भावावगाहना।

अवगाहना-पद

१८८ अवगाहना चार प्रकार की होती है—
१ द्रव्यावगाहना—द्रव्यो की अवगाहना—द्रव्यो के फैलाव का परिमाण, २ क्षेत्रावगाहना—क्षेत्र स्वय अवगाहना है,
३ कालावगाहना—काल की अवगाहना, वह मनुष्यलोक में है, ४ भावावगाहना—आश्रय लेने की क्रिया।

पण्णत्ति-पद

१८९. चत्तारि पण्णत्तीओ अगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
चदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती,
जबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

प्रज्ञप्ति-पदम्

चतस्र प्रज्ञप्तय अङ्गबाह्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूरप्रज्ञप्ति,
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।

प्रज्ञप्ति-पद

१८९. चार प्रज्ञप्तिया अग-बाह्य हैं—
१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूरप्रज्ञप्ति,
३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।

वीओ उद्देसो

पडिसलीण-अपडिसलीण-पद

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पदम्

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पद

१९० चत्तारि पडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—कोहपडिसलीणे, माणपडिसलीणे, मायापडिसलीणे, लोभपडिसलीणे।

चत्वार प्रतिसलीना प्रज्ञप्ता तद्यथा—क्रोधप्रतिमलीन, मानप्रतिसलीन, मायाप्रतिसलीन, लोभप्रतिसलीन ।

१९० चार प्रतिसलीन होते हैं— १ क्रोध प्रतिसलीन, २ मानप्रतिसलीन, ३ माया-प्रतिसलीन, ४ लोभप्रतिसलीन।[१]

१९१. चत्तारि अपडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—कोहअपडिसलीणे, •माणअपडिसंलीणे, मायाअपडिसलीणे,° लोभअपडिसंलीणे।

चत्वार अप्रतिसलीना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्रोधाप्रतिसलीन, मानाप्रतिसलीन, मायाऽप्रतिसलीन, लोभाप्रतिसलीन ।

१९१ चार अप्रतिसलीन होते हैं— १ क्रोधअप्रतिसलीन, २ मानअप्रतिसलीन, ३ मायाअप्रतिसलीन, ४ लोभअप्रतिसलीन।

१९२. चत्तारि पडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—मणपडिसलीणे, वतिपडिसंलीणे, कायपडिसलीणे, इ दियपडिसलीणे।

चत्वार प्रतिसलीना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मन प्रतिसलीन, वाक्प्रतिसलीन, कायप्रतिसलीन, इन्द्रियप्रतिसलीन ।

१९२ चार प्रतिसलीन होते हैं— १. मनप्रतिसलीन, २ वचनप्रतिसलीन, ३ कायप्रतिसलीन, ४ इन्द्रियप्रति-सलीन।[२]

१९३ चत्तारि अपडिसलीणा पण्णत्ता, तं जहा—मणअपडिसलीणे, •वतिअपडिसंलीणें, कायअपडिसलीणे,° इ दियअपडिसलीणे।

चत्वार अप्रतिसलीना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनोऽप्रतिसलीन, वागप्रतिसलीन, कायाऽप्रतिसलीन, इन्द्रियाऽप्रतिसलीन ।

१९३ चार अप्रतिसलीन होते हैं— १ मनअप्रतिसलीन, २ वचनप्रति-सलीन, ३ कायअप्रतिसलीन, ४ इन्द्रिय-अप्रतिसलीन ।

दीण-अदीण-पदं

दीन-अदीन-पदम्

दीन-अदीन-पद

१९४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणे,
दीणे णाममेगे अदीणे,
अदीणे णाममेगे दीणे,
अदीणे णाममेगे अदीणे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीन,
दीन नामैक अदीन,
अदीन नामैक दीन,
अदीन नामैक अदीन ।

१९४ पुरुप चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप वाहर से भी दीन और अन्तर मे भी दीन होते हैं, २ कुछ पुरुप वाहर से दीन, किन्तु अन्तर मे अदीन होते हैं, ३ कुछ पुरुप वाहर से अदीन, किन्तु अतर में दीन होते हैं, ४ कुछ पुरुप वाहर से भी अदीन और अतर मे भी अदीन होते हैं।

१९५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणपरिणते,

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीनपरिणत,

१९५ पुरुप चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप दीन और दीन रूप में परि-णत होते हैं, २ कुछ पुरुप दीन, किन्तु

दीणे णाममेगे अदीणपरिणते,	दीन नामैक अदीनपरिणत,	अदीन रूप मे परिणत होते हैं, ३ कुछ
अदीणे णाममेगे दीणपरिणते,	अदीन नामैक दीनपरिणत,	पुरुप अदीन, किन्तु दीन रूप मे परिणत
अदीणे णाममेगे अदीणपरिणते ।	अदीन नामैक अदीनपरिणत ।	होते हैं, ४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन रूप में परिणत होते हैं।
१९६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१९६ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
दीणे णाममेगे दीणरूवे,	दीन नामैक दीनरूप,	१ कुछ पुरुप दीन और दीन रूप वाले होते हं,
दीणे णाममेगे अदीणरूवे,	दीन नामैक अदीनरूप,	२ कुछ पुरुप दीन, किन्तु अदीन रूप वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे दीणरूवे,	अदीन नामैक दीनरूप,	३ कुछ पुरुप अदीन, किन्तु दीन रूप वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे अदीणरूवे ।	अदीन नामैक अदीनरूप ।	४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन रूप वाले होते है।
१९७ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—	चत्वारि पुरुजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१९७ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
दीणे णाममेगे दीणमणे,	दीन नामैक दीनमना,	१ कुछ पुरुप दीन और दीन मन वाले होते हैं,
दीणे णाममेगे अदीणमणे,	दीन नामैक अदीनमना,	२ कुछ पुरुप दीन, किन्तु अदीन मन वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे दीणमणे,	अदीन नामैक दीनमना,	३ कुछ पुरुप अदीन, किन्तु दीन मन वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे अदीणमणे ।	अदीन नामैक अदीनमना ।	४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन मन वाले होते हैं।
१९८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१९८ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
दीणे णाममेगे दीणसकप्पे,	दीन नामैक दीनसकल्प,	१ कुछ पुरुप दीन और दीन सकल्प वाले होते हैं,
दीणे णाममेगे अदीणसकप्पे,	दीन नामैक अदीनसकल्प,	२ कुछ पुरुप दीन, किन्तु अदीन सकल्प वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे दीणसकप्पे,	अदीन नामैक दीनसकल्प,	३ कुछ पुरुप अदीन, किन्तु दीन सकल्प वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे अदीणसकप्पे ।	अदीन नामैक अदीनसकल्प ।	४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन सकल्प वाले होते हैं।
१९९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१९९ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
दीणे णाममेगे दीणपण्णे,	दीन नामैक दीनप्रज्ञ,	१ कुछ पुरुप दीन और दीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
दीणे णाममेगे अदीणपण्णे,	दीन नामैक अदीनप्रज्ञ,	२ कुछ पुरुप दीन, किन्तु अदीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे दीणपण्णे,	अदीन नामैक दीनप्रज्ञ,	३ कुछ पुरुप अदीन, किन्तु दीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे अदीणपण्णे ।	अदीन नामैक अदीनप्रज्ञ ।	४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन प्रज्ञा वाले होते हैं।
२०० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	२०० पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
दीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,	दीन नामैक दीनदृष्टि,	१ कुछ पुरुप दीन और दीन दृष्टि वाले होते हैं,
दीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी,	दीन नामैक अदीनदृष्टि,	२ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन दृष्टि वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,	अदीन नामैक दीनदृष्टि,	३ कुछ पुरुप अदीन, किन्तु दीन दृष्टि वाले होते हैं,
अदीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी ।	अदीन नामैक अदीनदृष्टि ।	४ कुछ पुरुप अदीन और अदीन दृष्टि वाले होते हैं।

२०१ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
दीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे,
अदीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
अदीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन. नामैक दीनशीलाचार,
दीन नामैक अदीनशीलाचार,
अदीन नामैक दीनशीलाचार,
अदीन नामैक अदीनशीलाचार।

२०१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन शीलाचार वाले होते हैं।

२०२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणववहारे,
दीणे णाममेगे अदीणववहारे,
अदीणे णाममेगे दीणववहारे,
अदीणे णाममेगे अदीणववहारे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीनव्यवहार,
दीन नामैक अदीनव्यवहार,
अदीन नामैक दीनव्यवहार,
अदीन नामैक. अदीनव्यवहार।

२०२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन व्यवहार वाले होते हैं।

२०३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे,
•अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
अदीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन. नामैक दीनपराक्रम,
दीन नामैक अदीनपराक्रम,
अदीन नामैक दीनपराक्रम,
अदीन नामैक अदीनपराक्रम।

२०३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन पराक्रम वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन पराक्रम वाले होते हैं।

२०४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणवित्ती,
दीणे णाममेगे अदीणवित्ती,
अदीणे णाममेगे दीणवित्ती,
अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीनवृत्ति,
दीन नामैक अदीनवृत्ति,
अदीन नामैक दीनवृत्ति,
अदीन नामैक अदीनवृत्ति।

२०४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन वृत्ति वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन वृत्ति वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन वृत्ति वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन वृत्ति वाले होते हैं।

२०५ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दीणे णाममेगे दीणजाती,
दीणे णाममेगे अदीणजाती,
अदीणे णाममेगे दीणजाती,
अदीणे णाममेगे अदीणजाती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीनजाति,
दीन नामैक अदीनजाति,
अदीन नामैक दीनजाति,
अदीन नामैक अदीनजाति.।

२०५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन जाति वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन जाति वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन जाति वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन जाति वाले होते हैं।

२०६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणभासी, दीणे णाममेगे अदीणभासी, अदीणे णाममेगे दीणभासी, अदीणे णाममेगे अदीणभासी।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीन नामैक दीनभाषी, दीन नामैक अदीनभाषी, अदीन नामैक दीनभाषी, अदीन नामैक अदीनभाषी।	२०६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष दीन और दीन भाषी होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन भाषी होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन भाषी होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन भाषी होते हैं।
२०७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणोभासी, दीणे णाममेगे अदीणोभासी, अदीणे णाममेगे दीणोभासी, अदीणे णाममेगे अदीणोभासी।°	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीन नामैक दीनावभासी, दीन नामैक अदीनावभासी, अदीन नामैक दीनावभासी, अदीन नामैक अदीनावभासी।	२०७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष दीन और दीन अवभासी [दीन की तरह लगने वाले] होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन अवभासी होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन अवभासी होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन अवभासी होते हैं।
२०८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणसेवी, दीणे णाममेगे अदीणसेवी, अदीणे णाममेगे दीणसेवी, अदीणे णाममेगे अदीणसेवी।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीन नामैक दीनसेवी, दीन नामैक अदीनसेवी, अदीन नामैक दीनसेवी, अदीन नामैक अदीनसेवी।	२०८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष दीन और दीन सेवी होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन सेवी होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन सेवी होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन सेवी होते हैं।
२०९. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणपरियाए, दीणे णाममेगे अदीणपरियाए, अदीणे णाममेगे दीणपरियाए, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाए।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीन नामैक दीनपर्याय, दीन नामैक अदीनपर्याय, अदीन नामैक दीनपर्याय, अदीन नामैक अदीनपर्याय।	२०९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष दीन और दीन पर्याय वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन पर्याय वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन पर्याय वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन पर्याय वाले होते हैं।
२१० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणपरियाले, दीणे णाममेगे अदीणपरियाले, अदीणे णाममेगे दीणपरियाले, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाले।°	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीन नामैक दीनपरिवार, दीन नामैक अदीनपरिवार, अदीन नामैक दीनपरिवार, अदीन नामैक अदीनपरिवार।	२१० पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष दीन और दीन परिवार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन परिवार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन परिवार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन परिवार वाले होते हैं।

अज्ज-अणज्ज-पद

२११ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जे,
अज्जे णाममेगे अणज्जे,
अणज्जे णाममेगे अज्जे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जे।

२१२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए।

२१३ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
अज्जे णाममेगे अणज्जरूवे,
अणज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जरूवे।

२१४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जमणे,
अज्जे णाममेगे अणज्जमणे,
अणज्जे णाममेगे अज्जमणे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जमणे।

२१५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जसकप्पे,

आर्य-अनार्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्य,
आर्य नामैक अनार्य,
अनार्य नामैक आर्य,
अनार्य नामैक अनार्य।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यपरिणत,
आर्य नामैक अनार्यपरिणत,
अनार्य नामैक आर्यपरिणत,
अनार्य नामैक अनार्यपरिणत।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यरूप,
आर्य नामैक अनार्यरूप,
अनार्य नामैक आर्यरूप,
अनार्य नामैक अनार्यरूप।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यमना,
आर्य नामैक अनार्यमना,
अनार्य नामैक आर्यमना,
अनार्य नामैक अनार्यमना।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यसकल्प,

आर्य-अनार्य-पद

२११ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से भी आर्य और गुण से भी आर्य होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु गुण से अनार्य होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु गुण से आर्य होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से भी अनाय और गुण मे भी अनार्य होते हैं।

२१२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य रूप मे परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य रूप मे परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य रूप मे परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य रूप मे परिणत होते हैं।

२१३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आय और आर्य रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष ज्ञाति से अनार्य, किन्तु आर्य रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य रूप वाले होते हैं।

२१४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य मन वाले होते हैं।

२१५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य सकल्प वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति

अज्जे णाममेगे अणज्जसकप्पे, आर्य नामैक अनार्यसकल्प, से आर्य, किन्तु अनार्य सकल्प वाले होते हैं,
अणज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे, अनार्य नामैक आर्यसकल्प, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति
अणज्जे णाममेगे अणज्जसकप्पे। अनार्य नामैक अनार्यसकल्प। से अनार्य और अनार्य सकल्प वाले होते हैं।

२१६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,
अज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे,
अणज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यप्रज्ञ,
आर्य नामैक अनार्यप्रज्ञ,
अनार्य नामैक आर्यप्रज्ञ,
अनार्य नामैक अनार्यप्रज्ञ।

२१६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य प्रज्ञा वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य प्रज्ञा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य प्रज्ञा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य प्रज्ञा वाले होते हैं।

२१७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
अज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी,
अणज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यदृष्टि,
आर्य नामैक अनार्यदृष्टि,
अनार्य नामैक आर्यदृष्टि,
अनार्य नामैक अनार्यदृष्टि,।

२१७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य दृष्टि वाले होते हैं।

२१८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
अज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे,
अणज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यशीलाचार,
आर्य नामैक अनार्यशीलाचार,
अनार्य नामैक आर्यशीलाचार,
अनार्य नामैक अनार्यशीलाचार।

२१८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य शीलाचार वाले होते हैं।

२१९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
अज्जे णाममेगे अणज्जववहारे,
अणज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यव्यवहार,
आर्य नामैक अनार्यव्यवहार,
अनार्य नामैक आर्यव्यवहार,
अनार्य नामैक अनार्यव्यवहार।

२१९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य व्यवहार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य व्यवहार वाले होते हैं।

२२० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपरक्कम्मे,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कम्मे,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरक्कम्मे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कम्मे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यपराक्रम,
आर्य नामैक अनार्यपराक्रम,
अनार्य नामैक आर्यपराक्रम,
अनार्य नामैक अनार्यपराक्रम ।

२२० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य पराक्रम वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य पराक्रम वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पराक्रम वाले होते हैं।

२२१ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
अज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती,
अणज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
अणज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यवृत्ति,
आर्य नामैक अनार्यवृत्ति,
अनार्य नामैक आर्यवृत्ति,
अनार्य नामैक अनार्यवृत्ति ।

२२१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य वृत्ति वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य वृत्ति वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य वृत्ति वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य वृत्ति वाले होते हैं।

२२२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जजाती,
अज्जे णाममेगे अणज्जजाती,
अणज्जे णाममेगे अज्जजाती,
अणज्जे णाममेगे अणज्जजाती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यजाति,
आर्य नामैक अनार्यजाति,
अनार्य नामैक आर्यजाति,
अनार्य नामैक अनार्यजाति ।

२२२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य जाति वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य जाति वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य जाति वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य जाति वाले होते हैं।

२२३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जभासी,
अज्जे णाममेगे अणज्जभासी,
अणज्जे णाममेगे अज्जभासी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जभासी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यभाषी,
आर्य नामैक अनार्यभाषी,
अनार्य नामैक आर्यभाषी,
अनार्य नामैक अनार्यभाषी।

२२३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य भाषी होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य भाषी होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य भाषी होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य भासी होते हैं।

२२४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जओभासी,
अज्जे णाममेगे अणज्जओभासी,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक आर्यावभाषी,
आर्य नामैक अनार्यावभाषी,

२२४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति में आर्य और आर्य-अवभाषी [आर्य की तरह लगने वाले] होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य अवभासी होते हैं, ३ कुछ पुरुष

अणज्जे णाममेगे अज्जओभासी, अणज्जे णाममेगे अणज्जओभासी।	अनार्य नामैक आर्यावभाषी, अनार्य नामैक अनार्यावभाषी।	जाति से अनार्य, किन्तु आर्य अवभासी होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य-अवभासी होते हैं।
२२५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अज्जे णाममेगे अणज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अणज्जसेवी।	चत्वारि पुरुजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आर्य नामैक आर्यसेवी, आर्य नामैक अनार्यसेवी, अनार्य नामैक आर्यसेवी, अनार्य नामैक अनार्यसेवी।	२२५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य-सेवी होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य-सेवी होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य-सेवी होते हैं, ४ कुछ तुरुप जाति से अनार्य और अनार्य-सेवी होते हैं।
२२६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आर्य नामैक आर्यपर्याय, आर्य नामैक अनार्यपर्याय, अनार्य नामैक आर्यपर्याय, अनार्य नामैक अनार्यपर्याय।	२२६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य पर्याय वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आय, किन्तु अनार्य पर्याय वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य पर्याय वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पर्याय वाले होते हैं।
२२७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले।	चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आर्य नामैक आर्यपरिवार, आर्य नामैक अनार्यपरिवार, अनार्य नामैक आर्यपरिवार, अनार्य नामैक अनार्यपरिवार।	२२७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य परिवार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य परिवार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य परिवार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य परिवार वाले होते हैं।
२२८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अज्जे णाममेगे अज्जभावे, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे।	चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आर्य नामैक आर्यभाव, आर्य नामैक अनार्यभाव, अनार्य नामैक आर्यभाव, अनार्य नामैक अनार्यभाव।	२२८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष जाति से आर्य और भाव से भी आर्य होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु भाव से अनार्य होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु भाव से आर्य होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति मे अनार्य और भाव से भी अनार्य होते है।

जाति-पदं

२२९ चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे, कुलसपण्णे, वलसपण्णे, रूवसपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे, °कुलसपण्णे, वलसपण्णे,° रूवसपण्णे।

२३० चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाम एगे, णो कुलसपण्णे; कुलसंपण्णे णाम एगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, कुलसंपण्णेवि, एगे णो जाति सपण्णे, णो कुलसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, कुलसपण्णेवि।
एगे णो जातिसपण्णे, णो कुलसपण्णे।

२३१ चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाम एगे, णो वलसंपण्णे, वलसपण्णे णामं एगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, वलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो वलसपण्णे।

जाति-पदम्

चत्वार ऋपभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, वलसम्पन्न, रूपसम्पन्न।
एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, वलसम्पन्न, रूपसम्पन्न।

चत्वार ऋपभा प्रज्ञप्ता तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, कुलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो कुलसम्पन्न।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, कुलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिमम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो कुलसम्पन्न।

चत्वार ऋपभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, वलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।

जाति-पद

२२९ वृपभ चार प्रकार के होते हैं—
१ जाति-सम्पन्न, २ कुल-सम्पन्न, ३ वल-सम्पन्न, ४ रूप-सम्पन्न।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—१ जाति-सम्पन्न, २ कुल-सम्पन्न, ३ वल-सम्पन्न, ४ रूप-सम्पन्न।

२३० वृपभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ वृपभ कुल सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ वृपभ न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुप कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।

२३१ वृपभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न होते है, किन्तु वल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ वृपभ वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ वृपभ न जाति-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसंपण्णे णाम एगे, णो वलसपण्णे, वलसपण्णे णामं एगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, वलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो वलसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, वलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते है, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

२३२ चत्तारि उसभा, पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसपण्णे णाम एगे, णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

चत्वार ऋपभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न।

२३२ वृपभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ वृपभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ वृपभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ वृपभ न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाम एगे, णो रूवसपण्णे, रूवसंपण्णे णाम एगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

कुल-पदं

कुल-पदम्

कुल-पद

२३३ चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णामं एगे, णो वलसंपण्णे, वलसपण्णे णामं एगे, णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि, वलसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे, णो वलसपण्णे।

चत्वार ऋपभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, वलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, एक कुलसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि, एक नो कुलसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।

२३३ वृपभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृपभ कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ वृपभ वल-सम्पन्न होते हैं किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ वृपभ कुल-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ वृपभ न कुल-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाम एगे, णो वल-संपण्णे, वलसपण्णे णाम एगे, णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि, वलसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे, णो वलसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, वलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, एक कुलसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि, एक नो कुलसम्पन्न, नो वलसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

२३४ चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसपण्णे णाम एगे, णो रूव-सपण्णे, रूवसपण्णे णामं एगे, णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

चत्वार ऋषभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, एक कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो कुलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

२३४ वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृषभ कुल सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ वृषभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ वृषभ न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाम एगे, णो रूव-सपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे, णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णोवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, एक कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो कुलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

वल-पद

वल-पदम्

वल-पद

२३५ चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—
वलसपण्णे णाम एगे, णो रूव-सपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे, णो वलसपण्णे, एगे वलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो वलसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

चत्वार ऋषभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, एक वलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो वलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

२३५. वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृषभ वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ वृषभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ वृषभ वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ वृषभ न वल-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वलसपण्णे णाम एगे, णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे, णो वलसपण्णे, एगे वलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि, एगे णो वलसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, एक वलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो वलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

हत्थि-पदं

हस्ति-पदम्

हस्ति-पद

२३६. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—
भद्दे, मदे मिए, सकिण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
भद्दे, मदे, मिए, सकिण्णे।

चत्वार हस्तिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भद्र, मन्द, मृग, सकीर्ण ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भद्र, मन्द, मृग, सकीर्ण ।

२३६ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१. भद्र—धैर्य आदि गुणयुक्त, २ मद—धैर्य आदि गुणो की मदता वाला,
३ मृग—भीरु, ४ सकीर्ण—जिसमे स्वभाव की विविधता हो।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ भद्र, २ मद ३ मृग, ४ सकीर्ण।

२३७ चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—
भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
भद्दे णाममेगे मदमणे,
भद्दे णाममेगे मियमणे,
भद्दे णाममेगे सकिण्णमणे।

चत्वार हस्तिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भद्र नामैक भद्रमना,
भद्र नामैक मन्दमना,
भद्र नामैक मृगमना,
भद्र नामैक सकीर्णमना ।

२३७ हाथी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ हाथी भद्र होते हैं और उनका मन भी भद्र होता है, २ कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
भद्दे णाममेगे मदमणे,
भद्दे णाममेगे मियमणे,
भद्दे णाममेगे सकिण्णमणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भद्र नामैक भद्रमना,
भद्र नामैक मन्दमना,
भद्र नामैक मृगमना,
भद्र नामैक सकीर्णमना ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष भद्र होने हैं और उनका मन भी भद्र होता है, २ कुछ पुरुष भद्र होने हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

२३८ चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
मदे णाममेगे भद्दमणे,

चत्वार हस्तिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मन्द नामैक भद्रमना,

२३८ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ हाथी मद होते हैं, किन्तु उनका

मदे णाममेगे मदमणे,
मदे णाममेगे मियमणे,
मदे णाममेगे सकिण्णमणे।

मन्द नामैक मन्दमना,
मन्द नामैक मृगमना,
मन्द नामैक सकीर्णमना।

मन भद्र होता है, २ कुछ हाथी मद होते हैं और उनका मन भी मद होता है, ३ कुछ हाथी मद होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ हाथी मद होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
मदे णाममेगे भद्दमणे,
•मदे णाममेगे मंदमणे,
मदे णाममेगे मियमणे,
मदे णाममेगे सकिण्णमणे।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मन्द नामैक भद्रमना,
मन्द नामैक मन्दमना,
मन्द नामैक मृगमना,
मन्द नामैक सकीर्णमना।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष मद होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ पुरुष मद होते हैं और उनका मन भी मद होता है, ३ कुछ पुरुष मद होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ पुरुष मद होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

२३९. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—
मिए णाममेगे भद्दमणे,
मिए णाममेगे मदमणे,
मिए णाममेगे मियमणे,
मिए णाममेगे सकिण्णमणे।

चत्वार हस्तिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मृग नामैक भद्रमना,
मृग नामैक मन्दमना,
मृग नामैक मृगमना,
मृग नामैक मकीर्णमना।

२३९ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ हाथी मृग होते हैं और उनका मन भी मृग होता है, ४ कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
मिए णाममेगे भद्दमणे,
•मिए णाममेगे मदमणे,
मिए णाममेगे मियमणे,
मिए णाममेगे सकिण्णमणे।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मृग नामैक भद्रमना,
मृग नामैक मन्दमना,
मृग नामैक मृगमना,
मृग नामैक मकीर्णमना।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ पुरुष मृग होते है और उनका मन भी मृग होता है, ४ कुछ पुरुष मृग होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

२४०. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—
सकिण्णे णाममेगे भद्दमणे,
सकिण्णे णाममेगे मदमणे,
सकिण्णे णाममेगे मियमणे,
सकिण्णे णाममेगे सकिण्णमणे।

चत्वार हस्तिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सकीर्ण नामैक भद्रमना,
सकीर्ण नामैक मन्दमना,
मकीर्ण नामैक मृगमना,
मकीर्ण नामैक सकीर्णमना।

२४० हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं और उनका मन भी सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सकिण्णे णाममेगे भद्दमणे,
°सकिण्णे णाममेगे मदमणे,
सकिण्णे णाममेगे मियमणे,°
सकिण्णे णाममेगे सकिण्णमणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सकीर्ण नामैक भद्रमना,
सकीर्ण नामैक मन्दमना,
सकीर्ण नामैक मृगमना,
सकीर्ण नामैक सकीर्णमना।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३ कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं और उनका मन भी सकीर्ण होता है।

सगहणी-गाहा

१ मधुगुलिय-पिंगलक्खो,
अणुपुव्व-सुजाय-दीहणगूल्लो।
पुरओ उदग्गधीरो,
सव्वगसमाधितो भद्दो ॥
२ चल-वहल-विसम-चम्मो,
थूलसिरो थूलएण पेएण।
थूलणह-दत-वालो,
हरिपिंगल-लोयणो मदो ॥
३ तणुओ तणुयग्गीवो,
तणुयतओ तणुयदत-णह-वालो।
भीरु तत्थुव्विग्गो,
तासी य भवे मिए णाम ॥
४ एतेसिं हत्थीण थोवा थोव,
तु जो अणुहरति हत्थी।
रूवेण व सीलेण व,
सो सकिण्णो त्ति णायव्वो ॥
५. भद्दो मज्जइ सरए,
मदो उण मज्जते वसतमि।
मिउ मज्जति हेमते,
सकिण्णो सव्वकालंमि ॥

सग्रहणी-गाथा

१ मधुगुटिक-पिङ्गलाक्ष,
अनुपूर्व-सुजात्-दीर्घलाङ्गल।
पुरत उदग्रधीर,
सर्वाङ्गसमाहित भद्र ॥
२ चल-वहल-विषम-चर्मा,
स्थूलशिरा स्थूलकेन पेचेन।
स्थूलनख-दन्त-वाल,
हरिपिङ्गल-लोचन मन्द ॥
३ तनुक तनुकग्रीव,
तनुकत्वक् तनुकदन्त-नख-वाल।
भीरु त्रस्तोद्विग्न,
त्रासी च भवेत् मृग नाम ॥
४ एतेषा हस्तिना स्तोक स्तोक,
तु य अनुहरति हस्ती।
रूपेण वा शीलेन वा,
स सकीर्ण इति ज्ञातव्य ॥
५. भद्र माद्यति शरदि,
मन्द पुन माद्यति वसन्ते।
मृग माद्यति हेमन्ते,
सकीर्ण सर्वकाले ॥

संग्रहणी-गाथा

जिसकी आखें मधु-गुटिका के समान भूरापन लिए हुए लाल होती हैं, जो उचित काल-मर्यादा से उत्पन्न हुआ है, जिसकी पूछ लम्बी है, जिसका अगला भाग उन्नत है, जो धीर है, जिसके सब अग प्रमाण और लक्षण से उपेत होने के कारण समाहित [सुव्यवस्थित] हैं, उस हाथी को भद्र कहा जाता है।
जिसकी चमडी शिथिल, स्थूल और वलियो [रेखाओं] से युक्त होता है, जिसका सिर और पुच्छ-मूल स्थूल होता है, जिसके नख, दात और केश स्थूल होते हैं तथा जिसकी आखें सिंह की तरह भूरापन लिए हुए पीली होती है, उस हाथी को मद कहा जाता है।
जिसका शरीर, गर्दन, चमडी, नख, दात और केश पतले होते हैं, जो भीरु और त्रस्त [घबराया हुआ] और उद्विग्न होता है तथा जो दूसरो को त्रास देता है उस हाथी को मृग कहा जाता है।
जिसमें उक्त हस्तियो के रूप और शील के लक्षण मिश्रित रूप मे मिलते हैं उस हाथी को सकीर्ण कहा जाता है।
भद्र के शरद् ऋतु मे, मद के वसत ऋतु में, मृग के हेमन्त ऋतु मे और सकीण के सब ऋतुओ मे मद झरता है।

विकहा-पदं

२४१. चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा।

२४२ इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थीण जाइकहा, इत्थीण कुलकहा, इत्थीण रूवकहा, इत्थीण णेवत्थकहा।

२४३ भत्तकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—भत्तस्स आवावकहा, भत्तस्स णिव्वावकहा, भत्तस्स आरंभकहा, भत्तस्स णिट्ठाणकहा।

२४४ देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—देसविहिकहा, देसविकप्पकहा, देसच्छंदकहा, देसणेवत्थकहा।

२४५. रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—रण्णो अतियाणकहा, रण्णो णिज्जाणकहा,

विकथा-पदम्

चतस्र विकथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा।

स्त्रीकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रीणा जातिकथा, स्त्रीणा कुलकथा, स्त्रीणा रूपकथा, स्त्रीणा नेपथ्यकथा।

भक्तकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भक्तस्य आवापकथा, भक्तस्य निर्वापकथा, भक्तस्य आरभकथा, भक्तस्य निष्ठानकथा।

देशकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देशविधिकथा, देशविकल्पकथा, देशच्छन्दकथा, देशनेपथ्यकथा।

राजकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—राज्ञ अतियानकथा, राज्ञ निर्याणकथा,

विकथा-पद

२४१ विकथा चार प्रकार की होती है—
१ स्त्रीकथा, २ देशकथा, ३ भक्तकथा, ४ राजकथा।[१]

२४२ स्त्रीकथा के चार प्रकार हैं—
१ स्त्रियो की जाति की कथा,
२ स्त्रियो के कुल की कथा,
३ स्त्रियो के रूप की कथा,
४ स्त्रियों के वेशभूषा की कथा।[२]

२४३ भक्तकथा के चार प्रकार हैं—
१ आवापकथा—रसोई की सामग्री—घृत, साग आदि की चर्चा करना, २ निर्वापकथा—पक्व या अपक्व—अन्न व व्यञ्जन आदि की चर्चा करना, ३ आरभकथा—इतनी सामग्री और इतना धन आवश्यक होगा—इस प्रकार की चर्चा करना, ४ निष्ठानकथा—इतनी सामग्री और इतना धन लगा—इस प्रकार की चर्चा करना।[३]

२४४ देशकथा के चार प्रकार हैं—
१ देशविधिकथा—विभिन्न देशो मे प्रचलित भोजन आदि बनाने के प्रकारो या कानूनो की कथा करना, २ देशविकल्पकथा—विभिन्न देशो मे अनाज की उपज, परकोटे, कुए आदि की कथा करना, ३ देशच्छदकथा—विभिन्न देशो के विवाह आदि से सबन्धित रीति-रिवाजो की कथा करना, ४ देशनेपथ्यकथा—विभिन्न देशो के पहनावे की कथा करना।[४]

२४५ राजकथा के चार प्रकार हैं—
१ राजा के अतियान—नगर आदि के प्रवेश की कथा करना, २ राजा के

रण्णो वलवाहणकहा,
रण्णो कोसकोट्ठागारकहा ।

राज्ञ वलवाहनकथा,
राज्ञ कोशकोष्ठागारकथा ।

निर्याण—निष्क्रमण की कथा करना, ३ राजा की सेना और वाहनों की कथा करना, ४ राजा के कोश और कोष्ठागार—अनाज के कोठों की कथा करना ।[४४]

कहा-पद

२४६ चउव्विहा कहा पण्णत्ता, त जहा—
अक्खेवणी, विक्खेवणी,
सवेयणी, णिव्वेदणी ।

कथा-पदम्

चतुर्विधा कथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेजनी,
निर्वेदनी ।

कथा-पद

२४६ कथा चार प्रकार की होती है—
१ आक्षेपणी—ज्ञान और चारित्र के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने वाली कथा, २ विक्षेपणी—सन्मार्ग की स्थापना करने वाली कथा, ३ सवेजनी—जीवन की नश्वरता और दु खबहुलता तथा शरीर की अशुचिता दिखाकर वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा, ४ निर्वेदनी—कृत कर्मों के शुभाशुभ फल दिखला कर ससार के प्रति उदासीन बनाने वाली कथा ।[४८]

२४७ अक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता,
त जहा—
आयारअक्खेवणी,
ववहारअक्खेवणी,
पण्णत्तिअक्खेवणी,
दिट्ठिवातअक्खेवणी ।

आक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—
आचाराक्षेपणी, व्यवहाराक्षेपणी,
प्रज्ञप्त्याक्षेपणी, दृष्टिवादाक्षेपणी ।

२४७ आक्षेपणी कथा के चार प्रकार हैं—
१ आचारआक्षेपणी—जिसमे आचार का निरूपण हो, २ व्यवहारआक्षेपणी—जिसमे व्यवहार-प्रायश्चित्त का निरूपण है, ३ प्रज्ञप्तिआक्षेपणी—जिसमे सशयग्रस्त श्रोता को समझाने के लिए निरूपण हो, ४ दृष्टिपातआक्षेपणी—जिसमें श्रोता की योग्यता के अनुसार विविध नयदृष्टियो से तत्त्व-निरूपण हो ।[४९]

२४८. विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता,
त जहा—ससमय कहेइ,
ससमय कहित्ता परसमय कहेइ,
परसमय कहेत्ता ससमय ठावइता
भवति,
सम्मावय कहेइ, सम्मावाय कहेत्ता
मिच्छावाय कहेइ,
मिच्छवाय कहेत्ता सम्मावाय
ठावइता भवति ।

विक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—स्वसमय कथयति,
स्वसमयकथयित्वा परसमय कथयति,
परसमय कथयित्वा स्वसमय स्थापयिता
भवति,
सम्यग्वाद कथयति, सम्यग्वाद कथयित्वा मिथ्यावाद कथयति,
मिथ्यावाद कथयित्वा सम्यग्वाद
स्थापयिता भवति ।

२४८ विक्षेपणीकथा के चार प्रकार हैं—
१ एक सम्यक्दृष्टि व्यक्ति—अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर दूसरो के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, २ दूसरो के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर अपने सिद्धान्त की स्थापना करता है, ३ सम्यक्वाद का प्रतिपादन कर फिर मिथ्यावाद का प्रतिपादन करता है, ४ मिथ्यावाद का प्रतिपादन कर फिर सम्यग्वाद की स्थापना करता है ।[५०]

२४९. सवेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—
इहलोगसवेयणी, परलोगसवेयणी, आतसरीरसवेयणी, परसरीरसवेयणी।

सवेजनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकसवेजनी, परलोकसवेजनी, आत्मशरीरसवेजनी, परशरीरसवेजनी।

२४९ सवेजनी कथा के चार प्रकार है—
१ इहलोकसवेजनी—मनुष्य-जीवन की असारता दिखाने वाली कथा, २ परलोकसवेजनी—देव, तिर्यञ्च आदि के जन्मो की मोहमयता व दु खमयता बताने वाली कथा, ३ आत्मशरीरसंवेजनी—अपने शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा, ४ परशरीरसवेजनी—दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा।[५१]

२५०. णिव्वेदणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—
१. इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति,
२ इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति,
३. परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति,
४ परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति।
१ इहलोगे सुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति,
२ इहलोगे सुच्चिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति,
३ परलोगे सुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति,
४ परलोगे सुच्चिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति।[०]

निर्वेदनीकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दु खफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
२ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दु खफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
३. परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दु खफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
४ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दु खफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति।
१ इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
२. इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
३ परलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
४ परलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति।

२५० निर्वेदनी कथा के चार प्रकार हैं—
१ इहलोक मे दुश्चीर्ण कर्म इसी लोक मे दु खमय फल देने वाले होते है, २ इहलोक मे दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे दु खमय फल देने वाले होते हैं, ३ परलोक में दुश्चीर्ण कर्म इहलोक मे दु खमय फल देने वाले होते हैं, ४ परलोक मे दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे ही दु:खमय फल देने वाले होते हैं।

१ इहलोक मे सुचीर्ण कर्म इसी लोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं, २ इहलोक मे सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं, ३ परलोक मे सुचीर्ण कर्म इहलोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं, ४ परलोक मे सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं।[५२]

किस-दढ-पद

२५१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
किसे णाममेगे किसे,
किसे णाममेगे दढे,
दढे णाममेगे किसे,
दढे णाममेगे दढे।

कृश-दृढ-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृश नामैक कृश, कृश नामैक दृढ,
दृढ नामैक कृश, दृढ नामैक दृढ।

कृश-दृढ-पद

२५१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से भी कृश होते हैं और मनोबल से भी कृश होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से कृश होते हैं, किन्तु मनोबल से दृढ होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से दृढ होते हैं, किन्तु मनोबल से कृश होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से भी दृढ होते हैं और मनोबल से भी दृढ होते हैं।

२५२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
किसे णाममेगे किससरीरे,
किसे णाममेगे दढसरीरे,
दढे णाममेगे किससरीरे,
दढे णाममेगे दढसरीरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृश नामैक कृशशरीर,
कृश नामैक दृढशरीर,
दृढ नामैक कृशशरीर,
दृढ नामैक दृढशरीर।

२५२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष भावना से कृश होते हैं और शरीर से भी कृश होते हैं, २ कुछ पुरुष भावना से कृश होते हैं, किन्तु शरीर से दृढ होते हैं, ३ कुछ पुरुष भावना से दृढ होते हैं, किन्तु शरीर से कृश होते हैं, ४ कुछ पुरुष भावना से भी दृढ होते हैं और शरीर से भी दृढ होते हैं।

२५३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदसणे समुप्पज्जति, णो दढसरीरस्स,
दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदसणे समुप्पज्जति,
णो किससरीरस्स,
एगस्स किससरीरस्सवि णाणदसणे समुप्पज्जति, दढसरीरस्सवि,
एगस्स णो किससरीरस्स णाणदसणे समुप्पज्जति, णो दढसरीरस्स।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृशशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शन समुत्पद्यते, नो दृढशरीरस्य,
दृढशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शन समुत्पद्यते, नो कृशशरीरस्य,
एकस्य कृशशरीरस्यापि ज्ञानदर्शन समुत्पद्यते, दृढशरीरस्यापि,
एकस्य नो कृशशरीरस्य ज्ञानदर्शन समुत्पद्यते, नो दृढशरीरस्य।

२५३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कृश शरीर वाले व्यक्तियो के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ शरीर वालो के नहीं होते, २ दृढ शरीर वाले व्यक्तियो के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु कृश शरीर वालो के नहीं होते
३ कृश शरीर वाले व्यक्तियो के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ शरीर वालो के भी होते हैं, ४ कृश शरीर वाले व्यक्तियो के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नही होते और दृढ शरीर वालो के भी नहीं होते।[1]

अतिसेस-णाण-दंसण-पद

२५४ चउहि ठाणेहि णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अस्सि समयसि

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पदम्

चतुर्भि स्थानकै निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अस्मिन् समये अतिशेष

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पद

२५४ चार कारणो से निग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के अतिशायी ज्ञान और दर्शन तत्काल

अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामेवि ण समुप्पज्जेज्जा, त जहा—

ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाममपि न समुत्पद्येत, तद्यथा—

उत्पन्न होते-होते रुक जाते हैं—

१ अभिक्खण-अभिक्खण इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं कहेत्ता भवति,

१ अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण स्त्रीकथा भक्तकथा देशकथा राजकथा कथयिता भवति,

१ जो वार-वार स्त्री-कथा, देश-कथा, भक्त-कथा और राज-कथा करते हैं,

२ विवेगेण विउस्सग्गेण णो सम्ममप्पाण भावित्ता भवति,

२ विवेकेन व्युत्सर्गेण नो सम्यक्-आत्मान भावयिता भवति,

२ जो विवेक[53] और व्युत्सर्ग[54] के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित नहीं करते,

३ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि णो धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति,

३ पूर्वरात्रापरात्रकालसमये नो धर्म-जागरिका जागरिता भवति,

३ जो रात के पहले और पिछले भाग में धर्म जागरण नही करते,

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवति—

४ स्पर्शुकस्य एपणीयस्य उञ्छस्य सामुदानिकस्य नो सम्यग् गवेपयिता भवति—

४ जो स्पर्शुक [वाछनीय] एषणीय और उञ्छ[55] सामुदानिक[56] भैक्ष की सम्यक् प्रकार से गवेषणा नहीं करते—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सि समयसि अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामेवि° णो समुप्पज्जेज्जा।

इति एतै चतुर्भि स्थानै निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अस्मिन् समये अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाममपि नो समुत्पद्येत।

इन चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के अतिशायी ज्ञान और दर्शन तत्काल उत्पन्न होते-होते रुक जाते हैं।

२५५ चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा [अस्सि समयसि?] अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

चतुर्भि स्थानै निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा (अस्मिन् समये?) अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाम समुत्पद्येत, तद्यथा—

२५५ चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के तत्काल उत्पन्न होने वाले अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो जाते हैं—

१ इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहेत्ता भवति,

१ स्त्रीकथा भक्तकथा देशकथा राजकथा नो कथयिता भवति,

१ जो स्त्रीकथा, देशकथा, भक्तकथा और राजकथा नही करते,

२ विवेगेण विउस्सग्गेण सम्ममप्पाण भावेत्ता भवति,

२ विवेकेन व्युत्सर्गेण सम्यग्आत्मान भावयिता भवति,

२ जो विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करते हैं,

३ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति,

३ पूर्वरात्रापरात्रकालसमये धर्मजागरिका जागरिता भवति,

३ जो रात के पहले और पिछले भाग में धर्म जागरण करते हैं,

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उछस्स सामुदाणियस्स सम्मं गवेसित्ता भवति—

४ स्पर्शुकस्य एपणीयस्य उञ्छस्य सामुदानिकस्य सम्यग् गवेपयिता भवति—

४ जो स्पर्शुक, एपणीय और उञ्छ सामुदानिक भैक्ष की सम्यक् प्रकार से गवेषणा करते हैं—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा° [अस्सि समयसि?] अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामे° समुप्पज्जेज्जा।

इति एतै चतुर्भि स्थानै निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा (अस्मिन् समये?) अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाम समुत्पद्येत।

इन चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के तत्काल उत्पन्न होने वाले अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो जाते हैं।

सज्झाय-पद

२५६ णो कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चर्उहिं महापाडिवएहि सज्झाय करेत्तए, तं जहा— आसाढपाडिवए, इदमहपाडिवए, कत्तियपाडिवए, सुगिम्हगपाडिवए।

स्वाध्याय-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा चतसृपु महाप्रतिपत्सु स्वाध्याय कर्त्तु, तद्यथा— आपाढप्रतिपदि, इन्द्रमह प्रतिपदि, कात्तिकप्रतिपदि, सुग्रीष्मकप्रतिपदि।

स्वाध्याय-पद

२५६ चार महाप्रतिपदाओं—पक्ष की प्रथम तिथियों मे निग्रन्थ और निग्रन्थियों को आगम का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए—
१ आपाढप्रतिपदा—आषाढी पूर्णिमा के बाद की तिथि, श्रावण का प्रथम दिन,
२ इन्द्रमहप्रतिपदा—आश्विन पूर्णिमा के बाद की तिथि, कार्तिक का प्रथम दिन,
३ कार्तिक प्रतिपदा—कार्तिक पूर्णिमा के बाद की तिथि, मृगसर का प्रथम दिन,
४ सुग्रीष्म प्रतिपदा—चैत्री पूर्णिमा के बाद की तिथि, वैशाख का प्रथम दिन।[४]

२५७ णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चर्उहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा— पढमाए पच्छिमाए मज्झण्हे अड्ढरत्ते।

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा चतसृपु सध्यासु स्वाध्याय कर्त्तु, तद्यथा— प्रथमाया पश्चिमाया मध्याह्ने अर्धरात्रे।

२५७ निग्रन्थ और निग्रन्थियों को चार सध्याओं मे आगम का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए—
१ प्रथम सन्ध्या—सूर्योदय से पूर्व,
२ पश्चिम सन्ध्या—सूर्यास्त के पश्चात्,
३ मध्यान्ह सन्ध्या, ४ अर्धरात्री सन्ध्या।

२५८ कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चउक्काल सज्झाय करेत्तए, तं जहा— पुव्वण्हे अवरण्हे पओसे पच्चूसे।

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा चतुष्काल स्वाध्याय कर्त्तु, तद्यथा— पूर्वाह्णे, अपराह्णे, प्रदोपे, प्रत्यूषे।

२५८ निर्ग्रन्थ और निग्रन्थियों को चार कालों मे आगम का स्वाध्याय करना चाहिए—
१ पूर्वाह्न मे—दिन के प्रथम प्रहर मे,
२ अपराह्न मे—दिन के अन्तिम प्रहर मे,
३ प्रदोप मे—रात्री के प्रथम प्रहर मे,
४ प्रत्यूष मे—रात्रि के अन्तिम प्रहर मे।[५]

लोगट्ठिति-पद

२५९. चउव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—आगासपतिट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदधी, उदधिपतिट्ठिया पुढवी, पुढविपतिट्ठिया तसा थावरा पाणा।

लोकस्थिति-पदम्

चतुर्विधा लोकस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आकाशप्रतिष्ठितो वात, वातप्रतिष्ठित उदधि, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी, पृथिवीप्रतिष्ठिता त्रसा स्थावरा प्राणा।

लोकस्थिति-पद

२५९ लोकस्थिति चार प्रकार की है—
१ वायु आकाश पर प्रतिष्ठित है,
२ उदधि वायु पर प्रतिष्ठित है,
३ पृथ्वी समुद्र पर प्रतिष्ठित है,
४ त्रस और स्थावर प्राणी पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हैं।

पुरिस-भेद-पदं

२६० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तहे णाममेगे, णोतहे णाममेगे, सोवत्थी णाममेगे, पधाणे णाममेगे।

पुरुष-भेद-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तथा नामैकः, नोतथो नामैकः, सौवस्तिको नामैकः, प्रधानो नामैकः।

पुरुष-भेद-पद

२६० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ तथा—आदेश को मानकर चलने वाला, २ नो तथ—अपनी स्वतन्त्र भावना से चलने वाला, ३ सौवस्तिक—मंगल पाठक, ४ प्रधान—स्वामी।

आय-पर-पदं

२६१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयतकरे णाममेगे, णो परतकरे, परतकरे णाममेगे, णो आयतकरे, एगे आयंतकरेवि, परतकरेवि, एगे णो आयतकरे, णो परतकरे।

आत्म-पर-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मान्तकरः नामैकः, नो परान्तकरः, परान्तकरः नामैकः, नो आत्मान्तकरः, एकः आत्मान्तकरोऽपि, परान्तकरोऽपि, एकः नो आत्मान्तकरः, नो परान्तकरः।

आत्म-पर-पद

२६१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपना अंत करते हैं, किन्तु दूसरे का अंत नहीं करते, २ कुछ पुरुष दूसरे का अंत करते हैं, किन्तु अपना अंत नहीं करते, ३ कुछ पुरुष अपना भी अंत करते हैं और दूसरे का भी अंत करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपना अंत करते हैं और न किसी दूसरे का अंत करते हैं।

२६२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयतमे णाममेगे, णो परतमे, परतमे णाममेगे, णो आयतमे, एगे आयतमेवि, परंतमेवि, एगे णो आयंतमे, णो परतमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मतमः नामैकः, नो परतमः, परतमः नामैकः, नो आत्मतमः, एकः आत्मतमोऽपि, परतमोऽपि, एकः नो आत्मतमः, नो परतमः।

२६२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपने-आप को खिन्न करते हैं किन्तु दूसरे को खिन्न नहीं करते, २ कुछ पुरुष दूसरे को खिन्न करते हैं, किन्तु अपने-आप को खिन्न नहीं करते, ३ कुछ पुरुष अपने-आप को भी खिन्न करते हैं और दूसरे को भी खिन्न करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने को खिन्न करते हैं और न किसी दूसरे को खिन्न करते हैं।

२६३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयंदमे णाममेगे, णो परदमे, परदमे णाममेगे, णो आयदमे, एगे आयदमेवि, परदमेवि, एगे णो आयदमे, णो परदमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मदमो नामैकः, नो परदमः, परदमो नामैकः, नो आत्मदमः, एकः आत्मदमोऽपि, परदमोऽपि, एकः नो आत्मदमः, नो परदमः।

२६३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपना दमन करते हैं, किन्तु दूसरे का दमन नहीं करते, २ कुछ पुरुष दूसरे का दमन करते हैं, किन्तु अपना दमन नहीं करते, ३ कुछ पुरुष अपना भी दमन करते हैं और दूसरे का भी दमन करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपना दमन करते हैं और न किसी दूसरे का दमन करते हैं।

गरहा-पदं

२६४ चउव्विहा गरहा पण्णत्ता, त जहा—
उवसपज्जामित्तेगा गरहा,
वितिगिच्छामित्तेगा गरहा,
जंकिंचिमिच्छामित्तेगा गरहा,
एवपि पण्णत्तेगा गरहा।

गर्हा-पदम्

चतुर्विधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उवसपद्ये इत्येका गर्हा,
विचिकित्सामीत्येका गर्हा,
यत्किञ्चिदिच्छामीत्येका गर्हा,
एवमपि प्रज्ञप्तैका गर्हा।

गर्हा-पद

२६४ गर्हा चार प्रकार की होती है—
१ अपने दोष का निवेदन करने के लिए गुरु के पास जाऊ, इस प्रकार का विचार करना, २ अपने दोषो का प्रतिकार करू उस प्रकार का विचार करना, ३ जो कुछ दोषाचरण किया वह मेरा कार्य मिथ्या हो—निष्फल हो, इस प्रकार कहना, ४ अपने दोष की गर्हा करने से भी उनकी शुद्धि होती है—ऐसा भगवान् ने कहा है इस प्रकार का चिन्तन करना।[1]

अलमंथु-पदं

२६५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अप्पणो णाममेगे अलमथू भवति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे अलमथू भवति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि अलमंथू भवति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो अलमथू भवति, णो परस्स।

अलमस्तु-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मन नामैक अलमस्तु भवति, नो परस्य,
परस्य नामैक अलमस्तु भवति, नो आत्मन,
एक आत्मनोऽपि अलमस्तु भवति, परस्यापि,
एक नो आत्मन अलमस्तु भवति, नो परस्य।

अलमस्तु-पद

२६५ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष अपना निग्रह करने में समर्थ होते हैं, किन्तु दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ नही होते, २ कुछ पुरुष दूसरे का निग्रह करने मे समथ होते हैं, किन्तु अपना निग्रह करने मे नही, ३ कुछ पुरुष अपना भी निग्रह करने मे समथ होते हैं और दूसरे का भी निग्रह करने मे समर्थ होते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपना निग्रह करने मे समर्थ होते हैं और न दूसर का निग्रह करने मे समर्थ होते हैं।

उज्जु-वंक-पदं

२६६ चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वके,
वके णाममेगे उज्जू,
वके णाममेगे वके।

ऋजु-वक्र-पदम्

चत्वार मार्गा प्रज्ञप्ता तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजु,
ऋजु नामैक वक्र,
वक्र नामैक ऋजु,
वक्र नामैक वक्र।

ऋजु-वक्र-पद

२६६ मार्ग चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ माग ऋजु लगते हैं और ऋजु ही होते है, २ कुछ मार्ग ऋजु लगते हैं, किन्तु वास्तव मे वक्र होते हैं, ३ कुछ मार्ग वक्र लगते हैं, किन्तु वास्तव मे ऋजु होते हैं, ४ कुछ माग वक्र लगते हैं और वक्र ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वंके,
वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजु नामैक ऋजु,
ऋजु नामैक वक्र,
वक्र नामैक ऋजु,
वक्र नामैक वक्र।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष ऋजु लगते हैं और ऋजु ही होते हैं, २ कुछ पुरुष ऋजु लगते हैं, किन्तु वास्तव मे वक्र होते हैं, ३ कुछ पुरुष वक्र लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऋजु होते हैं, ४ कुछ पुरुष वक्र लगते हैं और वक्र ही होते हैं।

खेम-अखेम-पद

क्षेम-अक्षेम-पदम्

क्षेम-अक्षेम-पद

२६७ चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—
खेमे णाममेगे खेमे,
खेमे णाममेगे अखेमे,
अखेमे णाममेगे खेमे,
अखेमे णाममेगे अखेमे।

चत्वार मार्गा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षेम नामैक क्षेम,
क्षेम नामैक अक्षेम,
अक्षेम नामैक क्षेम,
अक्षेम नामैक अक्षेम।

२६७ मार्ग चार प्रकार का होता है—
१ कुछ मार्ग आदि मे भी क्षेम [निरुपद्रव] होते हैं और अन्त मे भी क्षेम होते हैं, २ कुछ मार्ग आदि मे क्षेम होते हैं, किन्तु अन्त मे अक्षेम होते हैं, ३ कुछ मार्ग आदि में अक्षेम होते हैं और अन्त मे क्षेम होते हैं, ४ कुछ मार्ग न आदि मे क्षेम होते हैं और न अन्त मे क्षेम होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
खेमे णाममेगे खेमे,
खेमे णाममेगे अखेमे,
अखेमे णाममेगे खेमे,
अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेम नामैक क्षेम,
क्षेम नामैक अक्षेम,
अक्षेम नामैक क्षेम,
अक्षेम नामैक अक्षेम।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष आदि मे भी क्षेम होते हैं और अन्त मे भी क्षेम होते हैं, २ कुछ पुरुष आदि में क्षेम होते है, किन्तु अन्त मे अक्षेम होते हैं, ३ कुछ पुरुष आदि मे अक्षेम होते हैं, किन्तु अन्त क्षेम होते हैं, ४ कुछ पुरुष न आदि मे क्षेम होते हैं और न अन्त मे क्षेम होते हैं।

२६८ चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—
खेमे णाममेगे खेमरूवे,
खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

चत्वार मार्गा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षेम नामैक क्षेमरूप,
क्षेम नामैक अक्षेमरूप,
अक्षेम नामैक क्षेमरूप,
अक्षेम नामैक अक्षेमरूप।

२६८ मार्ग चार प्रकार का होता है—
१ कुछ मार्ग क्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं, २ कुछ मार्ग क्षेम और अक्षेम रूप वाले होते हैं, ३ कुछ मार्ग अक्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं। ४ कुछ मार्ग अक्षेम और अक्षेम रूप वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
खेमे णाममेगे खेमरूवे,

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेम नामैक क्षेमरूप,

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष क्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष क्षेम और

खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

क्षेम नामैक अक्षेमरूप,
अक्षेम नामैक क्षेमरूप,
अक्षेम नामैक अक्षेमरूप।

अक्षेम रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अक्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अक्षेम और अक्षेम रूप वाले होते हैं।

वाम-दाहिण-पद

२६९ चत्तारि सवुक्का पण्णत्ता, त जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

वाम-दक्षिण-पदम्

चत्वार शम्बूका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वाम नामैक वामावर्त,
वाम नामैक दक्षिणावर्त,
दक्षिण नामैक वामावर्त,
दक्षिण नामैक दक्षिणावर्त।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाम नामैक वामावर्त,
वाम नामैक दक्षिणावर्त,
दक्षिण नामैक वामावर्त,
दक्षिण नामैक दक्षिणावर्त।

वाम-दक्षिण-पद

२६९ शख चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ शख वाम [टेढे] और वामावर्त [बाई ओर घुमाव वाले] होते हैं, २ कुछ शख वाम और दक्षिणावर्त [दाई ओर घुमाव वाले] होते हैं, ३ कुछ शख दक्षिण [सीधे] और वामावर्त होते हैं, ४ कुछ शख दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष वाम और वामावर्त होते हैं—स्वभाव से भी वक्र होते हैं और प्रवृत्ति मे भी वक्र होते हैं, २ कुछ पुरुष वाम और दक्षिणावर्त होते हैं—स्वभाव मे वक्र होते हैं, किन्तु कारणवश प्रवृत्ति में सरल होते हैं, ३ कुछ पुरुष दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं—स्वभाव से भी सरल होते हैं और प्रवृत्ति से भी सरल होते हैं, ४ कुछ पुरुष दक्षिण और वामावर्त होते हैं—स्वभाव से सरल होते हैं किन्तु कारणवश प्रवृत्ति मे वक्र होते हैं।

२७० चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,

चतस्र धूमशिखा प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्र स्त्रिय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,

२७०. धूम-शिखा चार प्रकार की होती हैं—
१ कुछ धूमशिखा वाम और वामावर्त होती हैं, २ कुछ धूमशिखा वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३ कुछ धूमशिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४ कुछ धूमशिखा दक्षिण और वामावर्त होती हैं।
इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ स्त्रिया वाम और वामावर्त होती हैं, २ कुछ स्त्रियां वाम

वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

और दक्षिणावर्त होती हैं, ३. कुछ स्त्रियां दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४ कुछ स्त्रियां दक्षिण और वामावर्त होती हैं।"

२७१. चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

चतस्र अग्निशिखा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्र स्त्रियः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

२७१ अग्निशिखा चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ अग्निशिखा वाम और वामावर्त होती हैं, २ कुछ अग्निशिखा वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३ कुछ अग्निशिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४ कुछ अग्निशिखा दक्षिण और वामावत होती हैं।

इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ स्त्रियां वाम और वामावर्त होती हैं, २ कुछ स्त्रियां वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३ कुछ स्त्रियां दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है, ४ कुछ स्त्रियां दक्षिण और वामावर्त होती हैं।"

२७२ चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ता, त जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

चतस्र वातमण्डलिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्र स्त्रियः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

२७२ वातमंडलिका चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ वातमंडलिका वाम और वामावर्त होती हैं, २ कुछ वातमंडलिका वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३ कुछ वातमंडलिका दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं ४ कुछ वातमंडलिका दक्षिण और वामावर्त होती हैं।

इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ स्त्रियां वाम और वामावत होती हैं, २ कुछ स्त्रियां वाम और दक्षिणावत होती हैं, ३ कुछ स्त्रियां दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४ कुछ स्त्रियां दक्षिण और वामावर्त होती हैं।"

२७३ चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, त जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

चत्वारि वनषण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाम नामैक वामावर्त,
वाम नामैक दक्षिणावर्त,
दक्षिण नामैक वामावर्त,
दक्षिण नामैक दक्षिणावर्तम्।

२७३ वनषण्ड [उद्यान] चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ वनषण्ड वाम और वामावर्त होते हैं, २ कुछ वनषण्ड वाम और दक्षिणावर्त होते हैं, ३ कुछ वनषण्ड दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं, ४ कुछ वनषण्ड दक्षिण और वामावर्त होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाम नामैक वामावर्त
वाम नामैक दक्षिणावर्त,
दक्षिण नामैक वामावर्त,
दक्षिण नामैक दक्षिणावर्त ।

इमी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुप वाम और वामावर्त होते हैं, २ कुछ पुरुप वाम और दक्षिणावर्त होते हैं, ३ कुछ पुरुप दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं, ४ कुछ पुरुप दक्षिण और वामावर्त होते हैं।

णिग्गंथ-णिग्गंथी-पदं

२७४ चउहि ठाणेहि णिग्गथे णिग्गथि आलवमाणे वा सलवमाणे वा णातिक्कमति, त जहा—
१ पथ पुच्छमाणे वा,
२ पथ देसमाणे वा,
३. असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा दलेमाणे वा,
४ असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा दलावेमाणे वा।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-पदम्

चतुर्भि स्थानै निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी आलपन् वा सलपन् वा नातिक्रामति, तद्यथा—
१ पन्थान पृच्छन् वा,
२ पन्थान देशयन् वा,
३ अशन वा पान वा खाद्य वा स्वाद्य वा ददत् वा,
४ अशन वा पान वा खाद्य वा स्वाद्य वा दापयन् वा।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-पद

२७४ निर्ग्रन्थ चार कारणो से निग्रन्थी के साथ आलाप सलाप करता हुआ आचार का अतिक्रमण नहीं करता—
१ मार्ग पूछता हुआ, २ मार्ग वताता हुआ, ३ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य देता हुआ, ४ गृहस्थो के घर से अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य दिलाता हुआ।

तमुक्काय-पदं

२७५ तमुक्कायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
तमेति वा, तमुक्कातेति वा,
अधकारेति वा, महधकारेति वा।

तमस्काय-पदम्

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमइति वा, तमस्कायइति वा,
अन्धकारमिति वा,महान्धकारमिति वा ।

तमस्काय-पद

२७५ तमस्काय के चार नाम हैं—
१ तम, २ तमस्काय, ३ अधकार, ४ महाअधकार।[14]

२७६ तमुक्कायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
लोगधगारेति वा, लोगतमसेति वा,
देवधगारेति वा, देवतमसेति वा।

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लोकान्धकारमिति वा, लोकतमइति वा,
देवान्धकारमिति वा, देवतमइति वा।

२७६ तमस्काय के चार नाम हैं—
१ लोकाधकार, २ लोकतमस, ३ देवाधकार, ४ देवतमस।[15]

२७७ तमुक्कायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
वातफलिहेति वा,
वातफलिहखोभेति वा,
देवरण्णेति वा, देववूहेति वा।

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वातपरिघइति वा,
वातपरिघक्षोभइति वा,
देवारण्यमिति वा,देवव्यूहइति वा ।

२७७ तमस्काय के चार नाम हैं—
१ वातपरिघ, २ वातपरिघक्षोभ, ३ देवारण्य, ४ देवव्यूह।[16]

२७८ तमुक्काते ण चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठति, तं जहा—
सोधम्मीसाण सणंकुमार-माहिंद।

तमस्काय चतुर कल्पान् आवृत्य तिष्ठति, तद्यथा—
सौधर्मेशानौ सनत्कुमार-माहेन्द्रौ।

२७८ तमस्काय चार कल्पों को आवृत किए हुए हैं—१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र।

दोस-पदं

२७९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
संपागडपडिसेवी णाममेगे,
पच्छण्णपडिसेवी णाममेगे,
पडुप्पण्णणंदी णाममेगे,
णिस्सरणणंदी णाममेगे।

दोष-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सम्प्रकटप्रतिषेवी नामैकः,
प्रच्छन्नप्रतिषेवी नामैकः,
प्रत्युत्पन्ननन्दी नामैकः,
निःसरणनन्दी नामैकः।

दोष-पद

२७९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ प्रगट मे दोष सेवन करने वाला, २ छिपकर दोष सेवन करने वाला, ३ इष्ट वस्तु की उपलब्धि होने पर आनन्द मनाने वाला, ४ दूसरो के चले जाने पर आनन्द मनाने वाला अथवा अकेले मे आनन्द मनाने वाला।

जय-पराजय-पदं

२८० चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
जइत्ता णाममेगा, णो पराजिणित्ता,
पराजिणित्ता णाममेगा, णो जइत्ता,
एगा जइत्तावि, पराजिणित्तावि,
एगा णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जइत्ता णाममेगे, णो पराजिणित्ता,
पराजिणित्ता णाममेगे, णो जइत्ता,
एगे जइत्तावि, पराजिणित्तावि,
एगे णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

जय-पराजय-पदम्

चतस्रः सेनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जेत्री नामैका, नो पराजेत्री,
पराजेत्री नामैका, नो जेत्री,
एका जेत्र्यपि, पराजेत्र्यपि,
एका नो जेत्री, नो पराजेत्री।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जेता नामैकः, नो पराजेता,
पराजेता नामैकः, नो जेता,
एकः जेतापि, पराजेतापि,
एकः नो जेता, नो पराजेता।

जय-पराजय-पद

२८० सेना चार प्रकार की होती है—
१ कुछ सेनाए विजय करती हैं, किन्तु पराजित नही होतीं, २ कुछ सेनाए पराजित होती हैं, किन्तु विजय नही पातीं, ३ कुछ सेनाए कभी विजय करती हैं और कभी पराजित हो जाती हैं, ४ कुछ सेनाए न विजय ही करती हैं और न पराजित ही होती हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष [कष्टों पर] विजय पाते हैं पर [उनसे] पराजित नहीं होते—जैसे श्रमण भगवान् महावीर, २ कुछ पुरुष [कष्टों से] पराजित होते हैं पर [उनसे] विजय नही पाते—जैसे कुण्डरीक, ३ कुछ पुरुष [कष्टों पर] कभी विजय पाते हैं और कभी उनसे पराजित हो जाते हैं—जैसे शैलक राजर्षि, ४ कुछ पुरुष न [कष्टों पर] विजय ही पाते हैं और न [उनसे] पराजित ही होते हैं।

२८१. चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
जइत्ता णाममेगा जयइ,
जइत्ता णाममेगा पराजिणति,
पराजिणित्ता णाममेगा जयइ,
पराजिणित्ता णाममेगा पराजिणति।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जइत्ता णाममेगे जयति,
जइत्ता णाममेगे पराजिणति,
पराजिणित्ता णाममेगे जयति,
पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणति।

चतस्र सेना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जित्वा नामैका जयति,
जित्वा नामैका पराजयते,
पराजित्य नामैका जयति,
पराजित्य नामैका पराजयते।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जित्वा नामैक जयति,
जित्वा नामैक पराजयते,
पराजित्य नामैक जयति,
पराजित्य नामैक पराजयते।

२८१ सेना चार की प्रकार होती हैं—
१ कुछ सेनाए जीतकर जीतती हैं,
२ कुछ सेनाएँ जीतकर भी पराजित होती हैं, ३ कुछ सेनाए पराजित होकर भी जीतती हैं, ४ कुछ सेनाए पराजित होकर पराजित होती हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष जीतकर जीतते हैं,
२ कुछ पुरुष जीतकर भी पराजित होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित होकर भी जीतते हैं, ४ कुछ पुरुष पराजित होकर पराजित होते हैं।

माया-पदं

२८२ चत्तारि केतणा पण्णत्ता, त जहा—
वसीमूलकेतणए, मेढविसाणकेतणए,
गोमुत्तिकेतणए,
अवलेहणियकेतणए।

एवामेव चउविधा माया पण्णत्ता, त जहा—
वसीमूलकेतणासमाणा,
°मेढविसाणकेतणासमाणा,
गोमुत्तिकेतणासमाणा,°
अवलेहणियकेतणासमाणा।
१ वसीमूलकेतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे काल करेति, णेरइएसु उववज्जति,
२ मेढविसाणकेतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे काल करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३ गोमुत्ति °केतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे° काल करेति, मणुस्सेसु उववज्जति,

माया-पदम्

चत्वारि केतनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वशीमूलकेतनक, मेढ्रविपाणकेतनक,
गोमूत्रिकाकेतनक,
अवलेखनिकाकेतनकम्।

एवमेव चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वशीमूलकेतनसमाना,
मेढ्रविपाणकेतनसमाना,
गोमूत्रिकाकेतनसमाना,
अवलेखनिकाकेतनसमाना।
१ वशीमूलकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, नैरयिकेपु उपपद्यते,
२ मेढ्रविपाणकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, तिर्यग्योनिकेपु उपपद्यते,
३. गोमूत्रिकाकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, मनुष्येपु उपपद्यते,

माया-पद

२८२ केतन [वक्र] चार प्रकार का होता है—
१ वशीमूल—वास की जड, २ मेपविपाण—मेढे का सीग, ३ गोमूत्रिका—चलते बैल के मूत्र की धार, ४ अवलेखनिका—छिलते हुए बांस आदि की पतली छाल।
इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की होती है—१ वशीमूल के समान—अनन्तानुबन्धी, २ मेपविपाण के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ गो-मूत्रिका के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४ अवलेखनिका के समान—सज्वलन।
१ वशीमूल के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है,
२ मेप-विपाण के समान माया मे प्रवतमान जीव मरकर तिर्यक्योनि मे उत्पन्न होता है,
३ गो मूत्रिका के समान माया मे प्रवतमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है,

४ अवलेहणिय•केतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति°, देवेसु उववज्जति ।

४ अवलेखनिकाकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, देवेषु उपपद्यते ।

४ अवलेखनिका के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है।[७]

माण-पदं

मान-पदम्

मान-पद

२८३ चत्तारि थंभा पण्णत्ता, त जहा—सेलथंभे, अट्ठियंभे, दारुथभे । तिणिसलताथभे ।

चत्वार स्तम्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—शैलस्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, दारुस्तम्भ, तिनिशलतास्तम्भ ।

२८३ स्तम चार प्रकार होता है—
१ शैल-स्तम—पत्थर का खम्भा,
२ अस्थि-स्तम—हाड का खम्भा,
३ दारु-स्तम—काठ का खम्भा,
४ तिनिशलता-स्तम—सीसम की जाति के वृक्ष की लता [लकडी] का खम्भा।

एवामेव चउव्विधे माणे पण्णते, त जहा—सेलथभसमाणे, •अट्ठियभसमाणे, दारुथभसमाणे,° तिणिसलताथभसमाणे ।
१ सेलथभसमाण माण अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति,
२. •अट्ठियभसमाण माण अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३ दारुथभसमाण माण अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, मणुस्सेसु उववज्जति,°
४. तिणिसलताथभसमाण माण अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, देवेसु उववज्जति ।

एवमेव चतुर्विध मान प्रज्ञप्त, तद्यथा—शैलस्तम्भसमान, अस्थिस्तम्भसमान, दारुस्तम्भसमान, तिनिशलतास्तम्भसमान ।
१ शैलस्तम्भसमान मान अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२ अस्थिस्तम्भसमान मान अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३ दारुस्तम्भसमान मान अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. तिनिशलतास्तम्भसमान मान अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, देवेषु उपपद्यते ।

इसी प्रकार मान भी चार प्रकार का होता है—१ शैल-स्तम्भ के समान—अनन्तानुबन्धी, २ अस्थि-स्तम्भ के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ दारु-स्तम्भ के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४ तिनिशलता-स्तम्भ के समान—सज्वलन।
१ शैल-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है, २ अस्थि-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर तिर्यक्-योनि में उत्पन्न होता है, ३ दारु-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है, ४ तिनिशलता-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है।[८]

लोभ-पद

लोभ-पदम्

लोभ-पद

२८४ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—किमिरागरत्ते, कद्दमरागरत्ते, खजणरागरत्ते, हलिद्दरागरत्ते ।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—कृमिरागरक्त, कर्दमरागरक्त, खञ्जनरागरक्त, हरिद्रारागरक्त ।

२८४ वस्त्र चार प्रकार का होता है—
१ कृमिरागरक्त—कृमियो के रञ्जक रस मे रगा हुआ वस्त्र, २ कर्दमरागरक्त—कीचड से रगा हुआ वस्त्र,
३ खञ्जनरागरक्त—काजल के रग से रगा हुआ वस्त्र, ४ हरिद्रारागरक्त—हल्दी के रग से रगा हुआ वस्त्र।

एवामेव चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, त जहा—
किमिरागरत्तवत्थसमाणे,
कद्दमरागरत्तवत्थसमाणे,
खजणरागरत्तवत्थसमाणे,
हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणे।
१ किमिरागरत्तवत्थसमाण लोभमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, णेरइएसु उववज्जइ,
२ •कद्दमरागरत्तवत्थसमाण लोभमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, तिरिक्खजोणितेसु उववज्जइ,
३ खजणरागरत्तवत्थसमाण लोभमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, मणुस्सेसु उववज्जइ°,
४ हलिद्दरागरत्तवत्थसमाण लोभमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, देवेसु उववज्जइ।

एवमेव चतुर्विध लोभ' प्रज्ञप्त, तद्यथा—
कृमिरागरक्तवस्त्रसमान,
कर्दमरागरक्तवस्त्रसमान,
खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमान,
हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमान।
१. कृमिरागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२ कर्दमरागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३ खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४ हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, देवेषु उपपद्यते।

इसी प्रकार लोभ भी चार प्रकार का होता है—१ कृमिरागरक्त के समान—अनन्तानुबन्धी, २ कर्दमरागरक्त के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ खञ्जनरागरक्त के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४ हरिद्रारागरक्त के समान—सज्वलन।
१ कृमिरागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है, २ कर्दमरागरक्त के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव मरकर तिर्यक्-योनि मे उत्पन्न होता है, ३ खञ्जनरागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है, ४ हरिद्रारागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर देव गति मे उत्पन्न होता है।[1]

ससार-पद

२८५ चउव्विहे ससारे पण्णत्ते, त जहा—णेरइयससारे, •तिरिक्खजोणियससारे, मणुस्ससंसारे,° देवससारे।
२८६ चउव्विहे आउए पण्णत्ते, त जहा—णेरइआउए, •तिरिक्खजोणिआउए, मणुस्साउए,° देवाउए।
२८७ चउव्विहे भवे पण्णत्ते, त जहा—णेरइयभवे, •तिरिक्खजोणियभवे, मणुस्सभवे°, देवभवे।

संसार-पदम्

चतुर्विध ससार प्रज्ञप्त, तद्यथा—नैरयिकससार, तिर्यग्योनिकससार, मनुष्यससार, देवससार।
चतुर्विध आयु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—नैरयिकायु, तिर्यग्योनिकायु, मनुष्यायु, देवायु।
चतुर्विध भव प्रज्ञप्त, तद्यथा—नैरयिकभव, तिर्यग्योनिकभव, मनुष्यभव, देवभव।

ससार-पद

२८५ ससार [उत्पत्ति स्थान मे गमन] चार प्रकार का होता है—१ नैरयिकससार, २ तिर्यक्योनिकससार, ३ मनुष्यससार, ४ देवससार।
२८६ आयुष्य चार प्रकार का होता है—
१ नैरयिक-आयुष्य,
२ तिर्यक्योनिक-आयुष्य,
३ मनुष्य-आयुष्य, ४ देव-आयुष्य।
२८७ भव [उत्पत्ति] चार प्रकार का होता है—
१ नैरयिक भव, २ तिर्यक्-योनिक भव,
३ मनुष्य भव, ४ देव भव।

आहार-पदं

२८८ चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

आहार-पदम्

चतुर्विध आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यम्।

आहार-पद

२८८ आहार चार प्रकार का होता है—
१ अशन—अन्न आदि,
२ पान—काजी आदि,
३ खादिम—फल आदि,
४ स्वादिम—ताम्बूल आदि।

२८९ चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
उवक्खरसपण्णे, उवक्खडसपण्णे, सभावसपण्णे, परिजुसियसपण्णे।

चतुर्विध आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपस्करसम्पन्नः, उपस्कृतसम्पन्नः, स्वभावसम्पन्नः, पर्युषितसम्पन्नः।

२८९ आहार चार प्रकार का होता है—
१ उपस्कर-सम्पन्न—वघार से युक्त, मसाले डालकर छौंका हुआ, २ उपस्कृत-सम्पन्न—पकाया हुआ, ओदन आदि, ३ स्वभाव-सम्पन्न—स्वभाव से पका हुआ, फल आदि, ४ पर्युषित-सम्पन्न—रात वासी रखने से जो तैयार हो।

कम्मावत्था-पद

२९०. चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—
पगतिबंधे, ठितिबंधे, अणुभावबंधे, पदेसबंधे।

कर्मावस्था-पदम्

चतुर्विधः बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धः, अनुभावबन्धः, प्रदेशबन्धः।

कर्मावस्था-पद

२९० बंध चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृति-बंध—कर्म-पुद्गलों का स्वभाव बंध, २ स्थिति-बंध—कर्म-पुद्गलो की काल मर्यादा का बंध, ३ अनुभाव-बंध—कर्म-पुद्गलो के रस का बंध, ४ प्रदेश-बंध—कर्म-पुद्गलो के परमाणु-परिमाण का बंध।[६९]

२९१ चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—
बंधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसमणोवक्कमे, विप्परिणामणोवक्कमे।

चतुर्विधः उपक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
बन्धनोपक्रमः, उदीरणोपक्रमः, उपशमनोपक्रमः, विपरिणामनोपक्रमः।

२९१ उपक्रम[७१] चार प्रकार का होता है—
१ बंधन उपक्रम—बंधन का हेतुभूत जीव-वीर्य या बंधन का प्रारम्भ, २ उदीरणा उपक्रम—उदीरणा का हेतुभूत जीव-वीर्य या उदीरणा का प्रारम्भ, ३ उपशमन उपक्रम—उपशमन का हेतुभूत जीव-वीर्य या उपशमन का प्रारम्भ, ४ विपरिणामन उपक्रम—विपरिणामन का हेतुभूत जीव-वीर्य या विपरिणामन का प्रारम्भ।

२९२ वधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिवधणोवक्कमे, ठितिवधणोवक्कमे, अणुभाववधणोवक्कमे, पदेसवधणोवक्कमे ।

वन्धनोपक्रम, चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रकृतिवन्धनोपक्रम, स्थितिवन्धनोपक्रम, अनुभावदन्धनोपक्रम, प्रदेशवन्धनोपक्रम ।

२९२ वधन[९२] उपक्रम चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिवधन उपक्रम,
२ स्थितिवधन उपक्रम,
३ अनुभाववधन उपक्रम,
४ प्रदेशवधन उपक्रम ।

२९३ उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिउदीरणोवक्कमे, ठितिउदीरणोवक्कमे, अणुभावउदीरणोवक्कमे, पदेसउदीरणोवक्कमे ।

उदीरणोपक्रम चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा— प्रकृत्युदीरणोपक्रम, स्थित्युदीरणोपक्रम, अनुभावोदीरणोपक्रम, प्रदेशोदीरणोपक्रम ।

२९३ उदीरणा[९३] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१ प्रकृतिउदीरणा उपक्रम,
२ स्थितिउदीरणा उपक्रम,
३ अनुभावउदीरणा उपक्रम,
४ प्रदेशउदीरणा उपक्रम ।

२९४ उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिउवसामणोवक्कमे, ठितिउवसामणोवक्कमे, अणुभावउवसामणोवक्कमे, पदेसउवसामणोवक्कमे ।

उपशामनोपक्रम, चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रकृत्युपशामनोपक्रम, स्थित्युपशामनोपक्रम, अनुभावोपशामनोपक्रम, प्रदेशोपशामनोपक्रम ।

२९४ उपशमन[९४] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१ प्रकृतिउपशमन उपक्रम,
२ स्थितिउपशमन उपक्रम,
३ अनुभावउपशमन उपक्रम,
४ प्रदेशउपशमन उपक्रम ।

२९५ विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिविप्परिणामणोवक्कमे, ठितिविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे ।

विपरिणामनोपक्रम चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रकृतिविपरिणामनोपक्रम, स्थितिविपरिणामनोपक्रम, अनुभावविपरिणामनोपक्रम, प्रदेशविपरिणामनोपक्रम ।

२९५ विपरिणामन[९५] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१ प्रकृतिविपरिणामन उपक्रम,
२ स्थितिविपरिणामन उपक्रम,
३ अनुभावविपरिणामन उपक्रम,
४ प्रदेशविपरिणामन उपक्रम ।

२९६ चउव्विहे अप्पावहुए पण्णत्ते, त जहा—पगतिअप्पावहुए, ठितिअप्पावहुए, अणुभावअप्पावहुए, पएसअप्पावहुए ।

चतुर्विध अल्पवहुत्व प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृत्यल्पवहुत्व, स्थित्यल्पवहुत्व, अनुभावाल्पवहुत्व, प्रदेशाल्पवहुत्वम् ।

२९६ अल्पवहुत्व[९६] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिअल्पवहुत्व,
२ स्थितिअल्पवहुत्व,
३ अनुभावअल्पवहुत्व,
४ प्रदेशअल्पवहुत्व ।

२९७ चउव्विहे सकमे पण्णत्ते, त जहा—पगतिसकमे, ठितिसकमे, अणुभावसकमे, पएससकमे ।

चतुर्विध सक्रम प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रकृतिसक्रम, स्थितिसक्रम, अनुभावसक्रम, प्रदेशसक्रम ।

२९७ सक्रम[९७] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिसक्रम, २ स्थितिसक्रम,
३ अनुभावसक्रम, ४ प्रदेशसक्रम ।

२९८ चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, त जहा—पगतिणिधत्ते, ठितिणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते ।

चतुर्विध निधत्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृतिनिधत्त, स्थितिनिधत्त, अनुभावनिधत्त, प्रदेशनिधत्तम् ।

२९८ निधत्त[९८] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिनिधत्त, २ स्थितिनिधत्त,
३ अनुभावनिधत्त, ४ प्रदेशनिधत्त,

२९९ चउव्विहे णिगायिते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिगायिते, ठितिणिगायिते, अणुभावणिगायिते, पएसणिगायिते।

चतुर्विध निकाचित प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृतिनिकाचित, स्थितिनिकाचित, अनुभावनिकाचित, प्रदेशनिकाचितम्।

२९९ निकाचित[४४] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृति निकाचित,
२ स्थिति निकाचित,
३ अनुभाव निकाचित,
४ प्रदेश निकाचित।

संखा-पदं

संख्या-पदम्

संख्या-पद

३०० चत्तारि एक्का पण्णत्ता, तं जहा—दविएक्कए, माउएक्कए, पज्जवेक्कए, संगहेक्कए,

चत्वारि एकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यैकक, मातृकैकक, पर्ययैकक, सग्रहैककम्।

३०० एक चार प्रकार का होता है—
१ द्रव्य एक—द्रव्यत्व की दृष्टि से द्रव्य एक है, २ मातृका पद एक—सब नयो का बीजभूत मातृका पद [उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक त्रिपदी] एक है, ३ पर्याय एक—पर्यायत्व की दृष्टि से पर्याय एक है, ४ सग्रह एक—सग्रह की दृष्टि से बहु में भी एक वचन का प्रयोग होता है।

३०१ चत्तारि कती पण्णत्ता, तं जहा—दवितकती, माउयकती, पज्जवकती, संगहकती।

चत्वारि कति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यकति, मातृकाकति, पर्यायकति, सग्रहकति।

३०१ कति [अनेक] चार प्रकार का होता है—
१ द्रव्य कति—द्रव्य-व्यक्ति की दृष्टि से द्रव्य अनेक है, २ मातृका कति—विविध नयो की दृष्टि से मातृका अनेक हैं, ३ पर्याय कति—पर्याय व्यक्ति की दृष्टि से पर्याय अनेक हैं, ४ सग्रह कति—अवान्तर जातियो की दृष्टि से सग्रह अनेक हैं।

३०२ चत्तारि सव्वा पण्णत्ता, तं जहा—णामसव्वए, ठवणसव्वए, आएससव्वए, णिरवसेससव्वए।

चत्वारि सर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—नामसर्वक, स्थापनासर्वक, आदेशसर्वक, निरवशेषसर्वकम्।

३०२ सव चार प्रकार का होता है—
१ नाम सर्व—किसी का नाम सर्व रख दिया वह, केवल नाम से सर्व होता है, २ स्थापना सर्व—किसी वस्तु मे सर्व का आरोप किया जाए वह, स्थापना सर्व है, ३ आदेश सर्व—अपेक्षा की दृष्टि से सव, जैसे कुछ कार्य शेप रहने पर भी कहा जाता है सारा काम कर डाला, ४ निरवशेप सर्व—वह सर्व जिसमे कोई शेप न रहे, वास्तविक सर्व।

कूड-पद

३०३ माणुसुत्तरस्स ण पव्वयस्स चउ-दिसि चत्तारि कूडा पण्णत्ता, त जहा—रयणे, रतणुच्चए, सव्वरयणे, रतणसचए।

कूट-पदम्

मानुपोत्तरस्य पर्वतस्य चतुर्दिशि चत्वारि कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न, रत्नमचयम्।

कूट-पद

३०३ मानुपोत्तर पर्वत के चारो दिशा कोणो मे चार कूट है—१ रत्नकूट—दक्षिण-पूर्व मे, २ रत्नोच्चयकूट—दक्षिण-पश्चिम मे, ३ सर्वरत्नकूट—पूर्वोत्तर मे, ४ रत्नसचयकूट—पश्चिमोत्तर मे।

कालचक्क-पद

३०४ जवुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडा-कोडीओ कालो हुत्था।

३०५ जवुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडा-कोडीओ कालो पण्णत्तो।

३०६ जवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए चत्तारि सागरो-वमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ।

कालचक्र-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमसुषमाया समाया चतस्र सागरोपमकोटिकोटी काल अभवत्।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो वर्षयो अस्या अवसर्पिण्या सुषमसुषमाया समाया चतस्र सागरोपमकोटिकोटी काल प्रज्ञप्त।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो वर्षयो आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुपमसुपमाया समाया चतस्र सागरोपमकोटिकोटी काल भविष्यति।

कालचक्र-पद

३०४ जम्बूद्वीप द्वीप के भारत और ऐरवत क्षेत्रो में अतीत उत्सर्पिणी के 'सुपम-सुपमा' नामक आरे का कालमान चार कोडा-कोडी सागरोपम था।

३०५ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे इस अवसर्पिणी के 'सुपम-सुपमा' नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम था।

३०६ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे आगामी उत्सर्पिणी के 'सुपम-सुपमा' नामक आरे का कालमान चार कोडा-कोडी सागरोपम होगा।

अकम्मभूमी-पद

३०७ जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरु-वज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवरिसे, रम्मगवरिसे।

चत्तारि वट्टवेयड्ढपव्वता पण्णत्ता, त जहा—सद्दावाती, वियडावाती, गधावाती, मालवतपरिताते।

तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, तं जहा—साती पभासे अरुणे पउमे।

अकर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरुत्तरकुरुवर्जा चतस्र अकर्मभूमय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्षम्।

चत्वार वृत्तवैताढ्यपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती, माल्यवत्पर्याय।

तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—स्वाति, प्रभास, अरुण, पद्म।

अकर्मभूमि-पद

३०७ जम्बूद्वीप द्वीप मे देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर चार अकर्म-भूमिया हैं—१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यग्वर्ष।

उनमे चार वैताढ्य पर्वत हैं—१ शब्दापाती, २ विकटापाती, ३ गधापाती, ४ माल्यवत्पर्याय।

वहा पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१ स्वाति, २ प्रभास, ३ अरुण, ४ पद्म।

महाविदेह-पद

३०८ जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

महाविदेह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहं वर्षं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
पूर्वविदेहः, अपरविदेहः, देवकुरुः, उत्तरकुरुः ।

महाविदेह-पद

३०८ महाविदेह क्षेत्र के चार प्रकार हैं—
१ पूर्वविदेह, २ अपरविदेह, ३ देवकुरु, ४ उत्तरकुरु।

पव्वय-पदं

३०९ सव्वेवि ण णिसढणीलवंतवासहरपव्वता चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढ उच्चत्तेण, चत्तारि गाउसयाइ उव्वेहेणं पण्णत्ता।

३१०. जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—
चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

३११ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—
तिकूडे, वेसमणकूडे, अजणे, मातंजणे।

३१२ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—
अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

३१३ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—

पर्वत-पदम्

सर्वेऽपि निषधनीलवद्वर्षधर पर्वता चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, चत्वारि गव्यूतिशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरकूले चत्वार वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या दक्षिणकूले चत्वार वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अञ्जन, माताञ्जन. ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणकूले चत्वार वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष, सुखावह ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरकूले चत्वार वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

पर्वत-पद

३०९ सब निषध और नीलवत् वर्षधर पर्वतो की ऊचाई चार सौ योजन की है और चार सौ कोस तक वे भूमि मे अवस्थित हैं।

३१० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व भाग मे और सीता महानदी के उत्तरकूल मे चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ चित्रकूट, २ पक्ष्मकूट, ३ नलिनकूट, ४ एकशैल ।

३११ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व भाग मे और सीता महानदी के दक्षिणकूल में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ त्रिकूट, २ वैश्रवणकूट, ३ अञ्जन, ४ माताञ्जन ।

३१२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग मे और सीतोदा महानदी के दक्षिणकूल मे चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ अकावती, २ पक्ष्मावती, ३ आशीविष, ४ सुखावह।

३१३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग मे और सीतोदा महानदी के उत्तरकूल मे चार वक्षस्कार पर्वत हैं—

चदपव्वते, सूरपव्वते,
देवपव्वते, णागपव्वते।

चन्द्रपर्वत, सूरपर्वत, देवपर्वत, नागपर्वत।

१ चन्द्रपर्वत २ सूरपर्वत, ३ देवपर्वत, ४ नागपर्वत।

३१४ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खार-पव्वया पण्णत्ता, त जहा—
सोमणसे, विज्जुप्पभे,
गवमायणे, मालवते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य चतसृषु विदिशासु चत्वार वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन, माल्यवान्।

३१४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के चारो दिशा कोणो में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ सौमनस्क, २ विद्युत्प्रभ,
३ गन्धमादन, ४ माल्यवान्।

सलागा-पुरिस-पदं

शलाका-पुरुष-पदम्

शलाका-पुरुष-पद

३१५. जबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहण्णपए चत्तारि अरहता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि बलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे जघन्यपदे चत्वार अर्हन्त चत्वार चक्रवर्तिन चत्वार बलदेवा चत्वार वासुदेवा उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा।

३१५ जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे कम से कम चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव और चार वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

मंदर-पव्वय-पदं

मन्दर-पर्वत-पदम्

मन्दर-पर्वत-पद

३१६ जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते चत्तारि वणा पण्णत्ता, त जहा—
भद्दसालवणे, णदणवणे,
सोमणसवणे, पडगवणे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते चत्वारि वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन, पण्डकवनम्।

३१६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के चार वन हैं—१ भद्रशाल वन, २ नन्दन वन, ३ सौमनस वन, ४ पण्डक वन।

३१७ जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते पडगवणे चत्तारि अभिसेगसिलाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पडुकवलसिला, अइपडुकवलसिला,
रत्तकवलसिला, अतिरत्तकवलसिला।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते पण्डगवने चतस्र अभिषेकशिला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पाण्डुकम्बलशिला, अतिपाण्डुकम्बलशिला, रक्तकम्बलशिला, अतिरक्तकम्बलशिला।

३१७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पण्डक वन मे चार अभिषेक शिलाए हैं—
१ पाडुकबल शिला,
२ अतिपाण्डुकबल शिला,
३ रक्तकबल शिला,
४ अतिरक्तकबल शिला।

३१८ मदरचूलिया ण उवरिं चत्तारि जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

मन्दरचूलिका उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

३१८ मन्दर पर्वत की चूलिका का ऊपरी विष्कभ [चौडाई] चार योजन का है।

धायइसंड-पुक्खरवर-पद

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

३१९ एव—धायइसडदीवपुरत्थिमद्धेवि काल आदि करेत्ता जाव मदर-चूलियत्ति।

एवम्—धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धेऽपि काल आदि कृत्वा यावत् मन्दरचूलिका इति।

३१९ इसी प्रकार धातकीषड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के लिए भी 'सुषम-सुषमा' काल की स्थिति से लेकर मन्दर-चूलिका

एव—जाव पुक्खरवरदीव-पच्चत्थिमद्धे जाव मंदरचूलियत्ति—

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपपाश्चात्यार्धे यावत् मन्दरचूलिका इति—

के ऊपरी विष्कभ (४/३०८-३१८) तक का पाठ समझ लेना चाहिए। पुष्कर-वर-द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के लिए भी 'सुषम-सुषमा' काल की स्थिति से लेकर मन्दर-चूलिका के ऊपरी विष्कभ (४/३०४-३१८) तक का पाठ समझ लेना चाहिए।

संगहणी-गाहा

१ जवुद्दीवगआवस्सग तु
कालाओ चूलिया जाव।
धायइसंडे पुक्खरवरे य
पुव्वावरे पासे।

सग्रहणी-गाथा

१. जम्बूद्वीपकावश्यक तु
कालात् चूलिका यावत्।
घातकीषण्डे पुष्करवरे च
पूर्वापरे पार्श्वे॥

सग्रहणी-गाथा

जम्बूद्वीप मे काल [सुषम-सुषमा] से लेकर मन्दरचूलिका तक होने वाली आवश्यक वस्तुए धातकीषण्ड और पुष्करवरद्वीप के पूर्वापर पार्श्वों मे सबकी सब होती हैं।

दारं-पद

३२० जवुद्दीवस्स ण दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—
विजये, वेजयते, जयते, अपराजिते।
ते ण दारा चत्तारि जोयणाइ विक्खभेणं, तावइय चेव पवेसेण पण्णत्ता।
तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—
विजते, वेजयते, जयते, अपराजिते।

द्वार-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित।
तानि द्वाराणि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण, तावत्क चैव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि।
तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित।

द्वार-पद

३२०. जम्बूद्वीप द्वीप के चार द्वार हैं—
१ विजय २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित।[८]
उनकी चौडाई चार योजन की है और उनका प्रवेश [मुख] भी चार योजन का है, वहा पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित।

अंतरदीव-पदं

३२१. जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण चुल्लहिमवतस्स वास-

अन्तर्द्वीप-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवत वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु

अन्तर्द्वीप-पद

३२१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवत् वर्षधर पर्वत के चारो दिक-

हरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्द तिण्णि-तिण्णि जोयण-सयाइ ओगाहित्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णगोलियदीवे ।

विदिशासु लवणसमुद्र त्रीणि-त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अतर्द्वीपा प्रज्ञप्ता , तद्यथा—
एकोरुकद्वीप , आभापिकद्वीप , वैपाणिकद्वीप , लाड्गुलिकद्वीप ।

कोणो की ओर लवण समुद्र मे तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—
१ एकोरुकद्वीप, २ आभापिकद्वीप, ३ वैपाणिकद्वीप, ४ लागुलिकद्वीप ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसति, त जहा—
एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णगोलिया ।

तेपु द्वीपेपु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा—
एकोरुका , आभापिका , वैपाणिका , लाड्गुलिका ।

उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
एकोरुक—एक साथल—घुटने की ऊपरी भाग वाले, आभापिक—बोलने की अल्प क्षमता वाले या गूगे, वैपाणिक—सीग वाले, लागुलिक—पूछ वाले ।

३२२ तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता त जहा—
हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, सक्कुलिकण्णदीवे ।

तेपा द्वीपाना चतसृपु विदिशासु लवण-समुद्र चत्वारि-चत्वारि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता , तद्यथा—
हयकर्णद्वीपे , गजकर्णद्वीप , गोकर्णद्वीप , शप्कुलिकर्णद्वीप ।

३२२ उन द्वीपो के चारो दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र मे चार-चार सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—१ हयकर्णद्वीप, २ गजकर्णद्वीप, ३ गोकर्णद्वीप, ४ शाप्कुलीकर्णद्वीप ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विधा मणुस्सा परिवसति, त जहा—
हयकण्णा, गयकण्णा, गोकण्णा, सक्कुलिकण्णा ।

तेपु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा—
हयकर्णा , गजकर्णा , गोकर्णा , शप्कुलिकर्णा ।

उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ हयकर्ण—घोडे के समान कान वाले,
२ गजकर्ण—हाथी के समान कान वाले,
३ गोकर्ण—गाय के समान कान वाले,
४ शाप्कुलीकर्ण—पूडी जैसे कान वाले ।

३२३ तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द पच-पच जोयसणयाइ ओगाहित्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
आयसमुहदीवे, मेढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे,

तेपा द्वीपाना चतसृपु विदिशासु लवण-समुद्र पञ्च-पञ्च योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता , तद्यथा—
आदर्शमुखद्वीप , मेढ्रमुखद्वीप , अयोमुखद्वीप , गोमुखद्वीप ।

३२३ उन द्वीपों के चारो दिक्कोणों की ओर लवण समुद्र मे पांच-पाच सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—१ आदर्शमुखद्वीप, २ मेपमुखद्वीप, ३ अयोमुखद्वीप, ४ गोमुखद्वीप ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसति, त जहा—
आयसमुहा, मेढमुहा, अओमुहा, गोमुहा ।°

तेपु द्वीपेपु चतुर्विधा मनुप्या परिवसन्ति, तद्यथा—
आदर्शमुखा , मेढ्रमुखा , अयोमुखा , गोमुखा ।

उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ आदर्शमुख—आदर्श के समान मुह वाले
२ मेप-मुख—मेप के समान मुह वाले,
३ अयो-मुख ।
४ गो-मुख—गो के समान मुह वाले ।

३२४ तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द छ-छ जोयणसयाइ

तेपा द्वीपाना चतसृपु विदिशासु लवण-समुद्र पट्-पट् योजनशतानि अवगाह्य,

३२४, उन द्वीपो के चारो दिक्कोणो मे लवण समुद्र मे छह-छह सौ योजन जाने पर चार

ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे,
सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे।
तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा
•परिवसति, त जहा—
आसमुहा, हत्थिमुहा,
सीहमुहा, वग्घमुहा।°

अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अश्वमुखद्वीप, हस्तिमुखद्वीप,
सिंहमुखद्वीप, व्याघ्रमुखद्वीप।
तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा—
अश्वमुखा, हस्तिमुखा, सिंहमुखा,
व्याघ्रमुखा।

अन्तर्द्वीप हैं—१ अश्वमुखद्वीप,
२ हस्तिमुखद्वीप, ३ सिंहमुखद्वीप,
४ व्याघ्रमुखद्वीप।
उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ अश्वमुख—घोडे के समान मुह वाले,
२ हस्तिमुख—हाथी के समान मुह वाले,
३ सिंहमुख—सिंह के समान मुह वाले,
४ व्याघ्रमुख—बाघ के समान मुख वाले।

३२५. तेसि णं दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त-सत्त जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे,
अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे।
तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा
•परिवसति, त जहा—
आसकण्णा, हत्थिकण्णा,
अकण्णा, कण्णपाउरणा।°

तेषा द्वीपाना चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र सप्त-सप्त योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अश्वकर्णद्वीप, हस्तिकर्णद्वीप,
अकर्णद्वीप, कर्णप्रावरणद्वीप।
तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा—
अश्वकर्णा, हस्तिकर्णा, अकर्णा,
कर्णप्रावरणा।

३२५ उन द्वीपो के चारों दिक्कोणों की ओर लवणसमुद्र में सात-सात सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—
१ अश्वकर्णद्वीप, २ हस्तिकर्णद्वीप,
३ अकर्णद्वीप, ४ कर्णप्रावरणद्वीप।
उनमें चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ अश्वकर्ण—घोडे के समान कान वाले,
२ हस्तिकर्ण—हाथी के समान कान वाले,
३ अकर्ण—बहुत छोटे कान वाले,
४ कर्णप्रावरण—विशाल कान वाले।

३२६ तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द अट्ठट्ठ जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे,
विज्जुमुहदीवे, विज्जुदतदीवे,
तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा
•परिवसति, त जहा—
उक्कामुहा, मेहमुहा,
विज्जुमुहा, विज्जुदंता।°

तेषा द्वीपाना चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र अष्ट-अष्ट योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उल्कामुखद्वीप, मेघमुखद्वीप,
विद्युन्मुखद्वीप, विद्युद्दतद्वीप।
तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा—
उल्कामुखा, मेघमुखा, विद्युन्मुखा,
विद्युद्दता।

३२६ उन द्वीपो के चारो दिक्कोणों की ओर लवणसमुद्र मे आठ-आठ सौ योजन जाने पर वहा चार अन्तर्द्वीप हैं—
१ उल्कामुखद्वीप, २ मेघमुखद्वीप,
३ विद्युत्मुखद्वीप, ४ विद्युत्दन्तद्वीप।
उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ उल्कामुख—उल्का के समान दीप्त मुह वाले, २ मेघमुख—मेघ के समान मुह वाले, ३ विद्युत्मुख—बिजली के समान दीप्त मुंह वाले, ४ विद्युत्दन्त—बिजली के समान चमकीले दांत वाले।

३२७ तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द णव-णव जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—

तेषा द्वीपाना चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र नव-नव योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

३२७ उन द्वीपों के चारों दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र मे नौ-नौ सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—१ घनदन्तद्वीप,
२ लष्टदन्तद्वीप, ३ गूढदन्तद्वीप,
४. शुद्धदन्तद्वीप।

घणदतदीवे, लट्ठदतदीवे,
गूढदतदीवे, सुद्धदतदीवे।
तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसति, त जहा—
घणदता, लट्ठदता,
गूढदता, सुद्धदता।

घनदन्तद्वीप, लष्टदन्तद्वीप,
गूढदन्तद्वीप, शुद्धदन्तद्वीप ।
तेपु द्वीपेपु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, त जहा—
घनदन्ता, लष्टदन्ता, गूढदन्ता, शुद्धदन्ता ।

उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१ घनदन्त—सघन दात वाले,
२ लष्टदन्त—कमनीय दात वाले,
३ गूढदन्त—गूढ दात वाले,
४ शुद्धदन्त—स्वच्छ दांत वाले।

३२८ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्द तिण्णि-तिण्णि जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—
एगूरुयदीवे, सेस तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव सुद्धदता।

जम्वूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे शिखरिण वर्पधरपर्वतस्य चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र त्रीणि-त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वार अन्तर्द्वीपा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकोरुकद्वीप, शेष तथैव निरवशेप भणितव्य यावत् शुद्धदन्ता ।

३२८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत के चारो दिक्कोणो की ओर लवण-समुद्र में तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—
१ एकोरुकद्वीप, २ आभापिकद्वीप,
३ वैपाणिकद्वीप, ४ लागुलिकद्वीप।
जितने अन्तर्द्वीप और जितने प्रकार के मनुष्य दक्षिण मे हैं, उतने ही अन्तर्द्वीप और उतने ही प्रकार के मनुष्य उत्तर मे हैं।

महापायाल-पद

३२९ जंवुद्दीवस्स ण दीवस्स वाहिरिल्लाओ वेइयताओ चउदिसि लवणसमुद्द पचाणउइ जोयणसहस्साइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण महतिमहालता महालजरसठाणसठिता चत्तारि महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—
वलयामुहे, केउए,
जूवए, ईसरे।

महापाताल-पदम्

जम्वूद्वीपस्य द्वीपस्य वाह्यात् वेदिकान्तात् चतुर्दिशि लवणसमुद्र पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि अवगाह्य, अत्र महातिमहान्त महालञ्जरसस्थान-सस्थिता चत्वार महापाताला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वडवामुख, केतुक, यूपक, ईश्वरः ।

महापाताल-पद

३२९ जम्बूद्वीप द्वीप की वाहरी वेदिका के अतिम भाग से चारो दिक्कोणों की ओर लवण समुद्र में पिचानवे हजार योजन जाने पर चार महापाताल हैं। वे बहुत विशाल हैं और उनका आकार बडे घडे जैसा है। उनके नाम ये है—
१ वडवामुख (पूर्व मे),
२ केतुक (दक्षिण मे),
३ यूपक (पश्चिम मे),
४ ईश्वर (उत्तर में)।

तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—
काले, महाकाले,
वेलवे, पभजणे।

तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—
काल, महाकाल,
वेलम्व, प्रभञ्जन.।

उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—
१ काल, २ महाकाल,
३ वेलम्व, ४ प्रभञ्जन।

आवास-पव्वय-पद

३३०. जंबुद्दीवस्स ण दीवस्स वाहिरिल्लाओ वेइयताओ चउद्दिसि लवणसमुद्द वायालीस-वायालीस जोयणसहस्साइ ओगोहत्ता, एत्थ ण चउण्ह वेलंधर णागराईण चत्तारि आवासपव्वत्ता पण्णत्ता, त जहा—
गोथूभे, उदओभासे,
सखे, दगसीमे।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—
गोयूभे, सिवए,
सखे, मणोसिलाए।

३३१ जबुद्दीवस्स ण दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्द वायालीस-वायालीस जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ ण चउण्ह अणुवेलधर णागराईण चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
कक्कोडए, विज्जुप्पभे,
केलासे, अरुणप्पभे।
तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीता परिवसति, त जहा—
कक्कोडए, कद्दमए,
केलासे, अरुणप्पभे।

आवास-पर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्तात् चतुर्दिशि लवणसमुद्र द्वाचत्वारिंशत्-द्वाचत्वारिंशत् योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चतुर्णां वेलवरनागराजाना चत्वार आवासपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गोस्तूप, उदावभास, शङ्ख,
दकसीम।
तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—
गोस्तूप, शिवक, शङ्ख,
मन शिलाक।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्तात् चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र द्वाचत्वारिंशत्-द्वाचत्वारिंशत् योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चतुर्णां अनुवेलधरनागराजाना चत्वार आवासपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कर्कोटक[1], विद्युत्प्रभ, कैलाश,
अरुणप्रभ।
तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—
कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश,
अरुणप्रभ।

आवास-पर्वत-पद

३३० जम्बूद्वीप द्वीप की वाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारो दिक्कोणों की ओर लवणसमुद्र में बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर वेलधर नागराजों के चार आवास पर्वत हैं—
१ गोस्तूप, २ उदावभास,
३ शख, ४ दकसीम।
उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१ गोस्तूप, २ शिव, ३ शख, ४ मन शिलाक।

३३१ जम्बूद्वीप द्वीप की वाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिक्कोणों की ओर लवण समुद्र मे बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर अनुवेलधर नागराजो के चार आवास पर्वत हैं—
१ कर्कोटक, २ विद्युत्प्रभ,
३ कैलाश, ४ अरुणप्रभ।
उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—
१ कर्कोटक, २ कर्दमक, ३ कैलाश,
४ अरुणप्रभ।

जोइस-पदं

३३२. लवणे ण समुद्दे चत्तारि चदा पभासिंसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा।

ज्योतिष्पदम्

लवणे समुद्रे चत्वार चन्द्रा प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा।

ज्योतिष्पद

३३२ लवण समुद्र मे चार चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे।

चत्तारि सूरिया तविंसु वा तवति वा तविस्सति वा।
चत्तारि कित्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ।

चत्वार सूर्या अताप्सु वा तपन्ते वा तपिष्यन्ति वा।
चतस्र कृत्तिका यावत् चतस्र भरण्य।

चार सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे।
चार कृत्तिका यावत् चार भरणी तक के सभी नक्षत्रो ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते हैं और करेंगे।

३३३ चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा।

चत्वार अग्नय यावत् चत्वार यमा।

३३३ इन नक्षत्रो के अग्नि यावत् यम—ये चार-चार देव हैं।

३३४ चत्तारि अगारा जाव चत्तारि भावकेऊ।

चत्वार अङ्गारा यावत् चत्वार भावकेतव।

३३४ चार अङ्गार यावत् चार भावकेतु तक के सभी ग्रहो ने चार किया था, करते हैं और करेंगे।

दार-पद

द्वार-पदम्

द्वार-पद

३३५ लवणस्स ण समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—
विजए, वेजयते,
जयते, अपराजिते।
ते ण दारा चत्तारि जोयणाइ विक्खभेण तावइय चेव पवेसेणं पण्णत्ता।
तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितिया, परिवसति त जहा—
विजए वेजयते,
जयते, अपराजिए।

लवणस्य समुद्रस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त,
अपराजित।
तानि द्वाराणि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण तावत्क चैव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि।
तत्र चत्वार देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित।

३३५ लवण समुद्र के चार द्वार हैं—
१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त,
४ अपराजित।
उनकी चौडाई चार योजन की है तथा उनका प्रवेश [मुख] भी चार योजन चौडा है। उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१ विजय,
२ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित।

धायइसड-पुक्खरवर-पद

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

३३६ धायइसडे ण दीवे चत्तारि जोयण-सयसहस्साइ चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते।

धातकीषण्ड द्वीप चत्वारि योजनशत-सहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

३३६ धातकीषण्ड द्वीप का चक्रवाल-विष्कंभ [वलय का विस्तार] चार लाख योजन का है।

३३७ जबुद्दीवस्स ण दीवस्स बहिया चत्तारि भरहाइ, चत्तारि एरवयाइ।
एव जहा सद्दुदेसए तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव चत्तारि मंदरा चत्तारि मदरचूलियाओ।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बहिस्तात् चत्वारि भरतानि, चत्वारि ऐरवतानि।
एव यथा शब्दोद्देशके तथैव निरवशेष भणितव्य यावत् चत्वार मन्दरा चतस्र मन्दरचूलिका।

३३७ जम्बू द्वीप के बाहर [धातकीषण्ड तथा अर्ध पुष्करवर द्वीप मे] चार भरत और चार ऐरवत हैं।
शब्दोद्देशक [दूसरे स्थान के तीसरे उद्देशक] में जो बतलाया है, वह यहा जान लेना चाहिए। [वहा जो दो-दो बताए गए हैं वे यहा चार-चार जान लेने चाहिए]।

णदीसरवरदीव-पद

३३८ णदीसरवरस्स ण दीवस्स चक्कवालविक्खभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसि चत्तारि अजणगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
पुरत्थिमिल्ले अजणगपव्वते,
दाहिणिल्ले अजणगपव्वते,
पच्चत्थिमिल्ले अजणपव्वते,
उत्तरिल्ले अजणगपव्वते।

ते ण अजणगपव्वता चउरासीतिं जोयणसहस्साइ उड्ढं उच्चत्तेण, एग जोयणसहस्स उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइ विक्खमेण, तदणतर च ण मायाए-मायाए परिहायमाणा-परिहायमाणा उवरिमेग जोयणसहस्स विक्खभेणं पण्णत्ता।

मूले इक्कतीस जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेण, उवरिं तिण्णि-तिण्णि जोयणसहस्साइ एग च बावट्ठ जोयणसत परिक्खेवेण।

मूले विच्छण्णा मज्झे सखेत्ता उप्पि तणुया गोपुच्छसठाणसठिता सव्वअजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पका णिक्ककड-च्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

३३९ तेसि ण अंजणगपव्वयाण उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

नन्दीश्वरवरद्वीप-पदम्

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य चक्रवाल-विष्कम्भस्य बहुमध्यदेशभागे चतुर्दिशि चत्वार अञ्जनकपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पौरस्त्य. अञ्जनकपर्वत.,
दाक्षिणात्य अञ्जनकपर्वत,
पाश्चात्य अञ्जनकपर्वत,
उदीच्य अञ्जनकपर्वत।

ते अञ्जनकपर्वता चतुरशीतिं योजन-सहस्राणि ऊर्ध्व उच्चत्वेन, एक योजन-सहस्र उद्वेधेन, मूले दशयोजन-सहस्राणि विष्कम्भेण, तदनन्तर च मात्रया-मात्रया परिहीयमाना-परिहीयमाना उपरि एक योजनसहस्र विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

मूले एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशत परिक्षेपेण, उपरि त्रीणि-त्रीणि योजनसहस्राणि एक च द्वाषष्ठियोजनशत परिक्षेपेण।

मूले विस्तृता मध्ये सक्षिप्ता उपरि तनुका गोपुच्छसस्थानसस्थिता सर्वाञ्जनमया अच्छा श्लक्ष्णा श्लक्ष्णा घृष्टा मृष्टा नीरजस निर्मला निष्पङ्का निष्कंकट-च्छाया सप्रभा समरीचिका सोद्योता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा।

तेषा अञ्जनकपर्वताना उपरि बहुसम-रमणीया भूमिभागा प्रज्ञप्ता।

नन्दीश्वरवरद्वीप-पद

३३८ नन्दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल-विष्कभ के बहुमध्य देशभाग—ठीक बीच मे चारो दिशाओं मे चार अञ्जन पर्वत हैं—
१ पूर्वी अञ्जन पर्वत,
२ दक्षिणी अञ्जन पर्वत,
३ पश्चिमी अञ्जन पर्वत,
४ उत्तरी अञ्जन पर्वत।

उनकी ऊचाई चौरासी हजार योजन की है। वे एक हजार योजन तक धरती मे अवस्थित हैं। मूल मे उनका विस्तार दस हजार योजन का है। वह क्रमश घटते-घटते ऊपरी भाग मे एक हजार योजन का रह जाता है।

मूल मे उनकी परिधि इकतीस हजार छ सौ तेइस योजन और ऊपरी भाग मे तीन हजार एक सौ बासठ योजन की है।

वे मूल मे विस्तृत, मध्य मे सक्षिप्त और अन्त मे पतले हैं। उनका आकार गाय की पूछ जैसा है। वे नीचे से ऊपर तक अञ्जन रत्नमय हैं। वे स्फटिक की भाति अच्छ-पारदर्शी हैं। वे चिकने, चमकदार, शाण पर घिसे हुए से, प्रमार्जनी से साफ किए हुए से, रज रहित, पक रहित, निरावरण शोभा वाले, प्रभायुक्त, रश्मियुक्त, उद्योतयुक्त, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय हैं।

३३९ उन अञ्जन पर्वतों के ऊपर अत्यन्त समतल और रमणीय भूमि-भाग हैं। उनके मध्य मे चार सिद्धायतन हैं। वे एक सौ

तेसि ण वहुसमरमणिज्जाण भूमिभागाण वहुमज्भदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता।	तेपा वहुसमरमणीयाना भूमिभागाना वहुमध्यदेशभागे चत्वारि सिद्धायतनानि प्रज्ञप्तानि।	योजन लम्बे, पचाग योजन चौड़े और वहत्तर योजन ऊपर की ओर ऊंचे हैं।
ते ण सिद्धायतणा एग जोयणसय आयामेण, पण्णास जोयणाइ विक्खमेण, वावत्तरिजोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण।	तानि सिद्धायतनानि एक योजनशत आयामेन, पञ्चाशत् योजनानि विष्कम्भेण, द्वासप्ततियोजनानि ऊर्ध्व उच्चत्वेन।	
तेसि ण सिद्धायतणाण चउदिसि चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा— देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे।	तेपा सिद्धायतनाना चतुर्दिशि चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार, सुपर्णद्वारम्।	उन सिद्धायतनो की चारों दिशाओं मे चार द्वार है— १ देव द्वार, २ असुर द्वार, ३ नाग द्वार, ४ सुपर्ण द्वार।
तेसु ण दारेसु चउव्विहा देवा परिवसति, त जहा— देवा, असुरा, णागा, सुवण्णा।	तेपु द्वारेपु चतुर्विधा देवा परिवसन्ति, तद्यथा— देवा, असुरा, नागा, सुपर्णा।	उनमे चार प्रकार के देव रहते हैं— १ देव, २ असुर ३ नाग, ४ सुपर्ण।
तेसि ण दाराण पुरतो चत्तारि मुहमडवा पण्णत्ता।	तेपा द्वाराणा पुरत चत्वार मुखमण्डपा प्रज्ञप्ता।	उन द्वारो के आगे चार मुख-मण्डप हैं।
तेसि ण मुहमडवाण पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमडवा पण्णत्ता।	तेपा मुखमण्डपाना पुरत चत्वार प्रेक्षागृहमण्डपा प्रज्ञप्ता।	उन मुख-मण्डपो के आगे चार प्रेक्षागृह रगशाला मण्डप हैं।
तेसि ण पेच्छाघरमडवाण वहुमज्भदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।	तेपा प्रेक्षागृहमण्डपाना वहुमध्यदेशभागे चत्वार वज्रमया अक्षवाटका प्रज्ञप्ता।	उन प्रेक्षागृह-मण्डपो के मध्य-भाग मे चार वज्रमय अक्षवाटक-प्रेक्षको के लिए बैठने के आसन हैं।
तेसि ण वइरामयाण अक्खाडगाण वहुमज्भदेसभागे चत्तारि मणिपेढियातो पण्णत्ताओ।	तेपा वज्रमयाना अक्षवाटकानां वहुमध्यदेशभागे चतस्र मणिपीठिका प्रज्ञप्ता।	उन वज्रमय अक्षवाटकों के वीच मे चार मणि-पीठिकाए हैं।
तासि णं मणिपेढिताण उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता।	तासा मणिपीठिकाना उपरि चत्वारि सिहासनानि प्रज्ञप्तानि।	उन मणिपीठिकाओ के ऊपर चार सिंहासन हैं।
तेसि णं सिहासणाण उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।	तेपा सिंहासनाना उपरि चत्वारि विजयदूष्याणि प्रज्ञप्तानि।	उन सिंहासनो के ऊपर चार विजय-दूष्य—चदवा हैं।
तेसि ण विजयदूसगाण वहुमज्भदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता।	तेपा विजयदूष्यकाणा वहुमध्यदेशभागे चत्वारि वज्रमया अकुशा प्रज्ञप्ता।	उन विजयदूष्यो के मध्य भाग मे चार वज्रमय अकुश हैं।
तेसु ण वइरामएसु अकसेसु चत्तारि कुभिका मुत्तादामा पण्णत्ता।	तेषु वज्रमयेपु अकुशेपु चत्वारि कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रज्ञप्तानि।	उन वज्रमय अकुशो पर कुभिक[४०-४० मन के] मोतियो की चार मालाए लटक रही है।

ते ण कुभिका मुत्तादामा पत्तेय-पत्तेय अण्णेहि तदद्धउच्चत्तपमाण-मित्तेहि चउहि अद्धकुभिक्केहि मुत्तादामेहि सव्वतो समता सपरिक्खित्ता ।	तानि कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रत्येकं-प्रत्येक अन्यै तदर्धोच्चित्वप्रमाणमात्रै चतुर्भि अर्धकुम्भिकै मुक्तादामभि सर्वत समन्तात् सपरिक्षिप्तानि ।	उन कुभिक मुक्ता मालाओ मे से प्रत्येक माला पर उनकी ऊचाई मे आधी ऊचाई वाली तथा २०-२० मन के मोतियो की चार मालाए चारो ओर लिपटी हुई है ।
तेसि ण पेच्छाघरमडवाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।	तेषा प्रेक्षागृहमण्डपाना पुरत चतस्र मणिपीठिका प्रज्ञप्ता ।	उन प्रेक्षागृहमण्डपो के आगे चार मणि-पीठिकाए है ।
तासि ण मणिपेढियाण उवरि चत्तारि-चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता ।	तासा मणिपीठिकाना उपरि चत्वार-चत्वार चैत्यस्तूपा प्रज्ञप्ता ।	उन मणिपीठिकाओ पर चार चैत्य-स्तूप है ।
तेसि ण चेइयथूभाण पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसि चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।	तेषा चैत्यस्तूपाना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चतस्र मणिपीठिका प्रज्ञप्ता ।	उन चैत्य-स्तूपो मे से प्रत्येक पर चारो दिशाओ मे चार-चार मणिपीठिकाए है ।
तासि ण मणिपेढियाणं उवरि चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलियकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठ ति, त जहा— रिसभा, वद्धमाणा, चदाणणा, वारिसेणा ।	तासा मणिपीठिकाना उपरि चतस्र जिनप्रतिमा सर्वरत्नमय्य संपर्यंक-निपण्णा स्तूपाभिमुखा तिष्ठन्ति, तद्यथा— ऋपभा, वर्धमाना, चन्द्रानना, वारिषेणा ।	उन मणि पीठिकाओ पर चार जिन प्रतिमाए है, वे सर्व रत्नमय, सपर्यकासन—पद्मासन की मुद्रा मे अवस्थित है । उनका मुह स्तूपो के सामने है । उनके नाम ये है—१ ऋपभा, २ वर्द्धमाना, ३ चन्द्रानना, ४ वारिषेणा ।
तेसि ण चेइयथूभाण पुरतो चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।	तेषा चैत्यस्तूपाना पुरत चतस्र मणिपीठिका प्रज्ञप्ता ।	उन चैत्यस्तूपो के आगे चार मणि पीठिकाए है ।
तासि ण मणिपेढियाण उवरि चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता ।	तासा मणिपीठिकाना उपरि चत्वार चैत्यरुक्षा प्रज्ञप्ता ।	उन पर चार चैत्यवृक्ष है ।
तेसि णं चेइयरुक्खाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ।	तेषा चैत्यरुक्षाणा पुरत चतस्र मणि-पीठिका प्रज्ञप्ता ।	उन चैत्य वृक्षो के आगे चार मणि पीठिकाए है ।
तासि णं मणिदपेढियाण उवरि चत्तारि महिदज्झया पण्णत्ता ।	तासा मणिपीठिकाना उपरि चत्वार महेन्द्रध्वजा प्रज्ञप्ता ।	उन पर चार महेन्द्र [महान्] ध्वज है ।
तेसि ण महिदज्झयाण पुरओ चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ ।	तेषा महेन्द्रध्वजाना पुरत चतस्र नन्दा पुष्करिण्य प्रज्ञप्ता ।	उन महेन्द्र-ध्वजो के आगे चार नन्दा-पुष्करिणिया है ।
तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय-पत्तेय चउदिसि चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा— पुरत्थिमे णं, दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण ।	तासा पुष्करिणीना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि वनपण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पोरस्त्ये, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे ।	उन पुष्करिणियो मे से प्रत्येक के आगे चारो दिशाओ मे चार वनपण्ड है— पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे, उत्तर मे ।

सगहणी-गाहा

१ पुव्वे ण असोगवण,
दाहिणओ होइ सत्तवण्णवण ।
अवरे ण चपगवण,
चूतवण उत्तरे पासे ।।

सग्रहणी-गाथा

१ पूर्वे अशोकवन,
दक्षिणे भवति सप्तपर्णवनम् ।
अपरे चम्पकवन,
चूतवनमुत्तरे पार्श्वे ।।

सग्रहणी-गाथा

पूर्व मे अशोकवन,
दक्षिण मे सप्तपर्णवन,
पश्चिम म चम्पकवन,
उत्तर मे आम्रवन ।

३४० तत्थ ण जे से पुरत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
णदुत्तरा, णदा, आणदा,
णदिवद्धणा ।

तत्र योसौ पौरस्त्य अञ्जनकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि चतस्र नन्दा पुष्करिण्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना ।

३४० पूर्व के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं—
१ नन्दोत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा,
४ नन्दिवर्धना ।

ताओ ण णदाओ पुक्खरिणीओ एग जोयणसयसहस्स आयामेण, पण्णास जोयणसहस्साइ विक्खभेण, दसजोयणसताइ उव्वेहेण ।

ता नन्दा पुष्करिण्य एक योजनशतसहस्र आयामेन, पञ्चाशत् योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, दशयोजनशतानि उद्वेधेन ।

वे नन्दा पुष्करिणिया एक लाख योजन लम्बी, पचास हजार योजन चौडी और हजार योजन गहरी हैं ।

तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय-पत्तेय चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता ।

तासा पुष्करिणीना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि ।

उन नदा पुष्करिणियों मे से प्रत्येक के चार दिशाओ में चार त्रि-सोपान पक्तिया हैं ।

तेसि ण तिसोवाणपडिरूवगाण पुरतो चत्तारि तोरणा पण्णत्ता, त जहा—
पुरत्थिमे ण, दाहिणे ण,
पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण ।

तेषा त्रिसोपानप्रतिरूपकाणा पुरत चत्वारि तोरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पौरस्त्ये, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे ।

उन त्रि-सोपान पक्तियों के आगे चार तोरण द्वार हैं—
१ पूर्व मे, २ दक्षिण मे, ३ पश्चिम मे,
४ उत्तर मे ।

तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय-पत्तेय चउद्दिसि चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा—
पुरतो, दाहिणे ण,
पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण ।

तासा पुष्करिणीना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि वनषण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पुरत, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे ।

उन नन्दा पुष्करिणियो में से प्रत्येक के चारो दिशाओ में चार वनषण्ड हैं—
पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम में, उत्तर मे ।

संगहणी-गाहा

१ पुव्वे णं असोगवणं,
दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरे ण चपगवण°,
चूयवण उत्तरे पासे ॥

तासि ण पुक्खरिणीण बहुमज्झ-देसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता।

ते ण दधिमुहगपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइ उड्ढ उच्चत्तेण, एग जोयणसहस्स उव्वेहेण, सव्वत्थ समा पल्लगसठाणसठिता; दस-जोयणसहस्साइ विक्खंभेण एक्कतीस जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेण, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि ण दधिमुहगपव्वताण उवरि बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

सेस जहेव अंजणगपव्वताणं तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव चूतवण उत्तरे पासे।

३४१. तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले अंजणग-पव्वते, तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—
भद्दा, विसाला,
कुमुदा, पोंडरीगिणी।

ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं, सेसं त चेव जाव दधिमुहगपव्वता जाव वणसडा।

सग्रहणी-गाथा

१. पूर्वे अशोकवन,
दक्षिणे भवति सप्तपर्णवनम्।
अपरे चम्पकवन,
चूतवनमुत्तरे पार्श्वे ॥

तासा पुष्करिणीना बहुमध्यदेशभागे चत्वार दधिमुखकपर्वता प्रज्ञप्ता।

ते दधिमुखकपर्वता चतुःषष्ठि योजन-सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, एक योजन-सहस्र उद्वेधेन, सर्वत्र समा पल्यक-सस्थानसस्थिता, दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भेण, एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशत परिक्षेपेण, सर्वरत्नमया अच्छा यावत् प्रतिरूपा।

तेषा दधिमुखकपर्वताना उपरि बहुसम-रमणीया भूमिभागा प्रज्ञप्ता।

शेष यथैव अञ्जनकपर्वताना तथैव निरवशेष भणितव्यम् यावत् चूतवन उत्तरे पार्श्वे।

तत्र योसौ दाक्षिणात्य अञ्जनकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि चतस्र नन्दा पुष्करिण्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भद्रा, विशाला, कुमुदा, पौण्डरीकिणी।

ता नन्दा पुष्करिण्य एक योजन-शतसहस्र, शेष तच्चैव यावत् दधिमुखक-पर्वता यावत् वनषण्डानि।

संग्रहणी-गाथा

पूर्व मे अशोक वन,
दक्षिण मे सप्तपर्ण वन,
पश्चिम मे चम्पक वन,
उत्तर मे आम्रवन।

उन नन्दा पुष्करिणियो के ठीक बीच मे चार दधिमुख पर्वत हैं—

वे दधिमुख पर्वत ६४ हजार योजन ऊचे और हजार योजन गहरे हैं। वे नीचे, ऊपर और बीच मे सब स्थानो मे [चौडाई की अपेक्षा] समान हैं। उनकी आकृति अनाज भरने के बडे कोठे के समान हैं। उनकी चौडाई दस हजार योजन की है। उनकी परिधि ३१६२३ योजन की हैं। वे सर्व रत्नमय यावत् रमणीय हैं।

उन दधिमुख पर्वतो के ऊपर अत्यन्त समतल और रमणीय भू-भाग हैं।

शेष वर्णन अजन पर्वत के समान है।

३४१ दक्षिण के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं—
१ भद्रा, २ विशाला, ३ कुमुदा, ४ पोंडरीकिणी।

शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है।

२ तत्थ ण जे से पच्चत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा— णदिसेणा, अमोहा, गोथूभा, सुदसणा । सेस ते चेव, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसडा ।

तत्र योसौ पाश्चात्य अञ्जनकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि चतस्र नन्दा पुष्करिण्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा— नन्दिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा, सुदर्शना । शेष तच्चेव, तथैव दधिमुखपर्वता, तथैव सिद्धायतनानि यावत् वनषण्डानि ।

३४२ पश्चिम के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओं मे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं—
१ नदिषेणा, २ अमोघा,
३ गोस्तूपा, ४ सुदर्शना ।
शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है ।

३ तत्थ ण जे से उत्तरिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा— विजया, वेजयती, जयती, अपराजिता ।

तत्र योसौ उदीच्य अञ्जनकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि चतस्र नन्दा पुष्करिण्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता ।

३४३ उत्तर के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं—
१ विजया, २ वैजयन्ती ३ जयन्ती,
४ अपराजिता ।

ताओ ण णदाओ पुक्खरिणीओ एग जोयणसयसहस्स, सेस त चेव पमाण, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसडा ।

ता नन्दा पुष्करिण्य एक योजनशतसहस्र, शेष तच्चैव प्रमाण, तथैव दधिमुखकपर्वता, तथैव सिद्धायतनानि यावत् वनषण्डानि ।

शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है ।

४४. णदीसरवरस्स ण दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, त जहा— उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए ।

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य चक्रवालविष्कम्भस्य बहुमध्यदेशभागे चतसृषु विदिशासु चत्वार रतिकरकपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा— उत्तरपौरस्त्य रतिकरकपर्वत, दक्षिणपौरस्त्य रतिकरकपर्वत, दक्षिणपाश्चात्य रतिकरकपर्वत, उत्तरपाश्चात्य रतिकरकपर्वत ।

३४४ नदीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल विष्कभ [वलय-विस्तार] के ठीक वीच मे चारो विदिशाओ मे चार रतिकर पवत हैं—
१ उत्तर पूर्व मे—ईशानकोण मे,
२ दक्षिण पूर्व मे—आग्नेयकोण मे,
३ दक्षिण पश्चिम मे—नैऋत्यकोण मे,
४ उत्तर पश्चिम मे—वायव्यकोण मे ।

ते ण रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइ उव्वेहेण, सव्वत्थ समा झल्लरिसठाणसठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खभेण, एक्कतीस जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेण, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

ते रतिकरकपर्वता दशयोजनशतानि ऊर्ध्व उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समा झल्लरिसंस्थान सस्थिता, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशत परिक्षेपेण, सर्वरत्नमया अच्छा यावत् प्रतिरूपा ।

वे रतिकर पर्वत हजार योजन ऊचे और हजार कोस गहरे हैं। वे नीचे, ऊपर और वीच मे सव स्थानो मे [चौडाई की अपेक्षा] समान हैं। उनकी आकृति झल्लरी—[झाझ-मजीरे के समान वर्तुलाकार दो टुकडो से वना हुआ वाजा, जो पूजा के समय वजाया जाता है] के समान है। उनकी चौडाई दस हजार योजन की हैं। उनकी परिधि ३१६२३ योजन है। वे सर्व रत्नमय यावत् रमणीय है ।

३४५ तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीण जबुद्दीव-पमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
णदुत्तरा, णदा,
उत्तरकुरा, देवकुरा।
कण्हाए, कण्हराईए,
रामाए, रामरक्खियाए।

तत्र योसौ उत्तरपौरस्त्य रतिकरकपर्वत॰, तस्य चतुर्दिशि ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणा अग्रमहिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणा चतस्र राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नन्दोत्तरा, नन्दा, उत्तरकुरु, देवकुरु।
कृष्णाया, कृष्णराजिकाया, रामाया, रामरक्षिताया।

३४५ उत्तर-पूर्व के रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र ईशान की चारो पटरानियो—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा और रामरक्षिता—के जम्बूद्वीप जितनी वडी चार राजधानिया हैं—
१ नदोत्तरा, २ नदा, ३ उत्तरकुरा,
४ देवकुरा।

३४६. तत्थ ण जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीव-पमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
समणा, सोमणसा,
अच्चिमाली, मणोरमा।
पउमाए, सिवाए,
सतीए, अजूए।

तत्र योसौ दक्षिणपौरस्त्य रतिकरकपर्वतः, तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणा अग्रमहिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणा चतस्र राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समना, सौमनसा, अर्चिमालिनी,
मनोरमा।
पद्माया, शिवाया, शच्या, अञ्ज्वा।

३४६ दक्षिण-पूर्व के रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र शक्र की चारो पटरानियो—पद्मा, शिवा, शची और अञ्जू—के जम्बूद्वीप जितनी वडी चार राजधानिया हैं—
१ समना, २ सोमनसा,
३ अर्चिमालिनी, ४ मनोरमा।

३४७. तत्थ ण जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीण जबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
भूता, भूतवडेंसा,
गोथूभा, सुदसणा।
अमलाए, अच्छराए,
णवमियाए, रोहिणीए।

तत्र योसौ दक्षिणपाश्चात्य रतिकरकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणा अग्रमहिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणमात्रा चतस्र. राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भूता, भूतावतसा, गोस्तूपा, सुदर्शना।
अमलाया, अप्सरस, नवमिकाया
रोहिण्या।

३४७ दक्षिण-पश्चिम के रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवेन्द्र, देवराज शक्र की चारो पटरानियो—अमला, अप्सरा, नवमिता और रोहिणी—के जम्बूद्वीप जितनी वडी चार राजधानिया हैं—
१ भूता, २ भूतावतसा,
३ गोस्तूपा, ३ सुदर्शना।

३४८ तत्थ ण जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीण जबुद्दीवप्प-

तत्र योसौ उत्तरपाश्चात्य, रतिकरकपर्वत, तस्य चतुर्दिशि ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणा अग्रमहिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणमात्रा चतस्र

३४८ उत्तर-पश्चिम मे रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र ईशान की चारो पटरानियो—वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुधरा के जम्बूद्वीप जितनी

माणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
रयणा, रतणुच्चया,
सव्वरतणा, रतणसचया।
वसूए, वसुगुत्ताए,
वसुमित्ताए, वसुधराए।

राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रत्ना, रत्नोच्चया, सर्वरत्ना,
रत्नसचया।
वस्वा, वसुगुप्ताया, वसुमित्राया,
वसुन्धराया।

वही चार राजधानिया हैं—
१ रत्ना, २ रत्नोच्चया,
३ सर्वरत्ना, ४ रत्नसचया।

सच्च-पद

३४९ चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा—
णामसच्चे, ठवणसच्चे,
दव्वसच्चे, भावसच्चे।

सत्य-पदम्

चतुर्विध सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामसत्य, स्थापनासत्य, द्रव्यसत्य,
भावसत्यम्।

सत्य-पद

३४९ सत्य के चार प्रकार हैं—
१ नामसत्य, २ स्थापनासत्य,
३ द्रव्यसत्य, ४ भावसत्य।

आजीविय-तव-पद

३५० आजीवियाण चउव्विहे तवे पण्णत्ते, त जहा—
उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जूहणता, जिब्भिदियपडिसलीणता।

आजीविक-तप:-पदम्

आजीविकाना चतुर्विध तप प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उग्रतप, घोरतप, रसनिर्यूहण, जिह्वेन्द्रियप्रतिसलीनता।

आजीविक-तप-पद

३५० आजीविको के तप के चार प्रकार है—
१. उग्रतप—तीन दिन का उपवास,
२ घोरतप, ३ रस-निर्यूहण—घृत आदि रस का परित्याग, ४ जिह्वेन्द्रिय प्रतिसलीनता—मनोज्ञ और अमनोज्ञ आहार मे राग-द्वेष रहित प्रवृत्ति।[८]

३५१ चउव्विहे सजमे पण्णत्ते, त जहा—
मणसजमे, वइसजमे,
कायसजमे, उवगरणसजमे।

चतुर्विध सयम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मन सयम, वाक्सयम, कायसयम,
उपकरणसयम।

३५१ सयम के चार प्रकार हैं—
१ मन-सयम, २ वाक्-सयम,
३ काय-सयम, ४ उपकरण-सयम।

३५२ चउव्विधे चियाए पण्णत्ते, त जहा—
मणचियाए, वइचियाए,
कायचियाए, उवगरणचियाए।

चतुर्विध त्याग प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मनस्त्याग, वाक्त्याग, कायत्याग,
उपकरणत्याग।

३५२ त्याग के चार प्रकार हैं—
१ मन-त्याग, २ वाक्-त्याग,
३ काय-त्याग, ४. उपकरण-त्याग।

३५३ चउव्विहा अकिंचणता पण्णत्ता, त जहा—
मणअकिंचणता, वइअकिंचणता,
कायअकिंचणता,
उवगरणअकिंचणता।

चतुर्विधा अकिञ्चनता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनोऽकिञ्चनता, वागकिञ्चनता,
कायाऽकिञ्चनता,
उपकरणाऽकिञ्चनता।

३५३ अकिञ्चनता के चार प्रकार हैं—
१ मन-अकिञ्चनता,
२ वाक्-अकिञ्चनता,
३ काय-अकिञ्चनता,
४ उपकरण-अकिञ्चनता।

तइओ उद्देसो

कोह-पदं

३५४ चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पव्वयराई, पुढविराई,
वालुयराई, उदगराई।
एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, त जहा—
पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे,
वालुयराइसमाणे, उदगराइसमाणे।

१ पव्वयराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, णेरइएसु उववज्जति,
२ पुढविराइसमाण कोहमणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३ वालुयराइसमाण कोहमणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति,
४. उदगराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, देवेसु उववज्जति।

क्रोध-पदम्

चतस्र राजय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पर्वतराजि, पृथिवीराजि,
वालुकाराजि, उदकराजि।
एवमेव चतुर्विध क्रोध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पर्वतराजिसमान, पृथिवीराजिसमान,
वालुकाराजिसमान, उदकराजिसमान।

१. पर्वतराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीव काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२ पृथिवीराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीव काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३ वालुकाराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीव काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. उदकराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीव काल करोति, देवेषु उपपद्यते।

क्रोध-पदम्

३५४ राजि [रेखा] चार प्रकार की होती है—
१ पर्वत-राजि, २ मृत्तिका-राजि,
३ वालुका-राजि, ४ उदक-राजि।

इसी प्रकार क्रोध भी चार प्रकार का होता है—१ पर्वत-राजि के समान—अनन्तानुबन्धी, २ मृत्तिका-राजि के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ वालुका-राजि के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४ उदक-राजि के समान—सज्वलन।

१ पर्वत-राजि के समान क्रोध मे अनुप्रविष्ट [प्रवर्तमान] जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है,
२ मृत्तिका-राजि के समान क्रोध मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर तिर्यञ्च योनि मे उत्पन्न होता है,
३ वालुका-राजि के समान क्रोध मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर मनुष्य योनि मे उत्पन्न होता है,
४ उदक-राजि के समान क्रोध मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर देवताओ मे उत्पन्न होता है।[२]

भाव-पदं

३५५. चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—
कद्दमोदए, खजणोदए,
वालुओदए, सेलोदए।

एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते, त जहा—

भाव-पदम्

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कर्दमोदक, खञ्जनोदक, वालुकोदक, शैलोदकम्।

एवमेव चतुर्विध भाव प्रज्ञप्त, तद्यथा—

भाव-पद

३५५ उदक चार प्रकार का होता है—
१ कर्दम उदक, २ खञ्जन उदक—चिमटने वाला कीचड, ३ वालुका उदक, ४ शैल उदक।

इसी प्रकार भाव [रागद्वेषात्मक परिणाम] चार प्रकार का होता है—

कद्दमोदगसमाणे, खंजणोदगसमाणे, वालुओदगसमाणे, सेलोदगसमाणे।

कर्दमोदकसमान, खञ्जनोदकसमान, वालुकोदकसमान, शैलोदकसमान।

१. कर्दम उदक के समान, २. खञ्जन उदक के समान, ३. बालुका उदक के समान, ४. शैल उदक के समान।

१. कद्दमोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जति,
२. °खंजणोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३. वालुओदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति,°
४. सेलोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जति।

१. कर्दमोदकसमानं भावं अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. खञ्जनोदकसमानं भावं अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. वालुकोदकसमानं भावं अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. शैलोदकसमानं भावं अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, देवेषु उपपद्यते।

१. कर्दम-उदक के समान भाव में अनुप्रविष्ट जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है,
२. खञ्जन-उदक के समान भाव में अनुप्रविष्ट जीव मरकर तिर्यञ्चयोनि में उत्पन्न होता है,
३. बालुका-उदक के समान भाव में अनुप्रविष्ट जीव मरकर मनुष्ययोनि में उत्पन्न होता है,
४. शैल-उदक के समान भाव में अनुप्रविष्ट जीव मरकर देवताओं में उत्पन्न होता है।

रुत-रूव-पद

रुत-रूप-पदम्

रुत-रूप-पद

३५६ चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—रुतसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वारः पक्षिणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रुतसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो रुतसम्पन्नः, एकः रुतसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो रुतसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

३५६ पक्षी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पक्षी स्वरसम्पन्न होते हैं, पर रूपसम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पक्षी रूपसम्पन्न होते हैं, पर स्वरसम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पक्षी रूपसम्पन्न भी होते हैं और स्वरसम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पक्षी रूपसम्पन्न भी नहीं होते और स्वरसम्पन्न भी नहीं होते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रुतसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रुतसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो रुतसम्पन्नः, एकः रुतसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो रुतसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष स्वरसम्पन्न होते हैं, पर रूपसम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष रूपसम्पन्न होते हैं, पर स्वरसम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष रूपसम्पन्न भी होते हैं और स्वरसम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष रूपसम्पन्न भी नहीं होते और स्वरसम्पन्न भी नहीं होते।

पत्तिय-अपत्तिय-पदं

३५७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पत्तिय करेमीतेगे पत्तिय करेति,
पत्तिय करेमीतेगे अप्पत्तियं करेति,
अप्पत्तिय करेमीतेगे पत्तियं करेति,
अप्पत्तिय करेमीतेगे अप्पत्तिय करेति।

३५८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अप्पण्णो णाममेगे पत्तिय करेति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे पत्तियं करेति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि पत्तिय करेति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो पत्तिय करेति, णो परस्स।

३५९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पत्तिय पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति,
पत्तिय पवेसामीतेगे अप्पत्तिय पवेसेति,
अप्पत्तिय पवेसामीतेगे पत्तिय पवेसेति,
अप्पत्तिय पवेसामीतेगे, अप्पत्तिय पवेसेति।

३६०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

प्रीतिक-अप्रीतिक-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रीतिक करोमीत्येक प्रीतिक करोति,
प्रीतिक करोमीत्येक अप्रीतिक करोति,
अप्रीतिक करोमीत्येक प्रीतिक करोति,
अप्रीतिक करोमीत्येक अप्रीतिक करोति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मन नामैक प्रीतिक करोति, नो परस्य,
परस्य नामैक प्रीतिक करोति, नो आत्मन,
एक आत्मनोऽपि प्रीतिक करोति, परस्यापि,
एक नो आत्मन प्रीतिक करोति, नो परस्य।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रीतिक प्रवेशयामीत्येक प्रीतिक प्रवेशयति,
प्रीतिक प्रवेशयामीत्येक अप्रीतिक प्रवेशयति,
अप्रीतिक प्रवेशयामीत्येक प्रीतिक प्रवेशयति,
अप्रीतिक प्रवेशयामीत्येक अप्रीतिक प्रवेशयति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

प्रीतिक-अप्रीतिक-पद

३५७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्रीति [या प्रतीति] करू ऐसा सोचकर प्रीति ही करते हैं, २ कुछ पुरुष प्रीति करू ऐसा सोचकर अप्रीति करते हैं, ३ कुछ पुरुष अप्रीति करू ऐसा सोचकर प्रीति करते हैं, ४ कुछ पुरुष अप्रीति करू ऐसा सोचकर अप्रीति ही करते हैं।

३५८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष [जो स्वार्थी होते ह] अपने पर प्रीति [या प्रतीति] करते हैं दूसरो पर नही करते, २ कुछ पुरुष दूसरो पर प्रीति करते हैं अपने पर नही करते, ३ कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति करते हैं और दूसरो पर भी प्रीति करते हैं, ४ कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति नही करते तथा दूसरो पर भी प्रीति नही करते।

३५९ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे प्रीति [या विश्वास] उत्पन्न करना चाहते है और वैसा कर देते हैं, २ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे प्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु वैसा कर नही पाते, ३ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु वैसा कर नही पाते, ४ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं और वैसा कर देते हैं।[८४]

३६० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—

अप्पणो णाममेगे पत्तिय पवेसेति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे पत्तिय पवेसेति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि पत्तिय पवेसेति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो पत्तिय पवेसेति, णो परस्स ।

आत्मन नामैक प्रीतिक प्रवेशयति, नो परस्य,
परस्य नामैक प्रीतिक प्रवेशयति, नो आत्मन,
एक आत्मनोऽपि प्रीतिक प्रवेशयति, परस्यापि,
एक नो आत्मन प्रीतिक प्रवेशयति, नो परस्य ।

१ कुछ पुरुष अपने मन मे प्रीति [या विश्वास] का प्रवेश कर पाते हैं, पर दूसरो के मन मे नही, २ कुछ पुरुष दूसरो के मन मे प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं, पर अपने मन मे प्रीति का प्रवेश नही कर पाते, ३ कुछ पुरुष अपने मन मे भी प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं और दूसरो के मन मे भी प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने मन मे प्रीति का प्रवेश कर पाते है और न दूसरो के मन मे भी प्रीति का प्रवेश कर पाते है ।

उपकार-पदं

३६१ चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—
पत्तोवए, पुप्फोवए, फलोवए, छायोवए ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पत्तोवारुक्खसमाणे,
पुप्फोवारुक्खसमाणे,
फलोवारुक्खसमाणे,
छायोवारुक्खसमाणे ।

उपकार-पदम्

चत्वार रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पत्रोपग, पुष्पोपग, फलोपग, छायोपग ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पत्रोपगरुक्षसमान, पुष्पोपगरुक्षसमान, फलोपगरुक्षसमान, छायोपगरुक्षसमान ।

उपकार-पद

३६१ वृक्ष चार प्रकार के होते है—
१ पत्तो वाले, २ फूलो वाले,
३ फलो वाले, ४ छाया वाले ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ पत्तो वाले वृक्षो के समान—सूत्र के दाता, २ फूलो वाले वृक्षो के समान—अर्थ के दाता, ३ फलो वाले वृक्षो के समान—सूत्रार्थ का अनुवर्तन और सरक्षण करने वाले, ४ छाया वाले वृक्षो के समान—सूत्रार्थ की सतत उपासना करने वाले ।[५]

आसास-पद

३६२ भारण्ण वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, त जहा—
१ जत्थ ण असाओ अस साहरइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
२ जत्थवि य ण उच्चार वा पासवण वा परिट्ठवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
३ जत्थवि य ण णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावाससि वा वास उवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,

आश्वास-पदम्

भार वहमानस्य चत्वार आश्वासा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ यत्र असाद् अस सहरति, तत्राऽपि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,
२ यत्राऽपि च उच्चार वा प्रस्रवण वा परिष्ठापयति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,
३ यत्राऽपि च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वास उपैति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,

आश्वास-पद

३६२ भारवाही के लिए चार आश्वास-स्थान [विश्राम] होते हैं—
१ पहला आश्वास तब होता है जब वह भार को एक कधे से दूसरे कधे पर रख लेता है,
२ दूसरा आश्वास तब होता है जब वह लघुशका या बडी शका करता है,
३ तीसरा आश्वास तब होता है जब वह नागकुमार, सुपर्णकुमार आदि के आवासो मे [रात्रिकालीन] निवास करता है,

४ जत्थवि य ण आवकहाए चिट्ठति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते। एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, त जहा—
१. जत्थवि य णं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमणं-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइ पडिवज्जति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
२ जत्थवि य ण सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
३ जत्थवि य ण चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्ण पोसह सम्म अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
४ जत्थवि य ण अपच्छिम-मारणतितसलेहणा-भूसणा-भूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालमणवकखमाणे विहरति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

४ यत्रापि च यावत्कथायै तिष्ठति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त। एवमेव श्रमणोपासकस्य चत्वार आश्वासा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ यत्रापि च शीलव्रत-गुणव्रत-विरमण-प्रत्याख्यान-पोषधोपवासान् प्रतिपद्यते, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,
२ यत्रापि च सामायिक देशावकाशिक सम्यगनुपालयति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,
३ यत्रापि च चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टापौर्णमासीषु प्रतिपूर्ण पोषध सम्यगनुपालयति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त,
४ यत्रापि च अपश्चिम-मारणान्तिक-सलेखना-जोषणा-जुष्ट भक्तपानप्रत्याख्यात प्रायोपगत कालमनवकाङ्क्षन् विहरति, तत्रापि च तस्य एक आश्वास प्रज्ञप्त।

४ चौथा आश्वास तब होता है जब वह कार्य को सपन्न कर भारमुक्त हो जाता है। इसी प्रकार श्रमणोपासक [श्रावक] के लिए भी चार आश्वास होते हैं—
१ जब वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है, तब पहला आश्वास होता है,
२ जब वह सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत का सम्यक् अनुपालन करता है तब दूसरा आश्वास होता है,
३ जब वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण—दिन रात भर पोषध का सम्यक् अनुपालन करता है, तब तीसरा आश्वास होता है,
४ जब वह अन्तिम-मारणातिक-सलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त पान का त्याग कर प्रायोपगमन अनशन को स्वीकार कर मृत्यु के लिए अनुत्सुक होकर विहरण करता है, तब चौथा आश्वास होता है।

उदित-अत्थमित-पदं

३६३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उदितोदिते णाममेगे,
उदितत्थमिते णाममेगे,
अत्थमितोदिते णाममेगे,
अत्थमितत्थमिते णाममेगे।
भरहे राया चाउरतचक्कवट्टी ण उदितोदिते, बभदत्ते ण राया चाउरतचक्कवट्टी उदितत्थमिते,

उदित-अस्तमित-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उदितोदित नामैक,
उदीतास्तमित नामैक,
अस्तमितोदित नामैक,
अस्तमितास्तमित नामैक।
भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती उदितोदित, ब्रह्मदत्त राजा चातुरन्त-चक्रवर्त्ती उदितास्तमित, हरिकेशवल

उदित-अस्तमित-पद

३६३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष उदितोदित होते हैं, प्रारम्भ मे भी उन्नत तथा अन्त मे भी उन्नत, जैसे—चतुरत चक्रवर्ती भरत, २ कुछ पुरुष उदितास्तमित होते हैं—प्रारम्भ मे उदित तथा अत मे अनुदित, जैसे—चतुरत चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, ३ कुछ पुरुष अस्तमितोदित होते हैं—प्रारम्भ मे अनुन्नत तथा अन्त मे उन्नत, जैसे—हरिकेशवल अनगार, ४ कुछ पुरुष अस्तमितास्तमित

हरिएसबले णं अणगारे अत्थमितोदिते, काले णं सोयरिये अत्थमितत्थमिते।

अनगार अस्तमितोदित, काल[1] शौकरिक अस्तमितास्तमित।

होते हैं—प्रारम्भ में भी अनुन्नत तथा अन्त में भी अनुन्नत, जैसे—काल शौकरिक।

जुम्म-पद

३६४ चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, त जहा—
कडजुम्मे, तेयोए,
दावरजुम्मे, कलिओए।

युग्म-पदम्

चत्वार युग्मा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म, कल्योज[1]।

युग्म-पद

३६४ युग्म [राशि-विशेष] चार हैं—
१. कृत-युग्म—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष चार रहे, २ त्र्योज—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष तीन रहे, ३ द्वापर-युग्म—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष दो रहे, ४ कल्योज—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष एक रहे[1]।

३६५ णेरइयाण चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, त जहा—
कडजुम्मे, तेओए,
दावरजुम्मे, कलिओए।

नैरयिकाणा चत्वार युग्मा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म, कल्योज।

३६५ नैरयिकों के चार युग्म होते हैं—
१ कृत-युग्म, २ त्र्योज, ३ द्वापर-युग्म, ४ कल्योज।

३६६ एव—असुरकुमाराण जाव थणियकुमाराण।
एव—पुढविकाइयाण आउ-तेउ-वाउ-वणस्सतिकाइयाण वेंदियाण तेंदियाण चउरिंदियाण पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण मणुस्साण वाणमतरजोइसियाण वेमाणियाण—सव्वेसि जहा णेरइयाण।

एवम्—असुरकुमाराणा यावत् स्तनितकुमाराणाम्।
एवम्—पृथिवीकायिकाना अप्-तेजस्-वायु-वनस्पतिकायिकाना द्वीन्द्रियाणा त्रीन्द्रियाणा चतुरिन्द्रियाणा पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकाना मनुष्याणा वानमन्तर-ज्योतिष्काना वैमानिकाना—सर्वेषा यथा नैरयिकाणाम्।

३६६ इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक तथा पृथ्वी, अप्, तैजस, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रियतिर्यक्योनिज, मनुष्य, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इन सबके नैरयिकों की भाति चार-चार युग्म होते हैं।

सूर-पद

३६७. चत्तारि सूरा पण्णत्ता, त जहा—
खतिसूरे, तवसूरे,
दाणसूरे, जुद्धसूरे,
खतिसूरा अरहता,
तवसूरा अणगारा,
दाणसूरे वेसमणे,
जुद्धसूरे वासुदेवे।

शूर-पदम्

चत्वार शूरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षान्तिशूर, तप शूर, दानशूर, युद्धशूर।
क्षान्तिशूरा अर्हन्त, तप शूरा, अनगारा,
दानशूरो वैश्रमण, युद्धशूरो वासुदेव।

शूर-पद

३६७ शूर चार प्रकार के होते हैं—
१ शान्ति शूर, २ तप शूर,
३ दान शूर, ४ युद्ध शूर।
अर्हन्त क्षान्ति शूर होते हैं,
अनगार तप शूर होते हैं,
वैश्रमण दान शूर होता है,
वासुदेव युद्ध शूर होता है।

उच्चणीय-पदं

३६८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उच्चे णाममेगे उच्चच्छंदे,
उच्चे णाममेगे णीयच्छंदे,
णीए णाममेगे उच्चच्छंदे,
णीए णाममेगे णीयच्छंदे ।

उच्चनीच-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उच्च नामैक उच्चच्छन्द,
उच्च नामैक नीचच्छन्द,
नीच नामैक उच्चच्छन्द,
नीच नामैक नीचच्छन्द ।

उच्चनीच-पद

३६८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि मे उच्च होते है और उनके विचार भी उच्च होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि मे उच्च होते हैं पर उनके विचार नीचे होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि मे नीचे होते हैं पर उनके विचार उच्च होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि मे भी नीचे होते हैं और उनके विचार भी नीचे होते हैं ।

लेसा-पद

३६९ असुरकुमाराण चत्तारि लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा,
काउलेसा, तेउलेसा ।

३७०. एव—जाव थणियकुमाराणं ।
एवं—पुढविकाइयाण आउवणस्सइ-काइयाण वाणमंतराण—सव्वेसि जहा असुरकुमाराण ।

लेश्या-पदम्

असुरकुमाराणा चतस्र लेश्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या ।

एवम्—यावत् स्तनितकुमाराणाम् ।
एवम्—पृथिवीकायिकाना अप्वनस्पति-कायिकाना वानमन्तराणा—सर्वेषा यथा असुरकुमाराणाम् ।

लेश्या-पद

३६९ असुरकुमार देवताओ के चार लेश्याए होती है—
१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या,
३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या ।

३७० इसी प्रकार शेष भवनपति देवो, पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवो और वानमन्तर देवो इन सबके चार-चार लेश्याए होती हैं ।

जुत्त-अजुत्त-पदं

३७१. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,

युक्त-अयुक्त-पदम्

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्त,
अयुक्त नामैक अयुक्तम् ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,

युक्त-अयुक्त-पद

३७१ यान चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ यान युक्त और युक्त-रूप वाले होते है—बैल आदि से जुडे हुए होकर वस्त्राभरणों मे सुशोभित होते हैं, २ कुछ यान युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ यान अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष युक्त और युक्त-रूप

अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

[illegible]

३७२. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैकं युक्तपरिणतम्,
युक्तं नामैकम् अयुक्तपरिणतम्,
अयुक्तं नामैकं युक्तपरिणतम्,
अयुक्तं नामैकम् अयुक्तपरिणतम्।

[illegible]

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

[illegible]

३७३. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैकं युक्तरूपम्,
युक्तं नामैकम् अयुक्तरूपम्,
अयुक्तं नामैकं युक्तरूपम्,
अयुक्तं नामैकम् अयुक्तरूपम्।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तरूपः,
युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः।

[illegible]

३७४. चत्तारि जाणा पण्णत्ता तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैकं युक्तशोभम्,
युक्तं नामैकम् अयुक्तशोभम्,
अयुक्तं नामैकं युक्तशोभम्,
अयुक्तं नामैकम् अयुक्तशोभम्।

[illegible]

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त और युक्त शोभा वाले होते हैं—धन आदि से समृद्ध होकर शोभा-सम्पन्न होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

३७५ चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्त,
अयुक्त नामैक अयुक्तम्।

३७५ युग्य [बैल, अश्व आदि की जोडी] चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त होते हैं—बाह्य उपकरणो से युक्त होकर वेग से भी युक्त होते हैं, २ कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त होते हैं, ३ कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त होते हैं, ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्त,
अयुक्त नामैक अयुक्त।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त होते हैं—सम्पदा से युक्त होकर वेग से भी युक्त होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त होते हैं, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

३७६ •चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्त नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणतम्।

३७६ युग्य चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, २ कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३ कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते ।

युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्त नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणत ।

१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-प होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अ परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष अ होकर युक्त-परिणत होते हैं, ४ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-प होते हैं।

३७७. चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे ।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूपम् ।

३७७ युग्य चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक वाले होते हैं, २ कुछ युग्य युक्त अयुक्त-रूप वाले हाते है, ३ कुछ अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले हो ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूप ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के है—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अ रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अ होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, ४ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप होते है।

३७८ चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे ।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभम् ।

३७८ युग्य चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त वाले होते है, २ कुछ युग्य युक्त अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३ कुछ अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले हो ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे ।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३ कुछ अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले हो ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त वाले होते हैं।

सारहि-पदं

३७९ चत्तारि सारही पण्णत्ता, तं जहा—
जोयावइत्ता णामं एगे,
णो विजोयावइत्ता,
विजोयावइत्ता णाम एगे,
णो जोयावइत्ता,
एगे जोयावइत्तावि,
विजोयावइत्तावि,
एगे णो जोयावइत्ता,
णो विजोयावइत्ता।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जोयावइत्ता णाम एगे,
णो विजोयावइत्ता,
विजोयावइत्ता णाम एगे,
णो जोयावइत्ता,
एगे जोयावइत्तावि,
विजोयावइत्तावि,
एगे णो जोयावइत्ता,
णो विजोयावइत्ता।

सारथि-पदम्

चत्वारः सारथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
योजयिता नामैकः, नो वियोजयिता,
वियोजयिता नामैकः, नो योजयिता,
एकः योजयितापि, वियोजयितापि,
एकः नो योजयिता, नो वियोजयिता।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
योजयिता नामैकः, नो वियोजयिता,
वियोजयिता नामैकः, नो योजयिता,
एकः योजयितापि, वियोजयितापि,
एकः नो योजयिता, नो वियोजयिता।

सारथि-पद

३७९ सारथि चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ सारथि योजक होते हैं, किन्तु वियोजक नहीं होते—बैल आदि को गाड़ी में जोड़ने वाले होते हैं पर मुक्त करने वाले नहीं होते, २. कुछ सारथि वियोजक होते हैं, किन्तु योजक नहीं होते, ३. कुछ सारथि योजक भी होते हैं और वियोजक भी होते हैं, ४. कुछ सारथि योजक भी नहीं होते और वियोजक भी नहीं होते।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष योजक होते हैं, किन्तु वियोजक नहीं होते, २. कुछ पुरुष वियोजक होते हैं, किन्तु योजक नहीं होते, ३. कुछ पुरुष योजक भी होते हैं और वियोजक भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष योजक भी नहीं होते और वियोजक भी नहीं होते।

जुत्त-अजुत्त-पदं

३८० चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

युक्त-अयुक्त-पदम्

चत्वारः हयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

युक्त-अयुक्त-पद

३८० घोड़े चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २. कुछ घोड़े युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं, ३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २. कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त ही होते हैं।

३८१. °चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।	चत्वार हया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— युक्त नामैक युक्तपरिणत, युक्त नामैक अयुक्तपरिणत, अयुक्त नामैक युक्तपरिणत, अयुक्त नामैक. अयुक्तपरिणत ।	३८१ घोडे चार प्रकार के होते है— १ कुछ घोडे युक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, २ कुछ घोडे युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३ कुछ घोडे अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, ४ कुछ घोडे अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।	एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— युक्त नामैक युक्तपरिणत, युक्त नामैक अयुक्तपरिणत, अयुक्त नामैक युक्तपरिणत, अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणत ।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है— १ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं।
३८२ चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।	चत्वार हया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— युक्त नामैक युक्तरूप, युक्त नामैक अयुक्तरूप, अयुक्त नामैक युक्तरूप, अयुक्त नामैक अयुक्तरूप ।	३८२ घोडे चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ घोडे युक्त होकर युक्त-रूप होते हैं, २ कुछ घोडे युक्त होकर अयुक्त-रूप होते हैं, ३ कुछ घोडे अयुक्त होकर युक्त-रूप होते हैं, ४ कुछ घोडे अयुक्त होकर अयुक्त-रूप होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगेअ जुत्तरूवे।	एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— युक्त नामैक युक्तरूप, युक्त नामैक अयुक्तरूप, अयुक्त नामैक युक्तरूप, अयुक्त नामैक अयुक्तरूप ।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप युक्त होकर युक्त-रूप होते हैं, २ कुछ पुरुप युक्त होकर अयुक्त-रूप होते हैं, ३ कुछ पुरुप अयुक्त होकर युक्त-रूप होते हैं, ४ कुछ पुरुप अयुक्त होकर अयुक्त-रूप होते हैं।
३८३ चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।	चत्वार हया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— युक्त नामैक युक्तशोभ, युक्त नामैक अयुक्तशोभ, अयुक्त नामैक युक्तशोभ, अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ ।	३८३ घोडे चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ घोडे युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, २. कुछ घोडे युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३ कुछ घोडे अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, ४ कुछ घोडे अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं।

३८४. चत्तारि गया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चत्वार गजा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्त,
अयुक्त नामैक अयुक्त।

३८४ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २ कुछ हाथी युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्त,
अयुक्त नामैक अयुक्त।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

३८५. *चत्तारि गया पण्णत्ता त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वार गजा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्त नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणत।

३८५ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी युक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्त नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणत।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर-युक्तपरिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं। ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते हैं।

३८६ चत्तारि गया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णामणेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जजुत्तरूवे।

चत्वार गजा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूप।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूप।

४८६ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते ह, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुप युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते हैं।

३८७ चत्तारि गया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।°

चत्वार गजा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभ।

३८७ हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते ह, २ कुछ पुरुप युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुप अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुप अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

पंथ-उप्पह-पद

३८८ चत्तारि जुग्गारिता पण्णत्ता, त जहा—
पथजाई णाममेगे, नो उप्पहजाई,
उप्पहजाई णाममेगे, नो पथजाई,

पथ-उत्पथ-पदम्

चत्वारि युग्यऋतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पथयायि नामैक, नो उत्पथयायि,
उत्पथयायि नामैक, नो पथयायि,

पथ-उत्पथ-पद

३८८ युग्य [घोडे आदि का जोडा] का ऋत [गमन] चार प्रकार का होता है—
१ कुछ युग्य मार्गगामी होते हैं, उन्मार्ग-गामी नही होते, २ कुछ युग्य उन्मार्ग-

एगे पथजाईवि, उप्पहजाईवि,
एगे णो पथजाई, णो उप्पहजाई।

एक पथयाय्यपि, उत्पथयाय्यपि,
एक नो पथयायी, नो उत्पथयायी।

गामी होते हैं, मार्गगामी नही होते, ३ कुछ युग्य मार्गगामी भी होते हैं और उन्मार्गगामी भी होते हैं, ४ कुछ युग्य मार्गगामी भी नही होते और उन्मार्ग गामी भी नहीं होते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पथजाई णाममेगे, णो उप्पहजाई,
उप्पहजाई णाममेगे, णो पथजाई,
एगे पथजाईवि, उप्पहजाईवि,
एगे णो पंथजाई, णो उप्पहजाई।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पथयायी नामैक, नो उत्पथयायी,
उत्पथयायी नामैक, नो पथयायी,
एक पथयाय्यपि, उत्पथयाय्यपि,
एक नो पथयायी, नो उत्पथयायी।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप मार्गगामी होते है, उन्मार्गगामी नही होते, २ कुछ पुरुप उन्मार्गगामी होते हैं, मार्गगामी नही होते, ३ कुछ पुरुप मार्गगामी भी होते हैं और उन्मार्गगामी भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न मार्गगामी होते हैं और न उन्मार्गगामी होते है।

रूव-सील-पदं

३८९. चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता, त जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे, णो गधसपण्णे,
गधसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, गधसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे, णो गधसपण्णे।

रूप-शील-पदम्

चत्वारि पुप्पाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो गन्धसम्पन्न,
गधसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नमपि, गन्धसम्पन्नमपि
एक नो रूपसम्पन्न, नो गन्धसम्पन्नम्।

रूप-शील-पद

३८९ पुष्प चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुष्प रूप-सम्पन्न होते हैं, गन्ध-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुष्प गन्ध-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुष्प रूप-सम्पन्न भी होते है और गन्ध-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुष्प न रूप-सम्पन्न होते हैं और न गन्ध-सम्पन्न होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे, णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, सीलसपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे, णो सीलसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक. नो रूपसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप रूप-सम्पन्न होते हैं, गन्ध-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुप गन्ध-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुप रूप-सम्पन्न भी होते और गन्ध-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न रूप-सम्पन्न होते हैं और न गन्ध-सम्पन्न होते हैं।

जाति-पद

३९०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
कुलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, कुलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे, णो कुलसपण्णे।

३९१ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे, णो वलसपण्णे,
वलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, वलसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे, णो वलसपण्णे।

३९२ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

३९३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जाति-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैकं, नो कुलसम्पन्नं,
कुलसम्पन्नं नामैकं, नो जातिसम्पन्नं,
एकं जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि,
एकं नो जातिसम्पन्नं, नो कुलसम्पन्नं।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नं नामैकं, नो वलसम्पन्नं,
वलसम्पन्नं नामैकं, नो जातिसम्पन्नं,
एकं जातिसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि,
एकं नो जातिसम्पन्नं, नो वलसम्पन्नं।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नं नामैकं, नो रूपसम्पन्नं,
रूपसम्पन्नं नामैकं, नो जातिसम्पन्नं,
एकं जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकं नो जातिसम्पन्नं, नो रूपसम्पन्नं।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

जाति-पद

३९० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न होते हैं।

३९१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न होते हैं।

३९२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

३९३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—

जातिसपण्णे णाममेगे,
णो सुयसपण्णे,
सुयसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, सुयसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो सुयसपण्णे।

जातिसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो श्रुतसम्पन्न।

१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होत हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते है।

३६४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे
णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णाममेगे,
णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि,
सीलसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो सीलसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न।

३६४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं।

३६५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे,
णो चरित्तसपण्णे,
चरित्तसपण्णे णाममेगे,
णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि,
चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो चरित्तसंपण्णे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक,
नो चरित्रसम्पन्न,
चरित्रसम्पन्न नामैक,
नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि,
चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न,
नो चरित्रसम्पन्न।

३६५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

कुल-पदं

कुल-पदम्

कुल-पद

३६६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो बलसपण्णे,
बलसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, बलसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो बलसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो बलसम्पन्न,
बलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो बलसम्पन्न।

३६६ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।

३९७ °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो रूवसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न।

३९७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

३९८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो सुयसपण्णे,
सुयसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, सुयसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो सुयसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो श्रुतसम्पन्न।

३९८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

३९९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, सीलसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो सीलसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न।

३९९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं।

४०० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसपण्णे,
चरित्तसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो चरित्रसम्पन्न,
चरित्रसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो चरित्रसम्पन्न।

४०० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

बल-पद

४०१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे, णो बलसपण्णे,
एगे बलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो बलसपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

बल-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,
एक वलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो वलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न।

बल-पद

४०१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

४०२ *चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
बलसपण्णे णाममेगे, णो सुयसपण्णे,
सुयसंपण्णे णाममेगे, णो बलसपण्णे,
एगे बलसपण्णेवि, सुयसपण्णेवि,
एगे णो बलमपण्णे, णो सुयसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,
एक वलसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एक नो वलसम्पन्न, नो श्रुतसम्पन्न।

४०२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते है और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

४०३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
बलसपण्णे णाममेगे, णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णाममेगे, णो बलसपण्णे,
एगे बलसपण्णेवि, सीलसपण्णेवि,
एगे णो बलसपण्णे, णो सीलसपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,
एक वलसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक नो वलसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न।

४०३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते है और शील-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते ह और न शील-सम्पन्न होते हैं।

४०४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसपण्णे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वलसम्पन्न नामैक नो चरित्रसम्पन्न,

४०४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते,

चरित्तसपण्णे णाममेगे,
णो वलसपण्णे,
एगे वलसंपण्णेवि, चरित्तसंपण्णेवि,
एगे णो वलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे°

चरित्रसम्पन्न नामैक नो वलसम्पन्न,
एक वलसम्पन्नोऽपि,
चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एक नो वलसम्पन्न,
नो चरित्रसम्पन्न ।

३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

रूव-पद

४०५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे,
णो सुयसपण्णे,
सुयसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, सुयसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे णो सुयसपण्णे

रूप-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एक नो रूपसम्पन्न, नो श्रुतसम्पन्न ।

रूप-पद

४०५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

४०६ •चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे,
णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, सीलसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे, णोसीलसपण्णे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक नो रूपसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न ।

४०६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं, ४, कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होत है और न शील-सम्पन्न होते हैं।

४०७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे,
णो चरित्तसपण्णे,
चरित्तसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे णो चरित्तसपण्णे°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो चरित्रसम्पन्न,
चरित्रसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एक नो रूपसम्पन्न, नो चरित्रसम्पन्न ।

४०७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

सुय-पदं

४०८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुयपसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसपण्णे,
सीलसपण्णे णासमेगे, णो सुयसपण्णे,
एगे सुयसंपण्णेवि, सीलसपण्णेवि,
एगे णो सुयसपण्णे, णो सीलसपण्णे।

श्रुत-पदम्

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
शीलसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
एक श्रुतसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एक नो श्रुतसम्पन्न, नो शीलसम्पन्न।

श्रुत-पद

४०८ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप श्रुत-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुप शील-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुप श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न श्रुत-सम्पन्न होते है और न शील-सम्पन्न होते हैं।

४०९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सुयसपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसपण्णे,
चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसपण्णे,
एगे सुयसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो सुयसपण्णे णो चरित्तसपण्णे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रुतसम्पन्न नामैक, नो चरित्रसम्पन्न,
चरित्रसम्पन्न नामैक, नो श्रुतसम्पन्न,
एक श्रुतसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पनोऽपि,
एक नो श्रुतसम्पन्न, नो चरित्रसम्पन्न।

४०९ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप श्रुत-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुप चरित्र-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुप श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते ह, ४ कुछ पुरुप न श्रुत-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

सील-पदं

४१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णता, त जहा—
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
चरित्तसपण्णे णाममेगे, णो सीलसपण्णे,
एगे सीलसपण्णेवि, चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो सीलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे

शील-पदम्

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शीलसम्पन्न नामैक, नो चरित्रसम्पन्न,
चरित्रसम्पन्न नामैक, नो शीलसम्पन्न,
एक शीलसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एक नो शीलसम्पन्न, नो चरित्रसम्पन्न।

शील-पद

४१० पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप शील-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुप चरित्र-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुप शील-सम्पन्न भी होते हैं और चरित्र-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न शील-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

आयरिय-पदं

४११. चत्तारि फला पण्णत्ता, त जहा—
आमलगमहुरे, मुद्दियामहुरे,
खीरमहुरे, खडमहुरे।

आचार्य-पदम्

चत्वारि फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आमलकमधुर, मृद्वीकामधुर,
क्षीरमधुर, खण्डमधुर।

आचार्य-पद

४११ फल चार प्रकार के होते हैं—
१ आवले की तरह मधुर,
२ द्राक्षा की तरह मधुर,
३ दूध की तरह मधुर,
४ शर्करा की तरह मधुर।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—
आमलगमहुरफलसमाणे,
*मुद्दियामहुरफलसमाणे,
खीरमहुरफलसमाणे°,
खंडमहुरफलसमाणे ।

एवमेव चत्वार आचार्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आमलकमधुरफलसमान,
मृद्वीकामधुरफलसमान,
क्षीरमधुरफलसमान,
खण्डमधुरफलसमान ।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१ आमलक-मधुर फल के समान,
२ द्राक्षा-मधुर फल के समान,
३ दूध-मधुर फल के समान,
४ शर्करा-मधुर फल के समान ।

वेयावच्च-पदं

४१२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
आतवेयावच्चकरे णाममेगे,
णो परवेयावच्चकरे,
परवेयावच्चकरे णाममेगे,
णो आतवेयावच्चकरे,
एगे आतवेयावच्चकरेवि,
परवेयावच्चकरेवि,
एगे णो आतवेयावच्चकरे,
णो परवेयावच्चकरे ।

वैयावृत्त्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मवैयावृत्त्यकर नामैक,
नो परवैयावृत्त्यकर,
परवैयावृत्त्यकर नामैक,
नो आत्मवैयावृत्त्यकर,
एक आत्मवैयावृत्त्यकरोऽपि,
परवैयावृत्त्यकरोऽपि,
एक नो आत्मवैयावृत्त्यकर,
नो परवैयावृत्त्यकर ।

वैयावृत्त्य-पद

४१२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपनी सेवा करते है, दूसरों की नहीं करते, २ कुछ पुरुष दूसरों की सेवा करते हैं, अपनी नही करते, ३ कुछ पुरुष अपनी सेवा भी करते हैं और दूसरों की भी करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपनी सेवा करते हैं और न दूसरो की करते हैं ।

४१३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
करेति णाममेगे वेयावच्च,
णो पडिच्छइ,
पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्च,
णो करेति,
एगे करेति वि वेयावच्च, पडिच्छइवि,
एगे णो करेति वेयावच्च,
णो पडिच्छइ ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
करोति नामैक वैयावृत्त्य, नो प्रतीच्छति,
प्रतीच्छति नामैक वैयावृत्त्य,
नो करोति,
एक करोत्यपि वैयावृत्त्य, प्रतीच्छत्यपि,
एक नो करोत्यपि वैयावृत्त्य,
नो प्रतीच्छति ।

४१३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दूसरो को सेवा देते है, लेते नहीं, २ कुछ पुरुष दूसरो को सेवा नहीं देते, लेते हैं, ३ कुछ पुरुष दूसरों को सेवा देते भी हैं और लेते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न दूसरों को सेवा देते हैं, और न लेते हैं ।

अट्ठ-माण-पद

४१४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो अट्ठकरे,
एगे अट्ठकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो अट्ठकरे, णो माणकरे ।

अर्थ-मान-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अर्थकर नामैक, नो मानकर,
मानकर नामैक, नो अर्थकर,
एक अर्थकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक नो अर्थकर, नो मानकर ।

अर्थ-मान-पद

४१४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अर्थकर [कार्यकर्ता] होते हैं, अभिमानी नहीं होते, २ कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, अर्थकर नहीं होते, ३ कुछ पुरुष अर्थकर भी होते हैं और अभिमानी भी होते है, ४ कुछ पुरुष न अर्थकर होते हैं और न अभिमानी होते हैं ।

४१५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणट्ठकरे,
एगे गणट्ठकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणट्ठकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणार्थकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणार्थकर:,
एक: गणार्थकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणार्थकर:, नो मानकर:।

४१५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गण के लिए कार्य करते हैं, अभिमानी नहीं होते, २ कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, गण के लिए कार्य नहीं करते, ३ कुछ पुरुष गण के लिए कार्य भी करते है और अभिमानी भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न गण के लिए कार्य करते हैं और न अभिमानी होते हैं।

४१६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसंगहकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसंगहकरे,
एगे गणसंगहकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसंगहकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणसंग्रहकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणसंग्रहकर:,
एक: गणसंग्रहकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणसंग्रहकर:, नो मानकर:।

४१६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गण के लिए संग्रह करते हैं, अभिमानी नहीं होते, २ कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, गण के लिए संग्रह नहीं करते, ३ कुछ पुरुष गण के लिए संग्रह भी करते हैं और अभिमानी भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न गण के लिए संग्रह करते हैं और न अभिमानी होते हैं।

४१७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसोभकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसोभकरे,
एगे गणसोभकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसोभकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणशोभाकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर:, नामैक:, नो गणशोभाकर:,
एक: गणशोभाकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणशोभाकर:, नो मानकर:।

४१७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गण की शोभा बढाने वाले होते हैं, अभिमानी नहीं होते, २ कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, गण की शोभा बढाने वाले नहीं होते, ३ कुछ पुरुष गण की शोभा भी बढाने वाले होते हैं और अभिमानी भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न गण की शोभा बढ़ाने वाले होते है और न अभिमानी होते हैं।

४१८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसोहिकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसोहिकरे,
एगे गणसोहिकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसोहिकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणशोधिकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणशोधिकर:,
एक: गणशोधिकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणशोधिकर:, नो मानकर:।

४१८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले होते हैं, अभिमानी नहीं होते, २ कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, गण की शुद्धि करने वाले नहीं होते, ३ कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले भी होते हैं और अभिमानी भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न गण की शुद्धि करने वाले होते हैं और न अभिमानी ही होते हैं।

धम्म-पदं

४१९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
रूव णाममेगे जहति, णो धम्म,
धम्म णाममेगे जहति, णो रूव,
एगे रूवपि जहति, धम्मपि,
एगे णो रूव जहति, णो धम्म।

धर्म-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूप नामैक जहाति, नो धर्म,
धर्म नामैक जहाति, नो रूप,
एक रूपमपि जहाति, धर्ममपि,
एक नो रूप जहाति, नो धर्मम्।

धर्म-पद

४१९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष वेश का त्याग कर देते हैं, धर्म का त्याग नही करते, २ कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते हैं, वेश का त्याग नही करते, ३ कुछ पुरुष वेश का भी त्याग कर देते हैं और धर्म का भी त्याग कर देते हैं, ४ कुछ पुरुष न वेश का त्याग करते हैं और न धर्म का त्याग करते हैं।

४२० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
धम्मं णाममेगे जहति,
णो गणसठिंति,
गणसठिंति णाममेगे जहति,
णो धम्मं,
एगे धम्मवि जहति, गणसठिंतिवि,
एगे णो धम्म जहति, णो गणसठिंति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
धर्मं नामैक जहाति, नो गणसस्थिर्ति,
गणसस्थिर्ति नामैक जहाति, नो धर्म,
एक धर्ममपि जहाति, गणसस्थितिमपि,
एक नो धर्म जहाति, नो गणसस्थितिम्।

४२० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते हैं, गण-सस्थिति [गण-मर्यादा] का त्याग नही करते, २ कुछ पुरुष गण-सस्थिति का त्याग कर देते हैं, धर्म का त्याग नही करते, ३ कुछ पुरुष धम का भी त्याग कर देते हैं और गण-सस्थिति का भी त्याग करते हैं, ४ कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते हैं और न गण-सस्थिति का त्याग करते हैं।

४२१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पियधम्मे णाममेगे, णो दढधम्मे,
दढधम्मे णाममेगे, णो पियधम्मे,
एगे पियधम्मेवि, दढधम्मेवि,
एगे णो पियधम्मे, णो दढधम्मे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रियधर्मा नामैक, नो दृढधर्मा,
दृढधर्मा नामैक, नो प्रियधर्मा,
एक प्रियधर्मापि, दृढधर्मापि,
एक नो प्रियधर्मा, नो दृढधर्मा।

४२१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्रियधर्मा होते हैं, दृढधर्मा नही होते, २ कुछ पुरुष दृढधर्मा होते हैं, प्रियधर्मा नही होते, ३ कुछ पुरुष प्रियधर्मा भी होते हैं और दृढधर्मा भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न प्रियधर्मा होते हैं और न दृढधर्मा होते हैं[११]।

आयरिय-पदं

४२२ चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—
पव्वावणायरिए णाममेगे,
णो उवट्ठावणायरिए,

आचार्य-पदम्

चत्वार आचार्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रव्राजनाचार्य नामैक,
नो उपस्थापनाचार्य,

आचार्य-पद

४२२ आचार्य चार प्रकार के होते है—
१ कुछ आचार्य प्रव्रज्या देने वाले होते हैं, किन्तु उपस्थापना [महाव्रतो मे आरोपित] करने वाले नही होते,

उवट्ठावणायरिए णाममेगे,
णो पव्वावणायरिए,
एगे पव्वावणायरिएवि,
उवट्ठावणायरिएवि,
एगे णो पव्वावणायरिए,
णो उवट्ठावणायरिए—
धम्मायरिए।

उपस्थापनाचार्य नामैक,
नो प्रव्राजनाचार्य,
एक प्रव्राजनाचार्योऽपि,
उपस्थापनाचार्योऽपि,
एक नो प्रव्राजनाचार्य,
नो उपस्थापनाचार्य —
धर्माचार्य।

२ कुछ आचार्य उपस्थापना करने वाले होते हैं, किन्तु प्रव्रज्या देने वाले नहीं होते, ३ कुछ आचार्य प्रव्रज्या देने वाले भी होते हैं और उपस्थापना करने वाले भी होते हैं, ४ कुछ आचार्य न प्रव्रज्या देने वाले होते हैं और न उपस्थापना करने वाले होते हैं यहा आचार्य धर्माचार्य की कक्षा के हैं।[१२]

४२३ चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
उद्देसणायरिए णाममेगे,
णो वायणायरिए,
वायणायरिए णाममेगे,
णो उद्देसणायरिए,
एगे उद्देसणायरिएवि,
वायणायरिएवि,
एगे णो उद्देसणायरिए,
णो वायणायरिए—धम्मायरिए।

चत्वार आचार्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उद्देशनाचार्य नामैक, नो वाचनाचार्य,
वाचनाचार्य नामैक, नो उद्देशनाचार्य,
एक उद्देशनाचार्योऽपि, वाचनाचार्योऽपि,
एक नो उद्देशनाचार्य, नो वाचनाचार्य —
धर्माचार्य।

४२३ आचार्य चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ आचार्य उद्देशनाचार्य [पढने का आदेश देने वाले] होते हैं, किन्तु वाचनाचार्य [पढाने वाले] नहीं होते, २ कुछ आचार्य वाचनाचार्य होते हैं, किन्तु उद्देशनाचार्य नही होते, ३ कुछ आचार्य उद्देशनाचार्य भी होते हैं और वाचनाचार्य भी होते हैं, ४ कुछ आचार्य न उद्देशनाचार्य होते हैं और न वाचनाचार्य होते हैं। यहा आचार्य धर्माचार्य की कक्षा के हैं।

अंतेवासि-पदं

४२४ चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—
पव्वावणंतेवासी णाममेगे,
णो उवट्ठावणंतेवासी,
उवट्ठावणंतेवासी णाममेगे,
णो पव्वावणंतेवासी,
एगे पव्वावणंतेवासीवि,
उवट्ठावणंतेवासीवि,
एगे णो पव्वावणंतेवासी,
णो उवट्ठावणंतेवासी—
धम्मंतेवासी।

अन्तेवासि-पदम्

चत्वार अन्तेवासिन. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रव्राजनान्तेवासी नामैक,
नो उपस्थापनान्तेवासी,
उपस्थापनान्तेवासी नामैक,
नो प्रव्राजनान्तेवासी,
एक प्रव्राजनान्तेवास्यपि,
उपस्थापनान्तेवास्यपि,
एक नो प्रव्राजनान्तेवासी,
नो उपस्थापनान्तेवासी—
धर्मान्तेवासी।

अन्तेवासि-पद

४२४ अन्तेवासी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मुनि एक आचार्य के प्रव्रज्या-अन्तेवासी होते हैं, किन्तु उपस्थापना-अन्तेवासी नहीं होते, २ कुछ मुनि एक आचार्य के उपस्थापना-अन्तेवासी होते हैं, किन्तु प्रव्रज्या-अन्तेवासी नहीं होते, ३ कुछ मुनि एक आचार्य के प्रव्रज्या-अन्तेवासी भी होते हैं और उपस्थापना-अन्तेवासी भी होते हैं, ४ कुछ मुनि एक आचार्य के न प्रव्रज्या-अन्तेवासी होते हैं और न उपस्थापना-अन्तेवासी होते हैं।
यहा अन्तेवासी धर्मान्तेवासी की कक्षा के हैं[११]।

४२५ चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—
उद्देसणंतेवासी णाममेगे, णो वायणंतेवासी,
वायणंतेवासी णाममेगे, णो उद्देसणंतेवासी,
एगे उद्देसणंतेवासीवि, वायणंतेवासीवि,
एगे णो उद्देसणंतेवासी, णो वायणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

चत्वार अन्तेवासिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उद्देशनान्तेवासी नामैक, नो वाचनान्तेवासी,
वाचनान्तेवासी नामैक, नो उद्देशनान्तेवासी,
एक उद्देशनान्तेवास्यपि, वाचनान्तेवास्यपि,
एक नो उद्देशनान्तेवासी, नो वाचनान्तेवासी—धर्मान्तेवासी।

४२५ अन्तेवासी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मुनि एक आचार्य के उद्देशना-अन्तेवासी होते है, किन्तु वाचना-अन्तेवासी नही होते, २ कुछ मुनि एक आचार्य के वाचना-अन्तेवासी होते हैं, किन्तु उद्देशना-अन्तेवासी नही होते, ३ कुछ मुनि एक आचार्य के उद्देशना-अन्तेवासी भी होते हैं और वाचना-अन्तेवासी भी होते हैं, ४ कुछ मुनि एक आचार्य के न उद्देशना-अन्तेवासी होते हैं और न वाचना-अन्तेवासी होते हैं।
यहा अन्तेवासी धर्मान्तेवासी की कक्षा के है[५४]।

महाकम्म-अप्पकम्म-णिग्गंथ-पदं

४२६ चत्तारि णिग्गंथा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे, महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति,
२ रातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति,
३ ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति,
४. ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थ-पदम्

चत्वार निर्ग्रन्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा महाक्रिय अनातापी अशमित धर्मस्य अनाराधको भवति,
२ रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा अल्पक्रिय आतापी शमित धर्मस्य आराधको भवति,
३ अवमरात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा महाक्रिय अनातापी अशमित धर्मस्य अनाराधको भवति,
४ अवमरात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा अल्पक्रिय आतापी शमित धर्मस्य आराधको भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थ-पद

४२६ निर्ग्रन्थ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ रात्निक[५५] [दीक्षा-पर्याय मे बडे] श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्वी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नहीं होते,
२ कुछ रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी [तपस्वी] और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं,
३ कुछ अवमरात्निक [दीक्षा पर्याय मे छोटे] श्रमण-निर्ग्रन्थ महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नहीं होते,
४ कुछ अवमरात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं।

महाकम्म-अप्पकम्म-णिग्गंथी-पद

४२७ चत्तारि णिग्गथीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१ रातिणिया समणी णिग्गथी॰ महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

२. रातिणिया समणी णिग्गथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति,

३ ओमरातिणिया समणी णिग्गंथी महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

४ ओमरातिणिया समणी णिग्गथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति ।°

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थी-पदम्

चतस्र॰ निर्ग्रन्थ्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१. रात्निकी श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

२ रात्निकी श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति,

३. अवमरात्निका श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

४ अवमरात्निका श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति ।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थी-पद

४२७ निर्ग्रन्थिया चार प्रकार की होती हैं—

१ कुछ रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्विनी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नही होतीं,

२ कुछ रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी [तपस्विनी] और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती है,

३ कुछ अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नही होतीं,

४ कुछ अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती हैं ।

महाकम्म-अप्पकम्म-समणोवासग-पदं

४२८ चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, त जहा—

१ राइणिए समणोवासए महाकम्मे ॰महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति,

२ राइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति,

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-पदम्

चत्वार श्रमणोपासका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ रात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा महाक्रिय अनातापी अशमित धर्मस्य अनाराधको भवति,

२. रात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा अल्पक्रिय आतापी शमित धर्मस्य आराधको भवति,

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-पद

३२८ श्रमणोपासक चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ रात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्वी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नही होते,

२ कुछ रात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं,

३ ओमराइणिए समणोवासए महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति,
४ ओमराइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति।°

३. अवमरात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा महाक्रिय अनातापी अशमित धर्मस्य अनाराधको भवति,
४. अवमरात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा अल्पक्रिय आतापी शमित धर्मस्य आराधको भवति।

३ कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नही होते,
४. कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं।

महाकम्म-अप्पकम्म-समणोवासिया-पद

४२९ चत्तारि समणोवासियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
१ राइणिया समणोवासिता महाकम्मा °महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,
२ राइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति,
३ ओमराइणिया समणोवासिता महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,
४ ओमराइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।°

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासिका-पदम्

चतस्र श्रमणोपासिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ रात्निकी श्रमणोपासिका महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,
२. रात्निकी श्रमणोपासिका अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति,
३. अवमरात्निकी श्रमणोपासिका महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,
४ अवमरात्निकी श्रमणोपासिका अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासिका-पद

४२९ श्रमणोपासिकाए चार प्रकार की होती हैं—
१ कुछ रात्निक श्रमणोपासिकाए महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नहीं होती,
२ कुछ रात्निक श्रमणोपासिकाए अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती हैं,
३ कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासिकाए महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नही होती,
४ कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासिकाए अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती हैं।

समणोवासग-पद

४३० चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, त जहा—
अम्मापितिसमाणे, भातिसमाणे, मित्तस°

श्रमणोपासक-पदम्

चत्वारः श्रमणोपासका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अम्बापितृसमान, भ्रातृसमान, मित्रसमान, सपत्नीसमान।

श्रमणोपासक-पद

४३० श्रमणोपासक चार प्रकार के होते हैं—
१ माता-पिता के समान,
२ भाई के समान, ३ मित्र के समान,
४ सौत के समान'' ।

४३१ चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—
अद्दागसमाणे, पडागसमाणे,
खाणुसमाणे, खरकंटयसमाणे।

चत्वार श्रमणोपासका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आदर्शसमान, पताकासमान,
स्थाणुसमान खरकण्टकसमान ।

४३१ श्रमणोपासक चार प्रकार के होते हैं—
१ दर्पण के समान, २ पताका के समान,
३ स्थाणु—सूखे ठूठ के समान,
४ तीखे काटो के समान[17]।

४३२. समणस्स ण भगवतो महावीरस्स समणोवासगाण सोधम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य श्रमणोपासकाना सौधर्मे कल्पे अरुणाभे विमाने चत्वारि पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

४३२ सौधर्म देवलोक मे अरुणाभ-विमान मे उत्पन्न, श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासको की स्थिति चार पल्योपम की है।

अहुणोववण्ण-देव-पद

अधुनोपपन्न-देव-पदम्

अधुनोपपन्न-देव-पद

४३३ चउहि ठाणेहि अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए, त जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से ण माणुस्सए कामभोगे णो आढाइ, णो परियाणाति, णो अट्ठ बधइ, णो णियाण पगरेति, णो ठिति-पगप्प पगरेति,

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिण्णे दिव्वे सकते भवति,

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेमु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—इण्हि गच्छं मुहुत्तेण गच्छ, तेण कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवति,

चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम् तद्यथा—

१ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामाभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथित अध्युपपन्न, स मानुष्यकान् कामभोगान् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अर्थं वध्नाति, नो निदान प्रकरोति, नो स्थितिप्रकल्प प्रकरोति,

२ अधुनोपपन्न- देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, तस्य मानुष्यक प्रेम व्युच्छिन्न दिव्य सक्रान्त भवति,

३ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, तस्य एव भवति—इदानी गच्छामि मुहूर्तेन गच्छामि, तस्मिन् काले अल्पायुष मनुष्या कालधर्मेण सयुक्ता भवन्ति,

४३३ चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव दिव्य-काम-भोगो से मूर्च्छित, गृद्ध, वद्ध तथा आसक्त होकर मानवीय काम-भोगो को न आदर देता है, न अच्छा जानता है, न उनमे प्रयोजन रखता है, न निदान [उन्हे पाने का सकल्प] करता है और न स्थिति-प्रकल्प [उनके वीच रहने की इच्छा] करता है,

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध तथा आसक्त देव का मानुष्य प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है तथा उसमे दिव्य प्रेम सक्रान्त हो जाता है,

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, वद्ध तथा आसक्त देव सोचता है—मैं अभी मनुष्य लोक मे जाऊ, मुहूर्त्त भर मे जाऊ। इतने मे अल्पायुष्क मनुष्य काल धर्म को प्राप्त हो जाता है,

४ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स ण माणुस्सए गधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवति, उड्ढ पि य ण माणुस्सए गधे जाव चत्तारि पच जोयणसताइ हव्वमागच्छति—

४ अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु दिव्येपु कामभोगेपु मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अध्युपपन्न, तस्य मानुष्यक गन्ध प्रतिकूल प्रतिलोम चापि भवति, ऊर्ध्वमपि च मानुष्यक गन्ध यावत् चत्वारि पञ्च-योजनशतानि अर्वाग् आगच्छति—

४ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव को मनुष्य लोक की गन्ध प्रतिकूल और प्रतिलोम लगने लग जाती है। मनुष्य लोक की गन्ध पाच सौ योजन की ऊचाई तक आती रहती है।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतै चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक आना चाहता है, किन्तु आ नहीं सकता।

४३४ चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, सचाएति हव्वमागच्छित्तए, त जहा—

१ अहुणोववण्णे देव देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते •अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसि पभावेण मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती [दिव्वे देवाणुभावे ?] लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि •णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय° पज्जुवासामि,

चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु इच्छेत् मानुप लोक अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्, तद्यथा—

१ अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु दिव्येपु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति— अस्ति खलु मम मानुष्यके भवे आचार्य इति वा उपाध्याय इति वा प्रवर्त्ती इति वा स्थविर इति वा गण इति वा गणधर इति वा गणावच्छेदक इति वा, येषा प्रभावेण मया इमा एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युति [दिव्य देवानुभाव ?] लब्ध प्राप्त अभिसमन्वागत, तत् गच्छामि तान् भगवत वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याणं मङ्गल दैवत चैत्य पर्युपासे,

४३४ चार कारणो से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य-लोक मे मेरे मनुष्य भव के आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर तथा गणावच्छेदक हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत [भोग्य अवस्था को प्राप्त] हुआ है, अत मैं जाऊ और उन भगवान् को वदन करू, नमस्कार करू, सत्कार करू, सम्मान करू तथा कल्याण कर, मगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करू,

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—एस ण माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अइदुक्कर-दुक्कर-कारगे, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि, •णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मगल देवय चेइय° पज्जुवासामि,

२ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्मिन् मानुष्यके भवे ज्ञानीति वा तपस्वीति वा अतिदुष्कर-दुष्करकारक, तद् गच्छामि तान् भगवत वन्दे, नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मङ्गल दैवत चैत्य पर्युपासे,

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अवद्ध, तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य भव मे अनेक ज्ञानी, तपस्वी तथा अति-दुष्कर तपस्या करने वाले हैं, अत मैं जाऊ और उन भगवान् को वदन करू, नमस्कार करू, सत्कार करू, सम्मान करू तथा कल्याण कर, मगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करू,

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा •पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा° सुण्हाति वा, तं गच्छामि ण तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासतु ता मे इममेतारूव दिव्व देविड्ढि दिव्वं देवजुति [दिव्वं देवाणुभाव ?] लद्ध पत्त अभिसमण्णागत,

३ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा पुत्र इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा, तद् गच्छामि तेषा अन्तिक प्रादुर्भवामि, पश्यन्तु तावत् मम इमा एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युति [दिव्य देवानुभाव ?] लब्ध प्राप्त अभिसमन्वागतम्,

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-कामभोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अवद्ध तथा अनासक्त देव, सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्र-वधू हैं, अत मैं उनके पास जाऊ और उनके सामने प्रकट होऊ जिससे वे मेरी इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को, जो मुझे मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत हुआ है—देखें,

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे मित्तेति वा सहाति वा सुहीति वा सहाएति वा सगइएति वा, तेसिं च ण अम्हे अण्णमण्णस्स सगारे पडिसुते भवति—जो मे पुव्वि चयति से सबोहेतव्वे—

४ अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मित्रमिति वा सखेति वा सुहृदिति वा सहाय इति वा सङ्गतिक इति वा, तेषा च अस्माभि अन्योऽन्य सकेत प्रतिश्रुत भवति—यो मम पूर्वं च्यवते स सम्बोधयितव्य —

४ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अवद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य-लोक मे मेरे मनुष्य भव के मित्र, बाल-सखा, हितैषी, सहचर तथा परिचित हैं, जिनसे मैंने परस्पर सकेतात्मक प्रतिज्ञा की थी कि जो पहले च्युत हो जाए उसे दूसरे को सबोध देना है—

इच्चेतेहिं •चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस लोगं हव्वमागच्छित्तए° सचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतै चतुर्भि स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेपु इच्छेत् मानुष लोकं अर्वाग् आगन्तु शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन चार कारणों से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है।

अधयार-उज्जोयाइ-पदं

अन्धकार-उद्योतादि-पदम्

अन्धकार-उद्योतादि-पद

४३५ चउहिं ठाणेहिं लोगंधगारे सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
अरहतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे,
जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चतुर्भि स्थानै लोकान्धकार स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेपु,
अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने,
पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने,
जाततेजसि व्यवच्छिद्यमाने।

४३५ चार कारणो मे मनुष्य लोक मे अन्धकार होता है—
१ अर्हन्तो के व्युच्छिन्न होने पर,
२ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३ पूर्वगत [चौदह पूर्वों] के व्युच्छिन्न होने पर, ४ अग्नि के व्युच्छिन्न होने पर।

४३६ चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोते सिया, त जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिनिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै लोकोद्योत स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेपु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४३६ चार कारणो से मनुष्य लोक मे उद्योत होता है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४३७ •चउहिं ठाणेहिं देवंधगारे सिया, त जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
अरहतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे,
जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चतुर्भि स्थानै देवान्धकार स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेपु,
अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने,
पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने,
जाततेजसि व्यवच्छिद्यमाने।

४३७ चार कारणो मे देवलोक मे अन्धकार होता है—
१ अर्हन्तो के व्युच्छिन्न होने पर,
२ अर्हत-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने के अवसर पर, ३ पूर्वगत के व्युच्छिन्न होने पर, ४ अग्नि के व्युच्छिन्न होने पर।

४३८ चउहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवोद्योत स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेपु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४३८ चार कारणों से देवलोक मे उद्योत होता है—
१ अर्हन्तों का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४३६ चउहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाते सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवसन्निपात स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४३६ चार कारणो से देव-सन्निपात [मनुष्य-लोक मे आगमन] होता है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४० चउहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवोत्कलिका स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु,

४४० चार कारणो से देवोत्कलिका [देवताओ का समवाय] होता है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४१ चउहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।°

चतुर्भि स्थानै देव 'कहकहक' स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४१ चार कारणो से देव-कहकहा [कलकल-ध्वनि] होता है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४२ चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवेन्द्रा मानुष लोक अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४२ चार कारणो से देवेन्द्र तत्क्षण मनुष्यलोक मे आते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तों के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४३. एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—

एवम्—सामानिका, तावत्त्रिंशका, लोकपाला देवा, अग्रमहिष्यो देव्य, परिषदुपपन्नका देवा, अनीकाधिपतयो देवा, आत्मरक्षका देवा, मानुष लोक अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—

४४३ इसी प्रकार सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, सभासद, सेनापति तथा आत्म-रक्षक देव चार कारणों से तत्क्षण मनुष्य लोक मे आते हैं—

अरहतेहि जायमाणेहिं,
अरहतेहि पव्वयमाणेहिं,
अरहताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

अर्हन्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४४ चउहि ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, त जहा—
अरहतेहि जायमाणेहिं,
अरहतेहि पव्वयमाणेहिं,
अरहताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवा अभ्युत्तिष्ठेयु, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४४४ चार कारणो से देव अपने सिंहासन से अभ्युत्थित होते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तोंके प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४५ चउहि ठाणेहिं देवाण आसणाइ चलेज्जा, त जहा—
अरहतेहि जायमाणेहिं,
अरहतेहि पव्वयमाणेहिं,
अरहताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवाना आसनानि चलेयु, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४४५ चार कारणो से देवो के आसन चलित होते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४६ चउहि ठाणेहिं देवा सीहणाय करेज्जा, त जहा—
अरहतेहिं जायमाणेहिं,
अरहतेहि पव्वयमाणेहिं,
अरहताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवा सिंहनाद कुर्यु, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४४६ चार कारणो से देव सिंहनाद करते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो क केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४७ चउहि ठाणेहिं देवा चेलुक्खेव करेज्जा, त जहा—
अरहतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहि पव्वयमाणेहिं,
अरहताण णाणुप्पायमहिमासु,
अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भि स्थानै देवा चेलोत्क्षेप कुर्यु, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४४७ चार कारणो से देव चेलोत्क्षेप करते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४८ चउहि ठाणेहिं देवाण चेइयरुक्खा चलेज्जा, त जहा—

चतुर्भि स्थानै देवाना चैत्यरुक्षा चलेयु, तद्यथा—

४४८ चार कारणो मे देवताओ के चैत्यवृक्ष चलित होते हैं—

अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सुप्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४९ चउहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,°
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः लोकान्तिकाः देवाः मानुषं लोकं अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४९ चार कारणो मे लोकान्तिक देव तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

दुहसेज्जा-पद

दुःखशय्या-पदम्

दुःखशय्या-पद

४५०. चत्तारि दुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा दुहसेज्जा—
से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएइ, णिग्गंथं पावयणं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—पढमा दुहसेज्जा।

२ अहावरा दोच्चा दुहसेज्जा—
से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ °अणगारियं° पव्वइए सएणं लाभेणं णो तुस्सति, परस्स लाभमासाएति पीहेति पत्थेति अभिलसति,

चतस्रः दुःखशय्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. तत्र खलु इमा प्रथमा दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थे प्रवचने शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः निर्ग्रन्थं प्रवचनं नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचते, नैर्ग्रन्थं प्रवचनं अश्रद्दधानः अप्रतियन् अरोचमानः मनः उच्चावचं नियच्छति, विनिघातमापद्यते—प्रथमा दुःखशय्या।

२ अथापरा द्वितीया दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः स्वेन लाभेन नो तुष्यति, परस्य लाभमास्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,

४५० चार दुःखशय्या हैं—

१ पहली दुःखशय्या यह है—
कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर, निर्ग्रन्थ प्रवचन मे शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न, कलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता, वह निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अश्रद्धा करता हुआ, अप्रतीति करता हुआ, अरुचि करता हुआ, मानसिक उतार-चढाव और विनिघात [धर्म-भ्रंशता] को प्राप्त होता है,

२ दूसरी दुःखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर अपने लाभ [भिक्षा मे लब्ध आहार आदि] से सन्तुष्ट नही होकर दूसरे के लाभ का आस्वाद करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है,

परस्स लाभमासाएमाणे° पीहेमाणे पत्थेमाणे° अभिलसमाणे मण उच्चावय णियच्छइ, विणिघातमावज्जति—दोच्चा दुहसेज्जा।
३ अहावरा तच्चा दुहसेज्जा—
से ण मुंडे भवित्ता °अगाराओ अणगारियं° पव्वइए दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाएइ °पीहेति पत्थेति° अभिलसति,
दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाएमाणे °पीहेमाणे पत्थेमाणे° अभिलसमाणे मण उच्चावय णियच्छति, विणिघातमावज्जति—तच्चा दुहसेज्जा।
४ अहावरा चउत्था दुहसेज्जा—
से ण मुंडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए, तस्स ण एव भवति—जया ण अहमगारवासमावसामि तदा णमह सवाहण-परिमद्दण-गातब्भग-गातुच्छोलणाइ लभामि, जप्पभिइ च ण अह मुंडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए तप्पभिइ च ण अह सवाहण-°परिमद्दण-गातब्भग°-गातुच्छोलणाइ णो लभामि।
से ण सवाहण-°परिमद्दण-गातब्भग° गातुच्छोलणाइ आसाएति °पीहेति पत्थेति° अभिलसति,
से ण संवाहण-°परिमद्दण-गातब्भंग°-गातुच्छोलणाइ आसाएमाणे °पीहेमाणे पत्थेमाणे अभिलसमाणे° मण उच्चावय णियच्छति, विणिघातमावज्जति—चउत्था दुहसेज्जा।

परस्य लाभमास्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मन उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—द्वितीया दु खशय्या।
३ अथापरा तृतीया दु खशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित दिव्यान् मानुष्यकान् कामभोगान् आस्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,
दिव्यान् मानुष्यकान् कामभोगान् आस्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मन उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—तृतीया दु खशय्या।
४ अथापरा चतुर्थी दु खशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित , तस्य एव भवति—यदा अह अगारवासमावसामि तदा अह सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि लभे, यत्प्रभृति च अह मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित तत्प्रभृति च अह सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि नो लभे।
स सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि आस्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,
स सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि आस्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मन उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—चतुर्थी दु खशय्या।

अभिलाषा करता है, वह दूसरे के लाभ का आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ, मानसिक उतार-चढाव और विनिघात को प्राप्त होता है,
३ तीसरी दु खशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर देवताओ तथा मनुष्यो के काम-भोगो का आस्वादन करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है, वह उनका आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ मानसिक उतार-चढाव और विनिघात को प्राप्त होता है।
४ चौथी दु खशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होने के बाद ऐसा सोचता है—जब मैं गृहवास मे था सबाधन—मर्दन, परिमर्दन—उवटन, गात्राभ्यङ्ग—तेल आदि की मालिश, गात्रोत्क्षालन—स्नान आदि करता था पर जब से मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित हुआ हू सबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन नही कर पा रहा हू, ऐसा सोचकर वह सबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन का आस्वाद करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है, वह सबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन का आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ मानसिक उतार-चढाव और विनिघात को प्राप्त होता है।

सुहसेज्जा-पदं

४५१ चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

१. तत्य खलु इमा पढमा सुहसेज्जा—

से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए णिग्गथे पावयणे णिस्सकिते णिक्कखिते णिव्वितिगिच्छिए णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे णिग्गथं पावयण सद्दहइ पत्तियइ रोएति,

णिग्गथ पावयण सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—पढमा सुहसेज्जा।

२ अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा—

से णं मुंडे •भवित्ता अगाराओ अणगारिय° पव्वइए सएण लाभेण तुस्सति परस्स लाभ णो आसाएति णो पीहेति णो पत्थेइ णो अभिलसति,

परस्स लाभमणासाएमाणे •अपीहेमाणे अपत्येमाणे° अणभिलसमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—दोच्चा सुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा सुहसेज्जा—

से ण मुडे •भवित्ता अगाराओ अणगारिय° पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोगे णो आसाएति •णो पीहेति णो पत्येति° णो अभिलसति,

सुखशय्या-पदम्

चतस्र सुखशय्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ तत्र खलु इमा प्रथमा सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित नैर्ग्रन्थे प्रवचने नि शङ्कित निष्काक्षित निर्विचिकित्सित नो भेदसमापन्न नो कलुपसमापन्न नैर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचते,

नैर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्दधान प्रतियन् रोचमान नो मन उच्चावच नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—प्रथमा सुखशय्या।

२ अथापरा द्वितीया सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित स्वेन लाभेन तुष्यति परस्य लाभ नो आस्वादयति नो स्पृहयति नो प्रार्थयति नो अभिलपति,

परस्य लाभ अनास्वादयन् अस्पृहयन् अप्रार्थयन् अनभिलपन् नो मन उच्चावच नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—द्वितीया सुखशय्या।

३. अथापरा तृतीया सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित दिव्यमानुष्यकान् कामभोगान् नो आस्वादयति नो स्पृहयति नो प्रार्थयति नो अभिलषति,

सुखशय्या-पद

४५१ सुखशय्या चार हैं—

१ पहली सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर, निर्ग्रन्थ प्रवचन मे, नि शक, निष्कांक्ष, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न, अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है, वह निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ मन मे समता को धारण करता है और धर्म मे स्थिर हो जाता है,

२ दूसरी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर अपने लाभ से सन्तुष्ट होता है, दूसरे के लाभ का आस्वाद नही करता, स्पृहा नही करता, प्रार्थना नही करता, अभिलाषा नही करता, वह दूसरे के लाभ का आस्वाद नही करता हुआ, स्पृहा नही करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ, अभिलाषा नही करता हुआ मन मे समता को धारण करता है और धर्म में स्थिर हो जाता है,

३ तीसरी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर देवो तथा मनुष्यो के काम-भोगो का आस्वाद नहीं करता, स्पृहा नही करता, प्रार्थना नही करता, अभिलाषा नही करता, वह उनका आस्वाद नही करता हुआ, स्पृहा नही

दिव्वमाणुस्सए कामभोगे अणासाए माणे •अपीहेमाणे अपत्थेमाणे° अणभिलसमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—तच्चा सुहसेज्जा ।

४ अहावरा चउत्था सुहसेज्जा—से ण मुडे •भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए, तस्स ण एव भवति—जइ ताव अरहता भगवतो हट्ठा अरोगा वलिया कल्लसरीरा अण्णयराइ ओरालाइ कल्लाणाइ विउलाइ पयताइ पग्गहिताइ महाणुभागाइ कम्मक्खयकरणाइ तवोकम्माइ पडिवज्जति, किमग पुण अह अब्भोवगमिओवक्कमिय वेयण णो सम्म सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ?

मम च ण अब्भोवगमिओवक्कमिय (वेयण ?) सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्खेमाणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगतसो मे पावे कम्मे कज्जति ।

मम च ण अब्भोवगमिओ •वक्कमिय (वेयण ?)° सम्मं सहमाणस्स •खममाणस्स तितिक्खेमाणस्स° अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगतसो मे णिज्जरा कज्जति—चउत्था सुहसेज्जा ।

दिव्यमानुष्यकान् कामभोगान् अनास्वादयन् अस्पृहयन् अप्रार्थयन् अनभिलपन् नो मन उच्चावच नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—तृतीया सुखशय्या ।

४. अथापरा चतुर्थी सुखशय्या—स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित , तस्य एव भवति—यदि तावत् अर्हन्तो भगवन्तो हृष्टा अरोगा वलिका कल्यशरीरा अन्यतराणि उदाराणि कल्याणानि विपुलानि प्रयतानि प्रगृहीतानि महानुभागानि कर्मक्षयकरणानि तप कर्माणि प्रतिपद्यन्ते, किमङ्ग पुनरह आभ्युपगमिकौपक्रमिकी वेदना नो सम्यक् सहे क्षमे तितिक्षे अध्यासयामि ?

मम च आभ्युपगमिकौपक्रमिकी [वेदना ?] सम्यक्असहमानस्य अक्षममानस्य अतितिक्षमानस्य अनध्यासयत कि मन्ये क्रियते ?

एकान्तश मम पाप कर्म क्रियते ।

मम च आभ्युपगमिकौपक्रमिकी [वेदना ?] सम्यक् सहमानस्य, क्षममानस्य, तितिक्षमानस्य अध्यासयत किं मन्ये क्रियते ?

एकान्तश, मे निर्जरा क्रियते—चतुर्थी सुखशय्या ।

करता हुआ, प्रार्थना नही करता हुआ, अभिलापा नही करता हुआ मन मे ममता को धारण करता है और धर्म मे स्थिर हो जाता है,

४ चौथी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होने के बाद ऐसा सोचता है—जब अर्हन्त भगवान् हृष्ट, नीरोग, वलवान् तथा स्वस्थ होकर भी कर्मक्षय के लिए उदार, कल्याण, विपुल, प्रयत—सुसयत, प्रगृहीत, सादर स्वीकृत, महानुभाग—अमेय शक्तिशाली और कर्मक्षयकारी विचित्र तपस्याए स्वीकृत करते हैं तब मैं आभ्युपगमिकी तथा औपक्रमिकी वेदना को ठीक प्रकार से क्यो न सहन करता हू ।

यदि मैं आभ्युपगमिकी तथा औपक्रमिकी की वेदना को ठीक प्रकार से सहन नही करूगा तो मुझे क्या होगा ?

मुझे एकान्तत पाप कर्म होगा ।

यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को ठीक प्रकार से सहन करूगा तो मुझे क्या होगा ?

मुझे एकान्तत निर्जरा होगी ।

अवायणिज्ज-वायणिज्ज-पद

४५२. चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—

अवाचनीय-वाचनीय-पदम्

चत्वार अवाचनीया प्रज्ञप्ता , तद्यथा—

अवाचनीय-वाचनीय-पद

४५२ चार अवाचनीय—वाचना देने के अयोग्य होते हैं—

अविणीए, विगइपडिबद्धे,
अविओसवितपाहुडे, माई ।

अविनीत, विकृतिप्रतिवद्ध,
अव्यवशमितप्राभृत, मायी ।

१ अविनीत, २ विकृति-प्रतिवद्ध, ३ अव्यवशमित-प्राभृत, ४ मायावी ।

४५३ चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—
विणीते, अविगतिपडिबद्धे,
विओसवितपाहुडे, अमाई ।

चत्वार वाचनीया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
विनीत, अविकृतिप्रतिवद्ध,
व्यवशमितप्राभृत, अमायी ।

४५३ चार वाचनीय होते हैं—
१ विनीत, २ विकृति-अप्रतिवद्ध, ३ व्यवशमित-प्राभृत, ४ अमायावी ।

आय-पर-पदं

४५४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
आतभरे णाममेगे, णो परभरे,
परभरे णाममेगे, णो आतभरे,
एगे आतभरेवि, परभरेवि,
एगे णो आतभरे, णो परभरे ।

आत्म-पर-पदम्

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मम्भरि नामैक, नो परम्भरि,
परम्भरि नामैक, नो आत्मम्भरि,
एक आत्मम्भरिरपि, परम्भरिरपि,
एक नो आत्मम्भरि., नो परम्भरि ।

आत्म-पर-पद

४५४ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप आत्मभर [अपने-आप को भरने वाले] होते हैं, परभर [दूसरो को भरने वाले] नही होते, २ कुछ पुरुप परभर होते हैं, आत्मभर नही होते, ३ कुछ पुरुप आत्मभर भी होते हैं और परभर भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप आत्मभर भी नही होते और परभर भी नही होते ।

दुग्गत-सुग्गत-पदं

४५५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गए,
दुग्गए णाममेगे सुग्गए,
सुग्गए णाममेगे दुग्गए,
सुग्गए णाममेगे सुग्गए ।

दुर्गत-सुगत-पदम्

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गत नामैक दुर्गत.,
दुर्गत नामैक सुगत,
सुगत नामैक दुर्गत,
सुगत नामैक सुगत ।

दुर्गत-सुगत-पद

४५५ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप धन से भी दुर्गत—दरिद्र होते हैं और ज्ञान से भी दुर्गत होते है, २ कुछ पुरुप धन से दुर्गत होते हैं, पर ज्ञान से सुगत—समृद्ध होते हैं, ३ कुछ पुरुप धन से सुगत होते हैं, पर ज्ञान से दुर्गत होते हैं, ४ कुछ पुरुप धन से सुगत होते हैं और ज्ञान से भी सुगत होते है ।

४५६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दुग्गए णाममेगे दुव्वए,
दुग्गए णाममेगे सुव्वए,
सुग्गए णाममेगे दुव्वए,
सुग्गए णाममेगे सुव्वए ।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गत नामैक दुर्व्रत,
दुर्गत नामैक सुव्रत,
सुगत नामैक दुर्व्रत,
सुगत नामैक सुव्रत ।

४५६ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप दुर्गत और दुर्व्रत होते हैं,
२ कुछ पुरुप दुर्गत और सुव्रत होते हैं,
३ कुछ पुरुप सुगत और दुर्व्रत होते हैं,
४ कुछ पुरुप सुगत और सुव्रत होते है ।

४५७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

४५७ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—

दुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणदे,
दुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणदे,
सुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणदे,
सुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणदे।

दुर्गत नामैक दुष्प्रत्यानन्द,
दुर्गत नामैक सुप्रत्यानन्द,
सुगत नामैक दुष्प्रत्यानन्द,
सुगत नामैक सुप्रत्यानन्द।

१ कुछ पुरुष दुर्गत और दुष्प्रत्यानद—कृतघ्न होते हैं, २ कुछ पुरुष दुर्गत और सुप्रत्यानद—कृतज्ञ होते हैं, ३ कुछ पुरुष सुगत और दुष्प्रत्यानद—कृतघ्न होते हैं, ४ कुछ पुरुष सुगत और सुप्रत्यानद—कृतज्ञ होते हैं।

४५८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी,
दुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी,
सुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी,
सुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गत नामैक दुर्गतिगामी,
दुर्गत नामैक सुगतिगामी,
सुगत नामैक दुर्गतिगामी,
सुगत नामैक सुगतिगामी।

४५८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दुर्गत और दुर्गतिगामी होते हैं, २ कुछ पुरुष दुर्गत और सुगतिगामी होते हैं, ३ कुछ पुरुष सुगत और दुर्गतिगामी होते हैं, ४ कुछ पुरुष सुगत और सुगतिगामी होते हैं।

४५९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते,
दुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते,
सुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते,
सुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गत नामैक दुर्गतिं गत,
दुर्गत नामैक सुगतिं गत,
सुगत नामैक दुर्गतिं गत,
सुगत नामैक सुगतिं गत।

४५९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दुर्गत होकर दुर्गति को प्राप्त हुए हैं, २ कुछ पुरुष दुर्गत होकर सुगति को प्राप्त हुए हैं, ३ कुछ पुरुष सुगत होकर दुर्गति को प्राप्त हुए हैं, ४ कुछ पुरुष सुगत होकर सुगति को प्राप्त हुए हैं।

तम-जोति-पद

तमः-ज्योतिः-पदम्

तम-ज्योति-पद

४६० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
तमे णाममेगे तमे,
तमे णाममेगे जोती,
जोती णाममेगे तमे,
जोती णाममेगे जोती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैक तम,
तमो नामैक ज्योति,
ज्योतिर्नामैक तम,
ज्योतिर्नामैक ज्योति।

४६० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पहले भी तम—अज्ञानी होते हैं और पीछे भी तम—अज्ञानी ही होते हैं, २ कुछ पुरुष पहले तम होते हैं, पर पीछे ज्योति—ज्ञानी हो जाते है, ३ कुछ पुरुष पहले ज्योति होते हैं, पर पीछे तम हो जाते है, ४ कुछ पुरुष पहले भी ज्योति होते हैं और पीछे भी ज्योति ही होते हैं।

४६१ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
तमे णाममेगे तमबले,
तमे णाममेगे जोतिबले,
जोती णाममेगे तमबले,
जोती णाममेगे जोतीबले।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैक तमोबल,
तमो नामैक ज्योतिर्बल,
ज्योतिर्नामैक तमोबल,
ज्योतिर्नामैक ज्योतिर्बल।

४६१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष तम और तमोबल—असदाचारी होते हैं, २ कुछ पुरुष तम और ज्योतिबल—सदाचारी होते हैं, ३ कुछ पुरुष ज्योति और तमोबल होते हैं, ४ कुछ पुरुष ज्योति और ज्योतिबल होते हैं।

४६२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तमे णाममेगे तमबलपलज्जणे,
तमे णाममेगे जोतिबलपलज्जणे,
जोती णाममेगे तमबलपलज्जणे,
जोती णाममेगे जोतिबलपलज्जणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैकः तमोबलप्ररञ्जनः,
तमो नामैकः ज्योतिर्बलप्ररञ्जनः,
ज्योतिर्नामैकः तमोबलप्ररञ्जनः,
ज्योतिर्नामैकः ज्योतिर्बलप्ररञ्जनः।

४६२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष तम और तमोबल में अनुरक्त होते हैं, २ कुछ पुरुष तम और ज्योतिबल में अनुरक्त होते हैं, ३ कुछ पुरुष ज्योति और तमोबल में अनुरक्त होते हैं, ४ कुछ पुरुष ज्योति और ज्योतिबल में अनुरक्त होते हैं।

परिण्णात-अपरिण्णात-पदं

परिज्ञात-अपरिज्ञात-पदम्

परिज्ञात-अपरिज्ञात-पद

४६३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातकम्मे णाममेगे, णो परिण्णातसण्णे,
परिण्णातसण्णे णाममेगे, णो परिण्णातकम्मे,
एगे परिण्णातकम्मेवि, परिण्णातसण्णेवि,
एगे णो परिण्णातकम्मे, णो परिण्णातसण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातकर्मा नामैकः, नो परिज्ञातसंज्ञः,
परिज्ञातसंज्ञः नामैकः, नो परिज्ञातकर्मा,
एकः परिज्ञातकर्माऽपि, परिज्ञातसंज्ञोऽपि,
एकः नो परिज्ञातकर्मा, नो परिज्ञातसंज्ञः।

४६३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा होते हैं, पर परिज्ञातसंज्ञ नहीं होते—हिंसा आदि के परिहर्ता होते हैं, पर अनासक्त नहीं होते, २ कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ होते हैं, पर परिज्ञातकर्मा नहीं होते ३ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होते हैं और परिज्ञातसंज्ञ भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न परिज्ञातकर्मा होते हैं और न परिज्ञातसंज्ञ ही होते हैं।

४६४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातकम्मे णाममेगे, णो परिण्णातगिहावासे,
परिण्णातगिहावासे णाममेगे, णो परिण्णातकम्मे,
एगे परिण्णातकम्मेवि, परिण्णातगिहावासेवि,
एगे णो परिण्णातकम्मे, णो परिण्णातगिहावासे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातकर्मा नामैकः, नो परिज्ञातगृहावासः,
परिज्ञातगृहावासः नामैकः, नो परिज्ञातकर्मा,
एकः परिज्ञातकर्माऽपि, परिज्ञातगृहावासोऽपि,
एकः नो परिज्ञातकर्मा, नो परिज्ञातगृहावासः।

४६४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा होते हैं, पर परिज्ञातगृहवास नहीं होते, २ कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवास होते हैं, पर परिज्ञातकर्मा नहीं होते, ३ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होते हैं और परिज्ञातगृहवास भी होते हैं ४ कुछ पुरुष न परिज्ञातकर्मा होते हैं और न परिज्ञातगृहवास ही होते हैं।

४६५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातसण्णे णाममेगे, णो परिण्णातगिहावासे,
परिण्णातगिहावासे णाममेगे, णो परिण्णातसण्णे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातसंज्ञः नामैकः, नो परिज्ञातगृहावासः,
परिज्ञातगृहावासः नामैकः, नो परिज्ञातसंज्ञः,

४६५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ होते हैं, पर परिज्ञातगृहवास नहीं होते, २ कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवास होते हैं, पर परिज्ञातसंज्ञ नहीं होते, ३ कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ भी होते हैं और परिज्ञातगृहवास भी होते हैं,

एगे परिण्णातसण्णेवि,
परिण्णातगिहावासेवि,
एगे णो परिण्णातसण्णे,
णो परिण्णातगिहावासे ।

एक परिज्ञातसञ्ज्ञोऽपि,
परिज्ञातगृहावासोऽपि,
एक नो परिज्ञातसञ्ज्ञ,
नो परिज्ञातगृहावास ।

४ कुछ पुरुष न परिज्ञातसञ्ज्ञ होते हैं और न परिज्ञातगृहवास ही होते हैं।

इहत्थ-परत्थ-पद

४६६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
इहत्थे णाममेगे, णो परत्थे,
परत्थे णाममेगे, णो इहत्थे,
एगे इहत्थेवि, परत्थेवि,
एगे णो इहत्थे, णो परत्थे ।

इहार्थ-परार्थ-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
इहार्थ नामैक, नो परार्थ,
परार्थ नामैक, नो इहार्थ,
एक इहार्थोऽपि, परार्थोऽपि,
एक नो इहार्थ, नो परार्थ ।

इहार्थ-परार्थ-पद

४६६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष इहार्थ—लौकिक प्रयोजन वाले होते हैं, परार्थ—पारलौकिक प्रयोजन वाले नही होते, २ कुछ पुरुष परार्थ होते है, इहार्थ नही होते, ३ कुछ पुरुष इहार्थ भी होते हैं और परार्थ भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न इहार्थ होते है और न परार्थ ही होते है ।

हाणि-वुड्डि-पदं

४६७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
एगेण णाममेगे वड्ढति,
एगेण हायति,
एगेण णाममेगे वड्ढति,
दोहिं हायति,
दोहिं णाममेगे वड्ढति,
एगेण हायति,
दोहिं णाममेगे वड्ढति,
दोहिं हायति ।

हानि-वृद्धि-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
एकेन नामैक वर्धते, एकेन हीयते,
एकेन नामैक वर्धते, द्वाभ्या हीयते,
द्वाभ्या नामैक वर्धते, एकेन हीयते,
द्वाभ्या नामैक वर्धते, द्वाभ्या हीयते ।

हानि-वृद्धि-पद

४६७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, एक से हीन होते है—ज्ञान से बढ़ते हैं, और मोह मे हीन होते हैं, २ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—ज्ञान से बढते हैं, राग और द्वेष से हीन होते हैं, ३ कुछ पुरुष दो से बढ़ते है, एक से हीन होते है—ज्ञान और सयम से बढते हैं, मोह से हीन होते हैं, ४ कुछ पुरुष दो मे बढते हैं, दो से हीन होते हैं—ज्ञान और सयम से बढते हैं, राग और द्वेष से हीन होते हैं[९८] ।

आइण्ण-खलुंक-पदं

४६८ चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—

आकीर्ण-खलुंक-पदम्

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

आकीर्ण-खलुक-पद

४६८ घोडे चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोडे पहले भी आकीर्ण—वेगवान्

आइण्णे णाममेगे आइण्णे,
आइण्णे णाममेगे खलुके,
खलुके णाममेगे आइण्णे,
खलुके णाममेगे खलुके।

आकीर्ण नामैक आकीर्ण,
आकीर्ण नामैक खलुक,
खलुक नामैक आकीर्ण,
खलुक नामैक खलुक।

होते हैं और पीछे भी आकीर्ण ही होते हैं, २ कुछ घोडे पहले आकीर्ण होते हैं, किन्तु पीछे खलुक—मद हो जाते हैं, ३ कुछ घोडे पहले खलुक होते हैं, किन्तु पीछे आकीर्ण हो जाते हैं, ४ कुछ घोडे पहले भी खलुक होते हैं और पीछे भी खलुक ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
आइण्णे णाममेगे आइण्णे,
आइण्णे णाममेगे खलुके,
खलुंके णाममेगे आइण्णे,
खलुंके णाममेगे खलुके।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आकीर्ण नामैक आकीर्ण,
आकीर्ण नामैक खलुक,
खलुक नामैक आकीर्ण,
खलुक नामैक खलुक।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ पुरुष पहले भी आकीर्ण होते हैं और पीछे भी आकीर्ण ही होते हैं, २ कुछ पुरुष पहले आकीर्ण होते हैं, किन्तु पीछे खलुक हो जाते हैं, ३ कुछ पुरुष पहले खलुक होते हैं, किन्तु पीछे आकीर्ण हो जाते हैं ४ कुछ पुरुष पहले भी खलुक होते हैं और पीछे भी खलुक ही होते हैं।

४६९. चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—
आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति,
आइण्णे णाममेगे खलुकताए वहति,
खलुके णाममेगे आइण्णताए वहति,
खलुके णाममेगे खलुकताए वहति।

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकीर्ण नामैक आकीर्णतया वहति,
आकीर्ण नामैक खलुकतया वहति,
खलुक नामैक आकीर्णतया वहति,
खलुक नामैक खलुकतया वहति।

४६९ घोडे चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ घोडे आकीर्ण होते हैं और आकीर्णरूप मे ही व्यवहार करते हैं, २ कुछ घोडे आकीर्ण होते हैं, पर खलुक-रूप मे व्यवहार करते हैं, ३ कुछ घोडे खलुक होते हैं, पर आकीर्णरूप मे व्यवहार करते हैं, ४ कुछ घोडे खलुक ही होते हैं और खलुकरूप मे ही व्यवहार करते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति,
आइण्णे णाममेगे खलुकताए वहति,
खलुके णाममेगे आइण्णताए वहति,
खलुके णाममेगे खलुकताए वहति।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आकीर्ण नामैक आकीर्णतया वहति,
आकीर्ण नामैक खलुकतया वहति,
खलुक नामैक आकीर्णतया वहति,
खलुक नामैक खलुकतया वहति।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ पुरुष आकीर्ण होते है और आकीर्णरूप मे ही व्यवहार करते हैं २ कुछ पुरुष आकीर्ण होते हैं, पर खलुक-रूप मे व्यवहार करते हैं, ३ कुछ पुरुष खलुक होते हैं, पर आकीर्णरूप मे व्यवहार करते हैं ४ कुछ पुरुष खलुक ही होते हैं और खलुकरूप मे ही व्यवहार करते हैं।

जाति-पद	जाति-पदम्	जाति-पद
४७० चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा— जातिसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो कुलसपण्णे।	चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा— जातिसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, कुलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो कुलसम्पन्न।	४७० घोडे चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल सम्पन्न नही होते, २ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा— जातिसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो कुलसपण्णे।	एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— जातिसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न, कुलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो कुलसम्पन्न।	इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होने, २ कुछ पुरुप कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।
४७१ चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा— जातिसपण्णे णाममेगे णो वलसपण्णे, वलसपण्णे णाममेगे, णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि, वलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे, णो वलसंपण्णे।	चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा— जातिसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न, वलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एक जातिसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।	४७१ घोडे चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ घोडे वल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते है।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—

जातिसपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
बलसपण्णे णाममेगे,
णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, बलसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो बलसपण्णे ।

जातिसम्पन्न नामैक, नो बलसम्पन्न,
बलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो बलसम्पन्न ।

१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न ही होते हैं।

४७२. चत्तारि [प?]कथगा पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो रूवसपण्णे ।

चत्वार (प्र?)कन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

४७२ घोडे चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ घोडे रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो रूवसपण्णे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

४७३ चत्तारि [प?] कथगा पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे णाममेगे,
णो जयसंपण्णे,
जयसपण्णे णाममेगे,
णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो जयसपण्णे ।

चत्वार (प्र?)कन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो जयसम्पन्न ।

४७३ घोडे चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नही होते, २ कुछ घोडे जय-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते है और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जातिसपण्णे नामेगे, णो जयसपण्णे,
जयसपण्णे नामेगे, णो जातिसपण्णे,
एगे जातिसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे, णो जयसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न,
एक जातिसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो जातिसम्पन्न, नो जयसम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

कुल-पद

कुल-पदम्

कुल-पद

४७४ •चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो वलसपण्णे,
वलसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, वलसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो वलसपण्णे।

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,
वलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।

४७४ घोडे चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ घोडे वल-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न कुल-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो वलसपण्णे,
वलसपण्णे णाममेगे, णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, वलसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे, णो वलसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,
वलसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, वलसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो वलसम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, वल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

४७५ चत्तारि पकयगा पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,

४७५ घोडे चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ घोडे रूप-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी

एगे कुलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो कुल सपण्णे,
णो रूवसपण्णे ।

एक कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

होते हैं, ४ कुछ घोडे न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे,
णो रूवसपण्णे,
रूवसपण्णे णाममेगे,
णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे,
णो रूवसपण्णे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
रूपसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते है।

४७६ चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे,
णो जयसपण्णे,
जयसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे,
णो जयसंपण्णे ।

चत्वार प्रकन्थका, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो जयसम्पन्न ।

४७६ घोडे चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ घोडे जय-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न कुल-सम्पन्न होते है और न जय-सम्पन्न ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसपण्णे णाममेगे,
णो जयसपण्णे,
जयसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसपण्णे,
एगे कुलसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो कुलसपण्णे,
णो जयसपण्णे ।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो कुलसम्पन्न,
एक कुलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न, नो जयसम्पन्न ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न जय सम्पन्न ही होते हैं।

बल-पद

बल-पदम्

बल-पद

४७७ °चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

४७७ घोडे चार प्रकार होते हैं—

वलसपण्णे णाममेगे,	वलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,	१ कुछ घोडे वल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ घोडे रूप-सम्पन्न होते है, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे वल-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।
णो रूवसपण्णे,	रूपसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,	
रूवसपण्णे णाममेगे,	एक वलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,	
णो वलसपण्णे,	एक नो वलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।	
एगे वलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,		
एगे णो वलसपण्णे,		
णो रूवसपण्णे ।		
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
वलसपण्णे णाममेगे,	वलसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,	१ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते है।
णो रूवसपण्णे,	रूपसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,	
रूवसपण्णे णाममेगे,	एक वलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,	
णो वलसपण्णे,	एक नो वलसम्पन्न, नो रूपसम्पन्न ।	
एगे वलसपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,		
एगे णो वलसपण्णे,		
णो रूवसपण्णे ।		
४७८ चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—	चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	४७८ घोडे चार प्रकार के होते है—
वलसपण्णे णाममेगे,	वलसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,	१ कुछ घोडे वल-सम्पन्न होते है, जय-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ घोडे जय-सम्पन्न होते है, वल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे वल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ घोडे न वल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।
णो जयसपण्णे,	जयसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,	
जयसपण्णे णाममेगे,	एक वलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,	
णो वलसपण्णे,	एक नो वलसम्पन्न, नो जयसम्पन्न ।	
एगे वलसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,		
एगे णो वलसपण्णे,		
णो जयसपण्णे ।		
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
वलसपण्णे णाममेगे,	वलसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,	१ कुछ पुरुष वल-सपन्न होते है, जय-सपन्न नही होते, २ कुछ पुरुष जय-सपन्न होते हैं, वल-सपन्न नहीं होते। ३ कुछ पुरुष वल-सपन्न भी होते हैं, और जय-सपन्न भी होते हैं। ४ कुछ पुरुष न वल-सपन्न होते हैं और न जय-सपन्न ही होते हैं।
णो जयसपण्णे,	जयसम्पन्न नामैक, नो वलसम्पन्न,	
जयसपण्णे णाममेगे,	एक वलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,	
णो वलसपण्णे,	एक नो वलसम्पन्न, नो जयसम्पन्न ।	
एगे वलसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,		
एगे णो वलसपण्णे,		
णो जयसपण्णे ।°		

रूव-पदं

४७९. चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे, णो जयसपण्णे,
जयसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे, णो जयसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे, णो जयसपण्णे,
जयसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे, णो जयसपण्णे।

रूप-पदम्

चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो रूपसम्पन्न, नो जयसम्पन्न।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्न नामैक, नो जयसम्पन्न,
जयसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न,
एक रूपसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक नो रूपसम्पन्न, नो जयसम्पन्न।

रूप-पद

४७९ घोडे चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोडे रूप-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ घोडे जय-सम्पन्न होते हैं, रूप सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे रूप-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ घोडे न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप रूप-सम्पन्न होते है, जय-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुप जय-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुप रूप-सम्पन्न भी होते है और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

सीह-सियाल-पद

४८० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सीहत्ताए णाममेगे णिक्खते सीहत्ताए विहरइ,
सीहत्ताए णाममेगे णिक्खते सीयालत्ताए विहरइ,
सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खते सीहत्ताए विहरइ,
सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खते सीयालत्ताए विहरइ।

सिंह-शृगाल-पदम्

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सिंहतया नामैक निष्क्रान्त सिंहतया विहरति,
सिंहतया नामैक निष्क्रान्त शृगालतया विहरति,
शृगालतया नामैक निष्क्रान्त सिंहतया विहरति,
शृगालतया नामैक निष्क्रान्त शृगालतया विहरति,

सिंह-शृगाल-पद

४८० पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप सिंहवृत्ति से निष्क्रांत—प्रव्रजित होते हैं और सिंहवृत्ति से ही उसका पालन करते हैं, २ कुछ पुरुप सिंह-वृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सियारवृत्ति से उसका पालन करते हैं, ३ कुछ पुरुप सियारवृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सिंहवृत्ति से उसका पालन करते हैं, ४ कुछ पुरुप सियारवृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सियारवृत्ति से ही उसका पालन करते हैं।

सम-पद

४८१ चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तं जहा—
अपइट्ठाणे णरए, जंबुद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

४८२ चत्तारि लोगे समा सपक्खि सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—
सीमंतए णरए, समयक्खेत्ते, उडुविमाणे, इसीपब्भारा पुढवी।

सम-पदम्

चत्वारः लोके समाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अप्रतिष्ठानो नरकः, जम्बूद्वीपः द्वीपः, पालकं यानविमानं, सर्वार्थसिद्धं महाविमानम्।

चत्वारः लोके समाः सपक्षं सप्रतिदिशं प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सीमान्तकः नरकः, समयक्षेत्रं, उडुविमानं, ईषत्प्राग्भारा पृथिवी।

सम-पद

४८१ लोक में चार समान हैं (एक लाख योजन के हैं)
१ अप्रतिष्ठान नरक—सातवें नरक का एक नरकावास, २ जम्बूद्वीप नामक द्वीप, ३ पालक यान विमान—सौधर्मेन्द्र का यानविमान ४ सर्वार्थसिद्ध महाविमान।

४८२ लोक में चार समान (पैंतालीस लाख योजन) सपक्ष तथा सप्रतिदिश हैं—
१ सीमन्तक नरक—पहले नरक का एक नरकावास, २ समयक्षेत्र, ३ उडुविमान—सौधर्म कल्प के प्रथम प्रस्तर का एक विमान, ४ ईषद्-प्राग्भारा पृथ्वी।

बिसरीर-पदं

४८३ उड्ढलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

४८४ अहोलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

४८५ तिरियलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

द्विशरीर-पदम्

ऊर्ध्वलोके चत्वारः द्विशरीराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकाः, अप्कायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, उदाराः त्रसाः प्राणाः।

अधोलोके चत्वारः द्विशरीराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकाः, अप्कायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, उदाराः त्रसाः प्राणाः।

तिर्यग्लोके चत्वारः द्विशरीराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकाः, अप्कायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, उदाराः त्रसाः प्राणाः।

द्विशरीर-पद

४८३ ऊर्ध्व लोक में चार द्विशरीरी—दूसरे जन्म में सिद्ध गतिगामी हो सकते हैं—
१ पृथ्वीकायिक जीव, २ अप्कायिक जीव, ३ वनस्पतिकायिक जीव, ४ उदार त्रस प्राण—पञ्चेन्द्रिय जीव।

४८४ अधोलोक में, चार द्विशरीरी हो सकते हैं—
१ पृथ्वीकायिक जीव, २ अप्कायिक जीव, ३ वनस्पतिकायिक जीव, ४ उदार त्रस प्राण।

४८५ तिर्यक्लोक में चार द्विशरीरी हो सकते हैं—
१ पृथ्वीकायिक जीव २ अप्कायिक जीव ३ वनस्पतिकायिक जीव ४. उदार त्रस प्राण।

सत्त-पदं

४८६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते,
चलसत्ते, थिरसत्ते।

सत्त्व-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ह्रीसत्त्व, ह्रीमन सत्त्व, चलसत्त्व, स्थिरसत्त्व।

सत्त्व-पद

४८६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ ह्रीसत्त्व—विकट परिस्थिति में भी लज्जावश कायर न होने वाला
२ ह्रीमन सत्त्व—विकट परिस्थिति मे भी मन मे कायर न होने वाला
३ चलसत्त्व—अस्थिरसत्त्व वाला
४ स्थिरसत्त्व—सुस्थिरसत्त्व वाला[९९]।

पडिमा-पद

४८७ चत्तारि सेज्जपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४८८. चत्तारि वत्थपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४८९. चत्तारि पायपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४९० चत्तारि ठाणपडिमाओ पण्णत्ताओ।

प्रतिमा-पदम्

चतस्र शय्याप्रतिमा प्रज्ञप्ता।
चतस्र वस्त्रप्रतिमा प्रज्ञप्ता।
चतस्र पात्रप्रतिमा प्रज्ञप्ता।
चतस्र स्थानप्रतिमा प्रज्ञप्ता।

प्रतिमा-पद

४८७ चार शय्या प्रतिमाए[१००] हैं।
४८८ चार वस्त्र प्रतिमाए[१०१] हैं।
४८९ चार पात्र प्रतिमाए[१०२] हैं।
४९० चार स्थान प्रतिमाए हैं।

सरीर-पदं

४९१ चत्तारि सरीरगा जीवफुडा पण्णत्ता, त जहा—
वेउव्विए, आहारए,
तेयए, कम्मए।
४९२. चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता, त जहा—
ओरालिए, वेउव्विए,
आहारए, तेयए।

शरीर-पदम्

चत्वारि शरीरकाणि जीवस्पृष्टानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वैक्रिय, आहारक, तैजस, कर्मकम्।
चत्वारि शरीरकाणि कर्मोन्मिश्रकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजसम्।

शरीर-पद

४९१ चार शरीर जीवस्पृष्ट—जीव के सहवर्ती होते हैं।
१ वैक्रिय २ आहारक ३ तैजस ४ कार्मण[१०३]।
४९२ चार शरीर कर्मउन्मिश्रक—कार्मण शरीर से सयुक्त ही होते हैं—
१ औदारिक २ वैक्रिय ३ आहारक ४ तैजस[१०४]।

फुड-पदं

४९३ चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, त जहा—
धम्मत्थिकाएण, अधम्मत्थिकाएणं,
जीवत्थिकाएण, पुग्गलत्थिकाएण।

स्पृष्ट-पदम्

चतुर्भि अस्तिकायै लोक स्पृष्ट प्रज्ञप्त, तद्यथा—
धर्मास्तिकायेन, अधर्मास्तिकायेन,
जीवास्तिकायेन, पुद्गलास्तिकायेन।

स्पृष्ट-पद

४९३ चार अस्तिकायो से समूचा लोक स्पृष्ट—व्याप्त है—१ धर्मास्तिकाय से २ अधर्मास्तिकाय से ३ जीवास्तिकाय से ४ पुद्गलास्तिकाय से।

४६४ चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइएहिं, आउकाइएहिं, वाउकाइएहिं, वणस्सइकाइएहिं।

चतुर्भिः बादरकायैः उपपद्यमानैः लोकः स्पृष्टः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकैः, अप्कायिकैः, वायुकायिकैः, वनस्पतिकायिकैः।

४६४ चार उत्पन्न होते हुए अपर्याप्तक बादर-कायिक जीवों से समूचा लोक स्पृष्ट है—
१ पृथ्वीकायिक जीवों से २ अप्कायिक जीवों से ३ वायुकायिक जीवों से ४ वनस्पतिकायिक जीवों से।

तुल्ल-पद

४६५ चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तं जहा—
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

तुल्य-पदम्

चत्वारः प्रदेशाग्रेण तुल्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, लोकाकाशः, एकजीवः।

तुल्य-पद

४६५ चार प्रदेशाग्र (प्रदेश-परिमाण) से तुल्य हैं—असंख्य प्रदेशी हैं—
१ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ लोकाकाश ४ एक जीव।

णो सुपस्स-पद

४६६ चउण्हमेगं सरीरं णो सुपस्सं भवइ, तं जहा—
पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं।

नो सुपश्य-पदम्

चतुर्णां एकं शरीरं नो सुपश्यं भवति, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकानां, अप्कायिकानां, तेजस्कायिकानां, वनस्पतिकायिकानाम्।

नो सुपश्य-पद

४६६ चार काय के जीवों का एक शरीर सुपश्य—सहज दृश्य नहीं होता—
१ पृथ्वीकायिक जीवों का २ अप्कायिक जीवों का ३ तेजस्कायिक जीवों का ४ साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का।

इंदियत्थ-पद

४६७ चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेदेंति, तं जहा—
सोइंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे, फासिंदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

चत्वारः इन्द्रियार्थाः स्पृष्टाः वेद्यन्ते, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थः, घ्राणेन्द्रियार्थः, जिह्वेन्द्रियार्थः, स्पर्शेन्द्रियार्थः।

इन्द्रियार्थ-पद

४६७ चार इन्द्रिय-विषय इन्द्रियों से स्पृष्ट होने पर ही संवेदित किए जाते हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रियविषय—शब्द
२ घ्राणेन्द्रियविषय—गंध
३ रसनेन्द्रियविषय—रस।
४ स्पर्शनेन्द्रियविषय—स्पर्श।

अलोग-अगमण-पद

४६८ चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए, तं जहा—
गतिअभावेणं, णिरुवग्गहयाए, लुक्खताए, लोगाणुभावेणं।

अलोक-अगमन-पदम्

चतुर्भिः स्थानैः जीवाश्च पुद्गलाश्च नो शक्नुवन्ति बहिस्तात् लोकान्तात् गमनाय, तद्यथा—
गत्यभावेन, निरुपग्रहतया, रूक्षतया, लोकानुभावेन।

अलोक-अगमन-पद

४६८ चार कारणों से जीव तथा पुद्गल लोक से बाहर गमन नहीं कर सकते—
१ गति के अभाव से २ निरुपग्रहता—गति तत्त्व का आलम्बन न होने से ३ रूक्ष होने से ४ लोकानुभाव—लोक की सहज मर्यादा होने से[१०९]।

णात-पदं

४९९ चउव्विहे णाते पण्णत्ते, त जहा—
आहरणे, आहरणतद्देसे,
आहरणतद्दोसे, उवण्णासोवणए।

ज्ञात-पदम्

चतुर्विध ज्ञात प्रज्ञप्त', तद्यथा—
आहरण, आहरणतद्देश., आहरणतद्दोष,
उपन्यासोपनय ।

ज्ञात-पद

४९९ ज्ञात चार प्रकार के होते हैं—
१ आहरण—सामान्य उदाहरण
२ आहरण तद्देश—एकदेशीय उदाहरण
३ आहरण तद्दोष—साध्यविकल आदि उदाहरण ४ उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा कृत उपन्यास के विघटन के लिए प्रतिवादी द्वारा किया जाने वाला विरुद्धार्थक उपनय[१०६]।

५०० आहरणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
अवाए, उवाए, ठवणाकम्मे,
पडुप्पण्णविणासी।

आहारण चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अपाय, उपाय, स्थापनाकर्म,
प्रत्युत्पन्नविनाशी ।

५०० आहरण चार प्रकार का होता है—
१ अपाय—हेयधर्म का ज्ञापक दृष्टान्त
२ उपाय—ग्राह्य वस्तु के उपाय बताने वाला दृष्टान्त ३ स्थापनाकर्म—स्वाभिमत की स्थापना के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त ४ प्रत्युत्पन्नविनाशी—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त[१०७]।

५०१ आहरणतद्देसे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
अणुसिट्ठी, उवालंभे,
पुच्छा, णिस्सावयणे।

आहरणतद्देश चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अनुशिष्टि, उपालम्भ, पृच्छा,
नि श्रावचनम् ।

५०१ आहरण तद्देश चार प्रकार का होता है—
१ अनुशिष्टि—प्रतिवादी के मतव्य के उचित अश को स्वीकार कर अनुचित का निरसन करना
२ उपालभ—दूसरे के मत को उसकी ही मान्यता से दूषित करना
३ पृच्छा—प्रश्न-प्रतिप्रश्नो से ही पर मत को असिद्ध कर देना
४ नि श्रावचन—अन्य के बहाने अन्य को शिक्षा देना[१०८]।

५०२ आहरणतद्दोसे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
अधम्मजुत्ते, पडिलोमे,
अत्तोवणीते, दुरुवणीते।

आहरणतद्दोष चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अधर्मयुक्त, प्रतिलोम, आत्मोपनीत,
दुरुपनीत ।

५०२ आहरणतद्दोष चार प्रकार का होता है—
१ अधर्मयुक्त—अधर्मबुद्धि उत्पन्न करने वाला दृष्टात
२ प्रतिलोम—अपसिद्धान्त का प्रतिपादक दृष्टान्त अथवा 'शठे शाठ्य समाचरेत्' ऐसी प्रतिकूलता की शिक्षा देने वाला दृष्टान्त
३ आत्मोपनीत—परमत मे दोष दिखाने के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाए और उससे स्वमत दूषित हो जाए
४ दुरुपनीत—दोषपूर्णनिगमन वाला दृष्टान्त[१०९]।

५०३. उवण्णासोवणए चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
तव्वत्थुते, तदण्णवत्थुते,
पडिणिभे, हेतू।

उपन्यासोपनय चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
तद्वस्तुक, तदन्यवस्तुक, प्रतिनिभ, हेतु।

५०३ उपन्यासोपनय चार प्रकार का होता है—
१ तदवस्तुक—वादी के द्वारा उपन्यस्त हेतु से उसका ही निग्रगन करना
२ तदन्यवस्तुक—उपन्यस्तवस्तु से अन्य मे भी प्रतिवादी की बात को पकडकर उसे हरा देना
३ प्रतिनिभ—वादी के सदृश हेतु बनाकर उसके हेतु को असिद्ध कर देना।
४ हेतु—हेतु बताकर अन्य के प्रश्न का समाधान कर देना[९९]।

हेउ-पद

५०४. हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
जावए, थावए, वसए, लूसए।

हेतु-पदम्

हेतु चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
यापक, स्थापक, व्यसक, लूपक।

हेतु-पद

५०४ हेतु चार प्रकार के होते हैं—
१ यापक—समययापक विशेषण बहुल हेतु—जिसे प्रतिवादी शीघ्र न समझ सके
२ स्थापक—प्रसिद्ध व्याप्ति वाला—साध्य को शीघ्र स्थापित करने वाला हेतु
३ व्यसक—प्रतिवादी को छल मे डालने वाला हेतु
४ लूपक—व्यसक के द्वारा प्राप्त आपत्ति को दूर करने वाला हेतु[१११]।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे।

अथवा—हेतु चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, आगम।

अथवा—हेतु चार प्रकार के होते हैं—
१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ आगम।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
अत्थित्त अत्थि सो हेऊ,
अत्थित्त णत्थि सो हेऊ,
णत्थित्त अत्थि सो हेऊ,
णत्थित्त णत्थि सो हेऊ।

अथवा—हेतु चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अस्तित्व अस्ति स हेतु,
अस्तित्व नास्ति स हेतु,
नास्तित्व अस्ति स हेतु,
नास्तित्व नास्ति स हेतु।

अथवा—हेतु चार प्रकार के होते हैं—
१ विधि-साधक विधि-हेतु,
२ विधि-साधक निषेध-हेतु,
३ निषेध-साधक विधि-हेतु,
४. निषेध-साधक निषेध-हेतु[१११]।

संखाण-पद

५०५ चउव्विहे सखाणे पण्णत्ते, त जहा—
परिकम्म, ववहारे, रज्जू, रासी।

सख्यान-पदम्

चतुर्विध सख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
परिकर्म, व्यवहार, रज्जु, राशि।

सख्यान-पद

५०५ सख्यान—गणित चार प्रकार का है—
१ परिकर्म, २ व्यवहार, ३ रज्जु, ४ राशि।

अंधगार-उज्जोय-पदं

५०६. अहोलोगे णं चत्तारि अंधगारं करेंति, तं जहा—णरगा, णेरइया, पावाइं कम्माइं, असुभा पोग्गला।

५०७. तिरियलोगे णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—
चंदा, सूरा, मणी, जोती।

५०८. उड्ढलोगे णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—
देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा।

अन्धकार-उद्योत-पदम्

अधोलोके चत्वारः अन्धकारं कुर्वन्ति, तद्यथा—नरकाः, नैरयिकाः, पापानि कर्माणि, अशुभाः पुद्गलाः।

तिर्यग्लोके चत्वारः उद्योतं कुर्वन्ति, तद्यथा—
चन्द्राः, सूराः, मणयः, ज्योतिः।

ऊर्ध्वलोके चत्वारः उद्योतं कुर्वन्ति, तद्यथा—
देवाः, देव्यः, विमानानि, आभरणानि।

अन्धकार-उद्योत-पद

५०६ अधोलोक में चार अंधकार करते हैं—
१ नरक, २ नैरयिक, ३ पाप-कर्म, ४ अशुभ पुद्गल।

५०७ तिर्यक् लोक मे चार उद्योत करते हैं—
१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ मणि, ४ ज्योति—अग्नि।

५०८ ऊर्ध्व लोक मे चार उद्योत करते हैं—
१ देव, २ देवियां, ३ विमान, ४ आभरण।

चउत्थो उद्देसो

पसप्पग-पदं

५०९ चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, तं जहा—अणुप्पण्णाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए,
पुव्वुप्पण्णाणं भोगाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए,
अणुप्पण्णाणं सोक्खाणं उप्पाइत्ता एगे पसप्पए,
पुव्वुप्पण्णाणं सोक्खाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए।

प्रसर्पक-पदम्

चत्वारः प्रसर्पकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुत्पन्नानां भोगानां उत्पादयिता एकः प्रसर्पकः,
पूर्वोत्पन्नानां भोगानां अविप्रयोगेण एकः प्रसर्पकः,
अनुत्पन्नानां सौख्यानां उत्पादयिता एकः प्रसर्पकः,
पूर्वोत्पन्नानां सौख्यानां अविप्रयोगेण एकः प्रसर्पकः।

प्रसर्पक-पद

५०९ प्रसर्पक चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ अप्राप्त भोगों की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण करते हैं, २ कुछ पूर्व प्राप्त भोगों के संरक्षण के लिए प्रसर्पण करते हैं, ३ कुछ अप्राप्त सुखों की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण करते हैं, ४ कुछ पूर्व प्राप्त सुखों के संरक्षण के लिए प्रसर्पण करते हैं।

आहार-पद

५१०. णेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
इंगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीतले, हिमसीतले।

आहार-पदम्

नैरयिकाणां चतुर्विधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अङ्गारोपमः, मुर्मुरोपमः, शीतलः, हिमशीतलः।

आहार-पद

५१० नैरयिकों का आहार चार प्रकार का होता है—
१ अंगारोपम—अल्पकालीन दाहवाला,
२ मुर्मुरोपम—दीर्घकालीन दाहवाला,
३ शीतल, ४ हिमशीतल।

५११ तिरिक्खजोणियाण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
कंकोवमे, विलोवमे,
पाणमसोवमे, पुत्तमसोवमे।

तिर्यग्योनिकाना चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
कङ्कोपम, विलोपम, पाणमासोपम, पुत्रमासोपम।

५११ तिर्यचो का आहार चार प्रकार का होता है—१ कंकोपम—सुख भक्ष्य और सुजीर्ण, २ विलोपम—जो चबाये विना निगल लिया जाता है, ३. पाणमासोपम—चण्डाल के मास की भान्ति घृणित, ४ पुत्रमासोपम—पुत्र मास की भाति दुःख भक्ष्य[111]।

५१२. मणुस्साण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—
असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

मनुष्याणा चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यम्।

५१२ मनुष्यो का आहार चार प्रकार का होता है—
१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४ स्वाद्य।

५१३. देवाण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—
वण्णमते, गधमते,
रसमते, फासमते।

देवाना चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् स्पर्शवान्।

५१३ देवताओ का आहार चार प्रकार का होता है—
१ वर्णवान्, २ गधवान्, ३ रसवान्, ४ स्पर्शवान्।

आसीविस-पद

आशीविष-पदम्

आशीविष-पद

५१४ चत्तारि जातिआसीविसा पण्णत्ता, त जहा—
विच्छुयजातिआसीविसे,
मड्डुक्कजातिआसीविसे,
उरगजातिआसीविसे,
मणुस्सजातिआसीविसे।

चत्वार जात्याशीविषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वृश्चिकजात्याशीविष,
मण्डूकजात्याशीविष,
उरगजात्याशीविष,
मनुष्यजात्याशीविष।

५१४ जाति-आशीविष चार होते हैं—
१ जाती-आशीविष वृश्चिक, २ जाती-आशीविष मेंढक, ३ जाती-आशीविष सर्प, ४ जाती-आशीविष मनुष्य।

विच्छुयजातिआसीविसस्स ण भते! केवइए विसए पण्णत्ते?
पभू ण विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्त वोंदि विसेण विसपरिणय विसट्टमाणि करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव ण सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा करिस्सति वा।

वृश्चिकजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषय प्रज्ञप्त?
प्रभु वृश्चिकजात्याशीविष अर्धभरतप्रमाणमात्रा वोन्दि विषेण विषपरिणता विकसन्ती कर्त्तुम्। विषय तस्य विषार्थताया, नो चैव सप्राप्त्या अकार्षु वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

भगवन्! जाती-आशीविष वृश्चिक के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है[112]?
गौतम! जाती-आशीविष वृश्चिक अपने विष के प्रभाव से अर्धभरतप्रमाण शरीर को (लगभग दो सौ तिरेसठ योजन) विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

मड्डुक्कजातिआसीविसस्स °ण भते! केवइए विसए पण्णत्ते?°
पभू ण मड्डुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्त वोंदि विसेण

मण्डूकजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषय प्रज्ञप्त?
प्रभु मण्डूकजात्याशीविष भरतप्रमाणमात्रा वोन्दि विषेण विषपरिणता

भगवन्! जाती-आशीविष मडुक के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है?
गौतम! जाती-आशीविष मडुक अपने विष के प्रभाव से भरतप्रमाण शरीर को

विसपरिणय विसट्टमाणिं •करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव ण सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा° करिस्सति वा।

विकसन्ती कर्त्तुम्। विषय तस्य विपार्थताया, नो चैव सप्राप्त्या अकार्षु वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

•उरगजातिआसीविसस्स ण भते ! केवइए विसए पण्णत्ते° ?
पभू ण उरगजातिआसीविसे जबुद्दीवपमाणमेत्त बोंदि विसेण •विसपरिणय विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा° करिस्सति वा।

उरगजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषय प्रज्ञप्त ?
प्रभु उरगजात्याशीविष जम्बूद्वीप-प्रमाणमात्रा वोन्दि विषेण विषपरिणता विकसन्ती कर्त्तुम्। विषय तस्य विषार्थ-ताया, नो चैव सप्राप्त्या अकार्षु वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

भगवन्! उरगजातीय आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है ?
गौतम! उरगजातीय आशीविष अपने विष के प्रभाव से जम्बूद्वीप प्रमाण (लाख योजन) शरीर को विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

•मणुस्सजातिआसीविसस्स ण भते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?°
पभू ण मणुस्सजातिआसीविसे समयखेत्तपमाणमेत्त बोंदि विसेण विसपरिणत विसट्टमाणिं करेत्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव ण •सपत्तीए करेंसुवा करेंति वा° करिस्सति वा।

मनुष्यजात्याशीविपस्य भगवन्! कियान् विषय प्रज्ञप्त ?
प्रभु मनुष्यजात्याशीविष समयक्षेत्र-प्रमाणमात्रा वोन्दि विषेण विषपरिणता विकसन्ती कर्त्तुम्। विषय तस्य विपार्थ-ताया, नो चैव सप्राप्त्या अकार्षु वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

भगवन्! मनुष्यजातीय आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है ?
गौतम! मनुष्यजातीय आशीविष के विष का प्रभाव समय क्षेत्रप्रमाण (पैंतालीस लाख योजन) शरीर को विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

वाहि-तिगिच्छा-पदं

५१५. चउव्विहे वाही पण्णत्ते, त जहा—
वातिए, पित्तिए, सिंभिए, सण्णिवातिए।

व्याधि-चिकित्सा-पदम्

चतुर्विध व्याधि प्रज्ञप्त, तद्यथा—
वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक।

व्याधि-चिकित्सा-पद

५१५ व्याधि चार प्रकार की होती है—
१ वातिक—वायुविकार से होने वाली
२ पैत्तिक—पित्तविकार से होने वाली
३ श्लैष्मिक—कफविकार से होने वाली
४ सान्निपातिक—तीनों के मिश्रण से होने वाली।

५१६ चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, त जहा—विज्जो, ओसधाइ, आउरे, परियारए।

चतुर्विधा चिकित्सा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— वैद्य, औपधानि, आतुर, परिचारकः।

५१६ चिकित्सा के चार अग है— १ वैद्य २ औषध ३ रोगी, ४ परिचारक।

५१७ चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता, त जहा—आततिगिच्छए णाममेगे, णो परतिगिच्छए, परतिगिच्छए णाममेगे, णो आततिगिच्छए, एगे आततिगिच्छएवि, परतिगिच्छएवि, एगे णो आततिगिच्छए, णो परतिगिच्छए।

चत्वार चिकित्सका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आत्मचिकित्सक नामैक, नो परचिकित्सक, परचिकित्सक नामैक, नोआत्मचिकित्सक, एक आत्मचिकित्सकोऽपि, परचिकित्सकोऽपि, एक नो आत्मचिकित्सक, नो परचिकित्सक।

५१७ चिकित्सक चार प्रकार के होते है— १ कुछ चिकित्सक अपनी चिकित्सा करते हैं, दूसरो की नहीं करते २ कुछ चिकित्सक दूसरो की चिकित्सा करते हैं, अपनी नही करते ३ कुछ चिकित्सक अपनी भी चिकित्सा करते हैं और दूसरो की भी करते हैं ४ कुछ चिकित्सक न अपनी चिकित्सा करते हैं और न दूसरो की ही करते है।

वणकर-पद

व्रणकर-पदम्

व्रणकर-पद

५१८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वणकरे णाममेगे, णो वणपरिमासी, वणपरिमासी णाममेगे, णो वणकरे, एगे वणकरेवि, वणपरिमासीवि, एगे णो वणकरे, णो वणपरिमासी।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
व्रणकर नामैक, नो व्रणपरामर्शी, व्रणपरामर्शी नामैक, नो व्रणकर, एक व्रणकरोऽपि, व्रणपरामर्श्यपि, एक नो व्रणकर, नो व्रणपरामर्शी।

५१८ पुरुप चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप रक्त निकालने के लिए व्रण—घाव करते हैं, किन्तु उसका परिमर्श नही करते—उसे सहलाते नही २ कुछ पुरुप व्रण का परिमर्श करते हैं, किन्तु व्रण नही करते ३ कुछ पुरुप व्रण भी करते हैं और उसका परिमर्श भी करते हैं ४ कुछ पुरुप न व्रण करते हैं और न उसका परिमर्श करते है।

५१९ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वणकरे णाममेगे, णो वणसारक्खी, वणसारक्खी णाममेगे, णो वणकरे, एगे वणकरेवि, वणसारक्खीवि, एगे णो वणकरे, णो वणसारक्खी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
व्रणकर नामैक, नो व्रणसरक्षी, व्रणसरक्षी नामैक, नो व्रणकर, एक व्रणकरोऽपि, व्रणसरक्ष्यपि, एक नो व्रणकर, नो व्रणसरक्षी।

५१९ पुरुप चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप व्रण करते हैं, किन्तु उसका सरक्षण—देखभाल नही करते २ कुछ पुरुप व्रण का सरक्षण करते हैं, किन्तु व्रण नहीं करते ३ कुछ पुरुप व्रण भी करते हैं और उसका सरक्षण भी करते हैं ४ कुछ पुरुप न व्रण करते हैं और न उसका सरक्षण करते हैं।

५२० चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

५२० पुरुप चार प्रकार के होते हैं—

वणकरे णाममेगे, णो वणसंरोही,
वणसरोही णाममेगे, णो वणकरे,
एगे वणकरेवि, वणसरोहीवि,
एगे णो वणकरे, णो वणसरोही।

व्रणकर: नामैक, नो व्रणसरोही,
व्रणसरोही नामैक, नो व्रणकर,
एक व्रणकरोऽपि, व्रणसरोह्यपि,
एक नो व्रणकर, नो व्रणसरोही।

१ कुछ पुरुप व्रण करते हैं, किन्तु उसका सरोह नहीं करते—उसे भरते नही २ कुछ पुरुप व्रण का सरोह करते हैं, किन्तु व्रण नही करते ३ कुछ पुरुप व्रण भी करते हैं और उसका सरोह भी करते हैं ४ कुछ पुरुष न व्रण करते हैं और न उसका सरोह करते है।

अंतोबाहिं-पदं

अन्तर्वहिः-पदम्

अन्तर्वहिः-पद

५२१ चत्तारि वणा पण्णत्ता, त जहा—
अतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अतोसल्ले,
एगे अंतोसल्लेवि, बाहिंसल्लेवि,
एगे णो अतोसल्ले, णो बाहिंसल्ले।

चत्वार व्रणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अन्त शल्य नामैक, नो वहि शल्य,
वहि शल्य नामैक, नो अन्त शल्य,
एक अन्त शल्यमपि, वहि शल्यमपि,
एक नो अन्त शल्य, नो वहि शल्यम्।

५२१ व्रण चार प्रकार के होते है—
१ कुछ व्रण अन्त शल्य (आन्तरिक घाव) वाले होते है किन्तु वाह्यशल्य वाले नहीं होते २ कुछ व्रण वाह्यशल्य वाले होते हैं, किन्तु अन्त शल्य वाले नही होते
३ कुछ व्रण अन्त शल्य वाले भी होते हैं और वाह्यशल्य वाले भी होते हैं
४ कुछ व्रण न अन्त शल्य वाले होते है और न वाह्यशल्य वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अतोसल्ले,
एगे अतोसल्लेवि, बाहिंसल्लेवि,
एगे णो अतोमल्ले, णो बाहिंसल्ले।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्त शल्य नामैक, नो वहि शल्य,
वहि शल्य नामैक, नो अन्त शल्य,
एक अन्त शल्योऽपि, वहि शल्योऽपि,
एक नो अन्त शल्य, नो वहि शल्य।

इमी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुप अन्त शल्य वाले होते हैं, किन्तु वाह्यशल्य वाले नहीं होते २ कुछ पुरुप वाह्यशल्य वाले होते हैं, किन्तु अन्त शल्य वाले नही होते ३ कुछ पुरुप अन्त शल्य वाले भी होते है और वाह्य शल्य वाले भी होते ह ४ कुछ पुरुप न अन्त शल्य वाले होते हैं और न वाह्यशल्य वाले होते हैं।

५२२. चत्तारि वणा पण्णत्ता, त जहा—
अंतोदुट्ठे णाममेगे, णो बाहिंदुट्ठे,
बाहिंदुट्ठे णाममेगे, णो अतोदुट्ठे,
एगे अतोदुट्ठ वि, बाहिंदुट्ठे वि,
एगे णो अतोदुट्ठे, णो बाहिंदुट्ठे।

चत्वारि व्रणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्तर्दुष्ट नामैक, नो वहिर्दुष्ट,
वहिर्दुष्ट नामैक, नो अन्तर्दुष्ट,
एक अन्तर्दुष्टमपि, वहिर्दुष्टमपि,
एक नो अन्तर्दुष्ट, नो वहिर्दुष्टम्।

५२२ व्रण चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ व्रण अन्त दुप्ट (अन्दर से विकृत) होते हैं, किन्तु वाहर से दुप्ट नही होते
२ कुछ व्रण वाहर से दुप्ट होते हैं, किन्तु अन्त दुप्ट नही होते ३ कुछ व्रण अन्त-दुप्ट भी होते हैं और वाह्य दुप्ट भी होते हैं ४ कुछ व्रण न अन्त दुप्ट होते ह और न वाह्य दुप्ट होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
अतोदुट्ठे णाममेगे, णो बाहिदुट्ठे
बाहिदुट्ठे णाममेगे, णो अतोदुट्ठे,
एगे अतोदुट्ठे वि, बाहिदुट्ठे वि,
एगे णो अतोदुट्ठे, णो बाहिदुट्ठे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्तर्दुष्ट नामैक, नो बहिर्दुष्ट,
बहिर्दुष्ट नामैक, नो अन्तर्दुष्ट,
एक अन्तर्दुष्टोऽपि, बहिर्दुष्टोऽपि,
एक नो अन्तर्दुष्ट, नो बहिर्दुष्ट।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अन्त दुष्ट—अन्दर से मैले होते हैं, किन्तु बाहर से नहीं होते २ कुछ पुरुष बाहर से दुष्ट होते हैं, किन्तु अन्त दुष्ट नही होते ३ कुछ पुरुष अन्त दुष्ट भी होते हैं और बाह्य दुष्ट भी होते है ४ कुछ पुरुष न अन्त दुष्ट होते हैं और न बाह्य दुष्ट होते हैं।

सेयंस-पावस-पदं

श्रेयस्पापीयस्पदम्

श्रेयस्पापीयस्पद

५२३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सेयसे णाममेगे सेयसे,
सेयसे णाममेगे पावसे,
पावसे णाममेगे सेयसे,
पावसे णाममेगे पावसे।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक श्रेयान्,
श्रेयान् नामैक पापीयान्,
पापीयान् नामैक श्रेयान्,
पापीयान् नामैक पापीयान्।

५२३ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से भी श्रेयान्—प्रशस्य होते हैं और आचरण की दृष्टि से भी श्रेयान् होते हैं २ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से श्रेयान् होते हैं, किन्तु आचरण की दृष्टि से पापीयान् होते हैं ३ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से पापीयान् होते हैं, किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेयान् होते हैं ४ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से भी पापीयान् होते है और आचरण की दृष्टि मे भी पापीयान् होते हैं।

५२४ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सेयसे णाममेगे सेयसेत्ति सालिसए,
सेयसे णाममेगे पावसेत्ति सालिसए,
पावसे णाममेगे सेयसेत्ति सालिसए,
पावसे णाममेगे, पावसेत्ति सालिसए।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक श्रेयानिति सदृशक,
श्रेयान् नामैक पापीयानिति सदृशक,
पापीयान् नामैक श्रेयानिति सदृशक,
पापीयान् नामैक पापीयानिति सदृशक।

५२४ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से भी श्रेयान् होते हैं और आचरण की दृष्टि से भी श्रेयान् के सदृश होते हैं २ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से श्रेयान् होते हैं, किन्तु आचरण की दृष्टि से पापीयान् के सदृश होते हैं ३ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से पापीयान् होते है, किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेयान् के सदृश होते हैं ४ कुछ पुरुप बोध की दृष्टि से भी पापीयान् होते हैं और आचरण की दृष्टि से भी पापीयान् के सदृश होते हैं।

५२५ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सेयसे णाममेगे सेयसेत्ति मण्णति,
सेयसे णाममेगे पावसेत्ति मण्णति,
पावसे णाममेगे सेयसेत्ति मण्णति,
पावसे णाममेगे पावसेत्ति मण्णति ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक श्रेयानिति मन्यते,
श्रेयान् नामैक पापीयानिनि मन्यते,
पापीयान् नामैक श्रेयानिति मन्यते,
पापीयान् नामैक पापीयानिति मन्यते ।

५२५. पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप श्रेयान् होते हैं और अपने आपको श्रेयान् ही मानते हैं २ कुछ पुरुप श्रेयान् होते हैं, किन्तु अपने आपको पापीयान् मानते हैं ३ कुछ पुरुप पापीयान् होते हैं, किन्तु अपने अपको श्रेयान् मानते हैं ४ कुछ पुरुप पापीयान् होते हैं और अपने आपको पापीयान् ही मानते हैं ।

५२६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
सेयसे णाममेगे सेयसेत्ति सालिसए मण्णति, सेयसे णाममेगे पावसेत्ति सालिसए मण्णति, पावसे णाममेगे सेयसेत्ति सालिसए मण्णति, पावसे णाममेगे पावसेत्ति सालिसए मण्णति ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक श्रेयानिति सदृशक मन्यते, श्रेयान् नामैक पापीयानिति सदृशक मन्यते, पापीयान् नामैक श्रेयानिति सदृशक मन्यते, पापीयान् नामैक पापीयानिति सदृशक मन्यते ।

५२६. पुरुप चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुप श्रेयान् होते हैं और अपने आपको श्रेयान् के सदृश ही मानते हैं २ कुछ पुरुप श्रेयान् होते हैं किन्तु अपने आपको पापीयान् के सदृश मानते हैं ३ कुछ पुरुप पापीयान् होते है, किन्तु अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानते हैं ४ कुछ पुरुप पापीयान् होते हैं और अपने आपको पापीयान् के सदृश मानते हैं ।

आघवण-पदं

आख्यापन-पदम्

आख्यापन-पद

५२७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
आघवइत्ता णाममेगे, णो पविभावइत्ता, पविभावइत्ता णाममेगे, णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि, पविभावइत्तावि, एगे णो आघवइत्ता, णो पविभावइत्ता ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आख्यापयिता नामैक, नो प्रविभावयिता, प्रविभावयिता नामैक, नो आख्यापयिता, एक आख्यापयिताऽपि, प्रविभावयिताऽपि, एक नो आख्यापयिता, नो प्रविभावयिता ।

५२७ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप आख्यायक (कथावाचक) होते है, किन्तु प्रविभावक[११] (चितक) नही होते २ कुछ पुरुप प्रविभावक होते हैं, किन्तु आख्यायक नहीं होते ३ कुछ पुरुप आख्यायक भी होते हैं और प्रविभावक भी होते हैं ४ कुछ पुरुप न आख्यायक होते हैं और न प्रविभावक होते हैं ।

५२८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
आघवइत्ता णाममेगे, णो उछजीविसपण्णे, उछजीविसपण्णे णाममेगे, णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि उछजीविसंपण्णेवि, एगे णो आघवइत्ता, णो उछजीविसपण्णे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आख्यापयिता नामैक, नो उञ्छजीविकासम्पन्न, उञ्छजीविकासम्पन्न नामैक, नो आख्यापयिता, एक आख्यापयिताऽपि, उञ्छजीविकासम्पन्नोऽपि, एक नो आख्यापयिता, नो उञ्छजीविकासम्पन्न ।

५२८ पुरुप चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप आख्यायक होते हैं, उञ्छजीविका सम्पन्न नही होते २ कुछ पुरुप उञ्छजीविका सम्पन्न होते हैं, आख्यायक नहीं होते ३ कुछ पुरुप आख्यायक भी होते हैं और उञ्छजीविका सम्पन्न भी होते हैं ४ कुछ पुरुप न आख्यायक होते हैं और न उञ्छजीविका सम्पन्न होते है ।

रुक्खविगुव्वणा-पद

५२९ चउव्विहा रुक्खविगुव्वणा पण्णत्ता, त जहा—पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए।

रुक्षविकरण-पदम्

चतुर्विध रुक्षविकरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रवालतया, पत्रतया, पुष्पतया, फलतया।

रुक्षविकरण-पद

५२९ वृक्ष की विक्रिया चार प्रकार की होती है—१ प्रवाल के रूप में २ पत्र के रूप में ३ पुष्प के रूप में ४ फल के रूप में।

वादि-समोसरण-पद

५३०. चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, त जहा—
किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियावादी, वेणइयावादी।

५३१ णेरइयाण चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, त जहा—
किरियावादी, °अकिरियावादी, अण्णाणियावादी° वेणइयावादी।

५३२ एवमसुरकुमाराणवि जाव थणियकुमाराण, एव—विगलिंदियवज्ज जाव वेमाणियाण।

वादि-समवसरण-पदम्

चत्वारि वादिसमवसरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानिकवादी, वैनयिकवादी।

नैरयिकाणा चत्वारि वादिसमवसरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानिकवादी, वैनयिकवादी।

एवम्—असुरकुमाराणामपि यावत् स्तनितकुमाराणाम्, एवम्—विकलेन्द्रिय-वर्ज यावत् वैमानिकानाम्।

वादि-समवसरण-पद

५३० चार वादि-समवसरण है—
१ क्रियावादी—आस्तिक २, अक्रियावादी—नास्तिक ३ अज्ञानवादी ४ विनयवादी[1]।

५३१ नैरयिकों के चार वादी-समवसरण होते हैं—१ क्रियावादी २ अक्रियावादी ३ अज्ञानवादी ४ विनयवादी।

५३२ इसी प्रकार असुरकुमारों यावत् स्तनितकुमारों के चार-चार वादि-समवसरण होते हैं। इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक पर्यंत दण्डकों के चार-चार वादि-समवसरण होते हैं।

मेह-पद

५३३ चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
एगे गज्जित्तावि, वासित्तावि,
एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, त जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
एगे गज्जित्तावि, वासित्तावि,
एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

मेघ-पदम्

चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गर्जिता नामैक, नो वर्षिता,
वर्षिता नामैक, नो गर्जिता,
एक गर्जिताऽपि, वर्षिताऽपि,
एक नो गर्जिता, नो वर्षिता।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गर्जिता नामैक, नो वर्षिता,
वर्षिता नामैक, नो गर्जिता,
एक गर्जिताऽपि, वर्षिताऽपि,
एक नो गर्जिता, नो वर्षिता।

मेघ-पद

५३३ मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मेघ गरजने वाले होते हैं, बरसने वाले नहीं होते २ कुछ मेघ बरसने वाले होते हैं, गरजने वाले नहीं होते ३ कुछ मेघ गरजने वाले भी होते हैं और बरसने वाले भी होते हैं ४ कुछ मेघ न गरजने वाले होते है और न बरसने वाले ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ पुरुष गरजने वाले होते हैं, बरसने वाले नहीं होते, २ कुछ पुरुष बरसने वाले होते हैं, गरजने वाले नही होते, ३ कुछ पुरुष गरजने वाले भी होते हैं और बरसने वाले भी होते हैं, ४ कुछ पुरुष न गरजने वाले होते है और न बरसने वाले होते है।

५३४ चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता', तद्यथा—
गर्जिता नामैक, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैक, नो गर्जिता, एक गर्जिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एक नो गर्जिता, नो विद्योतयिता।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गर्जिता नामैक, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैक, नो गर्जिता, एक गर्जिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एक नो गर्जिता, नो विद्योतयिता।

५३४ मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मेघ गरजने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २ कुछ मेघ चमकने वाले होते हैं, गरजने वाले नही होते, ३ कुछ मेघ गरजने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते, ४ कुछ मेघ न गरजने वाले होते हैं और न चमकन वाले ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुप गरजने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २ कुछ पुरुप चमकने वाले होते हैं, गरजने वाले नही होते, ३ कुछ पुरुप गरजने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न गरजने वाले होते हैं और न चमकने वाले ही होते हैं।

५३५. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—
वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता, एगे वासित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता, एगे वासित्ता वि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वर्पिता नामैक, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैक, नो वर्पिता, एक वर्पिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एक नो वर्पिता, नो विद्योतयिता।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वर्पिता नामैक, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैक, नो वर्पिता, एक वर्पिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एक नो वर्पिता, नो विद्योतयिता।

५३५ मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मेघ बरसने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २ कुछ मेघ चमकने वाले होते हैं, बरसने वाले नही होते, ३ कुछ मेघ बरसने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं, ४ कुछ मेघ न बरसने वाले होते हैं और न चमकने वाले ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप बरसने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २ कुछ पुरुप चमकने वाले होते हैं, बरसने वाले नही होते, ३ कुछ पुरुप बरसने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं, ४ कुछ पुरुप न बरसने वाले होते हैं और न चमकने वाले ही होते है।

५३६. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

५३६ मेघ चार प्रकार के होते हैं—

कालवासी णाममेगे, णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी, एगे कालवासीवि, अकालवासीवि, एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।

कालवर्षी नामैक, नो अकालवर्षी, अकालवर्षी नामैक, नो कालवर्षी, एक कालवर्ष्यपि, अकालवर्ष्यपि, एक नो कालवर्षी, नो अकालवर्षी।

१ कुछ मेघ समय पर बरसने वाले होते हैं, असमय में बरसने वाले नहीं होते, २ कुछ मेघ असमय में बरसने वाले होते हैं, समय पर बरसने वाले नहीं होते, ३ कुछ मेघ समय पर भी बरसने वाले होते हैं और असमय में भी बरसने वाले होते हैं, ४ कुछ मेघ न समय पर बरसने वाले होते हैं और न असमय में ही बरसने वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कालवासी णाममेगे, णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी, एगे कालवासीवि, अकालवासीवि, एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कालवर्षी नामैक, नो अकालवर्षी, अकालवर्षी नामैक, नो कालवर्षी, एक कालवर्ष्यपि, अकालवर्ष्यपि, एक नो कालवर्षी, नो अकालवर्षी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष समय पर बरसने वाले होते हैं, असमय में बरसने वाले नहीं होते, २ कुछ पुरुष असमय में बरसने वाले होते हैं, समय पर बरसने वाले नहीं होते, ३ कुछ पुरुष समय पर भी बरसने वाले होते हैं और असमय में भी बरसने वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष न समय पर बरसने वाले होते हैं और न असमय में ही बरसने वाले होते हैं।

५३७ चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—
खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि, अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।

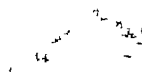
चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षेत्रवर्षी नामैक, नो अक्षेत्रवर्षी, अक्षेत्रवर्षी नामैक, नो क्षेत्रवर्षी, एक क्षेत्रवर्ष्यपि, अक्षेत्रवर्ष्यपि, एक नो क्षेत्रवर्षी, नो अक्षेत्रवर्षी।

५३७ मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ मेघ उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते हैं, ऊसर में बरसने वाले नहीं होते, २ कुछ मेघ ऊसर में बरसने वाले होते हैं, उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले नहीं होते, ३ कुछ मेघ उपजाऊ भूमि पर भी बरसने वाले होते हैं और ऊसर पर भी बरसने वाले होते हैं, ४ कुछ मेघ न उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते हैं और न ऊसर पर ही बरसने वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि, अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेत्रवर्षी नामैक, नो अक्षेत्रवर्षी, अक्षेत्रवर्षी नामैक, नो क्षेत्रवर्षी, एक क्षेत्रवर्ष्यपि, अक्षेत्रवर्ष्यपि, एक नो क्षेत्रवर्षी, नो अक्षेत्रवर्षी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते हैं, ऊसर में बरसने वाले नहीं होते, २ कुछ पुरुष ऊसर में बरसने वाले होते हैं, उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले नहीं होते, ३ कुछ पुरुष उपजाऊ भूमि पर भी बरसने वाले होते हैं और ऊसर पर भी बरसने वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष न उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते हैं और न ऊसर पर बरसने वाले होते हैं।

णो देसाधिवती, एगे देसाधिवतीवि, सव्वाधिवतीवि, एगे णो देसाधिवती, णो सव्वाधिवती।

एक देशाधिपतिरपि, सर्वाधिपतिरपि, एक नो देशाधिपति, नो सर्वाधिपति ।

२ कुछ राजा सब देशो के ही अधिपति होते हैं, एक देश के अधिपति नही होते, ३. कुछ राजा एक देश के भी अधिपति होते हैं और सब देशो के भी अधिपति होते हैं, ४ कुछ राजा न एक देश के अधिपति होते हैं और न सब देशो के ही अधिपति होते है ।

मेह-पद

५४० चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—
पुक्खलसवट्टते पज्जुण्णे, जीमूते जिम्मे।
पुक्खलसवट्टए ण महामेहे एगेण वासेण दसवाससहस्साइ भावेति।
पज्जुण्णे ण महामेहे एगेण वासेण दसवाससयाइ भावेति।
जीमूते ण महामेहे एगेण वासेण दसवाससयाइ भावेति।
जिम्मे ण महामेहे वहूहिं वासेहिं एग वास भावेति वा ण वा भावेति।

मेघ-पदम्

चत्वार मेघा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुष्कलसवर्त्त, प्रद्युम्न, जीमूत, जिम्ह ।
पुष्कलसवर्त्त महामेघ एकेन वर्षेण दशवर्षसहस्राणि भावयति ।
प्रद्युम्न महामेघ एकेन वर्षेण दशवर्षशतानि भावयति ।
जीमूत महामेघ एकेन वर्षेण दशवर्षाणि भावयति ।
जिम्ह महामेघ वहुभिर्वर्षै एक वर्ष भावयति वा न वा भावयति ।

मेघ-पद

५४० मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१ पुष्कलसवर्त, २ प्रद्युम्न,
३ जीमूत, ४ जिम्ह ।
पुष्कलसवर्त महामेघ एक वर्षा से दस हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
प्रद्युम्न महामेघ एक वर्षा से एक हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
जीमूत महामेघ एक वर्षा से दस वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
जिम्ह महामेघ अनेक वार वरस कर एक वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध करता है और नही भी करता ।

आयरिय-पद

५४१ चत्तारि करडगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोवागकरडए, वेसियाकरंडए, गाहावतिकरडए, रायकरडए।
एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—
सोवागकरडगसमाणे, वेसियाकरडगसमाणे, गाहावतिकरडगसमाणे, रायकरडगसमाणे।

आचार्य-पदम्

चत्वार करण्डका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्वपाककरण्डक, वेश्याकरण्डक, गृहपतिकरण्डक, राजकरण्डक ।
एवमेव चत्वार, आचार्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्वपाककरण्डकसमान, वेश्याकरण्डकसमान, गृहपतिकरण्डकसमान, राजकरण्डकसमान ।

आचार्य-पद

५४१ करण्डक चार प्रकार के होते हैं—
१ श्वपाक-करण्डक—चाण्डाल का करण्डक, २ वेश्या-करण्डक,
३ गृहपति-करण्डक, ४ राज-करण्डक ।
इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१ श्वपाक-करण्डक के समान,
२ वेश्या-करण्डक के समान,
३ गृहपति-करण्डक के समान,
४ राज-करण्डक के समान[११]।

५४२. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरंडपरियाए,
एरंडे णाममेगे सालपरियाए,
एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपर्यायकः,
शालः नामैकः एरण्डपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः शालपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपर्यायकः।

५४२ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शाल जाति के होते हैं और वे शाल-पर्याय—विस्तृत छाया वाले होते हैं, २ कुछ वृक्ष शाल जाति के होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय—अल्प छाया वाले होते है, ३ कुछ वृक्ष एरण्ड जाति के होते हैं और वे शाल-पर्याय वाले होते हैं, ४ कुछ वृक्ष एरण्ड जाति के होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरंडपरियाए,
एरंडे णाममेगे सालपरियाए,
एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

एवमेव चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपर्यायकः,
शालः नामैकः एरण्डपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः शालपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपर्यायकः।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ आचार्य शाल [जातिमान्] होते हैं और वे शाल-पर्याय—ज्ञान, क्रिया, प्रभाव आदि से सम्पन्न होते हैं, २ कुछ आचार्य शाल [जातिमान्] होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय—ज्ञान, क्रिया, प्रभाव आदि से शून्य होते हैं, ३ कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे शाल-पर्याय से सम्पन्न होते हैं, ४ कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय से सम्पन्न होते हैं।

५४३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरिवारे,
साले णाममेगे एरंडपरिवारे,
एरंडे णाममेगे सालपरिवारे,
एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपरिवारः,
शालः नामैकः एरण्डपरिवारः,
एरण्डः नामैकः शालपरिवारः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपरिवारः।

५४३ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शाल होते हैं और वे शाल परिवार वाले होते हैं—शाल वृक्षों से घिरे हुए होते हैं, २ कुछ वृक्ष शाल होते हैं और वे एरण्ड परिवार वाले होते है, ३ कुछ वृक्ष एरण्ड होते हैं और वे शाल-परिवार वाले होते है, ४ कुछ वृक्ष एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड परिवार वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरिवारे,
साले णाममेगे एरंडपरिवारे,
एरंडे णाममेगे सालपरिवारे,
एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

एवमेव चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपरिवारः,
शालः नामैकः एरण्डपरिवारः,
एरण्डः नामैकः शालपरिवारः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपरिवारः।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ आचार्य शाल होते हैं और वे शाल-परिवार—योग्य शिष्य-परिवार वाले होते हैं, २ कुछ आचार्य शाल होते है और वे एरण्ड-परिवार—अयोग्य-शिष्य परिवार वाले होते हैं, ३ कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे शाल-परिवार वाले होते है, ४ कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड-परिवार वाले होते हैं।

संगहणी-गाहा

१ सालदुममज्झयारे,
जह सालेणाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए,
सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥

२ एरंडमज्झयारे,
जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए,
मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥

३ सालदुममज्झयारे,
एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए,
सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥

४ एरंडमज्झयारे,
एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए,
मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥

संग्रहणी-गाथा

१ शालद्रुममध्यकारे,
यथा शालो नाम भवति द्रुमराजः।
इति सुन्दर आचार्यः,
सुन्दर शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

२ एरण्डमध्यकारे,
यथा शालो नाम भवति द्रुमराजः।
एवं सुन्दर आचार्यः,
मंगुल (असुन्दर) शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

३ शालद्रुममध्यकारे,
एरण्डो नाम भवति द्रुमराजः।
एवं मंगुल आचार्यः,
सुन्दर शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

४ एरण्डमध्यकारे,
एरण्डो नाम भवति द्रुमराजः।
एवं मंगुल आचार्यः,
मंगुल शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

संग्रहणी-गाथा

१ जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष शाल-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार शाल-आचार्य स्वयं सुन्दर होते हैं और शाल परिवार—सुन्दर शिष्य परिवार से परिवृत होते है,

२ जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष एरण्ड-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार शाल आचार्य स्वयं सुन्दर होते हैं और वे एरण्ड परिवार—असुन्दर शिष्यों से परिवृत होते है,

३ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष शाल-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार एरण्ड-आचार्य स्वयं असुन्दर होते है और वे शाल परिवार—सुन्दर शिष्यों से परिवृत होते हैं,

४ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष एरण्ड-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार एरण्ड-आचार्य स्वयं भी असुन्दर होते हैं और वे एरण्ड परिवार—असुन्दर शिष्यों से परिवृत होते है।

भिक्खाग-पदं

५४४. चत्तारि मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

भिक्षाक-पदम्

चत्वारः मत्स्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी, अन्तचारी, मध्यचारी।

एवमेव चत्वारः भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी, अन्तचारी, मध्यचारी।

भिक्षाक-पद

५४४ मत्स्य चार प्रकार के होते हैं—
१ अनुस्रोतचारी—प्रवाह के अनुकूल चलने वाले, २ प्रतिस्रोतचारी—प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाले, ३ अन्तचारी—किनारों पर चलने वाले, ४ मध्यचारी—बीच में चलने वाले।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के होते हैं—
१ अनुश्रोतचारी, २ प्रतिश्रोतचारी, ३ अन्तचारी, ४ मध्यचारी।

गोल-पद

५४५. चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
मधुसित्थगोले, जउगोले, दारुगोले, मट्टियागोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मधुसित्थगोलसमाणे, जउगोलसमाणे, दारुगोलसमाणे, मट्टियागोलसमाणे।

५४६ चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
अयगोले, तउगोले, तंबगोले, सीसगोले।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अयगोलसमाणे, •तउगोलसमाणे, तंबगोलसमाणे°, सीसगोलसमाणे।

५४७ चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
हिरण्णगोले, सुवण्णगोले, रयणगोले, वयरगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरण्णगोलसमाणे, •सुवण्णगोलसमाणे, रयणगोलसमाणे°, वयरगोलसमाणे।

गोल-पदम्

चत्वार गोला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मधुसिक्थगोल, जतुगोल, दारुगोल, मृत्तिकागोल।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मधुसिक्थगोलसमान, जतुगोलसमान, दारुगोलसमान, मृत्तिकागोलसमान।

चत्वार गोला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अयोगोल, त्रपुगोल, ताम्रगोल, शीशगोल।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अयगोलसमान, त्रपुगोलसमान, ताम्रगोलसमान, शीशगोलसमान।

चत्वार गोला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हिरण्यगोल, सुवर्णगोल, रत्नगोल, वज्रगोल।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हिरण्यगोलसमान, सुवर्णगोलसमान, रत्नगोलसमान, वज्रगोलसमान।

गोल-पद

५४५ गोले चार प्रकार के होते हैं—
१ मधुसिक्थ—मोम का गोला, २ जतु—लाख का गोला, ३ दारु—काष्ठ का गोला, ४ मृत्तिका—मिट्टी का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ मधुसिक्थ के गोले के समान, २ जतु के गोले के समान, ३. दारु के गोले के समान, ४ मृत्तिका के गोले के समान[118]।

५४६ गोले चार प्रकार के होते हैं—
१ लोहे का गोला, २ त्रपु—रांगे का गोला, ३ तांबे का गोला, ४ शीशे का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ लोहे के गोले के समान, २ त्रपु के गोले के समान, ३ तांबे के गोले के समान, ४ शीशे के गोले के समान[119]।

५४७ गोले चार प्रकार के होते हैं—
१ हिरण्य—चांदी का गोला,
२ सुवर्ण—सोने का गोला, ३ रत्न का गोला, ४ वज्ररत्न का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ हिरण्य के गोले के समान, २ सुवर्ण के गोले के समान, ३ रत्न के गोले के समान, ४ वज्ररत्न के गोले के समान[120]।

पत्त-पदं

५४८ चत्तारि पत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
असिपत्ते, करपत्ते, खुरपत्ते, कलंबचीरियापत्ते।

पत्र-पदम्

चत्वारि पत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असिपत्र, करपत्र, क्षुरपत्र, कदम्बचीरिकापत्रम्।

पत्र-पद

५४८ पत्र—फलक चार प्रकार के होते है—
१ असिपत्र—तलवार का पत्र,
२ करपत्र—करोत का पत्र, ३ क्षुरपत्र—छूरे का पत्र, ४ कदम्बचीरिकापत्र—तीखी नोक वाला घास या शस्त्र।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
असिपत्तसमाणे, •करपत्तसमाणे, खुरपत्तसमाणे°, कलवचीरिया-पत्तसमाणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असिपत्रसमान, करपत्रसमान, क्षुरपत्रसमान, कदम्बचीरिकापत्रसमान।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ असिपत्र के समान—तुरन्त स्नेह-पाश को छेद देने वाला, २ करपत्र के समान—बार-बार के अभ्यास से स्नेह-पाश को छेद देने वाला, ३ क्षुरपत्र के समान—थोड़े स्नेह-पाश को छेद देने वाला, ४ कदम्ब चीरिका पत्र के समान—स्नेह छेद की इच्छा रखने वाला[111]।

कड-पद

कट-पदम्

कट-पद

५४९ चत्तारि कडा पण्णत्ता, तं जहा—
सुबकडे, विदलकडे, चम्मकडे, कंबलकडे।

चत्वारः कटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सुम्बकट, विदलकट, चर्मकट, कम्बलकट।

५४९ कट [चटाई] चार प्रकार के होते हैं—
१ सुम्बकट—घास से बना हुआ,
२ विदलकट—बाँस के टुकड़ों से बना हुआ, ३ चर्मकट—चमड़े से बना हुआ,
४ कम्बलकट।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुबकडसमाणे, •विदलकडसमाणे, चम्मकडसमाणे, कंबलकडसमाणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, तद्यथा—
सुम्बकटसमान, विदलकटसमान, चर्मकटसमान, कम्बलकटसमान।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ सुम्बकट के समान—अल्प प्रतिबन्ध वाला, २ विदलकट के समान, बहु प्रतिबन्ध वाला, ३ चर्मकट के समान, बहुतर प्रतिबन्ध वाला, ४ कम्बलकट के समान, बहुतम प्रतिबन्ध वाला।

तिरिय-पद

तिर्यग्-पदम्

तिर्यग्-पद

५५० चउव्विहा चउप्पया पण्णत्ता, तं जहा—
एगखुरा, दुखुरा, गंडीपदा, सणप्फया।

चतुर्विधा चतुष्पदा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकखुरा द्विखुरा गण्डिपदा सनखपदा।

५५० चतुष्पद—जानवर चार प्रकार के होते हैं
१ एक खुर वाले—घोड़े, गधे आदि,
२ दो खुर वाले—गाय, भैंस आदि,
३ गण्डीपद—स्वर्णकार की अहरन की तरह गोल पैर वाले—हाथी, ऊंट आदि,
४ सनखपद—नख सहित पैर वाले—सिंह, कुत्ते आदि।

५५१. चउव्विहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—
चम्मपक्खी, लोमपक्खी, समुग्गपक्खी, विततपक्खी।

चतुर्विधा पक्षिण प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चर्मपक्षिण, लोमपक्षिण, समुद्गपक्षिण, विततपक्षिण।

५५१ पक्षी चार प्रकार के होते हैं—
१ चर्मपक्षी—जिनके पंख चमड़े के होते हैं, चमगादड़ आदि, २ रोमपक्षी—जिनके पंख रोएँदार होते हैं, हंस आदि, ३ समुद्गपक्षी—जिनके पंख पेटी की तरह खुलते हैं और बन्द होते हैं, ४ विततपक्षी—जिनके पंख सदा खुले ही रहते हैं[112]।

५५२ चउव्विहा खुड्डपाणा पण्णत्ता, तं जहा—बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया।

चतुर्विधा क्षुद्रप्राणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका।

५५२ क्षुद्र-प्राणी चार प्रकार के होते हैं—
१ द्वीन्द्रिय, २ त्रीन्द्रिय, ३ चतुरीन्द्रिय, ४ सम्मूर्च्छिमपचेन्द्रियतिर्यक्योनिक।

भिक्खाग-पदं

भिक्षाक-पदम्

भिक्षाक-पद

५५३ चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, त जहा—णिवतित्ता णाममेगे, णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे, णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि, परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता, णो परिवइत्ता।

चत्वार पक्षिण प्रज्ञप्ता, तद्यथा—निपतिता नामैक, नो परिव्रजिता, परिव्रजिता नामैक, नो निपतिता, एक निपतिताऽपि, परिव्रजिताऽपि, एक नो निपतिता, नो परिव्रजिता।

५५३ पक्षी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पक्षी नीड से नीचे उतर सकते हैं, पर उड नही सकते, २ कुछ पक्षी उड सकते हैं पर नीड से नीचे नहीं उतर सकते ३ कुछ पक्षी नीड से नीचे भी उतर मकते हैं और उड भी सकते हैं, ४. कुछ पक्षी न नीड मे नीचे उतर मकते हैं और न उड ही सकते हैं।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—
णिवतित्ता णाममेगे, णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे, णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि, परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता, णो परिवइत्ता।

एवमेव चत्वार भिक्षाका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निपतिता नामैक, नो परिव्रजिता, परिव्रजिता नामैक, नो निपतिता, एक निपतिताऽपि, परिव्रजिताऽपि, एक नो निपतिता, नो परिव्रजिता।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए जाते हैं, पर अधिक घूम नही सकते, २ कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए घूम सकते हैं पर जाते नही ३ कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए जाते भी हैं और घूम भी सकते हैं, ४ कुछ भिक्षुक न भिक्षा के लिए जाते हैं और न घूम ही सकते हैं।[१२]

णिक्कट्ठ-अणिक्कट्ठ-पद

निष्कृष्ट-अनिष्कृष्ट-पदम्

निष्कृष्ट-अनिष्कृष्ट-पद

५५४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निष्कृष्ट नामैक निष्कृष्ट, निष्कृष्ट नामैक अनिष्कृष्ट, अनिष्कृष्ट नामैक निष्कृष्ट, अनिष्कृष्ट नामैक अनिष्कृष्ट।

५५४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट—क्षीण होते है और कषाय से भी निष्कृष्ट होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट, किन्तु कषाय से अनिष्कृष्ट होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अनिकृष्ट, किन्तु कषाय से निष्कृष्ट होते है ४ कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते हैं और कषाय से भी अनिष्कृष्ट होते हैं।

५५५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,
णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा,
अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,
अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निष्कृष्ट नामैक निष्कृष्टात्मा,
निष्कृष्ट नामैक अनिष्कृष्टात्मा,
अनिष्कृष्ट नामैक निष्कृष्टात्मा,
अनिष्कृष्ट नामैक अनिष्कृष्टात्मा।

५५५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट होते हैं और उनकी आत्मा भी निष्कृष्ट होती है, २ कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट होते हैं, पर उनकी आत्मा निष्कृष्ट नहीं होती, ३ कुछ पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट होते हैं, पर उनकी आत्मा निष्कृष्ट होती है, ४ कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते हैं और आत्मा से भी अनिष्कृष्ट होते हैं।

वुध-अवुध-पद

वुध-अवुध-पदम्

वुध-अवुध-पद

५५६ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वुहे णाममेगे वुहे,
वुहे णाममेगे अवुहे,
अवुहे णाममेगे वुहे,
अवुहे णाममेगे अवुहे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वुध नामैक वुध,
वुध नामैक अवुध,
अवुध नामैक वुध,
अवुध नामैक अवुध।

५५६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ज्ञान से भी वुध होते हैं और आचरण से भी वुध होते हैं, २ कुछ पुरुष ज्ञान से वुध होते हैं, किन्तु आचरण से वुध नहीं होते, ३ कुछ पुरुष ज्ञान से अवुध होते हैं, किन्तु आचरण से वुध होते हैं, ४ कुछ पुरुष ज्ञान से भी अवुध होते हैं और आचरण से भी अवुध होते है।

५५७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वुधे णाममेगे वुधहियए,
वुधे णाममेगे अवुधहियए,
अवुधे णाममेगे वुधहियए,
अवुधे णाममेगे अवुधहियए।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वुध नामैक वुधहृदय,
वुध नामैक अवुधहृदय,
अवुध नामैक वुधहृदय,
अवुध नामैक अवुधहृदय।

५५७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आचरण से भी वुध होते हैं और उनका हृदय भी वुध—विवेचनाशील होता है, २ कुछ पुरुष आचरण से वुध होते हैं, पर उनका हृदय वुध नहीं होता, ३ कुछ पुरुष आचरण से वुध नहीं होते, पर उनका हृदय वुध होता है, ४ कुछ पुरुष आचरण से भी अवुध होते हैं और उनका हृदय भी अवुध होता है।

अणुकंपग-पद

अनुकम्पक-पदम्

अनुकम्पक-पद

५५८ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयाणुकंपए णाममेगे, णो पराणु-

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मानुकम्पक नामैक, नो परानु-

५५८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आत्मानुकंपक—आत्म-हित मे प्रवृत्त होते है, पर परानुकंपक—

कपए, पराणुकपए णाममेगे, णो आयाणुकपए, एगे आयाणुकपएवि, पराणुकपएवि, एगे णो आयाणुकपए, णो पराणुकपए।

कम्पक, परानुकम्पक नामैक, नो आत्मानुकम्पक, एक आत्मानुकम्पकोऽपि, परानुकम्पकोऽपि, एक नो आत्मानुकम्पक, नो परानुकम्पक ।

परहित मे प्रवृत्त नही होते, जैसे—जिनकल्पिक मुनि, २ कुछ पुरुष परानुकपक होते है, पर आत्मानुकपक नही होते, जैसे—कृतकार्य तीर्थकर, ३ कुछ पुरुष आत्मानुकपक भी होते हैं और परानुकपक भी होते हैं, जैसे—स्थविर कल्पिक मुनि, ४ कुछ पुरुष न आत्मानुकपक होते हैं और न परानुकपक ही होते हैं, जैसे—क्रूरकर्मा पुरुष।[१५]

सवास-पदं

सवास-पदम्

संवास-पद

५५९. चउव्विहे सवासे पण्णत्ते, त जहा—दिव्वे आसुरे रक्खसे माणुसे।

चतुर्विध सवास प्रज्ञप्त, तद्यथा—दिव्य, आसुर, राक्षस, मानुष ।

५५९ सवास—मैथुन चार प्रकार का होता है—
१ देवताओ का, २ असुरो का,
३ राक्षसो का, ४ मनुष्यो का।

५६० चउव्विघे संवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे असुरीए सद्धि सवास गच्छति, असुरे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, असुरे णाममेगे असुरीए सद्धि सवास गच्छति ।

चतुर्विघ सवास प्रज्ञप्त, तद्यथा—देव नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छति, देव नामैक असुर्या सार्ध सवास गच्छति, असुर नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छति, असुर नामैक असुर्या सार्ध मवास गच्छति ।

५६० सवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ देव देवियो के माथ सवास करते है, २ कुछ देव असुरियो के साथ मवास करते है, ३ कुछ असुर देवियो के साथ सवास करते हैं, ४ कुछ असुर असुरियो के साथ सवास करते हैं।

५६१. चउव्विघे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति, रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति ।

चतुर्विघ सवास प्रज्ञप्त, तद्यथा—देव नामैक देव्या सार्ध सवास गच्छति, देव नामैक राक्षस्या सार्धं सवाम गच्छति, राक्षस नामैक देव्या सार्धं सवाम गच्छति, राक्षस नामैक राक्षस्या सार्धं सवास गच्छति।

५६१ मवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ देव देवियो के साथ सवास करते हैं, २ कुछ देव राक्षसियो के साथ सवास करते हैं, ३ कुछ राक्षम देवियो के साथ सवाम करते हैं, ४ कुछ राक्षम राक्षसियो के माथ सवास करते हैं।

५६२ चउव्विघे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे मणुस्सीए सद्धि सवास गच्छति, मणुस्से णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धि सवास गच्छति ।

चतुर्विघ सवास प्रज्ञप्त, तद्यथा—देव नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छति, देव नामैक मानुष्या सार्धं सवास गच्छति, मनुष्य नामैक देव्या सार्धं सवास गच्छति, मनुष्य नामैक मानुष्या सार्धं सवास गच्छति।

५६२ सवास चार प्रकार का होता हैं—
१ कुछ देव देवियो के साथ सवास करते हैं, २ कुछ देव मानुपियो के साथ सवास करते हैं, ३ कुछ मनुष्य देवियो के साथ सवाम करते हैं, ४ कुछ मनुष्य मानुपियो के साथ सवास करते हैं।

५६३ चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—
असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
असुरः नामैकः असुर्या सार्धं संवासं गच्छति, असुरः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवासं गच्छति, राक्षसः नामैकः असुर्या सार्धं संवासं गच्छति, राक्षसः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवासं गच्छति।

५६३. संवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ असुर असुरियों के साथ संवास करते हैं, २ कुछ असुर राक्षसियों के साथ संवास करते हैं, ३ कुछ राक्षस असुरियों के साथ संवास करते हैं, ४ कुछ राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करते हैं।

५६४ चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—
असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
असुरः नामैकः असुर्या सार्धं संवासं गच्छति, असुरः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः असुर्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति।

५६४ संवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ असुर असुरियों के साथ संवास करते हैं, २ कुछ असुर मानुषियों के साथ संवास करते हैं, ३ कुछ मनुष्य असुरियों के साथ संवास करते हैं, ४ कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ संवास करते हैं।

५६५ चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—
रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
राक्षसः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवासं गच्छति, राक्षसः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति।

५६५ संवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करते हैं, २ कुछ राक्षस मानुषियों के साथ संवास करते हैं, ३ कुछ मनुष्य राक्षसियों के साथ संवास करते हैं, ४ कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ संवास करते हैं।

अवद्धंस-पदं

अपध्वंस-पदम्

अपध्वंस-पद

५६६. चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा—
आसुरे, आभिओगे, संमोहे, देवकिब्बिसे।

चतुर्विधः अपध्वंसः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आसुरः, आभियोगः, सम्मोहः, देवकिल्विषः।

५६६ अपध्वंस—साधना का विनाश चार प्रकार का है—१ आसुर-अपध्वंस, २ अभियोग-अपध्वंस, ३ सम्मोह-अपध्वंस, ४ देवकिल्विष-अपध्वंस।[१२१]

५६७ चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
कोवसीलताए, पाहुडसीलताए, संसत्ततवोकम्मेणं, णिमित्ताजीवयाए।

चतुर्भिः स्थानैः जीवाः आसुरतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
कोपशीलतया, प्राभृतशीलतया, संसक्ततपःकर्मणा, निमित्ताजीवतया।

५६७ चार स्थानों से जीव आसुरत्व-कर्म का अर्जन करता है—
१ कोपशीलता से, २ प्राभृत शीलता—कलहस्वभाव से, ३ संसक्त तपः कर्म—आहार, उपधि की प्राप्ति के लिए तप करने से, ४ निमित्त जीविता—निमित्त आदि बताकर आहार आदि प्राप्त करने से।[१२२]

५६८ चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
अत्तुक्कोसेणं, परपरिवाएणं, भूतिकम्मेणं, कोउयकरणेणं।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा आभियोगतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
आत्मोत्कर्षेण, परपरिवादेन, भूतिकर्मणा, कौतुककरणेन।

५६८ चार स्थानों से जीव आभियोगित्व-कर्म का अर्जन करता है—
१ आत्मोत्कर्ष—आत्म-गुणों का अभिमान करने से, २ पर-परिवाद—दूसरों का अवर्णवाद बोलने से, ३ भूतिकर्म—भस्म, लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करने से, ४ कौतुककरण—मन्त्रित जल से स्नान कराने से।[138]

५६९. चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
उम्मग्गदेसणाए, मग्गंतराएणं, कामासंसपओगेणं, भिज्जाणियाणकरणेणं।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा सम्मोहतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
उन्मार्गदेशनया, मार्गान्तरायेण, कामाशंसाप्रयोगेण, भिध्यानिदानकरणेन।

५६९ चार स्थानों से जीव सम्मोहत्व-कर्म का अर्जन करता है—
१ उन्मार्ग देशना—मिथ्या धर्म का प्ररूपण करने से, २ मार्गान्तराय—मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए विघ्न उत्पन्न करने से, ३ कामाशंसाप्रयोग—शब्दादि विषयों में अभिलाषा करने से, ४ मिथ्यानिदानकरण—गृद्धि-पूर्वक निदान करने से।[139]

५७० चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरियउवज्झायाणमवण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा देवकिल्विषिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हतां अवर्णं वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन्,
आचार्योपाध्याययोः अवर्णं वदन्,
चतुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन्।

५७० चार स्थानों से जीव देव-किल्विषिकत्व कर्म का अर्जन करता है—
१ अर्हन्तों का अवर्णवाद बोलने से, २ अर्हन्त प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद बोलने से, ३ आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद बोलने से, ४ चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने से।[140]

पव्वज्जा-पदं

प्रव्रज्या-पदम्

प्रव्रज्या-पद

५७१. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहतोलोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकप्रतिबद्धा, परलोकप्रतिबद्धा, द्वयलोकप्रतिबद्धा, अप्रतिबद्धा।

५७१ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ इहलोक प्रतिबद्धा—इस जन्म की सुख कामना से ली जाने वाली, २ परलोक प्रतिबद्धा—परलोक की सुख कामना से ली जाने वाली, ३ उभयलोक प्रतिबद्धा—दोनों लोकों की सुख कामना से ली जाने वाली, ४ अप्रतिबद्धा—इहलोक आदि के प्रतिबंध से रहित।

५७२ चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
पुरओपडिबद्धा, मग्गओपडिबद्धा, दुहतोपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुरत प्रतिबद्धा, 'मग्गतो' [पृष्ठत.] प्रतिबद्धा, द्वयप्रतिबद्धा, अप्रतिबद्धा।

५७२ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ पुरत प्रतिबद्धा—शिष्य, आहार आदि की कामना से ली जाने वाली, २ पृष्ठतःप्रतिबद्धा—प्रव्रजित हो जाने पर स्वजन-संबंध छिन्न नहीं हुए हों, ३ उभयप्रतिबद्धा—उक्त दोनों से प्रतिबद्ध ४ अप्रतिबद्धा—उक्त दोनों से अप्रतिबद्ध।

५७३ चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
ओवायपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, सगारपव्वज्जा, विहगगइपव्वज्जा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अवपातप्रव्रज्या, आख्यातप्रव्रज्या, सगरप्रव्रज्या, विहगगतिप्रव्रज्या।

५७३ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ अवपात प्रव्रज्या—गुरु सेवा से प्राप्त की जाने वाली, २ आख्यात प्रव्रज्या—दूसरों के कहने से ली जाने वाली, ३ सगरप्रव्रज्या—परस्पर प्रतिबोध देने की प्रतिज्ञा पूर्वक ली जाने वाली, ४ विहगगति प्रव्रज्या—परिवार से वियुक्त होकर देशांतर में जाकर ली जाने वाली।

५७४ चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता, परिपुयावइत्ता।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तोदयित्वा, प्लावयित्वा, वाचयित्वा, परिप्लुतयित्वा।

५७४ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ कष्ट देकर दी जाने वाली, २ दूसरे स्थान में ले जाकर दी जाने वाली, ३ बातचीत करके दी जाने वाली, ४ स्निग्ध सुमधुर भोजन करवा कर दी जाने वाली।

५७५ चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सियालखइया।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नट खादिता, भट खादिता, सिंह खादिता, शृगाल खादिता।

५७५ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ नटखादिता—जिसमें नट की भाँति वैराग्य शून्य धर्मकथा कहकर जीविका चलाई जाए, २ भटखादिता—जिसमें भट की भांति बल का प्रदर्शन कर जीविका चलाई जाए, ३ सिंहखादिता—जिसमें सिंह की भाँति दूसरों को डराकर जीविका चलाई जाए, ४ शृगालखादिता—जिसमें शृगाल की भाँति दयापात्र होकर जीविका चलाई जाए।

५७६ चउव्विहा किसी पण्णत्ता, तं जहा—

चतुर्विधा कृषि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

५७६. कृषि चार प्रकार की होती है—

वाविया, परिवाविया, णिंदिता, परिणिंदिता।

वापिता, परिवापिता, निदाता, परिनिदाता।

१ उप्त—एक बार बोई हुई, २ पर्युप्त—एक बार बोए हुए धान्य को दो-तीन बार उखाड़-उखाड़ कर लगाए जाए, जैसे—चावल आदि, ३ निदात—एक बार घास आदि की कटाई, ४ परिनिदात—बार-बार घास आदि की कटाई।

एवामेव चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
वाविता, परिवाविता, णिंदिता, परिणिंदिता।

एवमेव चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वापिता, परिवापिता, निदाता, परिनिदाता।

इसी प्रकार प्रव्रज्या भी चार प्रकार की होती है—
१ उप्त—सामायिक चारित्र मे आरोपित करना, २ पर्युप्त—महाव्रतो मे आरोपित करना, ३ निदात—एक बार आलोचना, ४ परिनिदात—बार-बार आलोचना।

५७७. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
धण्णपुंजितसमाणा, धण्णविरल्लितसमाणा, धण्णविक्खित्तसमाणा, धण्णसकट्टितसमाणा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुञ्जितधान्यसमाना, विसरितधान्यसमाना, विक्षिप्तधान्यसमाना, सङ्कर्षितधान्यसमाना।

५७७ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ साफ किए हुए धान्य-पुंज के समान—आलोचना-रहित, २ साफ किए हुए, किन्तु बिखरे हुए धान्य के समान—अल्प अतिचार वाली, ३ बैलो आदि के पैरो से कुचले हुए धान्य के समान—बहु-अतिचार वाली, ४ खलिहान पर लाये हुए धान्य के समान—बहुतरअतिचार वाली।

सण्णा-पदं

संज्ञा-पदम्

संज्ञा-पद

५७८ चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा।

चतस्र सज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा।

५७८ संज्ञाए[111] चार होती हैं—
१ आहार संज्ञा, २ भय संज्ञा
३ मैथुन संज्ञा, ४ परिग्रह संज्ञा।

५७९ चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
ओमकोट्ठताए, छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भि स्थानै आहारसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
अवमकोष्ठतया, क्षुधावेदनीयस्य कर्मण उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५७९ चार स्थानो मे आहार-संज्ञा उत्पन्न होती है—
१ पेट के खाली हो जाने से, २ क्षुधा-वेदनीय कर्म के उदय होने से, ३ आहार की बात सुनने से उत्पन्न मति से, ४ आहार के विषय मे सतत चिंतन करते रहने से।

५८० चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—

चतुर्भि स्थानै भयसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—

५८० चार स्थानो से भय-संज्ञा उत्पन्न होती है—

हीणसत्तताए, भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएण, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

हीनसत्त्वतया, भयवेदनीयस्य कर्मण उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

१ सत्त्वहीनता से, २ भय-वेदनीय कर्म के उदय से, ३ भय की बात सुनने से उत्पन्न मति से, ४ भय का सतत चिन्तन करते रहने से।

५८१ चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
चितमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भि स्थानै मैथुनसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
चितमांसशोणिततया, मोहनीयस्य कर्मण उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५८१ चार कारणों से मैथुन-संज्ञा उत्पन्न होती है—
१ अत्यधिक मांस-शोणित का उपचय हो जाने से, २ मोहनीय कर्म के उदय से—मोहाणुओं की सक्रियता से, ३ मैथुन की बात सुनने से उत्पन्न मति से, ४ मैथुन का सतत चिन्तन करते रहने से।

५८२ चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
अविमुत्तयाए, लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएण, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भि स्थानै परिग्रहसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
अविमुक्ततया, लोभवेदनीयस्य कर्मण उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५८२ चार कारणों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है—१ अविमुक्तता—परिग्रह पास में रहने से, २ लोभ-वेदनीय कर्म के उदय से, ३ परिग्रह को देखने से उत्पन्न मति से, ४. परिग्रह का सतत चिंतन करते रहने से।

काम-पदं

काम-पदम्

काम-पद

५८३. चउव्विहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—
सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा, रोद्दा।
सिंगारा कामा देवाणं, कलुणा कामा मणुयाणं, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं, रोद्दा कामा णेरइयाणं।

चतुर्विधा कामा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शृङ्गारा, करुणा, बीभत्सा, रौद्रा।
शृङ्गारा कामा देवानां, करुणा कामा मनुजानां, बीभत्सा कामा तिर्यग्योनिकानां, रौद्रा कामा नैरयिकाणाम्।

५८३ काम-भोग चार प्रकार के होते हैं—
१ शृंगार, २ करुण, ३ बीभत्स, ४ रौद्र। देवताओं का काम शृंगार-रस प्रधान होता है, मनुष्यों का काम करुण-रस प्रधान होता है, तिर्यंचों का काम बीभत्स-रस प्रधान होता है, नैरयिकों का काम रौद्र-रस प्रधान होता है।

उत्ताण-गंभीर-पदं

उत्तान-गम्भीर-पदम्

उत्तान-गम्भीर-पद

५८४. चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तान नामैक उत्तानोदक,
उत्तान नामैक गम्भीरोदक,
गम्भीर नामैक उत्तानोदक,
गम्भीर नामैक गम्भीरोदकम्।

५८४ उदक चार प्रकार के होते हैं—
१ एक उदक प्रतल—छिछला भी होता है और स्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल भी दीखता है, २ एक उदक प्रतल—छिछला होता है पर अस्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दीखता, ३ एक उदक गभीर होता है पर स्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दीखता है, ४. एक उदक गभीर होता है पर अस्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दिखता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए,
उत्ताणे णाममेगे गभीरहिदए,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए,
गभीरे णाममेगे गभीरहिदए।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तान नामैक उत्तानहृदय,
उत्तान नामैक गम्भीरहृदय,
गम्भीर नामैक उत्तानहृदय,
गम्भीर नामैक गम्भीरहृदय ।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप आकृति से भी अगभीर होते है और हृदय से भी अगभीर होते हैं
२ कुछ पुरुप आकृति से अगभीर होते है, पर हृदय से गभीर होते हैं ३ कुछ पुरुप आकृति मे गभीर होते हैं, पर हृदय से अगभीर होते हैं ४ कुछ पुरुप आकृति से भी गभीर होते ह और हृदय से भी गभीर होते हैं।

५८५ चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गंभीरे णाममेगे गभीरोभासी।

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तान नामैक उत्तानावभासि,
उत्तान नामैक गम्भीरावभासि,
गम्भीर नामैक उत्तानावभासि,
गम्भीर नामैक गम्भीरावभासि ।

५८५ उदक चार प्रकार के होते ह—
१ एक उदक प्रतल होता है और स्थान-विशेप के कारण प्रतल ही लगता है,
२ एक उदक प्रतल होता है, पर स्थान-विशेप के कारण गभीर लगता है, ३ एक उदक गभीर होता है, पर स्थान-विशेप के कारण प्रतल लगता है, ४ एक उदक गभीर होता है और स्थान-विशेप के कारण गभीर ही लगता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी,
गभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गभीरे णाममेगे गभीरोभासी ।

एवमेव चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तान नामैक उत्तानावभासी,
उत्तान नामैक गम्भीरावभासी,
गम्भीर नामैक उत्तानावभासी,
गम्भीर नामैक गम्भीरावभासी ।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुप तुच्छ ही होते हैं और तुच्छता का प्रदर्शन करने से तुच्छ ही लगते है, २ कुछ पुरुप तुच्छ ही होते हैं, पर तुच्छता का प्रदर्शन न करने से गभीर लगते हैं, ३ कुछ पुरुप गभीर होते हैं, पर तुच्छता का प्रदर्शन करने से तुच्छ लगते हैं, ४ कुछ पुरुप गभीर होते हैं और तुच्छता का प्रदर्शन न करने से गभीर ही लगते हैं।

५८६. चत्तारि उदही पण्णत्ता, त जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही,
उत्ताणे णाममेगे गभीरोदही,

चत्वार उदधय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्तान नामैक उत्तानोदधि,
उत्तान नामैक गम्भीरोदधि,

५८६ समुद्र चार प्रकार के होते हैं—
१ समुद्र के कुछ भाग पहले भी प्रतल होते हैं और बाद मे भी प्रतल ही होते हैं,
२ समुद्र के कुछ भाग पहले प्रतल होते हैं

गभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गभीरे णाममेगे गभीरोदही।	गम्भीर नामैक उत्तानोदधि, गम्भीर नामैक गम्भीरोदधि।	पर वेला आने पर गभीर हो जाते हैं, ३ समुद्र के कुछ भाग वेला आने के समय गभीर होते हैं पर उसके चले जाने पर प्रतल हो जाते हैं, ४ समुद्र के कुछ भाग पहले भी गभीर होते हैं और बाद मे भी गभीर ही होते हैं,
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, त जहा— उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गभीरहियए, गभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गभीरे णाममेगे गभीरहियए।	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उत्तान नामैक उत्तानहृदय उत्तान नामैक गम्भीरहृदय, गम्भीर नामैक उत्तानहृदय, गम्भीर नामैक गम्भीरहृदय।	इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष विशेष भावना की अनुपलब्धि के कारण प्रतल होते है और उनका हृदय भी प्रतल ही होता है, २ कुछ पुरुप पहले प्रतल होते हैं, पर विशेष भावना की उपलब्धि के बाद उनका हृदय गभीर हो जाता है, ३ कुछ पुरुप पहले गभीर होते हैं, पर विशेप भावना के चले जाने पर वे प्रतल हो जाते हैं, ४ कुछ पुरुप विशेष भावना की स्थिरता के कारण गभीर होते हैं और उनका हृदय भी गभीर होता है।
५८७ चत्तारि उदही पण्णत्ता, त जहा— उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी, गभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गभीरे णाममेगे गभीरोभासी।	चत्वार उदधय प्रज्ञप्ता, तद्यथा— उत्तान नामैक उत्तानावभासी, उत्तान नामैक गम्भीरावभासी, गम्भीर नामैक उत्तानावभासी, गम्भीर नामैक गम्भीरावभासी।	५८७ समुद्र चार प्रकार के होते हैं— १ समुद्र के कुछ भाग प्रतल होते हैं और प्रतल ही लगते हैं, २ समुद्र के कुछ भाग प्रतल होते हैं, पर गभीर लगते हैं, ३ समुद्र के कुछ भाग गभीर होते है, पर प्रतल लगते हैं, ४ समुद्र के कुछ भाग गभीर होते हैं और गभीर ही लगते है।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा— उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी, गभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गभीरे णाममेगे गभीरोभासी।	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— उत्तान नामैक उत्तानावभासी, उत्तान नामैक गम्भीरावभासी, गम्भीर नामैक उत्तानावभासी, गम्भीर नामैक गम्भीरावभासी।	इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुप प्रतल होते हैं और प्रतल ही लगते हैं, २, कुछ पुरुप प्रतल होते हैं, पर गभीर लगते हैं, ३ कुछ पुरुष गभीर होते हैं, पर प्रतल लगते हैं ४ कुछ पुरुष गभीर होते है और गभीर ही लगते हैं।

तरग-पद

५८८. चत्तारि तरगा पण्णत्ता, त जहा—
समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरति,
समुद्दं तरामीतेगे गोप्पय तरति,
गोप्पय तरामीतेगे समुद्दं तरति,
गोप्पय तरामीतेगे गोप्पय तरति।

तरक-पदम्

चत्वार तरका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समुद्र तरामीत्येक समुद्र तरति,
समुद्र तरामीत्येक गोष्पद तरति,
गोष्पद तरामीत्येक समुद्र तरति,
गोष्पद तरामीत्येक गोष्पद तरति।

तरक-पद

५८८ तैराक चार प्रकार के होते है—
१ कुछ तैराक समुद्र को तैरने का सकल्प करते है और उसे तैर भी जाते है, २ कुछ तैराक समुद्र को तैरने का सकल्प करते हैं और गोष्पद को तैरते हैं, ३ कुछ तैराक गोष्पद को तैरने का सकल्प करते है और समुद्र को तैर जाते है, ४ कुछ तैराक गोष्पद को तैराने का सकल्प करते हैं और गोष्पद को ही तैरते हैं।

५८९ चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा—
समुद्दं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, समुद्दं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति, गोप्पय तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, गोप्पय तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति।

चत्वार तरका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
समुद्र तरीत्वा नामैक समुद्रे विषीदति,
समुद्र तरीत्वा नामैक गोष्पदे विषीदति,
गोष्पद तरीत्वा नामैक समुद्रे विषीदति,
गोष्पद तरीत्वा नामैक गोष्पदे विषीदति।

५८९ तैराक चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ तैराक सारे समुद्र को तैरकर किनारे पर आकर विषण्ण हो जाते है, २ कुछ तैराक समुद्र को तैरकर गोष्पद मे विषण्ण हो जाते है, ३ कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर समुद्र मे विषण्ण हो जाते है, ४ कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर गोष्पद मे ही विषण्ण हो जाते है।

पुण्ण-तुच्छ-पद

५९० चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

पूर्ण-तुच्छ-पदम्

चत्वार कुम्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्ण,
पूर्ण नामैक तुच्छ,
तुच्छ नामैक पूर्ण,
तुच्छ नामैक तुच्छ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्ण,
पूर्ण नामैक तुच्छ,
तुच्छ नामैक पूर्ण,
तुच्छ नामैक तुच्छ।

पूर्ण-तुच्छ-पद

५९० कुभ चार प्रकार के होते है—
१ कुछ कुभ आकार मे भी पूर्ण होते हैं और मधु आदि द्रव्यो से भी पूर्ण होते हैं, २ कुछ कुभ आकार से पूर्ण होते है, पर मधु आदि द्रव्यो से रिक्त होते है, ३ कुछ कुभ मधु आदि द्रव्यो से अपूर्ण होते हैं, पर आकार से पूर्ण होते है, ४ कुछ कुभ मधु आदि द्रव्यो से भी अपूर्ण होते हैं और आकार से भी अपूर्ण होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष आकार मे पूर्ण होते हैं और गुणो से भी पूर्ण होते हैं, २ कुछ पुरुष आकार से पूर्ण होते है, पर गुणो से अपूर्ण होते हैं, ३ कुछ पुरुष आकार से अपूर्ण होते है, पर गुणो से पूर्ण होते है, ४ कुछ पुरुष आकार से भी अपूर्ण होते हैं और गुणो से भी अपूर्ण होते हैं।

५६१. चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

चत्वार कुम्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्णविभासी,
पूर्ण नामैक तुच्छावभासी,
तुच्छ नामैक पूर्णविभासी,
तुच्छ नामैक तुच्छावभासी।

५६१ कुभ चार प्रकार के होते है—
१ कुछ कुभ आकार से पूर्ण होते है और पूर्ण ही लगते है, २ कुछ कुभ आकार से पूर्ण होते हैं, पर अपूर्ण से लगते है, ३ कुछ कुभ आकार से अपूर्ण होते हैं, पर पूर्ण से लगते हैं, ४ कुछ कुभ आकार से अपूर्ण होते हैं और अपूर्ण ही लगते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्णविभासी,
पूर्ण नामैक तुच्छावभासी,
तुच्छ नामैक पूर्णविभासी,
तुच्छ नामैक तुच्छावभासी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से पूर्ण होते है और विनियोग करने के कारण पूर्ण ही लगते है, २ कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से पूर्ण होते है, पर उनका विनियोग नही करने के कारण अपूर्ण से लगते हैं, ३ कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, पर उनका विनियोग करने के कारण पूर्ण से लगते हैं, ४ कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं और उनका विनियोग नही करने के कारण अपूर्ण ही लगते हैं।

५६२ चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

चत्वार कुम्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्णरूप,
पूर्ण नामैक तुच्छरूप,
तुच्छ नामैक पूर्णरूप,
तुच्छ नामैक तुच्छरूप।

५६२ कुभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ कुभ जल आदि मे पूर्ण होते है और उनका रूप—आकार भी पूर्ण होता हैं, २ कुछ कुभ जल आदि से पूर्ण होते हैं, पर उनका रूप पूर्ण नही होता, ३ कुछ कुभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं, पर उनका रूप पूर्ण होता है, ४ कुछ कुभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं और उनका रूप भी अपूर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्ण नामैक पूर्णरूप,
पूर्ण नामैक तुच्छरूप,
तुच्छ नामैक पूर्णरूप,
तुच्छ नामैक तुच्छरूप।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और रूप—वेप से भी पूर्ण होते हैं, २ कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, पर रूप से अपूर्ण होते हैं, ३ कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, पर रूप से पूर्ण होते हैं, ४ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और रूप से भी अपूर्ण होते है।

५९३ चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा— पुण्णेवि एगे पियट्ठे, पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।	चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पूर्णोऽपि एकः प्रियार्थः, पूर्णोऽपि एकः अपदलः, तुच्छोऽपि एकः प्रियार्थः, तुच्छोऽपि एकः अपदलः।	५९३ कुंभ चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ कुंभ जल आदि से भी पूर्ण होते हैं और देखने मे भी प्रिय लगते हैं, २ कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण होते हैं, पर अपूर्ण पक्व होने के कारण अपदल—असार होते हैं, ३ कुछ कुंभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं, पर देखने मे प्रिय लगते है, ४ कुछ कुंभ जल आदि से भी अपूर्ण होते हैं और अपूर्ण पक्व होने के कारण अपदल भी होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— पुण्णेवि एगे पियट्ठे °पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।°	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पूर्णोऽपि एकः प्रियार्थः, पूर्णोऽपि एकः अपदलः, तुच्छोऽपि एकः प्रियार्थः, तुच्छोऽपि एकः अपदलः।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और प्रियार्थ—परोपकारी होने के कारण प्रिय भी होते हैं, २ कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, पर अपदल—परोपकार करने मे अक्षम होते हैं, ३ कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, पर प्रियार्थ—परोपकार करने के कारण प्रिय होते हैं, ४ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और अपदल—परोपकार करने मे भी अक्षम होते हैं।
५९४ चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा— पुण्णेवि एगे विस्सदति, पुण्णेवि एगे णो विस्सदति, तुच्छेवि एगे विस्सदति, तुच्छेवि एगे णो विस्सदति।	चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पूर्णोऽपि एकः विष्यन्दते, पूर्णोऽपि एकः नो विष्यन्दते, तुच्छोऽपि एकः विष्यन्दते, तुच्छोऽपि एकः नो विष्यन्दते।	५९४ कुंभ चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ कुंभ जल से पूर्ण होते हैं और झरते भी हैं, २ कुछ कुंभ जल से भी पूर्ण होते हैं और झरते भी नहीं, ३ कुछ कुंभ जल मे भी अपूर्ण होते हैं और झरते भी हैं, ४ कुछ कुंभ जल से अपूर्ण होते हैं, पर झरते नहीं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— पुण्णेवि एगे विस्सदति, °पुण्णेवि एगे णो विस्सदति, तुच्छेवि एगे विस्सदति, तुच्छेवि एगे णो विस्सदति।°	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पूर्णोऽपि एकः विष्यन्दते, पूर्णोऽपि एकः नो विष्यन्दते, तुच्छोऽपि एकः विष्यन्दते, तुच्छोऽपि एकः नो विष्यन्दते।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और विष्यन्दी—उनका विनियोग करने वाले भी होते हैं, २ कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, पर विष्यन्दी नही होते, ३ कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं और विष्यन्दी होते हैं, ४ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते है और विष्यन्दी भी नही होते।

चरित्त-पदं

५९५ चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई।
एवामेव चउव्विहे चरित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
भिण्णे, °जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई।

चरित्र-पदम्

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भिन्नः, जर्जरितः, परिश्रावी, अपरिश्रावी।
एवमेव चतुर्विधं चरित्रं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
भिन्नं, जर्जरितं, परिश्रावि, अपरिश्रावि।

चरित्र-पद

५९५ कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. भिन्न—फूटे हुए, २. जर्जरित—पुराने, ३. परिस्रावी—झरने वाले, ४. अपरिस्रावी—नहीं झरने वाले,
इसी प्रकार चरित्र भी चार प्रकार का होता है—१. भिन्न—मूल प्रायश्चित्त के योग्य, २. जर्जरित—छेद प्रायश्चित्त के योग्य, ३. परिस्रावी—सूक्ष्म दोष वाला, ४. अपरिस्रावी—निर्दोष।

महु-विस-पद

५९६ चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,
महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे,
विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,
विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

मधु-विष-पदम्

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मधुकुम्भः नामैकः मधुपिधानः,
मधुकुम्भः नामैकः विषपिधानः,
विषकुम्भः नामैकः मधुपिधानः,
विषकुम्भः नामैकः विषपिधानः।

मधु-विष-पद

५९६ कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते हैं और उनके ढक्कन भी मधु का ही होता है, २. कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते हैं, पर उनके ढक्कन विष का होता है, ३. कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते हैं पर उनके ढक्कन मधु का होता है ४. कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते हैं और उनके ढक्कन भी विष का होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,
महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे,
विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,
विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मधुकुम्भः नामैकः मधुपिधानः,
मधुकुम्भः नामैकः विषपिधानः,
विषकुम्भः नामैकः मधुपिधानः,
विषकुम्भः नामैकः विषपिधानः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुषों का हृदय भी मधु से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी मधु से भरी हुई होती है, २. कुछ पुरुषों का हृदय मधु से भरा हुआ होता है, पर उनकी वाणी विष से भरी हुई होती है, ३. कुछ पुरुषों का हृदय विष से भरा हुआ होता है, पर उनकी वाणी मधु से भरी हुई होती है, ४. कुछ पुरुषों का हृदय विष से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी विष से भरी हुई होती है।

संगहणी-गाहा

१. हिययमपावमकलुसं,
जीहाऽवि य महुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से मधुकुंभे मधुपिहाणे॥

संग्रहणी-गाथा

१. हृदयमपापमकलुषं,
जिह्वापि च मधुरभाषिणी नित्यम्।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स मधुकुम्भः मधुपिधानः॥

संग्रहणी-गाथा

(१) जिस पुरुष का हृदय निष्पाप और अकलुष होता है तथा जिसकी जिह्वा भी मधुर भाषिणी होती है वह पुरुष मधु-भृत और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

२ हिययमपावमकलुस,
जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से मधुकुभे विसपिहाणे ॥
३. जं हियय कलुसमयं,
जीहाऽवि य मधुरभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से विसकुभे महुपिहाणे ॥
४ जं हियय कलुसमय,
जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से विसकुभे विसपिहाणे ॥

२ हृदयमपापमकलुष,
जिह्वापि च कटुकभाषिणी नित्य ।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स मधुकुम्भ विषपिधान ॥
३ यत् हृदय कलुषमय,
जिह्वाऽपि च मधुरभाषिणी नित्य ।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स विषकुम्भ मधुपिधान ॥
४ यत् हृदय कलुषमय,
जिह्वाऽपि च कटुकभाषिणी नित्य ।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स विषकुम्भ विषपिधान ॥

(२) जिस पुरुष का हृदय निष्पाप और अकलुष होता है, पर जिसकी जिह्वा कटु-भाषिणी होती है वह पुरुष मधु-भृत और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।
(३) जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है, पर जिह्वा मधुर-भाषिणी होती है वह पुरुष विष-भृत और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।
(४) जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है और जिह्वा भी कटु-भाषिणी होती है वह पुरुष विष-भृत और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

उवसग्ग-पदं

उपसर्ग-पदम्

उपसर्ग-पद

५९७ चउव्विहा उवसग्गा पण्णत्ता, त जहा—
दिव्वा, माणुसा, तिरिक्खजोणिया, आयसचेयणिज्जा ।

चतुर्विधा उपसर्गा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दिव्या मानुषा, तिर्यग्योनिका, आत्मसचेतनीया ।

५९७ उपसर्ग चार प्रकार के होते है—
१ देवताओं से होने वाले,
२ मनुष्यों से होने वाले,
३ तिर्यञ्चो से होने वाले,
४ स्वय अपने द्वारा होने वाले[११२] ।

५९८. दिव्वा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—
हासा, पाओसा, वीमसा, पुढोवेमाता ।

दिव्या उपसर्गा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हासात्, प्रद्वेषात्, विमर्शात्, पृथग्विमात्रा ।

५९८ देवताओं से होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं—
१ हास्यजनित, २ प्रद्वेषजनित,
३ विमर्श—परीक्षा की दृष्टि से किया जाने वाला, ४ पृथक्विमात्रा—उक्त तीनो का मिश्रित रूप ।

५९९. माणुसा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—
हासा, पाओसा, वीमसा, कुसील-पडिसेवणया ।

मानुषा. उपसर्गा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हासात्, प्रद्वेषात्, विमर्शात्, कुशील-प्रतिषेवणया ।

५९९ मनुष्यो के द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं—
१ हास्यजनित, २ प्रद्वेषजनित,
३ विमर्शजनित, ४ कुशील—प्रतिसेवन के लिए किया जाने वाला ।

६००. तिरिक्खजोणिया उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—
भया, पदोसा, आहारहेउ, अवच्च-लेण-सारक्खणया ।

तिर्यग्योनिका उपसर्गा. चतुर्विधा. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भयात् प्रद्वेषात्, आहारहेतो, अपत्य-लयन-सरक्षणाय ।

६०० तिर्यञ्चो के द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते है—
१ भयजनित, २ प्रद्वेषजनित,
३ आहार के निमित्त से किया जाने वाला,
४ अपने बच्चो के आवास-स्थानो की सुरक्षा के लिए किया जाने वाला ।

६०१ आयसचेयणिज्जा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
घट्टणता, पवडणता, थभणता, लेसणता।

आत्मसचेतनीया उपसर्गा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
घट्टनया, प्रपतनया, स्तम्भनया, श्लेषणया।

६०१ अपने द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं—
१ सघर्ष जनित—जैसे आख मे रज कण गिर जाने पर उसे मलने से होने वाला कष्ट, २ प्रपतनजनित—गिरने से होने वाला कष्ट, ३ स्तम्भनता—रुधिर-गति के रुक जाने पर होने वाला कष्ट, ४ श्लेषणता—पैर आदि सधि-स्थलो के जुड जाने से होने वाला कष्ट।

कम्म-पदं

६०२ चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—
सुभे णाममेगे सुभे,
सुभे णाममेगे असुभे,
असुभे णाममेगे सुभे,
असुभे णाममेगे असुभे।

कर्म-पदम्

चतुर्विध कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
शुभ नामैक शुभ,
शुभ नामैक अशुभ,
अशुभ नामैक शुभ,
अशुभ नामैक अशुभम्।

कर्म-पद

६०२ कर्म चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ कर्म शुभ—पुण्य प्रकृति वाले होते हैं और उनका अनुबन्ध भी शुभ होता है, २ कुछ कर्म शुभ होते हैं, पर उनका अनुबन्ध अशुभ होता है ३ कुछ कर्म अशुभ होते हैं, पर उनका अनुबन्ध शुभ होता है, ४ कुछ कर्म अशुभ होते हैं और उनका अनुबन्ध भी अशुभ होता है[111]।

६०३ चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—
सुभे णाममेगे सुभविवागे,
सुभे णाममेगे असुभविवागे,
असुभे णाममेगे सुभविवागे,
असुभे णाममेगे असुभविवागे।

चतुर्विध कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
शुभ नामैक शुभविपाक,
शुभ नामैक अशुभविपाक,
अशुभ नामैक शुभविपाक,
अशुभ नामैक अशुभविपाकम्।

६०३ कर्म चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ कर्म शुभ होते हैं और उनका विपाक भी शुभ होता है, २ कुछ कर्म शुभ होते हैं पर उनका विपाक अशुभ होता है, ३ कुछ कर्म अशुभ होते है, पर उनका विपाक शुभ होता है, ४ कुछ कर्म अशुभ होते हैं और उनका विपाक भी अशुभ होता है[114]।

६०४ चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—
पगडीकम्मे, ठितीकम्मे, अणुभावकम्मे, पदेसकम्मे।

चतुर्विध कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रकृतिकर्म, स्थितिकर्म, अनुभावकर्म, प्रदेशकर्म।

६०४ कर्म चार प्रकार के होते हैं—
१ प्रकृति-कर्म—कर्म पुद्गलो का स्वभाव, २ स्थिति-कर्म—कर्म पुद्गलो की काल-मर्यादा, ३ अनुभावकर्म—कर्म पुद्गलो का सामर्थ्य, ४ प्रदेशकर्म—कर्म पुद्गलो का सचय।

संघ-पदं

६०५. चउव्विहे सघे पण्णत्ते, त जहा—
समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

संघ-पदम्

चतुर्विध सघ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रमणा, श्रमण्य, श्रावका, श्राविका।

सघ-पद

६०५ सघ चार प्रकार का होता है—
१ श्रमण, २ श्रमणी, ३ श्रावक, ४ श्राविका।

बुद्धि-पदं

६०६ चउव्विहा बुद्धी पण्णत्ता, त जहा—
उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मिया, परिणामिया।

बुद्धि-पदम्

चतुर्विधा बुद्धि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी।

बुद्धि-पद

६०६ बुद्धि चार प्रकार की होती है—
१ औत्पत्तिकी—महज बुद्धि,
२ वैनयिकी—गुरुशुश्रूपा से उत्पन्न बुद्धि,
३ कार्मिकी—कार्य करते-करते वढने वाली बुद्धि, ४ पारिणामिकी—आयु वढने के माथ-साथ विकसित होने वाली बुद्धि[११५]।

मइ-पदं

६०७ चउव्विहा मई पण्णत्ता, त जहा—
उग्गहमती, ईहामती, अवायमती, धारणामती।
अहवा—
चउव्विहा मती पण्णत्ता, तं जहा—
अरजरोदगसमाणा, वियरोदगसमाणा, सरोदगसमाणा, सागरोदगसमाणा।

मति-पदम्

चतुर्विधा मति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अवग्रहमति, ईहामति, अवायमति, धारणामति।
अथवा—
चतुर्विधा मति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अरञ्जरोदकसमाना, विदरोदकसमाना, सरउदकसमाना, सागरोदकसमाना।

मति-पद

६०७ मति चार प्रकार की होती है—
१ अवग्रहमति, २ ईहामति,
३ अवायमति, ४ धारणामति।
अथवा—
मति चार प्रकार की होती है—
१ घडे के पानी के समान—अत्यल्प,
२ गढे के पानी के ममान—अल्प,
३ तालाव के पानी के समान—वहुतर,
४ समुद्र के पानी के समान—अपरिमेय।

जीव-पदं

६०८ चउव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।

६०९. चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

जीव-पदम्

चतुर्विधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिका, तिर्यग्योनिका, मनुष्या, देवा।

चतुर्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनोयोगिन, वाग्योगिन, काययोगिन, अयोगिन।

जीव-पद

६०८ ससारी जीव चार प्रकार के होते हैं—
१ नैरयिक, २ तिर्यक्योनिक,
३ मनुष्य, ४ देव।

६०९ ससारी जीव चार प्रकार के होते हैं—
१ मनोयोगी, २ वचोयोगी
३ काययोगी, ४ अयोगी।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा,
णपुंसकवेयगा, अवेयगा।

अथवा—
चतुर्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
स्त्रीवेदका, पुरुषवेदका, नपुंसकवेदका,
अवेदका।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
१ स्त्रीवेदक, २ पुरुषवेदक,
३ नपुंसकवेदक, ४ अवेदक।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
चक्खुदसणी, अचक्खुदसणी,
ओहिदसणी, केवलदसणी।

अथवा—
चतुर्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चक्षुर्दर्शनिन, अचक्षुर्दर्शनिन,
अवधिदर्शनिन, केवलदर्शनिन।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
१ चक्षुदर्शनी, २ अचक्षुदर्शनी,
३ अवधिदर्शनी, ४ केवलदर्शनी।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
सजया, असजया, सजयासजया,
णोसजया णोअसजया।

अथवा—
चतुर्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सयता, असयता, सयताऽसयता,
नोसयता नोअसयता।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
सयत, असयत, सयतासयत,
न सयत और न असयत।

मित्त-अमित्त-पद

६१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मित्ते णाममेगे मित्ते,
मित्ते णाममेगे अमित्ते,
अमित्ते णाममेगे मित्ते,
अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

मित्र-अमित्र-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मित्र नामैक मित्र,
मित्र नामैक अमित्र,
अमित्र नामैक मित्र,
अमित्र नामैक अमित्रम्।

मित्र-अमित्र-पद

६१० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष व्यवहार से भी मित्र होते और हृदय से भी मित्र होते हैं, २ कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र होते हैं, किन्तु हृदय से मित्र नही होते, ३ कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र नही होते, पर हृदय से मित्र होते हैं, ४ कुछ पुरुष न व्यवहार से मित्र होते हैं और न हृदय से मित्र होते है।

६११ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
मित्ते णाममेगे मित्तरूवे,
•मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे,
अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे,
अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मित्र नामैक मित्ररूप,
मित्र नामैक अमित्ररूप,
अमित्र नामैक मित्ररूप,
अमित्र नामैक अमित्ररूपम्।

६११ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष मित्र होते हैं और उनका उपचार भी मित्रवत् होता है, २ कुछ पुरुष मित्र होते हैं, पर उनका उपचार अमित्रवत् होता है, ३ कुछ पुरुष अमित्र होते हैं, पर उनका उपचार मित्रवत् होता है, ४ कुछ पुरुष अमित्र होते हैं और उनका उपचार भी अमित्रवत् होता है।

मुत्त-अमुत्त-पदं

६१२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
मुत्ते णाममेगे मुत्ते,
मुत्ते णाममेगे अमुत्ते,
अमुत्ते णाममेगे मुत्ते,
अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते।

मुक्त-अमुक्त-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मुक्त नामैक मुक्त,
मुक्त नामैक अमुक्त,
अमुक्त नामैक मुक्त,
अमुक्त नामैक अमुक्त ।

मुक्त-अमुक्त-पद

६१२ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष द्रव्य [वस्तु] से भी मुक्त होते हैं और भाव [वृत्ति] से भी मुक्त होते हैं, २ कुछ पुरुष द्रव्य से मुक्त होते हैं, पर भाव से अमुक्त होते हैं, ३ कुछ पुरुष द्रव्य से अमुक्त होते हैं, पर भाव से मुक्त होते हैं, ४ कुछ पुरुष द्रव्य से भी अमुक्त होते हैं और भाव से भी अमुक्त होते हैं।

६१३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,
मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे,
अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,
अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मुक्त नामैक मुक्तरूप,
मुक्त नामैक अमुक्तरूप,
अमुक्त नामैक मुक्तरूप,
अमुक्त नामैक अमुक्तरूप ।

६१३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष मुक्त होते हैं और उनका व्यवहार भी मुक्तवत् होता है, २ कुछ पुरुष मुक्त होते हैं, पर उनका व्यवहार अमुक्तवत् होता है, ३ कुछ पुरुष अमुक्त होते हैं, पर उनका व्यवहार मुक्तवत् होता है, ४ कुछ पुरुष अमुक्त होते हैं और उनका व्यवहार भी अमुक्तवत् होता है।

गति-आगति-पद

६१४ पंचिंदियतिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता, त जहा—
पंचिंदियतिरिक्खजोणिए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
से चेव ण से पंचिंदियतिरिक्खजोणिए पंचिंदियतिरिक्खजोणियत्त विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, •तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा°, देवत्ताए वा गच्छेज्जा।

गति-आगति-पदम्

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका चतुर्गतिका चतुरागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेषु उपपद्यमानो नैरयिकेभ्यो वा, तिर्यग्योनिकेभ्यो वा, मनुष्येभ्यो वा, देवेभ्यो वा उपपद्येत ।
स चैव असौ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकत्व विप्रजहत् नैरयिकतया वा, तिर्यग्योनिकतया वा, मनुष्यतया वा, देवतया वा गच्छेत्।

गति-आगति-पद

६१४ पचेन्द्रियतिर्यक्योनिको की चार स्थानो मे गति तथा चार स्थानो मे आगति है—
पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीव पचेन्द्रियतिर्यक्योनि मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिको, तिर्यक्योनिको, मनुष्यो तथा देवो से आगति करता है,

पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीव पचेन्द्रियतिर्यक्योनि को छोडता हुआ नैरयिको, तिर्यक्योनिको, मनुष्यो तथा देवो मे गति करता है।

६१५ मणुस्सा चउगइआ चउआगइआ• पण्णत्ता, त जहा—
मणुस्से मणुस्सेसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिए-हिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
से चेव ण से मणुस्से मणुसत्त विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा, देवत्ताए वा गच्छेज्जा।°

मनुष्या चतुर्गतिका चतुरागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनुष्य मनुष्येषु उपपद्यमान नरयिकेभ्यो वा, तिर्यग्योनिकेभ्यो वा, मनुष्येभ्यो वा, देवेभ्यो वा उपपद्येत।
स चैव असौ मनुष्य मनुष्यत्व विप्रजहत् नैरयिकतया वा, तिर्यग्योनिकतया वा, मनुष्यतया वा, देवतया वा गच्छेत्।

६१५ मनुष्य चार स्थानो मे गति तथा चार स्थानो से आगति करता है—
मनुष्य मनुष्य मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिको, तिर्यञ्चयोनिको, मनुष्यो तथा देवो से आगति करता है,
मनुष्य, मनुष्यत्व को छोडता हुआ नैरयिको, तिर्यक्योनिको, मनुष्यो तथा देवो मे गति करता है।

संजम-असजम-पद

संयम-असयम-पदम्

संयम-असंयम-पद

६१६ वेइदियाण जीवा असमारभमाणस्स चउव्विहे सजमे कज्जति, त जहा—
जिब्भामयातो सोक्खातो अववरोवित्ता भवति, जिब्भामएण दुक्खेण असजोगेत्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति, फासामएण दुक्खेण असजोगित्ता भवति।

द्वीन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य चतुर्विध सयम क्रियते, तद्यथा—
जिह्वामयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति, जिह्वामयेन दु खेन असयोजयिता भवति, स्पर्शमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति, स्पर्शमयेन दु खेन असयोजयिता भवति।

६१६ द्वीन्द्रिय जीवो का आरम्भ नही करने वाले के चार प्रकार का सयम होता है—
१ रसमय सुख का वियोग नही करने से,
२ रसमय दु ख का सयोग नही करने से,
३ स्पर्शमय सुख का वियोग नही करने से,
४ स्पर्शमय दु ख का सयोग नहीं करने से।

६१७ वेइदिया ण जीवा समारभमाणस्स चिउविधे असजमे कज्जति, त जहा—
जिब्भामयातो सोक्खातो ववरोवित्ता भवति, जिब्भामएण दुक्खेण सजोगित्ता भवति, फासामयातो सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति, •फासामएण दुक्खेण सजोगित्ता भवति।°

द्वीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य चतुर्विध असयम क्रियते, तद्यथा—
जिह्वामयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति, जिह्वामयेन दु खेन सयोजयिता भवति, स्पर्शमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति, स्पर्शमयेन दु खेन सयोजयिता भवति।

६१७ द्वीन्द्रिय जीवो का आरम्भ करने वाले के चार प्रकार का असयम होता है—
१ रसमय सुख का वियोग करने से,
२ रसमय दु ख का सयोग करने से,
३ स्पर्शमय सुख का वियोग करने से,
४ स्पर्शमय दु ख का सयोग करने से।

किरिया-पदं

६१८ सम्मद्दिट्ठियाण णेरइयाणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
आरभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।

६१९ सम्मद्दिट्ठियाणमसुरकुमाराण चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
•आरभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।०

६२० एवं—विगलिदियवज्ज जाव वेमाणियाण।

क्रिया-पदम्

सम्यग्दृष्टिकाना नैरयिकाणा चतस्र क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानक्रिया।

सम्यग्दृष्टिकाना असुरकुमाराणा चतस्र क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानक्रिया।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

क्रिया-पद

६१८ सम्यग्दृष्टि नैरयिको के चार क्रियाए होती हैं—
१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी,
३ मायाप्रत्ययिकी,
४ अप्रत्याख्यानक्रिया।

६१९ सम्यग्दृष्टि असुरकुमारो के चार क्रियाए होती हैं—
१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी,
३ मायाप्रत्ययिकी,
४ अप्रत्याख्यानक्रिया।

६२० इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर सभी दण्डकों मे चार-चार क्रियाए होती हैं।

गुण-पदं

६२१ चउहिं ठाणेहिं सते गुणे णासेज्जा, त जहा—
कोहेण, पडिणिवेसेण, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेण।

६२२ चउहिं ठाणेहिं असते गुणे दीवेज्जा, त जहा—
अब्भासवत्तिय परच्छदाणुवत्तिय, कज्जहेउ, कतपडिकतेति वा।

गुण-पदम्

चतुर्भि स्थानै सतो गुणान् नाशयेत्, तद्यथा—
क्रोधेन, प्रतिनिवेशेन, अकृतज्ञतया, मिथ्याभिनिवेशेन।

चतुर्भि स्थानै असतो गुणान् दीपयेत्, तद्यथा—
अभ्यासवर्तितं, परच्छन्दानुवर्तितं, कार्यहेतो, कृतप्रतिकृतक इति वा।

गुण-पद

६२१ चार स्थानो से पुरुष विद्यमान गुणो का भी विनाश करता है—उन्हें अस्वीकार करता है।
१ क्रोध से, २ प्रतिनिवेश—दूसरो की पूजा-प्रतिष्ठा सहन न करने से,
३ अकृतज्ञता से, ४ मिथ्याभिनिवेश—दुराग्रह से।

६२२ चार स्थानो से पुरुष अविद्यमान गुणो का भी दीपन करता है—वरण या करता है—
१ गुण ग्रहण करने का स्वभाव होने से,
२ पराये विचारों का अनुगमन करने से,
३ प्रयोजन सिद्धि के लिए सामने वाले को अनुकूल बनाने की दृष्टि से,
४ कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने के लिए।

सरीर-पदं	**शरीर-पदम्**	**शरीर-पद**
६२३ णेरइयाण चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, त जहा— कोहेण, माणेण, मायाए, लोभेण।	नैरयिकाणा चतुर्भि स्थानै शरीरोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा— क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन।	६२३ चार कारणो मे नैरयिकों के शरीर की उत्पति होती है— १ क्रोध से, २ मान से, ३ माया से, ४ लोभ से।
६२४ एव—जाव वेमाणियाण।	एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।	६२४ इसी प्रकार सभी दण्डकों के चार कारणों से शरीर की उत्पत्ति होती है।
६२५. णेरइयाण चउट्ठाणणिव्वत्तिते सरीरे पण्णत्ते, त जहा— कोहणिव्वत्तिए, °माणणिव्वत्तिए, मायाणिव्वत्तिए°, लोभणिव्वत्तिए।	नैरयिकाणा चतु स्थाननिर्वर्तित शरीर प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— क्रोधनिर्वर्तित, माननिर्वर्तित, माया-निर्वर्तित, लोभनिर्वर्तितम्।	६२५ नैरयिकों के शरीर चार कारणो से निर्वर्तित—निष्पन्न होते हैं— १ क्रोध निर्वर्तित, २ मान निर्वर्तित, ३ माया निर्वर्तित, ४ लोभ निर्वर्तित[11]।
६२६. एव—जाव वेमाणियाण।	एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।	६२६ इसी प्रकार सभी दण्डकों के शरीर चार कारणों से निर्वर्तित होते हैं।
धम्म-दार-पदं	**धर्म-द्वार-पदम्**	**धर्म-द्वार-पद**
६२७ चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता, त जहा— खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।	चत्वारि धर्मद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दवम्।	६२७ धर्म के द्वार चार हैं— १ क्षान्ति, २ मुक्ति, ३ आर्जव, ४ मार्दव।
आउ-बंध-पदं	**आयुर्बन्ध-पदम्**	**आयुर्बन्ध-पद**
६२८ चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइया-उयत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा— महारभताए, महापरिग्गहयाए, पचिंदियवहेण, कुणिमाहारेण।	चतुर्भि स्थानै जीवा नैरयिकायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा— महारम्भतया, महापरिग्रहतया, पञ्चेन्द्रियवधेन, कुणिमाहारेण।	६२८ चार स्थानों से जीव नरक योग्य कर्म का अर्जन करता है— १ महारम्भ से—अमर्यादित हिंसा से, २ महापरिग्रह से—अमर्यादित सग्रह से, ३ पचेन्द्रिय वध से, ४ कुणापाहार—मास भक्षण से।
६२९ चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्ख-जोणिय[आउय?]त्ताए कम्म पगरेंति, त जहा— माइल्लताए, णियडिल्लताए, अलियवयणेण, कूडतुलकूडमाणेण।	चतुर्भि स्थानै जीवा तिर्यग्योनिक (आयुष्क?) तया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा— मायितया, निकृतिमत्तया, अलीकवचनेन, कूटतुलाकूटमानेन।	६२९ चार स्थानों से जीव तिर्यकयोनि के योग्य कर्म का अर्जन करता है— १ माया—मानसिक कुटिलता से, २ निकृत—ठगाई से, ३ असत्यवचन से, ४ कूट तोल-माप से।

६३०. चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्साउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
पगतिभद्दताए, पगतिविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरिताए।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा मनुष्यायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्रकृतिभद्रतया, प्रकृतिविनीततया, सानुक्रोशतया, अमत्सरिकतया।

६३० चार स्थानों से जीव मनुष्य योग्य कर्मों का अर्जन करता है—
१ प्रकृति भद्रता से, २ प्रकृति विनीतता से, ३ सदय-हृदयता से,
४ परगुणसहिष्णुता से।

६३१. चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा देवायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
सरागसंयमेन, संयमासंयमेन, बालतपःकर्मणा, अकामनिर्जरया।

६३१ चार स्थानों से जीव देव योग्य कर्मों का अर्जन करता है—
१ सराग संयम से, २ संयमासंयम से,
३ बाल तप कर्म से,
४ अकामनिर्जरा से[117]।

वज्ज-णट्टआइ-पदं

वाद्य-नृत्यादि-पदम्

वाद्य-नृत्यादि-पद

६३२ चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते, तं जहा—
तते, वितते, घणे, झुसिरे।

चतुर्विधं वाद्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ततं, विततं, घनं, शुषिरम्।

६३२ वाद्य चार प्रकार के होते हैं—
१ तत—वीणा आदि,
२ वितत—ढोल आदि,
३ घन—कांस्य ताल आदि,
४ शुषिर—बांसुरी आदि[118]।

६३३ चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, तं जहा—
अंचिए, रिभिए, आरभडे, भसोले।

चतुर्विधं नाट्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अंचितं, रिभितं, आरभटं, भषोलम्।

६३३ नाट्य चार प्रकार के होते हैं—
१ अंचित, २ रिभित,
३ आरभट, ४ भषोल[119]।

६३४. चउव्विहे गेए पण्णत्ते, तं जहा—
उक्खित्तए, पत्तए, मंदए, रोविंदए।

चतुर्विधं गेयं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्क्षिप्तकं, पत्रकं, मन्द्रकं, रोविंदकम्।

६३४ गेय चार प्रकार के होते हैं—
१ उत्क्षिप्तक, २ पत्रक, ३ मन्द्रक,
४ रोविन्दक[120]।

६३५ चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते, तं जहा—
गंथिमे, वेढिमे, पूरिमे, संघातिमे।

चतुर्विधं माल्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ग्रन्थिमं, वेष्टिमं, पूरिमं, संघातिमम्।

६३५ माला चार प्रकार की होती हैं—
१ ग्रन्थिम—गुंथी हुई, २ वेष्टिम—फूलों को लपेटने से मुकुटाकार बनी हुई,
३ पूरिम—भरने से बनी हुई,
४ संघातिम—एक पुष्प की नाल से दूसरे पुष्प को जोडकर बनाई हुई।

६३६. चउव्विहे अलंकारे पण्णत्ते, तं जहा—
केसालंकारे, वत्थालंकारे, मल्लालंकारे, आभरणालंकारे।

चतुर्विधः अलङ्कारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
केशालङ्कारः, वस्त्रालङ्कारः, माल्यालङ्कारः, आभरणालङ्कारः।

६३६ अलंकार चार प्रकार के होते हैं—
१ केशालंकार, २ वस्त्रालंकार,
३ माल्यालंकार, ४ आभरणलंकार।

६३७ चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते, त जहा—
दिट्ठ तिए, पाडिसुते, सामण्णओ-विणिवाइय, लोगमज्झावसिते।

चतुर्विध अभिनय प्रज्ञप्त, तद्यथा—
दार्ष्टान्तिक, प्रातिश्रुत, सामान्यतो-विनिपातिक, लोकमध्यावसित।

६३७ अभिनय चार प्रकार का होता है—
१ दार्ष्टान्तिक, २ प्रातिश्रुत,
३ सामान्यतोविनिपातिक,
४ लोकमध्यावसित।

विमाण-पद

६३८ सणकुमार-माहिंदेसु ण कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता, त जहा—
णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

विमान-पदम्

सनत्कुमार-माहेन्द्रेपु कल्पेपु विमानानि चतुर्वर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि।

विमान-पद

६३८ सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक मे विमान चार वर्णों के होते है—
१ नील वर्ण के, २ लोहित वर्ण के,
३ हारिद्र वर्ण के, ४ शुक्ल वण के।

देव-पद

६३९. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण चत्तारि रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

देव-पदम्

महाशुक्र-सहस्रारेषु कल्पेसु देवाना भव-धारणीयानि शरीरकाणि उत्कृष्टेन चतस्र रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

देव-पद

६३९ महाशुक्र तथा सहस्रार देवलोक मे देव-ताओ का भवधारणीय शरीर ऊचाई मे उत्कृष्टत चार रत्नि के होते है।

गब्भ-पद

६४० चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, त जहा—
उस्सा, महिया, सीता, उसिणा।

६४१. चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—
हेमगा, अब्भसथडा, सीतोसिणा, पचरूविया।

गर्भ-पदम्

चत्वार दकगर्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अवश्याया, महिका, शीता, उष्णा।

चत्वार दकगर्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हैमका, अभ्रसस्तृता, शीतोष्णा, पञ्चरूपिका।

गर्भ-पद

६४० उदक के चार गर्भ होते है—
१ ओस, २ मिहिका—कुहासा,
३ अतिशीत, ४ अतिउष्ण।

६४१ उदक के चार गर्भ होते है—
१ हिमपात, २ अभ्रसस्तृत—आकाश का वादलो से ढंका रहना, ३ अतिशीतोष्ण, ४ पचरूपिका—गजन, विद्युत, जल, वात तथा वादलो के सयुक्त योग से।

सगहणी-गाहा

१ माहे उ हेमगा गब्भा,
फग्गुणे अब्भसथडा।
सितोसिणा उ चित्ते,
वइसाहे पचरूविया॥

सग्रहणी-गाथा

१ माघे तु हैमका गर्भा,
फाल्गुने अभ्रसस्तृता।
शीतोष्णास्तु चैत्रे,
वैशाखे पचरूपिका॥

सग्रहणी-गाथा

माघ मे हिमपात से उदक गर्भ रहता है।
फाल्गुन मे आकाश के वादलो से आच्छन्न होने से उदक गर्भ रहता है।
चैत्र मे अतिशीत तथा अतिउष्ण से उदक गर्भ रहता है।
वैशाख मे पचरूपिका होने से उदक गर्भ रहता है।

६४२ चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, त जहा—
इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपुसगत्ताते, बिंवत्ताए।

चत्वार मानुषीगर्भा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
स्त्रीतया, पुरुषतया, नपुसकतया, बिम्बतया।

६४२ स्त्रियो के गर्भ चार प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री के रूप मे, २ पुरुष के रूप मे, ३ नपुसक के रूप मे, ४ बिम्ब के रूप मे—विभिन्न विचित्र आकृति के रूप मे।

संगहणी-गाहा

१. अप्प सुक्कं बहुं ओयं,
इत्थी तत्थ पजायति।
अप्प ओय बहु सुक्क,
पुरिसो तत्थ जायति॥
२. दोण्हपि रत्तसुक्काण,
तुल्लभावे णपुसओ।
इत्थी-ओय-समायोगे,
बिंवं तत्थ पजायति॥

सग्रहणी-गाथा

१ अल्प शुक्र बहु ओज,
स्त्री तत्र प्रजायते।
अल्प ओज बहु शुक्र,
पुरुषस्तत्र जायते।
२ द्वयोरपि रक्तशुक्रयो,
तुल्यभावे नपुसक।
स्त्र्योज समायोगे,
बिम्ब तत्र प्रजायते॥

संग्रहणी-गाथा

शुक्र अल्प होता है और ओज अधिक होता है तब स्त्री पैदा होती है।
ओज अल्प होता है और शुक्र अधिक होता है तब पुरुष पैदा होता है।
रक्त और शुक्र दोनो समान होते हैं तब नपुसक पैदा होता है।
वायु-विकार के कारण स्त्री के ओज के समायुक्त हो जाने से—जम जाने से बिंब होता है।

पुव्ववत्थु-पदं

६४३ उप्पायपुव्वस्स ण चत्तारि चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

उत्पादपूर्वस्य चत्वारि चूलावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

६४३ उत्पाद पूर्व [चौदह पूर्व मे पहले पूर्व] के चूला वस्तु चार हैं।

कव्व-पदं

६४४ चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, त जहा—
गज्जे, पज्जे, कत्थे, गेए।

काव्य-पदम्

चतुर्विधानि काव्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गद्य, पद्य, कथ्य, गेयम्।

काव्य-पद

६४४ काव्य चार प्रकार के होते हैं—
१ गद्य, २ पद्य, ३ कथ्य, ४ गेय[११]।

समुग्घात-पद

६४५ णेरइयाण चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तं जहा—
वेयणासमुग्घाते, कसायसमुग्घाते, मारणतियसमुग्घाते, वेउव्विय-समुग्घाते।

समुद्घात-पदम्

नैरयिकाणा चत्वार समुद्घाता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणातिकसमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात।

समुद्घात-पद

६४५ नैरयिको के चार प्रकार का समुद्घात होता है—
१ वेदना-समुद्घात, २ कषाय-समुद्घात, ३ मारणातिक-समुद्घात—अन्त समय [मृत्युकाल] मे प्रदेशो का बहिर्गमन, ४ वैक्रिय-समुद्घात।

६४६ एवं—वाउक्काइयाणवि।

एवम्—वायुकायिकानामपि।

६४६ इसी प्रकार वायु के भी चार प्रकार का समुद्घात होता है।

चोद्दसपुव्वि-पदं

६४७ अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणमजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो [जिणाणं?] इव अवितथं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

चतुर्दशपूर्वि-पदम्

अर्हत अरिष्टनेमे चत्वारि शतानि चतुर्दशपूर्विणां अजिनानां जिनसकाशानां सर्वाक्षरसन्निपातिनां जिन (जिनानां?) इव अवितथं व्याकुर्वाणानां उत्कर्षिता चतुर्दशपूर्विसंपदा आसीत्।

चतुर्दशपूर्वि-पद

६४७ अर्हन् अरिष्टनेमि के चार सौ शिष्य चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे। वे जिन नहीं होते हुए भी जिन के समान सर्वाक्षर सन्निपातिक तथा जिन की तरह अवितथ भाषी थे। यह उनके चौदह पूर्वी शिष्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

वादि-पदं

६४८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिता वादिसंपया हुत्था।

वादि-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य चत्वारि शतानि वादिनां सदेवमनुजासुरायां परिषदि अपराजितानां उत्कर्षिता वादिसंपदा आसीत्।

वादि-पद

६४८ श्रमण भगवान् महावीर के चार सौ वादी शिष्य थे। वे देव-परिषद्, मनुज-परिषद् तथा असुर-परिषद् से अपराजेय थे। यह उनके वादी शिष्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

कप्प-पदं

६४९ हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे।

६५०. मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—
बंभलोगे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे।

६५१ उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—आणते, पाणते, आरणे, अच्चुते।

कल्प-पदम्

अधस्तना चत्वारः कल्पाः अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मः, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः।

मध्यमाः चत्वारः कल्पाः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ब्रह्मलोकः, लान्तकः, महाशुक्रः, सहस्रारः।

उपरितनाः चत्वारः कल्पाः अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आनतः, प्राणतः, आरणः, अच्युतः।

कल्प-पद

६४९ निचले चार देवलोक अर्धचन्द्र-संस्थान में संस्थित होते हैं—
१ सौधर्म, २ ईशान,
३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र।

६५० मध्य के चार देवलोक परिपूर्ण चन्द्र-संस्थान में संस्थित होते हैं—
१ ब्रह्मलोक, २ लांतक,
३ महाशुक्र, ४ सहस्रार।

६५१ ऊपर के चार देवलोक अर्धचन्द्र-संस्थान से संस्थित होते हैं—
१ आनत, २ प्राणत, ३ आरण,
४ अच्युत।

समुद्द-पदं

६५२ चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तं जहा—
लवणोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घतोदे।

समुद्र-पदम्

चत्वारः समुद्राः प्रत्येकरसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
लवणोदकः, वरुणोदः, क्षीरोदकः, घृतोदकः।

समुद्र-पद

६५२ चार समुद्र प्रत्येक-रस—एक दूसरे से भिन्न रस वाले होते हैं—
१ लवणोदक—नमक-रस के समान खारे पानी वाला, २ वरुणोदक—सुरा-रस के समान पानी वाला, ३ क्षीरोदक—दूध-रस के समान पानी वाला, ४ घृतोदक—घृत-रस के समान पानी वाला।

कसाय-पदं

६५३ चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
खरावत्ते, उण्णतावत्ते, गूढावत्ते, आमिसावत्ते।

एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—
खरावत्तसमाणे कोहे, उण्णतावत्तसमाणे माणे, गूढावत्तसमाणे माया, आमिसावत्तसमाणे लोभे।

खरावत्तसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

°उण्णतावत्तसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

गूढावत्तसमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।°

आमिसावत्तसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

कषाय-पदम्

चत्वारः आवर्त्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
खरावर्त्तः, उन्नतावर्त्तः, गूढावर्त्तः, आमिषावर्त्तः।

एवमेव चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
खरावर्त्तसमानः क्रोधः, उन्नतावर्त्तसमानः मानः, गूढावर्त्तसमाना माया, आमिषावर्त्तसमानः लोभः।

खरावर्त्तसमानं क्रोधं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

उन्नतावर्त्तसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

गूढावर्त्तसमानां मायां अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

आमिषावर्त्तसमानं लोभं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

कषाय-पद

६५३ आवर्त चार प्रकार के होते हैं—
१ खरावर्त—भवर, २ उन्नतावर्त—पर्वत शिखर पर चढने का मार्ग या वातूल, ३ गूढावर्त—गेंद की गुथाई या वनस्पतियो के अन्दर होने वाली गाठ, ४ आमिषावर्त—मांस के लिए शकुनिका आदि का आकाश मे चक्कर काटना।

इसी प्रकार कषाय भी चार प्रकार के होते हैं— १ क्रोध—खरावर्त के समान, २ मान—उन्नतावर्त के समान, ३ माया—गूढावर्त के समान, ४ लोभ—आमिषावर्त के समान।

खरावर्त के समान क्रोध मे वर्तमान जीव मरकर नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

उन्नतावर्त के समान मान मे वर्तमान जीव मरकर नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

गूढावर्त के समान माया में वर्तमान जीव मरकर नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

आमिषावर्त के समान लोभ मे वर्तमान जीव मरकर नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

णक्खत्त-पदं

६५४. अणुराहाणक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।

६५५ पुव्वासाढाणक्खत्ते• चउत्तारे पण्णत्ते।०

६५६ उत्तरासाढाणक्खत्ते• चउत्तारे पण्णत्ते।०

नक्षत्र-पदम्

अनुराधानक्षत्र चतुस्तार प्रज्ञप्तम्।

पूर्वाषाढानक्षत्र चतुस्तार प्रज्ञप्तम्।

उत्तराषाढानक्षत्र चतुस्तार प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

६५४ अनुराधा नक्षत्र के चार तारे हैं।

६५५ पूर्वाषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं।

६५६ उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं।

पावकम्म-पदं

६५७ जीवाण चउट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्सति वा—
णेरइयणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, देवणिव्वत्तिते।

६५८. एव—उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्सति वा।
एव—चिण-उवचिण-बध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवा चतुःस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा—
नैरयिकनिर्वर्तितान्, तिर्यग्योनिकनिर्वर्तितान्, मनुष्यनिर्वर्तितान्, देवनिर्वर्तितान्।

एवम्—उपाचैषु वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

६५७ जीवो ने चार स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों को पाप कर्म के रूप मे ग्रहण किया है, ग्रहण करते हैं तथा ग्रहण करेंगे—
१ नैरयिक निर्वर्तित,
२ तिर्यक्योनिक निर्वर्तित,
३ मनुष्य निर्वर्तित, ४ देव निर्वर्तित।

६५८ इसी प्रकार जीवो ने चतुःस्थान निर्वर्तित पुद्गलो का उपचय, बध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पोग्गल-पदं

६५९. चउपदेसिया खधा अणता पण्णत्ता।

६६०. चउपदेसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

६६१ चउसमयट्ठितीया पोग्गला अणता पण्णत्ता।

६६२ चउगुणकालगा पोग्गला अणता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

चतुःप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता, प्रज्ञप्ता।

चतुःप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।

चतुःसमयस्थितिका पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।

चतुर्गुणकालका पुद्गला अनन्ता यावत् चतुर्गुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।

पुद्गल-पद

६५९ चतुःप्रादेशिक स्कध अनन्त हैं।

६६० चतुःप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त है।

६६१ चार समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।

६६२ चार गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार सभी वर्ण, गध, रस तथा स्पर्शों के चार गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-४

१ अन्तक्रिया (सू० १)

मृत्यु-काल मे मनुष्य का स्थूलशरीर छूट जाता है। सूक्ष्मशरीर—तैजस और कार्मण उसके साथ लगे रहते हैं। कार्मणशरीर के द्वारा फिर स्थूलशरीर निष्पन्न हो जाता है। अत स्थूलशरीर के छूट जाने पर भी सूक्ष्मशरीर की सत्ता मे जन्म-मरण की परम्परा का अन्त नही होता। उसका अन्त सूक्ष्मशरीर का विसर्जन होने पर होता है। जो व्यक्ति कर्म-बन्धन को सर्वथा क्षीण कर देता है, उसके सूक्ष्मशरीर छूट जाते हैं। उनके छूट जाने का अर्थ है—अन्तक्रिया या जन्म-मरण की परम्परा का अन्त। इस अवस्था मे आत्मा शरीर आदि से उत्पन्न क्रियाओ का अन्त कर अक्रिय हो जाता है।

२-५ भरत, गजसुकुमाल, सनत्कुमार, माता मरुदेवा (सू० १)

भरत—भगवान् ऋषभ केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद धर्मोपदेश दे रहे थे। भरत भी वहा उपस्थित थे। भगवान् ऋषभ ने कहा—'इस अवसर्पिणीकाल मे मैं पहला तीर्थंकर हू, मेरा पुत्र भरत इसी भव मे मोक्ष जाएगा और मेरी मा मरुदेवा सिद्ध होने वालो मे प्रथम होगी।' इस कथन को सुन एक व्यक्ति के मन मे विचिकित्सा पैदा हुई। उसने कहा—'आप पहले तीर्थंकर होंगे तथा मरुदेवा प्रथम सिद्ध होंगी, यह तथ्य समझ मे आ सकता है, किन्तु भरत का मोक्षगमन बुद्धिगम्य नही होता।' भरत ने यह सुना। उसने दूसरे दिन उस व्यक्ति को बुला भेजा और कहा—'तेल से लबालब भरे इस कटोरे को लेकर तुम सारी अयोध्या मे घूम आओ। यदि एक भी बूद नीचे गिरेगी तो तुम्हें मार दिया जायेगा।'

इधर भरत ने सारे नगर मे स्थान-स्थान पर नाट्य आदि की व्यवस्था करवा दी। वह व्यक्ति तेल का कटोरा लिए चला। उसे पल-पल मृत्यु के दर्शन हो रहे थे। उसका मन कटोरे मे एकाग्र हो गया। सारे शहर मे वह घूम आया। तेल का एक बिन्दु भी नीचे नही गिरा। भरत ने पूछा—'भ्रात! शहर मे तुमने कुछ देखा?'

'राजन्! मुझे मौत के सिवाय कुछ नहीं दीख रहा था।'

'क्या तुमने नृत्य और नाटक नहीं देखे?'

'नहीं।'

'देखो, थोडे समय के लिए एक मौत के डर ने तुम्हें कितना एकाग्र और जागरूक बना डाला। मैं मौत की लम्बी परम्परा से परिचित हू। चक्रवर्तित्व का पालन करता हुआ भी मैं सत्ता, समृद्धि और भोग में आसक्त नही हू।'

अब भगवान् की बात उस व्यक्ति के गले उतर गई।

भरत की अनासक्ति अपूर्व थी। उनके कर्म बहुत कम हो चुके थे।

राज्य का पालन करते-करते कुछ कम छह लाख पूर्व बीत गए थे। एक बार वे अपने मज्जनगृह मे आए और शरीर का पूरा मण्डन किया। अपने शरीर की शोभा का निरीक्षण करने वे आदर्शगृह में गए। एक सिंहासन पर बैठे और पूर्वाभिमुख होकर काच मे अपना सौन्दर्य देखने लगे। काच मे सारा अग प्रतिबिम्बित हो रहा था। भरत उसको एकाग्रमन से देख रहे थे और मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे।

इतने मे ही एक अगुली से अगूठी भूमि पर गिर पडी। भरत को इसका भान नहीं रहा। वे अपने एक-एक अवयव की शोभा निहारते रहे। अचानक उनका ध्यान उस खाली अगुली पर गया। उन्होंने सोचा—'अरे! यह क्या? यह इतनी

अशोभित क्यो लग रही है ? दिन मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना जैसे फीकी पड जाती है, वैसे ही यह अगुली भी शोभाहीन क्यो है ?' उन्हे भूमि पर पडी अगूठी दीखी और जान लिया कि इसके बिना यह अगुली शोभाहीन हो गई है। उन्होंने सोचा—'क्या शरीर के दूसरे-दूसरे अवयव भी आभूषणो के बिना शोभाहीन हो जाते है ?' अब वे एक-एक कर सारे आभूषण उतारने लगे। सारा शरीर शोभाहीन हो गया। शरीर और पौद्गलिक वस्तुओ की असारता का चिन्तन आगे बढा। शुभ अध्यवसायो से घातिकर्मचतुष्टय नष्ट हुआ। उनके अन्त करण मे सयम का विकास हुआ और वे केवली हो गए। वे कठोर तपस्या किए बिना ही निर्वाण को प्राप्त हुए।

गजसुकुमाल—द्वारवती नगरी मे वासुदेव कृष्ण राज्य करते थे। उनकी माता का नाम देवकी था। देवकी एक बार अत्यन्त उदासीन होकर बैठी थी। कृष्ण चरण-वदन के लिए आए और माता को चिन्तातुर देख उसका कारण पूछा।

देवकी ने कहा—'वत्स ! मैं अधन्य हू। मैंने एक भी बालक को अपनी गोद मे क्रीडारत नही देखा।'

कृष्ण ने कहा—'मा ! चिन्ता मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूगा कि मेरे एक भाई हो।' इस प्रकार मा को आश्वासन दे कृष्ण पौषधशाला मे गए और तीन दिन का उपवास कर हरिणैगमेषी देव की आराधना की। देव प्रत्यक्ष हुआ और बोला—'तुम्हे एक सहोदर की प्राप्ति होगी।' कृष्ण अपनी मा के पास आए और सारी बात उन्हे बताई। देवकी बहुत प्रसन्न हुई।

एक बार देवकी ने स्वप्न मे हाथी देखा। वह गर्भवती हुई और पूरे नौ मास और साढे आठ दिन बीतने पर उसने एक बालक का प्रसव किया। बारहवे दिन उसका नामकरण किया। स्वप्न मे गज के दर्शन होने के कारण उसका नाम 'गजसुकुमाल' रखा।

इसी नगर मे सोमिल ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमश्री और पुत्री का नाम सोमा था।

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि वहा समवसृत हुए। वासुदेव कृष्ण अपनी समस्त ऋद्धि से सज्जित होकर गजसुकुमाल को साथ ले भगवान् के दर्शन करने गए। मार्ग मे उन्होंने अत्यन्त सुन्दर कुमारी को देखा और उसके माता-पिता के विषय मे जानकारी प्राप्त कर अपने कौटुम्बिक पुरुषो से कहा—'जाओ, सोमिल से कहकर इस सोमा कुमारी को अपने अन्त पुर मे ले आओ। यह गजसुकुमाल की पहली पत्नी होगी।'

कौटुम्बिक पुरुषो ने वैसा ही किया। सोमा कुमारी को राजा के अन्त पुर मे रख दिया।

वासुदेव कृष्ण सहस्राम्रवन मे समवसृत भगवान् अरिष्टनेमि की पर्युपासना कर घर लौटे। गजसुकुमाल धर्मप्रवचन सुनकर प्रतिबुद्ध हुए। उन्होंने भगवान् से पूछा—'भगवन् ! मैं माता-पिता की आज्ञा लेकर प्रव्रजित होना चाहता हू।'

भगवान् ने कहा—'जैसी इच्छा हो।'

गजसुकुमाल भगवान् की पर्युपासना कर घर आए। माता-पिता को प्रणाम कर बोले—'मैंने भगवान् के पास धर्म सुना है। वह मुझे रुचिकर लगा। मेरी इच्छा है कि मैं प्रव्रजित हो जाऊ।' देवकी को यह सुनते ही मूर्च्छा आ गई और वह धड़ाम से धरती पर गिर पडी। आश्वस्त होने पर उसने कहा—'वत्स ! तुम मेरे एकमात्र आश्वासन हो। मैं तुम्हारा वियोग क्षण-भर के लिए भी नहीं सह सकूगी। तुम विवाह कर, सुखपूर्वक रहो।' उसने अनेक प्रकार से गजसुकुमाल को समझाया परन्तु उन्होंने अपने आग्रह को नही छोडा।

कृष्ण को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब वे तत्काल वहा आए। गजसुकुमाल का आलिगन कर, अपनी गोद मे बिठाकर बोले—भ्रात ! तुम मेरे छोटे भाई हो। प्रव्रज्या की बात छोड दो। मैं तुम्हे इस द्वारवती नगरी का राजा बनाऊगा, तुम्हारा राज्याभिषेक सम्पन्न करूगा।' गजसुकुमाल ने कृष्ण की बात पर ध्यान नही दिया।

अभिनिष्क्रमण समारोह के पश्चात् कुमार गजसुकुमाल भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो गए। उसी दिन अपरान्ह मे वे भगवान् के पास आए और बोले—भते ! आज ही मैं श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार करना चाहता हू। आप आज्ञा दें।

भगवान् ने कहा—'अहासुहं देवाणुप्पिया ! —देवानुप्रिय ! जैसी इच्छा हो वैसा करो।'

भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर मुनि गजसुकुमाल श्मशान मे गए, स्थडिल का प्रतिलेखन किया और दोनों पैरों को सटाकर, ईषद् अवनत होकर एक रात्रि की महाप्रतिमा मे स्थित हो गए।

इधर ब्राह्मण सोमिल यज्ञ के लिए लकडी लाने के लिए नगर के बाहर गया हुआ था। घर लौटते-लौटते सध्या हो चुकी थी। लोगो का आवगमन अवरुद्ध हो गया था। उसने श्मशान मे कायोत्सर्ग मे स्थित मुनि गजसुकुमाल को देखा। देखते ही वह क्रोध मे लाल-पीला हो गया। उसने सोचा—'अरे! यही वह गजसुकुमाल है, जो मेरी प्यारी पुत्री को छोडकर प्रव्रजित हो गया है। अच्छा है, मैं इसका बदला लू।' उसने चारो ओर देखा और गीली मिट्टी से गजसुकुमाल के मस्तक पर एक पाल बाध दी। उसने एक खेलू मे दहकते अगारे लिए और उनको मुनि के मस्तक पर पाल के बीच रख दिए। उसका मन भय से आक्रान्त हो गया। वह वहा से तेजी से चलकर घर आ गया। मुनि गजसुकुमाल का कोमल मस्तक सीझने लगा। अपार वेदना हुई। वेदना को समभाव से सहन करते हुए मुनि शुभ अध्यवसायो मे लीन हो गए। घातिकर्मों का नाश हुआ। कैवल्य की प्राप्ति हुई और क्षण-भर मे वे सिद्ध हो गए।[1] इस प्रकार अत्यन्त स्वल्प पर्याय-काल मे ही वे मुक्त हो गए।

सनत्कुमार—हस्तिनागपुर के राजा अश्वसेन ने अपने पुत्र सनत्कुमार को राज्य-भार देकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। सनत्कुमार राज्य का परिपालन करने लगे। चौदह रत्न और नौ निधिया उत्पन्न हुई। वे चौथे चक्रवर्ती के रूप मे विख्यात हुए। वे कुरुवश के थे।

एक बार इन्द्र ने इनके रूप की प्रशसा की। दो देव ब्राह्मण वेष में हस्तिनागपुर आए और चक्री को मनुष्य के शरीर की असारता का बोध कराया। चक्री सनत्कुमार ने अपने शरीर का वैवर्ण्य देखा और सोचा—'ससार अनित्य है, ससार असार है। रूप और लावण्य क्षणस्थायी हैं।' उन्होंने प्रव्रज्या स्वीकार करने का दृढ निश्चय किया। ब्राह्मण वेषधारी दोनो देवो ने कहा—'धीर! आपने बहुत ही सुन्दर निश्चय किया हैं। आप अपने पूर्वजो (भरत आदि) का अनुसरण करने के लिए उद्यत हैं। धन्य हैं आप।' वे दोनो देव वहा से चले गए।

चक्रवर्ती सनत्कुमार अपने पुत्र को राज्य-भार सौंपकर स्वय आचार्य विरत के पास प्रव्रजित हो गए। सारे रत्न, सभी नरेन्द्र, सेना और नौ निधिया—छह मास तक चक्रवर्ती मुनि के पीछे-पीछे चलते रहे, किन्तु मुनि सनत्कुमार ने उन्हे नहीं देखा।

आज उनके दो दिन के उपवास का पारण था। वे भिक्षा लेने गए। एक गृहस्थ ने उन्हें बकरी की छाछ दी। उसे वे पी गए। पुन दूसरे दिन उन्होंने दो दिन का उपवास कर लिया। इस प्रकार तपस्या चलती रही और पारणे मे प्रान्त और नीरस आहार लेते रहे। उनके शरीर का सन्तुलन बिगड गया और वह सात रोगो से आक्रान्त हो गया—खुजली, ज्वर, खासी, श्वास, स्वरभग, अक्षिवेदना, उदरव्यथा। ये सातो रोग उन्हे अत्यन्त व्यथित करने लगे। किन्तु समतासेवी मुनि ने सात सौ वर्षो तक उन्हें सहा। तपस्या चलती रही। इस प्रकार उग्र तप के फलस्वरूप उन्हें पाच लब्धिया प्राप्त हुई—आमर्षौषधि, श्लेष्मौषधि, विप्रुडौषधि, जल्लौषधि और सर्वौषधि। इतनी लब्धिया प्राप्त होने पर भी मुनि ने उनका उपयोग अपनी व्याधियो का शमन करने के लिए नही किया।

एक बार इन्द्र ने अपनी सभा मे सनत्कुमार की सहनशक्ति की प्रशसा की। दो देव उसकी परीक्षा करने आए और बोले—'भंते! हम आपके शरीर की चिकित्सा करना चाहते हैं।' मुनि मौन रहे। तब उन्होंने पुन अपनी बात दोहराई। अब भी मुनि मौन ही रहे। उनके बार-बार कहने पर मुनि ने कहा—'क्या आप शरीर की व्याधि के चिकित्सक हैं अथवा कर्म की व्याधि के?' दोनो ने कहा—'हम शरीर की चिकित्सा करने वाले वैद्य हैं।' तब मुनि सनत्कुमार ने अपनी अगुली पर अपना थूक लगाया। अगुली सोने की तरह चमकने लगी। मुनि ने कहा—'मैं शारीरिक रोगो की चिकित्सा करने मे समर्थ हू। यदि मेरे में सहनशक्ति नहीं होती तो मैं वैसा कर लेता। यदि आप सचित कर्म की व्याधि को मिटाने मे समर्थ हैं तो वैसा प्रयत्न करें।' दोनो देव आश्चर्यचकित रह गए। वे अपने मूल स्वरूप मे आकर बोले—'भगवन्! कर्म की व्याधि को मिटाने मे आप ही समर्थ हैं। हम तो आपकी परीक्षा करने यहा आए थे।' वे वन्दन कर अपने स्थान की ओर लौट गए।

---

१ आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पत्र ३५७, ३५८

मुनि सनत्कुमार पचास हजार वर्ष तक कुमार और लाख वर्ष तक चक्रवर्ती के रूप मे रहकर प्रव्रजित हुए। वे एक लाख वर्ष तक श्रामण्य का पालन कर दुष्कर तप कर सम्मेदशिखर पर गए। वहा एक शिलातल पर मासिक अनशन किया। अनशन कर मुक्त हो गये।[1]

माता मरुदेवी—महाराज ऋषभ प्रव्रजित हो गए। उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसी दिन चक्रवर्ती भरत की आयुधशाला मे चक्र की उत्पत्ति हुई। उसके सेवकों ने आकर भरत को बधाई देते हुए केवलज्ञान और चक्र की उत्पत्ति के विषय मे बताया। भरत ने सोचा—'पहले पिता की पूजा करू या चक्र की।' विचार करते-करते पिता की पूजा का महत्त्व उन्हे प्रतीत हुआ और उन्होंने उसके लिए सामग्री की तैयारी करने का आदेश दे दिया।

मरुदेवी ऋषभ की माता थी। उसने भरत की राज्यश्री देखकर सोचा—'मेरे पुत्र ऋषभ के भी ऐसी ही राज्यश्री थी। आज वह भूख और प्यास से पीडित होकर नग्न घूम रहा है।' वह मन-ही-मन घुटने लगी। पुत्र का शोक घना हो गया। मन क्लेश से भर गया। वह रोने लगी। भरत उधर से निकला। दादी को रोते देखकर बोला—'मा ! तुम मेरे साथ चलो ! मैं तुम्हे भगवान् ऋषभ की विभूति दिखाऊ।' मरुदेवी हाथी पर बैठकर उनके साथ चली। वे भगवान् के समवसरण के निकट आए। भरत ने कहा—'मा ! देख, ऋषभ की ऋद्धि कितनी विपुल है। इस ऋद्धि के समक्ष मेरा ऐश्वर्य एक कौडी के समान है।' मरुदेवी ने चारो ओर देखा। सारा वातावरण उसे अनूठा लगा। उसने मन-ही-मन सोचा—'ओह ! मैंने मोह के वशीभूत होकर व्यर्थ ही शोक किया है। भगवान् स्वय ऐसी विपुल ऋद्धि के स्वामी हैं।' उसके विचार आगे बढ़े। शुभध्यान की श्रेणी मे वह आरूढ हुई। सारा शरीर रोमाचित हो उठा। उसकी आखें भगवान् ऋषभ की ओर टकटकी लगाए हुए थी। उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और क्षण-भर मे ही वह मुक्त हो गई।

मरुदेवी अत्यन्त क्षीणकर्मा थी। उसके कर्म बहुत अल्प थे। उसने न विधिवत् प्रव्रज्या ही ली और न तप ही तपा। वह अल्प समय मे ही मुक्त हो गई।[2]

६-८ (सू० २-४)

प्रस्तुत तीन सूत्रो मे वृक्ष के उदाहरण से पुरुष की ऊचाई-निचाई, परिणति और रूप का निरूपण किया गया है। ऊचाई और निचाई के मानदण्ड अनेक होते हैं। अनुवाद मे मनुष्य की ऊचाई और निचाई को शरीर और गुण के मानदण्ड से समझाया गया है, वह मात्र एक उदाहरण है। प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या सम्भावित सभी मानदण्डो के आधार पर की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप—

१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य मे भी उन्नत होते हैं और ज्ञान से भी उन्नत होते हैं।
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं, किन्तु ज्ञान से प्रणत होते हैं।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं, किन्तु ज्ञान से उन्नत होते हैं।
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से भी प्रणत होते हैं और ज्ञान से भी प्रणत होते हैं।

उन्नत और प्रणत

कापिल्यपुर नाम का नगर था। उसमे ब्रह्म नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चूलनी था। चूलनी रानी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था ब्रह्मदत्त। पिता की मृत्यु के समय बालक छोटा था। उसे अनेक परिस्थितियो मे से गुजरना पडा। बडे होने पर वह चक्रवर्ती बना। वह सुख पूवक राज्य का परिपालन करता हुआ विचरण करने लगा।

---

१ उत्तराध्ययन की वृत्ति मे बतलाया गया है कि सनत्कुमार तीसरे देवलोक में उत्पन्न हुए।
उत्तराध्ययन, सुखबोधावृत्ति, पत्र २४२
तत्थ सिलायले आलोयणाविहाणेण मासिएण भत्तेण कालगतो सणकुमारे कप्पे उववन्नो। ततो चुतो महाविदेहे सिज्झिहि।

२ अभिधान राजेन्द्र, दूसरा भाग, पृष्ठ ११४१, पांचवां भाग, पृष्ठ १३८६।

एक बार उस गाव मे नट आए। उन्होंने नाटक शुरू किया। नाटक देखकर राजा की पुरानी स्मृति जागृत हो गई। उसने अपने पूर्व-जन्म के भाई का पता लगाया। वह साधु के वेष मे था। राजा उनसे मिला। दोनो का आपस मे बहुत बडा विचार-विमर्श चला। साधु ने कहा—'भाई ! तुम पूर्व-जन्म मे मुनि थे, आज भोगो में आसक्त होकर भोगों की चर्चा करते हो। इन्हें छोडो और अनासक्त जीवन जीओ। यदि ऐसा नहीं कर सकते हो तो असद् कर्म मत करो। श्रेष्ठ कर्म करो जिनसे तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो।'

ब्रह्मदत्त ने कहा—'मैं जानता हू, तुम्हारी हित-शिक्षा उचित है, किन्तु मैं निदान-वश हू। आर्य कर्म नही कर सकता।' ब्रह्मदत्त नही माना। साधु चला गया। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मर कर सातवें नरक मे उत्पन्न हुआ।

देखें—उत्तराध्ययन, अध्ययन १३

प्रणत और उन्नत

गगा नदी के तट पर 'हरिकेश' का अधिपति वलको नामक चाण्डाल रहता था। उसकी पत्नी का नाम गौरी था। उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम बल रखा। वही बल आगे चलकर 'हरिकेश बल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह काला और विरूप था। अपनी जाति मे और अपने साथियो मे नटखट होने के कारण उसे सर्वत्र तिरस्कार ही मिला करता था। वह जीवन से ऊब गया था।

मुनि का योग मिला। उसकी भावना बदल गई। वह साधु बन गया। विविध प्रकार की तपस्याए प्रारम्भ की। तप प्रभाव से अनेक शक्तिया उत्पन्न हो गई। वे लब्धि-सम्पन्न हो गये। देवता भी उनकी सेवा मे रहने लगे। साधना के क्षेत्र मे जाति का महत्त्व नहीं होता। भगवान् महावीर ने कहा है—'यह तप का साक्षात् प्रभाव है, जाति का नही। चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होकर भी हरिकेश मुनि अनेक गुणों से युक्त होकर जन-वन्द्य हुए।' उनके ऐहिक और पार-लौकिक—दोनो जीवन प्रशस्त हो गये।

देखें—उत्तराध्ययन, अध्ययन १२।

प्रणत और प्रणत

राजगृह नगर मे काल सौकरिक नामक कषायी रहता था। वह प्रतिदिन ५०० भैंसे मारता था। प्रतिदिन के अभ्यास के कारण उसका यह दृढ सकल्प भी बन गया था।

एक बार राजा श्रेणिक ने उसे एक दिन के लिए हिंसा छोडने को कहा। जब उसने स्वीकार नही किया तो बलात् हिंसा छुडाने के लिए उसे कुए मे डाल दिया, क्योंकि भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक को पहली नरक मे नही जाने का कारण यह भी बताया था कि यदि सौकरिक एक दिन की हिंसा छोड दे तो तुम्हारा नर्क गमन रुक सकता है। सुबह निकाला गया तो उसके चेहरे पर वही प्रसन्नता थी जो प्रसन्नता हमेशा रहती थी। प्रसन्नता का कारण और कुछ नही था, सकल्प की क्रियान्विति ही थी।

राजा ने जिज्ञासा की—'आज तुमने भैंसे कैसे मारे ?'

उत्तर मे वह बोला—'मैंने शरीर मैल के कृत्रिम भैंसे बनाकर उनको मारा है।' राजा अवाक् रह गया। काल सौकारिक यातना से परिपूर्ण अपनी अन्तिम जीवन-लीला समाप्त कर सप्तम नरक मे नैरयिक बना।

उन्नत और प्रणत परिणत

राजगृह नगर था। महाशतक नाम का धनाढ्य व्यक्ति वहां रहता था। उसके रेवती आदि १३ पत्निया थी। रेवती के विवाहोपलक्ष मे उसके पिता ने उसे करोड हिरण्य और दस हजार गायो का एक व्रज मिला था। महाशतक के साथ वह आनन्दपूर्वक जीवन बिता रही थी। प्रारम्भ मे उसके विचार बहुत अच्छे थे। एक दिन उसके मन मे विचार हुआ कि कितना अच्छा हो, इन सब १२ सपत्नियो को मार कर, इनकी सम्पत्ति लेकर पति के साथ एकाकी काम-क्रीडा का

उपभोग करू। उसने वैसा ही किया। शस्त्र और विष प्रयोग से अपनी वारह सौतो को मार दिया। उसकी क्रूरता इतने से सतुष्ट नहीं हुई। अव वह मास, मदिरा आदि का भी भक्षण कर उन्मत्त रहने लगी।

एक वार नगर मे कुछ दिनों के लिए 'जीव-हिंसा निषेध' की घोषणा होने पर वह अपने पीहर से प्रति दिन दो वछडो का मास मँगाकर खाने लगी।

महाशतक श्रमणोपासक एक दिन धर्म-जागरण मे व्यस्त था। उस समय रेवती काम-विह्वल हो वहा पहुची और विविध प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित कर भोगो की प्रार्थना करने लगी। उसकी इस प्रकार की अभद्र उन्मत्तता को देखकर महाशतक ने कहा—'आज से सातवे दिन तू 'विपूचिका' रोग से आक्रान्त होकर प्रथम नरक मे उत्पन्न होगी।' यह सुनकर वह अत्यन्त भयभीत हुई। ठीक सातवें दिन उसकी मृत्यु हो गई।

देखें—उपासकदशा, अ० ८।

उन्नत और प्रणत रूप

रोम के एक चित्रकार ने सुदर और भव्य व्यक्ति का चित्र वनाने का सकल्प किया। एक वार उसे एक छोटा लडका मिल गया। वह अत्यन्त सुदर था। उसका मन प्रसन्नता मे भर गया। उसने चित्र तैयार किया। वह चित्र उसकी भावना के अनुरूप वना। सर्वत्र उसकी प्रशसा होने लगी।

एक दिन उसके मन मे पहले चित्र से विपरीत चित्र वनाने की भावना जगी। उसने वैसा ही व्यक्ति खोज निकाला, जिसके चेहरे से स्वार्थपरता, क्रूरता और कुरूपता झलकती थी। उसका चित्र भी उसने तैयार किया।

एक वार वह चित्रकार दोनो चित्रो को लेकर जा रहा था। एक व्यक्ति ने उन्हे देखा और वह जोर से रोने लगा। चित्रकार ने पूछा—'तुम क्यो रोते हो?' वह वोला—'ये दोनो मेरे चित्र हैं।' चित्रकार ने पूछा—'दोनो मे इतना अन्तर क्यो?' वह वोला—पहला चित्र मेरी जवानी का और दूसरा चित्र वुढापे का है। मैंने अपनी जवानी व्यसनो मे पूरी कर दी। उन व्यसनो से क्रूरता और कुरूपता पैदा हुई।

वह प्रारम्भ मे उन्नत और अन्त मे प्रणत रूप वाला हो गया।

प्रणत और उन्नत रूप

यह उस समय की घटना है जव गुजरात मे महाराजा सिद्धराज राज्य करते थे। एक वार मध्यप्रदेश की 'ओड' जाति अकाल से ग्रस्त होकर अपनी आजीविका के लिए गुजरात पहुची। राजा सिद्धराज ने 'सहस्रलिंग' तालाव खुदाने का निर्णय इसलिए किया कि प्रजा को राहत-कार्य मिल जाये। ओड जाति मे टीकम नाम का एक व्यक्ति अपनी पत्नी व वच्चो को लेकर वहा चला आया। उसकी पत्नी का नाम जसमा था। जसमा वडी विचक्षण और वीर नारी थी। विचक्षणता और वीरता के साथ वह अत्यन्त सुन्दर भी थी। रूप प्राय अभिशाप सिद्ध होता है। जसमा के लिए भी यही हुआ। उसका पति और उसके साथी मिट्टी खोदते और स्त्रिया उस मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोती थी। राजा सिद्धराज की दृष्टि जसमा पर पडी। उसने उसे अपने महलो मे आने के लिए अनेक प्रलोभन दिए, किन्तु जसमा का हृदय विचलित नही हुआ। उसने इस कुचक्र की जानकारी अपने पति को दी और कहा कि अव हमे यहा नहीं रहना चाहिए। वहुत से लोग वहा से इनके साथ चल पडे।

राजा को यह मालूम हुआ तो वह स्वय घोडे पर वैठ अपने सैनिको को साथ ले चल पडा। निकट पहुच कर राजा ने कहा—'जसमा को छोड दो, और सव चले जाओ।' टीकम ने कहा—'ऐसा नही हो सकता।' वहुत से लोग उसमे मारे गए, टीकम भी मारा गया। पति के मरने पर जसमा के जीवन का कोई मूल्य नही रहा। उसने हाथ मे कटार लेकर अपने पेट मे भोकते हुए कहा—'यह मेरा हाड-मास का शरीर है। दुष्ट! तू इसे ले और अपनी भूख शात कर।'

जसमा छोटी जाति मे उत्पन्न थी, प्रणत थी। किन्तु, उसने अपना वलिदान देकर नारीत्व के उन्नत रूप को प्रस्तुत किया। यह थी उसकी प्रणत और उन्नत अवस्था।

६-१५ (सू० ५-११)

इन सात सूत्रो मे मन, सकल्प, प्रज्ञा और दृष्टि—इन चार बोधात्मक दृष्टिबिन्दुओ तथा शील, व्यवहार और पराक्रम—इन तीन क्रियात्मक दृष्टिबिन्दुओ से पुरुष की विविध अवस्थाओ का प्रतिपादन किया गया है। इन सूत्रो मे उपमा-उपमेय या उदाहरण-शैली का प्रतिपादन नहीं है।

वृत्तिकार ने एक सूचना दी है कि एक परपरा के अनुसार शील और आचार ये भिन्न हैं। इनको भिन्न मान लेने पर बोधात्मक-पक्ष की भाति क्रियात्मक-पक्ष के भी चार प्रकार हो जाते हैं। शील और आचार के दो स्वतन्त्र आकार इस प्रकार होंगे—

१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत शील वाले होते हैं।
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत शील वाले होते हैं।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत शील वाले होते हैं।
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत शील वाले होते हैं।
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य मे उन्नत और उन्नत आचार वाले होते हैं।
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत आचार वाले होते हैं।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत आचार वाले होते हैं।
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत आचार वाले होते हैं।

ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत मन

उज्जयिनी का राजा भोज ऐश्वर्य, विद्वत्ता और उदारता मे अद्वितीय था। उसकी उदारता की घटनाए इतिहास मे आज भी लिपिबद्ध हैं। एक बार अमात्य ने सोचा कि यदि राजा इसी प्रकार दान देते रहे तो 'कोश' शीघ्र खाली हो जाएगा। वह राजा को दान से निवृत्त करने के उपाय सोचने लगा। एक बार अमात्य ने राजा के शयनघर पर एक पट्ट लगा दिया। उस पर लिखा था—'आपदर्थे धन रक्षेत्' (आपत्ति के लिए धन को सुरक्षित रखना चाहिए)। राजा भोज सोने के लिए आये। उन्होंने पट्ट पर अकित वाक्य को पढा और उसके नीचे लिख दिया—'श्रीमतामापद कुत ?' (ऐश्वर्य-सम्पन्न व्यक्तियो के लिए आपत्ति कहा है ?) दूसरे दिन मन्त्री ने देखा तो उसका चेहरा विषाद मे भर गया। उसने फिर एक वाक्य नीचे लिख डाला—'कदाचिद् रुष्यति दैव'(कभी भाग्य भी रुष्ट हो जाता है)। राजा ने जब इसे पढा तो तत्काल समाधान की वाणी मे स्वर फूट पडा—'सचितमपि नश्यति' (सचित धन भी नही रहता)। मन्त्री इसे पढ समझ गया कि राजा की प्रवृत्ति मे अन्तर आने वाला नहीं है।

राजा भोज ऐश्वर्य से उन्नत थे तो उनके मन की उदारता भी कम नही थी।

ऐश्वर्य से प्रणत और उन्नत मन

सस्कृत का महान् कवि माघ अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण था। एक दिन की घटना है—एक ब्राह्मण अवन्ति से माघ के पास आया और अपनी लाचारी के स्वर मे बोला—मेरी कन्या की शादी है, मेरे पास कुछ नही है, कुछ सहायता दीजिए। माघ ने जब यह सुना तो वे बडे असमजस में पड गए। देने को पास मे कुछ नही था। 'ना' भी कैसे कहा जाए। इधर-उधर दृष्टि दौडाई। कवि ने देखा—पत्नी सोई है। उसके हाथ मे पहने हुए हैं कगण। मन ने कहा—क्यो न यह निकाल कर दे दिया जाए। वे चुपके से उठे और एक हाथ से कगण निकाल कर जाने लगे तो पत्नी की नीद टूट गई। वह बोली—'एक से क्या होगा ? यह दूसरा भी ले जाइए, बेचारे का काम हो जायेगा।' माघ स्तब्ध रह गये। उन्होंने कगण देकर ब्राह्मण को विदा किया।

पास मे ऐश्वर्य न होते हुए भी माघ और उनकी पत्नी का मन कितना उन्नत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत मन

एक गाव मे एक भिक्षुक अपने बाल-बच्चो सहित रहता था। प्रति दिन वह गाव मे जाता और जो कुछ पैसा, अन्न आदि मिलता, उससे अपना भरण-पोषण करता था। उनका मन अत्यन्त कृपण था। दूसरो की सहायता की बात तो दूर रही, वह किसी दूसरे को दान देते हुए देखता तो भी उसके मन पर चोट-सी लगती थी।

एक दिन की घटना है। वह घर पर आया, तब पत्नी ने उसके उदास चेहरे को देखकर पूछा—

'क्या गाठ से गिर पडा, क्या कछु किसको दीन।
नारी पूछे सूमसू, क्यो है वदन मलीन॥

(क्या आज कुछ गिर पडा है या किसी को कुछ दिया है, जिससे कि आपका चेहरा उदासीन है)।

वह बोला—'तुम ठीक कहती हो। मेरा चेहरा उदास है, किन्तु इसलिए नही कि मैंने कुछ दिया है या मेरी गाठ से कुछ गिर पडा है, किन्तु इसलिए कि मैंने आज एक व्यक्ति को कुछ दान देते हुए देख लिया है—

'नहीं गाठ से गिर पडा, ना कछु किसको दीन।
देवत देख्या और को, ताते वदन मलीन॥

ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत संकल्प

भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था। वे चक्रवर्ती बने। उनके पास अतुल ऐश्वर्य और साधन-सामग्री थी। इतना होने पर भी उनके विचार बहुत उन्नत थे। वे अपने ऐश्वर्य मे कभी मूढ नही बने। उन्होंने अपने मगलपाठको को यह आदेश दे रखा था कि प्रात काल मे जागरण के समय वे 'मा हन, मा हन' (किसी को पीडित मत करो, किसी को मत मारो) इन शब्दो की ध्वनि करते रहें। भरत के जागते ही वे मगलपाठक इस प्रकार की ध्वनि सतत करते रहते। इनके फलस्वरूप चक्रवर्ती भरत मे अप्रमत्तता का विकास हुआ और वे चक्रवर्तित्व का पालन करते हुए भी उसी भव मे मुक्त हो गये। वे ऐश्वर्य और सकल्प—दोनों से उन्नत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रणत संकल्प

महापद्म नाम के राजा की रानी का नाम पद्मावती था। उनके पुण्डरीक और कुण्डरीक नाम के दो पुत्र थे महापद्म अपने पुत्र पुण्डरीक को राज्य-भार सौंप दीक्षित हो गये। एक बार नगर मे एक आचार्य का आगमन हुआ। दोनो भाई आचार्य-अभिवदना के लिए आये। उन्होंने धर्मोपदेश सुना। दोनो की आत्मा स्वविकास की ओर उन्मुख हो गई। छोटा भाई साधु बन गया और बडा भाई श्रावक-धर्म स्वीकार कर पुन राजधानी लौट आया।

कुण्डरीक कठोर साधनारत हो आत्म-विकास के क्षेत्र में प्रगति करने लगे। कठोर तपश्चर्या से उनका शरीर कृश ही नहीं हुआ, अपितु रोगग्रस्त भी हो गया। वे विहार करते-करते अपने ही नगर 'पुण्डरीकिणी' मे आ गये। राजा पुण्डरीक मुनि वदन के लिए आए। उन्होंने कुण्डरीक मुनि की हालत देखी तो आचार्य से औषधोपचार के लिए प्रार्थना की। उपचार प्रारम्भ हुआ। शनै शनै. रोग शान्त होने लगा। मुनि स्वस्थ हो गये, किन्तु इसके साथ-साथ उनका मन अस्वस्थ हो गया। वे सुखैपी बन गये। वहा से विहार करने का उनका मन नही रहा। भाई ने अव्यक्त रूप से उन्हें समझाया। एक बार तो वे विहार कर चले गये। कुछ दिनो के बाद फिर उनका मन शिथिल हो गया। वे पुन अपने नगर मे चले आये। राजा पुण्डरीक ने बहुत समझाया, किन्तु इस बार निशाना खाली गया। आखिर पुण्डरीक ने अपनी राजसिक पोशाक उतार कर भाई को दे दी और भाई की पोशाक स्वय पहन ली। एक भोगासक्त हो गया और एक योगासक्त हो गये। एक राजगद्दी पर सुशोभित हो गये और एक साधनारत हो आत्म-ऐश्वर्य से सुसम्पन्न हो गये। सातवें दिन दोनो ही आयुष्य पूर्ण कर परलोक के पथिक बन गये। साधुत्व को छोडकर राज्यासन्न होने वाला भाई सातवें नरक गया और योगरत होने वाला स्वर्ग मे गया।

इस कथानक मे दोनों तथ्यो का प्रतिपादन है—

१ पुण्डरीक राज्य करता रहा और अन्त मे भाई कुण्डरीक के लिए राज्य का त्याग कर मुनि बन गया—वह ऐश्वर्य से उन्नत और सकल्प मे भी उन्नत रहा।

२ कुण्डरीक राज्य के लिए मुनि वेष का त्याग कर राजा बना—वह ऐश्वर्य (श्रामण्य) से उन्नत होकर भी सकल्प से प्रणत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और उन्नत संकल्प

अब्राहम लिकन अमेरिका के राष्ट्रपति थे। उनके पिता का नाम था टामस लिकन। घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। यह घटना बचपन की है। पढने का उन्हें बहुत शौक था। एक बार अपने अध्यापक एण्ड्रू क्राफर्ड के पास वाशिंगटन की जीवनी थी। वे उसे पढना चाहते थे। अपने अध्यापक के पास पहुचे और अनुनय-विनय करने के बाद पुस्तक प्राप्त करने मे सफल हुए। वे खुशी-खुशी अपने घर पहुचे और लैम्प के प्रकाश मे पुस्तक पढने लगे। पुस्तक पढने मे इतने लीन हो गये कि समय का कुछ पता नही लगा। पिता ने कई बार सोने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने उस पर ध्यान नही दिया। आखिर जब फिर पिता ने डाटा तो पुस्तक को झरोखे मे रख लैम्प बुझाकर लेट गये। नीद आ गई। सुबह उठकर पुस्तक को देखा तो वह बरसात के कारण पानी से कुछ खराब हो गई थी। बडे घबराये। अध्यापक के सामने एक अपराधी की तरह खडे हुए। अध्यापक ने कहा—'इसीलिए मैं किसी को पुस्तक देना नही चाहता। उसके सुरक्षित पहुँचने मे मुझे सदेह रहता है। अब इसका दण्ड भरना होगा।' अब्राहम ने कहा—'मेरे पास फूटी कौडी भी नही है।' अध्यापक बोले—'तीन दिन मेरे खेत मे काम करो, फिर यह पुस्तक तुम्हारी हो जायेगी।' तीन दिन कडा परिश्रम किया। अध्यापक के सामने जब हाजिर हुए तो बहुत प्रसन्न थे। अब किताब उन्हें मिल गई। घर पर आए तो बहिन से कहा—'तीन दिन काम करना पडा तो क्या ? पुस्तक मेरी बन गई। अब इसे पढकर मैं भी ऐसा ही बनने का प्रयत्न करूँगा।' लिंकन ऐश्वर्य मे प्रणत थे, किन्तु सकल्प से उन्नत।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत संकल्प

दो पडोसी थे। एक ईर्ष्यालु और दूसरा मत्सरी था। दोनो लोभी थे। एक बार धन प्राप्ति के लिए दोनो ने देवी के मंदिर मे तपस्या प्रारम्भ की। दिन बीत गये। कुछ दिनों के बाद देवी प्रसन्न हुई और बोली—'बोलो! क्या चाहते हो ? जो पहले मागेगा, दूसरे को उससे दुगुना दूगी।' दोनो ने यह सुना तो लोभ का समुद्र दोनों के मन मे उद्वेलित हो उठा। दोनो सोचने लगे कि पहले कौन मागे ? वह सोचता है यह मागे और दूसरा सोचता है वह मागे, जिससे मुझे दुगुना मिले। दोनो एक दूसरे की ओर देखते रहे किन्तु पहल किसीने नही की।

दोनो का मन दूषित था। ईर्ष्यालु ने सोचा—धन आदि मागने से तो इसे दुगुना मिलेगा। इससे अच्छा हो, मैं क्यो नही देवी से यह प्रार्थना करूँ कि मेरी एक आख फोड दे, इसकी दोनो फूट जाएगी। उसने वही कहा। देवी बोली—'तथास्तु!' एक की एक आख फूटी और दूसरे की दोनों।

इस प्रकार वे ऐश्वर्य और सकल्प दोनो से प्रणत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रज्ञा से उन्नत

थावरचापुत्र महल की ऊपरी मंजिल मे मा के पास बैठा था। वहा उसके कानो मे मधुर ध्वनि आ रही थी। मा से पूछा—'ये गीत बडे मधुर हैं, मेरा मन पुन पुन सुनने को करता है। ये कहा से आ रहे हैं और क्यो आ रहे हैं ?' मा ने जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा—'पुत्र! अपने पडोसी के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। ये गीत पुत्र-प्राप्ति की खुशी मे गाये जा रहे हैं और वही से आ रहे हैं।' पुत्र का मन अन्य जिज्ञासा से भर गया। वह बोला—'मा क्या मैं जन्मा था तब भी गाये गये थे ?' मा ने स्वीकृति की भाषा मे कहा—'हा, गाये गये थे।' इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि इतने मे गीतो का स्वर बदल गया। जो स्वर कानो को प्रिय था वही अब काटो की तरह चुभने लगा।

पुत्र ने पूछा—'मा ! ये गीत कैसे हैं ? मन नहीं चाहता इन्हें सुनने को।' मा बोली—'वत्स ! ये कर्ण-कटु हैं। हृदय को रुलाने वाले हैं। जो बच्चा पैदा हुआ था, अब वह नहीं रहा।' पुत्र बोला—'मा, मैं नहीं समझा।' 'वह मर गया, उसकी मृत्यु हो गई' मा ने कहा। लडके ने पूछा—'मृत्यु क्या होती है ?'

'जीवन की अवधि समाप्त होने का नाम मृत्यु है'—मा ने कहा। बालक ने पूछा—'क्या मैं भी मरूंगा ?' मा ने कहा—'हा, जो पैदा होता है वह निश्चित मरता है। इसमे कोई अपवाद नहीं है।'

पुत्र बोला—'क्या इसका कोई उपचार है ?' मा ने कहा—'हा, है। भगवान अरिष्टनेमि इसके अधिकृत उपचारक हैं।'

एक बार अरिष्टनेमि वहा आए। थावरचापुत्र प्रवचन सुनने गया। प्रवचन से प्रतिबद्ध होकर, वह उनके शासन मे प्रव्रजित हो गया। मुनि थावरचापुत्र ने कठोर साधना कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

वे ऐश्वर्य और प्रज्ञा—दोनों मे उन्नत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रज्ञा से प्रणत

एक सिद्ध महात्मा अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग मे एक तालाब आया। विश्राम करने और पानी पीने के लिए वे वहा रुके। महात्मा तालाब के तट पर गये और जीवित मछलिया खाने लगे। शिष्यो ने भी गुरु का अनुकरण किया। महात्मा कुछ नहीं बोले। वे वहा से आगे चले। शिष्य भी चल पडे। थोडी दूर चले कि एक तालाब आ गया। तालाब मे मछलिया नही थी।

महात्मा उसी प्रकार किनारे पर खडे होकर निगली हुई मछलियो को पुन उगलने लगे। शिष्य देखने लगे। उन्हें आश्चर्य हुआ। जितनी मछलिया निगली थीं वे सब जीवित थी। शिष्य कब चूकने वाले थे। वे भी गले मे अगुली डाल कर मछलिया उगलने लगे, लेकिन बडी कठिनाई से वे एक-दो मछलिया निकाल सके, वे भी मरी हुई। महात्मा ने कहा—'मूर्खो ! बिना जाने यो नकल करने मे कोई बडा नहीं होता। प्रत्येक कार्य का रहस्य भी समझना चाहिए।'

शिष्य साधना की दृष्टि से ऐश्वर्ययुक्त थे किन्तु उनकी प्रज्ञा उन्नत नहीं थी।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रज्ञा से उन्नत

वह एक दास था। स्वामि-भक्ति के कारण वह स्वामी का विश्वासपात्र बन गया। स्वामी उसकी बात का भी सम्मान करता था। एक दिन वह मालिक के साथ बाजार गया। एक बूढा दास बिक रहा था। दास प्रथा के युग की घटना है। दास ने स्वामी से कहा—'इसे खरीद लीजिए।' स्वामी ने कहा—'इसका क्या करोगे ?' उसने कहा—'मैं इससे काम लूगा।' मालिक ने उसके कहने से उसे खरीद लिया। उसे उसके पास रख दिया।

वह उसके साथ बडा दयालुतापूर्ण व्यवहार करता था। बीमार होने पर सेवा करता और भी अनेक प्रकार की सुविधाए देता। मालिक ने उसके प्रति अपनत्व भरा व्यवहार देखकर एक दिन उससे पूछा—'लगता है यह तुम्हारा कोई सम्बन्धी है ?' उसने कहा—'नहीं यह मेरा सम्बन्धी नहीं है।'

मालिक ने पूछा—'तो क्या मित्र है ?'

उसने कहा—'मित्र नहीं, यह मेरा शत्रु है। इसने मुझे चुराकर बेचा था। आज जब यह बिक रहा था तो मैंने पहचान लिया।'

मालिक ने पूछा—'शत्रु के साथ दयापूर्ण व्यवहार क्यों ?

उसने कहा—'मैंने सतो से सुना है, शत्रु के प्रति प्रेम का व्यवहार करो। उसके प्रति दया रखो। बस ! मैं उसी शिक्षा को अमल मे ला रहा हू।'

दास ऐश्वर्य से प्रणत अवश्य था, किन्तु उसकी प्रज्ञा उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और दृष्टि से उन्नत

आचार्य का प्रवचन सुनने के लिए अनेक बाल, युवक और वृद्ध व्यक्ति उपस्थित थे। प्रवचन का विषय था—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य की उपादेयता पर विविध दृष्टियों से विमर्श हुआ। श्रोताओं के मन पर उसकी गहरी छाप पड़ी। अनेकों व्यक्ति यथाशक्य ब्रह्मचर्य की साधना में प्रविष्ट हुए, जिनमें एक युवक और एक युवती का साहस और भी प्रशस्य था। दोनों ने महीने में पन्द्रह दिन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प किया। युवक ने कृष्णपक्ष का और युवती ने शुक्लपक्ष का। दोनों तब तक अविवाहित थे। संयोग की बात समझिए कि दोनों प्रणय-सूत्र में आबद्ध हो गए।

परस्पर के वार्तालाप में जब यह भेद प्रकट हुआ तो एक क्षण के लिए दोनों विस्मित रह गए। पति का नाम विजय था और पत्नी का नाम विजया। विजया ने कहा—'पतिदेव! आप सहर्ष दूसरा विवाह कीजिए।' मैं ब्रह्मचारिणी रहूंगी। विजय की आत्मा भी पौरुष से उद्दीप्त हो उठी। वह बोला—'क्या मैं ब्रह्मचारी नहीं रह सकता? मैं रह सकता हूं। अपनी दृष्टि और मन को पवित्र रखना कठोर है, किन्तु जब इन्हें सत्य-दर्शन में नियोजित कर दिया जाता है तो कोई कठिन नहीं रहता।' दोनों सहज दशा में रहने लगे।

दोनों पति-पत्नि ऐश्वर्य में उन्नत थे, साथ-साथ ब्रह्मचर्य विषयक उनकी दृष्टि भी उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और दृष्टि से प्रणत

विचारों की विशुद्धि के बिना मन निर्मल नहीं रहता। भर्तृहरि को कौन नहीं जानता। वे एक सम्राट थे और एक योगी भी थे। सम्राट की विरक्ति का निमित्त बनी उन्हीं की महारानी पिंगला। रानी पिंगला राजा से सन्तुष्ट नहीं थी। उसका मन महावत में आसक्त हो गया था। महावत वेश्या में अनुरक्त था। राजा को इसकी सूचना मिली एक अमरफल से। घटना यों है—

एक योगी को अमरफल मिला। वह उसे राजा भर्तृहरि को देने के लिए लाया। भर्तृहरि ने उसे स्वयं न खाकर अपनी रानी पिंगला को दिया। पिंगला के हाथों से वह महावत के हाथों में चला आया और महावत ने उसे वेश्या के हाथों में खाने के लिए थमा दिया। उस फल का गुण था कि जो उसे खाए वह सदा युवक बना रहे।

वेश्या अपने कार्य में लज्जित थी। उसे यौवन स्वीकार नहीं था। वह उस फल को राजा के सामने ले आई। राजा ने ज्यों ही उसे देखा, रानी के प्रति ग्लानि के भाव उभर आए।

उसने कहा—

या चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्ता।
अस्मात् कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।

"जिसके विषय में मैं सतत सोचता हूं, वह मुझ से विरक्त है। वह दूसरे मनुष्य को चाहती है और वह दूसरा व्यक्ति किसी दूसरी स्त्री में आसक्त है। मेरे प्रति कोई दूसरी स्त्री आसक्त है। यह मोह-चक्र है। धिक्कार है उस स्त्री को, उस पुरुष को, कामदेव को, इसको और मुझको।" राजा भर्तृहरि राज्य को छोड़ संन्यासी बन गए।

महारानी पिंगला ऐश्वर्य से उन्नत होते हुए भी ब्रह्मचर्य की दृष्टि से प्रणत थी।

ऐश्वर्य से प्रणत दृष्टि से उन्नत

एक योगी हौज में स्नान कर रहे थे। उनकी दृष्टि हौज में एक छटपटाते बिच्छू पर गिर पड़ी। संत का करुण हृदय दयार्द्र हो उठा। तत्काल वे उसके पास गए और हाथ में ले बाहर रखने लगे। बिच्छू इसे क्या जाने? उसने अपने सहज स्वभाववश संत के हाथ पर डंक लगा दिया। भलाई का यह पारितोषिक कैसा? पीड़ा से हाथ प्रकम्पित हो उठा। बिच्छू

पुन पानी मे गिर पडा। सत ने फिर उठाया और उसने फिर डक मार दिया। वह पानी मे गिरता रहा और सत अपना काम करते रहे। बाहर खडे लोग कुछ देर देखते रहे। उनमे से किसी एक से रहा नही गया। उसने कहा—'क्या आप इसके स्वभाव से अपरिचित हैं, जो इसके साथ भलाई कर रहे हैं ?'

सत ने अपना सहज स्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—'मैं जानता हू इसे, इसके स्वभाव को और अपने स्वभाव को भी। जब यह अपना दुष्ट स्वभाव नही छोड सकता तो मैं कैसे अपने शिष्ट स्वभाव को छोड दूं। जिसे अपना सहज दर्शन नहीं है उसके लिए ही यह सब झझट जैसा है।'

सन्यासी के पास ऐश्वर्य नही था, किन्तु उनकी दृष्टि उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और शीलाचार से उन्नत

मगध के सम्राट् श्रेणिक की रानी का नाम चेलना था। चेलना रूप-सम्पन्न और शील-सम्पन्न थी। सर्दी के दिनो की घटना थी। रानी सोई हुई थी। उसका हाथ बाहर रह जाने से ठिठुर गया था। जैसे ही उसकी नीद टूटी तो उसके मुह से निकल गया था कि 'उसका क्या होता होगा ?' श्रेणिक का मन उसके सतीत्व मे सदिग्ध बन गया।

वह भगवान् को अभिवदन करने चला। मार्ग मे अभयकुमार मिला। आदेश दिया—'चेलना का महल जला दिया जाए।' अभयकुमार कुछ समझ नही सका। 'इतस्तटी इतो व्याघ्र' (इधर नदी और इधर बाघ)। वह सोचने लगा कि क्या करना चाहिए ? महल के पास की पुरानी राजशाला में आग लगवा दी। उधर श्रेणिक भगवान् के सन्निकट पहुचा। भगवान् के मुख से जब यह सुना कि 'रानी चेलना शीलवती है' तो श्रेणिक सन्न रह गया। वह महलो की ओर दौडा। अभयकुमार से सवाद पाकर प्रसन्न हुआ। उसने चेलना से पूछा—'तुमने कल रात मे सोते-सोते यह कहा था कि 'उसका क्या होता होगा ?' इसका क्या तात्पर्य है ?' उसने कहा—'राजन्, कल मैं उद्यानिका करने गई थी। वहा एक मुनि को ध्यान करते देखा। वे नग्न खडे थे। शीत लहर चल रही थी। मैं इतने सारे वस्त्रो मे शीत के कारण ठिठुरने लगी। मैंने सोचा कि आश्चर्य है ! वे मुनि इतनी कठोर शीत को कैसे सह लेते हैं ? ये विचार बार-बार मन मे सक्रान्त हुए। सारी रात उसी मुनि का ध्यान रहा। सभव है, स्वप्नावस्था मे मुनि की अवस्था को देखकर मैंने कह दिया हो कि उसका क्या होता होगा ?'

चेलना की बात सुनकर राजा अवाक् रह गया। महारानी चेलना ऐश्वर्य और शील दोनो से उन्नत थी।

ऐश्वर्य से सम्पन्न और शीलाचार से प्रणत

राजा जितशत्रु की रानी का नाम सुकुमाला था। वह सुकुमार और सुन्दर थी। राजा उसके सौन्दर्य पर इतना आसक्त था कि वह अपने राज्य-कार्य मे भी दिलचस्पी नही लेता था। मन्त्रियों ने निर्णय कर राजा और रानी दोनो को घोर जगल मे छोड दिया। वे जैसे-तैसे एक नगर मे पहुचे और अपनी आजीविका चलाने लगे। राजा ने नौकरी प्रारम्भ की। रानी अकेली झोपडी मे रहने लगी। उसका मन ऊब गया। वह राजा से बोली—'अकेले मेरा मन नहीं लगता।' राजा ने एक दिन एक गवैये को देखा। वह बहुत सुन्दर गाता था। वह पगु था। उसे रानी का मन बहलाने रख दिया।

रानी गायन सुनकर अपना समय व्यतीत करने लगी। उसके मधुर सगीत से धीरे-धीरे रानी का मन प्रेमासक्त हो गया। रानी का सम्बन्ध उसके साथ जुड गया। पगु ने कहा—'राजा विघ्न है। भेद खुल जाने पर हम दोनो को मार देगा, इसलिए इसका उपाय करना चाहिए।' रानी ने कहा—'मैं करूगी।' एक दिन नदी-विहार के लिए दोनो गए। रानी ने गहरे पानी में राजा को धक्का मारा कि वह प्रवाह मे बहते हुए दूर जा निकला। रानी वापिस लौट आई। दोनो आनन्द से रहने लगे।

रानी ऐश्वर्य से सम्पन्न थी, किन्तु उसका शील प्रणत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और शीलाचार से सम्पन्न

घटना लदन के उपनगर की है। वह ग्वाला था। उसके घर पर एक विदेशी भारतीय ठहरा हुआ था। उसके यहा एक लडकी दूध की सप्लाई का काम करती थी। एक दिन उसका चेहरा उतरा हुआ सा था। विदेशी ने उससे इसका कारण

पूछा, उसने कहा—'मैं रोज ग्राहको को दूध देती हू । आज दूध कुछ कम है । आज मैं अपने ग्राहको को दूध कैसे दे पाऊगी ? यही मेरी उदासी का कारण है ।'

उसने कहा—'इसमे उदास होने जैसी कौन-सी वात है ? इसका उपाय मैं जानता हू ।' उसने विना पूछे ही अपना रहस्य खोल दिया । कहा—'जितना कम है, उतना पानी मिला दो ।'

यह सुनकर लडकी का खून खौल उठा । उसने उस युवक को अपने घर से निकालते हुए कहा—'मैं ऐसे राष्ट्रद्रोही को अपने घर मे नही रखना चाहती ।'

वह ग्वालिन ऐश्वर्य से प्रणत किन्तु शील से सम्पन्न थी ।

ऐश्वर्य से प्रणत और शीलाचार से प्रणत

एक सन्त अपने शिष्य के साथ बैठे थे । वहा एक व्यक्ति आया और शिष्य को गालिया वकने लगा । शिष्य अपने शील-स्वभाव मे लीन था । वह सहता गया । काफी समय वीत गया । उसकी जवान वन्द नही हुई तो शिष्य की जवान खुल गई । उसने अपने स्वभाव को छोड असुरता को अपना लिया । सत ने जब यह देखा तो वे अपने वोरिये-विस्तर समेट चलने लगे । शिष्य को गुरु का यह व्यवहार वडा अटपटा लगा । उसने पूछा—'आप मुझे इस हालत मे छोड कहा जा रहे हो ?'

सत ने कहा—'मैं तेरे पास था और तेरा साथी था जब तक तू अपने मे था । जब तू ने अपने को छोड दिया तव मैं तेरा साथ कैसे दे सकता हू ? तुम्हारे पास धन-दौलत नही है । तुम ऐश्वर्य मे प्रणत हो किन्तु तुम अभी शील से भी प्रणत हो गए—नीचे गिर गये ।'

ऐश्वर्य से उन्नत और व्यवहार से उन्नत

फ्रास के वादशाह हेनरी चतुर्थ अपने अगरक्षको एव मन्त्रियो के साथ जा रहे थे । मार्ग मे एक भिखारी मिला । उसने अपनी टोपी उतार कर अभिवादन किया । वादशाह ने स्वय भी वैसा ही किया । अगरक्षक और मन्त्रियो को यह सुदर नही लगा । किसी ने वादशाह से पूछा—'आप फ्रास के वादशाह है, वह भिखारी था । उसके अभिवादन का उत्तर आपने टोप उतारकर कैसे दिया ?'

वादशाह ने कहा—'वह एक सामान्य व्यक्ति है, किन्तु उसका व्यवहार कितना शिष्ट था । मैं वडा हू तो क्या मेरा व्यवहार उससे अशिष्ट होना चाहिए ? वडा वही है जिसका व्यवहार सभ्य हो ।

हेनरी चतुर्थ ऐश्वर्य से सम्पन्न तो थे ही, साथ-साथ उनका व्यवहार भी उन्नत था ।

ऐश्वर्य से उन्नत और व्यवहार से प्रणत

एक भिखारी मागता हुआ एक सम्पन्न व्यक्ति की दूकान पर आकर वोला—'कुछ दीजिए ।' धनी ने उसकी कुछ आवाजें सुनी-अनसुनी कर दी । उसने अपना प्रण नहीं छोडा तो उसे हार कर उस ओर देखना पडा । देखा, और कहा—'आज नही, कल आना ।' वह आश्वासन लेकर चला गया । दूसरे दिन वडी आशा लिए सेठ की दूकान पर खडे होकर आवाज लगाई । सेठ वोला—'अरे ! आज क्यो आया है ? मैंने तो तुझे कल आने के लिए कहा था ।' वह विचारो मे खोया हुआ पुन चल पडा । ऐसे सात दिन वीत गये । तव उसे लगा यह सेठ वडा धृष्ट है, व्यवहार शून्य है ।

जिसे लोक-व्यवहार का वोध नही है, वह मूर्खों का शिरोमणि है । इसे अपना दण्ड मिलना चाहिए । मैं छोटा हू और ये वडे हैं । कैसे प्रतिशोध लू । अन्तत प्रतिशोध ने एक उपाय ढूढ निकाला । उसने कहीं से रूप-परिवर्तन की विद्या प्राप्त की ।

एक दिन वह सेठ का रूप वनाकर आया । सेठ कही वाहर गया हुआ था । दूकान की चाभी लडको से लेकर दूकान पर आ वैठा । सब कुछ देखा । धन को अपने सामने रखकर लोगो को दान देने लगा । कुछ ही क्षणो मे सारा शहर

इस अप्रत्याशित दान के सवाद से मुखरित हो उठा। लोक देखने लगे, जिसने पैसे को भगवान् मान सेवा की, आज अपने ही हाथो से वितरित कर कैसा पुण्य अर्जन कर रहा है।

सयोग की बात घर का मूल-मालिक वह सेठ भी आ पहुचा। उसने जब यह चर्चा सुनी तो सहसा विश्वास नही हुआ। वह आया। भीड देखी तो हक्का-बक्का रह गया। पुलिस के आदमियो ने दोनो को हिरासत मे ले लिया।

राजा के सामने वह मामला आया तो राजा का सिर भी घूम गया। मत्री को इसके निर्णय का अधिकार दिया। मत्री ने सोचा—'दोनो समान हैं। इनका अन्तर ऊपर से निकालना असभव है। सभव है, एक विद्या-सम्पन्न है। वही झूठा है।' मत्री ने सूझ-बूझ से काम लिया। दोनो को सामने खडा कर कहा—'जो इस कमल की नाल मे से बाहर निकल जाएगा, वह असली।' जो रूप बदलना जानता था, उसने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। दूसरे ही क्षण देखते-देखते वह कमल से बाहर निकल आया। मत्री ने कहा—'पकडो इसे, यह नकली सेठ है।'

उसने राजा को सही घटना सुनाते हुए कहा—'यदि यह सेठ मेरे साथ दुर्व्यवहार नही करता तो आज इसे इतने बडे धन से हाथ नही धोना पडता। यह सेठ ऐश्वर्य से सम्पन्न है, किन्तु व्यवहार से प्रणत है।'

ऐश्वर्य से प्रणत और व्यवहार से उन्नत

घटना जैन रामायण की है। राम, लक्ष्मण और सीता तीनो वनवासी जीवन-यापन करते हुए एक साधारण से गाव मे पहुचे। तीनो को प्यास सता रही थी। वे पानी की टोह मे थे। किसी ने अग्नि-होत्री ब्राह्मण का घर बताया। घर साधारण था। गरीबी बाहर झाक रही थी। राम वहा पहुचे। उस समय घर मे ब्राह्मण-पत्नी थी। जैसे ही देखा कि अतिथि आये हैं, वह बाहर आई और बडे मधुर शब्दो मे उनका स्वागत किया। सबके लिए अलग-अलग आसन लगा दिये। सब बैठ गये। ठडे पानी के लोटे सामने रख दिये। सबने पानी पिया। उसके मृदु और सौम्य व्यवहार से सब बडे प्रसन्न हुए।

ब्राह्मणी ऐश्वर्य से प्रणत थी, किन्तु उसका व्यवहार उन्नत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और व्यवहार से भी प्रणत

ब्राह्मण-पत्नी का कमनीय व्यवहार जिस प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता के हृदय को वेध सका, वैसे उसके पति का नही। वह उसके सर्वथा उल्टा था। शिक्षा-दीक्षा मे उससे बहुत बढा-चढा था, किन्तु व्यवहार से नही। जैसे ही वह घर मे आया और अतिथियो को देखा तो पत्नी पर बरस पडा। क्रोधोन्मत्त होकर बोला—'पापिनी! यह क्या किया तुमने? किनको घर मे बैठा रखा है? जानती नही तू, मैं अग्नि-होत्री ब्राह्मण हू। घर को अपवित्र कर दिया। देख, ये कितने मैल-कुचैले है। तू प्रतिदिन किसी-न-किसी का स्वागत करती रहती है। तू चली जा मेरे घर से।' वह बेचारी शर्म के मारे जमीन मे गड गई। सीता के पीछे आकर बैठ गई।

ब्राह्मण इतने मे भी सन्तुष्ट नही हुआ। उसका क्रोध विकराल बना हुआ था। उसने कहा—'मैं अभी जलता हुआ लक्कड लाकर तेरे मुह मे डालता हू।' वह लक्कड लाने के लिए उठ खडा हुआ। क्रोध मे विवेक नही रहता।

ब्राह्मण ऐश्वर्य और व्यवहार दोनो से प्रणत था।

ऐश्वर्य से उन्नत और पराक्रम से उन्नत

भगवान् ऋषभनाथ के सौ पुत्रो मे से भरत और बाहुबली दो बहुत विश्रुत हैं। भरत चक्रवर्ती थे। इन्ही के नाम से इस देश का नाम भारत पडा। बाहुबली चक्रवर्ती नही थे, किन्तु वे एक चक्रवर्ती से भी लोहा लेने वाले थे। भरत को अपने चक्रवर्तित्व का गर्व था। उन्होंने अपने छोटे अठानवे भाइयो का राज्य ले लिया। उनकी लिप्सा शान्त नही बनी। उन्होंने बाहुबली के पास दूत भेजा। बाहुबली को अपने पौरुष पर भरोसा था और अपनी प्रजा पर। उन्होंने भरत के आदेश को चुनौती दे दी। भरत तिलमिला उठे। उन्होंने बाहुबली के प्रदेश बाल्हीक पर आक्रमण कर दिया।

बाल्हीक की प्रजा इस अन्याय के विरुद्ध तैयार होकर मैदान मे उतर आई। भरत के दात खट्टे हो गए। बहुत लम्बा युद्ध चला। उनका शारीरिक पराक्रम अद्वितीय था। उन्होंने अपनी मुष्टि भरत पर उठाई। उस मुष्टि का प्रहार यदि वे

भरत पर कर देते तो भरत जमीन में गढ जाते। किन्तु इतने मे ही उनका चैतसिक पराक्रम जाग उठा। वे तत्काल मुनि वने और लम्बे कायोत्सर्ग में खडे हो गए।

वाहुवली ऐश्वर्यशाली तो थे ही, माथ-साथ शारीरिक और चैतसिक—दोनो पराक्रमो से उन्नत भी थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और पराक्रम से प्रणत

एक धनवान सेठ रुपये लेकर आ रहा था। रास्ते मे जगल पडता था। वह अकेला था। भय उसे सता रहा था। थोडी दूर आगे गया, इतने मे कुछ व्यक्तियो की आहट सुनाई दी। उसका शरीर काप उठा। वह इधर-उधर त्राण ढूढने लगा। उसे दिखाई दिया पास मे एक मन्दिर। वह उसमे घुसकर देवी से प्रार्थना करने लगा। देवी ने कहा—वत्स! डर मत। इस दरवाजे को वन्द कर दे।' वह वोला—'मा! मेरे हाथ काप रहे हैं, मेरे से यह नही होगा।'

देवी वोली—'तू जोर मे आवाज कर।'

उसने कहा—'मा! मेरी जीभ सूख रही है। मेरे से आवाज कैसे हो?'

देवी ने फिर कहा—'यदि तू ऐसा नही कर सकता तो एक काम कर, मेरी इस मूर्ति के पीछे आकर वैठ जा।'

वह वोला—'मा! मेरे पैर स्तव्ध हो गये। मैं यहा से खिसक नही सकता।'

देवी ने कहा—'जो इतना क्लीव है, पराक्रमहीन है, मैं ऐसे कायर व्यक्ति की सहायता नही कर सकती।'

सेठ ऐश्वर्य से सम्पन्न था, किन्तु पराक्रम से प्रणत।

ऐश्वर्य से प्रणत और पराक्रम से उन्नत

महाराणा प्रताप का 'भाट' दिल्ली दरवार में पहुचा। वादशाह अकवर सभा मे उपस्थित थे। वहुत से मन्त्रीगण सामने वैठे थे। उसने वादशाह को सलाम की। खुश होने के वनिस्वत वादशाह गुस्से मे आ गया। इसका कारण था उसकी अशिष्टता। सामान्यतया नियम था कि जो भी व्यक्ति वादशाह को सलाम करे, वह अपनी पगडी उतार कर करे। प्रताप का भाट इसका अपवाद था। उसने वैसे नही किया।

वादशाह ने कहा—'तुमने शिष्टता का अतिक्रमण कैसे किया?' उसने कहा—'वादशाह साहव! आपको ज्ञात होना चाहिए, यह पगडी महाराणा प्रताप की दी हुई है। जव वे आपके चरणों मे नहीं झुकते तो उनकी दी हुई पगडी कैसे झुक सकती है?' सारी सभा स्तव्ध रह गई। उसके स्वाभिमान और अभय की सर्वत्र चर्चा होने लगी।

भाट ऐश्वर्य से प्रणत था, किन्तु उसकी नस-नस मे पराक्रम वोल रहा था। वह पराक्रम से उन्नत था।

१६ (सू० १२)

ऋजुता और वक्रता के अनेक मानदण्ड हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप—

१ कुछ पुरुष वाणी से भी ऋजु होते हैं और व्यवहार से भी ऋजु होते हैं।

२ कुछ पुरुष वाणी से ऋजु होते हैं, किन्तु व्यवहार से वक्र होते हैं।

३ कुछ पुरुष वाणी मे वक्र होते हैं, किन्तु व्यवहार से ऋजु होते हैं।

४ कुछ पुरुष वाणी से भी वक्र होते हैं और व्यवहार से भी वक्र होते हैं।

वक्र और वक्र

एक थी वृद्धा! वुढापे के कारण उसकी कमर झुक गई थी। वह गर्दन सीधी कर चल नही पाती थी। वच्चे उसे देख हँसते थे। कुछ शिष्ट और सभ्य व्यक्ति करुणा भी दिखाते थे। वुढिया चुपचाप सव सहन कर लेती, लेकिन जव वह लोगो की हँसी देखती तो उसे तरस कम नही आती, किन्तु लाचार थी।

एक दिन नारदजी घूमते हुए उधर आ निकले। मार्ग मे वुढिया से उनकी भेंट हो गई। नारदजी को वडी दया

आई। उन्होंने कहा—'बुढिया! तुम कहो तो मैं तुम्हारी 'कुबड' (कुब्जापन) ठीक कर दूं, जिससे तुम अच्छी तरह चल सको?'

बुढिया ने कहा—'भगवन्! आपकी दया है। इसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूं। किन्तु मुझे मेरे इस कुबड़ेपन का इतना दुःख नहीं है जितना दुःख है पड़ोसियों का मेरे साथ मखौल करने का। मैं चाहती हूं कि मेरे इन पड़ोसियों को आप कुबड़े बना दें जिससे मैं देख लूं कि इन पर क्या बीतती है?'

नारदजी ने देखा कि इसका शरीर ही टेढ़ा नहीं है, किन्तु मन भी टेढ़ा है।

१७ (सू० २३)

विशेष जानकारी के लिए देखें—दसवेआलियं ७।१ से ९ तक के टिप्पण।

१८ (सू० २४)

प्रकृति से शुद्ध—जिस वस्त्र का निर्माण निर्मल तन्तुओं से होता है, वह प्रकृति से शुद्ध होता है।

स्थिति से शुद्ध—जो वस्त्र मैल से मलिन नहीं हुआ है, वह स्थिति से शुद्ध है।

प्रकृति और स्थिति की दृष्टि से शुद्धता का प्रतिपादन उदाहरणस्वरूप है। शुद्धता की व्याख्या अन्य दृष्टिकोणों से भी की जा सकती है, जैसे—

१ कुछ वस्त्र पहले भी शुद्ध होते हैं और बाद में भी शुद्ध होते हैं।

२ कुछ वस्त्र पहले शुद्ध होते हैं, किन्तु बाद में अशुद्ध होते हैं।

३ कुछ वस्त्र पहले अशुद्ध होते हैं, किन्तु बाद में शुद्ध होते हैं।

४ कुछ वस्त्र पहले भी अशुद्ध होते हैं और बाद में भी अशुद्ध होते हैं।

उक्त दृष्टान्त की तरह दार्ष्टान्तिक की व्याख्या भी अनेक दृष्टिकोणों से की जा सकती है।

१९ (सू० ३९)

प्रस्तुत सूत्र की चतुर्भङ्गी में प्रथम और चतुर्थ भंग—सत्य और सत्यपरिणत तथा असत्य और असत्यपरिणत—घटित हो जाते हैं, किन्तु द्वितीय और तृतीय भङ्ग घटित नहीं होते। उनका आकार यह है—

कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्यपरिणत होते हैं।

कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्यपरिणत होते हैं।

सत्य असत्यपरिणत और असत्य सत्यपरिणत कैसे हो सकता है? सत्य की व्याख्या एक नय से की जाए तो निश्चित ही यह समस्या हमारे सामने उपस्थित होती है। यहां उसकी व्याख्या दो नयों से की गई है, इसलिए यथार्थ में कोई जटिलता नहीं है। वृत्तिकार ने सत्य के दो अर्थ किए हैं। पहले अर्थ का सम्बन्ध वचन से है और दूसरे अर्थ का सम्बन्ध क्रिया से है। एक आदमी वस्तु या घटना जैसी होती है, उसी रूप में उसका प्रतिपादन करता है। वह वचन की दृष्टि से सत्य होता है। वही आदमी प्रतिज्ञा करता है कि मैं अप्रामाणिक व्यवहार नहीं करूंगा, किन्तु कुछ समय बाद वह अप्रामाणिक व्यवहार करने लग जाता है। वह अपनी प्रतिज्ञा-भंग के कारण असत्यपरिणत हो जाता है। इस प्रकार वचन की दृष्टि से जो सत्य होता है, वह प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करने के कारण क्रिया-पक्ष में असत्यपरिणत हो जाता है।

इसी प्रकार एक आदमी वस्तु या घटना के विषय में यथार्थभाषी नहीं होता, किन्तु प्रतिज्ञा करने पर उसका निष्ठा के साथ निर्वाह करता है। वह वचन-पक्ष में असत्य होकर भी क्रिया-पक्ष में सत्यपरिणत होता है।

इसकी अन्य नयों से भी मीमांसा की जा सकती है। मनुष्य की प्रकृति और चिन्तन-प्रवाह की असंख्य धाराएं हैं। अतः उन्हें किसी एक ही दिशा में बांधा नहीं जा सकता।

२० (सू० ५५)

जो पुरुष सेवा करने वाले को उचित काल मे उचित फल देता है, वह आम्रफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले को बहुत लम्बे समय के बाद फल देता है, वह ताडफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले को तत्काल फल देता है, वह वल्लीफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले का कोई उपकार नहीं करता केवल सुन्दर शब्द कह देता है, वह मेषशृङ्ग की कलि के समान होता है। क्योंकि मेषशृङ्ग की कलि का वर्ण सोने जैसा होता है, किन्तु उससे उत्पन्न होने वाला फल अखाद्य होता है। यहा मेषशृङ्ग शब्द का अर्थ ज्ञातव्य है—

मेषशृङ्ग के फल मेढे के सीग के समान होते हैं, इसलिए इसे मेष-विषाण कहा जाता है। वृत्ति मे इसका नाम आउलि बताया गया है—

मेषशृङ्गसमानफला वनस्पतिजाति , आउलिविशेष इत्यर्थ —स्थानागवृत्ति, पत्र १७४।

२१ (सू० ५६)

जिस घुण के मुह की भेदन-शक्ति जितनी अल्प या अधिक होती है उसी के अनुसार वह त्वचा, छाल, काष्ठ या सार को खाता है।

जो भिक्षु प्रान्त आहार करता है, उसमें कर्मों के भेदन की शक्ति—सार को खाने वाले घुण के मुह के समान अधिकतर होती है।

जो भिक्षु विगयों से परिपूर्ण आहार करता है, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—त्वचा को खाने वाले घुण के मुह के समान अत्यल्प होती है।

जो भिक्षु रूखा आहार करता है, उसमें कर्मों के भेदन की शक्ति—काष्ठ को खाने वाले घुण के मुह के समान अधिक होती है।

जो भिक्षु दूध-दही आदि विगयो का आहार नही करता, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—छाल को खाने वाले घुण के मुह के समान अल्प होती है।

२२ (सू० ५७)

तृणवनस्पति-कायिक (तणवणस्सइकाइया)

वनस्पतिकाय के दो प्रकार हैं—सूक्ष्म और बादर। बादर वनस्पतिकाय के दो प्रकार हैं—

१ प्रत्येकशरीरी।

२ साधारणशरीरी।

प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकाय के बारह प्रकार हैं[1]—

१ वृक्ष, २ गुच्छ, ३ गुल्म, ४ लता, ५ वल्ली, ६ पर्वग, ७ तृण, ८ वलय, ९ हरित, १० औषधि, ११ जलरुह, १२ कुहण। इनमे तृण सातवा प्रकार है। सभी प्रकार की घास का तृण वनस्पति मे समावेश हो जाता है।

२३ (सू० ६०)

ध्यान शब्द की विशद जानकारी के लिए ध्यान-शतक द्रष्टव्य है। उसके अनुसार चेतना के दो प्रकार हैं—चल और स्थिर। चल चेतना को चित् और स्थिर चेतना को ध्यान कहा जाता है।[2]

---

१ प्रज्ञापना- पद १।

२ ध्यानशतक, २ जं थिरमज्झवसाणं, झाणं जं चलं तयं चित्तं।

ध्यान के वर्गीकरण मे प्रथम दो ध्यान—आर्त और रौद्र उपादेय नही है। अन्तिम दो ध्यान—धर्म्य और शुक्ल उपादेय हैं। आर्त और रौद्र ध्यान शब्द की समानता के कारण ही यहा निर्दिष्ट हैं।

२४-२७ (सू० ६१-६४)

प्रस्तुत चार सूत्रो मे आर्त और रौद्र ध्यान के स्वरूप तथा उनके लक्षण निर्दिष्ट हैं। आर्त ध्यान मे कामाशसा और भोगाशसा की प्रधानता होती है, और रौद्रध्यान मे क्रूरता की प्रधानता होती है।

ध्यानशतक मे रौद्र ध्यान के कुछ लक्षण भिन्न प्रकार से निर्दिष्ट है।

—स्थानाग—	—ध्यानशतक—
उत्सन्नदोष	उत्सन्नदोष
वहुदोष	वहुलदोष
अज्ञानदोष	नानाविधदोष
आमरणान्तदोष	आमरणदोष

इनमे दूसरे और चौथे प्रकार मे केवल शब्द भेद है। तीसरा प्रकार सर्वथा भिन्न है। नानाविधदोष का अर्थ है—चमडी उखेडने, आखें निकालने आदि हिंसात्मक कार्यों मे वार-बार प्रवृत्त होना। हिंसाजनित नाना विध क्रूर कर्मों मे प्रवृत्त होना अज्ञानदोष से भी फलित होता है। अज्ञान शब्द इस तथ्य को प्रगट करता है कि कुछ लोग हिंसा प्रतिपादक शास्त्रो से प्रेरित होकर धर्म या अभ्युदय के लिए नाना विध क्रूर कर्मों मे प्रवृत्त होते हैं।

२८-३५ (सू० ६५–७२)

इन आठ सूत्रो मे धर्म्य और शुक्ल ध्यान के ध्येय, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षाए निर्दिष्ट हैं।

धर्म्यध्यान—

धर्म्यध्यान के चार ध्येय वतलाए गए हैं। ये अन्य ध्येयो के सग्राहक या सूचक हैं। ध्येय अनत हो सकते हैं। द्रव्य और उनके पर्याय अनन्त हैं। जितने द्रव्य और पर्याय है, उतने ही ध्येय है। उन अनन्त ध्येयो का उक्त चार प्रकारो मे समासीकरण किया गया है।

आज्ञाविचय प्रथम ध्येय है। इसमे प्रत्यक्ष-ज्ञानी द्वारा प्रतिपादित सभी तत्त्व ध्याता के लिए ध्येय वन जाते हैं। ध्यान का अर्थ तत्त्व की विचारणा नहीं है। उसका अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार। धर्म्यध्यान करने वाला आगम मे निरूपित तत्त्वों का आलम्बन लेकर उनका साक्षात्कार करने का प्रयत्न करता है।

दूसरा ध्येय है अपायविचय। इसमे द्रव्यो के सयोग और उनसे उत्पन्न विकार या वैभाविक पर्याय ध्येय वनते हैं।

तीसरा ध्येय है विपाकविचय। इसमे द्रव्यो के काल, सयोग आदि सामग्रीजनित परिपाक, परिणाम या फल ध्येय वनते है।

चौथा ध्येय है सस्थानविचय। यह आकृति-विपयक आलम्वन है। इसमे एक परमाणु से लेकर विश्व के अशेष द्रव्यो के सन्थान ध्येय वनते हैं।

धर्म्यध्यान करने वाला उक्त ध्येयो का आलम्वन लेकर परोक्ष को प्रत्यक्ष की भूमिका मे अवतरित करने का अभ्यास करता है। यह अध्ययन का विपय नही है, किन्तु अपने अध्यवसाय की निर्मलता से परोक्ष विपयो के दर्शन की साधना है।

ध्यान से पूर्व ध्येय का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। उस ज्ञान की प्रक्रिया मे चार लक्षणो और चार आनम्वनो का निर्देश किया गया है।[1]

---

१ क—लक्षणों की जानकारी के लिए देखें—स्थानाग १०।१०४ का टिप्पण।

वृत्तिकार ने अवगाढ़रुचि का अर्थ द्वादशागी का अवगाहन किया है—स्थानांग वृत्ति, पत्र १०६

अवगाहनमवगाढम्—द्वादशाङ्गावगाहो विस्तराधिगम इति सम्भाव्यते तेन रुचि।

तत्त्वार्थवार्तिक में भी इसका यही अर्थ मिलता है। देखें—उत्तराध्ययन २८।१६ का टिप्पण।

ख—आलम्वनों की जानकारी के लिए देखें—स्थानांग ५।२२०

ध्यान की योग्यता प्राप्त करने के लिए चित्त की निर्मलता आवश्यक होती है, अहकार और ममकार का विसर्जन आवश्यक होता है। इस स्थिति की प्राप्ति के लिए चार अनुप्रेक्षाओ का निर्देश किया गया है। एकत्वभावना का अभ्यास करने वाला अह के पाश से मुक्त हो जाता है। अनित्यभावना का अभ्यास करने वाला ममकार के पाश से मुक्त हो जाता है।

धर्म्यध्यान का शब्दार्थ—

जो धर्म से युक्त होता है, उसे धर्म्य कहा जाता है।[1] धर्म का एक अर्थ है आत्मा की निर्मल परिणति—मोह और क्षोभरहित परिणाम[2]। धर्म का दूसरा अर्थ है—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।[3] धर्म का तीसरा अर्थ है—वस्तु का स्वभाव[4]। इन अथवा इन जैसे अन्य अर्थो मे प्रयुक्त धर्म को ध्येय बनाने वाला ध्यान धर्म्यध्यान कहलाता है।

धर्म्यध्यान के अधिकारी—

अविरत, देशविरत, प्रमत्तसयति और अप्रमत्तसयति—इन सबको धर्म्यध्यान करने की योग्यता प्राप्त हो सकती है।

शुक्लध्यान के अधिकारी—

शुक्लध्यान के चार चरण है। उनमे प्रथम दो चरणो—पृथक्त्ववितर्क-सविचारी और एकत्ववितर्क-अविचारी—के अधिकारी श्रुतकेवली (चतुर्दशपूर्वी) होते है।[5] इस ध्यान मे सूक्ष्म द्रव्यो और पर्यायो का आलम्बन लिया जाता है, इसलिए सामान्य श्रुतधर इसे प्राप्त नही कर सकते।

१ पृथक्त्ववितर्क-सविचारी—

जब एक द्रव्य के अनेक पर्यायो का अनेक दृष्टियो—नयो से चिन्तन किया जाता है और पूर्व-श्रुत का आलम्बन लिया जाता है तथा शब्द से अर्थ मे और अर्थ से शब्द मे एव मन, वचन और काया मे से एक-दूसरे मे सक्रमण नही किया जाता, शुक्लध्यान की उस स्थिति को पृथक्त्ववितर्क-सविचारी कहा जाता है।

२ एकत्ववितर्क-अविचारी—

जब एक द्रव्य के किसी एक पर्याय का अभेद दृष्टि से चिन्तन किया जाता है और पूर्व-श्रुत का आलम्बन लिया जाता है तथा जहा शब्द, अर्थ एव मन, वचन, काया मे से एक-दूसरे मे सक्रमण नही किया जाता, शुक्लध्यान की उस स्थिति को एकत्ववितर्क-अविचारी कहा जाता है।

३ सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति—

जब मन और वाणी के योग का पूर्ण निरोध हो जाता है और काया के योग का पूर्ण निरोध नही होता—श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया शेष रहती है, उस अवस्था को सूक्ष्मक्रिय कहा जाता है। इसका निवर्तन-ह्रास नही होता, इसलिए यह अनिवृत्ति है।

४ समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति—

जब सूक्ष्म क्रिया का भी निरोध हो जाता है, उस अवस्था को समुच्छिन्नक्रिय कहा जाता है। इसका पतन नही होता, इसलिए यह अप्रतिपाति है।

उपाध्याय यशोविजयजी ने हरिभद्रसूरिकृत योगबिन्दु के आधार पर शुक्लध्यान के प्रथम दो चरणो की तुलना

---

१ तत्त्वार्थभाष्य, ९।२८ धर्मादनपेत धर्म्यम्।

२ तत्त्वानुशासन, ५२, ५५

आत्मन परिणामो यो, मोह-क्षोभ-विवर्जित ।
स च धर्मोऽनपेत यत्तस्मात्धर्म्यमित्यपि ॥
यश्चोत्तमक्षमादि स्याद्धर्मो दशतय पर ।
ततोऽनपेत यद्ध्यान तद्वा धर्म्यमितीरितम् ॥

३ तत्त्वानुशासन, ५१

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदु ।
तस्माद्यदनपेत हि, धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधु ॥

४ तत्त्वानुशासन, ५३, ५४

शून्यीभवदिद विश्वं, स्वरूपेण धृत यत ।
तस्माद्वस्तुस्वरूप हि, प्राहुर्धर्मं महर्षय ॥
ततोऽनपेत यज्ज्ञान, तद्धर्म्यध्यानमिष्यते ।
धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यमित्यार्षेऽप्यभिधानत ॥

५ तत्त्वार्थसूत्र, ९।३७ शुक्ले चाद्ये पूर्वविद ।

सम्प्रज्ञातसमाधि से की है।[1] सम्प्रज्ञातसमाधि के चार प्रकार हैं—वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत।[2] उन्होंने शुक्लध्यान के शेष दो चरणो की तुलना असम्प्रज्ञातसमाधि से की है।[3]

प्रथम दो चरणो मे आए हुए वितर्क और विचार शब्द जैन, योगदर्शन और बौद्ध तीनो की ध्यान-पद्धतियो में समान रूप से मिलते हैं। जैन साहित्य के अनुसार वितर्क का अर्थ श्रुतज्ञान और विचार का अर्थ सक्रमण है।[4] वह तीन प्रकार का होता है—

१ अर्थविचार—

अभी द्रव्य ध्येय बना हुआ है, उसे छोड पर्याय को ध्येय बना लेना। पर्याय को छोड फिर द्रव्य को ध्येय बना लेना अर्थ का सक्रमण है।

२ व्यञ्जनविचार—

अभी एक श्रुतवचन ध्येय बना हुआ है, उसे छोड दूसरे श्रुतवचन को ध्येय बना लेना। कुछ समय बाद उसे छोड किसी अन्य श्रुतवचन को ध्येय बना लेना व्यञ्जन का सक्रमण है।

३ योगविचार—

काययोग को छोडकर मनोयोग का आलम्बन लेना, मनोयोग को छोडकर फिर काययोग का आलम्बन लेना योग-सक्रमण है।

यह सक्रमण श्रम को दूर करने तथा नए-नए ज्ञान-पर्यायो को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जैसे—हम लोग मानसिक ध्यान करते हुए थक जाते हैं, तब कायिकध्यान (कायोत्सर्ग, शरीर का शिथिलीकरण) प्रारम्भ कर देते हैं। उसे समाप्त कर फिर मानसिकध्यान प्रारम्भ कर देते हैं। पर्यायो के सूक्ष्मचिन्तन से थककर द्रव्य का आलम्बन ले लेते हैं। इसी प्रकार श्रुत के एक वचन से ध्यान उचट जाए तब दूसरे वचन को आलम्बन बना लेते हैं। नई उपलब्धि के लिए ऐसा करते हैं।

योगदर्शन के अनुसार वितर्क का अर्थ स्थूलभूतो का साक्षात्कार और विचार का अर्थ सूक्ष्मभूतो और तन्मात्राओ का साक्षात्कार है।[5]

बौद्धदर्शन के अनुसार वितर्क का अर्थ है आलम्बन मे स्थिर होना और विकल्प का अर्थ है उस (आलम्बन) मे एकरस हो जाना।[6]

इन तीनो परम्पराओ मे शब्द-साम्य होने पर भी उनके सदर्भ पृथक्-पृथक् हैं।

आचार्य अकलक ने ध्यान के परिकर्म (तैयारी) का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है[7]—

"उत्तमशरीरसहनन होकर भी परीषहो के सहने की क्षमता का आत्मविश्वास हुए बिना ध्यान-साधना नही हो सकती। परीषहो की बाधा सहकर ही ध्यान प्रारम्भ किया जा सकता है। पर्वत, गुफा, वृक्ष की खोह, नदी, तट, पुल, श्मशान, जीणउद्यान और शून्यागार आदि किसी स्थान मे व्याघ्र, सिह, मृग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के अगोचर, निर्जन्तु,

---

१ जैनदृष्ट्यापरीक्षित पातञ्जलयोगदर्शनम्, १।१७, १८

तत्र पृथक्त्ववितर्कसविचारैकत्ववितर्काविचाराख्य शुक्लध्यान भेदद्वये संप्रज्ञात समाधिर्वृत्त्यर्थानां सम्यग्ज्ञानात। तदुक्तम्—समाधिरेष एवान्यै सम्प्रज्ञातोभिधीयते। सम्यक् प्रकर्षरूपेण वृत्त्यर्थज्ञानतस्तथा। (योगबिन्दु ४१८)

२ पातञ्जलयोगदर्शन, १।१७

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञात।

३ जैनदृष्ट्यापरीक्षित पातञ्जलयोगदर्शनम्, १।१७,१८

क्षपकश्रेणिपरिसमाप्तौ केवलज्ञानलाभस्त्वसंप्रज्ञात समाधि, भावमनोवृत्तीनां ग्राह्यग्रहणाकारशालिनीनामवग्रहादि क्रमेण तत्र सम्यग् परिज्ञानाभावात्। अतएव भावमनसा संज्ञाऽभवाद् द्रव्यमनसा च तत्सद्भावात् केवली नो सज्ञीत्युच्यते। तदिदमुक्त योगबिन्दौ—

असम्प्रज्ञात एषोपि, समाधिर्गीयते परै।
निरुद्धाशेषवृत्त्यादि—तत्स्वरूपानुवेधत॥
धर्ममेघोऽमृतात्मा च, भवशत्रु शिवोदय।
सत्त्वानन्द परश्चेति, योज्योत्रैवार्थयोगत॥
(योगबिन्दु ४२०,४२१)

४ तत्त्वार्थसूत्र, ६।४४

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्ति।

५ पातञ्जलयोगदर्शन, १।४२-४४।

६ विशुद्धिमाग, भाग १, पृष्ठ १३४।

७ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।४४।

समशीतोष्ण, अतिवायुरहित, वर्षा, आतप आदि से रहित, तात्पर्य यह कि सब तरफ से बाह्य-आभ्यन्तर बाधाओं से शून्य और पवित्र भूमि पर सुखपूर्वक पल्यङ्कासन में बैठना चाहिए। उस समय शरीर को सम, ऋजु और निश्चल रखना चाहिए। बाएं हाथ पर दाहिना रखकर न खुले हुए और न बन्द, किन्तु कुछ खुले हुए दांतों पर दांतों को रखकर, कुछ ऊपर किये हुए सीधी कमर और गम्भीर गर्दन किये हुए प्रसन्न मुख और अनिमिष स्थिर सौम्यदृष्टि होकर निद्रा, आलस्य, कामराग, रति, अरति, शोक, हास्य, भय, द्वेष, विचिकित्सा आदि को छोडकर मन्द-मन्द श्वासोच्छ्वास लेने वाला साधु ध्यान की तैयारी करता है। वह नाभि के ऊपर हृदय, मस्तक या और कहीं अभ्यासानुसार चित्तवृत्ति को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है। इस तरह एकाग्रचित्त होकर राग, द्वेष, मोह का उपशम कर कुशलता से शरीर क्रियाओं का निग्रह कर मन्द श्वासोच्छ्वास लेता हुआ निश्चित लक्ष्य और क्षमाशील हो बाह्य-आभ्यन्तर द्रव्य पर्यायों का ध्यान करता हुआ वितर्क की सामर्थ्य से युक्त हो अर्थ और व्यञ्जन तथा मन, वचन, काय की पृथक्-पृथक् संक्रान्ति करता है। फिर शक्ति की कमी से योग से योगान्तर और व्यञ्जन से व्यञ्जनान्तर में संक्रमण करता है।" धर्म्यध्यान की विशेष जानकारी के लिए देखें— 'अतीत का अनावरण' (पृष्ठ ७९-८६) ध्यान का प्रथम सोपान—धर्म्यध्यान नामक लेख।

३६ क्रोध (सू० ७६)

क्रोध की उत्पत्ति के निमित्तों के विषय में वर्तमान मनोविज्ञान की जानकारी जितनी आकर्षक है, उतनी ही ज्ञान-वर्धक है। कुछ प्रयोगों का विवरण इस प्रकार है—

व्यक्ति जो कुछ भी करता है, वह चेतन अथवा अवचेतन मस्तिष्क के निर्देश पर ही होता है। साधारणतया हम जब भी मस्तिष्क की बात करते है, हमारा तात्पर्य चेतन मस्तिष्क से ही होता है, तार्किक बुद्धि से। पर क्रोध और हिंसा के बीज इस चेतन मस्तिष्क से नीचे कहीं और गहरे हुआ करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि चेतन मस्तिष्क—सैरेबियन कोरटेक्स तो मस्तिष्क के सबसे ऊपर की परत है, जो मनुष्य के विकास की अभी हाल की घटना है। इसके बहुत नीचे 'आदिम मस्तिष्क' है—हिंसा और क्रोध की जन्मभूमि।

और वैज्ञानिकों का यह कथन जानवरों पर किये गये अनेकानेक परीक्षणों का परिणाम है। मस्तिष्क के वे विशेष बिन्दु खोजे जा चुके हैं, जहां क्रोध का जन्म होता है। इस दिशा में प्रयोग करने वालों में डाक्टर जोस एम० आर० डेलगाडो अग्रणी है। उन्होंने अपने परीक्षणों द्वारा दूर शांत बैठे बन्दरों को विद्युत्धारा से उनके उन विशेष बिन्दुओं को छूकर लडवाकर दिखला दिया है। सचमुच, यह सब जादू का-सा लगता है। कल्पना कीजिए—सामने एक बडे से पिंजडे में एक बंदर बैठा केला खा रहा है और आप बिजली का बटन दबाते हैं—अरे यह क्या, बंदर तो केला छोडकर पिंजडे की सलाखों पर झपट पडा है। दांत किटकिटा रहा है। हां, हिंसक हो गया है। और यह प्रयोग डाक्टर डेलगाडो ने मस्तिष्क के उस विशेष बिन्दु को विद्युत्धारा द्वारा उत्तेजित करके किया है। यही क्यों, उनके सांड वाले प्रयोग ने तो कमाल ही कर दिखाया था। क्रोधित सांड उनकी ओर झपटा, और उन तक पहुंचने से पहले ही शांत होकर रुक गया। उन्होंने विद्युत्धारा से सांड का क्रोध शांत कर दिया था।

पर आदमी जानवर से कुछ भिन्न होता है। 'हम तभी हिंसक होते है, जब हम हिंसक होना चाहते हैं'। क्योंकि साधारण स्थितियों में ही हम अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हैं। पर कुछ लोगों का यह नियंत्रण काफी कमजोर होता है। प्रसिद्ध मनोविज्ञानशास्त्री डाक्टर इर्विन तथा डाक्टर मार्क के अनुसार, 'ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क के आदिम हिस्से में कुछ विशेष घटता रहता है।'[1]

३७-३८ आभोगनिर्वर्तित, अनाभोगनिर्वर्तित (सू० ८८)

आभोगनिर्वर्तित—जो मनुष्य क्रोध के विपाक आदि को जानता हुआ क्रोध करता है, उसका क्रोध आभोगनिर्वर्तित

---

१ नवभारत टाइम्स, बम्बई, ११ मई, १९७०।

कहलाता है। यह स्थानांग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि की व्याख्या है।[1] आचार्य मलयगिरि ने इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। उनके अनुसार—एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के अपराध को भलीभांति जान लेता है। उसे अपराध मुक्त करने के लिए वह सोचता है कि सामने वाला व्यक्ति नम्रतापूर्वक कहने से मानने वाला नहीं है। उसे क्रोधपूर्ण मुद्रा ही पाठ पढ़ा सकती है। इस विचार से वह जान-बूझकर क्रोध करता है। इस प्रकार का क्रोध आभोगनिर्वर्तित-कहलाता है।[2]

आचार्य मलयगिरि की व्याख्या अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही है। इसकी व्याख्या अन्य नयों से भी की जा सकती है। कोई मनुष्य अपने विषय में किसी दूसरे के द्वारा किए गए प्रतिकूल व्यवहार को नहीं जान लेता तब तक उसे क्रोध नहीं आता। उसकी यथार्थता जान लेने पर उसके मन में क्रोध उभर आता है। यह आभोगनिर्वर्तित क्रोध है—स्थिति का यथार्थ बोध होने पर निष्पन्न होने वाला क्रोध है।

अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध—जो मनुष्य क्रोध के विपाक आदि को नहीं जानता हुआ क्रोध करता है, उसका क्रोध अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध कहलाता है।[3]

मलयगिर के अनुसार—जो मनुष्य किसी विशेष प्रयोजन के बिना गुण-दोष के विचार से शून्य होकर प्रकृति की परवशता से क्रोध करता है, उसका क्रोध अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध कहलाता है।[4]

कभी-कभी ऐसा भी घटित होता है कि कोई मनुष्य स्थिति की यथार्थता को नहीं जानने के कारण क्रुद्ध हो उठता है। कल्पना या संदेहजनित क्रोध इसी कोटि के होते हैं।

कुछ लोगों को अपने वैभव आदि की पूरी जानकारी नहीं होती। फलत वे घमंड भी नहीं करते। उसकी वास्तविक जानकारी प्राप्त होने पर उनमें अभिमान का भाव उभर आता है। कुछ लोगों के पास अभिमान करने जैसा कुछ नहीं होता, फिर भी वे अपनी तुच्छ संपदा को बहुत मानते हुए अभिमान करते रहते हैं। उन्हें विश्व की विपुल संपदा का ज्ञान ही नहीं होता। ये दोनों प्रकार के अभिमान क्रमशः आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित होते हैं।

माया और लोभ की व्याख्या भी अनेक नयों से करणीय है।

३९. प्रतिमा (सू० ९६)

देखें २।२४३-२४८ का टिप्पण।

४०. (सू० १४७)

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादित भृतक का अर्थ निशीथभाष्य के आधार पर किया है।[5] यात्राभृतक के विषय में भाष्यकार ने एक सूचना दी है, जैसे—कुछ आचार्यों का मत है कि यात्राभृतकों से यात्रा में साथ चलना और कार्य करना—ये दोनों बातें निश्चित की जाती थीं।

उच्चत्त और कव्वाल ये दोनों देशीय शब्द हैं। भाष्यकार ने कव्वाल का अर्थ ओड आदि किया है।[6] इस जाति के लोग वर्तमान में भी भूमिखनन का कार्य करते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १८२ आभोगो—ज्ञानं तेन निर्वर्तितो यज्जानन् कोपविपाकादि रुष्यति।

२ प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरिवृत्ति, पत्र २९१ यदा परस्यापराध सम्यगवबुध्य कोपकारण च व्यवहारत पुष्टमवलम्ब्य नान्यथास्य शिक्षोपजायते इत्याभोग्य कोप च विधत्ते तदा स कोपो आभोगनिर्वर्तित।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १८३ इतरस्तु यदजानन्निति।

४ प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरी वृत्ति, पत्र २९१ यदा त्वेनमेवं तथाविधमुहूर्तवशाद् गुणदोषविचारणाशून्य परवशीभूय कोप कुरुते तदा स कोपोऽनाभोगनिर्वर्तित।

५ स्थानांग वृत्ति, पत्र १९२,

६ निशीथभाष्य, ३७१९, ३७२०

दिवसभयओ उ घिप्पति, छिण्णेण धणेण दिवसदेवसियं।
जत्ता उ होति गमणं, उभयं वा एत्तियधणेण॥
कव्वाल उड्डमादी, हत्थमित कम्ममेत्तिय धणेण।
एच्चिरकालोच्चत्ते, कायव्व कम्म ज बेंति॥

४१. (सू० १९०)

प्रतिसलीनता बारह प्रकार के तपो मे एक तप है। औपपातिक सूत्र मे उसके चार प्रकार बतलाए गए हैं—

१ इद्रियप्रतिसलीनता ३ योगप्रतिसलीनता

२ कषायप्रतिसलीनता ४ विविक्तशयनासनसेवन[१]।

प्रस्तुत सूत्र में कषायप्रतिसलीनता के साधक व्यक्ति का प्रतिपादन किया गया है, प्रतिसलीनता का अर्थ है—निर्दिष्ट वस्तु के प्रतिपक्ष मे लीन होने वाला। औपपातिक के अनुसार कषायप्रतिसलीनता का अर्थ इस प्रकार फलित है[२]—

१ क्रोधप्रतिसलीन—क्रोध के उदय का निरोध और उदयप्राप्त क्रोध को विफल करने वाला।

२ मानप्रतिसलीन—मान के उदय का निरोध और उदयप्राप्त मान को विफल करने वाला।

३ मायाप्रतिसलीन—माया के उदय का निरोध और उदयप्राप्त माया को विफल करने वाला।

४ लोभप्रतिसलीन—लोभ के उदय का निरोध और उदयप्राप्त लोभ को विफल करने वाला।

४२ (सू० १९२)

प्रस्तुत सूत्र मे योगप्रतिसलीनता के साधक व्यक्ति के तीन प्रकारो तथा इद्रियप्रतिसलीनता के साधक का निर्देश किया गया है।

औपपातिक के अनुसार इनका अर्थ इस प्रकार है—

१ मनप्रतिसलीन—अकुशल मन का निरोध और कुशल मन का प्रवर्तन करने वाला।

२ वचनप्रतिसलीन—अकुशल वचन का निरोध और कुशल वचन का प्रवर्तन करने वाला।

३ कायप्रतिसलीन—कूर्म की भाति शारीरिक अवयवो का सगोपन और कुशल काया की प्रवृत्ति करने वाला।

४ इद्रियप्रतिसलीन—पाचो इद्रियो के विषयो के प्रचार का निरोध तथा प्राप्त विषयो पर राग-द्वेष का निग्रह करने वाला।[३]

४३-४७ (सू० २४१-२४५)

प्रस्तुत आलापक मे विकथा का सागोपाग निरूपण किया गया है। कथा का अर्थ है—वचन-पद्धति। जिस कथा से सयम मे बाधा उत्पन्न होती है—ब्रह्मचर्य प्रतिहत होता है, स्वादवृत्ति बढती है, हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है और राजनीतिक दृष्टिकोण का निर्माण होता है, उसका नाम विकथा है।[४]

वृत्तिकार ने कुछ श्लोक उद्धृत कर विकथा के स्वरूप को स्पष्ट किया है। जातिकथा के प्रसग मे निम्न श्लोक उद्धृत है—

> धिग् ब्राह्मणीर्धवाभावे, या जीवन्ति मृता इव।
> धन्या मन्ये जने शूद्री, पतिलक्षेऽप्यनिन्दिता ॥

ब्राह्मणी को धिक्कार है, जो पति के मरने पर जीती हुई भी मृत के समान है। मैं शूद्री को धन्य मानता हू जो लाख पतियो का वरण करने पर भी निन्दित नही होती।

---

१ ओवाइयं, सूत्र ३७।

२ ओवाइय, सूत्र ३७।

३ ओवाइयं, सूत्र ३७।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र १९९
विरुद्धा संयमबाधकत्वेन कथा—वचनपद्धतिर्विकथा।

कुल कथा— अहो चौलुक्यपुत्रीणा, साहस जगतोऽधिकम् ।
पत्युर्मृत्यौ विशन्त्यग्नौ, या प्रेमरहिता अपि ॥

चौलुक्य पुत्रियो का साहस ससार मे सबसे अधिक और विस्मयकारी है, जो पति की मृत्यु होने पर प्रेम के विना भी अग्नि मे प्रवेश कर जाती है।

रूपकथा—

चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी, सद्‌गी पीनघनस्तनी ।
किं लाटी नो मता साऽस्य, देवानामपि दुर्लभा ॥

चन्द्रमुखी, कमलनयना, मधुर स्वर वाली और पुष्ट स्तन वाली लाट देश की स्त्री क्या उसे सम्मत नही है ? जो देवो के लिए भी दुर्लभ है।

नेपथ्य कथा—

धिग् नारी रौदीच्या, बहुवसनाच्छादितागुलतिकत्वात् ।
यद् यौवन न यूना चक्षुर्मोदाय भवति सदा ॥

उत्तराचल की नारी को धिक्कार है, जो अपने शरीर को बहुत सारे वस्त्रो से ढँक लेती है। उसका यौवन युवको के चक्षुओ को आनद नही देता।

भाष्यकार ने स्त्री-कथा से होने वाले निम्न दोषो का निर्देश किया है[1]—

१ स्वय के मोह की उदीरणा।
२ दूसरो के मोह की उदीरणा।
३ जनता मे अपवाद।
४ सूत्र और अर्थ के अध्ययन की हानि।
५ ब्रह्मचर्य की अगुप्ति।
६ स्त्री प्रसग की सभावना।

भक्तकथा करने मे निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त हैं[2]—

१ आहार सम्बन्धी आसक्ति।
२ अजितेन्द्रियता।
३ औदरिकवाद—लोगो द्वारा पेटु कहलाना।

देशकथा करने से निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त होते हैं[3]—

१ राग द्वेष की उत्पत्ति।
२ स्वपक्ष और परपक्ष सम्बन्धी कलह।
३ उसके द्वारा कृत प्रशसा मे आकृष्ट होकर दूसरो का उस देश मे जाना।

राजकथा करने मे निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त होते हैं[4]—

१ गुप्तचर, चोर आदि होने की आशका।
२ भुक्तभोगी अथवा अभुक्तभोगी का प्रव्रज्या मे पलायन।
३ आशसाप्रयोग—राजा आदि बनने की आकाक्षा।

---

१ निशीथ भाष्य, गाथा १२१
आय-पर-मोहुदीरणा, उड्डाहो सुत्तमादिपरिहाणी ।
बभव्वते अगुत्ती, पसगदोसा य गमणादी ॥

२ निशीथभाष्य, गाथा १२४
आहारमंतरेणावि, गहितो जायई स इगालं ।
अजितिंदिया ओयरिया, वातो व अणुण्णदोसा तु ॥

३. निशीथभाष्य, गाथा १२७
रागद्दोसुप्पत्ती, सपक्ख-परपक्खओ य अधिकरण ।
बहुगुण इमो त्ति देसो, सोतु गमणं च अण्णेसिं ॥

४ निशीथभाष्य, गाथा १३०
चारिय चोराहिमरा-हितमारित-सक-कातुकामा वा ।
भुत्ताभुत्तोहावणं करेज्ज वा आससपयोग ॥

इस कथा चतुष्टय मे आसक्त रहने वाला मुनि आत्मलीन नहीं हो पाता। फलत वह प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि से वंचित रहता है।[1]

४८-५२ (सू० २४६-२५०)

प्रस्तुत आलापक मे कथा का विशद वर्णन किया गया है। आक्षेपिणी आदि कथा चतुष्टय की व्याख्या दशवैकालिक-निर्युक्ति, मूलाराधना, दशवैकालिक की व्याख्याओ, स्थानागवृत्ति, धवला आदि अनेक ग्रन्थो मे मिलती है।[2]

दशवैकालिक निर्युक्ति और मूलाराधना मे इस कथा-चतुष्टय की व्याख्या समान है। स्थानाग वृत्तिकार ने आक्षेपणी की व्याख्या दशवैकालिक निर्युक्ति के आधार पर की है। यह वृत्ति मे उद्धृत निर्युक्ति गाथा से स्पष्ट होता है। धवला मे इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से मिलती है। उसके अनुसार—नाना प्रकार की एकात दृष्टियो और दूसरे समयो की निराकरणपूर्वक शुद्धि कर छह द्रव्यो और नव पदार्थो का प्ररूपण करने वाली कथा को आक्षेपणी कहा जाता है। इसमे केवल तत्त्ववाद की स्थापना प्रधान है।[3] धवलाकर ने एक श्लोक उद्धृत किया है उससे भी यही अर्थ पुष्ट होता है।[4]

प्रस्तुत आलापक मे आक्षेपणी के चार प्रकार निर्दिष्ट हैं। उनसे दशवैकालिक निर्युक्ति और मूलाराधना की व्याख्या ही पुष्ट होती है।

हमने आचार, व्यवहार आदि का अनुवाद वृत्ति के आधार पर किया है। इन नामो के चार शास्त्र भी मिलते हैं। कुछ आचार्य इन्हें यहा शास्त्रवाचक मानते हैं। वृत्तिकार ने स्वय इसका उल्लेख किया है।[5] विशेष विवरण के लिए देखें—दसवेआलिय, ८।४६ का टिप्पण।

विक्षेपणी की व्याख्या मे कोई भिन्नता नही है।

स्थानाग वृत्तिकार ने सवेजनी (संवेदनी) की जो व्याख्या की है, वह दशवैकालिक निर्युक्ति आदि ग्रन्थो की व्याख्या से भिन्न है। उनके अनुसार इसमे वैक्रिय-शुद्धि तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्धि का कथन होना है।[6]

धवला के अनुसार इसमे पुण्यफल का कथन होता है।[7] यह उक्त अर्थ मे भिन्न नही है।

निर्वेदनी की व्याख्या मे कोई भिन्नता लक्षित नही होती। धवलाकार के अनुसार इसमे पाप फल का कथन होता है।[8]

प्रस्तुत आलापक मे निर्वेदनी कथा के आठ विकल्प किए गए हैं। उनसे यह फलित होता है कि पुण्य और पाप दोनो के फलो का कथन करना इस कथा का विषय है। इसमे स्थानाग वृत्तिकार कृत सवेजनी की व्याख्या की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

---

१ स्थानांग, ४।२५४।

२ क—दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा १९५-२०१।
ख—मूलाराधना, ६५६,६५७।
ग—पट्खण्डागम, खड १, पृष्ठ १०४, १०५।

३ पट्खण्डागम, भाग १, पृष्ठ १०५
तत्थ अक्खेवणी णाम छद्दव्व-णव-पयत्थाण सरूव दिगतर-समयांतर-णिराकरण सुद्धि करेंती परूवेदि।

४ पट्खण्डागम, भाग १, पृ० १०६
आक्षेपणीं तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणीं तत्त्वदिगन्तशुद्धिम्।
सवेगिनीं धर्मफलप्रपञ्चां निर्वेगिनीं चाह कथां विरागाम्॥

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र २०० अन्ये त्वभिदधति—आचारादयो ग्रन्था एव परिगृह्यन्ते, आचाराद्यभिधानादिति।

६ क—दशवैकालिकनियुक्ति, गाथा २००
वीरिय विउव्वणिड्ढी, नाण चरण दसणाण तह इड्ढी।
उवइस्सइ खलु जहियं, कहाइ संवेयणीइ रसो॥
ख—मूलाराधना, ६५७ संवेयणी पुण कहा, णाणचरित्त-तववीरिय इड्ढिगदा।

७ पट्खडागम, भाग १, पृष्ठ १०५ संवेयणी णाम पुण्ण फल सकहा। काणि पुण्ण-फलानि ? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्धीओ।

८ पट्खडागम, भाग १, पृष्ठ १०५ णिव्वेयणी णाम-पाव-फल-सकहा। काणि पाव फलाणी ? णिरय तिरिय-कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा-मरण वाहि-वेयणा-दालिद्दादीणि। संसार-सरीर-भोगेसु वेरग्गुप्पाइणी णिव्वेयणी णाम।

५३ (सू० २५३)

प्रस्तुत सूत्र मे अतिशायी ज्ञान-दर्शन की उपलब्धि की योग्यता का निरूपण किया गया है। उसकी उपलब्धि के सहायक तत्त्व दो हैं—शारीरिक दृढ़ता और अनासक्ति। और उसके बाधक तत्त्व भी दो हैं—शारीरिक कृशता और आसक्ति। इन्ही के आधार पर प्रस्तुत चतुर्भङ्गी की रचना की गई है।

साधारण नियम के अनुसार अतिशायी ज्ञान-दर्शन की उपलब्धि उसी व्यक्ति को हो सकती है, जो दृढ-शरीर और देहासक्ति से मुक्त होता है, किन्तु सामग्री-भेद से इसमे परिवर्तन हो जाता है, जैसे—

एक मनुष्य अस्वस्थ या तपस्वी होने के कारण शरीर से कृश है, किन्तु देहासक्त नही है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञानदर्शन को प्राप्त हो जाता है।

एक मनुष्य स्वस्थ होने के कारण शरीर से दृढ है, किन्तु देहासक्त है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त नही होता।

एक मनुष्य स्वस्थ होने के कारण शरीर से दृढ है और देहासक्त भी नही है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त होता है।

एक मनुष्य अस्वस्थ होने के कारण शरीर से कृश है, किन्तु देहासक्त है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त नहीं होता।

जिसमे देहासक्ति नही होती, उसे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हो जाता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

जिसमे देहासक्ति होती है, उसे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त नही होता, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

इसकी व्याख्या दूसरे नय से भी की जा सकती है। प्रथम व्याख्या मे प्रत्येक भग का दो-दो व्यक्तियों से सम्बन्ध है। इस व्याख्या मे प्रत्येक भग का सबध एक व्यक्ति की दो अवस्थाओ से होगा, जैसे—

कोई व्यक्ति कृश शरीर होता है तब उसमे मोह प्रबल नही होता, देहासक्ति सुदृढ नहीं होती, प्रमाद अल्प होता है, किन्तु जब वह दृढ शरीर होता है तब मास उपचित होने के कारण उसका मोह बढ जाता है, देहासक्ति प्रबल हो जाती है और प्रमाद बढ जाता है। इस कोटि के व्यक्ति के लिए प्रथम भग है।

कोई व्यक्ति दृढ शरीर होता है, तब वह अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियो का ध्यान आदि साधना पक्षो मे नियोजन करता है, मोह विलय के प्रति जागरूक रहता है, किन्तु जब वह कृश शरीर हो जाता है, तब अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियो का साधनापक्षो मे वैसा नियोजन नही कर पाता। इस कोटि के व्यक्ति के लिए दूसरे भग की रचना है।

प्रथम कोटि के व्यक्ति का शरीर के कृश होने पर मनोबल दृढ होता है और शरीर के दृढ होने पर वह कृश हो जाता है।

दूसरी कोटि के व्यक्ति का मनोबल शरीर के दृढ़ होने पर दृढ होता है और शरीर के कृश होने पर कृश हो जाता है।

तीसरी कोटि के व्यक्ति का मनोबल दृढ ही रहता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

चौथी कोटि के व्यक्ति का मनोबल कृश ही होता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

५४-५७ विवेक, व्युत्सर्ग, उञ्छ, सामुदानिक (सू० २५४)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द विवेचनीय हैं—

विवेक—शरीर और आत्मा का भेद-ज्ञान।

व्युत्सर्ग—शरीर का स्थिरीकरण, कायोत्सर्ग मुद्रा।

उञ्छ—अनेक घरो से थोडा-थोडा लिया जाने वाला भक्त-पान।

सामुदानिक—समुदान का अर्थ है—भिक्षा। उसमे प्राप्त होने वाले को सामुदानिक कहा जाता है।

५८, ५९ (सू० २५६-२५८)

महोत्सव के बाद जो प्रतिपदाए आती हैं, उनको महा-प्रतिपदा कहा जाता है। निशीथ (१९।१२) मे इद्रमह, स्कदमह, यक्षमह और भूतमह इन चार महोत्सवो मे किए जाने वाले स्वाध्याय के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। निशीथ-भाष्य के अनुसार इद्रमह आषाढी पूर्णिमा को, स्कदमह आश्विन पूर्णिमा को, यक्षमह कार्तिक पूर्णिमा और भूतमह चैत्री पूर्णिमा को मनाया जाता था।[1]

चूर्णिकार ने बतलाया है कि लाट देश मे इद्रमह श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता था।[2] स्थानाग वृत्तिकार के अनुसार इद्रमह आश्विन पूर्णिमा को मनाया जाता था।[3] वाल्मीकि रामायण से स्थानाग वृत्तिकार के मत की पुष्टि होती है।[4]

आषाढी पूर्णिमा, आश्विन पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा को महोत्सव मनाया जाता था। जिस दिन से महोत्सव का प्रारम्भ होता, उसी दिन से स्वाध्याय बद कर दिया जाता था। महोत्सव की समाप्ति पूर्णिमा को हो जाती, फिर भी प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय नहीं किया जाता। निशीथभाष्यकार के अनुसार प्रतिपदा के दिन महोत्सव अनुवृत्त (चालू) रहता है। महोत्सव के निमित्त एकत्र की हुई मदिरा का पान उस दिन भी चलता है। महोत्सव के दिनो मे मद्य-पान से बावले बने हुए लोग प्रतिपदा को अपने मित्रो को बुलाते हैं, उन्हे मद्य-पान कराते हैं। इस प्रकार प्रतिपदा का दिन महोत्सव के परिशेष के रूप मे उसी शृखला मे जुड जाता है।[5]

उन दिनो स्वाध्याय न करने के कई कारण बतलाए गए हैं, उनमे एक कारण है—लोकविरुद्ध। महोत्सव के समय आगमस्वाध्याय को लोग पसद क्यो नही करते ? यह अन्वेषण का विषय है।

अस्वाध्यायी की परम्परा का मूल वैदिक-साहित्य मे ढूढा जा सकता है। जैन-साहित्य में उसे लोकविरुद्ध होने के कारण मान्यता दी गई। आयुर्वेद के ग्रथो मे भी अस्वाध्यायी की परम्परा का उल्लेख मिलता है[6]—

कृष्णेऽष्टमी तन्निधनेऽह्नी द्वे, शुक्ले तथाऽप्येवमहर्द्विसन्ध्यम्।
अकालविद्युत्स्तनयित्नुघोषे, स्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु ॥
श्मशानयानायतनाहवेषु, महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु ।
नाध्येयमन्येषु च येषु विप्रा, नाधीयते नाशुचिना च नित्यम् ॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी और कृष्णपक्ष की समाप्ति के दो दिन (अर्थात् चतुर्दशी और अमावस), इसी प्रकार शुक्लपक्ष की (अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा), सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय, अकाल (वर्षा ऋतु के विना) विजली चमकना तथा मेघगर्जन होना, अपने शरीर तथा अपने सम्बन्धी तथा राष्ट्र और राजा के आपत्काल मे, श्मशान मे, सवारी (यात्रा-काल) मे, वध स्थान मे तथा युद्ध के समय, महोत्सव तथा उत्पात (भूकम्पादि) के दिन, तथा जिन देशो मे ब्राह्मण अनध्याय रखते हों उन दिनो मे एव अपवित्र अवस्था मे अध्ययन नही करना चाहिए। देखें स्थानाग १०।२०,२१ का टिप्पण।

---

१ निशीथभाष्य, ६०६५

आसाढी इदमहो, कत्तिय-सुगिम्हओ य बोधव्वो।
एते महामहा खलु, एतेसिं चेव पाडिवया ॥

२ निशीथभाष्यचूर्णि, ६०६५ इह लाडेसु सावण पोण्णिमाए भवति इदमहो।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २०३ इन्द्रमह —अश्वयुक् पौर्णमासी।

४ वाल्मीकि रामायण, किष्किधा काण्ड, सर्ग १६, श्लोक ३६

इन्द्रध्वज इवोद्‌धूत, पौर्णमास्यां महीतले।
आश्वयुक् समये मासि, गतश्रीको विचेतन ॥

५ निशीथभाष्य, ६०६८

छणिया ऽवसेसएण, पाडिवएसु विछणाऽणुसज्जति।
महवाउलत्तणेण, असारिताण च सम्माणो ॥

६ सुश्रुतसहिता, २।६,१०।

६०. (सू० २६४)

इस सूत्र मे गर्हा के कारणो को भी कार्य-कारण की अभेद-दृष्टि से गर्हा माना गया है। यहा २।३८ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

६१-६३ (सू० २७०-२७२)

इन सूत्रो मे धूमशिखा, अग्निशिखा और वातमण्डलिका (गोलाकार ऊपर उठी हुई हवा) के साथ स्त्री के तीन स्वभावो—मलिनता, ताप और चपलता की तुलना की गई है।

६४-६६ (सू० २७५-२७७)

अरुणवरद्वीप जम्बूद्वीप से असख्यातवा द्वीप है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणवरसमुद्र मे ४२ हजार योजन जाने पर एक प्रदेश (तुल्य अवगाहन) वाली श्रेणी उठती है और वह १७२१ योजन ऊची जाने के पश्चात् विस्तृत होती है। सौधर्म आदि चारो देवलोकों को घेर कर पाचवें देवलोक (ब्रह्म-लोक) के रिष्ट नामक विमान-प्रस्तट तक चली गई है। वह जलीय पदार्थ है। उसके पुद्गल अन्धकारमय हैं। इसलिए उसे तमस्काय कहा जाता है। लोक मे इसके समान दूसरा कोई अधकार नही है, इसलिए इसे लोकाधकार कहा जाता है। देवो का प्रकाश भी उस क्षेत्र मे हत-प्रभ हो जाता है, इसलिए उसे देवान्धकार कहा जाता है। उसमे वायु भी प्रवेश नही पा सकता, इसलिए उसे वात-परिघ और वात-परिघक्षोभ कहा जाता है। देवो के लिए भी वह दुर्गम है, इसलिए उसे देव-आरण्य और देवव्यूह कहा जाता है।

६७-६९ (सू० २८२-२८४)

कषाय के चार प्रकार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारो के तरतमता की दृष्टि से अनत स्तर होते हैं, फिर भी आत्मविकास के घात की दृष्टि से उनमे से प्रत्येक के चार-चार स्तर निर्धारित किए गए है—

अनन्तानुबधी	अप्रत्याख्यानावरण	प्रत्याख्यानावरण	सज्वलन
१ क्रोध	५ क्रोध	९ क्रोध	१३ क्रोध
२ मान	६ मान	१० मान	१४ मान
३ माया	७ माया	११ माया	१५ माया
४ लोभ	८ लोभ	१२ लोभ	१६ लोभ

अनन्तानुबधी कषाय के उदय-काल में सम्यक्दर्शन प्राप्त नहीं होता। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय-काल मे व्रत की योग्यता प्राप्त नहीं होती। प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय-काल मे महाव्रत की योग्यता प्राप्त नही होती। सज्वलन कषाय के उदय-काल मे वीतरागता उपलब्ध नहीं होती।

इन तीन सूत्रो तथा ३५४ वें सूत्र मे कषाय के इन सोलह प्रकारो की तरतमता सोलह दृष्टान्तों के द्वारा निरूपित की गई है।

अनन्तानुबधी लोभ की कृमिराग रक्त वस्त्र से तुलना की गई है।

वृद्ध सम्प्रदाय के अनुसार कृमिराग का अर्थ इस प्रकार है। मनुष्य का रक्त लेकर उसमे कुछ दूसरी वस्तुए मिलाकर एक बर्तन मे रख दिया जाता है। कुछ समय बाद उसमे कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। वे हवा की खोज मे घूमते हुए, छेदो से बाहर आकर लार छोडते हैं। उन्हीं (लारों) को कृमि-सूत्र कहा जाता है। वे स्वभाव से ही लाल होते हैं।

दूसरा अभिमत यह है—रुधिर मे जो कृमि उत्पन्न होते हैं, उन्हे वही मसलकर कचरे को उतार दिया जाता है। उसमे कुछ दूसरी वस्तुए मिला उसे रञ्जक-रस (कृमिराग) बना लिया जाता है।

७०-७९ (सू० २९०-२९९)

बध का अर्थ है—दो का योग। प्रस्तुत प्रकरण मे उसका अर्थ है—जीव और कर्म-प्रायोग्य पुद्गलो का सबध। जीव के द्वारा कर्म-प्रायोग्य पुद्गलो का ग्रहण उसके चार प्रकार हैं—

प्रकृतिबध—स्थिति, रस और प्रदेश बध के समुदाय को प्रकृतिबध कहा जाता है।[1] इस परिभाषा के अनुसार शेष तीनो बधो के समुदाय का नाम ही प्रकृतिबध है।

प्रकृति का अर्थ है अश या भेद। ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियो का जो बध होता है, उसे प्रकृतिबध कहा जाता है। इसके अनुसार प्रकृति का अर्थ स्वभाव भी है। पृथक्-पृथक् कर्मों मे जो ज्ञान आदि को आवृत करने का स्वभाव उत्पन्न होता है, वह प्रकृतिबध है।[2] दिगम्बर-साहित्य मे यह परिभाषा अधिक प्रचलित है।

स्थितिबध—जीवगृहीत कर्म-पुद्गलो की जीव के साथ रहने की काल-मर्यादा को स्थितिबध कहा है।

अनुभावबध—कर्म-पुद्गलो की फल देने की शक्ति को अनुभावबध कहा जाता है। अनुभवबध, अनुभागबध और रसबध भी इसीके नाम हैं।

प्रदेशबध—न्यूनाधिक-परमाणु वाले कर्म-पुद्गलो के स्कधो का जो जीव के साथ सबध होता है, उसे प्रदेशबध कहा जाता है।

प्राचीन आचार्यों ने इन बधो का स्वरूप मोदक के दृष्टान्त द्वारा समझाया है। विभिन्न वस्तुओ से निष्पन्न होने के कारण कोई मोदक वातहर होता है, कोई पित्तहर, कोई कफहर, कोई मारक और कोई व्यामोहकर होता है। इसी प्रकार कोई कर्मज्ञान को आवर्त करता है, कोई व्यामोह उत्पन्न करता है और कोई सुख-दुःख उत्पन्न करता है।

कोई मोदक दो दिन तक विकृत नही होता, कोई चार दिन तक विकृत नही होता। इसी प्रकार कोई कर्म दस हजार वर्ष तक आत्मा के साथ रहता है, कोई पल्योपम और कोई सागरोपम तक आत्म के साथ रहता है।

कोई मोदक अधिक मधुर होता है, कोई कम मधुर होता है। इसी प्रकार कोई कर्म तीव्र रस वाला होता है, कोई मद रस वाला।

कोई मोदक छटाक-भर का होता है, कोई पाव का। इसी प्रकार कोई कर्म अल्प परमाणु-समुदाय वाला होता है, कोई अधिक परमाणु-समुदाय वाला।

उपक्रम—कर्म-स्कधो को विविध रूप मे परिणत करने मे जो हेतु बनता है, उस जीव-वीर्य का नाम उपक्रम है। उपक्रम का अर्थ आरभ भी है। कर्म-स्कधो की विभिन्न परिणतियों के आरम्भ को भी उपक्रम कहा जाता है।

बन्धन—कर्म की दस अवस्थाए हैं—

१ बधन २ उद्वर्तना ३ अपवर्तना ४ सत्ता ५ उदय ६ उदीरणा ७ सक्रमण ८ उपशमन ९ निधत्ति १० निकाचना

जीव और कर्म-पुद्गलो के सबध को बध कहा जाता है।

कर्मों की स्थिति एव अनुभाव की जो वृद्धि होती है, उसे उद्वर्तना कहा जाता है। उनकी स्थिति एव अनुभाव की जो हानि होती है, उसे अपवर्तना कहा जाता है।

कर्म-पुद्गलो की अनुदित अवस्था को सत्ता कहा जाता है। कर्मों के विपाक काल को उदय कहा जाता है।

अपवर्तना के द्वारा निश्चित समय से पहले कर्मों को उदय मे लाने को उदीरणा कहा जाता है।

सजातीय कर्म-प्रकृतियों के एक-दूसरे में परिणमन करने को सक्रमण कहा जाता है।

---

१ पचसग्रह, ४३२।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २०६

कर्म्मण प्रकृतय —अशा भेदा ज्ञानावरणीयादयोऽष्टौ तासा प्रकृतेर्वा—अविशेषितस्य कर्म्मणो बध प्रकृतिबध।

शुभ प्रकृति का अशुभ विपाक के रूप मे और अशुभ प्रकृति का शुभ प्रकृति के रूप मे परिणमन इसी कारण से होता है।

मोहकर्म को उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य करने को उपशमन कहा जाता है।

उद्वर्तना एव अपवर्तना के सिवाय शेष छह करणो के अयोग्य अवस्था को निधत्ति कहते हैं।

जिस कर्म का उद्वर्तना, अपवर्तना, उदीरणा, सक्रमण और निधत्ति न हो सके उसे निकाचित कहा जाता है।

विपरिणमन—कर्म-स्कधो के क्षय, क्षयोपशम, उद्वर्तना, अपवर्तना आदि के द्वारा नई-नई अवस्थाए उत्पन्न करने को विपरिणामना कहा जाता है। पट्खडागम के अनुसार विपरिणामना का अर्थ है निर्जरा—

'विपरिणाम मुवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाण देस-णिज्जर सयल-णिज्जर च परूवेदि।'

विपरिणामोपक्रम अधिकारप्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की देश निर्जरा और सकल निर्जरा का कथन करता है।[1] देखें ४।६०३ का टिप्पण।

८० (सू० ३२०)

ये अनुक्रम से ईशान, अग्नि, नैर्ऋत और वायव्य कोण मे है।

८१ (सू० ३५०)

आजीवक श्रमण-परम्परा का एक प्रभावशाली सम्प्रदाय था। उसके आचार्य थे गोशालक। आजीवक भिक्षु अचेलक रहते थे। वे पचाग्नि तपते थ। वे अन्य अनेक प्रकार के कठोर तप करते थे। अनेक कठोर आसनो की साधना भी करते थे।

प्रस्तुत सूत्र मे आए हुए उग्रतप और घोरतप से आजीवको के तपस्वी होने की सूचना मिलती है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है—बुद्ध आजीवको को सबसे बुरा समझते थे। तापस होने के कारण इनका समाज मे आदर था। लोग निमित्त, शकुन, स्वप्न आदि का फल इनसे पूछते थे।[2]

रस-निर्यूहण और जिह्वेन्द्रिय-प्रतिसलीनता—ये दोनो तप आजीविको के अस्वाद व्रत के सूचक हैं।

प्रस्तुत सूत्र से आगे के तीन सूत्रो (३५१-३५३) मे क्रमश चार प्रकार के सयम, त्याग और अकिञ्चनता का निर्देश है। उनमे आजीवक का उल्लेख नही है और न ही इसका सवादी प्रमाण उपलब्ध है कि ये आजीवको द्वारा सम्मत हैं। पर प्रकरणवशात् सहज ही एक कल्पना उद्भूत होती है—क्या यहा आजीवक सम्मत सयम, त्याग और अकिंचनता का निर्देश नहीं है?

८२ (सू० ३५४)

बौद्ध साहित्य मे पत्थर, पृथ्वी और पानी की रेखा के समान मनुष्यो का वर्णन मिलता है।

भिक्षुओ! ससार मे तीन तरह के आदमी हैं। कौन-सी तीन तरह के?

पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी, पृथ्वी पर खिची रेखा के समान आदमी, पानी पर खिची रेखा के समान आदमी।

भिक्षुओ! पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी कैसा होता है? भिक्षुओ! एक आदमी प्राय क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है, जैसे—भिक्षुओ! पत्थर पर खिची रेखा शीघ्र नही मिटती, न हवा से न पानी से, चिरस्थायी होती है, इसी प्रकार भिक्षुओ! यहा एक आदमी प्राय क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। भिक्षुओ! ऐसा व्यक्ति 'पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी' कहलाता है।

---

१ षट्खडागम की प्रस्तावना, पृष्ठ ६३, खण्ड १, भाग १, पुस्तक २।

२- बौद्धधर्मदर्शन, पृष्ठ ४।

भिक्षुओ ! पृथ्वी पर खिची रेखा के समान आदमी कैसा होता है ? भिक्षुओ ! एक आदमी प्राय क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक नही रहता, जैसे— भिक्षुओ ! पृथ्वी पर खिची रेखा शीघ्र मिट जाती है। हवा से या पानी से चिरस्थायी नही होती। इसी प्रकार भिक्षुओ ! यहा एक आदमी प्राय क्रोधित होता है। उसका क्रोध दीर्घकाल तक नही रहता। भिक्षुओ ! ऐसा व्यक्ति 'पृथ्वी पर खिची रेखा के समान आदमी' कहलाता है।

भिक्षुओ ! पानी पर खिची रेखा के समान आदमी कैसा होता है ? भिक्षुओ ! कोई-कोई आदमी ऐसा होता है कि यदि कड़वा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुडा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। जिस प्रकार भिक्षुओ ! पानी पर खिची रेखा शीघ्र विलीन हो जाती है, चिरस्थायी नही होती, इसी प्रकार भिक्षुओ ! कोई-कोई आदमी ऐसा होता है जिसे यदि कड़वा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुडा ही रहता, मिला ही रहताहै, प्रसन्न ही रहता है।

भिक्षुओ ! ससार मे ये तीन तरह के लोग हैं।[1] विशेष जानकारी के लिए देखें—६७-६६ का टिप्पण।

८३ (सू० ३५५)

प्रस्तुत सूत्र मे भावो की लिप्तता-अलिप्तता तथा मलिनता-निर्मलता का तारतम्य उदक के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। कर्दम के चिमटने पर उसे उतारना कष्टसाध्य होता है। खजन को उतारना उससे अल्प कष्टसाध्य होता है। वालुका लगने पर जल के सूखते ही वह सरलता से उतर जाता है। शैल (प्रस्तरखड) का लेप लगता ही नही। इसी प्रकार मनुष्य के कुछ भाव कष्टसाध्य लेप उत्पन्न करते हैं, कुछ अल्प कष्टसाध्य, कुछ सुसाध्य और कुछ लेप उत्पन्न नही करते।

कर्दमजल की अपेक्षा खजनजल अल्प मलिन, खजनजल की अपेक्षा वालुकाजल निर्मल और वालुकाजल की अपेक्षा शैलजल अधिक निर्मल होता है। इसी प्रकार मनुष्य के भाव भी मलिनतर, मलिन, निर्मल और निर्मलतर होते हैं।

कौटलीय अर्थशास्त्र मे दुर्ग-निर्माण के प्रसङ्ग मे खजनोदक का उल्लेख हुआ है।[2] टिप्पणकार ने इसका अर्थ विच्छिन्न प्रवाह वाला उदक किया है। इसे पकिल होने के कारण गति वैक्लव्यकर वतलाया गया है।[3]

वृत्तिकार ने खजन का अर्थ लेपकारी कर्दम किया है।[4]

८४ (सू० ३५६)

कुछ पुरुष दूसरे के मन में प्रीति (या विश्वास) उत्पन्न करना चाहते हैं और वैसा कर देते हैं—इस प्रवृत्ति के तीन हेतु वृत्तिकार द्वारा निर्दिष्ट हैं[5]—

१ स्थिरपरिणामता।

२ उचितप्रतिपत्तिनिपुणता।

३ सौभाग्यवत्ता।

जिस व्यक्ति के परिणाम स्थिर होते हैं, जो उचित प्रतिपत्ति करने मे निपुण होता है या सौभाग्यशाली होता है, वह ऐसा कर पाता है। जिसमे ये विशेषताए नही होती, वह ऐसा नही कर पाता।

"कुछ पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु वैसा कर नहीं पाते"

---

१ अगुत्तरनिकाय, भाग १, पृष्ठ २६१ २६२।

२ कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २, प्रकरण २१।

३ क—कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २, प्रकरण २१

विच्छिन्नप्रवाहोदकं क्वचित् क्वचित देयोदकविशिष्ट-मित्यर्थ।

ख—खजनोदकम्—खञ्जन पकिलत्वाद् गतिवैक्लव्यकरमुदक यस्मिन्स्तत तथा भूतम्।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२३

खञ्जन दीपादि खञ्जनतुल्य पादादिलेपकारी कर्दम-विशेष एव।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२४।

वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या दो नयो मे की है—

(१) अप्रीति उत्पन्न करने का पूर्ववर्ती भाव निवृत्त होने पर वह दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न नही कर पाता।

(२) सामने वाला व्यक्ति अप्रीतिजनक हेतु से भी प्रीत होने के स्वभाव वाला है, इसलिए वह उसके मन मे अप्रीति उत्पन्न नहीं कर पाता। इसकी व्याख्या तीसरे नय से भी की जा सकती है—सामने वाला व्यक्ति यदि साधक या मूर्ख होता है तो अप्रीतिजनक हेतु होने पर भी उसके मन मे अप्रीति उत्पन्न नहीं होती।

भगवान् महावीर ने साधक को मान और अपमान मे सम बतलाया है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा पससासु, तहा माणावमाणओ ॥[1]

साधक लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशसा, मान-अपमान मे सम रहता है।

एक सस्कृत कवि ने मूर्ख को भी मान और अपमान मे सम बतलाया है—

मूर्खत्व हि सखे ! ममापि रुचित यस्मिन् यदष्टौ गुणा।
निश्चिन्तो बहुभोजनो त्रपमना नक्त दिवा शायक ॥
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने सम।
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्ख सुख जीवति ॥

मित्र ! मूर्खता मुझे भी प्रिय है, क्योकि उसमे आठ गुण होते हैं। मूर्ख—

१ चिंता मुक्त होता है।
२ बहुभोजन करने वाला होता है।
३ लज्जारहित होता है।
४ रात और दिन सोने वाला होता है।
५ कर्तव्य और अकर्तव्य की विचारणा मे अधा और बहरा होता है।
६ मान और अपमान मे समान होता है।
७ रोगरहित होता है।
८ दृढ शरीर वाला होता है।

वृत्तिकार की सूचना के अनुसार प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद इस प्रकार भी किया जा सकता है—

पुरुष चार प्रकार के होते हैं—

१ कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह प्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते हैं और बिठा भी देते हैं।
२ कुछ पुरुष दूसरों के मन मे—यह प्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते हैं, पर बिठा नहीं पाते।
३ कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह अप्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते हैं और बिठा भी देते हैं।
४ कुछ पुरुष दूसरों के मन मे—यह अप्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते हैं, पर बिठा नही पाते।

८५ (सू० ३६१)

प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या उपकार की तरतमता आदि अनेक नयो से की जा सकती है। वृत्तिकार ने लोकोत्तर उपकार की दृष्टि मे इसकी व्याख्या की है। जो गुरु पत्र वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे अपनी श्रुत-सम्पदा को अपने तक ही सीमित रखते हैं। जो गुरु फूल वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे शिष्यो को सूत्र-पाठ की वाचना देते हैं। जो गुरु फल वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे शिष्यो को सूत्र के अर्थ की वाचना देते हैं। जो गुरु छाया वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे शिष्यो को सूत्रार्थ के पुनरावर्तन और अपाय-सरक्षण का पथ-दर्शन देते हैं।[2] देखें—स्थानाग ३।१५वा टिप्पण।

---

१ उत्तराध्ययन, १९।९०।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२४

८६ (सू० ३६४)

राशि के दो भेद होते हैं—युग्म और ओज। समसङ्ख्या (२,४,६,८) को युग्म और विषमसङ्ख्या (१,३,५,७,६) को ओज कहा जाता है।[1] युग्म के दो भेद हैं—कृतयुग्म और द्वापरयुग्म। ओज के दो भेद हैं—त्र्योज और कल्योज। इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

कृतयुग्म—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष चार रहे, जैसे—८,१२,१६,२० ।

द्वापरयुग्म—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष दो रहे, जैसे—६,१०,१४,१८ ।

त्र्योज—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष तीन रहे, जैसे—७,११,१५,१६ ।

कल्योज—राशि मे से चार-चार घटाने पर एक शेष रहे, जैसे —५,६,१३,१७,२१ ।

८७ (सू० ३८६)

आकुलि का पुष्प सुन्दर होता है, किन्तु सुरभियुक्त नही होता।

वकुल का पुष्प सुरभियुक्त होता है, किन्तु सुन्दर नही होता।

जूही का पुष्प सुन्दर भी होता है और सुरभियुक्त भी होता है।

वदरी का पुष्प न सुन्दर ही होता है और न सुरभियुक्त ही होता है।[2]

८८ (सू० ४११)

प्रस्तुत सूत्र के दृष्टान्त मे माधुर्य की तरतमता वतलाई गई है। आवला ईपत्‌मधुर, द्राक्षा वहुमधुर, दुग्ध वहुतर-मधुर और शर्करा वहुतममधुर होती है।

आचार्यो के उपशम आदि प्रशान्त गुणों की माधुर्य के साथ तुलना की गई है। माधुर्य की भाति उपशम आदि मे भी तरतमता होती है। किसी का उपशम (शांति) ईपत्, किसी का वहु, किसी का वहुतर और किसी का वहुतम होता है।[3]

८९ (सू० ४१२)

१ स्वार्थी या आलसी मनुष्य अपनी सेवा करते हैं, दूसरो की नही करते।

२ स्वार्थ-निरपेक्ष मनुष्य दूसरो की सेवा करते हैं, अपनी नहीं करते।

३ सतुलित मनोवृत्ति वाले मनुष्य अपनी सेवा भी करते हैं और दूसरों की भी करते हैं।

४ आलसी, उदासीन, निरपेक्ष, निराश या अवधूत मनोवृत्ति वाले मनुष्य न अपनी सेवा करते हैं और न दूसरो की करते हैं।

९० (सू० ४१३)

१ निस्पृह मनुष्य दूसरो को सेवा देते हैं, किन्तु लेते नही।

२ रुग्ण, वृद्ध, अशक्त या विशिष्ट साधना, शोध अथवा प्रवृत्ति मे सलग्न मनुष्य दूसरो की सेवा लेते हैं किन्तु देते नही।

---

१ क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २२६ गणितपरिभाषायां समराशि-युग्ममुच्यते विषमस्तु ओज इति।
ख—कौटलीयार्थशास्त्र, २ अधिकरण, ३ अध्याय, २१ प्रकरण पृष्ठ ५८।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२६।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२६।

३ संतुलित मनोवृत्ति, विनिमय या समता मे विश्वास करने वाला मनुष्य दूसरो को सेवा देते भी हैं और लेते भी हैं।

४ निरपेक्ष या नितान्त व्यक्तिवादी मनोवृत्ति वाले मनुष्य न दूसरो को सेवा देते हैं और न लेते ही हैं।

६१ (सू० ४२१)

धर्म की प्रियता और दृढता—ये दोनो क्रमिक विकास की भूमिकाए है। व्यक्ति मे पहले प्रियता उत्पन्न होती है फिर दृढता आती है। इस दृष्टि से कुछ पुरुष प्रियधर्मा होते हैं, दृढधर्मा नही होते। यह भग-रचना समुचित है। कुछ पुरुष दृढधर्मा होते है, प्रियधर्मा नही होते। यह दूसरे भग की रचना सगत नही लगती। प्रियधर्मा हुए विना कोई दृढधर्मा कैसे हो सकता है ? इस असगति का उत्तर व्यवहारभाष्यकार तथा उसके आधार पर स्थानाग वृत्तिकार ने दिया है[1]—

कुछ पुरुषो की धृति और शक्ति दुर्वल होती है, किन्तु धर्म के प्रति उनकी प्रीति सहज हो जाती है। इस कोटि के पुरुष धर्म के प्रति सरलता से अनुरक्त हो जाते हैं, किन्तु उसका दृढता पूर्वक पालन नही कर पाते। वे आपदा के समय मे क्षुब्ध होकर स्वीकृत धर्माचरण से विचलित हो जाते हैं।[2]

कुछ पुरुषो की धृति और शक्ति प्रवल होती है, किन्तु उनमे धर्म के प्रति प्रीति उत्पन्न करना बहुत कठिन होता है। इस कोटि के पुरुष धर्म के प्रति सरलता से अनुरक्त नही होते, किन्तु वे जिस धर्माचरण को स्वीकार कर लेते हैं, जो प्रतिज्ञा करते हैं, उसे अत तक पार पहुचाते हैं। वडी-से-वडी कठिनाई आने पर भी वे स्वीकृत धर्म से विचलित नही होते।[3] इस दृष्टि से सूत्रकार ने दूसरे भग के अधिकारी पुरुष को दृढधर्मा कहा है। उसमे प्रियधर्मा का पक्ष गौण है, इसलिए सूत्रकार ने उसे अस्वीकृत किया है।

६२ (सू० ४२२)

धर्माचार्य—जो धर्म का उपदेश देता है, प्रथम वार धर्म मे प्रेरित करता है, वह धर्माचार्य कहलाता है। वह गृहस्थ या श्रमण कोई भी हो सकता है।[4]

जो केवल प्रव्रज्या देता है, वह प्रव्राजनाचार्य होता है। जो केवल उपस्थापना करता है, वह उपस्थापनाचार्य होता है जो केवल धर्म मे प्रेरित करता है, वह धर्माचार्य होता है।

क्रम की दृष्टि से प्रथम धर्माचार्य, दूसरे प्रव्राजनाचार्य और तीसरे उपस्थापनाचार्य होते हैं—ये तीनो पृथक्-पृथक् ही हो—यह आवश्यक नही हैं। एक ही व्यक्ति धर्माचार्य, प्रव्राजनाचार्य और उपस्थापनाचार्य भी हो सकता है।[5]

जो केवल उद्देशन देता है, वह उद्देशनाचार्य होता है। जो केवल वाचना देता है, वह वाचनाचार्य होता है। पूर्व प्रकरण की भाति एक ही व्यक्ति धर्माचार्य, उद्देशनाचार्य और वाचनाचार्य हो सकता है।

६३-६४ (सू० ४२४,४२५)

धर्मान्तेवासी—जो धर्म-श्रवण के लिए आचार्य के समीप रहता है, वह धर्मान्तेवासी होता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २३०।

२ व्यवहारभाष्य, १०।३५

दसविहवेयावच्चे,अन्नयरे खिप्पमुज्जमं कुणइ।
अच्चेतमणिव्वाही धितिविरियकिसे पढमभगो॥

३ व्यवहारभाष्य, १०।३६

दुक्खेण उगाहिज्जइ, विइओ गहिय तु नेइ जा तीरं।

४ क—व्यवहारभाष्य, १०।४०

जो पुण नो भयधारी, सो धम्हा भवति आयरिओ उ।
भण्णति धम्मायरिओ, सो पुण गहिओ व समणो वा॥

ख—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३० धम्मो जेणुवइट्ठो, सो धम्मगुरू गिही व समणो वा।

५ क—व्यवहारभाष्य, १०।४१

धम्मायरि पव्वायण, तह य उठावणा गुरु तइओ।
कोइ तिहि सपन्नो, दोहि वि एक्केक्कएण वा॥

ख—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३० कोवि तिहि संजुत्तो, दोहि वि एक्केक्कगेणेव।

जो केवल प्रव्रज्या ग्रहण की दृष्टि से आचार्य के पास रहता है वह प्रव्राजनान्तेवासी होता है।

जो केवल उपस्थापना की दृष्टि से आचार्य के पास रहता है, वह उपस्थापनान्तेवासी होता है।

एक ही व्यक्ति धर्मान्तेवासी, प्रव्राजनान्तेवासी और उपस्थापनान्तेवासी हो सकता है।

९५ रात्निक (सू० ४२६)

जो दीक्षापर्याय मे बडा होता है वह रात्निक कहलाता है।[1] विशेषविवरण के लिए दसवेआलिय ८/४० का टिप्पण द्रष्टव्य है।

९६ (सू० ४३०)

श्रमणो की उपासना करने वाले गृहस्थ श्रमणोपासक कहलाते हैं। उनकी श्रद्धा और वृत्ति की तरतमता के आधार पर उन्हे चार वर्गो मे विभक्त किया गया है। जिनमे श्रमणो के प्रति प्रगाढ वत्सलता होती है, उनकी तुलना माता-पिता से की गई है। माता-पिता के समान श्रमणोपासक तत्त्वचर्चा व जीवननिर्वाह—दोनो प्रसगो मे वत्सलता का परिचय देते हैं।

जिनमे श्रमणो के प्रति वत्सलता और उग्रता दोनो होती है, उनकी तुलना भाई से की गई है। इस कोटि के श्रमणो-पासक तत्त्वचर्चा मे निष्ठुर वचनो का प्रयोग कर देते हैं, किन्तु जीवननिर्वाह के प्रसग मे उनका हृदय वत्सलता से परिपूर्ण होता है।

जिन श्रमणोपासको मे सापेक्षप्रीति होती है और कारणवश प्रीति का नाश होने पर वे आपत्काल मे भी उपेक्षा करते हैं, उनकी तुलना मित्र से की गई है। इस कोटि के श्रमणोपासक अनुकूलता में वत्सलता रखते हैं और कुछ प्रतिकूलता होने पर श्रमणो की उपेक्षा करने लग जाते हैं।

कुछ श्रमणोपासक ईर्ष्यावश श्रमणो मे दोष ही दोष देखते हैं, किसी भी रूप मे उपकारी नही होते, उनकी तुलना सपत्नी (सौत) से की गई है।

९७ (सू० ४३१)

प्रस्तुत सूत्र में आन्तरिक योग्यता और अयोग्यता के आधार पर श्रमणोपासक के चार वर्ग किए गए हैं।

आदर्श (दर्पण) निर्मल होता है। वह सामने उपस्थित वस्तु का यथार्थ प्रतिबिम्ब ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासक श्रमण के तत्त्व-निरूपण को यथार्थ रूप मे ग्रहण कर लेते हैं।

ध्वजा अनवस्थित होती है। वह किसी एक दिशा मे नही टिकती। जिधर की हवा होती है, उधर ही मुड जाती है। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासको का तत्त्वबोध अनवस्थित होता है। उनके विचार किसी निश्चित बिन्दु पर स्थिर नही होते।

स्थाणु शुष्क होने के कारण प्राणहीन हो जाता है। उसका लचीलापन चला जाता है। फिर वह झुक नही पाता। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासको मे अनाग्रह का रस सूख जाता है। उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है। फिर वे किसी नये सत्य को स्वीकार नही कर पाते।

कपडे मे काटा लग गया। कोई आदमी उसे निकालता है। काटे की पकड इतनी मजबूत है कि वह न केवल उस वस्त्र को ही फाड डालता है, अपितु निकालने वाले के हाथ को भी बींध डालता है। कुछ श्रमणोपासक कदाग्रह से ग्रस्त होते हैं। उनका कदाग्रह छुडाने के लिए श्रमण उन्हे तत्त्वबोध देते हैं। वे न केवल उस तत्त्वबोध को अस्वीकार करते हैं, किन्तु तत्त्वबोध देने वाले श्रमण को दुर्वचनों से बींध डालते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २३० रात्निक पर्यायज्येष्ठ।

९८ (सू० ४६७)

प्रस्तुत सूत्र एक पहेली है। इसकी एक व्याख्या अनुवाद के साथ की गई है। यह अन्य अनेक नयों से भी व्याख्येय है—

१ कुछ पुरुष एक से बढते है, एक से हीन होते हैं—श्रुत से बढते है, सम्यग्दर्शन से हीन होते हैं।
२ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—श्रुत से बढते है, सम्यग्दर्शन और विनय से हीन होते है।
३ कुछ पुरुष दो से बढ़ते है, एक से हीन होते हैं—श्रुत और चारित्र से बढ़ते हैं, सम्यग्दर्शन से हीन होते हैं।
४ कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते हैं—श्रुत और अनुष्ठान से बढ़ते हैं, सम्यग्दर्शन और विनय से हीन होते हैं।

१ कुछ पुरुष एक से बढते है, एक से हीन होते है—क्रोध से बढते हैं, माया से हीन होते हैं।
२ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—क्रोध से बढ़ते है, माया और लोभ से हीन होते है।
३ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, एक से हीन होते है—क्रोध और मान से बढते है, माया से हीन होते है।
४ कुछ पुरुष दो से बढ़ते हैं, दो से हीन होते हैं—क्रोध और मान से बढ़ते हैं, माया और लोभ से हीन होते हैं।

१ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—तृष्णा से बढते हैं, आयु से हीन होते हैं।
२ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—तृष्णा से बढते हैं, मैत्री और करुणा से हीन होते हैं।
३ कुछ पुरुष दो से बढते है, एक से हीन होते हैं—ईर्ष्या और क्रूरता से बढते हैं, मैत्री से हीन होते हैं।
४ कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते हैं—मैत्री और करुणा से बढते हैं, ईर्ष्या और क्रूरता से हीन होते हैं।

१ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—बुद्धि से बढते है, हृदय से हीन होते है।
२ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—बुद्धि से बढ़ते है, हृदय और आचार से हीन होते हैं।
३ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—बुद्धि और हृदय से बढ़ते हैं, अनाचार से हीन होते है।
४ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—बुद्धि और हृदय से बढते हैं, अनाचार और अश्रद्धा से हीन होते हैं।

१ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—सन्देह से बढते हैं, मैत्री से हीन होते हैं।
२ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—सन्देह से बढते हैं, मैत्री और मानसिक सन्तुलन से हीन होते हैं।
३ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—मैत्री और मानसिक सन्तुलन से बढते हैं, सन्देह से हीन होते हैं।
४ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—मैत्री और मानसिक सन्तुलन से बढते हैं, सन्देह और अधैर्य से हीन होते हैं।

९९ (सू० ४८६)

ह्रीसत्त्व और ह्रीमन सत्त्व—इन दोनो मे सत्त्व का आधार लोक-लाज है। कुछ लोग आन्तरिक सत्त्व के विचलित होने पर भी लज्जावश सत्त्व को बनाए रखते हैं, भय को प्रदर्शित नही करते। जो ह्रीसत्त्व होता है, वह लज्जावश शरीर और मन दोनो मे भय के लक्षण प्रदर्शित नही करता। जो ह्रीमन सत्त्व होता है, वह मन मे सत्त्व को बनाए रखता है, किन्तु उसके शरीर मे भय के लक्षण—रोमाच, कपन आदि प्रकट हो जाते हैं।

१०० शय्या प्रतिमाएं (सू० ४८७)

शय्या प्रतिमा का अर्थ है—सस्तार विषयक अभिग्रह। प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक सकल्पित] सस्तार मिलेगा तो ग्रहण करूगा, दूसरा नही।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक सकल्पित] सस्तार मे दृष्ट को ही ग्रहण करूगा, अदृष्ट को नही।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट सम्तार यदि शय्यातर के घर मे होगा तो ग्रहण करूगा, अन्यथा नहीं।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट सम्तार यदि यथासंसृत [सहज ही बिछा हुआ] मिलेगा, उसको ग्रहण करूगा, दूसरा नही।[1]

१०१ वस्त्र प्रतिमाए (सू० ४८८)

वस्त्र प्रतिमा का अर्थ है—वस्त्र विषयक प्रतिज्ञा।

प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक सकल्पित] वस्त्र की ही याचना करूगा।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं दृष्ट वस्त्रो की ही याचना करूगा।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं शय्यातर के द्वारा भुक्त वस्त्रो की ही याचना करूगा।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं छोडने योग्य वस्त्रो की ही याचना करूगा।[2]

१०२ पात्र प्रतिमाए (सूत्र ४८९)

पात्र प्रतिमा का अर्थ है—पात्र विषयक प्रतिज्ञा।

प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट पात्र की याचना करूगा।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं दृष्ट पात्र की याचना करूगा।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं काम मे लिए हुए पात्र की याचना करूगा।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं छोडने योग्य पात्र की याचना करूगा।[3]

१०३-१०४ (सू० ४९१,४९२)

शरीर पाच हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्मण। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से इनके अनेक वर्गीकरण होते हैं।

स्थूलता और सूक्ष्मता की दृष्टि से—

स्थूल	सूक्ष्म
औदारिक	तैजस
वैक्रिय	कार्मण
आहारक	

कारण और कार्य की दृष्टि से—

कारण	कार्य
कार्मण	औदारिक
	वैक्रिय
	आहारक
	तैजस

---

१ क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३९।
ख—आयारचूला २।६२-६६।

२ क—स्थानागवृत्ति, पत्र २३९।
ख—आयारचूला ५।१६-२०।

३ क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३९।
ख—आयारचूला—६।१५-१९।

भववर्ती और भवान्तरगामी की दृष्टि से—

भववर्ती	भवान्तरगामी
औदारिक	तैजस
वैक्रिय	कार्मण
आहारक	

साहचर्य और असाहचर्य की दृष्टि से—

सहचारी	असहचारी
वैक्रिय	औदारिक
आहारक	
तैजस	
कार्मण	

औदारिक शरीर जीव के चले जाने पर भी टिका रहता है और विशिष्ट उपायों से दीर्घकाल तक टिका रह सकता है। शेष चार शरीर जीव से पृथक् होने पर अपना अस्तित्व नहीं रख पाते, तत्काल उनका पर्यायान्तर (रूपान्तर) हो जाता है।[1]

१०५ (सू० ४९८)

आकाश के जिस भाग मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय व्याप्त होते हैं, उसे लोक कहा जाता है। धर्मास्तिकाय गतितत्त्व है। इसलिए जहा धर्मास्तिकाय नहीं होता वहा जीव और पुद्गल गति नहीं कर सकते। लोक से बाहर जीव और पुद्गलो की गति नही होने का मुख्य हेतु निरुपग्रहता—गतितत्त्व (धर्मास्तिकाय) के आलम्बन का अभाव है। शेष तीन हेतु उसी के पूरक हैं।

रूक्ष पुद्गल लोक से बाहर नही जाते, यह लोकस्थिति का दसवा प्रकार है[2]।

१०६-१११ (सू० ४९९-५०४)

ज्ञात के अनेक अर्थ होते हैं—दृष्टान्त, आख्यानक, उपमानमात्र और उपपत्तिमात्र।[3]

दृष्टान्त—

तर्कशास्त्र के अनुसार साधन का सद्भाव होने पर साध्य का नियमत होना और साध्य के अभाव मे साधन का नियमत न होना—इसका कथन करने वाले निदर्शन को दृष्टान्त कहा जाता है।[4]

आख्यानक—

दो प्रकार का होता है—चरित और कल्पित।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४०

जीवेन स्पृष्टानि—व्याप्तानि जीवस्पृष्टानि, जीवेन हि स्पृष्टान्येव वैक्रियादीनि भवन्ति, न तु यथा औदारिकं जीवमुक्तमपि भवति मृतावस्थायां तथैतानीति।

२ स्थानांग, १०।१

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४१, २४२ ज्ञात—दृष्टान्त, अथवा आख्यानकरूप, ज्ञात, अथवोपमानमात्र ज्ञात, अथवा ज्ञात—उपपत्तिमात्रं।

४ वही, पत्र २४१

ज्ञायते अस्मिन् सति दार्ष्टान्तिकोऽर्थ इति अधिकरणे क्तप्रत्ययोपादानात् ज्ञात—दृष्टान्त, साधनसद्भावे साध्यस्यावश्यभाव साध्याभावे वा साधनस्यावश्यमभाव इत्युपदर्शनलक्षणो,यदाह—साध्येनानुगमो हेतो, साध्याभावे च नास्तिता। ख्याप्यते यत्र दृष्टान्त, स साधर्म्येतरो द्विधा।

चरित—

जीवन-चरित से किसी बात को समझाना चरित ज्ञात है। जैसे—निदान दुःख के लिए होता है, यथा ब्रह्मदत्त का निदान।

कल्पित—

कल्पना के द्वारा किसी तथ्य को प्रकट करना। यौवन आदि अनित्य हैं। यहां पदार्थ की अनित्यता को कल्पितज्ञात के द्वारा समझाया गया है। पीपल का पका पत्र गिर रहा था, उसे देख नई कोपलें हंस पड़ीं। पत्र बोला, तुम किस लिए हंस रही हो? एक दिन मैं भी तुम्हारे ही जैसा था और एक दिन आएगा, तुम भी मेरे जैसी हो जाओगी।[1]

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में चरित और कल्पित—दोनों प्रकार के ज्ञात निरूपित हैं, इसीलिए उस अंग का नाम ज्ञाता है।

उपमान मात्र—

हाथ किसलय की भांति सुकुमार हैं।[2] इसमें किसलय की सुकुमारता से हाथ की सुकुमारता की तुलना है।

उपपत्तिमात्र—

उपपत्ति ज्ञात का हेतु होती है। अभेदोपचार से उसे ज्ञात कहा जाता है। एक व्यक्ति जौ खरीद रहा था। किसी ने पूछा—'जौ किस लिए खरीद रहे हो?' उसने उत्तर दिया—'खरीदे बिना मिलता नहीं।'[3]

आहरण—

जिससे अप्रतीत अर्थ प्रतीत होता है, वह आहरण कहलाता है। पाप दुःख के लिए होता है, ब्रह्मदत्त की भांति। इसमें दार्ष्टान्तिक अर्थ सामान्य रूप में उपनीत है।[4]

आहरणतद्देस—

दृष्टान्तार्थ के एक देश से दार्ष्टान्तिक अर्थ का उपनयन करना। आहरणतद्देस कहलाता है। इसका मुंह चन्द्र जैसा है। यहां चन्द्र के सौम्यधर्म से सुख की तुलना है। चन्द्र के नेत्र, नासिका आदि नहीं हैं तथा वह कलंकित प्रतीत होता है। मुंह की तुलना में ये सब इष्ट नहीं है। इसलिए यह एकदेशीय उदाहरण है।[5]

आहरणतद्दोप—

आहरण सम्बन्धी दोष अथवा प्रसंग में साक्षात् दीखने वाला दोष अथवा साध्य विकलता आदि दोषों से युक्त आहरण को आहरणतद्दोष कहा जाता है। जैसे—शब्द नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे घट। यह दृष्टान्त का साध्य-साधन-विकल नाम दोष है। घट मनुष्य के द्वारा कृत होता है इसलिए वह नित्य नहीं है। वह रूप आदि धर्म-युक्त है, इसलिए अमूर्त भी नहीं है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२

आख्यानकरूपं ज्ञातं, तच्च चरितकल्पितभेदात् द्विधा, तत्र चरितं यथा निदानं दुःखाय ब्रह्मदत्तस्येव, कल्पितं यथा प्रमादवतामनित्यं यौवनादीति दर्शनीयं, यथा पाण्डुपत्रेण किशलयानां देशितं, तथाहि—

"जह तुब्भे तह अम्हे तुब्भेऽवि य होहिहा जहा अम्हे।
अप्पाहेइ पडंतं पंडुयपत्तं किसलयाणं।"

२ वही, पत्र २४२

अथवोपमानमात्रं ज्ञातं सुकुमारः करः किशलयमिव।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२

अथवा ज्ञातम्—उपपत्तिमात्रं ज्ञातहेतुत्वात्, कस्माद्यवाः क्रीयन्ते? यस्मान्मुधा न लभ्यन्ते इत्यादिवदिति।

४. वही, पत्र २४२

आ—अभिविधिना ह्रियते—प्रतीतौ नीयते अप्रतीतोऽर्थोऽनेनेत्याहरणं, यत्र समुदित एव दार्ष्टान्तिकोऽर्थ उपनीयते यथा पापं दुःखाय ब्रह्मदत्तस्येवेति।

५ वही, पत्र २४२

तस्य—आहरणार्थस्य देशस्तद्देशः स चासावुपचारादाहरणं चेति प्राकृतत्वादाहरणशब्दस्य पूर्वनिपाते आहरणतद्देश इति, भावार्थश्चात्र—यत्र दृष्टान्तार्थदेशेनैव दार्ष्टान्तिकार्थस्योपनयनं क्रियते तत्तद्देशोदाहरणमिति, यथा चन्द्र इव मुखमस्या इति, इह हि चन्द्रे सौम्यत्वलक्षणेनैव देशेन मुखस्योपनयनं नानिष्टेन नयन-नासावर्जितत्वकलङ्कादिनेति।

अमभ्य वचनात्मक उदाहरण को भी आहरणतद्दोष कहा जाता है। मैं असत्य का सर्वथा परिहार करता हूं, जैसे—गुरु के मस्तक को काटना। यह असभ्य वचनात्मक दृष्टान्त है।

अपने साध्य की सिद्धि करते हुए दूसरे दोष को प्रस्तुत करना भी आहरणतद्दोष है। जैसे—किसी ने कहा कि लौकिक मुनि भी सत्य धर्म की वाछा करते हैं, जैसे—

वर कूपशताद्वापी, वर वापीशतात्क्रतु ।
वर क्रतुशतात्पुत्र, सत्य पुत्रशताद्वरम् ॥

सौ कुओं से एक वापी श्रेष्ठ है। सौ वापियों से एक यज्ञ श्रेष्ठ है। सौ यज्ञों से एक पुत्र श्रेष्ठ है और सौ पुत्रों से सत्य श्रेष्ठ है।

इससे श्रोता के मन मे पुत्र, यज्ञ आदि ससार के कारणभूत तत्त्वों के प्रति धर्म की भावना पैदा होती है, यह भी दृष्टान्त का दोष है।[1]

उपन्यासोपनय—

वादी अपने अभिमत अर्थ की सिद्धि के लिए दृष्टान्त का उपन्यास करता है, जैसे—आत्मा अकर्ता है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश।

ऐसा करने पर प्रतिवादी इसका खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध दृष्टान्त का उपन्यास करता है, जैसे—आत्मा आकाश की भाति अकर्ता है तो यह भी कहा जा सकता है कि आत्मा अभोक्ता है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश। यह विरुद्धार्थक उपन्यास है।[2]

अपाय—

इसका अर्थ है—हेय-धर्म का ज्ञापक दृष्टान्त। वह चार प्रकार का होता है। द्रव्य अपाय, क्षेत्र अपाय, काल अपाय, भाव अपाय।

द्रव्य अपाय—

इसका अर्थ है—द्रव्य या द्रव्य से होने वाली अनिष्ट की प्राप्ति।

एक गाव मे दो भाई रहते थे। वे धन कमाने सौराष्ट्र देश मे गए। धनार्जन कर वे पुन अपने देश लौट रहे थे। दोनो के मन मे पाप समा गया। एक-दूसरे को मारने की भावना से कोई उपाय ढूढने लगे। यह भेद प्रगट होने पर उन्होंने धन से भरी नौली को एक नदी मे डाल दिया। एक मछली उसे निगल गई। वही मछली घर लाई गई। बहन ने उसका पेट चीरा। नौली देख उसका मन ललचा गया। मा ने देख लिया। दोनो मे कलह हुआ। लडकी ने मा के मर्म-स्थान पर प्रहार किया। वह मर गई। वह धन उसकी मृत्यु का कारण बना। यह द्रव्य-अपाय है।[3]

क्षेत्र अपाय—

क्षेत्र या क्षेत्र से होने वाला अपाय। दशार्ह हरिवश के राजा थे। कस ने मथुरा का विध्वस कर डाला। राजा जरासध का भय बढा, तब उस क्षेत्र को अपाय-बहुल जानकर दशार्ह वहा से द्वारवती चले गए।[4] यह क्षेत्र अपाय है।

काल अपाय—

काल या काल से होने वाला अपाय। कृष्ण के पूछने पर अरिष्टनेमि ने कहा कि द्वारवती नगरी का नाश

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २४२।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२ तथा वादिना अभिमतार्थसाधनाय कृते वस्तूपन्यासे तद्विघटनाय य प्रतिवादिना विरुद्धार्थोपनय क्रियते यथानुयोगोपन्यासे वा य उत्तरोपनय स उपन्यासोपनय।

३ देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ३५,३६।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४३।

बारह वर्षों मे द्वैपायन ऋषि द्वारा होगा। ऋषि ने जब यह सुना तब वे इसको टालने के लिए बारह वर्षों तक द्वारवती को छोड अन्यत्र चले गए।[1] यह काल का अपाय है।

भाव अपाय—

भाव से होने वाली अनिष्ट की प्राप्ति। देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ३७-३९।

उपाय—

इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न-विशेष का निर्देश करने वाला दृष्टान्त। यह चार प्रकार का होता है। द्रव्य उपाय, क्षेत्र उपाय, काल उपाय, भाव उपाय।

द्रव्य उपाय—

किसी उपाय-विशेष से ही स्वर्ण आदि धातु प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधि बताने वाला धातुवाद आदि।[2]

क्षेत्र उपाय—

क्षेत्र का परिकर्म करने का उपाय। हल आदि साधन क्षेत्र को तैयार करने के उपाय हैं।[3] नौका आदि समुद्र को पार करने का उपाय है।[4]

काल उपाय—

काल का ज्ञान करने का उपाय। घटिका, छाया आदि के द्वारा काल-ज्ञान करना।[5]

भाव-उपाय—

मानसिक भावों को जानने का उपाय।[6] देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ४०-४२।

स्थापना कर्म—

१ जिस दृष्टान्त से परमत के दूषणों का निर्देश कर स्वमत की स्थापना की जाती है, वह स्थापना कर्म कहलाता है। जैसे—सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कंध का पुंडरीक नाम का पहला अध्ययन।

२ अथवा प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दोषों का निराकरण कर अपने मत की स्थापना करना। जैसे—एक मालाकार अपने फूल बेचने के लिए बाजार मे चला जा रहा था। उसे टट्टी जाने की बाधा हुई। वह राजमार्ग पर ही बैठकर अपनी बाधा से निवृत्त हुआ। कहीं अपवाद न हो, इसलिए उसने उस मल पर फूल डाल दिए और लोगों के पूछने पर कहा कि यहां 'हिंगुशीव' नाम का देव उत्पन्न हुआ है। लोगों ने भी वहां फूल चढाए। वहां एक मन्दिर बन गया। इस दृष्टान्त मे मालाकार ने प्राप्त दूषण का निराकरण कर अपने मत की स्थापना कर दी।

३ वाद काल मे सहसा व्यभिचारी हेतु को प्रस्तुत कर, उसके समर्थन मे जो दृष्टान्त दिया जाता है, उसे स्थापना कर्म कहते हैं।

प्रत्युत्पन्नविनाशी—

तत्काल उत्पन्न किसी दोष के निराकरण के लिए किया जाने वाला दृष्टान्त।

एक गांव मे एक वणिक् परिवार रहता था। उसके अनेक पुत्रियां और पुत्र-वधुएं थीं। एक बार नृत्यमंडली उस घर के पास ठहरी। घर की नारियां उन गंधर्वों मे आसक्त हो गईं। बनिए ने यह जाना। उसने उपाय से उन गन्धर्वों के नृत्य मे विघ्न उपस्थित करना प्रारम्भ किया। उन्होंने राजा से शिकायत की। राजा ने बनिए को बुलाया। बनिया बोला—मैं तो अपना काम करता हूं, प्रतिदिन इस समय पूजा करता हूं। तब राजा ने उन गन्धर्वों

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४३।
२ वही, पत्र २४३।
३ वही, पत्र २४३।
४ दशवैकालिक, जिनदास चूर्णि, पृष्ठ ४४।
५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४३।
६ वही, पत्र २४३।

को अन्यत्र जाने का आदेश दे दिया। पूरे विवरण के लिए देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीया वृत्ति, पत्र ४५।

आहरणतद्देश चार प्रकार का होता है—

१ अनुशिष्टि—

सद्गुणो के कथन से किसी वस्तु को पुष्ट करना। 'वह करो'—इस प्रकार जहा कहा जाता है, उसे अनुशिष्टि कहते हैं। जैसे—सुभद्रा ने अपने आरोप को निर्मूल करने के लिए चालनी से पानी खीचकर चम्पा नगरी के नगर द्वारो को खोला, तब वहा के महाजनों ने 'यह शीलवती है' ऐसा अनुशासन-कथन किया था।

२ उपलम्भ—

अपराध करने वाले शिष्यो को उपालम्भ देना। जैसे—विकाल वेला मे स्थान पर आने से आर्या चन्दना ने साध्वी मृगावती को उपालम्भ दिया था।

३ पृच्छा—

जिसमे क्या, कैसे, किसने आदि प्रश्नो का समावेश हो, वह दृष्टान्त। जिस प्रकार कोणिक ने भ० महावीर से प्रश्न किए थे।

कोणिक श्रेणिक का पुत्र था। एक बार उसने भगवान् महावीर से पूछा—भते! चक्रवर्ती मरकर कहा जाते हैं? भगवान् ने कहा—सातवी नरक मे। उसने पूछा—मैं कहा जाऊगा? भगवान् ने कहा—छठी नरक मे उसने फिर पूछा—भते! मैं सातवी नरक मे क्यो नही जाऊगा? भगवान् ने कहा—चक्रवर्ती सातवी नरक मे जाते है। उसने कहा—क्या मैं चक्रवर्ती नही हू? मेरे पास भी चक्रवर्ती की भाति हाथी-घोडे आदि हैं। भगवान् बोले—तेरे पर रत्ननिधि नही है। यह सुनकर कोणिक कृत्रिम रत्न तैयार करवा कर भरत क्षेत्र को जीतने चला। वैताढ्य के गुफाद्वार पर कृतमालिक यक्ष ने उसे मार डाला। वह छठी नरक मे गया।

यह 'पृच्छा ज्ञात' का उदाहरण है।

४ निश्रावचन—

किसी के माध्यम से दूसरे को प्रबोध देना। भगवान् महावीर ने गौतम के माध्यम से दूसरे अनेक शिष्यों को प्रबोध दिया है। उत्तराध्ययन का 'द्रुमपत्रक' अध्ययन इसका उदाहरण है—

आहरणतद्दोष के चार प्रकार हैं—

१ अधर्मयुक्त—

जो दृष्टान्त सुनने वाले के मन मे अधर्म-बुद्धि पैदा करता है। किसी के पुत्र को मकोडे ने काट खाया। उसके पिता ने सारे मकोडो के बिलो मे गर्म जल डलवा कर उनका नाश कर दिया। चाणक्य ने यह सुना। उसके मन मे अधर्म-बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने भी उपाय से सभी चोरो को विष देकर मरवा डाला।

२ प्रतिलोम—

प्रतिकूलता का बोध देने वाला दृष्टान्त। इस प्रकार के दृष्टान्त का दूषण यह है कि वह श्रोता मे दूसरो का अपकार करने की बुद्धि उत्पन्न करता है।

३ आत्मोपनीत—

जो दृष्टान्त परमत को दूषित करने के लिए दिया जाता है, किन्तु वह अपने इष्ट मत को ही दूषित कर देता है, जैसे—एक बार एक राजा ने पिंगल नाम के शिल्पी से तालाब के टूटने का कारण पूछा। उसने कहा—राजन्! जहा तालाब टूटा है वहां यदि अमुक-अमुक गुण वाले पुरुष को जीवित गाडा जाए, तो फिर यह तालाब कभी नही टूटेगा। राजा ने अमात्य से ऐसे पुरुष को ढूढने की आज्ञा दी। अमात्य ने कहा—राजन्! यह पिंगल उक्त गुणो से युक्त है। राजा ने उसी पिंगल को वहा जीवित गडवा दिया। पिंगल ने जो बात कही, वह उसी पर लागू हो गई।

४. दुरुपनीत—

जिस दृष्टान्त का उपसंहार (निगमन) दोष पूर्ण हो अथवा वैसा दृष्टान्त जो साध्य के लिए अनुपयोगी और स्वमत दूषित करने वाला हो, जैसे—

एक परिव्राजक जाल लेकर मछलियां पकड़ने जा रहा था। रास्ते में एक धूर्त मिला। उसने कुछ पूछा और परिव्राजक ने असंगत उत्तर देकर अपने-आप को दूषित व्यक्ति प्रमाणित कर दिया।

एक व्यक्ति ने परिव्राजक के कन्धे पर रखे हुए जाल को देखकर पूछा—महाराज! आपकी कथा छिद्र-वाली क्यों है?

परिव्राजक—यह मछली पकड़ने का जाल है।

व्यक्ति—तुम मछलियां खाते हो?

परि०—मैं मदिरा के साथ मछलियां खाता हूं।

व्यक्ति—तुम मदिरा पीते हो?

परि०—अकेला नहीं पीता, वेश्या के साथ पीता हूं।

व्यक्ति—तुम वेश्या के पास भी जाते हो? तुम धन कहां से लाते हो?

परि०—शत्रुओं के गलहत्या देकर।

व्यक्ति—तुम्हारे शत्रु कौन हैं?

परि०—जिनके घर में सेंध लगाता हूं।

व्यक्ति—तुम चोरी भी करते हो?

परि०—हां, जुआ खेलने के लिए धन चाहिए।

व्यक्ति—अरे, तुम जुआरी भी हो?

परि०—हां, क्यों नहीं। मैं दासी का पुत्र हूं, इसलिए जुआ खेलता हूं।

व्यक्ति ने सामान्य बात पूछी। किन्तु परिव्राजक उसको संक्षिप्त उत्तर न दे सका। अतः अन्त में उसकी पोपलीला खुल गई।

तद्वस्तुक—

किसी ने कहा—समुद्र तट पर एक बड़ा वृक्ष है। उसकी शाखाएं जल और स्थल दोनों पर हैं। उसके जो पत्ते जल में गिरते हैं वे जलचर जीव हो जाते हैं और जो स्थल में गिरते हैं वे स्थलचर जीव हो जाते हैं।

यह सुन दूसरे आदमी ने उसकी बात का विघटन करते हुए कहा—जो जल और स्थल के बीच में गिरते है, उनका क्या होता है?

प्रथम व्यक्ति के द्वारा उपन्यस्त वस्तु को पकड़कर उसका विघटन करना तद्वस्तुक नाम का उपन्यासोपनय होता है। इसे दृष्टान्त के आकार में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—जल और स्थल में पतित पत्र जलचर और स्थलचर जीव नहीं होते, जैसे—जल और स्थल के बीच में पतित पत्र। यदि जल और स्थल में पतित पत्र जलचर और स्थलचर जीव होते हों तो उनके बीच में पतित पत्र जलचर और स्थलचर का मिश्रित रूप होना चाहिए। ऐसा होता नहीं है, इसलिए यह बात मिथ्या है।

इसका दूसरा उदाहरण यह हो सकता है—जीव नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश। वादी द्वारा इस स्थापना के पश्चात् प्रतिवादी इसका निरसन करता है—जीव अनित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—कर्म।

तदन्यवस्तुक—

इसमें वस्तु का परिवर्तन कर वादी के मत का विघटन किया जाता है। जल में पतित पत्र जलचर और स्थल में पतित पत्र स्थलचर हो जाते हैं। ऐसा कहने पर दूसरा व्यक्ति कहता है—गिरे हुए पत्र ही जलचर और स्थलचर

बनते हैं। कोई आदमी उन्हें गिराकर खाए तो या ले जाए उनका क्या होगा ? क्या वे मनुष्य शरीर के आश्रित जीव बनेंगे ? ऐसा नहीं होता, इसलिए वह भी नहीं होता।

प्रतिनिभ—

एक व्यक्ति ने यह घोषणा की कि जो व्यक्ति मुझे अपूर्व बात सुनाएगा, उसे मैं लाख रुपए के मूल्य का कटोरा दूंगा। इस घोषणा से प्रेरित हो बहुत लोग आए और उन्होंने नई-नई बातें सुनाई। उसकी धारणा-शक्ति प्रबल थी। वह जो भी सुनता उसे धारण कर लेता। फिर सुनाने वालों से कहता—यह अपूर्व नहीं है। इसे मैं पहले से ही जानता हूं। इस प्रकार वह आने वालों को निराश लौटा देता। एक सिद्ध पुत्र आया। उसने कहा—

तुज्झ पिया मज्झ पिउणो, धारेइ अणूणय सयसहस्सं।
जइ सुय पुव्व दिज्जउ, अह न सुय खोरय देहि ॥१॥

तेरा पिता मेरे पिता के लाख रुपये धारण कर रहा है। यदि यह श्रुत पूर्व है तो वे लाख रुपए लौटाओ और यदि यह श्रुत पूर्व नहीं है तो लक्ष मूल्य का कटोरा दो।

यह प्रतिच्छलात्मक आहरण है।

हेतु—

किसी ने पूछा—तुम किस लिए प्रव्रज्या का पालन कर रहे हो ? मुनि ने कहा—उसके बिना मोक्ष नहीं होता, इसलिए कर रहा हूं।

मुनि ने पूछा—तुम अनाज किस लिए खरीद रहे हो ? वह बोला—खरीदे बिना वह मिलता नहीं।

मुनि बोले—खरीदे बिना अनाज नहीं मिलता इसलिए तुम खरीद रहे हो। इसी प्रकार प्रव्रज्या के बिना मोक्ष नहीं मिलता, इसलिए मैं प्रव्रज्या का पालन कर रहा हूं।[1]

यापक—

इसमें वादी समय का यापन करता है। वृत्तिकार ने यहां एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—

एक स्त्री अपने पति से सन्तुष्ट नहीं थी। वह किसी जार पुरुष के साथ प्रेम करती थी। घर में पति रहने से उसके काम में वह बाधक-स्वरूप था। उसने एक उपाय सोचा। पति को उष्ट्र का लिंड (मल, मींगणा) देकर कहा—प्रत्येक मींगणा एक-एक रुपए में बेचना। इससे कम किसी को मत बेचना। ऐसी शिक्षा दे उसको उज्जयिनी भेज दिया। पीछे से निर्भय होकर जार के साथ भोग करती रही। समय को बिताने के लिए पति को दूर स्थान पर भेज दिया। ऊंट का लिंड एक रुपए में कौन लेता, इसलिए पूरे लिंड बेचने में उसे काफी समय लग गया। इस प्रकार उसने कालयापना की।

हेतु के पीछे बहुत विशेषण लगाने से प्रतिवादी वाच्य को जल्दी नहीं समझ पाता। यथा, वायु सचेतन होती है, दूसरे की प्रेरणा से तिर्यग् और अनियत चलती है, गतिमान होने से, जैसे—गाय का शरीर। यहां प्रतिवादी जल्दी से अनेकान्तिक आदि दोष बताने में समर्थ नहीं होता। अथवा अप्रतीत व्याप्ति के द्वारा व्याप्ति-साधक अन्य प्रमाणों से शीघ्रता से साध्य की प्रतीति नहीं कर सकता। अपितु साध्य की प्रतीति में कालक्षेप होता है, जैसे—बौद्धों की मान्यता के अनुसार वस्तु क्षणिक है, सत्त्व होने के कारण। सत्त्व हेतु सुनते ही प्रतिवादी को क्षणिकत्व का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि सत्त्व अर्थ-क्रियाकारी होता है। यदि सत्त्व अर्थ-क्रियाकारी न माना जाए तो वन्ध्या का पुत्र भी सत्त्व कहलाएगा। नित्य वस्तु एक रूप होती है, उसमें अर्थ-क्रिया न तो क्रम से होती है और न एक साथ होती है। इसलिए क्षण से भिन्न वस्तु में अर्थ क्रिया कारित्व नहीं होता। इस प्रकार क्षणिक ही अर्थ-क्रियाकारी होता है। यह जो सत्त्व लक्षण वाला हेतु है, वह साध्य की सिद्धि में काल का यापन करता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४७।

स्थापक—

साध्य को शीघ्र स्थापित करने वाला हेतु। वृत्तिकार ने इसके समर्थन मे एक लोक के मध्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है—एक धूर्त परिव्राजक लोगो मे कहता कि लोक के मध्य भाग मे देने से अधिक फल होता है, और लोक का मध्य मैं ही जानता हू। गाव-गाव मे जाता और हर गाव मे लोक का मध्य स्थापित कर लोगो को ठगता। इस प्रकार माया से अपना काम बनाता। एक गाव मे एक श्रावक ने पूछा—लोक का मध्य एक ही होता है, गाव-गाव मे नही होता। इस प्रकार उसकी असत्यता को पकड लिया और कहा—तुम्हारे द्वारा बताया गया लोक का मध्य मध्य नही है। यहा अग्नि है, धुआं होने के कारण इस धूम हेतु से साध्य अग्नि का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। दूसरा पक्ष—वस्तु नित्यानित्य है द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से। उसी प्रकार प्रतीत द्रव्य की अपेक्षा से नित्य और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है।

व्यंसक—

जो हेतु दूसरे को व्यामूढ बना देता है, उसे व्यंसक कहा जाता है।

एक व्यक्ति अनाज से भरी गाडी लेकर नगर मे प्रवेश कर रहा था। रास्ते मे उसे एक मरी हुई तित्तरी मिली। उसने उसे गाडी पर रख दिया। नगर मे एक धूर्त मिला। उसने गाडीवान से पूछा—'शकट-तित्तरी कितने मे दोगे ? गाडीवान् ने सोचा कि यह गाडी पर रखी हुई तित्तरी का मोल पूछ रहा है। उसने कहा—तर्पणालोडित सत्तुओं के मोल पर इसे दूगा।' उस धूर्त ने दो-चार व्यक्तियो को साक्षी रखा और सत्तुओ के मोल पर तित्तरी सहित गाडी लेकर चलने लगा। गाडीवान ने प्रतिषेध किया। धूर्त ने कहा—इसने शकट-तित्तरी बेची है। अत. गाडी सहित तित्तरी मेरी होती है। गाडीवान विषण्ण हो गया।' यहा 'शकट-तित्तरी' यह व्यंसक दूसरो को भ्रम में डालने वाला हेतु है।

लूषक—

व्यंसक हेतु के द्वारा आपादित दूषण का उसी प्रकार के हेतु से निराकरण करना।

शाकटिक ने धूर्त से कहा—मुझे तर्पणालोडित सत्तू दो। वह धूर्त उसे घर ले गया और अपनी भार्या से कहा—इसे सत्तू आलोडित कर दो। वह वैसा करने लगी। तब शाकटिक उस स्त्री का हाथ पकडकर उसे ले जाने लगा। धूर्त ने प्रतिरोध किया। शाकटिक ने कहा—मैंने शकट-तित्तरी तर्पणालोडित सत्तुओ के मोल बेची थी। मैं उसे ही ले जा रहा हू। तू ने ही ऐसा कहा था। धूर्त अवाक् रह गया। शाकटिक द्वारा दिया गया हेतु लूषक था। इस हेतु ने उसे धूर्त के हेतु को नष्ट कर दिया।

११२ (सू० ५०४)

प्रस्तुत सूत्र मे हेतु शब्द का दो अर्थो मे प्रयोग किया गया है—

१ प्रमाण

२ अनुमानाग—जिसके बिना साध्य की सिद्धि निश्चित रूप से न हो सके, वैसा साधन[1]। यह अनुमान-प्रमाण का एक अग है।

प्रस्तुत सूत्र के तीन अनुच्छेद हैं। तीसरे अनुच्छेद मे अनुमानाग हेतु प्रतिपादित है। प्रथम अनुच्छेद मे वाद-काल मे प्रयुक्त किए जाने वाले हेतु का वर्गीकरण है। द्वितीय अनुच्छेद मे प्रमाण का निरूपण है। ज्ञेय के बोध मे ज्ञान ही साधकतम होता है। उसी का नाम प्रमाण है।[2] ज्ञान साधकतम होता है, इसीलिए उसे हेतु (साधन-वचन) कहा गया है।

आगम-साहित्य मे प्रमाण के दो वर्गीकरण प्राप्त होते हैं—एक नदी का और दूसरा अनुयोगद्वार का। नदी का

---

१ प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, ३।११

निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतु।

२ प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, १।२-४।

वर्गीकरण दूसरे स्थान मे सगृहीत है ।[1] अनुयोगद्वार का वर्गीकरण यहा सगृहीत है। प्रथम वर्गीकरण जैन परम्परानुसारी है और इस वर्गीकरण पर न्यायदर्शन का प्रभाव है ।[2]

हेतु दो प्रकार के होते हैं—उपलब्धिहेतु (अस्तिहेतु) और अनुपलब्धिहेतु (नास्तिहेतु) । ये दोनों दो-दो प्रकार के होते हैं।

१ विधिसाधक उपलब्धिहेतु ।

२ निषेधसाधक उपलब्धिहेतु ।

१ निषेधसाधक अनुपलब्धिहेतु ।

२ विधिसाधक अनुपलब्धिहेतु ।

प्रमाणनयतत्त्वालोक के अनुसार इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१ विधिसाधक उपलब्धिहेतु—विधिसाधक विधि हेतु—

साध्य से अविरुद्ध रूप मे उपलब्ध होने के कारण जो हेतु साध्य की सत्ता को सिद्ध करता है, वह अविरुद्धोपलब्धि कहलाता है।

अविरुद्ध उपलब्धि के छह प्रकार हैं—

१ अविरुद्ध-व्याप्य-उपलब्धि—

साध्य—शब्द परिणामी है।

हेतु—क्योंकि वह प्रयत्न-जन्य है। यहा प्रयत्न-जन्यत्व व्याप्य है। वह परिणामित्व से अविरुद्ध है। इसलिए प्रयत्न-जन्यत्व से शब्द का परिणामित्व सिद्ध होता है।

२ अविरुद्ध-कार्य उपलब्धि—

साध्य—इस पर्वत पर अग्नि है।

हेतु—क्योंकि धुआ है।

धुआ अग्नि का कार्य है। वह अग्नि से अविरुद्ध है। इसलिए धूम-कार्य से पर्वत पर ही अग्नि की सिद्धि होती है।

३ अविरुद्ध-कारण-उपलब्धि—

साध्य—वर्षा होगी।

हेतु—क्योंकि विशिष्ट प्रकार के बादल मडरा रहे है।

बादलो की विशिष्ट-प्रकारता वर्षा का कारण है और उसका विरोधी नही है।

४ अविरुद्ध-पूर्वचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के बाद तिष्य नक्षत्र का उदय होगा ।

हेतु—क्योकि पुनर्वसु का उदय हो चुका है।

'पुनर्वसु का उदय' यह हेतु 'तिष्योदय' साध्य का पूर्वचर है और उसका विरोधी नहीं है।

५ अविरुद्ध-उत्तरचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त पहले पूर्वा-फाल्गुनी का उदय हुआ था।

हेतु—क्योंकि उत्तर-फाल्गुनी का उदय हो चुका है।

उत्तर-फाल्गुनी का उदय पूर्वा-फाल्गुनी के उदय का निश्चित उत्तरवर्ती है।

६ अविरुद्ध-सहचर-उपलब्धि—

साध्य—इस आम मे रूप-विशेष है।

हेतु—क्योंकि रस-विशेष आस्वाद्यमान है।

यहा रस (हेतु) रूप (साध्य) का नित्य सहचारी है।

२ निषेध-साधक उपलब्धि-हेतु—निषेधसाधक विधिहेतु—

1 देखें—२।८६ का टिप्पण।

2 न्यायदर्शन, १।१।३ प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दा प्रमाणानि

साध्य से विरुद्ध होने के कारण जो हेतु उसके अभाव को सिद्ध करता है, वह विरुद्धोपलब्धि कहलाता है।

विरुद्धोपलब्धि के सात प्रकार हैं—

१ स्वभाव-विरुद्ध-उपलब्धि—

साध्य—सर्वथा एकान्त नहीं है।

हेतु—क्योंकि अनेकान्त उपलब्ध हो रहा है।

अनेकान्त—एकान्त स्वभाव के विरुद्ध है।

२ विरुद्ध-व्याप्य-उपलब्धि—

साध्य—इस पुरुष का तत्त्व मे निश्चय नही है।

हेतु—क्योकि सदेह है।

'सदेह है' यह 'निश्चय नही है' इसका व्याप्य है, इसलिए सन्देह-दशा मे निश्चय का अभाव होगा। ये दोनो विरोधी है।

३ विरुद्ध-कार्य-उपलब्धि—

साध्य—इस पुरुष का क्रोध शान्त नहीं हुआ है।

हेतु—क्योकि मुख-विकार हो रहा है।

मुख-विकार क्रोध की विरोधी वस्तु का कार्य है।

४ विरुद्ध-कारण-उपलब्धि—

साध्य—यह महर्षि असत्य नही बोलता।

हेतु—क्योकि इसका ज्ञान राग-द्वेष की कलुपता से रहित है।

यहा असत्य-वचन का विरोधी सत्य-वचन है और उसका कारण राग-द्वेप रहित ज्ञान-सम्पन्न होना है।

५ अविरुद्ध-पूर्वचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के पश्चात् पुष्य नक्षत्र का उदय नही होगा।

हेतु—क्योकि अभी रोहिणी का उदय है।

यहा प्रतिषेध्य पुष्य नक्षत्र के उदय मे विरुद्ध पूर्वचर रोहिणी नक्षत्र के उदय की उपलब्धि है। रोहिणी के पश्चात् मृगशीर्ष, आर्द्रा और पुनर्वसु का उदय होता है। फिर पुष्य का उदय होता है।

६ विरुद्ध-उत्तरचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के पहले मृगशिरा का उदय नही हुआ था।

हेतु—क्योकि अभी पूर्वा-फाल्गुनी का उदय है।

यहा मृगशीर्ष का उदय प्रतिषेध्य है। पूर्वा-फाल्गुनी का उदय उसका विरोधी है। मृगशिरा के पश्चात् क्रमश आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा और पूर्वा-फाल्गुनी का उदय होता है।

७ विरुद्ध-सहचर-उपलब्धि—

साध्य—इसे मिथ्या ज्ञान नही है।

हेतु—क्योकि सम्यग्दर्शन है।

मिथ्या ज्ञान और सम्यग्दर्शन एक साथ नही रह सकते।

१ निषेध-साधक-अनुपलब्धि-हेतु—निषेध-साधक निषेधहेतु—

प्रतिषेध्य से अविरुद्ध होने के कारण जो हेतु उसका प्रतिषेध्य सिद्ध करता है, वह अविरुद्धानुपलब्धि कहलाता है। अविरुद्धानुपलब्धि के सात प्रकार हैं—

१ अविरुद्ध-स्वभाव-अनुपलब्धि—

साध्य—यहा घट नही है।

हेतु—क्योकि उसका दृश्य स्वभाव उपलब्ध नही हो रहा है।

चक्षु का विषय होना घट का स्वभाव है। यहा इस अविरुद्ध स्वभाव से ही प्रतिषेध्य का प्रतिषेध है।

२ अविरुद्ध-व्यापक-अनुपलब्धि—

साध्य—यहा पनस नही है।

हेतु—क्योकि वृक्ष नही है।

वृक्ष व्यापक है, पनस व्याप्य। यह व्यापक की अनुपलब्धि मे व्याप्य का प्रतिषेध है।

३ अविरुद्ध-कार्य-अनुपलब्धि—

साध्य—यहा अप्रतिहत शक्ति वाले बीज नही हैं।

हेतु—क्योकि अकुर नही दीख रहे हैं।

यह अविरोधी कार्य की अनुपलब्धि के कारण का प्रतिषेध है।

४ अविरुद्ध-कारण-अनुपलब्धि—

साध्य—इस व्यक्ति मे प्रशमभाव नहीं है।

हेतु—क्योकि इसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही हुआ है।

प्रशमभाव—सम्यग्दर्शन का कार्य है। यह कारण के अभाव मे कार्य का प्रतिषेध है।

५ अविरुद्ध-पूर्वचर-अनुपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के पश्चात् स्वाति का उदय नहीं होगा।

हेतु—क्योकि अभी चित्रा का उदय नही है।

यह चित्रा के पूर्ववर्ती उदय के अभाव द्वारा स्वाति के उत्तरवर्ती उदय का प्रतिषेध है।

६ अविरुद्ध-उत्तरचर-अनुपलब्धि—

साध्य—एक मुहुर्त्त पहले पूर्वभाद्रपदा का उदय नही हुआ था।

हेतु—क्योकि उत्तरभाद्रपदा का उदय नहीं है।

यह उत्तरभाद्रपदा के उत्तरवर्ती उदय के अभाव के द्वारा पूर्वभाद्रपदा के पूर्ववर्ती उदय का प्रतिषेध है।

७ अविरुद्ध-सहचर-अनुपलब्धि—

साध्य—इसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं है।

हेतु—क्योकि सम्यग्दर्शन नहीं है।

सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनो नियत सहचारी हैं। इसलिए यह एक के अभाव मे दूसरे का प्रतिषेध है।

२ विधि-साधक अनुपलब्धि-हेतु—विधि-साधक निषेध हेतु—

साध्य के विरुद्ध रूप की उपलब्धि न होने के कारण जो हेतु उसकी सत्ता को सिद्ध करता है, वह विरुद्धानुपलब्धि कहलाता है। विरुद्धानुपलब्धि हेतु के पाच प्रकार हैं—

१ विरुद्ध-कार्य-अनुपलब्धि—

साध्य—इसके शरीर मे रोग है।

हेतु—क्योकि स्वस्थ प्रवृत्तिया नहीं मिल रही हैं। स्वस्थ प्रवृत्तियो का भाव रोग-विरोधी कार्य है। उसकी यहा अनुपलब्धि है।

२ विरुद्ध-कारण-अनुपलब्धि—

साध्य—यह मनुष्य कष्ट मे फसा हुआ है।

हेतु—क्योंकि इसे इष्ट का सयोग नहीं मिल रहा है। कष्ट के भाव का विरोधी कारण इष्ट सयोग है, वह यहा अनुपलब्ध है।

३ विरुद्ध-स्वभाव-अनुपलब्धि—

साध्य—वस्तु समूह अनेकान्तात्मक है।

हेतु—क्योकि एकान्त स्वभाव ही अनुपलब्धि है।

४ विरुद्ध-व्यापक-अनुपलब्धि—

साध्य—यहा छाया है।

हेतु—क्योकि उष्णता नही है।

५ विरुद्ध-सहचर-अनुपलब्धि—

साध्य—इसे मिथ्या ज्ञान प्राप्त है।

हेतु—क्योकि इसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही है।

११३ (सू० ५११) :

प्रस्तुत सूत्र मे तिर्यञ्चजाति के आहार के प्रकार निर्दिष्ट हैं। उसका जो आहार सुखभक्ष्य सुखपरिणाम वाला होता है, उसे कक के आहार की उपमा से समझाया गया है। कक नाम का पक्षी दुर्जर आहार को भी सुख से खाता है और वह उसके सुख से पच जाता है।[1] उसका जो आहार तत्काल निगल जाने वाला होता है, उसे विल मे प्रविष्ट होती हुई वस्तु की उपमा के द्वारा समझाया गया है।[2]

११४ (सू० ५१४)

आशी का अर्थ दाढ (दष्ट्रा) है। जिसकी दाढ मे विष होता है, वह आशीविष कहलाता है। वह दो प्रकार का होता है[3]—

१ कर्म-आशीविष (कर्म से आशीविष)

२ जाति-आशीविष (जाति से आशीविष)।

प्रस्तुत सूत्र मे जातीय आशीविष के प्रकार और उनकी क्षमता का निरूपण है।

११५ प्रविभावक (सू० ५२७) :

वृत्तिकार ने इसके दो संस्कृत रूप दिए है—प्रविभावयिता और प्रविभाजयिता। इसके अनुसार प्रस्तुत सूत्र के दो अर्थ फलित होते हैं—

१ कुछ पुरुष आख्यायक (प्रज्ञापक) होते हैं, किन्तु उदार क्रिया और प्रतिमा आदि गुणो से रहित होने के कारण धर्मशासन के प्रविभावयिता (प्रविभावक) नही होते।

२ कुछ पुरुष सूत्र-पाठ के आख्यायक होते हैं, किन्तु अर्थ के प्रविभाजयिता (विवेचक) नही होते।[4]

प्रविभावक का अर्थ हिंसा से विरमण या आचरण भी हो सकता है। इस अर्थ के आधार पर प्रस्तुत सूत्र का अर्थ इस प्रकार होगा—

१ कुछ पुरुष वक्ता होते है, किन्तु आचारवान् नही होते।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ कङ्क—पक्षिविशेष तस्याहारेणोपमा यत्र स मध्यपदलोपात् कङ्कोपम, अयमर्थो—यथा हि कङ्कस्य दुर्जरोऽपि स्वरूपेणाहार सुखभक्ष्य सुखपरिणामश्च भवति एव यस्तिरश्चां सुभक्ष सुखपरिणामश्च स कङ्कोपम इति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ बिले प्रविशद्द्रव्य बिलमेव तेनोपमा यत्र स तथा, बिले हि अलब्धरसास्वाद झगिति यथा किम्चित् प्रविशति एव यस्तेषां गलबिले प्रविशति स तथोच्यते।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ आस्यो—दष्ट्रास्तासु विष येषां ते आशीविषा, ते च कर्मतो जातितश्च, तत्र कर्मतस्तिर्यङ्मनुष्या कुतोऽपि गुणादाशीविषा स्यु, देवाश्चासहस्राराच्छापादिना परव्यापादनादिति, उक्तञ्च—

आसी दाढा तग्गयमहाविसाऽऽसीविसा दुविह भेया।
ते कम्मजाइभेएण, णेगहा चउव्विहविगप्पा॥

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५४।

२ कुछ पुरुष आचारवान् होते है, किन्तु वक्ता नहीं होते ।

३ कुछ पुरुष वक्ता भी होते हैं, और आचारवान् भी होते हैं।

४ कुछ पुरुष न वक्ता होने है और न आचारवान् ही होने हैं।

११६ (सू० ५३०)

इस वर्गीकरण मे भगवान् महावीर के समसामयिक सभी धार्मिक मतवादो का समावेश होता है। वृत्तिकार ने क्रियावादियो को आस्तिक और अक्रियावादियों को नास्तिक कहा है।[1] किन्तु यह ऐकान्तिक निरूपण नहीं है। अक्रियावादी भी आस्तिक होते हैं। विशेष जानकारी के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि १८।२३ का टिप्पण।

प्रस्तुत आलापक मे नरक और स्वर्ग मे भी चार वादि-समवसरणो का अस्तित्व प्रतिपादित किया है, यह उल्लेखनीय बात है।

११७ (सू० ५४१)

करण्डक—वस्त्र, आभरण आदि रखने का एक भाजन। यह वश-शलाका को गूथकर बनाया जाता है। इसके मुख की ऊचाई कम और चौडाई अधिक होती है। प्रस्तुत सूत्र मे करण्डक की उपमा के द्वारा आचार्य के विभिन्न कोटियो का प्रतिपादन किया गया है।

श्वपाक-करण्डक में चमडे का काम करने के उपकरण रहते हैं, इसलिए वह असार (सार-रहित) होता है।

वेश्या-करण्डक—लाक्षायुक्त स्वर्णाभरणो से भरा होता है, इसलिए वह श्वपाक-करण्डक की अपेक्षा सार होता है।

गृहपति-करण्डक—विशिष्ट मणि और स्वर्णाभरणो से भरा होने के कारण वेश्या-करण्डक की अपेक्षा सारतर होता है।

राज-करण्डक—अमूल्य रत्नो से भृत होने के कारण गृहपति-करण्डक की अपेक्षा सारतम होता है।

इसी प्रकार कुछ आचार्य श्रुत-विकल और आचार-विकल होते हैं, वे श्वपाक-करण्डक के समान असार (सार रहित) होते हैं।

कुछ आचार्य अल्पश्रुत होने पर भी वाणी के आडम्बर से मुग्धजनो को प्रभावित करने वाले होते हैं, उनकी तुलना वेश्या-करण्डक से की गई है।

कुछ आचार्य स्व-समय और पर-समय के ज्ञाता और आचार-सम्पन्न होते हैं, उनकी तुलना गृहपति-करण्डक से की गई है।

कुछ आचार्य सर्वगुण सम्पन्न होते हैं, वे राज-करण्डक के समान सारतम होते हैं।[2]

११८ (सू० ५४५)

मोम का गोला मृदु, लाख का गोला कठिन, काष्ठ का गोला कठिनतर और मिट्टी का गोला कठिनतम होता है। इसी प्रकार सत्त्व की तरतमता के कारण कष्ट सहने मे कुछ पुरुष मृदु कुछ पुरुष दृढ, कुछ पुरुष दृढतर और कुछ पुरुष दृढतम होते है।[3]

आचार्य भिक्षु ने इस दृष्टात को बडे रोचक ढग से विकसित किया है—

चार व्यक्ति साधु के पास गए। उनका उपदेश सुन वे धर्म से अनुरक्त हो गए और मन वैराग्य से भर गया। जब वे बाहर आए तो कुछ लोग उनकी आलोचना करने लगे कि तुम व्यर्थ ही भीतर जाकर बैठ गए, केवल समय ही गवाया।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५४।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र २५८।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र २५९।

जैसे—मोम का गोला सूर्य के ताप से पिघल जाता है, वैसे ही उन चारो मे से एक व्यक्ति ऐसी आलोचना सुन धर्म से विरक्त हो गया।

शेष तीन व्यक्ति आलोचना करने वालो को उत्तर देकर अपने-अपने घर चले गए। घर मे माता-पिता के सम्मुख धर्म की चर्चा की तो उन्होंने कठोर शब्दो मे अपने पुत्रो को उपालम्भ दिया और कहा—अपनी-अपनी स्त्री को लेकर हमारे घर से चले जाओ! तीनो मे से एक घबरा गया। अपनी माता से कहा—तू मेरे जन्म की दाता है, तुझे छोड मैं साधुओ के पास नही जाऊगा। सूर्य के ताप से न पिघलने वाला लाख का गोला अग्नि के ताप से पिघल गया।

शेष दो व्यक्ति अपने माता-पिता के पास दृढ रहे, घबराए नही। फिर दोनो अपनी-अपनी पत्नी के पास गए। पत्नी उनकी बात सुन बौखला उठी। डराते हुए पति को कहा—लो, सभालो अपने बच्चे और यह लो अपना घर। मैं तो कुए मे गिरकर मर जाऊगी। मुझ से ये बच्चे नही सभाले जाते। पत्नी के ये शब्द सुन दो मे से एक घबरा गया और सोचा—अगर यह मर जाएगी तो सगे-सबधियो मे अच्छी नही लगेगी। इसलिए नारी से घबराकर धर्म से विरक्त हो गया। वह उठना-बैठना आदि सारा कार्य स्त्री के आदेश से करने लगा। सूर्य और अग्नि के ताप मे न पिघलने वाला काष्ठ का गोला अग्नि मे जलकर राख हो गया।

'मैं जहर खाकर मर जाऊगी, फिर देखूगी तुम आनद से कैसे रहोगे'—स्त्री के द्वारा ऐसा डराने पर भी चौथा व्यक्ति डरा नही। वह अपने विचार मे दृढ रहा और उसे करारा जवाब देता गया। मिट्टी का गोला अग्नि मे ज्यो-ज्यो तपता है त्यो-त्यो लाल होता जाता है।

११९ (सू० ५४६)

लोहे का गोला गुरु, त्रपु का गोला गुरुतर, ताम्बे का गोला गुरुतम और सीसे का गोला अत्यन्त गुरु होता है। इसी प्रकार सवेदना, सस्कार या कर्म के भार की दृष्टि से कुछ पुरुष गुरु, कुछ पुरुष गुरुतर, कुछ पुरुष गुरुतम और कुछ पुरुष अत्यन्त गुरु होते हैं।

स्नेह भार की दृष्टि से भी इसकी व्याख्या की जा सकती है। पिता के प्रति स्नेहभार गुरु, माता के प्रति गुरुतर, पुत्र के प्रति गुरुतम और पत्नी के प्रति अत्यन्त गुरु होता है।[1]

१२० (५४७)

प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या गुण या मूल्य की दृष्टि से की जा सकती है। चादी का गोला अल्प गुण या अल्प मूल्यवाला होता है। सोने का गोला अधिक गुण या अधिक मूल्यवाला होता है। रत्न का गोला अधिकतर गुण या अधिकतर मूल्यवाला होता है। वज्ररत्न (हीरे) का गोला अधिकतम गुण या अधिकतम मूल्यवाला होता है। इसी प्रकार समृद्धि, गुण या जीवन-मूल्यो की दृष्टि से पुरुषो मे भी तरतमता होती है।

जिस मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है, वह चादी के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य मे बुद्धि और आचार दोनो की चमक होती है, वह सोने के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य मे बुद्धि, आचार और पराक्रम तीनो होते हैं वह रत्न के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य मे बुद्धि, आचार, पराक्रम और सहानुभूति चारो होते हैं, वह वज्ररत्न के गोले के समान होता है।

१२१ (सू० ५४८)

असिपत्र की धार तेज होती है। वह छेद्य वस्तु को तुरत छेद डालता है। जो पुरुष स्नेह-पाश को तुरत छेद डालता है, उसकी तुलना असिपत्र से की गई है। जैसे धन्य ने अपनी पत्नी के एक वचन से प्रेरित हो तुरत स्नेह-बध छेद डाला।[2]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५९।
२ देखें—स्थानांग, १०।१५।

करपत्र (करौत) छेद्य वस्तु को कालक्षेप (गमनागमन) से छिन्न करता है। जो पुरुष भावना के अभ्यास से स्नेह-पाश को छिन्न करता है, उसकी तुलना करपत्र से की गई है। जैसे—शालिभद्र ने क्रमशः स्नेहबंध को छिन्न किया था।[1]

क्षुरपत्र (उस्तरा) बालो को काट सकता है। इसी प्रकार जो पुरुष स्नेहबंध का थोड़ा छेद कर सकता है, वह क्षुर-पत्र के समान होता है।

कदम्बचीरिका (साधारण शस्त्र या घास की तीखी नोक) मे छेदक शक्ति बहुत ही अल्प होती है। इसी प्रकार जो पुरुष स्नेहबंध के छेद का मनोरथ मात्र करता है, वह कदम्बचीरिका के समान होता है।[2]

१२२ (सू० ५५१)

वृत्तिकार ने बताया है कि समुद्गपक्षी और विततपक्षी—ये दोनो भरतक्षेत्र मे नही होते, किन्तु सुदूरवर्ती द्वीप-समुद्रो में होते हैं।[3]

१२३ (सू० ५५३)

कुछ पक्षी धृष्ट या अज्ञ होने के कारण नीड से उतर सकते है, किंतु शिशु होने के कारण परिव्रजन नही कर सकते—इधर उधर घूम नही सकते।

कुछ पक्षी पुष्ट होने के कारण परिव्रजन कर सकते हैं, पर भीरु होने के कारण नीड से उतर नही सकते।

कुछ पक्षी अभय होने के कारण नीड से उतर सकते हैं और पुष्ट होने के कारण परिव्रजन भी कर सकते है।

कुछ पक्षी अति शिशु होने के कारण न नीड से उतर सकते हैं और न परिव्रजन ही कर सकते हैं।

कुछ भिक्षु भोजन आदि के अर्थी होने के कारण भिक्षाचर्या के लिए जाते हैं, पर ग्लान, आलसी या लज्जालु होने के कारण परिव्रजन नही कर सकते—घूम नही सकते।

कुछ भिक्षु भिक्षा के लिए परिव्रजन कर सकते हैं, पर सूत्र और अर्थ के अध्ययन मे आसक्त होने के कारण भिक्षा के लिए जा नही सकते।[4]

१२४ (सू० ५५६)

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त बुध शब्द के दो अर्थ किए जा सकते हैं—
विवेकवान् और आचारवान्।
कुछ पुरुष विवेक से भी बुध होते हैं और आचार से भी बुध होते हैं।
कुछ पुरुष विवेक से बुध होते हैं, किन्तु आचार से बुध नहीं होते हैं।
कुछ पुरुष विवेक से अबुध होते हैं, किन्तु आचार से बुध होते हैं।
कुछ पुरुष विवेक से भी अबुध होते हैं और आचार से भी अबुध होते है।
वृत्तिकार ने 'आचारवान् पंडित होता है' इसके समर्थन मे एक श्लोक उद्धृत किया है—

पठकः पाठकश्चैव, ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो राजन्! यः क्रियावान् स पण्डितः॥

पढने वाले, पढाने वाले और तत्त्व का चिन्तन करने वाले सब व्यसनी हैं। सही अर्थ मे पंडित वही है जो आचारवान् है।[5]

---

१. देखें—स्थानांग, १०।१५।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६ समुद्गवत् पक्षौ येषां ते समुद्गक-पक्षिणः, समासान्त इन्, ते च बहिर्द्वीपसमुद्रेषु, एवं विततपक्षिणोऽपीति।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र २६०।

१२५ (सू० ५५८)

प्रथम भग के लिए वृत्तिकार ने जिनकल्पिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिनकल्पी मुनि आत्मानुकपी होते हैं। वे अपनी ही सधना मे रत रहते हैं, दूसरो के हित का चिन्तन नहीं करते।

दूसरे भंग के लिए वृत्तिकार ने तीर्थंकर का उदाहरण प्रस्तुत किया है। तीर्थंकर परानुकपी होते हैं। वे कृतकार्य होने के कारण पर-हित की साधना मे ही रत रहते हैं।

तीसरे भग के लिए वृत्तिकार ने स्थविरकल्पिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे उभयानुकपी होते हैं। वे अपनी और दूसरो—दोनो की हित-चिन्ता करते हैं।

चतुर्थ भग के लिए वृत्तिकार ने कालशौकारिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह अत्यन्त क्रूर था। उसे न अपने हित की चिन्ता थी और न दूसरो के हित की।

इसकी अन्य नयो से भी व्याख्या की जा सकती है, जैसे—

स्वार्थ साधक, परार्थ के लिए समर्पित, स्वार्थ और परार्थ की सतुलित साधना करने वाला, आलसी या अकर्मण्य—इन्हे क्रमश चारो भगो के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

१२६-१३० (सू० ५६६-५७०)

देखें—उत्तरज्झयणाणि ३६।२५६ का टिप्पण।

आसुर आदि अपध्वस गीता की आसुरी सपदा से तुलनीय है—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोध पारुष्यमेव च।
अज्ञान चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥[1]
काममाश्रित्य दुष्पूर, दम्भमानमदान्विता।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रता ॥[2]
चिन्तामपरिमेया च, प्रलयान्तामुपाश्रिता।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिता ॥[3]
आशापाशशतैर्बद्धा, कामक्रोधपरायणा।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥[4]

१३१ सण्णाए (सू० ५७८)

देखें—१०।१०५ का टिप्पण।

१३२ (सू० ५९७)

प्रस्तुत सूत्र मे उपसर्गचतुष्टय का प्रतिपादन किया गया है। उपसर्ग का अर्थ बाधा या कष्ट है। कर्ता के भेद से यह चार प्रकार का होता है—

१ दिव्यउपसर्ग, २ मानुषउपसर्ग, ३ तिर्यग्योनिजउपसर्ग, ४ आत्मसचेतनीयउपसर्ग।

---

१ श्रीमद्भगवद्गीता, १६।४।
२ वही, १६।१०।
३ वही, १६।११।
४ वही, १६।१२।

मूलाचार मे आत्मसचेतनीय के स्थान पर चेतनिक का उल्लेख मिलता है।[1] इस उपसर्गचतुष्टय की सांख्य-सम्मत दुःखत्रय से तुलना की जा सकती है। सांख्यदर्शन के अनुसार दुःख तीन प्रकार का होता है—

१ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक, ३ आधिदैविक।

इनमे से आध्यात्मिक दुःख शारीर (शरीर में जात) और मानस (मन मे जात) भेद से दो प्रकार का है। वात (वायु), पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न दुःख को शारीर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद से उत्पन्न एव अभीष्ट विषय की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख को मानस कहते हैं।

ये सभी दुःख आभ्यन्तर उपायो (शरीरान्तर्गत पदार्थ) से उत्पन्न होने के कारण 'आध्यात्मिक' कहलाते हैं।

बाह्य (शरीरादिबहिर्भूत) उपायो से साध्य दुःख दो प्रकार का होता है—

१ आधिभौतिक, २ आधिदैविक।

उनमे से मनुष्य, पशु, पक्षी सरीसृप (सर्पादि विसर्पणशील) तथा स्थावर (स्थितिशील वृक्षादि) से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक है और यक्ष, राक्षस, विनायक (विघ्नकारी देवजातिविशेष) ग्रह आदि के आवेश (दुष्प्रभाव) से होने वाला दुःख आधिदैविक कहलाता है।[2]

दिव्यउपसर्ग—आधिदैविक
मानुष और तिर्यग्योनिज—आधिभौतिक
आत्मसचेतनीय—आध्यात्मिक

१३३ (सू० ६०२)

जिस व्यक्ति के मन मे आसक्ति अल्प होती है, उसके जो पुण्यकर्म का बंध होता है, वह उसे अशुभ के चक्र में फसाने वाला नही होता, उसमे मूढता उत्पन्न करने वाला नहीं होता। इस प्रसग में भरत चक्रवर्ती का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

जिस व्यक्ति के मन मे आसक्ति प्रबल होती है, उसके जो पुण्यकर्म का बंध होता है, वह उसे अशुभ की ओर ले जाने वाला, उसमे मूढता उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रसग मे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रसग को लक्ष्य मे रखकर योगीन्दु ने लिखा था—

पुण्णेण होइ विहवो, विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य पावं, ता पुण्णं अम्ह मा होउ॥

पुण्य से वैभव होता है, वैभव से मद, मद से मतिमोह, मतिमोह से पाप। पाप मुझे इष्ट नही है, इसलिए पुण्य भी मुझे इष्ट नहीं है।

जो अशुभकर्म तीव्र मोह से अर्जित नहीं होते, वे शुभ कर्म के निमित्त बन जाते हैं। इस प्रसग मे उदाहरण के लिए वे सब व्यक्ति प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जो दुःख से संतप्त होकर शुभ की ओर प्रवृत्त होते हैं। इसी आशय को लक्ष्य कर कपिल मुनि ने गाया था[3]—

अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइं न गच्छेज्जा॥

अध्रुव, अशाश्वत और दुःखबहुल संसार मे ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति मे न जाऊं। इसी भावना के आधार पर ईश्वरकृष्ण ने लिखा था[4]—

---

१ मूलाचार, ७।१५८
जे केई उवसग्गा, देव माणुस तिरिक्ख चेदणिया।
२ सांख्यकारिका, तत्त्वकौमुदी, पृष्ठ ३-४
३ उत्तराध्ययन, ८।१।
४ सांख्यकारिका, श्लोक १।

दु खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक रूप त्रिविध दु ख के अभिघात से उसको विनष्ट करने वाले हेतु (उपाय) के विषय मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यदि यह कहा जाए कि दु ख विनाशकारी दृष्ट (लौकिक) उपाय के विद्यमान होने के कारण यह (शास्त्रीय उपाय सम्बन्धी जिज्ञासा) व्यर्थ है, तो उत्तर यह है कि ऐसी बात नही है, क्योंकि लौकिक उपाय से दु खत्रय का एकात (अवश्यभावी) और अत्यन्त (पुन उत्पत्तिहीन) अभाव नही होता।

जिस व्यक्ति के तीव्र आसक्तिपूर्वक अशुभकर्म का बध होता है, वह उसमे मूढता उत्पन्न करता रहता है।

१३४ (सू० ६०३)

कर्मवाद का सामान्य नियम है—सुचीर्ण कर्म का शुभ फल होता है और दुश्चीर्ण कर्म का अशुभ फल होता है।

इस सिद्धान्त के आधार पर प्रथम और चतुर्थ भग की सरचना हुई है। द्वितीय और तृतीय भग इस सामान्य नियम के अपवाद हैं। इन भगो के द्वारा कर्म के सक्रमण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। यहा जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल भुगतना पडता है—इस सिद्धात का सक्रमण-सिद्धान्त में अतिक्रमण होता है।

सक्रमण का अर्थ है एक कर्म-प्रकृति का दूसरे कर्म मे परिवर्तन। यह मूल प्रकृतियो मे नही होता, केवल कर्म की उत्तर प्रकृतियो मे होता है। वेदनीय कर्म की दो उत्तर प्रकृतिया हैं—सात (शुभ) वेदनीय और असात (अशुभ) वेदनीय। किसी व्यक्ति ने सातवेदनीय कर्म का बध किया। वह किसी समय प्रबल अशुभ कर्म का बध करता है तब अशुभ कर्म पुद्गलो की प्रचुरता पूर्वार्जित शुभ कर्म—पुद्गलो को अशुभ के रूप मे परिवर्तित कर देती है। इस व्याख्या के अनुसार दूसरा भग घटित होता है—बधनकाल का शुभ कर्म सक्रमण के द्वारा विपाककाल मे अशुभ हो जाता है।

इसी प्रकार बधनकाल का अशुभकर्म शुभकर्म पुद्गलो की प्रचुरता से सक्रान्त होकर विपाककाल मे शुभ हो जाता है।

बौद्धसाहित्य मे निर्ग्रन्थो के मुह से सक्रमण-विरोधी तथा परिवर्तन-विरोधी बातें कहलाई गई हैं, जैसे—

और फिर भिक्षुओ ! मैं उन निगठो को ऐसा कहता हू—तो क्या मानते हो आवुसो निगठो ! जो यह इसी जन्म मे वेदनीय (भोगा जानेवाला) कर्म है, वह उपक्रम से=या प्रधान से सपराय (दूसरे जन्म मे) वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

और जो यह जन्मान्तर (सपराय) वेदनीय कर्म है, वह—उपक्रम से=या प्रधान से इस जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगठो ! जो यह सुख-वेदनीय (सुख भोग करने वाला) कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से दु खवेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगठो ! जो यह दु ख-वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से सुख-वेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगठो ! जो यह परिपक्व अवस्था (=बुढापा) वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से अपरिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगठो ! जो यह अपरिपक्व (=शैशव, जवानी) वेदनीय कर्म है क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से परिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह बहु-वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान मे अल्प वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह अल्प वेदनीय (= भोगानेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान मे बहुवेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह अवेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान मे वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

इस प्रकार आवुसो ! निगंठो ! जो यह वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान मे अवेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

इस प्रकार आवुसो ! निगंठो ! जो यह इसी जन्म मे वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान मे पर जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है ?

नही, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह पर जन्म मे वेदनीय कर्म है, वह उपक्रम से = या प्रधान से इस जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है ? ऐसा होने पर आयुष्मान् निगंठो का उपक्रम निष्फल हो जाता है, प्रधान निष्फल हो जाता है।[1]

उक्त सवाद की काल्पनिकता प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित सक्रमण मे स्पष्ट हो जाती है। यहा ४।२९०-२९९ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

१३५ (सू० ६०६)

इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें—नदी, सूत्र ३८।

१३६ (सू० ६२५)

सूत्र ६२३ मे शरीर की उत्पत्ति के हेतु बतलाए गए हैं और प्रस्तुत सूत्र मे उसकी निष्पत्ति (निर्वृत्ति) के हेतु निर्दिष्ट हैं। उत्पत्ति और निष्पत्ति एक ही क्रिया के दो विभाग हैं। उत्पत्ति का अर्थ है प्रारम्भ और निष्पत्ति का अर्थ है प्रारब्ध की पूर्णता।

१३७ (सू० ६३१)

सरागसयम—व्यक्ति-भेद से सयम दो प्रकार का होता है—

सरागसयम—कपाययुक्त मुनि का सयम।

वीतरागसयम—उपशान्त या क्षीण कपाय वाले मुनि का सयम।

वीतरागसयमी के आयुष्य का बध नहीं होता। इसीलिए यहा सरागसयम (सकपायचारित्र) को देवायु के बध का कारण बतलाया गया है।

---

१ मज्झिमनिकाय, देवदहसुत्त, ३।१।१।

सयमासयम—आशिक रूप से व्रत स्वीकार करने वाले गृहस्थ के जीवन मे सयम और असयम दोनो होते है, इसलिए उसका सयम सयमासयम कहलाता है ।

बालतप कर्म—मिथ्यादृष्टि का तपश्चरण ।

अकामनिर्जरा—निर्जरा की अभिलाषा के विना कर्मनिर्जरण का हेतुभूत आचरण ।

१३८ (सू० ६३२)

१ तत—इसका अर्थ है—तन्त्रीयुक्त वाद्य ।

भरत ने ततवाद्यो मे विपची एव चित्रा को प्रमुख तथा कच्छपी एव घोषका को इनका अगभूत माना है ।[1]

चित्र वीणा सात तन्त्रियो से निबद्ध होती थी और उन तन्त्रियो का वादन अगुलियो से किया जाता था । विपची मे नौ तन्त्रिया होती थी, जिनका वादन 'कोण' (वीणावादन का दण्ड) के द्वारा किया जाता था ।[2]

भरत ने कच्छपी तथा घोषका को स्वरूप के विषय मे कुछ नहीं कहा है। सगीत रत्नाकर के अनुसार घोषका एकतन्त्री वाली वीणा है ।[3] कच्छपी सात तन्त्रियो मे कम वाली वीणा होनी चाहिए ।

आचारचूला[4] तथा निशीथ[5] मे वीणा, विपची, वद्धीसग, तुणय, पवण, तुववीणिया, ढकुण और झोडय—ये वाद्य तत के अन्तर्गत गिनाए हैं ।

सगीत दामोदर मे तत के २९ प्रकार गिनाए हैं—अलावणी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपञ्ची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, सारगी, परिवादिनी, त्रिशवी, शतचन्द्री, नकुलोष्ठी, ढमवी, ऊदवरी, पिनाकी, नि:शक, शुष्फल, गदावारणहस्त, रुद्र, स्वरमणमल, कपिलास, मधुस्यदी और घोषा ।[6]

२ वितत—चर्म से आनद्ध वाद्यो को वितत कहा जाता है। गीत और वाद्य के साथ ताल एव लय के प्रदर्शनार्थ इन चर्मावनद्ध वाद्यो का प्रयोग किया जाता था । इनमे मृदग, पवण (तन्त्रीयुक्त अवनद्ध वाद्य), दर्दुर (कलशाकार चर्म से मढा वाद्य), भेरी, डिंडिम, मृदग आदि मुख्य हैं। ये वाद्य कोमल भावनाओ का उद्दीपन करने के साथ-साथ वीरोचित उत्साह बढ़ाने मे भी कार्यकर होते हैं । अत इनका उपयोग धार्मिक समारम्भो तथा युद्धों मे भी रहा है ।

भरत के चर्मावनद्ध वाद्यो मे मृदग तथा दर्दुर प्रधान है तथा मल्लकी और पटह गौण ।

आयारचूला[7] मे मृदग, नन्दीमृदग और झल्लरी को तथा निशीथ[8] मे मृदग, नन्दी, झल्लरी, डमरुक, मड्डय, सडुय, प्रदेश, गोलुकी आदि वाद्यो को इसके अन्तर्गत गिनाया है ।

मुरज, पटह, ढक्का, विश्वक, दर्पवाद्य, घण, पणव, सरुहा, लाव, जाहव, त्रिवली, करट, कमठ, भेरी, कुडुक्का, हुडुक्का, झनसमुरली, झल्ली, ढुक्कली, दौंडी, शान, डमरू, ढमुकी, मड्डू, कुडली, स्तुग, दुदुभी, अग, मर्दल, अणीकस्य—ये वाद्य भी वितत के अन्तर्गत माने जाते हैं ।[9]

३. घन—कास्य आदि धातुओ से निर्मित वाद्य घन कहलाते हैं । करताल, कास्यवन, नयघटा, शुक्तिका, कण्ठिका, पटवाद्य, पट्टाघोष, घर्घर, झझताल, मजीर, कत्तरी, उष्कूक आदि इसके कई प्रकार हैं ।

---

१ भरतनाट्य ३३।१५

विपची चैव चित्रा च दारवीष्वगसज्ञिते ।
कच्छपीघोषकादीनि प्रत्यगानि तथैव च ॥

२ वही, २६।११४

सप्ततत्री भवेत् चित्रा विपची नवतन्त्रिका ।
विपची कोणवाद्या स्याच्चित्रा चागुलिवादना ॥

३ सगीतरत्नाकर वाद्याध्याय, पृष्ठ २४८

घोषकश्चैकतंत्रिका ।

४ अगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०९, आयारचूला ११।२ ।

५ निसीहज्झयण १७।१३८ ।

६ प्राचीन भारत के वाद्ययत्र—कल्याण (हिन्दु सस्कृति अक) पृष्ठ ७२१-७२२ से उद्धृत ।

७ अगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०९, आयारचूला ११।१ ।

८ निसीहज्झयण १७।१३७ ।

९ प्राचीन भारत के वाद्ययत्र—कल्याण (हिन्दु सस्कृति अक) पृष्ठ ७२१-७२२ ।

आयारचूला मे ताल शब्दो के अन्तर्गत ताल, कसताल, लत्तिय, गोहिय और किरिकिरिया को गिनाया है।[1]

निशीथ मे घन शब्द के अन्तर्गत ताल, कसताल, लत्तिय, गोहिय, मकरिय, कच्छमी, महति, सणालिया और वालिया—ये वाद्य उल्लिखित हुए हैं।[2]

४ शुषिर —फूक से बजाए जाने वाले वाद्य। भरत मुनि ने इसके अन्तर्गत वंश को अगभूत और शख तथा डिक्किनी आदि वाद्यो को प्रत्यग माना है।[3]

यह माना जाता था कि वशवादक को गीत सम्बन्धी सभी गुणो से युक्त तथा बलसपन्न और दृढानिल होना चाहिए।[4] जिसमे प्राणशक्ति की न्यूनता होती है वह शुषिर वाद्यो को बजाने मे सफल नहीं हो सकता। भरत के नाट्यशास्त्र के तीसवें अध्याय मे इनके वादन का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

वशी प्रमुख वाद्य था और वह वेणुदण्ड से बनायी जाती थी।

१३९ (सू० ६३३)

१ अचित—नाट्यशास्त्र मे १०८ करण माने जाते हैं। करण का अर्थ है—अग तथा प्रत्यग की क्रियाओ को एक साथ करना। अचित तेवीसवा करण है। इन अभिनय-भगीमा मे पादो को स्वस्तिक मे रखा जाता है तथा दक्षिण हस्त को कटिहस्त [नृत्तहस्त की एक मुद्रा] मे और वामहस्त को व्यावृत्त तथा परिवृत्त कर नासिका के पास अचित करने से यह मुद्रा बनती है।[5]

सिर पर से सम्बन्धित तेरह अभियानो मे यह आठवां है। कोई चिन्तातुर मनुष्य हाथ पर ठोडी टिकाकर सिर को नीचा रखे, उस मुद्रा को 'अचित' माना जाता है। राजप्रश्नीय मे इसे २५वा नाट्यभेद माना है।

२ रिभित—इसके विषय मे जानकारी प्राप्त नही है।

३ आरभट—माया, इन्द्रजाल, सग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि चेष्टाओ से युक्त तथा वध, बन्धन आदि से उद्धत नाटक को आरभटी कहा जाता था।[6] इसके चार प्रकार हैं।[7]

राजप्रश्नीय सूत्र मे आरभट को नाट्य-भेद का अठारहवा प्रकार माना है।[8]

४ भसोल—राजप्रश्नीय सूत्र मे 'भसोल' को नाट्यभेद का उनतीसवा प्रकार माना है।[9]

स्थानागवृत्तिकार ने परम्परागत जानकारी के अभाव मे इनका कोई विवरण नहीं दिया है।[10]

१४० (सू० ६३४)

भरत नाट्यशास्त्र [३१।२८८-४१४] मे सप्तरूप के नाम से प्रख्यात प्राचीन गीतो का विस्तृत वर्णन है। इन गीतो के नाम ये हैं—मद्रक, अपरान्तक, प्रकरी, ओवेणक, उल्लोप्यक, रोविन्दक और उत्तर।[11]

प्रस्तुत सूत्रगत चार प्रकार के गेयो मे से दो का—रोविन्दक और मद्रक—का भरत नाट्योक्त रोविन्दक और मद्रक—से नाम साम्य है।

---

१ अगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०९, आयारचूला ११।३।

२ निसीहज्झयण १७।१३९।

३ भरतनाट्य शास्त्र ३३।१७

अगलक्षणसयुक्तो, विज्ञेयो वश एव हि।
शखस्तु डिक्किनी चैव, प्रत्यगे परिकीर्तिते॥

४ वही, ३३।४६४।

५ भारतीय सगीत का इतिहास, पृष्ठ ४२५।

६ आप्टे डिक्शनरी में आरभट शब्द के अन्तर्गत उद्धृत—

मायेन्द्रजालसग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।
सयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता॥

७ साहित्यदर्पण ४२०।

८ राजप्रश्नीय।

९ राजप्रश्नीय सू० १०९।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र २७२

नाट्यगेयाभिनयसूत्राणि सम्प्रदायाभावान्न विवृतानि।

११ भरतनाट्यशास्त्र ३१।२८७।

१४१ (सू० ६४४)

काव्य के मुख्य प्रकार दो ही होते हैं—गद्य और पद्य। गद्य-काव्य छन्द आदि के बंधन से मुक्त होता है। पद्य-काव्य छन्द से निबद्ध होता है। कथ्य और गेय—ये दोनों काव्य के स्वतन्त्र प्रकार नहीं हैं। कथ्य का समावेश गद्य में और गेय का समावेश पद्य में होता है, अतः ये वस्तुतः गद्य और पद्य के ही अवान्तर प्रकार हैं। फिर भी स्वरूप की विशिष्टता के कारण इन्हें स्वतन्त्र स्थान दिया गया है। कथ्य-काव्य कथात्मक और गेय-काव्य संगीतात्मक होता है।[1]

---

1 स्थानांगवृत्ति, पत्र २७४ काव्यं—ग्रन्थः—गद्यम् अच्छन्दोनिबद्धं शस्त्रपरिज्ञाध्ययनवत् पद्यं—छन्दोनिबद्धं विमुक्त्यध्ययनवत्, कथायां साधु कथ्यं ज्ञाताध्ययनवत्, गेयं—गानयोग्यं, इह गद्यपद्यान्तर्भावेऽपीतरयोः कथागानधर्मविशिष्टतया विशेषो विवक्षित इति।

पंचमं ठाणं

पचम स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे पांच की संख्या से सबद्ध विषय संकलित हैं। यह स्थान तीन उद्देशकों मे विभक्त है। इस वर्गीकरण मे तात्त्विक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष, योग आदि अनेक विषय हैं। इसमें कुछ विषय ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरस, आकर्षक और व्यावहारिक भी हैं। निदर्शन के लिए कुछेक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मलिनता या अशुद्धि आ जाने पर वस्तु की शुद्धि की जाती है। किन्तु, सबकी शुद्धि एक ही साधन से नहीं होती। उसके भिन्न-भिन्न साधन होते हैं। पांच की सख्या के सन्दर्भ मे यहां शुद्धि के पांच साधनों का उल्लेख है—

मिट्टी शुद्धि का साधन है। इससे बर्तन आदि साफ किए जाते हैं। पानी शुद्धि का साधन है। इससे वस्त्र, पात्र आदि अनेक वस्तुओं की सफाई की जाती है। अग्नि शुद्धि का साधन है। इससे सोना, चादी आदि की शुद्धि की जाती है। मन्त्र भी शुद्धि का साधन है। इससे वायुमण्डल शुद्ध किया जाता है और जाति से बहिष्कृत व्यक्ति को शुद्ध कर जाति मे सम्मिलित किया जाता है। ब्रह्मचर्य शुद्धि का साधन है। इसके आचरण से आत्मा की शुद्धि होती है[1]।

मन की दो अवस्थाएं होती हैं—सुषुप्ति और जागृति। जो जागता है, वह पाता है और जो सोता है, वह खोता है। जागृति हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। साधना का अर्थ ही है—निरन्तर जागरण। जब सयत साधक अपनी साधना मे सुप्त होता है तो उस समय उसके शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श जागते हैं। जब ये जागृत होते हैं तब साधक साधना से दूर हो जाता है। जब सयत साधक अपनी साधना मे जागृत रहता है तब शब्द, रूप, गंध और स्पर्श सुप्त रहते हैं, उस समय मन पर इनका प्रभाव नहीं रहता। वे अकिंचित्कर हो जाते हैं।

असंयत मनुष्य साधक नहीं होता। वह चाहे जागृत (निद्रामुक्त) हो अथवा सुप्त हो—दोनों ही अवस्थाओं मे उसके शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श जागृत रहते हैं, व्यक्ति को प्रभावित किए रहते हैं[2]।

बहिर्मुख और अन्तर्मुख ये दो मन की अवस्थाएं हैं। जब व्यक्ति बहिर्मुख होता है तब मन को बाहर दौडने के लिए पांच इन्द्रियों का खुला क्षेत्र मिल जाता है। कभी वह मधुर और कटु शब्दों मे रम जाता है तो कभी नाना प्रकार के रूपों व दृश्यों मे मुग्ध हो जाता है। कभी मीठी सुगंध को लेने मे तन्मय बन जाता है तो कभी दुर्गन्ध से दूर हटने का प्रयास करता है। कभी खट्टा, मीठा, कडुआ, कसैला और तिक्त रसों मे आसक्त होता है तो कभी मृदु और कठोर स्पर्श मे अपने को खो देता है। इन पांच इन्द्रियों के विषयों मे मन घूमता रहता है। यह मन की चचल अवस्था है। जब मन अन्तर्मुखी बनना चाहता है तो उसे बाह्य भटकन को छोडकर भीतर आना होता है—अपने भीतर झांकना होता है। भीतरी जगत बाह्य दुनिया से अधिक विचित्र और रहस्यमय है[3]।

प्रतिमा साधना की पद्धति है। इसमें तपस्या भी की जाती है और कायोत्सर्ग भी किया जाता है। पाचवां स्थानक होने के कारण यहां सख्या की दृष्टि से पाच प्रतिमाओं का उल्लेख है—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा[4]। दूसरे स्थान मे प्रतिमाओं के आलापक मे भद्रोत्तरा को छोड शेष चार प्रतिमाओं का नामोल्लेख हुआ है।

मन की दो अवस्थाएं होती हैं—स्थिर और चचल। पानी स्थिर और शान्त रहता है तभी उसमे वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब हो सकता है। वात, पित और कफ के सम (शान्त) रहने से शरीर स्वस्थ रहता है। मन की स्थिरता से ही कुछ

---

१ ५।१६४।
२ ५।१२५-१२७।
३ ५।१३५।
४ ५।१८।

उपलब्ध होता है। चचलता उपलब्धि मे बाधक होती है। अवधिज्ञान मन की शांतता से उपलब्ध होता है। अभूतपूर्व दृश्यों के देखने से यदि मन क्षुब्ध या कुतूहल से भर जाता है तो वह उपलब्ध हुआ अवधिज्ञान भी वापस चला जाता है। यदि मन क्षुब्ध नहीं होता है तो अवधि ज्ञान टिका रहता है[1]।

साधना व्यक्तिगत होती है। जब उसे सामूहिकता का रूप दिया जाता है, तब कई अपेक्षाए और जुड जाती हैं। सामूहिकता मे व्यवस्था होती है और नियम होते हैं। जहां नियम होते हैं वहां उनके भग का भी प्रसग बनता है। उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त भी आवश्यक होता है। प्रायश्चित्त देने का अधिकारी कौन हो, किसकी बात को प्रामाणिक माना जाए—यह प्रश्न सघबद्धता मे सहज ही उठता है। प्रस्तुत स्थान मे इस विषय की परम्परा भी सकलित है[2]। यह विषय मुख्यत प्रायश्चित्त सूत्रों से सबद्ध है। व्यवहार सूत्र मे यह चर्चित भी है। किन्तु, प्रस्तुत सूत्र मे सख्या का सकलन है, इसलिए इसमे विषयों की विविधता होना स्वाभाविक है। इसीलिए इसमे आचार, दर्शन, गणित, इतिहास और परम्परा—इन सभी विषयों का सग्रह किया गया है।

---

१ ५।२१।

२ ५।१२४।

पचम ठाण पढमो उद्देसो

मूल	सस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
महव्वय-अणुव्वय-पद	**महाव्रत-अणुव्रत-पदम्**	**महाव्रत-अणुव्रत-पद**
१. पच महव्वया पण्णत्ता, त जहा— सव्वाओ पाणातिवायाओ॰ वेरमण, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण,॰ सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण।	पञ्च महाव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— सर्वस्माद् प्राणातिपाताद् विरमण, सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमण, सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमण, सर्वस्माद् मैथुनाद् विरमण, नर्वस्माद् परिग्रहाद् विरमणम्।	१ महाव्रत पाच हैं— १ मर्व प्राणातिपात मे विरमण- २ नर्व मृषावाद मे विरमण, ३ मर्व अदत्तादान मे विरमण, ४ नर्व मैथुन मे विरमण, ५ सर्व परिग्रह मे विरमण।
२ पचाणुव्वया पण्णत्ता, त जहा— थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, थूलाओ मुसावयाओ वेरमण, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सदारसतोसे, इच्छापरिमाणे।	पञ्चाणुव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— स्थूलाद् प्राणातिपाताद् विरमण, स्थूलाद् मृषावादाद् विरमण, स्थूलाद् अदत्तादानाद् विरमण, स्वदारसतोष, इच्छापरिमाणम्।	२ अणुव्रत पाच हैं— १ स्थूल प्राणातिपात से विरमण, २ स्थूल मृषावाद मे विरमण, ३ स्थूल अदत्तादान से विरमण, ४ स्वदारसन्तोष, ५ इच्छापरिमाण।
इदिय-विसय-पद	**इन्द्रिय-विषय-पदम्**	**इन्द्रिय-विषय-पद**
३ पच वण्णा पण्णत्ता, त जहा— किण्हा, णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।	पञ्च वर्णा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— कृष्णा, नीला, लोहिता, हारिद्रा, शुक्ला।	३ वर्ण पाच हैं— १ कृष्ण, २ नील, ३ रक्त, ४ पीत, ५ शुक्ल।
४ पच रसा पण्णत्ता, त जहा— तित्ता,॰ कडुया, कसाया, अबिला॰ मधुरा।	पञ्च रसा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— तिक्ता, कटुका, कषाया, अम्ला, मधुरा।	४ रस पाच हैं— १ तीता, २ कडुआ, ३ कषैला, ४ खट्टा, ५ मीठा।
५ पच कामगुणा पण्णत्ता, त जहा— सद्दा, रूवा, गधा, रसा, फासा।	पञ्च कामगुणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा।	५ कामगुण[1] पाच हैं— १ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४. रस, ५ स्पर्श।
६. पचहि ठाणेहि जीवा सज्जति, त जहा— सद्देहि, ॰रूवेहि, गधेहि, रसेहि,॰ फासेहि।	पञ्चसु स्थानेषु जीवा सज्यन्ते, तद्यथा— शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।	६ जीव पाच स्थानो से लिप्त होते हैं[2]— १ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से।

७. °पचहिं ठाणेहिं जीवा रज्जति, त जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा रज्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु ।

७ जीव पाच स्थानों से अनुरक्त होते हैं—
१ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से ।

८ पचहिं ठाणेहिं जीवा मुच्छति, त जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा मूर्च्छन्ति, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेसु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु ।

८ जीव पाच स्थानों से मूर्च्छित होते हैं—
१ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से ।

९ पचहिं ठाणेहिं जीवा गिज्झति, त जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा गृध्यन्ति, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु ।

९ जीव पाच स्थानों से गृद्ध होते हैं—
१ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से ।

१० पचहिं ठाणेहिं जीवा अज्झोववज्जति, त जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।°

पञ्चसु स्थानेषु जीवा अध्युपपद्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु ।

१० जीव पाच स्थानों से अध्युपपन्न—आसक्त होते हैं—
१ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से ।

११. पचहिं ठाणेहिं जीवा विणिघायमावज्जति, त जहा—
सद्देहिं, °रूवेहिं, गधेहिं, रसेहिं°, फासेहिं ।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा विनिघातमापद्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु ।

११ जीव पाच स्थानों से विनिघात-मरण या विनाश को प्राप्त होते हैं—
१ शब्द से, २ रूप से, ३ गध से, ४ रस से, ५ स्पर्श से ।

१२ पच ठाणा अपरिण्णाता जीवाण अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेस्साए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—
सद्दा, °रूवा, गधा, रसा,° फासा ।

पञ्च स्थानानि अपरिज्ञातानि जीवाना अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनि श्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा ।

१२ ये पाच स्थान, जब परिज्ञात नही होते तब वे जीवों के अहित, अशुभ, अक्षम, अनि श्रेयस तथा अननुगामिकता के हेतु होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श ।

१३ पच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाण हिताए सुभाए °खमाए णिस्सेस्साए° आणुगामियत्ताए भवति, त जहा—
सद्दा, °रूवा, गधा, रसा,°, फासा ।

पञ्च स्थानानि सुपरिज्ञातानि जीवाना हिताय शुभाय क्षमाय नि श्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा ।

१३ ये पाच स्थान जब सुपरिज्ञात होते हैं तब वे जीवों के हित, शुभ, क्षम, नि श्रेयस तथा अनुगामिकता के हेतु होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श ।

१४ पच ठाणा अपरिण्णाता जीवाण दुग्गतिगमणाए भवति, त जहा—
सद्दा, °रूवा, गधा, रसा°, फासा ।

पञ्च स्थानानि अपरिज्ञातानि जीवाना दुर्गतिगमनाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा ।

१४ ये पाच स्थान जब परिज्ञात नही होते तब वे जीवों के दुर्गति-गमन के हेतु होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श ।

१५ पंच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाणं सुगतिगमणाए भवंति, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा,° फासा।

पञ्च स्थानानि सुपरिज्ञातानि जीवानां सुगतिगमनाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा।

१५ ये पांच स्थान जब सुपरिज्ञात होते हैं तब वे जीवों के सुगतिगमन के हेतु होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गंध, ४ रस, ५ स्पर्श।

आसव-संवर-पदं

आश्रव-संवर-पदम्

आश्रव-संवर-पद

१६ पंचहिं ठाणेहिं जीवा दोग्गतिं गच्छंति, तं जहा—
पाणातिवातेणं, °मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं,° परिग्गहेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः दुर्गतिं गच्छन्ति, तद्यथा—
प्राणातिपातेन, मृषावादेन, अदत्तादानेन, मैथुनेन, परिग्रहेण।

१६ पांच स्थानों से जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं—
१ प्राणातिपात से, २ मृषावाद से, ३ अदत्तादान से, ४ मैथुन से, ५ परिग्रह से।

१७ पंचहिं ठाणेहिं जीवा सोगतिं गच्छंति, तं जहा—
पाणातिवातवेरमणेणं, °मुसावायवेरमणेणं, अदिण्णादाणवेरमणेणं, मेहुणवेरमणेणं°, परिग्गहवेरमणेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुगतिं गच्छन्ति, तद्यथा—
प्राणातिपातविरमणेन, मृषावादविरमणेन, अदत्तादानविरमणेन, मैथुनविरमणेन, परिग्रहविरमणेन।

१७ पांच स्थानों से जीव सुगति को प्राप्त होते हैं—
१ प्राणातिपात के विरमण से,
२ मृषावाद के विरमण से,
३ अदत्तादान के विरमण से,
४ मैथुन के विरमण से,
५ परिग्रहण के विरमण से।

पडिमा-पदं

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

१८ पंच पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा, भद्दुत्तरपडिमा।

पञ्च प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा, भद्रोत्तरप्रतिमा।

१८ प्रतिमाएँ पांच हैं—
१ भद्रा, २ सुभद्रा, ३ महाभद्रा, ४ सर्वतोभद्रा, ५ भद्रोत्तरप्रतिमा।

थावरकाय-पदं

स्थावरकाय-पदम्

स्थावरकाय-पद

१९ पंच थावरकाया पण्णत्ता, तं जहा—
इंदे थावरकाए, बंभे थावरकाए, सिप्पे थावरकाए, सम्मती थावरकाए, पायावच्चे थावरकाए।

पञ्च स्थावरकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
इन्द्रः स्थावरकायः, ब्रह्मा स्थावरकायः, शिल्पः स्थावरकायः, सम्मतिः स्थावरकायः, प्राजापत्यः स्थावरकायः।

१९ स्थावरकाय पांच हैं—
१ इन्द्रस्थावरकाय—पृथ्वीकाय,
२ ब्रह्मस्थावरकाय—अप्काय,
३ शिल्पस्थावरकाय—तेजस्काय,
४ सम्मतिस्थावरकाय—वायुकाय,
५ प्राजापत्यस्थावरकाय—वनस्पतिकाय।

२० पंच थावरकायाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—
इंदे थावरकायाधिपती, °बंभे थावरकायाधिपती, सिप्पे थावरकायाधिपती, सम्मती थावरकायाधिपती,° पायावच्चे थावरकायाधिपती।

पञ्च स्थावरकायाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
इन्द्रः स्थावरकायाधिपतिः, ब्रह्मा स्थावरकायाधिपतिः, शिल्पः स्थावरकायाधिपतिः, सम्मतिः स्थावरकायाधिपतिः, प्राजापत्यः स्थावरकायाधिपतिः।

२० पांच स्थावरकाय के अधिपति पांच हैं—
१ इन्द्रस्थावरकायाधिपति,
२ ब्रह्मस्थावरकायाधिपति,
३ शिल्पस्थावरकायाधिपति,
४ सम्मतिस्थावरकायाधिपति,
५ प्राजापत्यस्थावरकायाधिपति।

अइसेस-णाण-दसण-पद

२१ पचहि ठाणेहि ओहिदसणे समुप्पज्जिउकामेवि तप्पढमयाए खभाएज्जा, त जहा—
१ अप्पभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा ।
२ कुथुरासिभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा ।
३ महतिमहालय वा महोरगसरीर पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा ।
४ देव वा महिड्ढिय •महज्जुइय महाणुभाग महायस महावल° महासोक्ख पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा ।
५ पुरेसु वा पोराणाइ उरालाइं महतिमहालयाइ महाणिहाणाइ पहीणसामियाइ पहीणसेउयाइ पहीणगुत्तागाराइ उच्छिण्णसामियाइ उच्छिण्णसेउयाइ उच्छिण्णगुत्तगाराइ जाइ इमाइं गामागरणगरखेड-कव्वड-मडव-दोणमुह-पट्टणासम-सबाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकदर-सति-सेलोवट्ठावण-भवणगिहेसु सणिक्खित्ताइ चिट्ठंति, ताइ वा पासित्ता तप्पढमताए खभाएज्जा ।
इच्चेतेहिं पचहि ठाणेहि ओहिदसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए खभाएज्जा ।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पदम्

पञ्चभि स्थानै अवधिदर्शन समुत्पत्तुकाममपि तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्, तद्यथा—
१ अल्पभूता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात् ।
२ कुन्थुराशिभूता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात् ।
३ महातिमहत् वा महोरगशरीर दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात् ।
४ देव वा मर्हद्धिक महाद्युतिक महानुभाग महायगस महावल महासौख्य दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात् ।
५ पुरेषु वा पुराणानि उदाराणि महातिमहान्ति महानिधानानि प्रहीणस्वामिकानि प्रहीणसेतुकानि प्रहीणगोत्रागाराणि उच्छिन्नस्वामिकानि उच्छिन्नसेतुकानि उच्छिन्नगोत्रागाराणि यानि इमानि ग्रामाकर-नगरखेट-कर्वट-मडम्ब-द्रोणमुख-पत्तनाऽश्रम-सवाघ-सन्निवेशेषु शृङ्गाटक—त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथपथेषु नगरक्षालेषु श्मशान-शून्यागार-गिरिकन्दरा-शान्ति-शैलोपस्थापन-भवनगृहेषु सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, तानि वा दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्—
इत्येतै पञ्चभि स्थानै अवधिदर्शन समुत्पत्तुकाम तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात् ।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पद

२१ पाच स्थानो से तत्काल उत्पन्न होता-होत अवधि-दर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणो म ह विचलित हो जाता है'—
१ पृथ्वी को छोटा-सा' देखकर वह अप प्रारम्भिक क्षणो म ही विचलित हो जा है ।
२ कुथु जैसे छोटे-छोटे जीवो से पृथ्वी आकीर्ण देखकर वह अपने प्रारम्भि क्षणो म ही विचलित हो जाता है ।
३ बहुत बडे महोरगो—सर्पो को देख वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे ही विचलि हो जाता है ।
४ महर्द्धिक, महाद्युतिक, महानुभा महान् यशस्वी, महाबल तथा महासौख्य वाले देवो को देखकर वह अपने प्रारम्भि क्षणो में ही विचलित हो जाता है ।
५ नगरो मे बडे-बडे खजानो को देखक जिनके स्वामी मर चुके है, जिनके मा प्राय नष्ट हो चुके है, जिनके नाम औ सकेत विस्मृतप्राय हो चुके हैं, जिन स्वामी उच्छिन्न हो चुके हैं, जिनके मा उच्छिन्न हो चुके है, जिनके नाम औ सकेत उच्छिन्न हो चुके है, जो गा आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडब, द्रोणमुख पत्तन, आश्रम, सवाह, सन्निवेश आदि तथा शृङ्गाटकों, तिराहो, चौको चौराहो, देवकुलो, राजमार्गो गलियो, नालियो, श्मशानो, शून्यगृह गिरिकन्दराओ, शान्तिगृहो, शैलगृहो उपस्थानगृहो और भवन-गृहो मे द हुए है, उन्हे देखकर वह अपने प्रारम्भि क्षणो मे ही विचलित हो जाता है ।
इन पाच स्थानो से तत्काल उत्पन्न होता होता अवधि-दर्शन अपने प्रारम्भिक क्षण में ही विचलित हो जाता है ।

२२ पचहिं ठाणेहिं केवलवरणाणदसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए णो खभाएज्जा, त जहा—
१ अप्पभूत वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा।
२. °कुंथुरासिभूत वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खभएज्जा।
३ महतिमहालय वा महोरगसरीर पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा।
४ देव वा महिड्ढिय महज्जुइय महाणुभाग महायस महाबल महासोक्खं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।
५ पुरेसु वा पोराणाइ उरालाइ महतिमहालयाइ महाणिहाणाइ पहीणसामियाइ पहीणसेउयाइ पहीणगुत्तागाराइ उच्छिण्णसामियाइ उच्छिण्णसेउयाइ उच्छिण्णगुत्तागाराइ जाइ इमाइ गामागर-णगरखेड-कव्वड-मडव-दोणमुह-पट्टणासम-सवाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकंदर-सति-सेलोवट्ठावण° भवणगिहेसु सण्णिक्खित्ताइ चिट्ठ ति, ताइ वा पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा।

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं °केवलवरणाणदसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए° णो खभाएज्जा।

पञ्चभि स्थानै केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाम तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्, तद्यथा—
१ अल्पभूता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।
२ कुन्थुराशिभूता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।
३ महातिमहत् वा महोरगशरीर दृष्ट्वा तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।
४ देव वा महर्द्धिक महाद्युतिक महानुभाग महायशस महाबल महासौख्य दृष्ट्वा तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।
५ पुरेषु वा पुराणानि उदाराणि महातिमहान्ति महानिधानानि प्रहीणस्वामिकानि प्रहीणसेतुकानि प्रहीणगोत्रागाराणि उच्छिन्नस्वामिकानि उच्छिन्नसेतुकानि उच्छिन्नगोत्रागाराणि यानि इमानि ग्रामागर-नगर-खेट-कर्वट-मडम्ब-द्रोणमुख-पत्तनाश्रम-सवाध-सन्निवेशेषु-शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु नगर-क्षालेषु श्मशान-शून्यागार-गिरिकन्दरा-शान्ति-शैलोपस्थापन भवनगृहेषु सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, तानि वा दृष्ट्वा तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।

इत्येतै पञ्चभि स्थानै केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाम तत्प्रथमताया नो स्कभ्नीयात्।

२२ पाच स्थानो मे तत्काल उत्पन्न होता-होता केवलवरज्ञानदर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणों मे विचलित नही होता"—
१ पृथ्वी को छोटा-सा देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नहीं होता।
२ कुथु जैसे छोटे-छोटे जीवो मे पृथ्वी को आकीर्ण देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।
३ बहुत बडे-बडे महोरगो को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।
४ महर्द्धिक, महाद्युतिक, महानुभाग, महान् यशस्वी, महाबल तथा महासौख्य-वाले देवों को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।
५ नगरो मे बडे-बडे खजानो को देखकर, जिनके स्वामी मर चुके है, जिनके मार्ग प्राय नष्ट हो चुके हैं, जिनके नाम और सकेत विस्मृतप्राय हो चुके हैं, जिनके स्वामी उच्छिन्न हो चुके है, जिनके मार्ग उच्छिन्न हो चुके हैं, जिनके नाम और सकेत उच्छिन्न हो चुके हैं, जो ग्राम आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सवाह, सन्निवेश आदि मे तथा शृङ्गाटकों, तिराहों, चौकों, चौराहो, देव-कुलों, राजमार्गों, गलियों, नालियों, श्मशानो, शून्यगृहो, गिरिकन्दराओ, शान्ति-गृहों, शैलगृहो, उपस्थानगृहो और भवन-गृहों मे दबे हुए हैं, उन्हें देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

इन पाच स्थानो मे तत्काल उत्पन्न होता-होता केवलवरज्ञानदर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नहीं होता।

सरीर-पदं

२३ णेरइयाण सरीरगा पचवण्णा पचरसा पण्णत्ता, त जहा—
किण्हा, °णीला, लोहिता, हालिद्दा,° सुक्किल्ला।
तित्ता, कडुया, कसाया, अंबिला,° मधुरा।

२४ एव—णिरतर जाव वेमाणियाण।

२५ पच सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—
ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

२६ ओरालियसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—
किण्हे, °णीले, लोहिते, हालिद्दे,° सुक्किल्ले। तित्ते, °कडुए, कसाए, अंबिले,° महुरे।

२७ °वेउव्वियसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।

२८ आहारयसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, मुहुरे।

२९ तेययसरीरे पचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, त जहा—

शरीर-पदम्

नैरयिकाणा शरीरकाणि पञ्चवर्णानि पञ्चरसानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि।
तिक्तानि, कटुकानि, कषायाणि, अम्लानि, मधुराणि।

एवम्—निरतर यावत् वैमानिकानाम्।

पञ्च शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कर्मकम्।

औदारिकशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

वैक्रियशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

आहारकशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

तैजसशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

शरीर-पद

२३ नैरयिक जीवों के शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाले होते हैं—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

२४ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक-जीवो के शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाले होते ह।

२५ शरीर पाच प्रकार के होते हैं[११]—
१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ५ कर्मक।

२६ औदारिक शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाला होता है—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

२७ वैक्रिय शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाला होता है—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

२८ आहारक शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाला होता है—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

२९ तैजस शरीर पाच वर्ण तथा पाच रस वाला होता है—

किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।

कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

३० कम्मगसरीरे पचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, त जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।°

कर्मकशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय अम्ल, मधुरम्।

३० कर्मक शरीर पांच वर्ण तथा पाच रस वाला होता है—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ पीत, ५ शुक्ल।
१ तिक्त, २ कटुक, ३ कषाय, ४ अम्ल, ५ मधुर।

३१ सव्वेवि ण वादरवोंदिधरा कलेवरा पचवण्णा पचरसा दुगंधा अट्ठ-फासा।

सर्वेपि वादरवोन्दिधराणि कलेवराणि पञ्चवर्णानि पञ्चरसानि द्विगन्धानि अष्टस्पर्शानि।

३१ वादर-स्थूलाकार शरीर को धारण करने वाले सभी कलेवर पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध तथा आठ स्पर्श वाले होते हैं।

तित्थभेद-पद

तीर्थभेद-पदम्

तीर्थभेद-पद

३२ पचहिं ठाणेहिं पुरिम-पच्छिमगाण जिणाण दुग्गम भवति, त जहा—
दुआइक्ख, दुव्विभज्ज, दुपस्स, दुतितिक्ख, दुरणुचर।

पञ्चभि स्थानै पूर्व-पश्चिमकाना जिनाना दुर्गम भवति, तद्यथा—
दुराख्येय, दुर्विभाज्य, दुर्दर्श, दुस्तितिक्ष, दुरनुचरम्।

३२ प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के शासन मे पाच स्थान दुर्गम होते हैं[२२]—
१ धर्म-तत्त्व का आख्यान करना,
२ तत्त्व का अपेक्षादृष्टि से विभाग करना,
३ तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना,
४ उत्पन्न परीषहों को सहन करना,
५ धर्म का आचरण करना।

३३. पचहिं ठाणेहिं मज्झिमगाण जिणाण सुग्गमं भवति, त जहा—
सुआइक्ख, सुविभज्ज, सुपस्स, सुतितिक्ख, सुरणुचरं।

पञ्चभि स्थानै मध्यमकाना जिनाना सुगम भवति, तद्यथा—
स्वाख्येय, सुविभाज्य, सुदर्श, सुतितिक्ष, स्वनुचरम्।

३३ मध्यवर्ती तीर्थंकरों के शासन मे पाच स्थान सुगम होते हैं—
१ धर्म-तत्त्व का आख्यान करना,
२ तत्त्व का अपेक्षादृष्टि से विभाग करना,
३ तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना,
४ उत्पन्न परीषहों को सहन करना,
५ धर्म का आचरण करना।

अब्भणुण्णात-पदं

अभ्यनुज्ञात-पदम्

अभ्यनुज्ञात-पद

३४. पंच ठाणाइ समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्चं पसत्याइ

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि

३४ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित

णिच्चमब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—
खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे।

नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघवम्।

किए हैं, अभ्यनुज्ञात [अनुमत] किए हैं[११]—
१ क्षाति, २ मुक्ति, ३ आर्जव, ४ मार्दव, ५ लाघव।

३५ पच ठाणाइ समणेण भगवता महावीरेण °समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च° अब्भणुण्णताइ भवति, त जहा—
सच्चे, सजमे, तवे, चियाए, बभचेरवासे।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
सत्य, सयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास।

३५ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं[१४]—
१ सत्य, २ सयम, ३ तप, ४ त्याग, ५ ब्रह्मचर्यवास।

३६ पच ठाणाइ समणेण °भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्चं वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च° अब्भणुण्णाताइ भवति, तं जहा—
उक्खित्तचरए, णिक्खित्तचरए, अतचरए, पंतचरए, लूहचरए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
उत्क्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरक, अन्त्यचरक, प्रान्त्यचरक, रूक्षचरक।

३६ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ उत्क्षिप्तचरक—पाक-भाजन से बाहर निकाले हुए भोजन को ग्रहण करने वाला,
२ निक्षिप्तचरक—पाक-भाजन मे स्थित भोजन को ग्रहण करने वाला,
३ अन्त्यचरक[१५]—बचा-खुचा भोजन करने वाला,
४ प्रान्त्यचरक[१६]—बासी भोजन करने वाला।
५ रूक्षचरक—रूखा भोजन ग्रहण करने वाला।

३७ पच ठाणाइ °समणेण भगवता महावीरेण समणाणं णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च° अब्भणुण्णाताइ भवति त जहा—

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—

३७ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं—

अण्णातचरए, अण्णइलायचरए, मोणचरए, ससट्ठकप्पिए, तज्जात-ससट्ठकप्पिए।

अज्ञातचरक, अन्नग्लायकचरक, मौनचरक, ससृष्टकल्पिक, तज्जातससृष्ट-कल्पिक।

१- अज्ञातचरक—जाति, कुल आदि को जताये विना भोजन लेने वाला,
२ अन्नग्लायकचरक[३७]—विकृत अन्न को खाने वाला,
३ मौनचरक—विना बोले भिक्षा लेने वाला,
४ ससृष्टकल्पिक—लिप्त हाथ या कड़छी आदि से भिक्षा लेने वाला,
५ तज्जात ससृष्टकल्पिक—देय द्रव्य से लिप्त हाथ, कड़छी आदि से भिक्षा लेने वाला।

३८ पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं वुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
उवणिहिए, सुद्धेसणिए, संखादत्तिए, दिट्ठलाभिए, पुट्ठलाभिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
औपनिधिक, शुद्धैषणिक, सख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, पृष्टलाभिक।

३८ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ औपनिधिक—पास में रखे हुए भोजन को लेने वाला,
२ शुद्धैषणिक[३८]—निर्दोष या व्यजन रहित आहार लेने वाला,
३ सख्यादत्तिक—परिमित दत्तियो का आहार लेने वाला,
४ दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार आदि को लेने वाला,
५ पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे'? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला।

३९ पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं वुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
आयंबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
आचाम्लिक, निर्विकृतिक, पूर्वार्द्धिक, परिमितपिण्डपातिक, भिन्नपिण्ड-पातिक।

३९ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ आचाम्लिक—ओदन, कुलमाष आदि मे से कोई एक अन्न खाकर किया जाने वाला तप,
२ निर्विकृतिक—घृत आदि विकृति का त्याग करने वाला,
३ पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध मे भोजन नहीं करने वाला,
४ परिमितपिण्डपातिक—परिमित द्रव्यो की भिक्षा लेने वाला,
५ भिन्नपिण्डपातिक—भोजन के टुकड़ो की भिक्षा लेने वाला।

४० पच ठाणाइ •समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाणं णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च° अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—
अरसाहारे, विरसाहारे, अताहारे, पताहारे, लूहाहारे।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
अरसाहार, विरसाहार, अन्त्याहार, प्रान्त्याहार, रूक्षाहार।

४० श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए है, व्यक्त किए हैं, प्रशमित किए है, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१, अरसाहार—हींग आदि के वघार से रहित भोजन लेने वाला, २ विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला, ३ अन्त्याहार, ४ प्रान्त्याहार, ५ रूक्षाहार।

४१ पच ठाणाइ •समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च° अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—
अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पतजीवी, लूहजीवी।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी, रूक्षजीवी।

४१ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए ह, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ अरसजीवी—जीवन-भर अरस आहार करने वाला, २ विरसजीवी—जीवन-भर विरस आहार करने वाला, ३ अन्त्यजीवी, ४ प्रान्त्यजीवी ५ रूक्षजीवी।

४२ पच ठाणाइ •समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइं णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्चं पसत्थाइ णिच्चं अब्भणुण्णाताइ° भवति, त जहा—
ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए, पडिमट्ठाई, वीरासणिए णेसज्जिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
स्थानायतिक, उत्कुटुकासनिक, प्रतिमास्थायी, वीरासनिक नैषधिक।

४२ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशमित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ स्थानायतिक[९]—कायोत्सर्ग मुद्रा मे युक्त होकर—दोनों बाहुओ को घुटनो की ओर झुकाकर—खडा रहने वाला,
२ उत्कुटुकासनिक—उकडू बैठने वाला,
३ प्रतिमास्थायी[१०]—प्रतिमाकाल मे कायोत्सर्ग की मुद्रा मे अवस्थित,
४ वीरासनिक[११]—वीरासन की मुद्रा मे अवस्थित,
५ नैषधिक[१२]—विशेष प्रकार से बैठने वाला।

४३ पचं ठाणाइ *समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्चं वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइं णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णाताइ° भवति, तं जहा—
दडायतिए, लगडसाई, आतावए, अवाउडए, अकडूयए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
दण्डायतिक, लगण्डशायी, आतापक, अप्रावृतक, अकण्डूयक ।

४३ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाँच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए है, व्यक्त किए हैं, प्रशमित किए है, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१ दण्डायतिक—पैरो को पसारकर बैठने वाला, २ लगडशायी—सिर और एडी भूमि से सलग्न रहे और शेप सारा शरीर ऊपर उठ जाए अथवा पृष्ठ भाग भूमि से सलग्न रहे और सारा शरीर ऊपर उठ जाए, इस मुद्रा मे सोने वाला, ३ आतापक[1]—शीतताप सहन करने वाला, ४ अप्रावृतक—वस्त्र-त्याग करने वाला। ५ अकण्डूयक—खुजली नही करने वाला।

महाणिज्जर-पदं

४४. पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—
अगिलाए आयरियवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए उवज्झायवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए थेरवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए तवस्सिवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए गिलाणवेयावच्च करेमाणे।

महानिर्जरा-पदम्

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जर महापर्यवसान भवति, तद्यथा—
अग्लान्या आचार्यवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या उपाध्यायवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या स्थविरवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या तपस्विवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या ग्लानवैयावृत्य कुर्वाण ।

महानिर्जरा-पद

४४ पाच स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है[1]—
१ अग्लानभाव से आचार्य का वैयावृत्य करता हुआ,
२ अग्लानभाव से उपाध्याय का वैयावृत्य करता हुआ,
३ अग्लानभाव से स्थविर का वैयावृत्य करता हुआ,
४ अग्लानभाव से तपस्वी का वैयावृत्य करता हुआ,
५ अग्लानभाव से रोगी का वैयावृत्य करता हुआ ।

४५ पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—
अगिलाए सेहवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए कुलवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए गणवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए सघवेयावच्च करेमाणे,
अगिलाए साहम्मियवेयावच्च करेमाणे ।

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जर महापर्यवसान भवति, तद्यथा—
अग्लान्या शैक्षवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या कुलवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या गणवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या सघवैयावृत्य कुर्वाण,
अग्लान्या सार्धमिकवैयावृत्य कुर्वाण ।

४५ पाच स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है[1]—
१ अग्लानभाव से शैक्ष—नवदीक्षित का वैयावृत्य करता हुआ,
२ अग्लानभाव से कुल का वैयावृत्य करता हुआ,
३ अग्लानभाव से गण का वैयावृत्य करता हुआ,
४ अग्लानभाव से सघ का वैयावृत्य करता हुआ,
५ अग्लानभाव से सार्धमिक का वैयावृत्य करता हुआ ।

विसभोग-पदं

४६ पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे साहम्मिय सभोइय विसभोइय करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—

१. सकिरियट्ठाण पडिसेवित्ता भवति ।

२. पडिसेवित्ता णो आलोएइ ।

३ आलोइत्ता णो पट्ठवेति ।

४. पट्ठवेत्ता णो णिव्विसति ।

५. जाइ इमाइ थेराण ठिति-पकप्पाइ भवति ताइ अतियचिय-अतियचिय पडिसेवेति, से हदह पडिसेवामि कि म थेरा करेस्सति ?

विसभोग-पदम्

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ सार्धमिक साभोगिक वैसभोगिक कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—

१ सक्रियस्थान प्रतिषेविता भवति ।

२ प्रतिषेव्य नो आलोचयति ।

३ आलोच्य नो प्रस्थापयति ।

४ प्रस्थाप्य नो निर्विशति ।

५ यानि इमानि स्थविराणा स्थिति-प्रकल्पानि भवन्ति तानि अतिक्रम्य-अतिक्रम्य प्रतिषेवते, तद् हत अह प्रति-षेवे कि मे स्थविरा करिष्यन्ति ?

विसभोग-पद

४६ पाच स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक साभोगिक[१७] को विसाभोगिक[१८] —मडली-बाह्य करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—

१ जो सक्रियस्थान [अशुभ कर्म का वधन करने वाले कार्य] का प्रतिसेवन करता है,

२ प्रतिसेवन कर जो आलोचना नहीं करता,

३ आलोचना कर जो प्रस्थापन[१८] नहीं करता,

४ प्रस्थानपन कर जो निर्वेश[१९] नहीं करता,

५ जो स्थविरो के स्थितिकल्प[२०] होते हैं उनमे से एक के वाद दूसरे का अतिक्रमण करता है, दूसरो के समझाने पर यह कहता है—'लो, मैं दोप का प्रतिसेवन करता हू, स्थविर मेरा क्या करेंगे ?'

पारचित-पद

४७ पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे साहम्मिय पारचित करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—

१. कुले वसति कुलस्स भेदाए अब्भुट्ठित्ता भवति ।

२ गणे वसति गणस्स भेदाए अब्भुट्ठेत्ता भवति ।

३ हिंसप्पेही ।

४. छिद्दप्पेही ।

५ अभिक्खण-अभिक्खण पसिणायतणाइ पउजित्ता भवति ।

पाराञ्चित-पदम्

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ सार्धमिक पाराञ्चित कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—

१ कुले वसति कुलस्य भेदाय अभ्युत्थाता भवति ।

२ गणे वसति गणस्य भेदाय अभ्युत्थाता भवति ।

३. हिंसाप्रेक्षी ।

४. छिद्रप्रेक्षी ।

५ अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण प्रश्नायतनानि प्रयोक्ता भवति ।

पाराञ्चित-पद

४७ पाच स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक को पाराञ्चित [दसवा प्रायश्चित्त सप्राप्त] करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता—

१ जो जिस कुल मे रहता है उसीमे भेद डालने का यत्न करता है,

२ जो जिस गण मे रहता है उसीमे भेद डालने का यत्न करता है,

३ जो हिंसाप्रेक्षी होता है—कुल, गण के सदस्यो का वध चाहता है,

४ जो छिद्रान्वेषी होता है,

५ जो वार-वार प्रश्नायतनों[२१] का प्रयोग करता है ।

वुग्गहट्ठाण-पदं

४८. आयरियउवज्झायस्स ण गणसि पंच वुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१. आयरियउवज्झाए ण गणसि आणं वा धारणं वा णो सम्म पउजित्ता भवति ।

२. आयरियउवज्झाए ण गणसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्म पउजित्ता भवति ।

३ आयरियउवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति ।

४. आयरियउवज्झाए ण गणसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्मम-ब्भुट्ठित्ता भवति ।

५ आयरियउवज्झाए ण गणसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी ।

व्युद्ग्रहस्थान-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्च व्युद्ग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ आचार्योपाध्याय गणे आज्ञा वा धारणा वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति ।

२ आचार्योपाध्याय गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति ।

३ आचार्योपाध्याय गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले नो सम्यग् अनुप्रवाचयिता भवति ।

४ आचार्योपाध्याय गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्य नो सम्यगभ्युत्याता भवति ।

५ आचार्योपाध्याय गणे अनापृच्छ्य-चारी चापि भवति, नो आपृच्छ्यचारी ।

व्युद्ग्रहस्थान-पद

४८ आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे पाच विग्रह के हेतु है—

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा व धारणा[१] का सम्यक् प्रयोग न करें ।

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक[२] कृतिकर्म[३] का प्रयोग न करें,

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो [सूत्रार्थ प्रकारो] को धारण करते हैं, उनकी उचित समय[४] पर गण को सम्यक् वाचना न दें,

४ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे रोगी तथा नवदीक्षित साधुओ का वैयावृत्य कराने के लिए जागरूक न रहें,

५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछे बिना ही क्षेत्रान्तरसक्रम करें, पूछकर न करें ।

अवुग्गहट्ठाण-पद

४६ आयरियउवज्झायस्स ण गणसि पचावुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरियउवज्झाए ण गणंसि आण वा धारणं वा सम्म पउजित्ता भवति ।

२ °आयरियउवज्झाए ण गणसि° आधारातिणिताए सम्म किइकम्म पउजित्ता भवति ।

३ आयरियउवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्म अणुपवाइत्ता भवति ।

अव्युद्ग्रहस्थान-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्चाऽव्युद्ग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१. आचार्योपाध्याय गणे आज्ञा वा धारणा वा सम्यक् प्रयोक्ता भवति ।

२ आचार्योपाध्याय गणे यथारात्निकतया सम्यक् कृतिकर्म प्रयोक्ता भवति ।

३ आचार्योपाध्याय गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति ।

अव्युद्ग्रहस्थान-पद

४६ आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे पाच अविग्रह के हेतु है—

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा या धारणा का सम्यक् प्रयोग करें,

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक कृतिकर्म का प्रयोग करें,

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो को धारण करते हैं, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना दें,

४ आयरियउवज्झाए गणसि गिलाणसेहवेयावच्च सम्म अब्भुट्टित्ता भवति ।
५ आयरियउवज्झाए गणसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी ।

४ आचार्योपाध्याय गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्त्य सम्यक् अभ्युत्थाता भवति ।
५ आचार्योपाध्याय गणे आपृच्छ्यचारी चापि भवति, नो अनापृच्छ्यचारी ।

४ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे रोगी तथा नवदीक्षित साधुओं का वैयावृत्त्य कराने के लिए जागरूक रहें,
५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछ-कर क्षेत्रान्तर-सक्रम करें, विना पूछे न करें ।

णिसिज्जा-पदं

५० पच णिसिज्जाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
उक्कुडुया, गोदोहिया, समपायपुता, पलियका, अद्धपलियका ।

निषद्या-पदम्

पञ्च निपद्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्कटुका, गोदोहिका, समपादपुता, पर्यंका, अर्धपर्यंका ।

निषद्या-पद

५० निपद्या[1] पाच प्रकार की होती है—
१ उत्कुटुका—पुतो को भूमि से घुमाए विना पैरो के वल पर वैठना,
२ गोदोहिका—गाय की तरह वैठना या गाय दुहने की मुद्रा मे वैठना,
३ समपादपुता—दोनो पैरो और पुतो को छुआ कर वैठना, ४ पर्यका—पद्मासन,
५ अर्द्धपर्यका—अर्द्धपद्मासन ।

अज्जवट्ठाण-पद

५१ पच अज्जवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
साधुअज्जव, साधुमद्दव, साधुलाघव, साधुखती, साधुमुत्ती ।

आर्जवस्थान-पदम्

पञ्च आर्जवस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
साध्वार्जव, साधुमार्दव, साधुलाघव, साधुक्षान्ति, साधुमुक्ति ।

आर्जवस्थान-पद

५१ आर्जव—सवर के पाच स्थान है[2]—
१ साधुआर्जव—माया का सम्यक् निग्रह,
२ साधुमार्दव—अभिमान का सम्यक् निग्रह,
३ साधुलाघव—गौरव का सम्यक् निग्रह,
४ साधुक्षाति—क्रोध का सम्यक् निग्रह,
५ साधुमुक्ति—लोभ का सम्यक् निग्रह ।

जोइसिय-पद

५२ पचविहा जोइसिया पण्णत्ता, त जहा—
चदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, ताराओ ।

ज्योतिष्क-पदम्

पञ्चविधा ज्योतिष्का प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्रा, सूरा, ग्रहा, नक्षत्राणि, तारा ।

ज्योतिष्क-पद

५२ ज्योतिष्क पाच प्रकार के हैं—
१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ तारा ।

देव-पद

५३. पचविहा देवा पण्णत्ता, त जहा—
भवियदव्वदेवा, णरदेवा,
धम्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा।

देव-पदम्

पञ्चविधा देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
भव्यद्रव्यदेवा, नरदेवा, धर्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा।

देव-पद

५३ देव पाच प्रकार के हैं—
१ भव्य-द्रव्य-देव—भविष्य मे होने वाला देव, २ नरदेव—राजा,
३ धर्मदेव—आचार्य, मुनि आदि,
४ देवातिदेव—अर्हत्,
५ भावदेव—देवगति मे वर्तमान देव।

परिचारणा-पद

५४. पचविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा—
कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा।

परिचारणा-पदम्

पञ्चविधा देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कायपरिचारणा, स्पर्शपरिचारणा, रूपपरिचारणा, शब्दपरिचारणा, मन-परिचारणा।

परिचारणा-पद

५४ परिचारणा[४८] पाच प्रकार की होती है—
१ कायपरिचारणा, २ स्पर्शपरिचारणा,
३ रूपपरिचारणा, ४ शब्दपरिचारणा,
५ मन परिचारणा।

अग्गमहिसी-पदं

५५ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
काली, राती, रयणी, विज्जू, मेहा।

५६ बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
सुभा, णिसुभा, रभा, णिरभा, मदणा।

अग्रमहिषी-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य पञ्च अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
काली, रात्री, रजनी, विद्युत्, मेघा।

वले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य पञ्च अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शुभा, निशुभा, रभा, निरभा, मदना।

अग्रमहिषी-पद

५५ असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पाच अग्रमहिषिया हैं—
१ काली, २ राती, ३ रजनी,
४ विद्युत्, ५ मेघा।

५६ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के पाच अग्रमहिषिया हैं—
१ शुम्भा, २ निशुम्भा, ३ रम्भा,
४ नीरम्भा, ५ मदना।

अणिय-अणियाहिवइ-पद

५७ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमारण्णो पच सगामिया अणिया, पंच सगामिया अणियाधिवती पण्णत्ता, त जहा—

अनीक-अनीकाधिपति-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य पञ्च साग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च साग्रामिका अनीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

अनीक-अनीकाधिपति-पद

५७ असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—

पायत्ताणिए, पीढाणिए,
कुंजराणिए, महिसाणिए,
रहाणिए, ।
दुमे पायत्ताणियाधिवती,
सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती,
कुंथू हत्थिराया कुंजराणियाधिवती,
लोहितक्खे महिसाणियाधिवती,
किण्णरे रधाणियाधिवती ।

पादातानीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक,
महिपानीक, रथानीकम् ।
द्रुम पादातानीकाधिपति,
सुदामा अश्वराज पीठानीकाधिपति,
कुन्थु हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति,
लोहिताक्ष महिपानीकाधिपति,
किन्नर रथानीकाधिपति ।

सेनाए—१ पादातानीक—पदातिसेना,
२ पीठानीक—अश्वसेना,
३ कुंजरानीक—हस्तीसेना,
४ महिपानीक—भैंसों की सेना,
५ रथानीक—रथसेना ।
सेनापति—
१ द्रुम—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज सुदामा—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज कुंथु—कुंजरानीक अधिपति,
४ लोहिताक्ष—महिपानीक अधिपति,
५ किन्नर—रथानीक अधिपति ।

५८. वलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पच सगामियाणिया, पच सगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए, °पीढाणिए,
कुंजराणिए, महिसाणिए°
रधाणिए ।
महद्दुमे पायत्ताणियाधिवती,
महासोदामे आसराया
पीढाणियाधिवती, मालकारे
हत्थिराया कुंजराणियाधिपती,
महालोहिअक्खे
महिसाणियाधिपती,
किंपुरिसे रधाणियाधिपती ।

वले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य पञ्च साग्रामिकानीकानि, पञ्च साग्रामिकानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक,
महिपानीक, रथानीकम् ।
महाद्रुम पादातानीकाधिपति,
महासुदामा अश्वराज पीठानीकाधिपति,
मालकार हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति,
महालोहिताक्ष महिपानीकाधिपति,
किंपुरुप रथानीकाधिपति ।

५८ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वली के सग्राम करने वाली पाँच सेनाए हैं और पाच सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पादातानीक, २. पीठानीक,
३ कुंजरानीक, ४ महिषानीक,
५ रथानीक ।
सेनापति—
१ महाद्रुम—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज महा सुदामा—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिरज मालकार—अधिपति,
४ महालोहिताक्ष—महिपानीक अधिपति
५ किंपुरुप—रथानीक अधिपति ।

५९ धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पच सगामिया अणिया, पंच सगामियाणियाधिपती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए जाव रहाणिए ।
भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती,
जसोधरे आसराया
पीढाणियाधिपती,
सुदसणे हत्थिराया
कुंजराणियाधिपती,
णीलकंठे महिसाणियाधिपती,
आणंदे रहाणियाहिवई ।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पञ्च साग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च साग्रामिकानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक यावत् रथानीकम् ।
भद्रसेन पादातानीकाधिपति,
यशोधर अश्वराज पीठानीकाधिपति,
सुदर्शन हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति,
नीलकण्ठ महिपानीकाधिपति,
आनन्द रथानीकाधिपति ।

५९ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कजरानीक, ४ महिपानीक,
५ रथानीक ।
सेनापति—
१ भद्रसेन—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज यशोधर—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज सुदर्शन—कुंजरानीक अधिपति,
४ नीलकण्ठ—महिपानीक अधिपति,
५ आनन्द—रथानीक अधिपति ।

६०. भूयाणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच सगामियाणिया, पच सगामियाणियाहिवई पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए जाव रहाणिए।
दक्खे पायत्ताणियाहिवई,
सुग्गीवे आसराया पीढाणियाहिवई,
सुविक्कमे हत्यिराया कुजराणियाहिवई, सेयकठे महिसाणियाहिवई,
णदुत्तरे रहाणियाहिवई।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पञ्च साग्रामिकानीकानि, पञ्च साग्रामिकानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक यावत् रथानीकम्,
दक्ष पादातानीकाधिपति,
सुग्रीव अश्वराज पीठानीकाधिपति,
सुविक्रम हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति,
श्वेतकण्ठ महिषानीकाधिपति,
नन्दोत्तर रथानीकाधिपति।

६० नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के सग्राम करने वाली पाच सेनाए तथा पाच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ महिषानीक,
५ रथानीक।
सेनापति—
१ दक्ष—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज सुग्रीव—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज सुविक्रम—कुजरानीक अधिपति,
४ श्वेतकठ—महिषानीक अधिपति,
५ नन्दोत्तर—रथानीक अधिपति।

६१. वेणुदेवस्स ण सुवण्णिदस्स सुवण्णकुमाररण्णो पच सगामियाणिया, पच सगामियाणियाहिपती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए। एव जधा धरणस्स तधा वेणुदेवस्सवि।
वेणुदालियस्स जहा भूताणदस्स।

वेणुदेवस्य सुपर्णेन्द्रस्य सुपर्णकुमारराजस्य पञ्च साग्रामिकानीकानि, पञ्च साग्रामिकानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीकम्। एव यथा धरणस्य तथा वेणुदेवस्यापि।
वेणुदालिकस्य यथा भूतानन्दस्य।

६१ सुपर्णेन्द्र सुपर्णराज वेणुदेव के सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ महिषानीक,
५ रथानीक।
सेनापति—
१ भद्रसेन—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज यशोधर—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज सुदर्शन—कुजरानीक अधिपति,
४ नीलकठ—महिषानीक अधिपति,
५ आनन्द—रथानीक अधिपति।

६२ जधा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स।

यथा धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्याना यावत् घोषस्य।

६२ दक्षिण दिशा के शेष भवनपति इन्द्र—हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब तथा घोष के भी पादातानीक आदि पाच सग्राम करने वाली सेनाए तथा भद्रसेन, अश्वराज, यशोधर, हस्तिराज सुदर्शन नीलकठ और आनन्द ये पाच सेनापति हैं।

६३ जधा भूताणदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स।

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषा औदीच्याना यावत् महाघोषस्य।

६३ उत्तर दिशा के शेष भवनपति इन्द्र—वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोष के भी पादातानीक आदि पाच सग्राम करने वाली सेनाए तथा दक्ष, अश्वराज सुग्रीव, हस्तिराज, सुविक्रम, श्वेतकठ और नन्दोत्तर ये पाच सेनापति हैं।

६४ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो पच सगामिया अणिया, पच सगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए °पीढाणिए कुंजराणिए° उसभाणिए रधाणिए।
हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिवती, वाऊ आसराया पीढाणियाधिवती, एरावणे हत्थिराया कुजराणियाधिपती, दामड्ढी उसभाणियाधिपती, माढरे रधाणियाधिपती।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य पञ्च साग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च साग्रामिकानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता ; तद्यथा—
पादातानीक पीठानीक कुञ्जरानीक वृषभानीक रथानीकम्।
हरिनैगमेषी पादानीकाधिपति, वायु अश्वराज पीठानीकाधिपति, ऐरावण हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति, दार्मर्धि वृषभानीकाधिपति, माठर रथानीकाधिपति।

६४ देवेन्द्र देवराज शक्र के सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ वृषभानीक,
५ रथानीक।
सेनापति—
१ हरिनैगमेषी—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज वायु—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज ऐरावण—कुजरानीक अधिपति
४ दार्मर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५ माठर—रथानीक अधिपति।

६५ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो पंच सगामिया अणिया जाव पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुजराणिए, उसभाणिए, रधाणिए।
लहुपरक्कमे पायत्ताणियाधिवती, महावाऊ आसराया पीढाणियाहिवती, पुप्फदते हत्थिराया कुजराणियाहिवती, महादामड्ढी उसभाणियाहिवती। महामाढरे रधाणियाहिवती।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य पञ्च साग्रामिकानीकानि यावत् पादातानीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक, वृषभानीक, रथानीकम्।
लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपति, महावायु अश्वराज पीठानीकाधिपति, पुष्पदन्त हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति, महादार्मर्धि वृषभानीकाधिपति। महामाठर रथानीकाधिपति।

६५ देवेन्द्र देवराज ईशान के सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ वृषभानीक,
५ रथानीक।
सेनापति—
१ लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज पुष्पदत—कुजरानीक अधिपति,
४ महादार्मर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५ महामाठर—रथानीक अधिपति।

६६ जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव आरणस्स।

यथा शक्रस्य तथा सर्वेषा दाक्षिणात्याना यावत् आरणस्य।

६६ दक्षिण दिशा के वैमानिक इन्द्र—सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत तथा आरण देवेन्द्रो के भी सग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—

सेनाए—

१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ वृषभानीक,
५ रथानीक।

सेनापति—

१ हरिनैगमेषी—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज वायु—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज ऐरावण—कुजरानीक अधिपति
४ दामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५ माठर—रथानीक अधिपति।

६७ जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव अच्चुतस्स।

यथा ईशानस्य तथा सर्वेषा औदीच्याना यावत् अच्युतस्य।

६७ उत्तर दिशा के वैमानिक इन्द्र—लातक, सहस्रार, प्राणत तथा अच्युत देवेन्द्रो के भी सग्राम करने वाली पाच सेनाए और और पाच सेनापति हैं—

सेनाए—

१ पादातानीक, २ पीठानीक,
३ कुजरानीक, ४ वृषभानीक,
५ रथानीक।

सेनापति—

१ लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति,
३ हस्तिराज पुष्पदत—कुजरानीक अधिपति
४ महादामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५ महामाठर—रथानीक अधिपति।

देवठिति-पद

देवस्थिति-पदम्

देवस्थिति-पद

६८ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवाण पच पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अभ्यन्तर-परिषद देवाना पञ्च पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

६८ देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र के अन्तरग परिषद् के सदस्य देवो की स्थिति पाच पल्योपम की है।

६९ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवीण पच पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अभ्यन्तर-परिषद देवीना पञ्च पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

६९ देवेन्द्र देवराज ईशान के अन्तरंग परिषद् में सदस्य देवियों की स्थिति पाच पल्योपम की है।

पडिहा-पद

७० पचविहा पडिहा पण्णत्ता, त जहा—
गतिपडिहा, ठितिपडिहा,
बधणपडिहा, भोगपडिहा,
बल-वीरिय-पुरिसयार-परक्कमपडिहा।

प्रतिघात-पदम्

पञ्चविधा प्रतिघाता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गतिप्रतिघात, स्थितिप्रतिघात,
बन्धनप्रतिघात, भोगप्रतिघात,
बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमप्रतिघात।

प्रतिघात-पद

७० प्रतिघात [स्खलन] पांच प्रकार का होता है—
१ गति प्रतिघात—अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा प्रशस्त गति का अवरोध,
२ स्थिति प्रतिघात—उदीरणा के द्वारा कर्म-स्थिति का अल्पीकरण,
३ बन्धन प्रतिघात—प्रशस्त औदारिक शरीर आदि की प्राप्ति का अवरोध,
४ भोग प्रतिघात—सामग्री के अभाव में भोग की अप्राप्ति,
५ बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का प्रतिघात।

आजीव-पद

७१ पचविधे आजीवे पण्णत्ते, त जहा—
जातीआजीवे, कुलाजीवे,
कम्माजीवे, सिप्पाजीवे,
लिंगाजीवे।

आजीव-पदम्

पञ्चविध आजीव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जात्याजीव, कुलाजीव, कर्माजीव,
शिल्पाजीव, लिङ्गाजीव।

आजीव-पद

७१ आजीव पाच प्रकार का होता है—
१ जात्याजीव—जाति से जीविका करने वाला,
२ कुलाजीव—कुल से जीविका करने वाला,
३ कर्माजीव—कृषि आदि से जीविका करने वाला,
४ शिल्पाजीव—कला से जीविका करने वाला,
५ लिंगाजीव—वेष से जीविका करने वाला।

राय-चिंध-पदं

७२ पच रायककुधा पण्णत्ता, त जहा—
खग्ग, छत्त, उप्फेस,
पाणहाओ, वालवीअणी।

राज-चिह्न-पदम्

पञ्च राजककुदानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
खड्ग, छत्र, उष्णीष,
उपानहौ, वालव्यजनी।

राज-चिह्न-पद

७२ राजचिन्ह पाच प्रकार के होते हैं—
१ खड्ग, २ छत्र, ३ उष्णीष—मुकुट, ४ जूते, ५ चामर।

उदिण्ण-परिस्सहोवसग्ग-पदं

७३ पर्चाहं ठाणेहिं छउमत्थे णं उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्म सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहिया-सेज्जा, त जहा—

१. उदिण्णकम्मे खलु अय पुरिसे उम्मत्तगभूते । तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बघेति वा रुभति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कवल वा पायपुछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा अवहरति वा ।

२ जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे । तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा• अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बंधेति वा रुभति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कवल वा पायपुछ-णमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा° अवहरति वा ।

३ मम च ण तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति । तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा •अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा वधेति वा रुभति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कवल वा पायपुछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा °अवहरति वा ।

उदीर्ण-परीषहोपसर्ग-पदम्

पञ्चभि स्थानै छद्मस्थ उदीर्णान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत, तद्यथा—

१. उदीर्णकर्मा खलु अय पुरुप उन्मत्तक-भूत । तेन मा एप पुरुप आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा ।

२ यक्षाविष्ट खलु अय पुरुष । तेन मा एप पुरुप आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा ।

३ मम च तद्भववेदनीय कर्म उदीर्ण भवति । तेन मा एप पुरुप आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा ।

उदीर्ण-परीषहोपसर्ग-पद

७३ पाच स्थानो मे छद्मस्थ उदित परीपहो तथा उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है, क्षाति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनमे अप्रभावित रहता है—

१ यह पुरुप उदीर्णकर्मा है, इसलिए यह उन्मत्त होकर मुझ पर आक्रोश करता है मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे वाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बाँधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, पमार[14] [मूर्च्छित] करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कवल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन[15] करता है, विच्छेदन[16] करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है ।

२ यह पुरुप यक्षाविष्ट है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे वाहर निकालने की धमकिया देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बाधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कवल, पादप्रोछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है ।

३ इस भव मे मेरे वेदनीय कम उदित हो गए हैं, इसलिए यह पुरुप मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे वाहर निकालने की धम-कियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बाँधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कवल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है ।

४. मम च ण सम्ममसहमाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणधियासमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

४ मम च सम्यग् असहमानस्य अक्षममानस्य अतितिक्षमाणस्य अनध्यासमानस्य किं मन्ये क्रियते ? एकान्तश मम पाप कर्म क्रियते ।

४ यदि मैं इन्हें अविचल भाव से सहन नही करूँगा, क्षान्ति नही रखूँगा, तितिक्षा नही रखूँगा और उनसे प्रभावित रहूगा तो मुझे क्या होगा ? मेरे एकान्त पापकर्म का सचय होगा।

५ मम च ण सम्म सहमाणस्स •खममाणस्स तितिक्खमाणस्स° अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगतसो मे णिज्जरा कज्जति ।

५ मम च सम्यक् सहमानस्य क्षममानस्य तितिक्षमाणस्य अध्यासमानस्य किं मन्ये क्रियते ? एकान्तश मम निर्जरा क्रियते ।

५ यदि मैं अविचल भाव से सहन करूँगा क्षान्ति रखूँगा, तितिक्षा रखूँगा और उनमे अप्रभावित रहूगा तो मुझे क्या होगा ? मेरे एकान्त निर्जरा होगी।

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्म सहेज्जा •खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा।

इत्येतैः पञ्चभि स्थानैः छद्मस्थ उदीर्णान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत ।

इन पांच स्थानों से छद्मस्थ उदित परीपहो तथा उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है।

७४ पचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्म सहेज्जा •खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा, त जहा—

पञ्चभि स्थानैः केवली उदीर्णान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत, तद्यथा—

७४ पांच स्थानो से केवली उदित परीपहो और उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है—क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है।

१ खित्तचित्ते खलु अय पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा •अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रुभति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कवल वा पायपुछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा° अवहरति वा।

१ क्षिप्तचित्त खलु अय पुरुष । तेन मा एप पुरुप आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा ।

१ यह पुरुष क्षिप्तचित्त वाला—शोक आदि से वेभान है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।

२ दित्तचित्ते खलु अय पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे •अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रुभति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कवल वा पायपुछण-

२ दृप्तचित्त खलु अय पुरुष । तेन मा एप पुरुप आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन

२ यह पुरुष दृप्तचित्त—उन्मत्त है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र,

मच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।
३ जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे °अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति उद्दवेइ वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछण-मच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।
४. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे °अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा पमारं वा णेति उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।

५ ममं च णं सम्मं सहमाणं खममाणं तितिक्खमाणं अहियासेमाणं पासेत्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गंथा उदिण्णे-उदिण्णे परीसहोवसग्गे एवं सम्मं सहिस्संति °खमिस्संति तितिक्खिस्संति° अहियासिस्संति।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा °खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा।

आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।
३ यक्षाविष्टः खलु अयं पुरुषः। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।
४ मम च तद्भववेदनीयं कर्म उदीर्णं भवति। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा प्रमारं वा नयति उपद्रवति वा, वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

५ मां च सम्यक् सहमानं क्षममाणं तितिक्षमाणं अध्यासमानं दृष्ट्वा बहवः अन्ये छद्मस्थाः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः उदीर्णान्-उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् एवं सम्यक् सहिष्यन्ते क्षमिष्यन्ते तितिक्षिष्यन्ते अध्यासिष्यन्ते।

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः केवली उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत।

पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।
३ यह पुरुष यक्षाविष्ट है इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है,
४ मेरे इस भव में वेदनीय कर्म उदित हो गए हैं इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है,

५ मुझे अविचल भाव से परीषहों को सहता हुआ, क्षान्ति रखता हुआ, तितिक्षा रखता हुआ, अप्रभावित रहता हुआ देखकर बहुत सारे छद्मस्थ श्रमण-निर्ग्रन्थ परीषहों और उपसर्गों के उदित होने पर उन्हें अविचल भाव से सहन करेंगे, क्षान्ति रखेंगे, तितिक्षा रखेंगे और उनसे अप्रभावित रहेंगे।

इन पांच स्थानों से केवली उदित परिषहों तथा उपसर्गों को अविचलभाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है।

हेउ-पदं

७५ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—
हेउ ण जाणति, हेउ ण पासति,
हेउ ण वुज्झति, हेउ णाभिगच्छति,
हेउ अण्णाणमरण मरति।

७६ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—
हेउणा ण जाणति,
•हेउणा ण पासति,
हेउणा ण वुज्झति,
हेउणा णाभिगच्छति,°
हेउणा अण्णाणमरण मरति।

७७ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—
हेउ जाणइ, •हेउ पासइ,
हेउ वुज्झइ हेउ अभिगच्छइ,°
हेउ छउमत्थमरण मरति।

७८ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—
हेउणा जाणइ, •हेउणा पासइ,
हेउणा वुज्झइ, हेउणा अभिगच्छइ,°
हेउणा छउमत्थमरण मरइ।

हेतु-पदम्

पञ्च हेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हेतु न जानाति, हेतु न पश्यति,
हेतु न वुध्यते, हेतु नाभिगच्छति,
हेतु अज्ञानमरण म्रियते।

पञ्च हेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हेतुना न जानाति, हेतुना न पश्यति,
हेतुना न वुध्यते, हेतुना नाभिगच्छति,
हेतुना अज्ञानमरण म्रियते।

पञ्च हेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हेतु जानाति, हेतु पश्यति,
हेतु वुध्यते, हेतु अभिगच्छति,
हेतु छद्मस्थमरण म्रियते।

पञ्च हेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हेतुना जानाति, हेतुना पश्यति,
हेतुना वुध्यते, हेतुना अभिगच्छति,
हेतुना छद्मस्थमरण म्रियते।

हेतु-पद

७५ हेतु (परोक्षज्ञानी) पाच हैं*—
१ हेतु को नही जानने वाला,
२ हेतु को नही देखने वाला,
३ हेतु पर श्रद्धा नही करने वाला,
४ हेतु को प्राप्त नही करने वाला,
५ सहेतुक अज्ञानमरण मरने वाला।

७६ हेतु पाच हैं—
१ हेतु से नही जानने वाला,
२ हेतु से नही देखने वाला,
३ हेतु मे श्रद्धा नही करने वाला,
४ हेतु से प्राप्त नही करने वाला,
५ सहेतुक अज्ञानमरण से मरने वाला।

७७ हेतु पाच हैं—
१ हेतु को जानने वाला,
२ हेतु को देखने वाला,
३ हेतु पर श्रद्धा करने वाला,
४ हेतु को प्राप्त करने वाला,
५ सहेतुक छद्मस्थ-मरण मरने वाला।

७८ हेतु पाच हैं—
१ हेतु से जानने वाला,
२ हेतु से देखने वाला,
३ हेतु मे श्रद्धा करने वाला,
४ हेतु से प्राप्त करने वाला,
५ सहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरने वाला।

अहेउ-पदं

७९ पच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
अहेउ ण जाणति,
•अहेउं ण पासति,
अहेउ ण वुज्झति,
अहेउ णाभिगच्छति,°
अहेउ छउमत्थमरण मरति।

अहेतु-पदम्

पञ्च अहेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अहेतु न जानाति, अहेतु न पश्यति,
अहेतु न वुध्यते, अहेतु नाभिगच्छति,
अहेतु छद्मस्थमरण म्रियते।

अहेतु-पद

७९ अहेतु पाच हैं—
१ अहेतु को नही जानने वाला,
२ अहेतु को नही देखने वाला,
३ अहेतु पर श्रद्धा नही करने वाला,
४ अहेतु को प्राप्त नही करने वाला,
५ अहेतु छद्मस्थ-मरण मरने वाला।

८०. पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—
अहेउणा ण जाणति,
•अहेउणा ण पासति,
अहेउणा ण बुज्झति,
अहेउणा णाभिगच्छति,
अहेउणा छउमत्यमरण मरति।

पञ्च अहेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अहेतुना न जानाति,
अहेतुना न पश्यति,
अहेतुना न बुध्यते,
अहेतुना नाभिगच्छति,
अहेतुना छद्मस्थमरण म्रियते।

८० अहेतु पाच हैं—
१ अहेतु से नहीं जानने वाला,
२ अहेतु से नहीं देखने वाला,
३ अहेतु से श्रद्धा नही करने वाला,
४ अहेतु मे प्राप्त नहीं करने वाला,
५ अहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरने वाला।

८१. पंच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—
अहेउ जाणति, •अहेउ पासति,
अहेउ बुज्झति,
अहेउ अभिगच्छति,°
अहेउ केवलिमरण मरति।

पञ्च अहेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अहेतु जानाति, अहेतु पश्यति,
अहेतु बुध्यते, अहेतु अभिगच्छति,
अहेतु केवलिमरण म्रियते।

८१ अहेतु पाच हैं—
१ अहेतु को जानने वाला,
२ अहेतु को देखने वाला,
३ अहेतु पर श्रद्धा करने वाला,
४ अहेतु को प्राप्त करने वाला,
५ अहेतुक केवली-मरण मरने वाला।

८२. पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—
अहेउणा जाणति,
•अहेउणा पासति,
अहेउणा बुज्झति,
अहेउणा अभिगच्छति,°
अहेउणा केवलिमरणं मरति।

पञ्च अहेतव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अहेतुना जानाति, अहेतुना पश्यति,
अहेतुना बुध्यते, अहेतुना अभिगच्छति,
अहेतुना केवलिमरण म्रियते।

८२ अहेतु पाच हैं—
१ अहेतु मे जानने वाला,
२ अहेतु से देखने वाला,
३ अहेतु से श्रद्धा करने वाला,
४ अहेतु से प्राप्त करने वाला,
५ अहेतुक केवली-मरण से मरने वाला।

अणुत्तर-पदं

८३ केवलिस्स ण पच अणुत्तरा पण्णत्ता, त जहा—
अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दसणे,
अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे,
अणुत्तरे वीरिए।

अनुत्तर-पदम्

केवलिन पञ्च अनुत्तराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन,
अनुत्तर चारित्र अनुत्तर तप,
अनुत्तर वीर्यम्।

अनुत्तर-पद

८३ केवली के पाच स्थान अनुत्तर हैं[५८]—
१ अनुत्तर ज्ञान, २ अनुत्तर दर्शन,
३ अनुत्तर चारित्र, ४ अनुत्तर तप,
५ अनुत्तर वीर्य।

पच-कल्लाण-पद

८४. पउमप्पहे ण अरहा पचचित्ते हुत्था, त जहा—
१ चित्ताहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते।
२. चित्ताहि जाते।
३. चित्ताहि मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारित पव्वइए।

पञ्च-कल्याण-पदम्

पद्मप्रभ अर्हन् पञ्चचित्र अभवत्, तद्यथा—
१ चित्राया च्युत च्युत्वा गर्भ अवक्रान्त।
२ चित्राया जात।
३. चित्राया मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित।

पञ्च-कल्याण-पद

८४ पद्मप्रभ तीर्थंकर के पच-कल्याण चित्रा नक्षत्र मे हुए—
१ चित्रा में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए,
२ चित्रा नक्षत्र मे जन्मे,
३ चित्रा नक्षत्र मे मुण्डित होकर अगार-धर्म से अनगार-धर्म मे प्रव्रजित हुए,

४ चित्ताहिं अणते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे ।

५ चित्ताहिं परिणिव्वुत्ते ।

४ चित्राया अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न प्रतिपूर्ण केवलवर-ज्ञानदर्शन समुत्पन्न ।

५ चित्राया परिनिर्वृत ।

४ चित्ता नक्षत्र मे अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञानवरदर्शन को सप्राप्त हुए,

५ चित्ता नक्षत्र मे परिनिवृत हुए ।

८५ पुप्फदते ण अरहा पचमूले हुत्था, त जहा—
मूलेण चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

पुष्पदन्त अर्हन् पञ्चमूल अभवत्, तद्यथा—
मूले च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

८५ पुष्पदन्त तीर्थंकर के पच कल्याण मूल नक्षत्र मे हुए—
मूल मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

८६ *सीयले ण अरहा पचपुव्वासाढे हुत्था, त जहा—
पुव्वासाढाहिं चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

शीतल अर्हन् पञ्चपूर्वाषाढ अभवत्, तद्यथा—
पूर्वाषाढाया च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

८६ शीतल तीर्थंकर के पच कल्याण पूर्वाषाढा नक्षत्र मे हुए—
पूर्वाषाढा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

८७ विमले ण अरहा पचउत्तराभद्दवए हुत्था, त जहा—
उत्तराभद्दवयाहिं चुते चइत्ता गब्भ वयकते ।

विमल अर्हन् पञ्चोत्तरभद्रपद अभवत्, तद्यथा—
उत्तरभद्रपदाया च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

८७ विमल तीर्थंकर के पच कल्याण उत्तरभाद्रपद नक्षत्र मे हुए—
उत्तरभाद्रपद मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

८८ अणते ण अरहा पचरेवतिए हुत्था, त जहा—
रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

अनन्त अर्हन् पञ्चरैवतिक अभवत्, तद्यथा—
रेवत्या च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

८८ अनन्त तीर्थंकर के पच कल्याण रेवती नक्षत्र मे हुए—
रेवती मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए ।

८९ धम्मे ण अरहा पंचपूसे हुत्था, त जहा—
पूसेण चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

धर्म अर्हन् पञ्चपुष्य अभवत्, तद्यथा—
पुष्ये च्युत च्युत्वा गर्भ अवक्रान्त ।

८९ धर्म तीर्थंकर के पच कल्याण पुष्य नक्षत्र मे हुए—
पुष्य मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

९० सती ण अरहा पचभरणीए हुत्था, त जहा—
भरणीहिं चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

शान्ति अर्हन् पञ्चभरणीक अभवत्, तद्यथा—
भरण्या च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९० शान्ति तीर्थंकर के पच कल्याण भरणी नक्षत्र मे हुए—
भरणी मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

९१ कुथू ण अरहा पंचकत्तिए हुत्था, त जहा—
कत्तियाहिं चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

कुन्थु अर्हन् पञ्चकृत्तिक अभवत्, तद्यथा—
कृत्तिकाया च्युत क्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९१ कुथु तीर्थंकर के पच कल्याण कृत्तिका नक्षत्र मे हुए—
कृत्तिका मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए ।

९२ अरे ण अरहा पचरेवतिए हुत्था, त जहा—
रेवतिहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

अर अर्हन् पञ्चरैवतिक अभवत्, तद्यथा—
रेवत्या च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९२ अर तीर्थंकर के पच कल्याण रेवती नक्षत्र मे हुए—
रेवती मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

९३ मुणिसुव्वए ण अरहा पचसवणे हुत्था, त जहा—
सवणेण चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

मुनिसुव्रत अर्हन् पञ्चश्रवण अभवत्, तद्यथा—
श्रवणे च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९३ मुनिसुव्रत तीर्थंकर के पच कल्याण श्रवण नक्षत्र मे हुए—
श्रवण मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।

९४. णमी ण अरहा पचआसिणीए हुत्था, त जहा—
आसिणीहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

नमि अर्हन् पञ्चाश्विनीक अभवत्, तद्यथा—
अश्विन्या च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त. ।

९४ नमि तीर्थंकर के पच कल्याण अश्विनी नक्षत्र मे हुए—
अश्विनी मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।

९५. णेमी ण अरहा पचचित्ते हुत्था, त जहा—
चित्ताहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

नेमि अर्हन् पञ्चचित्र अभवत्, तद्यथा—
चित्राया च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९५ नेमि तीर्थंकर के पच कल्याण चित्रा नक्षत्र मे हुए—
चित्रा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।

९६. पासे ण अरहा पचविसाहे हुत्था, त जहा—
विसाहाहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।°

पार्श्व अर्हन् पञ्चविशाख अभवत्, तद्यथा—
विशाखाया च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।

९६ पार्श्व तीर्थंकर के पच कल्याण विशाखा नक्षत्र मे हुए—
विशाखा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।

९७ समणे भगव महावीरे पचहत्थुत्तरे होत्था, त जहा—
१ हत्थुत्तराहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।
२ हत्थुत्तराहि गब्भाओ गब्भ साहरिते ।
३ हत्थुत्तराहि जाते ।
४ हत्थुत्तराहि मुडे भवित्ता °अगाराओ अणगारित° पव्वइए ।
५ हत्थुत्तराहि अणते अणुत्तरे °णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे° केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे ।

श्रमण भगवान् महावीर. पञ्चहस्तोत्तर अभवत्, तद्यथा—
१ हस्तोत्तराया च्युत च्युत्वा गर्भं अवक्रान्त ।
२ हस्तोत्तराया गर्भात् गर्भं सहृत ।
३ हस्तोत्तराया जात ।
४. हस्तोत्तराया मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित॰ ।
५. हस्तोत्तराया अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न प्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम् ।

९७ श्रमण भगवान् महावीर के पच कल्याण हस्तोत्तर [उत्तर फाल्गुनी] नक्षत्र मे हुए"—
१ हस्तोत्तर नक्षत्र मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए ।
२ हस्तोत्तर नक्षत्र मे देवानदा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे सहृत हुए ।
३ हस्तोत्तर नक्षत्र मे जन्मे ।
४ हस्तोत्तर नक्षत्र मे मुण्डित होकर अगार-धर्म से अनगार-धर्म मे प्रव्रजित हुए,
५ हस्तोत्तर नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञानवरदर्शन को सप्राप्त हुए ।

बीओ उद्देसो

महाणदी-उत्तरण-पद

९८ णो कप्पइ णिग्गथाणं वा णिग्गथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पच महण्णवाओ महाणदीओ अतो माणस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा सतरित्तए वा, त जहा—
गगा, जउणा, सरऊ, एरावती, मही।
पचहिं ठाणेहिं कप्पति, तं जहा—
१ भयसि वा,
२ दुब्भिक्खसि वा,
३ पव्वहेज्ज वा णं कोई,
४ दओघसि वा एज्जमाणसि महता वा,
५ अणारिएसु।

महानदी-उत्तरण-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा इमा उद्दिष्टा गणिता व्यञ्जिता पञ्च महार्णवा महानद्य अन्त मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतु वा सतरीतु वा, तद्यथा—
गङ्गा, यमुना, सरयू, ऐरावती, मही।
पञ्चभि स्थानै कल्पते, तद्यथा—
१ भये वा,
२ दुर्भिक्षे वा,
३ प्रव्यपयेत् (प्रवाहयेत्) वा कश्चित्,
४ उदकौघे वा आयति महता वा,
५ अनार्यै।

महानदी-उत्तरण-पद

९८ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को महानदी के रूप में कथित, गणित और प्रख्यात इन पाच महार्णव महानदियो का महीने में दो बार या तीन बार से अधिक उत्तरण तथा सतरण नहीं करना चाहिए'", जैसे—
१ गगा, २ यमुना, ३ सरयू,
४ ऐरावती, ५ मही।
पाच कारणो से वह किया जा सकता है—
१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर,
२ दुर्भिक्ष होने पर,
३ किसी के द्वारा व्यथित या प्रवाहित किए जाने पर,
४ बाढ आ जाने पर,
५ अनार्यो द्वारा उपद्रुत किए जाने पर।

पढमपाउस-पद

९९ णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गथीण वा पढमपाउससि गामाणुगामं दूइज्जित्तए।
पचहिं ठाणेहिं कप्पइ, त जहा—
१ भयसि वा,
२ दुब्भिक्खसि वा,
३. °पव्वहेज्ज वा ण कोई,
४ दओघसि वा एज्जमाणसि° महता वा,
५ अणारिएहिं।

प्रथम प्रावृट्-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा प्रथमप्रावृषि ग्रामानुग्राम द्रवितुम्।
पञ्चभि स्थानै कल्पते, तद्यथा—
१ भये वा,
२ दुर्भिक्षे वा,
३ प्रव्यपयेत् (प्रवाहयेत्) वा कश्चित्,
४ उदकौघे वा आयति महता वा,
५ अनार्यै।

प्रथम प्रावृट्-पद

९९ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को प्रथम प्रावृट्-चातुर्मास के पूर्वकाल में ग्रामानुग्राम विहार नहीं करना चाहिए। पाच कारणो से वह किया जा सकता है'"—
१ शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर,
२ दुर्भिक्ष होने पर,
३ किसी के द्वारा व्यथित—ग्राम से निकाल दिए जाने पर,
४ बाढ आ जाने पर,
५ अनार्यो द्वारा उपद्रुत किए जाने पर।

वासावास-पदं

१०० वासावासं पज्जोसवितार्णं णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगाम दूइज्जित्तए।
पचहि ठाणेहि कप्पइ, त जहा—
१ णाणट्टयाए,
२ दसणट्टयाए,
३. चरित्तट्टयाए,
४ आयरिय-उवज्भाया वा से वीसुभेज्जा।
५ आयरिय-उवज्भायाण वा वहिता वेआवच्चकरणयाए।

वर्षावास-पदम्

वर्पावास पर्युषिताना नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा ग्रामानुग्राम द्रवितुम्।
पञ्चभि स्थानै कल्पते, तद्यथा—
१ ज्ञानार्थाय,
२ दर्शनार्थाय,
३ चरित्रार्थाय,
४ आचार्योपाध्यायौ वा तस्य विष्वग्-भवेता,
५. आचार्योपाध्याययो वा वहिस्तात् वैयावृत्यकरणाय।

वर्षावास-पद

१०० निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को वर्षावास में पर्युपणा कल्पपूर्वक निवास कर ग्रामानुग्राम विहार नही करना चाहिए। पाच कारणो से वह किया जा सकता है[१२]—
१ ज्ञान के लिए, २ दर्शन के लिए,
३ चरित्र के लिए, ४ आचार्य या उपाध्याय की मृत्यु के अवसर पर,
५ वर्पाक्षेत्र से वाहर रहे हुए आचार्य या उपाध्याय का वैयावृत्त्य करने के लिए।

अणुग्घातिय-पदं

१०१ पच अणुग्घातिया पण्णत्ता, तं जहा—
हत्यकम्म करेमाणे,
मेहुण पडिसेवेमाणे,
रातीभोयण भुजेमाणं,
सागारियपिड भुजेमाणे
रार्यापड भुजेमाणे।

अनुद्घात्य-पदम्

पञ्च अनुद्घात्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हस्तकर्म कुर्वन्,
मैथुन प्रतिषेवमाण,
रात्रिभोजन भुञ्जान,
सागारिकपिण्ड भुञ्जान,
राजपिण्ड भुञ्जान।

अनुद्घात्य-पद

१०१ पाच अनुद्घातिक [गुरु प्रायश्चित्त के योग्य] होते हैं—
१ हस्तकर्म करने वाला,
२ मैथुन की प्रतिसेवना करने वाला,
३ रात्रि-भोजन करने वाला,
४ सागारिकपिंड[१३] [शय्यातरपिंड] का भोजन करने वाला,
५ राजपिंड[१४] का भोजन करने वाला।

रायतेउर-पवेस-पद

१०२. पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे रायतेउरमणुपविसमाणे णाइक्कमति, त जहा—
१ णगरे सिया सव्वतो समता गुत्ते गुत्तदुवारे, वहवे समणमाहणा णो सचाएति भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विण्णवणट्टयाए रायतेउरमणुपविसेज्जा।

राजान्तःपुर-प्रवेश-पदम्

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रथ राजान्त पुर अनुप्रविशन् नातिक्रामति, तद्यथा—
१ नगर स्यात् सर्वत समन्तात् गुप्त गुप्तद्वार, वहव श्रमणमाहणा. नो शक्नुवन्ति भक्ताय वा पानाय वा निष्क्रमितु वा प्रवेष्टु वा, तेपा विज्ञापनार्थाय राजान्त पुर अनुप्रविशेत्।

राजान्त.पुर-प्रवेश-पद

१०२ पाच स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ राजा के अन्त पुर मे अनुप्रविष्ट होता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—
१ यदि नगर चारो ओर परकोटे से घिरा हुआ हो तथा उसके द्वार वन्द कर दिए गये हो, वहुत सारे श्रमण और माहन भोजन-पानी के लिए नगर से वाहर निष्क्रमण और प्रवेश न कर सकें, उस स्थिति मे उनके प्रयोजन का विज्ञापन करने के लिए वह राजा के अन्त पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,

२. पाडिहारियं वा पीढ-फलग-सेज्जा-सथारग पच्चप्पिणमाणे रायतेउरमणुपविसेज्जा ।

२ प्रातिहारिक वा पीठ-फलक-शय्या-सस्तारक प्रत्यर्पयन् राजान्त पुरमनुप्रविशेत् ।

२ प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या सस्तारक को वापस देने के लिए राजा के अन्त पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,

३ हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीते रायतेउरमणुपविसेज्जा ।

३ हयस्य वा गजस्य वा दुष्टस्य आगच्छत भीत राजान्त पुर अनुप्रविशेत् ।

३ दुष्ट घोडे या हाथी आदि के सामने आ जाने पर रक्षा के लिए राजा के अन्त -पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,

४ परो व ण सहसा वा वलसा वा वाहाए गहाय रायतेउरमणुपवेसेज्जा ।

४ परो वा सहसा वा बलेन वा बाहून् गृहीत्वा राजान्त पुर अनुप्रवेशयेत् ।

४ कोई अन्य व्यक्ति अचानक बलपूर्वक बाहु पकड कर ले जाए तो राजा के अन्त -पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,

५ वहिता व ण आरामगय वा उज्जाणगय वा रायतेउरजणो सव्वतो समता सपरिक्खिवित्ता ण सण्णिवेसिज्जा—

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे °रायतेउरमणुपविसमाणे° णातिक्कमइ ।

५ वहिस्तात् वा आरामगत वा उद्यानगतवा राजान्त पुरजनो सर्वत समन्तात् सपरिक्षिप्य सन्निविशेत्—

इत्येतै पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ राजान्त पुर अनुप्रविशन् नातिक्रामति ।

५ कोई साधु नगर से बाहर आराम या उद्यान मे ठहरा हुआ हो और वहा क्रीडा करने के लिए राजा का अन्त पुर आ जाए, राजपुरुष उस आराम को घेर लें—निर्गम व प्रवेश बन्द कर दें, उस स्थिति मे वह वही रह सकता है।

इन पाच स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ राजा के अन्त पुर मे अनुप्रविष्ट होता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता ।

गब्भधरण-पद

गर्भधरण-पदम्

गर्भधरण-पद

१०३ पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि असवसमाणीवि गब्भ धरेज्जा, त जहा—

१ इत्थी दुव्वियडा दुण्णिसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा ।

पञ्चभि स्थानै. स्त्री पुरुषेण सार्धं असवसन्त्यपि गर्भं धरेत्, तद्यथा—

१ स्त्री दुर्विवृता दुर्निषण्णा शुक्रपुद्गलान् अधितिष्ठेत् ।

१०३ पाच कारणो से स्त्री पुरुष का सहवास न करती हुई गर्भ को धारण कर सकती है—

१ अनावृत तथा दुर्निषण्ण—पुरुष वीर्य से ससृष्ट स्थान को गुह्य प्रदेश से आक्रान्त कर बैठी हुई स्त्री के योनि-देश मे शुक्र-पुद्गलों का आकर्षण होने पर,

२ सुक्कपोग्गलससिट्ठे व से वत्थे अतोजोणीए अणुपवेसेज्जा ।

२ शुक्रपुद्गलसंसृष्ट वा तस्या वस्त्र अन्त योन्या अनुप्रविशेत् ।

२ शुक्र-पुद्गलो से ससृष्ट वस्त्र के योनि-देश मे अनुप्रविष्ट हो जाने पर,

३ सइ वा से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ।

३ स्वय वा सा शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ।

३ पुत्रार्थिनी होकर स्वय अपने ही हाथो से शुक्र-पुद्गलो को योनि-देश मे अनुप्रविष्ट कर देने पर,

४ परो व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ।

४ परो वा तस्या शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ।

४ दूसरो के द्वारा शुक्र-पुद्गलो के योनि-देश मे अनुप्रविष्ट किए जाने पर,

५ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपवेसेज्जा—

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं •इत्थी पुरिसेण सद्धि असवसमाणीवि गब्भ° धरेज्जा।

५ शीतोदकविकटेन वा तस्या आचामन्त्यो शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयु—

इत्येतै पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्वं असवसन्ती गर्भ धरेत्।

५ नदी, तालाव आदि मे स्नान करती हुई के योनि-देश मे शुक्र-पुद्गलो के अनुप्रविष्ट हो जाने पर।

इन पाच कारणों से स्त्री पुरुष का महवास न करती हुई भी गर्भ को धारण कर सकती है।

१०४ पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भ णो धरेज्जा, त जहा—

१ अप्पत्तजोव्वणा।
२ अतिकतजोव्वणा।
३ जातिवंझा।
४ गेलण्णपुट्ठा।
५ दोमणंसिया—

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं •इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भ° णो धरेज्जा।

पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—

१ अप्राप्तयौवना।
२ अतिक्रान्तयौवना।
३ जातिवन्ध्या।
४ ग्लानस्पृष्टा।
५ दौर्मनस्यिका—

इत्येतै पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१०४ पाच कारणो से स्त्री पुरुप का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती—

१ पूर्ण युवति[७०] न होने मे,
२ विगतयौवना[७१] होने से,
३ जन्म मे ही वध्या होने मे,
४ रोग से स्पृष्ट होने से,
५. शोकग्रस्त होने से।

इन पाच कारणो से स्त्री पुरुप का महवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही कर सकती।

१०५ पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि संवसमाणीवि णो गब्भ धरेज्जा, त जहा—

१ णिच्चोउया।
२ अणोउया।
३. वाणण्णसोया।
४ वाविद्धसोया।
५. अणंगपडिसेवणी—

इच्चेतेहिं •पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भं° णो धरेज्जा।

पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्ध सवसन्त्यपि नो गर्भं धरेत्, तद्यथा—

१ नित्यर्तुका।
२ अनृतुका।
३ व्यापन्नश्रोता।
४ व्याविद्धश्रोता।
५ अनङ्गप्रतिषेविणी—

इत्येतै पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्धं मवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१०५ पाच कारणो से स्त्री पुरुप का महवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती—

१ सदा ऋतुमती रहने से,
२ कभी भी ऋतुमती न होने मे,
३ गर्भाशय के नष्ट हो जाने से,
४ गर्भाशय की शक्ति के क्षीण हो जाने मे,
५ अप्राकृतिक काम-क्रीडा करने, अत्यधिक पुरुप सहवास करने या अनेक पुरुषो का सहवास करने से[७२]।

इन पाच कारणो से स्त्री पुरुप का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही कर सकती।

१०६ पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भ णो धरेज्जा, तं जहा—

पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—

१०६ पाच कारणों मे स्त्री पुरुप का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती—

१ उउमि णो णिगामपडिसेविणी यावि भवति।
२ समागता वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसति।
३ उदिण्णे वा से पित्तसोणिते।
४ पुरा वा देवकम्मणा।
५ पुत्तफले वा णो णिव्विट्ठे भवति—इच्चेतेहिं •पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं सवसमाणीवि गब्भं° णो धरेज्जा।

१ ऋतौ नो निकामप्रतिषेविणी चापि भवति।
२ समागता वा तस्या शुक्रपुद्गला परिविध्वसन्ते।
३ उदीर्णं वा तस्या पित्तशोणितम्।
४ पुरा वा देवकर्मणा।
५ पुत्रफले वा नो निर्दिष्टो भवति—इत्येतै पञ्चभि स्थानै स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१ ऋतुकाल मे वीर्यपात होने तक पुरुष का प्रतिसेवन नही करने से,
२ समागत शुक्र-पुद्गलो के विध्वस्त हो जाने से,
३ पित्त-प्रधान शोणित के उदीर्ण हो जाने से, ४ देव-प्रयोग से,
५ पुत्र फलदायी कर्म के अर्जित न होने से।
इन पाच कारणो से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही कर सकती।

णिग्गंथ-णिग्गंथी-एगओवास-पद

१०७ पचहिं ठाणेहिं णिग्गंथीओ य एगतओ ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा णातिक्कमति त जहा—
१ अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य एग मह अगामिय छिण्णावाय दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयतो ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा णातिक्कमति।
२. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य गामसि वा णगरसि वा •खेडसि वा कव्वडसि वा मडवसि वा पट्टणसि वा दोणमुहसि वा आगरसि वा णिगमसि वा आसमसि वा सण्णिवेससि वा° रायहाणिसि वा वास उवागता, एगतिया जत्थ उवस्सय लभति, एगतिया णो लभति, तत्थेगतो ठाण वा •सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा° णातिक्कमति।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-एकत्रवास-पदम्

पञ्चभि स्थानै निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्य च एकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति, तद्यथा—
१ सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च एका महती अग्रामिका छिन्नापाता दीर्घाद्ध्वान अटवी अनुप्रविष्टा, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।
२ सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च ग्रामे वा नगरे वा खेटे वा कर्बटे वा मडम्बे वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा आकरे वा निगमे वा आश्रमे वा सन्निवेशे वा राजधान्या वा वास उपागता एको यत्र उपाश्रय लभन्ते, एको नो लभन्ते, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-एकत्रवास-पद

१०७ पाच स्थानो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते—
१ कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया किसी विशाल, बस्तीशून्य, आवागमन-रहित तथा लम्बी अटवी मे अनुप्रविष्ट हो जाने पर वहा एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते,
२ कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, पत्तन, आकर, द्रोणमुख, निगम, आश्रम, सन्निवेश और राजधानी मे गए। वहा दोनो मे से किसी वर्ग को उपाश्रय मिले या किसी को न मिले तो वे एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते,

३ अत्थेगइया णिग्गथा य णिग्गथीओ य णागकुमारावाससि वा सुवण्णकुमारावाससि वा वास उवागता, तत्थेगओ °ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा° णातिक्कमति ।

३. सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वास उपागता, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषिधीका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति ।

३ कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया नागकुमार आदि के आवास मे रहे। वहा अतिविजनता होने के कारण निर्ग्रन्थियो की सुरक्षा के लिए एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते,

४. आमोसगा दीसति, ते इच्छति णिग्गथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाण वा °सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति ।

४ आमोषका दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थी चीवरप्रतिज्ञया परिग्रहीतुम्, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति ।

४ कहीं चोर बहुत हो और वे निर्ग्रन्थियो के वस्त्रों को चुराना चाहते हो, वहा निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ।

५. जुवाणा दीसति, ते इच्छति णिग्गथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाण वा °सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा° णातिक्कमति ।

५ युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थी मैथुनप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुम्, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति ।

५ कहीं युवक बहुत हो और वे निर्ग्रन्थियो के ब्रह्मचर्य को खण्डित करना चाहते हो, वहा निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं °णिग्गथा णिग्गथीओ य एगतओ ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा° णातिक्कमति ।

इत्येतै पञ्चभि स्थानै निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च एकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति ।

इन पाच स्थानों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते ।

१०८. पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धि संवसमाणे णाइक्कमति, त जहा—

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ. अचेलक सचेलकाभि निर्ग्रन्थीभि सार्धं सवसन् नातिक्रामति, तद्यथा—

१०८ पाच स्थानो से अचेल निर्ग्रन्थ सचेल निर्ग्रन्थियो के साथ रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते—

१. खित्तचित्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।

१ क्षिप्तचित्त श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलक सचेलकाभि निर्ग्रन्थीभि सार्धं सवसन् नातिक्रामति ।

१ शोक आदि से क्षिप्तचित्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियो के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

२ °दित्तचित्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।

२ दृप्तचित्त श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलक सचेलकाभि निर्ग्रन्थीभि सार्धं सवसन् नातिक्रामति ।

२ हर्ष आदि से दृप्तचित्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थो के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियो के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

३ जक्खाइट्ठे समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धिं सवसमाणे णातिक्कमति।

३ यक्षाविष्ट श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेपु अविद्यमानेपु अचेलक सचेलकाभि निर्ग्रन्थिभि सार्ध सवसन् नातिक्रामति।

३ यक्षाविष्ट निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

४ उम्मायपत्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धिं सवसमाणे णातिक्कमति।

४ उन्मादप्राप्त श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेपु अविद्यमानेपु अचेलक सचेलकाभि निर्ग्रन्थीभि सार्ध सवसन् नातिक्रामति।

४ वायु-प्रकोप आदि से उन्मत्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

५ णिग्गथीपव्वाइयए समणे णिग्गथे णिग्गथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धिं सवसमाणे णातिक्कमति।

५. निर्ग्रन्थीप्रव्राजितक श्रमण. निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेपु अविद्यमानेपु अचेलक. सचेलकाभि निर्ग्रन्थीभि सार्ध सवसन् नातिक्रामति।

५ निर्ग्रन्थियों द्वारा प्रव्रजित निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

आसव-सवर-पद

आश्रव-संवर-पदम्

आश्रव-संवर-पद

१०६ पच आसवदारा पण्णत्ता, त जहा— मिच्छत्त, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा।

पञ्चाश्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाया, योगा।

१०६. आश्रवद्वार पाच हैं—
१ मिथ्यात्व—विपरीत तत्त्वश्रद्धा,
२ अविरति—अत्यागवृत्ति,
३ प्रमाद—आत्मिक अनुत्साह,
४ कषाय—आत्मा का राग-द्वेषात्मक उत्ताप, ५ योग—मन, वचन और काया का व्यापार।

११० पच सवरदारा पण्णत्ता, त जहा— समत्त, विरती, अपमादो, अकसाइत्त, अजोगित्त।

पञ्च सवरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषायित्व, अयोगित्वम्।

११० सवरद्वार पाच हैं—
१ सम्यक्त्व—सम्यक् तत्त्वश्रद्धा,
२ विरति—त्यागभाव,
३ अप्रमाद—आत्मिक उत्साह,
४ अकषाय—राग-द्वेष से निवृत्ति,
५ अयोग—प्रवृत्ति-निरोध।

दंड-पदं

दण्ड-पदम्

दण्ड-पद

१११ पच दडा पण्णत्ता, त जहा— अट्ठादडे, अणट्ठादडे, हिंसादडे, अकस्मादडे, दिट्ठीविप्परियासियादडे।

पञ्च दण्डा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड, हिंसादण्ड, अकस्माद्दण्ड, दृष्टिविपर्यासिकीदण्ड।

१११ दण्ड पाच हैं—
१ अर्थदण्ड—प्रयोजनवश अपने या दूसरों के लिए त्रस या स्थावर प्राणियो की हिंसा करना, २ अनर्थदण्ड—निष्प्रयोजन हिंसा करना, ३ हिंसादण्ड—'यह मुझे मार रहा है, मारेगा या इसने मुझको मारा था'—इसलिए हिंसा करना,
४ अकस्मात्दण्ड—एक के वध के लिए प्रहार करने पर दूसरे का वध हो जाना।
५ दृष्टिविपर्यासदण्ड—मित्र को अमित्र जानकर दण्डित करना।

किरिया-पदं

११२ पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
आरंभिया, पारिग्गहिया,
मायावत्तिया,
अपच्चक्खाणकिरिया,
मिच्छादसणवत्तिया।

११३ मिच्छादिट्ठियाण णेरइयाण पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
•आरंभिया, पारिग्गहिया,
मायावत्तिया,
अपच्चक्खाणकिरिया,°
मिच्छादसणवत्तिया।

११४ एवं—सव्वेसि णिरतर जाव मिच्छद्दिट्ठियाण वेमाणियाण, णवरं—विगलिंदिया मिच्छद्दिट्ठी ण भण्णति। सेस तहेव।

११५. पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
काइया, आहिगरणिया,
पाओसिया, पारितावणिया,
पाणातिवातकिरिया।

११६ णेरइयाण पच एव चेव।
एवं—णिरतर जाव वेमाणियाण।

११७ पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
आरंभिया, •पारिग्गहिया,
मायावत्तिया,
अपच्चक्खाणकिरिया,°
मिच्छादसणवत्तिया।

११८ णेरइयाण पच किरिया णिरतर जाव वेमाणियाण।

क्रिया-पदम्

पञ्च क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिगहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

मिथ्यादृष्टिकाना नैरयिकाना पच क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी,
मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया,
मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

एवम्—सर्वेषा निरन्तर यावत् मिथ्यादृष्टिकाना वैमानिकाना, नवर—विकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयो न भण्यन्ते। शेष तथैव।

पच क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोपिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातक्रिया।

नैरयिकाणा पञ्च एव चैव।
एवम्—निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।

पञ्च क्रिया. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी,
मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया,
मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

नैरयिकाणा पच क्रिया निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।

क्रिया-पद

११२ क्रिया पाच प्रकार की है[७]—
१ आरंम्भिकी, २ पारिग्रहिकी,
३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया,
५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

११३ मिथ्यादृष्टि नैरयिको के पाच क्रियाए होती हैं[७]—
१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी,
३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया,
५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

११४ इसी प्रकार विकलेन्द्रियो तथा शेष सभी मिथ्यादृष्टि वाले दण्डको मे पाचों ही क्रियाए होती हैं[७]।

११५ क्रिया पाच प्रकार की है[७]—
१ कायिकी, २ आधिकरणिकी,
३ प्रादोपिकी, ४ पारितापनिकी,
५ प्राणातिपातक्रिया।

११६ सभी दण्डको मे ये पाच क्रियाए होती हैं[७]।

११७ क्रिया पाच प्रकार की है[७]—
१ आरम्भिकी, २ पारिग्रहिकी,
३ मायाप्रत्यया, ४ अप्रत्याख्यानक्रिया,
५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

११८ सभी दण्डको मे ये पाचो क्रियाए होती हैं[८]।

११९. पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
दिट्ठिया, पुट्ठिया,
पाडुच्चिया, सामतोवणिवाइया,
साहत्थिया ।

पञ्च क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दृष्टिजा, पृष्टिजा, प्रातित्यिकी,
सामन्तोपनिपातिकी, स्वाहस्तिकी ।

११९ क्रिया पाच प्रकार की है—
१ दृष्टिजा, २ पृष्टिजा, ३ प्रातित्यिकी,
४ सामतोपनिपातिकी, ५ स्वाहस्तिका ।

१२० एव णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

एव नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम् ।

१२० सभी दण्डको मे ये पाचो क्रियाए होती है।

१२१ पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
णेसत्थिया, आणवणिया,
वेयारणिया, अणाभोगवत्तिया,
अणवकखवत्तिया ।
एव जाव वेमाणियाण ।

पञ्च क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैसृष्टिकी, आज्ञापनिका, वैदारणिका,
अनाभोगप्रत्यया, अनवकाङ्क्षप्रत्यया ।
एव यावत् वैमानिकानाम् ।

१२१ क्रिया पाच प्रकार की है—
१ नैसृष्टिकी, २ आज्ञापनिकी,
३ वैदारणिका, ४ अनाभोगप्रत्यया,
५ अनवकाक्षप्रत्यया ।
सभी दण्डकों मे ये पांचो क्रियाए होती है।

१२२ पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पेज्जवत्तिया, दोसवत्तिया,
पओगकिरिया, समुदाणकिरिया,
ईरियावहिया ।
एव—मणुस्साणवि ।
सेसाण णत्थि ।

पञ्च क्रिया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रेय प्रत्यया, दोपप्रत्यया, प्रयोगक्रिया,
समुदानक्रिया, ऐर्यापथिकी ।
एवम्—मनुष्याणामपि । शेषाणा नास्ति ।

१२२. क्रिया पाच प्रकार की है—
१ प्रेयम्प्रत्यया, २ दोपप्रत्यया,
३ प्रयोगक्रिया—गमनागमन की क्रिया,
४ समुदानक्रिया—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। ५ ईर्यापथिकी—वीतराग के मन, वचन और काया की प्रवृत्ति से होने वाला पुण्य-बध ।
ये क्रियाए मनुष्यो के ही होती है, शेष दण्डको मे नही ।

परिण्णा-पदं

१२३ पचविहा परिण्णा पण्णत्ता, त जहा—
उवहिपरिण्णा, उवस्सयपरिण्णा,
कसायपरिण्णा, जोगपरिण्णा,
भत्तपाणपरिण्णा ।

परिज्ञा-पदम्

पञ्चविधा परिज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उपधिपरिज्ञा, उपाश्रयपरिज्ञा,
कपायपरिज्ञा, योगपरिज्ञा,
भक्तपानपरिज्ञा ।

परिज्ञा-पद

१२३ परिज्ञा [परित्याग] पाच प्रकार की होती है—
१ उपधिपरिज्ञा, २ उपाश्रयपरिज्ञा,
३ कपायपरिज्ञा, ४ योगपरिज्ञा,
५ भक्तपानपरिज्ञा ।

ववहार-पद

१२४ पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—
आगमे, सुते, आणा, धारणा,
जीते ।

व्यवहार-पदम्

पञ्चविध व्यवहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, जीतम् ।

व्यवहार-पद

१२४ व्यवहार पाच प्रकार का होता है—
१ आगम, २ श्रुत, ३ आज्ञा,
४ धारणा, ५ जीत ।

जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेण ववहार पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ आगमे सिया जहा से तत्थ सुते सिया, सुतेण ववहार पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ सुते सिया °जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहार पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ आणा सिया जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहार पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ धारणा सिया° जहा से तत्थ जीते सिया, जीतेण ववहार पट्ठवेज्जा।
इच्चेतेहिं पचहिं ववहार पट्ठवेज्जा—आगमेण °सुतेण आणाए धारणाए° जीतेण।
जधा-जधा से तत्थ आगमे °सुते आणा धारणा° जीते तधा-तधा ववहार पट्ठवेज्जा।
से किमाहु भते! आगमवलिया समणा णिग्गथा?
इच्चेत पचविध ववहार जया-जया जहिं-जहिं तया-तया तहिं-तहिं अणिस्सितोवस्सित सम्म ववहरमाणे समणे णिग्गथे आणाए आराधए भवति।

यथा तस्य तत्र आगम स्याद्, आगमेन व्यवहार प्रस्थापयेत्।
नो तस्य तत्र आगम स्याद् यथा तस्य तत्र श्रुत स्यात्, श्रुतेन व्यवहार प्रस्थापयेत्।
नो तस्य तत्र श्रुत स्याद्, यथा तस्य तत्र आज्ञा स्याद्, आज्ञया व्यवहार प्रस्थापयेत्।
नो तस्य तत्राज्ञा स्याद् यथा तस्य तत्र धारणा स्याद्, धारणया व्यवहार प्रस्थापयेत्।
नो तस्य तत्र धारणा स्याद् यथा तस्य तत्र जीत स्याद्, जीतेन व्यवहार प्रस्थापयेत्—
इत्येत पञ्चभि व्यवहार प्रस्थापयेत्—आगमेन श्रुतेन आज्ञया धारणया जीतेन।
यथा-यथा तस्य तत्र आगम श्रुत आज्ञा धारणा जीत तथा-तथा व्यवहार प्रस्थापयेत्।
तत् किमाहु भगवन्! आगमवलिका श्रमणा निर्ग्रन्था?
इति एतत् पञ्चविध व्यवहार यदा-यदा यस्मिन्-यस्मिन् तदा-तदा तस्मिन् तस्मिन् अनिश्रितोपाश्रित सम्यग् व्यवहरन् श्रमण निर्गन्थ आज्ञाया आराधको भवति।

जहा आगम हो वहा आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहा आगम न हो, श्रुत हो, वहा श्रुत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहा श्रुत न हो, आज्ञा हो, वहा आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहा आज्ञा न हो, धारणा हो, वहा धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहा धारणा न हो, जीत हो, वहा जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
इन पाचो से व्यवहार की प्रस्थापना करे—आगम से, श्रुत से, आज्ञा से, धारणा से और जीत से।
जिस समय आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत मे से जो प्रधान हो उसी से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
भते! आगमवलिक श्रमण-निर्ग्रन्थो ने इस विषय मे क्या कहा है?
आयुष्मान् श्रमणो! इन पाचो व्यवहारो मे जव-जव जिस-जिस विषय मे जो व्यवहार हो, तव-तव वहा-वहा उसका अनिश्रितोपाश्रित-मध्यस्थभाव से सम्यग् व्यवहार करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आज्ञा का आराधक होता है।

सुत्त-जागर-पद

१२५ सजयमणुस्साण सुत्ताण पच जागरा पण्णत्ता, त जहा—
सद्दा, °रूवा, गधा, रसा°, फासा।

सुप्त-जागर-पदम्

सयतमनुष्याणा सुप्ताना पच जागरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा।

सुप्त-जागर-पद

१२५ सयत मनुष्य सुप्त होते हैं तव उनके पाच जागृत होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श।

१२६ सजतमणुस्साण जागराण पच सुत्ता पण्णत्ता, त जहा—
सद्दा, •रूवा, गधा, रसा°, फासा।

सयत मनुष्याणा जागराणा पच सुप्ता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा।

१२६ सयत मनुष्य जागृत होते हैं तब उनके पाच सुप्त होते हैं—
१ शब्द, २ रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श।

१२७ असजयमणुस्साण सुत्ताण वा जागराण वा पच जागरा पण्णत्ता, त जहा—
सद्दा, •रूवा, गधा, रसा,° फासा।

असयत मनुष्याणा सुप्ताना वा जागराणा वा पञ्च जागरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शब्दा, रूपाणि, गन्धा, रसा, स्पर्शा।

१२७ असयत मनुष्य सुप्त हो या जागृत फिर भी उनके पाच जागृत होते हैं—
१ शब्द, २. रूप, ३ गध, ४ रस, ५ स्पर्श।

रयादाण-वमण-पदं

रज-आदान-वमन-पदम्

रज-आदान-वमन-पद

१२८ पर्चाह ठाणेहिं जीवा रय आदिज्जति, त जहा—
पाणातिवातेण •मुसावाएण अदिण्णादाणेण मेहुणेण° परिग्गहेण।

पञ्चभि स्थानै जीवा रज आददति, तद्यथा—
प्राणातिपातेन, मृषावादेन, अदत्तादानेन, मैथुनेन, परिग्रहेण।

१२८ पाच स्थानो से जीव कर्म-रजों का आदान करते हैं—
१ प्राणातिपात से, २ मृषावाद से, ३ अदत्तादान से, ४ मैथुन से, ५ परिग्रह से।

१२९ पर्चाह ठाणेहिं जीवा रय वमति, त जहा—
पाणातिवातवेरमणेण,
•मुसावायवेरमणेण,
अदिण्णादाणवेरमणेण,
मेहुणवेरमणेण,°
परिग्गहवेरमणेण।

पञ्चभि स्थानै जीवा रज वमन्ति, तद्यथा—
प्राणातिपातविरमणेन,
मृषावादविरमणेन,
अदत्तादानविरमणेन,
मैथुनविरमणेन,
परिग्रहविरमणेन।

१२९ पाच स्थानो से जीव कर्म-रजो का वमन करते हैं—
१ प्राणातिपात विरमण से,
२. मृषावाद विरमण से,
३ अदत्तादान विरमण से,
४ मैथुन विरमण से,
५ परिग्रह विरमण से।

दत्ति-पद

दत्ति-पदम्

दत्ति-पद

१३० पचमासिय ण भिक्खुपडिम पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पति पच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पच पाणगस्स।

पञ्चमासिकी भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते पञ्च दत्ती भोजनस्य परिग्रहीतुम्, पञ्च पानकस्य।

१३० पचमासिकी भिक्षु-प्रतिमा से प्रतिपन्न अनगार भोजन और पानी की पाच-पाच दत्तिया ले सकता है।

उवघात-विसोहि-पद

उपघात-विशोधि-पदम्

उपघात-विशोधि-पद

१३१ पचविधे उवघाते पण्णत्ते, त जहा—
उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते, परिहरणोवघाते।

पञ्चविध उपघात प्रज्ञप्त, तद्यथा—
उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात, एषणोपघात, परिकर्मोपघात, परिधानोपघात।

१३१ उपघात पाच प्रकार का होता है*—
१ उद्गमोपघात, २ उत्पादनोपघात, ३ एषणोपघात, ४ परिकर्मोपघात, ५ परिहरणोपघात।

१३२ पंचविहा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही,
एसणविसोही, परिकम्मविसोही,
परिहरणविसोही।

पञ्चविधा विशोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उद्गमविशोधि, उत्पादनविशोधि,
एषणाविशोधि, परिकर्मविशोधि,
परिधानविशोधि ।

१३२ विशोधि पाच प्रकार की होती है—
१ उद्गम की विशोधि,
२ उत्पादन की विशोधि,
३ एषणा की विशोधि,
४ परिकर्म की विशोधि,
५ परिहरण की विशोधि।

दुल्लभ-सुलभबोहि-पदं

१३३ पचहि ठाणेहि जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा—
अरहताण अवण्ण वदमाणे,
अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वदमाणे,
आयरियउवज्झायाण अवण्ण वदमाणे,
चाउवण्णस्स सघस्स अवण्ण वदमाणे,
विवक्क-तव-बभचेराण देवाण अवण्ण वदमाणे,

१३४. पचहि ठाणेहि जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा—
अरहताण वण्ण वदमाणे,
•अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्ण वदमाणे,
आयरियउवज्झायाण वण्ण वदमाणे,
चाउवण्णस्स सघस्स वण्ण वदमाणे,°
विवक्क-तव-बभचेराण देवाण वण्ण वदमाणे।

दुर्लभ-सुलभबोधि-पदम्

पञ्चभि स्थानै जीवा दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हता अवर्ण वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्ण वदन्,
आचार्योपाध्याययो अवर्ण वदन्,
चतुर्वर्णस्य सघस्य अवर्ण वदन्,
विपक्व-तपो-ब्रह्मचर्याणा देवाना अवर्ण वदन्।

पञ्चभि स्थानै जीवा सुलभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हता वर्ण वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य वर्ण वदन्,
आचार्योपाध्याययो वर्ण वदन्,
चतुर्वर्णस्य सघस्य वर्ण वदन्,
विपक्व-तपो-ब्रह्मचर्याणा देवाना वर्ण वदन्।

दुर्लभ-सुलभबोधि-पद

१३३ पाच स्थानो मे जीव दुर्लभबोधिकत्वकर्म का अर्जन करता है—
१ अर्हन्तो का अवर्णवाद करता हुआ,
२ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ, ३ आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ, ४ चतुर्वर्ण सघ का अवर्णवाद करता हुआ, ५ तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य-गति को प्राप्त देवो का अवर्णवाद करता हुआ।

१३४ पाच स्थानो से जीव सुलभबोधिकत्वकर्म का अर्जन करता है—
१ अर्हन्तों का वर्णवाद—श्लाघा करता हुआ, २ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का वर्णवाद करता हुआ, ३ आचार्य-उपाध्याय का वर्णवाद करता हुआ, ४ चतुर्वर्ण सघ का वर्णवाद करता हुआ, ५ तप और ब्रह्मचर्य के विपाक मे दिव्य-गति को प्राप्त देवो का वर्णवाद करता हुआ।

पडिसलीण-अपडिसंलीण-पद

१३५ पच पडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—

प्रतिसलीन-अप्रतिसंलीन-पदम्

पञ्च प्रतिसलीना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

प्रतिसलीन-अप्रतिसंलीन-पद

१३५ प्रतिसलीन पाच हैं—

सोइंदियपडिसलीणे,
•चक्खिदियपडिसलीणे,
घाणिदियपडिसलीणे,
जिब्भिदियपडिसलीणे,°
फासिंदियपडिसलीणे।

श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसलीन,
चक्षुरिन्द्रियप्रतिसलीन,
घ्राणेन्द्रियप्रतिसलीन,
जिह्वेन्द्रियप्रतिसलीन,
स्पर्शेन्द्रियप्रतिसलीन ।

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसलीन,
२ चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसलीन,
३ घ्राणेन्द्रिय प्रतिसलीन,
४ रसनेन्द्रिय प्रतिसलीन,
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसलीन।

१३६ पच अपडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—
सोतिंदियअपडिसलीणे,
•चक्खिदियअपडिसलीणे,
घाणिदियअपडिसलीणे,
जिब्भिदियअपडिसलीणे,°
फासिंदियअपडिसलीणे।

पञ्च अप्रतिसलीना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसलीन,
चक्षुरिन्द्रियाप्रतिसलीन,
घ्राणेन्द्रियाप्रतिसलीन,
जिह्वेन्द्रियाप्रतिसलीन,
स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसलीन ।

१३६ अप्रतिसलीन पाच हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसलीन।
२ चक्षुरिन्द्रिय अप्रतिसलीन,
३ घ्राणेन्द्रिय अप्रतिसलीन,
४ रसनेन्द्रिय अप्रतिसलीन,
५ स्पर्शनेन्द्रिय अप्रतिसलीन।

सवर-असवर-पद

सवर-असंवर-पदम्

संवर-असवर-पद

१३७ पचविधे सवरे पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियसवरे, •चक्खिदियसवरे,
घाणिंदियसवरे, जिब्भिदियसवरे,°
फासिंदियसवरे।

पञ्चविध सवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसवर, चक्षुरिन्द्रियसवर,
घ्राणेन्द्रियसवर, जिह्वेन्द्रियसवर,
स्पर्शेन्द्रियसवर ।

१३७ सवर पाच प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सवर,
२ चक्षुरिन्द्रिय सवर,
३ घ्राणेन्द्रिय सवर,
४ रसनेन्द्रिय सवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय सवर।

१३८ पचविधे असवरे पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियअसवरे, •चक्खिदियअसवरे,
घाणिदियअसवरे, जिब्भिदियअसवरे,°
फासिंदियअसवरे।

पञ्चविध असवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासवर, चक्षुरिन्द्रियासवर,
घ्राणेन्द्रियासवर, जिह्वेन्द्रियासवर,
स्पर्शेन्द्रियासवर ।

१३८ असवर पाच प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असवर,
२ चक्षुरिन्द्रिय असवर,
४ घ्राणेन्द्रिय असवर,
५ रसनेन्द्रिय असवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय असवर।

सजम-असंजम-पद

सयम-असयम-पदम्

सयम-असयम-पद

१३९. पचविधे सजमे पण्णत्ते, त जहा—
सामाइयसजमे,
छेदोवट्ठावणियसजमे,
परिहारविसुद्धियसजमे,
सुहुमसपरागसजमे,
अहक्खायचरित्तसजमे।

पञ्चविध सयम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
सामायिकसयम,
छेदोपस्थापनीयसयम,
परिहारविशुद्धिकसयम,
सूक्ष्मसपरायसयम,
यथाख्यातचरित्रसयम ।

१३९ सयम के पाच प्रकार हैं''—
१ सामायिक सयम,
२ छेदोपस्थापनीय सयम,
३ परिहारविशुद्धिक सयम,
४ सूक्ष्मसपराय सयम,
५ यथाख्यातचरित्र सयम।

१४०. एगिंदिया ण जीवा असमारभमाणस्स पचविधे सजमे कज्जति, तं जहा—	एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविध. सयम क्रियते, तद्यथा—	१४० एकेन्द्रिय जीवों का असमारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का सयम करता हैं—
पुढविकाइयसजमे,	पृथ्वीकायिकसयम,	१ पृथ्वीकाय सयम, २ अप्काय सयम,
•आउकाइयसजमे,	अप्कायिकसयम,	३ तेजस्काय सयम, ४ वायुकाय सयम,
तेउकाइयसजमे,	तेजस्कायिकसयम,	५ वनस्पतिकाय सयम।
वाउकाइयसजमे,°	वायुकायिकसयम,	
वणस्सतिकाइयसजमे।	वनस्पतिकायिकसयम।	
१४१ एगिंदिया ण जीवा समारभमाणस्स पचविहे असजमे कज्जति, त जहा—	एकेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविध असयम क्रियते, तद्यथा—	१४१ एकेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का असयम करता हैं—
		१ पृथ्वीकाय असयम,
पुढविकाइयअसजमे,	पृथ्वीकायिकासयम,	२ अप्काय असयम,
•आउकाइयअसजमे,	अप्कायिकासयम,	३ तेजस्काय असयम,
तेउकाइयअसजमे,	तेजस्कायिकासयम,	४ वायुकाय असयम,
वाउकाइयअसजमे,°	वायुकायिकासयम,	५ वनस्पतिकाय असयम।
वणस्सतिकाइयअसजमे।	वनस्पतिकायिकासयम।	
१४२. पचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पचविहे सजमे कज्जति, त जहा—	पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविध सयम क्रियते, तद्यथा—	१४२ पचेन्द्रिय जीवों का असमारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का सयम करता है—
		१ श्रोत्रेन्द्रिय सयम,
सोतिंदियसंजमे,	श्रोत्रेन्द्रियसयम,	२ चक्षुरिन्द्रिय सयम,
•चक्खिदियसजमे,	चक्षुरिन्द्रियसयम,	३ घ्राणेन्द्रिय सयम,
घाणिंदियसजमे,	घ्राणेन्द्रियसयम,	४ जिह्वेन्द्रिय सयम,
जिब्भिदियसजमे°	जिह्वेन्द्रियसयम,	५ स्पर्शनेन्द्रिय सयम।
फासिंदियसजमे।	स्पर्शेन्द्रियसयम।	
१४३. पचिंदिया ण जीवा समारभमाणस्स पंचविधे असजमे कज्जति, त जहा—	पञ्चेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविध असयम क्रियते तद्यथा—	१४३ पचेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का असयम करता है—
सोतिंदियअसजमे,	श्रोत्रेन्द्रियासयम,	१ श्रोत्रेन्द्रिय असयम,
•चक्खिदियअसजमे,	चक्षुरिन्द्रियासयम,	२ चक्षुरिन्द्रिय असयम,
घाणिंदियअसजमे,	घ्राणेन्द्रियासयम,	३ घ्राणेन्द्रिय असयम,
जिब्भिदियअसजमे,°	जिह्वेन्द्रियासयम,	४ जिह्वेन्द्रिय असयम,
फासिंदियअसजमे।	स्पर्शेन्द्रियासयम।	५ स्पर्शनेन्द्रिय असयम।
१४४ सव्वपाणभूयजीवसत्ता ण असमारभमाणस्स पचविहे सजमे कज्जति, त जहा—	सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् समारभमाणस्य पञ्चविध सयम क्रियते, तद्यथा—	१४४ सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का असमारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का सयम करता है—

एगिंदियसंजमे, •बेइंदियसंजमे, तेइंदियसंजमे, चउरिंदियसंजमे,° पंचिंदियसंजमे।

एकेन्द्रियसंयम[1], द्वीन्द्रियसंयम, त्रीन्द्रियसंयम, चतुरिन्द्रियसंयम, पञ्चेन्द्रियसंयम,।

१ एकेन्द्रिय संयम, २ द्वीन्द्रिय संयम, ३ त्रीन्द्रिय संयम, ४ चतुरिन्द्रिय संयम, ५ पञ्चेन्द्रिय संयम।

१४५ सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जति, तं जहा—
एगिंदियअसंजमे, •बेइंदियअसंजमे, तेइंदियअसंजमे, चउरिंदियअसंजमे, पंचिंदियअसंजमे।

सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् समारभमाणस्य पञ्चविध असंयम क्रियते, तद्यथा—
एकेन्द्रियासंयम, द्वीन्द्रियासंयम त्रीन्द्रियासंयम, चतुरिन्द्रियासंयम, पञ्चेन्द्रियासंयम।

१४५ सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों[11] का समारम्भ करता हुआ जीव पांच प्रकार का असंयम करता है—
१ एकेन्द्रिय असंयम,
२ द्वीन्द्रिय असंयम,
३ त्रीन्द्रिय असंयम,
४ चतुरिन्द्रिय असंयम,
५ पञ्चेन्द्रिय असंयम।

तणवणस्सइ-पदं

तृणवनस्पति-पदम्

तृणवनस्पति-पद

१४६ पंचविहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा।

पञ्चविधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अग्रबीजा, मूलबीजा, पर्वबीजा स्कन्धबीजा, बीजरुहा[1]।

१४६ तृणवनस्पतिकायिक जीवों के पांच प्रकार हैं[1]—
१ अग्रबीज, २ मूलबीज, ३ पर्वबीज, ४ स्कन्धबीज, ५ बीजरुह।

आयार-पदं

आचार-पदम्

आचार-पद

१४७ पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे

पञ्चविध आचार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तप आचार, वीर्याचार।

१४७ आचार[12] के पांच प्रकार हैं—
१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चरित्राचार, ४ तप आचार, ५ वीर्याचार।

आयारपकप्प-पदं

आचारप्रकल्प-पदम्

आचारप्रकल्प-पद

१४८ पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—
मासिए उग्घातिए, मासिए अणुग्घातिए, चउमासिए उग्घातिए, चउमासिए अणुग्घातिए, आरोवणा।

पञ्चविध आचारप्रकल्प प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मासिक उद्घातिक, मासिकानुद्घातिक, चातुर्मासिक उद्घातिक, चातुर्मासिकानुद्घातिक, आरोपणा।

१४८ आचारप्रकल्प[13] के पांच प्रकार हैं—
१ मासिक उद्घातिक,
२ मासिक अनुद्घातिक,
३ चातुर्मासिक उद्घातिक,
४ चातुर्मासिक अनुद्घातिक,
५ आरोपणा।

आरोवणा-पदं

१४९. आरोवणा पचविहा पण्णत्ता, त जहा—
पट्ठविया, ठविया, कसिणा, अकसिणा, हाडहडा।

आरोपणा-पदम्

आरोपणा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रस्थापिता, स्थापिता, कृत्स्ना, अकृत्स्ना, हाडहडा।

आरोपणा-पद

१४९ आरोपणा[11] के पाच प्रकार हैं—
१ प्रस्थापिता, २ स्थापिता, ३ कृत्स्ना, ४ अकृत्स्ना, ५ हाडहडा।

वक्खारपव्वय-पदं

१५० जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खारपव्वता, पण्णत्ता त जहा—
मालवते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

१५१ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीयाए महाणदीए दाहिणे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—
तिकूडे, वेसमणकूडे, अजणे, मायजणे, सोमणसे।

१५२ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए दाहिणे ण पच वक्खारपव्वता, पण्णत्ता, त जहा—
विज्जुप्पभे, अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

१५३ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—
चदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते, गधमादणे।

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
माल्यवान्, चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीताया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अञ्जन, माताञ्जन, सौमनस।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदाया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
विद्युत्प्रभ, अङ्कावती, पक्ष्मावती, आसीविष, सुखावह।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदाया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्रपर्वत, सूरपर्वत, नागपर्वत, देवपर्वत, गन्धमादन।

वक्षस्कारपर्वत-पद

१५० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्वभाग मे तथा सीता महानदी के उत्तरभाग मे पाच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ माल्यवान्, २ चित्रकूट, ३ पक्ष्मकूट, ४ नलिनकूट, ५ एकशैल।

१५१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्वभाग मे तथा सीता नदी के दक्षिणभाग मे पाच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ त्रिकूट, २ वैश्रमणकूट, ३ अजन, ४ माताजन, ५ सौमनस।

१५२ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम-भाग मे तथा सीतोदा महानदी के दक्षिण-भाग मे पाच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ विद्युत्प्रभ, २ अकावती, ३ पक्ष्मावती, ४ आशीविष, ५ सुखावह।

१५३ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम-भाग मे तथा सीतोदा महानदी के उत्तर-भाग मे पाच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ चन्द्रपर्वत, २ सूरपर्वत, ३ नागपर्वत, ४ देवपर्वत, ५ गधमादन।

महादह-पद

१५४. जम्बुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण देवकुराए कुराए पच महद्दहा पण्णत्ता, त जहा—
णिसहदहे, देवकुरुदहे, सूरदहे, सुलसदहे, विज्जुप्पभदहे ।

१५५ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण उत्तरकुराए कुराए पच महादहा पण्णत्ता, त जहा—
णीलवतदहे, उत्तरकुरुदहे, चददहे, एरावणदहे, मालवतदहे ।

महाद्रह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे देवकुरौ कुरौ पञ्च महाद्रहा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निषधद्रह, देवकुरुद्रह, सूरद्रह, सुलसद्रह, विद्युत्प्रभद्रह ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे उत्तरकुरौ कुरौ पञ्च महाद्रहा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नीलवद्द्रह, उत्तरकुरुद्रह, चन्द्रद्रह, ऐरावणद्रह, माल्यवद्द्रह ।

महाद्रह-पद

१५४ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के देवकुरु नामक कुरुक्षेत्र मे पाच महाद्रह हैं—
१ निषधद्रह, २ देवकुरुद्रह, ३ सूरद्रह, ४ सुलसद्रह, ५ विद्युत्प्रभद्रह ।

१५५ जम्बूद्वीप द्वीप मन्दर पर्वत के उत्तरभाग मे उत्तरकुरु नामक कुरुक्षेत्र मे पाच महाद्रह हैं—
१ नीलवत्द्रह, २ उत्तरकुरुद्रह, ३ चन्द्रद्रह, ४ ऐरावणद्रह, ५ माल्यवत्द्रह ।

वक्खारपव्वय-पद

१५६ सव्वेवि ण वक्खारपव्वया सीया-सीओयाओ महाणईओ मदर वा पव्वत पच जोयणसताइ उड्ढ उच्चत्तेण, पचगाउसताइं उव्वेहेण ।

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

सर्वेपि वक्षस्कारपर्वता शीताशीतोदे महानद्यौ मन्दर वा पर्वत पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, पञ्च-गव्यूतिशतानि उद्वेधेन ।

वक्षस्कारपर्वत-पद

१५६ सभी वक्षस्कार पर्वत सीता, सीतोदा महानदी तथा मन्दर पर्वत की दिशा मे पाच सौ योजन ऊचे तथा पाच सौ कोस गहरे हैं ।

धायइसंड-पुक्खरवर-पद

१५७ धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा— मालवते, एव जहा जबुद्दीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थि-मद्धे वक्खारपव्वया दहा य उच्चत्त भाणियव्व ।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
माल्यवान्, एवम् यथा जम्बूद्वीपे तथा यावत् पुष्करवरद्वीपार्धं पाश्चात्यार्धे वक्षस्कारपर्वता द्रहाश्च उच्चत्व भणितव्यम् ।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

१५७ धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में, मन्दर पर्वत के पूर्व मे तथा सीता महानदी के उत्तर मे पाच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ माल्यवान्, २ चित्रकूट, ३ पक्ष्मकूट, ४ नलिनकूट, ५ एकशैल ।
इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध मे तथा अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी जम्बूद्वीप की तरह पाच-पाच वक्षस्कार पर्वत, महानदिया तथा द्रह और वक्षस्कार पर्वतो की ऊचाई है ।

समयक्खेत्त-पद

१५८ समयक्खेत्ते ण पच भरहाइ, पच एरवताइ, एव जहा चउट्ठाणे बितीयउद्देसे तहा एत्थवि भाणि-यव्व जाव पच मदरा पच मदर-चूलियाओ, णवर उसुयारा णत्थि ।

समयक्षेत्र-पदम्

समयक्षेत्रे पञ्चभरतानि, पञ्चैरवतानि, एव यथा चतुःस्थाने, द्वितीयोद्देशे तथा अत्रापि भणितव्य यावत् पञ्च मन्दरा पञ्च मदरचूलिका, नवर इषुकारा न सन्ति ।

समयक्षेत्र-पद

१५८ समयक्षेत्र मे पाच भरत और पाच ऐरवत हैं ।
शेष वर्णन के लिए देखें [४/३३७] ।
विशेष यह है कि वहा इषुकार पर्वत नही है ।

ओगाहणा-पद

१५९ उसभे णं अरहा कोसलिए पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।

१६० भरहे णं राया चाउरतचक्कवट्टी पच धणुसताइ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।

१६१ बाहुबली ण अणगारे •पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।°

१६२ बभी ण अज्जा •पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।°

१६३ •सुन्दरी ण अज्जा पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।°

अवगाहना-पदम्

ऋषभ अर्हन् कौशलिक पञ्च धनु-शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

भरत राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनु शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

बाहुबली अनगार पञ्च धनु शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

ब्राह्मी आर्या पञ्च धनु शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

सुन्दरी आर्या पञ्च धनु शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

अवगाहना-पद

१५९ कौशलिक अर्हन्त ऋषभ पाच सौ धनुष ऊचे थे।

१६० चातुरत चक्रवर्ती राजा भरत पाच सौ धनुष ऊचे थे।

१६१ अनगार बाहुबली पाच सौ धनुष ऊचे थे।

१६२ आर्या ब्राह्मी ऊचाई मे पाच सौ धनुष थी।

१६३ आर्या सुन्दरी ऊचाई मे पाच सौ धनुष थी।

विबोध-पदं

१६४ पर्चाह ठाणेहि सुत्ते विबुज्झेज्जा, त जहा—
सद्देणं, फासेण, भोयणपरिणामेण, णिद्दक्खएणं, सुविणदसणेण।

विबोध-पदम्

पञ्चभि स्थानै सुप्त विबुध्येत, तद्यथा—
शब्देन, स्पर्शेन, भोजनपरिणामेन, निद्राक्षयेण, स्वप्नदर्शनेन।

विबोध-पद

१६४ पाच कारणो से सुप्त मनुष्य विबुद्ध हो जाता है—
१ शब्द से, २ स्पर्श से, ३ भोजन परिणाम—भूख से, ४ निद्राक्षय से, ५ स्वप्नदर्शन से,

णिग्गथी-अवलंबण-पदं

१६५ पर्चाह ठाणेहि समणे णिग्गथे णिग्गथि गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति, त जहा—

१ णिग्गथि च ण अण्णयरे पसुजातिए वा पक्खिजातिए वा ओहातेज्जा, तत्थ णिग्गथे णिग्गथि गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

२ णिग्गथे णिग्गथि दुग्गसि वा विसमसि वा पक्खलमार्णि वा पवडमार्णि वा गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पदम्

पञ्चभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा—

१. निर्ग्रन्थी च अन्यतर पशुजातिको वा पक्षिजातिको वा अवघातयेत्, तत्र निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।

२ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी दुर्गे वा विषमे वा प्रस्खलन्ती वा प्रपतन्ती वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पद

१६५ पाच कारणो से श्रमण-निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—

१ कोई पशु या पक्षी निर्ग्रन्थी को उपहत करे तो उसे पकडता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रन्थ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

२ दुर्गम[45] तथा ऊबड-खाबड स्थानो मे प्रस्खलित[46] होती हुई, गिरती हुई निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रंथ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

३ णिग्गथे णिग्गथिं सेयसि वा पकसि वा पणगसि वा उदगसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्भमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति ।

४ णिग्गथे णिग्गथिं णाव आरुभमाणे वा ओरोहमाणे वा णातिक्कमति ।

५ खित्तचित्त दित्तचित्त जक्खाइट्ठ उम्मायपत्त उवसग्गपत्त साहिगरण सपायच्छित्त जाव भत्तपाणपडियाइक्खिय अट्ठजाय वा णिग्गथे णिग्गथिं गेण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति ।

३ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी सेके वा पङ्के वा पनके वा उदके वा अपकसन्ती वा अपोह्यमाना वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ।

४ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी नाव आरोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति ।

५ क्षिप्तचित्ता दृप्तचित्ता यक्षाविष्टा उन्मादप्राप्ता उपसर्गप्राप्ता साधिकरणा सप्रायश्चित्ता यावत् भक्तपानप्रत्याख्याता अर्थजाता वा निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ।

३ दल-दल मे, कीचड मे, काई मे या पानी मे फसी हुई या वहती हुई निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रन्थ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

४ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को नाव मे चढाता हुआ या उतारता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

५ क्षिप्तचित्त[1], दृप्तचित्त[1], यक्षाविष्ट[1], उन्मादप्राप्त[1], उपसर्गप्राप्त, कलहरत, प्रायश्चित्त से डरी हुई, अनशन की हुई, किन्हीं व्यक्तियो द्वारा सयम से विचलित की जाती हुई या किसी आकस्मिक कारण के समुत्पन्न हो जाने पर निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीकरता।

आयरयि-उवज्भाय-अइसेस-पदं

१६६ आयरिय-उवज्भायस्स ण गणंसि पच अतिसेसा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरिय-उवज्भाए अतो उवस्सयस्स पाए णिगज्भिय-णिगज्भिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णातिक्कमति ।

२. आयरिय-उवज्भाए अतो उवस्सयस्स उच्चारपासवण विगिचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति ।

३ आयरिय-उवज्भाए पभू इच्छा वेयावडिय करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा ।

४ आयरिय-उवज्भाए अतो उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति ।

५ आयरिय-उवज्भाए वाहिं उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा [एगओ?]वसमाणे णातिक्कमति।

आचार्योपाध्यायातिशेष-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्च अतिशेषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ आचार्योपाध्याय अन्त उपाश्रयस्य पादौ निगृह्य-निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति ।

२ आचार्योपाध्याय अन्त उपाश्रयस्य उच्चारप्रश्रवण विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति ।

३ आचार्योपाध्याय प्रभु इच्छा वैयावृत्त्य कुर्यात्, इच्छा नो कुर्यात् ।

४ आचार्योपाध्याय अन्त उपाश्रयस्य एकरात्र वा द्विरात्र वा एकको वसन् नातिक्रामति ।

५ आचार्योपाध्याय वहि उपाश्रयस्य एकरात्र वा द्विरात्र वा (एकक ?) वसन् नातिक्रामति ।

आचार्योपाध्यायातिशेष-पद

१६६ गण मे आचार्य तथा उपाध्याय के पाच अतिशेष [विशेष विधिया] होते हैं[1]—

१ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे पैरो की धूलि को यतनापूर्वक [दूसरो पर न गिरे वैसे] झाडते हुए, प्रमार्जित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

२ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे उच्चार-प्रश्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

३ आचार्य और उपाध्याय की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी साधु की सेवा करें या न करें।

४ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

५ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय से वाहर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

आयरिय-उवज्झाय-गणावक्कमण-पदं

१६७ पंचहिं ठाणेहिं आयरिय-उवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—

१ आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

२ आयरिय-उवज्झाए गणंसि आधारायणियाए कितिकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

३. आयरिय-उवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाते धारेति, ते काले-काले णो सम्ममणुपवादेत्ता भवति।

४. आयरिय-उवज्झाए गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा णिग्गथीए बहिल्लेसे भवति।

५ मित्ते णातिगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते।

आचार्योपाध्याय-गणापक्रमण-पदं

पञ्चभिः स्थानैः आचार्योपाध्यायस्य गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१ आचार्योपाध्यायः गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

२ आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म वैनयिकं नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

३ आचार्योपाध्यायः गणे यान् श्रुतपर्यवजातान् धारयति, तान् काले-काले नो सम्यगनुप्रवाचयिता भवति।

४ आचार्योपाध्यायः गणे स्वगणसत्काया वा परगणसत्काया वा निर्ग्रन्थ्या बहिर्लेश्यो भवति।

५ मित्रं ज्ञातिगणो वा तस्य गणात् अपक्रमेत, तेषां सग्रहोपग्रहार्थं गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्।

आचार्योपाध्याय-गणापक्रमण-पद

१६७ पांच कारणों से आचार्य तथा उपाध्याय गण से अपक्रमण [निर्गमन] करते हैं[४४]—

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण में आज्ञा या धारणा का सम्यक् प्रयोग न कर सकें।

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म—वन्दन और विनय का सम्यक् प्रयोग न करें।

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन श्रुत-पर्यायों को धारण करते हैं, समय-समय पर उनकी गण को सम्यक् वाचना न दें।

४ आचार्य तथा उपाध्याय अपने गण की या दूसरे के गण की निर्ग्रन्थी में बहिर्लेश्य-आसक्त हो जाए।

५ आचार्य तथा उपाध्याय के मित्र या स्वजन गण से अपक्रमित [निर्गत] हो जाए, उन्हें पुनः गण में सम्मिलित करने तथा सहयोग करने के लिए वे गण से अपक्रमण करते हैं।

इड्ढिमंत-पदं

१६८ पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—

अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, भावियप्पाणो अणगारा।

ऋद्धिमत्-पदम्

पञ्चविधाः ऋद्धिमन्तः मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

अर्हन्तः, चक्रवर्त्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानः अनगाराः।

ऋद्धिमत्-पद

१६८ ऋद्धिमान् मनुष्य पांच प्रकार के होते हैं[४५]—

१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव, ४ वासुदेव, ५ भावितात्मा अनगार।

तइओ उद्देसो

अत्थिकाय-पदं

१६९ पच अत्थिकाया पण्णत्ता, त जहा—
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

१७० धम्मत्थिकाए अवण्णे अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ ण धम्मत्थिकाए एग दव्व।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

१७१ अधम्मत्थिकाए अवण्णे अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

अस्तिकाय-पदम्

पञ्चास्तिकाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श अरूपी अजीव शाश्वत अवस्थित लोकद्रव्यम्।
स समासत पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
द्रव्यत, क्षेत्रत, कालत, भावत, गुणत।
द्रव्यत धर्मास्तिकाय एक द्रव्यम्।
क्षेत्रत लोकप्रमाणमात्र।
कालत न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव निचित शाश्वत अक्षय अव्यय अवस्थित नित्य।
भावत अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श।
गुणत गमनगुण।

अधर्मास्तिकाय अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श अरूपी अजीव शाश्वत अवस्थित लोकद्रव्यम्।
स समासत पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
द्रव्यत, क्षेत्रत, कालत, भावत, गुणत।

अस्तिकाय-पद

१६९ अस्तिकाय पाच हैं—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय ५ पुद्गलास्तिकाय।

१७० धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अशभूत द्रव्य है।
सक्षेप मे वह पाच प्रकार का है—
१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा।
द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
काल की अपेक्षा—कभी नही था ऐसा नही है, कभी नही है ऐसा नही है, कभी नही होगा ऐसा नही है। वह अतीत मे था, वतमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगध, अरस और अस्पर्श है।
गुण की अपेक्षा—गमन-गुण है—गति मे उदासीन सहायक है।

१७१ अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अशभूत द्रव्य है।
सक्षेप मे वह पाच प्रकार का है—
१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा।

दव्वओ ण अधम्मत्थिकाए एग दव्व।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्स-इत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।
गुणओ ठाणगुणे।°

द्रव्यत अधर्मास्तिकाय एक द्रव्यम्।
क्षेत्रत लोकप्रमाणमात्र।
कालत न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव निचित शाश्वत अक्षय अव्यय अवस्थित नित्य।
भावत अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श।
गुणत स्थानगुण।

द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
काल की अपेक्षा—कभी नही था ऐसा नहा है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नही होगा ऐसा नही है। वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगध, अरस और अस्पर्श है।
गुण की अपेक्षा—स्थान गुण—स्थिति मे उदासीन सहायक है।

१७२ आगासत्थिकाए अवण्णे °अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगालोगदव्वे।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ ण आगासत्थिकाए एग दव्व।
खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्स-इत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।
गुणओ अवगाहणागुणे।°

आकाशास्तिकाय अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श अरूपी अजीव शाश्वत अवस्थित लोकालोकद्रव्यम्।
स समासत पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
द्रव्यत, क्षेत्रत, कालत, भावत, गुणत।
द्रव्यत आकाशास्तिकाय एक द्रव्यम्।
क्षेत्रत लोकालोकप्रमाणमात्र।
कालत न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव निचित शाश्वत अक्षय अव्यय अवस्थित नित्य।
भावत अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श।
गुणत अवगाहनागुण।

१७२ आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अशभूत द्रव्य है।
सक्षेप मे वह पाच प्रकार का है—
१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा।
द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
क्षेत्र की अपेक्षा—लोक तथा अलोक-प्रमाण है।
काल की अपेक्षा—कभी नही था ऐसा नही है, कभी नही है ऐसा नहीं है, कभी नही होगा ऐसा नही है। वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगध, अरस और और अस्पर्श है।
गुण की अपेक्षा—अवगाहन गुण वाला है।

१७३ जीवत्थिकाए ण अवण्णे °अगधे अरसे अफासे अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।

जीवास्तिकाय अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श अरूपी जीव शाश्वत अवस्थित लोकद्रव्यम्।

१७३ जीवास्तिकाय अवर्ण, अगध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अशभूत द्रव्य है

से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—	स समासत पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—	सक्षेप मे वह पाच प्रकार का है—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ ।	द्रव्यत , क्षेत्रत , कालत , भावत , गुणत ।	१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा ।
दव्वओ ण जीवत्थिकाए अणताइ दव्वाइ ।	द्रव्यत जीवास्तिकाय अनन्तानि द्रव्याणि ।	द्रव्य की अपेक्षा—अनन्त द्रव्य है ।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते ।	क्षेत्रत लोकप्रमाणमात्र ।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है ।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्स-इत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे ।	कालत न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव निचित शाश्वत अक्षय अव्यय अवस्थित नित्य ।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नही है, कभी नही है ऐसा नही है, कभी नही होगा ऐसा नही है । वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा । अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है ।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे ।	भावत अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श ।	भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगध, अरस और अस्पर्श है ।
गुणओ उवओगगुणे ।°	गुणत उपयोगगुण ।	गुण की अपेक्षा—उपयोग गुण वाला है ।
१७४ पोग्गलत्थिकाए पचवण्णे पचरसे दुगधे अट्ठ फासे रूवी अजीवे सासते अवट्ठिते •लोगदव्वे ।	पुद्गलास्तिकाय पञ्चवर्ण पञ्चरस द्विगन्ध अष्टस्पर्श रूपी अजीव शाश्वत अवस्थित लोकद्रव्यम् ।	१७४ पुद्गलास्तिकाय पचवर्ण, पचरस, द्विगध, अष्टस्पर्श, रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अशभूत द्रव्य है ।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—	स समासत पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—	सक्षेप मे वह पाच प्रकार का है—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ ।°	द्रव्यत , क्षेत्रत , कालत , भावत , गुणत ।	१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा ।
दव्वओ ण पोग्गलत्थिकाए अणताइ दव्वाइ ।	द्रव्यत पुद्गलास्तिकाय अनन्तानि द्रव्याणि ।	द्रव्य की अपेक्षा—अनन्त द्रव्य है ।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते ।	क्षेत्रत लोकप्रमाणमात्र ।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है ।
कालओ ण कयाइ णासि, •ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते° णिच्चे ।	कालत न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव निचित शाश्वत अक्षय अव्यय अवस्थित नित्य ।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नही है, कभी नही है ऐसा नही है, कभी नही होगा ऐसा नहीं है । वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा । अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है ।
भावओ वण्णमते गधमते रसमते फासमते ।	भावत वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान् ।	भाव की अपेक्षा—वर्णवान्, गधवान्, रसवान् तथा स्पर्शवान् है ।
गुणओ गहणगुणे ।	गुणत ग्रहणगुण ।	गुण की अपेक्षा—ग्रहण-गुण—समुदित होने की योग्यतावाला है ।

गइ-पद

१७५ पच गतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
णिरयगती, तिरियगती, मणुयगती, देवगती, सिद्धिगती।

गति-पदम्

पञ्च गतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निरयगति, तिर्यग्गति, मनुजगति, देवगति, सिद्धिगति।

गति-पद

१७५ गतिया पाच है—
१ नरकगति, २ तिर्यञ्चगति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धिगति।

इंदियत्थ-पद

१७६ पच इदियत्था पण्णत्ता, त जहा—
सोतिदियत्थे, °चक्खिदियत्थे, घाणिदियत्थे, जिब्भिदियत्थे,° फासिदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

पञ्च इन्द्रियार्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थ, चक्षुरिन्द्रियार्थ, घ्राणेन्द्रियार्थ, जिह्वेन्द्रियार्थ, स्पर्शेन्द्रियार्थ।

इन्द्रियार्थ-पद

१७६ इन्द्रियो के पाच अर्थ [विषय] हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थ, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थ, ३ घ्राणेन्द्रिय अर्थ, ४ जिह्वेन्द्रिय अर्थ, ५ स्पर्शनेन्द्रिय अर्थ।

मुंड-पद

१७७ पच मुडा पण्णत्ता, त जहा—
सोतिदियमुंडे, °चक्खिदियमुडे, घाणिदियमुडे, जिब्भिदियमुडे,° फासिदियमुडे।
अहवा—
पच मुडा पण्णत्ता, त जहा—
कोहमुडे, माणमुडे, मायामुडे, लोभमुडे, सिरमुडे।

मुण्ड-पदम्

पञ्च मुण्डा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड, चक्षुरिन्द्रियमुण्ड, घ्राणेन्द्रियमुण्ड, जिह्वेन्द्रियमुण्ड, स्पर्शेन्द्रियमुण्ड।
अथवा—
पञ्च मुण्डा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्रोधमुण्ड, मानमुण्ड, मायामुण्ड, लोभमुण्ड, शिरोमुण्ड।

मुण्ड-पद

१७७ मुण्ड [जयी] पाच प्रकार के होते है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय मुड, २ चक्षुरिन्द्रिय मुड, ३ घ्राणेन्द्रिय मुड, ४ जिह्वेन्द्रिय मुड, ५ स्पर्शनेन्द्रिय मुड।
अथवा—
मुड पाच प्रकार के होते हैं—
१ क्रोध मुड, २ मान मुड, ३ माया मुड, ४ लोभ मुड, ५ शिरो मुड।

बायर-पदं

१७८ अहेलोगे ण पच बायरा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा।

१७९ उड्ढलोगे ण पच बायरा पण्णत्ता, त जहा—
°पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा।°

वादर-पदम्

अधोलोके पञ्च वादरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, उदारा त्रसा प्राणा।

ऊर्ध्वलोके पञ्च वादरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, उदारा त्रसा प्राणा।

वादर-पद

१७८ अधोलोक मे पाच प्रकार के वादर जीव होते हैं[1]—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वायुकायिक, ४ वनस्पतिकायिक, ५ उदार त्रस प्राणी।

१७९ ऊर्ध्वलोक मे पाच प्रकार के वादर जीव होते हैं[2]—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वायुकायिक, ४ वनस्पतिकायिक, ५ उदार त्रस प्राणी।

१८०. तिरियलोगे ण पच वायरा पण्णत्ता, त जहा—
एगिंदिया, •वेइदिया, तेइदिया, चउरिंदिया,° पचिंदिया।

तिर्यग्लोके पञ्च बादरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया.।

१८० तिर्यक्लोक मे पाच प्रकार के बादर जीव होते हैं—
१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ पचेन्द्रिय।

१८१ पचविहा वायरतेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—
इगाले, जाले, मुम्मुरे, अच्ची, अलाते।

पञ्चविधा बादरतेजस्कायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अङ्गार, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि, अलातम्।

१८१ बादर तेजस्कायिक जीव पाच प्रकार के होते हैं—
१ अगार, २ ज्वाला—अग्निशिखा, ३ मुर्मर—चिनगारी, ४ अर्चि—लपट, ५ अलात—जलती हुई लकडी।

१८२ पचविधा वादरवाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—
पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, विदिसवाते।

पञ्चविधा बादरवायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्राचीनवात, प्रतिचीनवात, दक्षिणवात, उदीचीनवात, विदिग्वात।

१८२ बादर वायुकायिक जीव पाच प्रकार के होते हैं—
१ पूर्व वात, २ पश्चिम वात, ३ दक्षिण वात, ४ उत्तर वात, ५ विदिक् वात।

अचित्त-वाउकाय-पदं

अचित्त-वायुकाय-पदम्

अचित्त-वायुकाय-पद

१८३ पचविधा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—
अक्कते, धते, पीलिए, सरीराणुगते, समुच्छिमे।

पञ्चविधा अचित्ता वायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आक्रान्त, ध्मात, पीडित, शरीरानुगत, सम्मूर्च्छिम।

१८३ अचित्त वायुकाय पाच प्रकार का होता है[१०८]—
१ आक्रान्त—पैरो को पीट-पीट कर चलने मे उत्पन्न वायु,
२ ध्मात—धौंकनी आदि से उत्पन्न वायु,
३ पीडित—गीले कपडों के निचोडने आदि से उत्पन्न वायु,
४ शरीरानुगत—डकार, उच्छ्वास आदि,
५ सम्मूर्च्छिम—पखा झलने आदि मे उत्पन्न वायु।

णियंठ-पद

निर्ग्रन्थ-पदम्

निर्ग्रन्थ-पद

१८४. पच णियठा पण्णत्ता, त जहा—
पुलाए, वउसे, कुसीले, णियंठे, सिणाते।

पञ्च निर्ग्रन्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नात।

१८४ निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के होते हैं[१०९]—
१ पुलाक—नि सार धान्यकणो के समान जिसका चरित्र नि सार है,
२ बकुश—जिसके चरित्र मे स्थान-स्थान पर धब्बे लगे हुए हैं,
३ कुशील—जिसका चरित्र कुछ-कुछ मलिन हो गया हो,
४ निर्ग्रन्थ—जिसका मोहनीय कर्म छिन्न हो गया हो,
५ स्नातक—जिसके चार घात्यकर्म छिन्न हो गए हो।

१८५ पुलाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणपुलाए, दसणपुलाए,
चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए,
अहासुहुमपुलाए णाम पंचमे।

पुलाक- पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानपुलाक, दर्शनपुलाक, चरित्रपुलाक,
लिङ्गपुलाक यथासूक्ष्मपुलाको नाम
पञ्चम।

१८५ पुलाक पाच प्रकार के होते हैं—
१ ज्ञानपुलाक—स्खलित, मिलित आदि ज्ञान के अतिचारो का सेवन करने वाला,
२ दर्शनपुलाक—सम्यक्त्व के अतिचारो का सेवन करने वाला,
३ चरित्रपुलाक—मूलगुण तथा उत्तर-गुण—दोनो मे ही दोष लगाने वाला,
४ लिंगपुलाक—शास्त्रविहित उपकरणो से अधिक उपकरण रखने वाला या बिना ही कारण अन्य लिंग को धारण करने वाला,
५ यथासूक्ष्मपुलाक—प्रमादवश अकल्पनीय वस्तु को ग्रहण करने का मन मे भी चिन्तन करने वाला या उपर्युक्त पाचो अतिचारो मे से कुछ-कुछ अतिचारो का सेवन करने वाला।

१८६. बउसे पचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
आभोगबउसे, अणाभोगबउसे,
संवुडबउसे असवुडबउसे,
अहासुहुमबउसे णाम पचमे।

बकुश पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
आभोगबकुश, अनाभोगबकुश,
सवृतबकुश, असवृतबकुश,
यथासूक्ष्मबकुशो नाम पञ्चम।

१८६ बकुश पाच प्रकार के होते हैं—
१ आभोगबकुश—जान-बूझकर शरीर की विभूषा करने वाला,
२ अनाभोगबकुश—अनजान मे शरीर की विभूषा करने वाला,
३ सवृतबकुश—छिप-छिपकर शरीर आदि की विभूषा करने वाला,
४ असवृतबकुश—प्रकटरूप मे शरीर की विभूषा करने वाला,
५ यथासूक्ष्मबकुश—प्रकट या अप्रकट मे शरीर आदि की सूक्ष्म विभूषा करने वाला।

१८७ कुसीले पचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणकुसीले, दसणकुसीले,
चरित्तकुसीले, लिंगकुसीले,
अहासुहुमकुसीले णाम पचमे।

कुशील पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानकुशील, दर्शनकुशील,
चरित्रकुशील, लिङ्गकुशील,
यथासूक्ष्मकुशीलो नाम पञ्चम।

१८७ कुशील पाच प्रकार के होते है—
१ ज्ञानकुशील—काल, विनय आदि ज्ञानाचार की प्रतिपालना नही करने वाला,
२ दर्शनकुशील—निष्कांक्षित आदि दर्शनाचार की प्रतिपालना नही करने वाला,
३ चरित्रकुशील—कौतुक, भूतिकर्म, प्रश्नाप्रश्न, निमित्त, आजीविका, कल्क-कुरुका, लक्षण, विद्या तथा मन्त्र का प्रयोग करने वाला,
४ लिंगकुशील—वेष मे आजीविका करने वाला,
५ यथासूक्ष्मकुशील—अपने को तपस्वी आदि कहने से हर्षित होने वाला।

१८८ णियठे पचविहे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयणियठे,
अपढमसमयणियठे,
चरिमसमयणियठे,
अचरिमसमयणियठे,
अहासुहुमणियठे णाम पचमे।

निर्ग्रन्थ पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमसमयनिर्ग्रन्थ,
अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थ,
चरमसमयनिर्ग्रन्थ,
अचरमसमयनिर्ग्रन्थ,
यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थो नाम पञ्चम।

१८८ निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के होते हैं—
१ प्रथमसमयनिर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थ की काल-स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। उस काल मे प्रथम समय मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
२ अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थ—प्रथम समय के अतिरिक्त शेष काल मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
३ चरमसमयनिर्ग्रन्थ—अन्तिम समय मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
४ अचरमसमयनिर्ग्रन्थ—अन्तिम समय के अतिरिक्त शेष समय मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
५ यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ—प्रथम या अन्तिम समय की अपेक्षा किए विना सामान्य रूप से सभी समयो मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।

१८९ सिणाते पचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अच्छवी, असवले, अकम्मसे,
ससुद्धणाणदसणधरे—अरहा जिणे केवली, अपरिस्साई।

स्नात पञ्चविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अच्छवि, अशवल, अकर्मांश,
सशुद्धज्ञानदर्शनधर—अर्हन् जिन केवली, अपरिश्रावी।

१८९ स्नातक पाच प्रकार के होते हैं—
१ अच्छवी—काय योग का निरोध करने वाला।
२ अशवल—निरतिचार साधुत्व का पालन करने वाला।
३ अकर्मांश—घात्यकर्मों का पूर्णत क्षय करने वाला।
४ सशुद्धज्ञानदर्शनधारी—अर्हत्, जिन, केवली।
५ अपरिश्रावी—सम्पूर्ण काय योग का निरोध करने वाला।

उपधि-पद

उपधि-पदम्

उपधि-पद

१९०. कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा पच वत्थाइ धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, त जहा—
जगिए, भगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए णाम पंचमए।

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा पञ्च वस्त्राणि धर्तुं वा परिधातु वा, तद्यथा—
जाङ्गिक, भाङ्गिक, सानक, पोतक, तिरीटपट्टक नाम पञ्चमकम्।

१९० निर्ग्रन्थ तथा निर्ग्रन्थिया पाच प्रकार के वस्त्र ग्रहण कर सकती हैं तथा पहन सकती हैं''—
१ जागमिक—त्रस जीवो के अवयवो से निष्पन्न कम्बल आदि,
२ भागिक—अतसी से निष्पन्न,
३ सानिक—सन से निष्पन्न,
४ पोतक—रूई से निष्पन्न,
५ तिरीटपट्ट—लोध की छाल से निष्पन्न।

१९१. कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा पच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, त जहा—
उण्णिए, उट्टिए, साणए, पच्चापिच्चिए, मुजापिच्चिए णाम पंचमए।

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा पञ्च रजोहरणानि धर्त्तुं वा परिधातु वा, तद्यथा—
औणिक, औष्ट्रिक, सानक, पच्चापिञ्चिय, मुञ्चापिञ्चिय नाम पञ्चमकम्।

१९१ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया पाच प्रकार के रजोहरण ग्रहण तथा धारण कर मकती है—
१ औणिक—ऊन से निष्पन्न,
२ औष्ट्रिक—ऊट के केशो मे निष्पन्न,
३ मानक—सन मे निष्पन्न,
४ पच्चापिच्चिय[111]—वल्वज नाम की मोटी घास को कूटकर वनाया हुआ,
५ मुजापिच्चिय[112]—मूज को कूटकर वनाया हुआ।

णिस्साट्ठाण-पदं

१९२ धम्मण्ण चरमाणस्स पच णिस्साट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—
छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीर।

निश्रास्थान-पदम्

धर्मं चरत पञ्च निश्रास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
षट्काया, गण, राजा, गृहपति, शरीरम्।

निश्रास्थान-पद

१९२ धर्म का आचरण करने वाले साधु के पाच निश्रास्थान—आलम्बन स्थान होते है[113]—
१ षट्काय, २ गण—श्रमण सघ, ३ राजा, ४ गृहपति—उपाश्रय देने वाला, ५ शरीर।

णिहि-पदं

१९३. पच णिही पण्णत्ता, त जहा—
पुत्तणिही, मित्तणिही, सिप्पणिही, धणणिही, धण्णणिही।

निधि-पदम्

पञ्च निधय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुत्रनिधि, मित्रनिधि, शिल्पनिधि, धननिधि, धान्यनिधि।

निधि-पद

१९३ निधि[114] पाच प्रकार की होती है—
१ पुत्रनिधि, २ मित्रनिधि, ३ शिल्पनिधि, ४ धननिधि, ५ धान्यनिधि।

सोच-पदं

१९४ पचविहे सोए पण्णत्ते, त जहा—
पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मतसोए, बभसोए।

शौच-पदम्

पञ्चविध शौच प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
पृथ्वीशौच, अप्शौच, तेज शौच, मन्त्रशौच, ब्रह्मशौचम्।

शौच-पद

१९४ शौच[115] पाच प्रकार का होता है—
१ पृथ्वी—मिट्टीशौच, २ जलशौच, ३ तेज शौच, ४ मन्त्रशौच, ५ ब्रह्मशौच—ब्रह्मचर्य आदि का आचरण।

छउमत्थ-केवलि-पदं

१९५ पच ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण ण जाणति ण पासति, त जहा—

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

पञ्च स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—

छद्मस्थ-केवलि-पद

१९५ पाच स्थानो को छद्मस्थ सर्वभाव से नही जानता, देखता—

धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय,
आगासत्थिकाय,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं।
एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण जाणति पासति, तं जहा—
धम्मत्थिकायं, °अधम्मत्थिकायं,
आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,°
परमाणुपोग्गलं।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय,
आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्ध,
परमाणुपुद्गलम्।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय,
आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्ध,
परमाणुपुद्गलम्।

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय,
३ अकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्त जीव,
५ परमाणुपुद्गल।

केवलज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्त, जिन तथा केवली इन्हें सर्वभाव से जानते हैं, देखते हैं—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय,
३ आकाशास्तिकाय ४ शरीरमुक्त जीव,
५ परमाणुपुद्गल।

महाणिरय-पद

१९६ अधेलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—
काले, महाकाले, रोरुए,
महारोरुए, अप्पतिट्ठाणे।

महानिरय-पदम्

अधोलोके पञ्च अनुत्तरा महातिमहान्तो महानिरया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
काल, महाकाल, रौरुक, महारौरुक,
अप्रतिष्ठान।

महानिरय-पद

१९६ अधोलोक[111] में पांच अनुत्तर, सबसे बड़े महानरकावास हैं—
१ काल, २ महाकाल, ३ रौरुक,
४ महारौरुक, ५ अप्रतिष्ठान।

महाविमाण-पद

१९७ उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
विजये, वेजयंते, जयंते,
अपराजिते, सव्वट्ठसिद्धे।

महाविमान-पदम्

ऊर्ध्वलोके पञ्च अनुत्तराणि महातिमहान्ति महाविमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित,
सर्वार्थसिद्ध।

महाविमान-पद

१९७ ऊर्ध्वलोक[117] में पांच अनुत्तर, सबसे बड़े महाविमान हैं—
१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त,
४ अपराजित, ५ सर्वार्थ सिद्ध।

सत्त-पद

१९८ पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते,
थिरसत्ते, उदयणसत्ते।

सत्त्व-पदम्

पञ्च पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ह्रीसत्त्व, ह्रीमन सत्त्व, चलसत्त्व,
स्थिरसत्त्व, उदयनसत्त्व।

सत्त्व-पद

१९८ पुरुष पांच प्रकार के होते हैं[118]—
१ ह्रीसत्त्व, २ ह्रीमन सत्त्व,
३ चलसत्त्व, ४ स्थिरसत्त्व,
५ उदयनसत्त्व।

भिक्खाग-पद

१९९ पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोतचारी, पडिसोतचारी,

भिक्षाक-पदम्

पञ्च मत्स्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी,

भिक्षाक-पद

१९९ मत्स्य पांच प्रकार के होते हैं—
१ अनुश्रोतचारी, २ प्रतिश्रोतचारी—हिलसा मछली आदि,

अतचारी, मज्झचारी सव्वचारी। अन्तचारी, मध्यचारी, सर्वचारी। ३ अन्तचारी, ४ मध्यचारी, ५ सर्वचारी।

एवामेव पच भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—
अणुसोतचारी, °पडिसोतचारी, अतचारी, मज्झचारी,° सव्वचारी।

एवमेव पञ्च भिक्षाका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी, अन्तचारी, मध्यचारी, सर्वचारी।

इसी प्रकार भिक्षुक पाच प्रकार के होते हैं—
१ अनुश्रोतचारी, २ प्रतिश्रोतचारी, ३ अन्तचारी, ४ मध्यचारी, ५ सर्वचारी।

वणीमग-पदं

२०० पंच वणीमगा पण्णत्ता, त जहा—
अतिहिवणीमगे, किवणवणीमगे, माहणवणीमगे, साणवणीमगे, समणवणीमगे।

वनीपक-पदम्

पञ्च वनीपका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अतिथिवनीपक, कृपणवनीपक, माहनवनीपक, श्ववनीपक, श्रमणवनीपक।

वनीपक-पद

२०० वनीपक—याचक पाच प्रकार के होते हैं[115]—
१ अतिथिवनीपक—अतिथिदान की प्रशसा कर भोजन मागने वाला।
२ कृपणवनीपम—कृपणदान की प्रशसा कर भोजन वाला।
३ माहनवनीपक—ब्राह्मणदान की प्रशसा कर भोजन मागने वाला।
४ श्ववनीपक—कुत्ते के दान की प्रशसा कर भोजन मागने वाला।
५ श्रमणवनीपक—श्रमणदान की प्रशसा कर भोजन मागने वाला।

अचेल-पद

२०१ पचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवति, त जहा—
अप्पा पडिलेहा, लाघविए पसत्थे, रूवे वेसासिए, तवे अणुण्णाते, विउले इंदियणिग्गहे।

अचेल-पदम्

पञ्चभि स्थानै अचेलक प्रशस्तो भवति, तद्यथा—
अल्पा प्रतिलेखना, लाघविक प्रशस्त, रूप वैश्वासिक, तपोऽनुज्ञात, विपुल इन्द्रियनिग्रह।

अचेल-पद

२०१ पाच स्थानो से अचेलक प्रशस्त होता है[116]—
१ उसके प्रतिलेखना अल्प होती है,
२ उसका लाघव प्रशस्त होता है,
३ उसका रूप [वेष] वैश्वासिक—विश्वास-योग्य होता है,
४ उसका तप अनुज्ञात्—जिनानुमत होता है,
५ उसके विपुल इन्द्रिय-निग्रह होता है।

उक्कल-पदं

२०२ पच उक्कला पण्णत्ता, त जहा—
दडुक्कले, रज्जुक्कले,
तेणुक्कले, देसुक्कले, सव्वुक्कले।

उत्कल-पदम्

पञ्च उत्कला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दण्डोत्कल, राज्योत्कल,
स्तेनोत्कल, देशोत्कल, सर्वोत्कल।

उत्कल-पद

२०२ उत्कल[111] [उत्कट] पांच प्रकार के होते हैं—
१ दण्डोत्कल—जिसके पास प्रवल दण्ड-शक्ति हो,
२ राज्योत्कल—जिसके पास उत्कट प्रभुत्व हो,
३ स्तेनोत्कल—जिसके पास चोरो का प्रवल सग्रह हो,
४ देशोत्कल—जिसके पास प्रवल जन-मत हो,
५ सर्वोत्कल—जिसके पास उक्त दण्ड आदि सभी उत्कट हो।

समिति-पदं

२०३ पच समितीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
इरियासमिती, भासासमिती,
•एसणासमिती,
आयाणभड-मत्त-णिक्खेवणासमिती,
उच्चार-पासवण-खेल-सिघाण-जल्ल°-पारिठावणियासमिती।

समिति-पदम्

पञ्च समितय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ईर्यासमिति, भाषासमिति,
एषणासमिति,
आदानभाण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमिति,
उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिकासमिति।

समिति-पद

२०३ समितिया पाच है—
१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति,
३ एषणासमिति,
४ आदान-भाड-अमत्र-निक्षेपणासमिति,
५ उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिकासमिति।

जीव-पदं

२०४. पचविधा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
एगिंदिया, •बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,° पचिंदिया।

जीव-पदम्

पञ्चविधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया,
चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया।

जीव-पद

२०४ ससारसमापन्नक जीव पाच प्रकार के होते हैं—
१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय,
४ चतुरिन्द्रिय, ५ पचेन्द्रिय।

गति-आगति-पदं

२०५ एगिंदिया पचगतिया पचागतिया पण्णत्ता, त जहा—
एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदिएहिंतो वा, •बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिए-हिंतो वा°, पचिंदिएहिंतो वा, उववज्जेज्जा।

गति-आगति-पदम्

एकेन्द्रिया पञ्चगतिका पञ्चागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकेन्द्रिय एकेन्द्रियेषु उपपद्यमान एकेन्द्रियेभ्यो वा, द्वीन्द्रियेभ्यो वा, त्रीन्द्रियेभ्यो वा चतुरिन्द्रियेभ्यो वा पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपपद्येत।

गति-आगति-पद

२०५ एकेन्द्रिय जीवो की पाच स्थानों मे गति तथा पाच स्थानो से आगति होती है—
एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय शरीर मे उत्पन्न होता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय से उत्पन्न होता है।

से चेव ण से एगिदिए एगिदियत्त विप्पजहमाणे एगिदियत्ताए वा, •बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा°, पचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

स चैव असौ एकेन्द्रिय एकेन्द्रियत्व विप्रजहत् एकेन्द्रियतया वा, द्वि न्द्रियतया वा, त्रिन्द्रियतया वा, चतुरिन्द्रियतया वा, पञ्चन्द्रियतया वा गच्छेत्।

एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय शरीर को छोडता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय मे जाता है।

२०६. बेंदिया पचगतिया पंचागतिया एव चेव।

द्वीन्द्रिया पञ्चगतिका पञ्चागतिका एव चैव।

२०६ इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो की इन्ही पाच स्थानो मे गति तथा इन्हीं पाच स्थानो से आगति होती है।

२०७. एव जाव पंचिंदिया पचगतिया पचागतिया पण्णत्ता, त जहा—पचिंदिए जाव गच्छेज्जा।

एव यावत् पञ्चेन्द्रिया पञ्चगतिका पञ्चागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पञ्चेन्द्रिय यावत् गच्छेत्।

२०७ इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय जीवो की भी इन्हीं पाच स्थानो मे गति तथा इन्हीं पाच स्थानो से आगति होती है।

जीव-पदं

जीव-पदम्

जीव-पद

२०८ पचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
कोहकसाई, •माणकसाई, मायाकसाई,° लोभकसाई, अकसाई।
अहवा—
पचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
•णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा,° देवा, सिद्धा।

पञ्चविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी, अकषायी।
अथवा—
पञ्चविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिका, तिर्यग्योनिका, मनुष्या, देवा, सिद्धा।

२०८ सब जीव पाच प्रकार के होते हैं—
१ क्रोधकषायी, २ मानकषायी, ३ मायाकषायी, ४ लोभकषायी, ५ अकषायी।
अथवा—
सब जीव पाच प्रकार के होते हैं—
१ नैरयिक, २ तिर्यञ्च, ३ मनुष्य, ४ देव, ५ सिद्ध।

जोणि-ठिइ-पदं

योनि-स्थिति-पदम्

योनि-स्थिति-पद

२०९ अह भंते! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसदग-सतीण-पलिमंथगाण—एतेसि ण धण्णाण कुट्ठाउत्ताण •पल्लाउत्ताण मचाउत्ताण मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण लछियाण मुद्दियाण पिहिताण° केवइय काल जोणी सचिट्ठति?

अथ भन्ते! कला-मसूर-तिल-मुद्ग-माष-निष्पाव-कुलत्थ-आलिसदक-सतीणा-परिमन्थकाना—एतेषा धान्याना कोष्ठागुप्ताना पल्यागुप्ताना मञ्चागुप्ताना मालागुप्ताना अवलिप्ताना लिप्ताना लाञ्छिताना मुद्रिताना पिहिताना कियन्त काल योनि संतिष्ठते?

२०९ भगवन्! मटर, मसूर, तिल, मूग, उडद, निष्पाव—सेम, कुलथी, चवला, तुवर तथा काला चना—इन अन्नो को कोठे, पल्य, मचान और माल्य मे डालकर उनके द्वार-देश को ढँक देने, लीप देने, चारो ओर से लीप देने, रेखाओ से लाछित कर देने, मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि [उत्पादक-शक्ति] कितने काल तक रहती है?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति, •तेण परं जोणी पविद्धसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति,° तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्षेण पञ्च संवत्सराणि। तेन परं योनिः प्रम्लायति, तेन परं योनिः प्रविध्वसते, तेन परं योनिः विध्वसते, तेन परं बीजं अबीजं भवति, तेन परं योनिव्यवच्छेदः प्रज्ञप्तः।

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पांच वर्ष। उसके बाद वह म्लान हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है और योनि का विच्छेद हो जाता है।

संवच्छर-पदं

२१० पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—
णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिचरसंवच्छरे।

२११ जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
चंदे, चंदे, अभिवड्ढिते, चंदे, अभिवड्ढिते चेव।

२१२ पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
णक्खत्ते, चंदे, उऊ, आदिच्चे, अभिवड्ढिते।

२१३ लक्खणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

संवत्सर-पदम्

पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नक्षत्रसंवत्सरः युगसंवत्सरः प्रमाणसंवत्सरः लक्षणसंवत्सरः शनैश्चरसंवत्सरः।

युगसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
चन्द्रः, चन्द्रः, अभिवर्धितः, चन्द्रः, अभिवर्धितः चैव।

प्रमाणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
नक्षत्रः, चन्द्रः, ऋतुः, आदित्यः, अभिवर्धितः।

लक्षणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

संवत्सर-पद

२१० संवत्सर पांच प्रकार का होता है[122]—
१ नक्षत्रसंवत्सर, २ युगसंवत्सर, ३ प्रमाणसंवत्सर, ४ लक्षणसंवत्सर, ५ शनिश्चरसंवत्सर।

२११ युगसंवत्सर पांच प्रकार का होता है[123]—
१ चन्द्र, २ चन्द्र, ३ अभिवर्धित, ४ चन्द्र, ५ अभिवर्धित।

२१२ प्रमाणसंवत्सर पांच प्रकार का होता है[124]—
१ नक्षत्र, २ चन्द्र, ३ ऋतु, ४ आदित्य, ५ अभिवर्धित।

२१३ लक्षणसंवत्सर पांच प्रकार का होता है[125]—
१ नक्षत्र, २ चन्द्र, ३ कर्म [ऋतु] ४ आदित्य, ५ अभिवर्धित।

संगहणी-गाहा

१ समगं णक्खत्ताजोगं जोयंति,
समगं उदू परिणमंति।
णच्चुण्हं णातिसीतो,
बहूदओ होति णक्खत्तो॥

संग्रहणी-गाथा

१ समकं नक्षत्राणि योगं योजयन्ति,
समकं ऋतवः परिणमन्ति।
नात्युष्णः नातिशीतः,
बहूदकः भवति नक्षत्रः॥

संग्रहणी-गाथा

१ जिस संवत्सर में नक्षत्र समतया—अपनी तिथि का अतिवर्तन न करते हुए तिथियों के साथ योग करते हैं, ऋतुएं समतया—अपनी काल-मर्यादा के अनुसार परिणत होती हैं, न अति गर्मी होती है और न अति सर्दी तथा जिसमें पानी अधिक गिरता है, उसे नक्षत्रसंवत्सर कहते हैं।

२ ससिसगलपुण्णमासी,
जोएइ विसमचारिणक्खत्ते ।
कडुओ बहूदओ वा,
तमाहु सवच्छर चद ॥

२ शशिसकलपूर्णमासी,
योजयति विपमचारिनक्षत्र ।
कटुक वहूदको वा,
तमाहु सवत्सर चन्द्रम् ॥

२ जिस सवत्सर मे चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओ का स्पर्श करता है, अन्य नक्षत्र विपमचारी—अपनी तिथियो का अतिवतन करने वाले होते हैं जो कटुक—अतिगर्मी और अतिसर्दी के कारण भयकर होता है तथा जिसमे पानी अधिक गिरता है, उसे चन्द्र सवत्सर कहते हैं ।

३ विसम पवालिणो परिणमति,
अणुदूसू देंति पुप्फफल ।
वासं ण सम्म वासति,
तमाहु सवच्छर कम्म ॥

३ विपम प्रवालिन परिणमन्ति
अनृतुपु ददति पुष्पफलम् ।
वर्षो न सम्यग् वर्पति,
तमाहु सवत्सर कर्म ॥

३ जिस सवत्सर मे वृक्ष असमय अकुरित हो जाते हैं, असमय मे फूल तथा फल आ जाते हैं, वर्षा उचित मात्रा मे नही होती, उसे कर्म सवत्सर कहते हैं ।

४ पुढविदगाण तु रस,
पुप्फफलाण तु देइ आदिच्चो ।
अप्पेणवि वासेण,
सम्म णिप्फज्जए सास ॥

४ पृथिव्युदकाना तु रस,
पुष्पफलाना तु ददाति आदित्य ।
अल्पेनापि वर्षेण,
सम्यग् निष्पद्यते शस्यम् ॥

४ जिस सवत्सर मे वर्षा अल्प होने पर भी सूर्य पृथ्वी, जल तथा फूलो और फलो को मधुर और स्निग्ध रस प्रदान करता है तथा फसल अच्छी होती है, उसे आदित्य सवत्सर कहते हैं ।

५ आदिच्चतेयतविता,
खणलवदिवसा उऊ परिणमंति ।
पूरिंति रेणु थलयाइ,
तमाहु अभिवड्डित जाण ॥

५ आदित्यतेजस्तप्ता,
क्षणलवदिवसर्तव परिणमन्ति ।
पूरयन्ति रेणुभि स्थलकानि,
तमाहु अभिवर्धित जानीहि ।

५ जिस सवत्सर मे सूर्य के ताप से क्षण, लव, दिवस और ऋतु तप्त जैसे हो उठते हैं तथा आधियो मे स्थल भर जाता है, उसे अभिवर्धित सवत्सर कहते हैं ।

जीवस्स णिज्जाणमग्ग-पदं

जीवस्य-निर्याणमार्ग-पदम्

जीवस्य-निर्याणमार्ग-पद

२१४ पचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, त जहा—
पाएहिं, ऊरूहिं, उरेण, सिरेण, सव्वगेहिं ।
पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति ।
ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति ।
उरेण णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति ।
सिरेण णिज्जायमाणे देवगामी भवति ।
सव्वगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति-पज्जवसाणे पण्णत्ते ।

पञ्चविध जीवस्य निर्याणमार्गं प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पादै, ऊरुभि, उरसा, शिरसा, सर्वाङ्गै ।
पादै निर्यान् नरकगामी भवति ।
ऊरुभि निर्यान् तिर्यग्गामी भवति ।
उरसा निर्यान् मनुष्यगामी भवति ।
शिरसा निर्यान् देवगामी भवति ।
सर्वाङ्गै निर्यान् सिद्धिगति-पर्यवसानः प्रज्ञप्त ।

२१४ जीव के निर्याण-मार्ग[१३६] पाच हैं—
१ पैर, २ ऊरु—घुटने से ऊपर का भाग, ३ हृदय, ४ सिर, ५ सारे अग ।
१ पैरो से निर्याण करने वाला जीव नरकगामी होता है ।
२ ऊरु मे निर्याण करने वाला जीव तिर्यक्गामी होता है ।
३ हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है ।
४ सिर मे निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है ।
५ सारे अगों से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति मे पर्यवसित होता है ।

छेयण-पद

२१५. पचविहे छेयणे पण्णत्ते, त जहा—
उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे,
बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे,
दोधारच्छेयणे।

छेदन-पदम्

पञ्चविध छेदन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पादच्छेदन, व्ययच्छेदन,
बन्धच्छेदन, प्रदेशच्छेदन,
द्विधाच्छेदनम्।

छेदन-पद

२१५ छेदन [विभाग] पाच प्रकार का होता है—
१ उत्पादछेदन—उत्पादपर्याय के आधार पर विभाग करना,
२ व्ययछेदन—विनाशपर्याय के आधार पर विभाग करना,
३ बंधछेदन—सम्बन्ध-विच्छेद,
४ प्रदेशछेदन—अविभक्त वस्तु के प्रदेशो [अवयवो] का बुद्धि कल्पित विभाग।
५ द्विधारछेदन—दो टुकडे।

आणंतरिय-पद

२१६ पचविहे आणतरिए पण्णत्ते, त जहा—
उप्पायाणतरिए, वियाणतरिए,
पएसाणतरिए, समयाणतरिए,
सामण्णाणतरिए।

आनन्तर्य-पदम्

पञ्चविध आनन्तर्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पादानन्तर्य, व्ययानन्तर्य,
प्रदेशानन्तर्य, समयानन्तर्य,
सामान्यानन्तर्यम्।

आनन्तर्य-पद

२१६ आनन्तर्य [सातत्य] पाच प्रकार का होता है—
१ उत्पादआनन्तर्य—उत्पाद का अविरह,
२ व्ययआनन्तर्य—विनाश का अविरह,
३ प्रदेशआनन्तर्य—प्रदेशो की सलग्नता,
४ समयआनन्तर्य—समय की सलग्नता,
५ सामान्यआनन्तर्य—जिसमे उत्पाद, व्यय आदि विशेष पर्यायो की विवक्षा न हो, वह आनन्तर्य।

अणत-पद

२१७ पचविधे अणतए पण्णत्ते, तं जहा—
णामाणंतए, ठवणाणतए,
दव्वाणतए, गणणाणंतए,
पदेसाणतए।
अहवा—पचविहे अणतए पण्णत्ते, त जहा—
एगतोऽणंतए, दुहओणंतए,
देसवित्थाराणतए,
सव्ववित्थाराणतए, सासयाणतए।

अनन्त-पदम्

पञ्चविध अनन्तक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामानन्तक, स्थापनानन्तक,
द्रव्यानन्तक, गणनानन्तक,
प्रदेशानन्तकम्।
अथवा—पञ्चविध अनन्तक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
एकतोऽनन्तक, द्विधाऽनन्तक,
देशविस्ताराऽनन्तक,
सर्वविस्ताराऽनन्तक, शाश्वतानन्तकम्।

अनन्त-पद

२१७ अनन्तक[११] पाच प्रकार का होता है—
१ नामअनन्तक, २ स्थापनाअनन्तक,
३ द्रव्यअनन्तक, ४ गणनाअनन्तक,
५ प्रदेशअनन्तक।
अथवा—अनन्तक पाच प्रकार का होता है—
१ एकत अनन्तक, २ द्विधाअनन्तक,
३ देशविस्तारअनन्तक, ४ सर्वविस्तार अनन्तक, ५ शाश्वत अनन्तक।

णाण-पदं

२१८ पचविहे णाणे पण्णत्ते, त जहा—
आभिणिबोहियणाणे,
सुयणाणे, ओहिणाणे,
मणपज्जवणाणे, केवलणाणे ।

२१९. पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—
आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे,
•सुयणाणावरणिज्जे,
ओहिणाणावरणिज्जे,
मणपज्जवणाणावरणिज्जे,°
केवलणाणावरणिज्जे ।

२२० पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—
वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा,
अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

ज्ञान-पदम्

पञ्चविध ज्ञान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान,
अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान,
केवलज्ञानम् ।

पञ्चविध ज्ञानावरणीय कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आभिनिवोधिकज्ञानावरणीय,
श्रुतज्ञानावरणीय,
अवधिज्ञानावरणीय,
मन पर्यवज्ञानावरणीय,
केवलज्ञानावरणीयम् ।

पञ्चविध स्वाध्याय प्रज्ञप्त, तद्यथा—
वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना,
अनुप्रेक्षा, धर्मकथा ।

ज्ञान-पद

२१८ ज्ञान के पाच प्रकार हैं—
१ आभिनिवोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान,
३ अवधिज्ञान, ४ मन पर्यवज्ञान,
५ केवलज्ञान ।

२१९ ज्ञानावरणीय कर्म के पाच प्रकार हैं—
१ आभिनिवोधिकज्ञानावरणीय,
२ श्रुतज्ञानावरणीय,
३ अवधिज्ञानावरणीय,
४ मन पर्यवज्ञानावरणीय,
५ केवलज्ञानावरणीय ।

२२० स्वाध्याय[128] के पाच प्रकार हैं—
१ वाचना—अध्यापन, २ प्रच्छना—सदिग्ध विषयो मे प्रश्न करना,
३ परिवर्तना—पठित ज्ञान की पुनरावृत्ति करना, ४ अनुप्रेक्षा—चिन्तन,
५ धर्मकथा—धर्मचर्चा ।

पच्चक्खाण-पदं

२२१ पचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—
सद्दहणसुद्धे, विणयसुद्धे,
अणुभासणासुद्धे, अणुपालणासुद्धे,
भावसुद्धे ।

प्रत्याख्यान-पदम्

पञ्चविध प्रत्याख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रद्धानशुद्धं, विनयशुद्धं,
अनुभाषणाशुद्ध, अनुपालनाशुद्ध,
भावशुद्धम् ।

प्रत्याख्यान-पद

२२१ प्रत्याख्यान पाच प्रकार का होता है—
१ श्रद्धानशुद्ध—श्रद्धापूर्वक स्वीकृत ।
२ विनयशुद्ध—विनय-समाचरण पूर्वक स्वीकृत ।
३ अनुभाषणाशुद्ध[129]—प्रत्याख्यान कराते समय गुरु जिस पाठ का उच्चारण करे उसे दोहराना ।
४ अनुपालनाशुद्ध[130]—कठिन परिस्थिति मे भी प्रत्याख्यान का भग न करना, उसका विधिवत् पालन करना ।
५ भावशुद्ध[131]—राग-द्वेष या आकाक्षात्मक मानसिक भावो से अदूषित ।

पडिक्कमण-पदं

२२२ पचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, त जहा—
आसवदारपडिक्कमणे,
मिच्छत्तपडिक्कमणे,
कसायपडिक्कमणे,
जोगपडिक्कमणे,
भावपडिक्कमणे।

प्रतिक्रमण-पदम्

पञ्चविध प्रतिक्रमण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आश्रवद्वारप्रतिक्रमण,
मिथ्यात्वप्रतिक्रमण,
कषायप्रतिक्रमण,
योगप्रतिक्रमण,
भावप्रतिक्रमणम्।

प्रतिक्रमण-पद

२२२ प्रतिक्रमण[११२] पाच प्रकार का होता है—
१ आश्रवद्वारप्रतिक्रमण,
२ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण,
३ कषायप्रतिक्रमण, ४ योगप्रतिक्रमण,
५ भावप्रतिक्रमण।

सुत्त-पद

२२३ पर्चाह ठाणेहि सुत्त वाएज्जा, त जहा—
सगहट्ठयाए, उवग्गहट्ठयाए,
णिज्जरट्ठयाए,
सुत्ते वा मे पज्जवयाते भविस्सति,
सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए।

सूत्र-पदम्

पञ्चभि स्थानै सूत्र वाचयेत्, तद्यथा—
सग्रहार्थाय, उपग्रहार्थाय,
निर्जरार्थाय,
सूत्र वा मम पर्यवजात भविष्यति,
सूत्रस्य वा अव्यवच्छित्तिनयार्थाय।

सूत्र-पद

२२३ पाच कारणो से सूत्रो का अध्यापन कराना चाहिए—
१ सग्रह के लिए—शिष्यो को श्रुत-सम्पन्न करने के लिए।
२ उपग्रह के लिए—भक्त, पान व उपकरणो की विधिवत् उपलब्धि कर सके, वैसी क्षमता उत्पन्न करने के लिए।
३ निर्जरा के लिए—कर्म-क्षय के लिए।
४ अध्यापन से मेरा श्रुत पर्यवजात—परिस्फुट होगा, इसलिए।
५ श्रुतपरम्परा को अव्यवच्छिन्न रखने के लिए।

२२४. पर्चाह ठाणेहि सुत्त सिक्खेज्जा, त जहा—
णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए,
चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए,
अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीतिकट्टु।

पञ्चभि स्थानै सूत्र शिक्षेत्, तद्यथा—
ज्ञानार्थाय, दर्शनार्थाय, चरित्रार्थाय,
व्युद्ग्रहविमोचनार्थाय,
यथार्था(स्था)न् वा भावान् ज्ञास्यामीतिकृत्वा।

२२४ पाच कारणो से श्रुत का अध्ययन करना चाहिए—
१ ज्ञान के लिए—अभिनव तत्त्वो की उपलब्धि के लिए।
२ दर्शन के लिए—श्रद्धा की पुष्टि के लिए।
३ चरित्र के लिए—आचार-विशुद्धि के लिए।
४ व्युद्ग्रह विमोचन के लिए—दूसरो को मिथ्या अभिनिवेश से मुक्त करने के लिए।
५ मैं यथार्थ भावो को जानूगा, इसलिए।

कप्प-पदं

२२५. सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु विमाणा पचवण्णा पण्णत्ता, त जहा—
किण्हा, •णीला, लोहिता, हालिद्दा,° सुक्किल्ला ।

२२६ सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु विमाणा पचजोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

२२७ बभलोग-लतएसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेण पच रयणी उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

कल्प-पदम्

सौधर्मेशानयो कल्पयो विमानानि पञ्चवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि ।

सौधर्मेशानयो कल्पयो विमानानि पञ्चयोजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ।

ब्रह्मलोक-लान्तकयो कल्पयो देवाना भवधारणीयशरीरकाणि उत्कर्षेण पञ्च रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ।

कल्प-पद

२२५ सौधर्म और ईशान देवलोक मे विमान पाच वर्णों के होते हैं—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ हारिद्र, ५ शुक्ल ।

२२६ सौधर्म और ईशान देवलोक मे विमान पाच सौ योजन ऊचे हैं ।

२२७ ब्रह्मलोक तथा लातक देवलोक मे देवताओ का भवधारणीय शरीर उत्कृष्टत पाच रत्नि ऊचा होता है ।

बध-पद

२२८ णेरइया ण पचवण्णे पंचरसे पोग्गले बधेंसु वा बधति वा बधिस्सति वा, त जहा—
किण्हे, •णीले, लोहिते, हालिद्दे,° सुक्किले ।
तित्ते, •कडुए, कसाए, अबिले,° मधुरे ।

२२९. एव—जाव वेमाणिया ।

बन्ध-पदम्

नैरयिका पञ्चवर्णान् पञ्चरसान् पुद्गलान् अभान्त्सु वा बध्नन्ति वा बन्धिष्यन्ति वा, तद्यथा—
कृष्णान्, नीलान्, लोहितान्, हारिद्रान्, शुक्लान् ।
तिक्तान् कटुकान्, कषायान्, अम्लान्, मधुरान् ।

एवम्—यावत् वैमानिका ।

बन्ध-पद

२२८ नैरयिको ने पाच वर्ण तथा पाच रसवाले पुद्गलो का बधन [कर्मरूप मे स्वीकरण] किया है, कर रहे हैं तथा करेंगे—
१ कृष्णवर्णवाले, २ नीलवर्णवाले, ३ लोहितवर्णवाले, ४ हारिद्रवर्णवाले, ५ शुक्लवर्णवाले ।
१ तिक्तरसवाले, २ कटुरसवाले, ३ कषायरसवाले, ४ अम्लरसवाले, ५ मधुररसवाले ।

२२९ इसी प्रकार वैमानिको तक के सारे ही दण्डक-जीवो ने पाच वर्ण तथा पाच रस वाले पुद्गलो का बधन [कर्मरूप मे स्वीकरण] किया है, कर रहे हैं तथा करेंगे ।

महाणदी-पद

२३० जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण गग महाणदिं पच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही ।

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे गङ्गा महानदी पञ्च महानद्य समार्पयन्ति, तद्यथा—
यमुना, सरयू , आवी, कोशी, मही ।

महानदी-पद

२३० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग—भरतक्षेत्र मे गगा महानदी मे पाच महानदिया मिलती हैं'''—
१ यमुना, २ सरयू, ३ आवी, ४ कोसी ५ मही ।

२३१ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण सिंधु महाणर्दि पच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
स[त ?]द्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चदभागा ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे सिन्धू महानदी पञ्च महानद्य समर्पयन्ति, तद्यथा—
शतद्रु, वितस्ता, विपाशा, ऐरावती, चन्द्रभागा ।

२३१ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग—भरतक्षेत्र मे सिन्धु महानदी में पाच महानदियां मिलती हैं[११४]—
१ शतद्रु—शतलज, २ वितस्ता—झेलम, ३ विपासा—व्यास, ४ ऐरावती—रावी, ५ चन्द्रभागा—चिनाव ।

२३२ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्त महाणर्दि पच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्ता महानदी पञ्च महानद्य. समर्पयन्ति, तद्यथा—
कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा ।

२३२ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग—ऐरवतक्षेत्र मे रक्ता महानदी मे पाच महानदिया मिलती हैं—
१ कृष्णा, २ महाकृष्णा, ३ नीला, ४ महानीला, ५ महातीरा ।

२३३ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रत्तावति महाणर्दि पच महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—
इदा, इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोगा ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्तावती महानदी पञ्च महानद्य समर्पयन्ति, तद्यथा—
इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुषेणा, वारिषेणा, महाभोगा ।

२३३ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग—ऐरवतक्षेत्र मे रक्तावती महानदी मे पाच महानदिया मिलती हैं—
१ इन्द्रा, २ इन्द्रसेना, ३ सुषेणा, ४ वारिषेणा, ५ महाभोगा ।

तित्थगर-पदं

२३४ पच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुडा *भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइया, तं जहा—
वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे ।

तीर्थंकर-पदम्

पञ्च तीर्थंकरा कुमारवासमध्ये उषित्वा मुण्डा भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिता, तद्यथा—
वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्व, वीर ।

तीर्थंकर-पद

२३४ पाच तीर्थंकर कुमारवास में रहकर मुण्ड होकर, अगार को छोड अनगारत्व मे प्रव्रजित हुए[११५]—
१ वासुपूज्य, २ मल्ली, ३ अरिष्टनेमि, ४ पार्श्व, ५ महावीर ।

सभा-पदं

२३५ चमरचचाए रायहाणीए पच सभा पण्णत्ता, तं जहा—
सभासुधम्मा, उववातसभा, अभिसेयसभा, अलकारियसभा, ववसायसभा ।

सभा-पदम्

चमरचञ्चाया राजधान्या पञ्च सभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सभासुधर्मा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलकारिकसभा, व्यवसायसभा ।

सभा-पद

२३५ चमरचचा राजधानी मे पाच सभाए हैं—
१ सुधर्मासभा—शयनागार,
२ उपपातसभा—प्रसवगृह,
३ अभिषेकसभा—जहा राज्याभिषेक किया जाता है,
४ अलकारिकसभा—अलकारगृह,
५ व्यवसायसभा—अध्ययनकक्ष ।

२३६ एगमेगे णं इदट्ठाणे पंच सभाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
सभासुहम्मा, •उववातसभा, अभिसेयसभा, अलकारियसभा,° ववसायसभा।

एकैकस्मिन् इन्द्रस्थाने पञ्च सभा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सभासुधर्मा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलकारिकसभा, व्यवसायसभा।

२३६ इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्र की राजधानी मे पाच-पाच सभाए हैं—
१ सुधर्मासभा, २ उपपातसभा, ३ अभिषेकसभा, ४ अलकारिकसभा, ५ व्यवसायसभा।

णक्खत्त-पद

२३७ पच णक्खत्ता पचतारा पण्णत्ता, त जहा—
घणिट्ठा, रोहिणी, पुणव्वसू, हत्थो, विसाहा।

नक्षत्र-पदम्

पञ्च नक्षत्राणि पञ्चताराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
धनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा।

नक्षत्र-पद

२३७ पाच नक्षत्र पाच तारोवाले हैं—
१ धनिष्ठा, २ रोहिणी, ३ पुनर्वसु, ४ हस्त, ५ विशाखा।

पावकम्म-पदं

२३८ जीवा ण पचट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा त जहा—
एगिदियणिव्वत्तिए,
•बेइदियणिव्वत्तिए,
तेइदियणिव्वत्तिए,
चउरिंदियणिव्वत्तिए,°
पचिंदियणिव्वत्तिए,
एव—चिण-उवचिण-बंध उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवा पञ्चस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
एकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
द्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
त्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
चतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

२३८ जीवो ने पाच स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का, पापकर्म के रूप मे, चय किया है, करते हैं तथा करेंगे—
१ एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का,
२ द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का,
३ त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का,
४ चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का,
५ पचेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का।
इसी प्रकार जीवो ने पाच स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का, पापकर्म के रूप मे, उपचय, बध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं तथा करेंगे।

पोग्गल-पदं

२३९ पचपएसिया खधा अणता पण्णत्ता।

२४० पचपएसोगाढा पोग्गला अणता जाव पंचगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

पञ्चप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता।

पञ्चप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता यावत् पञ्चगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।

पुद्गल-पद

२३९ पच-प्रदेशी स्कध अनन्त हैं।

२४०. पच-प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।
पाच समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
पाच गुण काले पुद्गल अनन्त हैं।
इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गध, रस और स्पर्शों के पाच गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान—५

१. (सू० ५)

कामगुण—

काम का अर्थ है—अभिलाषा और गुण का अर्थ है—पुद्गल के धर्म। कामगुण के दो अर्थ हैं[1]—

१ मैथुन-इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।

२ इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।

२. (सू० ६-१०)

इन सूत्रों मे प्रयुक्त सग, राग, मूर्छा, गृद्धि और अध्युपपन्नता—ये शब्द आसक्ति के क्रमिक विकास के द्योतक हैं। इनकी अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

१. सग—इन्द्रिय-विषयो के साथ सम्बन्ध।

२ राग—इन्द्रिय-विषयो मे लगाव।

३ मूर्च्छा—इन्द्रिय-विषयों से उत्पन्न दोषो को न देख पाना तथा उनके सरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना।

४ गृद्धि—प्राप्त इन्द्रिय-विषयो के प्रति असतोष और अप्राप्त इन्द्रिय-विषयो की आकाक्षा।

५ अध्युपपन्नता—इन्द्रिय-विषयो के सेवन मे एकचित्त हो जाना, उनकी प्राप्ति मे अत्यन्त दत्तचित्त हो जाना[2]।

३ (सू० १२)

यहा अहित, अशुभ, अक्षम, अनि:श्रेयस और अननुगामिक—इन पाच शब्दो का प्रयोग प्रतिपाद्य विषय पर बल देने के लिए किया गया है। साधारणतया इनसे अहित शब्द का अर्थ ही ध्वनित होता है और प्रत्येक शब्द की अर्थ-भिन्नता पर विचार किया जाए तो इनके अर्थ इस प्रकार फलित होते हैं[3]—

अहित—अपाय।

अशुभ—पुण्यरहित।

अक्षम—अनौचित्य या असामर्थ्य।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २७७ 'कामगुण' त्ति कामस्य—मदनाभिलाषस्य अभिलाषमात्रस्य वा सपादका, गुणा—धर्मा पुद्गलानां, काम्यन्त इति कामा ते च ते गुणाश्चेति वा कामगुणा इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र २७७, २७८ सज्यते—सङ्ग सम्बन्ध कुर्वन्तीति ४, रज्यते—सङ्गकारण राग यान्तीति, मूर्च्छन्ति—तद्दोषानवलोकनेन मोहमचेतनत्वमिव यान्ति सरक्षणानुबन्धवन्तो वा भवन्तीति, गृध्यन्ति—प्राप्तस्यासन्तोषेणाप्राप्तस्यापरापरस्याकाङ्क्षावन्तो भवन्तीति, अध्युपपद्यन्ते तदेकचित्ता भवन्तीति तदर्जनाय वाऽऽधिक्येनोपपद्यन्ते—उपपन्ना घटमाना भवन्तीति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७८।

अनि श्रेयस—अकल्याण।

अननुगामिक—भविष्य मे उपकारक के रूप मे साथ नही देने वाला।

४ (सू० १८)

देखें—२।२४३-२४८ का टिप्पण।

५. (सू० २०)

जिस प्रकार दिशाओ के अधिपति इन्द्र, अग्नि आदि हैं, नक्षत्रो के अधिपति अश्वि, यम, दहन आदि हैं, शक्र दक्षिण लोक का अधिपति और ईशान उत्तर लोक का अधिपति है, उसी प्रकार पाच स्थावर कायो मे भी क्रमश इन्द्र, ब्रह्म, शिल्प, सम्मति और प्राजापत्य—अधिपति हैं।[1]

६-१६ (सू० २१)

प्रस्तुत सूत्र मे अवधि दर्शन के विचलित होने के पाँच स्थानो का निर्देश है। विचलन का मूल कारण है मोह की चतुर्विध परिणति—विस्मय, दया, लोभ और भय का आकस्मिक प्रादुर्भाव। जो दृश्य पहले नही देखा था उसको देखते ही व्यक्ति का मन विस्मय से भर जाता है, जीवमय पृथ्वी को देख वह दया से पूर्ण हो जाता है तथा विपुल धन, ऐश्वर्य आदि देखकर वह लोभ मे आकुल और अदृष्टपूर्व सर्पों को देखकर वह भयाक्रान्त हो जाता है। अत विस्मय, दया, लोभ और भय भी उसके विचलन के कारण बनते हैं।[2]

इस सूत्र के कुछ विशेष शब्दो की मीमासा—

१ पृथ्वी को छोटा-सा—

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं—

१ थोडे जीवो वाली पृथ्वी।

२ छोटी पृथ्वी।

अवधि ज्ञान उत्पन्न होने से पूर्व साधक के मन मे कल्पना होती है कि पृथ्वी बडी तथा बहुत जीवो वाली है, पर जब वह उसे अपनी कल्पना से विपरीत पाता है, तब उसका अवधिदर्शन क्षुब्ध हो जाता है।[3]

३ ग्राम नगर आदि के टिप्पण के लिए देखें २।३६० का टिप्पण। शेष कुछेक शब्दो की व्याख्या इस प्रकार है—

१ शृगाटक—तीन मार्गों का मध्य भाग।[4] इसका आकार यह होगा >।

२ तिराहा—जहाँ तीन मार्ग मिलते हो।[5] इसका आकार यह होगा ⊥।

३ चौक—चार मार्गों का मध्य भाग।[6] चतुष्कोण भूमाग।

४ चौराहा—जहाँ चार मार्ग मिलते हो।[7] इसका आकार यह + होगा।

भिन्न-भिन्न व्याख्या ग्रन्थो मे इसके अनेक अर्थ मिलते हैं—

१ सीमाचतुष्क।

२ त्रिपथभेदी।

३ बहुतर रथ्याओं का मिलन-स्थान।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २७६।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र २७६, २८० अत्यन्तविस्मयदयाभ्यामिति विस्मयाद् भयाद्वा अदृष्टपूर्वतया विस्मयाल्लोभाद्वेति।

३ वही, पत्र २७६ अल्पभूतां—स्तोकसत्त्वां पृथिवीं दृष्ट्वा, वा शब्दा विकल्पार्था, अनेकसत्त्वव्याकुलाभूरिति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० शृङ्गाटकं—त्रिकोण रथ्यान्तरम्।

५ वही, पत्र २८० त्रिकं—यत्र रथ्यानां त्रय मिलति।

६ वही, पत्र २८०।

७ वही, पत्र २८० चतुष्कं—यत्र रथ्याचतुष्टयम्।

४ चार मार्गों का समागम।

५ छह मार्गों का समागम।[1]

स्थानांग वृत्तिकार ने इसका अर्थ आठ रथ्याओं का मध्य किया है।[2]

५ चतुर्मुख—देवकुल आदि का मार्ग।[3] देवकुलों के चारों ओर दरवाजे होते हैं।

६ महापथ—राजमार्ग।

७ पथ—सामान्यमार्ग।

८ नगर निर्द्धमन—नगर के नाले।[4]

९ शांतिगृह—जहां राजा आदि के लिए शांतिकर्म—होम, यज्ञ आदि किया जाता है।[5]

१० शैलगृह—पर्वत को कुरेद कर बनाया हुआ मकान।[6]

११ उपस्थानगृह—सभामण्डप।[7]

१२ भवन-गृह—कुटुम्बीजन (घरेलू नौकर) के रहने का मकान।

भवन और गृह का अर्थ पृथक् रूप में भी किया जा सकता है। जिसमें चार शालाएं होती हैं उसे भवन और जिसमें कमरे (अपवरक) होते हैं वह गृह कहलाता था।[8]

२० (सू २२)

प्रस्तुत सूत्र में केवलज्ञान-दर्शन के विचलित न होने के पांच स्थानों का निर्देश है। अविचलन के हेतु ये हैं[9]—

१ यथार्थ वस्तुदर्शन।

२ मोहनीय कर्म की क्षीणता।

३ भय, विस्मय और लोभ का अभाव।

४ अति गभीरता।

२१ (सू० २५)

शरीर पांच प्रकार के हैं—

१ औदारिक शरीर—स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न, रसादि धातुमय शरीर। यह मनुष्य और तिर्यञ्चों के ही होता।

२ वैक्रिय शरीर—विविध रूप करने में समर्थ शरीर। यह नैरयिकों तथा देवों के होता है। वैक्रिय-लब्धि से सम्पन्न मनुष्यों और तिर्यञ्चों तथा वायुकाय के भी यह होता है।

३ आहारकशरीर—आहारकलब्धि से निष्पन्न शरीर। आहारकलब्धि से सम्पन्न मुनि अपनी संदेह निवृत्ति के लिए अपने आत्म-प्रदेशों से एक पुतले का निर्माण करते हैं और उसे सर्वज्ञ के पास भेजते हैं। वह उनके पास जाकर उनसे संदेह की निवृत्ति कर पुनः मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। यह क्रिया इतनी शीघ्र और अदृश्य होती है कि दूसरों को इसका पता भी नहीं चल सकता। इस क्षमता को आहारकलब्धि कहते हैं।

---

१ अल्पपरिचित शब्दकोष।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० अष्टरथ्याष्टकमध्यम।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० चतुर्मुख—देवकुलादि।

४ वही पत्र २८० नगरनिर्द्धमनेषु—खालेषु।

५ वही, पत्र २८०, शान्तिगृह—यत्र राज्ञां शान्तिकर्महोमादि क्रियते।

६ वही, पत्र २८० शैलगृहं—पर्वतमुत्कीर्य यत्कृतम्।

७ वही, पत्र २८० उपस्थानगृह—आस्थानमण्डपः।

८ वही, पत्र २८० भवनगृह—यत्र कुटुम्बिनो वास्तव्या भवन्तीति तत्र भवनं—चतुःशालादि गृहं तु अपवरकादि-मात्रम्।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० केवलज्ञानदर्शनं तु न स्कम्भीयात् केवली वा याथात्म्येन वस्तुदर्शनात् क्षीणमोहनीयत्वेन भय-विस्मयलोभाद्यभावेन अतिगम्भीरत्वाच्चेति।

४ तैजसशरीर—जिससे तेजोलब्धि (उपघात या अनुग्रह किया जा सके वह शक्ति) मिले और दीप्ति एवं पाचन हो वह शरीर।

५ कार्मणशरीर—कर्म-समूह से निष्पन्न अथवा कर्मविकार को कार्मणशरीर कहते हैं। तैजस और कार्मणशरीर सभी जीवों के होते हैं।

२२ (सू० ३२)

उत्तराध्ययन के तेईसवें अध्ययन (२३, २६, २७) में बताया है कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड होते हैं, इसलिए उन्हें धर्म समझाना कठिन होता है। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड होते हैं, उनके लिए धर्म का आचरण करना कठिन होता है। इस सूत्र में दोनों तीर्थंकरों के साधुओं के लिए पांच दुर्गम स्थान बताए हैं। यदि उनका विभाग किया जाए तो प्रथम तीन प्रथम तीर्थंकर के साधुओं के लिए और अन्तिम दो अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के लिए हैं और यदि विभाग न किया जाए तो इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है—

प्रथम तीर्थंकर के साधुओं को समझने में कठिनाई होती है, इसीलिए उनके लिए धर्म के अनुपालन में भी कठिनाई होती है। अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं में तितिक्षा और अनुपालन की शक्ति कम होती है, इसलिए तत्त्व का आख्यान करना भी उनके लिए दुर्गम हो जाता है।

देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन २३।

२३, २४ (सू० ३४, ३५)

देखें—१०।१६ का टिप्पण।

२५, २६ अन्त्यचरक, प्रान्त्यचरक (सू० ३६)

वृत्तिकार ने अन्त्यचरक का अर्थ—बचा-खुचा जघन्य धान्य लेने वाला और प्रान्त्यचरक का अर्थ—बासी जघन्य धान्य लेने वाला किया है।[1]

औपपातिक (सूत्र १९) की वृत्ति में इनका अर्थ किञ्चित् परिवर्तन के साथ किया है[2]—

अन्त्यचरक—जघन्य धान्य लेने वाला।

प्रान्त्यचरक—बचा-खुचा या बासी अत्यन्त जघन्य धान्य लेने वाला।

प्रस्तुत सूत्र में प्रथम दो भिक्षाचर्या और शेष तीन रसपरित्याग के अन्तर्गत आते हैं। उत्क्षिप्तचरक और निक्षिप्तचरक ये दोनों भाव-अभिग्रह हैं और शेष तीन द्रव्य-अभिग्रह।

२७. अन्नग्लायकचरक (सू० ३७)

वृत्तिकार ने इसके तीन संस्कृत रूप देकर उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है[3]—

१ अन्नग्लानकचरक—बासी अन्न खाने वाला।

२ अन्नग्लायकचरक—अन्न के बिना ग्लान होकर—भूख की वेदना से पीड़ित होकर खाने वाला।

३ अन्यग्लायकचरक—दूसरे ग्लान व्यक्ति के लिए भोजन की गवेषणा करने वाला।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८३ अन्ते भवमान्त—भुक्तावशेष वल्लादि प्रकृष्टमान्त प्रान्त—तदेव पर्युषितम्।

२ औपपातिकवृत्ति, पृष्ठ ७५ अन्त्य—जघन्यधान्य वल्लादि, पर्याहारेति—प्रकर्षेणान्त्य वल्लाद्येव भुक्तावशेषं पर्युषित वा।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८३ अन्नइलायचरए त्ति अन्नग्लानको दोषान्नभुगिति अथवा अन्न विना ग्लायक — समुत्पन्नवेदनादिकारण एवेत्यर्थ, अन्यस्मै वा ग्लायकाय भोजनार्थं चरतीति अन्नग्लानकचरकोऽन्नग्लायकचरकोऽन्यग्लायकचरको वा।

औपपातिक वृत्ति मे इसका एकमात्र अर्थ—भोजन के विना ग्लान होने पर प्रात काल ही वासी अन्न खाने वाला किया है।[1] यही अर्थ अधिक मगत लगता है।

२८ शुद्धैषणिक (सू० ३८)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ—अनतिचार एषणा किया है। एषणा के शकित आदि दस दोष हैं। उनसे रहित एषणा को शुद्धैषणा कहा जाता है।

पिंडैषणा और पानैषणा सात-सात प्रकार की होती हैं। इनमें से किसी एक या सातो एषणाओं से आहार लेने वाला शुद्धैषणिक कहलाता है।[2]

औपपातिक के वृत्तिकार ने इसका अर्थ शका आदि दोषरहित अथवा निर्व्यंजन आहार लेने वाला किया है।[3]

२९ स्थानायतिक (सू० ४२)

स्थानाग वृत्तिकार ने इसके दो सस्कृत रूप दिए हैं—स्थानातिद और स्थानातिग। स्थान का अर्थ कायोत्सर्ग है। स्थानातिद और स्थानातिग—इन दोनो का अर्थ है—कायोत्सर्ग करने वाला।[4]

'ठाणातिए' पद मे एकपदीय सधि होने के कारण वृत्तिकार को इस प्रकार की व्याख्या करनी पडी। इसमे मूलत दो शब्द हैं—ठाण+आयतिए। 'आ' की सधि होने पर 'ठाणायतिए' बन जाता है। 'य' का लोप करने पर फिर अकार की सधि होती है और 'ठाणातिय रूप बन जाता है। इस सधिच्छेद के आधार पर इसका सस्कृत रूप 'स्थानायतिक' बनता है और यही रूप इसके अर्थ का सूचक है।

वृहत्कल्पभाष्य मे 'ठाणायत' (स्थानायत) पाठ है।[5] उसकी वृत्ति मे स्त्रीलिंग के रूप मे स्थानायतिका का प्रयोग मिलता है।[6] जिस आसन मे सीधा खडा होना होता है उसका नाम स्थानायतिक है। स्थान तीन प्रकार के होते हैं—ऊर्ध्वस्थान, निषीदनस्थान और शयनस्थान। स्थानायतिक ऊर्ध्वस्थान का सूचक है।

३० प्रतिमास्थायी (सू० ४२)

वृत्तिकार ने प्रतिमा का अर्थ कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित रहना किया है।[7] कहीं-कहीं प्रतिमा का अर्थ कायोत्सर्ग भी प्राप्त होता है।[8] बैठी या खडी प्रतिमा की भाँति स्थिरता से बैठने या खडा रहने को प्रतिमा कहा गया है। यह कायक्लेश तप का एक प्रकार है। इसमे उपवास आदि की अपेक्षा कायोत्सर्ग, आसन व ध्यान की प्रधानता होती है। प्रतिमा की जानकारी के लिए देखें—दशाश्रुतस्कध, दशा सात।

३१ वीरासनिक (सू० ४२)

सिंहासन पर बैठने से शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति मे सिंहासन के निकाल लेने पर स्थित रहना वीरासन है। यह कठोर आसन है। इसकी साधना वीर मनुष्य ही कर सकता है। इसलिए इसका नाम 'वीरासन' है।[9]

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १४९, १५०।

---

१ औपपातिकसूत्र १९, वृत्ति पृष्ठ ७४ अण्णगिलायए त्ति अन्नं-भोजनं विना ग्लायति अन्नग्लायक, स चाभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोषान्नभुगिति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४।

३ औपपातिक सूत्र १९, वृत्ति पृष्ठ ७४ सुद्देसणिए त्ति शुद्धैषणा शङ्कादिदोषरहितता शुद्धस्य वा निर्व्यञ्जनस्य कूरादेरेषणा यस्यास्ति स तथा।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ 'ठाणाइए' त्ति स्थान—कायोत्सर्गं तमतिददाति प्रकरोति अतिगच्छति वेति स्थानातिद स्थानातिगावेति

५ वृहद्कल्पभाष्य गाथा ५९५३।

६ वही, गाथा ५९५३ वृत्ति।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ प्रतिमया—एकरात्रिक्यादिकया कायोत्सर्गविशेषेणैव तिष्ठोत्येवशीलो य स प्रतिमास्थायी।

८ मूलाचारदर्पण ८।२०७१ पडिमा—कायोत्सर्ग।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ 'वीरासन' भून्यस्तपादस्य सिंहासने उपविष्टस्य तदपनयने या कायावस्था तद्रूप, दुष्कर च तदिति, अत एव वीरस्य—साहसिकस्यासनमिति वीरासनमुक्तम्।

३२ नैषद्यिक (सू० ४२)

इसका अर्थ है—बैठने की विधि। इसके पाच प्रकार हैं। देखें—स्थानांग ५।५० तथा ७।४६ का टिप्पण।

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १४३-१४५।

३३ आतापक (सू० ४३)

आतापना का अर्थ है—प्रयोजन के अनुरूप सूर्य का आताप लेना।

औपपातिक के वृत्तिकार ने आतापना के आसन-भेद से अनेक भेद प्रतिपादित किए है।

आतापना के तीन प्रकार हैं—

१ निपन्न—सोकर ली जाने वाली—उत्कृष्ट।

२ अनिपन्न—बैठकर ली जाने वाली—मध्यम।

३ ऊर्ध्वस्थित—खडे होकर ली जाने वाली—जघन्य।

निपन्न आतापना के तीन प्रकार हैं—

१ अधोरुकशायिता, २ पार्श्वशायिता, ३ उत्तानशायिता।

अनिपन्न आतापना के तीन प्रकार हैं—

१ गोदोहिका, २ उत्कुटुकाननता, ३ पर्यङ्कासनता।

ऊर्ध्वस्थान आतापना के तीन प्रकार है—

१ हस्तिशौंडिका, २ एकपादिका, ३ समपादिका।

इनमे पहला प्रकार उत्कृष्ट, दूसरा मध्यम और तीसरा जघन्य है।[1]

प्रस्तुत आठ सूत्रो [३६-४३] मे विविध तप करने वाले मुनियो का उल्लेख है। इन सबका समावेश बाह्य-तप के छह प्रकारो मे से तीन प्रकार—भिक्षाचर्या, रसपरित्याग और कायक्लेश के अन्तर्गत होता है। जैसे—

१ भिक्षाचर्या

उत्क्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरक, अज्ञातचरक, अन्नग्लायकचरक, मौनचरक, संसृष्टकल्पिक, तज्जातसंसृष्टकल्पिक, औपनिधिक, शुद्धैषणिक, संख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, पृष्ठलाभिक, परिमितपिंडपातिक, भिन्नपिंडपातिक।

२ रसपरित्याग

अन्त्यचरक, प्रान्त्यचरक, रूक्षचरक, आचाम्लिक, निर्विकृतिक, पूर्वार्धिक, अरसाहार, विरसाहार, अन्त्याहार, प्रान्त्याहार, रूक्षाहार, अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी, रूक्षजीवी।

३ कायक्लेश

स्थानायतिक, उत्कुटुकासनिक, प्रतिमास्थायी, वीरासनिक, नैषद्यिक, दंडायतिक, लगंडशायी, आतापक, अप्रावृतक, अकण्डूयक।

औपपातिक सूत्र १६ मे प्राय इन सबका इन बाह्य-तपो के प्रकारो मे उल्लेख मिलता है। वहाँ भिन्नपिंडपातिक तथा अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी और रूक्षजीवी का उल्लेख नहीं मिलता।

३४, ३५ (सू० ४४, ४५)

दो सूत्रों मे दस प्रकार के वैयावृत्त्य निर्दिष्ट हैं। वैयावृत्त्य का अर्थ है—सेवा करना, कार्य मे प्रवृत्त होना। अग्लान-भाव से किया जाने वाला वैयावृत्त्य महानिर्जरा—बहुत कर्मों का क्षय करने वाला तथा महापर्यवसान—जन्म-मरण का आत्यन्तिक उच्छेद करने वाला होता है। अग्लान भाव का अर्थ है—अखिन्नता, बहुमान।[2]

---

१ औपपातिक सूत्र १६, वृत्ति पृष्ठ ७५, ७६।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८५ अग्लान्या—अखिन्नतया बहुमानेनेत्यर्थ।

दस प्रकार ये हैं—

१ आचार्य—ये पांच प्रकार के होते हैं—प्रव्राजनाचार्य, दिगाचार्य, उद्देसनाचार्य, समुद्देशनाचार्य और वाचनाचार्य।

२ उपाध्याय—सूत्र की वाचना देने वाला।

३ स्थविर—धर्म में स्थिर करनेवाले। ये तीन प्रकार के होते हैं—

जातिस्थविर—जिसकी आयु ६० वर्ष से अधिक है।

पर्यायस्थविर—जिसका पर्याय-काल २० वर्ष या अधिक है।

ज्ञानस्थविर—स्थानांग तथा समवायांग का धारक।

४ तपस्वी—मासक्षपण आदि बड़ी तपस्या करने वाला।

५ ग्लान—रोग आदि से असक्त, खिन्न।

६ शैक्ष—शिक्षा ग्रहण करने वाला, नवदीक्षित।[1]

७ कुल—एक आचार्य के शिष्यों का समुदाय।

८ गण—कुलों का समुदाय।

९ संघ—गणों का समुदाय।

१० सार्धमिक—वेष और मान्यता से समानधर्मा।[2]

वृत्तिकार ने शैक्ष वैयावृत्त्य के पश्चात् सार्धमिक वैयावृत्त्य की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने एक गाथा का भ उल्लेख किया है। उसमें भी यही क्रम है।[3]

विशेष विवरण के लिए देखें—१०।१७ का टिप्पण।

३६-४० (सूत्र ४६)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशेष शब्दों की व्याख्या—

१ सांभोगिक—एक मंडली में भोजन करने वाला। यह इसका प्रतीकात्मक अर्थ है। स्वाध्याय, भोजन आदि सभी मंडलियों में जिसका सम्बन्ध होता है वह सांभोगिक कहलाता है।

२ विसांभोगिक—जिसका सभी मंडलियों से सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया जाता है वह विसांभोगिक है।

३ प्रस्थापन—प्रायश्चित्त रूप में प्राप्त तप का प्रारंभ।

४ निर्वेश—प्रायश्चित्त का पूर्ण निर्वाह या आसेवन।

५ स्थितिकल्प—सामाचारी की योग्य मर्यादाएं।[4]

४१ प्रश्नायतनों (सू० ४७)

वृत्तिकार ने प्रश्न के दो अर्थ किए हैं[5]—

१ अंगुष्ठ, कुडप आदि प्रश्नविद्या। रस के द्वारा वस्त्र, कांच, अंगुष्ठ, भुजा आदि में देवता को बुलाकर अनेक विध प्रश्नों का हल किया जाता है।[6] मूल प्रश्न व्याकरण सूत्र (दसवें अंग) में इन प्रश्न विद्याओं का समावेश था।

---

१ बौद्ध साहित्य में शैक्ष की परिभाषा इस प्रकार मिलती है—
'उस समय एक भिक्षु जहां भगवान थे, वहां पहुंचा। एक ओर बैठा हुआ वह भिक्षु भगवान से यह बोला—
"भन्ते! 'शैक्ष, शैक्ष' कहते हैं। क्या होने से शैक्ष होता है?"
"भिक्षु, सीखता है इसलिए 'शैक्ष' कहलाता है।
"क्या सीखता है?"
"शील-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है, चित्त-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है तथा प्रज्ञा-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है। इसलिए वह भिक्षु 'शैक्ष' कहलाता है।"
(अंगुत्तरनिकाय भाग १, पृष्ठ २३८)

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८५।

३ वही, वृत्ति पत्र २८५ 'सेहे' त्ति शिक्षकोऽभिनवप्रव्रजित 'साधर्मिक' समानधर्मा लिङ्गत प्रवचनतश्चेति। उक्त च—
आयरियउवज्झाए थेरतवस्सीगिलाणसेहाण।
साहम्मियकुलगणसंघ संगय तमिह कायव्व॥

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८५, २८६।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८६ प्रश्ना—अंगुष्ठकुडयप्रश्नादय सावद्यानुष्ठानपृच्छा वा।

६ वही, वृत्ति पत्र २८५।

२ पापकारी अनुष्ठानो के विषय मे प्रश्न करना। इनमे पहला अर्थ ही प्रासंगिक लगता है।

४२ आज्ञा व धारणा (सू० ४८)

वृत्ति मे आज्ञा और धारणा के दो-दो अर्थ किए गए हैं—

१ आज्ञा—(१) विध्यात्मक आदेश।[1]

(२) कोई गीतार्थ देशान्तर गया हुआ है। दूसरा गीतार्थ अपने अतिचार की आलोचना करना चाहता है। वह अगीतार्थ के समक्ष आलोचना नही कर सकता। तब वह अगीतार्थ के साथ गूढार्थ वाले वाक्यों द्वारा अपने अतिचार का निवेदन देशान्तरवासी गीतार्थ के पास कराता है। इसका नाम है आज्ञा।[2]

२ धारणा—(१) निषेधात्मक आदेश।[3]

(२) बार-बार आलोचना के द्वारा प्राप्त प्रायश्चित्त विशेष का अवधारण करना।[4]

पांच व्यवहारो मे ये दो व्यवहार है। इनका विस्तृत विवेचन ५।१२४ मे किया है।

४३ यथारात्निक (सू० ४८)

इसका अर्थ है—दीक्षा-पर्याय मे छोटे-बडे के क्रम से। विशेष विवरण के लिए देखें—दसवेआलिय ८।४० का टिप्पण।

४४ कृतिकर्म (सू० ४८)

इसका अर्थ है वन्दना।

देखें—समवाओ १२।३ का टिप्पण।

४५ उचित समय (सू० ४८)

इसका तात्पर्यार्थ यह है कि—कालक्रम से प्राप्त सूत्रो का अध्ययन उस-उस काल मे ही कराना चाहिए।[5] सूत्रो का अध्ययन-अध्यापन दीक्षा-पर्याय के कालानुसार किया जाता है। जैसे—तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को आचार, चार वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को सूत्रकृत, पाच वर्ष वाले को दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प और व्यवहार, आठ वर्ष वाले को स्थान और समवाय, दश वर्ष वाले को भगवती आदि।[6]

४६ निषद्या (सू० ५०)

इसका अर्थ है—बैठने की विधि। इसके पांच प्रकार हैं। बाह्य तप के पाचवें प्रकार 'कायक्लेश' मे इनका समावेश होता है। कायोत्सर्ग के तीन प्रकार हैं—ऊर्ध्वस्थान, निषीदनस्थान और शयनस्थान। निषीदनस्थान के अन्तर्गत इन पांचो निषद्याओ का अन्तर्भाव होता है।

देखें—७।४९ का टिप्पण।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८६ 'आज्ञा' हे साधो! भवतेद विधेय-मित्येवरूपामादिष्टिम।

२ वही, वृत्ति पत्र २८६ गूढार्थपदैरगीतार्थस्य पुरतो देशान्तर-स्थगीतार्थनिवेदनाय गीतार्थो यदतिचारनिवेदनं करोति साऽऽज्ञा।

३ वही, वृत्ति पत्र २८६ धारणा, न विधेयमिदमित्येवरूपाम्।

४ वही, वृत्ति पत्र २८६ असकृदालोचनादानेन यत्प्रायश्चित्त-विशेषावधारण सा धारणा।

५ वही, वृत्ति, पत्र २८६ काले काले—यथावसरम्।

कालक्कमेण पत्त संवच्छरमाइणा उ ज जमि।
त तमि चेव धीरो वाएज्जा सो ए कालोऽय॥

६ वही, वृत्ति पत्र २८६, २८७।

४७. (सू० ५१)

दसवें स्थान (सूत्र १६) मे दस प्रकार का श्रमण-धर्म निर्दिष्ट है। पाचवें स्थान (सूत्र ३४-३५) में दस धर्म श्रमण के लिए प्रशस्त बतलाए गए हैं। प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण-धर्म के अगभूत पांच धर्मों को आर्जव-स्थान कहा है। आर्जव का अर्थ है—ऋजुता, मोक्ष। प्रस्तुत प्रसग मे उसका अर्थ सवर किया है। ये आर्जवस्थान सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होते हैं, अत इन सब के पूर्व साधु शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र ९।६ मे दसविध धर्म के पूर्व 'उत्तम' शब्द का प्रयोग मिलता है।

विशेष विवरण के लिए देखें १०।१६ का टिप्पण।

४८. परिचारणा (सू० ५४)

इसका अर्थ है—मैथुन का आसेवन। इसके पाच प्रकार हैं—

१ कायपरिचारणा—स्त्री और पुरुष के काय से होने वाला मैथुन का आसेवन।

२ स्पर्शपरिचारणा—स्त्री के स्पर्श मे होने वाला मैथुन का आसेवन।

३ रूपपरिचारणा—स्त्री के रूप को देखकर होने वाला मैथुन का आसेवन।

४ शब्दपरिचारणा—स्त्री के शब्द सुनकर होने वाला मैथुन का आसेवन।

५ मन परिचारणा—स्त्री के प्रति मानसिक सकल्प से होने वाला मैथुन का आसेवन।

इसका तात्पर्य है कि कायपरिचारणा की भाति स्त्री को स्पर्श करने, रूप देखने, शब्द सुनने और मानसिक सकल्प देवो को मैथुन-प्रवृत्ति के आसेवन से तृप्ति हो जाती है।

वृत्तिकार ने इन सबको देवताओं से सबधित माना है। तत्त्वार्थ सूत्र मे भी यही प्रतिपादित है।[1] बारहवें देवलोक तक के देवों में मैथुनेच्छा होती है। उसके ऊपर के देवों में वह नही होती। देवियो का अस्तित्व केवल दूसरे देवलोक तक ही है।

सौधर्म और ईशान देवलोक मे—कायपरिचारणा।

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक मे —स्पर्शपरिचारणा।

ब्रह्म और लान्तक मे—रूपपरिचारणा।

शुक्र और सहस्रार मे—शब्दपरिचारणा।

शेष चार मे—मन परिचारणा।

इसके ऊपर के देवलोको मे किसी भी प्रकार की परिचारणा नही होती। मनुष्यो और तिर्यञ्चों मे केवल काय-परिचारणा ही होती है।

देखें—३।६ का टिप्पण।

४९-५२ (सू० ७०)

बल—शारीरिक शक्ति।

वीर्य—आत्मशक्ति।

पुरुषकार—अभिमान विशेष, पुरुष का कर्त्तव्य।

पराक्रम—अपने विषय की सिद्धि मे निष्पन्न पुरुषकार, बल और वीर्य का व्यापार[2]।

---

१ तत्त्वार्थ ४।७ ९।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८६ बल-शारीर, वीर्यं-जीवप्रभव, पुरुषकार.—अभिमानविशेष, पराक्रम —स एव निष्पादितस्वविषयोऽथवा पुरुषकार —पुरुषकर्त्तव्य, पराक्रमो—बलवीर्ययोर्व्यापारणमिति।

५३. लिंगाजीव (सू० ७१)

वृत्तिकार ने एक प्राचीन गाथा का उल्लेख करते हुए लिंगाजीव के स्थान पर गणाजीव की सूचना दी है। गणाजीव का अर्थ है—अपने गण (मल्ल आदि) की किसी मिष से या साक्षात् सूचना देकर आजीविका करने वाला।[1]

५४ प्रमार (सू० ७३)

इसका अर्थ है—मूर्छा। वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए हैं[2]—

१ मूर्च्छा विशेष। २ मारणस्थान। ३ मृत्यु।

५५ आच्छेदन (सू० ७३)

इसका अर्थ है—बलात् लेना, थोडा लेना।[3]

५६. विच्छेदन (सू० ७३)

इसका अर्थ है—दूर ले जाकर रख देना, बहुत लेना।[4]

५७ (सू० ७५-८२)

इन सूत्रो (७५-८२) मे चार हेतु-विषयक और चार अहेतु-विषयक हैं।

पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—हेतुगम्य और अहेतुगम्य।

परोक्ष होने के कारण जो पदार्थ हेतु के द्वारा जाना जाता है, वह हेतुगम्य होता है, जैसे—दूर प्रदेश में स्थित अग्नि धूम के द्वारा जानी जाती है।

जो पदार्थ निकटवर्ती या स्पष्ट होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से अथवा किसी आप्त पुरुष के निर्देशानुसार जाना जाता है, वह अहेतुगम्य होता है।

हेतु का अर्थ—कारण अथवा साध्य का निश्चितगमक कारण होता है। यहा हेतु और हेतुवादी—दोनों हेतु शब्द द्वारा विवक्षित हैं। जो हेतुवादी असम्यग्दर्शी होता है वह कार्य को जानता-देखता है, पर उसके हेतु को नही जानता-देखता। वह हेतुगम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा नहीं जानता-देखता।

जो हेतुवादी सम्यक्दर्शी होता है वह कार्य के साथ-साथ उसके हेतु को भी जानता-देखता है। वह हेतुगम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा जानता-देखता है।

जो आंशिकरूपेण प्रत्यक्षज्ञानी होता है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों या पदार्थ की अहेतुक (स्वाभाविक) परिणतियो को सर्वभावेन नहीं जानता-देखता। वह अहेतु (प्रत्यक्षज्ञान) के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभावेन नहीं जानता-देखता।

जो पूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी (केवली) होता है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों या पदार्थ की अहेतुक (स्वाभाविक) परिणतियो को सर्वभावेन जानता-देखता है। वह प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभावेन जानता-देखता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८९ लिङ्गस्थानेऽन्यत्र गणोऽधीयते, यत्र उक्तम्—
"जाईकुलगणकम्मे सिप्पे आजीवणा उ पंचविहा।
सूयाए असूयाए अप्पाण कहेइ एक्केक्के॥"

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९० प्रमारो—मूर्च्छाविशेषो मारणस्थान वा प्रमारं मरणमेव।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९० आच्छिनत्ति—बलादुद्दालयति अथवा ईषच्छिनत्ति।

४ स्थानांगवृत्ति पत्र २९० विच्छिनत्ति—विच्छिन्नं करोति, दूरे व्यवस्थापयतीत्यर्थः अथवा विशेषेण छिनत्ति विच्छिनत्ति।

उक्त व्याख्या के आधार पर यह फलित होता है कि प्रथम दो सूत्र असम्यग्दर्शी हेतुवादी तथा तीसरा-चौथा सूत्र सम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से हैं। पाचवा-छठा सूत्र अपूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी और सातवा-आठवा सूत्र पूर्णप्रत्यक्षज्ञानी की अपेक्षा से हैं।

मरण दो प्रकार का होता है—सहेतुक (सोपक्रम), अहेतुक (निरुपक्रम)। असम्यग्दर्शी हेतुवादी का अहेतुक मरण अज्ञानमरण कहलाता है। सम्यग्दर्शी हेतुवादी का सहेतुक मरण छद्मस्थ मरण कहलाता है। अपूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी का सहेतुक मरण भी छद्मस्थ मरण कहलाता है। पूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी का अहेतुक मरण केवली मरण कहलाता है।

वृत्तिकार के अनुसार प्रथम दो सूत्रो मे नकार कुत्सावाची और पाचवें-छठे सूत्र मे वह देश निषेधवाची है।[1] इस आधार पर प्रथम दो सूत्रो का अनुवाद इस प्रकार होगा—

१ (क) हेतु को असम्यक् जानता है।
(ख) हेतु को असम्यक् देखता है।
(ग) हेतु पर असम्यक् श्रद्धा करता है।
(घ) हेतु को असम्यक् रूप से प्राप्त करता है।

२ (क) हेतु से असम्यक् जानता है।
(ख) हेतु से असम्यक् देखता है।
(ग) हेतु से असम्यक् श्रद्धा करता है।
(घ) हेतु से असम्यक् रूप से प्राप्त करता है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि प्रत्यक्षज्ञानी को अनुमान से जानने की आवश्यकता नही होती। इसलिए वह धूम आदि साधनो—हेतुओ को अहेतु के रूप मे (उसके लिए वे हेतु नही हैं इस रूप मे) जानता है।[2] अहेतु का यह अर्थ अस्वाभाविक-सा लगता है।

इन आठ सूत्रो (७५ से ८२) मे प्रयुक्त चार क्रियापद (जानाति, पश्यति, बुध्यते, अभिगच्छति) ज्ञान के क्रम से सम्बन्धित हैं।

भगवती ५।१९१-१९८ मे हेतु सम्बन्धी सूत्रो के क्रम मे थोडा परिवर्तन है। वहा यहा बताए गए सातवें-आठवें सूत्र को पाचवें-छठे के क्रम मे तथा पाचवें-छठे को सातवें-आठवें के क्रम मे लिया गया है।

५८ (सू० ८३)

ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर ज्ञान और अनुत्तर दर्शन की प्राप्ति होती है। मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर चारित्र की प्राप्ति होती है। तप चारित्र का ही भेद है। तेरहवें जीवस्थान के अन्तिम क्षणों मे केवली शुक्लध्यान के अन्तिम दो भेदो मे प्रवृत्त होते हैं। यह उनका अनुत्तर तप है। ध्यान आभ्यतर तप का ही एक प्रकार है। वीर्यान्तराय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर वीर्य की प्राप्ति होती है।[3]

५९ (सू० ९७)

भगवान् महावीर का च्यवन, गर्भसहरण, जन्म, प्रव्रज्या और कैवल्यप्राप्ति—ये पाच कार्य उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए थे तथा उनका परिनिर्वाण स्वाति नक्षत्र मे हुआ था। अन्यान्य तीर्थकरो का च्यवन, परिनिर्वाण आदि एक ही नक्षत्र मे हुआ है। भगवान् महावीर के जन्म और परिनिर्वाण के नक्षत्र अलग-अलग हैं।[4]

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २९१ नत्र कुत्सार्थत्वात् नञो देश-निषेधार्थत्वात्।
२ वही, पत्र २९१।
३ स्थानागवृत्ति, पत्र २९२।
४ स्थानागवृत्ति, पत्र २९३।

६० (सू० ९८)

प्रस्तुत सूत्र मे महानदियों के उत्तरण और सतरण की मर्यादा के अतिक्रमण का निषेध किया गया है और इसमे निषेध का अपवाद भी है। सूत्रकार ने निर्दिष्ट पांच नदियों के लिए दो विशेषण प्रयुक्त किए हैं—महार्णव और महानदी।

वृत्तिकार ने इनका अर्थ इस प्रकार किया है—[1]

१ महार्णव—समुद्र की भांति जिनमे अथाह जल हो या जो समुद्र मे जा मिलती हो उन नदियों को महार्णव कहा जाता है।

२ महानदी—जो बहुत गहरी हो, उन्हे महानदी कहा जाता है।

वृत्तिकार ने एक गाथा (निशीथभाष्य गाथा ४२२३) का उल्लेख कर नदी-सतरण के व्यावहारिक दोषो का निर्देश किया है।

इन नदियों मे बडे-बडे मत्स्य, मगरमच्छ आदि अनेक भयकर जलचर प्राणी रहते हैं। अत उनका प्रतिपल भय बना रहता है। इन नदी-मार्गों मे अनेक चोर नौकाओ मे घूमते हैं। वे मनुष्यो को मार डालते हैं तथा उनके वस्त्र आदि लूट ले जाते हैं।[2]

निशीथ (१२/४३) मे भी नदी उत्तरण तथा सतरण का निषेध है। भाष्यकार ने अपायो का निर्देश देते हुए बताया है कि नौका सतरण में[3]—

१ श्वापद और चोरो का भय।

२ अनुकम्पा तथा प्रत्यनीकता का दोष।

३ सयम-विराधना, आत्म-विराधना का प्रसग।

४ नौका पर चढते-उतरते अनेक दोषो की सम्भावना। गगा आदि नदियों के विवरण के लिए देखें—१०।२५।

६१, ६२ (सू० ९९, १००)

वर्षावास तीन प्रकार का माना गया है—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

जघन्य—सत्तर दिनो का—सवत्सरी से कार्तिक मास तक।

मध्यम—चार मास का—श्रावण से कार्तिक तक।

उत्कृष्ट—छहमास का—आषाढ से मृगसर तक, जैसे—आषाढ बिताकर वही चातुर्मास करें और मृगसर मे वर्षा चालू रहने पर उसे वही बिताएँ।

यहाँ दो सूत्रो मे (९९, १००) बताया गया है कि प्रथम-प्रावृट् मे और वर्षावास मे पर्युषणा कल्प के द्वारा निवास करने पर विहार न किया जाए। प्रावृट् का अर्थ है—आषाढ और श्रावण अथवा चार मास का वर्षाकाल।[4] आषाढ को प्रथम-प्रावृट् कहा जाता है।[5] प्रथम-प्रावृट् मे विहार न किया जाए—अर्थात् आषाढ मे विहार न किया जाए। प्रावृट् का अर्थ यदि चतुर्मास प्रमाण—वर्षाकाल किया जाए तो प्रथम-प्रावृट् मे विहार के निषेध का अर्थ यह करना होगा कि पर्युषणा कल्प से पूर्ववर्ती पचास दिनो में विहार न किया जाए। पर्युषणा कल्पपूर्वक निवास करने के बाद विहार न किया जाए। इसका

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४ महार्णव इवा या बहूदकत्वात् महार्णवगामिन्यो वा यास्ता वा महार्णवा महानद्यो—गुरु-निम्नगा।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४
ओहारमगराइया, घोरा तत्थ उ सावया।
सरीरोवहिमादीया, नावातेणा य कत्थइ॥

३ निशीथभाष्य, गाथा ४२२४
सावयतेणे उभय, अणुकपादी विराहणा तिण्णि।
संजम आउभय वा, उत्तरणावुत्तरते य॥

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४ आषाढश्रावणौ प्रावृट् अथवा चतुर्मासप्रमाणो वर्षाकाल प्रावृडिति विवक्षित।

५ वही, पत्र २९४ आषाढस्तु प्रथमप्रावृट् ऋतूनां वा प्रथमेति प्रथमप्रावृट्।

अर्थ है कि भाद्रशुक्ला पचमी से कार्तिक तक विहार न किया जाए। इन दोनों सूत्रों का सयुक्त अर्थ यह है कि चातुर्मास मे विहार न किया जाय।

प्रश्न होता है—'चातुर्मास में विहार न किया जाए' इस प्रकार एक सूत्र द्वारा निषेध न कर, दो पृथक् सूत्रों (सूत्र ९९, १००) द्वारा निषेध क्यों किया गया ? इसका समाधान ढूढने पर सहज ही हमारा ध्यान उस प्राचीन परम्परा की ओर खिच जाता है जिसके अनुसार यह विदित है कि—मुनि पर्युषणा कल्पपूर्वक निवास करने के बाद साधारणत विहार कर ही नही सकते। किन्तु पूर्ववर्ती पचास दिनों मे उपयुक्त सामग्री के अभाव में विहार कर भी सकते हैं।[1]

बौद्ध साहित्य मे भी दो वर्षावासो का उल्लेख मिलता है—

"भिक्षुओ ! दो वर्षावास हैं।"

"कौन से दो ?"

"पहला और पिछला।"[2]

प्रस्तुत सूत्र (९९) में वृत्तिकार ने 'पव्वहेज्ज' का अर्थ—ग्राम से निकाल दिए जाने पर—किया है[3] और इसके पूर्ववर्ती सूत्र मे इसी शब्द का अर्थ —व्यथित या प्रवाहित किए जाने पर—किया है।[4]

६३ सागारिकपिंड (सू० १०१)

इसका अर्थ है—शय्यातर के घर का भोजन, उपधि आदि। जिस मकान मे साधु रहते हैं, उसके स्वामी को शय्यातर कहा जाता है। शय्यातर के घर का पिंड आदि लेने का निषेध है। इसके कई दोष हैं—[5]

१ तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण।

२ अज्ञातोञ्छ का सेवन।

३ अनाघवता आदि-आदि।

६४ राजपिंड (सू० १०१)

प्रस्तुत प्रसग मे वृत्तिकार ने राजा का अर्थ चक्रवर्ती आदि किया है।[6] जो मूर्धाभिषिक्त है और जो सेनापति, अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह—इन पाँच रत्नियो सहित राज्य-भोग करता है, उसे राजा कहा जाता है।[7] उसके घर का भोजन राजपिंड कहलाता है। सामान्य राजाओ के घर का भोजन राजपिंड नही कहलाता। राजपिंड आठ प्रकार का होता है—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कबल और पादप्रोछन (रजोहरण)।[8] राजपिंड के ग्रहण करने मे भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं—[9]

१ तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लघन।

२ राज्याधिकारियो के प्रवेश और निर्गमन के समय होने वाला व्याघात।

३ लोभ, आशका आदि-आदि।

विशेष विवरण के लिए देखें—

१ निशीथभाष्य, गाथा २४९६-२५११।

२ दसवेआलिय, ३।३ मे 'रायपिंडे किमिच्छए' का टिप्पण।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २९४, २९५।

२ अगुत्तरनिकाय, भाग १, पृष्ठ ८४।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र २९५ प्रव्यथेत—ग्रामान्निष्कासयेन्निष्काशयेत्।

४ वही, पत्र, २९४ 'पव्वहेज्ज' त्ति प्रव्यथते—बाधते अन्तर्भूत-कारितार्थत्वाद्वा प्रवाहयेत् कश्चित् प्रत्यनीक।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र २९६।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र, २९६ राजा चेह चक्रवर्त्यादि।

७ निशीथभाष्य, गाथा २४९७।

जो मुद्धा अभिसित्तो, पचहि सहिओ पभुजत रज्ज।
तस्स तु पिंडो वज्जो, तव्विवरीयम्मि भयणा तु॥

८ वही, गाथा २५००

असणादिया चउरो, वत्थे पाए य कबले चेव।
पाउछणगा य तहा, अट्ठविहो राय पिंडो उ॥

९ वही, गाथा २५०१ २५१२।

६५ अन्त पुर (सू० १०२)

राजा के अन्त पुर तीन प्रकार के होते हैं[1]—

१ जीर्ण—जहां वृद्ध रानियां रहती है।

२ नव—जहां युवा रानियां रहती हैं।

३ कन्यक—जहां अप्राप्त यौवना राजकुमारियां (बारह वर्ष के उम्र तक की) रहती है।[1]

इनके प्रत्येक के दो-दो प्रकार हैं—स्वस्थानगत और परस्थानगत। सामान्यत मुनि को अन्त पुर मे नहीं जाना चाहिए। क्योकि वहां जाने से[2]—

१ आज्ञा, अनवस्था, मिथ्यात्व और विराधना आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

२ दडारक्षित, दौवारिक आदि के प्रवेश-निर्गमन से व्याघात होता है।

३ वहां निरन्तर होने वाले गीत आदि मे उपयुक्त होकर मुनि ईर्यासमिति और एषणासमिति मे स्खलित हो सकता है।

४ रानियों के आग्रह पर शृगार आदि की कथाएँ कहनी पडती हैं।

५ धर्म-कथा करने से मन मे अह पैदा हो सकता है कि मैंने राजा-रानी को धर्म-कथन किया है।

६ वहां शृगार आदि के दृश्य व शब्द सुनकर स्वय को अपने पूर्व क्रीडित भोगो की स्मृति हो सकती है आदि-आदि।

वृत्तिकार ने भी चार गाथाएँ उद्धृत कर इन्ही उपायो का निर्देश किया है। ये गाथाएँ निशीथभाष्य की हैं।[3]

प्रस्तुत सूत्र मे अत पुर मे प्रवेश करने के कुछेक कारणो का निर्देश है। यह आपवादिक सूत्र है।

६६. प्रातिहारिक (सू० १०२)

मुनि दो प्रकार की वस्तुएँ ग्रहण करता है—

१ स्थायी रूप से काम आने वाली, जैसे—वस्त्र, पात्र, कबल, भोजन आदि-आदि।

२ अस्थायी रूप से, काल-विशेष के लिए, काम आनेवाली, जैसे—पट्ट, फलक, पुस्तक, शय्या, संस्तारक आदि-आदि।

जो वस्तु स्थायी रूप मे गृहीत होती है, उसे मुनि पुन नही लौटा सकता। जो वस्तु प्रयोजन-विशेष या अस्थायी रूप मे गृहीत होती है उसे पुन लौटा सकता है। इसे प्रातिहारिक वस्तु कहा जाता है।[4]

६७, ६८ आराम, उद्यान (सू० १०२)

आराम का अर्थ है—विविध प्रकार के फूलों वाला बगीचा।[5]

उद्यान का अर्थ है—चम्पक आदि वृक्षो वाला बगीचा।[6]

६९. (सू० १०३)

प्रस्तुत सूत्र मे पुरुष के सहवास के विना भी गर्भ-धारण के पांच कारणो का उल्लेख है। इन सब मे पुरुष के वीर्य-पुद्गलो का स्त्री योनि मे समाविष्ट होनेसे गर्भ-धारण होने की बात कही गई है। वीर्य पुद्गलो के विना गर्भ-धारण का

---

१ निशीथभाष्य, गाथा २५१३
अंतेउर च तिविधं, जुण्ण णव चेव कण्णगाण च।
एक्केक्कं पि य दुविध, सट्ठाणे चेव परठाणे॥

२ वही, गाथा २५१४-२५२०।

३ वही, गाथा २५१३, २५१४, २५१८, २५१९।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९७।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९७ आरामो विविधपुष्पजात्युपशोभित।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९७ उद्यानं तु चम्पकवनाद्युपशोभितमिति।

उल्लेख नहीं है। वर्तमान मे कृत्रिम गर्भाधान की प्रणाली से इसकी तुलना हो सकती है। साड या पाडे के वीर्य-पुद्गलो को निकालकर रासायनिक विधि से सुरक्षित रखा जाता है और आवश्यकतावश गाय या भैंस की योनि से उनको शरीर मे प्रविष्ट कराया जाता है। गर्भावधि पूर्ण होने पर गाय या भैंस प्रसव कर बच्चे को उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार अमेरिका मे 'टेस्ट-ट्यूब-बेबीज' की बात प्रचलित है। पुरुष के वीर्य-पुद्गलो को कांच की एक नली मे, उचित रासायनिक मिश्रणो में रखा जाता है और यथासमय बच्चे की उत्पत्ति होती है। उसी कांच की नली मे कुछ बडे होने पर उसे निकाल दिया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र के प्रथम कारण को ध्यान मे रखकर ही आगमो मे स्थान-स्थान पर ऐसे उल्लेख किए गए हैं कि जहां स्त्रियां बैठी हो, उस स्थान पर मुनि को तथा जहां पुरुष बैठे हो उस स्थान पर साध्वी को एक अन्तर्मुहूर्त तक नही बैठना चाहिए। यदि आवश्यकतावश बैठना ही पडे तो भूमि का भलीभांति प्रमार्जन कर बैठना चाहिए।

दूसरे कारण मे शुक्रपुद्गल से ससृष्ट वस्त्र का योनि के मध्य में प्रवेश होने पर भी गर्भधारण की स्थिति हो जाती है। वस्त्र ही नहीं, दूसरे-दूसरे पदार्थों से भी ऐसा हो सकता है। वृत्तिकार ने यहां एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। केशिकुमार की माता ने अपनी योनि की खुजली मिटाने अथवा रक्त-प्रवाह को रोकने के लिए केश को योनि में प्रविष्ट किया। वह केश शुक्र-पुद्गलो से ससृष्ट था। उसके फलस्वरूप वह गर्भवती हो गई, अथवा कभी अज्ञानवश शुक्र-संश्लिष्ट वस्त्रो को पहनने पर वे अकस्मात् योनि में प्रवेश पा लें, तो भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

तीसरे कारण की भावना यह है कि यदि किसी स्त्री का पति नपुसक है और वह स्त्री पुत्र-प्राप्ति की इच्छा रखती है किन्तु शील भग होने के भय से पर पुरुष के साथ काम-क्रीडा नहीं कर सकती। अत वह स्वय शुक्र-पुद्गलो को एकत्रित कर अपनी योनि मे प्रविष्ट कर देती है। इसमे भी गर्भधारण कर सकती है।

चौथे कारण के प्रसग मे वृत्तिकार ने 'पर' का अर्थ 'श्वसुर आदि' किया है। इसका तात्पर्य यह है कि पति के नपुसक होने पर पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर स्त्री अपने श्वसुर आदि ज्ञातिजनो द्वारा अपनी योनि में शुक्र पुद्गलो का प्रवेश करवाती है। उस समय इस प्रकार की पद्धति प्रचलित थी। इसे नियोग-विधि कहा जाता है।

पाचवा कारण स्पष्ट है।

ये सभी कारण एक दृष्टि से कृत्रिम गर्भाधान के प्रकार हैं। किसी विशिष्ट प्रणाली द्वारा शुक्र-पुद्गलो का योनि मे प्रवेश होने पर गर्भ की स्थिति बनती है, अन्यथा नही।

७०, ७१, (सू० १०४)

वृत्तिकार ने बारह वर्ष तक की कुमारी को अप्राप्तयौवना कहा है तथा पचास या पचपन वर्ष के ऊपर की उम्र वाली स्त्री को अतिक्रान्तयौवना माना है।[1]

उनकी मान्यता है कि बारह वर्ष से पचास वर्ष की उम्र तक स्त्री मे रजस्राव होता है और वही उसकी गर्भधारण की अवस्था होती है। सोलह वर्ष की कुमारी का बीस वर्ष के युवक के साथ सहवास होने से वीर्यवान् पुत्र की उत्पत्ति होती है, क्योंकि उस अवस्था मे गर्भाशय, मार्ग, रक्त, शुक्र, अनिल और हृदय—ये शुद्ध होते हैं। सोलह और बीस वर्ष से कम अवस्था मे सहवास होने पर सतान की प्राप्ति नही होती और यदि होती है तो वह रोगी, अल्पायु और अभागी होती है।[2]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९८ अप्राप्तयौवना प्राय आवर्षद्वादश-कादार्त्तवाभावात् तथाऽतिक्रान्तयौवना वर्षाणां पञ्चपञ्चाशत पञ्चाशता वा।

२ वही, पत्र २९८

मासि मासि रज स्त्रीणामजस्रं स्रवति त्र्यहम्।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं, याति पञ्चाशत क्षयम्॥
पूर्णषोडशवर्षा स्त्री, पूर्णविंशेन सगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे, रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥
वीर्यवन्त सुतं सूते, ततो न्यूनाब्दयो पुन।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा, गर्भो भवति नैव वा॥

७२. (सू० १०५)

वृत्तिकार ने अणगपडिसेविणी का एक दूसरा अर्थ भी किया है—

अनग अर्थात् काम का विभिन्न पुरुषों के साथ अतिशय आसेवन करने से स्त्री गर्भधारण नही करती जैसे—वेश्या।[1]

७३ अकस्मात्‌दड (सू० १११)

सूत्रकृताग २/२ मे तेरह क्रियाओ का प्रतिपादन है। प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित दड उन्ही के पाच प्रकार हैं।

अकस्मात्‌दड—वृत्तिकार ने लिखा है कि मगधदेश में यह शब्द इसी रूप मे आबाल-गोपाल प्रसिद्ध है। अत प्राकृत भाषा मे भी इसको इसी रूप मे स्वीकार कर लिया है।[2]

७४-८५ (सू० ११२-१२२)

प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों मे पाच-पाच के क्रम से विभिन्न प्रकार की क्रियाओ का उल्लेख हुआ है। दूसरे स्थान मे दो-दो के क्रम से इन्ही क्रियाओ का उल्लेख है।

देखें—२।२-३७ के टिप्पण।

८६ (सू० १२४)

पाच व्यवहार—भगवान् महावीर तथा उत्तरवर्ती आचार्यो ने सघ-व्यवस्था की दृष्टि से एक आचार-सहिता का निर्माण किया। उनमे मुनि के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य या प्रवृत्ति और निवृत्ति के निर्देश हैं। उसकी आगमिक सज्ञा 'व्यवहार' है। जिनसे यह व्यवहार सचालित होता है, वे व्यक्ति भी, कार्य-कारण की अभेददृष्टि से, 'व्यवहार' कहलाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे व्यवहार सचालन मे अधिकृत व्यक्तियो की ज्ञानात्मक क्षमता के आधार पर प्राथमिकता वतलाई गई है।

व्यवहार सचालन मे पहला स्थान आगमपुरुष का है। उसकी अनुपस्थिति में व्यवहार का प्रवर्तन श्रुतपुरुष करता है। उसकी अनुपस्थिति मे आज्ञापुरुष, उसकी अनुपस्थिति में धारणापुरुष और उसकी अनुपस्थिति मे जीतपुरुष करता है।

१ आगम व्यवहार—इसके दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष[3]। प्रत्यक्ष के तीन प्रकार हैं[4]—

१ अवधिप्रत्यक्ष, २ मन पर्यवप्रत्यक्ष, ३ केवलज्ञानप्रत्यक्ष।

परोक्ष के तीन प्रकार हैं[5]—

१ चतुर्दशपूर्वधर, २ दशपूर्वधर, ३ नौपूर्वधर।

शिष्य ने यहा यह प्रश्न उपस्थित किया कि परोक्षज्ञानी साक्षात्‌रूप से श्रुत से व्यवहार करते हैं तो भला वे आगम-व्यवहारी कैसे कहे जा सकते है?[6] आचार्य ने कहा—"जैसे केवलज्ञानी अपने अप्रतिहत ज्ञानवल से पदार्थों को सर्वरूपेण जानता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी श्रुतवल से जान लेता है।[7]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९८ अनङ्ग वा—कामसपरापरपुरुष-सम्पर्कतोऽतिशयेन प्रतिषेवत इत्येवशीलाऽनङ्गप्रतिषेविणी।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०१ अकस्माद्दण्डमिति मगधदेशे गोपालबाला-वलादिप्रसिद्धोऽकस्मादिति शब्द स इह प्राकृतेऽपि तथैव प्रयुक्त इति।

३ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २०१

आगमतो ववहारो सुणह जहा धीरपुरिसपन्नत्तो।
पच्चक्खो य परोक्खो सो वि य दुविहो मुणेयव्वा॥

४ वही, भाष्यगाथा २०३

ओहिमणपज्जवे य केवलनाणे य पच्चक्खे।

५ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा २०६

पारोक्ख ववहार आगमतो सुयधरा ववहरति।
चोदसदसपुव्वधरा नवपुव्वियगधहत्थी य॥

६ वही, भाष्यगाथा २१० वृत्ति—

कथ केनप्रकारेण साक्षात् श्रुतेन व्यवहरन्त आगमव्यव-हारिण।

७ वही, भाष्य गाथा २११

जह केवली वि जाणइ दव्वं च खेत्त च कालभावं च।
तह चउलक्खणमेव सुयनाणीमेव जाणाति॥

जिस प्रकार प्रत्यक्षज्ञानी भी समान अपराध मे न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी आलोचक के राग-द्वेषात्मक अध्यवसायो को जानकर उनके अनुरूप न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है।[1]

शिष्य ने पुन प्रश्न किया कि—प्रत्यक्षज्ञानी आलोचना करने वाले व्यक्ति के भावो को साक्षात् जान लेते हैं, किन्तु परोक्षज्ञानी ऐसा नही कर सकते, अत न्यूनाधिक, प्रायश्चित्त देने का उनका आधार क्या है? आचार्य ने कहा—'वत्स! नालिका से गिरने वाले पानी के द्वारा समय जाना जाता है। वहा का अधिकारी व्यक्ति समय को जानकर, दूसरो को इसकी अवगति देने के लिए, समय-समय पर शख बजाता है। शख के शब्द को सुनकर दूसरे लोग समय का ज्ञान कर लेते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी आलोचना तथा शुद्धि करने वाले व्यक्ति की भावनाओ को सुनकर यथार्थ स्थिति का ज्ञान कर लेते हैं। फिर उसके अनुसार उसे प्रायश्चित्त देते हैं।[2] यदि वे यह जान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति ने सम्यग् रूप से आलोचना नहीं की है, तो वे उसे अन्यत्र जाकर शोधि करने की बात कहते हैं।

आगमव्यवहारी के लक्षण—

आचार्य के आठ प्रकार की सपदा होती है—आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति और सग्रह-परिज्ञा। इनके प्रत्येक के चार-चार प्रकार हैं। इस प्रकार इसके ३२ प्रकार होते हैं। [देखें ८।१५ का टिप्पण]।

चार विनयप्रतिपत्तिया हैं[3]—

१ आचारविनय—आचार-विषयक विनय सिखाना।

२ श्रुतविनय—सूत्र और अर्थ की वाचना देना।

३ विक्षेपणाविनय—जो धर्म से दूर हैं, उन्हे धर्म मे स्थापित करना, जो स्थित हैं उन्हे प्रव्रजित करना, जो च्युत-धर्मा हैं, उन्हें पुन धर्मनिष्ठ बनाना और उनके लिए हित-सपादन करना।

४ दोपनिर्घातविनय—क्रोध-विनयन, दोप-विनयन तथा काक्षा-विनयन के लिए प्रयत्न करना।[4]

जो इन ३६ गुणों में कुशल, आचार आदि आलोचनार्ह आठ गुणो से युक्त, अठारह वर्णनीय स्थानो का ज्ञाता, दस प्रकार के प्रायश्चित्तों को जानने वाला, आलोचना के दस दोपो का विज्ञाता, व्रत पट्क और काय पट्क को जानने वाला तथा जो जातिसपन्न आदि दस गुणो से युक्त है—वह आगमव्यवहारी होता है।[5]

शिष्य ने पूछा—'भंते!' वर्तमान काल मे इस भरतक्षेत्र मे आगमव्यवहारी का विच्छेद हो चुका है। अत यथार्थ-शुद्धिदायक न रहने के कारण तथा दोपो की यथार्थशुद्धि न होने के कारण वर्तमान मे चारित्र की विशुद्धि नहीं है। न कोई आज मासिक या पाक्षिक प्रायश्चित्त ही देता है और न कोई उसे ग्रहण करता है, इसलिए वर्तमान मे तीर्थ केवल ज्ञान-दर्शन-मय है, चारित्रमय नही। केवली का व्यवच्छेद होने के बाद थोड़े समय मे ही चौदह पूर्वधरो का भी व्यवच्छेद हो जाता है। अत विशुद्धि कराने वालो के अभाव मे चारित्र की विशुद्धि भी नही रहती। दूसरी बात है कि केवली, जिन आदि अपराध के अनुसार प्रायश्चित्त देते थे, न्यून या अधिक नही। उनके अभाव मे छेदसूत्रधर मनचाहा प्रायश्चित्त देते हैं, कभी थोडा और कभी अधिक। अत वर्तमान में प्रायश्चित्त देने वाले के व्यवच्छेद के साथ-साथ प्रायश्चित्त का भी लोप हो गया है।[6]

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा २१३ वृत्ति।

२ वही, भाष्य गाथा २१६, वृत्ति—

जिनास्तीर्थकृत परोक्षे आगमे उपसहार नालीधमकेन कुर्वते, इयमत्र भावना नाडिकाया गलन्त्यामुदकगलनपरिमाणतो जानाति एतावत्युदके गलिते यामो दिवसस्य रात्रेर्वागत इति ततोऽन्यस्य परिज्ञानाय शङ्ख धमति। तत्र यथा सोऽन्यो जन तदस्य शब्देन श्रुतेन कालं वा यामलक्षण जानाति तथा परोक्षागमज्ञानिनोऽपि शोधिमालोचना श्रुत्वा तस्य यथावस्थित भाव जानन्ति। ज्ञात्वा च तदनुसारेण प्रायश्चित्त ददाति।

३ वही, भाष्यगाथा ३०३

आयारे सुय विणए विक्खेवण चेव होई बोधव्वे।
दोसस्स निग्घाए विणए चउहेस पडिवत्ती॥

४ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३०५-३२७।

५ वही, भाष्य गाथा ३२८-३३४।

६ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३३५-३३८

एव भणिते भणती ते वोच्छिन्ना उपसपय इहइ।
तेसु य वोच्छिन्नेसु नत्थि विसुद्धी चरित्तस्स॥
देंतावि न दीसती न वि करेता उपसपय केई।
तित्थ च नाणदसणनिज्जवगा चेव वोच्छिन्ना॥
चोद्दसपुव्वधराणं वोच्छेदो केवलीण वुच्छेए।
केसि थी आदसो पायच्छित्त पि वोच्छिन्न॥
ज जत्तिएण सुज्झइ पावं तस्स तहा देंति पच्छित्त।
जिण चोद्दसपुव्वधरा तव्विवरीया जहिच्छाए॥

आचार्य ने कहा—वत्स ! तू यह नहीं जानता कि प्रायश्चित्तो का मूलविधान कहा हुआ है ? वर्तमान मे प्रायश्चित्त है या नही ?[1]

प्रत्याख्यान प्रवाद नामक नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु में समस्त प्रायश्चित्तो का विधान है। उस आकर ग्रन्थ से प्रायश्चित्तों का निर्यूहण कर निशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार—इन तीन सूत्रो मे उनका समावेश किया गया है।[2] आज भी विविध प्रकार के प्रायश्चित्तों को वहन करने वाले हैं। वे अपने प्रायश्चित्तों को विशेष उपायो से वहन करते हैं, अत उनका वहन करना हमे दृग्गोचर नही होता। आज भी तीर्थ चारित्र सहित हैं तथा उसके निर्यापक भी हैं।[3]

[विस्तृत वर्णन के लिए देखें—व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३५१-६०२।]

२ श्रुत व्यवहार—जो बृहत्कल्प और व्यवहार को बहुत पढ चुका है और उनको सूत्र तथा अर्थ की दृष्टि से निपुणता से जानता है वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[4] यहा श्रुत से भाष्यकार ने केवल इन दो सूत्रो का निर्देश किया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कुल, गण, सघ आदि में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का व्यवहार उपस्थित होने पर द्वादशागी से कल्प और व्यवहार—इन दो सूत्रो का निर्यूहण किया था। जो इन दोनो सूत्रो का अवगाहन कर चुका है और इनके निर्देशानुसार प्रायश्चित्तो का विधान करता है वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[5]

३ आज्ञा व्यवहार—कोई आचार्य भक्तप्रत्याख्यान अनशन मे व्यापृत हैं। वे जीवनगत दोषो की शुद्धि के लिए अन्तिम आलोचना के आकाक्षी हैं। वे सोचते हैं—'आलोचना देने वाले आचार्य दूरस्थ हैं। मैं अशक्त हो गया हू, अत उनके पास जा नहीं सकता तथा वे आचार्य भी यहा आने मे असमर्थ हैं, अत मुझे आज्ञा व्यवहार का प्रयोग करना चाहिए।' वे शिष्य को बुलाकर उन आचार्य के पास भेजते हैं और कहलाते हैं—'आर्य ! मैं आपके पास शोधि करना चाहता हू।'

शिष्य वहां जाता है और आचार्य को यथोक्त बात कहता है। आचार्य भी वहां जाने मे अपनी असमर्थता को लक्षित कर अपने मेधावी शिष्य को वहा भेजने की बात सोचते हैं। तब वे अपने गण मे जो शिष्य आज्ञा-परिणामकर, अवग्रहण और धारणा मे क्षम तथा सूत्र और अर्थ मे मूढ न होने वाला होता है, उसे वहां भेजते हुए कहते हैं—'वत्स ! तुम वहा आलोचना-आकाक्षी आचार्य के पास जाओ और उनकी आलोचना को सुनकर यहा लौट आओ।'[6]

आचार्य द्वारा प्रेषित मुनि के पास आलोचनाकाक्षी आचार्य सरल हृदय से सारी आलोचना करते हैं।[7] आगन्तुक मुनि आलोचक आचार्य की प्रतिसेवना और आलोचना की क्रमपरिपाटी का सम्यक् अवग्रहण और धारण कर लेता है। वे

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ३४४
एव तु चोदयम्मी आयरितो भणइ न हु तुमे नाम।
पच्छित्त महियतू किं धरती किं व वोच्छिन्न ॥

२ वही, भाष्य गाथा ३४५
सव्व पि य पच्छित्त पच्चक्खाणस्स ततिय वत्थुमि।
तत्तो वि य निज्जूढा पकप्पकप्पो य ववहारो ॥

३ वही, भाष्य गाथा ३४६, वृत्ति—।

४ वही, भाष्य गाथा ६०५, ६०७
जो सुयमहिज्जइ बहु सुतत्थ च निउण विजाणाति।
कप्पे ववहारमि य सो उ पमाण सुयहराण ॥
कप्पस्स य निज्जुत्ति ववहारस्स व परमनिउणस्स।
जा अरथतो वियाणइ ववहारी सो अणुण्णातो ॥

५ वही, भाष्यगाथा ६०८, वृत्ति—
कुलादिकार्येषु व्यवहारे उपस्थिते यद्भगवता भद्रबाहुस्वामिना कल्पव्यवहारात्मक सूत्र निर्यूढ तदेवानुमज्जननिपुणतरार्थ परिभावनेन तन्मध्ये प्रविशन् व्यवहारविधि यथोक्तं सूत्रमुच्चाय तस्याय निर्दिशन् य प्रयुक्ते स श्रुतव्यवहारी धीरपुरुषं प्रज्ञप्त।

६ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६१०-६१५, ६२७।
समणस्स उत्तमट्ठे सल्लुद्धरणकरणे अभिमुहस्स।
दूरत्था जत्थ भवे छत्तीसगुणा उ आयरिया ॥
अपरक्कमो सि जाओ गतु जे कारण च उप्पन्न।
अठारसमन्नयरे वसणगतो इच्छिमो आण ॥
अपरक्कमो तवस्सी गतु जे सोहिकारगसमीव।
आगतु न वाएई सो सोहिकारोवि देसाउ ॥
अह पट्ठवेइ सीसं देसतरगमणनट्ठचेट्ठागो।
इच्छामज्जो काउ सोहिं तुब्भं सगासम्मि ॥
सोवि अपरक्कमगती सीस पेसेइ धारणाकुसल।
एयस्स दाणि पुरओ करेइ सोहिं जहावत्त ॥
अपरक्कमो य सीस आणापरिणामग परिच्छेज्जा।
रुक्खे य बीय काए मुत्ते या मोहणाधारिं ॥
एव परिच्छिऊणं जोग्ग नाऊण पेसवे त तु।
वच्चाहि तस्सगास सोहिं सोऊण आगच्छ ॥

७ वही, भाष्य गाथा ६२८।
अह सो गतो उ तहिय तस्स सगासम्मि सो करे सोहिं।
दुगतिगचउविसुद्ध तिविहे काले विगडभावो ॥

कितने आगमो के ज्ञाता हैं ? उनकी प्रव्रज्या—पर्याय तपस्या से भावित है या अभावित ? उनकी गृहस्थ तथा व्रतपर्याय कितनी है ? शारीरिक वल का स्थिति क्या है ? वह क्षेत्र कैसा है ?—ये सारी वाते श्रमण उन आचार्य को पूछता है। उनके कथनानुसार तथा स्वय के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका अवधारण कर वह अपने प्रदेश मे लौट आता है।[1] वह अपने आचार्य के पास जाकर उमी क्रम से निवेदन करता है, जिस क्रम से उसने सभी तथ्यो का अवधारण किया था।[2]

आचाय अपने शिष्य के कथन को अवधानपूर्वक सुनते हैं और छेदसूत्रो [कल्प और व्यवहार] मे निमग्न हो जाते हैं। वे पौर्वापर्य का अनुसधान कर, सूत्रगत नियमो के तात्पर्य की सम्यग् अवगति करते हैं। उसी शिष्य को बुलाकर कहते है—'जाओ, उन आचार्य को यह प्रायश्चित्त निवेदित कर आओ।'[3] वह शिष्य वहा जाता है और अपने आचार्य द्वारा कथित प्रायश्चित्त उन्हें सुना देता है। यह आज्ञाव्यवहार है।[4]

वृत्तिकार के अनुसार आज्ञाव्यवहार का अर्थ इस प्रकार है—दो गीतार्थ आचार्य भिन्न-भिन्न देशो मे हो, वे कारण-वश मिलने मे असमर्थ हो, ऐसी स्थिति मे कही प्रायश्चित्त आदि के विषय मे एक-दूसरे का परामर्श अपेक्षित हो, तो वे अपने शिष्यो को गूढपदो मे प्रष्टव्य विषय को निगूहित कर उनके पास भेज देते हैं। वे गीतार्थ आचार्य भी इसी शिष्य के साथ गूढपदो मे ही उत्तर प्रेषित कर देते हैं। यह आज्ञाव्यवहार है।[5]

४ धारणाव्यवहार—किसी गीतार्थ आचाय ने किसी समय किसी शिष्य के अपराध की शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसे याद रखकर, वैसी ही परिस्थिति मे उसी प्रायश्चित्त-विधि का उपयोग करना धारणाव्यवहार कहलाता है। अथवा वैयावृत्य आदि विशेप प्रवृत्ति मे सलग्न तथा अशेष छेदसूत्र को धारण करने मे असमर्थ साधु को कुछ विशेष-विशेप पद उद्धृत कर धारणा करवाने को धारणा व्यवहार कहा जाता है।[6]

उद्धारणा, विधारणा, सधारणा और सप्रधारणा—ये धारणा के पर्यायवाची शब्द हैं।[7]

१ उद्धारणा—छेदसूत्रो से उद्धृत अर्थपदो को निपुणता से जानना।

२ विधारणा—विशिष्ट अर्थपदो को स्मृति मे धारण करना।

३ सधारणा—धारण किए हुए अर्थपदो को आत्मसात् करना।

४ सप्रधारणा—पूर्ण रूप से अर्थपदो को धारण कर प्रायश्चित्त का विधान करना।[8]

---

१ व्यवहार, उद्देशक १० भाप्य गाथा ६५६, वृत्ति—
श्रुत्वा तस्यालोचनकस्य प्रतिसेवनामालोचनाक्रमविधि च आलोचनाक्रमपरिपाटीं चावधार्य तथा तस्य यावानागमोस्ति तावन्तमागम तथा पुरुपजात तमप्टमादिभिर्भावितमभावित या पर्याय गृहस्थपर्यायो यावानासीत् यावांश्च तस्य व्रतपर्याय तावन्तमुभय पर्याय वल शारीरिक तस्य तथा यादृश तत् क्षेत्रमेतत्सवमालोचकाचायकथनत स्वतो दर्शनतश्चावधार्य स्वदेश गच्छति।

२ वही, भाप्य गाथा ६६०
आहारेउ सव्व सो गंतूण पुणो गुरुसगास।
तेसि निवेदइ तहा जहाणुपुव्वि गत सव्व॥

३ वही भाप्य गाथा ६६१
सो ववहारविहण्णू अणुमज्जित्ता सुत्तोवएसेण।
सीसस्स देइं आण तस्स इमं देहि पच्छित्त॥

४ व्यवहार, उद्देशक १०, भाप्यगाथा ६७३
एव गतूण तहि जहोवएसेण देहि पच्छित्त।
आणाए एस भणितो ववहारो धीरपुरुसेहि॥

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र, ३०२
यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थ-निवेदनायातिचारालोचनमितरस्यापि तथैव शुद्धिदान साज्ञा।

६ वही, पत्र, ३०२
गीतार्थसविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धि कृता तामवधाय यद्'यस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते सा धारणा। वैयावृत्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणो अशेपानु-चितस्योचितप्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरण धारणेति।

७ व्यवहार, उद्देशक १०, भाप्यगाथा ६७५
उद्धारणा विधारणा सधारणा सपधारणा चेव।
नाऊण धीरपुरिसा धारणववहार तं विति॥

८ वही, भाप्य गाथा ६७६ ६७८,
पावल्लेण उवेच्च व उद्धियपयधारणा उ उद्धारा।
विविहेहि पगारेहि धारेयव्व वि धारेउ॥
स एगी भावस्सी ह्यियकरणा ताणि एक्कभावेण।
धारेयत्थपयाणि उ तम्हा सधारणा होई।
जम्हा सपहारेउं ववहार पउजति।
तम्हा कारणा तेण नायव्वा सपहारणा॥

जो मुनि प्रवचनयशस्वी, अनुग्रहविशारद, तपस्वी, सुश्रुत, बहुश्रुत, विनय और औचित्य से युक्त वाणी वाला होता है, वह यदि प्रमादवश मूलगुणो या उत्तरगुणो में स्खलना कर देता है, तब पूर्वोक्त तीन व्यवहारो के अभाव मे भी, आचार्य छेदसूत्रो से अर्थपदों को धारण कर उन्हे यथायोग्य प्रायश्चित्त देते है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से छेदसूत्र के अर्थ का सम्यग् पर्यालोचन कर, प्राग्तन, धीर, दान्त और प्रलीन मुनियो द्वारा कथित तथ्यों के आधार पर प्रायश्चित्त का विधान करते हैं। यह धारणाव्यवहार कहलाता है।[1]

यह भी माना जाता है कि किसी ने किसी को आलोचनाशुद्धि करते हुए देखा। उसने यह अवधारण कर लिया कि इस प्रकार के अपराध के लिए यह शोधि होती है। परिस्थिति उत्पन्न होने पर वह उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देता है तो वह धारणाव्यवहार कहलाता है।[2]

कोई शिष्य आचाय की वैयावृत्य मे सलग्न है या गण मे प्रधान शिष्य है या यात्रा के अवसर पर आचार्य के साथ रहता है, वह छेदसूत्रो के परिपूर्ण अर्थ को धारण करने मे असमर्थ होता है। तब आचार्य उस पर अनुग्रह कर छेदसूत्रो के कई अर्थ-पद उसे धारण करवाते है। वह छेदसूत्रो का अशत धारक होता है। वह भी धारणाव्यवहार का सचालन कर सकता है।[3]

५ जीतव्यवहार—किसी समय किसी अपराध के लिए आचार्यो ने एक प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया। दूसरे समय मे देश, काल, धृति, सहनन, बल आदि देखकर उसी अपराध के लिए जो दूसरे प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया जाता है, उसे जीतव्यवहार कहते हैं।

किसी आचार्य के गच्छ मे किसी कारणवश कोई सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त प्रवर्तित हुआ और वह बहुतो द्वारा, अनेक बार, अनुवर्तित हुआ। उस प्रायश्चित्त-विधि को 'जीत' कहा जाता है।[4]

शिष्य ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि चौदहपूर्वी के उच्छेद के साथ-साथ आगम, श्रुत, आज्ञा और धारणा—ये चारो व्यवहार भी व्यवच्छिन्न हो जाते हैं। क्या यह सही है?[5]

आचार्य ने कहा—'नहीं, यह सही नही है। केवली, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वी, दशपूर्वी और नौपूर्वी—ये नव आगमव्यवहारी होते हैं, कल्प और व्यवहार सूत्रधर श्रुतव्यवहारी होते हैं, जो छेदसूत्र के अर्थधर होते हैं, वे आज्ञा

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६८०-६८६
पवयण जसंसि पुरिसे अणुग्गह विसारए तवस्सिंमि।
सुस्सुयबहुस्सुयमि य विवक्कपरियागसुद्धम्मि॥
एएसु धीरपुरिसा पुरिसजाएसु किंचि खलिएसु।
रहिएवि धारयंता जहारिह देंति पच्छित्त॥
रहिए नाम असन्ते आइल्लम्मि ववहारतियगमि।
ताहेवि धारइत्ता वीमंसेऊण ज भणिय॥
पुरिसस्स अइयार वियारइत्ताण जस्स जं जोग्ग।
त देंति उ पच्छित्त जेण देंती उ त सुणए।
जो धारितो सुत्तत्यो अणुओगविहीए धीरपुरिसेहि।
आलीणपलीणेहिं जयणाजुत्तेहि दन्तेहि॥
अल्लीणो णाणादिसु पदे-पदे लीणा उ होंति पलीणा।
कोहादी वा पलय जेसि गया ते पलीणा उ॥
जयणाजुत्तो पयत्तवा दतो जो उवरतो उ पावेहि।
अहवा दतो इदियदमण नोइदिएण च॥

२ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६८७-६८९
अहवा जेणण्णइया दिट्ठा सोही परस्स कीरति।
तारिसय चेव पुणो उपण्ण कारण तस्स॥
सो तमि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसो।
तारिसय अकरेंतो न हु सो आराहगो होइ॥
सो तपि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसे।
तारिसय चिय भूया, कुव्व आराहगो होई॥

३ वही, भाष्य गाथा ६९० ६९१
वेयावच्चकरो वा सीसा वा देसहिंडगो वावि।
दुम्मेहत्ता न तरइ आराहेउ बहु जो उ॥
तस्स उ उद्धरिऊण अत्यपयाइ देंति आयरियो।
जेहि उ करेइ कज्ज आहारेन्तो उ सो देस॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३०२ द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिषेवानुवृत्त्या सहननधृत्यादिपरिहाणिमपेक्ष्य यत्प्रायश्चित्तदान यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्त कारणत प्रायश्चित्तव्यवहार प्रवर्त्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्त्तितस्तज्जीतमिति।

५ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ६९६
ववहारे चउक्कपि य चोद्दसपुव्वमि वोच्छिन्न।

और धारणा से व्यवहार करते हैं। आज भी छेदसूत्रों के सूत्र और अर्थ को धारण करने वाले हैं, अत व्यवहारचतुष्क का व्यवच्छेद चौदहपूर्वी के साथ मानना युक्तिसगत नही है।[1]

जीतव्यवहार दो प्रकार का होता है—सावद्य जीतव्यवहार और निरवद्य जीतव्यवहार। वस्तुत निरवद्य जीत व्यवहार से ही व्यवहरण हो सकता है सावद्य से नही।[2] परन्तु कही-कही सावद्य जीत व्यवहार का आश्रय भी लिया जाता है। जैसे—

कोई मुनि ऐसा अपराध कर डालता है कि जिसमे समूचे श्रमण-सघ की अवहेलना होती है और लोगो मे तिरस्कार उत्पन्न हो जाता हैं। ऐसी स्थिति मे शासन और लोगों मे उस अपराध की विशुद्धि की अवगति कराने के लिए अपराधी मुनि को गधे पर चढाकर सारे नगर मे घुमाते हैं, पेट के बल रेंगते हुए नगर मे जाने को कहते हैं, शरीर पर राख लगाकर लोगों के बीच जाने को प्रेरित करते हैं, कारागृह मे प्रविष्ट करते हैं—ये सब सावद्य जीतव्यवहार के उदाहरण हैं।

दस प्रकार के प्रायश्चित्तों का व्यवहरण करना निरवद्य जीतव्यवहार है। अपवाद रूप मे सावद्य जीतव्यवहार का भी आलम्बन लिया जाता है।[3] जो श्रमण बार-बार दोष करता है, बहुदोषी है, सर्वथा निर्दय है तथा प्रवचन-निरपेक्ष है, ऐसे व्यक्ति के लिए सावद्य जीतव्यवहार उचित होता है।[4]

जो श्रमण वैराग्यवान्, प्रियधर्मा, अप्रमत्त और पापभीरु है, उसके कही स्खलित हो जाने पर निरवद्य जीतव्यवहार उचित होता है।[5]

जो जीतव्यवहार पार्श्वस्थ, प्रमत्तसयत मुनियों द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह अनेक व्यक्तियों द्वारा आचीर्ण क्यों न हो वह शुद्धि करने वाला नही होता।[6]

जो जीतव्यवहार संवेगपरायण दान्त मुनि द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह एक ही मुनि द्वारा आचीर्ण क्यो न हो, वह शुद्धि करने वाला होता है।[7]

व्यवहार साधु-सघ की व्यवस्था का आधार-बिन्दु रहा है। इसके माध्यम से सघ को निरन्तर जागरूक और विशुद्ध रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए चारित्र की आराधना मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

८७ (सू० १३१)

देखें—१०।८४ का टिप्पण।

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७०१-७०३

केवलमणपज्जवनाणिणो य तत्तो य ओहिनाणजिणा।
चोद्दसदसनवपुव्वी आगमववहारिणो धीरा॥
सुत्तेण ववहरंते कप्पववहार धारिणो धीरा।
अत्थधरववहारत आणाए धारणा ए य॥
ववहारचउक्कस्स, चोद्दसपुव्विम्मि छेदो ज।
भणियं त ते मिच्छा, जम्हा सुत्त अत्थो य धरए य॥

२ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७१५

ज जीतं सावज्ज न तेण जीएण होइ ववहारो।
ज जीयमसावज्ज तेण उ जीएण ववहारो॥

३ वही, भाष्य गाथा ७१६, वृत्ति—

छारहडिहड्डमालापोट्टेण य रिंगणं तु सावज्ज।
दसविह पायच्छित्त होइ असावज्ज जीय तु॥

यत् प्रवचने लोके चापराधविशुद्धये समाचरित क्षारावगुण्ठन हडो गुप्तिगृहप्रवेशन खरमारोपण पोट्टेण उदरेण रंगणं तु घृष्टत्वात खरारूढ कृत्वा ग्रामे सर्वत पर्यटनमित्येवमादि सावद्य जीत, यत्तु दशविधमालोचनादिकं प्रायश्चित्त तदसावद्य जीत अपवादत कदाचित्सावद्यमपि जीत दद्यात्।

४ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७१७

उसण्णबहुदोसे निद्धधसे पवयणे य निरवेक्खो।
एयारिसमि पुरिसे दिज्जइ सावज्जं जीयपि॥

५ वही, भाष्य गाथा ७१८

सविग्गे पियधम्मे अपमत्ते य वज्जभीरुम्मि
कम्हिइयमाइ खलिए देयमसावज्ज जीय तु।

६ वही, भाष्य गाथा ७२०

ज जीयमसोहिकर पासत्थपमत्तसजयाईण्ण।
जइवि महाजणाइन्न न तेन जीएण ववहारो॥

७ वही, भाष्यगाथा ७२१

ज जीय सोहिकर सवेगपरायणेन दतेण।
एगेण वि आइन्न तेण उ जीएण ववहारो॥

८८ (सू० १३२)

देखें—१०।८५ का टिप्पण।

८९. (सू० १३३)

वृत्तिकार ने बोधि का अर्थ जैन-धर्म किया है।[1] यह एक अर्थ है। बोधि के दूसरे-दूसरे अर्थ भी हैं—ज्ञान, दर्शन और चारित्र प्राप्ति की चिंता आदि-आदि।[2]

प्रस्तुत सूत्र मे बोधि-दुर्लभता के पांच स्थान माने हैं।

(१) अर्हत् का अवर्ण बोलना—

'अर्हत् कोई है ही नही। वे वस्तुओ के उपभोग के कटु परिणामो को जानते हुए भी उनका उपयोग क्यो करते हैं ? वे समवसरण आदि का आडम्बर क्यो रचते हैं ? —ऐसी बातें करना अर्हत् का अवर्णवाद है।

(उनके अवश्यवेद्य सातावेदनीयकर्म तथा तीर्थंकर नामकर्म के वेदन से निर्जरा होती है। वे वीतराग होते हैं। अत समवसरण आदि मे उनकी प्रतिवद्धता नहीं होती।)

(२) अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म का अवर्ण बोलना—

श्रुतधर्म का अवर्णवाद—प्राकृत साधारण लोगो की भाषा है। शास्त्र प्राकृत भाषा मे निवद्ध हैं आदि-आदि।

चारित्रधर्म का अवर्णवाद—चारित्र से क्या प्रयोजन, दान ही श्रेय है—ऐसा कहना धर्म का अवर्णवाद है।

(३) आचार्य, उपाध्याय का अवर्ण बोलना—

ये वालक हैं, मन्द हैं आदि-आदि।

(४) चातुर्वर्ण संघ का अवर्ण बोलना—

यहाँ वर्ण का अर्थ प्रकार है। चार प्रकार का संघ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका।

यह क्या संघ है जो अपने समवायबल से पशु-संघ की भाँति अमार्ग को भी मार्ग की तरह मान रहा है। यह ठीक नहीं है।

(५) तप और ब्रह्मचर्य के परिपाक से देवत्व को प्राप्त देवो का अवर्ण बोलना—

जैसे—देवता नही हैं क्योकि वे कभी उपलब्ध नहीं होते। यदि वे हैं तो भी कामासक्त होने के कारण उनमें कोई विशेषता नहीं है।[3]

९० प्रतिसलीन (सू० १३५)

प्रतिसंलीनता बाह्य तप का छठा प्रकार है। इसका अर्थ है—विषयों से इन्द्रियो का संहृत कर अपने-अपने गोलक में स्थापित करना तथा प्राप्त विषयो मे राग-द्वेष का निग्रह करना।

उत्तराध्ययन और तत्त्वार्थ सूत्र प्रतिसंलीनता के स्थान पर विविक्तशयनासन, विविक्तशय्या' आदि भी मिलते है।[4]

प्रतिसंलीनता के चार प्रकार हैं[5]—

(१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता। (२) कषाय प्रतिसलीनता। (३) योग प्रतिसलीनता। (४) विविक्त शयनासन सेवन।

प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के पाँच प्रकारों का उल्लेख है।

विशेष विवरण के लिए देखें—

उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १६२, १६३।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०५ बोधि —जिनधर्म।

२ देखें—३।१७६ का टिप्पण।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०५, ३०६।

४ उत्तराध्ययन ३०।२८, तत्त्वार्थ सूत्र ९।१९।

५ औपपातिक, सूत्र १९।

९१ (सू० १३९)

प्रस्तुत सूत्र मे सयम [चारित्र] के पांच प्रकार निर्दिष्ट हैं—

१ सामायिकसयम—सर्व सावद्य प्रवृत्ति का त्याग।

२ छेदोपस्थापनीयसयम—पांच महाव्रतो को पृथक्-पृथक् स्वीकार करना। विभागश त्याग करना।

३ परिहारविशुद्धिकसयम—तपस्या की विशिष्ट साधना करने का उपक्रम।

४ सूक्ष्मसपरायसयम—यह दशवें गुणस्थानवर्ती सयम है। इसमे क्रोध, मान और माया के अणु उपशान्त या क्षीण हो जाते हैं, केवल सूक्ष्म रूप से लोभाणुओ का वेदन होता है।

५ यथाख्यातचारित्र सयम—वीतराग व्यक्ति का चारित्र।

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि २८।३२, ३३ का टिप्पण।

९२ (सू० १४५)

प्राण, भूत, जीव और सत्त्व—ये चार शब्द कभी-कभी एक 'प्राणी' के अर्थ मे भी प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इनका अर्थ भिन्न है। एक प्राचीन श्लोक मे यह भेद स्पष्ट है—

प्राणा द्वित्रिचतु प्रोक्ता, भूतास्तु तरव स्मृता।
जीवा पञ्चेन्द्रिया ज्ञेया, शेपा सत्त्वा इतीरिता ॥

दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले प्राण, वनस्पति जगत् भूत, पञ्चेन्द्रिय जीव और शेष [पानी, पृथ्वी, तेजस् और वायु के जीव] सत्त्व कहलाते हैं।

९३ (सू० १४६)

अग्रबीज आदि की व्याख्या के लिए देखें—
दसवेआलिय ४। सूत्र ८ का टिप्पण।

९४ आचार (सू० १४७)

आचार शब्द के तीन अर्थ है—
आचरण, व्यवहरण, आसेवन।[1]

आचार मनुष्य का क्रियात्मक पक्ष है। प्रस्तुत सूत्र मे ज्ञान आदि के क्रियात्मक पक्ष का दिशा-निर्देश किया गया है।

(१) ज्ञानाचार—श्रुतज्ञान (शब्दज्ञान) विषयक आचरण।

यद्यपि ज्ञान पाच हैं किन्तु व्यवहारात्मक ज्ञान केवल श्रुतज्ञान ही है।[2] ज्ञानाचार के आठ प्रकार हैं[3]—

१ काल—जो कार्य जिस काल मे निर्दिष्ट है, उसको उसी काल मे करना।

२ विनय—ज्ञानप्राप्ति के प्रयत्न मे विनम्र रहना।

३ बहुमान—ज्ञान के प्रति आन्तरिक अनुराग।

४ उपधान—श्रुतवाचन के समय किया जाने वाला तप।

५ अनिण्हवन—अपने वाचनाचार्य का गोपन न करना।

६ व्यजन—सूत्र का वाचन करना।

---

१ (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ६०
आचरणमाचारो व्यवहार.।
(ख) वही, पत्र, ३०६
आचरणमाचारो ज्ञानादिविपयासेवेत्यर्थं।

२ अनुयोगद्वार सूत्र २।

३ निशीथ भाष्य, गाथा ८
काले विणये बहुमाने, उवधाने तहा अणिण्हवणे।
वंजणअत्थतदुभए, अट्ठविधो णाणमायारो ॥

७ अर्थ—अर्थबोध करना।

८ सूत्रार्थ—सूत्र और अर्थ का बोध करना।[1]

(२) दर्शनाचार—सम्यक्त्व विषयक आचरण। इसके आठ प्रकार हैं—नि शंकित, नि कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपबृंहण, स्थिरीकरण, वत्सलता और प्रभावना।[2]

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति रूप आचरण। इसके आठ प्रकार हैं[3]—पाच समितियो और तीन गुप्तियो का प्रणिधान[4]।

(४) तप आचार—बारह प्रकार की तपस्याओ मे कुशल तथा अग्लान रहना।[5]

(५) वीर्याचार—ज्ञान आदि के विषय मे शक्ति का अगोपन तथा अनतिक्रम।

९५. आचारप्रकल्प (सू० १४८)

इसका अर्थ है—निशीथ नाम का अध्ययन। यह आचारांग की एक चूलिका है। इसमे पाच प्रकार के प्रायश्चित्तों का वर्णन है। इनके आधार पर निशीथ के भी पाच प्रकार हो जाते हैं।

९६ आरोपणा (सू०१४९)

इसका अर्थ है—एक दोष से प्राप्त प्रायश्चित्त मे दूसरे दोष के आसेवन से प्राप्त प्रायश्चित्त का आरोपण करना। इसके पाच प्रकार हैं—

१ प्रस्थापिता—प्रायश्चित्त मे प्राप्त अनेक तपो मे से किसी एक तप को प्रारभ करना।

२ स्थापिता—प्रायश्चित्त रूप से प्राप्त तपो को स्थापित किए रखना, वैयावृत्य आदि किसी प्रयोजन से प्रारम्भ न कर पाना।

३ कृत्स्ना—वर्तमान जैन शासन मे तप की उत्कृष्ट अवधि छह मास की है। जिसे इस अवधि से अधिक तप (प्रायश्चित्त रूप मे) प्राप्त न हो उसकी आरोपणा को अपनी अवधि में परिपूर्ण होने के कारण कृत्स्ना कहा जाता है।

४ अकृत्स्ना—जिसे छह मास से अधिक तप प्राप्त हो उसकी आरोपणा अपनी अवधि में पूर्ण नही होती। प्रायश्चित्त के रूप मे छह मास से अधिक तप नही किया जाता। उसे उसी अवधि मे समाहित करना होता है। इसलिए अपूर्ण होने के कारण इसे अकृत्स्ना कहा जाता है।

५ हाडहडा—जो प्रायश्चित्त प्राप्त हो उसे शीघ्र ही दे देना।

९७-१०२ (सू० १६५)

दुर्ग—दुर्ग का अर्थ है—ऐसा स्थान जहां कठिनाइयो से जाया जाता है। दुर्ग के तीन प्रकार हैं[6]—

१ वृक्षदुर्ग—सघन झाडी।

२ श्वापद दुर्ग—हिंस्र पशुओ का निवास स्थान।

३ मनुष्यदुर्ग—म्लेच्छ मनुष्यों की वसति।

---

१ निशीथ भाष्य, गाथा ९-२०।

२ देखें—उत्तरज्झयणाणि २८।३५ का टिप्पण।

३ निशीथ भाष्य, गाथा ३५
परिहाणजोगजुत्तो, पचहि समितीहि तिहि य गुत्तीहि।
एस चरित्ताचारो अट्ठविहो होति णायव्वो॥

४ देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन २४।

५ देखें—उत्तरज्झयणाणि अध्ययन ३०।

६, स्थानागवृत्ति, पत्र ३११ दु खेन गम्यत इति दुर्गं, त च त्रिधा—वृक्षदुर्गं श्वापददुर्गो म्लेच्छादिमनुष्यदुर्गं।

प्रस्खलन, प्रपतन—वृत्तिकार ने प्रस्खलन और प्रपतन का भेद समझाते हुए एक प्राचीन गाथा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार भूमि पर न गिरना अथवा हाथ या जानु के सहारे गिरना प्रस्खलन है और भूमि पर धडाम से गिर पड़ना प्रपतन है।[1]

क्षिप्तचित्त—राग, भय, मान, अपमान आदि से होने वाला चित्त का विक्षेप।[2]

दृप्तचित्त—लाभ, ऐश्वर्य, श्रुत आदि के मद से दृप्त अथवा सन्मान तथा दुर्जय शत्रु को जीतने से होने वाला दर्प।[3]

यक्षाविष्ट—पूर्वभव के वैर के कारण अथवा राग आदि के कारण देवता द्वारा अधिष्ठित।[4]

उन्मादप्राप्त—उन्माद दो प्रकार का होता है[5]—

(१) यक्षावेश—देवता द्वारा प्राप्त उन्माद।

(२) मोहनीय—रूप, शरीर आदि को देखकर अथवा पित्तमूर्च्छा से होने वाला उन्माद।

१०३ (सू० १६६)

जैन शासन मे व्यवस्था की दृष्टि से सात पदो का निर्देश है। उनमे आचार्य और उपाध्याय—दो पृथक् पद हैं। सूत्र के अर्थ की वाचना देने वाले आचार्य और सूत्र की वाचना देने वाले उपाध्याय कहलाते थे। कभी-कभी दोनो कार्य एक ही व्यक्ति सपादित करते थे।

किसी को अर्थ की वाचना देने के कारण वह आचार्य और किसी दूसरे को सूत्र की वाचना देने के कारण वह उपाध्याय कहलाता था ?[6]

प्रस्तुत सूत्र (१६६) में आचार्य-उपाध्याय के पाँच अतिशेष बतलाए हैं। अतिशेष का अर्थ है—विशेष विधि। व्यवहार सूत्र (६/२) मे भी ये पाच अतिशेष निर्दिष्ट हैं। व्यवहार भाष्यकार ने इनका विस्तार से वर्णन करते हुए प्रत्येक अतिशेष के उपायो का निर्देश भी किया है।

१ पहला अतिशेष है—बाहर से आकर उपाश्रय मे पैरों की धूलि को झाडना। धूली को यतनापूर्वक न झाडने से होने वाले दोषों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) प्रमार्जन के समय चरणधूलि तपस्वी आदि पर गिरने मे वह कुपित होकर दूसरे गच्छ मे जा सकता है।

(२) कोई राजा आदि विशेष व्यक्ति प्रव्रजित है उस पर धूल गिरने से वह आचार्य को बुरा-भला कह सकता है।

(३) शैक्ष भी धूलि से स्पृष्ट होकर गण से अलग हो सकता है।[7]

२ दूसरा अतिशेष है—उपाश्रय मे उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्जन और विशोधन करना।

आचार्य-उपाध्याय शौचकर्म के लिए एक बार बाहर जाए। बार-बार बाहर जाने से अनेक दोष उत्पन्न हो सकते हैं—

(१) जिस रास्ते से आचार्य आदि जाते हैं, उस रास्ते मे स्थित व्यापारी लोग आचार्य आदि को देखकर उठते है, वन्दन आदि करते हैं। यह देखकर दूसरे लोगो के मन मे भी उनके प्रति पूजा का भाव जागृत होता है। आचार्य आदि के

---

१ स्थानांग वृत्ति, पत्र ३११
"भूमीए असंपत्त पत्तं या हत्थजाणुगादीहिं।
पक्खलण नायब्व पयडण भूमीए गत्तेहिं॥"

२ वही, पत्र ३१२ क्षिप्त—नष्ट रागभयापमानैश्चित्तं यस्या सा क्षिप्तचित्ता।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१२ दृप्त सन्मानात् दर्पवच्चित्त यस्या सा दृप्तचित्ता।

४ वही, पत्र ३१२ यक्षेण देवेन आविष्टा—अधिष्ठिता यक्षाविष्टा।

५ वही, पत्र ३१२
उम्माओ खलु दुविहो जक्खाएसो य मोहणिज्जो य।
जक्खाएसो वुत्तो मोहेण इम तु वोच्छामि॥

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१३ आचार्यश्चासावुपाध्यायश्चेत्याचार्योपाध्याय, स हि केषाञ्चिदर्थदायकत्वादाचार्योऽन्येषां सूत्रदायकत्वादुपाध्याय इति।

७ व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा ८३ आदि।

बार-बार बाहर जाने से वे लोग उनको देखते हुए भी नहीं देखने वालों की तरह मुह मोड कर वैसे ही बैठे रहते हैं। यह देख कर अन्य लोगों के मन मे भी विचिकित्सा उत्पन्न होती है और वे भी पूजा-सत्कार करना छोड देते हैं।

(२) लोक में विशेष पूजित होते देख कोई द्वेषी व्यक्ति उनको विजन मे प्राप्त कर मार डालता है।

(३) कोई व्यक्ति आचार्य आदि का उड्डाह करने के लिए जगल मे किसी नपुसक दासी को भेजकर उन पर झूठा आरोप लगा सकता है।

(४) अज्ञानवश गहरे जगल मे चले जाने से अनेक कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हैं।

(५) कोई वादी ऐसा प्रचार कर सकता है कि वाद के डर से आचार्य शौच के लिए चले गए। अरे! मेरे भय से उन्हें अतिसार हो गया है। चलो, मेरे भय से ये मर न जाए। मुझे उनसे वाद नहीं करना है।

(६) राजा आदि के बुलाने पर, समय पर उपस्थित न होने के कारण राजा आदि की प्रव्रज्या या श्रावकत्व के ग्रहण में प्रतिरोध हो सकता है।

(७) सूत्र और अर्थ की परिहानि हो सकती है।

३ तीसरा अतिशेष है—सेवा करने की ऐच्छिकता।

आचार्य का कार्य है कि वे सूत्र, अर्थ, मत्र, विद्या, निमित्तशास्त्र, योगशास्त्र का परावर्तन करें तथा उनका गण में प्रवर्तन करें। सेवा आदि मे प्रवृत्त होने पर इन कार्यों मे व्याघात आ सकता है।

व्यवहार भाष्यकार ने सेवा के अन्तर्गत भिक्षा प्राप्ति के लिए आचार्य के गोचरी जाने, न जाने के सदर्भ मे बहुत विस्तृत चर्चा की है।[1]

४ चौथा अतिशेष है—एक-दो रात उपाश्रय मे अकेले रहना।

सामान्यत आचार्य-उपाध्याय अकेले नहीं रहते। उनके साथ सदा शिष्य रहते ही हैं। प्राचीन काल में आचार्य पर्व-दिनों[2] में विद्याओ का परावर्तन करते थे। अत एक दिन-रात अकेले रहना पडता था अथवा कृष्णा चतुर्दशी अमुक विद्या साधने का दिन है और शुक्ला प्रतिपदा अमुक विद्या साधने का दिन है, तब आचार्य तीन दिन-रात तक अकेले अज्ञात मे रहते हैं। सूत्र मे 'वा' शब्द है। भाष्यकार ने 'वा' शब्द से यह भी ग्रहण किया है कि आचार्य महाप्राण आदि ध्यान की साधना करते समय अधिक काल तक भी अकेले रह सकते हैं। इसके लिए कोई निश्चित अवधि नहीं होती। जब तक पूरा लाभ न मिले या ध्यान का अभ्यास पूरा न हो, तब तक वह किया जा सकता है।

महाप्राणध्यान की साधना का उत्कृष्ट काल बारह वर्ष का है। चक्रवर्ती ऐसा कर सकते हैं। वासुदेव, बलदेव के वह छह वर्ष का होता है। माडलिक राजाओ के तीन वर्ष का और सामान्य लोगों के छह मास का होता है।[3]

५ पाचवा अतिशेष है—एक-दो रात उपाश्रय से बाहर अकेले रहना।

मन्त्र, विद्या आदि की साधना करते समय जब आचार्य वसति के अन्दर अकेले रहते हैं—तब सारा गण बाहिर रहता है और जब गण अन्दर रहता है तब आचार्य बाहर रहते हैं क्योकि विद्या आदि की साधना मे व्याक्षेप तथा अयोग्य व्यक्ति मत्र आदि को सुनकर उसका दुरुपयोग न करे, इसलिए ऐसा करना होता है।[4]

व्यवहारभाष्य ने आचार्य के पाच अतिशेष और गिनाए हैं।[5] वे प्रस्तुत सूत्रगत अतिशेषो से भिन्न प्रकार के हैं।

---

१ देखें—व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा—१२३-२२७।

२ पर्व का एक अर्थ है—मास और अर्द्धमास के बीच की तिथि। अर्द्धमास के बीच की तिथि अष्टमी और मास के बीच की तिथि कृष्णा चतुर्दशी को पर्व कहा जाता है। इन तिथियों में विद्याएं साधी जाती हैं तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के दिनों को भी पर्व माना जाता है। (व्यवहारभाष्य ६।२५२
पक्खस्स अट्ठमी खलु मासस्स य पक्खिअं मुणेयव्वं।
अण्णपि होइ पव्वं उवरागो चदसूराणं॥)

३ व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्यगाथा २५५
बारसवासा भरहाहिवस्स, छच्चेव वासुदेवाणं।
तिण्णि य मडलियस्स, छम्मासा पागयजणस्स॥

४ वही, भाष्य गाथा २५८
वा अतो गणी व गणा विक्खेवा मा हु होज्ज अगहणं।
बसते हि परिच्चत्तो उ अपते कारणे तेहि॥

५ वही, भाष्य गाथा २७८।
अन्नेवि अत्थि भणिया, अतिसेसा पच होंति आयरिए।

(१) उत्कृष्टभक्त—जो कालानुकूल और स्वभावानुकूल हो वैसा भोजन करना।
(२) उत्कृष्टपान—जिस क्षेत्र या काल मे जो उत्कृष्ट पेय हो वह देना।
(३) वस्त्र प्रक्षालन।
(४) प्रशसन।
(५) हाथ, पैर, नयन, दात आदि धोना।

मुख और दात को धोने से जठराग्नि की प्रवलता होती है, आंख और पैर धोने से बुद्धि और वाणी की पटुता बढ़ती है तथा शरीर का सौन्दर्य भी वृद्धिगत होता है।[1]

आचार्यों के ये अतिशेष इसलिए हैं कि—
१ वे तीर्थंकर के सदेशवाहक होते हैं।
२ वे सूत्र और अर्थरूप प्रवचन के दायक होते हैं।
३ उनकी वैयावृत्य करने से महान् निर्जरा होती है।
४ वे सापेक्षता के सूत्रधार होते हैं।
५ वे तीर्थ की अव्यवच्छित्ति के हेतु होते है।[2]

१०४. (सू० १६७)

१ गणापक्रमण का पहला कारण है—आज्ञा और धारणा का सम्यग् प्रयोग न होना। वृत्तिकार ने इसके उदाहरण स्वरूप कालिकाचार्य का उल्लेख किया है। उनका कथानक इस प्रकार है—

उज्जैनी नगरी मे आर्यकालक विहरण कर रहे थे। वे सूत्र और अर्थ के धारक थे। उनका शिष्य-परिवार बहुत बडा था। उनके एक प्रशिष्य का नाम सागर था। वह भी सूत्र और अर्थ का धारक था। वह सुवर्णभूमि मे विहरण कर रहा था।

आर्यकालक के शिष्य अनुयोग सुनना नही चाहते थे। आचार्य ने उन्हें अनेक प्रकार से प्रेरणाएँ दी, परन्तु वे इस ओर प्रवृत्त नही हुए। एक दिन आचार्य ने सोचा—'मेरे ये शिष्य अनुयोग सुनना नही चाहते। अत इनके साथ मेरे रहने से क्या लाभ हो सकता है ? मैं वहां जाऊँ, जहाँ अनुयोग का प्रवर्तन हो सके। एक वार मैं इन्हें छोडकर चला जाऊँगा तो इन्हें भी अपनी प्रवृत्ति पर पश्चात्ताप होगा और सम्भव है इसके मन मे अनुयोग-श्रवण के प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो जाए।' आचार्य ने शय्यातर को बुलाकर कहा—'मैं अन्यत्र कही जाना चाहता हूँ। शिष्यो के पूछने पर तुम उन्हें कुछ भी मत बताना। जब ये तुम्हें बार-बार पूछें और विशेष आग्रह करें तो तुम उनकी भर्त्सना करते हुए कहना कि आचार्य अपने प्रशिष्य सागर के पास सुवर्णभूमि मे चले गए हैं।

शय्यातर को यह बात बताकर आचार्य कालक रात मे ही वहां से चल पडे। सुवर्णभूमि मे पहुँचे। वे आचार्य सागर के गण मे रहने लगे।[3]

२ दूसरा कारण है—वदन और विनय का सम्यक् प्रयोग न कर सकना।

जैन परम्परा की गण-व्यवस्था मे आचार्य का स्थान सर्वोपरि है। वे वय, श्रुत और दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ हो ही, ऐसा नियम नही है। अत उनका यह कर्त्तव्य है कि वे प्रतिक्रमण तथा क्षमायाचना के समय उचित विनय का प्रवर्तन करें। जो पर्याय-स्थविर तथा श्रुत-स्थविर हैं उनका वन्दन आदि से सम्मान करें। यदि वे अपनी आचार्य सम्पदा के अभिमान से ऐसा नही कर पाते तो वे गण से अपक्रमण कर देते हैं।

३ यदि आचार्य यह जान ले कि उनका शिष्य वर्ग अविनीत हो गया है, अत सुख-सुविधाओ का अभिलाषी बन गया है, मन्द-प्रज्ञा वाला है—ऐसी स्थिति मे अपने द्वारा श्रुत का उन्हें अध्यापन करना सहज नहीं है, तब से गणापक्रमण कर देते

---

१ व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा २३७
मुखनयणदतपायादि धोवणे को गुणोत्ति ते बुद्धी।
अग्गि मतिवाणिपड्या तो होइ अणोतप्पया चेव॥

२ वही, भाष्य गाथा १२२।

३ पूरे विवरण के लिए देखें—
बृहत्कल्प भाग १, पृष्ठ ७३,७४।

हैं। यह वृत्तिसम्मत अर्थ है, किन्तु पाठ की शब्दावली से यह अर्थ ध्वनित नहीं होता। इसकी ध्वनि यह है—आचार्य उपाध्याय अपने प्रमाद आदि कारणो से सूत्रार्थ की समुचित ढग से वाचना न देने पर गणापक्रमण के लिए बाध्य हो जाते हैं।

४ जब आचार्य अपने निकाचित कर्मों के उदय के कारण अपने गण की या दूसरे गण की साध्वी मे आसक्त हो जाते हैं तो वे गण छोडकर चले जाते ह। अन्यथा प्रवचन का उड्डाह होता है।

साधारणतया आचार्य की ऐसी स्थिति नही आती, किन्तु—

'कम्माइ नूण घणचिक्कणाइ गरुयाइ वज्जसाराइ।
नाणड्ढयपि पुरिम पथाओ उप्पह निति॥'

—जिस व्यक्ति के कर्म सघन, चिकने ओर वज्र की भांति गुरुक हैं, ज्ञानी होने पर भी, उसको वे पथच्युत कर देते हैं।

५ जब आचार्य यह देखें कि उनके सगे-सम्बन्धी किसी कारणवश गण से अलग हो गए हैं तो उन्हे पुन गण मे सम्मिलित करने के लिए तथा उन्हे वस्त्र आदि का सहयोग देने के लिए स्वय गण से अपक्रमण करते हैं ओर अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर पुन. गण मे सम्मिलित हो जाते हैं।[1]

१०५. (सू० १६८)

सामान्यत ऋद्धि का अर्थ है—ऐश्वर्य, सम्पदा। प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ है—योगविभूतजन्य शक्ति। जो इसमे सम्पन्न है, उसे ऋद्धिमान कहा गया है।

वृत्तिकार ने अनेक योग-शक्तियों का नामोल्लेख किया है।[2]

१ आमर्षौषधि, २ विप्रुडोषधि, ३ क्ष्वेलौषधि, ४ जल्लौषधि, ५ सर्वौषधि, ६ आसीविषत्व—शाप और वर देने का सामर्थ्य। ७ आकाशगामित्व, ८ क्षीणमहानसिकत्व, ९ वैक्रियकरण, १० आहारकलब्धि, ११ तेजोलब्धि, १२ पुलाकलब्धि, १३ क्षीराश्रवलब्धि, १४ मध्वाश्रवलब्धि, १५ सर्पिराश्रवलब्धि, १६ कोष्ठबुद्धिता, १७ बीजबुद्धिता, १८ पदानुसारिता, १९ सभिन्नश्रोतोलब्धि—एक साथ सभी शब्दो को सुनना। २० पूर्वधरता, २१ अवधिज्ञान, २२ मन पर्यवज्ञान, २३ केवलज्ञान, २४ अर्हत्व, २५ गणधरता, २६ चक्रवर्तित्व, २७ बलदेवत्व, २८ वासुदेवत्व आदि-आदि।

ये लब्धियाँ या पद कर्मों के उदय, क्षय, उपशम, क्षयोपशम से प्राप्त होते है।

प्रस्तुत मूल मे पाच प्रकार के ऋद्धिमान् पुरुषो का उल्लेख है। उनमे प्रथम चार की ऋद्धिमत्ता, उनकी विशेष लब्धियाँ तथा तत्-तत् पद की अर्हता से है। भावितात्मा अनगार की ऋद्धिमत्ता केवल आमर्षौषधि आदि विभिन्न प्रकार की योग-जन्य लब्धियों से है।[3]

जिसकी आत्मा अभय, सहिष्णुता आदि भावनाओं तथा अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाओं तथा प्रमोद आदि चार भावनाओं से भावित होती है, उसे भावितात्मा अनगार कहा जाता है।

१०६, १०७ (सू० १७८, १७९)

प्रस्तुत दो सूत्रो मे अधोलोक और ऊर्ध्वलोक मे पाँच-पाँच प्रकार के बादर जीवों का निर्देश है। इनमे तेजस्कायिक जीवो का उल्लेख नहीं है। वृत्तिकार ने बताया है कि अधोलोक के ग्रामो मे बादरतेजस् की अत्यन्त न्यूनता होती है। अत उसकी विवक्षा नही की गई है। सामान्यत वह तिर्यग्लोक मे ही उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण के लिए देखें—प्रज्ञापना पद दो, मलयगिरिवृत्ति।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१५।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१५।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१६ एतेषां च ऋद्धिमत्त्वमामर्षौषध्यादिभिरर्हदादीनां तु चतुर्णां यथासम्भवमामर्षौषध्यादिनार्हत्वादिना चेति।

इन सूत्रों मे त्रस प्राणी के साथ 'ओराल' (स० उदार) शब्द का प्रयोग है। उसका अर्थ है—स्थूल। तेजस् और वायुकायिक जीवों को भी त्रस कहा जाता है। उनका व्यवच्छेद कर द्वीन्द्रिय आदि जीवो का ग्रहण करने के लिए त्रस के साथ ओराल शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

१०८ (सू० १८३)

यह पांच प्रकार की वायु उत्पत्ति काल मे अचेतन होती है और परिणामान्तर होने पर सचेतन भी हो सकती है।[2]

१०९. (सू० १८४)

१ पुलाक—नि सार धान्यकणो की भांति जिसका चरित्र नि सार हो उसे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहते हैं। इसके दो भेद हैं—लब्धिपुलाक तथा प्रतिषेवापुलाक। सघ-सुरक्षा के लिए पुलाक-लब्धि का प्रयोग करने वाला लब्धिपुलाक कहलाता है तथा ज्ञान आदि की विराधना करने वाला प्रतिषेवापुलाक कहलाता है।

२ वकुश—शरीरविभूषा आदि के द्वारा उत्तरगुणो मे दोष लगाने वाला वकुश निर्ग्रन्थ कहलाता है। इसके चरित्र मे शुद्धि और अशुद्धि दोनो का सम्मिश्रण होने के कारण शवल—विचित्र वर्ण वाले चित्र की तरह विचित्रता होती है।

३ कुशील—मूल तथा उत्तरगुणो मे दोष लगाने वाला कुशील निर्ग्रन्थ कहलाता है। इसके प्रमुख रूप से दो प्रकार हैं—प्रतिषेवनाकुशील तथा कषायकुशील। दोनो के पांच-पांच प्रकार हैं—

प्रतिषेवनाकुशील—

(१) ज्ञानकुशील
(२) दर्शनकुशील
(३) चरित्रकुशील
(४) लिंगकुशील
(५) यथासूक्ष्मकुशील

कषायकुशील—

(१) ज्ञानकुशील—सज्वलन कषाय वश ज्ञान का प्रयोग करने वाला।
(२) दर्शनकुशील—सज्वलन कषाय वश दर्शन का प्रयोग करने वाला।
(३) चरित्रकुशील—सज्वलन कषाय से आविष्ट होकर किसी को शाप देने वाला।
(४) लिंगकुशील—कषायवश अन्य साधुओ का वेष करने वाला।
(५) यथासूक्ष्मकुशील—मानसिक रूप से सज्वलन कषाय करने वाला।

११० (सू० १९०)

प्रस्तुत सूत्र मे पांच प्रकार के वस्त्र वतलाये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ जागमिक—जगम (त्रस) जीवो से निष्पन्न। यह दो प्रकार का होता है।[3]—

(क) विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) जीवों से निष्पन्न। इसके अनेक प्रकार हैं—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१९ नचरमग्रऊर्ध्वलोकयोस्तैजसा वादरा न सन्तीति पच ते उक्ता, अन्यथा षट् स्युरिति, अधोलोकग्रामेषु ये वादरास्तैजसास्ते अल्पतया न विवक्षिता, ये चोर्ध्वकपाटद्वये ते उत्पत्तुकामत्वेनोत्पत्तिस्थानास्थितत्वादिति, 'ओरालतस' त्ति त्रसत्वं तेजोवायुष्वपि प्रसिद्धं अतस्तद्व्यवच्छेदेन द्वीन्द्रियादिप्रतिपत्त्यर्थमोरालग्रहण, ओराला—स्थूला एकेन्द्रियापेक्षयेति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१९ एते च पूर्वमचेतनास्तत' सचेतना अपि भवन्तीति।

३ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६१
जगमजाय जगिय, त पुण विगलिदिय च पचिदी।
एक्केक्कं पि य एत्तो, होति विभागेणऽणेगविह॥

(१) पट्टज—रेशमी वस्त्र।

(२) सुवर्णज—कृमियों से निष्पन्न सूत, जो स्वर्ण के वर्ण का होता है।[1]

(३) मलयज—मलय देश के कीडों से निष्पन्न वस्त्र।[2]

(४) अंशुक—चिकने रेशम से बनाया गया वस्त्र।[3]

प्रारम्भ मे यह वस्त्र सफेद होता था। बाद में रक्त, नील, श्याम आदि रंगो मे रंगा जाता था।[4]

(५) चीनांशुक—कोशिकार नामक कीडे के रेशम से बना वस्त्र अथवा चीन देश में उत्पन्न अत्यन्त मुलायम रेशम से बना वस्त्र।[5]

निशीथ की चूर्णि मे सूक्ष्मतर अंशुक को चीनांशुक अथवा चीन देश मे उत्पन्न वस्त्र को चीनांशुक माना है।[6] आचारांग के वृत्तिकार शीलांकसूरि ने अंशुक और चीनांशुक को नाना देशों मे प्रसिद्ध मात्र माना है।[7]

विशेषावश्यक भाष्य की वृत्ति में 'कीटज' के अन्तर्गत पांच प्रकार के वस्त्र गिनाए गए हैं—पट्ट, मलय, अंशुक, चीनांशुक और कृमिराग और इन सबको पट्टसूत्र विशेष माना है।[8] इतना तो निश्चित है कि ये पांचो प्रकार कृमि की लाला से बनाए जाते थे।

(ख) पंचेन्द्रिय जीवों से निष्पन्न। इसके अनेक प्रकार हैं—

(१) औणिक—भेड के बालों से बना वस्त्र।

(२) औष्ट्रिक—ऊँट के बालो से बना वस्त्र।

(३) मृगरोमज—इसके अनेक अर्थ हैं—मृग के रोएँ से बना वस्त्र।[9]

० खरगोश या चूहे के रोएँ से बना वस्त्र।[10]

० बालमृग के रोएँ से बना वस्त्र।[11]

० रंकु मृग के रोएँ से बना वस्त्र, जिसे 'रांकव' कहा जाता था।[12]

(४) कुतप—चर्म से निष्पन्न वस्त्र।[13] बकरी के रोएँ या चर्म से निष्पन्न वस्त्र।[14] बाल मृग के सूक्ष्म रोएँ से बना वस्त्र।[15] देशान्तरों मे प्रसिद्ध कुतप रोएँ से बना वस्त्र।[16] चूहे के चर्म से बना वस्त्र।[17] चूहे के रोएँ से बना वस्त्र।[18]

(५) किट्ट—भेड आदि के रोम विशेष से बना वस्त्र।[19] यहां अप्रसिद्ध, देशान्तरों में प्रसिद्ध रोम विशेष से बना वस्त्र।[20]

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६२, वृत्ति—
'सुवन्ने' त्ति सुवर्णवर्णं सूत्रं केषाञ्चित् कृमीणां भवति तन्निष्पन्नं सुवर्णसूत्रजम्।

२ वही, गाथा ३६६२ वृत्ति—
मलयो नाम देशस्तत्सभवं मलयजम्।

३ वही, गाथा ३६६२, वृत्ति—
अंशुकं श्लक्ष्णपटं तन्निष्पन्नमंशुकम्।

४ यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ १२६, १३०।

५. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६२, वृत्ति—
चीनांशुको नाम कोशिकाराख्य कृमिस्तस्माद् जातं चीनांशुकम्।

६ निशीथ ६।१०-१२ की चूर्णि
सुहुमतरं चीणंसुयं भण्णति। चीणविसए वा जं तं चीणंसुयं।

७ आचारांगवृत्ति, पत्र ३६२
अंशुकचीनांशुकादीनि नानादेशेषु प्रसिद्धाभिधानानि।

८ विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ८७८, वृत्ति—
कीटजं तु पंचविधम्, तद्यथा—पट्टे, मलये, अंसुए, चीणंसुय, किमिराए'—एते पञ्चापि पट्टसूत्रविशेषा।

९ निशीथ भाष्य, गाथा ७६० चूर्णि
मियाणलोमेसु मियलोमियं।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२१
मृगरोमजं—शशलोमजं मूषकरोमजं वा।

११ विशेषचूर्णि (बृहत्कल्पभाष्य, भाग ४, पृष्ठ १०१८ में उद्धृत)
मियलामे पच्चएयाण रोमा।

१२ अभिधान चिन्तामणि कोष ३।३३४
रांकवं मृगरोमजम्।

१३ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६१, वृत्ति—
कुपतो-जीणम्।

१४ बृहत्कल्पचूर्णि —कुतवं छागलं।

१५ विशेषचूर्णि (बृहत्कल्प भाष्य, भाग ४, पृष्ठ १०१८ मे उद्धृत)
कुतवो तस्सेव अवयवा।

१६ निशीथभाष्य, गाथा ७६०, चूर्णि—
कुतवकिट्टावि रोमविसेसा चेव देसंतरे, इह अपसिद्धा।

१७ आचारांग वृत्ति, पत्र ३६२।

१८ विशेषावश्यक भाष्य गाथा ८७८, वृत्ति—
तत्र मूषिकलोमनिष्पन्नं कौतवम्।

१९ वही, गाथा ८७८, वृत्ति—

२० वही, गाथा ८७८, वृत्ति—

बकरी के रोएँ से बना वस्त्र ।[1] भेड आदि के रोमो के मिश्रण से बना वस्त्र ।[2]

अश्व आदि के लोम से निष्पन्न वस्त्र ।[3]

प्राचीनकाल मे भेडो, ऊँटो, मृगो तथा बकरो के रोएँ को ऊखल में कूटकर वस्त्र जमाए जाते थे। उनको नमदे कहा जाता था। कुट्ट शब्द इसी का द्योतक है। निशीथ भाष्यवृत्ति मे दुगुल्ल और तिरीड वृक्ष की त्वचाओ को कूटकर नमदे बनाने का उल्लेख है।[4]

५ भागिक—इसके दो अर्थ हैं—

(१) अतसी से निष्पन्न वस्त्र ।[5]

(२) वशकरील के मध्य भाग को कूटकर बनाया जाने वाला वस्त्र ।[6]

६ तिरीटपट्ट—लोघ्र की छाल से बना वस्त्र। तिरीड वृक्ष की छाल के ततू सूत के ततू के समान होते हैं। उनसे बने वस्त्र को तिरीटपट्ट कहा जाता है।[7]

आचाराग की वृत्ति मे जागिक का अर्थ ऊँट आदि की ऊन से निष्पन्न वस्त्र तथा भागिक का अर्थ—विकलेन्द्रिय जीवो की लाला से निष्पन्न सूत से बने वस्त्र किया है।[8]

अनुयोगद्वार मे पाँच प्रकार के वस्त्र बतलाए हैं—अडज, बोडज, कीटज, वालज और वल्कज ।[9]

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित पाँच प्रकारो मे इनका समावेश हो जाता है—

जागमिक—अडज, कीटज और वालज ।

भागिक }
सानिक } —वल्कज ।
तिरीटपट्ट }

पोतक—बोडज ।

वृत्तिकार अभयदेवसूरी ने एक परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि यद्यपि मूल सूत्र मे वस्त्रो के पाँच प्रकार बतलाए हैं, परन्तु सामान्य विधि मे मुनि को ऊन तथा सूत के कपडे ही लेने चाहिए। इनके अभाव मे रेशमी या वल्वज वस्त्र लिए जा सकते हैं। वे भी अल्प मूल्य वाले होने चाहिए। पाटलीपुत्र के सिक्के से जिसका मूल्य अठारह रुपयो से एक लाख रुपयो तक का हो वह महामूल्य वाला है।[10]

१११, ११२. पच्चापिच्चिय, मुजापिच्चिय (सू० १९१)

१ 'वच्च' का अर्थ है—एक प्रकार की मोटी घास, जो दर्भ के आकार की होती है।[11] इसे वल्वज [वल्वज] कहते हैं। 'पिच्चिय' का अर्थ है—कुट्टिक ।[12]

---

१ विशेपचूर्णि (वृहत्कल्पभाष्य, भाग ४ पृष्ठ १०१८ मे उद्धृत)
पिट्टिम सछगलियारोमं ।

२ विशेपावश्यकभाष्य, गाथा, ८७८, वृत्ति—।

३ विशेपावश्यकभाष्य, गाथा ८७८, वृत्ति—
अश्वादि जीवलोमनिष्पन्नं किट्टिसम् ।

४ निशीथ ६।१०-१२ की चूर्णि ।

५ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६३
अतसीवशीमादी उ भगिय ।

६ [illegible] गाथा ३६६३ वृत्ति—
[illegible] यद् निष्पद्यते तद् वा ।

७ [illegible] ११-१२
[illegible] तंतू पट्टसरिसो, सा तिरीलो [illegible]

८ आचारागवृत्ति, पत्र ३६१
जगिय ति जगमोष्ट्राद्यूर्णानिष्पन्न, तथा 'भगियं' ति नानाभगिकविकलेन्द्रियलालानिष्पन्नम् ।

९ अनुयोगद्वार सूत्र ४० ।

१० स्थानागवृत्ति, पत्र ३२२
महामूल्यता च पाटलीपुत्रीयरूपकाष्टादशकादारभ्य रूपकलक्ष यावदिति ।

११ (क) वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६७५ वृत्ति वच्चकं—दर्भाकारं तृणविशेषम् ।
(ख) निशीथ भाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—वच्चको—तणविसेसोदर्भाकृतिर्भवति ।
(ग) आप्टे डिक्शनेरी—वल्वज—A Kind of Coarse grass.

१२ निशीथ भाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—पिच्चियत्ति वा, चिप्पिउत्तिवा, कुट्टितो त्ति वा एगट्ठ ।

धर्मचक्रभूमि देश मे यह प्रथा थी कि लोग इस घास को कूट कर, उसका क्षोद बना लेते थे। फिर उसके टुकडे-टुकडे कर उसके 'वोरे' बनाते थे। कहीं-कहीं प्रावरण और बिछौने भी बनाये जाते थे। इनसे सूत निकाल कर रजोहरण गूथे जाते थे।[1]

२ मूज को कूटकर—मूज को भी इसी प्रकार कूट कर उनसे बने वोरो से तंतु निकाल कर रजोहरण बनाये जाते थे।[2]

ये दोनों प्रकार के रजोहरण प्रकृति से कठोर होते थे। विशेष विवरण के लिए देखें—

१ बृहत्कल्पभाष्य गाथा ३६७३-३६७६।

२ निशीथभाष्य गाथा ८१६ आदि-आदि।

बृहत्कल्प मे 'पिच्चिए' के साथ मे 'चिप्पिए' पाठ मिलता है।[3] इन दोनो मे अर्थ-भेद नही है। निशीथचूर्णि मे 'पिच्चिअ,' 'चिप्पिअ' और 'कुट्टिअ' को एकार्थक बतलाया गया।[4]

११३ (सू० १९२)

निश्राम्थान का अर्थ है—आलम्बनस्थान, उपाकारक स्थान। मुनि के लिए पाच निश्राम्थान हैं। उनकी उपयोगिता के कुछेक सकेत वृत्तिकार ने दिए हैं, वे इस प्रकार है—

१ षट्काय—

- पृथ्वी की निश्रा—ठहरना, बैठना, सोना, मल-मूत्र का विसर्जन आदि-आदि।
- पानी की निश्रा—परिषेक, पान, प्रक्षालन, आचमन आदि-आदि।
- अग्नि की निश्रा—ओदन, व्यजन, पानक, आचाम आदि-आदि।
- वायु की निश्रा—अचित्त वायु का ग्रहण, दृति, भस्त्रिका आदि का उपयोग।
- वनस्पति की निश्रा—सस्तारक, पाट, फलक, औषध आदि-आदि।
- त्रस की निश्रा—चर्म, अस्थि, शृग तथा गोबर, गोमूत्र, दूध आदि-आदि।

२ गण—गुरु के परिवार को गण कहा जाता है। गण मे रहने वाले के विपुल निर्जरा होती है, विनय की प्राप्ति होती है तथा निरतर होनेवाली सारणा-वारणा से दोष प्राप्त नहीं होते।

३ राजा—राजा निश्रास्थान इसलिए है कि वह दुष्टो को निग्रह कर साधुओ को धर्म-पालन में आलबन देता है। अराजक दशा मे धर्म का पालन दुर्लभ हो जाता है।

४ गृहपति—वसति या उपाश्रय देनेवाला। स्थानदान सयम साधना का महान् उपकारी तत्त्व है प्राचीन श्लोक है—

'धृतिस्तेन दत्ता मतिस्तेन दत्ता, गतिस्तेन दत्ता सुख तेन दत्तम्।
गुणश्रीसमालिंगितेभ्यो वरेभ्यो, मुनिभ्यो मुदा येन दत्तो निवास।'

जो मुनि को उपाश्रय देता है, उसने उनको उपाश्रय देकर वस्त्र, अन्न, पान, शयन, आसन आदि सभी कुछ दे दिए।

५ शरीर—कालीदास ने कहा है—'शरीरमाद्य खलु धर्म-साधनम्।' शरीर से धर्म का स्राव होता है, जैसे पर्वत से पानी का—

१,२ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६७५, वृत्ति—धर्मचक्रभूमिकादौ देशे 'वच्चक' दर्भाकार तृणविशेषं 'मुञ्ज च' शरस्तम्बं प्रथम 'चिप्पित्वा' कुट्टयित्वा तदीयो य क्षोदस्त कर्त्तयन्ति। तत 'तै' वच्चकसूत्रैर्मुञ्जसूत्रैश्च 'गोणी' वारको व्यूयते, प्रावरणाऽऽस्तरणानि च 'देशी' देशविशेषं समासाद्य कुर्वन्ति। अतस्तन्निष्पन्न रजोहरणं वच्चकचिप्पकं मुञ्जचिप्पकं वा भण्यते।

३ बृहत्कल्प, उद्देशक २, चतुर्थ विभाग, पृष्ठ १०२२।

४ निशीथभाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—

'शरीर धर्म-सयुक्त, रक्षणीय प्रयत्नत ।
शरीराच्छ्रवते धर्म पर्वतात् सलिल यथा ।।"[1]

११४, निधि (सू० १९३)

निधि का अर्थ है—विशिष्ट वस्तु रखने का भाजन। वृत्तिकार ने पाच निधियो का वर्णन इस प्रकार किया है[2]—

१ पुत्र निधि—पुत्र को निधि इसलिए माना गया है कि वह अर्थोपार्जन कर माता-पिता का निर्वाह करता है तथा उनके आनन्द और सुख का हेतु बनता है।

'जन्मान्तरफल पुण्य, तपोदानसमुद्भवम्।
सन्तति शुद्धवश्या हि, परत्तेह च शर्मणे ।।

२ मित्र निधि—मित्र अर्थ और काम का साधक होता है। वह आनन्द का कारण भी बनता है, अत वह निधि है। कहा है—

'कुतस्तस्यास्तु राज्यश्री कुतस्तस्य मृगक्षेणा ।
यस्य शूर विनीत च, नास्ति मित्र विचक्षणम् ।।

३ शिल्प निधि—शिल्प का अर्थ है—चित्रकला आदि। यह विद्या का वाचक और पुरुषार्थ का साधन है—

विद्यया राजपूज्य. स्याद् विद्यया कामिनीप्रिय ।
विद्या ही सर्वलोकस्य, वशीकरणकार्मणम् ।।

४ धन निधि—कोश। यह सारे जीवन का आधारभूत तत्त्व है।

५ धान्य निधि—कोष्ठागार। शरीर यापन का यह मुख्य तत्त्व है। 'अन्न वै प्राणा'—अन्न जीवन-निर्वाह का अनन्य साधन है।

नीतिवाक्यामृत मे लिखा है—'सर्वसग्रहेपु धान्यसग्रहो महान्'—सभी सग्रहो मे धान्य-सग्रह महत्त्वपूर्ण होता है।[3]

११५ शौच (सू० १९४)

शौच दो प्रकार का होता है—द्रव्यशौच और भावशौच। इस सूत्र मे प्रथम चार द्रव्यशौच के साधक हैं और अन्तिम भाव शौच का साधक है। शौच का अर्थ है—शुद्धि।

१ पृथ्वीशौच—मिट्टी से होने वाली शुद्धि।

२ जलशौच—जल से धोने से होने वाली शुद्धि।

३ तेज शौच—अग्नि या राख से होने वाली शुद्धि।

४ मत्रशौच—मन्त्रविद्या से दोपो का अपनयन होने पर होने वाली शुद्धि।

५ ब्रह्मशौच—ब्रह्मचर्य आदि सद् अनुष्ठानो के आचरण से होने वाली शुद्धि।

वृत्तिकार का कथन है कि ब्रह्मशौच से सत्यशौच, तप शौच, इद्रियनिग्रहशौच और सर्वभूतदयाशौच इन चारो को भी ग्रहण कर लेना चाहिए।[4] लौकिक मान्यता के अनुसार शौच सात प्रकार का है—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म्य, वायव्य, दिव्य, पार्थिव और मानस।[5]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२२, ३२३।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२३।

३ नीतिवाक्यामृत १८।६५।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२३ अनेन च सत्यादिशौच चतुर्विधमपि सगृहीत, तच्चेदम्—

"सत्य शौच तप शौच, शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वभूतदयाशौच जलशौचञ्च पञ्चमम् ।।"

५ वही, पत्र ३२३, ३२४ लौकिकै पुनरिदं सप्तधोक्तम्—यदाह—

सप्त स्नानानि प्रोक्तानि, स्वयमेव स्वयंभुवा ।
द्रव्यभावविशुद्ध्यर्थमृषीणां ब्रह्मचारिणाम् ।।
आग्नेय वारुणं ब्राह्म्य, वायव्य दिव्यमेव च
पार्थिव मानसं चैव, स्नान सप्तविध स्मृतम् ।।
आग्नेय भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुण ।
आपोहिष्ठामयं ब्राह्म्य, वायव्य तु गवां रज ।।
सूर्यदृष्टं तु यद्दृष्टं, तद्दिव्यमृषयो विदु ।
पार्थिव तु मृदा स्नानं, मन शुद्धिस्तु मानसम् ।।

पातञ्जलयोगप्रदीप में शौच के दो प्रकार माने हैं—बाह्य और आभ्यन्तर।

बाह्यशौच—मृत्तिका, जल आदि से पात्र, वस्त्र, स्थान, शरीर के अंगों को शुद्ध रखना, शुद्ध, सात्त्विक और नियमित आहार से शरीर को सात्त्विक, नीरोग और स्वस्थ रखना तथा वस्ती, धोती, नेती आदि से तथा औषधि से शरीर-शोधन करना—ये बाह्यशौच हैं।

आभ्यन्तरशौच—ईर्ष्या, अभिमान, घृणा, असूया आदि मलों को मैत्री आदि से दूर करना, बुरे विचारों को शुद्ध विचारों से हटाना, दुर्व्यवहार को शुद्ध व्यवहार से हटाना मानसिक शौच है।[1]

अविद्या आदि क्लेशों के मलों को विवेक-ज्ञान द्वारा दूर करना चित्त का शौच है।

११६ अधोलोक (सू० १९६)

इस सूत्र में अधोलोक से सातवां नरक अभिप्रेत है। उसमें ये पांच नरकावास हैं। इन पांचों को अनुत्तर मानने के दो कारण हैं—

१ इनमें वेदना सर्वोत्कृष्ट होती है।

२ इनसे आगे कोई नरकावास नहीं है।

वृत्तिकार का यह भी अभिमत है कि प्रथम चार नरकावासों को अनुत्तर मानने का कारण उनका क्षेत्र-विस्तार भी है। ये चारों असंख्य योजन के अप्रतिष्ठान नरकावास इसलिए अनुत्तर है कि वहां के नैरयिकों का आयुष्य-मान उत्कृष्ट होता है, तैंतीस सागर का होता है।[2]

११७ ऊर्ध्वलोक (सू० १९७)

इस सूत्र में 'ऊर्ध्वलोक' से अनुत्तर विमान अभिप्रेत है। उसमें पांच विमान हैं। वे पांचों अनुत्तर इसलिए हैं कि उनमें देवों की संपदा और आयुष्य सबसे उत्कृष्ट होता है तथा क्षेत्रमान भी बड़ा होता है।

११८ (सू० १९८)

देखें—४।४८६ का टिप्पण।

११९ (सू० २००)

देखें—दसवेआलियं ५।१।५१ का टिप्पण।

१२० (सू० २०१)

देखें—उत्तरज्झयणाणि २।१३ तथा २९। सूत्र ४२ के टिप्पण।

१२१ उत्कल (सू० २०२)

वृत्तिकार ने 'उक्कल' के संस्कृत रूप 'उत्कट' और 'उत्कल' दोनों किए हैं। इसिभासियं के विवरण में उत्कट ही मिलता है। उत्कट के 'ट' को 'ड' और 'ड' को 'ल' करने पर 'उक्कल' रूप निर्मित होता है। इसका सहज संस्कृत रूप उत्कल है। इसिभासियं में प्रतिपादित सिद्धान्त से उत्कल का अर्थ उच्छेदवादी फलित होता है। इसिभासियं के एक अर्हत् ने पांच

१ पातञ्जलयोगप्रदीप, पृष्ठ ३४८, ३५९।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२४ 'अहोलोए' त्ति सप्तमपृथिव्यां अनुत्तरा—सर्वोत्कृष्टा उत्कृष्टवेदनादित्वात्तत पर नरकाभावाद् वा, महत्त्वं च चतुर्णां क्षेत्रतोऽप्यसंख्यातयोजनत्वादप्रतिष्ठानस्य तु योजनलक्षप्रमाणत्वेऽप्यायुषोऽतिमहत्त्वान्महत्त्वमिति।

उत्कलों की जो व्याख्या की है वह स्थानाग की व्याख्या से सर्वथा भिन्न है। स्थानाग के मूलपाठ मे उत्कलो के नाम मात्र उल्लिखित हैं। अभयदेवसूरि ने उनकी व्याख्या किस आधार पर की, यह नही बताया जा सकता। सभवत उनकी व्याख्या का आधार शाब्दिक अर्थ रहा है, किन्तु प्राचीन परम्परा उन्हें भी प्राप्त नही हुई। इसिभासिय मे प्राप्त उत्कल की व्याख्या पढने पर सहज ही ऐसी प्रतीति होती है।

१ दडोत्कल—दड के दृष्टान्त द्वारा देहात्मैक्य की स्थापना कर पुनर्जन्म का उच्छेद मानने वाला।

२ रज्जूत्कल—रज्जु के दृष्टान्त द्वारा देहात्मैक्य की स्थापना कर पुनर्जन्म का उच्छेद मानने वाला।

३ स्तैन्योत्कल—दूसरो के शास्त्रों के दृष्टान्तो को अपना बतलाकर पर-कर्तृत्व का उच्छेद करने वाला।

४ देशोत्कल—जीव के अस्तित्व को स्वीकार कर उसके कर्तृत्व आदि धर्मो का उच्छेद मानने वाला।

५ सर्वोत्कल—समस्त पदार्थों का उच्छेद मानने वाला।

प्रथम दो उत्कलो मे दड (डडे) और रज्जु के दृष्टान्त के द्वारा 'समुदयमात्रमिद कलेवर' इस चार्वाकीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है—'जिस प्रकार दड का आदि भाग दड नही है, मध्य भाग दड नही है और अत भाग दड नही है, उसका समुदाय मात्र दड है, वैसे ही पचभूतात्मक शरीर का समुदाय ही आत्मा है, उससे भिन्न कोई आत्मा नही है।'

रज्जु धागों का समूह मात्र है। धागों से भिन्न उसका अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार आत्मा भी पच महाभूतो का समुदाय मात्र है। उससे भिन्न कोई आत्मा नही है। तीसरे उत्कल के द्वारा विचार के अपहरण की प्रवृत्ति बतलाई गई है। चौथे उत्कल के द्वारा आत्मवादियो के एकाङ्गी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। पांचवें उत्कल के द्वारा सर्वोच्छेद-वादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है।[1]

अभयदेवसूरि ने दण्डोत्कट या दण्डोत्कल का अर्थ दण्ड-शक्ति के आधार पर किया है[2]—

१ जिसकी आज्ञा प्रबल हो।

२ जिसका अपराध के लिए दण्ड प्रबल हो।

३ जिसका सेना-बल प्रबल हो।

४ दण्ड के द्वारा जो बढता हो।

अन्य उत्कटो की व्याख्या इस प्रकार है—

रज्जुक्कल—राज्य का प्रभुता से उत्कट।

तेणुक्कल—उत्कट चोर।

देसुक्कल—देश (मडल) से उत्कट।

सव्वुक्कल—देश-समुदाय मे उत्कट।

१२२-१२५ (सू० २१०-२१३)

इन चार सूत्रों मे विभिन्न प्रकार के सवत्सरों तथा उनके भेद-प्रभेदो का उल्लेख है। अतिम सूत्र (२१३) मे नक्षत्र आदि पांच सवत्सरों के लक्षणो का निरूपण है।

---

१ इसिभासिय, अध्ययन २०।

से किं तं दडुक्कले ? दडुक्कले नाम जेण दडदिट्ठतेण आदिल्लमज्झवसाणाण पण्णवणाए समुदयमेत्ताभिधाणाइं णत्थि सरीरातो पर जीवोत्ति भवगतिवोच्छेय वदति, से त दडुक्कले।

से किं त रज्जुक्कले ? रज्जुक्कले णाम जेण रज्जुदिट्ठतेणं समुदयमेत्तपण्णवणा। पचमहब्भूत—खधमेत्तमिधाणाइं, संसारससतीवोच्छे वदति, से त रज्जुक्कले।

से किं तं तेणुक्कले ? तेणुक्कले णाम जे ण अण्णसत्थदिट्ठतगाहेहिं सपक्खुब्भावणाणिरए "मम त एत" मिति परकरणच्छेदं वदति, से तं तेणुक्कले।

से किं त देसुक्कले ? देसुक्कले णाम जे ण अत्थिन्न एस इति सिद्धे जीवस्स अकत्तादिएहिं गाहेहिं देसुच्छेय वदति, से त देसुक्कले।

से किं त सव्वुक्कले ? । सव्वुक्कले णाम जेण सव्वत सव्वसभवाभावा णो तच्च सव्वतो सव्वहा सव्वकाल च णत्थित्ति सव्वच्छेद वदति, से तं सव्वुक्कले।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३२६ उक्कल त्ति उत्कटा उत्कला वा, तत्र दण्ड —आज्ञा अपराधे दण्डन वा सैन्यं वा उत्कट —प्रकृष्टो यस्य स दण्डोत्कट, दण्डेन वोत्कलति-वृद्धि याति'य' स दण्डोत्कल, इत्येव सर्वत्र, नवर राज्य—प्रभुता स्तेना —चौरा देशो—माण्डल सर्व—एतत्समुदय इति।

वृत्तिकार ने सभी संवत्सरों के स्वरूप तथा कालमान का निर्देश भी किया है। विवरण इस प्रकार है—

१ नक्षत्रसंवत्सर—जितने काल में चन्द्रमा नक्षत्रमंडल का परिभोग करता है, उसे नक्षत्रमास कहते हैं। इसमें $२७\frac{२१}{६७}$ दिन होते हैं। बारह मास का एक संवत्सर होता है। नक्षत्रसंवत्सर में $[२७\frac{२१}{६७} \times १२]$ $३२७\frac{५१}{६७}$ दिन होते हैं।[१]

२ युगसंवत्सर—पांच संवत्सरों का एक युगसंवत्सर होता है। इसमें तीन चन्द्रसंवत्सर और दो अभिवर्द्धितसंवत्सर होते हैं। चन्द्रसंवत्सर में $[२९\frac{३२}{६२} \times १२]$ $३५४\frac{१२}{६२}$ दिन होते हैं और अभिवर्द्धित संवत्सर में $[३१\frac{१२१}{१२४} \times १२]$ $३८३\frac{४४}{६२}$ दिन होते हैं।[२]

अभिवर्द्धित संवत्सर में अधिकमास होता है।[३]

३ प्रमाणसंवत्सर—दिवस आदि के परिमाण से उपलक्षित संवत्सर।

यह भी पांच संवत्सरों का एक समवाय होता है—[४]

(१) नक्षत्रसंवत्सर।

(२) चन्द्रसंवत्सर।

(३) ऋतुसंवत्सर—इसमें प्रत्येक मास तीस अहोरात्र का होता है। संवत्सर में ३६० दिन-रात होते हैं।

(४) आदित्यसंवत्सर—इसमें प्रत्येक मास साढे तीस अहोरात्र का होता है। संवत्सर में ३६६ दिन-रात होते हैं।

(५) अभिवर्धित संवत्सर।

४ लक्षणसंवत्सर—लक्षणों से जाना जानेवाला संवत्सर। यह भी पांच प्रकार का है।[५]

(देखें—सूत्र २१३ का अनुवाद)।

५ शनिश्चरसंवत्सर—जितने समय में शनिश्चर एक नक्षत्र अथवा बारह राशियों का भोग करता है उतने काल-परिमाण को शनिश्चरसंवत्सर कहा जाता है। नक्षत्रों के आधार पर शनिश्चरसंवत्सर अठाईस प्रकार का होता है। यह भी माना जाता है कि महाग्रह शनिश्चर तीस वर्षों में सम्पूर्ण नक्षत्र-मंडल का भोग कर लेता है।[६]

६ कर्मसंवत्सर—इसके दो पर्यायवाची नाम हैं—

ऋतुसंवत्सर, सावनसंवत्सर।[७]

१२६. निर्याणमार्ग (सू० २१४)

मृत्यु के समय जीव-प्रदेश शरीर के जिन मार्गों से निर्गमन करते हैं, उन्हें निर्याणमार्ग कहा जाता है।[८] यहां उल्लिखित पांच निर्याणमार्गों तथा उनके फलों का निर्देश केवल व्यावहारिक प्रतीत होता है।

१२७ अनन्तक (सू० २१७)

देखें—१०।९६ का टिप्पण।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२७।

२ वही, पत्र ३२७।

३ वही, पत्र ३२७।
अभिवर्धिताख्ये संवत्सरे अधिकमास: पततीति।

४ वही, पत्र ३२७।

५ वही, पत्र ३२७।

६ वही, पत्र ३२७
यावता कालेन शनैश्चरो नक्षत्रमेकमथवा द्वादशापि राशीन् भुङ्क्ते स शनैश्चरसंवत्सर इति, यतश्चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्—'सनिच्छरसंवच्छरे अट्ठावीसविहे पन्नत्ते—अभीई सवणे जाव उत्तरासाढा, ज वा संवच्छरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं नक्खत्तमंडलं समाणेइ' त्ति।

७ वही, पत्र ३२८
यस्य ऋतुसंवत्सर सावनसंवत्सरश्चेति पर्यायौ।

८ वही, पत्र ३२८ निर्याण—मरणकाले शरीरिण: शरीरान्निर्गमस्तस्य मार्गो निर्याणमार्ग।

१२८ स्वाध्याय (सू २२०)

देखें—उत्तरज्झयणाणि २६।१८ तथा ३०।१४ के टिप्पण।

१२९-१३१ (सू० २२१)

अनुभापणाशुद्ध—इसमे गुरु प्रथम पुरुप की भाषा मे बोलते हैं और प्रत्याख्यान करने वाला दोहराते समय उत्तम पुरुप की भाषा मे बोलता है। मूलाचार मे कहा है[1]—

'गुरु के प्रत्याख्यान-वचन का अक्षर, पद, व्यजन, क्रम और घोप का अनुसरण कर दोहराना अनुभापणाशुद्ध प्रत्याख्यान है।

अनुपालनाशुद्ध—इसको स्पष्ट करते हुए मूलाचार मे कहा है कि आतक, उपसर्ग, दुर्भिक्ष या कान्तार में भी प्रत्याख्यान का पालन करना, उसको भग न करना अनुपालनाशुद्धप्रत्याख्यान है।[2]

भावशुद्ध—इसका अर्थ है—शुभयोग से अशुभ योग मे चले जाने जाने पर पुन शुभयोग मे लौट आना।

जिससे मन परिणाम राग-द्वेप से दूपित नही होता उसे भावशुद्ध प्रत्याख्यान कहा जाता है।[3]

१३२ प्रतिक्रमण (सू० २२२)

प्रतिक्रमण का अर्थ है—अशुभ योग मे चले जाने पर पुन शुभ योग मे लौट आना। प्रस्तुत सूत्र मे विषय-भेद के आधार पर प्रतिक्रमण के पांच प्रकार किए गए हैं—

१ आस्रवप्रतिक्रमण—प्राणातिपात आदि आस्रवो से निवृत्त होना। इसका तात्पर्य है असयम से प्रतिक्रमण करना।

२ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण—मिथ्यात्व से पुन सम्यक्त्व मे लौट आना।

३ कपायप्रतिक्रमण—कपायो से निवृत्त होना।

४ योगप्रतिक्रमण—मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना, अप्रशस्त योगो से निवृत्ति।

५ भावप्रतिक्रमण—इसका अर्थ है—मिथ्यात्व आदि मे स्वय प्रवृत्त न होना, दूसरों को प्रवृत्त न करना और प्रवृत्त होने वाले का अनुमोदन न करना।[4]

विशेप की विवक्षा करने पर चार विभाग होते हैं—

१ मिथ्यात्व प्रतिक्रमण	३ कपायप्रतिक्रमण
२ असयम प्रतिक्रमण	४ योगप्रतिक्रमण

और उसकी विवक्षा न करने पर उन चारो का समावेश भाव प्रतिक्रमण में हो जाता है।[5]

१३३, १३४ (सू० २३०, २३१)

देखें—१०।२५ का टिप्पण।

१३५ (सू० २३४)

देखें—समवाओ १६।५ का टिप्पण।

---

१ मूलाचार, श्लोक १४४

अणुभासदि गुरुवयण अक्खरपयवजण कमविसुद्ध।
घोसविसुद्धिसुद्ध एद अणुभामणासुद्ध॥

२ वही, श्लोक १४५

आदक उवसग्गे समे य दुब्भिक्खवुत्ति कतारे।
ज पालिद ण भग्ग एद अणुपालणासुद्ध॥

३ वही, श्लोक १४६

रागेण य दोसेण य मणपरिणामे ण दूसिद ज तु।
त पुण पच्चक्खाण भावविसुद्ध तु णादव्व॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३३२

मिच्छत्ताइ न गच्छइ न य गच्छावेइ नाणुजाणाइ।
ज मणवइकाएहि त भणिय भावपडिक्कमण।

५ वही, पत्र ३३२

आश्रवद्वारादि मिति विशेप विवक्षायां तूक्ता एव चत्वारो भेदा, यदाह—

"मिच्छत्तपडिक्कमण तहेव अस्सजमे पडिक्कमण।
कसायाण पडिक्कमण जोगाण य अप्पसत्थाण॥

छट्ठं ठाणं

षष्ठ स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान में छह की सख्या से सवद्ध विपय सकलित हैं। यह स्थान उद्देशकों में विभक्त नहीं है। इस वर्गीकरण में गण-व्यवस्था, ज्योतिप, दार्शनिक, तात्त्विक आदि अनेक विपय हैं। भारतीय दार्शनिकों ने दो प्रकार के तत्त्व माने हैं—मूर्त और अमूर्त। मूर्ततत्त्व इन्द्रियों द्वारा जाने और देखे जा सकते हैं, इसलिए वे दृश्य होते हैं। अमूर्त तत्त्व इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने और देखे जा सकते हैं, इसलिए वे अदृश्य होते हैं।

जैन दर्शन मे छह द्रव्य माने गये हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। इनमें पाच अमूर्त हैं। पुद्गल मूर्त है। ये सव ज्ञेय हैं। ये ज्ञाता के द्वारा जाने जाते हैं। जानने का साधन ज्ञान है। ज्ञान सवका विकसित नहीं होता। द्रव्यों के पर्याय अनत होते हैं। वे सामान्य ज्ञानी द्वारा नहीं जाने जा सकते। वे थोडे-से पयायों को जानते हैं। परमाणु और शब्द मूर्त हैं, फिर भी छद्मस्थ (परोक्षज्ञानी) उन्हें पूर्ण रूप से नहीं जान सकता। केवली उन्हें पूर्ण रूप से जान सकता है।[1]

सुख दो प्रकार का होता है—आत्मिक सुख और पौद्गलिक सुख। आत्मिक सुख पदार्थ-निरपेक्ष होता है। वह आत्मा का सहज स्वरूप है। आत्मरमण से उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। पौद्गलिक सुख पदार्थ-सापेक्ष होता है। वाह्य वस्तुओं का ग्रहण इन्द्रियों के द्वारा होता है। रूप को देखकर, शब्द सुनकर, गन्ध को सूघकर, रस चखकर और छूकर वस्तुए ग्रहण की जाती हैं। उनके साथ प्रिय भाव जुडता है तो वे सुख देती हैं और उनके साथ अप्रिय भाव जुडता है तो वे दुख देती हैं।

इन्द्रिया वाह्य और नश्वर हैं, इसलिए उनसे मिलने वाला सुख भी वाह्य और अस्थायी होता है।

जैन दर्शन यथार्थवादी है। वह अयथार्थ को अस्वीकार नहीं करता। इन्द्रियों से होने वाली सुखानुभूति यथार्थ है। उसे अस्वीकार करने से वास्तविकता का लोप होता है। इन्द्रिय-सुख सुख नहीं हैं, दु ख ही है। यह एकान्तिक दृष्टिकोण है। सतुलित दृष्टिकोण यह है कि इन्द्रियों से सुख भी मिलता है, दु ख भी होता है। आध्यात्मिक सुख की तुलना मे इन्द्रिय-सुख का मूल्य भले नगण्य हो, पर जो है उसे यथार्थ स्वीकृति दी गई है। प्रस्तुत स्थान मे इसलिए सुख और दु ख के छह-छह प्रकार वतलाए गए हैं।[2]

शरीर को धारण करना चाहिए या नहीं ? भोजन करना चाहिए या नहीं ? इन प्रश्नों का उत्तर जैन दर्शन ने सापेक्ष दृष्टि से दिया है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे साधना का स्वतन्त्र मूल्य है। शरीर का मूल्य तभी है जव वह साधना मे उपयोगी हो, भोजन का मूल्य तभी है जव वह साधना मे प्रवृत्त शरीर का सहयोगी हो। जो शरीर साधना के प्रतिकूल प्रवृत्ति कर रहा हो और जो भोजन साधना मे विघ्न डाल रहा हो उनकी उपयोगिता मान्य नहीं है। इसलिए शरीर को धारण करना या न करना, भोजन करना या न करना ये दोनों वातें सम्मत हैं। इसीलिए वतलाया गया है कि मुनि छह कारणों से भोजन कर सकता है, छह कारणों से उसे छोड सकता है।[3]

आत्मवान् व्यक्ति साधना का पथ पाकर आगे वढने का चिन्तन करता है, समय की लम्बाई के साथ अनुभवों का लाभ उठाता है। अनात्मवान् साधना के पथ पर चलता हुआ भी अपने अह का पोपण करने लग जाता है। आत्मवान् व्यक्ति परिवार को वधन मानकर उससे दूर रहने का प्रयत्न करता है, लेकिन अनात्मवान् परिवार मे आसक्त होकर उसके जाल मे

---

१ ६।४।

२ ६।१७, १८।

३ ६।४१, ४२।

फस जाता है। आत्मवान् ज्ञान के आलोक में अपने जीवन-पथ को प्रशस्त करता है। विनीत और अनाग्रही बनकर जीवन को सरल बनाता है। अनात्मवान् ज्ञान से अपने को भारी बनाता है। तर्क, विवाद और आग्रह का आश्रय लेकर वह अपने अहं को और अधिक बढ़ाता है। आत्मवान् तप की साधना से आत्मा को उज्ज्वल करने का प्रयत्न करता है। अनात्मवान् उसी तप से लब्धि (योगज शक्ति) प्राप्तकर उसका दुरुपयोग करता है। आत्मवान् लाभ होने पर प्रसन्न नहीं होता और अनात्मवान् लाभ होने पर अपनी सफलता का बखान करता है।

आत्मवान् पूजा और सत्कार पाकर उससे प्रेरणा लेता है और उसके योग्य अपने को करने के लिए प्रयत्न करता है। अनात्मवान् पूजा और सत्कार से अपने अहं को पोषण देता है।[१]

प्रस्तुत स्थान ६ की संख्या से सम्बन्धित है। इसमें भूगोल, इतिहास, ज्योतिष लोक-स्थिति, कालचक्र, तत्त्व, शरीर रचना, दुर्लभता और पुरुषार्थ को चुनौती देने वाले असंभव कार्य आदि अनेक विषय संकलित हैं।

---

१ ४।३२, ३३।

छट्ठं ठाणं

मूल | संस्कृत छाया | हिन्दी अनुवाद

गण-धारण-पदं

१ छहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति गणं धारित्तए, त जहा—
सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, वहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिम, अप्पाधिकरणे।

गण-धारण-पदम्

षड्भि स्थानै सम्पन्न अनगार अर्हति गण धारयितुम्, तद्यथा—
श्रद्धी पुरुषजात, सत्य पुरुषजात, मेधावी पुरुषजात, वहुश्रुत पुरुषजात, शक्तिमान्, अल्पाधिकरण ।

गण-धारण-पद

१ छह स्थानो से सम्पन्न अनगार गण धारण करने मे समर्थ होता है[1]—
१ श्रद्धाशील पुरुष, २ सत्यवादी पु
३ मेधावी पुरुष, ४ वहुश्रुत पुरुष
५ शक्तिशाली पुरुष, ६ कलहरहि पुरुष ।

णिग्गंथी-अवलंवण-पदं

२. छहिं ठाणेहिं णिग्गथे णिग्गथि गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णाइक्कमइ, त जहा—
खित्तचित्तं, दित्तचित्त, जक्खाइट्ठ, उम्मायपत्त, उवसग्गपत्त, साहिकरण ।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पदम्

षड्भि स्थानै निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी गृह्णन् वा अवलम्वयन् वा नातिक्रामति, तद्यथा—
क्षिप्तचित्ता, दृप्तचित्ता, यक्षाविष्टा, उन्मादप्राप्ता, उपसर्गप्राप्ता, साधिकरणाम् ।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पद

२ छह स्थानो से निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकड हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अ क्रमण नहीं करता—
निर्ग्रन्थी के—१ क्षिप्तचित्त हो जाने प
२ दृप्तचित्त हो जाने पर,
३ यक्षाविष्ट हो जाने पर,
४ उन्माद-प्राप्त हो जाने पर,
५ उपसर्ग-प्राप्त हो जाने पर,
६ कलह-प्राप्त हो जाने पर।

साहम्मियस्स अंतकम्म-पद

३ छहिं ठाणेहिं णिग्गथा णिग्गथीओ य साहम्मिय कालगत समायरमाणा णाइक्कमति, त जहा—
अतोहिंतो वा वाहिं णीणेमाणा, वाहीहितो वा णिव्वाहिं णीणेमाणा, उवेहेमाणा वा, उवासमाणा वा, अणुण्णवेमाणा वा, तुसिणीए वा सपव्वयमाणा ।

सार्धमिकस्य अन्तकर्म-पदम्

षड्भि स्थानै निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च सार्धमिक कालगत समाचरन्त नातिक्रामन्ति, तद्यथा—
अन्तो वा वहिर्नयन्त, वहिस्ताद् वा निर्वहिर्नयन्त, उपेक्षमाणा वा, उपासमाना वा, अनुज्ञापयन्तो वा, तुष्णीका सप्रव्रजन्त ।

साधर्मिक-अन्तकर्म-पद

३ छह स्थानो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी अप काल-प्राप्त साधर्मिक का अन्त्य-कर्म करत हुई आज्ञा का अतिक्रमण नही करती[1]—
१ उसे उपाश्रय से वाहर लाती हुई,
२ वस्ती के वाहर लाती हुई,
३ उपेक्षा करती हुई,
४ शव के पास रहकर रात्रि-जागरण करती हुई,
५ उसके स्वजन गृहस्थो को जताती हुई
६ उसे एकान्त मे विसर्जित करने के लि मौन भाव से जाती हुई।

छउमत्थ-केवलि-पदं

४ छ ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण ण जाणति ण पासति, त जहा—
धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आयास, जीवमसरीरपडिवद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द।
एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा जिणे •केवली° सव्वभावेण जाणति पासति, त जहा—
धम्मत्थिकाय, •अधम्मत्थिकाय, आयास, जीवमसरीरपडिवद्ध, परमाणुपोग्गल,° सद्द।

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

षट् स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, जीवमशरीरप्रतिवद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्दम्।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, जीवमशरीरप्रतिवद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्दम्।

छद्मस्थ-केवलि-पद

४ छद्मस्थ छह स्थानो को सर्वभावेन' [पूर्ण-रूप से] नही जानता-देखता—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर-मुक्त जीव ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द।
विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत्, जिन, केवली इन्हें सर्वभावेन जानते-देखते हैं—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर-मुक्त जीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द।

असभव-पद

५ छहि ठाणेहि सव्वजीवाण णत्थि इड्ढीति वा जुतीति वा जसेति वा वलेति वा वीरएति वा पुरिसक्कार-परक्कमेति वा, त जहा—
१ जीव वा अजीव करणताए।
२. अजीव वा जीव करणताए।
३ एगसमए ण वा दो भासाओ भासित्तए।
४ सय कड वा कम्म वेदेमि वा मा वा वेदेमि।
५ परमाणुपोग्गल वा छिदित्तए वा भिदित्तए वा अगणिकाएण वा समोदहित्तए।
६ वहिता वा लोगता गमणताए।

असभव-पदम्

षड्भि स्थानै सर्वजीवाना नास्ति ऋद्धिरिति वा द्युतिरिति वा यशइति वा वलमिति वा वीर्यमिति वा पुरुषकार-पराक्रमइति वा, तद्यथा—
१. जीव वा अजीव कर्तुम्।
२ अजीव वा जीव कर्तुम्।
३ एकसमये वा द्वे भाषे भाषितुम्।
४ स्वय कृत वा कर्म वेदयामि वा मा वा वेदयामि।
५ परमाणुपुद्गल वा छेत्तु वा भेत्तु वा अग्निकायेन वा समवदग्धुम्।
६ वहिस्ताद् वा लोकान्ताद् गन्तुम्।

असंभव-पद

५ सब जीवो मे छह कार्य करने की ऋद्धि, द्युति, यश, वल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम नही होता—
१ जीव को अजीव मे परिणत करने की,
२ अजीव को जीव मे परिणत करने की,
३ एक समय मे दो भाषा वोलने की,
४ अपने द्वारा किए हुए कर्मो का वेदन करू या नही इस स्वतन्त्र भाव की।
५ परमाणु पुद्गल का छेदन-भेदन करने तथा उसे अग्निकाय से जलाने की,
६ लोकान्त से वाहर जाने की।

जीव-पद

६ छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, •आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया,° तसकाइया।

जीव-पदम्

षड्जीवनिकाया॰ प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, त्रसकायिका।

जीव-पद

६ जीवनिकाय छह हैं—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ त्रसकायिक।

७ छ तारग्गहा पण्णत्ता, त जहा— सुक्के, बुहे, वहस्सती, अगारए, सणिच्छरे, केतू।

षट् ताराग्रहा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— शुक्र, बुध, बृहस्पति, अङ्गारक, शनैश्चर, केतु।

७ छह ग्रह तारो के आकार वाले हैं— १ शुक्र, २ बुध, ३ बृहस्पति, ४ अगारक, ५ शनिश्चर, ६ केतु।

८ छव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा— पुढविकाइया, •आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया,° तसकाइया।

षड्विधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, त्रसकायिका।

८ ससारसमापन्नक जीव छह प्रकार के होते हैं— १ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ त्रसकायिक।

गति-आगति-पदं

गति-आगति-पदम्

गति-आगति-पद

९. पुढविकाइया छगतिया छआगतिया पण्णत्ता, त जहा— पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा, •आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा,° तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

पृथिवीकायिका षड्गतिका षडागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा— पृथिवीकायिका पृथिविकायिकेषु उपपद्यमान पृथिवीकायिकेभ्यो वा, अप्कायिकेभ्यो वा, तेजस्कायिकेभ्यो वा, वायुकायिकेभ्यो वा, वनस्पतिकायिकेभ्यो वा, त्रसकायिकेभ्यो वा उपपद्येत।

९ पृथ्वीकायिक जीव छह स्थानो मे गति तथा छह स्थानो से आगति करते हैं— पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिको से, अप्कायिको से, तेजस्कायिको से, वायुकायिको से, वनस्पतिकायिको से तथा त्रसकायिको से उत्पन्न होता है।

से चेव ण से पुढविकाइए पुढविकाइयत्त विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, •आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा,° तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

स चैव असो पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकत्व विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा, अप्कायिकतया वा, तेजस्कायिकतया वा, वायुकायिकतया वा, वनस्पतिकायिकतया वा, त्रसकायिकतया वा गच्छेत्।

पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय को छोडता हुआ पृथ्वीकायिकों मे, अप्कायिको मे, तेजस्कायिको मे, वायुकायिकों मे, वनस्पतिकायिको मे तथा त्रसकायिको मे उत्पन्न होता है।

१०. आउकाइया छगतिया छआगतिया एव चेव जाव तसकाइया।

अप्कायिका षड्गतिका षडागतिका एव चैव यावत् त्रसकायिका।

१० इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक जीव छह स्थानो मे गति तथा छह स्थानो से आगति करते हैं।

जीव-पदं

जीव-पदम्

जीव-पद

११ छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता त जहा— आभिणिवोहियणाणी, •सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी,° केवलणाणी, अण्णाणी।

षड्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आभिनिवोधिकज्ञानिन, श्रुतज्ञानिन, अवधिज्ञानिन, मन पर्यवज्ञानिन, केवलज्ञानिन, अज्ञानिन।

११ सव जीव छह प्रकार के हैं— १ आभिनिवोधिकज्ञानी, २ श्रुतज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ मन पर्यवज्ञानी, ५ केवलज्ञानी, ६ अज्ञानी।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
एगिंदिया, •बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचिंदिया, अणिंदिया।

अथवा—षड्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया, अनिन्द्रिया।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के हैं—
१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ पञ्चेन्द्रिय, ६ अनीन्द्रिय।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी।

अथवा—षड्विधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
औदारिकशरीरिण., वैक्रियशरीरिण, आहारकशरीरिण, तैजसशरीरिण, कर्मकशरीरिण, अशरीरिण।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के हैं—
१ औदारिकशरीरी, २ वैक्रियशरीरी, ३ आहारकशरीरी, ४ तैजसशरीरी, ५ कार्मणशरीरी, ६ अशरीरी।

तणवणस्सइ-पद

१२. छव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—
अग्गवीया, मूलवीया, पोरवीया, खधवीया, वीयरुहा, समुच्छिमा।

तृणवनस्पति-पदम्

षड्विधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अग्रवीजा, मूलवीजा, पर्ववीजा, स्कन्धवीजा, वीजरुहा सम्मूर्च्छिमा।

तृणवनस्पति-पद

१२ तृणवनस्पतिकायिक जीव छह प्रकार के हैं—
१ अग्रबीज, २ मूलबीज, ३ पर्वबीज ४ स्कन्धबीज, ५ बीजरुह, ६ सम्मूर्च्छिम।

णो-सुलभ-पदं

१३ छट्ठाणाइ सव्वजीवाण णो सुलभाइ भवति, त जहा—
माणुस्सए भवे।
आरिए खेत्ते जम्म।
सुकुले पच्चायाती।
केवलीपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता।
सुत्तस्स वा सद्दहणता।
सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्म काएण फासणता।

नो-सुलभ-पदम्

षट्स्थानानि सर्वजीवाना नो सुलभानि भवन्ति, तद्यथा—
मानुष्यक भव।
आर्ये क्षेत्रे जन्म।
सुकुले प्रत्याजाति।
केवलिप्रज्ञप्तस्य धर्मस्य श्रवण।
श्रुतस्य वा श्रद्धान।
श्रद्धितस्य वा प्रतीतस्य वा रोचितस्य वा सम्यक् कायेन स्पर्शनम्।

नो-सुलभ-पद

१३ छह स्थान सब जीवों के लिए सुलभ नहीं होते—
१ मनुष्यभव, २ आर्यक्षेत्र में जन्म,
३ सुकुल में उत्पन्न होना,
४ केवलीप्रज्ञप्त धर्म का सुनना।
५ सुने हुए धर्म पर श्रद्धा,
६ श्रद्धित, प्रतीत तथा रोचित धर्म का सम्यक कायस्पर्श—आचरण।

इंदियत्थ-पदं

१४ छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सोइंदियत्थे, •चक्खिदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिदियत्थे,° फासिंदियत्थे, णोइंदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

षड् इन्द्रियार्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थ, चक्षुरिन्द्रियार्थ, घ्राणेन्द्रियार्थ, जिह्वेन्द्रियार्थ, स्पर्शेन्द्रियार्थ, नोइन्द्रियार्थ।

इन्द्रियार्थ-पद

१४ इन्द्रियों के अर्थ [विषय] छह हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ—शब्द,
२ चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ—रूप,
३ घ्राणेन्द्रिय का अर्थ—गन्ध,
४ जिह्वेन्द्रिय का अर्थ—रस,
५ स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ—स्पर्श,
६ नो-इन्द्रिय [मन] का अर्थ—श्रुत।

सवर-असंवर-पदं

१५. छव्विहे सवरे पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियसवरे, चक्खिदियसवरे,
घाणिदियसवरे, जिब्भिदियसवरे,°
फासिदियसवरे, णोइदियसवरे।

१६ छव्विहे असवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसवरे, •चक्खिदियअसवरे
घाणिदियअसवरे, जिब्भिदियअसवरे°
फासिदियअसवरे, णोइदियअसवरे।

संवराऽसवर-पदम्

पड्विध सवर प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसवर, चक्षुरिन्द्रियसवर,
घ्राणेन्द्रियसवर, जिह्वेन्द्रियसवर,
स्पर्शेन्द्रियसवर, नोइन्द्रियसवर।

पड्विध असवर, प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासवर, चक्षुरिन्द्रियासवर,
घ्राणेन्द्रियासवर, जिह्वेन्द्रियासवर,
स्पर्शेन्द्रियासवर, नोइन्द्रियासवर।

संवराऽसंवर-पद

१५ सवर के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सवर, २ चक्षुरिन्द्रिय सवर,
३ घ्राणेन्द्रिय सवर, ३ जिह्वेन्द्रिय सवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय सवर, ६ नो-इन्द्रिय सवर।

१६ असवर के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असवर,
२ चक्षुरिन्द्रिय असवर,
३ घ्राणेन्द्रिय असवर,
४ जिह्वेन्द्रिय असवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय असवर,
६ नो-इन्द्रिय असवर।

सात-असात-पदं

१७ छव्विहे साते, पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियसाते, •चक्खिदियसाते,
घाणिदियसाते, जिब्भिदियसाते,
फासिदियसाते,° णोइदियसाते।
१८ छव्विहे असाते पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियअसाते, •चक्खिदियअसाते
घाणिदियअसाते, जिब्भिदियअसाते,
फासिदियअसाते,° णोइदियअसाते।

सात-असात पदम्

पड्विध सात प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसात, चक्षुरिन्द्रियसात,
घ्राणेन्द्रियसात, जिह्वेन्द्रियसात,
स्पर्शेन्द्रियसात, नोइन्द्रियसातम्।
पड्विध असात प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासात, चक्षुरिन्द्रियासात,
घ्राणेन्द्रियासात, जिह्वेन्द्रियासात,
स्पर्शेन्द्रियासात, नोइन्द्रियासातम्।

सात-असात-पद

१७ सुख के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सुख, २ चक्षुरिन्द्रिय सुख,
३ घ्राणेन्द्रिय सुख, ४ जिह्वेन्द्रिय सुख,
५ स्पर्शनेन्द्रिय सुख, ६ नो-इन्द्रिय सुख।
१८ असुख के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असुख,
२ चक्षुरिन्द्रिय असुख,
३ घ्राणेन्द्रिय असुख,
४ जिह्वेन्द्रिय असुख,
५ स्पर्शनेन्द्रिय असुख,
६ नो-इन्द्रिय असुख।

पायच्छित्त-पद

१६ छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—
आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे,
तदुभयारिहे, विवेगारिहे,
विउस्सग्गारिहे, तवारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

पड्विध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्ह, प्रतिक्रमणार्ह,
तदुभयार्ह, विवेकार्ह,
व्युत्सर्गार्ह, तपोऽर्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

१६ प्रायश्चित्त के छह प्रकार हैं—
१ आलोचना-योग्य, २ प्रतिक्रमण-योग्य,
३ तदुभय-योग्य, ४ विवेक-योग्य,
५ व्युत्सर्ग-योग्य, ६ तप-योग्य।

मणुस्स-पद

२० छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—
जवूदीवगा,
धायइसडदीवपुरत्थिमद्धगा,
धायइसडदीवपच्चत्थिमद्धगा,
पुक्खरवरदीवड्डपुरत्थिमद्धगा,
पुक्खरवरदीवड्डपच्चत्थिमद्धगा,
अतरदीवगा।
अहवा—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—
समुच्छिममणुस्सा—
कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अतरदीवगा,
गब्भवक्कति अमणुस्सा—
कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अतरदीवगा।

मनुष्य-पदम्

षड्विधा मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जम्बूद्वीपगा,
धातकीपण्डद्वीपपौरस्त्यार्धगा,
धातकीपण्डद्वीपपाश्चात्यार्धगा,
पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धगा,
पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धगा,
अन्तर्द्वीपगा।
अथवा—षड्विधा मनुष्या, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सम्मूर्च्छिममनुष्या—
कर्मभूमिगा (जा) अकर्मभूमिगा· अन्तर्द्वीपगा,
गर्भावक्रान्तिकमनुष्या—
कर्मभूमिगा अकर्मभूमिगा· अन्तर्द्वीपगा।

मनुष्य-पद

२० मनुष्य छह प्रकार के होते हैं—
१ जम्बूद्वीप मे उत्पन्न,
२ धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न,
३ धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध मे उत्पन्न,
४ अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध मे उत्पन्न,
५ अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे उत्पन्न,
६ अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न।
अथवा—मनुष्य छह प्रकार के होते हैं—
१ कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
२ अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
३ अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
४ कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।
५ अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।
६ अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।

२१ छव्विहा इड्डिमता मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—
अरहता, चक्कवट्टी, वलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विज्जाहारा।

षड्विधा ऋद्धिमन्त मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अर्हन्त, चक्रवर्त्तिन, वलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विद्याधरा।

२१ ऋद्धिमान् पुरुष-छह प्रकार के होते हैं—
१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ वलदेव, ४ वासुदेव, ५ चारण, ६ विद्याधर।

२२ छव्विहा अणिड्डिमता मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—
हेमवतगा, हेरण्णवतगा, हरिवासगा, रम्मगवासगा, कुरुवासिणो, अतरदीवगा।

षड्विधा अनृद्धिमन्त मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हैमवतगा हैरण्यवतगा, हरिवर्षगा, रम्यक्वर्षगा, कुरुवासिन, अन्तर्द्वीपगा।

२२ अनृद्धिमान् पुरुष छह प्रकार के होते हैं—
१ हैमवतज—हैमवत क्षेत्र मे पैदा होने वाले, २ हैरण्यवतज, ३ हरिवर्षज, ४ रम्यकवर्षज, ५ कुरुवर्षज, ६ अन्तर्द्वीपज।

कालचक्क-पद

२३ छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—

कालचक्र-पदम्

षड्विधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

कालचक्र-पद

२३ अवसर्पिणी के छह प्रकार हैं—

सुसम-सुसमा, सुसमा, सुसम-दूसमा, दूसम-सुसमा, दूसमा,° दूसम-दूसमा।

सुषम-सुषमा, सुषमा, सुषम-दु षमा, दु षम-सुषमा, दु षमा, दु षम-दु षमा।

१ सुषम-सुषमा, २ सुषमा, ३ सुषम-दु षमा, ४ दु षम-सुषमा, ५ दु षमा, ६ दु षम-दु षमा।

२४. छव्विहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—
दुस्सम दुस्समा, •दुस्समा, दुस्सम-सुसमा, सुसम-दुस्समा, सुसमा,° सुसम-सुसमा।

षड्विधा उत्सर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दु षम-दु षमा, दु षमा, दु षम-सुषमा, सुषम-दु षमा, सुषमा, सुषम-सुषमा।

२४ उत्सर्पिणी के छह प्रकार हैं—
१ दु षम-दु षमा, २ दु षमा, ३ दु षम-सुषमा, ४ सुषम-दु षमा, ५ सुषमा, ६ सुषम-सुषमा।

२५ जवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए मणुया छ घणुसहस्साइ उड्ढमुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइ परमाउ पालयित्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीताया उत्सर्पिण्या सुषम-सुषमाया समाया मनुजा षड् धनु सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभुवन्, षट् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु अपालयन्।

२५ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल मे मनुष्यो की ऊचाई छह हजार धनुष्य की थी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

२६ जवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए •मणुया छ घणुसहस्साइ उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउ पालयित्था।°

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अस्या अवसर्पिण्या सुषम-सुषमाया समाया मनुजा षड् धनु सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता, षड् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु अपालयन्।

२६ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-सुषमा काल मे मनुष्यो की ऊचाई छह हजार धनुष्य तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

२७ जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए •मणुया छ घणुसहस्साइ उड्ढमुच्चत्तेण भविस्सति,° छच्च अद्धपलिओवमाइ परमाउ पालइस्सति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषम-सुषमाया समाया मनुजा षड् धनु-सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन भविष्यन्ति, षड्च अर्द्धपल्योपमानि परमायु पालयिष्यन्ति।

२७ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यो की ऊचाई छह हजार धनुष्य होगी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की होगी।

२८ जवुद्दीवे दीवे देवकुरु-उत्तरकुरुकुरासु मणुया छ घणुस्सहस्साइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइ परमाउ पालेंति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुरुकुर्वो मनुजा षड् धनु सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता, षड् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु पालयन्ति।

२८ जम्बूद्वीप द्वीप मे देवकुरु तथा उत्तरकुरु मे मनुष्यो की ऊचाई छह हजार धनुष्य तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

२९ एव धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा।

एव धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे चत्वार आलापका यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे चत्वार आलापका।

२९ इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी मनुष्यो की ऊचाई (सू० २६-२८ वत्)। छह हजार धनुष्य तथा उनकी आयु तीन पल्योपम की थी, है और होगी।

संघयण-पद

३०. छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, त जहा—
वइरोसभ-णाराय-संघयणे, उसभ-णाराय-संघयणे, णाराय-संघयणे, अद्धणाराय-संघयणे, खीलिया-संघयणे, छेवट्ट-संघयणे।

संहनन-पदम्

षड्विध संहनन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
वज्रर्षभ-नाराच-संहनन, ऋषभ-नाराच-संहनन, नाराच-संहनन, अर्धनाराच-संहनन, कीलिका-संहनन, सेवार्त्त-संहननम।

संहनन-पद

३० संहनन के छह प्रकार हैं—
१ वज्रऋषभनाराच संहनन,
२ ऋषभनाराच संहनन,
३ नाराच संहनन, ४ अर्धनाराच संहनन,
५ कीलिका संहनन, ६ सेवार्त संहनन।

संठाण-पद

३१ छव्विहे संठाणे, पण्णत्ते त जहा—
समचउरंसे, णग्गोहपरिमंडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुंडे।

संस्थान-पदम्

षड्विध संस्थान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज, वामन, हुण्डम्।

संस्थान-पद

३१ संस्थान[1] के छह प्रकार हैं—
१ समचतुरस्र, २ न्यग्रोधपरिमण्डल,
३ स्वाती, ४ कुब्ज, ५ वामन,
६ हुण्ड।

अणत्तव-अत्तव-पदं

३२. छठाणा अणत्तवओ अहिताए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—
परियाए, परियाले, सुते, तवे, लाभे, पूयासक्कारे।

३३. छट्ठाणा अत्तवतो हिताए °सुभाए खमाए णीसेसाए° आणुगामियत्ताए भवति, त जहा—
परियाए, परियाले, °सुते, तवे, लाभे,° पूयासक्कारे।

अनात्मवत्-आत्मवत्-पदम्

षट्स्थानानि अनात्मवत अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
पर्याय, परिवार, श्रुत, तप, लाभ, पूजासत्कार।

षट्स्थानानि आत्मवत हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
पर्याय°, परिवार, श्रुत, तप, लाभ पूजासत्कार।

अनात्मवत् आत्मवत्-पद

३२ अनात्मवान् के लिए छह स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस तथा अनानुगामिकता [अशुभ अनुबन्ध] के हेतु होते हैं[10]—
१ पर्याय—अवस्था या दीक्षा मे बडा होना, २ परिवार, ३ श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

३३ आत्मवान् के लिए छह स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस तथा आनुगामिकता के हेतु होते हैं[11]—
१ पर्याय, २ परिवार, ३ श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

आरिय-पद

३४ छव्विहा जाइ-आरिया मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—

आर्य-पदम्

षड्विधा जात्यार्या मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

आर्य-पद

३४ जाति से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते हैं[12]—

संगहणी-गाहा

१ अवट्ठा य कलदा य,
वेदेहा वेदिगादिया।
हरिता चुंचुणा चेव,
छप्पेता इब्भजातिओ॥

संग्रहणी-गाथा

१ अम्बष्ठाश्च कलन्दाश्च,
वैदेहा वैदिकादिका।
हरिता चुञ्चुणा चैव,
षडप्येता इभ्यजातय॥

संग्रहणी-गाथा

१ अवष्ठ, २ कलन्द, ३ वैदेह,
४ वैदिक, ५ हरित, ६ चुंचुण।
ये छहो इभ्य जाति के मनुष्य हैं।

३५. छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—
उग्गा, भोगा, राइण्णा,
इक्खागा, णाता, कोरव्वा।

षड्विधा कुलार्या मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उग्रा, भोजा, राजन्या,
इक्ष्वाका, ज्ञाता, कौरव्या।

३५ कुल से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते हैं[११]—
१ उग्र, २ भोज, ३ राजन्य ४ इक्ष्वाकु,
५ ज्ञात, ६ कौरव।

लोगट्ठिती-पदं

३६ छव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—
आगासपतिट्ठिते वाए,
वातपतिट्ठिते उदही,
उदधिपतिट्ठिता पुढवी,
पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा,
अजीवा जीवपतिट्ठिता,
जीवा कम्मपतिट्ठिता।

लोकस्थिति-पदम्

षड्विधा लोकस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकाशप्रतिष्ठितो वात,
वातप्रतिष्ठित उदधि,
उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी,
पृथिवीप्रतिष्ठिता त्रसा स्थावरा प्राणा,
अजीवा जीवप्रतिष्ठिता,
जीवा कर्मप्रतिष्ठिता।

लोकस्थिति-पद

३६ लोक-स्थिति छह प्रकार की है—
१ आकाश पर वायुप्रतिष्ठित है,
२ वायु पर उदधिप्रतिष्ठित है,
३ उदधि पर पृथ्वीप्रतिष्ठित है,
४ पृथ्वी पर त्रस-स्थावर जीवप्रतिष्ठित हैं,
५ अजीव जीव पर प्रतिष्ठित है।
६ जीव कर्मों पर प्रतिष्ठित है।

दिसा-पदं

३७. छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पाईणा, पडीणा, दाहिणा,
उदीणा, उड्ढा, अधा।

दिशा-पदम्

षड्दिश प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्राचीना, प्रतीचीना, दक्षिणा,
उदीचीना, ऊर्ध्व, अध।

दिशा-पद

३७ दिशाए छह हैं[१४]—
१ पूर्व, २ पश्चिम, ३ दक्षिण, ४ उत्तर,
५ ऊर्ध्व, ६ अध।

३८ छहि दिसाहि जीवाण गति पवत्तति, त जहा—
पाईणाए, °पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए,° अधाए।

षट्सु दिक्षु जीवाना गति प्रवर्त्तते, तद्यथा—
प्राचीनाया, प्रतीचीनाया, दक्षिणाया,
उदीचीनाया, ऊर्ध्व, अध।

३८ छहो ही दिशाओ मे जीवो की गति [वर्तमान भव से अग्रिम भव मे जाना] होती है—
१ पूर्व मे, २ पश्चिम मे, ३ दक्षिण मे,
४ उत्तर मे, ५ ऊर्ध्वदिशा मे,
६ अधो दिशा मे।

३९ °छहि दिसाहि जीवाण°—
आगई, वक्कती, आहारे, वुड्ढी,
णिवुड्ढी, विगुव्वणा, गतिपरियाए,
समुग्घाते, कालसजोगे,
दसणाभिगमे, णाणाभिगमे,
जीवाभिगमे, अजीवाभिगमे,
°पण्णत्ते, त जहा—
पाईणाए, पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए, अधाए।°

षट्सु दिक्षु जीवाना—
आगति, अवक्रान्ति, आहार,
वृद्धि निवृद्धि, विकरण,
गतिपर्याय, समुद्घात, कालसयोग,
दर्शनाभिगम, ज्ञानाभिगम,
जीवाभिगम, अजीवाभिगम
प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्राचीनाया, प्रतीचीनाया, दक्षिणाया,
उदीचीनाया ऊर्ध्व, अध।

३९ छहो ही दिशाओ मे जीवो के—
आगति—पूर्व भव से प्रस्तुत भव मे आना
अवक्रान्ति—उत्पत्ति स्थान मे जाकर उत्पन्न होना।
आहार—प्रथम समय मे जीवनोपयोगी पुद्गलो का सचय करना।
वृद्धि—शरीर की वृद्धि।
हानि—शरीर की हानि।
विक्रिया—विकुर्वणा करना।
गति-पर्याय—गमन करना। यहा इसका अर्थ परलोकगमन नही है।
समुद्घात[१५]—वेदना आदि मे तन्मय होकर आत्मप्रदेशो का इधर-उधर प्रक्षेप करना।
काल-सयोग—सूर्य आदि द्वारा कृत काल-विभाग।
दर्शनाभिगम—अवधि आदि दर्शन के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।
ज्ञानाभिगम—अवधि आदि ज्ञान के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।

जीवाभिगम—अवधि आदि ज्ञान के द्वारा जीवों का परिज्ञान। अजीवाभिगम [अवधि आदि ज्ञान के द्वारा पुद्गलों का परिज्ञान] होते हैं—
१ पूर्व में, २ पश्चिम में, ३ दक्षिण में, ४ उत्तर में, ५ ऊर्ध्वदिशा में, ६ अधोदिशा में।

४० एव पचिंदियतिरिक्खजोणियाणवि, मणुस्साणवि।

एव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामपि, मनुष्याणामपि।

४० इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यों की गति-आगति आदि छह दिशाओं में होती हैं।

आहार-पदं

आहार-पदम्

आहार-पद

४१ छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे आहार-माहारेमाणे णातिक्कमति, त जहा—

षड्भि· स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ· आहार आहरन् नातिक्रामति, तद्यथा—

४१ श्रमण-निर्ग्रन्थ छह कारणों से आहार करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता[11]—

सगहणी-गाहा

१. वेयण-वेयावच्चे,
ईरियट्ठाए य सजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए,
छट्ठ पुण धम्मचिंताए॥

संग्रहणी-गाथा

१ वेदना-वैयावृत्त्याय,
ईर्यार्थाय च सयमार्थाय।
तथा प्राणवृत्तिकार्यै,
षष्ठ पुन धर्मचिन्तायै॥

संग्रहणी-गाथा

१ वेदना—भूख की पीडा मिटाने के लिए।
२ वैयावृत्त्य करने के लिए।
३ ईर्यासमिति का पालन करने के लिए।
४ सयम की रक्षा के लिए।
५ प्राण-धारण के लिए।
६ धर्म-चिन्ता के लिए।

४२ छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे आहार वोच्छिदमाणे णातिक्कमति, त जहा—

षड्भि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ आहार व्युच्छिन्दन् नातिक्रामति, तद्यथा—

४२ श्रमण-निर्ग्रन्थ छह कारणो से आहार का परित्याग करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता[10]—

सगहणी-गाहा

१. आतके उवसग्गे,
तितिक्खणे बभचेरगुत्तीए।
पाणिदया-तवहेउ,
सरीरवुच्छेयणट्ठाए॥

सग्रहणी-गाथा

१ आतङ्के उपसर्गे, तितिक्षणे ब्रह्मचर्यगुप्त्याम्।
प्राणिदया-तपोहेतो, शरीरव्युच्छेदनार्थाय॥

सग्रहणी-गाथा

१ आतक—ज्वर आदि आकस्मिक बीमारी हो जाने पर।
२ राजा आदि का उपसर्ग हो जाने पर।
३ ब्रह्मचर्य की तितिक्षा [सुरक्षा] के लिए
४ प्राणिदया के लिए।
५ तपस्या के लिए।
६ शरीर का व्युत्सर्ग करने के लिए।

उम्माय-पदं

४३ छहिं ठाणेहिं आया उम्माय पाउणेज्जा, त जहा—
अरहताणं अवण्ण वदमाणे।
अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वदमाणे।
आयरिय-उवज्भायाण अवण्ण वदमाणे।
चाउव्वण्णस्स सघस्स अवण्ण वदमाणे।
जक्खावेसेण चेव।
मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएण।

उन्माद-पदम्

षड्भि स्थानै आत्मा उन्माद प्राप्नुयात्, तद्यथा—
अर्हता अवर्णं वदन्।
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन्।
आचार्योपाध्याययो अवर्णं वदन्।
चतुर्वर्णस्य सघस्य अवर्णं वदन्।
यक्षावेशेन चैव।
मोहनीयस्य चैव कर्मण उदयेन।

उन्माद-पद

४३ छह स्थानो से आत्मा उन्माद को प्राप्त होता है—
१ अर्हन्तो का अवर्णवाद करता हुआ।
२ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
३ आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
४ चतुर्वर्ण सघ का अवर्णवाद करता हुआ
५ यक्षावेश से।
६ मोहनीय कर्म के उदय से।

पमाद-पदं

४४. छव्विहे पमाए पण्णत्ते, तं जहा—
मज्जपमाए, णिद्दपमाए,
विसयपमाए, कसायपमाए,
जूतपमाए, पडिलेहणापमाए।

प्रमाद-पदम्

षड्विध प्रमाद प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मद्यप्रमाद निद्राप्रमाद विषयप्रमाद कषायप्रमाद द्यूतप्रमाद प्रतिलेखना-प्रमाद।

प्रमाद-पद

४४ प्रमाद के छह प्रकार हैं—
१ मद्यप्रमाद, २ निद्राप्रमाद
३ विषयप्रमाद, ४ कषायप्रमाद,
५ द्यूतप्रमाद, ६ प्रतिलेखनाप्रमाद।

पडिलेहणा-पदं

४५. छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ आरभडा समद्दा,
वज्जेयव्वा य मोसली ततिया।
पप्फोडणा चउत्थी,
विक्खित्ता वेइया छट्ठी॥

प्रतिलेखना-पदम्

षड्विधा प्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ आरभटा सम्मर्दा,
वर्जयितव्या च मौशली तृतीया।
प्रस्फोटना चतुर्थी,
विक्षिप्ता वेदिका षष्ठी॥

प्रतिलेखना-पद

४५ प्रमादयुक्त प्रतिलेखना के छह प्रकार हैं[८]—

संग्रहणी-गाथा

१ आरभटा, २ सम्मर्दा, ३ मोशली,
४ प्रस्फोटा, ५ विक्षिप्ता, ६ वेदिका।

४६. छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ अणच्चावित अवलित,
अणाणुबंधि अमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा णव खोडा,
पाणीपाणविसोहणी॥

षड्विधा अप्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ अनर्तित अवलित,
अननुबन्धि अमोशली चैव।
षट्पूर्वा नव 'खोडा',
पाणिप्राणविशोधिनी॥

४६ अप्रमादयुक्त प्रतिलेखना के छह प्रकार हैं[९]—

संग्रहणी-गाथा

१ अनर्तित, २ अवलित, ३ अनानुबधि,
४ अमोशली, ५ षट्पूर्व-नवखोटक,
६ हाथ मे प्राणियो का विशोधन करना।

लेसा-पद

४७ छ लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, •णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा° सुक्कलेसा।

लेश्या-पदम्

षड् लेश्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

लेश्या-पद

४७ लेश्याए छह हैं—
१ कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६ शुक्ललेश्या।

४८ पंचिंदयतिरिक्खजोणियाण छ लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हलेसा, •णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा,° सुक्कलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना षड् लेश्या· प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

४८ पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्-योनिको के छह लेश्याए होती हैं—
१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६ शुक्ललेश्या।

४९ एव—मणुस्स-देवाण वि।

एव मनुष्य-देवानामपि।

४९ इसी प्रकार मनुष्यों तथा देवो के छह-छह लेश्याए होती हैं।

अग्गमहिसी-पद

५० सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य षड् अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ताः।

अग्रमहिषी-पद

५० देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के छह अग्रमहिषिया है।

५१ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य षड् अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

५१ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम के छह अग्रमहिषिया हैं।

देवठिति-पद

५२ ईसाणस्स ण देविंदस्स [देवरण्णो ?] मज्झिमपरिसाए देवाण छ पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवस्थिति-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य (देवराजस्य ?) मध्यमपरिषद देवाना षट् पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

देवस्थिति-पद

५२ देवेन्द्र देवराज ईशान की मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति छह पल्योपम की है।

महत्तरिया-पद

५३ छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
रूवा, रूवसा, सुरूवा, रूववती, रूवकता, रूवप्पभा।

महत्तरिका पदम्

षड् दिक्कुमारीमहत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रूपा, रूपाशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकान्ता, रूपप्रभा।

महत्तरिका-पद

५३ दिशाकुमारियो के छह महत्तरिकाए हैं—
१ रूपा, २ रूपाशा, ३ सुरूपा, ४ रूपवती, ५ रूपकाता, ६ रूपप्रभा।

५४ छ विज्जुकुमारिमहत्तरिताओ पण्णत्ताओ, त जहा—
अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी, इदा, घणविज्जुया।

षड् विद्युत्कुमारीमहत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युत्।

५४ विद्युत्कुमारियो के छह महत्तरिकाए हैं—
१ अला, २ शक्रा, ३ शतेरा, ४ सौदामिनी, ५ इन्द्रा, ६ घनविद्युत्।

अग्गमहिसी-पद

५५. धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
अला, सक्का सतेरा,
सोतामणी, इदा, घणविज्जुया।

५६ भूताणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
रूवा, रूवसा, सुरूवा,
रूववती, रूवकता, रूवप्पभा।

५७. जहा धरणस्स तहा सव्वेसि दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स।

५८ जहा भूताणदस्स तहा सव्वेसि उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स।

अग्रमहिषी-पदम्

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी,
इन्द्रा, घनविद्युत्।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रूपा, रूपाशा, सुरूपा, रूपवती,
रूपकाता, रूपप्रभा।

यथा धरणस्य तथा सर्वेपा दाक्षिणात्याना यावत् घोषस्य।

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषा औदीच्याना यावत् महाघोषस्य।

अग्रमहिषी-पद

५५ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के छह अग्रमहिषिया हैं—
१ अला, २ शक्रा, ३ शतेरा,
४ सौदामिनी, ५ इन्द्रा, ६ घनविद्युत्।

५६ नागाकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के छह अग्रमहिषिया हैं—
१ रूपा, २ रूपाशा, ३ सुरूपा,
४ रूपवती, ५ रूपकाता, ६ रूपप्रभा।

५७ दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्र वेणुदेव, हरिकात, अग्निशिख, पूर्ण, जलकात, अमितगति, वेलम्ब तथा घोप के भी [धरण की भाति] छह-छह अग्रमहिषिया हैं।

५८ उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोप के भी [भूतानन्द की भाति] छह-छह अग्रमहिषिया हैं।

सामाणिय-पद

५९ धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छस्सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

६० एव भूताणदस्सवि जाव महाघोसस्स।

सामानिक-पदम्

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पट् सामानिकसाहस्त्र्य प्रज्ञप्ता।

एव भूतानन्दस्यापि यावत् महाघोषस्य।

सामानिक-पद

५९ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के छह हजार सामानिक हैं।

६० इसी प्रकार नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलपुत्र, अमितावहन, प्रभञ्जन और महाघोप के छह-छह हजार मामानिक हैं।

मइ-पद

६१. छव्विहा ओगहमती पण्णत्ता, त जहा—

मति-पदम्

षड्विधा अवग्रहमति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

मति-पद

६१ अवग्रहमति [मामान्य अर्थ के ग्रहण] के छह प्रकार हैं[१] —

खिप्पमोगिण्हति, बहुमोगिण्हति, बहुविधमोगिण्हति, धुवमोगिण्हति, अणिस्सियमोगिण्हति, असदिद्धमोगिण्हति।

क्षिप्रमवगृह्णाति, बहुमवगृह्णाति, बहुविधमवगृह्णाति, ध्रुवमवगृह्णाति, अनिश्रितमवगृह्णाति, असदिग्धमवगृह्णाति।

१ शीघ्र ग्रहण करना,
२ बहुत ग्रहण करना,
३ बहुत प्रकार की वस्तुओ को ग्रहण करना
४ ध्रुव [निश्चल] ग्रहण करना,
५ अनिश्रित—अनुमान आदि का सहारा लिए बिना ग्रहण करना,
६ असदिग्ध ग्रहण करना।

६२ छव्विहा ईहामती पण्णत्ता, त जहा—
खिप्पमीहति, बहुमीहति, •बहुविधमीहति, धुवमीहति, अणिस्सियमीहति,° असदिद्धमीहति।

६२ षड्विधा ईहामति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षिप्रमीहते, बहुमीहते, बहुविधमीहते, ध्रुवमीहते, अनिश्रितमीहते, असदिग्धमीहते।

६२ ईहामति [अवग्रह के द्वारा ज्ञात विषय की जिज्ञासा] के छह प्रकार हैं[११]—
१ शीघ्र ईहा करना, २ बहुत ईहा करना,
३ बहुत प्रकार की वस्तुओ की ईहा करना,
४ ध्रुव ईहा करना, ५ अनिश्रित ईहा करना, ६ असदिग्ध ईहा करना।

६३ छव्विधा अवायमती पण्णत्ता, त जहा—
खिप्पमवेति •बहुमवेति, बहुविधमवेति धुवमवेति अणिस्सियमवेति• असदिद्धमवेति।

६३ षड्विधा अवायमति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षिप्रमवैति बहुमवैति, बहुविधमवैति ध्रुवमवैति, अनिश्रितमवैति असदिग्धमवैति।

६३ अवायमति [ईहा के द्वारा ज्ञात विषय का निर्णय] के छह प्रकार है[१२]—
१ शीघ्र अवाय करना,
२ बहुत अवाय करना,
३ बहुत प्रकारकी वस्तुओ का अवाय करना,
४ ध्रुव अवाय करना,
५ अनिश्रित अवाय करना,
६ असदिग्ध अवाय करना।

६४ छव्विधा धारण [मती ?] पण्णत्ता, त जहा—
बहु धरेति, बहुविह धरेति, पोराण धरेति, दुद्धर धरेति, अणिस्सित धरेति, असदिद्ध धरेति।

६४ षड्विधा धारणा (मति ?) प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
बहु धरति, बहुविध धरति, पुराण धरति, दुर्धर धरति, अनिश्रित धरति, असदिग्ध धरति।

६४ धारणामति [निर्णीत विषय को स्थिर करने] के छह प्रकार हैं[१३]—
१ बहुत धारणा करना,
२ बहुत प्रकार की वस्तुओ की धारणा करना, ३ पुराने की धारणा करना,
४ दुर्द्धर की धारणा करना,
५ अनिश्रित धारणा करना,
६ असदिग्ध धारणा करना।

तव-पद

६५ छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते, त जहा—

तपः-पदम्

६५ षड्विध बाह्यक तप प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

तपः-पद

६५ बाह्य-तप के छह प्रकार हैं[१४]—

अणसण, ओमोदरिया,
भिक्खायरिया, रसपरिच्चाए,
कायकिलेसो, पडिसलीणता।

अनशन, अवमोदरिका, भिक्षाचर्या,
रसपरित्याग, कायक्लेश,
प्रतिसंलीनता।

१ अनशन, २ अवमोदरिका,
३ भिक्षाचर्या, ४ रस-परित्याग,
५ काय-क्लेश, ६ प्रतिसंलीनता।

६६ छव्विहे अब्भंतरिए तवे पण्णत्ते, त जहा—
पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं,
सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो।

षड्विध आभ्यन्तरिक तप प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य,
स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग।

६६ आभ्यन्तरिक-तप के छह प्रकार हैं[३५]—
१ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य,
४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, ६ व्युत्सर्ग।

विवाद-पदं

६७ छव्विहे विवादे पण्णत्ते, त जहा—
ओसक्कइत्ता, उस्सक्कइत्ता,
अणुलोमइत्ता, पडिलोमइत्ता,
भइत्ता, भेलइत्ता।

विवाद-पदम्

षड्विध विवाद प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अवष्वष्क्य, उत्ष्वष्क्य, अनुलोम्य,
प्रतिलोम्य, भक्त्वा, 'मिश्रीकृत्य'।

विवाद-पद

६७ विवाद के छह अग हैं [वादी अपनी विजय के लिए इनका सहारा लेता है]—
१ वादी के तर्क का उत्तर ध्यान मे न आने पर कालक्षेप करने के लिए प्रस्तुत विषय मे हट जाना।
२ पूर्ण तैयारी होते ही वादी को पराजित करने के लिए आगे आना।
३ विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बना लेना अथवा प्रतिपक्षी के पक्ष का एक बार समर्थन कर उसे अपने अनुकूल बना लेना।
४ पूर्ण तैयारी होने पर विवादाध्यक्ष तथा प्रतिपक्षी की उपेक्षा कर देना।
५ सभापति की सेवा कर उसे अपने पक्ष मे कर लेना।
६ निर्णायको मे अपने समर्थको का बहुमत करना।

खुड्डपाण-पदं

६८. छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, त जहा—
बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,
समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया,
तेउकाइया, वाउकाइया।

क्षुद्रप्राण-पदम्

षड्विधा क्षुद्रा प्राणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया,
सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका,
तेजस्कायिका, वायुकायिका।

क्षुद्रप्राण-पद

६८ क्षुद्र[३६] प्राणी छह प्रकार के होते हैं—
१ द्वीन्द्रिय, २ त्रीन्द्रिय, ३ चतुरिन्द्रिय,
४ सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यकयौनिक,
५ तेजस्कायिक, ६ वायुकायिक।

गोयरचरिया-पद

६९ छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, त जहा—
पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतगवीहिया, सबुक्कावट्टा, गतुपच्चागता।

गोचरचर्या-पदम्

षड्विधा गोचरचर्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पेटा, अर्धपेटा, गोमूत्रिका, पतङ्गवीथिका, शम्बूकावर्ता, गत्वाप्रत्यागता।

गोचरचर्या-पद

६९ गोचरचर्या के छह प्रकार हैं[37]—
१ पेटा, २ अर्धपेटा, ३ गोमूत्रिका, ४ पतगवीथिका, ५ शम्बूकावर्त्ता, ६ गत्वाप्रत्यागता।

महाणिरय-पद

७० जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कतमहाणिरया पण्णत्ता, त जहा—
लोले, लोलुए, उद्दड्ढे, णिद्दड्ढे, जरए, पज्जरए।

७१. चउत्थीए ण पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कतमहाणिरया पण्णत्ता, त जहा—
आरे, वारे, मारे, रोरे, रोरुए, खाडखडे।

महानिरय-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या षट् अपक्रान्तमहानिरया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
लोल, लोलुप, उद्दग्ध, निर्दग्ध, जरक, प्रजरक।

चतुर्थ्यां पङ्कप्रभाया पृथिव्या षड् अपक्रान्तमहानिरया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आर, वार, मार, रोर, रोरुक, खाडखड।

महानिरय-पद

७० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रात [अतिनिकृष्ट] नरकावास हैं[38]—
१ लोल, २ लोलुप, ३ उद्दग्ध, ४ निर्दग्ध, ५ जरक, ६ प्रजरक।

७१ चौथी पकप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रात महानरकावास हैं[39]—
१ आर, २ वार, ३ मार, ४ रौर, ५ रौरुक, ६ खाडखड।

विमाण-पत्थड-पद

७२. बभलोगे ण कप्पे छ विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, त जहा—
अरए, विरए, णीरए, णिम्मले, वितिमिरे, विसुद्धे।

विमान-प्रस्तट-पदम्

ब्रह्मलोके कल्पे षड् विमान-प्रस्तटा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अरजा, विरजा, नीरजा, निर्मल, वितिमिर, विशुद्ध।

विमान-प्रस्तट-पद

७२ ब्रह्मलोक देवलोक मे छह विमान-प्रस्तट हैं[40]—
१ अरजस्, २ विरजस्, ३ नीरजस्, ४ निर्मल, ५ वितिमिर, ६ विशुद्ध।

णक्खत्त-पद

७३ चदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता पुव्वभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, त जहा—
पुव्वाभद्दवया, कत्तिया, महा, पुव्वफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा।

नक्षत्र-पदम्

चन्द्रस्य ज्यौतिपेन्द्रस्य ज्यौतिपराजस्य षड् नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशद्मुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्वभद्रपदा, कृत्तिका, मघा, पूर्वफाल्गुनी, मूला, पूर्वाषाढा।

नक्षत्र-पद

७३ ज्यौतिपेन्द्र ज्यौतिपराज चन्द्र के अग्र-योगी, समक्षेत्री और तीस मुहूर्त्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह हैं[41]—
१ पूर्वभाद्रपद, २ कृतिका, ३ मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी, ५ मूल, ६ पूर्वाषाढा।

७४ चदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तभागा अवड्ढक्खेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता, त जहा—
सयभिसया, भरणी, भद्दा,
अस्सेसा, साती, जेट्ठा।

चन्द्रस्य ज्योतिपेन्द्रस्य ज्यौतिपराजस्य पड् नक्षत्राणि नक्तभागानि अपार्ध-क्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शतभिषक्, भरणी, भद्रा,
अश्लेपा, स्वाति, ज्येष्ठा।

७४ ज्यौतिपेन्द्र ज्यौतिपराज चन्द्र के सम-योगी, अपार्ध क्षेत्री और पन्द्रह मुहूर्त्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह हैं"—
१ शतभिषक्, २ भरणी, ३ भद्रा,
४ अश्लेपा, ५ स्वाति, ६ ज्येष्ठा।

७५. चदस्स ण जोइसिदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता उभयभागा दिवड्ढ-खेत्ता पणयालीसमुहुत्ता पण्णत्ता, त जहा—
रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी,
विसाहा, उत्तरासाढा,
उत्तराभद्दवया।

चन्द्रस्य ज्यौतिपेन्द्रस्य ज्यौतिपराजस्य पड् नक्षत्राणि उभयभागानि द्वयर्ध-क्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशद्मुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरफाल्गुनी,
विशाखा, उत्तरापाढा, उत्तरभद्रपदा।

७५ ज्यौतिपेन्द्र ज्यौतिपराज चन्द्र के उभय-योगी, द्व्यर्ध क्षेत्री और पैंतालीस मुहूर्त्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह हैं"—
१ रोहिणी, २ पुनर्वसु,
३ उत्तरफाल्गुनी, ४ विशाखा,
५ उत्तरापाढा, ६ उत्तरभाद्रपद।

इतिहास-पदं

इतिहास-पदम्

इतिहास-पद

७६. अभिचदे ण कुलकरे छ धणुसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

अभिचन्द्र कुलकर पड् धनु शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

७६ अभिचन्द्र कुलकर की ऊचाई छह सौ धनुष्य की थी।

७७ भरहे णं राया चाउरतचक्कवट्टी छ पुव्वसतसहस्साइ महाराया हुत्था।

भरत राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पड् पूर्वशतसहस्राणि महाराज अभवत्।

७७ चतुरन्तचक्रवर्ती राजा भरत छह लाख पूर्वों तक महाराज रहे।

७८ पासस्स ण अरहओ पुरिसा-दाणियस्स छ सता वादीण सदेव-मणुयासुराए परिसाए अपरा-जियाण सपया होत्था।

पार्श्वस्य अर्हत पुरुषादानीयस्य पड् शतानि वादिना सदेवमनुजासुराया परिषदि अपराजिताना सपत् अभवत्।

७८ पुरुषादानीय [पुरुषप्रिय] अर्हत् पार्श्व के देवो, मनुष्यो तथा असुरो की परिषद् मे अपराजेय छह सौ वादी थे।

७९. वासुपुज्जे ण अरहा छहिं पुरिसस-तेहिं सद्धि मुडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए।

वासुपूज्य अर्हन् पडभि पुरुपशतै सार्धं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित।

७९ वासुपूज्य अर्हत् छह सौ पुरुषो के साथ मुड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित हुए।

८० चदप्पभे ण अरहा छम्मासे छउ-मत्थे हुत्था।

चन्द्रप्रभ अर्हन् पण्मासान् छद्मस्थ अभवत्।

८० चन्द्रप्रभ अर्हत् छह महीनो तक छद्मस्थ रहे।"

संजम-असजम-पदं

सयम-असयम-पदम्

सयम-असयम-पद

८१ तेइदिया ण जीवा असमारभमा-णस्स छव्विहे सजमे कज्जति, त जहा—

त्रीन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य पड्विध सयम क्रियते, तद्यथा—

८१ त्रीन्द्रिय जीवो का आरम्भ न करने वाले के छ प्रकार का सयम होता है—

घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।
घाणामएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति।
जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।
•जिब्भामएण दुक्खेण असंजोएत्ता भवति।
फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।
फासामएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति।°

घ्राणमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दु खेन असयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दु खेन असयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दु खेन असयोजयिता भवति।

१ घ्राणमय सुख का वियोग नहीं करने से,
२ घ्राणमय दु ख का सयोग नहीं करने से,
३ रसमय सुख का वियोग नही करने से,
४ रसमय दु ख का सयोग नहीं करने से,
५ स्पर्शमय सुख का वियोग नही करने से,
६ स्पर्शमय दु ख का मयोग नहीं करने से।

८२ तेइदिया ण जीवा समारभमाणस्स छव्विहे असजमे कज्जति, त जहा—
घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
घाणामाएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।
•जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
जिब्भामएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।°
फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
फासामएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।

त्रीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य षड्विध असयम क्रियते, तद्यथा—
घ्राणमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दु खेन सयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दु खेन सयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दु खेन सयोजयिता भवति।

८२ त्रीन्द्रिय जीवो का आरम्भ करने वाले के छह प्रकार का असयम होता है—
१ घ्राणमय सुख का वियोग करने से।
२ घ्राणमय दु ख का सयोग करने से।
३ रसमय सुख का वियोग करने से।
४ रसमय दु ख का सयोग करने से।
५ स्पर्शमय सुख का वियोग करने से।
६ स्पर्शमय दु ख का सयोग करने से।

खेत्त-पव्वय-पदं

८३ जबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

क्षेत्र-पर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् अकर्मभूम्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु।

क्षेत्र-पर्वत-पद

८३ जम्बूद्वीप द्वीप मे छह अकर्मभूमिया हैं—
१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६ उत्तरकुरु।

८४ जंबुद्दीवे दीवे छव्वासा पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते,
हेरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड्वर्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवत,
हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्षम्।

८४ जम्बूद्वीप मे छह वर्ष [क्षेत्र] हैं—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत,
४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष।

८५. जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे,
णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषध,
नीलवान्, रुक्मी, शिखरी।

८५ जम्बूद्वीप द्वीप मे छह वर्षधर पर्वत हैं—
१ क्षुद्रहिमवान्, २ महान्हिमवान्,
३ निषध, ४ नीलवान्, ५ रुक्मी,
६ शिखरी।

८६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंतकूडे, वेसमणकूडे,
महाहिमवंतकूडे, वेरुलियकूडे,
णिसढकूडे, रुयगकूडे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे षट् कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवत्कूट, वैश्रमणकूट,
महाहिमवत्कूट, वैडूर्यकूट,
निषधकूट, रुचककूटम्।

८६ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग मे छह कूट [चोटिया] है—
१ क्षुद्रहिमवत्कूट, २ वैश्रमणकूट,
३ महाहिमवत्कूट, ४ वैडूर्यकूट,
५ निषधकूट, ६ रुचककूट।

८७ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
णीलवंतकूडे, उवदंसणकूडे,
रुप्पिकूडे, मणिकंचणकूडे,
सिहरिकूडे, तिगिंछिकूडे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे षट् कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नीलवत्कूट, उपदर्शनकूट,
रुक्मिकूट, मणिकाञ्चनकूट,
शिखरिकूट, तिगिञ्छिकूटम्।

८७ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग मे छह कूट है—
१ नीलवत्कूट, २ उपदर्शनकूट,
३ रुक्मिकूट, ४ मणिकाञ्चनकूट,
५ शिखरीकूट, ६ तिगिञ्छिकूट।

महादह-पद

महाद्रह-पदम्

महाद्रह-पद

८८ जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—
पउमद्दहे, महापउमद्दहे,
तिगिंछिद्दहे, केसरिद्दहे,
महापोंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे।
तत्थ णं छ देवयाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितियाओ परिवसंति, तं जहा—
सिरी, हिरी, धिती, कित्ती, बुद्धी, लच्छी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् महाद्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पद्मद्रह, महापद्मद्रह, तिगिञ्छिद्रह
केशरीद्रह, महापुण्डरीकद्रह,
पुण्डरीकद्रह।
तत्र षड् देव्यः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी।

८८ जम्बूद्वीप द्वीप मे छह महाद्रह हैं—
१ पद्मद्रह, २ महापद्मद्रह,
३ तिगिञ्छिद्रह, ४ केशरिद्रह,
५ महापुण्डरीकद्रह, ६ पुण्डरीकद्रह।
उनमे छह महर्द्धिक, महाद्युति, महाशक्ति, महाशय, महाबल, महासुख तथा पल्योपम की स्थिति वाली छह देविया परिवास करती हैं—
१ श्री, २ ह्री, ३ धृति, ४ कीर्ति,
५ बुद्धि, ६ लक्ष्मी।

णदी-पद

८९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गंगा, सिंधू, रोहिया, रोहितंसा, हरी, हरिकंता।

९० जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णरकंता, णारिकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवती।

९१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गाहावती, दहवती, पंकवती, तत्तयला, मत्तयला, उम्मत्तयला।

९२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी, उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

९३ धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
हेमवए, °हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।°

९४ एवं जहा जंबुद्दीवे दीवे जाव अंतरणदीओ

नदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गङ्गा, सिन्धुः, रोहिता, रोहिताशा, हरित्, हरिकान्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नरकान्ता, नारीकान्ता, स्वर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तवती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्याः उभयकूले षड् अन्तर्नद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ग्राहवती, द्रहवती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः उभयकूले षड् अन्तर्नद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षीरोदा, सिंहस्रोता, अन्तर्वाहिनी, ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीरमालिनी।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे षड् अकर्मभूम्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्षं, रम्यकवर्षं, देवकुरु, उत्तरकुरु।

एवं यथा जम्बूद्वीपे द्वीपे यावत् अन्तर्नद्यः

नदी-पद

८९ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में छह महानदियां हैं—
१ गंगा, २ सिन्धु, ३ रोहिता, ४ रोहिताशा, ५ हरि, ६ हरिकांता।

९० जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तरभाग में छह महानदियां हैं—
१ नरकांता, २ नारीकांता ३ सुवर्णकूला, ४ रूप्यकूला, ५ रक्ता, ६ रक्तवती।

९१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्वभाग में सीता महानदी के दोनों किनारों में मिलने वाली छह अन्तर्नदियां हैं—
१ ग्राहवती, २ द्रहवती, ३ पंकवती, ४ तप्तजला, ५ मत्तजला, ६ उन्मत्तजला।

९२ जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत से पश्चिमभाग में सीतोदा महानदी के दोनों किनारों में मिलने वाली छह अन्तर्नदियां हैं—
१ क्षीरोदा, २ सिंहस्रोता, ३ अन्तर्वाहिनी, ४ ऊर्मिमालिनी, ५ फेनमालिनी, ६ गम्भीरमालिनी।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

९३ धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियां हैं—
१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६ उत्तरकुरु।

९४ इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप में जैसे वर्ष, वर्षधर आदि से अन्तर्-नदी तक का वर्णन किया गया है, वैसे ही यहां जानना चाहिए।

जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे भाणितव्वं ।

यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे भणितव्यम् ।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध, पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जानना चाहिए।

उउ-पदं

९५ छ उदू पण्णत्ता, तं जहा—
पाउसे, वरिसारत्ते, सरए,
हेमंते, वसंते, गिम्हे ।

ऋतु-पदम्

षड् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रावृड्, वर्षारात्रः, शरद्,
हेमन्तः वसन्तः, ग्रीष्मः ।

ऋतु-पद

९५ ऋतुएं छह हैं"—
१ प्रावृट्—आषाढ और श्रावण,
२ वर्षा—भाद्रपद और आश्विन,
३ शरद्—कार्तिक और मृगशिर,
४ हेमन्त—पौष और माघ,
५ वसन्त—फाल्गुन और चैत्र,
६ ग्रीष्म—वैशाख और ज्येष्ठ।

ओमरत्त-पदं

९६ छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
ततिए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पण्णरसमे पव्वे, एगूणवीसइमे पव्वे, तेवीसइमे पव्वे ।

अवमरात्र-पदम्

षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तृतीयं पर्व, सप्तमं पर्व, एकादशं पर्व, पञ्चदशं पर्व, एकोनविंशतितमं पर्व, त्रिविंशतितमं पर्व ।

अवमरात्र-पद

९६ छह अवमरात्र [तिथिक्षय] होते हैं—
१ तीसरे पर्व—आषाढ-कृष्णपक्ष में,
२ सातवें पर्व—भाद्रपद-कृष्णपक्ष में,
३ ग्यारहवें पर्व—कार्तिक-कृष्णपक्ष में,
४ पन्द्रहवें पर्व—पौष-कृष्णपक्ष में,
५ उन्नीसवें पर्व—फाल्गुन-कृष्णपक्ष में,
६ तेईसवें पर्व—वैशाख-कृष्णपक्ष में।

अतिरत्त-पदं

९७ छ अतिरित्ता पण्णत्ता, तं जहा—
चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, दुवालसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसइमे पव्वे, चउवीसइमे पव्वे ।

अतिरात्र-पदम्

षड् अतिरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चतुर्थं पर्व, अष्टमं पर्व, द्वादशं पर्व, षोडशं पर्व, विंशतितमं पर्व, चतुर्विंशतितमं पर्व ।

अतिरात्र-पद

९७ छह अतिरात्र [तिथिवृद्धि] होते हैं—
१ चौथे पर्व—आषाढ-शुक्लपक्ष में,
२ आठवें पर्व—भाद्रपद-शुक्लपक्ष में,
३ बारहवें पर्व—कार्तिक-शुक्लपक्ष में,
४ सोलहवें पर्व—पौष-शुक्लपक्ष में,
५ बीसवें पर्व—फाल्गुन-शुक्लपक्ष में,
६ चौबीसवें पर्व—वैसाख-शुक्लपक्ष में,

अत्थोग्गह-पदं

९८ आभिणिबोहियणाणस्स णं छव्विहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—

अर्थावग्रह-पदम्

आभिनिबोधिकज्ञानस्य षड्विधः अर्थावग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

अर्थावग्रह-पद

९८ आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थावग्रह छह प्रकार का होता है—

सोइंदियत्थोग्गहे,
•चक्खिदियत्थोग्गहे,
घाणिंदियत्थोग्गहे,
जिब्भिदियत्थोग्गहे,
फासिंदियत्थोग्गहे,°
णोइंदियत्थोग्गहे।

श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह,
चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रह,
घ्राणेन्द्रियार्थावग्रह,
जिह्वेन्द्रियार्थावग्रह,
स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रह,
नो इन्द्रियार्थावग्रह।

१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह,
२ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह,
३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह,
४ जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह,
५ स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह,
६ नोइन्द्रिय अर्थावग्रह।

ओहिणाण-पदं

९९ छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते, त जहा—
आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हायमाणए, पडिवाती, अपडिवाती।

अवधिज्ञान-पदम्

षड्विध अवधिज्ञान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्धमानक, हीयमानक, प्रतिपाति, अप्रतिपाति।

अवधिज्ञान-पद

९९ अवधिज्ञान[11] के छह प्रकार हैं—
१ आनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाति, ६ अप्रतिपाति।

अवयण-पद

१०० णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा इमाइ छ अवयणाइ वदित्तए, त जहा—
अलियवयणे, हीलियवयणे, खिंसितवयणे, फरुसवयणे, गारत्थियवयणे, विउसवित वा पुणो उदीरित्तए।

अवचन-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा इमानि षड् अवचनानि वदितुम्, तद्यथा—
अलीकवचन, हीलितवचन, खिंसितवचन, परुषवचन, अगारस्थितवचन, व्यवशमित वा पुन उदीरयितुम्।

अवचन-पद

१०० निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को छह अवचन [गर्हित वचन] नही बोलने चाहिए—
१ अलीकवचन—असत्यवचन,
२ हीलितवचन— अवहेलनायुक्तवचन,
३ खिंसितवचन—मर्मवेधीवचन,
४ परुषवचन—कटुकवचन,
५ अगारस्थितवचन—मेरा पुत्र, मेरी माता—ऐसा सम्बन्ध सूचक वचन।
६ उपशात कलह को उभाडने वाला वचन।

कप्पस्स पत्थार-पदं

१०१ छ कप्पस पत्थारा पण्णत्ता, त जहा—
पाणातिवायस्स वाय वयमाणे।
मुसावायस्स वाय वयमाणे,
अदिण्णादाणस्स वाय वयमाणे,
अविरतिवाय वयमाणे,
अपुरिसवाय वयमाणे,
दासवाय वयमाणे—

कल्पस्यप्रस्तार-पदम्

षड् कल्पस्य प्रस्तारा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्राणातिपातस्य वाद वदन्,
मृषावादस्य वाद वदन्,
अदत्तादानस्य वाद वदन्,
अविरतिवाद वदन्,
अपुरुपवाद वदन्,
दासवाद वदन्—

कल्प-प्रस्तार-पद

१०१ कल्प [साध्वाचार] के छह प्रस्तार [प्रायश्चित्त-रचना के विकल्प] हैं[12]—
१ प्राणातिपातसम्बन्धी आरोपात्मक वचन वोलने वाला।
२ मृषावादसम्बन्धी आरोपात्मक वचन वोलने वाला।
३ अदत्तादानसम्बन्धी आरोपात्मक वचन वोलने वाला।
४ अब्रह्मचर्यसम्बन्धी आरोपात्मक वचन वोलने वाला।
५ नपुसक होने का आरोप लगाने वाला।
६ दास होने का आरोप लगाने वाला—

इच्चेते छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्ममपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते।

इत्येतान् षट् कल्पस्य प्रस्तारान् प्रस्तार्य सम्यक् अप्रतिपूरयन् तत्स्थानप्राप्त ।

इस प्रकार कल्प के प्रस्तारो को स्थापित कर यदि कोई साधु उन्हे प्रमाणित न कर सके तो वह तत्स्थान प्राप्त होता है—आरोपित दोप के प्रायश्चित्त क। भागी होता है।

पलिमथु-पद

१०२ छ कप्पस्स पलिमथु पण्णत्ता, त जहा—
कोकुइते संजमस्स पलिमथू, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमथू, चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमथू, तितिणिए एसणागोयरस्स पलिमथू, इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमथू, भिज्जाणिदाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमथू, सव्वत्थ भगवता अणिदाणता पसत्था।

पलिमन्थु-पदम्

षड् कल्पस्य परिमन्थव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कौकुचित सयमस्य परिमन्थु, मौखरिक सत्यवचनस्य परिमन्थु, चक्षुर्लोलुप ऐर्यापथिक्या परिमन्थु, 'तितिणिक' एषणागोचरस्य परिमन्थु, इच्छालोभिक मुक्तिमार्गस्य परिमन्थु, भिध्यानिदानकरण मोक्षमार्गस्य परिमन्थु,
सर्वत्र भगवता अनिदानता प्रशस्ता।

पलिमन्थु-पद

१०२ कल्प [साध्वाचार] के छह परिमथु [प्रतिपक्षी] हैं'—
१ कौकुचित—चपलता करने वाला सयम का परिमथु है।
२ मौखरिक—वाचाल सत्यवचन का परिमथु है।
३ चक्षुलोलुप—दृष्टि-आसक्त ईर्यापथिक का परिमथु है।
४ तितिणक—चिडचिडे स्वभाव वाला भिक्षा की एषणा का परिमथु है।
५ इच्छालोभिक—अतिलोभी मुक्तिमार्ग का परिमथु है।
६ भिध्यानिदानकरण—आसक्तभाव से किया जाने वाला पौद्गलिक सुखो का सकल्प मोक्षमार्ग का परिमथु है।
भगवान् ने अनिदानता को सर्वत्र प्रशस्त कहा है।

कप्पठिति-पद

१०३. छव्विहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—
सामाइयकप्पट्ठिती,
छेओवट्ठावणियकप्पट्ठिती,
णिव्विसमाणकप्पट्ठिती,
णिव्वट्ठकप्पट्ठिती,
जिणकप्पट्ठिती,
थेरकप्पट्ठिती।

कल्पस्थिति-पदम्

षड्विधा कल्पस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सामायिककल्पस्थिति,
छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति,
निर्विशमानकल्पस्थिति,
निर्विष्टकल्पस्थिति,
जिनकल्पस्थिति,
स्थविरकल्पस्थिति।

कल्पस्थिति-पद

१०३ कल्पस्थिति छह प्रकार की है'—
१ सामायिककल्पस्थिति,
२ छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति,
३ निर्विशमानकल्पस्थिति,
४ निर्विष्टकल्पस्थिति,
५ जिनकल्पस्थिति,
६ स्थविरकल्पस्थिति।

महावीरस्स छट्ठभत्त-पदं

१०४ समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे •भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए।

१०५ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे •णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाण-दंसणे° समुप्पण्णे।

१०६ समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे •बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे° सव्व-दुक्खप्पहीणे।

महावीरस्य षष्ठभक्त-पदम्

श्रमण भगवान् महावीर षष्ठेन भक्तेन अपानकेन मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित।

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य षष्ठेन भक्तेन अपानकेन अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न प्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्।

श्रमण भगवान् महावीर षष्ठेन भक्तेन अपानकेन सिद्ध बुद्ध मुक्त अन्तकृत परिनिर्वृत सर्वदु खप्रक्षीण।

महावीर का षष्ठभक्त-पद

१०४ श्रमण भगवान् महावीर अपानक छट्ठ-भक्त तपस्या मे मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित हुए।

१०५ श्रमण भगवान् महावीर को अपानक छट्ठ भक्त की तपस्या मे अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ।

१०६ श्रमण भगवान् महावीर अपानक छट्ठ-भक्त मे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और सर्वदु खो से रहित हुए।

विमाण-पदं

१०७ सणंकुमार—माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

विमान-पदम्

सनत्कुमार-माहेन्द्रयो कल्पयो विमानानि षड् योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

विमान-पद

१०७ सनत्कुमार तथा माहेन्द्र देवलोक के विमान छह सौ योजन ऊचे होते हैं।

देव-पदं

१०८ सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

देव-पदम्

सनत्कुमार-माहेन्द्रयो कल्पयो देवाना भवधारणीयकानि शरीरकाणि उत्कर्षेण षड् रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

देव-पद

१०८ सनत्कुमार तथा माहेन्द्र देवलोक मे देवो का भवधारणीय शरीर ऊचाई मे छह रत्नि का होता है।

भोयण-परिणाम-पदं

१०९ छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—

मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, मयणिज्जे, दप्पणिज्जे।

भोजन-परिणाम-पदम्

षड्विध भोजनपरिणाम प्रज्ञप्त, तद्यथा—

मनोज्ञ, रसिक, प्रीणनीय, बृंहणीय, मदनीय, दर्प्पणीय।

भोजन-परिणाम-पद

१०९ भोजन का परिणाम[४०] छह प्रकार का होता है—

१ मनोज्ञ—मन मे आह्लाद उत्पन्न करने वाला। २ रसिक—रसयुक्त। ३ प्रीणनीय—रस, रक्त आदि धातुओ मे समता लाने वाला। ४ बृंहणीय—धातुओ को उपचित करने वाला। ५ मदनीय—काम को बढाने वाला। ६ दर्प्पणीय—पुष्टिकारक।

विस-परिणाम-पद

११०. छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—
डक्के, भुत्ते, णिवतिते, मसाणुसारी, सोणिताणुसारी, अट्ठिमिंजाणुसारी।

विष-परिणाम-पदम्

षड्विध विषपरिणाम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
दष्ट, भुक्त, निपतित, मासानुसारि, शोणितानुसारि, अस्थिमज्जानुसारि।

विष-परिणाम-पद

११० विष का परिणाम छह प्रकार का होता है—

१ दष्ट—किसी विषैले प्राणी द्वारा काटे जाने पर प्रभाव डालने वाला।

२ भुक्त—खाए जाने पर प्रभाव डालने वाला।

३ निपतित—शरीर के बाहरी भाग से स्पृष्ट होकर प्रभाव डालने वाला—त्वग्-विष, दृष्टिविष आदि।

४ मासानुसारी—मास तक की धातुओ को प्रभावित करने वाला।

५ शोणितानुसारी—रक्त तक की धातुओ को प्रभावित करने वाला।

६ अस्थिमज्जानुसारी—अस्थि-मज्जा तक की धातुओ को प्रभावित करने वाला।

पट्ठ-पदं

१११ छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, त जहा—
ससयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे, अतहणाणे।

पृष्ट-पदम्

षड्विध पृष्ट प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सशयपृष्ट, व्युद्ग्रहपृष्ट, अनुयोगि, अनुलोम, तथाज्ञान, अतथाज्ञानम्।

पृष्ट-पद

१११ प्रश्न छह प्रकार के होते हैं—

१ सशयप्रश्न—सशय मिटाने के लिए पूछा जाने वाला।

२ व्युद्ग्रहप्रश्न—मिथ्या अभिनिवेश से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा जाने वाला।

३ अनुयोगी—व्याख्या के लिए पूछा जाने वाला।

४ अनुलोम—कुशलकामना से पूछा जाने वाला।

५ तथाज्ञान—स्वय जानते हुए भी दूसरों की ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा जाने वाला।

६ अतथाज्ञान—स्वय न जानने की स्थिति मे पूछा जाने वाला।

विरहिय-पद

११२ चमरचचा ण रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववातेणं ।

११३. एगमेगे ण इदट्ठाणे उक्कोसेण छम्मासे विरहिते उववातेण ।

११४. अधोसत्तमा ण पुढवी उक्कोसेण छम्मासा विरहिता उववातेणं ।

११५ सिद्धिगती ण उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेण ।

आउयबंध-पदं

११६ छव्विधे आउयबधे पण्णत्ते, त जहा—
जातिणामणिधत्ताउए,
गतिणामणिधत्ताउए,
ठितिणामणिधत्ताउए,
ओगाहणाणामणिधत्ताउए,
पएसणामणिधत्ताउए,
अणुभागणामणिधत्ताउए ।

११७ णेरइयाण छव्विहे आउयबधे पण्णत्ते, त जहा—
जातिणामणिहत्ताउए,
°गतिणामणिहत्ताउए,
ठितिणामणिहत्ताउए,
ओगाहणाणामणिहत्ताउए,
पएसणामणिहत्ताउए,°
अणुभागणामणिहत्ताउए ।

११८ एव जाव वेमाणियाण ।

विरहित-पदम्

चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन ।

एकैक इन्द्रस्थान उत्कर्षेण षण्मासान् विरहित उपपातेन ।

अध सप्तमा पृथिवी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन ।

सिद्धिगति उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन ।

आयुर्बन्ध-पदम्

षड्विध आयुर्बन्ध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
जातिनामनिधत्तायु,
गतिनामनिधत्तायु,
स्थितिनामनिधत्तायु,
अवगाहनानामनिधत्तायु,
प्रदेशनामनिधत्तायु,
अनुभागनामनिधत्तायु ।

नैरयिकाणा षड्विध आयुर्बन्ध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
जातिनामनिधत्तायु,
गतिनामनिधत्तायु,
स्थितिनामनिधत्तायु,
अवगाहनानामनिधत्तायु,
प्रदेशनामनिधत्तायु,
अनुभागनामनिधत्तायु ।

एव यावत् वैमानिकानाम् ।

विरहित-पद

११२ चमरचञ्चा राजधानी में उत्कृष्टरूप से छह महीनो तक उपपात का विरह [व्यवधान] हो सकता है ।

११३ प्रत्येक इन्द्र के स्थान में उत्कृष्टरूप से छह महीनो तक उपपात का विरह हो सकता है ।

११४ निचली सातवी पृथ्वी में उत्कृष्ट रूप से छह महीनो तक उपपात का विरह हो सकता है।

११५ सिद्धिगति मे उत्कृष्टरूप से छह महीनो तक उपपात का विरह हो सकता है ।

आयुर्बन्ध-पद

११६ आयुष्य का बध छह प्रकार का होता है[४१]—
१ जातिनामनिधिक्तायु,
२ गतिनामनिधिक्तायु,
३ स्थितिनामनिधिक्तायु,
४ अवगाहनानामनिधिक्तायु,
५ प्रदेशनामनिधिक्तायु,
६ अनुभागनामनिधिक्तायु ।

११७ नैरयिको के आयुष्य का बध छह प्रकार का होता है—
१ जातिनामनिधिक्तायु,
२ गतिनामनिधिक्तायु,
३ स्थितिनामनिधिक्तायु,
४ अवगाहनानामनिधिक्तायु,
५ प्रदेशनामनिधिक्तायु,
६ अनुभागनामनिधिक्तायु ।

११८ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डको के जीवो मे आयुष्य का बध छह प्रकार का होता है ।

परभवियाउय-पदं

११९. णेरइया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

१२०. एवं—असुरकुमारावि जाव थणियकुमारा।

१२१. असंखेज्जवासाउया सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिया णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

१२२. असंखेज्जवासाउया सण्णिमणुस्सा णियमं °छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं° पगरेंति।

१२३. वाणमंतरा जोतिसवासिया वेमाणिया जहा णेरइया।

परभविकायुः-पदम्

नैरयिका नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायु प्रकुर्वन्ति।

एवम्—असुरकुमारा अपि यावत् स्तनित कुमारा।

असंख्येयवर्षायुषः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायु प्रकुर्वन्ति।

असंख्येयवर्षायुषः सञ्ज्ञिमनुष्या नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायु प्रकुर्वन्ति।

वानमन्तरा ज्यौतिषवासिका वैमानिका यथा नैरयिका।

परभविकायु-पद

११९ नैरयिक वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रह जाने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२० इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देव वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२१ असंख्य वर्ष की आयु वाले समनस्क-तिर्यक्योनिक-पञ्चेन्द्रिय वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२२ असंख्य वर्ष की आयुवाले समनस्क मनुष्य वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२३ वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

भाव-पदं

१२४ छव्विधे भावे पण्णत्ते, तं जहा— ओदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, सण्णिवातिए।

भाव-पदम्

षड्विधः भावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— औदयिकः, औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः, सान्निपातिकः।

भाव-पद

१२४ भाव[४१] के छह प्रकार हैं— १ औदयिक, २ औपशमिक, ३ क्षायिक, ४ क्षायोपशमिक, ५. पारिणामिक, ६ सान्निपातिक।

पडिक्कमण-पदं

१२५. छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा— उच्चारपडिक्कमणे,

प्रतिक्रमण-पदम्

षड्विधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— उच्चारप्रतिक्रमणं,

प्रतिक्रमण-पद

१२५ प्रतिक्रमण छह प्रकार का होता है— १ उच्चार प्रतिक्रमण—मल-त्याग करने के बाद वापस आकर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

पासवणपडिक्कमणे,
इत्तरिए, आवकहिए,
जंकिंचिमिच्छा, सोमणंतिए।

प्रस्रवणप्रतिक्रमण,
इत्वरिक, यावत्कथिक,
यत्किञ्चिद्मिथ्या, स्वापनान्तिकम्।

२ प्रस्रवण प्रतिक्रमण—मूत्र-त्याग करने बाद वापस आकर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।
३ इत्वरिक प्रतिक्रमण—दैवसिक, रात्रिक आदि प्रतिक्रमण करना।
४ यावत्कथिक प्रतिक्रमण—हिंसा आदि से सर्वथा निवृत्त होना अथवा आजीवन अनशन करना।
५ यत्किंचित्मिथ्यादुष्कृत प्रतिक्रमण—साधारण अयतना होने पर उसकी विशुद्धि के लिए 'मिच्छामिदुक्कड' इस भाषा मे खेद प्रकट करना।
६ स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण—सोकर उठने के पश्चात् ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

णक्खत्त-पदं

१२६ कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।
१२७ असिलेसाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

नक्षत्र-पदम्

कृत्तिकानक्षत्र षट्तार प्रज्ञप्तम्।
अश्लेषानक्षत्र षट्तार प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

१२६ कृत्तिका नक्षत्र के छह तारे हैं।
१२७ अश्लेषा नक्षत्र के छह तारे हैं।

पावकम्म-पदं

१२८ जीवा ण छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति चिणिस्सति वा, त जहा—
पुढविकाइयणिव्वत्तिए,
°आउकाइयणिव्वत्तिए,
तेउकाइयणिव्वत्तिए,
वाउकाइयणिव्वत्तिए,
वणस्सइकाइयणिव्वत्तिए,°
तसकायणिव्वत्तिए।
एव—चिण-उवचिण-बध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवा षट्स्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
पृथिवीकायिकनिर्वर्तितान्,
अप्कायिकनिर्वर्तितान्
तेजस्कायिकनिर्वर्तितान्,
वायुकायिकनिर्वर्तितान्,
वनस्पतिकायिकनिर्वर्तितान्,
त्रसकायनिर्वर्तितान्।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

१२८ जीवो ने छह स्थान निर्वर्तित पुद्गलो को पापकर्म के रूप मे ग्रहण किया था, करते हैं और करेंगे—
१ पृथ्वीकायनिर्वर्तित,
२ अप्कायनिर्वर्तित,
३ तेजस्कायनिर्वर्तित,
४ वायुकायनिर्वर्तित,
५ वनस्पतिकायनिर्वर्तित,
६ त्रसकायनिर्वर्तित।
इसी प्रकार जीवो के षट्काय निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप मे उपचय, बध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पोग्गल-पदं	पुद्गल-पदम्	पुद्गल-पद
१२९ छप्पएसिया णं खंधा अणंता पण्णत्ता।	षट्प्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१२९ छह प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।
१३० छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्प्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१३० छह प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।
१३१. छसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्समयस्थितिकाः पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१३१ छह समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
१३२ छगुणकालगा पोग्गला जाव छगुण-लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्गुणकालका पुद्गला यावत् षड्गुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१३२ छह गुण काले पुद्गल अनन्त हैं— इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के छह गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-६

१ (सू० १)

प्रस्तुत सूत्र मे गण धारण करनेवाले व्यक्ति के लिए छह कसौटिया निर्दिष्ट हैं—

१—श्रद्धा—अश्रद्धावान् पुरुप मर्यादानिष्ठ नही हो सकता। जो स्वय मर्यादानिष्ठ नहीं होता वह दूसरो को मर्यादा मे स्थापित नहीं कर सकता।[1] इसलिए गणी की प्रथम योग्यता 'श्रद्धा'—मर्यादाओ के प्रति विश्वास है।

२—सत्य—इसके दो अर्थ हैं—

१ यथार्थवचन।

२ प्रतिज्ञा के निर्वाह मे समर्थ।

यथार्थभापी पुरुप ही यथार्थ का प्रतिपादन कर सकता है। जो की हुई प्रतिज्ञा के निर्वाह मे समर्थ होता है, वही दूसरो मे विश्वास उत्पन्न कर सकता है। गणी दूसरों के लिए विश्वस्त होना चाहिए।[2] इसलिए उसकी दूसरी योग्यता 'सत्य' है।

३—मेधा—आगम साहित्य मे मेधावी के दो अर्थ प्राप्त होते हैं—

१ मर्यादावान्।

२ श्रुतग्रहण करने की शक्ति से सपन्न।

जो व्यक्ति स्वय मर्यादावान् है, वही दूसरो को मर्यादा मे रख सकता है और वही व्यक्ति अपने गण मे मर्यादाओ का अक्षुण्ण पालन करा सकता है।

जो व्यक्ति तीक्ष्ण वुद्धि से सपन्न होता है, वही श्रुतग्रहण करने मे समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति ही दूसरो से श्रुतग्रहण कर अपने शिष्यो को उसका अध्यापन कराने मे समर्थ हो सकता है। इस प्रकार वह स्वय अनेक विषयों का ज्ञाता होकर अपने गण में शिष्यो को भी इसी ओर प्रेरित कर सकता है।[3] इसलिए उसकी तीसरी योग्यता 'मेधा' है।

४—वहुश्रुतता—जैन परम्परा मे 'वहुश्रुत' व्यक्ति का वहुत समादर रहा है। उसे गण का एकमात्र उपष्टम्भ माना है। उत्तराध्ययन सूत्र मे 'वहुस्सुयपूआ' नाम का ग्यारहवा अध्ययन है। उसमे वहुश्रुत की महिमा वतलाई गई है। उत्तरवर्ती व्याख्या-ग्रथो मे भी वहुश्रुत व्यक्ति के विपय मे अनेक विशेप नियम उपलव्ध होते हैं।[4]

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति मे वताया गया है कि जो गणनायक वहुश्रुत नही होता, वह गण का अनुपकारी होता है। वह अपने शिष्यो की ज्ञानसपदा कैसे वढ़ा सकता है? जो गण या कुल अगीतार्थ (अवहुश्रुत) की निश्रा मे रहता है, उसका

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३३५ सद्धि त्ति श्रद्धावान्, अश्रद्धावतो हि स्वयममर्यादावर्त्तितया परेषां मर्यादास्थापनायामसमर्थत्वात् गणधारणानर्हत्वम्।

२ वही, पत्र ३३५ सत्यं सद्भ्यो—जीवेभ्यो हिततया प्रतिज्ञातशूरतया वा, एवभूतो हि पुरुपो गणपालक आदेयश्च स्यादिति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ मेधावि मर्यादया धावतीत्येवशीलमिति निरुक्तिवशात्, एवभूतो हि गणस्य मर्यादाप्रवर्त्तको भवति, अथवा मेधाश्रुतग्रहणशक्तिस्तद्वत्, एवभूतो हि श्रुतमन्यतो झगिति गृहीत्वा शिष्याध्यापने समर्थो भवतीति।

४ देखो—व्यवहार, उद्देशक १०, सूत्र १५, भाष्य गाथा—४६-४९।

विस्तार नहीं होता। अगीतार्थ व्यक्ति वालवृद्धाकुलगच्छ का सम्यक्प्रवर्तन नहीं कर पाता।[1]

इसलिए उसकी चौथी योग्यता 'वहुश्रुतता' है।

५—शक्ति—गणनायक को शक्तिसम्पन्न होना चाहिए। उसकी शक्तिसपन्नता के चार अवयव हैं—

१ शरीर से स्वस्थ व दृढसहनन वाला होना।

२ मन्त्र के विधि-विधानो का ज्ञाता तथा अनेक मन्त्रों की सिद्धियो से सपन्न।

३. तन्त्र की सिद्धियो से सपन्न।

४ परिवार से सपन्न अर्थात् विशिष्ट शिष्यसपदा से युक्त, विविध विषयो मे निष्णात शिष्यो से परिवृत।[2]

इसलिए उसकी पाचवीं योग्यता 'शक्ति' है।

६ अल्पाधिकरणता—अधिकरण का अर्थ है—कलह या विग्रह। जो पुरुष स्वपक्ष या परपक्ष के साथ कलह करता रहता है उसका गौरव नहीं वढता। जिसके प्रति गुरुत्व की भावना नहीं होती वह गण को लाभान्वित नहीं कर सकता।[3] इसलिए गणी की छठी योग्यता 'अकलह' (प्रशान्त भाव) है।

२ (सू० ३)

प्रस्तुत सूत्र मे कालगत निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथी की निर्हरण-क्रिया का उल्लेख है। इसमे छह वातो का निर्देश है—

१ मृतक को उपाश्रय से वाहर लाकर रखना।

किसी साधु के कालगत हो जाने पर कुछेक विधियो का पालन कर उसे उपाश्रय से वाहर लाकर परिस्थापित कर देना।

२ मृतक को उपाश्रय से वहिर्भाग से वस्ती के वाहर ले जाना—साधु की उपस्थिति मे मृतक का वहन साधु को ही करना चाहिए। इसकी विधि निम्न विवरण मे द्रष्टव्य है।

३ उपेक्षा—वृत्तिकार ने यहा उपेक्षा के दो प्रकारों की सूचना दी है—

१ व्यापार की उपेक्षा।

२ अव्यापार की उपेक्षा।

उन्होंने प्रसगवश उपेक्षा के अर्थ भी भिन्न-भिन्न किए हैं। व्यापार उपेक्षा मे उपेक्षा का अर्थ प्रवृत्ति और अव्यापार उपेक्षा मे उपेक्षा का अर्थ उदासीन भाव किया है।

(१) व्यापार की उपेक्षा का अर्थ है—मृतक विपयक छेदन, वधन आदि क्रियाए जो परपरा से प्रसिद्ध हैं, उनमें प्रवृत्त होना।

(२) अव्यापार की उपेक्षा का अर्थ है—मृतक के सबधियो द्वारा किए जाने वाले सत्कार की उपेक्षा करना—उसमें उदासीन रहना[4]। यह अर्थ वहुत ही सक्षिप्त है। वृत्तिकार के समय मे ये वधन और छेदन की परपराए प्रचलित रही हो,

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ वहु—प्रभूत श्रुत—सूत्रार्थरूप यस्य सतया, अन्यथा हि गणानुपकारी स्यात, उक्तं च—
"सीसाण कुणइ कह सो तहाविहो हदि नाणमाईण।
अहियाहियसपत्ति ससारुच्छेयण परम॥
कह सो जयउ अगीओ कह वा कुणउ अगीयनिस्साए।
वह वा करेउ गच्छ सवालवुड्ढाउल सो उ॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ शक्तिमत् शरीरमन्त्रतन्त्रपरिवारादिसामर्थ्ययुक्त, तद्धि विविधास्वापत्सु गणस्यात्मनश्च निस्तारक भवतीति।

३ वही, पत्र ३३५ अप्पाहिगरणन्ति अल्प—अविद्यमानमधिकरण—स्वपक्षपरपक्षविषयो विग्रहो यस्य सतया, तद्धयनुवर्त्तकतया गणस्याहानिकारकं भवतीति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ उपेक्षा द्विविधा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया तमुपेक्षमाणा, तद्विषयायां छेदनवधनादिकायां समयप्रसिद्धक्रियायां व्याप्रियमाणा इत्यर्थ, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिस्त सत्क्रियमाणमुपेक्षमाणा तत्रोदासीना इत्यर्थ।

किन्तु आज इन परपराओ का प्रचलन नहीं है, अत इनका हार्द समझ पाना अत्यन्त कठिन है। इन परपराओ का विस्तृत उल्लेख वृहत्कल्पभाष्य तथा व्यवहारभाष्य मे प्राप्त है। उनके सदर्भ मे 'उपेक्षा' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

वृहत्कल्पभाष्य मे इस प्रसग में आए हुए वधन और छेदन का अर्थ इस प्रकार है[1]—

वधन—मृतक के दोनो पैरों के दोनो अगूठे तथा दोनो हाथो के दोनो अगूठे—चारो अगूठो को रस्सी से वाधना तथा मुखवस्त्रिका से मुह को ढँकना।

छेदन—मृतक के अक्षत देह मे अगुली के वीच के पर्व का कुछ छेदन करना।

व्यापार उपेक्षा का यह विस्तृत अर्थ है। अव्यापार उपेक्षा का तात्पर्य स्पष्ट नही है। भाष्यो मे भी उसका कोई विवरण प्राप्त नही है। प्राचीन काल मे मृतक मुनि के सवधी किस प्रकार से मृतक मुनि का सत्कार करते थे, यह ज्ञात नहीं है।

किन्तु यह सभव है कि अपने सवधी मुनि के कालगत होने पर गृहस्थ मरण-महोत्सव आदि मनाते हो, मृतक के शरीर पर सुगधित द्रव्य आदि चढाते हो तथा पूर्ण साज-सज्जा से शव-यात्रा निकालते हो।

४ शव के पास रात्रिजागरण—प्राचीन विधि के अनुसार जो मुनि निद्राजयी उपायकुशल, महापराक्रमी, धैर्यसपन्न, कृतकरण (उस विधि के ज्ञाता), अप्रमादी और अभीरु होते थे, वे ही मृतक के पास वैठकर रात्रिजागरण करते थे।

रात्रि मे वे मुनि परस्पर धर्मकथा करते अथवा उपस्थित श्रावको को धर्मचर्चा सुनाते अथवा स्वय सूत्र या धार्मिक आख्यानक का स्वाध्याय मधुर और उच्चस्वर से करते थे।[2] वृत्तिकार ने यहा दो पाठान्तरो की सूचना दी है[3]—'भयमाणा और अवसामेमाणा'। ये पाठान्तर वहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनके पीछे एक पुष्ट परपरा का सकेत है।

शव के पास रात्रिजागरण करनेवाला भयभीत न हो। वह अत्यन्त अभय और धैर्यशाली हो तथा उपरोक्त गुणो से युक्त हो।

दूसरा पाठान्तर है 'अवसामेमाणा'। इसका अर्थ है—उपशमन करनेवाला। इसके पीछे रही अर्थ-परपरा इस प्रकार है—

शव का परिष्ठापन करने के वाद यदि वह व्यन्तराधिष्ठित होकर दो-तीन वार उपाश्रय मे आ जाए तो मुनियो को अपने-अपने तपयोग की वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार योग-परिवृद्धि करने पर भी वह व्यन्तराधिष्ठित मृतक वहा आए तो मुनि अपने वाए हाथ मे मूत्र लेकर उसका सिंचन करे और कहे—'अरे गुह्यक! सचेत हो, सचेत हो। मूढ़ मत हो, प्रमाद मत कर।'

इतना करने पर भी वह गुह्यक एक, दो या उपस्थित सभी श्रमणो के नाम वताए तो उन-उन नाम वाले साधुओं को लुचन करा लेना चाहिए और पाच दिन का उपवास करना चाहिए। जो इतना तप न कर सकें, वे एक, दो, तीन, चार उपवास करें। यह भी न करने पर गण से अलग होकर विहरण करें। उस उपद्रव के निवारण के लिए अजितनाथ और शाति-नाथ का स्तवन करें। यह उपशमन की विधि है।[4]

५ मृतक के सवधियो को जताना—यह विधि रही है कि जो मुनि कालगत हुआ है और उसके ज्ञातिजन उस नगर मे हैं तो उनको उसकी मृत्यु की सूचना देनी चाहिए। अन्यथा वे ऐसा कह सकते हैं कि हमे विना पूछे ही आपने शव का परिष्ठापन कैसे कर दिया? वे कलह आदि उत्पन्न कर सकते हैं।

---

१ वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५२४
करपायगट्ठे दोरेण वधिउ पुत्तीए मुह छाए।
अक्खयदेहे खणण अगुलिविच्चे ण वाहिरतो॥

२ (क) वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५२२, ५५२३
जितणिद्दुवायकुसला, ओरस्सवली य सत्तजुत्ता य।
कतकरण अप्पमादी, अभीरुगा जागरति तहि॥
जागरणट्ठाए तहि, अन्नेसिं वा वि तत्थ धम्मकहा।
सुत्त धम्मकह वा, मधुरगिरो उच्चसद्देण॥
(ख) आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृष्ठ १०४।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ३३५ पाठान्तरेण 'भयमाणत्ति वा, उवसामेमाणत्ति।

४ वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५४४-५५४६।

६ विसर्जित करने के लिए मौन भाव से जाना—

निर्हरण के लिए जानेवाले को किसी से बातचीत नहीं करनी चाहिए। इधर-उधर दृष्टि-विक्षेप भी नहीं करना चाहिए।

कालगत मुनि की निर्हरण क्रिया की विधि का विस्तृत उल्लेख बृहत्कल्पभाष्य[1], व्यवहारभाष्य[2] और आवश्यकचूर्णि[3] में मिलता है। बृहत्कल्पभाष्य के अनुसार उसका विवरण इस प्रकार है—

मुनि के शव को ले जाने के लिए वहनकाष्ठ और महास्थडिल (जहा मृतक को परिष्ठापित किया जाता है) का निरीक्षण करना चाहिए। तीन स्थडिलो का निरीक्षण आवश्यक होता है—

१ गाव के नजदीक, २ गाव के बीच मे, ३ गाव से दूर।

इन तीनो की अपेक्षा इसलिए है कि एक के अव्यवहार्य होने पर दूसरा स्थडिल काम मे आ सके। सभव है, देखे हुए स्थडिल को खेत के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया हो, अथवा उस क्षेत्र मे पानी का जमाव हो गया हो, अथवा वहा हरियाली हो गई हो, अथवा वहा त्रस प्राणियो का उद्भव हो गया हो अथवा वहा नया गाँव बसा दिया हो अथवा वहा किसी सार्थ ने अपना पडाव डाल दिया हो—इन सब सभावनाओ के कारण तीन स्थडिल अपेक्षित होते हैं। एक के अवरुद्ध होने पर दूसरे और दूसरे के अवरुद्ध होने पर तीसरे स्थडिल को काम मे लेना चाहिए।[4] मृतक को ढाई हाथ लम्बे सफेद और सुगंधित वस्त्र से ढकना चहिए। उसके नीचे भी वैसा ही एक वस्त्र बिछाना चाहिए। तत्पश्चात् उसको उन वस्त्रो सहित एक डोरी से बांधकर, उस डोरी को ढकने के लिए तीसरा अति उज्ज्वल वस्त्र ऊपर डाल देना चाहिए। सामान्यत तीन वस्त्रो का उपयोग अवश्य होना चाहिए और आवश्यकतावश अधिक वस्त्रो का भी उपयोग किया जा सकता है। शव को मलिन वस्त्रों से ढकने से प्रवचन की अवज्ञा होती है। लोक कहने लगते हैं—'अरे! ये साधु मरने पर भी शोभा प्राप्त नहीं करते।' मलिन वस्त्रों के कारण दो दोष उत्पन्न होते हैं—एक तो जो व्यक्ति उस सम्प्रदाय मे सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहते हैं, उनका मन उससे हट जाता है और जो व्यक्ति उस सघ मे प्रव्रजित होना चाहते हैं, वे भी उससे दूर हो जाते हैं। अत शव को अत्यन्त शुक्ल और सुन्दर वस्त्रो से ढकना चाहिए। जब भी साधु कालगत हुआ हो उसे उसी समय निकालना चाहिए, फिर चाहे रात हो या दिन। लेकिन रात्रि मे विशेष हिम गिरता हो, चोरो या हिंसक जानवरो का भय हो, नगर के द्वार बन्द हों, मृतक महाजनो द्वारा ज्ञात हो[5] अथवा किसी ग्राम की ऐसी व्यवस्था हो कि वहा रात्रि मे शव को बाहर नहीं ले जाया जाता, मृतक के सबधियो ने पहले से ऐसा कहा हो कि हमको पूछे बिना मृतक को न ले जाया जाए अथवा मृतक मुनि प्रसिद्ध आचार्य अथवा लम्बे समय तक अनशन का पालन कर कालगत हुआ हो, अथवा मास-मास की तपस्या करने वाला महान् तपस्वी हो तो शव को रात्रि के समय नहीं ले जाना चाहिए।

इसी प्रकार यदि सफेद कपड़ों का अभाव हो, अथवा राजा अपने अन्त पुर के साथ तथा पुरस्वामी नगर मे प्रवेश कर रहा हो अथवा वह भट, भोजिक आदि के विशाल समूह के साथ नगर के बाहर जा रहा हो, उस समय नगर के द्वार लोगो से आकीर्ण रहते हैं, अत शव को दिन मे नहीं ले जाना चाहिए। रात्रि मे उसका निर्हरण करना चाहिए।

साधु को कालगत होते ही, जब तक कि वायु से सारा शरीर अकड न जाए, उसके हाथ और पैरो को एकदम सीधे लम्बे फैला दें, और मुह तथा आखों के पुटो को बद कर दें।

साधु के शव को देखकर मुनि विषाद न करें किन्तु उसका विधि से व्युत्सर्जन करे। वहा यदि आचार्य हो तो वे सारी विधि का निर्वाह करें। उनके अभाव मे गीतार्थ मुनि, उसके अभाव मे अगीतार्थ मुनि जिसको मृतक की विधि का पूर्व अनुभव

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५४९९-५५९५।

२ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ४२०-४५६।

३. आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृष्ठ १०२ १०६।

४ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५०७
आसन्न मज्झ दूरे वाघातट्ठा उ थंडिले तिन्नि।
खेत्तुदय-हरिय-पाणा, णिविट्ठमादी व वाघाए॥

५ बृहत्कल्प के वृत्तिकार ने 'महानिनाद' का अर्थ महाजनों द्वारा ज्ञात किया है। किन्तु चूर्णि तथा विशेषचूर्णि में इसका अर्थ महान्निनाद (कोलाहल) किया है—देखो बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५१९, वृत्ति, भाग ५, पृष्ठ १४६३ पर पादटिप्पण।

स्थडिल भूमि मे मृतक का व्युत्सर्जन कर मुनि वहीं कायोत्सर्ग न करे किन्तु उपाश्रय मे आकर आचार्य के पास, परिष्ठापन मे कोई अविधि हुई हो तो उसकी आलोचना करे।

यदि कालगत मुनि के शरीर मे यक्ष प्रविष्ट हो जाए और शव उठ खडा हो तो मुनियो को इस विधि का पालन करना चाहिए—यदि शव उपाश्रय मे ही उठ जाए तो उपाश्रय को छोड देना चाहिए। इसी प्रकार वह यदि मोहल्ले मे उठे तो मोहल्ले को, गली मे उठे तो गली को, गाव के बीच मे उठे तो ग्रामार्द्ध को, ग्रामद्वार मे उठे तो गाव को, गाव और उद्यान के बीच में उठे तो मडल को, उद्यान मे उठे तो देशखड को, उद्यान और स्वाध्याय भूमि के बीच मे उठे तो देश को तथा स्वाध्याय भूमि मे उठे तो राज्य को छोड देना चाहिए।

शव का परिष्ठापन कर गीतार्थ मुनि एक ओर ठहर कर मुहूर्त मात्र प्रतीक्षा करे कि कही कालगत मुनि पुन उठ न जाए।

परिष्ठापन करने के बाद शव के उठ जाने पर मुनि को क्या करना चाहिए—इस विधि के निदर्शन मे वृहत्कल्पभाष्य मे टीकाकार वृद्धसप्रदाय का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि—

स्वाध्याय भूमि मे शव का परिष्ठापन करने पर यदि वह किसी कारणवश उठे और वही पुन गिर जाए तो मुनि को उपाश्रय छोड देना चाहिए। यदि वह उठा हुआ शव स्वाध्याय-भूमि और उद्यान के बीच मे गिरे तो निवेमन (मोहल्ले) का त्याग कर दे। यदि उद्यान मे गिरे तो उस गृहपवित (साही) को छोड दे। यदि उद्यान और गाव के बीच मे गिरे तो ग्रामार्द्ध को छोड दे। यदि गांव के द्वार पर गिरे तो गाव को, गाव के मध्य गिरे तो मडल को, गृहपवित के बीच गिरे तो देशखड को, निवेमन मे गिरे तो देश को और वमति मे गिरे तो राज्य को छोड दे।[1]

मृतक साधु के उच्चारपात्र, प्रश्रवणपात्र और श्लेष्मपात्र तथा सभी प्रकार के सस्तारको का परिष्ठापन कर देना चाहिए और यदि कोई बीमार मुनि हो तो उसके लिए इनका उपयोग भी किया जा सकता है।

यदि मुनि महामारी आदि किसी छूत की बीमारी से मरा हो तो, जिस सस्तारक से उसे ले जाया जाए, उसके टुकडे-टुकडे कर परिष्ठापन कर दें। इसी प्रकार उसके अन्य उपकरण, जो उसके शरीर छुए गए हो, उनका भी परिष्ठापन कर दें।

यदि साधु की मृत्यु महामारी आदि से न होकर, स्वाभाविक रूप से हुई हो तो मुहूर्त मात्र तक उसके शव को उपाश्रय मे ही रखें। गाव के बाहर परिष्ठापित शव को देखने के लिए निमित्तज्ञ मुनि दूसरे दिन जाए और शुभ-अशुभ का निर्णय करें।

जिस दिशा मे मृतक का शरीर शृगाल आदि के द्वारा आकर्षित होता है उस दिशा मे सुभिक्ष होता है और उस ओर विहार भी सुखपूर्वक हो सकता है। जितने दिन तक वह कलेवर जिस दिशा मे अक्षतरूप से स्थित होता है, उस दिशा मे उतने ही वर्षों तक सुभिक्ष होता है तथा पर-चक्र के उपद्रवो का अभाव रहता है। इससे विपरीत यदि उसका शरीर क्षत हो जाता है तो उस दिशा मे दुर्भिक्ष तथा उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यदि वह मृतक शरीर सीधा रहता है तो सर्वत्र सुभिक्ष और सुखविहार होता है। यह निमित्त-बोध केवल तपस्वी, आचार्य तथा लम्बे समय के अनशन से कालगत होनेवाले, मुनियो से ही प्राप्त होता है। सामान्य मुनियो के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है।

यदि साधु रात्रि मे कालगत हुआ हो तो वहनकाष्ठ की आज्ञा लेने के लिए शय्यातर को जगाए। किन्तु यदि एक ही मुनि शव को उठाकर ले जाने मे समर्थ हो तो वहनकाष्ठ की कोई आवश्यकता नही रहती। अन्यथा दो, तीन, चार मुनि वहनकाष्ठ मे मृतक को ले जाकर पुन उस वहनकाष्ठ को यथास्थान लाकर रख दे।[2]

व्यवहारभाष्य मे स्थडिल के विषय मे जानकारी देते हुए लिखा है कि शिलातल या शिलातल जैसा भूमिभाग प्रशस्त स्थडिल है। अथवा जिस स्थान में गाए बैठती हो, बकरी आदि रहती हो, जो स्थान दग्ध हो, जिस वृक्ष-समूह के नीचे बडे-बडे सार्थ विश्राम करते हो, वैसे स्थान स्थडिल के योग्य होते है।[3]

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५४३ वृत्ति, भाग ५, पत्र १४६८।
२ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५४९९-५५६५।
३ व्यवहारभाष्य, ७।४४१
सिलायलं पसत्थं तु जत्थव्वाविफासुयं।—
ग्राम यदिलमादिन्वविबादीण समीपे वा॥

कही-कही बहुत समय से आचीर्ण कुछ परपराए होती हैं। कुछ गाव या नगरो मे ऐसी मर्यादा होती है कि अमुक प्रदेश मे ही मृतक का दाह-सस्कार होना चाहिए। कही वर्षा ऋतु में नदी के प्रवाह से स्थडिल-प्रदेश वह जाता है, वहा स्थडिल-प्रदेश की सुविधा नही होती। आनदपुर मे उत्तरदिशा मे ही मृत मुनियो का परिष्ठापन किया जाता था।[1]

इन सभी स्थानो मे उस-उस मर्यादा का पालन करने मे भी विधि का अपक्रमण नहीं होता। किसी गाव मे सारा क्षेत्र यदि खेतो मे विभक्त कर दिया गया, और वहा खेतों की सीमा मे परिष्ठापन की आज्ञा न मिले तो मुनि शव को राजपथ में अथवा दो गावो के बीच की सीमा मे परिष्ठापित करे। यदि इन स्थानो का अभाव हो तो सामान्य श्मशान मे मृतक को ले जाए। और यदि वहा श्मशान पालक द्वार परही शव को रोक ले और अपना 'कर' मागे तो वहा से हटकर ऐसे श्मशान मे जाए जहा अनाथ व्यक्तियो का दाह-सस्कार होता हो। यदि ऐसा स्थान न मिले तो पुन नगर के उसी श्मशान पर जाए और श्मशान-पालक को उपदेश द्वारा समझाए। यदि वह न माने तो उसे मृतक के वस्त्र देकर शान्त करे। फिर भी यदि वह प्रवेश का निषेध करे तो नए वस्त्र लाने के लिए गाव में जाए। नए वस्त्र न मिलने पर राजा के पास जाकर यह शिकायत करे कि 'आपका श्मशानपालक मुनि का दाह-सस्कार करने नहीं देता। हम अकिंचन हैं। उसे 'कर' कैसे दें ? यदि राजा कहे कि श्मशानपालन अपने कर्त्तव्य मे स्वतन्त्र है। वह जैसा कहे वैसा आप करें, तो मुनि अस्थडिल हरितकाय आदि के ऊपर धर्मास्तिकाय की कल्पना कर मृतक के शरीर का परिष्ठापन कर दे।

साधु यदि विद्यमान हो तो शव को साधु ही ले जाए। उनके न होने पर मृतक को गृहस्थ ले जाए अथवा बैलगाडी द्वारा उसे श्मशान तक पहुचाए अथवा मल्लो के द्वारा वह कार्य सम्पन्न कराए। यदि पाण—चाडाल आदि शव को उठाते हैं तो प्रवचन का उड्डाह होता है।

यदि एकाकी साधु मृतक को वहन करने मे असमर्थ हो तो गाँव मे दूसरे सविग्न असाभोगिक मुनि हो तो उनकी सहायता ले। उनके अभाव मे पार्श्वस्थ मुनियो का या सारूपिक या सिद्धपुत्र या श्रावकों का सहयोग ले। यदि ये न मिलें तो स्त्रियो की सहायता ले। इनका योग न मिलने पर मल्लगण, हस्तिपालगण, कुभकारगण से सहयोग ले। यदि यह भी सभव न हो तो भोजिक (ग्राम-महत्तर, ग्रामपच) से सहयोग मागे। उसके निषेध करने पर सवर (कचरा उठाने वाले), नख-शोधक, स्नानकारक और क्षालप्रक्षालको से सहयोग ले। यदि वे विना मूल्य मृतक को ढोने से इन्कार करें तो उन्हें वस्त्रो से सतुष्ट कर अपना कार्य सपन्न कराएं।[2]

इस प्रकार परिष्ठापन विधि को सपन्न कर मुनि कालगत साधु के उपकरण ले आचार्य के पास आए और उन्हें सारी चीज सौंप दे। आचार्य उन चीजो को देखकर पुन उसी मुनि को दें तब मुनि 'मस्तकेन वदे' इस प्रकार कहता हुआ आचार्य के वचन को स्वीकार करे।[3]

मुनि शव को जिस मार्ग से ले जाए उसी मार्ग से लौटकर न आए किन्तु दूसरा मार्ग ले। स्थडिल भूमि मे अविधि परिष्ठापन का कायोत्सर्ग न करे किन्तु गुरु के पास आकर कायोत्सर्ग करे। स्वाध्याय और तप की मार्गणा करे। शव का परिष्ठापन कर लौटते समय प्रदक्षिणा न दे। मृतक के उच्चार आदि के पात्रो का विसर्जन करे। दूसरे दिन यह जानने के लिए शव को देखने जाए कि उसकी गति शुभ हुई है या अशुभ तथा शव के लक्षण कैसे हैं।

३ सर्वभावेन (सूत्र ४)

नदीसूत्र मे केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो का विषय समान बतलाया गया है।[4] दोनो मे अन्तर इतना सा है कि

---

१ व्यवहारभाष्य ७।४४२ वृत्ति—केषुचित् क्षेत्रेषु दिशू बहुकालाचीर्णा कल्पा भवन्ति। यथा आनन्दपुरे उत्तरस्यां दिशि सयता परिष्ठापयन्ति।

२ व्यवहार, उद्देशक ७, भाष्यगाथा ४२०-४५६।

३ व्यवहार, उद्देसक ७, भाष्यगाथा ४२०, वृत्ति पत्र ७२।

४ नदी सूत्र ३३ दव्वओ ण केवलनाणी सव्वदव्वाइ जाणइ पासइ, खेत्तओ णं केवलनाणी सव्व खेत्त जाणइ पासइ, कालओ ण केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ ण केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ।

नदी सूत्र १२७ दव्वओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइ जाणइ पासइ' भावओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ।

केवली प्रत्यक्षज्ञान से जानता है और श्रुतज्ञानी परोक्ष ज्ञान से। केवली द्रव्य को सब पर्यायो से जानता है और श्रुतकेवली कुछेक पर्यायो से जानता है। जो 'सर्वभावेन' किसी एक वस्तु को जानता है, वह सब कुछ जान लेता है। आचाराग मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है—

जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ।
जे सव्व जाणइ, से एग जाणइ॥[1]

इसी आशय का एक श्लोक न्यायशास्त्र मे उपलब्ध होता है—

'एको भाव सर्वथा येन दृष्ट, सर्वे भावा सर्वथा तेन दृष्टा।
सर्वे भावा सर्वथा येन दृष्टा, एको भाव सर्वथा तेन दृष्ट॥

४. तारों के आकारवाले ग्रह (सू० ७)

जो तारो के आकारवाले ग्रह हैं, उन्हे ताराग्रह कहा जाता है। ग्रह नौ हैं—सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतू। इनमे सूर्य, चन्द्र और राहु—ये तीन ग्रह तारा के आकार वाले नही हैं। शेप छह ग्रह तारा के आकार वाले हैं। इसलिए उन्हे 'ताराग्रह' कहा गया है।[2]

५ (सू० १२)

देखें—दसवेआलिय ४। सूत्र ८ का टिप्पण।

६ (सू० १३)

मिलाइए—उत्तरज्झयणाणि ३।७-११।

७. (सू० १४)

इन्द्रिया पाच हैं। उनके विपय नियत हैं, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय का शव्द, चक्षु इन्द्रिय का रूप, घ्राण इन्द्रिय का गन्ध, जिह्वेन्द्रिय का रस और स्पर्शनेन्द्रिय का स्पर्श। नोइन्द्रिय—मन का विपय नियत नही होता। वह 'सर्वार्थग्राही' होता है। तत्त्वार्थ मे उसका विपय 'श्रुत' वतलाया है[3]। श्रुत का अर्थ है शव्दात्मक ज्ञान। इसका तात्पर्य है कि मन सभी इन्द्रियो द्वारा गृहीत पदार्थो का ज्ञान करता है तथा शव्दानुसारी ज्ञान भी कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे इन्द्रियो के विषय निर्दिष्ट नहीं हैं।

८ चारण (सू० २१)

चारण का अर्थ है—गमन और आगमन की विशेप लब्धि से सम्पन्न मुनि। वे मुख्यत दो प्रकार के होते हैं—

१ जघाचारण—जिन्हें चारित्र और तप की विशेप आराधना के कारण गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है, वे जघाचारण कहलाते हैं।

२ विद्याचारण—जिन्हें विद्या की आराधना के कारण गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है वे विद्याचारण कहलाते हैं।

चारणो के कुछ अन्य प्रकारों का उल्लेख भी मिलता है। जैसे—

---

१ आयारो ३।७४।

२ स्थानांगवृत्ति,पत्र ३३७ तारकाकारा ग्रहास्तारकग्रहा', लोके हि नव ग्रहा प्रसिद्धा, तत्र च चन्द्रादित्यराहूणामतारकारत्वादन्ये षट् तथोक्ता इति।

३ तत्त्वार्थ सूत्र २।२१ श्रुतमनिन्द्रियस्य।

१ व्योमचारण—पर्यंकासन मे बैठकर अथवा कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित होकर पैरो को हिलाए-डुलाए विना आकाश मे गमन करने वाले।

२ जलचारण—जलाशय के जीवो को कष्ट पहुचाए विना जल पर भूमि की तरह गमन करने वाले।

३ जघाचारण—भूमि से चार अगुल ऊपर गमन करने वाले।

४ पुष्पचारण—पुष्प के दल का आलवन लेकर गमन करने वाले।

५ श्रेणिचारण—पर्वत श्रेणि के आधार पर ऊपर-नीचे गमन करने वाले।

६ अग्निशिखाचारण—अग्नि की शिखा को पकड कर अपने को विना जलाए गमन करने वाले।

७ धूमचारण—तिरछी या ऊची गतिवाले धुए का आलवन ले तिरछी या ऊची गति करने वाले।

८ मर्कटतन्तुचारण—मकडी के जाल का सहारा ले गमन करने वाले।

९ ज्योतिरश्मिचारण—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि मे से किसी की भी किरणो का आलवन ले पृथ्वी की भाति अन्तरिक्ष मे चलने वाले।

१० वायुचारण—वायु के सहारे चलने वाले।

११ नीहारचारण—हिमपात का सहारा लेकर निरालम्बन गति करने वाले।

१२ जलदचारण—वादलो का आलम्बन ले गति करने वाले।

१३ अवश्यायचारण—ओस का आलम्बन ले गति करने वाले।

१४ फलचारण—फलो का आलम्बन ले गति करने वाले[1]।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक मे क्रिया विषयक ऋद्धि दो प्रकार की मानी है—चारणत्व और आकाशगामित्व। जल, जघा पुष्प आदि का आलम्बन लेकर गति करना चारणत्व है और आकाश में गमन करना आकाशगामित्व है[2]।

श्वेताम्वर आचार्यों ने ये भेद नहीं दिए हैं। किन्तु चारण के भेद-प्रभेदो मे ये दोनों विभाग समा जाते हैं।

९ सस्थान (सू० ३१)

इसका अर्थ है—शरीर के अवयवो की रचना, आकृति। ये छह हैं।

वृत्तिकार के अनुसार इनकी व्याख्या इस प्रकार है[3]—

१ समचतुरस्र—शरीर के सभी अवयव जहा अपने-अपने प्रमाण के अनुसार होते हैं, वह समचतुरस्र सस्थान है। अस्र का अर्थ है—कोण। जहा शरीर के चारों कोण समान हो वह समचतुरस्र है।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—न्यग्रोध [वट] वृक्ष की भाति परिमण्डल सस्थान को न्यग्रोधपरिमण्डल कहा जाता है। न्यग्रोध [वट] का ऊपरी भाग विस्तृत अवयवो वाला होता है, किन्तु नीचे का भाग वैसा नही होता। उसी प्रकार न्यग्रोध-परिमण्डल सस्थान वाले व्यक्ति के नाभि के ऊपर के अवयव विस्तृत अर्थात् प्रमाणोपेत और नीचे के अवयव प्रमाण से अधिक या न्यून होते हैं।

३ सादि—इसमे दो शब्द हैं—स+आदि। आदि का अर्थ है—नाभि के नीचे का भाग। जिस शरीर मे नाभि के नीचे का भाग प्रमाणोपेत है उस सस्थान का नाम सादि सस्थान है।

४ कुब्ज—जिस शरीर रचना में पैर, हाथ, शिर और गरदन प्रमाणोपेत नहीं होते, शेप अवयव प्रमाणयुक्त होते हैं, उसे कुब्ज सस्थान कहा जाता है।

५ वामन—जिस शरीर रचना मे पैर, हाथ, शिर और गरदन प्रमाणोपेत होते हैं, शेप अवयव प्रमाण युक्त नही होते, उसे वामन सस्थान कहा जाता है।

---

१ प्रवचनसारोद्धार, द्वार ६८, वृत्ति पत्र १६८, १६६।
२ तत्त्वार्थराजवार्तिक, ३।३६, वृत्ति पृष्ठ २०२।
३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३६।

६ हुडक—जिस शरीर रचना मे कोई भी अवयव प्रमाणोपेत नहीं होता, उसे हुडक सस्थान कहा जाता है।

तत्त्वार्थवार्तिक मे इनकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की गई है, जैसे[1]—

१ समचतुरस्र—जिस शरीर-रचना मे ऊर्ध्व, अध और मध्यभाग सम होता है उसे समचतुरस्रसस्थान कहा जाता है। एक कुशल शिल्पी द्वारा निर्मित चक्र की सभी रेखाए समान होती हैं, इसी प्रकार इस सस्थान मे सब भाग समान होते हैं।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—जिस शरीर-रचना मे नाभि के ऊपर का भाग बडा [विस्तृत] तथा नीचे का भाग छोटा होता है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल कहा जाता है। इसका यह नाम इसीलिए दिया गया है कि इस सस्थान की तुलना न्यग्रोध (वट) वृक्ष के साथ होती है।

३ स्वाति—इसमे नाभि के ऊपर का भाग छोटा और नीचे का बडा होता है। इसका आकार वल्मीक की तरह होता है।

४ कुब्ज—जिस शरीर-रचना मे पीठ पर पुद्‌गलो का अधिक सचय हो, उसे कुब्ज सस्थान कहते हैं।

५ वामन—जिसमें सभी अंग-उपाग छोटे हो, उसे वामन सस्थान रहते हैं।

६ हुण्ड—जिसमे सभी अग-उपाग हुण्ड की तरह सस्थित हो, उसे हुण्ड सस्थान कहते हैं।

इनमे समचतुरस्र और न्यग्रोधपरिमण्डल सस्थानो की व्याख्या भिन्न नही है। तीसरे सस्थान का नाम और अर्थ—दोनो भिन्न हैं। अन्तिम तीनो सस्थानो के अर्थ दोनो व्याख्याओ मे भिन्न हैं। राजवार्तिक की व्याख्या स्वाभाविक लगती है।

१०, ११. (सू० ३२, ३३)

प्रस्तुत सूत्रो मे आत्मवान् और अनात्मवान्—ये दोनो शब्द विशेष विमर्शणीय है। प्रत्येक प्राणी आत्मवान् होता है, किन्तु यहाँ आत्मवान् विशेष अर्थ का सूचक है। जिस व्यक्ति को आत्मा उपलब्ध हो गई है, अह विसर्जित हो गया है, वह आत्मवान् है।

साधना के क्षेत्र मे दो तत्त्व महत्त्वपूर्ण होते हैं—

१ अह का विसर्जन। २ ममकार का विसर्जन।

जिस व्यक्ति का अह छूट जाता है, उसके लिए ज्ञान, तप, लाभ, पूजा-सत्कार आदि-आदि विकास के हेतु बनते हैं। वह आत्मवान् व्यक्ति इन स्थितियो मे सम रहता है।

अनात्मवान् व्यक्ति अह को विसर्जित नही कर पाता। उसे जैसे-जैसे लाभ या पूजा-सत्कार मिलता रहता है, वैसे-वैसे उसका अह बढता है और वह किसी भी स्थिति का अकन सम्यक् नहीं कर पाता। ये सभी स्थितियाँ उसके विकास मे बाधक होती हैं। अपने अह के कारण वह दूसरो को तुच्छ समझने लगता है।

१ अवस्था या दीक्षा-पर्याय के अह से उसमे विनम्रता का अभाव हो जाता है।

२ परिवार के अह से वह दूसरो को हीन समझने लगता है।

३ श्रुत के अह से उसमें जिज्ञासा का अभाव हो जाता है।

४ तप के अह से उसमे क्रोध की मात्रा बढ़ती है।

५. लाभ के अह से उसमे ममकार बढता है।

६ पूजा-सत्कार के अह से उसमें लोकैषणा बढती है।

१२, १३. (सू० ३४, ३५)

वृत्तिकार ने जात्यार्य का अर्थ विशुद्धमातृक [जिसका मातृपक्ष विशुद्ध हो] और कुल-आर्य का अर्थ विशुद्ध-पितृक

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक पृष्ठ ५७६, ५७७।

[जिसका पितृपक्ष विशुद्ध हो] किया है[1]। ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत मे दो प्रकार की व्यवस्थाए रही हैं—मातृसत्ताक और पितृसत्ताक। मातृसत्ताक व्यवस्था को 'जाति' और पितृसत्ताक व्यवस्था को 'कुल' कहा गया है।

नागों की सस्था मातृसत्ताक थी। वैदिक आर्यों के कुछ समूहो मे मातृसत्ताक व्यवस्था विद्यमान थी। ऋग्वेद में वरुण, मित्र, सविता, पूषन आदि के लिए 'आदित्य' विशेषण मिलता था। अदिति कुछ बडे देवो की माता थी। यह भी मातृसत्ताक व्यवस्था की सूचक है।

ऋग्वेद मे पितृसत्ताक व्यवस्था भी निर्मित होने लगी थी।

दक्षिण के केरल आदि प्रदेशो मे आज भी मातृसत्ताक व्यवस्था विद्यमान है।

इतिहासकारों की मान्यता है कि देवी-पूजा मातृसत्ताक व्यवस्था की प्रतीक है। मातृपूजा की सस्था चीन से योरोप तक फैली हुई थी। ईसाई धर्म मे मेरी की पूजा भी इसी की प्रतीक है।

यह भी माना जाता है कि वैदिक गृहसस्था पितृप्रधान थी और अवैदिक गृहसस्था मातृप्रधान।

प्रस्तुत सूत्रो (३४-३५) मे छह मातृसत्ताक जातियो तथा छह पितृसत्ताक कुलों का उल्लेख है।

प्रस्तुत सूत्र (३४) में अवष्ठ आदि छह जातियो को इभ्य जाति माना है। जो व्यक्ति इभ—हाथी रखने मे समर्थ होता है, वह इभ्य कहलाता है। जनश्रुति के अनुसार इनके पास इतना धन होता था कि उसकी राशि मे सूड को ऊची किया हुआ हाथी भी नही दीख पाता था[2]।

अवष्ठ—इनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण [८।२१] में भी हुआ है। एरियन [६।१५] इन्हें अम्वस्तनोई के नाम से सम्बोधित करता है। ग्रीक आधारो से पता चलता है कि चिनाव के निचले हिस्से पर ये वसे हुए थे[3]।

वृत्तिकार ने कुल-आर्यों का विवरण इस प्रकार किया है—

उग्र—भगवान् ऋषभ ने आरक्षक वर्ग के रूप मे जिनकी नियुक्ति की थी, वे उग्र कहलाए। उनके वशजो को भी उग्र कहा गया है।

भोज[4]—जो गुरु स्थानीय थे वे तथा उनके वशज।

राजन्य—जो मित्र स्थानीय थे वे तथा उनके वशज।

ईक्ष्वाकु—भगवान् ऋषभ के वशज।

ज्ञात[5]—भगवान् महावीर के वशज।

कौरव—भगवान् शान्ति के वशज।

वृत्तिकार ने यह भी वताया है कि उग्र आदि के अर्थ लौकिक रूढि से जान लेने चाहिए[6]।

सिद्धसेनगणि ने तत्त्वार्थसूत्र के भाष्य मे पितृन्वय को जाति और मातृन्वय को कुल माना है। उन्होंने जाति-आर्य मे ईक्ष्वाकु, विदेह, हरि, अम्वष्ठ, ज्ञात, कुरु, वुम्वनाल [वुचनाल], उग्र, भोग [भोज] और राजन्य आदि को माना है तथा कुल-आर्य मे कुलकर, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव के वशजों को गिनाया है[7]।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३४० जात्यार्या विशुद्धमातृका इत्यर्थ, कुल पैतृक पक्ष।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३४० इभमर्हन्तीतीभ्या, यद् द्रव्यस्तूपान्तरित उच्छ्रितकदलिकादण्डो हस्ती न दृश्यते ते इभ्या इति श्रुति।

३ मैकक्रिंडिल, पृष्ठ १५५ नो० २।

४ देखें—दशवैकालिक २।८ का टिप्पण।

५ 'नाय' का सस्कृत रूपान्तर 'ज्ञात' किया जाता है। हमारे मत मे यह 'नाग' होना चाहिए। भगवान् महावीर 'नाग' वश में उत्पन्न हुए थे। इसके पूरे विवरण के लिए देखें हमारी पुस्तक—'अतीत का अनावरण'—पृष्ठ १३१-१४३।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४० कुलं पैतृक पक्ष, उग्रा आदिराजेनारक्षकत्वेन ये व्यवस्थापितास्तद्वश्याश्च, ये तु गुरुत्वेन ते भोगास्तद्वंश्याश्च ये तु वयस्यतयाऽऽचरितास्ते राजन्यास्तद्वश्याश्च इक्ष्वाकव प्रथमप्रजापतिवंशजा ज्ञाता कुरवश्च महावीरशांतिजिनपूर्वजा अथवैते लोकरूढितो ज्ञेया।

७ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, ३।१५, भाष्य तथा वृत्ति।

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे भी ईक्ष्वाकु जाति और भोज कुल मे उत्पन्न व्यक्तियों को जाति-आर्य माना है। उन्होंने अनृद्धिप्राप्त आर्यों की गिनती मे जाति-आर्य को माना है, किन्तु कुल-आर्य के विषय मे कुछ नही कहा है।[1]

१४. (सू० ३७)

प्रस्तुत सूत्र मे छह दिशाओ का उल्लेख है। इसमे विदिशाओ का ग्रहण नही किया गया है। वृत्तिकार ने इस अग्रहण के तीन सभावित कारण माने हैं—

१ विदिशाए दिशाए नहीं हैं।

२ जीवों की गति आदि सभी प्रवृत्तिया इन छह दिशाओ मे ही होती हैं।

३ यह छठा स्थान है, इसलिए छह दिशाओ का ही ग्रहण किया गया है[2]।

१५. समुद्घात (सू० ३६)

विशेष विवरण के लिए देखें—७।१३८, ८।११०।

१६, १७. (सू० ४१, ४२)

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ १६५, १६६।

१८, १६. (सू० ४५, ४६)

उत्तराध्ययन २६।२५, २६ मे प्रतिलेखना की विधि और दोषो का उल्लेख है। यहां उनको प्रमाद प्रतिलेखना और अप्रमाद प्रतिलेखना के रूप मे समझाया गया है।

विशेष विवरण के लिए देखें—

उत्तरज्झयणाणि, भाग १, पृष्ठ ३५३, ३५४।

उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ १६४, १६५।

२०-२३. (सू० ६१-६४)

साव्यावहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान के चार प्रकार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। प्रस्तुत चार सूत्रो (६१-६४) मे एक-एक के छह-छह प्रकार बतलाए हैं, किन्तु उनके प्रतिपक्षी विकल्पो का उल्लेख नही है। धारणा के छह प्रकारों मे, 'क्षिप्र' और 'ध्रुव' के स्थान पर 'पुराण' और 'दुर्धर' का उल्लेख है।

तत्त्वार्थ सूत्र की श्वेताम्बरीय भाष्यानुसारिणी टीका मे अवग्रह आदि के बारह-बारह प्रकार किए हैं।[3] इस प्रकार उन चारो भेदों के कुल ४८ प्रकार होते हैं।

तत्त्वार्थ (दिगम्बरीय परम्परा) मे 'असदिग्ध' और 'सदिग्ध' के स्थान पर 'अनुक्त' और 'उक्त' का निर्देश है।[4]

तत्त्वार्थ (श्वेताम्बरीय परम्परा) मे असदिग्ध और सदिग्ध ही उल्लिखित है।[5]

---

१ तत्त्वार्थराजवर्तिक, ३।३६, वृत्ति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४१ विदिशो न दिशो विदिक्त्वादिति पडेवोक्ता, अथवा एभिरेव जीवानां वक्ष्यमाणा गतिप्रभृतय पदार्था प्राय प्रवर्त्तन्ते, षट्स्थानकानुरोधेन वा विदिशो न विवक्षिता षडेव दिश उक्ता इति।

३ तत्त्वार्थ, १।१६, भाष्यानुसारिणी टीका, पृष्ठ ८४।

४ वही, १।१६ बहुबहुविधक्षिप्रानि श्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।

५ वही, १।१६ बहुबहुविधक्षिप्रानि श्रितासन्दिग्धध्रुवाणां सेतराणाम्।

यन्त्र

सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष

अवग्रह	ईहा	अवाय	धारणा
१ क्षिप्र—अक्षिप्र	१ क्षिप्र—अक्षिप्र	१ क्षिप्र—अक्षिप्र	१ वहु—अवहु
२ वहु—अवहु	२ वहु—अवहु	२ वहु—अवहु	२ वहुविध—अवहुविध
३ वहुविध—अवहुविध	३ वहुविध—अवहुविध	३ वहुविध—अवहुविध	३ पुराण—अपुराण
४ ध्रुव—अध्रुव	४ ध्रुव—अध्रुव	४ ध्रुव—अध्रुव	४ दुर्द्धर—अदुर्द्धर
५ अनिश्रित—निश्रित	५ अनिश्रित—निश्रित	५ अनिश्रित—निश्रित	५ अनिश्रित—निश्रित
६ असदिग्ध—सदिग्ध	६ असदिग्ध—सदिग्ध	६ असदिग्ध—सदिग्ध	६ असदिग्ध—सदिग्ध

१ क्षिप्र—शीघ्रता से जानना।

२ वहु—अनेक पदार्थों को एक-एक कर जानना।

व्यवहारभाष्य के अनुसार इसका अर्थ है—पाच, छह अथवा सात सौ ग्रन्थो (श्लोको) को एक वार मे ही ग्रहण कर लेना[1]।

३ वहुविध—अनेक पदार्थों को अनेक पर्यायो को जानना।

व्यवहारभाष्य के अनुसार इसका अर्थ है—अनेक प्रकार से अवग्रहण करना। जैसे—स्वय कुछ लिख रहा है, साथ-साथ दूसरे द्वारा कथित वचनो का अवधारण भी कर रहा है तथा वस्तुओं को गिन रहा है और साथ-साथ प्रवचन भी कर रहा है। ये सभी प्रवृत्तिया एक साथ चल रही हैं[2]।

इसका दूसरा अर्थ है—अनेक लोगो द्वारा उच्चारित तथा अनेक वाद्यों द्वारा वादित अनेक प्रकार के शब्दो को भिन्न-भिन्न रूप से ग्रहण करना[3]।

वर्तमान मे सप्तावधान नामक अवधान किया जाता है। उसमे अवधानकार के समक्ष तीन व्यक्ति तथा दो व्यक्ति दोनो पार्श्वों मे और दो व्यक्ति पीछे खडे होते हैं। सामने वाले तीन व्यक्ति भिन्न-भिन्न चीजें दिखाते हैं, एक पार्श्व वाला एक शब्द बोलता है, दूसरे पार्श्व वाला तीन अको की एक सख्या कहता है, पीछे खडे दो व्यक्ति अवधानकार के दोनो हाथो मे दो वस्तुओ का स्पर्श करवाते हैं। ये सातो क्रियाए एक साथ होती हैं।

४ ध्रुव—सार्वदिक एकरूप जानना।

५ अनिश्रित—विना किसी हेतु की सहायता लिए जानना।

व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ है—जो न पुस्तको मे लिखा गया है और जो न कहा गया है, उसका अवग्रहण करना[4]।

६ असदिग्ध—निश्चित रूप से जानना।

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २७८

वहुग पुण पच व छस्सत्त गयसया॥

२-३ वही, भाष्यगाथा २७९

वहुहाणेगपयार जह लिहति व धारए गणेइ वि या।
अक्खाणग कहेइ सद्दसमूह व णेगविह॥

४ वही, भाष्यगाथा २८०

'अणिस्सिय' जन्न पोत्थए लिहिया।
अणभासिय च ॥

२४, २५. (सू० ६५, ६६)

विशेष विवरण के लिए देखें—

उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २५१-२८५।

२६. (सू० ६८)

प्राचीन मान्यता के अनुसार ये छह शूद्र कहलाते हैं[1]—

१ अल्प, २ अधम, ३ वैश्या, ४ क्रूरप्राणी, ५ मधुमक्खी, ६ नटी।

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र मे क्षुद्र का अर्थ अधम किया है।[2] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा तेजस्कायिक और वायु-कायिक प्राणियों को अधम मानने के दो हेतु हैं—

१ इनमे देवताओं का उत्पन्न न होना।

२ दूसरे भव मे सिद्ध न हो पाना।[3]

सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय निर्यञ्च योनिक जीवो को अधम मानने के दो हेतु हैं—

१ इनमे देवताओं का उत्पन्न न होना।

२ अमनस्क होने के कारण पूर्ण विवेक का न होना।[4]

वाचनान्तर के अनुमार क्षुद्र प्राणी निम्न छह प्रकार के होते हैं[5]—

१ सिंह, २ व्याघ्र, ३ भेडिया, ४ चीता, ५ रीछ, ६ जरख।

२७ (सू० ६९)

विशेप विवरण के लिए देखें—

उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २६६-२६९।

२८-२९ (सू० ७०-७१)

नरक पृथिविया सात हैं। उनमे क्रमश १३, ११, ९, ७, ५, ३ और एक प्रस्तट हैं। इस प्रकार कुल ४९ प्रस्तट हैं। इन नरक पृथिवियो मे क्रमश इतने ही सीमन्तक आदि गोल नरकेन्द्रक हैं। सीमन्तक के चारो दिशाओ मे ४९ नरकावली और विदिशाओं मे ४८ नरकावली हैं। सारे प्रस्तट ४९ है। प्रत्येक प्रस्तट की दिशा और विदिशा—उभयत एक-एक नरक की हानि करने से सातवीं पृथ्वी मे चारो दिशाओं मे केवल एक-एक नरक और विदिशा मे कुछ भी शेष नहीं रहता।

सीमन्तक की पूर्व दिशा मे सीमन्तकप्रभ, उत्तर मे सीमन्तक मध्यम, पश्चिम मे सीमन्तकावर्त्त और दक्षिण मे सीमन्तकावशिष्ट नरक है।

सीमन्तक की अपेक्षा से चारो दिशाओ मे तृतीय आदि नरक और प्रत्येक आवलिका मे विलय आदि नरक होते हैं।

इस सूत्र मे वर्णित लोल आदि छह नरक आवलिकागत नरको मे गिने गए हैं। वृत्तिकार के कथनानुसार यह उल्लेख 'विमाननरकेन्द्र' ग्रन्थ मे है। उसके अनुसार लोल और लोलुप—ये दोनो आवलिका के अन्त मे हैं, उद्दग्ध, निर्दग्ध—ये दोनो

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४७ अल्पमधम पणस्त्रीं क्रूर सरघा नटीं च षट् क्षुद्रान्।

२ वही, पत्र ३४७ परमिह क्षुद्रा—अधमा।

३ वही, पत्र ३४७ अधमत्व च विकलेन्द्रियतेजोवायूनामनन्तर-भवे सिद्धिगमनाभावाद् तथा एतेपु देवानुत्पत्तेश्च।

४ वही, पत्र ३४७ सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियातिरश्चा चाधमत्व तेपु देवानुत्पत्ते, तथा पञ्चेन्द्रियत्वेऽप्यमनस्कतया विवेकाभावेन निर्गुणत्वादिति।

५ वही, पत्र ३४७ वाचनान्तरे तु सिंहा व्याघ्रा वृका दीपिका ऋक्षास्तरक्षा इति क्षुद्रा उक्ता क्रूरा इत्यर्थ।

सीमन्तकप्रभ से वीसवें और इक्कीसवें नरक हैं, जरक और प्रजरक—ये दोनो सीमन्तकप्रभ से पैंतीसवें और छत्तीसवें नरक हैं। ये सारे नरक पूर्व दिशा की आवलिका मे ही हैं।

उत्तरदिशा की आवलिका मे—लोलमध्य और लोलुपमध्य।

पश्चिमदिशा की आवलिका में—लोलावर्त्त और लोलुपावर्त्त।

दक्षिणदिशा की आवलिका मे—लोलावशिष्ट और लोलुपावशिष्ट।

चौथी नरकपृथ्वी मे सात प्रस्तट और सात नरकेन्द्रक हैं। वृत्तिकार ने सग्रहगाथा का उल्लेख कर उनके नाम इस प्रकार दिए हैं—आर, मार, नार, ताम्र, तमस्क, खाडखड और खण्डखड।

प्रस्तुत सूत्र मे छह नाम उल्लिखित हैं—आर, वार, मार, रौर, रौरुक और खाडखड। ये नाम सग्रहगाथागत नामों से भिन्न-भिन्न हैं। छह नाम देने का कारण सम्भवत यह है कि ये छह अत्यन्त निकृष्ट हैं।

वृत्तिकार के अनुसार आर, मार और खाडखड—ये तीन नरकेन्द्रक हैं। कई वार, रौर और रौरुक को प्रकीर्णक मानते हैं अथवा यह भी सम्भव है कि ये तीन भी नरकेन्द्रक हों, जो नामान्तर से उल्लिखित हुए हैं।[1]

३० (सू० ७२)

वैमानिक देवो के तीन भेद हैं—

कल्प देवलोक [१२ देवलोक]
ग्रैवेयक [९ देवलोक]
अनुत्तर [५ देवलोक]

इन सब मे कुल ६२ विमान प्रस्तट हैं—

१-२	—	१३
३-४	—	१२
५	—	६
६	—	५
७	—	४
८	—	४
९-१०	—	४
११-१२	—	४
ग्रैवेयक	—	९
अनुत्तर	—	१
	कुल	६२

प्रस्तुतसूत्र में पाचवें देवलोक के छह विमान-प्रस्तटो का उल्लेख है[2]।

३१-३३ (सू० ७३-७५)

नक्षत्र-क्षेत्र के तीन भेद हैं—

१ समक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा तीस मुहूर्त्त मे भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र [आकाश-भाग]।

२ अर्द्धसमक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा १५ मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४८।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४९।

३ द्वयर्द्ध समक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा ४५ मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

समक्षेत्र मे भोग मे आने वाले छह नक्षत्र[1] चन्द्र द्वारा पूर्व भाग—अग्र से सेवित होते हैं। चन्द्र इन नक्षत्रो को प्राप्त किए बिना ही इनका भोग करता है। ये चन्द्र के अग्रयोगी माने जाते हैं। अर्द्धसमक्षेत्र मे भोग मे आने वाले छह नक्षत्र चन्द्र द्वारा पहले तथा पीछे सेवित होते हैं। ये चन्द्र के समयोगी माने जाते हैं।

लोकश्री सूत्र मे 'भरणी' नक्षत्र के स्थान पर 'अभिजित्' नक्षत्र का उल्लेख है।[2]

डेढ समक्षेत्र के नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योग करते हैं। ये नक्षत्र चन्द्र द्वारा आगे-पीछे दोनों ओर से भोगे जाते हैं।

वृत्तिकार ने यहा एक संकेत देते हुए बताया है कि निर्धारित क्रम के अनुसार नक्षत्रों द्वारा युक्त होता हुआ चन्द्रमा सुभिक्ष करने वाला होता है और इसके विपरीत योग करने वाला दुर्भिक्ष उत्पन्न करता है[3]।

समवायाग १५।५ मे १५ मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्रो का, तथा ४५।७ मे ४५ मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्रों का उल्लेख है।

३४. (सू० ८०)

आवश्यकनिर्युक्ति मे चन्द्रप्रभ का छद्मस्थ-काल तीन मास का और पद्म प्रभ का छह मास का बतलाया है[4]। वृत्तिकार के अनुसार प्रस्तुत उल्लेख मतान्तर का है[5]।

३५. (सू० ९५)

प्रस्तुत सूत्र मे छह ऋतुओं का प्रतिपादन है। प्रत्येक ऋतु का कालमान दो-दो मास का है—

प्रावृट्—आषाढ और श्रावण।

वर्षा—भाद्रपद और आश्विन।

शरद्—कार्तिक और मृगशिर।

हेमन्त—पौष और माघ।

वसन्त—फाल्गुन और चैत्र।

ग्रीष्म—वैसाख और ज्येष्ठ।

लौकिक व्यवहार के अनुसार छह ऋतुए ये हैं—

१ वर्षा, २ शरद्, ३ हेमन्त, ४ शिशिर, ५ वसन्त और ६ ग्रीष्म।

ये ऋतुए भी दो-दो महीने की हैं और इनका प्रारम्भ श्रावण से होता है।[6]

यह क्रम और व्याख्या आगमिक-क्रम और व्याख्या से भिन्न है।

---

१ बृहत्कल्प, भाष्यगाथा ५५२७ की वृत्ति में समक्षेत्र के १५ नक्षत्र माने हैं—अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वभद्रपदा और रेवती।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४९।

३ वही, पत्र ३४९

उक्तक्रमेण नक्षत्रैर्युज्यमानस्तु चन्द्रमा।
सुभिक्षकृद्विपरीतं युज्यमानोऽन्यथा भवेत्॥

४ आवश्यकनियुक्ति, गाथा २६०, मलयगिरिवृत्ति पत्र २०६ - पद्मप्रभस्य षण्मासा, चन्द्रप्रभस्य त्रय।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ३५० चन्द्रप्रभस्य तु त्रीनिति मतान्तरमिदमिति।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५१ द्विमासप्रमाणकालविशेष ऋतु, तत्राषाढश्रावणलक्षणा प्रावृट् एवं शेषा क्रमेण, लौकिकव्यवहारस्तु श्रावणाद्या वर्षा शरद्धेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्माख्या ऋतव इति।

३६ अवधिज्ञान (सू० ९९)

इसका शाब्दिक अर्थ है—मर्यादा से होने वाला मूर्त्त पदार्थों का ज्ञान। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से इसकी अनेक अवधिया—मर्यादाए हैं, इसलिए इसे अवधिज्ञान कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे इसके छह प्रकारो का उल्लेख है—

१ आनुगामिक—जो ज्ञान अपने स्वामी का सर्वत्र अनुगमन करता है उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहा जाता है। इसमे क्षेत्र की प्रतिबद्धता नही होती।

२ अनानुगामिक—जो ज्ञान अपने उत्पत्ति क्षेत्र मे ही बना रहता है उसे अनानुगामिक अवधिज्ञान कहा जाता है। यह एक स्थान पर रखे दीपक की भाति स्थित होता है। स्वामी जब उस क्षेत्र को छोड चला जाता है तब उसका ज्ञान भी लुप्त हो जाता है।

३ वर्धमानक—जो ज्ञान उत्पत्तिकाल मे छोटा हो और क्रमश बढ़ता रहे, उसे वर्धमानक अवधिज्ञान कहा जाता है। यह वृद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारो मे होती है।

४ हीयमानक—जो ज्ञान उत्पत्तिकाल मे बडा हो और बाद मे क्रमश घटता जाए, उसे हीयमानक अवधिज्ञान कहा जाता है। इसमे विषय का ह्रास होता जाता है।

५ प्रतिपाति—जो ज्ञान एक बार उत्पन्न होकर पुन चला जाए, उसे प्रतिपाति अवधिज्ञान कहा जाता है।

६ अप्रतिपाति—जो ज्ञान एक बार उत्पन्न हो जाने पर नष्ट न हो, उसे अप्रतिपाति अवधिज्ञान कहा जाता है।

अवधिज्ञान के दो प्रकार प्रस्तुत सूत्र के २।१९६-९८ मे बतलाए गए हैं।

विशेष विवरण के लिए देखें—समवायाग, प्रकीर्ण समवाय १७२ तथा प्रज्ञापना पद ३३।

३७ (सू० १०१)

कल्प का अर्थ है—साधु का आचार और प्रस्तार का अर्थ है—प्रायश्चित्त की उत्तरोत्तर वृद्धि। प्रस्तुत सूत्र मे छह प्रस्तारो का उल्लेख है। उनका वर्णन इस प्रकार है—

दो साधु कही जा रहे थे। बडे साधु का पैर एक मरे हुए मेढक पर पडा। तब छोटे साधु ने आरोप की भाषा मे कहा—'आपने इस मेढक को मार डाला?' उसने कहा—'नही'। तब छोटे साधु ने कहा—'आपका दूसरा व्रत [सत्यव्रत] भी टूट गया।' इस प्रकार किसी साधु पर आरोप लगाकर वह गुरु के समीप आता है, उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पहला प्रायश्चित्त-स्थान है।

वह गुरु से कहता है—'इसने मेढक की हत्या की है।' तब उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दूसरा प्रायश्चित-स्थान है।

तब आचार्य बडे साधु से कहते हैं—'क्या तुमने मेढक को मारा है?' वह कहता है—'नही।' तब आरोप लगाने वाले को चतुलघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह तीसरा प्रायश्चित्त-स्थान है। वह अवमरात्निक पुन अपनी बात दोहराता है और जब रात्निक मुनि पुन यही कहता है कि मैंने मेढक को नही 'मारा' तब उसे चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह चौथा प्रायश्चित्त-स्थान है।

तब अवमरात्निक आचार्य से कहता है—'यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो आप गृहस्थो से पूछ लें।' आचार्य अपने वृषभों [सेवारत साधुओं] को भेजते हैं। वे जाकर पूछताछ करते हैं, तब उस काल मे अवमरात्निक को षड्-लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पाचवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

उनके पूछने पर गृहस्थ कहें कि हमने इसको मेढक मारते नहीं देखा है—तब अवमरात्निक को षड्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह छठा प्रायश्चित्त-स्थान है।

वे वृषभ वापस आकर आचार्य से निवेदन करते हैं कि उस साधु ने कोई प्राणातिपात नही किया तब आरोप लगाने वाले को छेद प्रायश्चित प्राप्त होता है। यह सातवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

उस समय अवमरात्निक कहता है—'ये गृहस्थ हैं। ये झूठ बोलते हैं या सच—इसका क्या विश्वास ?' ऐसा कहने पर मूल प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह आठवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

यदि अवमरात्निक कहे कि 'ये साधु और गृहस्थ मिले हुए हैं, मैं अकेला रह गया हूं', तो उसे अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह नौवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

वह यदि यह कहे कि 'तुम सब प्रवचन से बाहर हो—जिनशासन से विलग हो', तब उसे पाराञ्चिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दसवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

इस प्रकार ज्यो-ज्यो वह अपने आरोप को सिद्ध करता है त्यो-त्यो उसका प्रायश्चित्त बढता जाता है और वह अन्तिम प्रायश्चित्त 'पाराञ्चित' तक पहुच जाता है।

जो अपने अपराध का निन्दवन करता है और जो अपने झूठे आरोप को साधने का प्रयत्न करता है—दोनो के उत्तरोत्तर प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

यदि कोई आरोप लगाकर उसको साधने की चेष्टा नही करता और जो आरोप लगाने वाले पर रुष्ट नही होता—दोनो के प्रायश्चित्त की वृद्धि नहीं होती और यदि आरोप लगाने वाला बार-बार आरोप को साधने का चेष्टा करता है और दूसरा जिस पर आरोप लगाया गया है वह, उस पर बार-बार रुष्ट होता है—दोनो के प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

प्राणातिपात के विषय मे होने वाली प्रायश्चित्त की वृद्धि के समान ही शेष मृषावाद आदि पाचो स्थानो मे प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

विशेष विवरण के लिए देखें—

बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६१२६-६१६२।

३८ (सू० १०२)

कौकुचित—इसका अर्थ है—चपलता। वह तीन प्रकार की होती है—

१ स्थान से।

२ शरीर से।

३ भाषा से।

स्थान से— अपने स्थान मे इधर-उधर घूमना, यन्त्र और नर्तक की भाति अपने शरीर को नचाना।

शरीर से—हाथ या गोफण से पत्थर फेंकना, भौंहें, दाढी, स्तन और पुतो को कम्पित करना।

भाषा से—सीटी बजाना, लोगो को हसाने के लिए विचित्र प्रकार से बोलना, अनेक प्रकार की आवाजें करना और भिन्न-भिन्न देशी भाषाओ मे बोलना।[1]

२ तितिणक—इसका अर्थ है—वस्तु की प्राप्ति न होने पर खिन्न हो बकवास करना। साधु जब गोचरी मे जाता है और किसी वस्तु का लाभ न होने पर खिन्न हो जाता है तो वह एषणा की शुद्धि नही रख सकता। वह वैसी स्थिति मे एषणीय या अनेषणीय की परवाह न कर ज्यो-त्यो वस्तु की प्राप्ति करना चाहता है। इसलिए यह एषणा का प्रतिपक्षी है।

भिध्या निदान करण—भिध्या का अर्थ है—लोभ और निदान का अर्थ है—प्रार्थना या अभिलाषा। लोभ से की जाने वाली प्रार्थना आर्त्तध्यान को पोषण देती है, अत वह मोक्ष मार्ग की पलिमन्थु है।

भ० महावीर ने निदानता को सर्वत्र अप्रशस्त कहा है, फिर निदान के साथ 'भिध्या' [लोभ] शब्द का प्रयोग क्यो—यह सहज ही प्रश्न उठता है।

वृत्तिकार का अभिमत है कि वैराग्य आदि गुणो की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले निदान मे आसक्ति भाव नहीं होता। वह वर्जित नहीं है। इस तथ्य को सूचित करने के लिए ही निदान के साथ 'भिध्या' शब्द का प्रयोग किया गया है।[2]

---

१ (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५४।
(ख) देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग २।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५५।
विशेष विवरण के लिए देखें—बृहत्कल्पसूत्र ४।१६, भाष्यगाथा—६३११-६३४८।

३६ (सू० १०३)

इस सूत्र मे विभिन्न सयमो व साधना के स्तरो की सूचना दी गई है। मुनि के लिए पाच सयम होते हैं—सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसपराय और यथाख्यात।[1]

भगवान् पार्श्व के समय मे सामायिक सयम की व्यवस्था थी। भगवान् महावीर ने उसके स्थान पर छेदोपस्थापनीय सयम की व्यवस्था की। इन दोनो सयमो की मर्यादाए अनेक दृष्टिकोणो से भिन्न थी। पृथक्-पृथक् स्थानो मे उनके सकेत मिलते हैं। भाष्यकारो ने दस कल्पो के द्वारा इन दोनो सयमो की मर्यादाओ की पृथक्ता प्रदर्शित की है। दस कल्प श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनो परम्पराओ द्वारा सम्मत हैं—

१ आचेलक्य—वस्त्र न रखना अथवा अल्प वस्त्र रखना। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है—सकल परिग्रह का त्याग।[2]

२ औद्देशिक—एक साधु के लिए वनाए गए आहार का दूसरे साभोगिक साधु द्वारा अग्रहण। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है—साधु को उद्दिष्ट कर वनाए हुए भक्त-पान का अग्रहण।[3]

३ शय्यातरपिंड—स्थानदाता से भक्त-पान लेने का त्याग।

४ राजपिंड—राजपिंड का वर्जन।

५ कृतिकर्म—प्रतिक्रमण के समय किया जाने वाला वन्दन आदि।

६ व्रत—चतुर्याम या पचमहाव्रत।

७ ज्येष्ठ—दीक्षा पर्याय की ज्येष्ठता का स्वीकार।

८ प्रतिक्रमण।

९ मास—शेषकाल मे मासकल्प का विहार।

१० पर्युषणाकल्प—वर्षावासीय आवास की व्यवस्था।

भगवान् पार्श्व के समय मे (१) शय्यातरपिंड का वर्जन, (२) चतुर्याम, (३) पुरुषज्येष्ठत्व और (४) कृतिकर्म—ये चार कल्प अनिवार्य तथा शेष छह कल्प ऐच्छिक होते हैं। यह सामायिक सयम की मर्यादा है। भगवान् महावीर ने उक्त दसो कल्पो को श्रमण के लिए अनिवार्य वना दिया। फलत छेदोपस्थापनीय सयम की मर्यादा में ये दसों कल्प अनिवार्य हो गए।

परिहारविशुद्धिक सयम तपस्या की विशेष साधना का एक स्तर है। निर्विशमानकल्प और निर्विष्टकल्प—ये दोनो परिहारविशुद्धिक सयम के अग हैं।

निर्विशमानकल्पस्थिति—परिहारविशुद्ध चरित्र की साधना मे अवस्थित चार तपोभिमुख साधुओं की आचार सहिता को निर्विशमानकल्प कहा जाता है। वे मुनि ग्रीष्म, शीत तथा वर्षा ऋतु मे जघन्यत क्रमश चतुर्थभक्त (एक उपवास), षष्ठ भक्त (दो उपवास) तथा अष्टमभक्त (तीन उपवास), मध्यमत क्रमश षष्ठभक्त, अष्टमभक्त तथा दशमभक्त (चार उपवास) और उत्कृष्टत अष्टमभक्त, दशमभक्त तथा द्वादशभक्त (पाच उपवास) तपस्या करते हैं। पारणा मे भी अभिग्रह सहित आयविल की तपस्या करते हैं। सभी तपस्वी जघन्यत नव पूर्वों तथा उत्कृष्टत दस पूर्वों के ज्ञाता होते हैं।

---

१ स्थानांग ५।१३६।

२ मूलाराधना, पृष्ठ ६०६

सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते।

३ वही, पृष्ठ ६०६।

निर्विष्टकल्पस्थिति—इसका अर्थ है—परिहारविशुद्ध चरित्र मे पूर्वाभिहित तपस्या कर लेने के बाद जो पूर्व परिचारकों की सेवा मे सलग्न रहते हैं, उनकी आचार-विधि।

परिहारविशुद्ध चरित्र की साधना में नौ साधु एक-साथ अवस्थित होते हैं। उनमे चार साधुओ का पहला वर्ग तपस्या करता है। उस वर्ग को निर्विशमानकल्प कहा जाता है। चार साधुओ का दूसरा वर्ग उसकी परिचर्या करता है तथा एक साधु आचार्य होता है। उन चारो की तपस्या पूर्ण हो जाने पर शेष चार साधु तपस्या करते हैं तथा जो तपस्या कर चुके, वे तपस्या मे सलग्न साधुओ की परिचर्या करते हैं।

दोनो वर्गों की तपस्या पूर्ण हो जाने के बाद आचार्य तपस्या मे अव्यवस्थित होते हैं और आठो ही साधु उनकी परिचर्या करते हैं।[1]

जिनकल्पस्थिति—विशेष साधना के लिए जो सघ से अलग होकर रहते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है। वे अकेले रहते हैं। वे शारीरिक शक्ति और मानसिक दृढता से सम्पन्न होते हैं। वे धृतिमान् और अच्छे सहनन से युक्त होते हैं। वे सभी प्रकार के उपसर्ग सहने मे समर्थ तथा परीषहो का सामना करने मे निडर रहते हैं।[2]

प्रवचनसारोद्धार के अनुसार जिनकल्पस्थिति का वर्णन इस प्रकार है—

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणावच्छेदक—इन पाचो मे से जो जिनकल्प को स्वीकार करना चाहते हैं, वे पहले तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल—इन पाच तुलाओं से अपने-आप को तौलते हैं और इनमे पूर्ण हो जाने पर जिन-कल्प स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त जो मुनि इस कल्प को अपनाना चाहते हैं, उनके लिए इन पाच तुलाओं का अभ्यास अनिवार्य नहीं होता। वे गच्छ के अन्दर रहते हुए आगमोक्त विधि से अपनी आत्मा का परिकर्म करते हैं और जब जिनकल्प स्वीकार करना होता है तब सबसे पहले वे सारे सघ को एकत्रित करते हैं। यदि ऐसा सभव न हो सके तो अपने गण को अवश्य ही एकत्रित करते हैं। पश्चात् तीर्थंकर, गणधर, चतुर्दशपूर्वधर या सपूर्ण दशपूर्वधर के पास जिनकल्प स्वीकार करते हैं। इनमें से कोई उपलब्ध न होने पर वे वट, अश्वत्थ, अशोक आदि वृक्षो के समीप जाकर जिनकल्प स्वीकार करते हैं। यदि वे गणी होते हैं तो अपने गण में गणधर की नियुक्ति कर सारे सघ से क्षमायाचना करते हैं। यदि वे गणी नही हैं, सामान्य साधु हैं, तो वे किसी की नियुक्ति नहीं करते किन्तु समूचे गण से क्षमायाचना करते हैं। यदि समूचा गण उपस्थित न हो तो अपने गच्छ वाले श्रमणो से क्षमायाचना करते हैं। वे कहते हैं—'यदि प्रमादवश मैंने आपके प्रति सद्व्यवहार नही किया हो तो आप मुझे क्षमा करें। मैं नि शल्य और निष्कषाय होकर आपसे क्षमायाचना करता हू।' तब सभी साधु आनन्द के आसू बहाते हुए हाथ जोडकर, भूमि पर सिर को टिकाए, छोटे-बडे के क्रम से क्षमायाचना करते हैं। इस क्षमायाचना से निम्न गुणों का उद्दीपन होता है।[3]

१ नि शल्यता।
२ विनय।
३ दूसरों को क्षमायाचना की प्रेरणा।
४ हल्कापन।
५ क्षमायाचना के कारण अकेलेपन का स्थिर ध्यान या अनुभव।
६ ममत्व का छेद।

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६४४७-६४८१।
२ वही, गाथा ६४८४, वृत्ति—।
३ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा १३७०
खामितस्स गुणा खलु, निस्सल्लय विणय दीवणा मग्गे।
लाघवियं एगत्त, अप्पडिबंधो अ जिणकप्पे॥

इस प्रकार क्षमायाचना कर वे अपने उत्तराधिकारी आचार्य को शिक्षा देते हुए कहते हैं—'गण मे बाल, वृद्ध सभी प्रकार के मुनि हैं। सारणा-वारणा से सघ की सम्यक् देख-रेख करना। शिष्य और आचार्य का यही क्रम है कि आचार्य अव्यवच्छित्तिकारक शिष्य का निष्पादन कर, शक्ति रहते-रहते, जिनकल्प को स्वीकार कर ले। तुम भी योग्य शिष्य का निष्पादन करने के पश्चात् इस कल्प को स्वीकार कर लेना। जो बहुश्रुत और पर्याय ज्येष्ठ मुनि हैं, उनके प्रति यथोचित विनय करने मे प्रमाद मत करना।

तप, स्वाध्याय, वैयावृत्य आदि-आदि साधनो के विभिन्न कार्य हैं। इनमे जो साधु जिस कार्य मे रुचि रखता है, उस को उसी कार्य मे योजित करना। गण मे छोटे, बडे, अल्पश्रुत या बहुश्रुत—किसी प्रकार के मुनियो का निरस्कार मत करना।

वे साधुओ को इगित कर कहते हैं—"आर्यो ! मैंने अमुक मुनि को योग्य समझ कर गण का भार सौंपा है। तुम कभी यह मत सोचना कि यह हमसे छोटा है, समान है, अल्पश्रुत वाला है। हम इसकी आज्ञा का पालन क्यों करें ? तुम हमेशा यह सोचना कि 'यह मेरे स्थान पर नियुक्त हैं, अत पूज्य है।' 'यह सोचकर उसकी पूजा करना, उसकी आज्ञा का अखड पालन करना।"

यह शिक्षा देकर वे वहा से अकेले ही चल पडते हैं। सारा सघ उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक चलता है। कुछ दूर जाकर सघ रुक जाता है और जिनकल्प प्रतिपन्न मुनि अकेले चले चलते हैं। जब तक वे दीखते हैं, तब तक सभी मुनि उन्हें एकटक देखते रहते हैं और जब वे दीखने बन्द हो जाते हैं तब वे अपने-अपने स्थान पर अत्यन्त आनन्दित होकर लौट आते हैं। वे मन ही मन कहते हैं—'अहो ! हमारे गुरुदेव ने सुखसेवनीय स्थविरकल्प को छोडकर, अतिदुष्कर, जिनकल्प को स्वीकार किया है।'[1]

जिनकल्पिक मुनियो की चर्या आदि का विशेष विवरण बृहत्कल्पभाष्य मे प्राप्त होता है। वह इस प्रकार है—

१ श्रुत—जिनकल्पी जघन्यत प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व की तीसरी आचारवस्तु के ज्ञाता तथा उत्कृष्टत अपूर्ण दशपूर्वधर होते हैं। सपूर्ण दशपूर्वधर जिनकल्प अवस्था स्वीकार नही करते।

२ सहनन—वे वज्रऋषभनाराच सहनन वाले होते हैं।

३ उपसर्ग—उनके उपसर्ग हो ही, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु जो भी उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, उन सबको वे समभाव से सहन करते है।

४ आतक—रोग या आतक उत्पन्न होने पर वे उन्हे समभाव से सहन करते हैं।

५ वेदना—उनके दो प्रकार की वेदनाए होती हैं—

१ आभ्युपगमिकी—लुचन, आतापना, तपस्या आदि करने से उत्पन्न वेदना।

२ औपक्रमिकी—अवस्था से उत्पन्न तथा कर्मों के उदय से उत्पन्न वेदना।

६ कतिजन—वे अकेले ही होते हैं।

७ स्थडिल—वे उच्चार और प्रस्रवण का उत्सर्ग विजन तथा जहा लोग न देखते हो, ऐसे स्थान में करते हैं।

वे कृतकार्य होने पर (हेमन्त ऋतु के चले जाने पर) उसी स्थडिल मे वस्त्रों का परिष्ठापन कर देते हैं। अल्पभोजी और रूक्षभोजी होने के कारण उनके मल बहुत थोडा बधा हुआ होता है, इसलिए उन्हे निर्लेपन (शुचि लेने) की आवश्यकता नही होती। बहुदिवसीय उपसर्ग प्राप्त होने पर भी वे अस्थडिल मे मल-मूत्र का उत्सर्ग नही करते।

८ वसति—वे जैसा स्थान मिले वैसे मे ही ठहर जाते हैं। वे साधु के लिए लीपी-पुती वसति मे नही ठहरते। बिलो को धूल आदि से नही ढँकते, पशुओ द्वारा खाए जाने पर या तोडे जाने पर भी वसति की रक्षा के लिए पशुओ का निवारण नहीं करते, द्वार बन्द नही करते, अर्गला नही लगाते।

९ उनके द्वारा वसति की याचना करने पर यदि गृहस्वामी पूछे कि आप यहा कितने समय तक रहेंगे ? इस जगह आप को मल-मूत्र का त्याग करना है, यहा नहीं करना है। यहा बैठें, यहा न बैठें। इन निर्दिष्ट तृण-फलको का उपयोग

---

१ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४०, वृत्ति पत्र १२६-१२८।

करें, इनका न करें। गाय आदि पशुओ की देख-भाल करें, मकान की उपेक्षा न करें, उसकी सार-सभाल करते रहे तथा इसी प्रकार के अन्य नियत्रणो की बातें कहे तो जिनकल्पिक मुनि ऐसे स्थान में कभी न रहे।

१० जिस वसति मे बलि दी जाती हो, दीपक जलता हो, अग्नि आदि का प्रकाश हो तथा गृहस्वामी कहे कि मकान का भी थोडा ध्यान रखें या वह पूछे कि आप इस मकान मे कितने व्यक्ति रहेगे ?—ऐसे स्थान मे भी वे नहीं रहते। वे दूसरे के मन मे सूक्ष्म अप्रीति भी उत्पन्न करना नही चाहते, इसलिए इन सबका वर्जन करते हैं।

११ भिक्षाचर्या के लिए तीसरे प्रहर मे जाते हैं।

१२ सात पिंडैषणाओ मे से प्रथम दो को छोडकर शेष पाच एपणाओ से अलेपकृत भक्त-पान लेते है।

१३ मल-भेद आदि दोष उत्पन्न होने की सभावना के कारण वे आचामाम्ल नही करते। वे मासिकी आदि भिक्षु प्रतिमा तथा भद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा आदि प्रतिमाए स्वीकार नही करते।

१४ जहा मासकल्प करते हैं, वहा उस गाव या नगर को छह भागो मे विभक्त कर, प्रतिदिन एक-एक विभाग मे भिक्षा के लिए जाते हैं।

१५ वे एक ही वसति मे सात (जिनकल्पिको) से अधिक नही रहते। वे एक साथ रहते हुए भी परस्पर सभाषण नही करते। भिक्षा के लिए एक ही वीथि मे दो नही जाते।

१६ क्षेत्र—जिनकल्प मुनि का जन्म और कल्पग्रहण कर्मभूमि मे ही होता है। देवादि द्वारा सहरण किए जाने पर वे अकर्मभूमि में भी प्राप्त हो सकते है।

१७ काल—अवसर्पिणी काल मे उत्पन्न हो तो उनका जन्म तीसरे-चौथे अर मे होता है और जिनकल्प का स्वीकार तीसरे, चौथे और पाचवें मे भी हो सकता है। यदि उत्सर्पिणी काल मे उत्पन्न हो तो दूसरे, तीसरे और चौथे अर मे जन्म लेते हैं और जिनकल्प का स्वीकार तीसरे और चौथे अर मे ही करते हैं।

१८ चारित्र—सामायिक अथवा छेदोपस्थानीय सयम मे वर्तमान मुनि जिनकल्प स्वीकार करते हैं। उसके स्वीकार के पश्चात् वे सूक्ष्मसपराय आदि चारित्र मे भी जा सकते हैं।

१९ तीर्थ—वे नियमत तीर्थ मे ही होते हैं।

२० पर्याय—जघन्यत उनतीस वर्ष की अवस्था मे (९ गृहवास के और २० श्रमण-पर्याय के) और उत्कृष्टत गृहस्थ और साधु-पर्याय की कुछ न्यून करोड पूर्व मे, इस कल्प को ग्रहण करते हैं।

२१ आगम—जिनकल्प स्वीकार करने के बाद वे नए श्रुत का अध्ययन नही करते, किन्तु चित्त-विक्षेप से बचने के लिए पहले पढे हुए श्रुत का स्वाध्याय करते हैं।

२२ वेद—स्त्रीवेद के अतिरिक्त पुरुषवेद तथा असक्लिष्ट नपुसकवेद वाले व्यक्ति इसे स्वीकार करते है। स्वीकार करने के बाद वे सवेद या अवेद भी हो सकते हैं। यहा अवेद का तात्पर्य उपशान्त वेद से है। क्योंकि वे क्षपकश्रेणी नहीं ले सकते, उपशमश्रेणी लेते हैं। उन्हें उस भव मे केवलज्ञान नहीं होता।

२३ कल्प—वे दोनों कल्प—स्थितकल्प अथवा अस्थितकल्प वाले होते हैं।

२४ लिंग—कल्प स्वीकार करते समय वे नियमत द्रव्य और भाव—दोनो लिंगो से युक्त होते हैं। आगे भावलिंग तो निश्चय ही होता है। द्रव्यलिंग जीर्ण या चोरो द्वारा अपहृत हो जाने पर हो भी सकता है और नही भी।

२५ लेश्या—उनमें कल्प स्वीकार के समय तीन प्रशस्त लेश्याए (तैजस, पद्म और शुक्ल) होती हैं। बाद मे उनमे छहों लेश्याए हो सकती हैं, किन्तु वे अप्रशस्त लेश्याओ मे बहुत समय तक नही रहते और वे अप्रशस्त लेश्याए अति सक्लिष्ट नही होतीं।

२६ ध्यान—वे प्रवर्द्धमान धर्म्य ध्यान मे कल्प का स्वीकरण करते हैं, किन्तु बाद मे उनमे आर्त्त-रौद्र ध्यान की सद्-भावना भी हो सकती है। उनमे कुशल परिणामो की उद्दामता रहती है, अत ये आर्त्त-रौद्र ध्यान भी प्राय निरनुबध होते हैं।

२७ गणना—एक समय मे इस कल्प को स्वीकार करने वालों की उत्कृष्ट सख्या शतपृथक्त्व (९००) और पूर्व स्वीकृत के अनुसार यह सख्या सहस्रपृथक्त्व (९०००) होती है। पन्द्रह कर्मभूमियो मे उत्कृष्टत इतने ही जिनकल्पी प्राप्त हो सकते हैं।

२८ अभिग्रह—वे अल्पकालिक कोई भी अभिग्रह स्वीकार नही करते। उनके जिनकल्प अभिग्रह जीवन पर्यन्त होता है। उसमे गोचर आदि प्रतिनियत व निरपवाद होते हैं, अत उनके लिए जिनकल्प का पालन ही परम विशुद्धि का स्थान है।

२६ प्रव्रज्या—वे किसी को दीक्षित नही करते, किसी को मुड नहीं करते। यदि ये जान जाए कि अमुक व्यक्ति अवश्य ही दीक्षा लेगा, तो वे उसे उपदेश देते हैं और उसे दीक्षा-ग्रहण करने के लिए सविग्न गीतार्थ साधु के पास भेज देते हैं।

३० प्रायश्चित्त—मानसिक सूक्ष्म अतिचार के लिए भी उनको जघन्यत चतुर्गुरुक मासिक प्रायश्चित्त लेना होता है।

३१ निष्प्रतिकर्म—वे शरीर का किसी भी प्रकार से प्रतिकर्म नही करते। आख आदि का मैल भी नही निकालते और न कभी किसी प्रकार की चिकित्सा ही करवाते हैं।

३२ कारण—वे किसी प्रकार के अपवाद का सेवन नही करते।

३३ काल—वे तीसरे प्रहर मे भिक्षा करते हैं और विहार भी तीसरे प्रहर मे ही करते हैं। शेष समय मे वे प्राय. कायोत्सर्ग मे स्थित रहते है।

३४ स्थिति—विहरण करने मे असमर्थ होने पर वे एक स्थान पर रहते हैं, किन्तु किसी प्रकार के दोष का सेवन नही करते।

३५ सामाचारी—साधु-सामाचारी के दस भेद हैं। इनमे से वे आवश्यिकी, नैषेधिकी, मिथ्याकार, आपृच्छा और उपसपद्—इन पाच सामाचारियों का पालन करते हैं।

स्थविरकल्पस्थिति—जो सघ मे रहकर साधना करते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को स्थविरकल्पस्थिति कहा जाता है। उनके मुख्य अग ये हैं—

(१) सतरह प्रकार के सयम का पालन। (२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र की परम्परा का विच्छेद न होने देना। इसके लिए शिष्यो को ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे निपुण करना। (३) वृद्धा अवस्था में जघावल क्षीण होने पर स्थिरवास करना।[1]

भावसग्रह के अनुसार जिनकल्पी और स्थविरकल्पी का स्वरूपचित्रण इस प्रकार है—

जिनकल्पी—जिनकल्प मे स्थित श्रमण वाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थियो से रहित, निस्नेह, निस्पृह और वाग्गुप्त होते हैं। वे सदा जिन भगवान् की भाति विहरण करते रहते हैं।[2]

यदि उनके पैरो मे काटा चुभ जाए या आखो मे धूलि गिर जाए तो भी वे अपने हाथो से न काटा निकालते हैं और न धूल ही पोछते हैं। यदि कोई दूसरा व्यक्ति वैसा करता है तो वे मौन रहते हैं[3]।

वे ग्यारह अगो के धारक होते हैं। वे अकेले रहते हैं और धर्म्य-शुक्ल ध्यान मे लीन रहते हैं। वे सम्पूर्ण कषायो के त्यागी, मौनव्रती और कन्दराओं मे रहते हैं[4]।

स्थविरकल्पी—इस दु षमकाल मे सहनन और गुणो की क्षीणता के कारण मुनि पुर, नगर और ग्राम मे रहने लगे हैं, वे तप की प्रभावना करते हैं। वे स्थविरकल्पी कहलाते हैं[5]।

वे मुनि समुदाय रूप मे विहार कर अपनी शक्ति के अनुसार धर्म की प्रभावना करते हैं। वे भव्य व्यक्तियो को धर्म का श्रवण कराते हैं तथा शिष्यो का ग्रहण और पालन करते हैं[6]।

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६४८५।

२ भावसंग्रह, गाथा १२३

वहिरतरगयचुवा णिण्णेहा णिप्पिहा य जइवइणो।
जिण इव विहरति सदा ते जिणकप्पे ठिया सवणा॥

३ वही, गाथा १२०

जत्थ य कंटयभग्गो पाए णयणम्मि रयपविट्ठम्मि।
फेडंति सयं मुणिणा परावहारे य तुण्हिक्का।

४ वही, गाथा १२२

एगारसंगधारी एआई धम्मसुक्कझाणी य।
चत्तासेसकसाया मोणवई कदरावासी॥

५ वही, गाथा १२७

सहणणस्स य, दुस्समकालस्स तवपहावेण।
पुरनयरगामवासी, थविरे कप्पे ठिया जाया॥

६ वही, गाथा १२६

समुदायेण विहारो, धम्मस्स पहावणं ससत्तीए।
भवियाण धम्मसवणं, सिस्साण च पालण गहण॥

पहले मुनिगण जितने कर्मों को हजार वर्षों मे क्षीण करते थे, उतने कर्मों को वर्तमान मे हीन सहनन वाले, स्थविर-कल्पी मुनि, एक वर्ष में क्षीण कर देते हैं[1]।

४० परिणाम (सू० १०६)

वृत्तिकार ने परिणाम के चार अर्थ किए हैं[2]—१ पर्याय, २. स्वभाव, ३ धर्म, ४ विपाक।

प्रस्तुत सूत्र मे परिणाम शब्द दो अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है—पर्याय और विपाक। प्रथम दो विभाग पर्याय के और शेष चार विपाक के उदाहरण हैं।

४१. (सू० ११६)

एक साथ जितने कर्म-पुद्गल जिस रूप मे भोगे जाते हैं उस रूप-रचना का नाम निषेक है। निधत्त का अर्थ है—कर्म का निषेक के रूप मे बन्ध होना। जिस समय आयु का बन्ध होता है तब वह जाति आदि छहो के साथ निधत्त—निषिक्त होता है। अमुक आयु का बन्ध करने वाला जीव उसके साथ-साथ एकेन्द्रिय आदि पाच जातियों मे से किसी एक जाति का, नरक आदि चार गतियो में से किसी एक गति का, अमुक समय की स्थिति—काल-मर्यादा का, अवगाहना—औदारिक या वैक्रिय शरीर मे से किसी एक शरीर का तथा आयुष्य के प्रदेशो—परमाणु-सचयों का और उसके अनुभाव—विपाकशक्ति का भी बन्ध करता है।

४२ भाव (सू० १२४)

कर्म आठ हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनके मुख्य दो वर्ग हैं—घात्य और अघात्य। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये चार घात्य-कोटि और शेष चार अघात्य-कोटि के कर्म हैं। इनके उदय आदि से तथा काल-परिणमन से होने वाली जीव की अवस्था को भाव कहा जाता है। भाव छह हैं—

औदयिक—कर्मों के उदय से होने वाली जीव की अवस्था।

औपशमिक—मोह कर्म के उपशम से होने वाली जीव की अवस्था।

क्षायिक—कर्मों के क्षय से होने वाली जीव की अवस्था।

क्षायोपशमिक—घात्य कर्मों के क्षयोपशम [उदित कर्मों के क्षय और अनुदित कर्मों के उपशम] से होने वाली जीव की अवस्था।

पारिणामिक—काल-परिणमन से होने वाली जीव की अवस्था।

सान्निपातिक—दो या अधिक भावो के योग से होने वाली जीव की अवस्था।

इसके २६ विकल्प होते हैं—

दो के सयोग से—	१० विकल्प
तीन के सयोग से—	१० विकल्प
चार के सयोग से—	५ विकल्प
पाच के सयोग से—	१ विकल्प

इनके विस्तार के लिए देखें—अनुयोगद्वार, सूत्र २८६-२६७।

---

१ भावसंग्रह, गाथा १३१

वरिससहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण।
तं संपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५६ —

परिणाम —पर्याय· स्वभावो धर्म्म इति यावत्।
परिणामो—विपाक।

परस्पर अविरुद्ध विकल्पों के आधार पर इसके १५ भेद होते हैं—

औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक चारों गतियों में एक-एक—४ विकल्प
क्षायिक—चारों गतियों में—४ विकल्प
औपशमिक—चारों गतियों में—४ विकल्प
उपशम श्रेणी का—[यह केवल एक मनुष्य गति में ही होता है]—१ विकल्प
केवली का—[केवल मनुष्य में ही]—१ विकल्प
सिद्ध का— १ विकल्प

इसका विस्तार इस प्रकार है—

उदय, क्षयोपशम और परिणाम से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प—

- ० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।
- ० तिर्यञ्च—औदयिक-तिर्यञ्चत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।
- ० मनुष्य—औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।
- ० देव—औदयिक-देवत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।

क्षय के योग से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प—

० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।
इसी प्रकार अन्य तीन गतियों में योजना करनी चाहिए।

उपशम के योग से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प—

० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, औपशमिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।
इसी प्रकार अन्य तीन गतियों में योजना करनी चाहिए।
० उपशम श्रेणी से निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प केवल मनुष्य के ही होता है।
औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, उपशान्त-कषाय, पारिणामिक-जीवत्व।
० केवली से निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प—
औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।
० सिद्ध से निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प—
क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।
इन विकल्पों की समस्त संख्या १५ है।

पांचों भावों के ५३ भेद भी किए गए हैं—

१ औपशमिक भाव के दो भेद—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र।

२ क्षायिक भाव के नौ भेद—दर्शन, ज्ञान, दान, लाभ, उपभोग, भोग, वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र।

३ क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद—चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम।

४ औदयिकभाव के २१ भेद—चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, छह लेश्या, अज्ञान, मिथ्यात्व, असिद्धत्व और असंयम।

५ पारिणामिक भाव के तीन भेद—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व[1]।

---

१ अनुयोगद्वार, सूत्र २७१-२९७।

सत्तमं ठाणं

सप्तम स्थान

आमुख

साधना व्यक्तिगत होती है, फिर भी कुछ कारणों से उसे सामुदायिकरूप दिया गया। इस कार्य मे जैन तीर्थंकरों का महत्वपूर्ण योगदान है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना सम्यक्रूप से करने के लिए साधु सघ का सदस्य होता है। संघ मे अनेक गण होते हैं। जिस गण मे साधु रहता है उसकी व्यवस्था का पालन वह निष्ठा के साथ करता है। जब उसे यह अनुभूति होने लग जाय कि इस गण मे रहने से मेरा विकास नहीं होता तो वह गण परिवर्तन के लिए स्वतन्त्र होता है। साधना की भूमिका के परिपक्व होने पर वह एकाकी रहने की स्वीकृति भी प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत स्थान में गण-परिवर्तन के साथ हेतु बतलाए गए हैं।[1]

साधना का सूत्र है अभय। भगवान् महावीर ने कहा—जो भय को नहीं जानता और नहीं छोड़ता वह अहिंसक नहीं हो सकता, सत्यवादी और अपरिग्रही भी नहीं हो सकता। भय का प्रवेश तब होता है जब व्यक्ति दूसरे से अपने को हीन मानता है। मनुष्य को मनुष्य से भय होता है, यह इहलोक भय है। मनुष्य को पशु आदि से भय होता है, यह परलोक भय है। धन आदि पदार्थों के अपहरण का भय होता है। मृत्यु का भय होता है। पीडा या रोग का भय होता है। अपयश का भय होता है।[2]

अहिंसा के आचार्यों ने अभय को महत्वपूर्ण स्थान दिया। राजनीति के मनीषी भय की भी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि दण्ड-भय के बिना समाज नहीं चल सकता। प्रस्तुत आगम मे विविध विषय सकलित हैं, इसलिए इसमे भय और दण्ड के प्रकार भी प्रतिपादित हैं। दण्डनीति के सात प्रकार बतलाए गए हैं, इनमें उनके क्रमिक विकास का इतिहास है। प्रथम कुलकर विमलवाहन के समय मे हाकार नीति का प्रयोग शुरू हुआ। उस समय कोई अपराध करता उन्हें "हा! तूने ऐसा किया" यह कहा जाता। यह उनके लिए महान दण्ड होता। वे स्वय अनुशासित और लज्जाशील थे। यह दण्ड नीति दूसरे कुलकर के समय तक चली। तीसरे कुलकर यशस्वी और चौथे कुलकर अभिचन्द्र के समय में दो दण्ड नीतियों का प्रयोग होने लगा। सामान्य अपराध के लिए हाकार और बडे अपराध के लिए माकारनीति (मत करो) का प्रयोग किया जाता था। पांचवें प्रसेनजित, छट्ठे मरुदेव और सातवें नाभि कुलकर के समय मे तीन दण्डनीतियां प्रचलित थीं। छोटे अपराध के लिए हाकार मध्यम अपराध के लिए माकार और बडे अपराध के लिए धिक्कार की नीति का प्रयोग किया जाता था। उस समय तक मनुष्य ऋजु, मर्यादा-प्रिय और स्वयशासित थे। जैसे-जैसे समाज व्यवस्था विकसित होती गई स्वय का अनुशासन कम होता गया, वैसे-वैसे सामाजिक दण्ड का भी विकास होता गया। राज्य की स्थापना के साथ अनेक दण्ड प्रचलित हो गए, जैसे—

परिभाषक—थोडे समय के लिए नजरबद करना—क्रोधपूर्ण शब्दों मे अपराधी को 'यहीं बैठ जाओ' ऐसा आदेश देना।

मडलिबध—नजरबद करना—नियमित क्षेत्र से बाहर न जाने का आदेश देना।

चारक—कैद मे डालना।

छविच्छेद—हाथ पैर आदि काटना।[3]

---

१ ७।१।

२ ७।२७।

३ ७।४०-४३।

दण्डनीति का विकास इस बात का सूचक है कि मनुष्य जितना स्वयं शासित होता है, दण्ड का प्रयोग उतना ही कम होता है। और आत्मानुशासन जितना कम होता है, दण्ड का प्रयोग उतना ही बढ़ता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में भी धिग्दण्ड का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार दण्ड के चार प्रकार हैं—

धिग्दण्ड—धिक्कार युक्त वचनों द्वारा बुरे मार्ग पर जाने से रोकना।

वाग्दण्ड—कठोर वचनों के द्वारा अपराध करने वाले व्यक्ति को वैसा न करने की शिक्षा देना।

धनदण्ड—पैसे का दण्ड। बार-बार अपराध न करने के लिए निषेध करने पर भी न माने तब धन के रूप में जो दण्ड दिया जाता है, उसे धनदण्ड कहते हैं।

वधदण्ड—अनेक बार समझाने पर जब अपराधी अपने स्वभाव को नहीं बदलता, तब उसे वध करने का दण्ड दिया जाता है।[1]

मनुष्य अनेक शक्तियों का पुञ्ज है। उसमें विवेक है, चिंतन है। उसके पास भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा का सशक्त माध्यम भी है। वह प्रारम्भ में अपने भावों को कुछेक शब्दों में अभिव्यक्त करता था, किन्तु विकसित अवस्था में उसकी भाषा विकसित हो गई और उसने अभिव्यक्ति में सौन्दर्य लाने का प्रयत्न किया। उस प्रयत्न में गद्य और पद्य शैली का विकास हुआ। लौकिक ग्रन्थों में उसकी विशद चर्चा मिलती है। काव्यशास्त्र और संगीतशास्त्र की दीर्घकालीन परम्परा है। सूत्रकार ने हेय और उपादेय की मीमांसा के साथ-साथ ज्ञेय विषयों का संकलन भी किया है। स्वर-मण्डल उसका एक उदाहरण है। इस संग्रह सूत्र में अन्यान्य विषयों का जहां नाम-निर्देश है वहां स्वर-मंडल का विशद वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत स्थान सात की संख्या से सम्बन्धित है। इसमें जीव-विज्ञान, लोक-स्थिति संस्थान, गोत्र, नय, आसन, पर्वत, चक्रवर्तीरत्न, दुषमाकाल की पहचान, सुषमाकाल की पहचान, संयम-असंयम, आरंभ, धान्य की स्थिति का समय, देवपद, समुद्घात, प्रवचन-निह्नव, नक्षत्र, विनय के प्रकार, इतिहास और भूगोल-सम्बन्धी अनेक विषय संकलित हैं।

---

१ याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, राजधर्म, श्लोक ३६७।
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो, धनदण्डो वधस्तथा
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा, ह्यपराधवशादिमे।

सत्तम ठाणं

मूल

गणावक्कमण-पदं

१ सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—
सव्वधम्मा रोएमि।
एगइया रोएमि,
एगइया णो रोएमि।
सव्वधम्मा वितिगिच्छामि।
एगइया वितिगिच्छामि,
एगइया णो वितिगिच्छामि।
सव्वधम्मा जुहुणामि।
एगइया जुहुणामि,
एगइया णो जुहुणामि।
इच्छामि ण भते! एगल्लविहार-पडिम उवसपिज्जत्ता णं विहरित्तए।

संस्कृत छाया

गणापक्रमण-पदम्

सप्तविध गणापक्रमण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सर्वधर्मान् रोचयामि।
एककान् रोचयामि,
एककान् नो रोचयामि।
सर्वधर्मान् विचिकित्सामि।
एककान् विचिकित्सामि,
एककान् नो विचिकित्सामि।
सर्वधर्मान् जुहोमि।
एककान् जुहोमि,
एककान् नो जुहोमि।
इच्छामि भदन्त! एकाकिविहार-प्रतिमा उपसपद्य विहर्तुम्।

हिन्दी अनुवाद

गणापक्रमण-पद

१ सात कारणो से गण से अपक्रमण किया जा सकता है—
१ सब धर्मों [श्रुत व चारित्र के प्रकारो] मे मेरी रुचि है। यहा उनकी पूर्ति के साधन नही है। इसलिए भते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
२ कुछेक धर्मों मे मेरी रुचि है और कुछेक धर्मों मे मेरी रुचि नही है। जिनमे मेरी रुचि है उनकी पूर्ति के साधन यहा नही हैं। इसलिए भते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
३ सब धर्मों के प्रति मेरा सशय है। सशय को दूर करने के लिए भते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
४ कुछेक धर्मों के प्रति मेरा सशय है और कुछेक धर्मों के प्रति मेरा सशय नही है। सशय को दूर करने के लिए भते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
५ मैं सब धर्मों को दूसरो को देना चाहता हू। इस गण मे कोई योग्य व्यक्ति नही है जिसे कि मैं सब धर्म दे सकूं। इसलिए भते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
६ मैं कुछेक धर्मों को दूसरो को देना चाहता हू और कुछेक धर्मों को नही देना चाहता। इस गण मे कोई योग्य व्यक्ति नहीं है जिसे कि मैं जो देना चाहता हू वह दे सकू। इसलिए भते! मैं इस गण मे अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।
७ भते! मैं 'एकलविहार प्रतिमा' को स्वीकार कर विहरण करना चाहता हू। इसलिए इस गण से अपक्रमण करता हू।

विभगणाण-पद

२ सत्तविहे विभगणाणे पण्णत्ते, त जहा—
एगदिसिं लोगाभिगमे,
पचदिसिं लोगाभिगमे,
किरियावरणे जीवे,
मुदग्गे जीवे, अमुदग्गे जीवे,
रुवी जीवे, सव्वमिण जीवा।
तत्थ खलु इमे पढमे विभगणाणे—जया ण तहारुवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभगणाणे समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण पासति पाईण वा पडिणं वा दाहिण वा उदीण वा उड्ढ वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स ण एव भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—एगदिसिं लोगाभिगमे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—पचदिसिं लोगाभिगमे।
जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु—पढमे विभगणाणे।
अहावरे दोच्चे विभगणाणे—जया ण तहारुवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभगणाणे समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण पासति पाईण वा पडिण वा दाहिण वा उदीण वा उड्ढं जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स ण एवं भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—पचदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—

विभंगज्ञान-पदम्

सप्तविध विभङ्गज्ञान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
एकदिशि लोकाभिगम,
पञ्चदिशि लोकाभिगम,
क्रियावरण जीव,
'मुदग' जीव, 'अमुदग्गा' जीव,
रूपी जीव, सर्वमिद जीव।
तत्र खलु इद प्रथम विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राचीन वा प्रतीचीना वा दक्षिणा वा उदीचीना वा ऊर्ध्वं वा यावत् सौधर्म कल्पम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—एकदिशि लोकाभिगम। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—पञ्चदिशि लोकाभिगम। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु—प्रथम विभङ्गज्ञानम्।

अथापर द्वितीय विभङ्गज्ञानम्। यद तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राचीना वा प्रतीचीना वा दक्षिणा वा उदीचीना वा ऊर्ध्वं वा यावत् सौधर्म कल्पम्।
तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—पञ्चदिशि लोकाभिगम। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—एकदिशि लोकाभिगम। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते

विभंगज्ञान-पद

२ विभगज्ञान [मिथ्यात्वी का अवधिज्ञान] सात प्रकार का होता है—
१ एकदिग्लोकाभिगम—लोक एक दिशा मे ही है।
२ पचदिग्लोकाभिगम—लोक पाचो दिशाओ मे ही है, एक दिशा मे नही है।
३ क्रियावरणजीव—जीव के क्रिया का ही आवरण है, कर्म का नही।
४ मुदग्गजीव—जीव पुद्गल निर्मित ही है।
५ अमुदग्गजीव—जीव पुद्गल निर्मित नही ही है।
६ रूपीजीव—जीव रूपी ही है।
७. ये सब जीव हैं—सब जीव ही जीव हैं।
पहला विभगज्ञान—
जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर व सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा मे से किसी एक दिशा को देखता है, तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं एक दिशा में ही लोक को देख रहा हू। कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक पाच दिशाओ मे है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं"—यह पहला विभगज्ञान है।
दूसरा विभगज्ञान—
जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण व सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा—इन पाचो दिशाओ को देखता है। तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं पाचो दिशाओ मे ही लोक को देख रहा हू।

एगदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहसु, मिच्छं ते एवमाहसु—दोच्चे विभगणाणे।

एवमाहु—द्वितीय विभङ्गज्ञानम्।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक एक दिशा मे ही है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं—यह दूसरा विभगज्ञान है।

अहावरे तच्चे विभगणाणे—जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभगणाणे समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण पासति पाणे अतिवातेमाणे, मुस वयमाणे, अदिण्णमादियमाणे, मेहुण पडिसेवमाणे, परिग्गह परिगिण्हमाणे, राइभोयण भुजमाणे, पाव च ण कम्मं कीरमाण णो पासति। तस्स ण एव भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—किरियावरणे जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—णो किरियावरणे जीवे। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु—तच्चे विभगणाणे।

अथापर तृतीय विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राणान् अतिपातयत, मृषा वदत, अदत्तमाददत, मैथुन प्रतिषेवमाणान्, परिग्रह परिगृह्णत, रात्रिभोजन भुञ्जानान्, पाप च कर्म क्रियमाण नो पश्यति। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—क्रियावरण जीव। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—नो क्रियावरण जीव। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु—तृतीय विभङ्गज्ञानम्।

तीसरा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से जीवो को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, अदत्त ग्रहण करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह ग्रहण करते हुए और रात्रीभोजन करते हुए देखता है, किन्तु उन प्रवृत्तियो के द्वारा होते हुए कर्म-बन्ध को नही देखता, तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि जीव क्रिया से ही आवृत है, कर्म से नही।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव क्रिया से आवृत नही है। जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते हैं—यह तीसरा विभगज्ञान है।

अहावरे चउत्थे विभगणाणे—जया णं तधारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा °विभगणाणे° समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण देवामेव पासति बाहिरब्भतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्त णाणत्त फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता विकुव्वित्ता ण चिट्ठित्तए। तस्स ण एव भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—मुदग्गे जीवे सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—अमुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु—चउत्थे विभगणाणे।

अथापर चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय पृथगेकत्व नानात्व स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—'मुदग्ग' जीव। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—'अमुदग्ग' जीव। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु—चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्।

चौथा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से देवो को बाह्य [शरीर के अवगाढ-क्षेत्र के बाहर] और अभ्यन्तर [शरीर के अवगाढ-क्षेत्र के भीतर] पुद्गलो को ग्रहण कर विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उन में हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक काल व देश मे कभी एक रूप व कभी विविध रूपो की विक्रिया करते हैं। यह देख उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि जीव पुद्गलो से ही बना हुआ है।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गलो से बना हुआ नही है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं—यह चौथा विभगज्ञान है।

अहावरे पचमे विभगणाणे—जया ण तधारूवस्स समणस्स °वा माहणस्स वा विभगणाणे° समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण देवामेव पासति वाहिरब्भतरए पोग्गलए अपरियाइत्ता पुढेगत्त णाणत्त °फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता° विउव्वित्ता ण चिट्ठितए। तस्स ण एव भवति—अत्थि °ण मम अतिसेसे णाणदसणे° समुप्पण्णे—अमुदग्गे जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—मुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु—पचमे विभगणाणे।

अथापर पञ्चम विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति वाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलकान् अपर्यादाय पृथगेकत्व नानात्व स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्—'अमुदग्ग' जीव। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—'मुदग्ग' जीव। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु—पञ्चम विभङ्गज्ञानम्।

पाचवा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से देवों को वाह्य और आभ्यतर पुद्गलो को ग्रहण किए विना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनम हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश मे कभी एक रूप व कभी विविध रूपो की विक्रिया करते हे यह देख उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि जीव पुद्गलों से वना हुआ नही ही है।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गलो से वना हुआ है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं—यह पाचवा विभगज्ञान है।

अहावरे छट्ठे विभगणाणे—जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा °विभगणाणे° समुप्पज्जति। से ण तेण विभगणाणेणं समुप्पण्णेण देवामेव पासति वाहिरब्भतरए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्त णाणत्तं फुसित्ता °फुरित्ता फुट्टित्ता° विकुव्वित्ता ण चिट्ठित्तए। तस्स ण एव भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—रूवी जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—अरूवी जीवे। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु—छट्ठे विभगणाणे।

अथापर पष्ठ विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति वाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय वा अपर्यादाय वा पृथगेकत्व नानात्व स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—रूपी जीव। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—अरूपी जीव। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु—पष्ठ विभङ्गज्ञानम्।

छठा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से देवो को वाह्य और आभ्यतर पुद्गलो को ग्रहण करके और ग्रहण किए विना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनमे हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश मे कभी एक रूप व कभी विविध रूपो की विक्रिया करते है यह देख उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि जीव रूपी ही है।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते है कि जीव अरूपी है जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते हैं—यह छठा विभगज्ञान है।

अहावरे सत्तमे विभगणाणे—जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभगणाणे समुप्पज्जति। से ण तेणं विभगणाणेण समुप्पण्णेण

अथापर सप्तम विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति सूक्ष्मेण वायु-

सातवा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से

पासई सुहुमेण वायुकाएण फुड पोग्गलकाय एयत वेयत चलंत खुब्भत फदत घट्टत उदीरेंत त त भाव परिणमत। तस्स ण एव भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—सव्वमिण जीवा। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहसु—जीवा चेव अजीवा चेव। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु। तस्स ण इमे चत्तारि जीवणिकाया णो सम्ममुवगता भवति, त जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया।
इच्चेतेहिं चउहिं जीवणिकाएहिं मिच्छादड पवत्तेइ—
सत्तमे विभगणाणे।

कायेन स्फुट पुद्गलकाय एजमान व्येजमान चलन्तं क्षुभ्यन्त स्पन्दमान घट्टयन्त उदीरयन्त त त भाव परिणमन्तम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञान-दर्शन समुत्पन्नम्—सर्वे एते जीवा। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव। ये ते एवमाहु, मिथ्या ते एवमाहु। तस्य इमे चत्वार जीवनिकाया नो सम्यग्-उपगता भवन्ति, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका।
इतिएतै चतुर्भि जीवनिकायै मिथ्या-दण्ड प्रवर्तयति—
सप्तम विभङ्गज्ञानम्।

सूक्ष्म वायु [मन्द वायु] के स्पर्श से पुद्गल-काय [पुद्गल राशि] को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पदित होते हुए, दूसरे पदार्थों का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए, विविध प्रकार के पर्यायो मे परिणत होते हुए देखता है। तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है--"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि—ये सभी जीव ही जीव है।
कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव भी हैं और अजीव भी हैं। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते है।
उस विभगज्ञानी को पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय—इन चार जीव-निकायो का सम्यग् ज्ञान नही होता। वह इन चार जीवनिकायो पर मिथ्यादण्ड का प्रयोग करता है—यह सातवा विभग-ज्ञान है।

जोणिसंगह-पदं

३. सत्तविधे जोणिसगहे पण्णत्ते, त जहा—
अडजा, पोतजा, जराउजा, रसजा, ससेयगा, समुच्छिमा, उब्भिगा।

योनिसग्रह–पदम्

सप्तविध योनिसग्रह प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अण्डजा, पोतजा, जरायुजा, रसजा, सस्वेदजा, सम्मूर्च्छिमा, उद्भिज्जा।

योनिसग्रह-पद

३ योनि-सग्रह के सात प्रकार हैं—
१ अण्डज, २ पोतज, ३ जरायुज, ४ रसज, ५ सस्वेदज, ६ सम्मूर्च्छिम, ७ उद्भिज्ज।

गति-आगति-पद

४ अडगा सत्तगतिया सत्तागतिया पण्णत्ता, त जहा—
अडगे अडगेसु उववज्जमाणे अडगेहिंतो वा, पोतजेहिंतो वा, •जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, ससेयगेहिंतो वा, सम्मूच्छिमेहिंतो वा°, उब्भिगेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
सच्चेव ण से अडए अडगत्त विप्पजहमाणे अडगत्ताए वा,

गति-आगति-पदम्

अण्डजा सप्तगतिका सप्तागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अण्डज अण्डजेषु उपपद्यमानः अण्डजेभ्यो वा पोतजेभ्यो वा जरायुजेभ्यो वा रसजेभ्यो वा सस्वेदजेभ्यो वा सम्मूर्च्छिमेभ्यो वा उद्भिज्जेभ्यो वा उपपद्येत।
स चैव असौ अण्डज अण्डजत्व विप्रजहत् अण्डजतया वा पोतजतया

गति-आगति-पद

४ अण्डज जीवो की सात गति और सात आगति होती है—
जो जीव अण्डजयोनि मे उत्पन्न होता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छिम और उद्भिज्ज—इन सातो योनियो से आता है।
जो जीव अण्डजयोनि को छोडकर दूसरी योनि मे जाता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छिम

पोतगत्ताए वा, •जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा,ससेयगत्ताए वा, समुच्छिमत्ताए वा°, उब्भिगत्ताए वा गच्छेज्जा।

वा जरायुजतया वा रसजतया वा सस्वेदजतया वा सम्मूर्च्छिमतया वा उद्भिज्जतया वा गच्छेत्।

और उद्भिज्ज—इन सातों योनियों में जाता है।

५ पोतगा सत्तगतिया सत्तागतिया एव चेव। सत्तण्हवि गतिरागती भाणियव्वा जाव उब्भियत्ति।

पोतजा सप्तगतिका सप्तागतिका एव चैव। सप्तानामपि गतिरागति भणितव्या यावत् उद्भिज्ज इति।

५ पोतज जीवों की सात गति और सात आगति होती है।
इस प्रकार सभी योनि-संग्रहों की सात-सात गति और सात-सात आगति होती है।

संगहट्ठाण-पद

सग्रहस्थान-पदम्

सग्रहस्थान-पद

६ आयरिय-उवज्झायस्स ण गणसि सत्त सगहठाणा पण्णत्ता, त जहा—

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्त सग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

६ आचार्य तथा उपाध्याय के लिए गण मे सात सग्रह के हेतु हैं—

१ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आण वा धारण वा सम्म पउजित्ता भवति।

१ आचार्योपाध्याय गणे आज्ञा वा धारणा वा सम्यक् प्रयोक्ता भवनि।

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा व धारणा का सम्यक् प्रयोग करें।

२ •आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आधारातिणियाए किति-कम्म सम्म पउजित्ता भवति।

२ आचार्योपाध्याय गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक—वडे-छोटे के क्रम से कृतिकर्म [वन्दना] का सम्यक् प्रयोग करें।

३ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।

३. आचार्योपाध्याय गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले सम्यग् अनुप्रवाचयिता भवति।

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो को धारण करते हैं, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना दें।

४. आयरिय-उवज्झाए ण गणसि गिलाणसेहवेयावच्च सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।°

४ आचार्योपाध्याय गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्य सम्यग् अभ्युत्थाता भवति।

४ आचार्य तथा उपाध्याय गण के ग्लान तथा नवदीक्षित साधुओ की यथोचित सेवा के लिए सतत जागरूक रहे।

५ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी॥

५ आचार्योपाध्याय गणे आपृच्छ्यचारी चापि भवति, नो अनापृच्छ्यचारी।

५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछ-कर अन्य प्रदेश मे विहार करें, उसे पूछे विना विहार न करें।

६ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि अणुप्पण्णाइ उवगरणाइ सम्म उप्पाइत्ता भवति।

६ आचार्योपाध्याय गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि सम्यग् उत्पादयिता भवति।

६ आचार्य तथा उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणो को यथाविधि उप-लब्ध करें।

७. आयरिय-उवज्झाए ण गणसि पुव्वुप्पण्णाइ उवकरणाइ सम्म सारक्खेत्ता सगोवित्ता भवति, णो असम्म सारक्खेत्ता सगोवित्ता भवति।

७ आचार्योपाध्याय गणे पूर्वोत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् सरक्षयिता सगोपयिता भवति, नो असम्यक् सरक्षयिता सगोपयिता भवति।

७ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे प्राप्त उपकरणो का सम्यक् प्रकार से सरक्षण तथा सगोपन करें, विधि का अतिक्रमण कर सरक्षण और सगोपन न करें।

असंगहट्ठाण-पद

७ आयरिय-उवज्झायस्स ण गणसि सत्त असगहठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आण वा धारण वा णो सम्म पउजित्ता भवति।

२. °आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आधारातिणियाए कितिकम्म णो सम्म पउजित्ता भवति।

३ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।

४ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि गिलाणसेहवेयावच्च णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।

५ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।

६ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि अणुप्पण्णाइ उवगरणाइ णो सम्म उप्पाइत्ता भवति।

७ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि° पच्चुप्पण्णाण उवगरणाण णो सम्म सारक्खेत्ता सगोवेत्ता भवति।

असग्रहस्थान-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्त असग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ आचार्योपाध्याय गणे आज्ञा वा धारणा वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

२ आचार्योपाध्याय गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

३. आचार्योपाध्याय गणे यानि सूत्रपर्यवजातनि धारयति तानि काले-काले नो सम्यक्अनुप्रवाचयिता भवति।

४ आचार्योपाध्याय गणे ग्लानशैक्षवैयावृत्य नो सम्यग्अभ्युत्थाता भवति।

५ आचार्योपाध्याय गणे अनापृच्छ्यचारी चापि भवति, नो आपृच्छ्यचारी।

६ आचार्योपाध्याय गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि नो सम्यक् उत्पादयिता भवति।

७ आचार्योपाध्याय गणे प्रत्युत्पन्नाना उपकरणाना नो सम्यक् सरक्षयिता संगोपयिता भवति।

असंग्रहस्थान-पद

७ आचार्य तथा उपाध्याय के लिए गण मे सात असग्रह के हेतु हैं—

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा व धारणा का सम्यक् प्रयोग न करें।

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक् प्रयोग न करें।

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो को धारण करते हैं, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना न दें।

४ आचार्य तथा उपाध्याय ग्लान तथा नवदीक्षित साधुओ की यथोचित सेवा के लिए सतत जागरूक न रहें।

५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछे विना अन्य प्रदेशो मे विहार करें, उसे पूछकर विहार न करें।

६ आचार्य तथा उपाध्याय गण के लिए अनुपलव्ध उपकरणो को यथाविधि उपलब्ध न करें।

७ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे प्राप्त उपकरणो का सम्यक् प्रकार से सरक्षण और सगोपन न करें।

पडिमा-पद

८ सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ।

प्रतिमा-पदम्

सप्त पिण्डैषणा प्रज्ञप्ता।

प्रतिमा-पद

८ पिण्ड-एपणाए सात हैं।[1]

९ सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ।

सप्त पानैषणा प्रज्ञप्ता।

९ पान-एषणाए सात है।[२]

१० सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ।

सप्त अवग्रह-प्रतिमा प्रज्ञप्ता।

१० अवग्रह-प्रतिमाए सात हैं।[३]

आयारचूला-पद

आचारचूला-पदम्

आचारचूला-पद

११ सत्तसत्तिक्कया पण्णत्ता।

सप्तसप्तैकका प्रज्ञप्ता।

११ सात सप्तैकक[४] हैं—आचारचूला की दूसरी चूलिका के उद्देशक-रहित अध्ययन सात हैं।

१२ सत्त महज्झयणा पण्णत्ता।

सप्त महाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।

१२ महान् अध्ययन सात हैं।[५]

पडिमा-पद

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

१३ सत्तसत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एकूणपण्णत्ताए राइंदिएहिं ऐगेण य छण्णउएण भिक्खासतेण अहासुत्त °अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति।

सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशद्भिः रात्रिदिवैः एकेन च षण्णवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यथार्थं यथातत्त्वं यथामार्गं यथाकल्पं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति।

१३ सप्त-सप्तमिका (७ × ७) भिक्षुप्रतिमा ४९ दिन-रात तथा १९६ भिक्षादत्तियों[६] द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है।

अहेलोगट्ठिति-पद

अधोलोकस्थिति-पदम्

अधोलोकस्थिति-पद

१४ अहेलोगे णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ।

अधोलोके सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः।

१४ अधोलोक में सात पृथ्विया हैं।

१५ सत्त घणोदधीओ पण्णत्ताओ।

सप्त घनोदधयः प्रज्ञप्ताः।

१५ सात घनोदधि [ठोस समुद्र] हैं।

१६ सत्त घणवाता पण्णत्ता।

सप्त घनवाताः प्रज्ञप्ताः।

१६ सात घनवात [ठोस वायु] हैं।

१७ सत्त तणुवाता पण्णत्ता।

सप्त तनुवाताः प्रज्ञप्ताः।

१७ सात तनुवात [पतली वायु] है।

१८ सत्त ओवासंतरा पण्णत्ता।

सप्त अवकाशान्तराः प्रज्ञप्ताः।

१८ सात अवकाशान्तर [तनुवात, घनवात आदि के मध्यवर्ती आकाश] है।

१९ एतेसु णं सत्तसु ओवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्ठिया।

एतेषु सप्तसु अवकाशान्तरेषु सप्त तनुवाताः प्रतिष्ठिताः।

१९ इन सात अवकाशान्तरो मे सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं।

२० एतेसु णं सत्तसु तणुवातेसु सत्त घणवाता पइट्ठिया।

एतेषु सप्तसु तनुवातेसु सप्त घनवाताः प्रतिष्ठिताः।

२० इन सात तनुवातो पर सात घनवात प्रतिष्ठित है।

२१ एतेसु णं सत्तसु घणवातेसु सत्त घणोदधी पतिट्ठिता।

एतेषु सप्तसु घनवातेषु सप्त घनोदधयः प्रतिष्ठिताः।

२१ इन सात घनवातो पर सात घनोदधि प्रतिष्ठित हैं।

२२ एतेसु णं सत्तसु घणोदधीसु पिंडलगपिहुल-संठाण-संठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा।

एतेषु सप्तसु घनोदधिषु पिण्डलकपृथुल-संस्थान-संस्थिताः सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा यावत् सप्तमा।

२२ इन सात घनोदधियो पर फूल की टोकरी की भांति चौडे संस्थान वाली[७] सात पृथ्विया प्रज्ञप्त हैं—प्रथमा यावत् सप्तमी।

२३. एतासि णं सत्तण्ह पुढवीण सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
घम्मा, वसा, सेला, अंजणा, रिट्ठा, मघा, माघवती।

एतासा सप्ताना पृथिवीना सप्त नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
घर्मा, वशा, शैला, अञ्जना, रिष्टा, मघा, माघवती।

२३ इन सात पृथ्वियो के नाम सात हैं—
१ घर्मा, २ वशा, ३ शैला, ४ अजना, ५ रिष्टा, ६ मघा, ७ माघवती।

२४ एतासि णं सत्तण्ह पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता, त जहा—
रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा।

एतासा सप्ताना पृथिवीना सप्त गोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तमा, तमस्तमा।

२४ इन सात पृथ्वियो के गोत्र सात हैं—
१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ वालुकाप्रभा, ४ पकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमा, ७ तमस्तमा।

बायरवाउकाइय-पदं

२५ सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—
पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, उड्ढवाते, अहेवाते, विदिसिवाते।

बादरवायुकायिक-पदम्

सप्तविधा बादरवायुकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्राचीनवात, प्रतिचीनवात, दक्षिणवात, उदीचीनवात, ऊर्ध्ववात, अधोवात, विदिग्वात।

बादरवायुकायिक-पद

२५ बादरवायुकायिक जीव सात प्रकार के होते हैं—
१ पूर्व की वायु, २ पश्चिम की वायु, ३ दक्षिण की वायु, ४ उत्तर की वायु, ५ ऊर्ध्वदिशा की वायु, ६ अधोदिशा की वायु, ७ विदिशा की वायु।

संठाण-पदं

२६ सत्त सठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
दीहे, रहस्से, वट्टे, तसे, चउरसे, पिहुले, परिमंडले।

संस्थान-पदम्

सप्त सस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीर्घ, ह्रस्व, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र, पृथुल, परिमण्डलम्।

संस्थान-पद

२६ सस्थान सात हैं—
१ दीर्घ, २ ह्रस्व, ३ वृत्त—गेंद की भाति गोल, ४ त्रिकोण, ५ चतुष्कोण, ६ पृथुल—विस्तीर्ण, ७ परिमण्डल—वलय की भाति गोल।

भयट्ठाण-पदं

२७ सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।

भयस्थान-पदम्

सप्त भयस्थानानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्माद्भय, वेदनाभय, मरणभय, अश्लोकभयम्।

भयस्थान-पद

२७ भय के स्थान सात हैं—
१ इहलोक भय—सजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय,
२ परलोक भय—विजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को तिर्यञ्च आदि से होने वाला भय।
३ आदान भय—धन आदि पदार्थों के अपहरण करने वाले से होने वाला भय।

४ अकस्मात् भय—किसी बाह्य निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला भय, अपने ही विकल्पों से होने वाला भय।

५ वेदना भय—पीड़ा आदि से उत्पन्न भय।

६ मरण भय—मृत्यु का भय।

७ अश्लोक भय—अकीर्ति का भय।

छउमत्थ-पदं

२८ सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा—
पाणे अइवाएत्ता भवति।
मुसं वइत्ता भवति।
अदिण्णं आदित्ता भवति।
सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति।
पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति।
इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवति।
णो जहावादी तहाकारी यावि भवति।

छद्मस्थ-पदम्

सप्तभिः स्थानैः छद्मस्थं जानीयात्, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति।
मृषा वदिता भवति।
अदत्तमादाता भवति।
शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानास्वादयिता भवति।
पूजासत्कारं अनुबृंहयिता भवति।
इदं सावद्यमिति प्रज्ञाप्य प्रतिषेवयिता भवति।
नो यथावादी तथाकारी चापि भवति।

छद्मस्थ-पद

२८ सात हेतुओं से छद्मस्थ जाना जाता है—
१ जो प्राणों का अतिपात करता है।
२ जो मृषा बोलता है।
३ जो अदत्त का ग्रहण करता है।
४ जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का आस्वादक होता है।
५ जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है।
६ जो 'यह सावद्य—सपाप है'—ऐसा कहकर भी उसका आसेवन करता है।
७ जो जैसा कहता है वैसा नहीं करता।

केवलि-पदं

२९. सत्तहिं ठाणेहिं केवलीं जाणेज्जा, तं जहा—
णो पाणे अइवाइत्ता भवति।
°णो मुसं वइत्ता भवति।
णो अदिण्णं आदित्ता भवति।
णो सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति।
णो पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति।
इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता णो पडिसेवेत्ता भवति।°
जहावादी तहाकारी यावि भवति।

केवली-पदम्

सप्तभिः स्थानैः केवलिनं जानीयात्, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति।
नो मृषा वदिता भवति।
नो अदत्तमादाता भवति।
नो शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानास्वादयिता भवति।
नो पूजासत्कारं अनुबृंहयिता भवति।
इदं सावद्यमिति प्रज्ञाप्य नो प्रतिषेवयिता भवति।
यथावादी तथाकारी चापि भवति।

केवली-पद

२९ सात हेतुओं से केवली जाना जाता है—
१ जो प्राणों का अतिपात नहीं करता।
२ जो मृषा नहीं बोलता।
३ जो अदत्त का ग्रहण नहीं करता।
४ जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का आस्वादक नहीं होता।
५ जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन नहीं करता।
६ जो 'यह सावद्य—सपाप है'—ऐसा कहकर उसका आसेवन नहीं करता।
७ जो जैसा कहता है वैसा करता है।

गोत्त-पद

३० सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, त जहा—
कासवा गोतमा वच्छा कोच्छा कोसिआ मंडवा वासिट्ठा।

३१ जे कासवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते कासवा ते सडिल्ला ते गोला ते वाला ते मुंजइणो ते पव्वतिणो ते वरिसकण्हा।

३२ जे गोतमा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते गोतमा ते गग्गा ते भारद्दा ते अगिरसा ते सक्कराभा ते भक्खराभा ते उदत्ताभा।

३३. जे वच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते वच्छा ते अग्गेया ते मित्तेया ते सेलयया ते अट्ठिसेणा ते वीयकण्हा।

३४. जे कोच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त कहा—
ते कोच्छा ते मोंग्गलायणा ते पिंगलायणा ते कोडिणो [ण्णा ?] ते मडलिणो ते हारिता ते सोमया।

३५ जे कोसिया ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते कोसिआ ते कच्चायणा ते सालकायणा ते गोलिकायणा ते पक्खिकायणा ते अगिच्चा ते लोहिच्चा।

गोत्र-पदम्

सप्त मूलगोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
काश्यपा गोतमा वत्सा कुत्सा कौशिका माण्डवा वाशिष्ठा।

ये काश्यपा ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते काश्यपा ते शाण्डिल्या ते गोला ते वाला ते मौञ्जकिन ते पर्वतिन ते वर्षकृष्णा।

ये गोतमा ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते गोतमा ते गार्ग्या ते भारद्वाजा ते आङ्गिरसा ते शर्कराभा ते भास्कराभा ते उदात्ताभा।

ये वत्सा ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते वत्सा ते आग्नेया ते मैत्रैया ते शाल्मलिन ते शैलकका ते अस्थिषेणा ते वीतकृष्णा।

ये कुत्सा, ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते कौत्सा मौद्गलायना ते पि[पैं]ङ्गलायना ते कौडिन्या ते मण्डलिन ते हारिता ते सौम्या।

ये कौशिका ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते कौशिका ते कात्यायना ते सालकायना ते गोलिकायना ते पाक्षिकायणा ते आग्नेया ते लौहित्या।

गोत्र-पद

३० मूल गोत्र[१] [एक पुरुष से उत्पन्न वंश-परम्परा] सात हैं—
१ काश्यप, २ गौतम, ३ वत्स, ४ कुत्स, ५ कौशिक, ६ माण्डव (व्य) ७ वाशिष्ठ।

३१ जो काश्यप हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ काश्यप, २ शाण्डिल्य, ३ गोल, ४ वाल, ५ मौञ्जकी, ६ पर्वती, ७ वर्षकृष्ण।

३२ जो गौतम हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ गौतम, २ गार्ग्य, ३ भारद्वाज, ४ आंगिरस, ५ शर्कराभ, ६ भास्कराभ, ७ उदत्ताभ।

३३ जो वत्स हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ वत्स, २ आग्नेय, ३ मैत्रेय, ४ शाल्मली, ५ शैलक (शैलनक) ६ अस्थिषेण, ७ वीतकृष्ण।

३४ जो कौत्स हैं, वे सात प्रकार के है—
१ कौत्स, २ मौद्गलायन, ३ पिंगलायन, ४ कौडिन्य, ५ मण्डली, ६ हारित, ७ सौम्य।

३५ जो कौशिक हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ कौशिक, २ कात्यायन, ३ सालकायन, ४ गोलिकायन, ५ पाक्षिकायन, ६ आग्नेय, ७ लौहित्य।

३६ जे मडवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते मडवा ते आरिट्ठा ते समुता ते तेला ते एलावच्चा ते कडिल्ला ते खारायणा।

ये माण्डवा ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते माण्डवा ते आरिष्टा ते सम्मुता ते तैला ते ऐलापत्या ते काण्डिल्या ते क्षारायणा ।

३६ जो माण्डव हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ माण्डव, २ अरिष्ट, ३ समुत, ४ तैल, ५ ऐलापत्य, ६ काण्डिल्य, ७ क्षारायण।

३७ जे वासिट्ठा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—
ते वासिट्ठा ते उजायणा ते जारुकण्हा ते वग्घावच्चा ते कोंडिण्णा ते सण्णी ते पारासरा।

ये वाशिष्ठा ते सप्तविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते वाशिष्ठा ते उञ्जायना ते जरत्कृष्णा ते व्याघ्रापत्या ते कौण्डिन्या ते सञ्ज्ञिन ते पाराशरा ।

३७ जो वाशिष्ठ हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१ वाशिष्ठ, २ उञ्जायन, ३ जरत्कृष्ण, ४ व्याघ्रापत्य, ५ कौण्डिन्य, ६ सञ्ज्ञी, ७ पाराशर।

णय-पदं

३८ सत्त मूलणया पण्णत्ता, त जहा—
णेगमे, सगहे, ववहारे, उज्जुसुते, सद्दे, समभिरूढे, एवभूते।

नय-पदम्

सप्त मूलनया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवभूत ।

नय-पद

३८ मूलनय सात हैं—
१ नैगम—भेद और अभेदपरक दृष्टिकोण।
२ सग्रह—केवल अभेदपरक दृष्टिकोण।
३ व्यवहार—केवल भेदपरक दृष्टिकोण।
४ ऋजुसूत्र—वर्तमान क्षण को ग्रहण करने वाला दृष्टिकोण।
५ शब्द—रूढि से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति को वताने वाला दृष्टिकोण।
६ समभिरूढ—व्युत्पत्ति से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति को वतानेवाला दृष्टिकोण।
७ एवभूत—वर्तमान प्रवृत्ति के अनुसार वाचक के प्रयोग को मान्य करने वाला दृष्टिकोण।

सरमंडल-पदं

३९. सत्त सरा पण्णत्ता, त जहा—

स्वरमण्डल-पदम्

सप्त स्वरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

स्वरमण्डल-पद

३९ स्वर[1] सात हैं—

संगहणी-गाहा

१ सज्जे रिसभे गधारे,
मज्झिमे पचमे सरे।
धेवते चेव णेसादे,
सरा सत्त वियाहिता॥

सग्रहणी-गाथा

१ षड्ज ऋषभ गान्धार,
मध्यम पञ्चम स्वर ।
धैवत चैव निषाद,
स्वरा सप्त व्याहृता ॥

१ षड्ज, २ ऋषभ, ३ गाधार, ४ मध्यम, ५ पचम, ६ धैवत, ७ निषाद।

४०. एएसि ण सत्तण्हं सराण सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषा सप्ताना स्वराना सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

४० इन सात स्वरो के सात स्वर-स्थान[1] हैं—

१ सज्ज तु अग्गजिब्भाए,
उरेण रिसभ सर।
कठुग्गतेण गधार,
मज्झजिब्भाए मज्झिम ॥
२ णासाए पचम बूया
दतोट्ठेण य धेवत।
मुद्धाणेण य णेसादं,
सरट्ठाणा वियाहिता ॥

१ पड्ज त्वग्रजिह्वया,
उरसा ऋपभ स्वरम् ।
कण्ठोद्गतेन गान्धार,
मध्यजिह्वया मध्यमम् ॥
२. नासया पञ्चम ब्रूयात्,
दन्तौष्ठेन च धैवतम् ।
मूर्ध्ना च निषाद,
स्वरस्थानानि व्याहृतानि ॥

१ पड्ज का स्थान जिह्वा का अग्र भाग।
२ ऋषभ का वक्ष।
३ गाधार कण्ठ।
४ मध्यम का जिह्वा का मध्य भाग।
५ पचम का नासा।
६ धैवत का दात और होठ का सयोग।
७ निपाद का मूर्धा (सिर)।

४१ सत्त सरा जीवणिस्सिता पण्णत्ता, त जहा—
१ सज्ज रवति मयूरो,
कुक्कुडो रिसभ सर।
हसो णदति गधार,
मज्झिम तु गवेलगा ॥
२ अह कुसुमसंभवे काले,
कोइला पचम सर।
छट्ठ च सारसा कोचा,
णेसाय सत्तमं गजो ॥

सप्त स्वरा जीवनिश्रिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ पड्ज रौति मयूर,
कुक्कुट ऋपभ स्वरम्।
हसो नदति गान्धार,
मध्यम तु गवेलका ॥
२ अथ कुसुमसभवे काले,
कोकिला पञ्चम स्वरम्।
षष्ठ च सारसा क्रौञ्चा,
निषाद सप्तम गज ॥

४१ जीवनिश्रित स्वर सात हैं[12]—
१ मयूर पड्ज स्वर मे बोलता है।
२ कुक्कुट ऋषभ स्वर मे बोलता है।
३ हस गाधार स्वर मे बोलता है।
४ गवेलक[13] मध्यम स्वर मे बोलता है।
५ वसन्त मे कोयल पचम स्वर[14] मे बोलता है।
६ क्रौंच और सारस धैवत स्वर मे बोलते हैं।
७ हाथी निषाद स्वर मे बोलता है।

४२ सत्त सरा अजीवणिस्सिता पण्णत्ता, त जहा—
१ सज्ज रवति मुइगो,
गोमुही रिसभ सर।
संखो णदति गधार,
मज्झिम पुण झल्लरी ॥
२ चउचलणपतिट्ठाणा,
गोहिया पंचम सर।
आडबरो धेवतिय,
महाभेरी य सत्तम ॥

सप्त स्वरा अजीवनिश्रिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ पड्ज रौति मृदङ्ग,
गोमुखी ऋषभ स्वरम्।
शङ्खो नदति गान्धार,
मध्यम पुन झल्लरी ॥
२ चतुश्चरणप्रतिष्ठाना,
गोधिका पञ्चम स्वरम्।
आडम्बरो धैवतिक,
महाभेरी च सप्तमम् ॥

४२ अजीवनिश्रित स्वर सात हैं—
१ मृदङ्ग से पड्ज स्वर निकलता है।
२ गोमुखी—नरसिंघा[15] नामक वाजे से ऋपभ स्वर निकलता है।
३ शख से गाधार स्वर निकलता है।
४ झल्लरी—झाझ से मध्यम स्वर निकलता है।
५ चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका से पचम स्वर निकलता है।
६ ढोल से धैवत स्वर निकलता है।
७ महाभेरी से निपाद स्वर निकलता है।

४३ एतेसि ण सत्तण्ह सराण सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, त जहा—
१ सज्जेण लभति वित्ति,
कत च ण विणस्सति।

एतेषा सप्ताना स्वराणा सप्त स्वर-लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ षड्जेन लभते वृत्ति,
कृत च न विनश्यति।

४३ इन सातो स्वरो के स्वर-लक्षण सात हैं—
१ पड्ज स्वर वाले व्यक्ति आजीविका पाते हैं। उनका प्रयत्न निष्फल नही

गावो मित्ता य पुत्ता य,
णारीण चेव वल्लभो ॥
२ रिसभेण उ एसज्जं,
सेणावच्चं धणाणि य ।
वत्थगंधमलंकारं,
इत्थिओ सयणाणि य ॥
३ गंधारे गीतजुत्तिण्णा,
वज्जवित्ती कलाहिया ।
भवति कइणो पण्णा,
जे अण्णे सत्थपारगा ॥
४ मज्झिमसरसंपण्णा,
भवति सुहजीविणो ।
खायती पियती देती,
मज्झिम-सरमस्सितो ॥
५ पंचमसरसंपण्णा,
भवति पुढवीपती ।
सूरा संगहकत्तारो,
अणेगगणणायगा ।
६ धेवतसरसंपण्णा,
भवति कलहप्पिया ।
साउणिया वग्गुरिया,
सोयरिया मच्छबंधा य ॥
७ चंडाला मुट्ठिया मेया,
जे अण्णे पावकम्मिणो ।
गोघातगा य जे चोरा,
णेसायं सरमस्सिता ॥

गावो मित्राणि च पुत्राश्च,
नारीणां चैव वल्लभः ॥
२ ऋषभेण तु ऐश्वर्यं,
सैनापत्यं धनानि च ।
वस्त्रगंधालंकारं,
स्त्रियः शयनानि च ॥
३ गान्धारे गीतयुक्तिज्ञा,
वाद्यवृत्तयः कलाधिकाः ।
भवन्ति कवयः प्राज्ञाः,
ये अन्ये शास्त्रपारगाः ॥
४ मध्यमस्वरसम्पन्नाः,
भवन्ति सुख-जीविनः ।
खादन्ति पिबन्ति ददति,
मध्यमस्वरमाश्रिताः ॥
५ पञ्चमस्वरसम्पन्नाः,
भवन्ति पृथिवीपतयः ।
शूराः संग्रहकर्तारः,
अनेकगणनायकाः ॥
६ धैवतस्वरसम्पन्नाः,
भवन्ति कलहप्रियाः ।
शाकुनिकाः वागुरिकाः,
शौकरिकाः मत्स्यबन्धाश्च ॥
७. चाण्डालाः मौष्टिकाः मेदाः,
ये अन्ये पापकर्मिणः ।
गोघातकाश्च ये चौराः,
निषादं स्वरमाश्रिताः ॥

होता। उनके गाए, मित्र और पुत्र होते हैं। वे स्त्रियों को प्रिय होते हैं।

२ ऋषभ स्वर वाले व्यक्ति को ऐश्वर्य, सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गंध, आभूषण, स्त्री, शयन और आसन प्राप्त होते हैं।

३ गांधार स्वर वाले व्यक्ति गाने में कुशल, श्रेष्ठ जीविका वाले, कला में कुशल, कवि, प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते हैं।

४ मध्यम स्वर वाले व्यक्ति सुख से जीते हैं, खाते-पीते हैं और दान देते हैं।

५ पंचम स्वर वाले व्यक्ति राजा, शूर, संग्रहकर्ता और अनेक गणों के नायक होते हैं।

६ धैवत स्वर वाले व्यक्ति कलहप्रिय, पक्षियों को मारने वाले तथा हिरणों, सूअरों और मछलियों को मारने वाले होते हैं।

७ निषाद स्वर वाले व्यक्ति चाण्डाल—फांसी देने वाले, मुट्ठीबाज (Boxers), विभिन्न पाप-कर्म करने वाले, गो-घातक और चोर होते हैं।

४४ एतेसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा—
सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे।

एतेषां सप्तानां स्वराणां त्रयः ग्रामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
षड्जग्रामः मध्यमग्रामः गान्धारग्रामः।

४४ इन सात स्वरों के तीन ग्राम हैं—
१ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ गांधारग्राम।

४५ सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. मंगी कोरव्वीया,
हरी य रयणी य सारकंता य ।
छट्ठी य सारसी णाम,
सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥

षड्जग्रामस्य सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१ मङ्गी कौरव्या,
हरित् च रजनी च सारकान्ता च ।
षष्ठी च सारसी नाम्नी,
शुद्धषड्जा च सप्तमी ॥

४५ षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं[४] सात हैं—
१ मंगी, २ कौरवीया, ३ हरित्, ४ रजनी, ५ सारकान्ता, ६ सारसी, ७ शुद्धषड्जा।

४६. मज्झिमगामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१ उत्तरमंदा रयणी,
उत्तरा उत्तरायता।
अस्सोकंता य सोवीरा,
अभिरू हवति सत्तमा॥

मध्यमग्रामस्य सप्त मूर्च्छना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ उत्तरमन्द्रा रजनी,
उत्तरा उत्तरायता।
अश्वक्रान्ता च सौवीरा,
अभिरु (द्गता) भवति सप्तमी॥

४६ मध्यमग्राम की मूर्च्छनाए[१८] सात हैं—
१ उत्तरमन्द्रा, २ रजनी, ३ उत्तरा, ४ उत्तरायता, ५ अश्वक्रान्ता, ६ सौवीरा, ७ अभिरुद्गता।

४७. गधारगामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
१. णदी य खुद्दिमा पूरिमा,
य चउत्थी य सुद्धगधारा।
उत्तरगधारावि य,
पचमिया हवती मुच्छा उ॥
२ सुट्ठुत्तरमायामा,
सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा।
अह उत्तरायता,
कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा॥

गान्धारग्रामस्य सप्त मूर्च्छना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ नदी च क्षुद्रिका पूरिका,
च चतुर्थी च शुद्धगाधरा।
उत्तरगाधारापि च,
पचमिका भवती मूर्च्छा तु॥
२ सुष्ठूत्तरायामा,
सा षष्ठी नियमतस्तु ज्ञातव्या।
अथ उत्तरायता,
कोटिमा च सा सप्तमी मूर्च्छा॥

४७ गाधारग्राम की मूर्च्छनाए[१९] सात हैं—
१ नदी, २ क्षुद्रिका, ३ पूरका, ४ शुद्धगाधारा, ५ उत्तरगाधारा, ६ सुष्ठुतर आयामा, ७ उत्तरायता कोटिमा।

४८. १ सत्त सरा कतो सभवंति ?
गीतस्स का भवति जोणी ?
कतिसमया उस्साया ?
कति वा गीतस्स आगारा ?
२ सत्त सरा णाभीतो,
भवति गीतं च रुण्णजोणीय।
पदसमया ऊसासा,
तिण्णि य गीयस्स आगारा॥
३ आइमिउ आरभता,
समुव्वहता य मज्झगारम्मि।
अवसाणे य झवेंता,
तिण्णि य गेयस्स आगारा॥
४ छद्दोसे अट्ठगुणे,
तिण्णि य वित्ताइ दो य भणितीओ।
जो णाहिति सो गाहिइ,
सुसिक्खिओ रगमज्झम्मि॥
५ भीत दुत रहस्सं,
गायतो मा य गाहि उत्ताल।

१ सप्त स्वरा कुत सभवन्ति ? गीतस्य का भवति योनि ?
कतिसमया उच्छ्वासा ?
कति वा गीतस्याकारा ?
२ सप्त स्वरा नाभितो,
भवन्ति गीत च रुदितयोनिकम्।
पदसमया उच्छ्वासा,
त्रयश्च गीतस्याकारा॥
३ आदिमृदु आरभमाणा,
समुद्वहन्तश्च मध्यकारे।
अवसाने च क्षपयन्त,
त्रयश्च गेयस्याकारा॥
४ षड्दोपा अष्टगुणा,
त्रीणि च वृत्तानि द्वे च भणिती।
य ज्ञास्यति स गास्यति,
सुशिक्षित रगमध्ये॥
५ भीत द्रुत ह्रस्व,
गायन् मा च गासी उत्तालम्।

४८ सात स्वर किनसे उत्पन्न होते हैं ? गीत[२०] की योनि—जाति क्या है ? उसका उच्छ्वास-काल [परिमाण-काल] कितना होता है? और उसके आकर कितने होते हैं? सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं। रुदन गेय की योनि हैं। जितने समय मे किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वास-काल होता है और उसके आकार तीन होते हैं—आदि मे मृदु, मध्य मे तीव्र और अन्त मे मद।
गीत के छह दोप, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भणितिया होती हैं। जो इन्हे जानता है, वह सुशिक्षित व्यक्ति ही इन्ह रगमञ्च पर गाता है।
गीत के छह दोप[२१]—
१ भीत—भयभीत होते हुए गाना।
२ द्रुत—शीघ्रता से गाना।
३ ह्रस्व—शब्दों को लघु बनाकर गाना।
४ उत्ताल—ताल से आगे बढकर या ताल के अनुसार न गाना।
५ काक स्वर—कौए की भाति कर्णकटु स्वर से गाना।
६ अनुनास—नाक से गाना।
गीत के आठ गुण[२२]—
१ पूर्ण—स्वर के आरोह-अवरोह आदि परिपूर्ण होना।

काकस्सरमणुणास,
च होति गेयस्स छद्दोसा ॥
६ पुण्ण रत्त च अलकिय,
च वत्त तहा अविघुट्ठ ।
मधुर सम सुललिय,
अट्ठ गुणा होति गेयस्स ॥
७ उर-कठ-सिर-विसुद्ध,
च गिज्जते मउय-रिभिअ-पदवद्ध ।
समतालपदुक्खेव,
सत्तसरसीहर गेय ॥
८ णिद्दोस सारवत च,
हेउजुत्त मलकिय ।
उवणीत सोवयार च,
मित मधुर मेव य ॥
९ सममद्धसम चेव,
सव्वत्थ विसम च जं ।
तिण्णि वित्तप्पयाराइ,
चउत्थ णोपलब्भती ॥
१० सक्कता पागता चेव,
दोण्णि य भणिति आहिया ।
सरमडलमि गिज्जते,
पसत्था इसिभासिता ॥
११ केसी गायति मधुर ?
केसि गायति खर च रुक्ख च ?
केसी गायति चउर ?
केसि विलव ? दुत केसी ?
विस्सर पुण केरिसी ?
१२ सामा गायइ मधुर,
काली गायइ खर च रुक्ख च ।
गोरी गायति चउर,
काण विलव, दुत अधा ॥
विस्सर पुण पिगला ।
१३ ततिसम तालसम,
पादसम लयसम गहसमं च ।

काकस्वर अनुनास,
च भवन्ति गेयस्य षड्दोषा ॥
६ पूर्ण रक्त च अलकृत,
च व्यक्त तथा अविघुष्टम् ।
मधुर सम सुललित,
अष्टगुणा भवन्ति गेयस्य ॥
७ उर -कण्ठ-शिरो-विशुद्ध,
च गीयते मृदुक-रिभित-पदवद्धम् ।'
समतालपदोत्क्षेप,
सप्तस्वरसीभर गेयम् ॥
८ निर्दोष सारवन्त च,
हेतुयुक्त मलकृतम् ।
उपनीत सोपचार च,
मित मधुरमेव च ।
९ सममर्धसम चैव,
सर्वत्र विषम च यत् ।
त्रयो वृत्तप्रकारा,
चतुर्थो नोपलभ्यते ॥
१० सस्कृता प्राकृता चैव,
द्वे च भणिती आहृते ।
स्वरमण्डले गीयमाने,
प्रशस्ते ऋषिभापिते ॥
११ कीदृशी गायति मधुर ?
कीदृशी गायति खर च रूक्षञ्च ?
कीदृशी गायति चतुर ?
कीदृशी विलम्ब ? द्रुत कीदृशी ?
विस्वर पुन कीदृशी ?
१२ श्यामा गायति मधुर,
काली गायति खरञ्च रूक्षञ्च ।
गौरी गायति चतुर,
काणा विलम्ब, द्रुत अन्धा ॥
विस्वर पुन पिङ्गला ।
१३ तन्त्रीसम तालसम,
पादसम लयसम ग्रहसम च ।

२ रक्त—गाए जाने वाले राग से परिष्कृत होना ।
३ अलकृत—विभिन्न स्वरों से सुशोभित होना ।
४ व्यक्त—स्पष्ट स्वर वाला होना ।
५ अविघुष्ट—नियत या नियमित स्वरयुक्त होना ।
६ मधुर—मधुर स्वरयुक्त होना ।
७ सम[२३]—ताल, वीणा आदि का अनुगमन करना ।
८ सुकुमार—ललित, कोमल-लययुक्त होना ।
गीत के ये आठ गुण और हैं—
१ उरोविशुद्ध—जो स्वर वक्ष मे विशाल होता है ।
२ कण्ठविशुद्ध—जो स्वर कण्ठ मे नही फटता ।
३ शिरोविशुद्ध—जो स्वर सिर से उत्पन्न होकर भी नासिका से मिश्रित नहीं होता ।
४ मृदु—जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है ।
५ रिभित—घोलना—बहुल आलाप के कारण खेल-सा करते हुए स्वर ।
६ पदवद्ध[२४]—गेय पदो से निवद्ध रचना ।
७ समताल पदोत्क्षेप—जिसमे ताल, झाझ आदि का शब्द और नर्तक का पादनिक्षेप—ये सब सम हो—एक दूसरे से मिलते हों ।
८ सप्तस्वरसीभर—जिसमे सातो स्वर तन्त्री आदि के सम हो ।
गेयपदों के आठ गुण इस प्रकार हैं—
१ निर्दोष—बत्तीस दोष रहित होना ।
२ सारवत्—अर्थयुक्त होना ।
३ हेतुयुक्त—हेतुयुक्त होना ।
४ अलकृत—काव्य के अलकारो से युक्त होना ।
५ उपनीत—उपसहार युक्त होना ।
६ सोपचार—कोमल, अविरुद्ध और अलज्जनीय का प्रतिपादन करना अथवा व्यग या हसी युक्त होना ।
७ मित—पद और उसके अक्षरो से परिमित होना ।
८ मधुर—शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की दृष्टि से प्रिय होना ।
वृत्त—छन्द[२५] तीन प्रकार का होता है—
१ सम—जिसमे चरण और अक्षर सम हो—चार चरण हों और उनमे लघु-गुरु अक्षर समान हो ।

णीससिऊससियसम,
सचारसमा सरा सत्त ॥
१४ सत्त सरा तओ गामा,
मुच्छणा एक्कविसती ।
ताणा एगूणपण्णासा,
समत्त सरमडल ॥

निःश्वसितोच्छ्वसितसम,
सचारसमा स्वरा सप्त ॥
१४ सप्त स्वरा त्रय ग्रामा,
मूर्च्छना एकविंशति ।
ताना एकोनपञ्चाशत्,
समाप्त स्वरमण्डलम् ॥

२ अर्द्धसम—जिसमे चरण या अक्षरो मे से कोई एक सम हो, या तो चार चरण हो या विषम चरण होने पर भी उनमे लघु-गुरु अक्षर समान हो।

३ सर्वविषम—जिसमे चरण और अक्षर सब विषम हों।

भणितिया—गीत की भाषाए दो हैं—
१ सस्कृत, २ प्राकृत।
ये दोनों प्रशस्त और ऋषिभाषित हैं। ये स्वरमण्डल मे गाई जाती हैं।
मधुर गीत कौन गाती है ?
परुष और रूखा गीत कौन गाती है ?
चतुर गीत कौन गाती है ?
विलम्ब गीत कौन गाती है ?
द्रुत—शीघ्र गीत कौन गाती है ?
विस्वर गीत कौन गाती है ?
श्यामा स्त्री मधुर गीत गाती है।
काली स्त्री परुष और रूखा गाती है।
केशी स्त्री चतुर गीत गाती है।
काणी स्त्री विलम्ब गीत गाती है।
अधी स्त्री द्रुत गीत गाती है।
पिंगला स्त्री विस्वर गीत गाती है।

सप्तस्वर-सीभर की व्याख्या इस प्रकार है—
१ तन्त्रीसम[२६]—तन्त्री-स्वरो के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।
२ तालसम[२७]—ताल-वादन के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।
३ पादसम[२८]—स्वर के अनुकूल निर्मित गेय पद के अनुसार गाया जाने वाला गीत।
४ लयसम[२९]—वीणा आदि को आहृत करने पर जो लय उत्पन्न होती है, उसके अनुसार गाया जाने वाला गीत।

५ ग्रहसम[३०]—वीणा आदि के द्वारा जो स्वर पकडे, उसी के अनुसार गाया जाने वाला गीत।
६ निःश्वसितोच्छ्वसितसम—सास लेने और छोडने के क्रम का अतिक्रमण न करते हुए गाया जाने वाला गीत।
७ सचारसम—सितार आदि के साथ गाया जाने वाला गीत।

इस प्रकार गीत-स्वर तन्त्री आदि से सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है।

सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाए हैं। प्रत्येक स्वर सात तानो[३१] से गाया जाता है, इसलिए उसके ४९ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्वरमण्डल समाप्त होता है।

कायकिलेस-पद

४९ सत्तविधे कायकिलेसे पण्णत्ते, त जहा—
ठाणातिए, उक्कुडुयासणिए, पडिमठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए, दडायतिए, लगंडसाई।

कायक्लेश-पदम्

सप्तविध कायक्लेश प्रज्ञप्त, तद्यथा—
स्थानायतिक, उत्कुटुकासनिक, प्रतिमास्थायी, वीरासनिक, नैषधिक, दण्डायतिक, लगण्डशायी।

कायक्लेश-पद

४९ कायक्लेश[11] के सात प्रकार हैं—
१ स्थानायतिक, २ उत्कुटुकासनिक, ३ प्रतिमास्थायी, ४ वीरासनिक, ५ नैषधिक, ६ दण्डायतिक, ७ लगडशायी।

खेत्त-पव्वय-णदी-पदं

५० जबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, त जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे।

५१ जबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, त जहा—
चुल्लहिमवते, महाहिमवते, णिसढे, णीलवते, रुप्पी, सिहरी, मंदरे।

५२ जबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्द समप्पेंति, त जहा—
गगा, रोहिता, हरी, सीता, णरकता, सुवण्णकूला, रत्ता।

५३ जबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्द समप्पेंति, तं जहा—
सिधू, रोहितसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला, रत्तावती।

५४ धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे ण सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, °एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे,° महाविदेहे।

क्षेत्र-पर्वत-नदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, महाविदेह।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षधरपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी, मन्दर।

जम्बू द्वीपे द्वीपे सप्त महानद्य, पूर्वाभिमुखा लवणसमुद्र समर्पयन्ति, तद्यथा—
गङ्गा, रोहिता, हरित्, शीता, नरकान्ता, स्वर्णकूला, रक्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त महानद्य पश्चिमाभिमुखा लवणसमुद्र समर्पयन्ति, तद्यथा—
सिन्धू, रोहिताशा, हरिकान्ता, शीतोदा, नारीकान्ता, रूप्यकूला, रक्तवती।

धातकीपण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, महाविदेह।

क्षेत्र-पर्वत-नदी-पद

५० जम्बूद्वीप द्वीप मे सात वर्ष—क्षेत्र हैं—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष, ७ महाविदेह।

५१ जम्बूद्वीप द्वीप मे सात वर्षधर पर्वत है—
१ क्षुद्रहिमवान्, २ महाहिमवान्, ३ निषध, ४. नीलवान्, ५ रुक्मी, ६ शिखरी, ७ मन्दर।

५२ जम्बूद्वीप द्वीप मे सात महानदिया पूर्वाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र मे समाप्त होती हैं—
१ गगा, २ रोहिता, ३ हरित्, ४ शीता, ५ नरकान्ता, ६ सुवर्णकूला, ७ रक्ता।

५३ जम्बूद्वीप द्वीप मे सात महानदिया पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में समाप्त होती हैं—
१ सिंधू, २ रोहिताशा, ३ हरिकाता, ४ शीतोदा, ५ नारीकाता, ६ रुप्यकूला, ७ रक्तवती।

५४ धातकीपण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध मे सात क्षेत्र हैं—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष, ७ महाविदेह।

५५ धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे ण सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवते, •महाहिमवते, णिसढे, णीलवते, रुप्पी, सिहरी,° मदरे ।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षधर-पर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी, मन्दर ।

५५ धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध मे सात वर्षधर पर्वत हैं—
१ क्षुद्रहिमवान्, २ महाहिमवान्, ३ निषध, ४ नीलवान्, ५ रुक्मी, ६ शिखरी, ५ मन्दर।

५६. धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे ण सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्द समप्पेंति, त जहा—
गगा, •रोहिता, हरी, सीता, णरकता, सुवण्णकूला,° रत्ता ।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त महानद्य पूर्वाभिमुखा कालोदसमुद्र समपर्यन्ति, तद्यथा—
गङ्गा, रोहिता, हरित्, शीता, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रक्ता ।

५६ धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध मे सात महानदिया पूर्वाभिमुख होती हुई कालोद समुद्र मे समाप्त होती हैं—
१ गगा, २ रोहिता, ३ हरित्, ४ शीता ५ नरकाता, ६ सुवर्णकूला, ७ रक्ता ।

५७ धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे ण सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्द समप्पेंति, त जहा—
सिंधु, •रोहितसा, हरिकता, सीतोदा, णारिकता, रुप्पकूला,° रत्तावत्ती ।

धातकीषण्डद्वीपे पौरस्त्यार्धे सप्त महानद्य पश्चिमाभिमुखा लवणसमुद्र समर्पयन्ति, तद्यथा—
सिन्धू, रोहिताशा, हरिकान्ता, शीतोदा, नारीकान्ता, रूप्यकूला, रक्तवती ।

५७ धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध मे सात महानदिया पश्चिमाभिमुख होती हुई कालोद समुद्र मे समाप्त होती है—
१ सिंधू, २ रोहिताशा, ३ हरिकाता, ४ शीतोदा, ५ नारीकाता, ६ रूप्यकूला, ७ रक्तवती।

५८ धायइसडदीवे, पच्चत्थिमद्धे ण सत्त वासा एव चेव, णवर—पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्द समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोद । सेस तं चेव ।

धातकीषण्डद्वीपे पाश्चात्यार्धे सप्त वर्षाणि एव चैव, नवर—पूर्वाभिमुखा लवणसमुद्र समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुखा कालोदम् । शेष तच्चैव ।

५८ धातकीषण्डद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियो के नाम पूर्वार्धवर्ती वर्ष आदि के समान ही हैं। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदिया लवण समुद्र मे और पश्चिमाभिमुखी नदिया कालोद समुद्र मे समाप्त होती हैं।

५९ पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे ण सत्त वासा तहेव, णवर—पुरत्थाभिमुहीओ पुक्खरोद समुद्द समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोद समुद्द समप्पेंति । सेसं त चेव ।

पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षाणि तथैव, नवरम्—पूर्वाभिमुखा पुष्करोद समुद्र समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुखा कालोद समुद्र समर्पयन्ति । शेष तच्चैव ।

५९ अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्घ मे सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियो के नाम धातकीषण्डद्वीपवर्ती वर्ष आदि के समान ही हैं। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदिया पुष्करोद समुद्र मे और पश्चिमाभिमुखी नदिया कालोद समुद्र में समाप्त होती हैं।

६० एव पच्चत्थिमद्धेवि । णवर—पुरत्थाभिमुहीओ कालोद समुद्द समप्पेति, पच्चत्थाभिमुहीओ पुक्खरोद समप्पेंति। सव्वत्थ वासा वासहरपव्वता णदीओ य भाणितव्वाणि ।

एव पाश्चात्यार्धेऽपि । नवरम्—पूर्वाभिमुखा कालोद समुद्र समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुखा पुष्करोद समर्पयन्ति । सर्वत्र वर्षाणि वर्षधरपर्वता नद्य च भणितव्या ।

६० अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियो के नाम धातकीषण्डद्वीपवर्ती वर्ष आदि के समान ही हैं। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदिया कालोद समुद्र में और पश्चिमाभिमुख नदिया पुष्करोद समुद्र मे समाप्त होती हैं।

कुलगर-पदं

६१ जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था, त जहा—

सगहणी-गाहा

१ मित्तदामे सुदामे य,
सुपासे य सयपभे।
विमलघोसे सुघोसे य,
महाघोसे य सत्तमे ॥

६२ जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था—
१ पढमित्थ विमलवाहण,
चक्खुम जसम चउत्थमभिचदे।
तत्तो य पसेणइए,
मरुदेवे चेव णाभी य।

६३ एएसि ण सत्तण्ह कुलगराण सत्त भारियाओ हुत्था, त जहा—
१ चदजस चदकंता,
सुरूव पडिरूव चक्खुकता य।
सिरिकता मरुदेवी,
कुलकरइत्थीण णामाइ ॥

६४ जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्सति—
१ मित्तवाहण सुभोमे य,
सुप्पभे य सयपभे।
दत्ते सुहुमे सुबधू य,
आगमिस्सेण होक्खती ॥

६५ विमलवाहणे ण कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिसु, त जहा—

कुलकर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां उत्सर्पिण्यां सप्त कुलकरा अभूवन्, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ मित्रदामा सुदामा च,
सुपार्श्वच स्वयप्रभ।
विमलघोप सुघोपश्च,
महाघोपश्च सप्तम ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्या अवसर्पिण्या सप्त कुलकरा अभूवन्—
१ प्रथमो विमलवाहन,
चक्षुष्मान् यशस्वान् चतुर्थोभिचन्द्र।
तत प्रसेनजित्,
मरुदेवश्चैव नाभिश्च ॥

एतेषा सप्ताना कुलकराणा सप्त भार्या अभूवन्, तद्यथा—
१ चन्द्रयशा चन्द्रकान्ता,
सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुष्कान्ता च।
श्रीकान्ता मरुदेवी,
कुलकरस्त्रीणा नामानि ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सप्त कुलकरा भविष्यन्ति—
१ मित्रवाहन सुभौमश्च,
सुप्रभश्च स्वयप्रभ।
दत्त सूक्ष्म सुबन्धुश्च,
आगमिष्यताभविष्यति ॥

विमलवाहने कुलकरे सप्तविधा रुक्षा उपभोग्यतायै अर्वाक् आगच्छन्, तद्यथा—

कुलकर-पद

६१. जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी मे सात कुलकर हुए थे—

१ मित्रदामा, २ सुदामा, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयप्रभ, ५ विमलघोप, ६ सुघोप, ७ महाघोप।

६२ जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणी मे सात कुलकर" हुए थे—
१ विमलवाहन, २ चक्षुष्मान, ३ यशस्वी, ४ अभिचन्द्र, ५ प्रसेनजित्, ६ मरुदेव, ७ नाभि।

६३ इन सात कुलकरो के सात भार्याए थी—

१ चन्द्रयशा, २ चन्द्रकाता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्षुष्काता ६ श्रीकाता, ७ मरुदेवी।

६४ जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी मे सात कुलकर होंगे—

१ मित्रवाहन, २ सुभौम, ३ सुप्रभ, ४ स्वयप्रभ, ५ दत्त, ६ सूक्ष्म, ७ सुबन्धु।

६५ विमलवाहन कुलकर के सात प्रकार के वृक्ष निरन्तर उपभोग मे आते थे—

१ मतगया य भिगा,
चित्तगा चेव होंति चित्तरसा ।
मणियगा य अणियणा,
सत्तमगा कप्परुक्खा य ।।

१ मदाङ्गकाश्च भृङ्गा,
श्चित्राङ्गाश्चैव भवन्ति चित्ररसा ।
मण्यङ्गाश्च अनग्ना,
सप्तमक कल्परुक्षाश्च ।।

१ मदाङ्गक, २ भृङ्ग, ३ चित्राङ्ग, ४ चित्ररस, ५ मण्यङ्ग, ६ अनग्नक, ७ कल्पवृक्ष।

६६ सत्तविधा दडनीति पण्णत्ता, तं जहा—
हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मडलबधे, चारए, छविच्छेदे ।

सप्तविधा दण्डनीति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हाकार, माकार, धिक्कार, परिभाष, मण्डलवन्ध, चारक, छविच्छेद ।

६६ दण्डनीति[१४] के सात प्रकार हैं—
१ हाकार—हा ! तूने यह क्या किया ?
२ माकार—आगे ऐसा मत करना।
३ धिक्कार—धिक्कार है तुझे, तूने ऐसा किया ?
४ परिभाप—थोडे समय के लिए नजरवन्द करना, क्रोधपूर्ण शब्दो मे 'यही बैठ जाओ' का आदेश देना।
५ मण्डलवध—नियमित क्षेत्र से वाहर न जाने का आदेश देना।
६ चारक—कैद मे डालना।
७ छविच्छेद—हाथ-पैर आदि काटना।

चक्कवट्टिरयण-पद

६७. एगमेगस्स ण रण्णो चाउरतचक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदियरतणा पण्णत्ता, त जहा—
चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, दडरयणे, असिरयणे, मणिरयणे, काकणिरयणे।

चक्रवर्त्तिरत्न-पदम्

एकैकस्य राज्ञ चातुरन्तचक्रवर्तिन सप्त एकेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न, काकिनीरत्नम् ।

चक्रवर्त्तिरत्न-पद

६७ प्रत्येक चतुरत चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं[१५]—
१ चक्ररत्न, २ छत्ररत्न, ३ चर्मरत्न, ४ दण्डरत्न, ५ असिरत्न, ६ मणिरत्न, ७ काकणीरत्न।

६८ एगमेगस्स ण रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पचिंदियरतणा पण्णत्ता, त जहा—
सेणावतिरयणे, गाहावतिरयणे, वड्डइरयणे, पुरोहितरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे।

एकैकस्य राज्ञ चातुरन्तचक्रवर्तिन सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, वर्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, स्त्रीरत्न, अश्वरत्न, हस्तिरत्नम् ।

६८ चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पञ्चेन्द्रिय रत्न होते हैं[१६]—
१ सेनापतिरत्न, २ गृहपतिरत्न, ३ वर्द्धकीरत्न, ४ पुरोहितरत्न, ५ स्त्रीरत्न, ६ अश्वरत्न, ७ हस्तिरत्न।

दुस्समा-लक्खण-पद

६९ सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढ दुस्सम जाणेज्जा, तं जहा—

दुःषमा-लक्षण-पदम्

सप्तभि स्थानै अवगाढा दुष्षमा जानीयात्, तद्यथा—

दु.षमा-लक्षण-पद

६९ सात स्थानो से दुष्पमाकाल की अवस्थिति जानी जाती है—

अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ,
असाधू पुज्जति, साधू ण पुज्जति,
गुरूंहि जणो मिच्छं पडिवण्णो,
मणोदुहता, वइदुहता।

अकाले वर्षति, काले न वर्षति,
असाधवः पूज्यन्ते, साधवो न पूज्यन्ते,
गुरुभिः जनः मिथ्या प्रतिपन्नः,
मनोदुःखता, वाग्दुःखता।

१ अकाल मे वर्षा होती है।
२, समय पर वर्षा नहीं होती।
३ असाधुओं की पूजा होती है।
४ साधुओं की पूजा नहीं होती।
५ व्यक्ति गुरुजनों के प्रति मिथ्या—अविनयपूर्ण व्यवहार करता है।
६ मन-सम्बन्धी दुःख होता है।
७ वचन-सम्बन्धी दुःख होता है।

सुसमा-लक्खण-पदं

७०. सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—
अकाले ण वरिसइ, काले वरिसइ,
असाधू ण पुज्जति, साधू पुज्जति
गुरूंहि जणो सम्मं पडिवण्णो,
मणोसुहता, वइसुहता।

सुषमा-लक्षण-पदम्

सप्तभिः स्थानैः अवगाढां सुषमां जानीयात्, तद्यथा—
अकाले न वर्षति, काले वर्षति,
असाधवो न पूज्यन्ते, साधवः पूज्यन्ते,
गुरुभिः जनः सम्यक् प्रतिपन्नः,
मनःसुखता, वाक्सुखता।

सुषमा-लक्षण-पद

७० सात स्थानों से सुषमाकाल की अवस्थिति जानी जाती है—
१ अकाल में वर्षा नहीं होती।
२ समय पर वर्षा होती है।
३ असाधुओं की पूजा नहीं होती।
४ साधुओं की पूजा होती है।
५ व्यक्ति गुरुजनों के प्रति मिथ्या व्यवहार नहीं करता।
६ मन-सम्बन्धी सुख होता है।
७ वचन-सम्बन्धी सुख होता है।

जीव-पद

७१ सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ।

जीव-पदम्

सप्तविधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नैरयिकाः, तिर्यग्योनिकाः, तिर्यग्योनिक्यः, मनुष्याः, मानुष्यः, देवाः, देव्यः।

जीव-पद

७१ संसारसमापन्नक जीव सात प्रकार के होते हैं—
१ नैरयिक, २ तिर्यञ्चयोनिक, ३ तिर्यञ्चयोनिकी, ४ मनुष्य, ५ मानुषी, ६ देव, ७ देवी।

आउभेद-पदं

७२ सत्तविधे आउभेदे पण्णत्ते, तं जहा—

आयुर्भेद-पदम्

सप्तविधः आयुर्भेदः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

आयुर्भेद-पद

७२ आयुष्य-भेद[१७] [अकालमृत्यु] के सात कारण हैं—

सगहणी-गाहा

१ अज्झवसाण-णिमित्ते,
आहारे वेयणा पराघाते।
फासे आणापाणू,
सत्तविध भिज्जए आउ ।।

सग्रहणी-गाथा

१ अध्यवसान-निमित्ते,
आहारो वेदना पराघात ।
स्पर्श आनापानौ,
सप्तविध भिद्यते आयु ।।

१ अध्यवसान—राग, स्नेह और भय आदि की तीव्रता।
२ निमित्त—शस्त्रप्रयोग आदि।
३ आहार—आहार की न्यूनाधिकता।
४ वेदना—नयन आदि की तीव्रतम वेदना
५ पराघात—गढे आदि मे गिरना।
६ स्पर्श—साप आदि का स्पर्श।
७ आन-अपान—उच्छ्वास-नि श्वास का निरोध।

जीव-पद

७३ सत्तविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सतिकाइया, तसकाइया, अकाइया।
अहवा—सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
कण्हलेसा °णीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्ह लेसा° सुक्कलेसा अलेसा।

जीव-पदम्

सप्तविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, त्रसकायिका, अकायिका ।
अथवा—सप्तविव सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या अलेश्या ।

जीव-पद

७३ सभी जीव सात प्रकार के है—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ त्रसकायिक, ७ अकायिक।

अथवा—सभी जीव सात प्रकार के हैं—
१ कृष्णलेश्या वाले, २ नीललेश्या वाले, ३ कापोतलेश्या वाले, ४ तेजस्लेश्यावाले, ५ पद्मलेश्या वाले, ६ शुक्ललेश्या वाले, ७ अलेश्य।

बंभदत्त-पद

७४ बभदत्ते ण राया चाउरतचक्कवट्टी सत्त धणूइ उड्ढ उच्चत्तेण, सत्त य वाससयाइ परमाउ पालइत्ता कालमासे काल किच्चा अधेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे।

ब्रह्मदत्त-पदम्

ब्रह्मदत्त राजा चातुरन्तचक्रवर्ती सप्त धनूंषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, सप्त च वर्षशतानि परमायु पालयित्वा कालमासे काल कृत्वा अध सप्तमाया पृथिव्या अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वेन उपपन्न ।

ब्रह्मदत्त-पद

७४ चतुरत चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्त की ऊचाई सात धनुष्य की थी। वे सात सौ वर्षों की उत्कृष्ट आयु का पालन कर, मरणकाल मे मरकर, निचली सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक मे नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए।

मल्ली-पव्वज्जा-पदं

७५ मल्ली ण अरहा अप्पसत्तमे मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा—

मल्ली-प्रव्रज्या-पदम्

मल्ली अर्हन् आत्मसप्तम मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित, तद्यथा—

मल्ली-प्रव्रज्या-पद

७५ अर्हत् मल्ली[६], अपने सहित सात राजाओ के साथ, मुण्डित होकर अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित हुए—

मल्ली विदेहरायवरकण्णगा, पडिवुद्धी इक्खागराया, चदच्छाये अगराया, रुप्पी कुणालाधिपती, सखे कासीराया, अदीणसत्तू कुरुराया, जितसत्तू पचालराया।	मल्ली विदेहराजवरकन्यका, प्रतिवुद्धि इक्ष्वाकराज चन्द्रच्छाय अङ्गराज, रुक्मी कुणालाधिपति, शङ्ख काशीराज, अदीनशत्रु कुरुराज, जितशत्रु पञ्चालराज।	१ विदेह राजा की वरकन्या मल्ली। २ इक्ष्वाकुराज प्रतिवुद्धि—साकेत निवासी। ३ अग जनपद का राजा चन्द्रच्छाय—चम्पा निवासी। ४. कुणाल जनपद का राजा रुक्मी—श्रावस्ती निवासी। ५ काशी जनपद का राजा शख—वाराणसी निवासी। ६ कुरु देश का राजा अदीनशत्रु—हस्तिनापुर निवासी। ७ पञ्चाल जनपद का राजा जितशत्रु—कम्पिल्लपुर निवासी।

दंसण-पदं	दर्शन-पदम्	दर्शन-पद
७६ सत्तविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा— सम्मद्दसणे, मिच्छद्दसणे, सम्मामिच्छदसणे, चक्खुदसणे, अचक्खुदंसणे ओहिदसणे, केवलदंसणे।	सप्तविध दर्शन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनम्।	७६ दर्शन के सात प्रकार हैं— १ सम्यग्दर्शन, २ मिथ्यादर्शन, ३ सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४ चक्षुदर्शन, ५ अचक्षुदर्शन, ६ अवधिदर्शन, ७ केवलदर्शन।

छउमत्थ-केवलि-पदं	छद्मस्थ-केवलि-पदम्	छद्मस्थ-केवलि-पद
७७ छउमत्थ-वीयरागे ण मोहणिज्ज-वज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेदेति, त जहा—	छद्मस्थ-वीतराग मोहनीयवर्जा सप्त कर्मप्रकृती वेदयति, तद्यथा—	७७ छद्मस्थ-वीतराग मोहनीय कर्म को छोड-कर सात कर्म प्रकृत्तियों का वेदन करता है—
णाणावरणिज्ज, दंसणावरणिज्जं, वेयणिज्ज, आउय, णाम, गोत, अतराइय।	ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तरायिकम्।	१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ आयुष्य, ५ नाम, ६ गोत्र, ७ अन्तराय।
७८. सत्त ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण ण याणति ण पासति, त जहा— धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, जीव असरीरपडिवद्ध, परमाणु पोग्गल सद्द, गध।	सप्त स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव अशरीरप्रतिवद्ध, परमाणुपुद्गल, शव्द, गन्धम्।	७८ सात पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है— १. धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शव्द, ७ गध।
एयाणि चेव उप्पण्णणाण°दसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण° जाणति पासति, त जहा—	एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—	विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारणा करने वाले अर्हत्, जिन, केवली, इन पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं—

धम्मत्थिकायं, •अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, जीव असरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गलं, सद्द,° गध ।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव अशरीरप्रतिबद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्धम् ।

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७ गध ।

महावीर-पदं

७९ समणे भगवं महावीरे वइरोसभणारायसंघयणे समचउरससठाण-सठिते सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेण हुत्था ।

महावीर-पदम्

श्रमण भगवान् महावीर वज्रर्षभनाराचसहनन समचतुरस्र-सस्थान-सस्थित सप्त रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत् ।

महावीर-पद

७९ श्रमण भगवान् महावीर वज्रऋषभनाराच सघयण और समचतुरस्र सस्थान से सस्थित थे । उनकी ऊचाई सात रत्नि की थी ।

विकहा-पदं

८० सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा, मिउकालुणिया, दसणभेयणी, चरित्तभेयणी ।

विकथा-पदम्

सप्त विकथा, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, मृदुकारुणिकी, दर्शनभेदिनी, चरित्रभेदिनी ।

विकथा-पद

८० विकथाए सात हैं—

१ स्त्रीकथा, २. भक्तकथा, ३ देशकथा, ४ राज्यकथा, ५ मृदुकारुणिकी—वियोग के समय करुणरस प्रधान वार्ता । ६ दर्शनभेदिनी—सम्यक्दर्शन का विनाश करने वाली वार्ता । ७ चारित्रभेदिनी—चारित्र का विनाश करने वाली वार्ता ।

आयरिय-उवज्झाय-अइसेस-पदं

८१ आयरिय-उवज्झायस्स ण गणसि सत्त अइसेसा पण्णत्ता, त जहा—

१. आयरिय-उवज्झाए अतो उवस्सयस्स पाए णिगिज्झिय-णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णातिक्कमति ।

२ •आयरिय-उवज्झाए अतो उवस्सयस्स उच्चारपासवण विगिचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति ।

३. आयरिय-उवज्झाए पभू इच्छा वेयावडिय करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा ।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्तातिशेषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१. आचार्योपाध्याय अन्त उपाश्रयस्य पादौ निगृह्य-निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति ।

२ आचार्योपाध्याय अन्त उपाश्रयस्य उच्चारप्रश्रवण विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति ।

३ आचार्योपाध्याय प्रभु इच्छा वैयावृत्त्य कुर्यात्, इच्छा नो कुर्यात् ।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-पद

८१ गण मे आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशेष होते हैं—

१ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे पैरो की धूलि को [दूसरो पर न गिरे वैसे] झाड़ते हुए, प्रमाजित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ।

२ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ।

३ आचार्य और उपाध्याय की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी साधु की सेवा करें या न करें ।

४ आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति।

५ आयरिय-उवज्झाए° बाहिं उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा (एगओ ?) वसमाणे णातिक्कमति।

६ उवकरणातिसेसे।

७. भत्तपाणातिसेसे।

४ आचार्योपाध्याय अन्तः उपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकको वसन् नातिक्रामति।

५ आचार्योपाध्याय बहिः उपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा (एकक ?) वसन् नातिक्रामति।

६ उपकरणातिशेष।

७ भक्तपानातिशेष।

४ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात या दो रात तक अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते।

५ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक रात या दो रात तक अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते।

६ उपकरण की विशेषता[19]—उज्ज्वल वस्त्र धारण करना।

७ भक्त-पान की विशेषता—स्थिरबुद्धि के लिए उपयुक्त मृदु-स्निग्ध भोजन करना।

संजम-असंजम-पदं

८२ सत्तविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसंजमे,
•आउकाइयसंजमे,
तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे,
वणस्सइकाइयसंजमे,°
तसकाइयसंजमे,
अजीवकाइयसंजमे।

संयम-असंयम-पदम्

सप्तविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकसंयमः,
अप्कायिकसंयमः,
तेजस्कायिकसंयमः, वायुकायिकसंयमः,
वनस्पतिकायिकसंयमः,
त्रसकायिकसंयमः,
अजीवकायिकसंयमः।

संयम-असंयम-पद

८२ संयम के सात प्रकार हैं[20]—
१ पृथ्वीकायिक संयम।
२ अप्कायिक संयम।
३ तेजस्कायिक संयम।
४ वायुकायिक संयम।
५ वनस्पतिकायिक संयम।
६ त्रसकायिक संयम।
७ अजीवकायिक संयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और उपभोग की विरति करना।

८३ सत्तविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअसंजमे,
•आउकाइयअसंजमे,
तेउकाइयअसंजमे,
वाउकाइयअसंजमे,
वणस्सइकाइयअसंजमे,°
तसकाइयअसंजमे,
अजीवकाइयअसंजमे।

सप्तविधः असंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासंयमः,
अप्कायिकासंयमः,
तेजस्कायिकासंयमः,
वायुकायिकासंयमः,
वनस्पतिकायिकासंयमः,
त्रसकायिकासंयमः,
अजीवकायिकासंयमः।

८३ असंयम के सात प्रकार हैं[21]—
१ पृथ्वीकायिक असंयम।
२ अप्कायिक असंयम।
३ तेजस्कायिक असंयम।
४ वायुकायिक असंयम।
५ वनस्पतिकायिक असंयम।
६ त्रसकायिक असंयम।
७ अजीवकायिक असंयम।

आरंभ-पद

८४ सत्तविहे आरभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयआरभे,
•आउकाइयआरभे,
तेउकाइयआरभे,
वाउकाइयआरभे,
वणस्सइकाइयआरभे,
तसकाइयआरभे°
अजीवकाइयआरभे।

८५. •सत्तविहे अणारभे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयअणारभे°।

८६. सत्तविहे सारभे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयसारभे°।

८७ सत्तविहे असारभे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयअसारभे°।

८८ सत्तविहे समारभे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयसमारभे°।

८९ सत्तविहे असमारभे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयअसमारभे°।°

आरम्भ-पदम्

सप्तविध आरम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकारम्भ•,
अप्कायिकारम्भ,
तेजस्कायिकारम्भ,
वायुकायिकारम्भ•,
वनस्पतिकायिकारम्भ,
त्रसकायिकारम्भ,
अजीवकायारम्भ।

सप्तविध अनारम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकानारम्भ°।

सप्तविध सरम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकसरम्भ°।

सप्तविध असरम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासरम्भ°।

सप्तविध समारम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकसमारम्भ°।

सप्तविध असमारम्भ प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासमारम्भ°।

आरम्भ-पद

८४ आरम्भ[४३] के सात प्रकार हैं—
१ पृथ्वीकायिक आरम्भ।
२ अप्कायिक आरम्भ।
३ तेजस्कायिक आरम्भ।
४ वायुकायिक आरम्भ।
५ वनस्पतिकायिक आरम्भ।
६ त्रसकायिक आरम्भ।
७ अजीवकायिक आरम्भ।

८५ अनारम्भ के सात प्रकार हैं—
पृथ्वीकायिक अनारम्भ०।

८६ सरम्भ[४४] के सात प्रकार हैं—
पृथ्वीकायिक सरम्भ०।

८७ असरम्भ के सात प्रकार हैं—
पृथ्वीकायिक असरम्भ०।

८८ समारम्भ[४५] के सात प्रकार हैं—
पृथ्वीकायिक समारम्भ०।

८९ असमारम्भ के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक असमारम्भ०।

जोणि-ठिइ-पद

९० अध भंते! अदसि-कुसुम्भ-कोद्दव-कगु-रालग-वरट्ट-कोद्दूसग-सण-सरिसव-मूलगबीयाण—एतेसि णं धण्णाण कोट्ठाउत्ताण पल्लाउत्ताण •मचाउत्ताण मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण लछियाण मुद्दियाण° पिहियाण केवइय काल जोणी सचिट्ठति?

योनि-स्थिति-पदम्

अथ भन्ते! अतसी-कुसुम्भ-कोद्रव-कगू-रालक-वरट-कोदूषक-सन-सर्षप-मूलक-बीजानाम्—एतेषा धान्याना कोष्ठागुप्ताना पल्यागुप्ताना मञ्चागुप्ताना मालागुप्ताना अवलिप्ताना लिप्ताना लाञ्छिताना मुद्रिताना पिहिताना कियत् काल योनि सतिष्ठते?

योनि-स्थिति-पद

९० भगवन्! अलसी, कुसुम्भ, कोदव, कंगु, राल, गोलचना, कोदव की एक जाति, सन, सर्षप, मूलकबीज—ये धान्य जो कोष्ठगुप्त, पल्यगुप्त, मञ्चगुप्त, मालागुप्त, अवलिप्त, लिप्त, लाछित, मुद्रित, पिहित हैं, उनकी योनि कितने काल तक रहती है?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण सत्त सवच्छराइं। तेण पर जोणी पमिलायति °तेण पर जोणी पविद्धसति, तेण पर जोणी विद्धसति, तेण पर बीए अबीए भवति, तेण पर° जोणी वोच्छेदे पण्णत्ते।

गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण सप्त संवत्सराणि। तेन पर योनि प्रम्लायति, तेन पर योनि प्रविध्वसते, तेन पर योनि विध्वसते, तेन पर बीज अबीज भवति, तेन पर योनि व्यवच्छेद प्रज्ञप्त।

गौतम! जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत सात वर्ष तक। उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का व्युच्छेद हो जाता है[*]।

ठिति-पद

६१ बायरआउकाइयाण उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

६२ तच्चाए ण वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेण णेरइयाण सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

६३ चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

स्थिति-पदम्

वादरअप्कायिकाना उत्कर्षेण सप्त वर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

तृतीयाया वालुकाप्रभाया पृथिव्या उत्कर्षेण नैरयिकाणा सप्त सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

चतुर्थ्यां पङ्कप्रभाया पृथिव्या जघन्येन नैरयिकाणा सप्त सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

स्थिति-पद

६१ वादर अप्कायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की है।

६२ तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

६३ चौथी पकप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

अग्गमहिसी-पदं

६४ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

६५ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

६६ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

अग्रमहिषी-पद

६४ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण के सात अग्रमहिषिया हैं।

६५ देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम के सात अग्रमहिषियां हैं।

६६ देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज यम के सात अग्रमहिषिया हैं।

देव-पद

६७. ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवाण सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देव-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आभ्यन्तरपरिषद देवाना सप्त पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

देव-पद

६७ देवेन्द्र देवराज ईशान के आभ्यन्तर परिषद् वाले देवो की स्थिति सात पल्योपम की है।

९८ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं देवीण सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणा देवीना सप्त पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

९८ देवेन्द्र देवराज शक्र के अग्रमहिषी देवियो की स्थिति सात पल्योपम की है।

९९ सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाण देवीण उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे परिगृहीताना देवीना उत्कर्षेण सप्त पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता।

९९ सौधर्मकल्प मे परिगृहीत देवियो की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की है।

१००. सारस्सयमाइच्चाण (देवाण ?) सत्त देवा सत्तदेवसता पण्णत्ता।

सारस्वतादित्याना (देवाना ?) सप्त देवा सप्तदेवशतानि प्रज्ञप्तानि।

१०० सारस्वत और आदित्य जाति के देव स्वामीरूप मे सात हैं और उनके सात सौ देवो का परिवार है।

१०१ गद्दतोयतुसियाण देवाण सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता।

गर्दतोयतुषिताना देवाना सप्त देवा सप्त देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१०१ गर्दतोय और तुषित जाति के देव स्वामीरूप मे सात हैं और उनके सात हजार देवो का परिवार है''।

१०२. सणकुमारे कप्पे उक्कोसेण देवाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

सनत्कुमारे कल्पे उत्कर्षेण देवाना सप्त सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१०२ सनत्कुमारकल्प के देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

१०३ माहिंदे कप्पे उक्कोसेण देवाण सातिरेगाइ सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

माहेन्द्रे कल्पे उत्कर्षेण देवाना सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१०३ माहेन्द्रकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की है।

१०४ बंभलोगे कप्पे जहण्णेण देवाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे जघन्येन देवाना सप्त सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१०४ ब्रह्मलोककल्प के देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

१०५. बभलोय-लतएसु ण कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसताइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

ब्रह्मलोक-लान्तकयो कल्पयो विमानानि सप्त योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०५ ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पो मे विमानो की ऊचाई सात सौ योजन की है।

१०६ भवणवासीण देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

भवनवासिना देवाना भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नी. ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०६ भवनवासी देवो के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई सात रत्नि की है।

१०७ °वाणमतराण 'देवाण' भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

वानमन्तराणा देवाना भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०७ वानमतर देवो के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई सात रत्नि की है।

१०८ जोइसियाण देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।°

ज्योतिष्काणा देवाना भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०८ ज्योतिष्क देवो के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई सात रत्नि की है।

१०९ सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयो कल्पयो देवाना भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०९ सौधर्म और ईशानकल्प के देवों के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई सात रत्नि की है।

णदीसरवर-पद

११०. णदिस्सरवरस्स ण दीवस्स अतो सत्त दीवा पण्णत्ता, त जहा— जबुद्दीवे, धायइसडे, पोक्खरवरे, वरुणवरे, खीरवरे, घयवरे, खोयवरे ।

१११ णदीसरवरस्स ण दीवस्स अतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता, त जहा— लवणे, कालोदे, पुक्खरोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घओदे, खोओदे ।

नन्दीश्वरवर-पदम्

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य अन्त सप्त द्वीपा प्रज्ञप्ता , तद्यथा— जम्बूद्वीप , धातकीषण्डः, पुष्करवर , वरुणवर क्षीरवर , घृतवर, क्षोदवर ।

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य अन्त सप्त समुद्रा प्रज्ञप्ता , तद्यथा— लवण , कालोद , पुष्करोद , वरुणोद , क्षीरोद , घृतोद , क्षोदोद ।

नन्दीश्वरवर-पद

११० नन्दीश्वर वरद्वीप के अन्तराल मे सात द्वीप हैं ।

१ जम्बूद्वीप, २ धातकीषण्ड, ३ पुष्करवर, ४ वरुणवर, ५ क्षीरवर, ६ घृतवर, ७ क्षोदवर ।

१११ नन्दीश्वरवरद्वीप के अन्तराल मे सात समुद्र हैं—

१ लवण, २ कालोद, ३ पुष्करोद, ४ वरुणोद, ५ क्षीरोद, ६ घृतोद, ७ क्षोदोद ।

सेढि-पद

११२ सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, त जहा— उज्जुआयता, एगतोवका, दुहतोवका, एगतोखहा, दुहतोखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला ।

श्रेणि-पदम्

सप्त श्रेण्य प्रज्ञप्ता , तद्यथा— ऋज्वायता, एकतोवक्रा, द्वितोवक्रा, एकत खहा, द्वित खहा, चक्रवाला, अर्धचक्रवाला ।

श्रेणि-पद

११२ श्रेणिया[10]—आकाश की प्रदेशपक्तिया सात हैं—

१ ऋजुआयता—जो सीधी और लबी हो ।

२ एकतोवक्रा—जो एक दिशा मे वक्र हो ।

३ द्वितोवक्रा—जो दोनो ओर वक्र हो ।

४ एकत खहा—जो एक दिशा मे अकुश की तरह मुडी हुई हो, जिसके एक ओर त्रसनाडी का आकाश हो ।

५ द्वित खहा—जो दोनो ओर अकुश की तरह मुडी हुई हो, जिसके दोनो ओर त्रसनाडी के बाहर का आकाश हो ।

६ चक्रवाला—जो वलय की आकृतिवाली हो ।

७ अर्द्धचक्रवाला—जो अर्द्धवलय की आकृतिवाली हो ।

अणिय-अणियाहिवइ-पदं

११३ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, त जहा—

अनीक-अनीकाधिपति-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतय प्रज्ञप्ता , तद्यथा—

अनीक-अनीकाधिपति-पद

११३ असुरेन्द्र असुरकुमारराजचमर के सात सेनाए और सात सेनापति हैं—

पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुजराणिए, महिसाणिए, रहाणिए, णट्टाणिए, गधव्वाणिए।
•दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुंथू हत्थिराया कुजराणियाधिवती, लोहितक्खे महिसाणियाधिवती,° किण्णरे रधाणियाधिवती, रिट्ठे णट्टाणियाधिवती, गीतरती गधव्वाणियाधिवती।

पादातानीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक, महिषानीक, रथानीक, नाट्यानीक, गन्धर्वानीकम्।
द्रुम पादातानीकाधिपति सुदामा अश्वराज पीठानीकाधिपति, कुन्थु हस्तिराज कुञ्जरानीकाधिपति, लोहिताक्ष महिषानीकाधिपति, किन्नर रथानीकाधिपति, रिष्ट नाट्यानीकाधिपति, गीतरति गन्धर्वानीकाधिपति।

सेनाए—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना,
३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना,
५ रथसेना, ६ नर्तकसेना,
७ गन्धवसेना—गायकसेना।
सेनापति—
१ द्रुम—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज सुदामा—अश्वसेना का अधिपति। ३ हस्तिराज कुन्थु—हस्तिसेना का अधिपति।
४ लोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति।
५ किन्नर—रथसेना का अधिपति।
६ रिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति।
७ गीतरति—गधर्वसेना का अधिपति।

११४ बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणिए जाव गधव्वाणिए।
महद्दुमे पायत्ताणियाधिपती जाव किंपुरिसे रधाणियाधिपती, महारिट्ठे णट्टाणियाधिपती, गीतजसे गधव्वाणियाधिपती।

बले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सप्तानीकानि, सप्तानीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक यावत् गन्धर्वानीकम्।
महाद्रुम पादातानीकाधिपति यावत् किंपुरुष रथानीकाधिपति, महारिष्ट नाट्यानीकाधिपति, गीतयशा गन्धर्वानीकाधिपति।

११४ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली के सात सेनाए और सात सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना,
३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना,
५ रथसेना, ६ नर्तकसेना,
७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१ महाद्रुम— पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज महासुदामा—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज मालकार—हस्तिसेना का अधिपति।
४ महालोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति।
५ किंपुरुष—रथसेना का अधिपति।
६ महारिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति।
७ गीतयश—गायकसेना का अधिपति।

११५. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।
भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती जाव आणंदे रधाणियाधिपती,
णंदणे णट्टाणियाधिपती,
तेतली गंधव्वाणियाधिपती।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् गन्धर्वानीकम्।
भद्रसेनः पादातानीकाधिपतिः यावत् आनन्दः रथानीकाधिपतिः,
नन्दनः नाट्यानीकाधिपतिः,
तेतलिः गन्धर्वानीकाधिपतिः।

११५ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१ पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना,
५ रथसेना, ६ नर्तकसेना,
७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१ भद्रसेन—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज यशोधर—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुदर्शन—हस्तिसेना का अधिपति।
४ नीलकण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५ आनन्द—रथसेना का अधिपति।
६ नन्दन—नर्तकसेना का अधिपति।
७ तेतली—गन्धर्वसेना का अधिपति।

११६ भूताणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।
दक्खे पायत्ताणियाहिवती जाव णंदुत्तरे रहाणियाहिवई,
रती णट्टाणियाहिवई,
माणसे गंधव्वाणियाहिवई।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् गन्धर्वानीकम्।
दक्षः पादातानीकाधिपतिः यावत् नन्दोत्तरः रथानीकाधिपतिः,
रतिः नाट्यानीकाधिपतिः,
मानसः गन्धर्वानीकाधिपतिः।

११६ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना,
३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना,
५ रथसेना, ६ नर्तकसेना,
७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१ दक्ष—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज सुग्रीव—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुविक्रम—हस्तिसेना का अधिपति।
४ श्वेत कण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५ नन्दोत्तर—रथसेना का अधिपति।
६. रति—नर्तकसेना का अधिपति।
७ मानस—गन्धर्वसेना का अधिपति।

११७ •जधा धरणस्स तधा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स ।

यथा धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्याना यावत् घोषस्य ।

११७ दक्षिण दिशा के भवनपति देवो के इन्द्र वेणुदेव, हरिकात, अग्निशिख, पूर्ण, जलकात, अमितगति, वेलम्ब तथा घोष के धरण की भाति सात-सात सेनाए और सात-सात सेनापति हैं ।

११८. जधा भूताणदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स ।°

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषा औदीच्याना यावत् महाघोषस्य ।

११८ उत्तर दिशा के भवनपति देवो के इन्द्र, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष के भूतानन्द की भाति सात-सात सेनाए और सात-सात सेनापति हैं ।

११९ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवती पण्णत्ता, त जहा—
पायत्ताणीए जाव रहाणिए, णट्टाणिए, गधव्वाणिए ।
हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाधिपती जाव माढरे रधाणियाधिपती,
सेते णट्टाणियाहिवती,
तुवरू गधव्वाणियाधिपती ।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक यावत् रथानीकम्, नाट्यानीक, गन्धर्वानीकम् ।
हरिनैगमेषी पादातानीकाधिपति यावत् माठर रथानीकाधिपति,
श्वेत नाट्यानीकाधिपति.,
तुम्बरु गन्धर्वानीकाधिपति ।

११९ देवेन्द्र देवराज शक्र के सात सेनाए और सात सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना, ५ रथसेना, ६ नर्तकसेना, ७ गन्धर्वसेना ।
सेनापति—
१ हरिनैगमेषी—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज वायु—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज ऐरावण—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ दामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति ।
५ माठर—रथसेना का अधिपति ।
६ श्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ तुम्बुरु—गन्धर्वसेना का अधिपति ।

१२०. ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गधव्वाणिए ।
लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवती जाव महासेते णट्टाणियाहिवती,
रते गधव्वाणियाधिपती ।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीक यावत् गन्धर्वानीकम् ।
लघुपराक्रम पादातानीकाधिपति यावत् महाश्वेत नाट्यानीकाधिपति ।
रत गन्धर्वानीकाधिपति ।

१२० देवेन्द्र देवराज ईशान के सात सेनाए और सात सेनापति हैं—
सेनाए—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना, ५ रथसेना, ६ नर्तकसेना, ७ गधर्व सेना ।
सेनापति—
१ लघुपराक्रम—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज महावायु—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज पुष्पदन्त—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ महादामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति
५ महामाठर—रथसेना का अधिपति ।
६ महाश्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ रत—गन्धर्वसेना का अधिपति ।

१२१. °जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव आरणस्स।	यथा शक्रस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावत् आरणस्य।	१२१ दक्षिण दिशा के देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत और आरण के, शक्र की भांति, सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।
१२२ जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव अच्चुतस्स°।	यथा ईशानस्य तथा सर्वेषां औदीच्यानां यावत् अच्युतस्य।	१२२ उत्तर दिशा के देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र, लांतक, सहस्रार, प्राणत और अच्युत के ईशान की भांति, सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।
१२३ चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाहिवतिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१२३ असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदाति सेना के अधिपति द्रुम के सात कक्षाएं हैं—
पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा।	प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा।	पहली यावत् सातवीं।
१२४ चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाधिपतिस्स पढमाए कच्छाए चउसट्ठि देवसहस्सा पण्णत्ता। जावतिया पढमा कच्छा तव्विगुणा दोच्चा कच्छा। जावतिया दोच्चा कच्छा तव्विगुणा तच्चा कच्छा। एवं जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा।	चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः प्रथमायां कक्षायां चतुःषष्ठिः देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। यावती प्रथमा कक्षा तद्द्विगुणा द्वितीया कक्षा। यावती द्वितीया कक्षा तद्द्विगुणा तृतीया कक्षा। एवं यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा।	१२४. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदाति-सेना के अधिपति द्रुम की प्रथम कक्षा में ६४ हजार देव हैं। दूसरी कक्षा में उससे दुगुने—१२८००० देव हैं। तीसरी कक्षा में दूसरी से दुगुने—२५६००० देव हैं। इसी प्रकार सातवीं कक्षा में छठी से दुगुने देव हैं।
१२५ एवं वलिस्सवि, णवरं—महद्दुमे सट्ठिदेवसाहस्सिओ। सेसं तं चेव।	एवं वलेरपि, नवरं—महाद्रुमः षष्ठिदेवसाहस्रिकः शेषं तच्चैव।	१२५ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वली के पदाति-सेना के अधिपति महाद्रुम की प्रथम कक्षा में ६० हजार देव हैं। अग्रिम कक्षाओं में क्रमशः दुगुने-दुगुने हैं।
१२६ धरणस्स एवं—चेव, णवरं—अट्ठावीसं देवसहस्सा। सेसं तं चेव।	धरणस्य एवम्—चैव, नवरं—अष्टाविंशतिः देवसहस्राणि शेषं तच्चैव।	१२६ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के पदातिसेना के अधिपति भद्रसेन की प्रथम कक्षा में २८ हजार देव हैं। अग्रिम कक्षाओं में क्रमशः दुगुने-दुगुने हैं।
१२७ जधा धरणस्स एवं जाव महाघोसस्स, णवरं—पायत्ताणियाधिपती अण्णे, ते पुव्वभणिता।	यथा धरणस्य एवं यावत् महाघोषस्य, नवरं—पादातानिकाधिपतयः अन्ये, ते पूर्वभणिताः।	१२७. भूतानन्द से महाघोष तक के सभी इन्द्रों के पदाति सेनापतियों की कक्षाओं की देव-संख्या धरण की भांति ज्ञातव्य है। उनके सेनापति दक्षिण और उत्तर दिशा के भेद से भिन्न-भिन्न हैं, जो पहले बताए जा चुके हैं।

१२८ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पढमा कच्छा एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुतस्स ।
णाणत्त पायत्ताणियाधिपतीण । ते पुव्वभणिता । देवपरिमाण इम—
सक्कस्स चउरासीतिं देवसहस्सा, ईसाणस्स असीतिं देवसहस्साइं जाव अच्चुतस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा ।
देवा इमाए गाथाए अणुगतव्वा—
१. चउरासीति असीति,
बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तालीसा,
तीसा बीसा य दससहस्सा ॥

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य हरिनैगमेषिन सप्त कक्षा. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमा कक्षा एव यथा चमरस्य तथा यावत् अच्युतस्य ।
नानात्व पादातानीकाधिपतीनाम् । ते पूर्वभणिता । देवपरिमाण इदम्—
शक्रस्य चतुरशीति देवसहस्राणि, ईशानस्य अशीति देवसहस्राणि यावत् अच्युतस्य लघुपराक्रमस्य दश देवसहस्राणि यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा ।
देवा अनया गाथया अनुगन्तव्या—
१ चतुरशीतिरशीति.,
द्विसप्तति सप्ततिश्च षष्ठिश्च ।
पञ्चाशत् चत्वारिंशत्,
त्रिंशत् विंशतिश्च दशसहस्राणि ॥

१२८ देवेन्द्र देवराज शक्र के पदातिसेना के अधिपति हरिनैगमेषी के सात कक्षाएं हैं—
पहली यावत् सातवी ।
इसी प्रकार अच्युत तक के सभी देवेन्द्रो के पदातिसेना के अधिपतियो के सात-सात कक्षाएं हैं ।
उनके पदातिसेना के अधिपति भिन्न-भिन्न हैं, जो पहले वताए जा चुके हैं। उनकी कक्षाओ का देव परिमाण इस प्रकार है—
शक्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ८४ हजार देव हैं ।
ईशान के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ८० हजार देव हैं ।
सनत्कुमार के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ७२ हजार देव हैं ।
माहेन्द्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ७० हजार देव हैं ।
ब्रह्म के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ६० हजार देव हैं ।
लान्तक के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ५० हजार देव हैं ।
शुक्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ४० हजार देव हैं ।
सहस्रार के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ३० हजार देव हैं ।
प्राणत के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में २० हजार देव हैं ।
अच्युत के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे १० हजार देव हैं ।
इन सब के शेष छहो कक्षाओ मे पूर्ववत् उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने देव हैं ।

वयणविकप्प-पदं

१२९ सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, त जहा—
आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, सलावे, पलावे, विप्पलावे ।

वचनविकल्प-पदम्

सप्तविध वचनविकल्प प्रज्ञप्त, तद्यथा—
आलाप, अनालाप, उल्लाप, अनुल्लाप, सलाप, प्रलाप, विप्रलाप ।

वचनविकल्प-पद

१२९ वचन के सात विकल्प हैं—
१ आलाप—थोडा बोलना।
२. अनालाप—कुत्सित आलाप करना।
३ उल्लाप—काकु-ध्वनिविकार के द्वारा बोलना।
४ अनुल्लाप—कुत्सित ध्वनिविकार के द्वारा बोलना।
५ सलाप—परस्पर भाषण करना।
६ प्रलाप—निरर्थक बोलना।
७ विप्रलाप—विरुद्ध वचन बोलना।

विणय-पदं

१३०. सत्तविहे विणए पण्णत्ते, त जहा—
णाणविणए, दसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए ।

विनय-पदम्

सप्तविध विनय प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चरित्रविनय, मनोविनय, वाग्विनय, कायविनय, लोकोपचारविनय ।

विनय-पद

१३० विनय[४८] के सात प्रकार हैं—
१. ज्ञानविनय, २ दर्शनविनय, ३ चरित्रविनय, ४ मनविनय—अकुशल मन का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति, ५ वचनविनय—अकुशल वचन का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति।
६ कायविनय—अकुशल काय का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति।
७ लोकोपचारविनय—लोक-व्यवहार के अनुसार विनय करना।

१३१ पसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—
अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूताभिसकणे ।

प्रशस्तमनोविनय सप्तविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अपापक, असावद्य, अक्रिय, निरुपक्लेश, अनास्नवकर, अक्षयिकर, अभूताभिशङ्कन ।

१३१ प्रशस्त मनविनय के सात प्रकार हैं—
१ अपापक—मन को शुभ चिन्तन में प्रवृत्त करना।
२ असावद्य—मन को चोरी आदि गर्हित कर्मों मे न लगाना।
३ अक्रिय—मन को कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओ मे प्रवृत्त न करना।
४ निरुपक्लेश—मन को शोक, चिन्ता आदि मे प्रवृत्त न करना।
५ अनास्नवकर—मन को प्राणातिपात आदि पाच आश्रवो मे प्रवृत्त न करना।
६ अक्षयिकर—मन को प्राणियो को व्यथित करने में न लगाना।
७ अभूताभिशङ्कन—मन को अभयकर बनाना।

१३२. अपसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे।

अप्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पापकः, सावद्यः, सक्रियः, सोपक्लेशः, आस्नवकरः, क्षयिकरः, भूताभिशङ्कनः।

१३२ अप्रशस्त मनविनय के सात प्रकार हैं—
१ पापक, २ सावद्य, ३ सक्रिय, ४ सोपक्लेश, ५ आस्नवकर, ६ क्षयिकर, ७ भूताभिशङ्कन।

१३३ पसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अपावए, असावज्जे, °अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे,° अभूताभिसंकणे।

प्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अपापकः, असावद्यः, अक्रियः, निरुपक्लेशः, अनास्नवकरः, अक्षयिकरः, अभूताभिशङ्कनः।

१३३ प्रशस्त वचनविनय के सात प्रकार हैं—
१ अपापक, २ असावद्य, ३ अक्रिय, ४ निरुपक्लेश, ५ अनास्नवकर, ६ अक्षयिकर, ७ अभूताभिशङ्कन।

१३४. अपसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
पावए, सावज्जे, °सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे,° भूताभिसंकणे।

अप्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पापकः, सावद्यः, सक्रियः, सोपक्लेशः, आस्नवकरः, क्षयिकरः, भूताशिङ्कनः।

१३४ अप्रशस्त वचनविनय के सात प्रकार हैं—
१ पापक, २ सावद्य, ३ सक्रिय, ४ सोपक्लेश, ५ आस्नवकर, ६ क्षयिकर, ७ भूताभिशङ्कन।

१३५ पसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते तं जहा—
आउत्तं गमणं, आउत्तं ठाणं, आउत्तं णिसीयणं, आउत्तं तुयट्टणं, आउत्तं उल्लंघणं, आउत्तं पल्लंघणं, आउत्तं सव्विदियजोगजुंजणता।

प्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आयुक्तं गमनं, आयुक्तं स्थानं, आयुक्तं निषदनं, आयुक्तं त्वग्वर्तनं, आयुक्तं उल्लङ्घनं, आयुक्तं प्रलङ्घनं, आयुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनम्।

१३५ प्रशस्त कायविनय के सात प्रकार हैं—
१ आयुक्त गमन—यतनापूर्वक चलना।
२ आयुक्त स्थान—यतनापूर्वक खड़ा होना, कायोत्सर्ग करना।
३ आयुक्त निषदन—यतनापूर्वक बैठना।
४ आयुक्त त्वग्वर्तन—यतनापूर्वक सोना।
५ आयुक्त उल्लंघन—यतनापूर्वक उल्लंघन करना। ६ आयुक्त प्रलंघन—यतनापूर्वक प्रलंघन करना।
७ आयुक्त सर्वेन्द्रिययोगयोजना—यतनापूर्वक सब इन्द्रियों का प्रयोग करना।

१३६. अपसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अणाउत्तं गमणं, °अणाउत्तं ठाणं, अणाउत्तं णिसीयणं, अणाउत्तं तुयट्टणं, अणाउत्तं उल्लंघणं, अणाउत्तं पल्लंघणं,° अणाउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणता।

अप्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अनायुक्तं गमनं, अनायुक्तं स्थानं, अनायुक्तं निषदनं, अनायुक्तं त्वग्वर्तनं, अनायुक्तं उल्लङ्घनं, अनायुक्तं प्रलङ्घनं, अनायुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनम्।

१३६ अप्रशस्त कायविनय के सात प्रकार हैं—
१ अनायुक्त गमन।
२ अनायुक्त स्थान।
३ अनायुक्त निषदन।
४ अनायुक्त त्वग्वर्तन।
५ अनायुक्त उल्लंघन।
६ अनायुक्त प्रलंघन।
७ अनायुक्त सर्वेन्द्रिययोगयोजनता।

१३७ लोगोवयारविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—
अब्भासवत्तित, परच्छदाणुवत्तित, कज्जहेउ, कतपडिकतिता, अत्तगवेसणता, देसकालण्णता, सव्वत्थेसु अपडिलोमता।

लोकोपचारविनय. सप्तविध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अभ्यासवर्तित, परच्छन्दानुवर्तित, कार्यहेतो, कृतप्रतिकृतिता, आर्त्तगवेषणता, देशकालज्ञता, सर्वार्थेषु अप्रतिलोमता।

१३७ लोकोपचारविनय के सात प्रकार हैं—
१ अभ्यासवर्तित्व—श्रुत-ग्रहण करने के लिए आचार्य के समीप बैठना।
२ परच्छन्दानुवर्तित्व—दूसरो के अभिप्राय के अनुसार वर्तन करना।
३ कार्यहेतु—'इसने मुझे ज्ञान दिया'—इसलिए उसका विनय करना।
४ कृतप्रतिकृतिता—प्रत्युपकार की भावना से विनय करना।
५ आर्त्तगवेषणता—रोगी के लिए औषध आदि की गवेषणा करना।
६ देशकालज्ञता—अवसर को जानना।
७ सर्वार्थ अप्रतिलोमता—सब विषयो मे अनुकूल आचरण करना।

समुग्घात-पदं

१३८. सत्त समुग्घाता पण्णत्ता, त जहा—
वेयणासमुग्घाए,
कसायसमुग्घाए,
मारणतियसमुग्घाए,
वेउव्वियसमुग्घाए,
तेजससमुग्घाए,
आहारगसमुग्घाए,
केवलिसमुग्घाए।

समुद्घात-पदम्

सप्त समुद्घाता, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात,
मारणान्तिकसमुद्घात,
वैक्रियसमुद्घात,
तैजससमुद्घात,
आहारकसमुद्घात,
केवलिसमुद्घात।

समुद्घात-पद

१३८ समुद्घात सात हैं—
१ वेदनासमुद्घात—असात वेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
२ कषाय समुद्घात—कषाय मोहकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
३ मारणान्तिक समुद्घात—आयुष्य के अन्तर्मुहूर्त्त अवशिष्ट रह जाने पर उसके आश्रित होने वाला समुद्घात।
४ वैक्रिय समुद्घात—वैक्रिय नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
५ तैजस समुद्घात—तैजसनामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
६ आहारक समुद्घात—आहारक नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
७ केवली समुद्घात—वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

१३९ मणुस्साण सत्त सणग्घाता पण्णत्ता एव चेव।

मनुष्याणा सप्त समुद्घाता प्रज्ञप्ता एव चैव।

१३९ मनुष्यो मे ये सातो प्रकार के समुद्घात होते हैं।

पवयणणिण्हग-पद

१४० समणस्स ण भगवओ महावीरस्स तित्थसि सत्त पवयणणिण्हगा पण्णत्ता, त जहा—
बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अवद्धिया।

१४१. एएसि ण सत्तण्ह पवयणणिण्हगाण सत्त धम्मायरिया हुत्था, त जहा—
जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गगे, छलुए, गोट्ठामाहिले।

१४२. एतेसि ण सत्तण्ह पवयणणिण्हगाण सत्तउप्पत्तिणगरा हुत्था, त जहा—

सगहणी-गाहा

१ सावत्थी उसभपुरं,
सेयविया मिहिलउल्लगातीर।
पुरिमतरजि दसपुर,
णिण्हगउप्पत्तिणगराइ ॥

प्रवचननिह्नव-पदम्

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य तीर्थे सप्त प्रवचननिह्नवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
बहुरता, जीवप्रदेशिका, अव्यक्तिका, सामुच्छेदिका, द्वैक्रिया, त्रैराशिका, अबद्धिका।

एतेषा सप्ताना प्रवचननिह्नवाना सप्त धर्माचार्या अभवन्, तद्यथा—
जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ, अश्वमित्र, गङ्ग, षडुलूक, गोष्ठामाहिल।

एतेषा सप्ताना प्रवचननिह्नवाना सप्तोत्पत्तिनगराणि अभवन्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. श्रावस्ती ऋषभपुर,
श्वेतविका मिथिलाउल्लुकातीरम्।
पुर्यन्तरञ्जि दशपुर,
निह्नवोत्पत्तिनगराणि ॥

प्रवचननिह्नव-पद

१४० श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ मे प्रवचन-निह्नव[१] सात हुए हैं—
१ बहुरत, २ जीवप्रादेशिक, ३ अव्यक्तिक, ४ सामुच्छेदिक, ५ द्वैक्रिय, ६ त्रैराशिक, ७ अवद्धिक।

१४१ इन सात प्रवचन-निह्नवो के सात धर्माचार्य थे—
१ जमाली, २ तिष्यगुप्त, ३ आषाढ, ४ अश्वमित्र, ५ गग, ६ षड्लूक, ७ गोष्ठामाहिल।

१४२ इन सात प्रवचन-निह्नवो के उत्पत्ति-नगर सात हैं—
१ श्रावस्ति, २ ऋषभपुर, ३ श्वेतविका, ४ मिथिला, ५ उल्लुकातीर, ६ अन्तरजिका, ७ दशपुर।

अणुभाव-पदं

१४३. सातावेयणिज्जस्स ण कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, त जहा—
मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, मणुण्णा गधा, मणुण्णा रसा, मणुण्णा फासा, मणो सुहता, वइसुहता।

अनुभाव-पदम्

सातवेदनीयस्य कर्म्मण सप्तविध अनुभाव प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मनोज्ञा शब्दा, मनोज्ञानि रूपाणि, मनोज्ञा गन्धा, मनोज्ञा रसा, मनोज्ञा स्पर्शा, मन सुखता, वाक्सुखता।

अनुभाव-पद

१४३ सातवेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का होता है—
१ मनोज्ञ शब्द, २ मनोज्ञ रूप, ३ मनोज्ञ गन्ध, ४ मनोज्ञ रस, ५ मनोज्ञ स्पर्श, ६ मन की सुखता, ७ वचन की सुखता।

१४४ असातावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—
अमणुण्णा सद्दा, °अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा फासा, मणोदुहता,° वइदुहता।

असातवेदनीयस्य कर्म्मण सप्तविध अनुभाव प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अमनोज्ञा शब्दा, अमनोज्ञानि रूपाणि, अमनोज्ञा गन्धा, अमनोज्ञा रसा, अमनोज्ञा स्पर्शा, अमनोदुःखता, वाग्दुःखता।

१४४. असातवेदनीय कर्म का अनुभव सात प्रकार का होता है—
१ अमनोज्ञ शब्द, २ अमनोज्ञ रूप, ३ अमनोज्ञ गन्ध, ४ अमनोज्ञ रस, ५ अमनोज्ञ स्पर्श, ६ मन की दुःखता, ७ वचन की दुःखता।

णक्खत्त-पद

नक्षत्र-पदम्

नक्षत्र-पद

१४५ महाणक्खत्ते सत्त तारे पण्णत्ते।

मघानक्षत्र सप्त तार प्रज्ञप्तम्।

१४५ मघानक्षत्र सात तारों वाला होता है।

१४६ अभिईयादिया णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवती।

अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरभद्रपदा, रेवती।

१४६ अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले हैं—
१ अभिजित्, २ श्रवण, ३ धनिष्ठा, ४ शतभिषक्, ५ पूर्वभाद्रपद, ६ उत्तरभाद्रपद, ७ रेवती।

१४७ अस्सिणियादिया णं सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
अस्सिणी, भरणी, कित्तिया, रोहिणी, मिगसिरे, अद्दा, पुणव्वसू।

अश्विन्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि दक्षिणद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु।

१४७ अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिणद्वार वाले हैं—
१ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका, ४ रोहिणी, ५ मृगशिर, ६ आर्द्रा, ७ पुनर्वसु।

१४८ पुस्सादिया णं सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
पुस्सो, असिलेसा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता।

पुष्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि अपरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा।

१४८ पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिमद्वार वाले हैं—
१ पुष्य, २ अश्लेषा, ३ मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी ५ उत्तरफाल्गुनी, ६ हस्त, ७ चित्रा।

१४९ सातियाइया णं सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा।

स्वात्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि उत्तरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा।

१४९ स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तरद्वार वाले हैं—
१ स्वाति, २ विशाखा, ३ अनुराधा, ४ ज्येष्ठा, ५ मूल, ६ पूर्वाषाढा, ७ उत्तराषाढा।

कूड-पद

कूट-पदम्

कूट-पद

१५० जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे दीवे वक्खारपव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे सौमनसे वक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१५० जम्बूद्वीप द्वीप में सौमनस वक्षस्कारपर्वत के कूट सात हैं—

संगहणी-गाहा	संग्रहणी-गाथा		
१ सिद्धे सोमणसे या, बोद्धव्वे मगलावतीकूडे । देवकुरु विमल कचण, विसिट्ठकूडे य बोद्धव्वे ।।	१ सिद्ध सौमनसश्च, बोद्धव्य मङ्गलावतीकूटम् । देवकुरु विमल काञ्चन, विशिष्टकूट च बोद्धव्यम् ।।		१ सिद्ध, २ सौमनस, ३ मगलावती, ४ देवकुरु, ५ विमल, ६ काचन, ७ विशिष्ट ।
१५१. जबुद्दीवे दीवे गधमायणे वक्खार-पव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, त जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे गन्धमादने वक्षस्कार-पर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१५१	जम्बूद्वीप द्वीप मे गधमादन वक्षस्कार-पर्वत के कूट सात हैं—
१. सिद्धे य गधमायण, बोद्धव्वे गधिलावतीकूडे । उत्तरकुरु फलिहे, लोहितक्खे आणदणे चेव ।।	१. सिद्धश्च गधमादनो, वोद्धव्य गन्धिलावतीकूटम् । उत्तरकुरु स्फटिक, लोहिताक्ष आनन्दनश्चैव ।।		१ सिद्ध, २ गधमादन, ३ गधलावती, ४ उत्तरकुरु, ५ स्फटिक, ६ लोहिताक्ष, ७ आनन्दन ।
कुलकोडि-पदं	कुलकोटि-पदम्		कुलकोटि-पद
१५२ विइदियाण सत्त जाति-कुलकोडि-जोणीपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता ।	द्वीन्द्रियाणा सप्त जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।	१५२	द्वीन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह में होने वाली कुलकोटिया सात लाख हैं ।
पावकम्म-पदं	पापकर्म-पदम्		पापकर्म-पद
१५३ जीवाण सत्तट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—	जीवा सप्तस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा तद्यथा—	१५३	जीवो ने सात स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का, पापकर्म के रूप मे, चय किया है, करते हैं और करेंगे—
णेरइयनिव्वत्तिते, •तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणिणीणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, मणुस्सीणिव्वत्तिते,° देवणिव्वत्तिते, देवीणिव्वत्तिते ।	नैरयिकनिर्वर्तितान्, तिर्यग्योनिकनिर्वर्तितान्, तिर्यग्योनिकीनिर्वर्तितान्, मनुष्यनिर्वर्तितान्, मानुषीनिर्वर्तितान्, देवनिर्वर्तितान्, देवीनिर्वर्तितान् ।		१ नैरयिक निर्वर्तित पुद्गलो का । २ तिर्यक्योनिक निर्वर्तित पुद्गलो का । ३ तिर्यक्योनिकी निर्वर्तित पुद्गलो का । ४ मनुष्य निर्वर्तित पुद्गलो का । ५ मानुषी निर्वर्तित पुद्गलो का । ६ देव निर्वर्तित पुद्गलो का । ७ देवी निर्वर्तित पुद्गलो का ।
एव—चिण-•उवचिण-बध- उदीर-वेद तह° णिज्जरा चेव ।	एवम्—चय-उपचय-बन्ध- उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव ।		इसी प्रकार जीवो ने सात स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप मे उपचय, बध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।

पोग्गल-पदं

१५४ सत्तपएसिया खंधा अणता पण्णत्ता।

१५५ सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्‌गल-पदम्

सप्तप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता। १५४

सप्तप्रदेशावगाढा पुद्‌गला यावत् सप्तगुणरूक्षा. पुद्‌गला अनन्ता प्रज्ञप्ता। १५५

पुद्‌गल-पद

सप्तप्रदेशी स्कध अनन्त हैं।

सप्तप्रदेशावगाढ पुद्‌गल अनन्त हैं।

सात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल अनन्त हैं।

सात गुण वाले पुद्‌गल अनन्त हैं।

इस प्रकार शेष वर्ण तथा गध, रस और स्पर्शों के सात गुण वाले पुद्‌गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान–७

१,२ (सू० ८,९)

पिंड-एषणाए सात हैं—

१ ससृष्ट—देयवस्तु से लिप्त हाथ या कडछी आदि से आहार लेना।

२ असंसृष्ट—देयवस्तु से अलिप्त हाथ या कडछी आदि से आहार लेना।

३ उद्धृत—थाली, बटलोई आदि से परोसने के लिए निकालकर दूसरे वर्तन मे डाला हुआ आहार लेना।

४ अल्पलेपिक—रूखा आहार लेना।

५ अवगृहीत—खाने के लिए थाली मे परोसा हुआ आहार लेना।

६ प्रगृहीत—परोसने के लिए कडछी या चम्मच आदि से निकाला हुआ आहार लेना।

७ उज्झितधर्मा—जो भोजन अमनोज्ञ होने के कारण परित्याग करने योग्य हो, उसे लेना।

पान-एषणा के प्रकार भी पिण्ड-एषणा के समान हैं। यहा अल्पलेपिक पानैषणा का अर्थ इस प्रकार है—काञ्जी, ओसामण, गरम जल, चावलो का धोवन आदि अलेपकृत हैं और इक्षुरस, द्राक्षापानक, अम्लिका पानक आदि लेपकृत हैं।[1]

३ (सू० १०)

अवग्रह-प्रतिमा का अर्थ है—स्थान के लिए प्रतिज्ञा या सकल्प। वे सात हैं—

१ मैं अमुक प्रकार के स्थान मे रहूँगा दूसरे मे नही।

२ मैं दूसरे साधुओं के लिए स्थान की याचना करूगा तथा दूसरो के द्वारा याचित स्थान में रहूँगा। यह गच्छान्तर्गत साधुओ के होती है।

३ मैं दूसरो के लिए स्थान की याचना करूगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान में नहीं रहूगा। यह यथालन्दिक साधुओ के होती है। उन मुनियो के सूत्र का अध्ययन जो शेष रह जाता है उसे पूर्ण करने के लिए वे आचार्य से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए वे आचार्य के लिए स्थान की याचना करते हैं, किन्तु स्वय दूसरे साधुओं द्वारा याचित स्थान में नहीं रहते।

४ मैं दूसरो के लिए स्थान की याचना नही करूगा, परन्तु दूसरो के द्वारा याचित स्थान मे रहूगा। यह जिनकल्प दशा का अभ्यास करने वाले साधुओ के होती है।

५ मैं अपने लिए स्थान की याचना करूगा, दूसरो के लिए नही। यह जिनकल्पिक साधुओ के होती है।

६ जिसका मैं स्थान ग्रहण करूगा उसी के यहा पलाल आदि का सस्तारक प्राप्त हो तो लूगा अन्यथा ऊकडू या नैषधिक आसन मे बैठा-बैठा रात बिताऊगा। यह जिनकल्पिक या अभिग्रहधारी साधुओं के होती है।

७ जिसका मैं स्थान ग्रहण करूगा उसी के यहा सहज ही बिछे हुए सिलापट्ट या काष्ठपट्ट प्राप्त हो तो लूगा, अन्यथा ऊकडू या नैषधिक आसन में बैठा-बैठा रात बिताऊगा। यह जिनकल्पिक या अभिग्रहधारी साधुओ के होती है।

---

१ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ७४४, वृत्ति पत्र २१५, २१६।

४ (सू० ११)

सात सप्तैकक—

१ स्थान सप्तैकक
२ नैषेधिकी सप्तैकक
३ उच्चारप्रस्रवणविधि सप्तैकक
४ शब्द सप्तैकक
५ रूप सप्तैकक
६ परक्रिया सप्तैकक
७ अन्योन्यक्रिया सप्तैकक।

५. (सू० १२)

सूत्रकृताङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन पहले श्रुतस्कन्ध के अध्ययनों की अपेक्षा बड़े हैं, अत उन्हें महान् अध्ययन कहे गए हैं। वे सात हैं—

१ पुण्डरीक
२ क्रियास्थान
३ आहारपरिज्ञा
४ प्रत्याख्यानक्रिया
५ अनाचारश्रुत
६ आर्द्रककुमारीय
७ नालन्दीय।

६ भिक्षादत्तियों (सू० १३)

भिक्षादत्तियों का क्रम यह है—

प्रथम सप्तक में	— ७	भिक्षादत्तिया
दूसरे सप्तक मे	—१४	भिक्षादत्तिया
तीसरे सप्तक मे	—२१	भिक्षादत्तिया
चौथे सप्तक मे	—२८	भिक्षादत्तिया
पाचवें सप्तक मे	—३५	भिक्षादत्तिया
छठे सप्तक मे	—४२	भिक्षादत्तिया
सातवें सप्तक में	—४९	भिक्षादत्तिया
कुल	१९६	भिक्षादत्तिया

७ चौड़े संस्थान वाली (सू० २२)

वृत्तिकार ने 'पिंडलगपिठुलसठाणसठियाओ' को पाठान्तर माना है। उनके अनुसार मूल पाठ है—'छत्तातिच्छत्त-सठाणसठियाओ'। इसका अर्थ है—एक छत्ते के बाद दूसरा छत्ता, इस प्रकार सात छत्ते हैं। उनमे नीचे का सबसे बड़ा है, ऊपर के क्रमश छोटे हैं। सातो पृथ्वियों का भी यही आकार है। वे क्रमश नीचे-नीचे हैं।[1]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३६६।

८ गोत्र (सू० ३०)

गोत्र का अर्थ है—एक पुरुष से उत्पन्न वंश-परम्परा। प्रस्तुत सूत्र मे सात मूलगोत्र बतलाए हैं। उस समय ये मुख्य गोत्र थे और धीरे-धीरे काल-व्यवधान से अनेक-अनेक उत्तर गोत्र विकसित होते गए। वृत्तिकार ने इन सातो गोत्रो के कुछ उदाहरण दिए हैं, जैसे—

(१) काश्यप गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि को छोडकर शेष बावीस तीर्थंकर, सभी चक्रवर्ती [क्षत्रिय], सातवें से ग्यारहवें गणधर [ब्राह्मण] तथा जम्बूस्वामी आदि [वैश्य]—ये सभी कश्यप गोत्रीय थे। इसका तात्पर्य है कि इस गोत्र मे इन तीनो वर्गों का समावेश था।

(२) गोतम गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि, नारायण और पद्म को छोडकर सभी बलदेव-वासुदेव तथा इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन गणधर गोतम-गोत्रीय थे।

(३) वत्सगोत्र—दशवैकालिक के रचयिता शय्यंभव आदि वत्सगोत्री थे।

(४) कौत्सगोत्र—शिवभूति आदि।

(५) कौशिकगोत्र—षडूलुक, [रोहगुप्त] आदि।

(६) माडव्य गोत्र—मण्डुऋषि के वशज।

(७) वाशिष्ठ गोत्र—वशिष्ठ के वशज, छठे गणधर तथा आर्यसुहस्ती आदि।[1]

९ नय (सू० ३८)

ज्ञान करने की दो पद्धतिया हैं—पदार्थग्राही और पर्यायग्राही। पदार्थग्राही मे अनन्त धर्मात्मक पदार्थ को किसी एक धर्म के माध्यम मे जाना जाता है। पर्यायग्राही पद्धति मे पदार्थ के एक पर्याय [धर्म या अवस्था] को जाना जाता है। पदार्थ-ग्राही पद्धति को 'प्रमाण' और पर्यायग्राही पद्धति को 'नय' कहा जाता है। प्रमाण इन्द्रिय और मन दोनो से होता है, किन्तु नय केवल मन से ही होता है, क्योंकि अशो का ग्रहण मानसिक अभिप्राय से ही हो सकता है। नय सात हैं—

१ नैगमनय—द्रव्य में सामान्य और विशेष, भेद और अभेद आदि अनेक धर्मों के विरोधी युगल रहते हैं। नैगम-नय दोनो की एकाश्रयता का साधक है। वह दोनो को यथास्थान मुख्यता और गौणता देता है। जब भेद प्रधान होता है तब अभेद गौण हो जाता है और जब अभेद प्रधान होता है तब भेद गौण हो जाता है। नैगमनय के अनेक भेद हैं—भूतनैगम, वर्तमाननैगम, भावीनैगम अथवा द्रव्य-नैगम, पर्याय-नैगम, द्रव्य-पर्याय-नैगम।

२ सग्रहनय—यह अभेददृष्टि प्रधान है। यह भेद से अभेद की ओर बढ़ता है। सत्ता सामान्य—जैसे विश्व एक है, यह इसका चरम रूप है। गाय और भैंस मे पशुत्व की समानता है। गाय और मनुष्य मे भी समानता है, दोनो शरीरधारी हैं। गाय और परमाणु में भी ऐक्य है, क्योंकि दोनो प्रमेय हैं।

३ व्यवहारनय—जितने पदार्थ लोक मे प्रसिद्ध हैं, अथवा जो-जो पदार्थ लोक-व्यवहार मे आते हैं, उन्ही को मानने और अदृष्ट तथा अव्यवहार्य पदार्थों को न मानने को व्यवहारनय कहा जाता है। यह विभाजन की दृष्टि है। यह अभेद से भेद की ओर बढता है। यह पदार्थ मे अनन्त भेद कर डालता है, जैसे—विश्व के दो रूप हैं—चेतन और अचेतन। चेतन के दो प्रकार हैं, आदि-आदि।

यह नय दो प्रकार का है—उपचारबहुल और लौकिक।

उपचारबहुल, जैसे—पहाड जलता है।

लौकिक, जैसे—भौंरा काला है।

४ ऋजुसूत्रनय—यह वर्तमानपरक दृष्टि है। यह अतीत और भविष्य मे वास्तविक सत्ता स्वीकार नही करती।

५ शब्दनय—यह भिन्न-भिन्न लिंग, वचन आदि से युक्त शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार करता है। यह शब्द, रूप और उसके अर्थ का नियामक है। इसके अनुसार पहाड का जो अर्थ है वह 'पहाडी' शब्द व्यक्त नही कर सकता। जो

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७०।

अर्थ 'नदी' शब्द मे है वह 'नद' मे नही है। 'स्तुति' और 'स्तोत्र' के अर्थों मे भी भिन्नता है। 'मनुष्य है' और 'मनुष्य हैं' इनमें एकवचन और बहुवचन के कारण अर्थ मे भिन्नता है।

६ समभिरूढनय—इसका कथन है कि जो शब्द जहा रूढ है, उसका वही प्रयोग करना चाहिए। स्थूल दृष्टि मे घट, कुट, कुम्भ एकार्थक हैं। समभिरूढनय इसे स्वीकार नही करता। इसके अनुसार 'घट' और 'कुट' एक नही है। घट वह वस्तु है जो माथे पर रखा जाये और कुट वह पदार्थ है, जो कही बडा, कहीं चौडा, कही सकडा—इस प्रकार कुटिल आकारवाला हो। इसके अनुसार कोई भी शब्द किसी का पर्यायवाची नहीं है। पर्यायवाची माने जाने वाले शब्दो मे भी अर्थ का बहुत बडा भेद है।

७ एवम्भूतनय—यह नय क्रिया मे प्रवर्त्तमान अर्थ मे ही उसके वाचक शब्द को मान्य करता है। इसके अनुसार अध्यापक तभी अध्यापक है जब वह अध्यापन क्रिया मे प्रवर्तमान है। अध्यापन कराया था या कराएगा इसलिए वह अध्यापक नहीं है।

१० स्वर (सू० ३९)

स्वर का सामान्य अर्थ है—ध्वनि, नाद। सगीत मे प्रयुक्त स्वर शब्द का कुछ विशेष अर्थ होता है। सगीतरत्नाकर मे स्वर की व्याख्या करते हुए लिखा है—जो ध्वनि अपनी-अपनी श्रुतियों के अनुसार मर्यादित अन्तरो पर स्थित हो, जो स्निग्ध हो, जिसमे मर्यादित कम्पन हो और अनायास ही श्रोताओ को आकृष्ट कर लेती हो, उसे स्वर कहते हैं। इसकी चार अवस्थाए हैं—

(१) स्थानभेद (Pitch)
(२) रूप भेद या परिणाम भेद (Intensity)
(३) जातिभेद (Quality)
(४) स्थिति (Duration)

स्वर सात हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। इन्हे सक्षेप मे—स, रि, ग, म, प, ध, नी कहा जाता है। अग्रेजी मे क्रमश Do, Re, Mi, Fa, So, Ka, Si, कहते हैं और इनके साकेतिक चिन्ह क्रमश C, D, E, F, G, A, B हैं। सात स्वरो की २२ श्रुतिया [स्वरों के अतिरिक्त छोटी-छोटी सुरीली ध्वनिया] हैं—षड्ज, मध्यम और पञ्चम की चार-चार, निषाद और गान्धार की दो-दो और ऋषभ और धैवत की तीन-तीन श्रुतिया हैं।

अनुयोगद्वार सूत्र [२९८-३०७] मे भी पूरा स्वर-मडल मिलता है। अनुयोगद्वार तथा स्थानाग—दोनो मे प्रकरण की समानता है। कही-कहीं शब्द-भेद है।

सात स्वरो की व्याख्या इस प्रकार है—

(१) षड्ज—नासा, कठ, छाती, तालु, जिह्वा और दन्त—इन छह स्थानो से उत्पन्न होने वाले स्वर को षड्ज कहा जाता है।

(२) ऋषभ—नाभि से उठा हुआ वायु कठ और शिर से आहत होकर वृषभ की तरह गर्जन करता है, उसे ऋषभ कहा जाता है।

(३) गान्धार—नाभि से उठा हुआ वायु कण्ठ और शिर से आहत होकर व्यक्त होता है और इसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है, इसलिए इसे गान्धार कहा जाता है।

(४) मध्यम—नाभि से उठा हुआ वायु वक्ष और हृदय मे आहत होकर फिर नाभि मे जाता है। यह काया के मध्य-भाग मे उत्पन्न होता है, इसलिए इसे मध्यम स्वर कहा जाता है।

(५) पचम—नाभि से उठा हुआ वायु वक्ष, हृदय, कठ और सिर से आहत होकर व्यक्त होता है। यह पाच स्थानो से उत्पन्न होता है, इसलिए इसे पचम स्वर कहा जाता है।

(६) धैवत—यह पूर्वोत्थित स्वरो का अनुसन्धान करता है, इसलिए इसे धैवत कहा जाता है।

(७) निपाद—इसमे सब स्वर निषण्ण होते हैं—इससे सब अभिभूत होते हैं, इसलिए इसे निपाद कहा जाता है।[1]

बौद्ध परम्परा में सात स्वरो के नाम ये हैं—

सहर्घ्य, ऋषभ, गान्धार, धैवत, निपाद, मध्यम तथा कैशिक।[2]

कई विद्वान् सहर्घ्य को षड्ज के पर्याय स्वरूप तथा कैशिक को पचम स्थान पर मानते हैं।[3]

११. स्वर स्थान (सू० ४०)

स्वर के उपकारी—विशेषता प्रदान करने वाले स्थान को स्वर स्थान कहा जाता है। षड्जस्वर का स्थान जिह्वाग्र है। यद्यपि उसकी उत्पत्ति मे दूसरे स्थान भी व्यापृत होते हैं और जिह्वाग्र भी दूसरे स्वरो की उत्पत्ति मे व्यापृत होता है, फिर भी जिस स्वर की उत्पत्ति मे जिस स्थान का व्यापार प्रधान होता है, उसे उसी स्वर का स्थान कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे सात स्वरो के सात स्वर स्थान बतलाए गए हैं।

नारदी शिक्षा मे ये स्वर स्थान कुछ भिन्न प्रकार से उल्लिखित हुए हैं[4]—

षड्ज कठ से उत्पन्न होता है, ऋषभ सिर से, गाधार नासिका से, मध्यम उर से, पचम उर, सिर तथा कठ से, धैवत ललाट से तथा निपाद शरीर की सधियों से उत्पन्न होता है।

इन सात स्वरो के नामो की सार्थकता बताते हुए नारदी शिक्षा मे कहा गया है कि—'षड्ज' सज्ञा की सार्थकता इसमे है कि वह नासा, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा तथा दन्त इन छह स्थानो से उद्भूत होता है। 'ऋषभ' की सार्थकता इसमे है कि वह ऋषभ अर्थात् बैल के समान नाद करने वाला है। 'गाधार' नासिका के लिए गन्धावह होने के कारण अन्वर्थक बताया गया है। 'मध्यम' की अन्वर्थकता इसमे है कि वह उरस् जैसे मध्यवर्ती स्थान मे आहत होता है। 'पचम' सज्ञा इसलिए सार्थक है कि इसका उच्चारण नाभि, उर, हृदय, कण्ठ तथा सिर—इन पाच स्थानो मे सम्मिलित रूप से होता है।[5]

१२ (सू० ४१)

नारदीशिक्षा मे प्राणियो की ध्वनि के साथ सप्त स्वरो का उल्लेख नितान्त भिन्न प्रकार से मिलता है[6]—

षड्ज स्वर—मयूर।

ऋषभ स्वर—गाय।

गाधार स्वर—बकरी।

मध्यम स्वर—क्रौंच।

पचम स्वर—कोयल।

धैवत स्वर—अश्व।

निपाद स्वर—कुजर।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७४।

२ लकावतार सूत्र—अथ रावणो सहर्घ्य-ऋषभ-गान्धार-धैवत-निपाद-मध्यम-कैशिक-गीतस्वरग्राममूर्च्छनादियुक्तेन गाथाभिर्गीतैरनुगायतिस्म।

३ जरनल ऑफ म्यूजिक एकेडमी, मद्रास, सन् १६४५, खंड १६, पृष्ठ ३७।

४ नारदीशिक्षा १।५।६,७

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्ज, शिरसस्त्वृषभ स्मृत।
गान्धारस्त्वनुनासिक्य, उरसो मध्यम स्वर.॥
उरस शिरस कण्ठादुत्थित पचम स्वरः।
ललाटाद्धैवतं विद्यान्निपाद सर्वसन्धिजम्॥

५ भारतीय सगीत का इतिहास, पृष्ठ १२१।

६ नारदीशिक्षा १।५।४, ५

षड्ज मयूरो वदति, गावो रंभन्ति चर्षभम्।
अजावदति तु गान्धार, क्रौंचो वदति मध्यमम्॥
पुष्पसाधारणे काले, पिको वक्ति च पचमम्।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति, निपादं कुञ्जरः॥

१३ गवेलक (सू० ४१)

वृत्तिकार ने गवेलक को दो शब्द—गव+एलक मानकर इससे गाय और भेड़—दोनों का ग्रहण किया है और विकल्प मे इसे केवल भेड का पर्यायवाची माना है।[1]

१४ पञ्चम स्वर (सू० ४१)

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'अथ' शब्द का विशेष अर्थ है। गवेलक सदा मध्यम स्वर मे बोलते हैं, वैसे ही कोयल सदा पञ्चम स्वर मे नही बोलता। वह केवल वसन्त ऋतु मे ही पञ्चम स्वर मे बोलता है।[2]

१५ नरसिघा (सू० ४२)

एक प्रकार का बडा बाजा जो तुरही के समान होता है। यह फूक से बजाया जाता है। जिस स्थान से फूका जाता है वह सकडा और आगे का भाग क्रमश चौडा होता चला जाता है।

१६ ग्राम (सू० ४४)

यह शब्द समूहवाची है। सवादी स्वरो का वह समूह ग्राम है जिसमे श्रुतिया व्यवस्थित रूप मे विद्यमान हो और जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलकार इत्यादि का आश्रय हो।[3] ग्राम तीन हैं—

षड्जग्राम, मध्यमग्राम और गान्धारग्राम।

षड्जग्राम—इसमे षड्ज स्वर चतु श्रुति, ऋषभ त्रिश्रुति, गान्धार द्विश्रुति, मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम चतु श्रुति, धैवत त्रिश्रुति और निषाद द्विश्रुति होता है।[4] इसमे 'षड्ज-पञ्चम', 'ऋषभ-धैवत', 'गान्धार-निषाद' और 'षड्ज-मध्यम'—ये परस्पर सवादी हैं। जिन दो स्वरों मे नौ अथवा तेरह श्रुतियो का अन्तर हो, वे परस्पर सवादी हैं।

शार्ङ्गदेव कहते हैं—षड्जग्राम नामक राग षड्जमध्यमा जाति मे उत्पन्न सम्पूर्ण राग है। इसका ग्रह एव अशस्वर तार षड्ज है, न्यासस्वर मध्यम है, अपन्यासस्वर षड्ज है, अवरोही और प्रसन्नान्त अलकार इसमे प्रयोज्य हैं। इसकी मूर्च्छना षड्जादि [उत्तरमन्द्रा] है। इसमे काकली-निषाद एव अन्तर-गान्धार का प्रयोग होता है, वीर, रौद्र, अद्भुत रसों में नाटक की सन्धि मे इसका विनियोग है। इस राग का देवता बृहस्पति है और वर्षाऋतु मे, दिन के प्रथम प्रहर में, यह गेय है।[5] यह शुद्ध राग है।

मध्यमग्राम—इसमे 'ऋषभ-पञ्चम', 'ऋषभ-धैवत', 'गान्धार-निषाद' और 'षड्ज-मध्यम' परस्पर सवादी हैं। शार्ङ्गदेव का विधान है कि—

मध्यमग्राम राग का विनियोग हास्य एव शृगार मे है। यह राग गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी जातियो से मिलकर उत्पन्न हुआ है। काकली-निषाद का प्रयोग इसमे विहित है। इस राग का अश-ग्रह-स्वर मन्द्र षड्ज, न्याय-स्वर मध्यम और मूर्च्छना 'सौवीरी' है। प्रसन्नादि और अवरोही के द्वारा मुखसन्धि में इसका विनियोग है। यह राग ग्रीष्म ऋतु के प्रथम प्रहर मे गाया जाता है।[6] महर्षि भरत ने सात शुद्ध रागो मे इसे गिना है। इसमे षड्जस्वर चतु श्रुति, ऋषभ त्रिश्रुति, गान्धार द्विश्रुति, मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम त्रिश्रुति, धैवत चतु श्रुति और निषाद द्विश्रुति होता है।

गान्धार ग्राम—महर्षि भरत ने इसकी कोई चर्चा नही की है। उन्होंने केवल दो ग्रामों को ही माना है। कुछ आचार्यों ने गान्धार ग्राम और तज्जन्य रागो का वर्णन करके लौकिक विनोद के लिए भी उनके प्रयोग का विधान किया है।[7]

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७४ गवेलग त्ति गावश्च एलकाश्च उरणका गवेलका अथवा गवेलका—उरणका एव इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७५ अथे ति विशेषाथ, विशेषार्थता चैव—यथा गवेलका अविशेषेण मध्यम स्वर नदन्ति न तथा कोकिला पञ्चमं, अपि तु कुसुमसम्भवे काल इति।

३ मतङ्ग भरतकोश, पृष्ठ १८६।

४ भरत (बम्बई सस्करण) अध्याय २८ पृष्ठ ४३४।

५ सगीतरत्नाकर (अड्यार सस्करण) राग, पृष्ठ २६-२७।

६ सगीतरत्नाकर (अड्यार सस्करण) राग, पृष्ठ ३६।

७ प्रो० रामकृष्णकवि, भरतकोश, पृष्ठ ५४२।

परन्तु अन्य आचार्यों ने लौकिक विनोद के लिए ग्रामजन्य रागों का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।[1] नारद की सम्मति के अनुसार गान्धारग्राम का प्रयोग स्वर्ग मे ही होता है।[2] इसमे षड्ज स्वर त्रिश्रुति, ऋषभ द्विश्रुति, गान्धार चतुःश्रुति, मध्यम-पञ्चम और धैवत त्रि-त्रिश्रुति और निषाद चतुःश्रुति होता है। गान्धार ग्राम का वर्णन केवल सगीतरत्नाकर या उसके आधार पर लिखे गए ग्रन्थो में है।

इस ग्राम के स्वर बहुत टेढ़े-मेढे हैं अत गाने मे बहुत कठिनाइया आती हैं। इसी दुरूहता के कारण 'इसका प्रयोग स्वर्ग मे होता है'—ऐसा कह दिया गया है।

वृत्तिकार के अनुसार 'मगी' आदि इक्कीस प्रकार की मूर्च्छनाओ के स्वरो की विशद व्याख्या पूर्वगत के स्वर-प्राभृत मे थी। वह अब लुप्त हो चुका है। इस समय इनकी जानकारी उसके आधार पर निर्मित भरतनाट्य, वैशाखिल आदि ग्रन्थो से जाननी चाहिए।[3]

१७-१९ मूर्च्छना (सू० ४५-४७)

इसका अर्थ है—सात स्वरो का क्रमपूर्वक आरोह और अवरोह।[4] महर्षि भरत ने इसका अर्थ सात स्वरो का क्रमपूर्वक प्रयोग किया है। मूर्च्छना समस्त रागो की जन्मभूमि है। यह चार प्रकार की होती है—

१ पूर्णा २ षाडवा ३ औडुविता ४ साधारणा।[5]

अथवा—१ शुद्धा २ अतरसहिता ३ काकलीसहिता ४ अन्तरकाकलीसहिता।[6]

तीन सूत्रो [४५, ४६, ४७] मे षड्ज आदि तीन ग्रामों की सात-सात मूर्च्छनाए उल्लिखित हैं।

भरतनाट्य,[7] सगीतदामोदर, नारदीशिक्षा[8] आदि ग्रथो में भी मूर्च्छनाओ का उल्लेख है। वे भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं। भरतनाट्य में गांधार ग्राम को मान्यता नही दी गई है।

मूल सूत्र	भरतनाट्य	सगीतदामोदर	नारदीशिक्षा
	षड्जग्राम की मूर्च्छनाए		
मगी	उत्तरमद्रा	ललिता	उत्तरमद्रा
कौरवीया	रजनी	मध्यमा	अभिरुद्गता
हरित्	उत्तरायता	चित्रा	अश्वक्रान्ता
रजनी	शुद्धषड्जा	रोहिणी	सौवीरा
सारकान्ता	मत्सरीकृता	मतगजा	हृष्यका
सारसी	अश्वक्रान्ता	सौवीरी	उत्तरायता
शुद्धषड्जा	अभिरुद्गता	षण्मध्या	रजनी

१ प्रो० रामकृष्ण कवि, भरतकोश, पृष्ठ ५४२।

२ वही, पृष्ठ ५४२।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७५

इह च मङ्गीप्रभृतीनामेकविंशतिमूर्च्छनानां स्वरविशेषा 'पूर्वगते स्वरप्राभृते भणिता अधुना तु तद्विनिर्गतेभ्यो भरत-वैशाखिलादिशास्त्रेभ्यो विज्ञेया इति'।

४ सगीतरत्नाकर, स्वर प्रकरण, पृष्ठ १०३, १०४।

५ वही, पृष्ठ ११४।

६ भरत अध्याय २८, पृष्ठ ४३५।

७ भरतनाट्य २८।२७-३०

आद्या ह्युत्तरमन्द्रा स्याद्, रजनी चोत्तरायता।
चतुर्थी शुद्धषड्जा तु, पचमी मत्सरीकृता॥
अश्वक्रान्ता तु षष्ठी स्यात्, सप्तमी चाभिरुद्गता।
षड्जग्रामाश्रिता एता, विज्ञेया सप्त मूर्च्छना'।
सौवीरी हरिणाश्वा च, स्यात् कलोपनता तथा॥
चतुर्थी शुद्धमध्यमा तु, मार्गवी पौरवी तथा॥
हृष्यका चैव विज्ञेया, सप्तमी द्विजसत्तमा।
मध्यमग्रामजा ह्येता, विज्ञेया' सप्त मूर्च्छना॥

८ नारदीशिक्षा १।२।१३,१४।

मध्यमग्राम की मूर्च्छनाए

उत्तरमद्रा	सौवीरी	पचमा	नदी
रजनी	हरिणाश्वा	मत्सरी	विशाला
उत्तरा	कलोपनता	मृदुमध्यमा	सुमुखी
उत्तरायता	शुद्धमध्या	शुद्धा	चित्रा
अश्वक्रान्ता	मार्गी	अन्द्रा	चित्रवती
सौवीरा	पौरवी	कलावती	सुखा
अभिरुद्गता	कृष्यका	तीव्रा	वला

गान्धारग्राम की मूर्च्छनाए

नदी		सौद्री	आप्यायनी
क्षुद्रिका		ब्राह्मी	विश्वचूला
पूरका	गान्धार ग्राम का	वैष्णवी	चन्द्रा
शुद्धगाधारा	अस्तित्व नही	खेदरी	हैमा
उत्तरगाधारा	माना है।	सुरा	कपर्दिनी
सुष्ठुतरआयामा		नादावती	मैत्री
उत्तरायता कोटिमा		विशाला	वार्हती

प्रस्तुत चार्ट से मूर्च्छनाओ के नामो मे कितना भेद है, यह स्पष्ट हो जाता है।

नारदीशिक्षा मे जो २१ मूर्च्छनाए बताई गई हैं उनमे सात का सम्बन्ध देवताओ से, सात का पितरो से और सात का ऋषियों से है। शिक्षाकार के अनुसार मध्यमग्रामीय मूर्च्छनाओ का प्रयोग यक्षों द्वारा, षड्जग्रामीय मूर्च्छनाओ का ऋषियो तथा लौकिक गायकों द्वारा तथा गान्धारग्रामीय मूर्च्छनाओं का प्रयोग गन्धर्वों द्वारा होता है।[1]

इस आधार पर मूर्च्छनाओ के तीन प्रकार होते हैं—देवमूर्च्छनाए, पितृमूर्च्छनाए और ऋषिमूर्च्छनाए।

२० गीत (सू० ४८)

दशाशलक्षणो से लक्षित स्वरसन्निवेश, पद, ताल एव मार्ग—इन चार अगों से युक्त गान 'गीत' कहलाता है।[2]

२१, २२ गीत के छह दोष, गीत के आठ गुण (सूत्र ४८)

नारदीशिक्षा मे गीत के दोषो और गुणों का सुन्दर विवेचन प्राप्त होता है। उसके अनुसार दोष चौदह और गुण दस हैं। वे इस प्रकार हैं—

चौदह दोष[3]—

शकित, भीत, उद्घृष्ट, अव्यक्त, अनुनासिक, काकस्वर, शिरोगत, स्थानवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहृत, व्याकुल तथा तालहीन।

प्रस्तुत सूत्रगत छह दोषो का समावेश इनमे हो जाता है—

भीत—भीत	ताल-वर्जित—तालहीन
द्रुत—विषमाहत	काकस्वर—काकस्वर
ह्रस्व—अव्यक्त	अनुनास—अनुनासिक

दस गुण[4]—

रक्त, पूर्ण, अलकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विकृष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार और मधुर।

---

१ नारदीशिक्षा १।३।१३, १४।

२ सगीतरत्नाकर, कल्लीनाथकृत टीका, पृष्ठ ३३।

३ नारदीशिक्षा १।३।१२,१३।

४ वही, १।३।१

नारदीशिक्षा के अनुसार इन दस गुणो की व्याख्या इस प्रकार है—

१ रक्त—जिसमे वेणु तथा वीणा के स्वरो का गानस्वर के साथ सम्पूर्ण सामजस्य हो।

२ पूर्ण—जो स्वर और श्रुति से पूरित हो तथा छन्द, पाद और अक्षरो के सयोग से सहित हो।

३ अलकृत—जिसमे उर, सिर और कण्ठ—तीनो का उचित प्रयोग हो।

४ प्रसन्न—जिसमे गद्‌गद् आदि कण्ठ दोष न हो तथा जो नि·शकतायुक्त हो।

५ व्यक्त—जिसमे गीत के पदों का स्पष्ट उच्चारण हो, जिससे कि श्रोता स्वर, लिंग, वृत्ति, वार्तिक, वचन, विभक्ति आदि अगो को स्पष्ट समझ सके।

६ विक्रुष्ट—जिसमे पद उच्चस्वर से गाए जाते हो।

७ श्लक्ष्ण—जिसमें ताल की लय आद्योपान्त समान हो।

८ सम—जिसमें लय की समरसता विद्यमान हो।

९ सुकुमार—जिसमे स्वरो का उच्चारण मृदु हो।

१० मधुर—जिसमे सहजकण्ठ से ललित पद, वर्ण और स्वर का उच्चारण हो[1]।

प्रस्तुत सूत्र मे आठ गुणो का उल्लेख है। उपर्युक्त दस गुणो मे से सात गुणो के नाम प्रस्तुत सूत्रगत नामो के समान हैं। अविघुष्ट नामक गुण का नारदीशिक्षा मे उल्लेख नही है। अभयदेवकृत वृत्ति की व्याख्या का उल्लेख हम अनुवाद मे दे चुके हैं। यह अन्वेषणीय है कि वृत्तिकार ने ये व्याख्याए कहाँ से ली थीं।

२३ सम (सू० ४८)

जहाँ स्वर—ध्वनि को गुरु अथवा लघु न कर आद्योपान्त एक ही ध्वनि मे उच्चारित किया जाता है, वह 'सम' कहलाता है[2]।

२४. पदबद्ध (सू० ४८)

इसे निबद्धपद भी कहा जाता है। पद दो प्रकार का है—निबद्ध और अनिबद्ध। अक्षरो की नियत सख्या, छन्द तथा यति के नियमों से नियन्त्रित पदसमूह 'निबद्ध-पद' कहलाता है[3]।

२५. छन्द (सू० ४८)

तीन प्रकार के छन्द की दूसरी व्याख्या इस प्रकार है—

- सम—जिसमे चारो चरणो के अक्षर समान हो।
- अर्द्धसम—जिसमे पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण के अक्षर समान हो।
- सर्वविषम—जिसमे सभी चरणो के अक्षर विषम हों।[4]

---

१ नारदीशिक्षा १।३।१-११।

२ भरत का नाट्यशास्त्र २६।४७

सर्वसाम्यात् समो ज्ञेय , स्थिरस्त्वेकस्वरोऽपि य ॥

३ भरत का नाट्यशास्त्र ३२।३६।

नियताक्षरसबद्ध, छन्दोयतिसमन्वितम्।
निबद्ध तु पदं ज्ञेय, नानाछन्दसमुद्भवम् ॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७६ अन्ये तु व्याचक्षते सम यत्र चतुर्ष्वपि पादेषु समान्यक्षराणि, अर्द्धसमं यत्र प्रथमतृतीययो- द्वितीयचतुर्थयोश्च समत्व, तथा सर्वत्र—सर्वपादेषु विषम च विषमाक्षरम्।

२६ तन्त्रीसम (सू० ४८)

अनुयोगद्वार मे इसके स्थान पर अक्षरसम है। जहाँ दीर्घ, ह्रस्व, प्लुत और सानुनासिक अक्षर के स्थान पर उसके जैसा ही स्वर गाया जाए, उसे अक्षरसम कहा जाता है[1]।

२७ तालसम (सू०४८)

दाहिने हाथ मे ताली बजाना 'काम्या' है। बाए हाथ से ताली बजाना 'ताल' और दोनो हाथो से ताली बजाना 'सनिपात' है[2]।

२८. पादसम (सू० ४८)

अनुयोगद्वार मे इसके स्थान पर 'पदसम' है[3]।

२९ लयसम (सू० ४८)

तालक्रिया के अनन्तर [अगली तालक्रिया से पूर्व तक] किया जाने वाला विश्राम लय कहलाता है[4]।

३० ग्रहसम (सू० ४८)

इसे समग्रह भी कहा जाता है। ताल मे सम, अतीत और अनागत—ये तीन ग्रह हैं। गीत, वाद्य और नृत्य के साथ होने वाला ताल का आरम्भ अवपाणि या समग्रह, गीत आदि के पश्चात् होने वाला ताल आरम्भ अवपाणि या अतीतग्रह तथा गीत आदि से पूर्व होने वाला ताल का प्रारम्भ उपरिपाणि या अनागतग्रह कहलाता है। सम, अतीत और अनागत ग्रहों मे क्रमश मध्य, द्रुत और विलंबित लय होता है[5]।

३१ तानो (सू० ४८)

इसका अर्थ है—स्वर-विस्तार, एक प्रकार की भाषाजनक राग। ग्राम रागों के आलाप-प्रकार भाषा कहलाते हैं[6]।

३२ कायक्लेश (सू० ४९)

कायक्लेश बाह्य तप का पाचवा प्रकार है। इसका अर्थ जिस किसी प्रकार से शरीर को कष्ट देना नही है, किन्तु आसन तथा देह-मूर्च्छा विसर्जन की कुछ प्रक्रियाओ से शरीर को जो कष्ट होता है, उसका नाम कायक्लेश है। प्रस्तुत सूत्र मे इसके सात प्रकार निर्दिष्ट हैं। ये सब आसन से सम्बन्धित हैं। उत्तराध्ययन मे भी कायक्लेश की परिभाषा आसन के सन्दर्भ मे की गई है[7]। औपपातिक सूत्र मे आसनो के अतिरिक्त सूर्य की आतापना, सर्दी में वस्त्रविहीन रहना, शरीर को न खुजलाना, न थूकना तथा शरीर का परिकर्म और विभूषा न करना—ये भी कायक्लेश के प्रकार बतलाए गए हैं।[8]

१ स्थानायतिक—कायोत्सर्ग मे स्थिर होना।

देखें—उत्तरज्झयणाणि भाग २, पृष्ठ २७१-२७४।

---

१ अनुयोगद्वार ३०७।८ वृत्ति पत्र १२२ यत्र दीर्घे अक्षरे दीर्घो गीतस्वरः क्रियते ह्रस्वे ह्रस्व प्लुते प्लुत सानुनासिके तु सानुनासिक तदक्षरसमम्।

२ भरत का संगीत सिद्धान्त, पृष्ठ २३५।

३ अनुयोगद्वार ३०७।८।

४ भरत का संगीतसिद्धान्त, पृष्ठ २४२।

५ संगीतरत्नाकर, तान, पृष्ठ २६।

६ भरत का संगीतसिद्धान्त, पृष्ठ २२६।

७ उत्तराध्ययन ३०।२६

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जहा धरिज्जति, कायकिलेस तमाहियं॥

८ औपपातिक, सूत्र ३६ से किं त कायकिलेसे? कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते, तजहा—ठाणट्ठिइए उक्कुडुयासणिए पडिमट्ठाई वीरासणिए नेसज्जिए आयावए अवाउडए अकंडुयए अणिट्ठुहए सव्वगाय-परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के।

२ उत्कुटुकासन—दोनो पैरों को भूमि पर टिकाकर दोनो पुतो को भूमि से न छुहाते हुए जमीन पर बैठना। इसका प्रभाव वीर्यग्रन्थियो पर पडता है और यह ब्रह्मचर्य की साधना मे बहुत फलदायी है।

३ प्रतिमास्थायी—भिक्षु-प्रतिमाओ की विविध मुद्राओ मे स्थित रहना।

देखें—दशाश्रुतस्कन्ध, दशा सात।

४ वीरासनिक—बद्धपद्मासन की भाति दोनो पैरो को रख, हाथो को पद्मासन की तरह रखकर बैठना। आचार्य अभयदेवसूरी ने सिहासन पर बैठकर उसे निकाल देने पर जो मुद्रा होती है, उसे वीरासन माना है[1]। इससे धैर्य, सन्तुलन और कष्टसहिष्णुता का विकास होता है।

५ नैषद्यिक—इसका अर्थ है बैठकर किए जाने वाले आसन। स्थानाग ५।५० मे निषद्या के पाच प्रकार बतलाए हैं—

१. उत्कुटुका—[पूर्ववत्]

२ गोदोहिका—घुटनो को ऊचा रखकर पजो के बल पर बैठना तथा दोनो हाथों को दोनो साथलो पर टिकाना।

३ समपादपुता—दोनो पैरों और पुतो को समरेखा मे भूमि से सटाकर बैठना।

४ पर्यङ्का—जिनप्रतिमा की भाति पद्मासन मे बैठना।

५ अर्द्धपर्यङ्का—एक पैर को ऊरु पर टिकाकर बैठना।

६. दण्डायतिक—दण्ड की तरह सीधे लेटकर दोनो पैरो को परस्पर सटाकर दोनो हाथो को दोनो पैरो से सटाना। इससे दैहिक प्रवृत्ति और स्नायविक तनाव का विसर्जन होता है।

७ लगडशायी—भूमि पर सीधे लेटकर लकुट की भाति एडियो और सिर को भूमि से सटाकर शरीर को ऊपर उठाना। इससे कटि के स्नायुओ की शुद्धि और उदर-दोपो का शमन होता है।

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि—भाग २, पृष्ठ २७१-२७४।

३३ कुलकर (सू० ६२)

सुदूर अतीत मे भगवान् ऋषभ के पहले यौगलिक व्यवस्था चल रही थी। उसमें न कुल था, न वर्ग और न जाति। उस समय एक युगल ही सब कुछ होता था। काल के परिवर्तन के साथ यह व्यवस्था टूटने लगी तब 'कुल' व्यवस्था का विकास हुआ। इस व्यवस्था में लोग 'कुल' के रूप मे सगठित होकर रहने लगे। प्रत्येक कुल का एक मुखिया होता उसे 'कुलकर' कहा जाता। वह कुल का सर्वेसर्वा होता और उसे व्यवस्था बनाए रखने के लिए अपराधी को दण्ड देने का अधिकार भी होता था। उस समय मुख्य कुलकर सात हुए थे, जिनके नाम प्रस्तुत सूत्र मे दिए गए हैं। इनका विस्तार से वर्णन आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १५२-१६६ मे हुआ है।

देखें—स्थानाग १०।१४३, १४४ का टिप्पण।

३४ दडनीति (सू० ६६)

प्रथम तीन दडनीतियां कुलकरों के समय मे प्रवर्तमान थीं। पहले और दूसरे कुलकर के समय में 'हाकार', तीसरे और चौथे कुलकर के समय मे छोटे अपराध मे हाकार और बडे अपराध मे 'माकार' दडनीति प्रचलित थी। पांचवें, छठे और सातवें कुलकरो के समय मे छोटे अपराध के लिए हाकार, मध्यम अपराध के लिए माकार और बडे अपराध के लिए धिक्कार दडनीति प्रचलित थी।[2] शेष चार चक्रवर्ती भरत के समय मे प्रवर्तित हुईं।[3] एक अभिमत यह भी है कि अन्तिम चारो

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७८
वीरासनिको—य सिंहासननिविष्टमिवास्ते।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १६७, १६८
हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दंडनीईओ।
वुच्छ तासि विसेस जहक्कम आणुपुव्वए॥
पढमबीयाण पढमा तइयचउत्थाण अभिनवा बीया।
पंचमछट्ठस्स य, सत्तमस्स तइया अभिनवा उ॥

३ (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १६६
सेसा उ दडनीई, माणकानिहीओ होति भरहस्स।

(ख) आवश्यकनिर्युक्तिभाष्य, गाथा ३ (आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि पृष्ठ १७५ पर उद्धृत)
परिभाषणा उ पढमा, मडलबधमि होइ बीया उ।
चारग छविच्छेआई, भरहस्स च उव्विहानीई॥

में मे प्रथम दो—परिभापा और मंडलवध—भगवान् ऋपभ ने प्रवर्तित की और अन्तिम दो चक्रवर्ती भरत के माणवकनिधि से उत्पन्न हुई तथा वे चारो भरत के शासनकाल मे प्रचलित रहीं।[1] आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति मे चारों दडनीतियो को भरत द्वारा ही प्रवर्तित माना है।[2] यह भी माना गया है कि वध-वेडी का प्रयोग और घात-डडे का प्रयोग ऋपभ के राज्य में प्रवृत्त हुए तथा मृत्युदड भरत के राज्य से चला।[3]

३५-३६ (सू० ६७, ६८)

प्रस्तुत दो सूत्रो मे चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पञ्चेन्द्रिय रत्नो का उल्लेख है।

इन्हें रत्न इसलिए कहा गया है कि ये अपनी-अपनी जाति के सर्वोत्कृष्ट होते हैं।

चक्र आदि सात रत्न पृथ्वीकाय के जीवो के शरीर से बने हुए होते हैं, इसलिए इन्हें एकेन्द्रिय कहा जाता है।[4] इन सातों का प्रमाण इस प्रकार है[5]—चक्र, छत्र और दड—ये तीनो व्याम[6]-तुल्य हैं—तिरछे फैलाए हुए दोनो हाथो की अगुलियो के अतराल जितने बडे हैं। चर्म दो हाथ लम्बा होता है। असि बत्तीस अगुल का, मणि चार अगुल लम्बा और दो अगुल चौडा होता है तथा काकिणी की लम्बाई चार अगुल होती है। इन रत्नो का मान तत्-तत् चक्रवर्ती की अपनी-अपनी अगुल के प्रमाण मे है।

इनमे चक्र, छत्र, दड और असि की उत्पत्ति चक्रवर्ती की आयुधशाला में तथा चर्म, मणि और कागणि की उत्पत्ति चक्रवर्ती के श्रीघर मे होती है।

सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि और पुरोहित—ये चार पुरुपरत्न हैं। इनकी उत्पत्ति चक्रवर्ती की राजधानी विनीता मे होती है।

अश्व और हस्ती—ये दो पञ्चेन्द्रिय रत्न हैं। इनकी उत्पत्ति वैताढ्यगिरि की उपत्यका में होती है।

स्त्री रत्न की उत्पत्ति उत्तरदिशा की विद्याधर श्रेणी मे होती है।[7]

प्रवचनसारोद्धार मे इन चौदह रत्नो की व्याख्या इस प्रकार है[8]—

१ सेनापति—यह दलनायक होता है तथा गगा और सिन्धु नदी के पार वाले देशो को जीतने मे वलिष्ठ होता है।

२ गृहपति—चक्रवर्ती के गृह की समुचित व्यवस्था मे तत्पर रहने वाला। इसका काम है शाली आदि सभी धान्यो, सभी प्रकार के फलो और सभी प्रकार की शाक-सब्जियो का निप्पादन करना।

---

१ आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १३१ अन्नेसि परिभासा मडलवधो य उसभसामिणा उप्पावितो, चारगच्छविच्छेदो माणवगणि-धीतो।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि पृष्ठ १७६ में उद्धृत —हारिभद्रीय-वृत्तौ तु चतुर्विधापि भरतेनैव प्रवर्तितेति।

३ आवश्यकभाष्य, गाथा १८, १६, आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि पृ० १६३, १६४।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७६ रत्न निगद्यते तत् जातौ जातौ यदुत्कृष्ट मितिवचनात् चक्रादिजातिपु यानि वीर्यत उत्कृष्टानि तानि चक्ररत्नादीनि मन्तव्यानि, तत्र चक्रादीनि सप्तैकेन्द्रि-याणि—पृथिवीपरिणामरूपाणि।

५ प्रवचनसारोद्धार, गाथा १२१६, १२१७

चक्क छत्त दड तिन्निवि एयाइ वाममित्ताइ।
चम्म दुहत्थदीह बत्तीसं अगुलाइ असी॥
चउरगुलो मणी पुण तस्सद्ध चेव होई विच्छिन्नो।
चउरगुलप्पमाणा सुवन्नवरकागिणी नेया॥

६ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ३५१ चक्र छत्रं दडमित्येतानि त्रीण्यपि रत्नानि व्यामप्रमाणानि। व्यामो नाम प्रसारितो-भयवाहो पुसस्तिर्यगृहस्तद्वयांगुलयोरतरालम्।

७ आवश्यकचूर्णि,पृष्ठ २०७ भरहस्स ण रन्नो चक्करयणे छत्तरयणे दडरयणे असिरयणे एते ण चत्तारि एगिंदियरयणा आयुधसा-लाए समुप्पन्ना, चम्मरयणे मणिरयणे कागणिरयणे णव य महाणिहओ एते ण सिरिघरसि समुप्पण्णा, सेणावतिरयणे गाहावतिरयणे वड्ढतिरयणे पुरोहितरयणे एते ण चत्तारि मणु-यरयणा विणीताए रायहाणीए समुप्पन्ना, आसरयणे हत्थिरयणे-एते ण दुवे पचेंदियरयणा वेयड्ढगिरिपादमूले समुप्पण्णा, इत्थिरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पन्ने।

८ प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र ३५०, ३५१।

३ पुरोहित—ग्रहो की शाति के लिए उपक्रम करने वाला।

४ हाथी }
५ घोडा } अत्यन्त वेग और महान् पराक्रम से युक्त।

६ वर्धकी—गृह, निवेश आदि के निर्माण का कार्य करने वाला। यह तमिस्रगुहा मे उन्मग्नजला और निमग्नजला—इन दो नदियो को पार करने के लिए सेतु का निर्माण करता है। चक्रवर्ती की सेना इन्ही सेतुओ से नदी पार करती है।

७ स्त्री—अत्यन्त अद्‌भुत् काम-जन्य सुख को देने वाली होती है।

८ चक्र—सभी आयुधो मे श्रेष्ठ तथा दुर्दम शत्रु पर विजय पाने मे समर्थ।

९ छत्र—यह चक्रवर्ती के हाथ का स्पश पाकर बारह योजन लम्बा-चौडा हो जाता है। यह विशिष्ट प्रकार से निर्मित, विविध धातुओ से समलकृत, विविध चिह्नो से मडित तथा धूप, हवा, वर्षा से बचाने मे समर्थ होता है।

१० चर्म—बारह योजन लम्बे चौडे छत्र के नीचे प्रात काल मे बोए गए शाली आदि बीजो को मध्याह्न मे उपभोग योग्य बनाने मे समर्थ।

११ मणि—यह वैडूर्यमय, तीन कोने और छह अश वाला होता है। यह छत्र और चर्म—इन दो रत्नो के बीच स्थित होता है। यह बारह योजन मे विस्तृत चक्रवर्ती की सेना मे सर्वत्र प्रकाश बिखेरता है। जब चक्रवर्ती तमिस्रगुहा और खडप्रपात गुहा मे प्रवेश करता है तब उसके हस्तिरत्न के शिर के दाहिनी ओर इस मणि को बांध दिया जाता है। तब बारह योजन तक तीनो दिशाओ मे दोनो पार्श्वों मे तथा आगे इसका प्रकाश फैलता है। इसको हाथ या सिर पर बांधने से देव, तिर्यञ्च "और मनुष्य द्वारा कृत सभी प्रकार के उपद्रव तथा रोग नष्ट हो जाते हैं। इसको सिर पर या शरीर के किसी अग-उपाग पर धारण कर सग्राम मे जाने मे किसी भी शस्त्र-अस्त्र से वह व्यक्ति अवध्य और सभी प्रकार के भयो से मुक्त होता है। इस मणिरत्न को अपनी कलाई पर बांध कर रखने वाले व्यक्ति का यौवन स्थिर रहता है तथा उसके केश और नख भी बढते-घटते नही।

१२ काकिणी—यह आठ सौवर्णिक प्रमाण का होता है। यह चारो ओर से सम तथा विष को नष्ट करने मे समर्थ होता है। जहां चांद, सूरज, अग्नि आदि अधकार को नष्ट करने मे समर्थ नही होते, वैसी तमिस्रगुहा मे यह काकिणी रत्न अन्धकार को समूल नष्ट कर देता है। इसकी किरणें बारह योजन तक फैलती हैं। यह सदा चक्रवर्ती के स्कधावार मे स्थापित रहता है। इसका प्रकाश रात को भी दिन बना देता है। इसके प्रभाव से चक्रवर्ती द्वितीय अर्धभरत को जीतने के लिए सारी सेना के साथ तमिस्रगुहा मे प्रवेश करता है।

१३ खड्ग (असि)—सग्राम भूमि में इसकी शक्ति अप्रतिहत होती है। इसका वार खाली नही जाता।

१४ दड—यह वज्रमय होता है। इसकी पांचों लताएँ रत्नमय होती हैं और यह सभी शत्रुओ की सेनाओ को नष्ट करने में समर्थ होता है। यह चक्रवर्ती के स्कधावार मे जहां कही विषमता होती है, उसे सम करता है और सर्वत्र शाति स्थापित करता है। यह चक्रवर्ती के सभी मनोरथो को पूरा करता है तथा उसके हितो को साधता है। यह दिव्य और अप्रतिहत होता है। विशेष प्रयत्न से इसका प्रहार करने पर यह हजार योजन तक नीचे जा सकता है।

३७-आयुष्य-भेद (सू० ७२)

षट्प्राभृत मे आयु क्षय के कई कारण माने हैं[1]—

---

१ षट्प्राभृत, भावप्राभृत गाथा २५, २६

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसकिलेसाण।
आहारुस्सासाण णिरोहणा खिज्जए आऊ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारणअणयपसगेहिं विविहेहिं॥

१ विष का सेवन	६ भूत, पिशाच आदि से ग्रस्त
२ वेदना	७ सक्लेश
३ रक्तक्षय	८ आहार का निरोध
४ भय	९ श्वासोच्छ्वास का निरोध
५. शस्त्र	

इनके अतिरिक्त

१ हिम—अत्यधिक ठड	४ ऊँचे पर्वत से गिरना
२ अग्नि	५ ऊँचे वृक्ष से गिरना
३ जल	६ रसों या विधाओं का अविधिपूर्वक सेवन ।

ये भी अपमृत्यु के कारण होते हैं ।

३८ अर्हत्-मल्ली (सू० ७५)

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार मल्लीनाथ के साथ तीन सौ पुरुष प्रव्रजित हुए थे ।[1] स्थानाग मे भी इनके साथ तीन सौ पुरुषों के प्रव्रजित होने का ही उल्लेख है ।[2]

स्थानाग की वृत्ति मे अभयदेवसूरि ने 'मल्लिजिन स्त्रीशतैरपित्रिभि'—मल्ली के साथ तीन सौ स्त्रियो के प्रव्रजित होने की भी बात स्वीकार की है ।[3]

आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २२४ की दीपिका मे मल्लीनाथ के साथ तीन सौ पुरुष और तीन सौ स्त्रियो—छह सौ व्यक्तियो के प्रव्रजित होने का उल्लेख है ।[4]

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार का अभिमत भी यही है ।[5]

प्रस्तुत सूत्र मे मल्ली के अतिरिक्त छह प्रधान व्यक्तियो के नाम गिनाए गए हैं । वे सब मल्ली के पूर्वभव के साथी थे और वे सब साथ-साथ दीक्षित भी हुए थे । प्रस्तुत भव मे भी वे मल्ली के साथ दीक्षित होते हैं । वे मल्ली के साथ प्रव्रजित होने वाले तीन सौ पुरुषो मे से ही थे । वे विशेष व्यक्ति थे तथा मल्ली के पूर्वभव के साथी थे, अत उनका पृथक् उल्लेख किया गया है । उन सबका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ मल्ली—विदेह जनपद की राजधानी मिथिला मे कुभ नाम का राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम प्रभावती था । उसने एक पुत्री को जन्म दिया । माता-पिता ने उसका नाम मल्ली रखा । वह जब लगभग सौ वर्ष की हुई तब एक दिन उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के छह मित्रो की उत्पत्ति के विषय मे जाना और उनको प्रतिबोध देने के लिए एक उपाय ढूढ़ा । उसने अपने घर के उपवन मे अपना सोने का एक पोला प्रतिबिम्ब बनाया । उसके मस्तक मे एक छिद्र रखा गया था । वह उस छिद्र मे प्रतिदिन अपने भोजन का एक ग्रास डाल देती और उस छिद्र को ढँक देती ।

२ राजा प्रतिबुद्धि—साकेत नगरी मे प्रतिबुद्धि राजा राज्य करता था । एक बार वह पद्मावती देवी द्वारा किये जाने वाले नागयज्ञ में भाग लेने गया और वहाँ अपूर्व श्रीदामगडक (माला) को देखकर अतिविस्मित हुआ और अपने अमात्य से पूछा—'क्या तुमने पहले कहीं ऐसी माला देखी है ?' अमात्य ने कहा —'देव ! विदेह राजा की कन्या मल्ली के पास जो दामगडक है, उसके लक्षाश से भी यह तुलनीय नहीं होती ।' राजा ने पुन पूछा—'बताओ वह कैसी है ?' अमात्य ने कहा—'राजन् ! उस जैसी दूसरी है ही नहीं, तब भला मैं कैसे बताऊं कि वह कैसी है ?'

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २२४
पासो मल्लीव तिहि तिहि सएहि ।

२ स्थानांग ३।५३० ।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १६८ ।

४ आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका, पत्र ६३ मल्लिस्त्रिभिर्नृशतै स्त्रीशतैश्चेत्यनुक्तमपि ज्ञेयम् ।

५ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ९६ ।

राजा का मन विस्मय से भर गया। उसका सारा अध्यवसाय मल्ली की ओर लग गया और उसने विवाह का प्रस्ताव देकर अपने दूत को मिथिला की ओर प्रस्थान कराया।

३ राजा चन्द्रच्छाय—चम्पा नगरी मे चन्द्रच्छाय नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ अर्हन्नक नाम का एक समुद्र-व्यापारी रहता था। एक बार वह लम्बी सामुद्रिक यात्रा से निवृत्त हो अपने नगर मे आया और दो दिव्य कुडल राजा को भेंट देने राजसभा मे गया। राजा ने पूछा—'तुम लोग अनेक-अनेक देशो मे घूमते हो। वहाँ तुमने कही कुछ आश्चर्य देखा है।' अर्हन्नक ने कहा—स्वामिन्! इस बार सामुद्रिक यात्रा मे एक देव ने हमको धर्म से विचलित करने के लिए अनेक उपसर्ग उत्पन्न किए। हम धर्म पर अडिग रहे। देव ने विविध प्रकार से प्रयास किया, परन्तु वह हमे विचलित करने मे असफल रहा तब उसने प्रसन्न होकर हमे दो कुडल युगल दिये। हम जब मिथिला मे गए तब एक कुडल युगल हमने राजा कुभ को उपहार रूप दिया। उसने अपने हाथो से मल्ली को वे कुडल पहनाए। उस कन्या को देख हम अत्यन्त विस्मित हुए। ऐसा रूप और लावण्य हमने अन्यत्र कहीं नहीं देखा।'

राजा ने यह सुना और मल्ली कन्या को पाने के लिए छटपटा उठा। उसने अपने दूत को मिथिला की ओर प्रस्थान कराया।

४ राजा रुक्मी—श्रावस्ती नगरी मे रुक्मीराज नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम सुबाहु था। एक बार उसके चातुर्मासिक मज्जनक महोत्सव के समय राजा ने नगर के चौराहे पर एक सुन्दर मडप बनवाया और उस दिन वह वहीं बैठा रहा। कन्या सुबाहु सज्जित होकर अपने पिता को वन्दन करने वहाँ आई। राजा ने उसे गोद मे बिठा लिया और उसके रूप-लावण्य को अत्यन्त गौर से देखने लगा। उसने वर्षधर से पूछा—'क्या अन्य किसी कन्या का ऐसा मज्जनक महोत्सव कहीं देखा है?' उसने कहा—'राजन्! जैसा मज्जनक महोत्सव मल्ली कन्या का देखा है, उसकी तुलना मे यह कुछ नहीं है। उसकी रमणीयता का यह लक्षाश भी नही है।'

राजा ने मल्ली का वरण करने के लिए अपने दूत के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा। दूत मिथिला की ओर चल पडा।

५. राजा शख—एक बार कन्या मल्ली के कुडलों की सधि टूट गई। उसे जोडने के लिए महाराज कुभक ने स्वर्णकारों को बुलाया और कुडलो को ठीक करने के लिए कहा। स्वर्णकार उन्हे ठीक करने मे असमर्थ रहे। राजा ने उन्हे देश-निकाला दे दिया।

वे स्वर्णकार वाणारसी के राजा शखराज की शरण मे आए। राजा ने उनके देश-निष्कासन का कारण पूछा। उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने पूछा—'मल्ली कन्या कैसी है?' उन्होंने उसके रूप और लावण्य की भूरि-भूरि प्रशसा की।

राजा मल्ली में आसक्त हो गया। उसने विवाह का प्रस्ताव देकर अपने दूत को मिथिला की ओर भेजा।

६ राजा अदीनशत्रु—एक बार मल्लीकुमारी के छोटे भाई मल्लदिन्न ने अपनी अन्त पुर की चित्रशाला को चित्रकारो से चित्रित कराया। उन चित्रकारो मे एक युवक चित्रकार था। उसे चित्रकला मे विशेष लब्धि प्राप्त थी। एक बार उसने परदे के भीतर बैठी हुई मल्ली का अगूठा देख लिया। उस अगूठे के आकार के आधार पर उसने मल्ली का पूरा चित्र चित्रित कर डाला। कुमार मल्लदिन्न अन्त पुर की चित्रशाला मे पहुचा और विविध प्रकार के चित्रो को देख विस्मय से भर गया। देखते-देखते उसने मल्ली का रूप देखा। उसे साक्षात् मल्लीकुमारी समझकर सोचा—'अहो! यह तो मेरी बडी बहिन मल्ली है। मैंने यहा आकर इसका अविनय किया है।' वह अत्यन्त लज्जित हो, एक ओर जाने लगा। जो धाय माता वहा उपस्थित थी, उसने कहा—'कुमार! यह तो आपके भगिनी का चित्र-मात्र है।' यह सुनकर कुमार स्तभित सा रह गया। अस्थान पर ऐसे चित्र को चित्रित करने के कारण उसने चित्रकार के वध का आदेश दे दिया। चित्रकारो का मन बहुत दु खी हुआ। उन्होंने उसे छोडने के लिए कुमार से प्रार्थना की। किन्तु कुमार ने उसकी छेनी को तोडकर उसे देश से निष्कासित कर डाला।

वह युवा चित्रकार हस्तिनागपुर के राजा अदीनशत्रु की शरण में चला गया। राजा ने उसके आगमन का कारण पूछा। उसने सारी घटना कह सुनाई।

राजा ने अपने दूत को विवाह का प्रस्ताव देकर मिथिला की ओर भेजा।

७ राजा जितशत्रु — एक बार चोक्षा नाम की परिव्राजिका मल्ली के भवन मे आई। वह दानधर्म और शौचधर्म का निरूपण करती थी। मल्ली ने उसे पराजित कर दिया। परिव्राजिका कुपित होकर कापिल्यपुर के राजा जितशत्रु की शरण मे चली गई। राजा ने कहा—तुम देश-देशांतरो में घूमती हो। क्या कही तुमने हमारे अन्त पुर की रानियो के सदृश रूप और लावण्य देखा है ? उसने कहा—महाराज ! मल्ली कन्या के समक्ष आपकी सभी रानिया फीकी लगती हैं। ये सब उसके पद-नख से भी तुलनीय नही हैं।

राजा मल्ली को पाने अधीर हो उठा। उसने भी अपना दूत वहा भेज दिया।

इस प्रकार साकेत, चम्पा, श्रावस्ती, वाणारसी, हस्तिनागपुर और कापिल्य के राजाओं के दूत मिथिला पहुचे और अपने-अपने महाराजा के लिए मल्ली की याचना की। राजा कुम्भ ने उन्हें तिरस्कृत कर नगर से निकाल दिया।

वे छहो दूत अपने-अपने स्वामी के पास आए और सारी घटना कह सुनाई। छहों राजाओं ने अत्यन्त कुपित होकर मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा कुभ ने यह सुना और वह अपनी सेना को सज्जित कर सीमा पर जा बैठा। युद्ध प्रारभ हुआ। छहो राजाओ की सेना के समक्ष राजा कुम्भ की सेना ठहर नहीं सकी। वह हार गया। तब मल्ली ने गुप्त रूप से छहो राजाओ के पास एक-एक व्यक्ति को भेजकर यह कहलाया कि—आपको मल्ली वरण करना चाहती है। छहो राजा नगर मे आए और उसी उद्यान मे ठहरे जहा मल्ली की प्रतिमा स्थित थी। मल्ली की प्रतिमा को देख वे अत्यन्त आसक्त हो गए और निर्निमेष दृष्टि से उसे देखने लगे। मल्लीकुमारी वहा आई और प्रतिमा के शिर पर दिए ढक्कन को उठाया। उससे दुर्गन्ध फूटने लगी। सभी नाक बद कर दूर जा बैठे। मल्ली उनके समक्ष आकर बोली—'अरे ! आपने नाक क्यों बद कर डाला है ?' उन्होंने कहा—'दुर्गन्ध फूट रही है।' मल्ली ने पुद्गलों के परिणाम की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्हें कामभोगो मे आसक्त न होने के लिए प्रेरित किया।

सभी को जातिस्मृति उत्पन्न हुई। सभी प्रव्रज्या के लिए तैयार हुए। मल्ली ने कहा—'आप अपने-अपने राज्य मे जाकर राज्य की व्यवस्था कर मेरे पास आए।' सबने यह स्वीकार किया। पश्चात् मल्लीकुमारी छहो राजाओं को राजा कुभ के पास ले आई और उन्हें कुभ के चरणों मे प्रणत कर विसर्जित किया।[1] अन्त में 'पोष शुक्ला एकादशी को कुमारी मल्ली इन छहो राजाओं के साथ तथा नन्द और नदिमित्र आदि नागवशीय कुमारो तथा तीन सौ पुरुषो और तीन सौ स्त्रियों के साथ दीक्षित हुई।[2]

वृत्तिकार का अभिमत है कि मल्ली को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उसने इन सबको दीक्षित किया था।[3]

वृत्तिकार के इस अभिमत का आधार क्या है, वह अन्वेष्टव्य है।

३९. उपकरण की विशेषता (सू० ८१)

आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशेप होते हैं, उनमे छठा है उपकरण-अतिशेप। इसका अर्थ है—अच्छे और उज्ज्वल वस्त्र आदि उपकरण रखना। यह पुष्ट परपरा रही है कि आचार्य और रोगी साधु के वस्त्र बार-बार धोने चाहिए। क्योंकि आचार्य के वस्त्र न धोने से लोगो में अवज्ञा होती है और रोगी के वस्त्र न धोने से उसे अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।[4]

देखें — ५।१६६ का टिप्पण।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८० ३८२।

२ वही, पत्र ३८२ पोषशुद्धैकादश्यामष्टमभक्तेनाश्विनीनक्षत्रे तै षड्भिर्नृपतिभिर्नन्दनन्दिमित्रादिभिर्नागवंशकुमारैस्तथा बाह्यपर्षदा पुरुषाणां त्रिभि शतैरभ्यन्तरपर्षदा च त्रिभि शतै सह प्रवव्राज।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८२ उत्पन्नकेवलश्च तान् प्रव्राजितवानिति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८४

आयरियगिलाणाणं मइला मइला पुणोवि धोवंति।
मा हु गुरूण अवन्नो लोगम्मि अजीरण इयरे॥

४०-४१ (सू० ८२,८३)

समवायाग मे सयम[1] और असयम[2] के सतरह-सतरह प्रकार बतलाए गए हैं। उनमे से यहा सात सात प्रकारो का निर्देश है।

४२-४४ (सू० ८४-८९)

प्रस्तुत सूत्रो मे—आरभ, सरभ और समारभ—इन तीन शब्दो का उल्लेख है। ये क्रमवद्ध नही हैं। इनका क्रम है—संरभ, समारभ और आरभ। वृत्तिकार ने इनका अर्थ इस प्रकार किया है[3]—

आरम्भ—वध।

सरभ—वध का सकल्प।

समारभ—परिताप।

उत्तराध्ययन २४।२०-२५ तथा तत्त्वार्थ ६।८ मे इनका क्रमवद्ध उल्लेख है।

तत्त्वार्थवार्तिक में इनकी व्याख्या इस प्रकार है[4]—

सरभ—प्रवृत्ति का सकल्प।

समारभ—प्रवृत्ति के लिए साधन-सामग्री को जुटाना।

आरभ—प्रवृत्ति का प्रारभ।

४५ (सू० ९०)

तीसरे स्थान [सूत्र १२५] में शाली, व्रीहि आदि कुछ धान्यों के योनि-विच्छेद का निरूपण किया है। प्रस्तुत सूत्र में उन धान्यो का निरूपण है जिनका योनि-विच्छेद सात वर्षों के पश्चात् होता है।

देखें—३।१२५ का टिप्पण।

४६ (सू० १०१)

समवायाग ७७।३ मे गर्दतोय और तुषित—दोनो के सयुक्त परिवार की सख्या सतहत्तर हजार वतलाई है। प्रस्तुत सूत्र से वह भिन्न है।

देखें—समवायाग ७७।३ का टिप्पण।

४७ श्रेणिया (सू० ११२)

श्रेणी का अर्थ है—आकाश प्रदेश की वह पक्ति जिसके माध्यम से जीव और पुद्गलो की गति होती है। जीव और पुद्गल श्रेणी के अनुसार ही गति करते हैं—एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाते हैं। श्रेणिया सात हैं—

१ ऋजु-आयता—जब जीव और पुद्गल ऊचे लोक से नीचे लोक मे और नीचे लोक से ऊचे लोक मे जाते हुए सम-रेखा में गति करते हैं, कोई घुमाव नही लेते, उस मार्ग को ऋजु-आयात [सीधी और लबी] श्रेणी कहा जाता है। इस गति मे केवल एक समय लगता है।

२ एकतोवक्रा—आकाश प्रदेश की पक्तिया—श्रेणियाँ—ऋजु ही होती हैं। उन्हें जीव या पुद्गल की घुमावदार गति—एक दिशा से दूसरी दिशा मे गमन करने की अपेक्षा से वक्रा कहा गया है। जब जीव और पुद्गल ऋजु गति करते-करते दूसरी श्रेणी मे प्रवेश करते हैं तब उन्हें एक घुमाव लेना होता है इसलिए उस मार्ग को 'एकतोवक्रा श्रेणी' कहा जाता

---

१ समवायांग, १७।२।

२ वही, १७।१।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८४।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५१३, ५१४।

है, जैसे—कोई जीव या पुद्गल नीचे लोक की पूर्व दिशा से च्युत होकर ऊंचे लोक की पश्चिम दिशा में जाता है तो पहले-पहल वह ऋजुगति के द्वारा ऊंचे लोक की पूर्व दिशा मे पहुचता है—समश्रेणी गति करता है। वहा से वह पश्चिम दिशा की ओर जाने के लिए एक घुमाव लेता है।

३ द्वितोवक्रा—जिस श्रेणी मे दो घुमाव लेने पडते हैं उसे 'द्वितोवक्रा' कहा जाता है। जब जीव ऊंचे लोक के अग्नि-कोण [पूर्व-दक्षिण] मे मरकर नीचे लोक के वायव्य कोण [उत्तर-पश्चिम] मे उत्पन्न होता है तब वह पहले समय में अग्नि-कोण से तिरछी-गति कर नैऋत कोण की ओर जाता है। दूसरे समय मे वहा से तिरछा होकर वायव्य कोण की ओर जाता है। तीसरे समय मे नीचे वायव्य कोण में जाता है। यह तीन समय की गति त्रसनाडी अथवा उसके बाहरी भाग मे होती है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार होती है।

४ एकत खहा—जब स्थावर जीव त्रसनाडी के बायें पार्श्व से उसमे प्रवेश कर उसके बायें या दाएँ किसी पार्श्व में दो या तीन घुमाव लेकर नियत स्थान में उत्पन्न होता है। उसके त्रसनाडी के बाहर का आकाश एक ओर से स्पृष्ट होता है है इसलिए इसे 'एकत खहा' कहा जाता है। इसमे भी एकतोवक्रा, द्वितोवक्रा श्रेणी की भाति वक्र गति होती है किन्तु त्रसनाडी की अपेक्षा से इसका स्वरूप उनसे भिन्न है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार की होती है।

५ द्वित खहा—जब स्थावर जीव त्रसनाडी के किसी एक पार्श्व से उसमे प्रवेश कर उसके बाह्यवर्ती दूसरे पार्श्व मे दो या तीन घुमाव लेकर नियत स्थान मे उत्पन्न होता है, उसके त्रसनाडी के बाहर का दोनो ओर का आकाश स्पृष्ट होता है इसलिए उसे 'द्वित खहा' कहा जाता है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार होती है।

६ चक्रवाला—इस आकार मे जीव की गति नहीं होती, केवल पुद्गल की ही गति होती है।

७ अर्द्धचक्रवाला।

इन सात श्रेणियो का उल्लेख भगवती २५।३ और ३४।१ मे भी मिलता है। ३४।१ मे बताया गया है—ऋजु-आयत श्रेणी में उत्पन्न होने वाला जीव एक सामयिक विग्रहगति से उत्पन्न होता है। एकतोवक्रा श्रेणी मे उत्पन्न होने वाला जीव द्वि-सामयिक विग्रहगति से उत्पन्न होता है। द्वितोवक्रा श्रेणी मे उत्पन्न होने वाला जीव एक प्रतर में समश्रेणी में उत्पन्न होता है तो वह त्रि-सामयिक विग्रहगति करता है और यदि वह विश्रेणी मे उत्पन्न होता है तो चतु सामयिक विग्रहगति करता है।

एक ओर से वक्र आदि आकारवाली प्रदेशो की पक्तिया लोक के अन्त मे स्थित प्रदेशों की अपेक्षा से हैं।

इन सातो श्रेणियों की स्थापना इस प्रकार है—

श्रेणी		स्थापना
१, ऋजु-आयत	—	—
२ एकतोवक्रा	—	⌐
३ द्वितोवक्रा	—	¬L
४ एकत खहा	—	⌐
५ द्वित खहा	—	⌐—o—¬
६ चक्रवाला	—	o
७ अर्द्धचक्रवाला	—	C

४८ विनय (सू० १३०)

विनय का एक अर्थ है—कर्म पुद्गलो का विनयन—विनाश करने वाला प्रयत्न। इस परिभाषा के अनुसार ज्ञान, दर्शन आदि को विनय कहा गया है, क्योंकि उनके द्वारा कर्म पुद्गलों का विनयन होता है। विनय का दूसरा अर्थ है—भक्ति-बहुमान आदि करना। इस परिभाषा के अनुसार ज्ञान-विनय का अर्थ है—ज्ञान की भक्ति-बहुमान करना। तपस्या का पूर्णांग एव व्यवस्थित निरूपण औपपातिक में मिलता है। वहा ज्ञान-विनय के पाच, दर्शन-विनय के दो, चारित्र-विनय के पाच प्रकार बतलाए गए हैं।[1] सख्या की असमानता के कारण वे यहां निर्दिष्ट नहीं हैं।

---

१ ओवाइय, सूत्र ४०।

औपपातिक [सू० ४०] मे प्रशस्त और अप्रशस्त मन तथा वचन विनय के बारह-बारह प्रकार निर्दिष्ट हैं। किन्तु यहा सख्या नियमन के कारण उनके सात भेद प्रतिपादित हैं। कायविनय और लोकोपचार विनय के प्रकार दोनो मे समान हैं।

४६ प्रवचन-निन्हव (सू० १४०)

दीर्घकालीन परपरा मे विचारभेद होना अस्वाभाविक नही है। जैन परपरा मे भी ऐसा हुआ है। आमूलचूल विचार परिवर्तन होने पर कुछ साधुओ ने अन्य धर्म को स्वीकार किया, उनका यहां उल्लेख नही है। यहा उन साधुओ का उल्लेख है जिनका किसी एक विषय मे, चालू परपरा के साथ, मतभेद हो गया और वे वर्तमान शासन से पृथक् हो गए, किन्तु किसी अन्य धर्म को स्वीकार नही किया। इसलिए उन्हे अन्य धर्मी नही कहा गया, किन्तु जैन शासन के निन्हव [किसी एक विषय का अपलाप करने वाले] कहा गया है। इस प्रकार के निन्हव सात हुए हैं। इनमे से दो भगवान् महावीर की कैवल्यप्राप्ति के वाद हुए हैं और शेष पांच निर्वाण के वाद।[1] इनका अस्तित्व-काल भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के चौदह वर्ष से निर्वाण के वाद ५८४ वर्ष तक का है।[2] यह विषय आगम-सकलन काल मे कल्पसूत्र से प्रस्तुत सूत्र मे सक्रान्त हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ वहुरत—भगवान महावीर के कैवल्यप्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती नगरी मे वहुरतवाद की उत्पत्ति हुई।[3] इसके प्ररूपक आचार्य जमाली थे।

जमालि कुडपुर नगर के रहने वाले थे। उनकी माता का नाम सुदर्शना था। वह भगवान् महावीर की वडी वहिन थीं। जमाली का विवाह भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना के साथ हुआ।[4]

वे पाच सौ पुरुषो के साथ भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुए। उनके साथ-साथ उनकी पत्नी प्रियदर्शना भी हजार स्त्रियो के साथ दीक्षित हुई। जमाली ने ग्यारह अग पढे। वे अनेक प्रकार की तपस्याओ से अपनी आत्मा को भावित कर विहार करने लगे।

एक वार वे भगवान् के पास आये और उनसे अलग विहार करने की आज्ञा मागी। भगवान् मौन रहे। वे भगवान् को वन्दना कर अपने पाच सौ निर्ग्रन्थों को साथ ले अलग विहार करने लगे।

विहार करते-करते वे एकवार श्रावस्ती नगरी मे पहुचे। वहा तिन्दुक उद्यान के कोष्ठक चैत्य में ठहरे। तपस्या चालू थी। पारणा मे वे अन्त-प्रान्त आहार का सेवन करते। उनका शरीर रोगाक्रान्त हो गया। पित्तज्वर से उनका शरीर जलने लगा। वे वैठे रहने मे असमर्थ थे। एक दिन घोरतम वेदना से पीडित होकर उन्होने अपने श्रमण-निर्ग्रन्थों को वुलाकर कहा—श्रमणो! विछौना करो। वे विछौना करने लगे। पित्तज्वर की वेदना वढने लगी। उन्हे एक-एक पल भारी लग रहा था। उन्होंने पूछा—विछौना कर लिया या किया जा रहा है।[5] श्रमणों ने कहा—देवानुप्रिय! विछौना किया नही, किया

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८४
पाणुप्पत्तीय दुवे, उप्पण्णा णिव्वुए सेसा।

२ वही, गाथा ७८३, ७८४
चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णिसया।
अट्ठावीसा य दुवे, पचेव सया उ चोयाला॥
पचसया चुलसीया।

३ आवश्यकभाष्य, गाथा १२५
चउदस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्सा।
तो वहुरयाणदिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना॥

४ कुछ आचार्य यह भी मानते हैं कि ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्यांगी—ये सभी नाम जमाली की पत्नी के हैं—अन्येतु व्याचक्षते—ज्येष्ठा सुदर्शना अनवद्यांगीति जमालिगृहिणी नामानि।
(आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५।)

५ यहाँ आचार्य मलयगिरि ने घटनाक्रम और सिद्धान्त पक्ष का निरूपण किया है, वह भगवती सूत्र के निरूपण से भिन्न हैं। उनके अनुसार जमाली ने अपने श्रमणो से पूछा—'विछौना किया या नहीं? श्रमणों ने उत्तर दिया—'कर दिया।' जमालि उठा और उसने देखा कि विछौना अभी पूरा नही किया गया है। यह देख वह क्रुद्ध हो उठा। उसने सोचा—'क्रियमाण को कृत कहना मिथ्या है। अर्द्धसस्तृत सस्तारक (विछौना) असस्तृत ही है। उसे सस्तृत नही माना जा सकता।
(आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०२।)

जा रहा है। यह सुन उनके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई—भगवान् क्रियमाण को कृत कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हू कि बिछौना किया जा रहा है, उसे कृत कैसे माना जा सकता है ? उन्होंने तात्कालिक घटना से प्राप्त अनुभव के आधार पर यह निश्चय किया—'क्रियमाण को कृत नही कहा जा सकता। जो सम्पन्न हो चुका है, उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य की निष्पत्ति अतिम क्षण मे ही होती है, पहले-दूसरे आदि क्षणो मे नही।' उन्होने अपने निर्ग्रन्थो को बुलाकर कहा—भगवान महावीर कहते हैं—

'जो चल्यमान है वह चलित है, जो उदीर्यमाण है, वह उदीरित है और जो निर्जीर्यमाण है वह निर्जीर्ण है। किन्तु मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हू कि यह मिथ्या सिद्धान्त है। यह प्रत्यक्ष घटना है कि बिछौना क्रियमाण है, किन्तु कृत नहीं है। वह सस्तीर्यमाण है, किन्तु सस्तृत नहीं है।'

कुछ निर्ग्रन्थ उनकी बात से सहमत हुए और कुछ नहीं हुए। उस समय कुछ स्थविरो ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्होंने स्थविरो का अभिमत नही माना। कुछ श्रमणो को जमाली के निरूपण मे विश्वास हो गया। वे उनके पास रहे। कुछ श्रमणों को उनके निरूपण में विश्वास नही हुआ वे भगवान् महावीर के पास चले गए।

साध्वी प्रियदर्शना भी वही (श्रावस्ती मे) कुभकार ढक के घर मे ठहरी हुई थी। वह जमाली के दर्शनार्थ आई। जमाली ने अपनी सारी बात उसे कही। उसने पूर्व अनुराग के कारण जमाली की बात मान ली उसने आर्याओ को बुलाकर उन्हे जमाली का सिद्धान्त समझाया और कुभकार को भी उससे अवगत किया। कुभकार ने मन ही मन सोचा—साध्वी के मन में शका उत्पन्न हो गई है, किन्तु मैं शकित नहीं होऊगा। उसने साध्वी से कहा—मैं इस सिद्धान्त का मर्म नही समझ सकता।

एक बार साध्वी प्रियदर्शना अपने स्थान पर स्वाध्याय—पौरुषी कर रही थी। ढक ने एक अगारा उस पर फेंका। साध्वी की सघाटी का एक कोना जल गया। साध्वी ने कहा—ढक ! मेरी सघाटी क्यो जला दी ? तब ढंक ने कहा—'नहीं, सघाटी जली कहा है, वह जल रही है।' उसने विस्तार से 'क्रियमाण कृत' की बात समझाई। साध्वी प्रियदर्शना ने इसके मर्म को समझा और जमाली को समझाने गई। जमाली नही समझा, तब वह अपनी हजार साध्वियो तथा शेष साधुओ के साथ भगवान् की शरण मे चली गई।

जमाली अकेले रह गए। वे चपा नगरी मे गए। भगवान् महावीर भी वहीं समवसृत थे। वे भगवान के समवसरण मे गए और बोले—'देवानुप्रिय ! आपके बहुत सारे शिष्य असर्वज्ञदशा मे गुरुकुल से अलग हुए हैं, वैसे मैं नही हुआ हू। मैं सर्वज्ञ होकर आपसे अलग हुआ हू।' फिर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। जमाली ने भगवान् की बातें सुनी, पर वे उन्हे अच्छी नही लगी। वे उठे और भगवान् से अलग चले गए और अन्त तक 'क्रियमाण कृत नही है'—इस सिद्धान्त का प्रचार करते रहे।[1]

बहुतरतवादी द्रव्य की निष्पत्ति मे दीर्घकाल की अपेक्षा मानते हैं। वे क्रियमाण को कृत नहीं मानते किन्तु वस्तु के निष्पन्न होने पर ही उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

२ जीवप्रादेशिक—भगवान् महावीर के कैवल्यप्राप्ति के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर[2] मे जीवप्रादेशिकवाद की उत्पत्ति हुई।[3]

एक बार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्यवसु राजगृह नगर मे आए और गुणशील चैत्य मे ठहरे। वे चौदह-पूर्वी थे। उनके शिष्य का नाम तिष्यगुप्त था। वह उनसे आत्मप्रवाद-पूर्व पढ रहा था। उसमे भगवान् महावीर और गौतम का सवाद आया।

गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्—नहीं !

---

१ भगवती ६।२२, आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०२-४०५।

२ यह राजगृह का प्राचीन नाम था।
(आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका पत्र १४३, ऋषभपुर राजगृहस्याख्या)

३ आवश्यक भाष्यगाथा, १२७
सोलसवासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्स।
जीवपएसियदिट्ठी उसभपुरम्मी समुप्पन्ना॥

गौतम—भगवन् ! क्या दो, तीन यावत् सख्यात् प्रदेश को जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्—'नहीं। अखड चेतन द्रव्य मे एक प्रदेशन्यून को भी जीव नही कहा जा सकता है।'

यह सुन तिष्यगुप्त का मन शकित हो गया। उसने कहा—'अतिम प्रदेश के बिना शेप प्रदेश जीव नही है, इसलिए अतिम प्रदेश ही जीव है।' गुरु ने उसे समझाया, परन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोडा, तब उसे सघ से अलग कर दिया।

अब तिष्यगुप्त अपनी बात का प्रचार करते हुए अनेक गावो-नगरो मे गये। अनेक व्यक्तियो को अपनी बात समझाई। एक बार वे आलमकल्पा नगरी मे आये और अवसालवन मे ठहरे। उस नगर मे मित्रश्री नामका श्रमणोपासक रहता था। वह तथा दूसरे श्रावक धर्मोपदेश सुनने आए। तिष्यगुप्त ने अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया। मित्रश्री ने जान लिया कि ये मिथ्या प्ररूपण कर रहे हैं। फिर भी वह प्रतिदिन प्रवचन सुनने आता रहा। एक दिन उसके घर मे जीमनवार था। उसने तिष्यगुप्त को घर आने का निमन्त्रण दिया। तिष्यगुप्त भिक्षा के लिए गये, तब मित्रश्री ने अनेक प्रकार के खाद्य उनके सामने प्रस्तुत किए और प्रत्येक पदार्थ का एक-एक छोटा टुकडा उन्हें देने लगा। इसी प्रकार चावल का एक-एक दाना, घास का एक-एक तिनका और वस्त्र का एक-एक तार उन्हें दिया। तिष्यगुप्त ने मन ही मन सोचा कि यह अन्य सामग्री मुझे बाद मे देगा। किन्तु इतना देने पर मित्रश्री तिष्यगुप्त के चरणों मे वन्दन कर बोला—'अहो मैं धन्य हू, कृतपुण्य हू कि आप जैसे गुरुजनो का मेरे घर पादार्पण हुआ है।' इतना सुनते ही तिष्यगुप्त को क्रोध आ गया और वे बोले—'तुमने मेरा तिरस्कार किया है।' मित्रश्री बोला—'नहीं, मैं भला आपका तिरस्कार क्यो करता ? मैंने आपके सिद्धान्त के अनुसार ही आपको भिक्षा दी है, भगवान् महावीर के सिद्धान्त के अनुसार नही। आप अतिम प्रदेश को ही वास्तविक मानते हैं, दूसरे प्रदेशो को नही। अत मैंने प्रत्येक पदार्थ का अतिम भाग आपको दिया है, शेप नहीं।'

तिष्यगुप्त समझ गए। उन्होंने कहा—'आर्य ! इस विषय मे मैं तुम्हारा अनुशासन चाहता हू।' मित्रश्री ने उन्हें समझा कर मूल विधि से भिक्षा दी।

तिष्यगुप्त सिद्धान्त के मर्म को समझ कर पुन भगवान् के शासन मे सम्मिलित हो गए।[1]

जीव के असख्य प्रदेश हैं। किन्तु जीव प्रादेशिक मतानुसारी जीव के चरम प्रदेश को ही जीव मानते हैं, शेष प्रदेशों को नही।

३ अव्यक्तिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के २१४ वर्ष पश्चात् श्वेतविका नगरी मे अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई।[2] इसके प्रवर्तक आचार्य आपाढ के शिष्य थे।

श्वेतविका नगरी के पोसाल उद्यान में आचाय आपाढ ठहरे हुए थे। वे अपने शिष्यो को योगाभ्यास कराते थे। उस गण मे एकमात्र वे ही वाचनाचार्य थे।

एक बार आचार्य आपाढ को हृदयशूल उत्पन्न हुआ और वे उसी रोग से मर गए। मर कर वे सौधर्म कल्प के नलिनीगुल्म विमान मे उत्पन्न हुए। उन्होंने अवधिज्ञान से अपने मृत शरीर को देखा और देखा कि उनके शिष्य आगाढ योग मे लीन हैं तथा उन्हें आचार्य की मृत्यु की जानकारी भी नही है। तब देवरूप मे आचार्य आपाढ नीचे आए और पुन उन्होने अपने मृत शरीर मे प्रवेश कर दिया। तत् पश्चात् उन्होंने अपने शिष्यो को जागृत कर कहा—'वैरात्रिक करो।' शिष्यो ने वैसा ही किया। जब उनकी योग-साधना का क्रम पूरा हुआ तब आचार्य आपाढ देवरूप मे प्रकट होकर बोले—'श्रमणो ! मुझे क्षमा करें। मैंने असयती होते हुए भी सयतात्माओ से वदना करवाई है।' अपनी मृत्यु की सारी बात बता वे अपने स्थान पर चले गए।

श्रमणो को सदेह हो गया कि कौन जाने कौन साधु है और कौन देव ? निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। सभी चीजें अव्यक्त हैं। उनका मन सन्देह मे डोलने लगा। अन्य स्थविरों ने उन्हें समझाया, पर वे नही समझे। उन्हें सघ से अलग कर दिया।

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५, ४०६।

२ आवश्यकभाष्य, गाथा १२६

चउदस दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अव्वत्तगाण दिट्ठी सेअविआए समुप्पन्ना॥

एक वार वे श्रमण विहार करते हुए राजगृह मे आए। वहा मौर्यवशी राजा वलभद्र श्रमणोपासक था। उसने श्रमणो के आगमन तथा उनके दर्शन की वात सुनी। उसने अपने चार पुरुषों को वुलाकर कहा—'जाओ, उन श्रमणो को यहां ले आओ।' वे गए और श्रमणो को ले आए। राजा ने कहा—'इन सभी श्रमणो के कोडे मारो।' चार पुरुष गए और हाथी को मारने के कोडे ले आए। साधुओ ने कहा—'राजन् ! हम तो जानते थे कि तुम श्रावक हो' तुम हमे मरवाओगे ?' राजा ने कहा—'तुम चोर हो या चारक हो या गुप्तचर हो ? यह कौन जानता है ?' उन्होंने कहा—हम साधु हैं। राजा वोला—'तुम श्रमण हो या चारक तथा मैं ही श्रावक हू या नहीं—यह निश्चयपूर्वक कौन कह मकता है ?' इस घटना से वे सव ममझ गए। उन्हे अपने अज्ञान पर खेद हुआ। उन्होंने अपनी भ्राति का निराकरण कर सत्य को पहचान लिया। राजा ने क्षमा-याचना करते हुए कहा—'श्रमणो ! मैंने आपको प्रतिवोध देने के लिए ऐसा किया था। आप क्षमा करें'।[1]

अव्यक्तवाद को माननेवालो का कथन है कि किसी भी वस्तु के विपय मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। सव कुछ अनिश्चित है, अव्यक्त है।

अव्यक्तवाद मत का प्रवर्तन आचार्य आपाढ ने नही किया था। इसके प्रवर्तक थे उनके शिष्य। किन्तु इस मत के प्रवर्तन मे आचार्य आपाढ का देवरूप निमित्त वना था अत उन्हे इस मत का आचार्य मान लिया गया। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आचार्य आपाढ के शिष्यो ने अव्यक्तवाद का प्रतिपादन किया। जिस समय यह घटना लिखी गई उस समय उनके शिष्यों के नाम का परिचय न रहा हो, अत साकेतिक रूप मे अभेदोपचार की दृष्टि से आचार्य आपाढ को ही उस मत का प्रवर्तक वतलाया गया। इस प्रश्न के एक पहलू पर अभयदेवसूरि ने विमर्श प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार आचार्य आपाढ अव्यक्त मत को सस्थापित करने वाले श्रमणो के आचार्य थे। इसीलिए उन्हें अव्यक्तवाद के आचार्य के रूप मे उल्लिखित किया गया है।[2]

४ समुच्छेदिक—भगवान महावीर के निर्वाण के २२० वर्प पश्चात् मिथिला पुरी मे समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई।[3] इसके प्रवर्तक आचार्य अश्वमित्र थे।

एक वार मिथिलानगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य मे आचार्य महागिरि ठहरे हुए थे। उनके शिष्य का नाम कोण्डिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। वह दसवें अनुप्रवाद (विद्यानुप्रवाद) पूर्व के नैपुणिक वस्तु (अध्याय) का अध्ययन कर रहा था। उसमें छिन्नछेदनय के अनुसार एक आलापक यह था कि पहले समय में उत्पन्न सभी नारक विच्छिन्न हो जाएंगे, दूसरे-तीसरे समय मे उत्पन्न नैरयिक भी विच्छिन्न हो जाएंगे। इस प्रकार सभी जीव विच्छिन्न हो जाएंगे। इस पर्यायवाद के प्रकरण को सुनकर अश्वमित्र का मन शकायुक्त हो गया। उसने सोचा, यदि वर्तमान समय मे उत्पन्न सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत और दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा ? क्योकि उत्पन्न होने के अन्तर ही सबकी मृत्यु हो जाती है।

गुरु ने कहा—'वत्स। ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ऐसा कहा गया है, सभी नयों की अपेक्षा से नहीं। निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वनयसापेक्ष होता है। अत शका मत कर। वस्तु मे अनन्त धर्म होते हैं। एक पर्याय के विनाश से वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता, आदि-आदि।' आचार्य के वहुत समझाने पर भी वह नही समझा। तव आचार्य ने उसे सघ से अलग कर दिया।

एक वार वह समुच्छेदवाद का निरूपण करता हुआ कपिल्लपुर मे आया। वहा खडरक्षा नाम के श्रावक थे। वे सभी शुल्कपाल (चुगी अधिकारी) थे। उन्होंने उसे पकडकर पीटा। उसने कहा—'मैंने तो सुना था कि तुम सव श्रावक हो। श्रावक होते हुए भी तुम साधुओं को पीटते हो ? यह उचित नही है।'

श्रावकों ने उत्तर देते हुए कहा—'आपके मत के अनुसार वे श्रावक विच्छिन्न हो गए और जो प्रव्रजित हुए थे वे भी व्युच्छिन्न हो गए। न हम श्रावक हैं और न आप साधु। आप कोई चोर हैं।'

यह सुन उसने कहा—'मुझे मत पीटो, मैं समझ गया।' वह इस घटना से प्रतिवुद्ध हो सघ मे सम्मिलित हो गया।

---

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्न ४०६, ४०७।

२ स्थानागवृत्ति, पत्न ३६१

सोऽमव्यक्तमतधर्माचार्यो, न चाय तन्मतप्ररूपकत्वेन किन्तु प्रागवस्थायामिति।

३ आवश्यकभाप्य, गाथा १३१

वीसा दो वाससया तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स।
सामुच्छेइअदिट्ठी, मिहिलपुरीए समुप्पन्ना॥

४ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्न ४०८, ४०९।

समुच्छेदवादी प्रत्येक पदार्थ का सपूर्ण विनाश मानते हैं वे एकान्त समुच्छेद का निरूपण करते हैं।

५ द्वैक्रिय—भगवान् महावीर के निर्वाण के २२८ वर्ष पश्चात् उल्लुकातीर नगर मे द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई।[1] इसके प्रवर्तक आचार्य गग थे।

प्राचीन काल में उल्लुका नदी के एक किनारे खेडा था और दूसरे किनारे उल्लुकातीर नाम का नगर था। वहा आचार्य महागिरी के शिष्य आचाय धनगुप्त रहते थे। उनके शिष्य का नाम गग था। वे भी आचार्य थे। वे उल्लुका नदी के इस ओर खेडे मे वास करते थे। एक वार वे शरद् ऋतु में अपने आचार्य को वदना करने निकले। मार्ग मे उल्लुका नदी थी। वे नदी में उतरे। वे गजे थे। ऊपर सूरज तप रहा था। नीचे पानी की ठडक थी। उन्हें नदी पार करते समय सिर को सूर्य की गर्मी और पैरो को नदी की ठडक का अनुभव हो रहा था। उन्होंने सोचा—'आगमो मे ऐसा कहा है कि एक समय मे एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नही। किन्तु मुझे प्रत्यक्षत एक साथ दो क्रियाओ का वेदन हो रहा है।' वे अपने आचार्य के पास पहुचे और अपना अनुभव उन्हे सुनाया। गुरु ने कहा—'वत्स! वास्तव में एक समय मे एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नही। मन का क्रम बहुत सूक्ष्म है, अत हमें उसकी पृथक्ता का पता नही लगता।' गुरु के समझाने पर भी वे नही समझे, तब उन्हें सघ से अलग कर दिया।

अब आचार्य गग सघ से अलग होकर अकेले विहरण करने लगे। एक वार वे राजगृह नगर मे आए। वहाँ महातप-तीरप्रभ नामका एक झरना था। वहा मणिनाग नामक नाग का चैत्य था। आचार्य गग उस चैत्य मे ठहरे। धर्म-प्रवचन सुनने के लिए पर्षद् जुडी। आचार्य गग ने अपने द्वैक्रियवाद के मत का प्रतिपादन किया। तब मणिनाग ने उस परिषद् मे कहा—अरे दुष्ट शिष्य! तू अप्रज्ञापनीय का प्रज्ञापन क्यो कर रहा है? इसी स्थान पर एक वार भगवान् ने एक समय मे एक ही क्रिया के वेदन की वात का प्रतिपादन किया था। तू क्या उनसे अधिक ज्ञानी है? अपनी विपरीत प्ररूपणा को छोडो, अन्यथा तेरा कल्याण नही होगा। मणिनाग की वात सुन आचार्य गग के मन मे प्रकम्पन पैदा हुआ और उन्होंने सोचा कि मैंने यह ठीक नही किया। वे अपने गुरु के पास आए और प्रायश्चित्त ले सघ मे सम्मिलित हो गए।[2]

द्वैक्रियवादी एक ही क्षण मे एक साथ दो क्रियाओ का अनुवेदन मानते हैं।

६ त्रैराशिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात् अतरजिका नगरी मे त्रैराशिक मत का प्रवर्तन हुआ।[1] इसके प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त (षडूलुक) थे।

प्राचीन काल मे अतरजिका नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम वलश्री था। वहा भूतगुह नाम का एक चैत्य था। एक वार आचार्य श्रीगुप्त वहाँ ठहरे हुए थे। उनके ससारपक्षीय भानेज रोहगुप्त उनका शिष्य था। एक वार वह दूसरे गाव से आचार्य को वदना करने आ रहा था। वहाँ एक परिव्राजक रहता था। उसका नाम था पोट्टशाल। वह अपने पेट को लोहे की पट्टी से वाध कर, जबू वृक्ष की एक टहनी को हाथ में ले घूमता था। किसी के पूछने पर वह कहता—'ज्ञान के भार से मेरा पेट फट न जाए इसलिए मैं अपने पेट को लोहे की पट्टियो से वाधे रहता हू तथा इस समूचे जम्बूद्वीप मे मेरा प्रतिवाद करने वाला कोई नही, अत जम्बू वृक्ष की शाखा को हाथ मे ले घूमता हू।' वह सभी धार्मिको को वाद के लिए चुनौती दे रहा था। सारे गाव मे चुनौती का पटह फेरा। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती स्वीकार कर आचार्य को सारी वात सुनाई। आचार्य ने कहा—वत्स! तूने ठीक नही किया। वह परिव्राजक अनेक विद्याओ का ज्ञाता है। इस दृष्टि से वह तुझसे वलवान् है। वह सात विद्याओ मे पारगत है—

---

१ आवश्यकभाष्य, गाथा १३३

अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिगयस्स वीरस्स।
दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना॥

२ (क) आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र ४०६, ४१०।

(ख) विशेषआवश्यकभाष्य गाथा २४५०

मणिनागेणारद्धो भयोववत्तिपडिवोहितोवोत्तु।
इच्छामो गुरुमूल गतूण ततो पडिक्कतो॥

३ आवश्यकभाष्य, गाथा १३५

पच सया चोयाला तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स।
पुरिमतरजियाए तेरासियदिट्ठि उप्पन्ना॥

१ वृश्चिकविद्या ३ मूपकविद्या ५ वराहीविद्या ७ पोताकीविद्या
२ सर्पविद्या ४ मृगीविद्या ६ काकविद्या

रोहगुप्त ने यह सुना। वह अवाक् रह गया। कुछ क्षणो के बाद वह बोला—'गुरुदेव ! अब क्या किया जाए ? क्या मैं कहीं भाग जाऊ ?' आचार्य ने कहा—'वत्स ! भय मत खा। मैं तुझे इन विद्याओ की प्रतिपक्षी सात विद्याए सिखा देता हू। तू आवश्यकतावश उनका प्रयोग करना'।' रोहगुप्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया। आचार्य ने सात विद्याए उसे सिखाई—

१ मायूरी ५ सिंही
२ नाकुली ६ उलूकी
३ बिडाली ७ उलावकी
४ व्याघ्री

आचार्य ने रजोहरण को मंत्रित कर रोहगुप्त को देते हुए कहा—'वत्स ! इन सात विद्याओ से तू उस परिव्राजक को पराजित कर सकेगा। यदि इन विद्याओ के अतिरिक्त किसी दूसरी विद्या की आवश्यकता पडे तो तू इस रजोहरण को घुमाना। तू अजेय होगा, तुझे तब कोई पराजित नहीं कर सकेगा। इन्द्र भी तुझे जीतने मे समर्थ नही हो सकेगा।'

रोहगुप्त गुरु का आशीर्वाद ले राजसभा मे गया। राजा बलश्री के समक्ष वाद करने का निश्चय कर परिव्राजक पोट्टशाल को बुला भेजा। दोनो वाद के लिए प्रस्तुत हुए। परिव्राजक ने अपने पक्ष की स्थापना करते हुए कहा—राशि दो हैं—जीव राशि और अजीव राशि। रोहगुप्त ने जीव, अजीव और नोजीव इन तीन राशियों की स्थापना करते हुए कहा—परिव्राजक का कथन मिथ्या है। विश्व मे प्रत्यक्षत तीन राशियाँ उपलब्ध होती हैं। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य आदि जीव हैं। घट, पट आदि अजीव हैं और छुछुदर की कटी हुई पूछ नोजीव है आदि-आदि। इस प्रकार अनेक युक्तियों के द्वारा रोहगुप्त ने परिव्राजक को निरुत्तर कर दिया।

अपनी पराजय देख परिव्राजक अत्यन्त क्रुद्ध हो एक-एक कर सभी विद्याओ का प्रयोग करने लगा। रोहगुप्त सावधान था ही, उसने भी बारी-बारी से उन विद्याओं की प्रतिपक्षी विद्याओं का प्रयोग कर उनको विफल बना दिया। परिव्राजक ने जब देखा कि उसकी सभी विद्याएँ विफल हो रही हैं, तब उसने अन्तिम अस्त्र के रूप में गर्दभी विद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने भी अपने आचार्य द्वारा प्रदत्त अभिमंत्रित रजोहरण का प्रयोग कर उसे भी विफल कर डाला। सभी सभासदों ने परिव्राजक को पराजित घोषित कर उसका तिरस्कार किया।

विजय प्राप्त कर रोहगुप्त आचार्य के पास आया और सारी घटना ज्यो की त्यो उन्हे सुनाई। आचार्य ने कहा—शिष्य ! तूने असत्य प्ररूपणा कैसे की ? तूने क्यो नही कहा कि राशि तीन नहीं हैं ?

रोहगुप्त बोला—भगवन् ! मैं उसकी प्रज्ञा को नीचा दिखाना चाहता था। अत मैंने ऐसी प्ररूपणा कर उसको सिद्ध भी किया है।

आचार्य ने कहा—अभी समय है। जा और अपनी भूल स्वीकार कर आ।

रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार करने के लिए तैयार न हुआ और अन्त मे आचार्य से कहा—यदि मैंने तीन राशि की स्थापना की है तो उसमे दोष ही क्या है ? उसने अपनी बात को विविध प्रकार से सिद्ध करने का प्रयत्न किया। आचार्य ने अनेक युक्तियो से तीन राशि के मत का खडन कर उसे सही तत्त्व पहचानने के लिए प्रेरित किया, परन्तु सब व्यर्थ। अन्त मे आचार्य ने सोचा—यह स्वय नष्ट होकर अनेक दूसरे व्यक्तियो को भी भ्रान्त करेगा। अच्छा है कि मैं लोगों के समक्ष राजसभा में इसका निग्रह करू। ऐसा करने से लोगो का इस पर विश्वास नही रहेगा और मिथ्या तत्त्व का प्रचार भी रुक जायगा।

आचार्य राजसभा मे गए और महाराज बलश्री से कहा—'राजन् ! मेरे शिष्य रोहगुप्त ने सिद्धान्त के विपरीत तथ्य की स्थापना की है। हम जैन दो ही राशि स्वीकार करते हैं, किन्तु वह आग्रहवश इसको स्वीकार नहीं कर रहा है। आप उसको राजसभा मे बुलाए और मैं जो चर्चा करू, वह आप सुनें।' राजा ने आचार्य की बात मान ली।

चर्चा प्रारभ हुई। छह मास बीत गए। एक दिन राजा ने आचार्य से कहा—इतना समय बीत गया। मेरे राज्य का सारा कार्य अव्यवस्थित हो रहा है। यह वाद कब तक चलेगा ? आचार्य ने कहा—'राजन् ! मैंने जानबूझकर इतना समय

विताया है। आज मैं उसका निग्रह करूगा।'

दूसरे दिन प्रात वाद प्रारम्भ हुआ। आचार्य ने कहा—यदि तीन राशि वाली वात सही है तो कुत्रिकापण मे चलें। वहाँ सभी वस्तुए उपलब्ध होती हैं।

राजा को साथ लेकर सभी कुत्रिकापण मे गए और वहा के अधिकारी से कहा—'हमे जीव, अजीव और नोजीव—ये पदार्थ दो।' वहाँ के अधिकारी देव ने जीव और अजीव ला दिए और कहा—नोजीव की श्रेणि का कोई पदार्थ विश्व मे है ही नही। राजा को आचार्य के कथन की यथार्थता प्रतीत हुई।

इस प्रकार आचार्य ने १४४ प्रश्नो[1] द्वारा रोहगुप्त का निग्रह कर उसे पराजित किया। राजा ने आचार्य श्रीगुप्त का वहुत सम्मान किया और सभी पार्षदों ने रोहगुप्त का तिरस्कार कर उसे राजसभा से निष्काषित कर भगा दिया। राजा ने उसे अपने देश से निकल जाने का आदेश दिया और सारे नगर मे जैन शासन के विजय की घोषणा करवाई।

रोहगुप्त मेरा भानजा है, उसने मेरे साथ इतनी प्रत्यनीकता वरती है। वह मेरे साथ रहने के योग्य नही है। आचार्य के मन मे क्रोध उभर आया और उन्होंने उसके सिर पर 'खेल-मल्लक' (श्लेष्म पात्र) फेंका, उससे रोहगुप्त का सारा शरीर राख से भर गया और वह अपने आग्रह के लिए सघ से पृथक् हो गया।

रोहगुप्त ने अपनी मति से तत्त्वो का निरूपण किया और वैशेषिक मत की प्ररूपणा की। उसके अनेक शिष्यो ने अपनी मेधा शक्ति से उन तत्त्वों को आगे वढाकर उसको प्रसिद्ध किया।[2]

७ अवद्धिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात् दशपुर नगर मे अवद्धिक मत का प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक थे आचार्य गोष्ठामाहिल।[3]

उस समय दसपुर नाम का नगर था। वहाँ राजकुल से सम्मानित ब्राह्मणपुत्र आर्यरक्षित रहता था। उसने अपने पिता से पढ़ना प्रारम्भ किया। पिता का सारा ज्ञान जव वह पढ चुका तव विशेष अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र नगर मे गया और वहाँ चारो वेद, उनके अग और उपाग तथा अन्य अनेक विद्याओं को सीखकर घर लौटा। माता के द्वारा प्रेरित होकर उसने जैन आचार्य तोसलिपुत्र से भागवती दीक्षा ग्रहण कर दृष्टिवाद का अध्ययन प्रारम्भ किया और तदनन्तर आर्य वज्र के पास नौ पूर्वों का अध्ययन सम्पन्न कर दसवें पूर्व के चौवीस यविक ग्रहण किए।

आचार्य आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे—दुर्वलिकापुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। उन्होंने अन्तिम समय मे दुर्वलिकापुष्यमित्र को गण का भार सौंपा।

एक वार आचार्य दुर्वलिकापुष्यमित्र अर्थ की वाचना दे रहे थे। उनके जाने के वाद विंध्य उस वाचना का अनुभाषण कर रहा था। गोष्ठामाहिल उसे सुन रहा था। उस समय आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के अतर्गत कर्म का विवेचन चल रहा था। उसमे एक प्रश्न यह था कि जीव के साथ कर्मों का वध किस प्रकार होता है ? उसके समाधान मे कहा गया था कि कर्म का वध तीन प्रकार से होता है—

---

१ आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका में १४४ प्रश्नो का विवरण इस प्रकार प्राप्त है—

वैशेषिक षट् पदार्थ का निरूपण करते हैं—

१ द्रव्य	४ सामान्य
२ गुण	५ विशेष
३ कर्म	६ समवाय

द्रव्य के नौ भेद हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा।

गुण में सतरह भेद हैं—रूप रस, गध, स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

कर्म के पाँच भेद हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण प्रसारण, आकुचन और गमन।

सत्ता के पाँच भेद हैं—सत्ता, सामान्य, सामान्यविशेष, विशेष और समवाय।

इन भेदों का योग (९+१७+५+५)=३६ होता है। इनको पृथ्वी, अपृथ्वी, नो पृथ्वी, नो अपृथ्वी—इन चार विकल्पों से गुणित करने पर ३६×४=१४४ भेद प्राप्त होते हैं।

आचार्य ने इसी प्रकार के १४४ प्रश्नों द्वारा रोहगुप्त को निरुत्तर कर उसका निग्रह किया। (आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका पत्र १४५, १४६)

२ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति पत्र ४११-४१५

३ आवश्यकभाष्य, गाथा १४१

पचसया चूलसीआ तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अवद्धिगाण दिट्ठि दसपुरनयरे समुप्पन्ना॥

१ स्पृष्ट—कुछ कर्म जीव प्रदेशो के साथ स्पर्श मात्र करते हैं और कालान्तर मे स्थिति का परिपाक होने पर उनसे विलग हो जाते हैं। जैसे—सूखी भीत पर फेंकी गई रेत भीत का स्पर्श मात्र कर नीचे गिर जाती है।

२ स्पृष्टवद्ध—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो का स्पर्श कर वद्ध होते हैं और वे भी कालान्तर मे विलग हो जाते हैं। जैसे—गीली भींत पर फेंकी गई रेत, कुछ चिपक जाती है और कुछ नीचे गिर जाती है।

३ स्पृष्टवद्ध निकाचित—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो के साथ गाढ रूप मे वध प्राप्त करते हैं। वे भी कालान्तर मे विलग हो जाते हैं।[1]

यह प्रतिपादन सुनकर गोष्ठामाहिल का मन विचिकित्सा से भर गया। उसने कहा—कर्म को जीव के साथ वद्ध मानने से मोक्ष का अभाव हो जाएगा, कोई भी प्राणी मोक्ष नहीं जा सकेगा। अत सही सिद्धान्त यही है कि कर्म जीव के साथ स्पृष्ट होते हैं, वद्ध नही, क्योकि कालान्तर मे वे वियुक्त होते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मक से वद्ध नहीं हो सकता। उसने अपनी शका विन्ध्य के समक्ष रखी। विन्ध्य ने वताया कि आचार्य ने इसी प्रकार का अर्थ वताया है।

गोष्ठामाहिल के गले यह वात नहीं उतरी। वह मौन रहा। एक वार नौवें पूर्व की वाचना चल रही थी। उसमे साधुओं के प्रत्याख्यान का वर्णन आया। उसका प्रतिपाद्य था कि यथाशक्ति और यथाकाल प्रत्याख्यान करना चाहिए। गोष्ठामाहिल ने सोचा—अपरिमाण प्रत्याख्यान ही श्रेयस्कर होता है, परिमाण प्रत्याख्यान में वाछा का दोष उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति परिमाण प्रत्याख्यान के अनुसार पौरुषी, उपवास आदि करता है, किन्तु पौरुषी या उपवास का कालमान पूर्ण होते ही उसमे खाने-पीने की आशा तीव्र हो जाती है। अत यह सदोष है। यह सोचकर वह विन्ध्य के पास गया और अपने विचार उनके समक्ष रखे। विन्ध्य ने उसे सुना-अनसुना कर, उसकी उपेक्षा की। तव गोष्ठामाहिल ने आचार्य दुर्वलिकापुष्यमित्र के पास जाकर अपने विचार व्यक्त किए। आचार्य ने कहा—अपरिमाण का अर्थ क्या है ? क्या इसका अर्थ यावत् शक्ति है या भविष्यत् काल है ? यदि यावत् शक्ति अर्थ को स्वीकार किया जाए तो वह हमारे मन्तव्य का ही स्वीकार होगा और यदि दूसरा अर्थ लिया जाए तो जो व्यक्ति यहां से मर कर देवरूप में उत्पन्न होते हैं, उनमे सभी व्रतो के भग का प्रसग आ जाता है। अत अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त अयथार्थ है। गोष्ठामाहिल को उसमे भी श्रद्धा नही हुई और वह विप्रतिपन्न हो गया। आचार्यने उसे समझाया। अपने आग्रह को छोडना उसके लिए सभव नही था। वह और आग्रह करने लगा। दूसरे गच्छो के स्थविरों को इसी विषय मे पूछा। उन्होने कहा—'आचार्य ने जो अर्थ दिया है, वह सही है।' गोष्ठामाहिल ने कहा—आप नही जानते। मैंने जैसा कहा है, वैसे ही तीर्थंकरो ने भी कहा है। स्थविरो ने पुन कहा—'आर्य! तुम नही जानते, तीर्थंकरों की आशातना मत करो।' परन्तु गोष्ठामाहिल अपने आग्रह पर दृढ रहा। तव स्थविरों ने सारे सघ को एकत्रित किया। समूचे सघ ने देवता के लिए कायोत्सर्ग किया। देवता उपस्थित होकर वोला—कहो, क्या आदेश है ? सघ ने कहा—तीर्थंकर के पास जाओ और यह पूछो कि जो गोष्ठामाहिल कह रहा है वह सत्य है या दुर्वलिकापुष्यमित्र आदि सघ का कथन सत्य है ? देवता ने कहा—'मुझ पर अनुग्रह करें तथा मेरे गमन मे कोई प्रतिघात न हो इसलिए आप सव कायोत्सर्ग करें।' सारा सघ कायोत्सर्ग मे स्थित हुआ। देवता गया और भगवान् तीर्थंकर से पूछकर लौटा। उसने कहा—'सघ जो कह रहा है वह सत्य है, गोष्ठामाहिल का कथन मिथ्या है।' देवता का कथन सुनकर सव प्रसन्न हुए।

गोष्ठामाहिल ने कहा—इस वेचारे मे कौन सी शक्ति है कि यह तीर्थंकर के पास जाकर कुछ पूछे ?

लोगों ने उसे समझाया, पर वह नही माना। अन्त मे पुष्यमित्र उसके साथ आकर वोले—आर्य! तुम इस सिद्धान्त पर पुनर्विचार करो, अन्यथा तुम सघ मे नही रह सकोगे। गोष्ठामाहिल ने उनके वचनो का भी आदर नही किया। उसका आग्रह पूर्ववत् रहा। तव सघ ने उसे वहिष्कृत कर डाला।[2]

अवद्धिक मतवादी मानते हैं कि कर्म आत्मा का स्पर्श करते हैं, उसके साथ एकीभूत नहीं होते।

---

१ आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ४१६ में इनके स्थान पर वद्ध, वद्धस्पृष्ट और वद्धस्पृष्टनिकाचित—ये शब्द हैं।

२ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४१५-४१८।

इन सात निन्हवो मे जमाली, रोहगुप्त तथा गोष्ठामाहिल ये तीन अन्त तक अलग रहे, भगवान् के शासन मे पुन सम्मिलित नही हुए, शेष चार पुन शासन मे आ गए।

सख्या	प्रवर्तक आचार्य	नगरी	प्रवर्तित मत	समय
१	जमाली	श्रावस्ती	बहुरतवाद	भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के १४ वर्ष बाद।
२	तिष्यगुप्त	ऋषभपुर	जीवप्रादेशिकवाद	भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के १६ वर्ष बाद।
३	आचार्य आषाढ	श्वेतविका	अव्यक्तवाद	निर्वाण के २१४ वर्ष बाद।
४	अश्वमित्र	मिथिला	समुच्छेदवाद	निर्वाण के २२० वर्ष बाद।
५	गग	उल्लुकातीर नगर	द्वैक्रिय	निर्वाण के २२८ वर्ष बाद।
६	रोहगुप्त (षडूलुक)	अतरजिका	त्रैराशिक	निर्वाण के ५४४ वर्ष बाद।
७	गोष्ठामाहिल	दशपुर	अबद्धिक	निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद।

अट्ठमं ठाणं

अष्टम स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान आठ की सख्या से सम्बन्धित है। इसके उद्देशक नहीं हैं। इसमे जीवविज्ञान, कर्मशास्त्र, लोकस्थिति, गणव्यवस्था, ज्योतिष्, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल आदि अनेक विषय सकलित हैं। वे एक विषय से सम्बन्धित नहीं हैं। उनमे परस्पर भी सम्वद्धता नहीं है।

मनुष्य की प्रकृति समान नहीं होती। कोई व्यक्ति सरल होता है, वह माया का आचरण नहीं करता। कोई व्यक्ति माया करता है और उसे अपना चातुर्य मानता है। जिसकी आत्मा मे पाप के प्रति ग्लानि होती है, धर्म के प्रति आस्था होती है, कृत कर्मों का फल अवश्य मिलता है—इस सिद्धान्त के प्रति विश्वास होता है, वह माया करके प्रसन्न नहीं होता। उसके हृदय मे माया शल्य के समान सदा चुभती रहती है। व्यवहार मे भी माया का फल अच्छा नहीं मिलता। परस्पर का सम्वन्ध टूट जाता है। दोनों दृष्टियों से माया का व्यवहार उसके लिए चिन्तनीय वन जाता है। वह माया की आलोचना करता है, प्रायश्चित्त और तप कर्म स्वीकार कर आत्मा को शुद्ध वनाता है।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो माया करके मन मे प्रसन्न होते हैं। अपने अह को और अधिक जगाते हैं। मैंने जो कुछ किया दूसरा उसको समझ ही नहीं पाया। ऐसी भावना वाले व्यक्ति कभी माया को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करते। वे सोचते हैं कि आलोचना करने से मेरी प्रतिष्ठा कम होगी, मेरा अपयश होगा। ऐसा सोचकर वे मायाचरण की आलोचना नहीं करते।[1]

अह वस्तु से नहीं आता। अह जागता है भावना से। अपनी भावना के द्वारा मनुष्य वस्तु में से अह निकालता है। दूसरों से अपने को वडा समझने की भावना जाग जाती है या जगा दी जाती है, तव अह अस्तित्व में आ जाता है और वह आकार ले लेता है। अह का दूसरा नाम मद है। प्रस्तुत स्थान मे आठ प्रकार के मद वतलाए गए हैं। जातक किसी-न-किसी जाति मे पैदा होता ही है। उच्चजाति और नीचजाति का विभाजन ही मद का कारण वनता है। कुल का मद होता है। वल का मद होता है, मैं शक्तिशाली हूँ। रूप का मद होता है, मैं सवसे सुन्दर हूँ। तपस्या का भी मद हो सकता है, जितना मैंने तप किया है, दूसरे वैसा तप नहीं कर सकते। ज्ञान का भी मद हो सकता है, मैंने इतना अध्ययन किया है। ऐश्वर्य का मद होता है। ये मद मनुष्य को भटका देते हैं। मद करने वाले की मृदुता समाप्त हो जाती है।[2]

माया और मद ये दोनों मनुष्य मे मानसिक विकार पैदा करते हैं। जो व्यक्ति मन से विकृत होता है वह शरीर से भी स्वस्थ नहीं होता। वहुत सारे शारीरिक रोगों के निमित्त मानसिक विकार वनते हैं। रुग्णमन शरीर को भी रुग्ण वना देता है। मानसिक रोगों की चिकित्सा का उपाय है धर्म। माया की चिकित्सा ऋजुता और मद की चिकित्सा मृदुता के द्वारा हो सकती है। मानसिक विकार मिटने पर शारीरिक रोग भी मिट जाते हैं। कुछ शारीरिक रोग शारीरिक दोषों से भी उत्पन्न होते हैं, उनकी चिकित्सा आयुर्वेद की पद्धति से की जाती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों मे चिकित्सा पद्धति के आठ अग मिलते हैं। सूत्रकार ने आठ की सख्या मे उनका भी सकलन किया है।[3] इसी प्रकार निमित्त आदि लौकिक विषय भी इसमे सकलित है।[4]

---

१ ८।९,१०
२ ८।२१
३ ८।२६
४ ८।२३

जैनदर्शन ने तत्त्ववाद के क्षेत्र मे ही अनेकान्त का प्रयोग नहीं किया है; आचार और व्यवस्था के क्षेत्र मे भी उसका प्रयोग किया है। साधना अकेले मे हो सकती है या सघवद्धता मे इस प्रश्न पर जैन आचार्यों ने सर्वांगीण दृष्टि से विचार किया। उन्होंने सघ को वहुत महत्त्व दिया। साधना करने वाला सघ मे दीक्षित होकर ही विकास करता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं कि वह अकेला रहकर साधना के उच्च शिखर पर पहुँच सके। किन्तु सघवद्धता साधना का एकमात्र विकल्प नहीं है। अकेलेपन मे भी साधना की जा सकती है। किन्तु यह कठिनाइयों से भरा हुआ मार्ग है। अकेला रहकर वही साधना कर सकता है जिसे विशिष्ट योग्यता उपलब्ध हो। सूत्रकार ने एकाकी साधना की योग्यता के आठ मानदण्ड वतलाए हैं—

१ श्रद्धा
२ सत्य
३ मेधा
४ वहुश्रुतत्व
५ शक्ति
६ अकलहत्व
७ धृति
८ वीर्यसम्पन्नता[1]

ये योग्यताएँ सघवद्धता मे भी अपेक्षित हैं किन्तु एकाकी साधना मे इनकी अनिवार्यता है। सघवद्धता योग्यता के विकास के लिए है। उसका विकास हो जाए और साधक अकेले मे साधना की अपेक्षा का अनुभव करे तो वह एकाकी विहार भी कर सकता है। इस प्रकार सघवद्धता और एकाकी विहार दोनों को स्वीकृति देकर सूत्रकार ने यह प्रमाणित कर दिया कि आचार और व्यवस्था को अनेकान्त की कसौटी पर कस कर ही उनकी वास्तविकता को समझा जा सकता है।

---

१ ८।१

अट्ठमं ठाणं

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
एगल्लविहार-पडिमा-पदं	**एकलविहार-प्रतिमा-पदम्**	**एकलविहार-प्रतिमा-पद**
१ अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति एगल्लविहारपडिमं उवसंपिज्जित्ता णं विहरित्तए, तं जहा—	अष्टभि स्थानै सम्पन्न अनगार अर्हति एकलविहारप्रतिमां उपसंपद्य विहर्तुम्, तद्यथा—	१ आठ स्थानो से सम्पन्न अनगार 'एकल-विहार प्रतिमा'[1] को स्वीकार कर विहार कर सकता है—
सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिगरणे, धितिमं, वीरियसंपण्णे।	श्रद्धी पुरुषजात, सत्य पुरुषजात, मेधावी पुरुषजात, बहुश्रुत पुरुषजात, शक्तिमान्, अल्पाधिकरण, धृतिमान्, वीर्यसम्पन्न।	१ श्रद्धावान् पुरुष, २ सत्यवादी पुरुष, ३ मेधावी पुरुष, ४ बहुश्रुत पुरुष, ५ शक्तिमान् पुरुष, ६ अल्पाधिकरण पुरुष, ७ धृतिमान् पुरुष, ८ वीर्यसम्पन्न पुरुष।
जोणिसंगह-पद	**योनिसंग्रह-पदम्**	**योनिसंग्रह-पद**
२. अट्ठविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—	अष्टविध योनिसंग्रह प्रज्ञप्त, तद्यथा—	२ योनिसंग्रह[2] आठ प्रकार का है—
अंडगा, पोतगा, °जराउजा, रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा,° उब्भिगा, उववातिया।	अण्डजा, पोतजा, जरायुजा, रसजा, संस्वेदजा, सम्मूर्च्छिमा, उद्भिज्जा, औपपातिका।	१ अण्डज, २ पोतज, ३ जरायुज, ४ रसज, ५ संस्वेदज, ६ सम्मूर्च्छिम, ७ उद्भिज्ज, ८ औपपातिक।
गति-आगति-पद	**गति-आगति-पदम्**	**गति-आगति-पद**
३. अंडगा अट्ठगतिया अट्ठागतिआ पण्णत्ता, तं जहा—	अण्डजा अष्टगतिका अष्टागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३ अण्डज की आठ गति और आठ आगति होती है—
अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा, पोतएहिंतो वा, °जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, संमुच्छिमेहिंतो वा, उब्भिएहिंतो वा,° उववातिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।	अण्डज अण्डजेषु उपपद्यमान अण्डजेभ्यो वा, पोतजेभ्यो वा, जरायुजेभ्यो वा, रसजेभ्यो वा, संस्वेदजेभ्यो वा, सम्मूर्च्छिमेभ्यो वा, उद्भिज्जेभ्यो वा, औपपातिकेभ्यो वा उपपद्येत।	जो जीव अण्डज योनि में उत्पन्न होता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक—इन आठों योनियों से आता है।

से चेव ण से अडए अडगत्त विप्प-जहमाणे अडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, •जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, ससेयगत्ताए वा, समुच्छिमत्ताए वा, उब्भियत्ताए वा,° उववातियत्ताए वा गच्छेजा ।

स चैव असौ अण्डज अण्डजत्व विप्र-जहत् अण्डजतया वा, पोतजतया वा, जरायुजतया वा, रसजतया वा, सस्वेदजतया वा, सम्मूर्च्छिमतया वा, उद्भिज्जतया वा, औपपातिकतया वा गच्छेत् ।

जो जीव अण्डज योनि को छोडकर दूसरी योनि मे जाता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक—इन आठो योनियों मे जाता है ।

४. एव पोतगावि जराउजावि सेसाण गतिरागति णत्थि ।

एव पोतजा अपि जरायुजा अपि शेषाणा गति आगति नास्ति ।

४ इसी प्रकार पोतज और जरायुज जीवो की भी गति और आगति आठ प्रकार की होती है । शेष रसज आदि जीवो की गति और आगति आठ प्रकार की नही होती ।

कम्म-बध-पद

कर्म-बन्ध-पदम्

कर्म-बन्ध-पद

५. जीवा ण अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—
णाणावरणिज्ज, दरिसणावरणिज्ज, वेयणिज्ज, मोहणिज्ज, आउय, णाम, गोत्त, अतराइय ।

जीवा अष्ट कर्मप्रकृती अचिन्वन् वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तरायिकम् ।

५ जीवो ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है, करते हैं और करेंगे ।

६ णेरइया ण अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा एव चेव ।

नैरयिका अष्ट कर्मप्रकृती अचिन्वन् वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा एव चैव ।

६ नैरकियो ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है, करते हैं और करेंगे ।

७. एव णिरतर जाव वेमाणियाण ।

एव निरन्तर यावत् वैमानिकानाम् ।

७ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है, करते हैं और करेंगे ।

८ जीवा ण अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिसु वा उवचिणति वा उवचिणिस्सति वा एव चेव ।
एव—चिण-उवचिण-बध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव ।
एते छ चउवीसा दडगा भाणियव्वा ।

जीवा अष्ट कर्मप्रकृती उपाचिन्वन् वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा एव चैव ।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव ।
एते षट् चतुर्विशति दण्डका भणितव्या ।

८ जीवो ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय, उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।
नैरयिक से वैमानिक तक के सभी दण्डको ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय, उपचय, बध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।

आलोयणा-पदं

आलोचना-पदम्

आलोचना-पद

९. अट्ठहि ठाणेहि मायी माय कट्टु—

अष्टभि स्थानै मायी माया कृत्वा—

९ आठ कारणों से मायावी माया करके

णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा,
•णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा,
णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा,
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्म°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
करिंसु वाहं, करेमि वाहं,
करिस्सामि वाहं,
अकित्ती वा मे सिया,
अवण्णे वा मे सिया,
अविणए वा मे सिया,
कित्ती वा मे परिहाइस्सइ,
जसे वा मे परिहाइस्सइ।

नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्,
नो निन्देत्, नो गर्हेत,
नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्,
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
नो यथार्हं प्रायश्चित्त तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अकार्षं वाहं, करोमि वाहं,
करिष्यामि वाहं,
अकीर्ति वा मे स्यात्,
अवर्णो वा मे स्यात्,
अविनयो वा मे स्यात्,
कीर्ति वा मे परिहास्यति,
यशो वा मे परिहास्यति।

उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नही करता, 'फिर ऐसा नही करूगा'—ऐसा नही कहता, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप-कर्म स्वीकार नही करता—
१ मैंने अकरणीय कार्य किया है,
२ मैं अकरणीय कार्य कर रहा हू,
३ मैं अकरणीय कार्य करूगा,
४ मेरी अकीर्ति होगी,
५ मेरा अवर्ण होगा,
६ मेरा अविनय होगा—पूजा सत्कार नही होगा,
७ मेरी कीर्ति कम हो जाएगी,
८ मेरा यश कम हो जाएगा।

१० अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा, •पडिक्कमेज्जा,
णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा,
विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्म°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—

अष्टभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्,
गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्,
अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
यथार्हं प्रायश्चित्त तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—

१० आठ कारणो से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर ऐसा नही करूगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है—

१. मायिस्स णं अस्सिं लोए गरहिते भवति।
१ मायिनः अयं लोकः गर्हितो भवति।
१ मायावी का इहलोक गर्हित होता है,

२ उववाए गरहिते भवति।
२ उपपातः गर्हितो भवति।
२ उपपात गर्हित होता है,

३ आयाती गरहिता भवति।
३ आजातिः गर्हिता भवति।
३ आजाति—जन्म गर्हित होता है,

४. एगमवि मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा, •णो पडिक्कमेज्जा,
णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा,
णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा,
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्म°
पडिवज्जेज्जा,
णत्थि तस्स आराहणा।

४. एकामपि मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्,
नो निन्देत्, नो गर्हेत,
नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्,
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
नो यथार्हं प्रायश्चित्त तपःकर्म
प्रतिपद्येत,
नास्ति तस्य आराधना।

४ जो मायावी एक भी माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नही करता, 'फिर ऐसा नही करूगा'—ऐसा नही कहता, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार नही करता उसके आराधना नही होती।

५. एगमवि मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा, •पडिक्कमेज्जा,

५ एकामपि मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्,

५ जो मायावी एक भी माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण,

णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणायाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं° पडिवज्जेज्जा, अत्थि तस्स आराहणा।

गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्, अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, अस्ति तस्य आराधना।

निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर से ऐसा नही करूगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है उसके आराधना होती है।

६ बहुओवि मायी मायं कट्टु—णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं° पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा।

६ बह्वीमपि मायी माया कृत्वा—नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्, नो निन्देत्, नो गर्हेत, नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्, नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, नो यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, नास्ति तस्य आराधना।

६ जो मायावी वहुत माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नही करता, 'फिर ऐसा नही करूगा'—ऐसा नहीं कहता, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप-कर्म स्वीकार नही करता, उसके आराधना नहीं होती।

७ बहुओवि मायी मायं कट्टु—आलोएज्जा, °पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा,° अत्थि तस्स आराहणा।

७ बह्वीमपि मायी माया कृत्वा—आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्, गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्, अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, अस्ति तस्य आराधना।

७ जो मायावी वहुत माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर से ऐसा नही करूगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

८ आयरिय-उवज्झायस्स वा मे अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा, से य मममालोएज्जा मायी णं एसे।

८ आचार्य-उपाध्यायस्य वा मे अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पद्येत, स च मा आलोकयेत् मायी एष।

८ मेरे आचार्य या उपाध्याय को अतिशायी ज्ञान और दर्शन प्राप्त होने पर कही ऐसा जान न लें कि 'यह मायावी है।'

मायी णं मायं कट्टु से जहाणामए—अयागरेति वा तंवागरेति वा तउआगरेति वा सीसागरेति वा रुप्पागरेति वा सुवण्णागरेति वा तिलागणीति वा तुसागणीति वा वुसागणीति वा णलागणीति वा दलागणीति वा सोंडियालिंछाणि

मायी माया कृत्वा स यथानामक—अयआकर इति वा ताम्राकर इति वा त्रपुआकर इति वा शीशाकर इति वा रूप्याकर इति वा सुवर्णाकर इति वा तिलाग्निरिति वा तुषाग्निरिति वा वुसाग्निरिति वा नलाग्निरिति वा दलाग्निरिति वा शुण्डिकालिञ्छाणि वा

अकरणीय कार्य करने के वाद मायावी उसी प्रकार अन्दर ही अन्दर जलता है, जैसे—
लोहे को गालने की भट्टी,
ताम्बे को गालने की भट्टी,
त्रपु को गालने की भट्टी,
शीशे को गालने की भट्टी,
चादी को गालने की भट्टी,
सोने को जलाने की भट्टी,
तिल की अग्नि, तुष की अग्नि,

वा भंडियालिंछाणि वा गोलिया-लिंछाणि वा कुंभारावाएति वा कवेल्लुआवाएति वा इट्टावाएति वा जतवाडचुल्लीति वा लोहारं-बरिसाणि वा ।
तत्ताणि समजोतिभूताणि किंसुक-फुल्लसमाणाणि उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं विणिम्मुयमा-णाइ, जालासहस्साइ पमुचमाणाइ पमुचमाणाइ, इगालसहस्साइ पविक्खिरमाणाइ-पविक्खिरमाणाइं, अतो-अतो झियायति, एवामेव मायी मायं कट्टु अतो-अतो झियाइ ।

भण्डिकालिञ्छाणि वा गोलिकालिञ्छाणि वा कुम्भकारापाक इति 'वा कवेल्लुकापाक इति वा इष्टापाक इति वा यत्रपाटचुल्लीति वा लोहकाराम्वरीषा वा ।
तप्तानि समज्योतिर्भूतानि किंशुकपुष्प-समानानि उल्कासहस्राणि विनिर्मुञ्चन्ति विनिर्मुञ्चन्ति, ज्वालासहस्राणि प्रमुञ्चन्ति-प्रमुञ्चन्ति, अङ्गारसहस्राणि प्रविकिरन्ति-प्रविकिरन्ति, अन्तरन्त ध्मायन्ति, एवमेव मायी माया कृत्वा अन्तरन्त ध्मायति ।

भूसे की अग्नि, नलाग्नि[४]—नरकट की अग्नि, पत्तो की अग्नि, सुण्डिका का चूल्हा[५], भण्डिका का चूल्हा[६], गोलिका का चूल्हा[७], घडो का कजावा, खपरैलो का कजावा, ईटो का कजावा, गुड वनाने की भट्टी, लोहकार, की भट्टी—तपती हुई, अग्निमय होती हुई, किंशुक-फूल के ममान लाल होती हुई, सहस्रो उल्काओ और सहस्रो ज्वालाओं को छोडती हुई, सहस्रो अग्निकणो को फेंक्ती हुई, अन्दर ही अन्दर जलती है, इसी प्रकार मायावी माया करके अन्दर ही अन्दर जलता है ।

जंवि य ण अण्णे केइ वदति तपि य णं मायी जाणति अहमेसे अभि-सकिज्जामि-अभिसकिज्जामि ।
मायी ण मायं कट्टु अणालोइय-पडिक्कते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा—
णो महिड्ढिएसु •णो महज्जुइएसु णो महाणुभागेसु णो महायसेसु णो महावलेसु णो महासोक्खेसु॰ णो दुरगतिएसु, णो चिरट्ठितिएसु।
से ण तत्थ देवे भवति णो महिड्ढिए •णो महज्जुइए णो महाणुभागे णो महायसे णो महावले णो महा-सोक्खे णो दुरगतिए॰ णो चिरट्ठितिए ।

यद्यपि च अन्ये केपि वदन्ति तमपि च मायी जानाति अहमेपोऽभिशङ्क्ये-अभिशङ्क्ये ।
मायी माया कृत्वा अनालोचिताप्रति-क्रान्त॰ कालमासे काल कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्ता भवति, तद्यथा—
नो मर्हद्धिकेषु, नो महाद्युतिकेपु, नो महानुभागेसु, नो महायशस्सु, नो महावलेषु, नो महासौख्येषु, नो दूरगतिकेपु, नो चिरस्थितिकेषु ।
स तत्र देव भवति नो मर्हद्धिक नो महाद्युतिक नो महानुभाग नो महा-यशा नो महावल॰ नो महासौख्य नो दूरगतिक नो चिरस्थितिक ।

यदि कोई आपस मे वात करते हैं तो मायावी समझता है कि 'ये मेरे वारे मे ही शका करते हैं ।'
कोई मायावी माया करके उसकी आलो-चना या प्रतिक्रमण किए विना ही मरण-काल मे मरकर किसी देवलोक मे देव के रूप मे उत्पन्न होता है। किन्तु वह महान् ऋद्धिवाले, महान् द्युतिवाले, वैक्रियादि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् वलवाले, महान् सौख्यवाले, ऊची गति वाले और लम्वी स्थिति वाले देवो में उत्पन्न नही होता। वह देव होता है किन्तु महान् ऋद्धिवाला, महान् द्युतिवाला, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यश-स्वी, महान् वलवाला, महान् सौख्यवाला ऊची गति वाला और लम्वी स्थिति वाला देव नही होता ।

जावि य से तत्थ वाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेण आसणेण उवणिमतेति,

यापि च तस्य तत्र वाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, साऽपि च नो आद्रियते नो परिजानाति नो महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भापामपि च तस्य भाष-

वहा देवलोक मे उसके वाह्य और आभ्यन्तर परिषद्[८] होती है। परन्तु इन दोनो परि-पदों के सदस्य न उसको आदर देते हैं, न उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते हैं और न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर वैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं ।

भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—मा बहुं देवे ! भासउ-भासउ ।

माणस्य यावत् चत्वार पञ्च देवाः अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—मा बहु देव ! भापता-भापताम् ।

जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पांच देव बिना कहे ही खड़े होते हैं और कहते हैं—'देव ! अधिक मत बोलो, अधिक मत बोलो ।'

से ण ततो देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएण ठितिक्खएण अणंतर चय चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइ इमाइ कुलाइ भवति, त जहा—

स तत देवलोकात् आयु क्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तर च्यव च्युत्वा इहैव मानुष्यके भवे यानि इमानि कुलानि भवन्ति, तद्यथा—

वह देव आयु, भव और स्थिति के क्षय होने के अनन्तर ही देवलोक से च्युत होकर इसी मनुष्य भव में अन्तकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षाककुल, कृपण-कुल" तथा इसी प्रकार के कुलों में मनुष्य के रूप उत्पन्न होता है ।

अतकुलाणि वा पतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्दकुलाणि वा भिक्खागकुलाणि वा किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति ।

अन्तकुलानि वा प्रान्तकुलानि वा तुच्छ-कुलानि वा दरिद्रकुलानि वा भिक्षाक-कुलानि वा कृपणकुलानि वा, तथाप्रकारेषु कुलेषु पुस्त्वेन प्रत्यायाति ।

से णं तत्थ पुमे भवति दुरूवे दुवण्णे दुग्गधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकतस्सरे अपियस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाते ।

स तत्र पुमान् भवति दूरूप दुर्वर्ण दुर्गन्ध दूरस दु स्पर्श अनिष्ट अकान्त अप्रिय अमनोज्ञ अमनआप हीनस्वर दीनस्वर अनिष्टस्वर अकान्तस्वर अप्रियस्वर अमनोज्ञस्वर अमनआप-स्वर. अनादेयवचन प्रत्याजात ।

वहा वह कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध, अनिष्ट रस और कठोर स्पर्श वाला होता है । वह अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन के लिए अगम्य होता है । वह हीन-स्वर, दीनस्वर, अनिष्टस्वर, अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अरुचिकरस्वर, और अनादेय वचन वाला होता है ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेण आसणेणं उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—मा बहु अज्जउत्तो ! भासउ-भासउ ।

यापि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, सापि च नो आद्रियते नो परिजानाति नो महार्हेन आसनन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि च तस्य भाषमाणस्य यावत् चत्वार पञ्च जना अनुक्ता चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—मा बहु आर्यपुत्र ! भापता भापताम् ।

वहा उसके बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है । परन्तु इन दोनों परिषद् के सदस्य न उसको आदर देते हैं, न उसे स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं, न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पाच मनुष्य बिना कहे ही खड़े होते हैं और कहते हैं— आर्यपुत्र ! अधिक मत बोलो, अधिक मत बोलो ।'

मायी ण माय कट्टु आलोचित-पडिक्कते कालमासे काल किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा—

मायी माया कृत्वा आलोचित-प्रतिक्रान्त. कालमासे काल कृत्वा अन्यतरेषु देव-लोकेषु देवतया उपपत्ता भवति, तद्यथा—

मायावी माया करके उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण कर मरणकाल में मृत्यु को पाकर किसी एक देवलोक मे देव के रूप मे उत्पन्न होता है । वह महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बल वाले, महान् सौख्य वाले, ऊंची गति वाले और लम्बी स्थिति वाले देवों मे उत्पन्न होता है।

महिड्डिएसु •महज्जुइएसु महाणुभागेसु महायसेसु महाबलेसु महासोक्खेसु दूरगतिएसु° चिरट्ठितिएसु ।

मर्हद्धिकेषु महाद्युतिकेषु महानुभागेषु महायशस्सु महावलेषु महासौख्येषु दूरगतिकेषु चिरस्थितिकेषु ।

से ण तत्थ देवे भवति महिड्डिए •महज्जुइए महाणुभागे महायसे महाबले महासोक्खे दुरगतिए° चिरट्ठितिए हारविराइयवच्छे कडक-तुडितथभितभूए अगद-कुडल-मट्ठगडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणे विचित्तवत्थाभरणे विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-परिहिते कल्लाणगपवर-गध मल्लाणुलेवणधरे भासुरबोदी पलंबवणमालधरे दिव्वेण वण्णेण दिव्वेण गधेण दिव्वेग रसेण दिव्वेण फासेण दिव्वेण सघातेण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे महयाहत-णट्ट-गीत-वादित-तती-तल-ताल-तुडित-घणमुइग-पडुप्प-वादितरवेण दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरइ ।

स तत्र देवो भवति मर्हद्धिक महाद्युतिक महानुभाग महायशा महावल महासौख्य दूरगतिक चिर-स्थितिक हारविराजितवक्षा कटक-त्रुटितस्तभितभुज अङ्गद-कुण्डल-मृष्ट-गण्डतलकर्णपीठधारी विचित्रहस्ताभरण विचित्रवस्त्राभरण विचित्र-मालामौलि कल्याणकप्रवरवस्त्र-परिहित कल्याणकप्रवरगन्ध-माल्यानुलेपनधर भास्वरवोन्दी प्रलम्ब-वनमालाधर. दिव्येन वर्णेन दिव्येन गन्धेन दिव्येन रसेन दिव्येन स्पर्शेन दिव्येन सघातेन दिव्येन सस्थानेन दिव्यया ऋद्धया दिव्यया द्युत्या दिव्यया प्रभया दिव्यया छायया दिव्यया अर्च्चिषा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्यया दश दिश उद्योतयमान प्रभासयमान महताऽऽहत-नृत्य-गीत-वादित-तन्त्री-तल-ताल-तूर्य-घन-मृदङ्ग-पटुप्रवादित-रवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जान विहरति ।

वह महान् ऋद्धिवाला, महान् द्युतिवाला, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बल वाला, महान् सौख्य वाला, ऊची गति वाला और लम्बी स्थिति वाला देव होता है। उसका वक्ष हार से शोभित होता है। वह भुजा मे कडे, त्रुटित और अगद [बाजूबन्द] पहने हुए होता है। उसके कानों मे लोल तथा कपोल तक कानो को घिसते हुए कुण्डल होते हैं। उसके हाथ मे नाना प्रकार के आभूषण होते हैं। वह विचित्र वस्त्राभरणों, विचित्र मालाओ व सेहरो, मगल व प्रवर वस्त्रो को पहने हुए होता है। वह मगल और प्रवर सुगन्धित पुष्प तथा विलेपन को धारण किए हुए होता है। उसका शरीर तेजस्वी होता है। वह प्रलम्ब वनमाला [आभूषण] को धारण किए हुए होता है। वह दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य स्पर्श, दिव्य सघात [शरीर की बनावट], दिव्य सस्थान [शरीर की आकृति] और दिव्य ऋद्धि से युक्त होता है। वह दिव्यद्युति" दिव्यप्रभा, दिव्यछाया, दिव्यअर्चि, दिव्यतेज और दिव्यलेश्या" से दशो दिशाओ को उद्योतित करता है, प्रभासित" करता है। वह आहत नाट्यों, गीतो" तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए हुए वादित्र, तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदङ्ग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ रहता है।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण आढाइ परिजाणाति महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—बहु देवे ! भासउ-भासउ ।

यावि च तस्य तत्र वाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, सापि च आद्रियते परिजानाति महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि च तस्य भाषमाणस्य यावत् चत्वार पञ्च देवा अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—बहु देव ! भाषता-भाषताम् ।

उसके बाह्य और आभ्यन्तर दो परिषदें होती हैं। दोनों परिषदो के सदस्य उसका आदर करते हैं, उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते हैं और उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पाच देव बिना कहे ही खडे होते हैं और कहते हैं—'देव ! और अधिक बोलो, और अधिक बोलो।'

से ण ताओ देवलोगाओ आउक्खएण •भवक्खएणं ठिति-क्खएण अणतर चय° चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइ इमाइ कुलाइ भवति—अड्ढाइ •दित्ताइ विच्छिण्णविउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइ बहुधण-बहुजायरूव-रययाइ आओग-पओग-सपउत्ताइ-विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणाइ बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलय-प्पभूयाइ° बहुजणस्स अपरिभूताइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति।

स तत देवलोकात् आयु क्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तर च्यव च्युत्वा इहैव मानुष्यके भवे यानि इमानि कुलानि भवन्ति—आढ्यानि दीप्तानि विस्तीर्ण-विपुल-भवन-शयनासन-यान-वाहनानि बहुधन-बहुजातरूप-रजतानि आयोग-प्रयोग-सप्रयुक्तानि विच्छर्दित-प्रचुर-भक्तपानानि बहुदासी-दास-गो-महिप-गवेलक-प्रभूतानि बहुजनस्य अपरि-भूतानि, तथाप्रकारेषु कुलेषु पुस्त्वेन प्रत्यायाति।

वह देव आयु, भव, और स्थिति के क्षय होने के अनन्तर ही देवलोक से च्युत होकर इसी मनुष्य भव में आढ्य, दीप्त तथा विस्तीर्ण और विपुल भवन, शयन, आसन, यान और वाहन वाले, बहुधन-बहुस्वर्ण तथा चादी वाले, आयोग और प्रयोग [ऋण देने] मे सप्रयुक्त, प्रचुर भक्त-पान का सग्रह रखने वाले, अनेक दासी-दास, गाय-भैंस, भेड आदि रखने वाले और बहुत व्यक्तियों के द्वारा अप-राजित—ऐसे कुलो मे मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होता है।

से ण तत्थ पुमे भवति सुरूवे सुवण्णे सुगधे सुरसे सुफासे इट्ठे कते •पिए मणुण्णे° मणामे अहीणस्सरे •अदीणस्सरे इट्ठस्सरे कतस्सरे पियस्सरे मणुण्णस्सरे° मणामस्सरे आदेज्जवयणे पच्चायाते।

स तत्र पुमान् भवति सुरूप सुवर्ण सुगन्ध सुरस सुस्पर्श इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ मनआप अहीनस्वर अदीनस्वर इष्टस्वर कान्तस्वर प्रियस्वर मनोज्ञ-स्वर मनआपस्वर आदेयवचन-प्रत्याजात।

वहा वह सुरूप, सुवर्ण, सुगन्ध, सुरस और सुस्पर्श वाला होता है। वह इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मन के लिए गम्य होता है। वह अहीन स्वर, अदीन स्वर, इष्ट स्वर, कात स्वर, प्रिय स्वर, मनोज्ञ स्वर, रुचिकर स्वर और आदेय वचन वाला होता है।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण आढाति •परिजाणाति महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भास-माणस्स जाव चत्तारि पच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति°—बहु अज्जउत्ते! भासउ-भासउ।

यापि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिपद् भवति, सापि च आद्रियते परिजानाति महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भापामपि तस्य स भास-माणस्य यावत् चत्वार पञ्च जना अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—बहु आर्य-पुत्र! भाषता-भापताम्।

वहा उसके बाह्य और आभ्यन्तर दो परि-पदें होती हैं। दोनो परिपदों के सदस्य उसका आदर करते हैं, उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते हैं और उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निम-न्त्रित करते है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पाच मनुष्य बिना कहे ही खडे होते हैं और कहते हैं—'आर्यपुत्र! और अधिक बोलो, और अधिक बोलो।'

सवर-असंवर-पदं

११ अट्ठविहे सवरे पण्णत्ते, त जहा—सोइदियसवरे, •चक्खिदियसंवरे, घाणिदियसवरे, जिब्भिदियसवरे,° फासिदियसंवरे, मणसवरे, वइसवरे, कायसवरे।

संवर-असंवर-पदम्

अष्टविध सवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसवर, चक्षुरिन्द्रियसवर, घ्राणेन्द्रियसवर, जिह्वेन्द्रियसवर, स्पर्शेन्द्रियसवर, मन सवर, वाक्सवर, कायसवर।

सवर-असवर-पद

११ सवर आठ प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सवर, २ चक्षुइन्द्रिय सवर,
३ घ्राणइन्द्रिय सवर,
४ जिह्वाइन्द्रिय सवर,
५ स्पर्शइन्द्रिय सवर,
६ मन सवर, ७ वचन सवर,
८ काय सवर।

१२. अट्ठविहे असवरे पण्णत्ते, त जहा—
सोतिदियअसवरे,
•चक्खिदियअसवरे,
घाणिदियअसवरे,
जिब्भिदियअसवरे,
फासिदियअसवरे, मणअसवरे,
वइअसवरे°, कायअसवरे।

अष्टविध असवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासवर, चक्षुरिन्द्रियासवर, घ्राणेन्द्रियासवर, जिह्वेन्द्रियासवर., स्पर्शेन्द्रियासवर, मनोऽसवर॰, वागसवर, कायासवर ।

१२ असवर आठ प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असवर,
२. चक्षुइन्द्रिय असवर,
३ घ्राणइन्द्रिय असवर,
४ जिह्वाइन्द्रिय असवर,
५ स्पर्शइन्द्रिय असवर,
६ मन असवर, ७ वचन असवर,
८ काय असवर ।

फास-पदं

स्पर्श-पदम्

स्पर्श-पद

१३. अट्ठ फासा पण्णत्ता, तं जहा—
कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीते, उसिणे, णिद्धे, लुक्खे।

अष्ट स्पर्शा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कर्कश, मृदुक, गुरुक, लघुक, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ।

१३ स्पर्श आठ प्रकार का होता है—
१ कर्कश, २ मृदु, ३ गुरु, ४ लघु,
५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध, ८ रूक्ष ।

लोगट्ठिति-पद

लोकस्थिति-पदम्

लोकस्थिति-पद

१४ अट्ठविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
आगासपतिट्ठिते वाते, वातपतिट्ठिते उदही, •उदधिपतिट्ठिता पुढवी, पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा, अजीवा जीवपतिट्ठिता,° जीवा कम्मपतिट्ठिता, अजीवा जीवसगहीता, जीवा कम्मसंगहिता।

अष्टविधा लोकस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकाशप्रतिष्ठितो वात, वातप्रतिष्ठित उदधि, उदधिप्रतिष्ठिता पृथ्वी, पृथ्वीप्रतिष्ठिता त्रसा स्थावरा प्राणा, अजीवा जीवप्रतिष्ठिता, जीवा कर्मप्रतिष्ठिता, अजीवा जीवसगृहीता, जीवा कर्मसगृहीता ।

१४ लोकस्थिति आठ प्रकार की होती है[१]—
१ वायु आकाश पर टिका हुआ है,
२ समुद्र वायु पर टिका हुआ है,
३ पृथ्वी समुद्र पर टिकी हुई है,
४ त्रस-स्थावर प्राणी पृथ्वी पर टिके हुए हैं,
५ अजीव जीव पर आधारित हैं,
६ जीव कर्म पर आधारित हैं,
७ अजीव जीव के द्वारा सगृहीत हैं,
८ जीव कर्म के द्वारा सगृहीत है ।

गणिसंपया-पदं

गणिसंपत्-पदम्

गणिसंपत्-पद

१५ अट्ठविहा गणिसपया पण्णत्ता, त जहा—
आचारसपया, सुयसपया, सरीरसपया, वयणसपया, वायणासंपया, मतिसपया, पओगसपया, सगहपरिण्णा णाम अट्ठमा।

अष्टविधा गणिसपत् प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आचारसम्पत्, श्रुतसम्पत्, शरीरसम्पत्, वचनसम्पत्, वाचनासम्पत्, मतिसम्पत्, प्रयोगसम्पत्, सग्रहपरिज्ञा नाम अष्टमी ।

१५ गणिसम्पदा[२] आठ प्रकार की होती है—
१ आचार-सम्पदा—सयम की समृद्धि,
२ श्रुत-सम्पदा—श्रुत की समृद्धि,
३ शरीर-सम्पदा—शरीर-सौंदर्य,
४ वचन-सम्पदा—वचन-कौशल,
५ वाचना-सम्पदा—अध्यापन-पटुता,
६ मति-सम्पदा—बुद्धि-कौशल,
७ प्रयोग सम्पदा—वाद-कौशल,
८ सग्रह-परिज्ञा—सघ-व्यवस्था मे निपुणता ।

महाणिहि-पदं

१६ एगमेगे ण महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठट्ठजोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ते ।

महानिधि-पदम्

एकैक महानिधि अष्टचक्रवालप्रतिष्ठान अष्टाष्टयोजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्त ।

महानिधि-पद

१६ प्रत्येक महानिधि आठ-आठ पहियो पर आधारित है और आठ-आठ योजन ऊचा है।

समिति-पद

१७ अट्ठ समितीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण जल्ल-परिठावणियासमिती, मणसमिती, वइसमिती, कायसमिती ।

समिति-पदम्

अष्ट समितय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल, सिङ्घाण, जल्ल-पारिष्ठापनिकासमिति, मन समिति, वाक्समिति, कायसमिति ।

समिति-पद

१७ समितिया[१] आठ हैं—
१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति,
३ एषणासमिति, ४ आदान-भांड-अमत्र-निक्षेपणासमिति,
५ उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनासमिति,
६ मनसमिति, ७ वचनसमिति,
८ कायसमिति।

आलोयणा-पदं

१८. अट्ठहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, त जहा—
आयारव, आधारव, ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए, अवायदसी ।

आलोचना-पदम्

अष्टभि स्थानै सम्पन्न अनगार अर्हति आलोचना प्रत्येपितुम्, तद्यथा—
आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, अपव्रीडक, प्रकारी, अपरिश्रावी, निर्यापक, अपायदर्शी ।

आलोचना-पद

१८ आठ स्थानो से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है—
१ आचारवान्—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य—इन पाच आचारो से युक्त।
२ आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोच्यमान समस्त अतिचारो को जानने वाला,
३ व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत—इन पाच व्यवहारों को जानने वाला।
४ अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति मे, वह लाज या सकोच से मुक्त होकर सम्यक् आलोचना कर सके वैसा, साहस उत्पन्न करने वाला।
५ प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला।
६ अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषो को दूसरे के सामने प्रकट न करने वाला।
७ निर्यापक—बडे प्रायश्चित्त को भी निभा सके—ऐसा सहयोग देने वाला।
८ अपायदर्शी—प्रायश्चित्त-भङ्ग से तथा सम्यक् आलोचना न करने से उत्पन्न दोषो को बताने वाला।

१९ अट्ठहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोइत्तए, त जहा—
जातिसपण्णे, कुलसपण्णे, विणय-सपण्णे, णाणसपण्णे, दसणसपण्णे, चरित्तसपण्णे, खते, दंते।

अष्टभि स्थानै सम्पन्न अनगार अर्हति आत्मदोष आलोचयितुम्, तद्यथा—
जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न, क्षान्त, दान्त।

१९ आठ स्थानो से सम्पन्न अनगार अपने दोषो की आलोचना करने के लिए योग्य होता है —
१ जाति सम्पन्न, २ कुल सम्पन्न, ३ विनय सम्पन्न, ४ ज्ञान सम्पन्न, ५ दर्शन सम्पन्न, ६ चरित्र सम्पन्न, ७ क्षान्त, ८ दान्त।

पायच्छित्त-पदं

२० अट्ठविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—
आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

अष्टविध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हं, विवेकार्हं, व्युत्सर्गार्हं, तपोर्हं, छेदार्हं, मूलार्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

२० प्रायश्चित्त[१८] आठ प्रकार का होता है—
१ आलोचना के योग्य,
२ प्रतिक्रमण के योग्य,
३ आलोचना और प्रतिक्रमण—दोनो के योग्य,
४ विवेक के योग्य,
५ व्युत्सर्ग के योग्य, ६ तप के योग्य,
७ छेद के योग्य, ८ मूल के योग्य।

मदट्ठाण-पदं

२१. अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—
जातिमए, कुलमए, बलमए, रूवमए, तवमए, सुतमए, लाभमए, इस्सरियमए।

मदस्थान-पदम्

अष्ट मदस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद।

मदस्थान-पद

२१ मद[१९] के स्थान आठ है—
१ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ तपोमद, ६ श्रुतमद, ७ लाभमद, ८ ऐश्वर्यमद।

अकिरियावादि-पद

२२ अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता, त जहा—
एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मित्तवाई, सायवाई, समुच्छेदवाई, णितावाई, णसतपर-लोगवाई।

अक्रियावादि-पदम्

अष्ट अक्रियावादिन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकवादी, अनेकवादी, मितवादी, निर्मितवादी, सातवादी, समुच्छेदवादी, नित्यवादी, असत्परलोकवादी।

अक्रियावादि-पद

२२ अक्रियावादी[२०] आठ हैं—
१ एकवादी—एक ही तत्त्व को स्वीकार करने वाले, २ अनेकवादी—धर्म और धर्मी को सर्वथा भिन्न मानने वाले अथवा सकल पदार्थों को विलक्षण मानने वाले, एकत्व को सर्वथा अस्वीकार करने वाले, ३ मितवादी—जीवो को परिमित मानने वाले, ४ निर्मितवादी—ईश्वरकर्तृत्ववादी, ५ सातवादी—सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले, सुखवादी, ६ समुच्छेदवादी—क्षणिकवादी। ७ नित्यवादी—लोक को एकान्त मानने वाले, ८ असत्परलोकवादी—परलोक मे विश्वास न करने वाले।

महाणिमित्त-पद

२३ अट्ठविहे महाणिमित्ते पण्णत्ते, त जहा—
भोमे, उप्पाते, सुविणे, अतलिक्खे, अंगे, सरे, लक्खणे, वजणे।

महानिमित्त-पदम्

अष्टविध महानिमित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
भौम, उत्पात, स्वप्न, अन्तरिक्ष, अङ्ग, स्वर, लक्षण, व्यञ्जनम्।

महानिमित्त-पद

२३ महानिमित्त आठ प्रकार का होता है—
१ भौम, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ आन्तरिक्ष, ५ आङ्ग, ६ स्वर, ७ लक्षण, ८ व्यञ्जन।

वयणविभत्ति-पदं

२४ अट्ठविधा वयणविभत्ती पण्णत्ता, त जहा—

वचनविभक्ति-पदम्

अष्टविधा वचनविभक्ति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

वचनविभक्ति-पद

२४ वचन-विभक्ति के आठ प्रकार हैं—

संगहणी-गाहा

१ णिद्देसे पढमा होती,
वितिया उवएसणे।
ततिया करणम्मि कता,
चउत्थी सपदावणे ॥
२ पचमी य अवदाणे,
छट्ठी सस्सामिवायणे।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे,
अट्ठमी आमतणी भवे ॥
३. तत्थ पढमा विभत्ती,
णिद्देसे—सो इमो अह व त्ति।
वितिया उण उवएसे—
भण कुण व इम व तं वत्ति ॥
४. ततिया करणम्मि कया—
णीत व कत व तेण व मए वा।
हदि णमो साहाए,
हवति चउत्थी पदाणमि ॥
५ अवणे गिण्हसु तत्तो,
इत्तोत्ति वा पचमी अवादाणे।
छट्ठी तस्स इमस्स वा,
गतस्स वा सामि-सबधे ॥

संग्रहणी-गाथा

१ निर्देशे प्रथमा भवति,
द्वितीया उपदेशने।
तृतीया करणे कृता,
चतुर्थी सप्रदापने ॥
२ पञ्चमी च अपादाने,
षष्ठी स्वस्वामिवादने।
सप्तमी सन्निधानार्थे,
अष्टम्यामन्त्रणी भवेत् ॥
३ तत्र प्रथमा विभक्ति,
निर्देशे—स अय अह वेति।
द्वितीया पुन उपदेशे—
भण कुरु वा इम वा त वेति ॥
४ तृतीया करणे कृता—
नीत वा कृत वा तेन वा मया वा।
हदि नम स्वाहा,
भवति चतुर्थी प्रदाने ॥
५ अपनय गृहाण तत,
इत इति वा पञ्चमी अपादाने।
षष्ठी तस्यास्य वा,
गतस्य वा स्वामि-सम्बन्धे ॥

१ निर्देश, २ उपदेश, ३ करण, ४ सम्प्रदान, ५ अपादान, ६ स्वस्वामिवचन, ७ सन्निधानार्थ, ८ आमन्त्रणी।

निर्देश के अर्थ मे प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे—वह, यह, मैं। उपदेश में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे—इसे बता, वह कर।

करण मे तृतीया विभक्ति होती है, जैसे—शकट से लाया गया है, मेरे द्वारा किया गया है। सम्प्रदान मे चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—नम स्वाहा।

अपादान मे पचमी विभक्ति होती है, जैसे—घर से दूर ले जा, इस कोठे से ले जा। स्वस्वामिवचन मे षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—यह उसका या इसका नौकर है।

६ हवइ पुण सत्तमी
तमिमम्मि आहारकालभावे य ।
आमंतणी भवे अट्ठमी
उ जह हे जुवाण ! त्ति ।।

६. भवति पुन सप्तमी
तस्मिन् अस्मिन् आधारकालभावे च ।
आमन्त्रणी भवेत् अष्टमी
तु यथा हे युवन् ! इति ।।

सन्निधानार्थ में सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे—उसमे, इसमे ।
आमन्त्रणी मे आठवी विभक्ति होती है, जैसे—हे जवान !

छउमत्थ-केवलि-पदं

२५ अट्ठ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेण ण याणति पासति, त जहा—
धम्मत्थिकाय, °अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, जीव असरीरपडिवद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द,° गधं, वातं ।
एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा जिणे केवली °सव्वभावेण जाणइ पासइ, त जहा—
धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीव असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्द,° गधं, वात ।

छद्मस्थ-केवलि-पद्म

अष्ट स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव अशरीरप्रतिबद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वातम् ।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव अशरीरप्रतिबद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वातम् ।

छद्मस्थ-केवलि-पद

२५ आठ पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्णरूप से न जानता है, न देखता है—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल ६ शब्द, ७ गध, ८ वायु ।
प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत्, जिन, केवली इन्हें सम्पूर्णरूप से जानते-देखते हैं—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७ गध, ८ वायु ।

आउवेद-पदं

२६ अट्ठविधे आउवेदे पण्णत्ते, त जहा—
कुमारभिच्चे, कायतिगिच्छा, सालाई, सल्लहत्ता, जगोली, भूतवेज्जा, खारतते, रसायणे ।

आयुर्वेद-पदम्

अष्टविध आयुर्वेद प्रज्ञप्त, तद्यथा—
कुमारभृत्य, कायचिकित्सा, शालाक्य, शाल्यहत्य, जगोली, भूतविद्या, क्षारतन्त्र, रसायनम् ।

आयुर्वेद-पद

२६ आयुर्वेद[11] के आठ प्रकार हैं—
१ कुमारभृत्य—बालको का चिकित्सा-शास्त्र ।
२ कायचिकित्सा —ज्वर आदि रोगो का चिकित्सा-शास्त्र ।
३ शालाक्य—कान, मुंह, नाक आदि के रोगो की शल्य-चिकित्सा का शास्त्र ।
४ शल्यहत्या—शल्य-चिकित्सा का शास्त्र
५ जगोली—अगदतन्त्र—विष-चिकित्सा का शास्त्र ।
६ भूतविद्या—देव, असुर, गधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि से ग्रस्त व्यक्तियो की चिकित्सा का शास्त्र ।
७ क्षारतन्त्र—वाजीकरण तन्त्र—वीर्य-पुष्टि का शास्त्र ।
८ रसायन—पारद आदि धातुओ के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का शास्त्र ।

अग्गमहिसी-पदं

२७ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
पउमा, सिवा, सची, अजू, अमला, अच्छरा, णवमिया, रोहिणी।

२८ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिता, वसू, वसुगुत्ता, वसुमित्ता, वसुधरा।

२९ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

३० ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पद्मा, शिवा, शची, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णा, कृष्णराजी, रामा, रामरक्षिता, वसू, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुधरा।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वैश्रमणस्य महाराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता।

अग्रमहिषी-पद

२७ देवेन्द्र देवराज शक्र के आठ अग्रमहिषिया हैं—
१ पद्मा, २ शिवा, ३ शची, ४ अजू, ५ अमला, ६ अप्सरा, ७ नवमिका, ८ रोहिणी।

२८ देवेन्द्र देवराज ईशान के आठ अग्रमहिषिया हैं—
१ कृष्णा, २ कृष्णराजी, ३ रामा, ४ रामरक्षिता, ५ वसु, ६ वसुगुप्ता, ७ वसुमित्रा, ८ वसुन्धरा।

२९ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के आठ अग्रमहिषिया हैं।

३० देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वैश्रमण के आठ अग्रमहिषिया हैं।

महग्गह-पदं

३१ अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता, त जहा—
चदे, सूरे, सुक्के, बुहे, वहस्सती, अगारे, सणिचरे, केऊ।

महाग्रह-पदम्

अष्ट महाग्रहा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्र, सूर, शुक्र, बुध, वृहस्पति, अङ्गार, शनैश्चर, केतु।

महाग्रह-पद

३१ महाग्रह आठ हैं—
१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ बुध, ५ वृहस्पति, ६ अगार, ७ शनिश्चर, ८ केतु।

तणवणस्सइ-पदं

३२ अट्ठविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—
मूले, कदे, खधे, तया, साले, पवाले, पत्ते, पुप्फे।

तृणवनस्पति-पदम्

अष्टविधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक्, शाला, प्रवाल, पत्र, पुष्पम्।

तृणवनस्पति-पद

३२ तृणवनस्पतिकायिक आठ प्रकार के होते हैं—
१ मूल, २ कद, ३ स्कद, ४ त्वक्, ५ शाखा, ६ प्रवाल, ७ पत्र, ८ पुष्प।

सजम-असंजम-पद

३३ चउरिंदिया ण जीवा असमारभमाणस्स अट्ठविधे सजमे कज्जति, त जहा—

संयम-असंयम-पदम्

चतुरिन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य अष्टविध सयम क्रियते, तद्यथा—

संयम-असंयम-पद

३३ चतुरिन्द्रिय जीवो का आरम्भ नहीं करने वाले के आठ प्रकार का सयम होता है—

चक्खुमातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	चक्षुर्मयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	१ चक्षुमय सुख का वियोग नही करने से,
चक्खुमएण दुक्खेणं असजोएत्ता भवति।	चक्षुर्मयेन दु खेन असयोजयिता भवति।	२ चक्षुमय दु ख का सयोग नही करने से,
•घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	३ घ्राणमय सुख का वियोग नही करने से,
घाणामएणं दुक्खेण असजोएत्ता भवति।	घ्राणमयेन दु खेन असयोजयिता भवति।	४ घ्राणमय दु ख का सयोग नहीं करने से,
जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	५ रसमय सुख का वियोग नही करने से,
जिब्भामएणं दुक्खेण असजोएत्ता भवति।°	जिह्वामयेन दु खेन असयोजयिता भवति।	६ रसमय दु ख का सयोग नहीं करने से,
फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	७ स्पर्शमय सुख का वियोग नही करने से,
फासामएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति।	स्पर्शमयेन दु खेन असयोजयिता भवति।	८ स्पर्शमय दु ख का सयोग नही करने से।
३४. चउरिंदियाण जीवा समारभमाणस्स अट्ठविधे असजमे कज्जति, त जहा—	चतुरिन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य अष्टविध असयम क्रियते, तद्यथा—	३४ चतुरिन्द्रिय जीवो का आरम्भ करने वाले के आठ प्रकार का असयम होता है—
चक्खुमातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	चक्षुर्मयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	१ चक्षुमय सुख का वियोग करने से,
चक्खुमएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।	चक्षुर्मयेन दु खेन सयोजयिता भवति।	२ चक्षुमय दु ख का सयोग करने से,
•घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	३ घ्राणमय सुख का वियोग करने से,
घाणामएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।	घ्राणमयेन दु खेन सयोजयिता भवति।	४ घ्राणमय दु ख का सयोग करने से,
जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	५ रसमय सुख का वियोग करने से,
जिब्भामएण दुक्खेण सजोगेत्ता भवति।°	जिह्वामयेन दु खेन सयोजयिता भवति।	६ रसमय दु ख का सयोग करने से,
फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	७ स्पर्शमय सुख का वियोग करने से,

फासामएण दुक्खेण संजोगेत्ता भवति। स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति। ८ स्पर्शमय दुःख का संयोग करने से।

सुहुम-पदं / सूक्ष्म-पदम् / सूक्ष्म-पद

३५. अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा— पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे।

अष्ट सूक्ष्माणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— प्राणसूक्ष्म, पनकसूक्ष्म, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्म, अण्डसूक्ष्म, लयनसूक्ष्म, स्नेहसूक्ष्म।

३५. सूक्ष्म आठ हैं— १ प्राणसूक्ष्म, २ पनकसूक्ष्म, ३ बीजसूक्ष्म, ४ हरितसूक्ष्म, ५ पुष्पसूक्ष्म, ६ अण्डसूक्ष्म, ७ लयनसूक्ष्म, ८ स्नेहसूक्ष्म।

भरहचक्कवट्टि-पद / भरतचक्रवर्ति-पदम् / भरतचक्रवर्ति-पद

३६ भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ पुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं •बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुडाइं° सव्वदुक्खप्पहीणाइं, तं जहा— आदिच्चजसे, महाजसे, अतिबले, महाबले, तेयवीरिए, कत्तवीरिए, दंडवीरिए, जलवीरिए।

भरतस्य राज्ञः चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः अष्ट पुरुषयुगानि अनुबद्धं सिद्धानि बुद्धानि मुक्तानि अन्तकृतानि परिनिर्वृतानि सर्वदुःखप्रक्षीणानि, तद्यथा— आदित्ययशाः, महायशाः, अतिबलः, महाबलः, तेजोवीर्यः, कार्त्तवीर्यः, दण्डवीर्यः जलवीर्यः।

३६ चतुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत के आठ उत्तराधिकारी पुरुषयुग—राजा लगातार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए[१]— १ आदित्ययशा, २ महायशा, ३ अतिबल, ४ महाबल, ५ तेजोवीर्य, ६ कार्त्तवीर्य, ७ दण्डवीर्य, ८ जलवीर्य।

पास-गण-पदं / पार्श्व-गण-पदम् / पार्श्व-गण-पद

३७ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा— सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभचारी, सोमे, सिरिधरे, वीरभद्दे, जसोभद्दे।

पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य अष्ट गणाः अष्ट गणधराः अभवन् तद्यथा— शुभ, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र, यशोभद्र।

३७ पुरुषादानीय[२] अर्हत् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर[३] थे— १ शुभ, २ आर्यघोष, ३ वशिष्ठ, ४ ब्रह्मचारी, ५ सोम, ६ श्रीधर, ७ वीरभद्र, ८ यशोभद्र।

दंसण-पद / दर्शन-पदम् / दर्शन-पद

३८ अट्ठविधे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा— सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, •अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे,° केवलदंसणे, सुविणदंसणे।

अष्टविधं दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, स्वप्नदर्शनम्।

३८ दर्शन[४] आठ प्रकार का होता है— १ सम्यग्दर्शन, २ मिथ्यादर्शन, ३ सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४ चक्षुदर्शन, ५ अचक्षुदर्शन, ६ अवधिदर्शन, ७ केवलदर्शन, ८ स्वप्नदर्शन।

ओवमिय-काल-पदं

३९. अट्ठविधे अद्धोवमिए पण्णत्ते, त जहा—
पलिओवमे, सागरोवमे,
ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी,
पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा,
अणागतद्धा, सव्वद्धा।

औपमिक-काल-पदम्

अष्टविध अद्ध्वौपम्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरिवर्त्तं, अतीताद्ध्वा, अनागताद्ध्वा, सर्वाद्ध्वा।

औपमिक-काल-पद

३९ औपमिक अद्धा[२१] [काल] आठ प्रकार का होता है—
१ पल्योपम, २ सागरोपम,
३ अवसर्पिणी, ४ उत्सर्पिणी,
५ पुद्गलपरिवर्त, ६ अतीत-अद्धा,
७ अनागत-अद्धा, ८ सर्व-अद्धा।

अरिट्ठणेमि-पदं

४० अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमातो पुरिसजुगातो जुगतकरभूमि।
दुवासपरियाए अंतमकासी।

अरिष्टनेमि-पदम्

अर्हत अरिष्टनेमे यावत् अष्टम पुरुषयुग युगान्तकरभूमि।

द्विवर्षपर्याये अन्तमकार्षु।

अरिष्टनेमि-पद

४० अर्हत् अरिष्टनेमि से आठवें पुरुषयुग तक युगान्तकर भूमि रही—मोक्ष जाने का क्रम रहा, आगे नही[२७]।
अर्हत् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त किए दो वर्ष हुए थे, उसी समय से उनके शिष्य मोक्ष जाने लगे।

महावीर-पदं

४१ समणेण भगवता महावीरेण अट्ठ रायाणो मुडे भवेत्ता अगाराओ अणगारित पव्वाइया, तं जहा—

महावीर-पदम्

श्रमणेन भगवता महावीरेण अष्ट राजान मुण्डान् भावयित्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्राजिता, तद्यथा—

महावीर-पद

४१ श्रमण भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को मुण्डित कर, अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित किया[२८]—

संगहणी-गाहा

१. वीरगए वीरजसे,
सजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे,
तह सखे कासिवद्धणे॥

संग्रहणी-गाथा

१ वीराङ्गक वीरयशा,
सजय एणेयकश्च राजर्षि।
श्वेत शिव, उद्रायण,
तथा शङ्ख काशीवर्द्धन॥

१ वीराङ्गक, २ वीरयशा, ३ सजय,
४ एणेयक, ५ सेय, ६ शिव,
७ उद्रायण, ८ शख-काशीवर्द्धन।

आहार-पदं

४२. अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—
मणुण्णे—असणे पाणे खाइमे साइमे।
अमणुण्णे—असणे पाणे खाइमे साइमे॥

आहार-पदम्

अष्टविध आहार प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मनोज्ञ—अशन पान खाद्य स्वाद्यम्।
अमनोज्ञ—अशन पान खाद्य स्वाद्यम्।

आहार-पद

४२ आहार आठ प्रकार का होता है—
१ मनोज्ञ अशन, २ मनोज्ञ पान,
३ मनोज्ञ खाद्य, ४ मनोज्ञ स्वाद्य,
५ अमनोज्ञ अशन, ६ अमनोज्ञ पान,
७ अमनोज्ञ खाद्य, ८ अमनोज्ञ स्वाद्य।

कण्हराइ-पदं

४३ उप्पिं सणकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठिं बंभलोगे कप्पे रिट्ठ-विमाण-पत्थडे, एत्थ णं अक्खाडग-समचउरंस-संठाण-संठिताओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पुरत्थिमे णं दो कण्हराईओ,
दाहिणे णं दो कण्हराईओ,
पच्चत्थिमे णं दो कण्हराईओ,
उत्तरे णं दो कण्हराईओ।
पुरत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई दाहिणं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
दाहिणा अब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
पच्चत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई उत्तरं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
उत्तरा अब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
पुरत्थिमपच्चत्थिमिल्लाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ छलंसाओ।
उत्तरदाहिणाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ तंसाओ।
सव्वाओ वि णं अब्भंतरकण्हराईओ चउरंसाओ।

४४ एतासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
कण्हराईति वा, मेहराईति वा, मघाति वा, माघवतीति वा, वातफलिहेति वा, वातपलिक्खोभेति वा, देवफलिहेति वा, देवपलिक्खोभेति वा।

कृष्णराजि-पदम्

उपरि सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः अधस्तात् ब्रह्मलोके कल्पे रिष्टविमान-प्रस्तटे, अत्र अक्षवाटक-समचतुरस्र-संस्थान-संस्थिताः अष्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पौरस्त्ये द्वे कृष्णराजी,
दक्षिणस्यां द्वे कृष्णराजी,
पाश्चात्ये द्वे कृष्णराजी,
उत्तरस्यां द्वे कृष्णराजी।
पौरस्त्या अभ्यन्तरा कृष्णराजिः दाक्षिणात्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
दक्षिणा अभ्यन्तरा कृष्णराजिः पाश्चात्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
पाश्चात्या अभ्यन्तरा कृष्णराजिः औत्तराहीं बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
उत्तरा अभ्यन्तरा कृष्णराजिः पौरस्त्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
पौरस्त्यपाश्चात्ये बाह्ये द्वे कृष्णराजी षडस्रे।
उत्तरदक्षिणे बाह्ये द्वे कृष्णराजी त्र्यस्रे।
सर्वा अपि अभ्यन्तरकृष्णराजयः चतुरस्राः।

एतासां अष्टानां कृष्णराजीनां अष्ट नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णराजीति वा, मेघराजीति वा, मघेति वा, माघवतीति वा, वातपरिघा इति वा, वातपरिक्षोभा इति वा, देवपरिघा इति वा, देवपरिक्षोभा इति वा।

कृष्णराजि-पद

४३ सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के ऊपर तथा ब्रह्मलोक देवलोक के नीचे रिष्ट-विमान का प्रस्तट है। वहां अखाड़े के समान समचतुरस्र [चतुष्कोण] संस्थान वाली आठ कृष्णराजियां—काले पुद्गलों की पंक्तियां हैं—
१ पूर्व में दो (१, २) कृष्णराजियां हैं,
२ दक्षिण में दो (३, ४) कृष्णराजियां हैं,
३ पश्चिम में दो (५, ६) कृष्णराजियां हैं,
४ उत्तर में दो (७, ८) कृष्णराजियां हैं।
पूर्व की आभ्यन्तर कृष्णराजी दक्षिण की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
दक्षिण की आभ्यन्तर कृष्णराजी पश्चिम की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
पश्चिम की आभ्यन्तर कृष्णराजी उत्तर की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
उत्तर की आभ्यन्तर कृष्णराजी पूर्व की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
पूर्व और पश्चिम की बाह्य दो कृष्ण-राजियां षट्कोण वाली हैं।
उत्तर और दक्षिण की बाह्य दो कृष्ण-राजियां त्रिकोण वाली हैं।
समस्त आभ्यन्तर कृष्णराजियां चतुष्कोण वाली हैं।

४४ इन आठ कृष्णराजियों के आठ नाम हैं—
१ कृष्णराजी, २ मेघराजी, ३ मघा, ४ माघवती, ५ वातपरिघ, ६ वातपरिक्षोभ, ७ देवपरिघ, ८ देवपरिक्षोभ।

४५ एतासि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठसु ओवासतरेसु अट्ठ लोगतियविमाणा पण्णत्ता, त जहा—
अच्ची, अच्चिमाली, वइरोअणे, पभकरे, चदाभे, सूराभे, सुपइट्ठाभे, अग्गिच्चाभे।

एतासा अष्टाना कृष्णराजीना अष्टसु अवकाशान्तरेषु अष्ट लोकान्तिकविमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अर्चि, अर्चिर्माली, वैरोचन, प्रभकर, चन्द्राभ, सूराभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्यर्च्याभ।

४५ इन आठ कृष्णराजियो के आठ अवकाशान्तरों मे आठ लोकान्तिक विमान हैं—
१ अर्चि, २ अर्चिमाली, ३ वैरोचन, ४ प्रभकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूराभ, ७ सुप्रतिष्ठाभ, ८ अग्न्यर्चाभ।

४६ एतेसु ण अट्ठसु लोगतियविमाणेसु अट्ठविधा लोगतिया देवा पण्णत्ता, त जहा—

एतेषु अष्टसु लोकान्तिकविमानेषु अष्टविधा लोकान्तिका देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

४६ इन आठ लोकान्तिक विमानों मे आठ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं—

संगहणी-गाहा

१ सारस्सतमाइच्चा,
वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिता अव्वाबाहा,
अग्गिच्चा चेव बोद्धव्वा॥

संग्रहणी-गाथा

१ सारस्वता आदित्या,
वह्नय वरुणाश्च गर्दतोयाश्च।
तुषिता अव्याबाधा,
अग्न्यर्चा चैव बोद्धव्या॥

१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध, ८ अग्न्यर्च।

४७ एतेसि ण अट्ठण्ह लोगतियदेवाण अजहण्णमणुक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

एतेषा अष्टाना लोकान्तिकदेवाना अजघन्योत्कर्षेण अष्ट सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

४७ इन आठ लोकान्तिक देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति आठ-आठ सागरोपम की है।

मज्झपदेस-पदं

४८. अट्ठ धम्मत्थिकाय-मज्झपएसा पण्णत्ता।

४९. अट्ठ अधम्मत्थिकाय-°मज्झपएसा पण्णत्ता।°

५० अट्ठ आगासत्थिकाय-°मज्झपएसा पण्णत्ता।°

५१ अट्ठ जीव-मज्झपएसा पण्णत्ता।

मध्यप्रदेश-पदम्

अष्ट धर्मास्तिकाय-मध्यप्रदेश प्रज्ञप्ता।

अष्ट अधर्मास्तिकाय-मध्यप्रदेशा प्रज्ञप्ता।

अष्ट आकाशास्तिकाय-मध्यप्रदेशा प्रज्ञप्ता।

अष्ट जीव-मध्यप्रदेशा प्रज्ञप्ता।

मध्यप्रदेश-पद

४८ धर्मास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश (रुचक प्रदेश) हैं।

४९ अधर्मास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश है।

५० आकाशास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश हैं।

५१ जीव के आठ मध्यप्रदेश हैं।

महापउम-पद

५२ अरहा ण महापउमे अट्ठ रायाणो मुडा भवित्ता अगाराओ अणगारित पव्वावेस्सति, त जहा—
पउम, पउमगुम्म, णलिण, णलिणगुम्म, पउमद्धय, धणुद्धय, कणगरह, भरह।

महापद्म-पदम्

अर्हन् महापद्म अष्ट राज्ञ मुण्डान् भावयित्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्राजयिष्यति, तद्यथा—
पद्म, पद्मगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पद्मध्वज, धनुर्ध्वज, कनकरथ, भरतम्।

महापद्म-पद

५२ अर्हत् महापद्म आठ राजाओ को मुण्डित-कर, अगार मे अनगार अवस्था मे प्रव्रजित करेंगे—
१ पद्म, २ पद्मगुल्म, ३ नलिन, ४ नलिनगुल्म, ५ पद्मध्वज, ६ धनुर्ध्वज, ७ कनकरथ, ८ भरत।

कण्ह-अग्गमहिसी-पद

५३. कण्हस्स ण वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स अतिते मुडा भवेत्ता अगाराओ अणगारित पव्वइया सिद्धाओ •बुद्धाओ मुत्ताओ अतगडाओ परिणिव्वुडाओ° सव्वदुक्खप्पहीणाओ, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ पउमावती य गोरी,
गधारी लक्खणा सुसीमा य।
जववती सच्चभामा,
रुप्पिणी अग्गमहिसीओ ॥

कृष्ण-अग्रमहिषी-पदम्

कृष्णस्य वासुदेवस्य अष्टाग्रमहिष्य अर्हत अरिष्टनेमे अन्तिके मुण्डा भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजिता सिद्धा बुद्धा मुक्ता अन्तकृता परिनिर्वृता सव्वदु खप्रक्षीणा, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ पद्मावती च गौरी,
गान्धारी लक्ष्मणा सुसीमा च।
जाम्ववती सत्यभामा,
रुक्मिणी अग्रमहिष्य. ॥

कृष्ण-अग्रमहिषी-पद

५३ वासुदेव कृष्ण की आठ अग्रमहिषिया अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर, अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दु:खों से रहित हुई"—

१ पद्मावती, २ गोरी, ३ गाधारी, ४ लक्ष्मणा, ५ सुसीमा, ६ जाम्ववती, ७ सत्यभामा, ८ रुक्मिणी।

पुव्ववत्यु-पद

५४. वीरियपुव्वस्स ण अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

वीर्यपूर्वस्य अष्ट वस्तूनि अष्ट चूलावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

५४ वीर्यप्रवाद पूर्व के आठ वस्तु [मूल अध्ययन] और आठ चूलिका-वस्तु हैं।

गति-पदं

५५ अट्ठगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णिरयगती, तिरियगती,
•मणुयगती, देवगती,°
सिद्धिगती, गुरुगती,
पणोल्लणगती, पब्भारगती।

गति-पदम्

अष्टगतय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निरयगति, तिर्यग्गति, मनुजगति, देवगति, सिद्धिगति, गुरुगति, प्रणोदनगति, प्राग्भारगति।

गति-पद

५५ गतिया आठ हैं"—

१ नरकगति, २ तिर्यञ्चगति,
३ मनुष्यगति, ४ देवगति
५ सिद्धिगति, ६ गुरुगति,
७ प्रणोदनगति, ८ प्राग्भारगति।

दीवसमुद्द-पद

५६. गगा-सिधु-रत्त-रत्तवति-देवीण दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणाइ आयामविक्खंभेण पण्णत्ता।

५७. उक्कामुह-मेहमुह-विज्जमुह-विज्जुदतदीवा ण दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणसयाइ आयामविक्खंभेण पण्णत्ता।

द्वीपसमुद्र-पदम्

गङ्गा-सिन्धू-रक्ता-रक्तवती-देवीनां द्वीपा. अष्टाऽष्ट योजनानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

उल्कामुख-मेघमुख-विद्युन्मुख-विद्युद्दन्त-द्वीपा द्वीपा अष्टाऽष्ट योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

द्वीपसमुद्र-पद

५६ गगा, सिन्धू, रक्ता और रक्तवती नदियो की अधिष्ठात्री देवियों के द्वीप आठ-आठ योजन लम्बे-चौडे हैं"।

५७ उल्कामुख, मेघमुख, विद्युत्मुख और विद्युद्दन्त द्वीप आठ-आठ सौ योजन लम्बे-चौडे हैं।

५८. कालोदे णं समुद्दे अट्ठ जोयणसय-सहस्साइं चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते ।

कालोद समुद्र अष्ट योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्त ।

५८ कालोद समुद्र की गोलाकार चौडाई आठ लाख योजन की है।

५९. अब्भतरपुक्खरद्धे ण अट्ठ जोयण-सयसहस्साइ चक्कवालविक्खंभेण पण्णत्ते ।

अभ्यन्तरपुष्करार्धं अष्ट योजनशत-सहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्त ।

५९ आभ्यन्तर पुष्करार्ध की गोलाकार चौडाई आठ लाख योजन की है।

६० एव बाहिरपुक्खरद्धेवि ।

एव बाह्यपुष्करार्धोपि ।

६० इसी प्रकार बाह्य पुष्करार्ध की गोलाकार चौडाई आठ लाख योजन की है।

काकणिरयण-पद

काकिनीरत्न-पदम्

काकिनीरत्न-पद

६१. एगमेगस्स ण रण्णो चाउरंतचक्क-वट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकणि-रयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठ-कण्णिए अधिकरणिसठिते ।

एकैकस्य राज्ञ चतुरन्तचक्रवर्त्तिन अष्टसौवर्णिक काकिनीरत्न षट्तल द्वादशास्त्रिक अष्टकर्णिक अधिकरणीय-सस्थितम् ।

६१ प्रत्येक चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के आठ सुवर्ण'' जितना भारी काकिणी रत्न होता है। वह छह तल (मध्यखण्ड), बारहकोण, आठ कर्णिका (कोण-विभाग) और अह-रन के सस्थान वाला होता है।

मागध-जोयण-पदं

मागध-योजना-पदम्

मागध-योजना-पद

६२. मागधस्स ण जोयणस्स अट्ठ धणु-सहस्साइ णिधत्ते पण्णत्ते ।

मागधस्य योजनस्य अष्ट धनु सहस्राणि निधत्त प्रज्ञप्तम् ।

६२ मगध मे योजन'' का प्रमाण आठ हजार धनुष्य का है।

जंबूदीव-पदं

जम्बूद्वीप-पदम्

जम्बूद्वीप-पद

६३ जबू ण सुदसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण, साति-रेगाइ अट्ठ जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ता ।

जम्बू सुदर्शना अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण, सातिरेकानि अष्ट योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ता ।

६३ सुदर्शना जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊँचा है। वह बहुमध्य-देशभाग [ठीक बीच] मे आठ योजन चौडा और सर्व परिमाण मे आठ योजन से अधिक है''।

६४ कूडसामली णं अट्ठ जोयणाइ एवं चेव ।

कूटशाल्मली अष्ट योजनानि एव चैव ।

६४ कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊचा है। वह बहुमध्य-देशभाग मे आठ योजन चौडा और सर्व परिमाण मे आठ योजन से अधिक है''।

६५ तिमिसगुहा ण अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण ।

तमिस्रगुहा अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन ।

६५ तमिस्र गुफा आठ योजन ऊची है।

६६ खडप्पवातगुहा ण अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण ।

खण्डप्रपातगुहा अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन ।

६६ खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊची है।

६७ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये

६७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे

पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—

चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अजणे, मायजणे ।

शीताया महानद्या उभत कूले अष्ट वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अञ्जन, माताञ्जन ।

शीता महानदी के दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं—

१ चित्रकूट, २ पक्ष्मकूट, ३ नलिनकूट, ४ एकशैल, ५ त्रिकूट, ६ वैश्रमणकूट, ७ अञ्जन, ८ माताञ्जन ।

६८ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—

अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उभत कूले अष्ट वक्षस्कारपर्वता, प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष, सुखावह, चन्द्रपर्वत, सूरपर्वत, नागपर्वत, देवपर्वत ।

६८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दोनो तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत है—

१ अकावती, २ पक्ष्मावती, ३ आशीविष, ४ सुखावह, ५ चन्द्रपर्वत, ६ सूरपर्वत, ७ नागपर्वत, ८ देवपर्वत ।

६९ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—

कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, °मगलावत्ते, पुक्खले,° पुक्खलावती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरे अष्ट चक्रवर्त्तिविजया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त्त, मङ्गलावर्त्त, पुष्कल, पुष्कलावती ।

६९ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—

१ कच्छ, २ सुकच्छ, ३. महाकच्छ, ४ कच्छकावती, ५ आवर्त्त, ६ मगलावर्त्त, ७ पुष्कल, ८ पुष्कलावती ।

७० जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—

वच्छे, सुवच्छे, °महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे,° मंगलावती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या दक्षिणे अष्ट चक्रवर्त्तिविजया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

वत्स, सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय, मङ्गलावती ।

७० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के दक्षिण मे चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—

१ वत्स, २ सुवत्स, ३ महावत्स, ४ वत्सकावती, ५ रम्य, ६ रम्यक, ७ रमणीय, ८ मगलावती ।

७१. जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—

पम्हे, °सुपम्हे, महपम्हे, पम्हगावती, सखे, णलिणे, कुमुए,° सलिलावती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे अष्ट चक्रवर्त्तिविजया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शङ्ख, नलिन, कुमुद, सलिलावती ।

७१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—

१ पक्ष्म, २ सुपक्ष्म, ३ महापक्ष्म, ४ पक्ष्मकावती, ५ शख, ६ नलिन, ७ कुमुद, ८ सलिलावती ।

७२ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—
वप्पे, सुवप्पे, •महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गधिले,° गधिलावती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरे अष्ट चक्रवर्त्तिविजया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गन्धिल, गन्धिलावती।

७२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—
१ वप्र, २ सुवप्र, ३ महावप्र, ४ वप्रकावती, ५ वल्गु, ६ सुवल्गु, ७ गन्धिल, ८ गन्धिलावती।

७३ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
खेमा, खेमपुरी, •रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मजूसा, ओसधी,°पुडरीगिणी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरे अष्ट राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गी, मञ्जूषा, औषधि, पौंडरीकिणी।

७३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया हैं—
१ क्षेमा, २ क्षेमपुरी ६ रिष्टा, ४ रिष्टपुरी, ५ खड्गी, ६ मजूषा, ७ औषधि, ८ पौंडरीकिणी।

७४. जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणईए दाहिणे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
सुसीमा, कुडला, •अपराजिया, पभकरा, अकावई, पम्हावई, सुभा,° रयणसचया।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या दक्षिणे अष्ट राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभाकरा, अङ्कावती, पक्ष्मावती, शुभा, रत्नसचया।

७४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानिया हैं—
१ सुसीमा, २ कुण्डला, ३ अपराजिता, ४ प्रभाकरा, ५ अकावती, ६ पक्ष्मावती, ७ शुभा, ८ रत्नसचया।

७५ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
आसपुरा, •सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अवरा, असोया,° वीतसोगा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे अष्ट राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अपरा, अशोका, वीतशोका।

७५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानिया हैं—
१ अश्वपुरी, २ सिंहपुरी, ३ महापुरी, ४ विजयपुरी, ५ अपराजिता, ६ अपरा, ७ अशोका, ८ वीतशोका।

७६. जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणईए उत्तरे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
विजया, वेजयती, •जयती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा, अवज्झा,° अउज्झा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरे अष्ट राजधान्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
विजया, वैजयन्ती, जयती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या, अयोध्या।

७६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया हैं—
१ विजया, २ वैजयन्ती, ३ जयन्ती, ४ अपराजिता, ५ चक्रपुरी, ६ खड्गपुरी, ७ अवध्या, ८ अयोध्या।

७७ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण उक्कोसपए अट्ठ अरहता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरे उत्कर्षपदे अष्ट अर्हन्त, अष्ट चक्रवर्तिन, अष्ट बलदेवा, अष्ट वासुदेवा उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते। ।

७७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे उत्कृष्टत आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे''।

७८ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए [महाणदीए?] दाहिणे ण उक्कोसपए एव चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया (महानद्या ?) दक्षिणे उत्कर्षपदे एव चैव।

७८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता [महानदी ?] के दक्षिण मे उत्कृष्टत आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे''।

७९ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए दाहिणे ण उक्कोसपए एव चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे उत्कर्षपदे एव चैव।

७९ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे उत्कृष्टत आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे''।

८०. एव उत्तरेणवि।

एव उत्तरेणापि।

८० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे उत्कृष्टत आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे''।

८१ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणईए उत्तरे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खडगप्पवातगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गगाकुडा, अट्ठ सिंधुकुडा, अट्ठ गगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या उत्तरे अष्ट दीर्घवैताढ्या, अष्ट तमिस्रगुहा, अष्ट खण्डकप्रपातगुहा, अष्ट कृतमालका देवा, अष्ट नृत्यमालका देवा, अष्ट गङ्गाकुण्डानि, अष्ट सिन्धूकुण्डानि, अष्ट गगा, अष्ट सिन्धव, अष्ट ऋषभकूटा पर्वता, अष्ट ऋषभकूटा देवा प्रज्ञप्ता।

८१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ-वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डक-प्रपातगुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गगाकुण्ड, आठ सिन्धूकुण्ड, आठ गगा, आठ सिन्धू, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं।

८२. जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा एव चेव जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीताया महानद्या दक्षिणे अष्ट दीर्घवैताढ्या एव चैव यावत् अष्ट ऋषभकूटा देवा प्रज्ञप्ता।

८२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के दक्षिण मे आठ दीर्घ-वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डक-प्रपातगुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ

णवरमेत्थ रत्त-रत्तावती, तासिं चेव कुडा।

नवर—अत्र रक्ता-रक्तवती, तासा चैव कुण्डानि।

नृत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं।

८३ जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ दीयवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा,अट्ठ ग गाकुडा, अट्ठ सिंघुकुडा, अट्ठ गगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे अष्ट दीर्घवैताढ्या यावत् अष्ट नृत्यमालका देवा, अष्ट गगाकुण्डानि, अष्ट सिन्धूकुण्डानि, अष्ट गगा, अष्ट सिन्धव, अष्ट ऋषभकूटा पर्वता, अष्ट ऋषभकूटा देवा प्रज्ञप्ता।

८३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे आठ दीर्घवैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डकप्रपातगुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गगाकुण्ड, आठ सिन्धूकुण्ड, आठ गगा, आठ सिन्धू, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं।

८४ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा पण्णत्ता। अट्ठ रत्ता कुडा, अट्ठ रत्तावतिकुडा, अट्ठ रत्ताओ, अट्ठ रत्तावतीओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरे अष्ट दीर्घवैताढ्या यावत् अष्ट नृत्यमालका देवा प्रज्ञप्ता। अष्ट रक्ताकुण्डानि, अष्ट रक्तवतीकुण्डानि, अष्ट रक्ता, अष्ट रक्तवत्य, अष्ट ऋषभकूटा पर्वता, अष्ट ऋषभकूटा देवा प्रज्ञप्ता।

८४ जम्बूद्वीप द्वीप से मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे आठ दीर्घवैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डकप्रपातगुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं।

८५ मदरचूलिया ण बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खभेण पण्णत्ता।

मन्दरचूलिका बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

८५ मन्दरचूलिका बहुमध्य-देशभाग मे आठ योजन चौडी है।

धायइसंड-पदं

धातकीषण्ड-पदम्

धातकीषण्ड-पद

८६ धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे णं धायइरुक्खे अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण, साइरेगाइ अट्ठ जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ते।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे धातकीरुक्ष अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे, अष्ट योजनानि विष्कम्भेण, सातिरेकाणि अष्ट योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्त।

८६ धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध मे धातकीवृक्ष आठ योजन ऊचा है। वह बहुमध्यदेशभाग मे आठ योजन चौडा और सर्वपरिणाम मे आठ योजन से अधिक है।

८७ एव धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जबूदीववत्तव्वता भाणियव्वा जाव मदरचूलियत्ति।

एव धातकीरुक्षात् आरभ्य सा एव जम्बूद्वीपवक्तव्यता भणितव्या यावत् मन्दरचूलिकेति।

८७ इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध मे धातकीवृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भाति वक्तव्य हैं।

८८ एव पच्चत्थिमद्धेवि महाधातइरुक्खातो आढवेत्ता जाव मदरचूलियत्ति ।

एव पाश्चात्यार्धेऽपि महाधातकीरुक्षात् आरभ्य यावत् मन्दरचूलिकेति ।

८८ इसी प्रकार धातकीषण्ड के पश्चिमार्द्ध मे महाधातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भाति वक्तव्य है ।

पुक्खरवर-पदं

पुष्करवर-पदम्

पुष्करवर-पद

८९ एव पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धेवि पउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मदरचूलियत्ति ।

एव पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धेऽपि पद्मरुक्षात् आरभ्य यावत् मन्दरचूलिकेति ।

८९ इसी प्रकार अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध मे पद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भाति वक्तव्य है ।

९० एव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धेवि महापउमरुक्खातो जाव मदरचूलियत्ति ।

एव पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धेऽपि महापद्मरुक्षात् यावत् मन्दरचूलिकेति ।

९० इसी प्रकार अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे महापद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भाति वक्तव्य है ।

कूड-पद

कूट-पदम्

कूट-पद

९१ जवुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते भद्दसालवणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, त जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते भद्रशालवने अष्ट दिशाहस्तिकूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के भद्रशालवन मे आठ दिशा-हस्तिकूट [पूर्व आदि दिशाओ मे हाथी के आकार वाले शिखर] हैं—

सगहणी-गाहा

१ पउमुत्तर णीलवते,
सुहत्थि अजणागिरी ।
कुमुदे य पलासे य,
वडेंसे रोयणागिरी ॥

सग्रहणी-गाथा

१ पद्मोत्तर नीलवान्,
सुहस्ती अञ्जनगिरि ।
कुमुदश्च पलाशश्च,
अवतस रोचनगिरि ॥

१ पद्मोत्तर, २ नीलवान् ३ सुहस्ती, ४ अजनगिरि, ५ कुमुक, ६ पलाश, ७ अवतसक, ८ रोचनगिरि ।

जगती-पदं

जगती-पदम्

जगती-पद

९२ जबूदीवस्स ण दीवस्स जगती अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य जगती अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता ।

९२ जम्बूद्वीप द्वीप की जगती आठ योजन ऊची और बहुमध्यदेशभाग मे आठ योजन चौडी है ।

कूड-पद

कूट-पदम्

कूट-पद

९३. जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवते वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवति वर्षधरपर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के आठ कूट हैं—

संगहणी-गाहा	संग्रहणी-गाथा	
१ सिद्ध महाहिमवते, हिमवते रोहिता हिरीकूडे । हरिकता हरिवासे, वेरुलिए चेव कूडा उ ॥	१ सिद्ध महाहिमवान्, हिमवान् रोहित ह्रीकूट । हरिकान्ता हरिवर्ष, वैडूर्यं चैव कूटानि तु ॥	१ सिद्ध, २ महाहिमवान्, ३ हिमवान्, ४ रोहित, ५ ह्रीकूट, ६ हरिकात, ७ हरिवर्ष, ८ वैडूर्य ।
९४ जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रुप्पिमि वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रुक्मिणि वर्षधरपर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	९४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे रुक्मी वर्षधर पर्वत के आठ कूट हैं—
१ सिद्धे य रुप्पि रम्मग, णरकता बुद्धि रुप्पकूडे य । हिरण्णवते मणिकचणे, य रुप्पिम्मि कूडा उ ॥	१ सिद्धश्च रुक्मी रम्यक, नरकान्त बुद्धि रूप्यकूट च । हिरण्यवान् मणिकाञ्चन च, रुक्मिणि कूटानि तु ॥	१ सिद्ध, २ रुक्मी, ३ रम्यक, ४ नरकात ५ बुद्धि, ६ रूप्यकूट, ७ हैरण्यवत, ८ मणिकाञ्चन ।
९५ जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	९५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—
१ रिट्ठे तवणिज्ज कचण, रयत दिसासोत्थिते पलवे य । अजणे अजणपुलए, रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा ॥	१ रिष्ट तपनीय काञ्चन, रजत दिशासौवस्तिक प्रलम्बश्च । अञ्जन अञ्जनपुलक, रुचकस्य पौरस्त्ये कूटानि ॥	१ रिष्ट, २ तपनीय, ३ काचन, ४ रजत, ५ दिशास्वस्तिक, ६ प्रलव, ७ अजन, ८ अजनपुलक ।
तत्थ ण अट्ठ दिसाकुमारिमहत्त-रियाओ महिड्ढियाओ जाव पलि-ओवमट्ठितीओ परिवसति, त जहा—	तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिका महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—	वहा महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती हैं—
२ णदुत्तरा य णदा, आणदा णदिवद्धणा । विजया य वेजयती, जयती अपराजिया ॥	२ नन्दोत्तरा च नन्दा, आनन्दा नन्दिवर्धना । विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता ॥	१ नन्दोत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा, ४ नन्दिवर्धना, ५ विजया ६ वैजयन्ती, ७ जयन्ती, ८ अपराजिता ।
९६ जदुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	९६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—
१ कणए कचणे पउमे, णलिणे ससि दिवायरे चेव । वेसमणे वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ॥	१ कनक काञ्चन पद्म, नलिन शशी दिवाकरश्चैव । वैश्रमण वैडूर्यं, रुचकस्य तु दक्षिणे कूटानि ॥	१ कनक, २ काञ्चन, ३ पद्म, ४ नलिन, ५ शशी, ६ दिवाकर, ७ वैश्रमण, ८ वैडूर्य ।

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसति, त जहा—

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिका महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—

वहा महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती हैं—

२ समाहारा सुप्पतिण्णा,
सुप्पवुद्धा जसोहरा ।
लच्छिवती सेसवती,
चित्तगुत्ता वसुधरा ।

२ समाहारा सुप्रतिज्ञा,
सुप्रवुद्धा यशोधरा ।
लक्ष्मीवती शेषवती,
चित्रगुप्ता वसुन्धरा

१ समाहारा, २ सुप्रतिज्ञा,
३ सुप्रवुद्धा, ४ यशोधरा,
५ लक्ष्मीवती, ६ शेषवती,
७ चित्रगुप्ता, ८ वसुन्धरा ।

९७ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—

१ सोत्थिते य अमोहे य,
हिमव मदरे तहा ।
रुअगे रुयगुत्तमे चदे,
अट्ठमे य सुदसणे ॥

१ स्वस्तिकश्च अमोहश्च,
हिमवान् मन्दरस्तथा ।
रुचक रुचकोत्तम चन्द्र,
अष्टमश्च सुदर्शन ॥

१ स्वस्तिक, २ अमोह, ३ हिमवान्,
४ मन्दर, ५ रुचक, ६ रुचकोत्तम,
७ चन्द्र, ८ सुदर्शन ।

तत्थ ण अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसति, त जहा—

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिका महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—

वहा महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती हैं—

२ इलादेवी सुरादेवी,
पुढवी पउमावती ।
एगणासा णवमिया,
सीता भद्दा य अट्ठमा ॥

२ इलादेवी सुरादेवी,
पृथ्वी पद्मावती ।
एकनाशा नवमिका,
शीता भद्रा च अष्टमी ॥

१ इलादेवी, २ सुरादेवी, ३ पृथ्वी,
४ पद्मावती ५ एकनासा, ६ नवमिका,
७ सीता, ८ भद्रा ।

९८. जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रुअगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, त जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—

१ रयण-रयणुच्चए या,
सव्वरयण रयणसचए चेव ।
विजये य वेजयते,
जयते अपराजिते ॥

१ रत्न रत्नोच्चयश्च,
सर्वरत्न रत्नसचयश्चैव ।
विजयश्च वैजयन्त,
जयन्त अपराजित ॥

१ रत्न, २ रत्नोच्चय, ३ सर्वरत्न,
४ रत्नसञ्चय, ५ विजय, ६ वैजयन्त,
७ जयन्त, ८ अपराजित ।

तत्थ ण अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, त जहा—

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिका महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—

वहा महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती हैं—

२ अलबुसा मिस्सकेसी,
पोंडरिगी य वारुणी।
आसा सव्वगा चेव,
सिरी हिरी चेव उत्तरतो॥

२. अलवुषा मिश्रकेशी,
पौंडरिकी च वारुणी।
आशा सर्वगा चैव,
श्री ह्री चैव उत्तरत ॥

१ अलवुषा, २ मिश्रकेशी,
३ पौण्डरिकी ४ वारुणी, ५ आशा,
६ सर्वगा, ७ श्री, ८ ह्री।

महत्तरिया-पद

९९. अट्ठ अहेलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

सगहणी-गाहा

१ भोगंकरा भोगवती,
सुभोगा भोगमालिणी।
सुवच्छा वच्छमित्ता य,
वारिसेणा बलाहगा॥

महत्तरिका-पदम्

अष्ट अधोलोकवास्तव्या दिशाकुमारी-महत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. भोगकरा भोगवती,
सुभोगा भोगमालिनी।
सुवत्सा वत्समित्रा च,
वारिषेणा बलाहका॥

महत्तरिका-पद

९९ अधोलोक मे रहने वाली दिशाकुमारियो की महत्तरिकाए आठ हैं—

१ भोगकरा, २ भोगवती,
३ सुभोगा, ४ भोगमालिनी,
५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा,
७ वारिषेणा, ८ बलाहका।

१०० अट्ठ उड्ढलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. मेघकरा मेघवती,
सुमेघा मेघमालिणी।
तोयधारा विचित्ता य,
पुप्फमाला अणिंदिता॥

अष्ट ऊर्ध्वलोकवास्तव्या दिशाकुमारी-महत्तरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ मेघकरा मेघवती,
सुमेघा मेघमालिनी।
तोयधारा विचित्रा च,
पुष्पमाला अनिन्दिता॥

१०० ऊचे लोक मे रहने वाली दिशाकुमारियो की महत्तरिकाए आठ हैं—

१ मेघकरा, २ मेघवती,
३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी,
५ तोयधारा, ६ विचित्रा,
७ पुष्पमाला, ८ अनिन्दिता।

कप्प-पद

१०१. अट्ठ कप्पा तिरिय-मिस्सोववण्णगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे, °ईसाणे, सणकुमारे, माहिंदे, बंभलोगे, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे।

१०२ एतेसु ण अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इंदा पण्णत्ता त जहा—
सक्के, °ईसाणे, सणकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे।

कल्प-पदम्

अष्ट कल्पा तिर्यग्-मिश्रोपपन्नका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार।

एतेषु अष्टसु कल्पेषु अष्टेन्द्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शक्र, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, लातक, महाशुक्र, सहस्रार।

कल्प-पद

१०१ आठ कल्प [देवलोक] तिर्यग्-मिश्रोपपन्नक [तिर्यञ्च और मनुष्य दोनो के उत्पन्न होने योग्य] हैं—
१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार।

१०२ इन आठ कल्पो मे आठ इन्द्र हैं—
१ शक्र, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार।

१०३ एतेसि ण अट्ठण्ह इदाण अट्ठ परियाणिया विमाणा पण्णत्ता, त जहा—
पालए, पुप्फए, सोमणसे,
सिरिवच्छे, णदियावत्ते,
कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे।

एतेषा अष्टाना इन्द्राणा अष्ट पारियानिकानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त्त,कामक्रम,प्रीतिमन ,मनोरमम्।

१०३ इन आठ इन्द्रो के आठ पारियानिक विमान[१] हैं—
१ पालक, २ पुष्पक, ३ सौमनस, ४ श्रीवत्स, ५ नन्द्यावर्त्त, ६ कामक्रम, ७ प्रीतिमन, ८ मनोरम।

पडिमा-पदं

१०४ अट्ठट्ठमिया ण भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइदिएहि दोहि य अट्ठासीतेहि भिक्खासतेहि अहासुत्त •अहाअत्थ अहातच्च अहामग्ग अहाकप्प सम्म काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° अणुपालितावि भवति।

प्रतिमा-पदम्

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चतुष्षष्ठिक रात्रिदिवैः द्वाभ्या च आष्टाशीतैः भिक्षाशतैः यथासूत्र यथार्थं यथातत्त्व यथामार्गं यथाकल्प सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता अनुपालिता अपि भवति।

प्रतिमा-पद

१०४ अष्टाष्टमिका (८×८) भिक्षु-प्रतिमा ६४ दिन-रात तथा २८८ भिक्षादत्तियो द्वारा यथासूत्र, यथार्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित,पूरित, कीर्तित और अनुपालित की जाती है।

जीव-पद

१०५ अट्ठविधा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
पढमसमयणेरइया,
अपढमसमयणेरइया,
•पढमसमयतिरिया,
अपढमसमयतिरिया,
पढमसमयमणुया,
अपढमसमयमणुया,
पढमसमयदेवा,°
अपढमसमयदेवा।

जीव-पदम्

अष्टविधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिका,
अप्रथमसमयनैरयिका,
प्रथमसमयतिर्यञ्च,
अप्रथमसमयतिर्यञ्च,
प्रथमसमयमनुजा,
अप्रथमसमयमनुजा,
प्रथमसमयदेवा,
अप्रथमसमयदेवा।

जीव-पद

१०५ ससारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के हैं—
१ प्रथम समय नैरयिक।
२ अप्रथम समय नैरयिक।
३ प्रथम समय तिर्यञ्च।
४ अप्रथम समय तिर्यञ्च।
५ प्रथम समय मनुष्य।
६ अप्रथम समय मनुष्य।
७ प्रथम समय देव।
८ अप्रथम समय देव।

१०६ अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
णेरइया, तिरिक्खजोणिया,
तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा,
मणुस्सीओ, देवा, देवीओ, सिद्धा।
अहवा—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—

अष्टविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिका, तिर्यग्योनिका,
तिर्यग्योनिक्य,
मनुष्या, मानुष्य, देवा, देव्य, सिद्धा।
अथवा—अष्टविधा, सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१०६ सभी जीव आठ प्रकार के हैं—
१ नैरयिक, २ तिर्यञ्चयोनिक,
३ तिर्यञ्चयोनिकी, ४ मनुष्य,
५ मानुषी, ६ देव, ७ देवी,
८ सिद्ध।
अथवा—सभी जीव आठ प्रकार के हैं—

आभिणिबोहियणाणी, •सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी,° केवलणाणी, मतिअण्णाणी, सुत्तअण्णाणी, विभंगणाणी।

आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मत्यऽज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी।

१ आभिनिवोधिकज्ञानी, २ श्रुतज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ मन पर्यवज्ञानी, ५ केवलज्ञानी, ६ मतिअज्ञानी, ७ श्रुतअज्ञानी, ८ विभगज्ञानी।

संजम-पदं

१०७. अट्ठविधे सजमे पण्णत्ते, त जहा—
पढमसमयसुहुमसंपरागसराग-सजमे,
अपढमसमयसुहुमसपरागसराग-सजमे,
पढमसमयवादरसपरागसराग-सजमे,
अपढमसमयवादरसपरागसराग-सजमे,
पढमसमयउवसतकसायवीतराग-सजमे,
अपढमसमयउवसतकसायवीतराग-सजमे,
पढमसमयखीणकसायवीतराग-सजमे,
अपढमसमयखीणकसायवीतराग-सजमे।

संयम-पदम्

अष्टविध सयम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमसमयसूक्ष्मसपरायसरागसयम,
अप्रथमसमयसूक्ष्मसपरायसरागसयम,
प्रथमसमयवादरसपरायसरागसयम,
अप्रथमसमयवादरसपरायसरागसयम,
प्रथमसमयोपशान्तकषायवीतराग-सयम,
अप्रथमसमयोपशान्तकषायवीतराग-संयम,
प्रथमसमयक्षीणकपायवीतराग-संयम,
अप्रथमसमयक्षीणकषायवीतराग-सयम।

सयम-पद

१०७ सयम के आठ प्रकार हैं—
१ प्रथमसमय सूक्ष्मसपराय सराग-सयम।
२ अप्रथमसमय सूक्ष्मसपराय सराग-सयम।
३ प्रथमसमय वादरसपराय सराग-सयम।
४ अप्रथमसमय वादरसपराय सराग-सयम।
५ प्रथमसमय उपशातकपाय वीतराग-सयम।
६ अप्रथमसमय उपशातकपाय वीतराग-सयम।
७ प्रथमसमय क्षीणकपाय वीतराग-सयम।
८ अप्रथमसमय क्षीणकपाय वीतराग-सयम।

पुढवि-पद

१०८ अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
रयणप्पभा, •सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा,° अहेसत्तमा, ईसिपब्भारा।

१०९ ईसिपब्भाराए, ण पुढवीए बहुमज्झदेसभागे अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेण पण्णत्ते।

पृथिवी-पदम्

अष्ट पृथिव्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमा, अध सप्तमी, ईषत्प्राग्भारा।

ईषत्प्राग्भाराया पृथिव्या बहुमध्यदेशभागे अष्टयोजनिक क्षेत्र अष्ट योजनानि वाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

पृथिवी-पद

१०८ पृथ्विया आठ है—
१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा,
३ वालुकाप्रभा, ४ पकप्रभा,
५ धूमप्रभा, ६ तम प्रभा,
७ अध सप्तमी (महातम प्रभा),
८ ईषत्प्राग्भारा।

१०९ ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बहुमध्यदेशभाग मे आठ योजन लम्बे-चौड़े क्षेत्र की मोटाई आठ योजन की है।

११० ईसिपब्भाराए णं पुढवीए अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—
ईसिति वा, ईसिपब्भाराति वा,
तणूति वा, तणुतणूइ वा,
सिद्धीति वा, सिद्धालएति वा,
मुत्तीति वा, मुत्तालएति वा।

ईषत्प्राग्भाराया पृथिव्या अष्ट नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ईषत् इति वा, ईषत्प्राग्भारेति वा,
तनुरिति वा, तनुतनुरिति वा,
सिद्धिरिति वा, सिद्धालय इति वा,
मुक्तिरिति वा, मुक्तालय इति वा।

११० ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम है—
१ ईषत्, २ ईषत्प्राग्भारा, ३ तनु,
४ तनुतनु, ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय,
७ मुक्ति, ८ मुक्तालय।

अब्भुट्ठेतव्व-पद

१११ अट्ठहिं ठाणेहिं सम्मं घडितव्वं जतितव्वं परक्कमितव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं भवति—
१ असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
२ सुताणं धम्माणं ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
३ णवाणं कम्माणं संजमेणमकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
४ पोराणाणं कम्माणं तवसा विगिंचणताए विसोहणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
५. असंगिहीतपरिजणस्स संगिण्हणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
६ सेहं आयारगोयरं गाहणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
७ गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
८ साहम्मियाणमधिकरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सितो अपक्खग्गाही मज्झत्थभावभूते कहं णु साहम्मिया अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमंतुमा? उवसामणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।

अभ्युत्थातव्य-पदम्

अष्टाभिः स्थानैः सम्यग् घटितव्यं यतितव्यं पराक्रमितव्यं अस्मिन् च अर्थे नो प्रमदितव्यं भवति—
१ अश्रुतानां धर्माणां सम्यक् श्रवणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
२ श्रुतानां धर्माणां अवग्रहणतायै उपधारणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
३. नवानां कर्मणां संयमेन अकारणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
४. पुराणानां कर्मणां तपसा विवेचनतायै विशोधनतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
५. असंगृहीतपरिजनस्य संग्रहणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
६. शैक्षं आचारगोचरं ग्राहणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
७ ग्लानस्य अग्लान्या वैयावृत्यकरणतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।
८ सार्धर्मिकानां अधिकरणे उत्पन्ने तत्र अनिश्रितोपाश्रितो अपक्षग्राही मध्यस्थभावभूतः कथं नु सार्धर्मिकाः अल्पशब्दाः अल्पझंझाः अल्पतुमन्तुमाः? उपशमनतायै अभ्युत्थातव्यं भवति।

अभ्युत्थातव्य-पद

१११ साधक आठ वस्तुओं के लिए सम्यक् चेष्टा[४] करे, सम्यक् प्रयत्न[४] करे, सम्यक् पराक्रम[४] करे और इन आठ स्थानों में किंचित् भी प्रमाद न करे—
१ अश्रुत धर्मों को सम्यक् प्रकार से सुनने के लिए जागरूक रहे।
२ सुने हुए धर्मों के मानसिक ग्रहण और उनकी स्थिर स्मृति के लिए जागरूक रहे।
३ संयम के द्वारा नए कर्मों का निरोध करने के लिए जागरूक रहे।
४ तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों का विवेचन—पृथक्करण और विशोधन करने के लिए जागरूक रहे।
५ असंगृहीत परिजनों—शिष्यों को आश्रय देने के लिए जागरूक रहे।
६. शैक्ष—नव-दीक्षित मुनि को आचारगोचर[५] का सम्यग् बोध कराने के लिए जागरूक रहे।
७ ग्लान की अग्लानभाव से वैयावृत्य करने के लिए जागरूक रहे।
८ सार्धर्मिकों में परस्पर कलह उत्पन्न होने पर—ये मेरे सार्धर्मिक किस प्रकार अपशब्द, कलह और तू-तू मैं-मैं से मुक्त हों—ऐसा चिन्तन करते हुए लिप्सा और अपेक्षा-रहित होकर, किसी का पक्ष न लेकर, मध्यस्थ-भाव को स्वीकार कर उसे उपशांत करने के लिए जागरूक रहे।

विमाण-पदं

११२ महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसताइ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

विमान-पदम्

महाशुक्र-सहस्रारेषु कल्पेषु विमानानि अष्ट योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

विमान-पद

११२ महाशुक्र और सहस्रार कल्पो मे विमान आठ सौ योजन ऊचे है।

वादि-पदं

११३ अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसया वादीण सदेवमणुयासुराए परिसाए वादे अपराजिताण उक्कोसिया वादिसपया हुत्था।

वादि-पदम्

अर्हत. अरिष्टनेमे अष्टशतानि वादिना सदेवमनुजासुराया परिषदि वादे अपराजिताना उत्कर्षिता वादिसपत् अभवत्।

वादि-पद

११३ अर्हत् अरिष्टनेमि के आठ सौ साधु वादी थे। वे देव, मनुष्य और असुर—किसी की भी परिषद मे वादकाल मे पराजित नहीं होते थे। यह उनकी उत्कृष्टवादी सम्पदा थी।

केवलिसमुग्घात-पदं

११४ अट्ठसमइए केवलिसमुग्घाते पण्णत्ते, त जहा—
पढमे समए दड करेति,
बीए समए कवाड करेति,
ततिए समए मथ करेति,
चउत्थे समए लोग करेति,
पचमे समए लोग पडिसाहरति,
छट्ठे समए मथ पडिसाहरति,
सत्तमे समए कवाड पडिसाहरति,
अट्ठमे समए दड पडिसाहरति।

केवलिसमुद्घात-पदम्

अष्ट सामयिक केवलिसमुद्घात प्रज्ञप्त, तद्यथा—
प्रथमे समये दण्ड करोति,
द्वितीये समये कपाट करोति,
तृतीये समये मन्थ करोति,
चतुर्थे समये लोक करोति,
पञ्चमे समये लोक प्रतिसहरति,
षष्ठे समये मन्थ प्रतिसहरति,
सप्तमे समये कपाट प्रतिसहरति,
अष्टमे समये दण्ड प्रतिसहरति।

केवलिसमुद्घात-पद

११४ केवली-समुद्घात[१] आठ समय का होता है—
१ केवली पहले समय मे दण्ड करते हैं।
२ दूसरे समय मे कपाट करते हैं।
३ तीसरे समय मे मथान करते है।
४ चौथे समय मे समूचे लोक को भर देते हैं।
५ पाचवें समय मे लोक का—लोक मे परिव्याप्त आत्म-प्रदेशो का सहरण करते हैं।
६ छठे समय मे मथान का सहरण करते हैं।
७ सातवें समय मे कपाट का सहरण करते हैं।
८ आठवें समय मे दण्ड का सहरण करते हैं।

अणुत्तरोववाइय-पदं

११५ समणस्स ण भगवतो महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाण गतिकल्लाणाण °ठितिकल्लाणाण,° आगमेसिभद्दाण उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसपया हुत्था।

अनुत्तरोपपातिक-पदम्

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य अष्ट शतानि अनुत्तरोपपातिकाना गतिकल्याणाना स्थितिकल्याणाना आगमिष्यद्भद्राणा उत्कर्षिता अनुत्तरोपपातिकसपत् अभवत्।

अनुत्तरोपपातिक-पद

११५ श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होने वाले साधु आठ सौ थे। वे कल्याण-गतिवाले, कल्याण-स्थिति वाले तथा भविष्य मे निर्वाण प्राप्त करने वाले थे। वह उनकी उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी।

वाणमंतर-पद

११६ अट्ठविधा वाणमतरा देवा पण्णत्ता, त जहा—
पिसाया, भूता, जक्खा, रक्खसा, किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गंधव्वा।

११७ एतेसि ण अट्ठविहाण वाणमतर देवाण अट्ठ चेइयरुक्खा पण्णत्ता, त जहा—

सगहणी-गाहा

१ कलवो उ पिसायाण,
वडो जक्खाण चेइय।
तुलसी भूयाण भवे,
रक्खसाण च कडओ ॥
२ असोओ किण्णराण च,
किंपुरिसाणं तु चपओ।
णागरुक्खो भुयगाण,
गधव्वाण य तेंदुओ ॥

वानमन्तर-पदम्

अष्टविधा वानमन्तरा देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पिशाचा, भूता, यक्षा, राक्षसा, किन्नरा, किंपुरुषा, महोरगा, गन्धर्वा।

एतेषा अष्टविधाना वानमन्तरदेवाना अष्ट चैत्यरुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ कदम्बस्तु पिशाचाना,
वटो यक्षाना चैत्यम्।
तुलसी भूताना भवेत्,
राक्षसाना च काण्डक ॥
२ अशोक किन्नराणा च,
किंपुरुषाणा तु चम्पक।
नागरुक्ष भुजङ्गाना,
गन्धर्वाणा तु तिन्दुक ॥

वानमन्तर-पद

११६ वाणमतर आठ प्रकार के हैं—
१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किंपुरुष, ७ महोरग, ८ गन्धर्व।

११७ इन आठ वाणमतर देवो के चैत्यवृक्ष आठ हैं—

१ पिशाचो का चैत्यवृक्ष कदव है।
२ यक्षो का चैत्यवृक्ष वट है।
३ भूतो का चैत्यवृक्ष तुलसी है।
४ राक्षसो का चैत्यवृक्ष काण्डक है।
५ किन्नरो का चैत्यवृक्ष अशोक है।
६ किंपुरुषो का चैत्यवृक्ष चम्पक है।
७ महोरगो का चैत्यवृक्ष नागवृक्ष है।
८. गधर्वों का चैत्यवृक्ष तेंदुक—आबनूस है।

जोइस-पदं

११८ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसते उड्ढमबाहाए सूरविमाणे चार चरति।

११९ अट्ठ णक्खत्ता चदेण सद्धि पमद्द जोग जोएति, त जहा—
कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विसाहा, अणुराधा, जेट्ठा।

ज्योतिष-पदम्

अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् अष्टयोजनशत ऊर्ध्वअबाधया सूरविमान चार चरति।

अष्ट नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्ध प्रमर्द योग योजयन्ति, तद्यथा—
कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा।

ज्योतिष-पद

११८ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम [समतल] रमणीय भूभाग से आठ सौ योजन की ऊचाई पर सूर्य विमान गति करता है।

११९ आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमद [स्पर्श] योग[१०] करते हैं—
१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ पुनर्वसु, ४ मघा, ५ चित्रा, ६ विशाखा, ७ अनुराधा, ८ ज्येष्ठा।

दार-पद

१२०. जबुद्दीवस्स ण दीवस्स दारा अट्ठ जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

द्वार-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य द्वाराणि अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

द्वार-पद

१२० जम्बूद्वीप द्वीप के द्वार आठ-आठ योजन ऊचे हैं।

१२१ सव्वेसिंपि, ण दीवसमुद्दाण दारा अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

सर्वेषामपि द्वीपसमुद्राणा द्वाराणि अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१२१ सभी द्वीप-समुद्रो के द्वार आठ-आठ योजन ऊचे हैं।

बंधठिति-पदं

बन्धस्थिति-पदम्

बन्धस्थिति-पद

१२२ पुरिसवेयणिज्जस्स ण कम्मस्स जहण्णेण अट्ठसवच्छराइ बघठिति पण्णत्ता।

पुरुषवेदनीयस्य कर्मण जघन्येन अष्ट सवत्सराणि वन्धस्थिति प्रज्ञप्ता।

१२२ पुरुषवेदनीय कर्म की वध-स्थिति कम से कम आठ वर्षों की है।

१२३ जसोकित्तीणामस्स ण कम्मस्स जहण्णेण अट्ठ मुहुत्ताइ बधठिती पण्णत्ता।

यशोकीर्त्तिनाम्न कर्मण जघन्येन अष्ट मुहूर्त्ता वन्धस्थिति प्रज्ञप्ता।

१२३ यश कीर्ति नाम कर्म की वध-स्थिति कम से कम आठ मुहूर्त्त की है।

१२४ उच्चागोतस्स ण कम्मस्स •जहण्णेण अट्ठ मुहुत्ताइ बधठिती पण्णत्ता।°

उच्चगोत्रस्य कर्मण जघन्येन अष्ट मुहूर्त्ता बन्धस्थिति प्रज्ञप्ता।

१२४ उच्च गोत्र कर्म की वध-स्थिति कम से कम आठ मुहूर्त्त की है।

कुलकोडि-पदं

कुलकोटि-पदम्

कुलकोटि-पद

१२५. तेइदियाण अट्ठ जाति-कुलकोडि-जोणीपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

त्रीन्द्रियाणा अष्ट जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१२५ त्रीन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह मे होने वाली कुल-कोटिया आठ लाख हैं[८]।

पावकम्म-पदं

पापकर्म-पदम्

पापकर्म-पद

१२६ जीवा ण अट्ठठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—
पढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते,
•अपढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते,
पढमसमयतिरियणिव्वत्तिते,
अपढमसमयतिरियणिव्वत्तिते,
पढमसमयमणुयणिव्वत्तिते,
अपढमसमयमणुयणिव्वत्तिते,
पढमसमयदेवणिव्वत्तिते,°
अपढमसमयदेवणिव्वत्तिते।

एव—चिण-उवचिण-•बध
उदीर-वेद तह° णिज्जरा चेव।

जीवा अष्टस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिकनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयनैरयिकनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयतिर्यग्निर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयतिर्यग्निर्वर्तितान्,
प्रथमसमयमनुजनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयमनुजनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयदेवनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयदेवनिर्वर्तितान्।

एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव।

१२६ जीवों ने आठ स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप मे चय किया है, करते हैं और करेंगे—
१ प्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित पुदगलों का।
२ अप्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित पुद्गलो का।
३ प्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित पुद्गलो का।
४ अप्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित पुद्गलों का।
५ प्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्गलो का।
६ अप्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्गलो का।
७ प्रथमसमय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का।
८ अप्रथमसमय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का।
इसी प्रकार उनका उपचय, वन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पोग्गल-पदं

१२७ अट्ठपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

१२८ अट्ठपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव अट्ठगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

अष्टप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता।

अष्टप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता यावत् अष्टगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।

पुद्गल-पद

१२७ अष्टप्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।

१२८ अष्टप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।

आठ समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।

आठ गुण काले पुद्गल अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के आठ गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान—८

१ एकलविहार प्रतिमा (सू० १)

एकलविहार प्रतिमा का अर्थ है—अकेला रहकर साधना करने का सकल्प। जैन परपरा के अनुसार साधक तीन स्थितियो मे अकेला रह सकता है[1]—

१ एकाकिविहार प्रतिमा स्वीकार करने पर।

२ जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार करने पर।

३ मासिक आदि भिक्षु प्रतिमाए स्वीकार करने पर।

प्रस्तुत सूत्र मे एकाकिविहार प्रतिमा स्वीकार करने की योग्यता के आठ अग वतलाए गए हैं। वे ये हैं[2]—

१ श्रद्धावान्—अपने अनुष्ठानो के प्रति पूर्ण आस्थावान्। ऐसे व्यक्ति का सम्यक्त्व और चारित्र मेरु की भाति अडोल होता है।

२ सत्य पुरुष—सत्यवादी। ऐसा व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा के पालन में निडर होता है, सत्याग्रही होता है।

३ मेधावी—श्रुतग्रहण की मेधा से सम्पन्न।

४ वहुश्रुत—जघन्यत नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु को तथा उत्कृष्टत असम्पूर्ण दस पूर्वों को जानने वाला।

५ शक्तिमान्—तपस्या, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और वल इन पाँच तुलाओ से जो अपने आपको तोल लेता है उसे शक्तिमान् कहा जाता है। छह मास तक भोजन न मिलने पर भी जो भूख से पराजित न हो, ऐसा अभ्यास तपस्या-तुला है। भय और निद्रा को जीतने का अभ्यास सत्त्व-तुला है। उन्हे जीतने के लिए वह पहली रात को, सव साधुओं के सो जाने पर, उपाश्रय में ही कायोत्सर्ग करता है। दूसरी वार उपाश्रय से वाहर, तीसरे चरण मे किसी चौक में, चौथे मे शून्य घर मे और पाचवें क्रम मे श्मशान मे रात मे कायोत्सर्ग करता है। तीसरी तुला है सूत्र-भावना। वह सूत्र के परावर्तन से उच्छ्वास आदि काल के भेद को जानने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। एकत्व-तुला के द्वारा वह आत्मा को शरीर से भिन्न जानने का अभ्यास कर लेता है। वल-तुला के द्वारा वह मानसिक वल को इतना विकसित कर लेता है कि जिससे भयकर उपसर्ग उपस्थित होने पर भी उनसे विचलित नही होता।

जो साधक जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार करता है उसके लिए ये पाच तुलाए हैं। इनमें उत्तीर्ण होने पर ही वह जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार कर सकता है।

६ अल्पाधिकरण—उपशान्त कलह की उदीरणा तथा नए कलहो का उद्भावन न करने वाला।

७ धृतिमान्—अरति और रति में समभाव रखने वाला तथा अनुलोम और प्रतिलोम उपसर्गों को सहने मे समर्थ।

८ वीर्यसपन्न—स्वीकृत साधना से सतत उत्साह रखने वाला।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९५ एकाकिनो विहारो—ग्रामादिचर्या स एव प्रतिमाभिग्रह' एकाकिविहार प्रतिमा जिनकल्प प्रतिमा मासिक्यादिका या भिक्षुप्रतिमा।

२ वही, पत्र, ३९५।

२. योनि-संग्रह (सू० २)

योनि-संग्रह का अर्थ है—प्राणियो की उत्पत्ति के स्थानों का संग्रह।

जीव यहा से मरकर जहा उत्पन्न होता है, उसे 'गति' और जहाँ से आकर यहा उत्पन्न होता है, उसे 'आगति' कहते हैं।

अंडज, पोतज और जरायुज—इन तीन प्रकार के जीवो की गति और आगति आठ-आठ प्रकार की होती है।

शेष रसज, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक [नरक और देव] जीवो की गति और आगति आठ प्रकार की नहीं होती। ये नारक या देवयोनि मे उत्पन्न नही होते, क्योंकि इनमे (नारक तथा देवयोनि मे) केवल पञ्चेन्द्रिय जीव ही उत्पन्न होते हैं। औपपातिक जीव भी रसज आदि योनियो मे उत्पन्न नही होते। वे केवल पञ्चेन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवो की योनियो मे ही उत्पन्न होते है।[1]

३ (सू० १०)

जो व्यक्ति एक भी माया का आचरण कर उसकी विशुद्धि नही करता उसके तीनों जन्म गर्हित होते हैं—

१ उसका वर्तमान जीवन गर्हित होता है। लोग स्थान-स्थान पर उसकी निन्दा करते हैं और उसे बुरा-भला कहते हैं। वह अपने दोष के कारण सदा भीत और उद्विग्न रहता है तथा अपने प्रकट और प्रच्छन्न दोषो का छुपाता रहता है। इन आचरणो से वह अपना विश्वास खो देता है। इस प्रकार उसका वर्तमान जीवन निन्दित हो जाता है।

२ उसका उपपात (देव जीवन) गर्हित होता है। मायावी व्यक्ति मरकर यदि देवयोनि मे उत्पन्न होता है तो वह किल्विषिक आदि नीच देवो के रूप मे उत्पन्न होता है।

३ उसका आयाति—जन्म गर्हित होता है। मायावी किल्विषिक आदि देवस्थानों से च्युत होकर पुन मनुष्य जन्म में आता है तब वह गर्हित होता है, जनता द्वारा सम्मानित नहीं होता।[2]

जो मायावी अपनी माया की विशुद्धि नही करता, उसके अनर्थों की ओर संकेत करते हुए वृत्तिकार ने बताया है कि—

जो व्यक्ति लज्जा, गौरव या विद्वता के मद से अपने अपराध को गुरु के समक्ष स्पष्ट नहीं करते, वे कभी आराधक नहीं हो सकते।

जितना अनर्थ शस्त्र, विष, दुष्प्रयुक्त वैताल (भूत) और यत्र तथा क्रुद्ध सर्प नहीं करता उतना अनर्थ आत्मा मे रहा हुआ माया-शल्य करता है। इसके अस्तित्व-काल मे सम्बोधि अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है और प्राणी अनन्त जन्म-मरण करता है।[3]

प्रस्तुत सूत्र में माया का आचरण कर उसकी आलोचना करने और न करने से होने वाले अनर्थों का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। वृत्तिकार ने आलोचना करने वालो के कुछेक गुणो की ओर सकेत किया है। गुण मनोविज्ञान की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९५।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९७

लज्जाए गारवेण य बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं।
जे न कहिंति गुरूण न हु ते आराहगा होंति॥
नवि त सत्य व विस व दुप्पउत्तो व कुणइ वेयालो।
जत व दुप्पउत्त सप्पो व पमाइओ कुद्धो॥
ज कुणइ भावसल्ल अणुद्धिय उत्तमट्ठकालम्मि।
दुल्लहबोहीयत्त अणतससारियत्त वा॥

आलोचना से आठ गुण निष्पन्न होते हैं[1]—

१ लघुता—मन अत्यन्त हल्का हो जाता है।
२ प्रसन्नता—मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है।
३ आत्मपरनियन्त्रिता—स्व और पर नियन्त्रण सहज फलित होता है।
४ आर्जव—ऋजुता बढ़ती है।
५ शोधि—दोषो की विशुद्धि होती है।
६ दुष्करकरण—दुष्कर कार्य करने की क्षमता बढ़ती है।
७ आदर—आदर भाव बढता है।
८ नि शल्यता—मानसिक गाठें खुल जाती हैं और नई गाठें नही घुलती, ग्रन्थि-भेद हो जाता है।

४ नलाग्नि (सू० १०)

इसका अर्थ है—नरकट की अग्नि । नरकट पतली-लम्बी पत्तियो तथा पतले गाठदार डठल वाला एक पौधा होता है।

५-७ शुण्डिका भण्डिका गोलिका का चूल्हा (सू० १०)

'सोडिय' पेटी के आकार का एक भाजन होता है जो मद्य पकाने के लिए, आटा मिझाने के काम आता है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'कजावा' किया है।[2]

लिछाणि का अर्थ है—चूल्हा। वृत्तिकार ने प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए 'गोलिय' 'सोंडिय', और भडिय' को अग्नि के आश्रयस्थान—विभिन्न प्रकार के चूल्हे माना है।[3] कुछ व्याख्याकारो ने इन्हें विभिन्न देशो मे रूढ आटे को पकाने वाली अग्नियो के प्रकार माना है।[4] वृत्तिकार ने वैकल्पिक अर्थ करते हुए 'भडिका' को छोटी हाडी और 'गोलिका' को बडी हाडी माना है।[5]

८ बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् (सू० १०)

देवताओ के कर्मकर स्थानीय देव और देविया बाह्य परिषद् की सदस्य होती हैं तथा पुत्र, कलत्र स्थानीय देव और देविया आभ्यन्तर परिषद् के सदस्य होते हैं।[6]

९. आयु, भव और स्थिति के क्षय (सू० १०)

आगमो मे मृत्यु के वर्णन मे प्राय ये तीन शब्द सयुक्त रूप से प्रयुक्त होते हैं। ऐसे तो ये तीनों शब्द एकार्थक हैं, किन्तु इनमे कुछ भेद भी है।

आयुक्षय—मनुष्य आदि की पर्याय के निमित्तभूत आयुष्य कर्म के पुद्गलो का निर्जरण।
भवक्षय—वर्तमान भव (पर्याय) का सर्वथा विनाश।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९।
लहुयाल्हाइयजणणं अप्पपरनियत्ति अज्जव सोही।
दुक्करकरण आढा निस्सल्लत्त च सोहिगुणा॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९८ सुण्डिका पिटकाकाराणि सुरा-पिष्टस्वेदनभाजनानि कमेलसयो वा समाभ्यन्ते।

३ वही, पत्र ३९८ उक्तं च वृद्धै—गोलियसोंडियभडिय-लिछाणि अग्नेराश्रया।

४ वही, पत्र ३९८ अन्यैस्तु देशभेदरूढ्या एते पिष्टपाच-काग्न्यादि भेदा इत्युक्तम्।

५ वही, पत्र ३९८ भडिका—स्थाल्य वा एव महत्यो गोलिका।

६ वही, पत्र ३९८ देवलोकेपु बाह्या अप्रत्यासन्ना दासा-दिवत् अभ्यन्तरा प्रत्यासन्ना पुत्रकलत्रादिवत् परिषत् परि-वारो भवति।

स्थितिक्षय—आयु स्थिति के बंध का क्षय अथवा वर्तमान भव के कारणभूत सभी कर्मों का क्षय।[1]

१० अंतकुल कृपणकुल (सू० १०)

यहा छह कुलो का नामोल्लेख हुआ है। ये कुल व्यक्तिवाची नही किन्तु समूहवाची हैं। इनमे उस समय की सामाजिक व्यवस्था का एक रूप सामने आता है। वृत्तिकार ने उनकी व्याख्या इस प्रकार की है[2]—

अंतकुल—म्लेच्छकुल। वरुट, छिपक आदि का कुल।

प्रांतकुल—चाडाल आदि के कुल।

तुच्छकुल—छोटे परिवार वाले कुल, तुच्छ विचार वाले कुल।

दरिद्रकुल—निर्धनकुल।

भिक्षाककुल—भिक्षा से जीवन-निर्वाह करने वाले भिखमंगों के कुल।

कृपणकुल—दान द्वारा आजीविका चलाने वाले कुल, नट, नग्नाचार्य आदि के कुल जो खेल-तमाशा आदि दिखाकर आजीविका चलाते हैं।

११ दिव्यद्युति (सू० १०)

सामान्यत आगमो मे यह पाठ 'जुई या जुति' प्राप्त होता है। उसका अर्थ है 'द्युति'। वृत्तिकार ने जिस आदर्श को मानकर व्याख्या की है, उसमे उन्हे 'जुत्ति' पाठ मिला है। उसके आधार पर उन्होंने इसका संस्कृत पर्याय 'युक्ति' और उसका अर्थ—अन्यान्य 'भांतों' (विभागों वाला) किया है।[3]

१२ दिव्यप्रभा दिव्यलेश्या (सू० १०)

प्रभा—माहात्म्य।

छाया—प्रतिबिम्ब।

अर्चि—शरीर से निर्गत तेज की ज्वाला।

तेज—शरीरस्थ कांति।

लेश्या—शुक्ल आदि अन्तःस्थ परिणाम।

१३ उद्योतित प्रभासित (सू० १०)

उद्योतित का अर्थ है—स्थूल वस्तुओं को प्रकाशित करना और प्रभासित का अर्थ है—सूक्ष्म वस्तुओं को प्रकाशित करना ऐसे ये दोनों शब्द एकार्थक भी हैं।[4]

१४ आहत नाट्यों, गीतों (सू० १०)

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं[5]—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९८ देवलोकादवधे आयु कर्म्मपुद्गलनिर्जरणेन, भवक्षयेण—आयु कर्मादिनिबन्धनदेवपर्यायनाशेन, स्थितिक्षयेण—आयु स्थितिबन्धक्षयेण देवभवनिबन्धनशेषकम्मणा वा।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र ३९८ अन्तकुलानि—वरुटछिपकादीनां प्रान्तकुलानि—चण्डालादीनां तुच्छकुलानि—अल्पमानुषाणि अगम्भीराशयानि वा दरिद्रकुलानि—अनीश्वराणि कृपणकुलानि—तर्क्कणवृत्तीनि नटनग्नाचार्यादीना भिक्षाककुलानि—भिक्षणवृत्तीनि।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९ युक्त्या—अन्यान्यभक्तिभिस्तया विविधद्रव्ययोजनेन।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९ उद्योतयमान—स्थूलवस्तूपदर्शनत प्रभासयमानस्तु—सूक्ष्मवस्तूपदर्शनत इति, एकार्थिकत्वेऽपि चैतेषां न दोष।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९

(क) अहत —अनुबद्धं रसस्यैवद्विशेषणं नाट्य नृत्त तेन युक्तं गीत नाट्यगीतम्।

(ख) अथवा 'आहय' त्ति आख्यानकप्रतिबद्धं यन्नाट्य तेन युक्तं यत् तद् गीतम्।

१ गायनयुक्त नृत्य ।
२ आख्यानक (कथानक) प्रतिवद्ध नाट्य और उसके उपयुक्त गीत ।

१५ (सू० १४)

प्रस्तुत सूत्र मे लोकस्थिति के आठ प्रकारों मे छठा प्रकार है—'जीव कर्म पर आधारित है' तथा आठवा प्रकार है—'जीव कर्म के द्वारा सगृहीत है ।' ये दोनो विवक्षा से प्रतिपादित हुए हैं। पहले मे जीवो के अपग्राहकत्व के रूप मे कर्मों का आधार विवक्षित है और दूसरे में कर्म जीवों को बाधने वाले के रूप मे विवक्षित है ।[1]

इसी प्रकार पाचवें और सातवें प्रकार मे जीव और पुद्गल एक-दूसरे के उपकारी हैं, इसलिए उन्हे एक-दूसरे पर आधारित कहा है। तथा वे परस्पर एक-दूसरे से वधे हुए हैं, इसलिए उन्हे एक-दूसरे द्वारा सगृहीत कहा है ।

१६ गणि सपदा (सू० १५)

प्रस्तुत सूत्र में गणी—आचाय की आठ प्रकार की सम्पदाओ का उल्लेख है। दशाश्रुतस्कध [दशा ४] मे इन सपदाओ का पूरा विवरण प्राप्त होता है। वहा प्रत्येक सपदा के चार-चार प्रकार वतलाए हैं।

स्थानाग के वृत्तिकार ने इनके भेदों का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है ।[2] वह इस प्रकार है—

१ आचार सपदा [सयम की समृद्धि]—
  १ सयमध्रुवयोगयुक्तता—चारित्र में सदा समाधियुक्त होना ।
  २ असप्रग्रह—जाति, श्रुत आदि मदो का परिहार ।
  ३ अनियतवृत्ति—अनियत विहार । । व्यवहार भाष्य मे इसका अर्थ अनिकेत भी किया है ।[3]
  ४ वृद्धशीलता—शरीर और मन की निर्विकारता, अचचलता ।

२ श्रुत सपदा [श्रुत की समृद्धि]—
  १ वहुश्रुतता—अग और उपांग श्रुत मे निष्णातता, युगप्रधान पुरुष ।
  २ परिचितसूत्रता—आगमों से चिर परिचित होना । व्यवहार भाष्य में वताया है कि जो व्यक्ति उत्क्रम, क्रम आदि अनेक प्रकार से अपने नाम की तरह श्रुत से परिचित होता है उसकी उस निपुणता को परिचितसूत्रता कहा जाता है ।[4]
  ३ विचित्रसूत्रता—स्व और पर दोनो परम्पराओ के ग्रन्थो मे निपुणता । व्यवहार भाष्य मे इसके साथ-साथ इसका अर्थ उत्सर्ग और अपवाद को जाननेवाला भी किया है ।[5]
  ४ घोपविशुद्धिकर्त्ता—अपने शिष्यों को सूत्र उच्चारण का स्पष्ट अभ्यास कराने मे समर्थता ।

३ शरीर सपदा [शरीर सौन्दर्य]—
  १ आरोहपरिणाहयुक्तता—आरोह का अर्थ—ऊँचाई और परिणाह का अर्थ है—विशालता । इस सपदा का अर्थ है—शरीर की उचित ऊचाई और विशालता से सम्पन्न होना ।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०० षष्ठपदे जीवोपग्राहकत्वेन कर्म्मण आधारता विवक्षितेह तु तस्यैव जीवबन्धनतेति विशेष ।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०१ ।

३ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २५८, पत्र ३७
अणिययचारी अणिययवित्ती अगिहितो विहोइ अणि-केता ।

४ वही, भाष्यगाथा २६१, पत्र ३८
सगनामं व परिचिय उक्कमओक्कमतो बहूहिं विगमेहिं ।

५ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २६१, पत्र ३८
ससमयपरसमएहिं य उस्सग्गोववायतो चित्त ॥

२ अनवत्रपता—अलज्जनीय अगवाला होना। व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ है—अहीनसर्वाङ्ग—जिमके मभी अग अहीन हों—पूर्ण हो।[1]

३ परिपूर्ण इन्द्रियता—पाचो इन्द्रिया की परिपूर्णता और स्वस्थता।

४ स्थिरसहननता—प्रथम महनन—वज्रऋपभनाराच सहनन से युक्त।[2]

४ वचन सपदा [वचन-कौशल]—

१ आदय वचनता—जिसके वचनो को सभी स्वीकार करते हो।

२ मधुर वचनता—व्यवहारभाष्य मे इसके तीन अर्थ किए।[3]

१ अर्थयुक्तवचन।

२ अपरुपवचन।

३ क्षीरास्रव आदि लब्धियुक्त वचन।

३ अनिश्रितवचनता—मध्यस्थ वचन।

व्यवहारभाष्य में इसके दो अर्थ किए हैं[4]—

१ जो वचन क्रोध आदि मे उत्पन्न न हो।

२ जो वचन राग-द्वेप युक्त न हो।

४ असदिग्धवचनता—व्यवहारभाष्य मे इसके तीन अर्थ किए हैं—[5]

१ अव्यक्तवचन।

२ अस्पष्ट अर्थ वाला वचन।

३ अनेक अर्थों वाला वचन।

५ वाचना मपदा [अध्यापन-कौशल]—

१ विदित्वोद्देशन—शिष्य की योग्यता को जानकर उद्देशन करना।

२ विदित्वा समुद्देशन—शिष्य की योग्यता को जानकर समुद्देशन करना।

३ परिनिर्वाप्यवाचना—पहले दी गई वाचना को पूर्ण हृदयगम कराकर आगे की वाचना देना।

४ अर्थ निर्यापणा—अर्थ के पौर्यापर्य का बोध कराना।

६ मति सपदा [बुद्धि-कौशल]—

१ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय ४ धारणा।

७ प्रयोग सपदा [वाद-कौशल]—

१ आत्म परिज्ञान—वाद या धर्मकथा मे अपने सामर्थ्य का परिज्ञान।

२ पुरुप परिज्ञान—वादी के मत का ज्ञान, परिपद् का ज्ञान।

३ क्षेत्र परिज्ञान—वाद करने के क्षेत्र का ज्ञान।

४ वस्तु परिज्ञान—वाद-काल में निर्णायक के रूप मे स्वीकृत सभापति आदि का ज्ञान।

व्यवहारभाष्य में इसके दो अर्थ किए हैं।[6]

---

१ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २६५, पत्र ३८
तवुलजाए धाऊ मलज्जणीयो महीणसव्वंगो।

२ वही, भाष्यगाथा २६६, पत्र ३८ पढमगसघयणथिरो ।

३ वही, भाष्यगाथा २६७, २६८, पत्र ३६
मत्यावगाढ मवे महुरं॥
अहवा मपरूसवयणा खीरासवमादिलद्धिजुत्तो वा।

४ वही, भाष्यगाथा २६८, पत्र ३६
निस्सिय कोहाईहिं अहवा वीयरागदोसेहिं॥

५ वही, भाष्यगाथा २६६, पत्र ३६.
मव्वत्त मफुडत्य मत्य वहुत्ता व होति सदिद्धं।
विवरीयमसदिद्धं वयणे ॥

६ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २८७, पत्र, ४१
मत्यु परवादी क वहु मागमितो न वा च णाऊण।
रायायरायमच्चो दारुणभद्दस्सभावोत्ति॥

१ यह जानना कि परवादी अनेक आगमो का ज्ञाता है या नही।

२ यह जानना कि राजा, अमात्य आदि कठोर स्वभाव वाले हैं अथवा भद्र स्वभाव वाले।

८ सग्रह-परिज्ञा [सघ व्यवस्था मे निपुणता]—

१ बालादियोग्यक्षेत्र—स्थानाग के वृत्तिकार ने यहा केवल 'बालादियोग्यक्षेत्र' मात्र लिखा है। इसका स्पष्ट आशय व्यवहारभाष्य मे मिलता है। व्यवहारभाष्य मे इसके स्थान पर 'बहुजनयोग्यक्षेत्र' शब्द है। भाष्यकार ने इसका अर्थ करते हुए दो विकल्प प्रस्तुत किए है।[1] आचार्य को वर्षा ऋतु के लिए ऐसे क्षेत्र का निर्वाचन करना चाहिए जो विस्तीर्ण हो, जो समूचे सघ के लिए उपयुक्त हो।

२ जो क्षेत्र बालक, दुर्बल, ग्लान तथा प्राघूर्णको के लिए उपयुक्त हो।

भाष्यकार ने आगे लिखा है कि ऐसे क्षेत्र की प्रत्युपेक्षणा न करने से साधुओ का सग्रह नही हो सकता तथा वे साधु दूसरे गच्छो मे भी चले जा सकते हैं।[2]

२ पीठ-फलग सप्राप्ति—पीठ-फलग आदि की उपलब्धि करना। व्यवहारभाष्य मे इसका आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वर्षाकाल मे मुनि अन्यत्र विहार नही करते तथा उस समय वस्त्र आदि भी नहीं लेते। वर्षाकाल मे पीठ-फलग के बिना सस्तारक आदि मैले हो जाते हैं तथा भूमि की शीतलता से कुन्थु आदि जीवों की उत्पत्ति भी होती है। अत आचार्य वर्षाकाल मे पीठ-फलग आदि की उचित व्यवस्था करें।[3]

३ कालसमानयन—यथा समय स्वाध्याय, भिक्षा आदि की व्यवस्था करना। व्यवहारभाष्य मे इसको स्पष्ट करते हुए बताया है कि आचार्य को यथासमय स्वाध्याय, उपकरणो की प्रत्युप्रेक्षा, उपधि का सग्रह तथा भिक्षा आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।[4]

४ गुरु पूजा—यथोचित विनय की व्यवस्था बनाए रखना।

व्यवहार भाष्य मे गुरु के तीन प्रकार किए हैं—

१ प्रव्रज्या देनेवाला गुरु।

२ अध्यापन करानेवाला गुरु।

३ दीक्षा पर्याय मे बडे मुनि।

इन तीनो प्रकार के गुरुओं की पूजा करना अर्थात् उनके आने पर खडे होना, उनके दड (यष्टि) को ग्रहण करना, उनके योग्य आहार का सपादन करना, विहार आदि मे उनके उपकरणों का भार ढोना तथा उनका मर्दन आदि करना।[5]

प्रवचन सारोद्धार मे सातवी सम्पदा का नाम 'प्रयोगमति' है।[6] सम्पदाओ के अवान्तर भेदो मे शाब्दिक भिन्नता है

---

१ व्यवहारसूत्र उद्देशक १०, भाष्यगाथा २९०, पत्र ४१
वासे बहुजणजोग्ग विच्छिन्नं ज तु गच्छपाओग्गं।
अहवा वि बालदुब्बलगिलाणआदेसमादीण॥

२ वही, भाष्यगाथा २९१, पत्र ४१
खेत्ते असति असगहिया साहू वच्चति ते उ अन्नत्थ।

३ वही, भाष्यगाथा २९१, २९२, पत्र ४१
न उ मइल्लेति निसेज्जा पीढफलगाण गहणमि।
वियरे न तु वासासु अन्नकाले उ गम्मते णत्थ।
पाणासीयल कुथादिया ततो गहण वासासु॥

४ वही, भाष्यगाथा २९३, पत्र ४१
ज जंमि होइ काले कायव्व त समाणए तमि।
सज्झाया पट्ट उवही उप्पायण भिक्खमादी य॥

५ वही, भाष्यगाथा २९४, २९५, पत्र ४१, ४२
अह गुरु-जे ण पव्वावितो उ जस्स व अहीति पासमि।
अहवा अहागुरु खलु हवति रायणियतरागा उ॥
तेसिं अब्भुट्ठाण दडग्गह तह य होइ आहारे।
उवही वहण विस्सामण य सपूयणा एसा॥

६ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४२
आयार सुय सरीरे वयणे वायण मई पओगमई।
एएसु सपया खलु अट्ठमिया सगहपरिण्णा॥

तथा कहीं-कहीं आर्थिक भिन्नता भी है। वह इस प्रकार है—

१ आचार सपदा—

१ चरणयुत, २ मदरहित, ३ अनियतवृत्ति, ४ अचचल।

२ श्रुतसपदा—

१ युग (युग प्रधानता), २ परिचितसूत्र, ३ उत्सर्गी, ४ उदात्तघोष।

३ शरीर सपदा—

१ चतुरस्र, २ अकुण्टादि—परिपूर्ण कर्मेन्द्रियता, ३ बधिरत्ववर्जित—अविकल इन्द्रियता, ४ तप समर्थ—सभी प्रकार की तपस्या करने में समर्थ।

४ वचन सपदा—

१ वादी, २ मधुर वचन, ३ अनिश्रित वचन, ४ स्फुट वचन।

५ वाचना सपदा—

१ योग्य वाचना—शिष्य की योग्यता को जानकर उद्देशन, समुद्देशन देना।

२ परिणत वाचना—पहले दी हुई वाचना को हृदयगम कराकर आगे की वाचना देना।

३ निर्यापयिता—वाचना का अन्त तक निर्वाह करना।

४ निर्वाहक—पूर्वापर की सगति बिठाकर अर्थ का निर्वाह करना।

६ मति सपदा—

१ अवग्रह, २ ईहा, ३ अवाय, ४ धारणा।

७ प्रयोगमति सपदा—

१ शक्तिज्ञान—वाद करने की अपनी शक्ति का ज्ञान।

२ पुरुषज्ञान—वादी के मत का ज्ञान।

३ क्षेत्रज्ञान,

४ वस्तुज्ञान।

८ सग्रह परिज्ञा—

१ गणयोग्य उपग्रह—गण के निर्वाह योग्य क्षेत्र का सकलन।

२ समक्त सपद्—व्यक्तियों को अनुरूप देशना देकर उन्हे आकृष्ट करना।

३ स्वाध्याय सपद्—यथा समय स्वाध्याय, प्रत्युत्प्रेक्षण, भिक्षाटन उपधिग्रहण की व्यवस्था करना।

४ शिक्षा उपसग्रह सपद्—गुरु, प्रव्राजक, अध्यापक, रत्नाधिक आदि मुनियो का भार वहन करने, वैयावृत्य करने तथा विनय करने की शिक्षा देने मे समर्थ।[1]

प्रवचन सारोद्धार के वृत्तिकार ने मतान्तरो का भी उल्लेख किया है। उन्होंने जो ये उपभेद किए हैं उनका आधार दशाश्रुतस्कध से कोई भिन्न ग्रन्थ रहा है।

---

१ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४३-५४६

चरणजुओ मयरहिओ अनिययवित्ती अचचलो चेव।
जुग परिचिय उस्सग्गी उदत्तघोसाइ विन्नेओ॥
चउरसोऽकुटाई बहिरत्तणवज्जिओ तवे सत्तो।
वाई महुरत्तऽनिस्सिय फुडवयणो सपया वयणेत्ति॥
जोगो परियणवायण निज्जविया वायणाए निव्वहणे।
ओग्गह ईहावाया धारण मइसपया चउरोत्ति॥
सत्ती पुरिस खेत्त वत्थु नाउ पओजए वाय।
गणजोग्ग ससत्त सज्झाए सिक्खण जाणे॥

१७ समितिया (सू० १७)

उत्तराध्ययन २४।२ मे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग को समिति और मन, वचन और काया के गोपन को 'गुप्ति' कहा है। प्रस्तुत सूत्र मे इन आठो को 'समिति' कहा गया है। मन, वचन और काया का निरोध भी होता है और सम्यक् प्रवर्तन भी। उत्तराध्ययन मे जहां इनको 'गुप्ति' कहा है, वहा इनके निरोध की अपेक्षा की गई है और यहा इनके सम्यक् प्रवर्तन के कारण इनको समिति कहा है।

१८ प्रायश्चित्त (सू० २०)

प्रस्तुत सूत्र मे स्खलना हो जाने पर मुनि के लिए आठ प्रकार के प्रायश्चित्त बतलाए गए हैं। अपराध की लघुता और गुरुता के आधार पर इनका प्रतिपादन हुआ है। लघुता और गुरुता का निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर किया जाता है। एक ही प्रकार के अपराध मे भी प्रायश्चित्त की भिन्नता हो सकती है। यह प्रायश्चित्त देने वाले व्यक्ति पर निर्भर है कि वह अपराध के किस पक्ष को कहां लघु और गुरु मानता है। प्रायश्चित्त दान की विविधता का हेतु पक्षपात नही, किन्तु विवेक है। निशीथ प्रायश्चित्त सूत्र है। उसमे विस्तार से प्रायश्चित्तों का उल्लेख है। यहा केवल आठ प्रकार के प्रायश्चित्तो का नामोल्लेख मात्र है। स्थानाग १०।७३ मे प्रायश्चित्त के दस प्रकार बतलाए हैं। विशेष विवरण वहां से ज्ञातव्य है।

१९. मद (सू० २१)

अगुत्तरनिकाय मे मद के तीन प्रकार तथा उनसे होने वाले अपायो का निर्देश है—

१ यौवन मद, २ आरोग्य मद, ३ जीवन मद।

इनसे मत्त व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुष्कर्म करता है। वह शिक्षा को त्याग देता है। उसकी दुर्गति और पतन होता है। वह मर कर नरक मे जाता है।[1]

२०. अक्रियावादी (सू० २२)

चार समवसरणों मे एक अक्रियावादी है।[2] वहा उसका अर्थ अनात्मवादी—क्रिया के अभाव को मानने वाला, केवल चित्तशुद्धि को आवश्यक एव क्रिया को अनावश्यक मानने वाला—किया है। प्रस्तुत सूत्र में इसका प्रयोग 'अनात्मवादी' और 'एकान्तवादी'—दोनो अर्थों मे किया गया है। इन आठ वादो में छह वाद एकान्तदृष्टि वाले हैं। 'समुच्छेदवाद' और 'नास्तिमोक्षपरलोकवाद'—ये दो अनात्मवाद हैं। उपाध्याय यशोविजयजी ने धर्म्यंश की दृष्टि से जैसे चार्वाक को नास्तिक-अक्रियावादी कहा है, वैसे ही धर्मांश की दृष्टि से सभी एकातवादियो को नास्तिक कहा है—

'धर्म्यंशे नास्तिको ह्येको, बार्हस्पत्य प्रकीर्तित ।
धर्मांशे नास्तिका ज्ञेया, सर्वेऽपि परतीर्थिका ॥'[3]

अक्रियावादियो के चौरासी प्रकार बतलाए गए हैं—[4]

असियसय किरियाण अक्किरियाण च होइ चुलसीती।
अन्नाणिय सत्तट्ठी वेणइयाण च बत्तीसा॥

---

१ अंगुत्तरनिकाय, प्रथम भाग, पृष्ठ १४९, १५०।
२ सूत्रकृताग १।१२।१, भगवती ३०।१।
३ नयोपदेश, श्लोक १२६।
४ सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा ११९।

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित वादो का सकलन करते समय सूत्रकार के सामने कौन सी दार्शनिक धाराए रही हैं, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, किन्तु वर्तमान मे उन धाराओ के सवाहक दार्शनिक ये हैं—

१ एकवादी—

१ ब्रह्माद्वैतवादी—वेदान्त ।

२ विज्ञानाद्वैतवादी—बौद्ध ।

३ शब्दाद्वैतवादी—वैयाकरण ।

ब्रह्माद्वैतवादी के अनुसार ब्रह्म, विज्ञानाद्वैतवादी के अनुसार विज्ञान और शब्दाद्वैतवादी के अनुसार शब्द पारमार्थिक तत्त्व है, शेष तत्त्व अपारमार्थिक हैं, इसलिए ये सारे एकवादी हैं। अनेकान्तदृष्टि के अनुसार सभी पदार्थ सग्रहनय की दृष्टि से एक और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक हैं।

२ अनेकवादी—वैशेषिक अनेकवादी दर्शन है। उसके अनुसार धर्म-धर्मी, अवयव-अवयवी भिन्न भिन्न हैं।[1]

३ मितवादी—

१ जीवो की परिमित सख्या मानने वाले। इसका विमर्श स्याद्वादमजरी मे किया गया है।[2]

२ आत्मा को अगुष्टपर्व जितना अथवा श्यामाक तदुल जितना मानने वाले। यह औपनिषदिक अभिमत है।

३ लोक को केवल सात द्वीप-समुद्र का मानने वाले। यह पौराणिक अभिमत है।

४ निर्मितवादी—नैयायिक, वैशेषिक आदि लोक को ईश्वरकृत मानते हैं।[3]

५ सातवादी—बौद्ध ।

वृत्तिकार के अनुसार 'सातवाद' बौद्धो का अभिमत है।[4] इसकी पुष्टि सूत्रकृताग ३।४।६ से होती है। चार्वाक का साध्य सुख है, फिर भी उसे 'सातवादी' नहीं माना जा सकता क्योकि 'सात सातेण विज्जति'—सुख का कारण सुख ही है, यह कार्य-कारण का सिद्धान्त चार्वाक के अभिमत मे नही है। बौद्ध दर्शन पुनर्जन्म मे विश्वास करता है और उसकी मध्यम प्रतिपदा भी कठिनाइयो से बचकर चलने की है, इसलिए उसे 'सातवादी' माना जा सकता है।

सूत्रकृताग के चूर्णिकार ने सातवाद को बौद्ध सिद्धान्त माना है। 'सात सातेण विज्जति'—इस श्लोक की भूमिका मे उन्होंने लिखा है कि अब बौद्धों का परामर्श किया जा रहा है—'इदानी शाक्या परामृश्यन्ते'।[5] भगवान् महावीर के अनुसार कायक्लेश भी सम्मत था। सूत्रकृताग मे उसका प्रतिनिधिवाक्य है—'अत्तहिय खु दुहेण लब्भई'—आत्म-हित कष्ट से सिद्ध होता है। 'सात सातेण विज्जई'—इसी का प्रतिपक्षी सिद्धान्त है। इसके माध्यम से बौद्धो ने जैनो के सामने यह विचार प्रस्तुत किया था कि शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक समाधि का सिद्धान्त श्रेष्ठ है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि दु ख सुख का कारण नही हो सकता, इसलिए सुख सुख से ही लब्ध होता है।

सूत्रकृताग के वृत्तिकार ने सातवाद को बौद्धो का अभिमत माना ही है, किन्तु साथ-साथ इसे परिषह से पराजित कुछ जैन मुनियो का अभिमत माना है।[6]

६ समुच्छेदवादी—प्रत्येक पदार्थ क्षणिक होता है। दूसरे क्षण मे उसका उच्छेद हो जाता है। इसलिए बौद्ध समुच्छेदवादी हैं।

---

१ स्याद्वादमजरी, श्लोक ४

स्यतोनुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपा ।
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद्, द्वयवदन्तोकुशला स्खलन्ति ॥

२ वही, श्लोक २९

मुक्तोपि वाभ्येतु भव भवा वा भवस्थशून्योस्तु मितात्मवादे ।
षड्जीवकाय त्वमनन्तसंख्य, माख्यस्तया नाथ यथा न दोष ॥

३ न्यायसूत्र, ४।१।१९-२१

ईश्वर: कारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ।
न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्ते ।
तत्कारितत्वादहेतु ।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०४ ।

५ सूत्रकृतांगचूर्णि, पृष्ठ १२१ ।

६ सूत्रकृतांगवृत्ति, पत्र ९६ एके शाक्यादय स्वयूथ्या वा लोचादिनोपतप्ता ।

७ नित्यवादी—साङ्ख्याभिमत सत्कार्यवाद के अनुसार पदार्थ कूटस्थ नित्य है। कारणरूप मे प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व विद्यमान है। कोई भी नया पदार्थ उत्पन्न नहीं होता और कोई भी पदार्थ नष्ट नही होता। केवल उनका आविर्भाव-तिरोभाव होता है।[1]

८ असत् परलोकवादी—चार्वाकदर्शन मोक्ष या परलोक को स्वीकार नही करता।

२१ आयुर्वेद (सू० २६)

आयुर्वेद का अर्थ है—जीवन के उपक्रम और सरक्षण का ज्ञान, चिकित्सा शास्त्र। वह आठ प्रकार का है—

१ कुमारभृत्य—बाल-चिकित्सा शास्त्र। इसमे बालकों के पोषण और दूध सम्बन्धी दोषों का सशोधन तथा अन्य दोषजनित व्याधियो के उपशमन के उपाय निर्दिष्ट होते हैं।

२ कायचिकित्सा—इसमे मध्य-अग से समाश्रित ज्वर, अतिसार, रक्तजनित शोथ, उन्माद प्रमेह, कुष्ठ आदि रोगो के शमन के उपाय निर्दिष्ट होते हैं।

३ शालाक्य—मुह के ऊपर के अगों मे (कान, मुह, नयन और नाक) व्याप्त रोगों के उपशमन का उपाय बताने वाला शास्त्र।

४ शल्यहत्या—शरीर के भीतर रहे हुए तृण, काठ, पाषाण, कण, लोह, लोष्ठ, अस्थि, नख आदि शल्यों के उद्धरण का शास्त्र।

५ जगोली—इसे विष-विघातक शास्त्र या अगद तत्र भी कहते हैं। सर्प आदि विषैले जीवो से डसे जाने पर उसकी चिकित्सा का निर्देश करनेवाला शास्त्र।

६ भूतविद्या—भूत आदि के निग्रह के लिए विद्यातत्र। देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग आदि से आविष्ट चित्तवालें व्यक्तियों के उपद्रव को मिटाने के लिए शातिकर्म, बलिकर्म आदि का विधान तथा ग्रहों की शाति का निर्देश करने वाला शास्त्र।

७ क्षारतत्र—वीर्यपुष्टि के उपाय बताने वाला शास्त्र। सुश्रुत आदि ग्रन्थो मे इसे वाजीकरण तत्र कहा है।

८ रसायन—इसका शाब्दिक अर्थ है—अमृत-तुल्य रस की प्राप्ति। वय को स्थायित्व देने, आयुष्य को बढाने, बुद्धि को वृद्धिगत करने तथा रोगो का अपहरण करने मे समर्थ रसायनों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र।[3]

जयधवला मे आयुर्वेद के आठ अग इस प्रकार हैं[4]— १ शालाक्य २ कायचिकित्सा ३ भूततत्र ४ शल्य ५ अगद-तत्र ६ रसायनतत्र ७ बालरक्षा ८ बीजवर्द्धन।

सुश्रुत मे आयुर्वेद के आठ अग ये हैं[5]—

१ शल्य, २ शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतत्र, ७ रसायनतत्र, ८ वाजीकरणतत्र।

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित आठ नामो से ये कुछ भिन्न हैं, जगोली के स्थान पर यहा 'अगदतत्र' और क्षारतत्र के स्थान 'वाजीकरण तत्र' शब्द हैं। इनके क्रम मे भी अन्तर है।

---

१ साख्यकारिका ९।

२ तत्त्वोपप्लवसिंह, पृष्ठ १
पृथिव्यापस्तेजोवायुरितितत्त्वानि।
तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसज्ञा॥

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०६।

४ कसायपाहुड, भाग १, पृष्ठ १४७ शालाक्य कायचिकित्सा भूततत्र शल्यमगदतत्र रसायनतत्र बालरक्षा बीजवर्द्धनमिति आयुर्वेदस्य अष्टाङ्गानि।

५ सुश्रुत, पृ० १ शल्य शालाक्य कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतत्र रसायनतत्र वाजीकरणतत्रमिति।

२२. (सू० ३६)

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित नाम अन्यत्र कुछ व्यत्यय और भिन्नता के साथ भी मिलते हैं[1]—

१ आदित्ययशा, २ महायशा, ३ अतिबल, ४ बलभद्र, ५ बलवीर्य, ६ कार्त्तवीर्य, ७ जलवीर्य, ८ दडवीर्य।

२३-२४ पुरुषादानीय गणधर (सू० ३७)

यह भगवान् पार्श्व की लोकप्रियता का सूचक है। वे जनता को बहुत प्रिय और उपादेय थे। भगवान् महावीर ने अनेक स्थानो पर 'पुरुसादाणीय' शब्द से उन्हें सम्बोधित किया है।

समवायाग (समवाय ८।८) मे भगवान् पार्श्व के आठ गणों और आठ गणधरों के नाम कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं—

१ शुभ २ शुभघोष ३ वसिष्ठ ४ ब्रह्मचारी ५ सोम ६ श्रीधर ७ वीरभद्र ८ यश।

गण और गणधरों के नाम एक ही थे—गण गणधरो के नाम से ही प्रसिद्ध थे।

समवायाग और स्थानागवृत्ति मे अभयदेवसूरि ने लिखा है कि—स्थानाग और पर्युषणाकल्प मे भगवान् पार्श्व के आठ ही गण माने गये हैं, किन्तु आवश्यकनिर्युक्ति मे दस गणों का उल्लेख है। दो गणधर अल्पायुष्य वाले थे इसलिए यहा उनकी विवक्षा नहीं की गई है।[2]

समवायाग मे आठों नाम एक श्लोक मे हैं, इसलिए सम्भव है 'यश' यशोभद्र का सक्षेप हो। स्थानाग की कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे 'वीरित्ते भद्दजसे'—ऐसा पाठ है। उसके अनुसार 'वीर्यभद्र' और 'यश'—ये नाम बनते हैं।

२५. दर्शन (सू० ३८)

प्रस्तुत सूत्र मे दर्शन शब्द की समानता से आठ पर्याय वर्गीकृत है। किन्तु सब में दर्शन शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। दर्शन का एक वर्ग है—सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यग्मिथ्यादर्शन। इसमें दर्शन शब्द का प्रयोग 'श्रद्धा' के अर्थ मे हुआ है।[3] इसका दूसरा वर्ग है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। इसमे दर्शन शब्द का अर्थ है—निर्विकल्पबोध, सामान्यबोध या अनाकारबोध।

स्वप्नदर्शन में दर्शन शब्द का अर्थ है—प्रतिभासबोध। वृत्तिकार का अभिमत है कि स्वप्नदर्शन का अचक्षुदर्शन मे अन्तर्भाव होने पर भी सुप्तावस्था के भेद प्रभेदो के कारण उसकी पृथक् विवक्षा की है।[4]

२६. औपमिक अद्धा (सू० ३९)

काल के दो प्रकार हैं—उपमाकाल और अनुपमाकाल (सख्या-परिमितकाल)। पल्य, सागर आदि उपमाकाल हैं। अवसर्पिणी आदि छह विभाग सागरोपम मे निष्पन्न होते हैं, अत उन्हें भी उपमाकाल माना है।

१, (क) आवश्यकनियुक्ति, गाथा ३६३

गया आइच्चजसो, महाजसे अइबले य बलभद्दे।
बलविरिए कत्तविरिए, जलविरिए दढविरिए य॥

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ४०७, ४०८।

२ (क) समवायागवृत्ति, पत्र १४ इद चैतत्प्रमाण स्थानाङ्गे पर्युषणाकल्पे च श्रूयते, केवलमावश्यके अन्यथा तत्र ह्युक्तम्—'दस नवग गणाण माण जिणिदाणं, [आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २६८] ति कोऽर्थ ? पार्श्वस्य दश गणा गणधराश्च, तदिह द्वयोरल्पायुष्कत्वादिना कारणेनाविवक्षाऽनुगन्तव्येति।

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८।

३. (क) तत्त्वार्थसूत्र १।२।

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८ स्वप्नदशनस्याचक्षुर्दर्शनान्तर्भावेऽपि सुप्तावस्योपाधितो भेदो विवक्षित इति।

'समय' से लेकर 'शीर्षप्रहेलिका' तक का समय अनुपमाकाल कहा जाता है।[1]

पुद्गल-परिवर्त—

जितने समय मे जीव समस्त लोकाकाश के पुद्गलो का स्पर्श करता है, उसे पुद्गल-परिवर्त कहते हैं। उसका काल-मान असख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी जितना है। इसके सात भेद हैं—

१ औदारिक पुद्गल-परावर्तन—औदारिक शरीर के योग्य समस्त पुद्गलो का औदारिक शरीर के रूप मे ग्रहण, परिणमन और उत्सर्ग करने मे जितना समय लगता है उसे औदारिक पुद्गल-परावर्तन कहते हैं।

इसी प्रकार—

२ वैक्रिय पुद्गल-परावर्तन।

३ तैजस पुद्गल-परावर्तन।

४ कार्मण पुद्गल-परावर्तन।

५ मन पुद्गल-परावर्तन।

६ वचन पुद्गल-परावर्तन।

७ प्राणापान पुद्गल-परावर्तन—होते हैं

२७ (सू० ४०)

प्रस्तुत सूत्र मे पुरुषयुग का अर्थ है—एक व्यक्ति का अस्तित्वकाल और भूमि का अर्थ है—काल।

इस सूत्र का प्रतिपाद्य यह है कि अरिष्टनेमि के पश्चात् उनके आठ उत्तराधिकारी पुरुषो तक मोक्ष जाने का क्रम रहा। उसके पश्चात् वह क्रम अवरुद्ध हो गया।[2]

२८ (सू० ४१)

वृत्तिकार के अनुसार 'वीरगए वीरजसे '—इस गाथा के तीन चरण ही आदर्शों मे उपलब्ध होते है। उन्होंने—'तह सखे कासिवद्धणए'—इस चतुर्थ चरण के द्वारा गाथा की पूर्ति की है, किन्तु यह चतुर्थ चरण कहाँ से लिया गया, इसका उन्होंने कोई उल्लेख नही किया है।[3]

भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को दीक्षित किया। उनका परिचय इस प्रकार है—

१ वीरागक, २ वीरयशा, ३ संजय—

वृत्तिकार ने तीनो राजाओ का कोई विवरण प्रस्तुत नही किया है। उत्तराध्ययन के अठारहवें अध्ययन मे 'सजय' राजा का नाम आता है। किन्तु वह आचार्य गर्दभालि के पास दीक्षित होता है। अत प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित 'सजय' कोई दूसरा होना चाहिए।

४ एणेयक—

वृत्तिकार के अनुसार यह केतकार्द्ध जनपद की श्वेताबी नगरी के राजा प्रदेशी, जो भगवान का श्रमणोपासक था, का अधीनवर्ती कोई राजा था।[4] इसके विषय मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही है।

राजप्रश्नीय सूत्र[5] मे प्रदेशी राजा के अतेवासी राजा का नाम जितशत्रु दिया है। सम्भव है इसका गोत्र 'एणेय' हो

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र, ४०८।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८ अष्टमा पुरुषयुग—अष्टपुरुष कालं यावत् युगान्तकरभूमि पुरुपलक्षणयुगापेक्षयाऽन्त-कराणां—भवक्षयकारिणां भूमि—काल सा आसीदिति, इदमुक्त भवति—नेमिनाथस्य शिष्यप्रशिष्यक्रमेणाष्टौ पुरुषान् यावन्निर्वाण गतवन्तो न परत इति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८ 'तह सखे कासिवद्धणए' इत्येव चतुर्थपादे सति गाथा भवति, न चैव दृश्यते पुस्तकेष्विति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८

स च केतकार्द्धजनपदश्वेतवीनगरीराजस्य प्रदेशिनाम्न श्रमणोपासकस्य निजक कश्चिद्राजर्षि।

५ राजप्रश्नीय ५।६।

और यहा प्रस्तुत सूत्र मे उसका मूल नाम न देकर केवल गोत्र से ही उसका उल्लेख किया गया हो। वृत्तिकार ने भी उसका गोत्र 'एणेय' माना है।[1]

५ श्वेत—यह आमलकल्पा नगरी का राजा था। उसकी रानी का नाम धारणी था। एक बार भगवान् जब आमलकल्पा नगरी में आए तब राजा और रानी दोनो प्रवचन सुनने गए।[2]

६ शिव—यह हस्तिनापुर का राजा था। इसकी पटरानी का नाम धारणी और पुत्र का नाम शिवभद्र था। एक बार उसने सोचा—'मेरा ऐश्वर्य प्रतिदिन बढ रहा है, यह पूर्वकृत अच्छे कर्मों का फल है। अत मुझे इस जन्म में भी शुभ कर्मों का सचय करना चाहिए।' उसने सारी व्यवस्था कर अपने पुत्र को राज्यभार सौंप दिया और स्वय 'दिशाप्रोक्षित तापस'[3] बन गया। वह बेले-बेले की तपस्या करता, आतापना लेता और जमीन पर पडे पत्तो आदि से पारना करता। इस प्रकार घोर तपस्या करते-करते उसे 'विभग ज्ञान' उत्पन्न हुआ। उसने सात समुद्र और सात द्वीप देखे और सोचा—'मुझे दिव्यज्ञान उत्पन्न हुआ है। इनके आगे कोई द्वीप-समुद्र नहीं है।' वह तत्काल नगर में आया और अनेक लोगो को अपनी उपलब्धि के विषय मे बताया। उन दिनो भगवान् महावीर उसी नगर मे समवसृत थे। गणधर गौतम भिक्षाचरी के लिए नगर मे गए और उन्होंने तापस शिव द्वारा प्रचारित कथन सुना। वे भगवान् महावीर के पास आए और पूछा। भगवान् ने असख्य द्वीप-समुद्रो की बात कही। तापस शिव ने लोगों से भगवान् का यह कथन सुना। उसके मन मे शका, काक्षा, विचिकित्सा और विभ्रम पैदा हुआ। तत्क्षण उसका विभग अज्ञान नष्ट हो गया। भगवान् महावीर के प्रति उसके मन मे भक्ति उत्पन्न हुई। वह भगवान् के पास आया, निर्ग्रन्थ प्रवचन मे अपना विश्वास प्रकट किया और प्रव्रजित हो गया तथा वह ग्यारह अगो का अध्ययन कर मुक्त हो गया।[4]

७ उद्रायवण—भगवान् महावीर के समय मे सिन्धु-सौवीर आदि १६ जनपदो, वीतभय आदि ३६३ नगरो में उद्रायण राज्य करता था। वह दस मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति और भगवान् महावीर का श्रावक था।

राजा उद्रायण के पुत्र का नाम अभीचि (अभिजित्) था। राजा का इस पर बहुत स्नेह था। 'राज्य मे गृद्ध होकर यह दुर्गति मे न चला जाए'—ऐसा सोचकर उद्रायण ने राज्य-भार अपने पुत्र को न देकर अपने भानजे को दिया और स्वय भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित हो गया।

एक बार ऋषि उद्रायण उसी नगर मे आया। अकस्मात् उसे रोग उत्पन्न हुआ। वैद्यो ने दही खाने के लिए कहा। महाराज केसी ने सोचा कि उद्रायण पुन राज्य छीनने आया है। इस आशका से उसने विषमिश्रित दही दिया और उद्रायण उसे खाते ही मर गया।

उद्रायण में अनुराग रखने वाली किसी देवी ने वीतभय नगर पर पाषाण की वर्षा की। सारा नगर नष्ट हो गया। केवल उद्रायण का शय्यातर, जो एक कुभकार था, वह बचा, शेष सारे लोग मारे गए।[5]

८ शङ्ख—इस राजा के विषय मे निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती। मूलपाठगत विशेषण 'कासिवद्धणे' से यह जाना जा सकता है कि यह काशी जनपद के राजाओं की परम्परा में महत्त्वपूर्ण राजा था, जिसके समय मे काशी जनपद का विकास हुआ।

वृत्तिकार भी 'अय च न प्रतीत' ऐसा कहकर इस विषय का अपना अपरिचय व्यक्त करते हैं। उन्होंने एक तथ्य की ओर ध्यान खींचते हुए बताया है कि अन्तकृतदशा (६।१६) में ऐसा उल्लेख है कि भगवान् ने वाराणसी मे राजा अलक को प्रव्रजित किया था। यदि वह कोई अपर है तो यह 'शख' नाम नामान्तर है।

---

१ स्थानागवृत्ति पत्र ४०८ एणेयको गोत्रत।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८।

३ इसका अर्थ है कि प्रत्येक पारणा में जो पूर्व आदि दिशाओं में क्रमश पानी आदि सींचकर फल-पुष्प आदि खाते हैं—वैसे तापस। औपपातिक (सू० ९४) में वानप्रस्थ तापसों के अनेक प्रकार हैं। उनमें यह एक है।

४ भगवती ११।५७-८७, स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०६।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०६।

उत्तराध्ययन वृत्ति (नेमिचन्द्रीय, पत्र १७३) मे मथुरा नगरी के राजा शख के प्रव्रजित होने का उल्लेख है।

विपाक के अनुसार काशीराज अलक भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित हुए थे।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि जब भगवान् पोतनपुर मे समवसृत हुए तब शख, वीर, शिव, भद्र आदि राजाओ ने दीक्षा ग्रहण की थी।[1] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सभी राजे एक ही दिन दीक्षित हुए थे।

२९. महापद्म (सू० ५२)

आगामी उत्सर्पिणी मे होने वाले प्रथम तीर्थंकर। इनका विस्तृत वर्णन ९।६२ मे है।

३० (सू० ५३)

प्रस्तुत सूत्र मे कृष्ण की आठ रानियो का उल्लेख है। इनका विस्तृत वर्णन अन्तकृतदशा मे है। एक बार तीर्थंकर अरिष्टनेमि द्वारका मे आए। वासुदेव कृष्ण के पूछने पर उन्होने द्वारका के दहन का कारण बताया। तब कृष्ण ने नगर मे यह घोषणा करवाई कि 'अरिष्टनेमि ने नगरी का विनाश बताया है। जो कोई व्यक्ति दीक्षित होगा, मैं उसके अभि-निष्क्रमण का सारा भार वहन करूगा।' यह सुनकर कृष्ण की आठो रानिया भगवान् के पास दीक्षित हो गईं। वे बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर, एक मास की सलेखना कर मुक्त हुईं।[2]

३१ (सू० ५५)

प्रस्तुत सूत्र मे गति के प्रथम पाच प्रकार एक वर्ग के हैं और अन्तिम तीन प्रकार दूसरे वर्ग के हैं। द्वितीय वर्ग मे गति का अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाना।

गुरुगति—

परमाणु आदि की स्वाभाविक गति। इसी गति के कारण परमाणु व सूक्ष्म स्कध किसी बाह्य प्रेरणा के बिना ऊचे, नीचे और तिरछे लोक मे गति करते हैं।

प्रणोदनगति—

दूसरे की प्रेरणा से होने वाली गति—जैसे—मनुष्य आदि के द्वारा प्रक्षिप्त बाण आदि की गति।

प्राग्भारगति—

दूसरे द्रव्यो से आक्रान्त होने पर होनेवाली गति। जैसे—नौका मे भरे हुए माल से उसकी (नौका की) नीचे की ओर होने वाली गति।[3]

३२ (सू० ५६)

वृत्तिकार के अनुसार ये चारो भरत और ऐरवत की नदिया हैं। इनकी अधिष्ठातृ देवियो के निवासद्वीप तद्‌तद् नदियो के प्रपातकुड के मध्यवर्ती द्वीप हैं।[4]

३३. सुवर्ण (सू० ६१)

प्रस्तुत सूत्र मे काकिणीरत्न का विवरण दिया गया है। वह आठ सुवर्ण जितना भारी होता है। 'सुवर्ण' उस समय का तोल था। उसका विवरण इस प्रकार है—

---

१ श्री गुणचन्द महावीरचरित्त, प्रस्ताव ८, पत्र ३३७
'पत्तो पोयणपुर, तहिं च सखवीरसिवभद्दपमुहा नरिंदा दिक्खा गाहिया।'

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१०, ४११।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४११, ४१२।

४ स्थानांगवृत्ति पत्र, ४१२ नवरं गङ्गाद्या भरतैरवतनद्यस्त-दधिष्ठातृदेवीनां निवासद्वीपा गङ्गादिप्रपातकुण्डमध्यवर्तिन'।

४ मधुर तृणफलो [?] का एक श्वेत सर्षप।
१६ श्वेत सर्षपो का एक धान्यमाषकफल।
२ धान्यमाषकफलों की एक गुजा।
५ गुजाओं का एक कर्ममापक।
१६ कर्ममापको का एक सुवर्ण।
ये सारे तोल भरत चक्रवर्ती के समय मे प्रचलित थे। यह काकिणीरत्न चार अगुल प्रमाण का होता है।[1]

३४ योजन (सू० ६२)

वृत्तिकार ने योजन का विस्तार से माप दिया है। उसके अनुसार—
अनन्त निश्चयपरमाणुओं का एक परमाणु।
८ परमाणुओं का एक त्रसरेणु।
८ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु।
८ रथरेणुओं का एक वालाग्र।
८ वालाग्रों की एक लिक्षा।
८ लिक्षाओं की एक यूका।
८ यूकाओ का एक यव।
८ यवों का एक अगुल।
२४ अगुल का एक हाथ।
४ हाथों का एक धनुष्य।
दो हजार धनुष्यो का एक गव्यूत।
४ गव्यूतो का एक योजन।

प्रस्तुत सूत्र मे मगध देश मे व्यवहृत योजन का माप बताया है। इसका फलित है कि अन्यान्य देशों मे योजन के भिन्न-भिन्न माप प्रचलित थे। जिस देश में सोलह सौ धनुष्यों का एक गव्यूत होता है वहा छह हजार चार सौ [६४००] धनुष्यो का एक योजन होगा।[2] यह सैद्वान्तिक प्रतिपादन है। धनुष्य और योजन के माप के विषय मे भिन्न-भिन्न मत प्रचलित रहे हैं।

वर्तमान मे दक्षिण भारत के मैसूर राज्य मे श्रवणवेलगोल मे ५७ फुट ऊची वाहुवली की मूर्ति है। यह माना जाता है कि सम्राट् भरत के पुरुदेव ने पौदनपुर के पास ५२५ धनुष्य ऊची वाहुवली की मूर्ति वनानी चाही। किन्तु स्थान की अनुपयुक्तता के कारण नही वना सके। तव चामुण्डराय [सन् ९८३] ने उसी प्रमाण की मूर्ति वनाई।[3] इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि ५२५ धनुष्य ५७ फुट के वरावर है। इसका फलितार्थ हुआ कि एकफुट लगभग सवा नौ धनुष्य जितना होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ८ हजार धनुष्य या ८७० फुट का एक योजन होता है अर्थात् सवा फर्लांग से कुछ अधिक का एक योजन होता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४१२ अष्टसौवर्णिक काकणिरत्न, सुवर्णमान तु चत्वारि मधुरतृणफलान्येक श्वेतसर्षप षोडश श्वेतसर्षपा एक धान्यमाषफल द्वे धान्यमाषकफले एका गुञ्जा पञ्च गुञ्जा एक कर्ममापक षोडश कर्ममापका एक सुवर्ण, एतानि च मधुरतृणफलादीनि भरतकालभावीनि गृह्यन्ते इदञ्च चतुरङ्गुल प्रमाणं चउरगुलप्पमाणा सुवन्नवरकागणी नेयत्ति वचनादिति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४१२ मागधग्रहणात् क्वचिदन्यदपि योजन स्यादिति प्रतिपादित, तत्र यस्मिन् देशे षोडशभिर्धनु शतैर्गव्यूत स्यात्तत्र षड्भि सहस्रैश्चतुर्भि शतैर्धनुषा योजन भवतीति।

३ एपिग्राफिक करनाटिका II, 234, Page 98

योजन भी भिन्न २ होते हैं। प्रस्तुत विवरण मे भी चार गव्यूत का एक योजन माना है। गव्यूत का अर्थ है—वह दूरी जिसमे गाय का रभाना सुना जा सके।[1] सामान्यत गाय का रभाना एक फर्लांग तक सुना जा सकता है। इसके आधार पर चार फर्लांग का एक योजन होता है। कही-कही एक माइल का भी योजन माना है।

३५-३६ (सू० ६३, ६४)

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार ये वृक्ष आधे-आधे योजन भूमि में हैं तथा इनके तने की मोटाई आधे-आधे योजन की है। इस आधे-आधे योजन के कारण ही ऊचाई या चौडाई मे 'सातिरेक' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी आधार पर सर्व परिमाण मे ये वृक्ष आठ-आठ योजन से कुछ अधिक हैं।

३७-४० (सू० ७७-८०)

इन चार सूत्रों के अनुसार आठ-आठ विजयो मे आठ-आठ अर्हंत, चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव होते हैं, किन्तु अर्हन्त, चक्रवर्ती वलदेव और वासुदेव एक साथ वत्तीस नही हो सकते। महाविदेह मे कम से कम चार चक्रवर्ती या चार वासुदेव अवश्य होते हैं। जहा वासुदेव होते हैं वहा चक्रवर्ती नही होते। इसलिए एक साथ उत्कृष्टत २८ चक्रवर्ती या २८ वासुदेव हो सकते हैं।[2]

४१. पारियानिक-विमान (सू० १०३)

जो गमन के हेतुभूत होते हैं उन्हें पारियानिक विमान कहते हैं। पालक आदि आभियोगिक देव अपने-अपने स्वामी इन्द्रो के लिए स्वय यान के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। पूर्वसूत्र (१०२) मे उल्लिखित इन्द्रो के ये क्रमश विमान हैं। ये सारे नाम उनके आभियोगिक देवो के हैं। वे यान रूप मे काम आते हैं। अत उन्ही के नाम से वे यान भी व्यवहृत होते हैं।[3] दसवें स्थान मे इनका विवरण दिया गया है।[4]

४२-४५ चेष्टा, प्रयत्न, पराक्रम, आचार-गोचर (सू० १११)

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त कुछ विशेष शब्दो का विमर्श—

१ सघटना—चेष्टा—अप्राप्त की प्राप्ति।

२ प्रयत्न—प्राप्त का सरक्षण।

३ पराक्रम—शक्ति-क्षय होने पर भी विशेष उत्साह वनाए रखना।[5]

४ आचार-गोचर—

 १ साधु के आचार का गोचर [विषय] महाव्रत आदि।

 २ आचार—ज्ञान आदि पाच आचार। गोचर—भिक्षाचर्या।[6]

४६ केवली समुद्घात (सू० ११४)

केवलज्ञानी के वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति से आयुष्य कर्म की स्थिति कम रह जाने पर, दोनो को समान करने के लिए स्वभावत समुद्घात क्रिया होती है—आत्म-प्रदेश समूचे लोक में फैल जाते हैं। इस क्रिया का कालमान

---

१ बुद्धिस्ट इडिया, पृष्ठ ४१
 Gavyuta, A cow's call

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४१५।

३ स्थानाग वृत्ति, पत्र ४१७ परियायते—गम्यते यैस्तानि परियानानि तान्येव परियानिकानि परियान वा—गमन प्रयोजन येषां तानि परियानिकानि यानकारकाभियोगिकपालकादिदेवकृतानि पालकादीनि।

४ स्थानांग १०।१५०

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१८ घटितव्य—अप्राप्तेषु योग कार्य, यतितव्य—प्राप्तेषु तदवियोगार्थं यत्न कार्य, पराक्रमितव्य—शक्तिक्षयेऽपि तत्पालने, पराक्रम—उत्साहातिरेको विधेय इति।

६ वही, पत्र ४१८ आचार—साधुसमाचारस्तस्य, गोचरो—विषयो व्रतषट्कादिराचारगोचर, अथवा आचारश्चज्ञानादिविषय पञ्चधा, गोचरश्च—भिक्षाचर्येत्याचारगोचरम्।

आठ समय का है। पहले समय में केवली के आत्म-प्रदेश लोक के अन्त तक ऊर्ध्व और अधो दिशा की तरफ फैल जाते हैं। उनका विष्कभ (चौडाई) शरीर प्रमाण होता है, इसलिए उनका आकार दड जैसा बन जाता है। दूसरे समय में वे ही प्रदेश चौडे होकर लोक के अन्त तक जाकर कपाटाकार बन जाते हैं। तीसरे समय में वे प्रदेश वातवलय के सिवाय समूचे लोक मे फैल जाते हैं। इसे मन्थान कहते हैं। चौथे समय मे वे प्रदेश पूर्ण लोक मे फैल जाते हैं—आत्मा लोक व्यापी बन जाती है। इसके बाद पाचवें, छठे, सातवें, आठवें समय में आत्मा के प्रदेश क्रमश मन्थान, कपाट और दण्ड के आकार होकर पूर्ववत् देहस्थित हो जाते हैं। इन आठ समयो में पहले और आठवें समय मे औदारिक योग, दूसरे,छठे और सातवें समय मे औदारिक मिश्र योग तथा तीसरे, चौथे और पाचवें समय में कार्मण योग होता है।

रत्नशेखर सूरि आदि कई विद्वान यह मानते हैं कि जिस जीव का आयुष्य छह मास से अधिक है, यदि उसे केवल-ज्ञान हो जाए तो वह जीव निश्चय ही समुद्घात करता है। किन्तु अन्य केवली समुद्घात करते ही हैं—ऐसा नियम नहीं है।

आर्यश्याम ने एक स्थान पर कहा है—

अगतूण समुग्घायमणता केवली जिणा।
जाइमरणविप्पमुक्का, सिद्धि वरगति गया॥

अनत केवली और जिन बिना समुद्घात किये ही जन्म-मरण से विप्रमुक्त हो सिद्ध हो गए।[1]

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का अभिमत इससे भिन्न है। वे कहते हैं कि प्रत्येक जीव मोक्ष प्राप्ति से पूव समुद्घात करता ही है। समुद्घात करने के पश्चात् ही केवली योग निरोध कर शैलेशी अवस्था को पाकर, अयोगी होता हुआ पाच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण करने के समय मात्र मे मोक्ष प्राप्त कर लेता है।[2]

वैदिको मे प्रचलित आत्म व्यापकता के सिद्धान्त के साथ इसका समन्वय होता है। हेमचन्द्र, यशोविजय आदि विद्वानो ने इसका समन्वय किया है।

दिगम्बरो की यह मान्यता है कि केवली समुद्घात करते हैं, किन्तु सैद्धान्तिक मान्यता यह है कि केवली समुद्घात करते नहीं, वह स्वत होती है। समुद्घात करना आलोचनार्ह क्रिया है।

वृत्तिकार ने यहा यह उल्लेख किया है कि तीर्थंकर नेमिनाथ के शिष्यो में से किसी ने अघाति कर्मों का आयुष्य कर्म के साथ समीकरण करने के लिए केवली समुद्घात किया था।[3]

इस उल्लेख से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या और किसी तीर्थंकर के शिष्यों ने समुद्घात नही किया ? यदि किया था तो वृत्तिकार ने महावीर के शिष्यो का उल्लेख क्यो नहीं किया ? संभव है परपरागत यही घटना प्रचलित रही हो, जिसका कि उल्लेख वृत्तिकार ने किया है।

४७ प्रमर्दयोग (सू० ११९)

प्रमर्द योग का अर्थ है—स्पर्श योग। प्रस्तुत सूत्रगत आठ नक्षत्र उभययोगी होते हैं। चन्द्रमा को उत्तर और दक्षिण दोनों ओर से स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा इनके बीच से निकल जाता है।

४८ (सू० १२५)

तीन इन्द्रिय वाले जीवो की योनिया दो लाख हैं और उनकी कुलकोटिया आठ लाख। योनि का अर्थ है—उत्पत्ति स्थान और कुलकोटि का अर्थ है—उस एक ही स्थान मे उत्पन्न होने वाली विविध जातिया। गोबर एक योनि है। उसमे कृमि, कीट, बिच्छू आदि अनेक जातिया उत्पन्न होती हैं, उन्हें कुल कहा जाता है। जैसे—कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि।

---

१ प्रज्ञापना पद ३६।

२ आवश्यक, मलयगिरी वृत्ति पत्र ५३६ में उद्धृत।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१९ एतेषा च नेमिनाथस्य विनेयानां मध्ये कश्चित्केवली भूत्वा वेदनीयादिकर्मस्थितीनामायुष्कस्थित्या समीकरणार्थं केवलिसमुद्घात कृतवानिति।

णवमं ठाणं

नवम स्थान

आमुख

इसमे पचहत्तर सूत्र हैं। इनके विषय भिन्न-भिन्न हैं। इसका पहला सूत्र भगवान महावीर के समय की गण-व्यवस्था पर कुछ प्रकाश डालता हुआ गण की अखडता के साधनभूत अमात्सर्य का निरूपण करता है। प्रत्यनीकता अखडता के लिए घुण है, अत जो श्रमण, आचार्य, उपाध्याय आदि का प्रत्यनीक होता है, कर्त्तव्य से प्रतिकूल आचरण करता है उसे गण से अलग कर देना ही श्रेयस्कर होता है।

ऐतिहासिक तथ्यों को अभिव्यक्ति देने वाले सूत्र इस स्थान मे सकलित है। जैसे सूत्र सख्या २९, ६१ आदि-आदि। सूत्र ६० मे भगवान महावीर के तीर्थ मे तीर्थंकर नाम का कर्म-वध करने वाले नौ व्यक्तियों का कथन है। उसमे सात पुरुष हैं और दो स्त्रियां। इनका अन्यान्य आगम-ग्रन्थों तथा व्याख्या-ग्रन्थों मे वर्णन मिलता है। पोट्टिल अनगार का उल्लेख अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे भी मिलता है, किन्तु वहां महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होने की बात कही है और यहां भरत क्षेत्र से सिद्ध होने का उल्लेख है। अत यह उससे भिन्न होना चाहिए। तीर्थंकर नामकर्म वध के बीस कारण बतलाए हैं। इन नौ व्यक्तियों के तीर्थंकर नामकर्म वध के भिन्न-भिन्न कारण प्रस्तुत हुए हैं।

सूत्र ६२ मे महाराज श्रेणिक के भव-भवान्तरों का विवरण है। इस एक ही सूत्र मे भगवान महावीर के दर्शन का समग्रता से अवबोध हो जाता है। इसमे समग्र भाव से महावीर का तत्त्वदशन, श्रमणचर्या और श्रावकचर्या का उल्लेख है।

इस स्थान के सूत्र १३ मे रोगोत्पत्ति के नौ कारणों का उल्लेख है। वह बहुत ही मननीय है। इनमे आठ कारण शारीरिक रोगों की उत्पत्ति के हेतु हैं और इन्द्रियार्थ-विकोपन—मानसिक रोग को उत्पन्न करता है। वृत्तिकार ने बताया है कि अधिक बैठने या कठोर आसन पर बैठने से मसे का रोग होता है। अधिक खाने से अथवा थोडे-थोडे समय के अन्तराल मे खाने से अजीर्ण तथा अनेक उदर रोग उत्पन्न होते हैं। ये सारे शारीरिक रोग हैं। मानसिक रोग का मूल कारण है—इन्द्रियार्थ-विकोपन अथवा काम-विकार। इससे उन्माद उत्पन्न होता है और वह सारे मानसिक सन्तुलन को बिगाड कर व्यक्ति में अनेक प्रकार के मानसिक रोगों की उत्पत्ति करता है। अन्तत वह मरण के द्वार तक भी पहुचा देता है। काम-विकार से उत्पन्न होने वाले दस दोष ये हैं—

१ स्त्री के प्रति अभिलाषा।	२. उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न।
३ उसका सतत स्मरण।	४ उसका उत्कीर्त्तन।
५ प्राप्त न होने पर उद्वेग।	६ प्रलाप।
७ उन्माद।	८ व्याधि।
९ अकर्मण्यता।	१० मृत्यु।

इसी प्रकार अब्रह्मचर्य से बचने के नौ व्यावहारिक उपायों का भी ब्रह्मचर्य गुप्ति (सूत्र ३) के नाम से उल्लेख हुआ है। उनमे अन्तिम उपाय है—ब्रह्मचारी को सुविधावादी नहीं होना चाहिए। यह उपाय श्रमण को सतत श्रमशील और कष्ट-सहिष्णु बनने की प्रेरणा देता है।

इसी प्रकार सूत्र १५, १६ नक्षत्रों की चन्द्रमा के साथ स्थिति तथा अन्यान्य ज्योतिष के सूत्र भी सकलित हैं। ६८वें सूत्र मे शुक्र-ग्रहण के भ्रमण-क्षेत्र को नौ विथियों मे बाँटकर उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सूत्र ६२ मे राजा, ईश्वर, तलवार आदि अधिकारी वर्ग का उल्लेख है। इससे उस समय मे प्रचलित विभिन्न नियुक्तियों का आधार मिलता है। टीकाकार ने राजा से महामांडलिक, जो आठ हजार राजाओं का अधिपति होता था, का ग्रहण किया है। इसी प्रकार अन्यान्य व्याख्याओं से भी उस समय की राज्य-व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था का अवबोध हो आता है। देखें टिप्पण सख्या २९ से ३७। इस प्रकार इस स्थान मे भगवान पार्श्व, भगवान महावीर तथा महाराज श्रेणिक के विषय मे विविध जानकारी मिलती है। कुछेक श्रावक-श्राविकाओं के जीवनोत्कर्ष का भी कथन प्राप्त है। इसलिए यह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

णवमं ठाणं

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

विसंभोग-पदं

१ णवहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे सभोइय विसभोइय करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—
आयारियपडिणीयं,
उवज्झायपडिणीयं,
थेरपडिणीय, कुलपडिणीय,
गणपडिणीय, सघपडिणीय,
णाणपडिणीय, दसणपडिणीय,
चरित्तपडिणीय।

विसभोग-पदम्

नवभि स्थानै श्रमण निर्ग्रन्थ साम्भोगिक वैसभोगिक कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—
आचार्यप्रत्यनीक, उपाध्यायप्रत्यनीक, स्थविरप्रत्यनीक, कुलप्रत्यनीक, गणप्रत्यनीक, सघप्रत्यनीक, ज्ञानप्रत्यनीक, दर्शनप्रत्यनीक, चरित्रप्रत्यनीकम्।

विसभोग-पद

१ नौ स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ साभोगिक साधु को विसाभोगिक[1] करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—
१ आचार्य का प्रत्यनीक।
२ उपाध्याय का प्रत्यनीक।
३ स्थविर का प्रत्यनीक।
४ कुल का प्रत्यनीक।
५ गण का प्रत्यनीक।
६ सघ का प्रत्यनीक।
७ ज्ञान का प्रत्यनीक।
८ दर्शन का प्रत्यनीक।
९ चारित्र का प्रत्यनीक।

बंभचेरअज्झयण-पदं

२ णव बभचेरा पण्णत्ता, तं जहा—
सत्थपरिण्णा, लोगविजओ,
•सीओसणिज्ज, सम्मत्त, आवती,
धूत, विमोहो,° उवहाणसुय,
महापरिण्णा।

ब्रह्मचर्याध्ययन-पदम्

नव ब्रह्मचर्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शस्त्रपरिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवन्ती, धूत, विमोह, उपधानश्रुत, महापरिज्ञा।

ब्रह्मचर्याध्ययन-पद

२ ब्रह्मचर्य—आचाराग सूत्र के नौ अध्ययन हैं—
१ शस्त्रपरिज्ञा, २ लोकविजय,
३ शीतोष्णीय, ४ सम्यक्त्व,
५ आवन्ती-लोकसार, ६ धूत,
७ विमोह, ८ उपधानश्रुत,
९ महापरिज्ञा।

बभचेरगुत्ति-पद

३. णव बभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
१ विवित्ताइ सयणासणाइं सेवित्ता भवति—
णो इत्थिससत्ताइ णो पसुससत्ताइ णो पडगससत्ताइं।

ब्रह्मचर्यगुप्ति-पदम्

नव ब्रह्मचर्यगुप्तय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ विविक्तानि शयनासनानि सेविता भवति—
नो स्त्रीससक्तानि नो पशुससक्तानि नो पण्डकससक्तानि।

ब्रह्मचर्यगुप्ति-पद

३ ब्रह्मचर्य की गुप्तिया नौ हैं[2]—
१ ब्रह्मचारी विविक्त शयन और आसन का सेवन करता है। स्त्री, पशु और नपुंसक से ससक्त शयन और आसन का सेवन नही करता।

२ णो इत्थीण कह कहेत्ता भवति। २. नो स्त्रीणा कथा कथयिता भवति। २ वह केवल स्त्रियो मे कथा नही करता अथवा स्त्री की कथा नही करता।

३ णो इत्थिठाणाइ सेवित्ता भवति। ३. नो स्त्रीस्थानानि सेविता भवति। ३ वह स्त्रियो के स्थानों का सेवन नही करता।

४ णो इत्थीणमिंदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति। ४ नो स्त्रीणा इन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निध्याता भवति। ४ वह स्त्रियो की मनोहर और मनोरम इन्द्रियो को नहीं देखता और न उनका अवधानपूर्वक चिन्तन करता है।

५ णो पणीतरसभोई [भवति ?]। ५ नो प्रणीतरसभोजी (भवति ?)। ५ वह प्रणीतरस का भोजन नहीं करता।

६ णो पाणभोयणस्स अतिमातमाहारए सया भवति। ६ नो पानभोजनस्य अतिमात्र आहारक सदा भवति। ६ वह सदा पान-भोजन का अतिमात्रा मे आहार नहीं करता।

७ णो पुव्वरत पुव्वकीलिय सरेत्ता भवति। ७ नो पूर्वरत पूर्वक्रीडित स्मर्त्ता भवति। ७ वह पूर्व अवस्था मे आचीर्ण भोग तथा क्रीडाओ का स्मरण नही करता।

८ णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती [भवति ?]। ८ नो शब्दानुपाती नो रूपानुपाती नो श्लोकानुपाती (भवति ?)। ८ वह शब्द, रूप और श्लोक [कीर्ति] का अनुपाती नही होता—उनमे आसक्त नही होता।

९ णो सातसोक्खपडिवद्धे यावि भवति। ९ नो सातसौख्यप्रतिवद्धश्चापि भवति। ९ वह सात और सुख में प्रतिवद्ध नहीं होता।

बंभचेरअगुत्ति-पद

ब्रह्मचर्याऽगुप्ति-पदम्

ब्रह्मचर्याऽगुप्ति-पद

४ णव बभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा— नव ब्रह्मचर्याऽगुप्तय प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ४ ब्रह्मचर्य की अगुप्तिया नौ हैं—

१ णो विवित्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता भवति— इत्थीससत्ताइ पसुससत्ताइ पडगससत्ताइ। नो विविक्तानि शयनासनानि सेविता भवति— स्त्रीससक्तानि पशुससक्तानि पण्डकससक्तानि। १ ब्रह्मचारी विविक्त शयन और आसन का सेवन नहीं करता। स्त्री, पुरुष और नपुसक सहित शयन और आसन का सेवन करता है।

२ इत्थीण कह कहेत्ता भवति। २ स्त्रीणा कथा कथियता भवति। २ वह केवल स्त्रियो मे कथा करता है अथवा स्त्री की कथा करता है।

३. इत्थिठाणाइ सेवित्ता भवति। ३ स्त्रीस्थानानि सेविता भवति। ३ वह स्त्रियो के स्थानो का सेवन करता है।

४ इत्थीणं इदियाइ °मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता° णिज्झाइत्ता भवति। ४ स्त्रीणा इन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निध्याता भवति। ४ वह स्त्रियों के मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखता है और उनका अवधानपूर्वक चिन्तन करता है।

५ पणीयरसभोई [भवति ?]। ५ प्रणीतरसभोजी (भवति ?)। ५ वह प्रणीतरस का भोजन करता है।

६ पाणभोयणस्स अइमायमाहारए सया भवति ।
७ पुव्वरय पुव्वकीलिय सरित्ता भवति ।
८ सद्दाणुवाई रूवाणुवाई सिलोगाणुवाई [भवति ?]
९ सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवति ।

६ पानभोजनस्य अतिमात्रमाहारक सदा भवति ।
७ पूर्वरत पूर्वक्रीडित स्मर्त्ता भवति ।
८ शब्दानुपाती रूपानुपाती श्लोकानुपाती (भवति ?) ।
९ सातसौख्यप्रतिबद्धश्चापि भवति ।

६ वह सदा पान-भोजन का अतिमात्रा मे आहार करता है ।
७ वह पूर्व अवस्था मे आचीर्ण भोग तथा क्रीडाओ का स्मरण करता है ।
८ वह शब्द, रूप और श्लोक [कीर्ति] का अनुपाती होता है—उनमे आसक्त होता है ।
९ वह सात और सुख मे प्रतिबद्ध होता है ।

तित्थगर-पद

५ अभिणदणाओ ण अरहओ सुमती अरहा णवहि सागरोवमकोडीसयसहस्सेहि वीइक्कतेहि समुप्पण्णे ।

तीर्थंकर-पदम्

अभिनन्दनात् अर्हत सुमति अर्हन् नवसु सागरोपमकोटिशतसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु समुत्पन्न ।

तीर्थंकर-पद

५ अर्हत् अभिनन्दन के पश्चात् नौ लाख करोड सागरोपम काल वीत जाने पर अर्हत् सुमति समुत्पन्न हुए ।

सब्भावपयत्थ-पद

६ णव सब्भावपयत्था पण्णत्ता, त जहा—
जीवा, अजीवा, पुण्णं, पाव, आसवो, सवरो, णिज्जरा, बधो, मोक्खो ।

सद्भावपदार्थ-पदम्

नव सद्भावपदार्था प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जीवा, अजीवा, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, वन्ध, मोक्ष ।

सद्भावपदार्थ-पद

६ सद्भाव पदार्थ [अनुपचरित या पारमार्थिक वस्तु] नौ है—
१ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ सवर, ७ निर्जरा, ८ वध, ९ मोक्ष ।

जीव-पद

७ णवविहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, •आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया,° वणस्सइकाइया, वेइंदिया, •तेइंदिया, चउरिंदिया,° पचिंदिया ।

जीव-पदम्

नवविधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया ।

जीव-पद

७ ससारसमापन्नक जीव नौ प्रकार के हैं—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय, ८ चतुरिन्द्रिय, ९ पञ्चेन्द्रिय ।

गति-आगति-पद

८ पुढविकाइया णवगतिया णवआगतिया पण्णत्ता, त जहा—

गति-आगति-पदम्

पृथिवीकायिका नवगतिका नवागतिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

गति-आगति-पद

८ पृथ्वीकायिक जीवो की नौ गति और नौ आगति होती है—

पुढविकाइए पुढवीकाइएसु उववज्ज-
माणे पुढविकाइएहिंतो वा,
•आउकाइएहिंतो वा,
तेउकाइएहिंतो वा,
वाउकाइएहिंतो वा,
वणस्सइकाइएहिंतो वा,
बेइ दिएहिंतो वा,
तेइंदिएहिंतो वा,
चउरिंदिएहिंतो वा,
पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेजा।

से चेव णं से पुढविकाइए पुढ-
विकायत्त विप्पजहमाणे पुढविका-
इयत्ताए वा, •आउकाइयत्ताए वा,
तेउकाइयत्ताए वा,
वाउकाइयत्ताए वा,
वणस्सइकाइयत्ताए वा,
बेइंदियत्ताए वा,
तेइंदियत्ताए वा,
चउरिंदियत्ताए वा,°
पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

९ एवमाउकाइयावि जाव पंचि-
दियत्ति।

पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकेषु
उपपद्यमान पृथिवीकायिकेभ्यो वा,
अप्कायिकेभ्यो वा, तेजस्कायिकेभ्यो वा,
वायुकायिकेभ्यो वा,
वनस्पतिकायिकेभ्यो वा, द्वीन्द्रियेभ्यो वा,
त्रीन्द्रियेभ्यो वा, चतुरिन्द्रियेभ्यो वा,
पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपपद्येत।

स चैव असौ पृथिवीकायिक पृथिवी-
कायत्व विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया
वा, अप्कायिकतया वा,
तेजस्कायिकतया वा, वायुकायिकतया वा,
वनस्पतिकायिकतया वा, द्वीन्द्रियतया वा,
त्रीन्द्रियतया वा, चतुरिन्द्रियतया वा,
पञ्चेन्द्रियतया वा गच्छेत्।

एवमप्कायिका अपि यावत् पञ्चेन्द्रिया
इति।

पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने वाला जीव
पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय,
वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतु-
रिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इन नौ जातियों
से आता है।

पृथ्वीकाय से निकलने वाला जीव पृथ्वी-
काय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वन-
स्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
और पञ्चेन्द्रिय—इन नौ जातियों मे
जाता है।

९ इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक,
वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय,
त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय इन
सभी प्राणियो की गति-आगति नौ-नौ
हैं।

जीव-पदं

१०. णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त
जहा—
एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया,
चउरिंदिया, णेरइया, पचेंदिय-
तिरिक्खजोणिया मणुया देवा
सिद्धा।

जीव-पदम्

नवविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—
एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया,
चतुरिन्द्रिया, नैरयिका, पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यग्योनिका, मनुजा, देवा,
सिद्धा।

जीव-पद

१० सब जीव नौ प्रकार के हैं—
१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय,
३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय,
५ नैरयिक, ६ पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक,
७ मनुष्य, ८ देव, ९ सिद्ध।

अहवा— णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
पढमसमयणेरइया,
अपढमसमयणेरइया,
•पढमसमयतिरिया,
अपढमसमयतिरिया,
पढमसमयमणुया,
अपढमसमयमणुया,
पढमसमयदेवा,°
अपढमसमयदेवा, सिद्धा।

अथवा—नवविधा सर्वजीवा॰ प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिका,
अप्रथमसमयनैरयिका,
प्रथमसमयतिर्यञ्च,
अप्रथमसमयतिर्यञ्च॰,
प्रथमसमयमनुजा,
अप्रथमसमयमनुजा,
प्रथमसमयदेवा, अप्रथमसमयदेवा,
सिद्धा।

अथवा—सब जीव नौ प्रकार के हैं—
१ प्रथम समय नैरयिक।
२ अप्रथम समय नैरयिक।
३ प्रथम समय तिर्यञ्च।
४ अप्रथम समय तिर्यञ्च।
५ प्रथम समय मनुष्य।
६ अप्रथम समय मनुष्य।
७ प्रथम समय देव।
८ अप्रथम समय देव।
९ सिद्ध।

ओगाहणा-पदं

११ णवविहा सव्वजीवोगाहणा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइओगाहणा,
आउकाइओगाहणा,
•तेउकाइओगाहणा,
वाउकाइओगाहणा,°
वणस्सइकाइओगाहणा,
बेइंदियओगाहणा,
तेइंदियओगाहणा,
चउरिंदियओगाहणा,
पंचिंदियओगाहणा।

अवगाहना-पदम्

नवविधा सर्वजीवावगाहना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिकावगाहना,
अप्कायिकावगाहना,
तेजस्कायिकावगाहना,
वायुकायिकावगाहना,
वनस्पतिकायिकावगाहना,
द्वीन्द्रियावगाहना,
त्रीन्द्रियावगाहना,
चतुरिन्द्रियावगाहना,
पञ्चेन्द्रियावगाहना।

अवगाहना-पद

११ सब जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की होती है—
१ पृथ्वीकायिक अवगाहना।
२ अप्कायिक अवगाहना।
३ तेजस्कायिक अवगाहना।
४ वायुकायिक अवगाहना।
५ वनस्पतिकायिक अवगाहना।
६ द्वीन्द्रिय अवगाहना।
७ त्रीन्द्रिय अवगाहना।
८ चतुरिन्द्रिय अवगाहना।
९ पञ्चेन्द्रिय अवगाहना।

संसार-पद

१२ जीवा ण णवहिं ठाणेहिं संसार वत्तिसु वा वत्तति वा वत्तिस्सति वा, त जहा—
पुढविकाइयत्ताए, •आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणस्सइकाइयत्ताए, बेइंदियत्ताए, तेइंदियत्ताए, चउरिंदियत्ताए,° पंचिंदियत्ताए।

संसार-पदम्

जीवा नवभि स्थानै ससार अवर्तिषत वा वर्तन्ते वा वर्तिष्यन्ते वा, तद्यथा—
पृथिवीकायिकतया, अप्कायिकतया, तेजस्कायिकतया, वायुकायिकतया, वनस्पतिकायिकतया, द्वीन्द्रियतया, त्रीन्द्रियतया, चतुरिन्द्रियतया, पञ्चेन्द्रियतया।

संसार-पद

१२ जीवों ने नौ स्थानो से ससार मे परिवर्तन किया था, करते हैं और करेंगे—
१ पृथ्वीकाय के रूप मे।
२ अप्काय के रूप मे।
३ तेजस्काय के रूप मे।
४ वायुकाय के रूप में।
५ वनस्पतिकाय के रूप मे।
६ द्वीन्द्रिय के रूप में।
७ त्रीन्द्रिय के रूप मे।
८ चतुरिन्द्रिय के रूप मे।
९ पञ्चेन्द्रिय के रूप मे।

रोगुप्पत्ति-पदं

१३. णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया तं जहा—
अच्चासणयाए, अहितासणयाए, अतिणिद्दाए, अतिजागरितेण, उच्चारणिरोहेण, पासवणणिरोहेण, अद्धाणगमणेणं, भोयणपडिकूलताए, इंदियत्थविकोवणयाए।

रोगोत्पत्ति-पदम्

नवभिः स्थानैः रोगोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
अत्यशनतया (अत्यासनतया), अहिताशनतया, अतिनिद्रया, अतिजागरितेन, उच्चारनिरोधेन, प्रस्रवणनिरोधेन, अध्वगमनेन, भोजनप्रतिकूलतया, इन्द्रियार्थविकोपनतया।

रोगोत्पत्ति-पद

१३ रोग की उत्पत्ति के नौ स्थान हैं[1]—
१ निरन्तर बैठे रहना या अतिभोजन करना।
२ अहितकर आसन पर बैठना या अहितकर भोजन करना।
३ अतिनिद्रा। ४ अतिजागरण।
५ उच्चार [मल] का निरोध।
६ प्रस्रवण का निरोध।
७ पथगमन। ८ भोजन की प्रतिकूलता।
९ इन्द्रियार्थविकोपन—कामविकार।

दरिसणावरणिज्ज-पदं

१४ णवविधे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी, चक्खुदंसणावरणे, अचक्खुदंसणावरणे, ओहिदंसणावरणे, केवलदंसणावरणे।

दर्शनावरणीय-पदम्

नवविधं दर्शनावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धिः, चक्षुर्दर्शनावरणं, अचक्षुर्दर्शनावरणं, अवधिदर्शनावरणं, केवलदर्शनावरणम्।

दर्शनावरणीय-पद

१४ दर्शनावरणीय कर्म के नौ प्रकार हैं[2]—
१ निद्रा—सोया हुआ व्यक्ति सुख से जाग जाए, वैसी निद्रा।
२ निद्रानिद्रा—घोरनिद्रा, सोया हुआ व्यक्ति कठिनाई से जागे, वैसी निद्रा।
३. प्रचला—खड़े या बैठे हुए जो निद्रा आए।
४ प्रचला-प्रचला—चलते-फिरते जो निद्रा आए।
५ स्त्यानर्द्धि—संकल्प किए हुए कार्य को निद्रा में कर डाले, वैसी प्रगाढतम निद्रा।
६ चक्षुदर्शनावरणीय—चक्षु के द्वारा होने वाले दर्शन [सामान्य ग्रहण] का आवरण।
७ अचक्षुदर्शनावरणीय—चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रिय और मन से होने वाले दर्शन का आवरण।
८ अवधिदर्शनावरणीय—मूर्त्त द्रव्यों के साक्षात् दर्शन का आवरण।
९ केवलदर्शनावरणीय—सर्व द्रव्य-पर्यायों के साक्षात् दर्शन का आवरण।

जोइस-पदं

१५. अभिई णं णक्खत्ते सातिरेगे णव मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएति।

ज्योतिष-पदम्

अभिजित् नक्षत्रं सातिरेकान् नव मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं योजयति।

ज्योतिष-पद

१५ अभिजित् नक्षत्र चन्द्रमा के साथ नौ मुहूर्त से कुछ अधिक काल तक योग करता है[3]।

१६ अभिइआइआ णं णव णक्खत्ता णं चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, तं जहा—
अभिई, सवणो, धणिट्ठा,
सयभिसया, पुव्वाभद्दवया,
उत्तरापोट्ठवया, रेवई,
अस्सिणी, भरणी।

अभिजिदादिकानि नव नक्षत्राणि चन्द्रस्योत्तरेण योग योजयन्ति, तद्यथा—
अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी।

१६ अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ उत्तर दिशा से योग करते हैं[1]—
१ अभिजित्, २ श्रवण, ४ धनिष्ठा,
४. शतभिषक्, ५ पूर्वभाद्रपद,
६ उत्तरभाद्रपद, ७ रेवती,
८ अश्विनी, ९ भरणी।

१७ इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोअणसताइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चार चरति।

अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् नव योजनशतानि ऊर्ध्वं अबाधया उपरितन तारारूप चार चरति।

१७ इन रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से नौ सौ योजन की ऊचाई पर सब से ऊचा तारा [शनैश्चर] गति करता है[2]।

मच्छ-पदं

मत्स्य-पदम्

मत्स्य-पद

१८ जंबुद्दीवे ण दीवे णवजोयणिया मच्छा पविसिसु वा पविसति वा पविसिस्सति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे नवयोजनिका मत्स्या प्राविशन् वा प्रविशन्ति वा प्रवेक्ष्यन्ति वा।

१८ जम्बूद्वीप द्वीप मे नौ योजन के मत्स्यो ने प्रवेश किया था, करते हैं और करेंगे[3]।

बलदेव-वासुदेव-पद

बलदेव-वासुदेव-पदम्

बलदेव-वासुदेव-पद

१९. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेव-पियरो हुत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्या अवसर्पिण्या नव बलदेव-वासुदेवपितरः अभवन्, तद्यथा—

१९ जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी मे बलदेव-वासुदेव के ये नौ पिता हुए—

संगहणी-गाहा

१. पयावती य बंभे,
रोद्दे सोमे सेवेति य।
महसीहे अग्गिसीहे,
दसरहे णवमे य वसुदेवे॥
इत्तो आढत्त जधा समवाये णिरवसेस जाव—
एगा से गब्भवसही,
सिज्झिहिति आगमेसेण।

संग्रहणी-गाथा

१ प्रजापतिश्च ब्रह्मा,
रुद्र सोम शिवइति च।
महासिंहोऽग्निसिंहो,
दशरथ नवमश्च वसुदेव॥
इत आरभ्य यथा समवाये निरवशेष यावत्—
एका तस्य गर्भवसति,
सेत्स्यति आगमिष्यति।

१ प्रजापति, २ ब्रह्म, ३ रौद्र,
४ सोम, ५ शिव, ६ महासिंह,
७ अग्निसिंह ८ दशरथ, ९ वसुदेव।

यहा से आगे शेष सब समवयाग की भाति वक्तव्य है, यावत् वह आगामी काल मे एक गर्भावास कर सिद्ध होगा।

२०. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेवपितरो भविस्संति, णव बलदेव-वासुदेवमायरो भविस्संति। एवं जधा समवाए णिरवसेसं जाव महाभीमसेणे, सुग्गीवे य अपच्छिमे।

१ एए खलु पडिसत्तू,
कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही,
हम्मेहिंती सचक्केहिं ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यति उत्सर्पिण्यां नव बलदेव-वासुदेवपितरः भविष्यन्ति, नव बलदेव-वासुदेवमातरो भविष्यन्ति। एवं यथा समवाये निरवशेषं यावत् महाभीमसेन, सुग्रीवश्च अपश्चिमः।

१ एते खलु प्रतिशत्रवः,
कीर्त्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम्।
सर्वेऽपि चक्रयोधिनो,
हनिष्यन्ति स्वचक्रैः।

२०. जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बलदेव-वासुदेव के नौ माता-पिता होंगे।

शेष सब समवायांग की भांति वक्तव्य है यावत् महाभीमसेन और सुग्रीव। ये कीर्तिपुरुष वासुदेवों के प्रतिशत्रु होंगे। ये सब चक्रयोधी होंगे और ये सब अपने ही चक्र से वासुदेव द्वारा मारे जाएंगे।

महाणिहि-पद

२१. एगमेगे णं महाणिधी णव-णव जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

२२ एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहिओ [णो ?] पण्णत्ता, तं जहा—

महानिधि-पदम्

एकैकः महानिधिः नव-नव योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः नव महानिधयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

महानिधि-पद

२१ प्रत्येक महानिधि की चौड़ाई नौ-नौ योजन की है।

२२ प्रत्येक चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के नौ महानिधि[1] होते हैं—

संगहणी-गाहा

१ णेसप्पे पंडुयए,
पिंगलए सव्वरयण महापउमे।
काले य महाकाले,
माणवग महाणिही संखे ॥
२ णेसप्पंमि णिवेसा,
गामागर-णगर-पट्टणाणं च।
दोणमुह-मडंबाणं,
खंधाराणं गिहाणं च।
३. गणियस्स य बीयाणं,
माणुम्माणस्स जं पमाणं च।
धण्णस्स य बीयाणं,
उप्पत्ती पंडुए भणिया ॥

संग्रहणी-गाथा

१. नैसर्पः पाण्डुकः,
पिङ्गलकः सर्वरत्नः महापद्मः।
कालश्च महाकालः,
माणवकः महानिधिः शङ्खः ॥
२ नैसर्पे निवेशाः,
ग्रामाकर-नगर-पट्टनानां च।
द्रोणमुख-मडम्बानां,
स्कन्धावाराणां गृहाणाञ्च ॥
३ गणितस्य च बीजानां,
मानोन्मानस्य यत् प्रमाणं च।
धान्यस्य च बीजानां,
उत्पत्तिः पाण्डुके भणिता ॥

१ नैसर्प, २ पाण्डुक, ३ पिंगल, ४ सर्वरत्न, ५ महापद्म, ६ काल, ७ महाकाल, ८ माणवक, ९ शंख।

ग्राम, आकर, नगर, पट्टण, द्रोणमुख, मडंब, स्कंधावार और गृहों की रचना का ज्ञान नैसर्प महानिधि से होता है।

गणित तथा बीजों के मान और उन्मान का प्रमाण तथा धान्य और बीजों की उत्पत्ति का ज्ञान 'पाण्डुक' महानिधि से होता है।

४ सव्वा आभरणविही,
पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं।
आसाण य हत्थीण य,
पिंगलगणिहिम्मि सा भणिया ॥
५ रयणाइ सव्वरयणे,
चोद्दस पवराइ चक्कवट्टिस्स।
उप्पज्जति एगिंदियाइ,
पंचिंदियाइ च ॥
६ वत्थाण य उप्पत्ती,
णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं ॥
रगाण य धोयाण य,
सव्वा एसा महापउमे ॥
७. काले कालण्णाण,
भव्व पुराण च तीसु वासेसु।
सिप्पसत्त कम्माणि य,
तिण्णि पयाए हियकराइ ॥

८ लोहस्स य उप्पत्ती,
होइ महाकाले आगराण च।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य,
मणि-मोत्ति-सिल-प्पवालाण ॥
९ जोधाण य उप्पत्ती,
आवरणाण च पहरणाण च।
सव्वा य जुद्धनीती,
माणवए दडणीती य ॥
१० णट्टविही णाडगविही,
कव्वस्स चउव्विहस्स उप्पत्ती।
सखे महाणिहिम्मी,
तुडियगाण च सव्वेसि ॥
११. चक्कट्ठपइट्ठाणा,
अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खभे।
बारसदीहा मजूस-सठिया
जाह्नवीए मुहे ॥

४ सर्व आभारणविधि,
पुरुषाणा या च भवति महिलाना ॥
अश्वाना च हस्तिना च,
पिङ्गलकनिधौ सा भणिता ॥
५ रत्नानि सर्वरत्ने,
चतुर्दश प्रवराणि चक्रवर्त्तिन।
उत्पद्यन्ते एकेन्द्रियाणि
पञ्चेन्द्रियाणि च ॥
६ वस्त्राणा च उत्पत्ति,
निष्पत्ति चैव सर्वभक्तीना।
रङ्गवता च धौताना च,
सर्वा एषा महापद्मे ॥
७ काले कालज्ञान,
भव्य पुराण च त्रिषु वर्षेषु।
शिल्पशत कर्माणि च,
त्रीणि प्रजायै हितकराणि ॥

८ लोहस्य चोत्पत्ति,
भवति महाकाले आकराणाञ्च।
रूप्यस्य सुवर्णस्य च,
मणि-मुक्ता-शिला-प्रवालानाम् ॥
९ योधाना चोत्पत्ति,
आवरणाना च प्रहरणानाञ्च।
सर्वा च युद्धनीति,
माणवके दण्डनीतिश्च ॥
१० नृत्यविधि नाटकविधि,
काव्यस्य चतुर्विधस्योत्पत्ति।
शङ्खे महानिधौ,
त्रुटिताङ्गाना च सर्वेषाम् ॥
११ चक्राष्टप्रतिष्ठाना,
अष्टोत्सेधाश्च नव च विष्कम्भे।
द्वादशदीर्घा मञ्जूषा-सस्थिता
जाह्नव्या मुखे ॥

स्त्री, पुरुष, घोडे और हाथियो की समस्त आभारणविधि का ज्ञान 'पिंगल' महानिधि से होता है।

चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय और सात पञ्चेन्द्रिय रत्न—इन चौदह रत्नों की उत्पत्ति का वर्णन 'सर्वरत्न' महानिधि से प्राप्त होता है।

रगे हुए या श्वेत सभी प्रकार के वस्त्रो की उत्पत्ति व निष्पत्ति का ज्ञान 'महापद्म' महानिधि से होता है।

अनागत व अतीत के तीन-तीन वर्षों के शुभाशुभ का कालज्ञान, सौ प्रकार के शिल्पो[१०] का ज्ञान और प्रजा के लिए हितकर सुरक्षा, कृषि, वाणिज्य—इन तीन कर्मों का ज्ञान 'काल' महानिधि से होता है।

लोह, चादी तथा सोने के आकर, मणि, मुक्ता, स्फटिक और प्रवाल की उत्पत्ति का ज्ञान 'महाकाल' महानिधि से होता है।

योद्धाओ, कवचो और आयुधों के निर्माण का ज्ञान तथा समस्त युद्धनीति और दण्डनीति का ज्ञान 'माणवक' महानिधि से होता है।

नृत्यविधि, नाटकविधि, चार प्रकार के काव्यों[११] तथा सभी प्रकार के वाद्यो की विधि का ज्ञान 'शख' महानिधि से होता है।

प्रत्येक महानिधि आठ-आठ चक्रो पर अवस्थिति है। वे आठ योजन ऊचे, नौ योजन चौडे, बारह योजन लम्बे तथा मजूषा के सस्थान वाले होते हैं। वे सभी गगा के मुहाने पर अवस्थित रहते हैं।

१२. वेरुलियमणि-कवाडा,
कणगमया विविध-रयण-पडिपुण्णा।
ससि-सूर-चक्क-लक्खण-अणुसम-
जुग-बाहु-वयणा य ॥

१२ वैडूर्यमणि-कपाटा,
कनकमया विविध-रत्न-प्रतिपूर्णा ।
शशि-सूर-चक्र-लक्षणानुसम-
युग-बाहु-वदनाश्च ॥

उन निधियों के कपाट वैडूर्य-रत्नमय और सुवर्णमय होते हैं। उनमें विविध रत्न जड़े हुए होते हैं। उन पर चन्द्र, सूर्य और चक्र के आकार के चिह्न होते हैं। वे सभी समान होते हैं और उनके दरवाजे के मुखभाग में खम्भे के समान वृत्त और लम्बी द्वार-शाखाएं होती हैं।

१३ पलिओवमट्ठितीया,
णिहिसरिणामा य तेसु खलु देवा।
जेसिं ते आवासा,
अक्किज्जा आहिवच्चा वा।

१३ पल्योपमस्थितिका,
निधिसदृग्नामानश्च तेषु खलु देवा ।
येषां ते आवासा,
अक्रेया आधिपत्या वा ॥

वे सभी निधि एक पल्योपम की स्थिति-वाले होते हैं। जो-जो निधियों के नाम हैं उन्हीं नामों के देव उनमें आवास करते हैं। उनका क्रय-विक्रय नहीं होता और उन पर सदा देवों का आधिपत्य रहता है।

१४. एए ते णवणिहिणो,
पभूतधणरयणसंचयसमिद्धा।
जे वसमुवगच्छंती,
सव्वेसिं चक्कवट्टीणं ॥

१४ एते ते नव निधय,
प्रभूतधनरत्नसंचयसमृद्धा ।
ये वशमुपगच्छन्ति,
सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥

वे नौ निधि प्रभूत धन और रत्नों के संचय से समृद्ध होते हैं और वे समस्त चक्र-वर्तियों के वश में रहते हैं।

विगति-पदं

२३ णव विगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरं, दधिं, णवणीतं, सप्पिं, तेलं, गुलो, महुं, मज्जं, मंसं।

विकृति-पदम्

नव विकृतयः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षीरं, दधि, नवनीतं, सर्पिः, तैलं, गुडः, मधु, मद्यं, मांसम् ।

विकृति-पद

२३ विकृतियां[11] नौ हैं—
१ दूध, २ दही, ३ नवनीत,
४ घृत, ५ तैल, ६ गुड़,
७ मधु, ८ मद्य, ९ मांस।

बोंदी-पदं

२४. णव-सोत-परिस्सवा बोंदी पण्णत्ता, तं जहा—
दो सोत्ता, दो णेत्ता, दो घाणा, मुहं, पोसए, पाऊ।

बोन्दी-पदम्

नव-स्रोत-परिश्रवा बोन्दी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
द्वे श्रोत्रे, द्वे नेत्रे, द्वे घ्राणे, मुखं, उपस्थं, पायुः ।

बोंदी-पद

२४ शरीर में नौ स्रोत झर रहे हैं—
दो कान, दो नेत्र, दो नाक, मुंह, उपस्थ और अपान।

पुण्ण-पदं

२५ णवविधे पुण्णे पण्णत्ते, तं जहा—
अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मणपुण्णे, वइपुण्णे, कायपुण्णे, णमोक्कारपुण्णे।

पुण्य-पदम्

नवविधं पुण्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अन्नपुण्यं, पानपुण्यं, वस्त्रपुण्यं, लयनपुण्यं, शयनपुण्यं, मनःपुण्यं, वाक्पुण्यं, कायपुण्यं, नमस्कारपुण्यम् ।

पुण्य-पद

२५ पुण्य के नौ प्रकार हैं—
१ अन्नपुण्य, २ पानपुण्य,
३ वस्त्रपुण्य, ४ लयनपुण्य,
५ शयनपुण्य, ६ मनपुण्य,
७ वचनपुण्य, ८ कायपुण्य,
९ नमस्कारपुण्य।

पावायतण-पदं

२६. णव पावस्सायतणा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवाते, मुसावाए, •अदिण्णादाणे, मेहुणे,° परिग्गहे, कोहे, माणे, माया, लोभे।

पापायतन-पदम्

नव पापस्यायतनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ।

पापायतन-पद

२६. पाप के आयतन [स्थान] नौ हैं—
१ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ।

पावसुयपसंग-पदं

२७ णवविधे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. उप्पाते णिमित्ते मंते, आइक्खिए तिगिच्छिए।
कला आवरणे अण्णाणे मिच्छापवयणे ति य॥

पापश्रुतप्रसंग-पदम्

नवविध पापश्रुतप्रसङ्ग प्रज्ञप्त, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ उत्पात निमित्त मन्त्र, आख्यात चैकित्सिक।
कला आवरण अज्ञान मिथ्याप्रवचनमिति च॥

पापश्रुतप्रसंग-पद

२७ पापश्रुत-प्रसंग[11] के नौ प्रकार हैं—
१ उत्पात—प्रकृति-विप्लव और राष्ट्र-विप्लव का सूचक शास्त्र।
२ निमित्त—अतीत, वर्तमान और भविष्य को जानने का शास्त्र।
३ मन्त्र—मन्त्र-विद्या का प्रतिपादक शास्त्र
४ आख्यायिका—मातंग-विद्या—एक विद्या जिससे अतीत आदि की परोक्ष बातें जानी जाती हैं।
५ चिकित्सा—आयुर्वेद आदि।
६ कला—७२ कलाओं का प्रतिपादक शास्त्र। ७ आवरण—वास्तुविद्या।
८ अज्ञान—लौकिकश्रुत—भरतनाट्य आदि।
९ मिथ्याप्रवचन—कुतीर्थिकों के शास्त्र।

णेउणिय-पदं

२८ णव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता, तं जहा—
१ संखाणे णिमित्ते काइया पोराणे पारिहत्थिए।
परपंडिते वाई य, भूतिकम्मे तिगिच्छिए॥

नैपुणिक-पदम्

नव नैपुणिकानि वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ संख्यान नैमित्तिक कायिक पुराण पारिहस्तिक।
परपण्डित वादी च, भूतिकर्मा चैकित्सिक॥

नैपुणिक-पद

२८ नैपुणिक[12] वस्तु [पुरुष] नौ हैं—
१ संख्यान—गणित को जानने वाला।
२ नैमित्तिक—निमित्त को जानने वाला।
३ कायिक—इडा, पिंगला आदि प्राण-तत्त्वों को जानने वाला।
४ पौराणिक—इतिहास को जानने वाला,
५ पारिहस्तिक—प्रकृति से ही समस्त कार्यों में दक्ष।
६ परपण्डित—अनेक शास्त्रों को जानने वाला।
७ वादी—वाद-लब्धि से सम्पन्न।
८ भूतिकर्म—भस्म-लेप या डोरा बांधकर ज्वर आदि की चिकित्सा करने वाला।
९ चैकित्सिक—चिकित्सा करने वाला।

गण-पदं

२६ समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्था, त जहा—
गोदासगणे, उत्तरबलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्डियगणे, माणवगणे, कोडियगणे।

गण-पदम्

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य नव गणा अभवन्, तद्यथा—
गोदासगण, उत्तरबलिस्सहगण, उद्देहगण, चारणगणः, उद्दवाइयगण, विस्सवाइयगण, कामर्द्धिकगण, मानवगण, कोटिकगण ।

गण-पद

२६. श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण[15] थे—
१ गोदासगण, २ उत्तरबलिस्सहगण,
३ उद्देहगण, ४. चारणगण,
५ उद्दवाइयगण [उडुपाटितगण],
६ विस्सवाइयगण [वेशपाटितगण],
७ कामर्द्धिकगण, ८ मानवगण,
६ कोटिकगण।

भिक्खा-पदं

३०. समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णवकोडिपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, त जहा—
ण हणइ, ण हणावइ, हणत णाणुजाणइ, ण पयइ, ण पयावेति, पयत णाणुजाणति, ण किणति, ण किणावेति, किणत णाणुजाणति।

भिक्षा-पदम्

श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नवकोटिपरिशुद्ध भैक्ष प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
न हन्ति, न घातयति, घ्नन्त नानुजानाति, न पचति, न पाचयति, पचन्त नानुजानाति, न क्रीणाति, न क्रापयति, क्रीणन्त नानुजानाति।

भिक्षा-पद

३० श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नौकोटिपरिशुद्ध भिक्षा का निरूपण किया है—
१ न हनन करता है।
२ न हनन करवाता है।
३ न हनन करने वालो का अनुमोदन करता है।
४ न पकाता है। ५ न पकवाता है।
६ न पकाने वाले का अनुमोदन करता है।
७ न मोल लेता है।
८ न मोल लिवाता है।
६ न मोल लेने वाले का अनुमोदन करता है।

देव-पदं

३१. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो णव अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।
३२ ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीण णव पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।
३३ ईसाणे कप्पे उक्कोसेण देवीण णव पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देव-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य नव अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता ।
ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणा नव पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता ।
ईशाने कल्पे उत्कर्षेण देवीना नव पल्योपमानि स्थिति प्रज्ञप्ता ।

देव-पद

३१ देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वरुण के नौ अग्रमहिषिया हैं।
३२ देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियो की स्थिति नौ पल्योपम की है।
३३ ईशान कल्प मे देवियो की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की है।

३४. णव देवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—

नव देवनिकाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

३४. नौ देवनिकाय हैं[1]—

संगहणी-गाहा

१ सारस्सयमाइच्चा,
वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा,
अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य।

संग्रहणी-गाथा

१ सारस्वता आदित्या,
वह्नय वरुणाश्च. गर्दतोयाश्च।
तुषिता अव्याबाधा,
अग्न्यर्च्चाश्चैव रिष्टाश्च॥

१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि,
४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित,
७ अव्याबाध, ८ अग्न्यर्च, ९ रिष्ट।

३५. अव्वाबाहाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता।

अव्याबाधाना देवाना नव देवा नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि।

३५ अव्याबाध जाति के देव स्वामीरूप मे नौ हैं और उनके नौसौ देवो का परिवार है।

३६. •अग्गिच्चाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता।

अग्न्यर्च्चाना देवाना नव देवा नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि।

३६ अग्न्यर्च जाति के देव स्वामीरूप मे नौ हैं और उनके नौ सौ देवो का परिवार है।

३७ रिट्ठाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता°।

रिष्टाना देवाना नव देवा नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि।

३७ रिष्ट जाति के देव स्वामीरूप मे नौ हैं और उनके नौ सौ देवो का परिवार है।

३८ णव गेवेज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

नव ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
मध्यम-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
उपरितन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट,
उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान प्रस्तट।

३८ ग्रैवेयक विमान के प्रस्तट नौ हैं—
१ निचले त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
२ निचले त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
३ निचले त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
४ मध्यम त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
५ मध्यम त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
६ मध्यम त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
७ ऊपर वाले त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
८ ऊपर वाले त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
९ ऊपरवाले त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।

३९ एतेसि ण णवण्ह गेविज्ज-विमाण-पत्थडाण णव णामधिज्जा पण्णत्ता, त जहा—

एतेषा नवाना ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटाना नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३९ ग्रैवेयक विमान के इन नौ प्रस्तटों के नौ नाम हैं—

संगहणी-गाहा

१ भद्दे सुभद्दे सुजाते,
सोमणसे पियदरिसणे।
सुदसणे अमोहे य,
सुप्पबुद्धे जसोधरे।

संग्रहणी-गाथा

१ भद्र सुभद्र सुजात,
सौमनस प्रियदर्शन।
सुदर्शन अमोहश्च,
सुप्रबुद्ध यशोधर॥

१ भद्र, २ सुभद्र, ३ सुजात,
४ सौमनस, ५ प्रियदर्शन, ६ सुदर्शन,
७ अमोह, ८ सुप्रबुद्ध, ९ यशोधर।

आउपरिणाम-पद

४० णवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—
गतिपरिणामे, गतिबधणपरिणामे,
ठितिपरिणामे, ठितिबधणपरिणामे,
उड्ढ गारवपरिणामे,
अहेगारवपरिणामे,
तिरियगारवपरिणामे,
दीहगारवपरिणामे,
रहस्सगारवपरिणामे।

आयु.परिणाम-पदम्

नवविध आयु परिणाम प्रज्ञप्त', तद्यथा—
गतिपरिणाम, गतिबन्धनपरिणाम,
स्थितिपरिणाम, स्थितिबन्धनपरिणाम,
ऊर्ध्वगौरवपरिणाम,
अधोगौरवपरिणाम,
तिर्यग्गौरवपरिणाम,
दीर्घगौरवपरिणाम,
ह्रस्वगौरवपरिणाम।

आयु:परिणाम-पद

४० आयुपरिणाम के नौ प्रकार हैं"—
१ गति परिणाम,
२ गति-बधन परिणाम,
३ स्थिति परिणाम,
४ स्थिति-बधन परिणाम,
५ ऊर्ध्व गौरव परिणाम,
६ अधो गौरव परिणाम,
७ तिर्यक् गौरव परिणाम,
८ दीर्घ गौरव परिणाम,
९ ह्रस्व गौरव परिणाण।

पडिमा-पद

४१ णवणवमिया ण भिक्खुपडिमा एगासीतीए रातिदिएहिं चउहि य पचुत्तरेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्त •अहाअत्थ अहातच्च अहामग्ग अहाकप्पं सम्म काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति।

प्रतिमा-पदम्

नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा एकाशीत्या रात्रिदिवै चतुर्भि च पञ्चोत्तरै भिक्षाशतै यथासूत्र यथार्थं यथातत्त्व यथामार्ग यथाकल्प सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति।

प्रतिमा-पद

४१ नव-नवमिका (९×९) भिक्षु-प्रतिमा ८१ दिन-रात तथा ४०५ भिक्षादत्तियो द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है।

पायच्छित्त-पद

४२ णवविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—

प्रायश्चित्त-पदम्

नवविध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

प्रायश्चित्त-पद

४२ प्रायश्चित्त नौ प्रकार का होता है—

आलोयणारिहे, *पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे,° मूलारिहे, अणवट्ठप्पारिहे।

आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हं, विवेकार्हं, व्युत्सर्गार्हं, तपोर्हं, छेदार्हं, मूलार्हं, अनवस्थाप्यार्हम्।

१ आलोचना के योग्य, २ प्रतिक्रमण के योग्य, ३. आलोचना और प्रतिक्रमण—दोनों के योग्य, ४ विवेक के योग्य, ५ व्युत्सर्ग के योग्य, ६ तप के योग्य, ७ छेद के योग्य, ८ मूल के योग्य, ९ अनवस्थाप्य के योग्य।

कूड-पदं

४३ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ सिद्धे भरहे खंडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
भरहे वेसमणे या,
भरहे कूडाण णामाइं॥

कूट-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ सिद्धो भरत खण्डक,
माणि वैतायढ्य-पूर्ण तमिस्रगुहा।
भरतो वैश्रमणश्च,
भरते कूटाना नामानि॥

कूट-पद

४३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्रवर्ती दीर्घ-वैताढ्य के नौ कूट हैं—

१ सिद्धायतन, २ भरत, ३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र, ५ वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र, ७ तमिस्रगुहा, ८ भरत, ९ वैश्रमण।

४४ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं णिसहे वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धे णिसहे हरिवस,
विदेह हरि धिति अ सीतोया।
अवरविदेहे रुयगे,
णिसहे कूडाण णामाणि॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे निषधे वर्षधरपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—

१ सिद्धो निषधो हरिवर्षं,
विदेह ह्री धृतिश्च शीतोदा।
अपरविदेह रुचको,
निषधे कूटाना नामानि॥

४४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण में निषधवर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं—

१ सिद्धायतन, २ निषध, ३ हरिवर्ष, ४ पूर्वविदेह, ५ हरि, ६ धृति, ७ शीतोदा, ८ अपरविदेह, ९ रुचक।

४५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वते णंदणवणे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१. णंदणे मंदरे चेव,
णिसहे हेमवते रयय रुयए य।
सागरचित्ते वइरे,
बलकूडे चेव बोद्धव्वे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वते नन्दनवने नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ नन्दनो मन्दरश्चैव,
निषधो हैमवत रजत रुचकश्च।
सागरचित्र वज्र,
बलकूट चैव बोद्धव्यम्॥

४५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के नन्दनवन में नौ कूट हैं—

१ नन्दन, २ मन्दर, ३ निषध, ४ हैमवत, ५ रजत, ६ रुचक, ७ सागरचित्र, ८ वज्र, ९ बल।

४६. जंबुद्दीवे दीवे मालवतवक्खार पव्वते णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

१ सिद्धे य मालवते,
उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयते।
सीता य पुण्णणामे,
हरिस्सहकूडे य वोद्धव्वे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे माल्यवत्वक्षस्कारपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ सिद्धश्च माल्यवान्,
उत्तरकुरु कच्छ सागर रजत।
शीता च पूर्णनामा,
हरिस्सहकूट च वोद्धव्यम्॥

४६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के [उत्तर मे उत्तरकुरा के पश्चिम पार्श्व मे] माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के नौ कूट हैं—

१ सिद्धायतन, २ माल्यवान्,
३ उत्तरकुरु, ४ कच्छ, ५ सागर,
६ रजत, ७ शीता, ८ पूर्णभद्र,
९ हरिस्सह।

४७. जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

१ सिद्धे कच्छे खडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
कच्छे वेसमणे या,
कच्छे कूडाण णामाइ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे कच्छे दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ सिद्ध कच्छ' खण्डक',
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
कच्छो वैश्रवणश्च,
कच्छे कूटाना नामानि।

४७ जम्बूद्वीप द्वीप के कच्छवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—

१ सिद्धायतन, २ कच्छ,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र,
५ वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र,
७ तमिस्रगुहा, ८ कच्छ,
९ वैश्रमण।

४८ जंबुद्दीवे दीवे सुकच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

१ सिद्धे सुकच्छे खडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
सुकच्छे वेसमणे या,
सुकच्छे कूडाण णामाइ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सुकच्छे दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ सिद्ध सुकच्छ खण्डक,
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
सुकच्छो वैश्रमणश्च,
सुकच्छे कूटाना नामानि॥

४८ जम्बूद्वीप द्वीप के सुकच्छवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—

१. सिद्धायतन, २ सुकच्छ,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र,
५ वैताढ्य, ६. पूर्णभद्र,
७ तमिस्रगुहा, ८ सुकच्छ,
९ वैश्रमण।

४९ एवं जाव पोक्खलावइम्मि दीहवेयड्ढे।

एवम् यावत् पुष्कलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

४९ इसी प्रकार महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त, मगलावर्त, पुष्कल और पुष्कलावती में विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५० एव वच्छे दीहवेयड्ढे।

एव वत्से दीर्घवैताढ्ये।

५० इसी प्रकार वत्स मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं।

५१ एव जाव मंगलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

एव यावत् मङ्गलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

५१ इसीप्रकार सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मगलावती में विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५२ जंबुद्दीवे दीवे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सिद्धे अ विज्जुणामे,
देवकुरा पम्ह कणग सोवत्थी।
सीओदा य सयजले,
हरिकूडे चेव वोद्धव्वे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे विद्युत्प्रभे वक्षस्कारपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ सिद्धश्च विद्युन्नामा,
देवकुरा पद्म कनक सौवस्तिक।
शीतोदा च शतज्वल,
हरिकूट चैव वोद्धव्यम्॥

५२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के नौ कूट हैं—

१ सिद्धायतन, २ विद्युत्प्रभ,
३ देवकुरा, ४ पक्ष्म, ५ कनक,
६ स्वस्तिक, ७ शीतोदा, ८ शतज्वल,
९ हरि।

५३. जंबुद्दीवे दीवे पम्हे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१ सिद्धे पम्हे खडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
पम्हे वेसमणे या,
पम्हे कूडाण णामाइं॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे पक्ष्मणि दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्ध पक्ष्म खण्डक,
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
पक्ष्म वैश्रमणश्च,
पक्ष्मणि कूटाना नामानि॥

५३ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पक्ष्मवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—
१ सिद्धायतन, २ पक्ष्म,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र,
५ वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र,
७ तमिस्रगुहा, ८ पक्ष्म,
९ वैश्रमण।

५४ एव चेव जाव सलिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

एव चैव यावत् सलिलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

५४ इसी प्रकार सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शख, नलिन, कुमुद और सलिलावती, मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५५ एवं वप्पे दीहवेयड्ढे।

एव वप्रे दीर्घवैताढ्ये।

५५ इसी प्रकार वप्र मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं।

५६. एव जाव गधिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे गधिल खडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
गधिलावति वेसमणे,
कूडाण होति णामाइं।

एव यावत् गन्धिलावत्या दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धो गन्धिल खण्डक,
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
गन्धिलावती वैश्रमण,
कूटानां भवन्ति नामानि॥

५६ इसी प्रकार सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गधिल और गधिलावती मे मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं—
१ सिद्धायतन, २ गधिलावती,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र,
५ वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र,
७ तमिस्रगुहा ८ गधिलावती,
९ वैश्रमण।

एव सव्वेसु दीहवेयड्ढेसु दो कूडा सरिसणामगा, सेसा ते चेव।

एव सर्वेषु दीर्घवैताढ्ये द्वे कूटे सदृशनामके, शेषाणि तानि चैव।

सभी दीर्घवैताढ्यों के दो-दो [दूसरा और आठवा] कूट एक ही नाम के [उसी विजय के नाम के] हैं और शेष सात कूट सबमे एक रूप हैं।

५७ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णेलवते वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—
१ सिद्धे णेलवते विदेहे,
सीता कित्ती य णारिकंता य।
अवरविदेहे रम्मगकूडे,
उवदसणे चेव॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरस्मिन् नीलवत् वर्षधरपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धो नीलवान् विदेह,
शीता कीर्तिश्च नारीकान्ता च।
अपरविदेहो रम्यककूट,
उपदर्शन चैव॥

५७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं—
१ सिद्धायतन, २ नीलवान्,
३ पूर्वविदेह, ४ शीता, ५ कीर्ति,
६ नारिकाता, ७ अपरविदेह,
८ रम्यक, ९ उपदर्शन।

५८ जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण एरवते दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—
१ सिद्धेरवए खडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
एरवते वेसमणे,
एरवते कूडणामाइ ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरस्मिन् ऐरवते दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्ध ऐरवत खण्डक,
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
एरवतो वैश्रमण,
ऐरवते कूटनामानि ॥

५८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे ऐरवत दीर्घवैताढ्य मे नौ कूट हैं—
१ सिद्धायतन, २ ऐरवत,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र,
५ वैताढ्य ६ पूर्णभद्र,
७ तमिस्रगुहा, ८ ऐरवत,
९ वैश्रमण।

पास-पद

५९ पासे ण अरहा पुरिसादाणिए वज्जरिसहणारायसघयणे समचउरस-सठाण-सठिते णव रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण हुत्था।

पार्श्व-पदम्

पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीय वज्रर्षभनाराचसहनन समचतुरस्र-सस्थान-सस्थित नव रत्नी ऊर्ध्व उच्चत्वेन अभवत्।

पार्श्व-पद

५९ वज्रऋषभनाराचसहनन वाले तथा समचतुरस्र सस्थान वाले पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व की ऊचाई नौ रत्नि की थी।

तित्थगरणामणिव्वत्तण-पदं

६० समणस्स ण भगवतो महावीरस्स तित्थमि णवहिं जीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, त जहा—
सेणिएण, सुपासेण, उदाइणा, पोट्टिलेण अणगारेण, दढाउणा, सखेण, सतएण, सुलसाए सावियाए, रेवतीए।

तीर्थकरनामनिर्वर्तन-पदम्

श्रमणस्य भगवत महावीरस्य तीर्थे नवभि जीवै तीर्थकरनामगोत्र कर्म निर्वर्तितम्, तद्यथा—
श्रेणिकेन, सुपार्श्वेण, उदायिना, पोट्टिलेन अनगारेण, दृढायुषा, शङ्खेन, शतकेन, सुलसया श्राविकया, रेवत्या।

तीर्थकरनामनिर्वर्तन-पद

६० श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ मे नौ जीवो ने तीर्थकर नामगोत्र कर्म अर्जित किया था[१८]—
१ श्रेणिक, २ सुपार्श्व, ३ उदायी,
४ पोट्टिल अनगार, ५ दृढायु,
६ श्रावक शख, ७ श्रावक शतक,
८ श्राविका सुलसा, ९ श्राविका रेवती।

भावितित्थगर-पद

६१. एस ण अज्जो, १. कण्हे वासुदेवे, २ रामे वलदेवे, ३ उदए पेढालपुत्ते, ४ पुट्टिले, ५ सतए गाहावती, ६ दारुए णियंठे, ७ सच्चई णियठीपुत्ते,
८ सावियवुद्धे अब[म्म ?] डे परिव्वायए,
९ अज्जावि ण सुपासा पासावच्चिज्जा।

भावितीर्थकर-पदम्

एष आर्य ! १ कृष्ण वासुदेव, २ रामो वलदेव, ३ उदक पेढालपुत्र, ४ पोट्टिल, ५ शतक गाहापति, ६ दारुक निर्ग्रन्थ,
७ सत्यकि निर्ग्रन्थीपुत्र,
८ श्राविकावुद्ध अम्व(मम्म ?) ड परिव्राजक,
९ आर्याअपि सुपार्श्वा पार्श्वापत्यीया।

भावितीर्थकर-पद

६१ आर्यो ![१९]
१ वासुदेव कृष्ण, २ वलदेव राम,
३ उदकपेढालपुत्र, ४ पोट्टिल,
५ गृहपति शतक, ६ निर्ग्रन्थ दारुक,
७ निर्ग्रन्थीपुत्र सत्यकी,
८ श्राविका के द्वारा प्रतिवुद्ध अम्मड परिव्राजक,
९ पार्श्वनाथ की परम्परा मे दीक्षित आर्या सुपार्श्वा।

आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जाम धम्म पण्णवइत्ता सिज्झिहिति •बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाइहिति सव्वदुक्खाण° अत काहिति ।

आगमिष्यत्या उत्सर्पिण्या चातुर्याम धर्म प्रज्ञाप्य सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वाष्यन्ति सर्वदुखाना अन्त करिष्यन्ति ।

—ये नौ आगामी उत्सर्पिणी मे चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत तथा समस्त दुखो से रहित होगे ।

महापउम-पदं

महापद्म-पदम्

महापद्म-पद

६२ एस णं अज्जो ! सणिए राया भिभिसारे कालमासे काल किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए णरए चउरासोतिवाससहस्सट्ठितीयंसि णिरयसि णेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

एष आर्य ! श्रेणिक राजा भिभिसार कालमासे काल कृत्वा अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या, सीमन्तके नरके चतुरशीतिवर्षसहस्रस्थितिके निरये नैरयिकता उपपत्स्यते ।

६२ आर्यो ! राजा भिम्भिसार श्रेणिक मरणकाल में मृत्यु को प्राप्तकर इमी रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमन्तक नरक के ८४ हजार वर्ष की स्थिति वाले भाग मे नारकीय के रूप मे उत्पन्न होगा ।

से ण तत्थ णेरइए भविस्सति—काले कालोभासे •गभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए° परमकिण्हे वण्णेण । से ण तत्थ वेयण वेदिहिती उज्जलं •तिउल पगाढ कडुय कक्कस चड दुक्ख दुग्ग दिव्व° दुरहियास ।

स तत्र नैरयिको भविष्यति—काल कालावभास गम्भीरलोमहर्ष भीम उत्त्रासनक परमकृष्ण वर्णेन । स तत्र वेदना वेदयिष्यति उज्ज्वला त्रितुला प्रगाढा कटुका कर्कशा चण्डा दुखा दुर्गा दिव्या दुरधिसहाम् ।

वह वहा नैरयिक होगा । उसका वर्ण काला, काली आभा वाला, महान् लोमहर्षक, विकराल, उद्वेगजनक और परमकृष्ण होगा । वह वहा ज्वलन्त, मन, वचन और काय—तीनों की कसौटी करने वाली, अत्यन्त तीव्र, प्रगाढ, कटुक, कर्कश, चण्ड, दुखकर, दुर्ग की भाति अलघ्य, देव-निर्मित, असह्य वेदना का वेदन करेगा ।

से तं ततो णरयाओ उव्वट्टेत्ता आगमेसाए उस्सप्पिणीए इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्डगिरिपायमूले पुडेसु जणवएसु सतदुवारे णगरे समुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिसि पुमत्ताए पच्चायाहिती ।

स तत नरकात् उद्वर्त्य आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे वैताढ्यगिरिपादमूले पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे नगरे सन्मते कुलकरस्य भद्राया भार्याया कुक्षौ पुस्तया प्रत्याजनिष्यते ।

वह उस नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी काल मे इसी जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के पादमूल मे 'पुण्ड्र'[१०] जनपद के शतद्वार नगर मे 'सन्मति' कुलकर की भद्रा नामक भार्या की कुक्षि मे पुरुष के रूप मे उत्पन्न होगा ।

तए ण सा भद्दा भारिया णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाणय राइदियाण वीतिक्कताण सुकुमालपाणिपाय अहीण-पडिपुण्ण-पचिदियसरीर- लक्खण-वजण-•गुणोववेय माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वग-सुदरग ससिसोमाकार कत पियदसण° सुरूव दारग पयाहिती ।

तदा सा भद्रा भार्या नवाना मासाना बहुप्रतिपूर्णाना अर्धाष्टमाना च रात्रिदिवाना व्यतिक्रान्ताना सुकुमालपाणिपाद अहीन-प्रतिपूर्ण-पञ्चेन्द्रियशरीर लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपेत मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-सुजात-सर्वाङ्ग-सुन्दराङ्ग शशिसौम्याकार कान्त प्रियदर्शन सुरूप दारक प्रजनिष्यते ।

वह भद्रा भार्या परिपूर्ण नौ मास तथा साढे सात दिन-रात बीत जाने पर सुकुमार हाथ-पैर वाले, अहीन प्रतिपूर्ण पञ्चेन्द्रिय शरीर वाले, लक्षण-व्यजन[११] और गुणों से युक्त अवयव वाले, मान[१२]-उन्मान[१३]-प्रमाण[१४] आदि से सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले, चन्द्रमा की भाति सौम्याकार, कमनीय, प्रियदर्शन वाले सुरूप पुत्र का प्रसव करेगी ।

ज रयणिं च ण से दारए पयाहिती, त रयणिं च ण सतदुवारे णगरे सब्भतरवाहिरए भारग्गसो य कुभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति ।

यस्या रजन्या च सदारक प्रजनिष्यते, तस्या रजन्या च शतद्वारे नगरे साभ्यन्तर-वाह्यके भाराग्रशश्च कुम्भाग्रशश्च पद्मवर्षश्च रत्नवर्षश्च वर्ष वर्षिष्यति ।

जिस रात्रि मे वह बालक का प्रसव करेगी, उस रात को सारे शतद्वार नगर मे भार और कुम्भ के प्रमाणवाले पद्म और रत्नों की वर्षा होगी ।

तए ण तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कते •णिवत्ते असुइजायकम्मकरणे सपत्ते° वारसाहे अयमेयारूव गोण्ण गुणणिप्फण णामधिज्ज काहिति, जम्हा ण अम्हमिमसि दारगसि जातसि समाणसि सयदुवारे णगरे सब्भितरवाहिरए भारग्गसो य कुभग्गसो य पउमवासे य रयण-वासे य वासे वुट्ठे, त होउ णमम्ह-मिमस्स दारगस्स णामधिज्ज महा-पउमे-महापउमे। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधिज्ज काहिति महापउमेत्ति ।

तदा तस्य दारकस्य मातापितरौ एकादशे दिवसे व्यतिक्रान्ते निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे सप्राप्ते द्वादशाहे इद एतद्रूप गौण गुणनिष्पन्न नामधेय करिष्यत, यस्मात् अस्माक अस्मिन् दारके जाते सति शतद्वारे नगरे साभ्यन्तरवाह्यके भाराग्रशश्च कुम्भा-ग्रशश्च पद्मवर्षश्च रत्नवर्षश्च वर्ष वृष्ट, तत् भवतु आवयो अस्य दारकस्य नामधेय महापद्म -महापद्म । तदा तस्य दारकस्य मातापितरौ नामधेय करिष्यत महापद्म इति ।

ग्यारह दिन बीत जाने पर, उस बालक के माता-पिता प्रसव जनित अशुचि कर्म से निवृत्त हो बारहवें दिन उसका यथार्थ गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे। उस बालक के उत्पन्न होने पर समस्त शतद्वार नगर के भीतर-बाहर, भार" और कुम्भ" के प्रमाणवाले, पद्म और रत्नो की वर्षा हुई थी, अत हमारे बालक का नाम महापद्म होना चाहिए। यह पर्यालोचन कर उस बालक के माता-पिता उसका नाम महापद्म रखेंगे ।

तए ण महापउम दारग अम्मा-पितरो सातिरेग अट्ठवासजातग जाणित्ता महता-महता रायाभि-सेएण अभिसिचिहिंति ।

तदा महापद्म दारक मातापितरौ सातिरेक अष्टवर्षजातक ज्ञात्वा महता-महता राज्याभिषेकेन अभिषेक्ष्यत ।

बालक महापद्म को आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु वाला जानकर उसके माता-पिता उसे महान् राज्याभिषेक के द्वारा अभिषिक्त करेंगे ।

से ण तत्थ राया भविस्सति महता-हिमवत-महत-मलय मदर-महिंद-सारे रायवण्णओ जाव रज्ज पसासेमाणे विहरिस्सति ।

स तत्र राजा भविष्यति महता-हिमवत्-महा-मलय-मन्दर-महेन्द्रसार राज्य-वर्णक यावत् राज्य प्रशासयन् विहरिष्यति ।

वह महान् हिमालय, महान् मलय, मेरु और महेन्द्र की भाति सर्वोच्च राजा होगा ।

तए ण तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कयाइ दो देवा महिड्डिया •महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा सेणाकम्म काहिति, त जहा—
पुण्णभद्दे य, माणिभद्दे य ।

तदा तस्य महापद्मस्य राज्ञ अन्यदा कदाचिद् द्वौ देवौ महर्द्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासौख्यौ सेनाकर्म करयिष्यत, तद्यथा—
पूर्णभद्रश्च, माणिभद्रश्च ।

अन्यदा कदाचित् महर्द्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी पूर्णभद्र" और माणिभद्र" नामक दो देव राजा महापद्म को सैनिक शिक्षा देंगे ।

तए ण सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-माडविय-कोडुविय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्यवाह-प्पभितयो अण्णमण्ण सद्दावेहिंति, एव वइस्सति—जम्हा ण देवाणुप्पिया! अम्ह महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढिया •महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा सेणाकम्म करेंति, तं जहा—

पुण्णभद्दे य, माणिभद्दे य।

त होउ ण मम्ह देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे देवसेणे-देवसेणे। तते ण तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे भविस्सइ देवसेणेति।

तए ण तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाई सेय-सखतल-विमल-सण्णिकासे चउदते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिति। तए ण से देवसेणे राया त सेय सखतल-विमल-सण्णिकास चउदत हत्थिरयण दुरूढे समाणे सतदुवार णगर मज्झमज्झेण अभिक्खण-अभिक्खण अतिज्जाहिति य णिज्जाहिति य।

तए ण सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-•माडविय-कोडुविय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्यवाह-प्पभितयो° अण्णमण्ण सद्दावेहिंति, एव वइस्सति—जम्हा ण देवाणुप्पिया! अम्ह देवसेणस्स रण्णो सेते सखतल-विमल-सण्णिकासे चउदते हत्थिरयणे समुप्पण्णे, त होउ णमम्हं

तदा शतद्वारे नगरे वहव राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-प्रभृतय अन्योन्य शब्दाययिष्यन्ति, एवं वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रिया! अस्माक महापद्मस्य राज्ञ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासौख्यौ सेनाकर्म कुर्वत, तद्यथा—

पूर्णभद्रश्च, माणिभद्रश्च।

तद् भवतु अस्माक देवानुप्रिया! महापद्मस्य राज्ञ द्वितीयमपि नामधेय देवसेन-देवसेन। तदा तस्य महापद्मस्य राज्ञ द्वितीयमपि नामधेय भविष्यति देवसेनइति।

तदा तस्य देवसेनस्य राज्ञ अन्यदा कदाचित् श्वेत-शङ्खतल-विमल-सन्निकाश चतुर्दन्त हस्तिरत्न समुत्पत्स्यते। तदा स देवसेन राजा त श्वेत शङ्खतल-विमल-सन्निकाश चतुर्दन्त हस्तिरत्न आरूढ सन् शतद्वार नगर मध्यमध्येन अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण अतियास्यति च निर्यास्यति च।

तदा शतद्वारे नगरे वहव राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-प्रभृतय अन्योन्य शब्दाययिष्यन्ति, एव वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रिया! अस्माक देवसेनस्य राज्ञ श्वेत शङ्खतल-विमल-सन्निकाश चतुर्दन्त हस्तिरत्न समुत्पन्नम्, तद् भवतु अस्माक

तब उस शतद्वार नगर मे अनेक राजा", ईश्वर", तलवर" माडम्बिक", कौटुम्बिक", इभ्य", श्रेष्ठि" सेनापति", सार्थवाह" आदि इस प्रकार एक दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार कहेंगे—"देवानुप्रियो! महर्द्धिक, महाद्युतिसपन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी पूर्णभद्र और माणिभद्र नामक दो देव राजा महापद्म को सैनिक शिक्षा दे रहे हैं। इसलिए देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होना चाहिए।" तब से उस महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होगा।

अन्यदा कदाचित् राजा देवसेन के विमल शखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न उत्पन्न होगा। तब वे राजा देवसेन विमल शखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न पर आरूढ होकर शतद्वार नगर के बीचोबीच होते हुए बार-बार प्रवेश और निष्क्रमण करेंगे। तब उस शतद्वार नगर मे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि इस प्रकार एक-दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार कहेंगे—"देवानुप्रियो! हमारे राजा देवसेन के विमल शखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न उत्पन्न हुआ है। अत देवानुप्रियो! हमारे राजा देवसेन का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होना चाहिए।" तब से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा।

देवाणुप्पिया ! देवसेणस्स तच्चेवि णामधेज्जे विमलवाहणे- [विमलवाहणे ?] । तए ण तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चेवि णामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणेति ।

देवानुप्रिया ! देवसेनस्य तृतीयमपि नामधेय विमलवाहन (विमलवाहन' ?)। तदा तस्य देवसेनस्य राज्ञ तृतीयमपि नामधेय भविष्यति विमलवाहनइति ।

तए ण से विमलवाहणे राया तीस वासाई अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापितीहि देवत्त गतेहि गुरु-महत्तरएहि अब्भणुण्णाते समाणे, उदुमि सरए, सबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगतिएहि जीयकप्पिएहि देवेहि, ताहि इट्ठाहि कताहि पियाहि मणुण्णाहि मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धण्णाहि मगल्लाहि सस्सिरिआहि वग्गूहि अभिणदिज्जमाणे अभिथुव्वमाणे य वहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एग देवदूसमादाय मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयाहिति ।

तदा स विमलवाहन राजा त्रिंशत् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मातापित्रो देवत्व गतयो गुरुमहत्तरकै अभ्यनुज्ञात सन्, ऋतौ शरदि, सबुद्ध अनुत्तरे मोक्षमार्गे पुनरपि लोकान्तिकै जीतकल्पिकै देवै, ताभि इष्टाभि कान्ताभि प्रियाभि मनोज्ञाभि मन-आपाभि उदाराभि कल्याणाभि शिवाभि धन्याभि मङ्गलाभि सश्रीकाभि वाग्भि अभिनन्द्यमान' अभिष्टूयमानश्च वाह्ये सुभूमिभागे उद्याने एक देवदूष्यमादाय मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यति ।

राजा विमलवाहन तीस वर्ष तक गृहस्थावास मे रहेंगे। माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर वे अपने गुरुजनो और महत्तरो की आज्ञा प्राप्त करेंगे। वे शरदऋतु मे जीतकल्पिक लोकान्तिक देवो द्वारा अनुत्तर मोक्षमार्ग के लिए सबुद्ध होंगे। वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन प्रिय, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मगल, 'श्री' सहित वाणी से अभिनन्दित और अभिष्टुत [सस्तुत] होते हुए नगर के वाहर 'सुभूमिभाग' नामक उद्यान मे एक देवदूष्य रखकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित होंगे ।

से ण भगव ज चेव दिवस मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयाहिति त चेव दिवस सयमेयमेतारूव अभिग्गह अभिगिण्हिहिति—जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिहिति, त जहा—

स भगवान् यस्मिश्चैव दिवसे मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यति तस्मिश्चैव दिवसे स्वयमेव एतद्रूप अभिग्रह अभिग्रहिष्यति—ये केऽपि उपसर्गा उत्पत्स्यन्ते, तद्यथा—

वे भगवान् जिस दिन मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित होगे, उसी दिन वे स्वय निम्न प्रकार का अभिग्रह स्वीकार करेंगे—

दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा ते सव्वे सम्म सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहियासिस्सइ ।

दिव्या वा मानुषा वा तिर्यग्योनिका वा तान् सर्वान् सम्यक् सहिष्यते क्षमिष्यते तितिक्षिष्यति अध्यासिष्यते ।

देवता मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सबको मैं भलीभाति सहन करूगा, अहीनभाव से सहन करूगा, तितिक्षा करूगा तथा अविचल भाव से सहन करूगा ।

तए ण से भगव अणगारे भविस्सति इरियासमिते भासासमिते एव जहा वद्धमाणसामी त चेव णिरवसेस जाव अव्वावारविउसजोग जुत्ते ।

तदा स भगवान् अनगार भविष्यति—ईर्यासमित भाषासमित एव यथा वर्धमानस्वामी तच्चैव निरवशेष यावत् अव्यापारव्युत्सृष्टयोगयुक्त ।

वे भगवान् ईर्यासमित, भाषासमित [भगवान् वर्धमान की भाति सम्पूर्ण विषय वक्तव्य है, यावत्] वे अव्यापार तथा व्युत्सृष्ट योग से युक्त होंगे ।

तस्स ण भगवतस्स एतेण विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसहिं सवच्छरेहिं वीतिक्कतेहिं तेरसहि य पक्खेहि तेरसमस्स णं सवच्छरस्स अतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेण णाणेण जहा भावणाते केवलवरणाणदसणे समुप्पज्जिहिति। जिणे भविस्सति केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइय जाव पच महव्वयाइ सभावणाइ छच्च जीवणिकाए धम्म देसेमाणे विहरिस्सति।

तस्य भगवत एतेन विहारेण विहरत द्वादशै सवत्सरै व्यतिक्रान्तै त्रयोदशैश्च पक्षै त्रयोदशस्य सवत्सरस्य अन्तरा वर्तमानस्य अनुत्तरेण ज्ञानेन यथा भावनाया केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पत्स्यते। जिन भविष्यति केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी सनैरयिक यावत् पञ्चमहाव्रतानि सभावनानि षट् च जीवनिकायान् धर्मं दिशन् विहरिष्यति।

वे भगवान् इस विहार से विहरण करते हुए वारह वर्ष और तेरह पक्ष वीत जाने पर, तेरहवें वर्ष के अन्तराल मे वर्तमान होंगे, उस समय उन्हे अनुत्तरज्ञान [भावना[18] अध्ययन की वक्तव्यता] के द्वारा केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्न होगा। उस समय वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होकर नैरयिक आदि लोकों के पर्यायों को जानेंगे-देखेंगे। ये भावना सहित पाच महाव्रतो, छह जीवनिकायो और धर्म की देशना देते हुए विहार करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाण णिग्गथाण एगे आरभठाणे, पण्णत्ते।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गथाण एग आरभठाण पण्णवेहिति।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना एकं आरम्भस्थान प्रज्ञप्तम्।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना एक आरम्भस्थान प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाण णिग्गथाण दुविहे बधणे पण्णत्ते, त जहा—
पेज्जबधणे य, दोसबधणे य।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण दुविह बधण पण्णवेहिती, तं जहा—
पेज्जबधण च, दोसबधण च।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना द्विविध वन्धन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रेयोवन्धनञ्च, दोषबन्धनञ्च।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना द्विविध वन्धन प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
प्रेयोवन्धनञ्च, दोषबन्धनञ्च।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए दो प्रकार के बन्धनों—प्रेयस्-बन्धन और द्वेष-बन्धन—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए दो प्रकार के बन्धनो—प्रेयस्-बन्धन और द्वेष-बन्धन—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाण णिग्गथाण तओ दडा पण्णत्ता, त जहा—
मणदडे, वयदडे, कायदंडे।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण तओ दडे पण्णवेहिति, त जहा—
मणोदड, वयदड, कायदड।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना त्रय दण्डा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनोदण्ड, वचोदण्ड, कायदण्ड।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना त्रीन् दण्डान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
मनोदण्ड, वचोदण्ड, कायदण्डम्।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए तीन दण्डो—मनोदण्ड, वचनदण्ड, कायदण्ड—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए तीन प्रकार के दण्डो—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए °अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण चत्तारि कसाया पण्णत्ता, त जहा—
कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण चत्तारि कसाए पण्णवेहिति, त जहा—
कोहकसाय, माणकसाय, मायाकसाय, लोभकसाय।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना चत्वार कषाया· प्रज्ञप्ता·, तद्यथा—
क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना चतुर कषायान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
क्रोधकपाय, मानकपाय, मायाकषाय, लोभकपाय ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए चार कपायो—क्रोध कपाय, मान कपाय, माया कपाय और लोभ कपाय—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए चार कपायो—क्रोध कपाय, मान कपाय, माया कपाय और लोभ कपाय—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण पच कामगुणा पण्णत्ता, त जहा—
सद्दे, रूवे, गधे, रसे, फासे।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण पच कामगुणे पण्णवेहिति, त जहा—
सद्द, रूव, गध, रस, फास।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्च कामगुणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्च कामगुणान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्शम् ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाच कामगुणो—शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्श—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच कामगुणो—शब्द, रुप, गध, रस और स्पर्श का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गथाण छज्जीवणिकाए पण्णवेहिति, त जहा—
पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइए,° तसकाइए।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना षट्जीवनिकाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथ्वीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, त्रसकायिका ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना षट्जीवनिकायान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकान्, अप्कायिकान्, तेजस्कायिकान्, वायुकायिकान्, वनस्पतिकायिकान्, त्रसकायिकान् ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए छह जीवनिकायो—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए छह जीवनिकायो—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए °अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण° सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना सप्त भयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए सात भय-स्थानो—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय,

°इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।° एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण सत्त भयट्ठाणे पण्णवेहिति, °त जहा—
इहलोगभय, परलोगभय, आदाणभय, अकम्हाभय, वेयणभय, मरणभय, असिलोगभयं।°

इयलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय, अश्लोकभयम्। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना सप्त भयस्थानानि प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय, अश्लोकभयम्।

मरणभय और अश्लोकभय—का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी सात भय-स्थानों—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय—का निरूपण करेंगे।

एव अट्ठ मयट्ठाणे, णव बभचेरगुत्तीओ, दसविधे समणधम्मे, एव जाव तेत्तीसमासातणाउत्ति। से जहाणामए अज्जो! मए समणाण णिग्गथाण णग्गभावे मुडभावे अण्हाणए अदतवणए अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बभचेरवासे परघरपवेसे लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णत्ताओ। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण णग्गभाव °मुडभाव अण्हाणय अदतवणयं अच्छत्तय अणुवाहणय भूमिसेज्जं फलगसेज्ज कट्ठसेज्जं केसलोय बभचेरवास परघरपवेस° लद्धावलद्धवित्ती पण्णवेहिती।

एव अष्ट मदस्थानानि, नव ब्रह्मचर्यगुप्तय, दशविध श्रमणधर्म, एवम् यावत् त्रयस्त्रिंशदासातनाइति। अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नग्नभाव मुण्डभाव अस्नानक अदन्तधावनक अछत्रक अनुपानत्क भूमिशय्या फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोच ब्रह्मचर्यवास परगृहप्रवेश लब्धापलब्धवृत्तय प्रज्ञप्ता। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नग्नभाव मुण्डभाव अस्नानक अदन्तधावनक अछत्रक अनुपानत्क भूमिशय्या फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोच ब्रह्मचर्यवास परगृहप्रवेश लब्धापलब्धवृत्ती प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए आठ मदस्थानो, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियो, दश श्रमण-धर्मो यावत् तेतीस आशातनाओ का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए आठ मदस्थानो, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियो, दश श्रमण-धर्मों यावत् तेतीस आशातनाओ का निरूपण करेंगे।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्र का निषेध, जूतो का निषेध, भूमिशय्या, फलकशय्या, काठशय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, परघरप्रवेश और लब्धापलब्ध वृत्ति का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्यान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्र का निषेध, जूतो का निषेध, भूमिशय्या, फलकशय्या[१], काष्ठशय्या[२], केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, परघरप्रवेश और लब्धापलब्धवृत्ति[३] का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाण णिग्गंथाण आधाकम्मिएति वा उद्देसिएति वा मीसज्जाएति वा अज्झोयरएति वा पूतिए कीते पामिच्चे अच्छेज्जे अणिसट्ठे अभिहडेति वा कतारभत्तेति वा

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना आधार्मिकमिति वा औद्देशिकमिति वा मिश्रजातमिति वा अध्यवतरकमिति वा पूतिक क्रीत प्रामित्य आच्छेद्य अनिसृष्ट अभिहृतमिति वा कान्तारभक्तमिति वा

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए आधार्मिक[४], औद्देशिक[५], मिश्रजात[६], अध्यवतर[७], पूतिकर्म[८], क्रीत[९], प्रामित्य[१०] आच्छेद्य[११], अनिसृष्ट[१२], अभ्याहृत[१३], कान्तारभक्त[१४], दुर्भिक्षभक्त[१५], ग्लानभक्त[१६], वार्दलिकाभक्त[१७], प्राघूर्णभक्त[१८],

दुब्भिक्खभत्तेति वा गिलाणभत्तेति वा वद्दलियाभत्तेति वा पाहुणभत्तेति वा मूलभोयणेति वा कदभोयणेति वा फलभोयणेति वा बीयभोयणेति वा हरियभोयणेति वा पडिसिद्धे।

दुर्भिक्षभक्तमिति वा ग्लानभक्तमिति वा वार्दलिकाभक्तमिति वा प्राघूर्णभक्तमिति वा मूलभोजनमिति वा कन्दभोजनमिति वा फलभोजनमिति वा बीजभोजनमिति वा हरितभोजनमिति वा प्रतिपिद्धम् ।

मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आधार्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वार्दलिकाभक्त, प्राघूर्णभक्त, मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन, का निषेध करेंगे।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गयाण आधाकम्मिय वा •उद्देसिय वा मीसज्जाय वा अज्झोयरय वा पूतिय कीत पामिच्चं अच्छेज्ज अणिसट्ठ अभिहड वा कतारभत्त वा दुब्भिक्खभत्त वा गिलाणभत्त वा वद्दलियाभत्त वा पाहुणभत्त वा मूलभोयण वा कदभोयण वा फलभोयण वा बीयभोयण वा° हरितभोयणं वा पडिसेहिस्सति।

एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना आधार्मिक वा औद्देशिक वा मिश्रजात वा अध्यवतरक वा पूतिक क्रीत प्रामित्य आच्छेद्य अनिसृष्ट अभिहृत वा कान्तारभक्त वा दुर्भिक्षभक्त वा ग्लानभक्त वा वार्दलिकाभक्त वा प्राघूर्णभक्त वा मूलभोजन वा कदभोजन वा फलभोजन वा बीजभोजन वा हरितभोजन वा प्रतिषेत्स्यति।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण पचमहव्वतिए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण पचमहव्वतियं •सपडिक्कमणं° अचेलग धम्म पण्णवेहिती।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्चमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण अचेलक धर्म प्रज्ञप्त । एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्चमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण अचेलक धर्मं प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पाच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पाच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणोवासगाण पचाणुव्वतिए सत्तसिक्खावतिए—दुवालसविधे सावगधम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणोवासगाणं पचाणुव्वतिय •सत्तसिक्खावतिय—दुवालसविधं° सावगधम्म पण्णवेस्सति।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणोपासकाना पञ्चाणुव्रतिक सप्तशिक्षाव्रतिक—द्वादशविध श्रावकधर्मं प्रज्ञप्त। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणोपासकाना पञ्चाणुव्रतिक सप्तशिक्षाव्रतिक द्वादशविध श्रावकधर्मं प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो ! मैंने पाच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी पाच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडेति वा रायपिंडेति वा पडिसिद्धे। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडं वा रायपिंडं वा पडिसेहिस्सति।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शय्यातरपिण्डमिति वा राजपिण्डमिति वा प्रतिषिद्धम्। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शय्यातरपिण्डं वा राजपिण्डं वा प्रतिषेत्स्यति।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिण्ड[57] और राजपिण्ड[58] का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का निषेध करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मम णव गणा एगारस गणधरा। एवामेव महापउमस्सवि अरहतो णव गणा एगारस गणधरा भविस्संति।

अथ यथानामक आर्य ! मम नव गणा एकादश गणधरा। एवमेव महापद्मस्यापि अर्हतः नव गणा एकादश गणधरा भविष्यन्ति।

आर्यो ! मेरे नौ गण और ग्यारह गणधर हैं। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे।

से जहाणामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता •अगाराओ अणगारियं° पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थ-परियागं पाउणित्ता तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं •बुज्झिस्सं मुच्चिस्सं परिणिव्वाइस्सं° सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं।

अथ यथानामक आर्य ! अहं त्रिंशत् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः, द्वादश संवत्सराणि त्रयोदश पक्षान् छद्मस्थपर्यायं प्राप्य त्रयोदशभिः पक्षैः ऊनकानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलिपर्यायं प्राप्य, द्वाचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य, द्विसप्ततिवर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा असिधं अबोधिषं अमुचं परिनिरवासिषं सर्वदुःखानां अन्तमकार्षम्,

आर्यो ! मैं तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुआ। मैंने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय का पालन किया, तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवली-पर्याय का पालन किया—इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालकर मैं सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत होऊंगा तथा समस्त दुःखों का अंत करूंगा। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होंगे। वे बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय का पालन करेंगे, तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवली-पर्याय का पालन करेंगे—इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालकर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत होंगे तथा समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

एवामेव महापउमेवि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता •मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वाहिती, दुवालस संवच्छराइं •तेरसपक्खा छउमत्थ-परियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता,° बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिहिती •बुज्झिहिती मुच्चिहिती परिणिव्वाइहिती° सव्वदुक्खाणमंतं काहिती—

एवमेव महापद्मोपि अर्हन् त्रिंशद् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति, द्वादश संवत्सराणि त्रयोदशपक्षान् छद्मस्थपर्यायं प्राप्य, त्रयोदशभिः पक्षैः ऊनकानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलिपर्यायं प्राप्य, द्वाचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य, द्विसप्ततिवर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा सेत्स्यति भोत्स्यते मोक्ष्यति परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानां अन्तं करिष्यति—

संगहणी-गाहा

१ जस्सील-समायारो,
अरहा तित्थकरो महावीरो ।
तस्सील-समायारो,
होति उ अरहा महापउमो ॥

संग्रहणी-गाथा

१. यच्छील-समाचारः,
अर्हन् तीर्थंकरो महावीर ।
तच्छील-समाचारो,
भविष्यति तु अर्हन् महापद्म ॥

णक्खत्त-पदं

६३ णव णक्खत्ता चंदस्स पच्छभागा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ अभिई समणो धणिट्ठा,
रेवती अस्सिणि मग्गसिर पूसो ।
हत्थो चित्ता य तहा,
पच्छभागा णव हवंति ॥

नक्षत्र-पदम्

नव नक्षत्राणि चन्द्रस्य पश्चाद्भागानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. अभिजित् श्रवण धनिष्ठा,
रेवति अश्विनी मृगशिरा पुष्य ।
हस्त चित्रा च तथा,
पश्चाद्भागानि नव भवन्ति ॥

नक्षत्र-पद

६३ नौ नक्षत्र चन्द्रमा के पृष्ठभाग मे होते हैं" चन्द्रमा उनका पृष्ठभाग से भोग करता है]—

१ अभिजित, २ श्रवण, ३ धनिष्ठा,
४ रेवति, ५ अश्विनी, ६ मृगशिर,
७ पुष्य, ८ हस्त, ९ चित्रा।

विमाण-पद

६४ आणत-पाणत-आरणच्चुतेसु कप्पेसु विमाणा णव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

विमान-पदम्

आनत-प्राणत-आरणाच्युतेपु कल्पेपु विमानानि नव योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ।

विमान-पद

६४ आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पो मे विमान नौ सौ योजन ऊचे हैं ।

कुलगर-पद

६५ विमलवाहणे णं कुलकरे णव धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था ।

कुलकर-पदम्

विमलवाहन कुलकर नव धनुशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन अभवत् ।

कुलकर-पद

६५ कुलकर विमलवाहन नौ सौ धनुष्य ऊचे थे ।

तित्थगर-पदं

६६. उसभेणं अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवम-कोडाकोडीहिं वीइक्कताहिं तित्थे पवत्तिते ।

तीर्थंकर-पदम्

ऋषभेण अर्हता कौशलिकेन अस्या अवसर्प्पिण्या नवभि सागरोपमकोटि-कोटिभि. व्यतिक्रान्ताभि तीर्थं प्रवर्तित ।

तीर्थंकर-पद

६६ कौशलिक अर्हत् ऋषभ ने इसी अवसर्पिणी के नौ कोटि-कोटि सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया था ।

दीव-पद

६७ घणदंत-लट्ठदंत-गूढदंत-सुद्धदंत-दीवा णं दीवा णव-णव जोयण-सताइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता ।

द्वीप-पदम्

घनदन्त-लष्टदन्त-गूढदन्त-सुद्धदन्त-द्वीपा द्वीपा नव-नव योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ता ।

द्वीप-पद

६७ घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त—ये द्वीप नौ-सौ, नौ सौ योजन लम्बे-चौडे हैं ।

महग्गह-पदं

६८. सुक्कस्स ण महागहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
हयवीही, गयवीही, णागवीही, वसहवीही, गोवीही, उरगवीही, अयवीही, मियवीही, वेसाणर-वीही।

महाग्रह-पदम्

शुक्रस्य महाग्रहस्य नव वीथय प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हयवीथि, गजवीथि, नागविथि, वृषभवीथि, गोवीथि, उरगवीथि, अजवीथि, मृगवीथि, वैश्वानरवीथि।

महाग्रह-पद

६८ महाग्रह शुक्र के नौ वीथिया हैं''—

१ हयवीथि, २ गजवीथि, ३ नागवीथि, ४ वृषभवीथि, ५ गोवीथि, ६ उरगवीथि, ७ अजवीथि, ८ मृगवीथि, ९ वैश्वानरवीथि।

कम्म-पदं

६९. णवविधे णोकसायवेयणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—
इत्थिवेए, पुरिसवेए, णपुसगवेए, हासे, रती, अरती, भये, सोगे, दुगुछा।

कर्म-पदम्

नवविध नोकषायवेदनीय कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
स्त्रीवेद, पुरुषवेद नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा।

कर्म-पद

६९ नोकषायवेदनीय कर्म नौ प्रकार का है''—

१ स्त्रीवेद, २ पुरुषवेद, ३ नपुसकवेद, ४ हास्य, ५ रति, ६ अरति, ७ भय, ८ शोक, ९ जुगुप्सा।

कुलकोडि-पदं

७० चउरिंदियाण णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

७१ भुयगपरिसप्प-थलयर-पचिंदिय-तिरिक्खजोणियाण णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

कुलकोटि-पदम्

चतुरिन्द्रियाणा नव जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।
भुजगपरिसर्प्प-स्थलचर-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकाना नव जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

कुलकोटि-पद

७० चतुरिन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह मे होने वाली कुलकोटिया नौ लाख हैं।

७१ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर भुजग-परिसर्प के योनिप्रवाह मे होने वाली कुल-कोटिया नौ लाख हैं।

पावकम्म-पदं

७२ जीवा णवट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—
पुढविकाइयणिव्वत्तिते,
•आउकाइयणिव्वत्तिते,
तेउकाइयणिव्वत्तिते,
वाउकाइयणिव्वत्तिते,
वणस्सइकाइयणिव्वत्तिते,
बेइंदियणिव्वत्तिते,
तेइंदियणिव्वत्तिते,

पापकर्म-पदम्

जीवा नवस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकनिर्वर्तितान्,
अप्कायिकनिर्वर्तितात्,
तेजस्कायिकनिर्वर्तितान्,
वायुकायिकनिर्वर्तितान्,
वनस्पतिकायिकनिर्वर्तितान्,
द्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
त्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,

पापकर्म-पद

७२ जीवो ने नौ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप मे चय किया है, करते हैं और करेंगे—

१ पृथ्वीकायिक निर्ववर्तित पुद्गलो का,
२ अप्कायिक निर्वर्तित पुद्गलो का,
३ तेजस्कायिक निर्वर्तित पुद्गलो का,
४ वायुकायिक निर्वर्तित पुद्गलो का,
५ वनस्पतिकायिक निर्वर्तित पद्गलों का,
६ द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का,
७ त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का,

चउरिंदियणिव्वत्तिते,°
पंचिंदियणिव्वत्तिते।
एव—चिण-उवचिण-°बंध
उदीर-वेद तह° णिज्जरा चेव।

चतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा. तथा निर्जरा चैव।

८ चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्‌गलो का,
९ पञ्चेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्‌गलो का।
इसी प्रकार उनका उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पोग्गल-पदं

७३ णवपएसिया खधा अणता पण्णत्ता जाव णवगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

पुद्‌गल-पदम्

नवप्रदेशिका. स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता यावत् नवगुणरूक्षा पुद्‌गला. अनन्ता. प्रज्ञप्ताः।

पुद्‌गल-पद

७३ नवप्रदेशी स्कंध अनन्त हैं।
नवप्रदेशावगाढपुद्‌गल अनन्त हैं।
नौ समय की स्थिति वाले पुद्‌गल अनन्त हैं।
नौ गुण काले पुद्‌गल अनन्त हैं।
इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के नौ गुण वाले पुद्‌गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान—९

१ साभोगिक विसाभोगिक (सू० १)

यहा सभोग का अर्थ है—सम्बन्ध। समवायाग सूत्र मे मुनियो के पारस्परिक सम्बन्ध वारह प्रकार के वतलाए गए हैं। जिनमे ये सम्बन्ध चालू होते हैं वे साभोगिक और जिनके साथ इन सम्बन्धों का विच्छेद कर दिया जाता है वे विसाभोगिक कहलाते हैं। साधारण स्थिति मे साभोगिक को विसाभोगिक नही किया जा सकता। विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर ही ऐसा किया जा सकता है। प्रस्तुत सूत्र में सभोग विच्छेद करने का एक ही कारण निर्दिष्ट है। वह है—प्रत्यनीकता—कर्त्तव्य से प्रतिकूल आचरण।

२ (सू० ३)

देखें—समवाओ ९।१ का टिप्पण।

३ (सू० १३)

प्रस्तुत सूत्र में रोगोत्पत्ति के नौ कारण वतलाए हैं। उनमे से कुछएक की व्याख्या इस प्रकार है—

१ अच्चासणयाए—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं—१ अत्यासन से—निरन्तर वैठे रहने से। इससे मसे आदि रोग उत्पन्न होते हैं। २ अत्यशन से—अति भोजन करने से। इससे अजीर्ण हो जाने के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

२ अहियासणयाए—वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए हैं—

- १ अहितासन से—पापाण आदि अहितकर आसन पर वैठने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।
- २ अहित-अशन से—अहितकर भोजन करने से।
- ३ अध्यसन से—किए हुए भोजन के जीर्ण न होने पर पुन भोजन करने से—'अजीर्णे भुज्यते यत्तु, तदध्यसनमुच्यते।'

३ इन्द्रियार्थ-विकोपन—इसका अर्थ है—कामविकार। कामविकार से उन्माद आदि रोग ही उत्पन्न नही होते किन्तु वह व्यक्ति को मृत्यु के द्वार तक भी पहुचा देता है। वृत्तिकार ने कामविकार के दस दोषो का क्रमश उल्लेख किया है—

१ काम के प्रति अभिलाषा	६ प्रलाप
२ उसको प्राप्त करने की चिन्ता	७ उन्माद
३ उसका सतत स्मरण	८ व्याधि
४ उसका उत्कीर्त्तन	९ जडता, अकर्मण्यता
५ उद्वेग	१० मृत्यु

ये दोष एक के बाद एक आते रहते हैं।[1]

४ (सू० १४)

तत्त्वार्थसूत्र ८।७ में भी दर्शनावरणीय कर्म की ये नौ उत्तर प्रकृतियां उल्लिखित हैं। प्रस्तुत सूत्र से उनका क्रम कुछ भिन्न है। वहां पहले चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल है और बाद में निद्रापंचक का उल्लेख है।

तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरीय पाठ और भाष्य में निद्रा आदि के पश्चात् 'वेदनीय' शब्द रखा गया है, जैसे—निद्रा-वेदनीय, निद्रानिद्रावेदनीय आदि।[2]

दिगम्बरीय पाठ में इन शब्दों के बाद 'वेदनीय' शब्द नहीं है। राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि टीका में इनके बाद दर्शनावरण जोड़ने को कहा गया है।[3]

स्थानांग के वृत्तिकार अभयदेवसूरी ने निद्रापंचक का जो अर्थ किया है वह मूल अनुवाद में प्रदत्त है। उन्होंने थीण-गिद्धी के दो संस्कृत रूपान्तर दिए हैं[4]—

१ स्त्यानर्द्धि २ स्त्यानगृद्धि।

बौद्ध साहित्य में इसका रूप स्त्यानऋद्धि मिलता है।

तत्त्वार्थ वार्तिक के अनुसार निद्रापंचक का विवरण इस प्रकार है[5]—

१ निद्रा—मद, खेद और क्लम को दूर करने के लिए सोना निद्रा है। इसके उदय से जीव तम अवस्था को प्राप्त होता है।

२ निद्रा-निद्रा—बार-बार निद्रा में प्रवृत्त होना निद्रा निद्रा है। इसके उदय से जीव महातम अवस्था को प्राप्त होता है।

३ प्रचला—जिस नींद से आत्मा में विशेष रूप से प्रचलन उत्पन्न हो उसे प्रचला कहा जाता है। शोक, श्रम, मद आदि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है। यह इन्द्रिय-व्यापार से उपरत होकर बैठे हुए व्यक्ति के शरीर और नेत्र आदि में विकार उत्पन्न करती है। इसके उदय में जीव बैठे-बैठे ही खुर्राटे भरने लगता है। उसका शरीर और उसकी आंखें विचलित होती हैं और वह व्यक्ति देखते हुए भी नहीं देख पाता।

४ प्रचला-प्रचला—प्रचला की बार-बार आवृत्ति से जब मन वासित हो जाता है, तब उसे प्रचला-प्रचला कहा जाता है। इसके उदय में जीव बैठे-बैठे ही अत्यन्त खुर्राटे लेने लगता है और बाण आदि के द्वारा शरीर के अवयव छिन्न हो जाने पर भी वह कुछ नहीं जान पाता।

५ स्त्यानगृद्धि—इसका शाब्दिक अर्थ है स्वप्न में विशेष शक्ति का आविर्भाव होना। इसकी प्राप्ति से जीव सोते-सोते ही अनेक रौद्र कर्म तथा बहुविध क्रियाएं कर डालता है।

गोम्मट्टसार के अनुसार निद्रापंचक का विवरण इस प्रकार है[6]—

(१) 'स्त्यानगृद्धि' के उदय से जगाने के बाद भी जीव सोता रहता है। वह उस सुप्त अवस्था में भी कार्य करता है, बोलता है।

(२) 'निद्रा-निद्रा' के उदय से जीव आंखें नहीं खोल सकता।

(३) 'प्रचला-प्रचला' के उदय से लार गिरती है और अंग कांपते हैं।

(४) 'निद्रा' के उदय से चलता हुआ जीव ठहरता है, बैठता है, गिरता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२३, ४२४।

२ तत्त्वार्थ सूत्र ८।७

३ तत्त्वार्थवार्तिक पृ० ५७२।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२४।

५ तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५७२, ५७३।

६ गोम्मट्टसार, कर्मकाण्ड, गाथा २३-२५।

(५) 'प्रचला' के उदय से जीव के नेत्र कुछ खुले रहते हैं और वह सोते हुए भी थोडा-थोडा जागता है और वार-वार मद-मद सोता है।

५-७. (सू० १५-१८)

मिलाइए—समवाओ ९।५-७।

८. (सू० १८)

यद्यपि लवण समुद्र में पाच सौ योजन के मत्स्य होते है किन्तु नदा के मुहाने पर जगती के रध्र की उचितता से केवल नौ योजन के मत्स्य ही प्रवेश पा सकते हैं। अथवा जागतिक नियम ही ऐसा है कि इससे ज्यादा बडे मत्स्य उसमें आते ही नहीं।[1] ये मत्स्य लवण समुद्र से जवूद्वीप की नदियो में आ जाते हैं।

मिलाइये—समवाओ ९।८।

९ महानिधि (सू० २२)

प्रस्तुत सूत्र मे नौ निधियो का उल्लेख है। निधि का अर्थ है—खजाना। वृत्तिकार का अभिमत है कि चक्रवर्त्ती के अपने राज्य के लिए उपयोगी सभी वस्तुओं की प्राप्ति इन नौ निधियो से होती है, इसीलिए इन्हें नव निधान के रूप मे गिनाया जाता है।[2] प्रचलित परम्परा के अनुसार ये निधिया देवकृत और देवाधिष्ठित मानी जाती हैं। परन्तु वास्तव मे ये सभी आकर ग्रन्थ हैं, जिनसे सभ्यता और सस्कृति तथा राज्य सचालन की अनेक विधियो का उद्भव हुआ है। इनमे तत् तत् विपयो का सर्वाङ्गीण ज्ञान भरा था, इसलिए इन्हें निधि के रूप मे माना गया। ये आकर ग्रन्थ अपने विषय की पूर्ण जानकारी देते थे। हम इन नौ निधियो को ज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे इस प्रकार वाट सकते हैं—

१ नैसर्प निधि—वास्तुशास्त्र।
२ पाडुक निधि—गणितशास्त्र तथा वनस्पतिशास्त्र।
३ पिंगल निधि—मडनशास्त्र।
४ सर्वरत्न निधि—लक्षणशास्त्र।
५ महापद्म निधि—वस्त्र-उत्पत्तिशास्त्र।
६ काल निधि—कालविज्ञान, शिल्पविज्ञान और कर्मविज्ञान का प्रतिपादक महाग्रन्थ।
७ महाकाल निधि—धातुवाद।
८ माणवक निधि—राजनीति व दडनीतिशास्त्र।
९ शख निधि— नाट्य व वाद्यशास्त्र।

१० सौ प्रकार के शिल्प (सू० २२)

कालनिधि महाग्रन्थ मे सौ प्रकार के शिल्पो का वर्णन है। वृत्तिकार ने घट, लोह, चित्र, वस्त्र और नापित—इन पाचो को मूल शिल्प माना है और प्रत्येक के वीस-वीस भेद होते हैं, ऐसा लिखा है।[3] वे वीस-वीस भेद कौन-कौन से हैं, यह

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२५ लवणसमुद्रे यद्यपि पञ्चशतयोजनायामा मत्स्या भवन्ति तथापि नदीमुखेपु जगतीरन्ध्रौचित्येनैतावतामेव प्रवेश इति, लोकानुभावो वाऽयमिति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२६ चक्रवर्त्तिराज्योपयोगीनि द्रव्याणि सर्वाण्यपि नवसु निधिष्ववतरन्ति, नव निधानतया व्यवह्रियन्त इत्यर्थ।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२६ शिल्पशतं कालनिधौ वर्त्तते, शिल्पशतं च घटलोहचित्रवस्त्रशिल्पाना प्रत्येक विंशतिभेदत्वादिति।

इनके पांच-पांच विकृतिगत होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

अन्वेषणीय है। सूत्रकार को सौ शिल्प कौन से गम्य थे, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

११ चार प्रकार के काव्य (सू० २२)

वृत्तिकार ने काव्य के चार-चार विकल्प प्रस्तुत किए हैं[1]—

१ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतिपादक ग्रन्थ।

२ सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश या सकीर्ण भाषा [मिश्रित-भाषा] निवद्ध ग्रन्थ।

३ सम, विषम, अर्द्धसम या वृत्त में निवद्ध ग्रन्थ।

४ गद्य, पद्य, गेय और वर्णपद भेद में निवद्ध ग्रन्थ।

१२ विकृतिया (सू० २३)

विकृति का अर्थ है विकार। जो पदार्थ मानसिक विकार पैदा करते हैं उन्हें विकृति कहा गया है।[2] प्रस्तुत सूत्र मे नौ विकृतियो का उल्लेख है।

प्रवचनसारोद्धार[3] मे दस विकृतियो का कथन है। उनमें अवगाहिम [पक्वान्न] विकृति का अतिरिक्त उल्लेख है। जो पदार्थ घी अथवा तेल मे तला जाता है, उसे अवगाहिम कहते हैं। स्थानागवृत्ति मे लिखा है कि पक्वान्न कदाचित् अविकृति भी होता है, इसलिए विकृतिया नौ निर्दिष्ट हैं। यदि पक्वान्न को विकृति माना जाए तो विकृतिया दस हो जाती हैं।[4]

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार ने विकृति के विषय मे प्रचलित प्राचीन परपरा का उल्लेख करते हुए अनेक तथ्य उपस्थित किए हैं। अवगाहिम विकृति के विषय मे उन्होंने विशेष जानकारी दी है। उनका कथन है कि घी अथवा तेल से भरी हुई कडाही में एक, दो, तीन घाण निकाले जाते हैं तब तक वे सव पदार्थ अवगाहिम विकृति के अन्तर्गत आते हैं। यदि उसी घी या तेल में चौथा घाण निकाला जाता है [चौथी वार उसी में कोई चीज तली जाती है] तव वह निर्विकृति हो जाती है। ऐसे पदार्थ योगवहन करनेवाले मुनि भी ले सकते हैं। यदि चूल्हे पर चढी हुई उसी कडाही मे वार-वार घी या तेल डाला जाता है तो चौथे घाण मे भी वह वस्तु निर्विकृतिक नहीं होती।

दूध मिश्रित चावल में यदि चावलो पर चार अगुल दूध रहता है तो वह निर्विकृतिक माना जाता है। और यदि दूध पाच अगुल से ज्यादा होता है तो विकृति माना जाता है। इसी प्रकार दही और तेल के विषय मे भी जानना चाहिए। गुड, घी, और तेल से वने पदार्थों मे यदि वे एक अगुल ऊपर तक सटे हुए हों तो वे विकृति नहीं हैं। मधु और मास के रस से वने हुए पदार्थों में यदि वे रस मे आधे अगुल तक सटे हुए हों तो विकृति के अन्तर्गत नहीं आते। जिन पदार्थों में गुड, मास, नवनीत आदि के आर्द्रामलक जितने छोटे-छोटे टुकडे (शण वृक्ष के मुकुट जितने छोटे) मिश्रित हो, वे पदार्थ भी निर्विकृतिक माने जाते हैं। और जिनमे इनके वडे-वडे टुकडे मिश्रित हों वे विकृति में गिने जाते हैं।

प्राचीन आगम व्याख्या साहित्य मे तीन शब्द प्रचलित हैं—विकृति, निर्विकृति और विकृतिगत। विकृति और निर्विकृति की वात हम ऊपर कह चुके हैं।

विकृतिगत का अर्थ है—दूसरे पदार्थो के मिश्रण से जिस विकृति की शक्ति नष्ट हो जाती है उसे विकृतिगत कहा जाता है। इसके तीस प्रकार हैं। दूध, दही, घी, तेल, गुड और अवगाहिम—इनके पांच-पांच विकृतिगत होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२० काव्यस्य चतुर्विधस्य धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थप्रतिवद्धग्रन्थस्य अथवा सस्कृतप्राकृतापभ्रंशसङ्कीर्णभाषानिवद्धस्य अथवा समविषमार्द्धसमवृत्तवद्धतया गद्यतया चेति अथवा गद्यपद्यगेयवर्णपदभेदवद्धस्येति।

२ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ५३ विकृतयो—मनसो विकृतिहेतुत्वादिति।

३ प्रवचनसारोद्धार, गाथा २१७

दुद्ध दहि नवणीय घय तहा तेल्लमेव गुड मज्ज।
महु मस चेव तहा ओगाहिमग च विगइओ॥

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२७ पक्वान्न तु कदाचिदविकृतिरपि तेनैता नव, अन्यथा तु दशापि भवन्तीति।

दूध के पाच विकृतिगत—

१ दुग्धकाजिका—दूध की राब।

२ दुग्धाटी—मावा होना या दही अथवा छाछ के साथ दूध को पकाने से पकने वाला पदार्थ।

३ दुग्धावलेहिका—चावलों के आटे मे पकाया हुआ दूध।

४ दुग्धसारिका—द्राक्षा डालकर पकाया हुआ दूध।

५ खीर

दही के पाच विकृतिगत।

१ घोलवडे।

२ घोल—कपडे से छना हुआ दही।

३ शिखरिणी—हाथ से मथकर चीनी डाला हुआ दही।

४ करवक—दही युक्त चावल।

५ नमक युक्त दही का मट्ठा—इसमे सोगरी आदि न डालने पर भी वह विकृतिगत होता है, उनके डालने पर तो होता ही है।

घृत के पाच विकृतिगत—

१ औषधपक्व घृत।

२ घृतकिट्टिका—घृत का मैल।

३ घृत-पक्व—औषध के ऊपर तैरता हुआ घृत।

४ निर्भञ्जन—पक्वान्न से जला हुआ घृत।

५ विस्यदन—दही की मलाई पर तैरते हुए घृत-बिन्दुओ से बना पदार्थ।

तेल के पाच विकृतिगत—

१ तैलमलिका।

२ तिलकुट्टि।

३ निर्भञ्जन—पक्वान्न से जला हुआ तैल।

४ तैल-पक्व—औषध के ऊपर तैरता हुआ तैल।

५ लाक्षा आदि द्रव्य में पकाया गया तैल।

गुड के पाच विकृतिगत—

१ आधा पका हुआ ईक्षु रस।

२ गुड का पानी।

३ शक्कर।

४ खाड।

५ पकाया हुआ गुड।

अवगाहिम के पाच विकृतिगत—

१ तवे पर घी डालकर एक रोटी पका ली और पुन दूसरी बार उसमें घी डाले बिना दूसरी रोटी पकाई जाए वह विकृतिगत है।

२ बिना नया घी और तेल डाले उसी कढाई मे तीन घाण निकल चुकने के पश्चात् चौथे घाण मे जो पदार्थ निष्पन्न होते हैं वे विकृतिगत हैं।

३ गुडधानिका आदि।

४ कढाही मे निष्पन्न सुकुमारिका [मिष्टान्न] को निकालने के पश्चात् उसी कढाही मे घी या तेल लगा हुआ रह जाता है। उसमे पानी डालकर सिझाई हुई लपसी (लपनश्री) विकृतिगत है।

५ घी या तेल से संश्लिष्ट वर्तन मे पकाई हुई पूपिका।

वृत्तिकार का अभिमत है कि यद्यपि खीर आदि द्रव्य साक्षात् विकृतिया नही हैं, किन्तु विकृतिगत हैं। फिर भी ये विशेष पदार्थ हैं तथा ये भी मनोविकार पैदा करते ह। जो निर्विकृतिक की साधना करते हैं उनके लिए ये कल्प्य हैं, परन्तु इनके सेवन से उनके कोई विशेष निर्जरा नही होती। अत निर्विकृतिक तप करनेवाले इनका सेवन नही करते।

जो व्यक्ति विविध तपस्याओ से अपने आप को अत्यन्त क्षीण कर चुका है, वह यदि स्वाध्याय, अध्ययन आदि करने मे असमर्थ हो तो वह इन विकृतिगत का आसेवन कर सकता है। उसके महान् कर्म-निर्जरा होती है।[1]

विकृति विषयक वह परपरा काफी प्राचीन प्रतीत होती है। प्रवचनसारोद्धार ग्यारहवीं शताब्दी की रचना है, किन्तु यह परम्परा तत्कालीन नहीं है।

ग्रन्थकार ने इसका वर्णन आवश्यक चूर्णि (उत्तर भाग, पृष्ठ ३१९, ३२०) के आधार पर किया है।[2] इसकी रचना लगभग चार शताब्दी पूर्व की है। यह परपरा उससे भी प्राचीन रही है।

वतमान मे विकृति सबधी मान्यताओ मे बहुत परिवर्तन हो चुका है।

१३ पापश्रुतप्रसग (सू० २७)

प्रस्तुत सूत्र मे नौ पापश्रुत प्रसगो का उल्लेख है। जो शास्त्र पापबन्ध का हेतु होता है, उसे पापश्रुत कहा जाता है। प्रसग का अर्थ है आसेवन[3] या उसका विस्तार।

समवायाग २९।१ मे उनतीस पापश्रुत प्रसगो का उल्लेख है। वहा मूल मे आठ पापश्रुत प्रसग माने हैं—भौम, उत्पात, स्वप्न, अन्तरिक्ष अग, स्वर, व्यजन और लक्षण। यह अष्टाग निमित्त है। इनके सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से २४ प्रकार होते हैं। शेष पाच अन्य हैं। परन्तु प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित नौ नाम इससे सर्वथा भिन्न हैं। ऐसे तो समवायाग में उल्लिखित 'निमित्त' के अन्तर्गत ये सारे आ जाते हैं। फिर भी दोनो उल्लेखों में बहुत बडा अन्तर है।

वृत्तिकार ने प्रसग का एक अर्थ विस्तार किया है और वहा सूत्र, वृत्ति और वार्तिक का सकेत दिया है।[4] यदि हम यहा प्रत्येक के ये तीन-तीन भेद करें तो [९ × ३] २७ भेद होते हैं।

वत्तिकार ने तद्-तद् पापश्रुत प्रसगो के ग्रन्थो का भी नामोल्लेख किया है[5]—

१ उत्पाद—राष्ट्रोत्पात आदि ग्रन्थ।

२ निमित्त—कूटपर्वत आदि ग्रन्थ।

३ मन्त्र—जीवोद्धरण गारुड आदि ग्रन्थ।

४ आवरण—वास्तुविद्या आदि ग्रन्थ।

५ अज्ञान—भारत, काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ।

विस्तृत टिप्पण के लिए देखें—समवायाग, २९, टिप्पण १।

१४ नैपुणिक (सू० २८)

निपुण का अर्थ है—सूक्ष्मज्ञान। जो सूक्ष्मज्ञान के धनी हैं उन्हें नैपुणिक कहा जाता है। इसका दूसरा अर्थ है—अनुप्रवाद नामक नौवें पूर्व के इन्ही नामों के नौ अध्ययन।[6]—

---

१ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ५५, ५६।

२ प्रवचनसारोद्धार, गाथा २३५
आवस्सय चुण्णीए परिभणिय एत्थ वण्णिय सहिय।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र, ४२८ प्रसङ्ग—तयासेवारूप।

४ वही, पत्र ४२८ प्रसङ्ग — विस्तरो वा—सूत्रवृत्तिवार्तिकरूप

५ वही, पत्र ४२८।

६ वही, पत्र ४२८, निपुण—सूक्ष्मज्ञान पुरुषा इत्यर्थ। अथवा अनुप्रवादाभिधानस्य अध्ययनविशेषा एवेति।

१ सख्यान—गणितशास्त्र या गणितशास्त्र का सूक्ष्म ज्ञानी।

२ निमित्त—चूडामणि आदि निमित्त शास्त्रो का ज्ञाता।

३ कायिक—शरीर मे रहे हुए इडा, पिंगला आदि प्राण-तत्त्वो का विशिष्ट ज्ञाता।

४ पौराणिक—बहुत वृद्ध होने के कारण बहुविध बातों का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति अथवा पुराणशास्त्रो का विशिष्ट ज्ञानी।

५ पारिहस्तिक—प्रकृति से ही सभी कार्यों को उचित समय मे दक्षता से करने वाला।

६ परपडित—बहुत शास्त्रो को जानने वाला अथवा पडित मित्रो के घने सपर्क मे रहने वाला।

७ वादी—वाद करने की लब्धि से सम्पन्न अथवा मत्रवादी, धातुवादी (रसायनशास्त्र को जानने वाला)।

८ भूतिकर्म—मत्रित राख आदि देकर ज्वर आदि को दूर करने मे निपुण।

९ चैकित्सिक—विविध रोगों की चिकित्सा में निपुण।[1]

१५ नौ गण (सू० २९)

यह विषय मूलत कल्पसूत्र मे प्रतिपादित है। नौ की सख्या के अनुरोध से इसे आगमन-सकलन काल मे प्रस्तुत सूत्र में सकलित किया गया है।

एक सामाचारी का पालन करने वाले साधु-समुदय को गण कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में नौ गणो का उल्लेख है—

१ गोदासगण—प्राचीन गोत्री आर्य भद्रबाहु स्थविर के चार शिष्य थे—गोदास, अग्निदत्त, यज्ञदत्त और सोमदत्त। गोदास काश्यपगोत्री थे। उन्होंने गोदास गण की स्थापना की। इस गण से चार शाखाए निकली—तामलिप्तिका, कोटिवर्षिका, पाडुवर्द्धनिका और दासीखर्वटिका।

२ उत्तरवलिस्सहगण—माठरगोत्री आर्य सभूतविजय के बारह शिष्य थे। उनमे आर्य स्थूलभद्र एक थे। इनके दो शिष्य हुए—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। आर्य महागिरि के आठ शिष्य हुए, उनमे स्थविर उत्त र और स्थविर बलिस्सह दो थे। दोनो के सयुक्त नाम से 'उत्तरवलिस्सह' नाम के गण की उत्पत्ति हुई।

३ उद्देहगण—आर्य सुहस्ती के बारह अतेवासी थे। उनमे स्थविर रोहण भी एक थे। ये काश्यपगोत्री थे। इनसे 'उद्देहगण' की उत्पत्ति हुई।

४ चारणगण—स्थविर श्रीगुप्त भी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये हारित गोत्र के थे। इनसे चारणगण की उत्पत्ति हुई।

५ उडुपाटितगण—स्थविर जशभद्र आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये भारद्वाजगोत्री थे। इनसे उडुपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

६ वेशपाटितगण—स्थविर कामिड्ढी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये कुडिलगोत्री थे। इनसे वेशपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

७ कामर्द्धिकगण—यह वेशपाटितगण का एक कुल था।

८ मानवगण—आर्य सुहस्ती के शिष्य ऋषिगुप्त ने इस गण की स्थापना की। ये वाशिष्टगोत्री थे।

९ कोटिकगण—स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध से इस गण की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक गण की चार-चार शाखाए और उद्देह आदि गणों के अनेक कुल थे। इनकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें—कल्पसूत्र, सूत्र २०६—२१६।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२८।

१६ (सू० ३४)

कृष्णराजी, मघा आदि आठ कृष्णराजिओ के आठ अवकाशान्तरो मे आठ लोकान्तिकविमान हैं [स्था० ८।४४, ४५] इनमें सारस्वत आदि आठ लोकान्तिक देव रहते हैं। नौंवा देवनिकाय रिष्ट लोकान्तिक देव कृष्णराजि के मध्यवर्ती रिष्टाम-विमान के प्रस्तट में निवास करते हैं। ये नौ लोकान्तिक देव हैं। ये ब्रह्म देवलोक के समीप रहते हैं अत इन्हें लोकान्तिक देव कहा जाता है। इनकी स्थिति आठ सागरोपम की होती है और ये सात-आठ भव में मुक्त हो जाते हैं। तीर्थंकर की प्रव्रज्या से एक वर्ष पूर्व ये स्वयम्बुद्ध भगवान् से अपनी रीति को निभाने के लिए कहते हैं—'भगवन्! समस्त जीवों के हित के लिए आप अब तीर्थ का प्रवर्तन करें।'

१७ (सू० ४०)

आयुष्य के साथ इतने प्रश्न और जुडे हुए होते हैं कि—

(१) जीव किस गति में जायेगा ?

(२) वहा उसकी स्थिति कितनी होगी ?

(३) वह ऊचा, नीचा या तिरछा—कहा जायेगा ?

(४) वह दूरवर्ती क्षेत्र में जायेगा या निकटवर्ती क्षेत्र मे ? इन चार प्रश्नों मे आयु परिणाम के नौ प्रकार समा जाते हैं, जैसे—प्रश्न १ में (१, २) प्रश्न २ मे (३, ४), प्रश्न ३ मे (५, ६, ७) प्रश्न ४ मे (८, ९)। जब अगले जीवन के आयुष्य का बन्ध होता है तब इन सभी बातों का भी उसके साथ-साथ निश्चय हो जाता है।

वृत्तिकार ने परिणाम के तीन अर्थ किए हैं—स्वभाव, शक्ति और धर्म[1]।

आयुष्य कर्म के परिणाम नौ हैं—

(१) गति परिणाम—इसके माध्यम से जीव मनुष्यादि गति को प्राप्त करता है।

(२) गतिबन्धन परिणाम—इसके माध्यम से जीव प्रतिनियत गतिकर्म का बंध करता है, जैसे—जीव नरकायु-स्वभाव से मनुष्यगति, तिर्यग्गति नामकर्म का बंध करता है, देवगति और नरकगति का बंध नहीं करता।

(३) स्थिति परिणाम—इसके माध्यम से जीव भवसंबंधी स्थिति (अन्तर्मुहूर्त से तेतीस सागर तक) का बन्ध करता है।

(४) स्थिति बंधन परिणाम—इसके माध्यम से जीव वर्तमान आयु के परिणाम से भावी आयुष्य की नियत स्थिति का बन्ध करता है, जैसे—तिर्यग आयुपरिणाम से देव आयुष्य का उत्कृष्ट बंध अठारह सागर का होता है।

(५) ऊर्ध्वगौरव परिणाम—गौरव का अर्थ है गमन। इसके माध्यम से जीव ऊर्ध्व-गमन करता है।

(६) अधोगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव अधोगमन करता है।

(७) तिर्यग् गौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव को तिर्यक् गमन की शक्ति प्राप्त होती है।

(८) दीर्घगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव लोक से लोकान्त पर्यन्त दीर्घगमन करता है।

(९) ह्रस्वगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव ह्रस्वगमन (थोडा गमन) करता है।

वृत्तिकार ने यहा 'अन्यथाप्यूह्यमेतद्'—इसकी दूसरे प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती है—कहा है[2]। वह दूसरा प्रकार क्या है, यह अन्वेषणीय है।

यहा गति शब्द का वाच्यार्थ किया जाए तो ये परिणाम परमाणु आदि पर भी घटित हो सकते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३० परिणाम—स्वभाव शक्ति धर्म्म इति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३०।

१८ (सू० ६०)

भगवान् महावीर के तीर्थ मे तीर्थंकर गोत्र बाधने वाले नौ व्यक्ति हुए हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है—

१ श्रेणिक—ये मगध देश के राजा थे। इनका विस्तृत विवरण निरयावलिका सूत्र मे प्राप्त है। ये आगामी चौवीसी मे पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर होगे।

२ सुपार्श्व—ये भगवान् महावीर के चाचा थे। इनके विषय मे विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। ये आगामी चौवीसी में सूर देव नाम के दूसरे तीर्थंकर होंगे।

३ उदायी—यह कोणिक का पुत्र था। उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद पाटलीपुत्र नगर बसाया और वही रहने लगा। जैन धर्म के प्रति उसकी परम आस्था थी। वह पर्व-तिथियो मे पौषध करता और धर्म-चिन्ता मे समय व्यतीत करता था। धार्मिक होने के साथ-साथ वह अत्यन्त पराक्रमी भी था। उसने अपने तेज से सभी राजाओ को अपना सेवक बना दिया था। वे राजा सदा यही चिंतन करते कि उदायी राजा जीवित रहते हुए हम सुखपूर्वक स्वच्छदता से नही जी सकते।

एक बार किसी एक राजा ने कोई अपराध कर डाला। उदायी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका राज्य छीन लिया। राजा वहा से पलायन कर शरण पाने अन्यत्र जा रहा था। बीच मे ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुत्र भटकता हुआ उज्जयिनी नगरी मे गया और राजा के पास रहने लगा। अवन्तीपति भी उदायी से क्रुद्ध था। दोनो ने मिलकर उदायी को मार डालने का षड्यन्त्र रचा।

वह राजपुत्र उज्जयिनी से पाटलीपुत्र आया और उदायी का सेवक बन रहने लगा। उदायी को यह मालूम नहीं था कि यह उसके शत्रु राजा का पुत्र है। वह राजकुमार उदायी का छिद्रान्वेषण करता रहा परन्तु उसे कोई छिद्र न मिला।

उसने जैन मुनियो को उदायी के प्रासाद मे बिना रोक-टोक आते-जाते देखा। उसके मन में भी राजकुल मे स्वच्छन्द प्रवेश पाने की लालसा जाग उठी। वह एक जैन आचार्य के पास प्रव्रजित हो गया। अब वह साधु-आचार का पूर्णत पालन करने लगा। उसकी आचारनिष्ठा और सेवाभावना से आचार्य का मन अत्यन्त प्रसन्न रहने लगा। वे इससे अति प्रभावित हुए। किसी ने उसकी कपटता को नही आका।

महाराज उदायी प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को पौषध करते थे और आचार्य उसको धर्मकथा सुनाने के लिए पास में रखते थे।

एक बार पौषध दिन में आचार्य सायकाल उदायी के निवास-स्थान पर गए। वह प्रव्रजित राजपुत्र भी आचार्य के उपकरण ले उनके साथ गया। उदायी को मारने की इच्छा से उसने अपने पास एक तीखी कैंची रख ली थी। किसी को इसका भेद मालूम नही था। वह साथ-साथ चला और उदायी के समीप अपने आचार्य के साथ बैठ गया।

आचार्य ने धर्मप्रवचन किया और सो गए। महाराज उदायी भी थक जाने के कारण वहीं भूमि पर सो गए। वह मुनि जागता रहा। रौद्र ध्यान में वह एकाग्र हो गया और अवसर का लाभ उठाते हुए अपनी कैंची राजा के गले पर फेंक दी। राजा का कोमल कठ छिद गया। कठ से लहू बहने लगा।

वह पापी श्रमण वहा से बाहर चला गया। पहरेदारो ने भी उसे श्रमण समझकर नही रोका।

रक्त की धारा बहते-बहते आचार्य के सस्तारक तक पहुच गई। आचार्य उठे। उन्होंने कटे हुए राजा के गले को देखा। वे अवाक् रह गए। उन्होंने शिष्य को वहां न देखकर सोचा—'उस कपटी श्रमण का ही यह कार्य होना चाहिए, इसीलिए वह यही भाग गया है।' उन्होंने मन ही मन सोचा—'राजा की इस मृत्यु से जैन शासन कलंकित होगा और सभी यह कहेंगे कि एक जैन आचार्य ने अपने ही श्रावक राजा को मार डाला। अत मैं प्रवचन की ग्लानि को मिटाने के लिए अपने आप की घात कर डालूं। इससे यह होगा कि लोग सोचेंगे—राजा और आचार्य को किसी ने मार डाला। इससे शासन बदनाम नहीं होगा।'

आचार्य ने अन्तिम प्रत्याख्यान कर उसी कैंची से अपना गला काट डाला।

प्रात काल सारे नगर मे यह बात फैल गई कि राजा और आचार्य की हत्या उस शिष्य ने की है। वह कपटवेशधारी

किसी राजा का पुत्र होना चाहिए। सैनिक उसकी तलाश मे गए, परन्तु वह नहीं मिला। राजा और आचार्य का दाह-संस्कार हुआ।

वह उदायीमारक श्रमण उज्जयिनी मे गया और राजा से सारा वृतान्त कहा। राजा ने कहा—'अरे दुष्ट! इतने समय तक का श्रामण्य पालन करने पर भी तेरी जघन्यता नही गई? तूने ऐसा अनार्य कार्य किया? तेरे मे मेरा क्या हित सध सकता है। चला जा, तू मेरी आखों के सामने मत रह।' राजा ने उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और उसे देश से निकाल डाला।[1]

४ पोट्टिल अनगार—अनुत्तरोपपातिक मे पोट्टिल अनगार की कथा है। उसके अनुसार ये हस्तिनागपुर के वासी थे। इनकी माता का नाम भद्रा था। इन्होने बत्तीस पत्नियो को त्याग कर भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। अन्त मे एक मास की सलेखना कर सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध हो गए। परन्तु प्रस्तुत प्रसग में उनके भरत क्षेत्र मे सिद्ध होने की बात कही है। इससे लगता है कि ये अनगार कोई अन्य हैं।

५ दृढायु—इनके विषय मे विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

६, ७ शख तथा शतक—ये दोनो श्रावस्ती नगरी के श्रावक थे। एक बार भगवान् महावीर श्रावस्ती पधारे और कोष्ठक चैत्य मे ठहरे। अनेक श्रावक-श्राविकाए वन्दन करने आईं। भगवान् का प्रवचन सुना और सब अपने-अपने घर की ओर चले गए। रास्ते मे शख ने दूसरे श्रावकों से कहा—'देवानुप्रियो! घर जाकर आहार आदि विपुल सामग्री तैयार करो। हम उसका उपभोग करते हुए पाक्षिक पर्व की आराधना करते हुए विहरण करेंगे।' उन्होंने उसे स्वीकार किया। बाद मे शख ने सोचा—'अशन आदि का उपभोग करते हुए पाक्षिक पौषध की आराधना करना मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है। मेरे लिए श्रेयस्कर यही होगा कि मैं प्रतिपूर्ण पौषध करू।'

वह अपने घर गया और अपनी पत्नी उत्पला को सारी बात बताकर पौषधशाला मे प्रतिपूर्ण पौषध कर बैठ गया।

इधर दूसरे श्रावक घर गए और भोजन आदि तैयार करा कर एक स्थान मे एकत्रित हुए। वे शख की प्रतीक्षा मे बैठे थे। शख नहीं आया तब शतक[2] को उसे बुलाने भेजा। पुष्कली शख के घर आया और बोला—'भोजन तैयार है। चलो, हम सब साथ बैठकर उसका उपभोग करें और पश्चात् पाक्षिक पौषध करें।' शख ने कहा—'मैं अभी प्रतिपूर्ण पौषध कर चुका हू अत मैं नही चल सकता।' पुष्कली ने लौटकर श्रावको को सारी बात कही। श्रावको ने पुष्कली के साथ भोजन किया।

प्रात काल हुआ। शख भगवान् के चरणो मे उपस्थित हुआ। भगवान् को वन्दना कर वह एक स्थान पर बैठ गया। दूसरे श्रावक भी आए। भगवान् को वन्दना कर उन सबने धर्मप्रवचन सुना।

पश्चात् वे शख के पास आकर बोले—इस प्रकार हमारी अवहेलना करना क्या आपको शोभा देता है? भगवान् ने यह सुन उनसे कहा—शख की अवहेलना मत करो। यह अवहेलनीय नही है। यह प्रियधर्मा और दृढधर्मा है। यह सुदृष्टि जागरिका[3] मे स्थित है।[4]

८ सुलसा—राजगृह मे प्रसेनजित नामका राजा राज्य करता था। उसके रथिक का नाम नाग था। सुलसा उसकी भार्या थी। नाग सुलसा से पुत्र-प्राप्ति के लिए इन्द्र की आराधना करता था। एक बार सुलसा ने उससे कहा—'तुम दूसरा विवाह कर लो।' नाग ने कहा—'मैं तुम्हारे से ही पुत्र चाहता हू।'

एक बार देवसभा मे सुलसा के सम्यक्त्व की प्रशसा हुई। एक देव उसकी परीक्षा करने साधु का वेश बनाकर आया। सुलसा ने उसके आगमन का कारण पूछा। साधु ने कहा—'तुम्हारे घर मे लक्षपाक तैल है। वैद्य ने मुझे उसके सेवन के

---

१ परिशिष्ट पर्व, सर्ग ६, पृष्ट १०४-१०६।

२ वृत्तिकार ने शतक की पहचान पुष्कली से की है—(स्थानागवृत्ति पत्र, ४३२ पुष्कली नामा श्रमणोपासक शतक इत्यपरनाम) भगवती (१२।१) में पुष्कली का शतक नाम प्राप्त नहीं है। वृत्तिकार के सामने इसका क्या आधार रहा है, यह कहा नही जा सकता।

३ जागरिकाएं तीन हैं—
१ बुद्ध जागरिका—कैवली की जागरणा।
२ अबुद्ध जागरिका—छद्मस्थ मुनियों की जागरणा।
३ सुदृष्टि जागरिका—श्रमणोपासकों की जागरणा।

४ विशेष विवरण के लिए देखें—भगवती १२।२०, २१।

लिए कहा है। वह मुझे दो।' सुलसा खुशी-खुशी घर मे गई और तैल का पात्र उतारने लगी। देव-माया से वह गिरकर टूट गया। दूसरा और तीसरा पात्र भी गिरकर टूट गया। फिर भी सुलसा को कोई खेद नही हुआ। साधुरूप देव ने यह देखा और प्रसन्न होकर उसे बत्तीस गुटिकाए देते हुए कहा—'प्रत्येक गुटिका के सेवन से तुम्हे एक-एक पुत्र होगा।' विशेष प्रयोजन पर तुम मुझे याद करना। मैं आ जाऊगा।' यह कहकर देव अन्तर्हित हो गया।

सुलसा ने—'सभी गुटिकाओ से मुझे एक ही पुत्र हो'—ऐसा सोचकर सभी गुटिकाए एक साथ खा ली। अब उदर मे बत्तीस पुत्र बढने लगे। उसे असह्य वेदना होने लगी। उसने कायोत्सर्ग कर देव का स्मरण किया, देव आया। सुलसा ने सारी बात कह सुनाई। देव ने पीड़ा शान्त की। उसके बत्तीस पुत्र हुए।

६ रेवती—एक बार भगवान् महावीर मेढिकग्राम नगर में आए। वहा उनके पित्तज्वर का रोग उत्पन्न हुआ और वे अतिसार से पीडित हुए। यह जनप्रवाद फैल गया कि भगवान् महावीर गोशालक की तेजोलेश्या से आहत हुए हैं और छह महीनो के भीतर काल कर जाएगे।

भगवान् महावीर के शिष्य मुनि सिंह ने अपनी आतापना तपस्या सपन्न कर सोचा—'मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर पित्तज्वर से पीडित हैं। अन्यतीर्थिक यह कहेंगे कि भगवान् गोशालक की तेजोलेश्या से आहत होकर मर रहे हैं। इस चिंता से अत्यन्त दुखित होकर मुनि सिंह मालुकाकच्छ वन मे गए और सुबक-सुबक कर रोने लगे। भगवान् ने यह जाना और अपने शिष्यो को भेजकर उसे बुलाकर कहा—'सिंह! तूने जो सोचा है वह यथार्थ नही है। मैं आज से कुछ कम सोलह वर्ष तक केवली पर्याय मे रहूगा। जा, तू नगर मे जा। वहा रेवती नामक श्राविका रहती है। उसने मेरे लिए दो कुष्माण्ड-फल पकाए हैं। वह मत लाना। उसके घर बिजोरापाक भी बना है। वह वायुनाशक है। उसे ले आना। वही मेरे लिए हितकर है।'

सिंह गया। रेवती ने अपने भाग्य की प्रशसा करते हुए, मुनि सिंह ने जो मागा, वह दे दिया। सिंह स्थान पर आया, महावीर ने बिजोरापाक खाया। रोग उपशान्त हो गया।

आगामी चौबीसी में इनका स्थान इस प्रकार होगा—

१ श्रेणिक का जीव पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर।

२ सुपार्श्व का जीव सूरदेव नाम के दूसरे तीर्थंकर।

३ उदायी का जीव सुपार्श्व नाम के तीसरे तीर्थंकर।

४ पोट्टिल का जीव स्वयप्रभ नाम के चौथे तीर्थंकर।

५ दृढायु का जीव सर्वानुभूति नाम के पाचवें तीर्थंकर।

६. शख का जीव उदय नाम के सातवें तीर्थंकर।

७ शतक का जीव शतकीर्ति नाम के दसवें तीर्थंकर।

८ सुलसा का जीव निर्ममत्व नाम के पन्द्रहवें तीर्थंकर।

इनमें से शख और रेवती का वर्णन भगवती में प्राप्त है परन्तु वहा इनके भावी तीर्थंकर होने का उल्लेख नही है। इनके कथानको से यह स्पष्ट नही होता कि उनके तीर्थंकरगोत्र बधन के क्या-क्या कारण हैं।

१६. (सू० ६१)

उदकपेढालपुत्त—इनका मूल नाम उदक और पिता का नाम पेढाल था। ये उदकपेढालपुत्त के नाम से प्रसिद्ध थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे। ये भगवान् पार्श्व की परम्परा मे दीक्षित हुए। एक बार ये नालन्दा के उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित हस्तिद्वीपवनषण्ड मे ठहरे हुए थे। इन्हे श्रावक विषय पर विशेष सशय उत्पन्न हुआ। गणधर गौतम से सशय-

निवारण कर ये चतुर्याम धर्म को छोड पञ्चयाम धर्म मे दीक्षित हो गए ।[1]

पोट्टिल और शतक—

इनका वर्णन ६।६० के टिप्पण मे किया जा चुका है।

दारुक—वृत्तिकार के अनुसार ये वासुदेव के पुत्र थे तथा अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हुए थे। उन्होंने इनके विशेष विवरण के लिए अनुत्तरोपपातिक सूत्र की ओर संकेत किया है। परन्तु उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक मे 'दारुक' नाम के किसी अनगार का विवरण प्राप्त नही है। अन्तकृत सूत्र के तीसरे वर्ग के वारहवें अध्ययन मे दारुक अनगार का विवरण है। उनके पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम धारणी था। वे यहा विवक्षित नही हो सकते। क्योकि वे तो अन्तकृत हो गए और प्रस्तुत सूत्र मे आगामी उत्सर्पिणी मे सिद्ध होने वालो का कथन है। अत ये कौन अनगार थे—इसको जानने के स्रोत उपलब्ध नहीं हैं।

सत्यकी—वैशाली गणतन्त्र के अधिपति महाराज चेटक की पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। वह प्रव्रजित हुई और अपने उपाश्रय में कायोत्सर्ग करने लगी।

वहा एक पेढाल परिव्राजक रहता था। उसे अनेक विद्याए सिद्ध थी। वह अपनी विद्या को देने के लिए योग्य व्यक्ति की खोज कर रहा था। उसने सोचा—यदि किसी ब्रह्मचारिणी स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो ये विद्याए बहुत कार्यकर हो सकती हैं। एक वार उसने साध्वी को कायोत्सर्ग मे स्थित देखा। उसने मंत्र विद्या से धूमिका व्यामोह (वातावरण को धूमिल बनाकर) से साध्वी मे वीर्य का निवेश किया। उसके गर्भ रहा। एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सत्यकी रखा। एक वार वह साध्वी अपने पुत्र के साथ भगवान् के समवसरण मे गई। उस समय वहा कालसदीप नाम का विद्याधर आया और भगवान् से पूछा—'मुझे किससे भय है ?' भगवान् ने सत्यकी की ओर इशारा करते हुए कहा—'इस सत्यकी से।' तब कालसदीप उसके पास आकर अवज्ञा करते हुए बोला—'अरे ! तू मुझे मारेगा ?' यह कह कर उसे अपने पैरो मे गिराया।

एक वार पेढाल परिव्राजक ने साध्वियो से सत्यकी को ले जाकर उसे विद्याए सिखाईं। पाच जन्म तक वह रोहिणी विद्या द्वारा मारा गया। छठे जन्म मे जब आयु-काल केवल छह महीनों का रहा तब उसने उसे साधना छोड दिया। सातवें जन्म में वह सिद्ध हुई। वह उस सत्यकी के ललाट मे छेद कर शरीर में प्रवेश कर गई। देवता ने उस ललाट-विवर को तीसरी आख के रूप मे परिवर्तित कर दिया। सत्यकी ने देवता की स्थापना की। उसने कालसन्दीप को मार डाला और वह विद्याधरो का राजा हो गया। तब से वह सभी तीर्थंकरो को वंदना कर नाटक दिखाता हुआ विहरण कर रहा है।

अम्मड परिव्राजक—एक वार श्रमण भगवान् महावीर चम्पा नगरी मे समवसृत हुए। परिव्राजक विद्याधर श्रमणोपासक अम्मड ने भगवान् से धर्म सुनकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया। उसे जाते देख भगवान् ने कहा—'श्राविका सुलसा को कुशल समाचार कहना।' अम्मड ने सोचा—'पुण्यवती है सुलसा कि जिसको स्वय भगवान् अपना कुशल समाचार भेज रहे हैं। उसमे ऐसा कौन-सा गुण है ? मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूगा।'

अम्मड परिव्राजक के वेश में सुलसा के घर गया और बोला—'आयुष्मति ! मुझे भोजन दो, तुम्हें धर्म होगा।'

सुलसा ने कहा—'मैं जानती हू किसे देने से धर्म होता है।'

अम्मड आकाश में गया, पद्मासन मे स्थित होकर विभिन्न लोगो को विस्मित करने लगा। लोगों ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उसने निमत्रण स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। पूछने पर उसने कहा—'मैं सुलसा के यहा भोजन लूंगा।' लोग दौडे-दौडे गए और सुलसा को बधाइया देने लगे। उसने कहा—'मुझे पाखडियो से क्या लेना है।' लोगों ने अम्मड से यह बात कही। अम्मड ने कहा—यह परम सम्यग्दृष्टि है। इसके मन में व्यामोह नही है। वह तब लोगो को साथ ले सुलसा के घर गया। सुलसा ने उसका स्वागत किया। वह उससे प्रतिवद्ध हुआ।

---

१ सूत्रकृताग २।७ में यह विवरण प्राप्त है किन्तु वहां सिद्ध, बुद्ध होने की बात नहीं है। अनुत्तरोपपातिक के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन में पेढालपुत्त का वर्णन है। वहां उनका स्वार्थसिद्ध में उपपात, वहां से महाविदेह मे सिद्ध होने की बात कही है।

वृत्तिकार ने बताया है कि औपपातिक सूत्र (४०) में अम्मड परिव्राजक के महाविदेह मे सिद्ध होने की बात बताई है। वह कोई अन्य है।[1]

सुपार्श्वा—यह पार्श्व की परम्परा मे प्रव्रजित साध्वी थी।

समवायाग सूत्र २५८ मे आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले २४ तीर्थंकरों के नाम हैं। उसके अनुसार यहा उल्लिखित नामों में से छठा 'निर्ग्रन्थदारूक' और नौवा 'आर्या सुपार्श्वा' को छोडकर शेष सात तीर्थंकर होंगे।

वृत्तिकार का अभिमत है कि इनमे से कुछ मध्यम तीर्थंकर के रूप मे तथा कई केवली के रूप मे होंगे।[2]

२०. पुण्ड्र (सू० ६२)

विंध्याचल के समीप का भूभाग।

२१ लक्षण-व्यञ्जन (सू० ६२)

लक्षण—सामुद्रिकशास्त्र में उक्त मनुष्य का मान, उन्माद आदि। शरीर पर चक्र आदि के चिह्न तथा रेखाए। ये जन्मगत होते हैं।

व्यजन—शरीर पर होने वाले मष, तिल आदि। ये जन्म के साथ या वाद मे भी उत्पन्न होते है।[3]

२२-२४. मान-उन्मान-प्रमाण (सू० ६२)

जल से भरे कुण्ड मे उस पुरुष को उतारा जाता है जिसका 'मान' जानना होता है। उस पुरुष के अन्दर पैठने पर जितना जल कुड से वाहर निकलता है, वह यदि एक द्रोण [१६ सेर] प्रमाण होता है, तव उस पुरुष को मानोपपन्न कहा जाता है।[4]

उन्मान—तराजू में तोलने पर जिस व्यक्ति का भार 'अर्द्धभार' [डेढ मन ढाई सेर] प्रमाण होता है, उस व्यक्ति को उन्मानोपपन्न कहा जाता है।[5]

प्रमाण—जिस व्यक्ति की ऊचाई अपने अगुल से एक सौ आठ अगुल होती है, उसे प्रमाणोपपन्न कहा जाता है।[6]

२५-२६. भार और कुभ (सू० ६२)

भार—चार तोले का एक पल होता है। दो हजार पलो का एक 'भार' होता है। चौसठ तोले का एक सेर मानने पर तीन मन पाच सेर का एक 'भार' होगा।

भार का दूसरा अर्थ है—एक पुरुष द्वारा उठाया जाने वाला वजन।[7]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४ यश्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति सम्भाव्यते।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४ एतेषु च मध्यमतीर्थकरत्वेनो-त्पत्स्यन्ते केचित्केचित्तु केवलित्वेन।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ लक्षणं—पुरुषलक्षणं शास्त्राभिहित व्यञ्जनं—मषतिलकादि

माणुम्माणपमाणादि लक्खण वंजण तु मसमाई।
सहजं च लक्खणं वजण तु पच्छा समुप्पन्न॥

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ मानं—जलद्रोणप्रमाणता, सा ह्येवं—जलभृते कुण्डे प्रमातव्यपुरुष उपवेश्यते, ततो यज्जल कुण्डान्निगच्छति तद्यदि द्रोणप्रमाणं भवति तदा स पुरुष मानोपपन्न इत्युच्यते।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ उन्मानं तुलारोपितस्यार्द्धभार-प्रमाणता।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ प्रमाण—आत्माङ्गुलेनाष्टोत्तर-शताङ्गुलोच्छ्रयता।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ विंशत्या पलशतैर्भारो भवति अथवा पुरुषोत्क्षेपणीयो भारो भारक इति।

कुभ—वत्तीस सेर अथवा ३२ × ६४ = २०४८ तोलो का एक कुभ होता है।[1]

२७-२८ पूर्णभद्र और माणिभद्र (सू० ६२)

पूर्णभद्र—दक्षिण यक्षनिकाय का इन्द्र।[2]

माणिभद्र—उत्तर यक्षनिकाय का इन्द्र।[3]

२९-३७ राजा ' सार्थवाह (सू० ६२)

राजा—यहा इसके द्वारा 'महामाडलिक' शब्द अभिप्रेत है।[4] आठ हजार राजाओ के अधिपति को महामाडलिक कहा जाता है।[5]

ईश्वर—इसके अनेक अर्थ हैं—युवराज, माडलिक—चार हजार राजाओ का अधिपति, अमात्य अथवा अणिमा आदि आठ लब्धियो से युक्त।[6]

तलवर—कोतवाल। प्राचीन काल में राजा परितुष्ट होकर जिसे पट्टवध से विभूपित करता था उसे तलवर कहा जाता था।[7]

माडविक—मडव का अधिपति। जिसके आसपास कोई नगर न हो उसे 'मडव' कहते है।[8]

कौटुम्बिक—कतिपय कुटुम्बो का स्वामी।[9]

इभ्य—धनवान्। जिसके पास इतना धन हो कि उसके धन के ढेर मे छिपा हुआ हाथी भी न मिले।[10]

श्रेष्ठी—नगरसेठ। इसके मस्तक पर श्रीदेवी से अकित सोने का एक पट्ट वधा रहता था।[11]

सेनापति—हाथी, अश्व, रथ और पैदल—इन चतुर्विध सेनाओ का अधिपति। इसकी नियुक्ति राजा करता था।[12]

सार्थवाह—सथवार्डों का नायक।[13]

३८ भावना (सू० ६२)

पाच महाव्रत की पचीस भावनाए हैं। इनके विवरण के लिए देखें—आयारचूला १५।४३-७८, उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २९७, २९८।

३९-४० फलकशय्या, काष्ठशय्या (सू० ६२)

फलकशय्या—पतले और लम्बे काष्ठ से वनी शय्या।

काष्ठशय्या—मोटे और लम्बे काष्ठ से वनी शय्या।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३८ कुम्भ आढकपष्ठ्यादिप्रमाणत ।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ पूर्णभद्रश्च—दक्षिणयक्षनिकायेन्द्र ।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ माणिभद्रश्च—उत्तरयक्षनिकायेन्द्र ।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ राजा महामाडलिक ।

५ वही, पत्र ४३९ विलोयपण्णत्ती।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ ईश्वरो—युवराजो माण्डलिकोऽमात्यो वा, अन्ये च व्याचक्षते—अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्त ईश्वर इति।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ तलवर —परितुष्टनरपतिप्रदत्तपट्टबन्धभूषित ।

८ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ माडम्बिक—छिन्नमडम्बाधिप ।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ कौटुम्बिक:—कतिपयकुटुम्बप्रभु ।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ इभ्य—अर्थवान्। स च किल यदीयपुञ्जीकृतद्रव्यराश्यन्तरितो हस्त्यपि नोपलभ्यत इत्येतावताऽर्थेनेति भाव ।

११ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ श्रेष्ठी—श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टभूषितोत्तमाङ्ग पुरज्येष्ठो वणिक्।

१२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ सेनापति—नृपतिनिरूपितो हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणाया सेनाया प्रभुरित्यर्थ ।

१३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९, सार्थवाहक—सार्थनायक ।

४१ लब्धापलब्धवृत्ति (सू० ६२)

सम्मानपूर्वक प्राप्त भिक्षा और असम्मानपूर्वक प्राप्त भिक्षा।

४२. आधाकर्मिक (सू० ६२)

श्रमण के लिए बनाया गया आहार आदि।

४३-४८ औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य (सू० ६२)

देखें—दसवेआलिय ३।२ का टिप्पण।

४९-५० आच्छेद्य, अनिसृष्ट (सू० ६२)

आच्छेद्य—बलात् नौकर आदि से छीन कर साधु को देना।[1]

अनिसृष्ट—जो वस्तु अनेक व्यक्तियो के अधिकार की हो और उन व्यक्तियो मे से एक या अधिक व्यक्ति उस वस्तु को देना न चाहते हो, ऐसी वस्तु ग्रहण करना अनिसृष्ट दोष है।[2]

५१. अभ्याहृत (सू० ६२)

देखें—दसवेआलिय ३।२ का टिप्पण।

५२-५६ कान्तारभक्त प्राघूर्णभक्त (सू० ६२)

कान्तारभक्त—प्राचीनकाल मे मुनियो का गमनागमन सार्थवाहों के साथ-साथ होता था। कभी वे अटवी मे साधु पर दया लाकर, उसके लिए भोजन बनाकर दे देते थे। इसे कान्तारभक्त कहा जाता है।

दुर्भिक्षभक्त—भयकर दुष्काल होने पर राजा तथा अन्य धनाढ्य व्यक्ति भक्त-पान तैयार कर देते थे। वह दुर्भिक्ष-भक्त कहलाता था।[3]

ग्लानभक्त—इसके तीन अर्थ हैं—

(१) आरोग्यशाला [अस्पताल] मे दिया जाने वाला भोजन।

(२) आरोग्यशाला के बिना भी सामान्यत रोगी को दिया जाने वाला भोजन।[4]

(३) रोग के उपशमन के लिए दिया जाने वाला भोजन।[5]

बार्दलिकाभक्त—आकाश मे बादल छाए हुए हैं। वर्षा गिर रही है। ऐसे समय मे भिक्षु भिक्षा के लिए नही जा सकते। यह सोचकर गृहस्थ उनके लिए विशेषत दान का निरूपण करता है। वह बार्दलिकाभक्त कहलाता है।[6]

निशीथ चूर्णि मे इसका अर्थ इस प्रकार है—

सात दिनो तक वर्षा पडने पर राजा साधुओ के निमित्त भोजन बनवाता है।[7]

प्राघूर्णभक्त—अतिथि को दिया जाने वाला भोजन। वृत्तिकार ने प्राघूर्णक के दो अर्थ किए हैं—

(१) आगन्तुक भिक्षुक (२) गृहस्थ।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ 'आच्छेद्य' बलाद् भृत्यादिसत्कमाच्छिद्य यत्स्वामी साधवे ददाति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ अनिसृष्ट साधारण बहूनामेकादिना अननुज्ञात दीयमानम्।

३ निशीथ ९।६ चूर्णि —जं दुब्भिक्खे राया देति तं दुब्भिक्खभत्तं।

४ निशीथ ९।६ चूर्णि—आरोगसालाए वा विणावि आरोगसालाए जं गिलाणस्स दिज्जति तं गिलाणभक्त।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ 'रोगोपशान्तये यद्ददाति।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ - बर्द्दलिका—मेघाडम्बर तत्र हि वृष्ट्या भिक्षाभ्रमणाक्षमो भिक्षुकलोको भवतीति गृही तदर्थं विशेषतो भक्तं दानाय निरूपयतीति।

७ निशीथ ९।६ चूर्णि —सत्ताहवद्दले पडते भत्तं करेति राया अपुण्णार्थं वा अविधीण भत्त करेति राया।

इसके आधार पर प्राघूर्णभक्त के दो अर्थ होते हैं—

(१) आगन्तुक भिक्षुओं के निमित्त बनाया गया भोजन।

(२) भिक्षुओं के लिए बनवाकर दूसरे गृहस्थ द्वारा दिया जाने वाला भोजन।[1]

निशीथ चूर्णि मे इसका अर्थ है—राजा के मेहमान के लिए बनाया गया भोजन।[2]

वृत्तिकार ने कातारभक्त आदि को आधाकर्म आदि के अन्तर्गत माना है।[3]

५७ शय्यातर पिंड (सू० ६२)

स्थानदाता का पिंड। इसके अन्तर्गत चारो प्रकार का आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन, सूचि, नखहरणी और कर्णशोधनी—ये भी स्थानदाता के हो तो वे भी शय्यातर पिंड के अन्तर्गत आते है।[4]

विशेष विवरण के लिए देखें—दसवेआलिय ३।५ का टिप्पण।

५८ राजपिंड (सू० ६२)

देखें—दसवेआलिय ३।२ का टिप्पण।

५६ (सू० ६३)

वृत्तिकार ने यहा मतान्तर का उल्लेख किया है[5]। उसके अनुसार दस नक्षत्र चन्द्रमा का पश्चिम से योग करते हैं। वे ये हैं—

१ अश्विनी २ भरणी ३ श्रवण ४ अनुराधा ५ धनिष्ठा ६ रेवती ७ पुष्य ८ मृगशिर ६ हस्त १० चित्रा।

६० (सू० ६८)

शुक्र ग्रह समधरणीतल से नौ सौ योजन ऊपर भ्रमण करता है। उनके भ्रमण-क्षेत्र को नौ वीथियो [क्षेत्र-विभागो] मे विभक्त किया गया है। प्रत्येक वीथि मे प्राय तीन-तीन नक्षत्र होते हैं। भद्रबाहुसंहिता के अनुसार उनका वर्णन इस प्रकार है[6]—

१ नागवीथी—भरणी, कृत्तिका, अश्विनी।

२ गजवीथी—मृगशिरा, रोहिणी, आर्द्रा।

३ ऐरावणपथ—पुष्या, आश्लेषा, पुनर्वसु।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ प्राघूर्णका—आगन्तुका भिक्षुका एव तदर्थं यद्भक्त तत्तथा, प्राघूर्णको वा गृही स यद्दापयति तदर्थं संस्कृत्य तत तथा।

२ निशीथ ६।६ चूर्णि—रण्णा को ति पाहुणगो आगतो तस्स भत्त आदेसभत्त।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ कान्तारभक्तादय आधाकर्मादि भेदा एव।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४४।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४४ मतान्तरं पुनरेवम्—

अस्सिणिभरणी-सवणो अणुराहधणिट्ठरेवईपूसो।
मगसिरहत्थो चित्ता पच्छिमजोगा मुणेयव्वा॥

६ भद्रबाहुसंहिता १५।४४-४८

० नागवीथीति विज्ञेया, भरणी कृत्तिकाश्विनी।
सत्वानां रोहिणी चार्द्रा, गजवीथीति निर्दिशेत्॥
० ऐरावणपथ विन्द्यात्, पुष्याश्लेषापुनर्वसु।
फाल्गुनी च मघा चैव, वृषवीथीति सज्ञिता॥
० गोवीथी रेवती चैव, द्वे च प्रोष्ठपदे तथा।
जरद्गवपथं विद्याच्छ्रवण वसु-वारुणम्॥
० अजवीथी विशाखा च चित्रा स्वाति करस्तथा।
ज्येष्ठामूलानुराधासु मृगवीथीति सज्ञिता॥
० अभिजिद् द्वे तथाषाढे, वैश्वानरपथ स्मृत।
॥

४ वृषवीथी—उत्तरफल्गुनी, पूर्वफल्गुनी, मघा ।
५ गोवीथी—रेवती, उत्तरप्रोष्ठपद, पूर्वप्रोष्ठपद ।
६ जरद्‌गवपथ—श्रवणा, पुनर्वसु, शतभिषग् ।
७ अजवीथी—विशाखा, चित्रा, स्वाति, हस्त ।
८ मृगवीथी—ज्येष्ठा, मूला, अनुराधा ।
९ वैश्वानरपथ—अभिजित्, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा ।

स्थानाग वृत्तिकार ने भद्रबाहुकृत आर्याछन्द के श्लोको का उद्धरण देकर नौ वीथियो के नक्षत्रो का उल्लेख किया है।[1] ये श्लोक प्रकाशित भद्रबाहुसहिता मे उपलब्ध नहीं होते । यह अन्वेष्टव्य है कि वृत्तिकार ने ये श्लोक किस ग्रन्थ से उद्धृत किए है।

वृत्तिकार का अभिमत है कि कहीं-कही हयवीथी के स्थान पर नागवीथी और नागवीथी के स्थान पर ऐरावणपथ भी मिलता है।[2]

इन विभिन्न वीथियो के नक्षत्रो के विषय मे भी सभी एकमत नही हैं। वराहमिहिरकृत वृहत्सहिता तथा वाजसनेयी प्रातिसाख्य आदि ग्रथो मे नक्षत्र विषयक मतभेद स्पष्ट दृग्गोचर होता है।

शुक्र ग्रह जब इन वीथियो मे विचरण करता है तब होने वाले लाभ-अलाभ की चर्चा करते हुए वृत्तिकार ने भद्रबाहुकृत दो श्लोक उद्धृत किए हैं। उनके अनुसार जब शुक्र ग्रह प्रथम तीन वीथियो मे विचरण करता है तब वर्षा अधिक, धान्य सुलभ और धन की वृद्धि होती है। जब वह मध्य की तीन वीथियों मे विचरण करता है तब धन-धान्य आदि मध्यम होते हैं और जब वह अन्तिम तीन वीथियो मे विचरण करता है, तब लोकमानस पीडित होता है, अर्थ का नाश होता है।[3]

भद्रबाहुसहिता के पन्द्रहवें अध्याय मे इसका विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

६१ (सू० ६९)

'नो' शब्द के कई अर्थ होते हैं—निषेध, आशिक निषेध, साहचर्य आदि। प्रस्तुत प्रसग मे उसका अर्थ है—साहचर्य। क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं—अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन। इन सोलह कषायो के साहचर्य से जो कर्म उदय मे आते हैं, उन्हें नोकषाय कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे वे निर्दिष्ट हैं। जैसे बुध ग्रह स्वय कुछ भी फल नही देता है, किन्तु दूसरे ग्रहो के साथ रहकर अपना फल देता है, इसी प्रकार ये नोकषाय भी मूल कषायों के साथ रहकर फल देते हैं।

जो कर्म नोकषाय के रूप मे अनुभूत होते हैं वे नोकषायवेदनीय कहलाते हैं। वे नौ हैं—

(१) स्त्रीवेद—शरीर में पित्त के प्रकोप से मीठा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से स्त्री की पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है।

(२) पुरुषवेद—शरीर मे श्लेष्म के प्रकोप से खट्टा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से पुरुष की स्त्री के प्रति अभिलाषा होती है।

(३) नपुसकवेद—शरीर मे पित्त और श्लेष्म—दोनो के प्रकोप से भुने हुए पदार्थों को खाने की इच्छा उत्पन्न

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४५
भरणी स्वात्याग्नेयं नागाख्या वीथिरुत्तरे मार्गे ।
रोहिण्यादिरिभाख्या चादित्यादि सुरगजाख्या ॥
वृषभाख्या पैत्र्यादि श्रवणादि मध्यमे जरद्‌गवाख्या ।
प्रोष्ठपदादि चतुष्के गोवीथि स्तासु मध्यफलम् ॥
अजवीथी हस्तादि मृगवीथी वैन्द्रदेवतादि स्यात् ।
दक्षिणमार्गे वैश्वानर्यषाढद्वयं ब्राह्म्यम् ॥

२ वही, पत्र ४४५ या चेह हयवीथी साऽन्यत्र नागवीथीति रुढा नागवीथी चैरावणपदमिति ।

३ वही, पत्र ४४५
एतासु भृगुर्विचरति नागगजैरावतीषु वीथिषु चेत् ।
बहु वर्षेत् पर्जन्य सुलभौषधयोऽर्थवृद्धिश्च ॥
पशुसञ्ज्ञासु च मध्यमशस्यफलादिपदा चरेद् भृगुज ।
अजमृगवैश्वानरवीथिष्वर्थभयार्दितो लोक ॥

होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से नपुसक व्यक्ति के मन मे स्त्री और पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है।

(४) हास्य—इस कर्म के उदय से सनिमित्त या अनिमित्त हास्य उत्पन्न होता है।

(५) रति—इस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

(६) अरति—इस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

(७) भय—इस कर्म के उदय से सात प्रकार का भय उत्पन्न होता है।

(८) शोक—इस कर्म के उदय से आक्रन्दन आदि शोक उत्पन्न होता है।

(९) जुगुप्सा—इस कर्म के उदय से जीव मे घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं।[1]

तत्त्वार्थ ८।९ मे 'नोकपाय' के स्थान पर 'अकपाय' शब्द का प्रयोग है। यहाँ 'अ' निषेध अर्थ मे नही किन्तु ईषद् अर्थ मे प्रयुक्त है।[2] अकपायवेदनीय के नौ प्रकारो का वर्णन इस प्रकार है—

(१) हास्य—इसके उदय से हास्य की प्रवृत्ति होती है।

(२) रति—इसके उदय से देश आदि को देखने की उत्सुकता उत्पन्न होती है।

(३) अरति—इसके उदय से अनौत्सुक्य उत्पन्न होता है।

(४) भय—इसके उदय से उद्वेग उत्पन्न होता है। उद्वेग का अर्थ है भय। वह सात प्रकार का होता है।

(५) शोक—इसका परिणाम चिन्ता होता है।

(६) जुगुप्सा—इसके उदय से व्यक्ति अपने दोषो को ढाकता है।

(७) स्त्रीवेद—इसके उदय से मृदुता, अस्पष्टता, क्लीवता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन और पुस्कामिता आदि स्त्रीभावो की उत्पत्ति होती है।

(८) पुंवेद—इसके उदय से पुंस्त्वभावो की उत्पत्ति होती है।

(९) नपुसकवेद—इसके उदय से नपुसकभावो की उत्पत्ति होती है।[3]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४५।

२. तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५७४ ईषदर्थत्वात् नञ।

३ वही, पृष्ठ ५७४।

दसमं ठाणं

दशम स्थान

आमुख

इसमे एक सौ अठहत्तर सूत्र हैं। इन सूत्रों मे विषयों की बहुविधता है। सूत्र(९३)मे दस प्रकार के शस्त्रों का उल्लेख है। अग्नि, विष, नमक, स्नेह, क्षार तथा अम्लता—ये छह द्रव्य शस्त्र हैं तथा मन की दुष्प्रवृत्ति, वचन की दुष्प्रवृत्ति, काया की दुष्प्रवृत्ति तथा मन की आसक्ति—ये चार भावशस्त्र हैं।

इसके पन्द्रहवें सूत्र मे प्रव्रज्या के दस प्रकार बतलाए हैं। वास्तव मे ये सब प्रव्रज्या के कारण हैं। प्रव्रज्या ग्रहण के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमे से यहा दस कारणों का सकलन किया गया है। आगमकार ने उदाहरणों का कोई उल्लेख नहीं किया है। टीकाकार ने उदाहरणों का नामोल्लेख मात्र किया है। हमने अन्यान्य स्रोतों से उन उदाहरणों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, देखें—टिप्पण सख्या ६।

इसके सत्तरहवें सूत्र मे वैयापृत्य या वैयावृत्य का उल्लेख है। वैयावृत्य का अर्थ है—सेवा करना और वैयापृत्य का अर्थ है—कार्य मे व्यापृत करना। सेवा सगठन का अटूट सूत्र है। सेवा दो प्रकार की होती है—शारीरिक और चैतसिक। शारीरिक अस्वस्था को सरलता से मिटाया जा सकता है किन्तु चैतसिक अस्वस्था को मिटाने के लिए धृति और उपाय की आवश्यकता होती है। इस सूत्र में दोनों का सुन्दर वर्णन है, देखें—टिप्पण सख्या ८।

सूत्र (९६) मे वचन के अनुयोग के दस प्रकार बतलाए हैं। इनसे शब्दों के अर्थों को समझने का विज्ञान प्राप्त होता है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। उनको समझने के लिए वचन के अनुयोग का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, देखें—टिप्पण सख्या ३६।

भारतीय सस्कृति मे दान की परम्परा बहुत प्राचीन है। दान देने के अनेक कारण बनते हैं। कुछ व्यक्ति भय से दान देते हैं, कुछ ख्याति के लिए और कुछ दया से प्रेरित होकर। प्रस्तुत सूत्र (९७) मे दस दानों का निरूपण तत्कालीन समाज मे प्रचलित प्रेरणाओं का इतिहास प्रस्तुत करता है, देखें—टिप्पण ३७।

सूत्र (१०३) मे भगवान महावीर के दस स्वप्नों का सुन्दर वर्णन है।

इस स्थान मे यत्र-तत्र विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों का भी उद्घाटन हुआ है। जैन परम्परा मे आहारसज्ञा, भयसज्ञा आदि दस सज्ञाएँ मान्य रही हैं। सज्ञा के दो अर्थ होते हैं—सवेगात्मक ज्ञान या स्मृति तथा मनोविज्ञान। इन दस सज्ञाओं मे आठ सज्ञाएँ सवेगात्मक हैं और दो सज्ञाएँ—लोकसज्ञा और ओघसज्ञा ज्ञानात्मक हैं।

आज का विज्ञान छठी इन्द्रिय की कल्पना करता है। उसकी तुलना ओघसज्ञा से की जा सकती है। विस्तार के लिए देखें—टिप्पण ४४।

इस स्थान मे विभिन्न आगमों का विवरण प्राप्त होता है जो आज अप्राप्त है। सूत्र (११०) मे दस दशाओं का कथन है, ऐसे दस आगमों का कथन है जिनमे दस-दस अध्ययन हैं। प्रथम छह दशाओं का विवरण आज भी प्राप्त है किन्तु अन्तिम चार—बधदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा और सक्षेपिकदशा का कोई भी विवरण प्राप्त नहीं है। वृत्तिकार शीलांकसूरि भी 'अस्माक अप्रतीता' इतना कहकर विराम ले लेते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि विक्रम की बारहवीं शती तक आते-आते ये चारों ग्रन्थ अविदित हो गए थे।

सूत्र (११६) मे प्रश्नव्याकरण सूत्र के दस अध्ययनों का उल्लेख है। इनके आधार पर समूचे सूत्र के विषयों की परिकल्पना की जा सकती है। वर्तमान मे उपलब्ध प्रश्नव्याकरण इससे सर्वथा भिन्न है। इसके रूप का निर्णय कब हुआ,

किसने किया, यह ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित है कि यह अर्वाचीन कृति है और नामसाम्य के कारण इसका समावेश आगम सूची मे कर लिया गया।

इसी प्रकार आगम ग्रन्थों की विशेष जानकारी के लिए टिप्पण ४५ से ५५ द्रष्टव्य हैं।

कुछेक सूत्रों मे सामाजिक विधि-विधानों का भी सुन्दर निरूपण हुआ है। सूत्र (१३७) मे दस प्रकार के पुत्रों का उल्लेख है। इनकी व्याख्याएँ विभिन्न प्रकार की सामाजिक विधियों की ओर सकेत करती हैं। 'क्षेत्रज' पुत्र की व्याख्या मे बताया गया है कि किसी स्त्री का पति मर गया है, अथवा वह नपुसक या सन्तानावरोधक व्याधि से ग्रस्त है तो कुल के मुख्यों की आज्ञा से उस स्त्री में, नियोग विधि से, सन्तान उत्पन्न करना भी वैध माना जाता था। इस विधि से उत्पन्न सन्तान को 'क्षेत्रज पुत्र' कहा जाता है। मनुस्मृति मे बारह प्रकार के पुत्रों का उल्लेख हुआ है। विशेष विवरण के लिए देखें टिप्पण ५८।

सूत्र (१३५) में दस प्रकार के धर्मों का उल्लेख है। 'धर्म' आज चर्चा का विषय बन चुका है। इस सूत्र में धर्म और कर्त्तव्य का पृथक निर्देश बहुत सुन्दर ढग से हुआ है।

सूत्र (१६०) में दसों आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी घटित होने वाली घटना। इनमे से १, २, ४ और ६ भगवान महावीर के समय मे और शेष भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों के समय में हुए हैं। इन दसों आश्चर्यों की पृष्ठभूमि मे अनेक ऐतिहासिक तथ्य गर्भित हैं। इनमे दूसरा आश्चर्य है—भगवान महावीर का गर्भापहरण। इसके सन्दर्भ में अनेक तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। विशेष विवरण के लिए देखें—टिप्पण ६१।

इस स्थान में भी पूर्ववत् विषयों की बहुविधता है। मुख्य रूप से इसमें न्याय शास्त्र के अनेक स्थल, गणित शास्त्र मुख्य भेदों का उल्लेख, वचनानुयोग के प्रकार तथा गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग के अनेक सूत्र सकलित हैं। दसवां स्थान होने के कारण इसमे प्रत्येक विषय का कुछ विस्तार से वर्णन हुआ है। इसी प्रकार जीव विज्ञान से सम्बन्धित दस प्रकार के सूक्ष्मों का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शब्द विज्ञान के विषय में दस प्रकार के शब्द, दस प्रकार के अतीत के इन्द्रिय-विषय, दस प्रकार के वर्तमान के इन्द्रिय-विषय तथा दस प्रकार के अनागत इन्द्रिय-विषय—ये चारों सूत्र बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। ये इस बात की ओर सकेत करते हैं कि जो भी शब्द बोला जाता है उसकी तरगें आकाशिक रिकार्ड में अंकित हो जाती हैं। इसके आधार पर भविष्य में उन तरंगों के माध्यम से उच्चारित शब्दों का सकलन किया जा सकता है।

दसमं ठाण

मूल

लोगट्ठिति-पदं

१ दसविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—

१. जण्ण जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

२ जण्ण जीवाण सया समित पावे कम्मे कज्जति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

३. जण्ण जीवाण सया समित मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

४ ण एव भूत वा भव्वं वा भविस्सति वा ज जीवा अजीवा भविस्सति, अजीवा वा जीवा भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

५ ण एव भूत वा भव्व वा भविस्सति वा ज तसा पाणा वोच्छिज्जिस्संति थावरा पाणा भविस्सति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिस्सति तसा पाणा भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

६ ण एव भूत वा भव्व वा भविस्सति वा ज लोगे अलोगे भविस्सति, अलोगे वा लोगे भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

सस्कृत छाया

लोकस्थिति-पदम्

दशविधा लोकस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ यत् जीवा अपद्राय-अपद्राय तत्रैव-तत्रैव भूय-भूय प्रत्याजायन्ते—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

२ यत् जीवै सदा समित पाप कर्म क्रियते—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

३ यत् जीवै सदा समित मोहनीय पाप कर्म क्रियते—एवमप्येका लोकस्थिति- प्रज्ञप्ता।

४. न एव भूत वा भाव्य वा भविष्यति वा यज्जीवा अजीवा भविष्यन्ति, अजीवा वा जीवा भविष्यन्ति—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

५ न एव भूत वा भाव्य वा भविष्यति वा यत् त्रसा प्राणा व्यवच्छेत्स्यन्ति स्थावरा प्राणा भविष्यन्ति, स्थावरा प्राणा व्यवच्छेत्स्यन्ति त्रसा प्राणा भविष्यन्ति—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।

६ न एव भूत वा भविष्यति वा यत् लोकोऽलोको भविष्यति, अलोको वा लोको भविष्यति—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

हिन्दी अनुवाद

लोकस्थिति-पद

१ लोकस्थिति दस प्रकार की है—

१ जीव बार-बार मरते हैं और वही लोक मे बार-बार प्रत्युत्पन्न होते हैं—यह एक लोकस्थिति है।

२ जीवो को सदा, प्रतिक्षण पापकर्म [ज्ञानावरण आदि] का बध होता है—यह एक लोकस्थिति है।

३ जीवो के सदा, प्रतिक्षण मोहनीय पाप-कर्म का बध होता है—यह एक लोकस्थिति है।

४ न ऐसा कभी हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि जीव अजीव हो जाए और अजीव जीव हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

५ न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि त्रस जीवों का व्यवच्छेद हो जाए और सब जीव स्थावर हो जाए, स्थावर जीवों का व्यवच्छेद हो जाए और सब जीव त्रस हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

६ न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि लोक अलोक हो जाए और अलोक लोक हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

७ ण एव भूतं वा भव्वं भविस्सति वा ज लोए अलोए पविस्सति, अलोए वा लोए पविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

७ न एव भूत वा भाव्य वा भविष्यति वा यल्लोक अलोके प्रवेक्ष्यति, अलोक वा लोके प्रवेक्ष्यति—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

७ न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि लोक अलोक मे प्रविष्ट हो जाए और अलोक लोक में प्रविष्ट हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

८ जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा, जाव ताव जीवा ताव ताव लोए—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

८ यावत् तावत् लोक तावत्-तावज्जीवा, यावत् तावत् जीवास्तावत्तावल्लोक—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

८ जहा लोक है वहा जीव है और जहा जीव है वहा लोक है—यह एक लोकस्थिति है।

९ जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए ताव ताव लोए, जाव ताव लोगे ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

९ यावत् तावज्जीवाना च पुद्गलानाञ्च गतिपर्याय तावत् तावल्लोक, यावत् तावल्लोक तावत् तावज्जीवानाञ्च पुद्गलानाञ्च गतिपर्याय—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

९ जहा जीव और पुद्गलों का गतिपर्याय है वहा लोक है और जहा लोक है वहा जीव और पुद्गलों का गतिपर्याय है—यह एक लोकस्थिति है।

१०. सव्वेसुवि ण लोगतेसु अवद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जति, जेणं जीवा य पोग्गला य णो सचायंति वहिया लोगंता गमणयाए—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

१० सर्वेष्वपि लोकान्तेषु अवद्धपार्श्वस्पृष्टा पुद्गला रूक्षतया क्रियन्ते, येन जीवाश्च पुद्गलाश्च नो शक्नुवन्ति वहिस्ताल्लोकान्तात् गमनतायै—एवमप्येका लोकस्थिति प्रज्ञप्ता।

१० समस्त लोकान्तो के पुद्गल दूसरे रूक्ष पुद्गलो के द्वारा अवद्धपार्श्वस्पृष्ट [अवद्ध और अस्पृष्ट] होने पर भी लोकान्त के स्वभाव से रूक्ष हो जाते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्त से वाहर जाने मे समर्थ नहीं होते—यह एक लोकस्थिति है।

इंदियत्थ-पदं

इन्द्रियार्थ-पदम्

इन्द्रियार्थ-पद

२. दसविहे सद्दे पण्णत्ते, त जहा—

दशविध शब्द प्रज्ञप्त, तद्यथा—

२ शब्द के दस प्रकार हैं—

संगह-सिलोगो

१ णीहारि पिंडिमे लुक्खे,
भिण्णे जज्जरिते इ य।
दीहे रहस्से पुहत्ते य,
काकणी खिंखिणिस्सरे॥

संग्रह-श्लोक

१. निर्हारी पिण्डिम रूक्ष.,
भिन्न जर्जरितोऽपि च।
दीर्घ ह्रस्व. पृथक्त्वश्च,
काकणी किंकिणीस्वर॥

१ निर्हारी—घोषवान् शब्द, जैसे—घण्टा का। २ पिण्डिम—घोषवर्जित शब्द, जैसे—नगाडे का। ३ रूक्ष—जैसे—कौवे का। ४ भिन्न—वस्तु के टूटने से होने वाला शब्द। ५ जर्जरित—जैसे—तार वाले वाजे का शब्द। ६ दीर्घ[1]—जो दूर तक सुनाई दे, जैसे—मेघ का शब्द।
७ ह्रस्व[2]—सूक्ष्म शब्द, जैसे—वीणा का।
८ पृथक्त्व—अनेक वाजो का सयुक्त शब्द।
९ काकणी—काकली, सूक्ष्मकण्ठों की गीतध्वनि।
१० किंकिणी स्वर—घूघरो की ध्वनि।

३. दस इंदियत्था तीता पण्णत्ता, तं जहा—	दश इन्द्रियार्था अतीता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३. इन्द्रियो के अतीतकालीन विषय दस हैं—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।	देशेनापि एके शब्दान् अश्रौषु।	१ किसी ने शरीर के एक भाग से भी शब्द सुने थे।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।	सर्वेणापि एके शब्दान् अश्रौषु।	२ किसी ने समस्त शरीर से भी शब्द सुने थे।
देसेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।	देशेनापि एके रूपाणि अद्राक्षु।	३ किसी ने शरीर के एक भाग से भी रूप देखे थे।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।	सर्वेणापि एके रूपाणि अद्राक्षु।	४ किसी ने समस्त शरीर से भी रूप देखे थे।
•देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु।	देशेनापि एके गन्धान् अघ्रासिषु।	५ किसी ने शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघे थे।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु।	सर्वेणापि एके गन्धान् अघ्रासिषु।	६ किसी ने समस्त शरीर से भी गंध सूंघे थे।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।	देशेनापि एके रसान् अस्वादिषत।	७ किसी ने शरीर के एक भाग से भी रस चखे थे।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।	सर्वेणापि एके रसान् अस्वादिषत।	८ किसी ने समस्त शरीर से भी रस चखे थे।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेंसु°।	देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसमवेदयन्।	९. किसी ने शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन किया था।
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेंसु।	सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसमवेदयन्।	१० किसी ने समस्त शरीर से भी स्पर्शों का संवेदन किया था।

४. दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता, तं जहा—	दश इन्द्रियार्था प्रत्युत्पन्ना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	४. इन्द्रियो के वर्तमानकालीन विषय दस हैं—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।	देशेनापि एके शब्दान् शृण्वन्ति।	१ कोई शरीर के एक भाग से भी शब्द सुनता है।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।	सर्वेणापि एके शब्दान् शृण्वन्ति।	२ कोई समस्त शरीर से भी शब्द सुनता है।
•देसेणवि एगे रूवाइं पासंति।	देशेनापि एके रूपाणि पश्यन्ति।	३. कोई शरीर के एक भाग से भी रूप देखता है।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासंति।	सर्वेणापि एके रूपाणि पश्यन्ति।	४ कोई समस्त शरीर से भी रूप देखता है।
देसेणवि एगे गंधाइं जिंघंति।	देशेनापि एके गन्धान् जिघ्रन्ति।	५ कोई शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघता है।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघंति।	सर्वेणापि एके गन्धान् जिघ्रन्ति।	६ कोई समस्त शरीर से भी गंध सूंघता है।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेंति।	देशेनापि एके रसान् आस्वदन्ते।	७ कोई शरीर के एक भाग से भी रस चखता है।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंति।	सर्वेणापि एके रसान् आस्वदन्ते।	८ कोई समस्त शरीर से भी रस चखता है।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेंति।	देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसवेदयन्ति।	९ कोई शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन करता है।
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेंति।	सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसवेदयन्ति।	१० कोई समस्त शरीर से भी स्पर्शों का संवेदन करता है।

५ दस इंदियत्था अणागता पण्णत्ता, तं जहा—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
•देसेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेस्संति।°
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसवेदेस्संति।

दश इन्द्रियार्था अनागताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
देशेनापि एके शब्दान् श्रोष्यन्ति।
सर्वेणापि एके शब्दान् श्रोष्यन्ति।
देशेनापि एके रूपाणि द्रक्ष्यन्ति।
सर्वेणापि एके रूपाणि द्रक्ष्यन्ति।
देशेनापि एके गन्धान् घ्रास्यन्ति।
सर्वेणापि एके गन्धान् घ्रास्यन्ति।
देशेनापि एके रसान् आस्वदिष्यन्ति।
सर्वेणापि एके रसान् आस्वदिष्यन्ति।
देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसंवेदयिष्यन्ति।
सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसंवेदयिष्यन्ति।

५—इन्द्रियों के भविष्यत्कालीन विषय दस हैं—
१. कोई शरीर के एक भाग से भी शब्द सुनेगा।
२ कोई समस्त शरीर से भी शब्द सुनेगा।
३ कोई शरीर के एक भाग से भी रूप देखेगा।
४ कोई समस्त शरीर से भी रूप देखेगा।
५ कोई शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघेगा।
६ कोई समस्त शरीर से भी गंध सूंघेगा।
७ कोई शरीर के एक भाग से भी रस चखेगा।
८ कोई समस्त शरीर से भी रस चखेगा।
९ कोई शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन करेगा।
१० कोई समस्त शरीर से भी स्पर्शों का संवेदन करेगा।

अच्छिण्ण-पोग्गल-चलण-पदं

६ दसहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—
आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा।
परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा।
उस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा।
णिस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा।
वेदेज्जमाणे वा चलेज्जा।
णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा।
विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा।
परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा।
जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा।
वातपरिगए वा चलेज्जा।

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पदम्

दशभिः स्थानैः अच्छिन्नः पुद्गलः चलेत्, तद्यथा—
आह्रियमाणो वा चलेत्।
परिणम्यमानो वा चलेत्।
उच्छ्वस्यमानो वा चलेत्।
निःश्वस्यमानो वा चलेत्।
वेद्यमानो वा चलेत्।
निर्जीर्यमाणो वा चलेत्।
विक्रियमाणो वा चलेत्।
परिचार्यमाणो वा चलेत्।
यक्षाविष्टो वा चलेत्।
वातपरिगतो वा चलेत्।

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पद

६ दस स्थानों से अच्छिन्न [स्कंध से संलग्न] पुद्गल चलित होता है[1]—
१ आहार के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
२ आहार के रूप में परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
३ उच्छ्वास के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
४ निश्वास के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
५ वेद्यमान पुद्गल चलित होता है।
६ निर्जीर्यमान पुद्गल चलित होता है।
७ वैक्रिय शरीर के रूप में परिणममान पुद्गल चलित होता है।
८ परिचारणा [संभोग] के समय पुद्गल चलित होता है।
९ शरीर में यक्ष के प्रविष्ट होने पर पुद्गल चलित होता है।
१० देहगत वायु या सामान्य वायु की प्रेरणा से पुद्गल चलित होता है।

कोधुप्पत्ति-पदं

७ दसहिं ठाणेहिं कोधुप्पत्ती सिया, तं जहा—
मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरिंसु।
अमणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधाइं उवहरिंसु।
मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरइ।
अमणुणाइं मे सद्द-फरिस-*रस-रूव°-गधाइं उवहरति।
मणुण्णाइं मे सद्द-*फरिस-रस-रूव-गंधाइं° अवहरिस्सति।
अमणुण्णाइं मे सद्द-*फरिस-रस-रूव गंधाइं° उवहरिस्सति।
मणुण्णाइं मे सद्द-*फरिस-रस-रूव°-गधाइं अवहरिंसु वा अवहरइ वा अवहरिस्सति वा।
अमणुण्णाइं मे सद्द-*फरिस-रस-रूव-गंधाइं° उवहरिंसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा।
मणुण्णामणुण्णाइंमेसद्द-*फरिस-रस-रूव-गधाइं° अवहरिंसु वा अवहरति वा अवहरिस्सति वा, उवहरिंसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा।
अहं च णं आयरिय-उवज्झायाण सम्मं वट्टामि, ममं च ण आयरिय-उवज्झाया मिच्छं विप्पडिवण्णा।

क्रोधोत्पत्ति-पदम्

दशभि स्थानै क्रोधोत्पत्ति स्यात्, तद्यथा—
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत्।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपाहार्षीत्।
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपहरति।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपहरति।
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपहरिष्यति।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपहरिष्यति।
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत् वा अपहरति वा अपहरिष्यति वा।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपाहार्षीत् वा उपहरति वा उपहरिष्यति वा।
मनोज्ञाऽमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत् वा अपहरति वा अपहरिष्यति वा, उपाहार्षीत् वा उपहरति वा उपहरिष्यति वा।
अहं च आचार्योपाध्याययो सम्यग् वर्त्ते, मा च आचार्योपाध्यायौ मिथ्या विप्रतिपन्नौ।

क्रोधोत्पत्ति-पद

७ दस कारणो से क्रोध की उत्पत्ति होती है—
१ अमुक व्यक्ति ने मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण किया था।
२ अमुक व्यक्ति ने अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत किए हैं।
३ अमुक व्यक्ति मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण करता है।
४ अमुक व्यक्ति अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत करता है।
५ अमुक व्यक्ति मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण करेगा।
६ अमुक व्यक्ति अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत करेगा।
७ अमुक व्यक्ति ने मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण किया था, करता है और करेगा।
८ अमुक व्यक्ति ने अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत किए हैं, करता है और करेगा।
९ अमुक व्यक्ति ने मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण किया है, करता है और करेगा तथा उपहृत किए हैं, करता है और करेगा।
१० मैं आचार्य और उपाध्याय के प्रति सम्यग् वर्तन [अनुकूल व्यवहार] करता हू, परन्तु आचार्य और उपाध्याय मेरे साथ मिथ्यावर्तन [प्रतिकूल व्यवहार] करते हैं।

सजम-असजम-पदं

८ दसविधे सजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसजमे,
•आउकाइयसजमे,
तेउकाइयसजमे,
वाउकाइयसजमे,°
वणस्सतिकाइयसंजमे,
वेइंदियसजमे,
तेइंदियसजमे,
चउरिंदियसजमे,
पंचिदियसजमे,
अजीवकायसंजमे ।

९. दसविधे असजमे पण्णत्ते, त जहा—
पुढविकाइयअसंजमे,
आउकाइयअसजमे,
तेउकाइयअसजमे,
वाउकाइयअसंजमे,
वणस्सतिकाइयअसजमे,
•वेइंदियअसजमे,
तेइंदियअसजमे,
चउरिंदियअसजमे,
पंचिदियअसंजमे,°
अजीवकायअसंजमे ।

संयम-असयम-पदम्

दशविध सयम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकसयम,
अप्कायिकसयम,
तेजस्कायिकसयम,
वायुकायिकसयम,
वनस्पतिकायिकसयम,
द्वीन्द्रियसयम,
त्रीन्द्रियसयम,
चतुरिन्द्रियसयम,
पञ्चेन्द्रियसयम,
अजीवकायसयम ।

दशविध असयम प्रज्ञप्त, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकासंयम,
अप्कायिकासयम,
तेजस्कायिकासयम,
वायुकायिकासयम,
वनस्पतिकायिकासयम,
द्वीन्द्रियासयम,
त्रीन्द्रियासयम,
चतुरिन्द्रियासयम,
पञ्चेन्द्रियासयम,
अजीवकायासयम ।

संयम-असंयम-पद

८ सयम के दस प्रकार हैं—
१ पृथ्वीकायिक सयम,
२ अप्कायिक सयम,
३ तेजस्कायिक सयम,
४ वायुकायिक सयम,
५ वनस्पतिकायिक सयम,
६ द्वीन्द्रिय सयम,
७ त्रीन्द्रिय सयम,
८ चतुरिन्द्रिय सयम,
९ पञ्चेन्द्रिय सयम,
१० अजीवकाय सयम ।

९ असयम के दस प्रकार हैं—
१ पृथ्वीकायिक असयम,
२ अप्कायिक असंयम,
३ तेजस्कायिक असयम,
४ वायुकायिक असंयम,
५ वनस्पतिकायिक असंयम,
६ द्वीन्द्रिय असयम,
७ त्रीन्द्रिय असयम,
८ चतुरिन्द्रिय असयम,
९ पञ्चेन्द्रिय असयम,
१०. अजीवकाय असयम ।

सवर-असंवर-पदं

१०. दसविधे सवरे पण्णत्ते, त जहा—
सोतिदियसंवरे, •चक्खिदियसवरे, घाणिदियसवरे, जिब्भिदियसवरे,° फासिदियसवरे, मणसवरे, वयसवरे, कायसवरे, उवकरणसवरे, सूचीकुसग्गसवरे ।

संवर-असवर-पदम्

दशविध सवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसवर, चक्षुरिन्द्रियसवर, घ्राणेन्द्रियसवर, जिह्वेन्द्रियसवर, स्पर्शेन्द्रियसवर, मन सवर, वच सवर, कायसवर, उपकरणसवर, शुचीकुशाग्रसवर ।

सवर-असंवर-पद

१० सवर के दस प्रकार हैं—
१ श्रोत्र-इन्द्रिय सवर,
२ चक्षु-इन्द्रिय सवर,
३ घ्राण-इन्द्रिय सवर,
४ रसन-इन्द्रिय संवर,
५ स्पर्शन-इन्द्रिय सवर,
६ मन सवर, ७ वचन संवर,
८ काय सवर, ९ उपकरण सवर[१],
१० सूचीकुशाग्र सवर[१] ।

११. दसविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसंवरे, •चक्खिंदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वयअसंवरे, कायअसंवरे, उवकरणअसंवरे,° सूचीकुसग्गअसंवरे,

दशविध असंवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासंवर, चक्षुरिन्द्रियासंवर, घ्राणेन्द्रियासंवर, जिह्वेन्द्रियासंवर, स्पर्शेन्द्रियासंवर, मनोसंवर, वचोसंवर, कायासंवर, उपकरणासंवर, शूचीकुशाग्रासंवर।

११ असंवर के दस प्रकार हैं—
१ श्रोत्र-इन्द्रिय असंवर,
२ चक्षु-इन्द्रिय असंवर,
३ घ्राण-इन्द्रिय असंवर,
४. रसन-इन्द्रिय असंवर,
५ स्पर्शन-इन्द्रिय असंवर,
६ मन असंवर, ७ वचन असंवर,
८ काय असंवर, ९ उपकरण असंवर,
१० सूचीकुशाग्र असंवर।

अहमंत-पदं

१२ दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा, तं जहा—
जातिमएण वा, कुलमएण वा, •बलमएण वा, रूवमएण वा, तवमएण वा, सुतमएण वा, लाभमएण वा,° इस्सरियमएण वा, णागसुवण्णा वा मे अंतियं हव्वमागच्छंति, पुरिसधम्मातो वा मे उत्तरिए आहोधिए णाणदंसणे समुप्पण्णे।

अहमन्त-पदम्

दशभिः स्थानैः अहमन्तीति स्तभ्नीयात्, तद्यथा—
जातिमदेन वा, कुलमदेन वा, बलमदेन वा, रूपमदेन वा, तपमदेन वा, श्रुतमदेन वा, लाभमदेन वा, ऐश्वर्यमदेन वा, नागसुपर्णा वा ममान्तिकं अर्वाग् आगच्छन्ति, पुरुषधर्मात् वा मम औत्तरिकं आधोवधिकं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्।

अहमन्त-पद

१२. दस स्थानों से व्यक्ति अपने-आप को अन्त [चरमकोटि का] मानकर स्तब्ध होता है—
१ जाति के मद से, २ कुल के मद से,
३ बल के मद से, ४ रूप के मद से,
५ तप के मद से, ६ श्रुत के मद से,
७ लाभ के मद से, ८ ऐश्वर्य के मद से,
९ नागकुमार अथवा सुपर्णकुमार मेरे पास दौड़े-दौड़े आते हैं।
१० साधारण पुरुषों के ज्ञान-दर्शन से अधिक अवधिज्ञान और अवधिदर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं।

समाधि-असमाधि-पदं

१३ दसविधा समाधी पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवायवेरमणे, मुसावायवेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे, इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिति, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिती।

समाधि-असमाधि-पदम्

दशविधः समाधिः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राणातिपातविरमणम्, मृषावादविरमणम्, अदत्तादानविरमणम्, मैथुनविरमणम्, परिग्रहविरमणम्, ईर्यासमितिः, भाषासमितिः, एषणासमितिः, आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमितिः, उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाणक-जल्ल-पारिष्ठापनिकासमितिः।

समाधि-असमाधि-पद

१३ समाधि के दस प्रकार हैं—
१ प्राणातिपात विरमण,
२ मृषावाद-विरमण,
३ अदत्तादान-विरमण,
४ मैथुन-विरमण, ५ परिग्रह-विरमण,
६ ईर्यासमिति, ७ भाषासमिति
८ एषणासमिति, ९ आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेप-समिति, १० उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिका-समिति।

१४. दसविधा असमाधी पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवाते, •मुसावाते, अदिण्णादाणे, मेहुणे,° परिग्गहे, इरियाऽसमिती, •भासाऽसमिती, एसणाऽसमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणाऽ वणाऽसमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणियाऽसमिती।

दशविध असमाधिः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राणातिपातः, मृषावादः, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रहः, ईर्याऽसमितिः, भाषाऽसमितिः, एषणाऽसमितिः, आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेपणाऽसमितिः, उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाणक-जल्ल-पारिष्ठापनिकाऽसमितिः।

१४ असमाधि के दस प्रकार हैं—
१ प्राणातिपात का अविरमण,
२ मृषावाद का अविरमण,
३ अदत्तादान का अविरमण,
४ मैथुन का अविरमण,
५ परिग्रह का अविरमण,
६ ईर्या की असमिति—असम्यक् प्रवृत्ति,
७ भाषा की असमिति,
८ एषणा की असमिति,
९ आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेप की असमिति
१० उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिका की असमिति।

पव्वज्जा-पदं

१५. दसविधा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. छंदा रोसा परिजुण्णा,
सुविणा पडिस्सुता चेव।
सारणिया रोगिणिया,
अणाढिता देवसण्णत्ती॥
वच्छाणुबंधिया।

प्रव्रज्या-पदम्

दशविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ छन्दा रोषा परिद्यूना,
स्वप्ना प्रतिश्रुता चैव।
स्मारणिका रोगिणिका,
अनादृता देवसंज्ञप्ति॥
वत्साऽनुबन्धिका।

प्रव्रज्या-पद

१५ प्रव्रज्या के दस प्रकार हैं—

१ छन्दा—अपनी या दूसरों की इच्छा से ली जाने वाली।
२ रोषा—क्रोध से ली जाने वाली।
३ परिद्यूना—दरिद्रता से ली जाने वाली।
४ स्वप्ना—स्वप्न के निमित्त से ली जाने वाली या स्वप्न मे ली जाने वाली।
५ प्रतिश्रुता—पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली।
६ स्मारणिका—जन्मान्तरो की स्मृति होने पर ली जाने वाली।
७ रोगिणिका—रोग का निमित्त मिलने पर ली जाने वाली।
८ अनादृता—अनादर होने पर ली जाने वाली।
९ देवसंज्ञप्ति—देव के द्वारा प्रतिबुद्ध हो कर ली जाने वाली।
१० वत्सानुबन्धिका—दीक्षित होते हुए पुत्र के निमित्त से ली जाने वाली।

समणधम्म-पदं

१६ दसविधे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे।

श्रमणधर्म-पदम्

दशविध श्रमणधर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
क्षान्तिः, मुक्तिः, आर्जवं, मार्दवं, लाघवं, सत्यं, संयमः, तपः, त्यागः, ब्रह्मचर्यवासः।

श्रमणधर्म-पद

१६ श्रमण-धर्म के दस प्रकार हैं—
१ क्षान्ति, २ मुक्ति—निर्लोभता, अनासक्ति। ३ आर्जव, ४ मार्दव, ५ लाघव, ६ सत्य, ७ संयम, ८ तप, ९ त्याग—अपने साम्भोगिक साधुओं को भोजन आदि का दान, १० ब्रह्मचर्यवास।

वेयावच्च-पदं

१७. दसविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—
आयरियवेयावच्चे,
उवज्झायवेयावच्चे,
थेरवेयावच्चे,
तवस्सिवेयावच्चे,
गिलाणवेयावच्चे,
सेहवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे,
गणवेयावच्चे, संघवेयावच्चे,
साहम्मियवेयावच्चे।

वैयावृत्त्य-पदम्

दशविधं वैयावृत्त्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आचार्यवैयावृत्त्यं, उपाध्यायवैयावृत्त्यं, स्थविरवैयावृत्त्यं, तपस्विवैयावृत्त्यं, ग्लानवैयावृत्त्यं, शैक्षवैयावृत्त्यं, कुलवैयावृत्त्यं, गणवैयावृत्त्यं, संघवैयावृत्त्यं, साधर्मिकवैयावृत्त्यम्।

वैयावृत्त्य-पद

१७ वैयावृत्त्य के दस प्रकार हैं—
१ आचार्य का वैयावृत्त्य।
२ उपाध्याय का वैयावृत्त्य।
३ स्थविर का वैयावृत्त्य।
४ तपस्वी का वैयावृत्त्य।
५ ग्लान का वैयावृत्त्य।
६ शैक्ष का वैयावृत्त्य।
७ कुल का वैयावृत्त्य।
८ गण का वैयावृत्त्य।
९ संघ का वैयावृत्त्य।
१० साधर्मिक का वैयावृत्त्य।

परिणाम-पदं

१८ दसविधे जीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
गतिपरिणामे, इंदियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेसापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दंसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे।

१९ दसविधे अजीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
बंधणपरिणामे, गतिपरिणामे, संठाणपरिणामे, भेदपरिणामे, वण्णपरिणामे, रसपरिणामे, गंधपरिणामे, फासपरिणामे, अगुरुलहुपरिणामे, सद्दपरिणामे।

परिणाम-पदम्

दशविधः जीवपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
गतिपरिणामः, इन्द्रियपरिणामः, कषायपरिणामः, लेश्यापरिणामः, योगपरिणामः, उपयोगपरिणामः, ज्ञानपरिणामः, दर्शनपरिणामः, चरित्रपरिणामः, वेदपरिणामः।

दशविधः अजीवपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
बन्धनपरिणामः, गतिपरिणामः, संस्थानपरिणामः, भेदपरिणामः, वर्णपरिणामः, रसपरिणामः, गन्धपरिणामः, स्पर्शपरिणामः, अगुरुलघुपरिणामः, शब्दपरिणामः।

परिणाम-पद

१८ जीव-परिणाम के दस प्रकार हैं—
१ गतिपरिणाम, २ इन्द्रियपरिणाम,
३ कषायपरिणाम, ४ लेश्यापरिणाम,
५ योगपरिणाम, ६ उपयोगपरिणाम,
७ ज्ञानपरिणाम, ८ दर्शनपरिणाम,
९ चारित्रपरिणाम, १० वेदपरिणाम,

१९ अजीव-परिणाम के दस प्रकार हैं—
१ बन्धनपरिणाम—संहत होना।
२ गतिपरिणाम, ३ संस्थानपरिणाम,
४ भेदपरिणाम—टूटना।
५ वर्णपरिणाम, ६ रसपरिणाम,
७ गंधपरिणाम, ८ स्पर्शपरिणाम,
९ अगुरुलघुपरिणाम,
१० शब्दपरिणाम।

असज्झाइय-पदं

२० दसविधे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—
उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, णिग्घाते, जुवए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया रयुग्घाते।

अस्वाध्यायिक-पदम्

दशविध आन्तरिक्षक अस्वाध्यायिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, निर्घात, यूपक, यक्षादीप्त, धूमिका, महिका, रजउद्घात।

अस्वाध्यायिक-पद

२० अन्तरिक्ष-सम्बन्धी अस्वाध्याय के दस प्रकार हैं[11]—
१. उल्कापात, २ दिग्दाह, ३ गर्जन, ४ विद्युत्, ५ निर्घात—कौंधना।
६ यूपक, ७ यक्षादीप्त, ८ धूमिका, ९ महिका, १० रजउद्घात।

२१. दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—
अट्ठि, मंसे, सोणिते, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

दशविध औदारिक अस्वाध्यायिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अस्थि, मांस, शोणित, अशुचिसामन्तं, श्मशानसामन्तं, चन्द्रोपराग, सूरोपराग, पतन, राजविग्रह, उपाश्रयस्यान्त औदारिक शरीरकम्।

२१ औदारिक अस्वाध्याय के दस प्रकार हैं[12]—
१ अस्थि, २ मांस, ३ रक्त,
४ अशुचि के पास, ५ श्मशान के पास,
६ चन्द्र-ग्रहण, ७ सूर्य-ग्रहण,
८ पतन—प्रमुख व्यक्ति का मरण।
९ राज्य-विप्लव,
१० उपाश्रय के भीतर सौ हाथ तक कोई औदारिक कलेवर के होने पर।

संजम-असंजम-पदं

२२. पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविधे संजमे कज्जति, तं जहा—
सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
°चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति°।
फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।।

संयम-असंयम-पदम्

पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य दशविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—
श्रोत्रमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
श्रोत्रमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
चक्षुर्मयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
चक्षुर्मयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।

संयम-असंयम-पद

२२ पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ नहीं करने वाले के दस प्रकार का संयम होता है—
१ श्रोत्रमय सुख का वियोग नहीं करने से,
२ श्रोत्रमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
३. चक्षुमय सुख का वियोग नहीं करने से,
४ चक्षुमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
५. घ्राणमय सुख का वियोग नहीं करने से,
६ घ्राणमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
७ रसमय सुख का वियोग नहीं करने से,
८ रसमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
९ स्पर्शमय सुख का वियोग नहीं करने से,
१० स्पर्शमय दुःख का संयोग नहीं करने से।

२३. °पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—
सोतामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति°।

पञ्चेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य दशविध असंयम क्रियते, तद्यथा—
श्रोत्रमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
श्रोत्रमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
चक्षुर्मयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
चक्षुर्मयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
घ्राणमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।

२३ पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले के दस प्रकार का असंयम होता है—
१ श्रोत्रमय सुख का वियोग करने से।
२ श्रोत्रमय दुःख का संयोग करने से।
३ चक्षुमय सुख का वियोग करने से।
४ चक्षुमय दुःख का संयोग करने से।
५ घ्राणमय सुख का वियोग करने से।
६ घ्राणमय दुःख का संयोग करने से।
७ रसमय सुख का वियोग करने से।
८ रसमय दुःख का संयोग करने से।
९ स्पर्शमय सुख का वियोग करने से।
१० स्पर्शमय दुःख का संयोग करने से।

सुहुम-पदं

२४. दस सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, °बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे,° सिणेहसुहुमे, गणियसुहुमे, भंगसुहुमे।

सूक्ष्म-पदम्

दश सूक्ष्माणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्राणसूक्ष्मं, पनकसूक्ष्मं, बीजसूक्ष्मं, हरितसूक्ष्मं, पुष्पसूक्ष्मं, अण्डसूक्ष्मं, लयनसूक्ष्मं, स्नेहसूक्ष्मं, गणितसूक्ष्मं, भङ्गसूक्ष्मम्।

सूक्ष्म-पद

२४ सूक्ष्म दस हैं[३]—
१ प्राणसूक्ष्म—सूक्ष्म जीव।
२ पनकसूक्ष्म—काई।
३ बीजसूक्ष्म—चावल आदि के अग्रभाग की कलिका।
४ हरितसूक्ष्म—सूक्ष्म तृण आदि।
५ पुष्पसूक्ष्म—वट आदि के पुष्प।
६ अण्डसूक्ष्म—चींटी आदि के अण्डे।
७ लयनसूक्ष्म—कीडीनगरा।
८ स्नेहसूक्ष्म—ओस आदि।
९ गणितसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य गणित।
१० भंगसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य विकल्प।

महाणदी-पदं

२५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण गगा-सिंधु-महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—

जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही, सतद्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चदभागा।

२६ जवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रत्ता-रत्तवतीओ महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—

किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा, इदा, °इदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा,° महाभोगा।

रायहाणी-पद

२७ जवुद्दीवे दीवे भरहे वासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ चपा महुरा वाणारसी य
सावत्थि तह य साकेतं।
हत्थिणउर कंपिल्ल,
मिहिला कोसंबि रायगिहं॥

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे गङ्गा-सिन्धू-महानद्यो दश महानद्य समर्पयन्ति, तद्यथा—

यमुना, सरयू, आवी, कोशी, मही, शतद्रुः, वितस्ता, विपाशा, ऐरावती, चन्द्रभागा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्तारक्तवत्यो महानद्यो दश महानद्य. समर्पयन्ति, तद्यथा—

कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा, इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुषेणा, वारिषेणा, महाभोगा।

राजधानी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे दश राजधान्य. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. चपा मथुरा वाणारसी च
श्रावस्ति तथा च साकेतम्।
हस्तिनापुर कांपिल्य,
मिथिला कोशाम्वी राजगृहम्।

महानदी-पद

२५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महानदी गगा और सिंधू मे दस महानदिया मिलती हैं[14]—

१ यमुना, २. सरयू, ३ आपी, ४ कोशी, ५ मही, ६ शतद्रू, ७ वितस्ता, ८ विपाशा, ९ ऐरावती, १० चन्द्रभागा।

२६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे महानदी रक्ता और रक्तवती में दस महानदिया मिलती हैं—

१ कृष्णा, २ महाकृष्णा, ३ नीला, ४. महानीला, ५ तीरा, ६ महातीरा, ७ इन्द्रा, ८ इन्द्रसेना, ९ वारिषेणा, १० महाभोगा।

राजधानी-पद

२७ जम्बूद्वीप द्वीप के भरतवर्ष मे दस राजधानियां प्रज्ञप्त हैं[15]—

१ चम्पा—अगदेश की।
२ मथुरा—सूरसेन की।
३ वाराणसी—काशी राज्य की।
४. श्रावस्ती—कुणाल की।
५ साकेत—कोशल की।
६ हस्तिनापुर—कुरु की।
७ कापिल्य—पाचाल की।
८ मिथिला—विदेह की।
९ कौशाम्वी—वत्स की।
१० राजगृह—मगध की।

राय-पदं

२८. एयासु ण दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुंडा भवेत्ता •अगाराओ अणगारियं° पव्वइया, त जहा—
भरहे, सगरे, मघव, सणकुमारे, संती, कुंथू, अरे, महापउमे, हरिसेणे, जयणामे।

राज-पदम्

एतासु दशसु राजधानीसु दश राजान मुण्डा भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजिता, तद्यथा—
भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, महापद्म, हरिषेण, जयनाम.।

राज-पद

२८ इन दस राजधानियो मे दस राजा मुडित होकर, अगार से अणगार अवस्था मे प्रव्रजित हुए थे'—
१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्ति, ६ कुन्थु, ७ अर, ८ महापद्म, ९ हरिषेण, १० जय।

मंदर-पद

२९. जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेण, धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खभेणं, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं, दसदसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

मन्दर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दर पर्वत दश योजनशतानि उद्वेधेन, धरणितले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण, दशदशानि योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्त•।

मन्दर-पद

२९ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरा है—भूगर्भ मे है। भूमितल पर उसकी चौडाई दस हजार योजन की है। ऊपर—पण्डकवन के प्रदेश मे—एक हजार योजन चौडा है। उसका सर्व परिमाण एक लाख योजन का है।

दिसा-पदं

३० जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डगपतरेसु, एत्थ ण अट्ठपएसिए रुयगे पण्णत्ते, जओ णं इमाओ दसदिसाओ पवहंति, तं जहा—
पुरत्थिमा, पुरत्थिमदाहिणा, दाहिणा, दाहिणपच्चत्थिमा, पच्चत्थिमा, पच्चत्थिमुत्तरा, उत्तरा, उत्तरपुरत्थिमा, उड्ढा, अहा।

दिशा-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य बहुमध्यदेशभागे अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या उपरितन-अधस्तनेषु क्षुल्लकप्रतरेषु, अत्र अष्टप्रादेशिक रुचकः प्रज्ञप्त, यत इमा दश दिश प्रवहन्ति, तद्यथा—
पौरस्त्या, पौरस्त्यदक्षिणा, दक्षिणा, दक्षिणपाश्चात्या, पाश्चात्या, पाश्चात्योत्तरा, उत्तरा, उत्तरपौरस्त्या, ऊर्ध्वं, अध।

दिशा-पद

३० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के बहुमध्यदेशभाग मे इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के क्षुल्लकप्रतर मे गोस्तनाकार चार प्रदेश हैं तथा निचले क्षुल्लकप्रतर मे भी गोस्तनाकार चार प्रदेश हैं। इस प्रकार यह अष्टप्रादेशिक रुचक हैं। इससे दस दिशाए निकलती हैं—
१ पूर्व, २ पूर्व-दक्षिण, ३ दक्षिण, ४ दक्षिण-पश्चिम, ५ पश्चिम, ६ पश्चिम-उत्तर, ७. उत्तर, ८ उत्तर-पूर्व, ९ ऊर्ध्व १० अधस्।

३१ एतासि णं दसण्ह दिसाणं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—

एतासा दशाना दिशा दश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३१ इन दस दिशाओ के दस नाम हैं—

सगहणी-गाहा

१ इदा अग्गेइ जम्मा य,
णेरती वारुणी य वायव्वा ।
सोमा ईसाणी य,
विमला य तमा य बोद्धव्वा ॥

संग्रहणी-गाथा

१. ऐन्द्री आग्नेयी याम्या च,
नैर्ऋती वारुणी च वायव्या ।
सौम्या ऐशानी च,
विमला च तमा च बोद्धव्या ॥

१ ऐन्द्री, २ आग्नेयी, ३ याम्या,
४ नैर्ऋती, ५ वारुणी, ६ वायव्या,
७ सोमा, ८ ईशानी, ९ विमला,
१० तमा।

लवणसमुद्द-पदं

३२ लवणस्स ण समुद्दस्स दस जोयण-सहस्साइ गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ।

३३ लवणस्स ण समुद्दस्स दस जोयण-सहस्साइ उदगमाले पण्णत्ते ।

लवणसमुद्र-पदम्

लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि गोतीर्थविरहित क्षेत्र प्रज्ञप्तम् ।

लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि उदगमाला प्रज्ञप्ता ।

लवणसमुद्र-पद

३२ लवण समुद्र का दस हजार योजन क्षेत्र गोतीर्थ-विरहित[11] [समतल] है।

३३ लवण समुद्र की उदकमाला[12] [वेला] दस हजार योजन चौडी है।

पायाल-पद

३४ सव्वेवि ण महापाताला दसदसाइ जोयणसहस्साइ उव्वेहेण पण्णत्ता, मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता, वहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दसदसाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

तेसि ण महापातालाण कुड्डा सव्व-वइरामया सव्वत्थ समा दस जोय-णसयाइ वाहल्लेण पण्णत्ता ।

पाताल-पदम्

सर्वेपि महापाताला दशदशानि योजन-सहस्राणि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता, वहुमध्यदेशभागे एकप्रादेशिक्या श्रेण्या दशदशानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता, उपरि मुखमूले दश योजन-सहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता ।

तेषा महापातालाना कुड्यानि सर्व-वज्रमयानि सर्वत्र समानि दश योजन-शतानि वाहल्येन प्रज्ञप्तानि ।

पाताल-पद

३४ सभी महापातालो की गहराई एक लाख योजन की है। मूल-भाग में उनकी चौडाई दस हजार योजन की है। मूल-भाग की चौडाई से दोनो ओर एक प्रदेशात्मक श्रेणी की वृद्धि होते-होते वहुमध्यदेशभाग मे एक लाख योजन की चौडाई हो जाती है। ऊपर मुख-भाग मे उनकी चौडाई दस हजार योजन की है।

उन महापातालो की भीतें वज्रमय और सर्वत्र वरावर हैं। उनकी मोटाई एक हजार योजन की है।

३५ सव्वेवि ण खुद्दा पाताला दस जोयणसताइ उव्वेहेण पण्णत्ता, मूले दसदसाइ जोयणाइं विक्खंभेण पण्णत्ता, वहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दस जोयण-सताइ विक्खभेण पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दसदसाइ जोयणाइ विक्ख-भेण पण्णत्ता ।

तेसि णं खुड्डापातालाण कुड्डा सव्व-वइरामया सव्वत्थ समा दस जोय-णाइ वाहल्लेण पण्णत्ता ।

सर्वेपि क्षुद्रा पाताल दश योजनशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता, मूले दशदशानि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता, वहु-मध्यदेशभागे एकप्रादेशिक्या श्रेण्या दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता, उपरि मुखमूले दशदशानि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता ।

तेषा क्षुद्रापातालाना कुड्यानि सर्व-वज्रमयानि सर्वत्र समानि दश योज-नानि वाहल्येन प्रज्ञप्तानि ।

३५ सभी छोटे पातालो की गहराई एक हजार योजन की है। मूल-भाग में उनकी चौडाई सौ योजन की है। मूलभाग की चौडाई से दोनो ओर एक प्रदेशात्मक श्रेणी की वृद्धि होते-होते वहुमध्यदेशभाग मे एक हजार योजन की चौडाई हो जाती है। ऊपर मुख भाग में उनकी चौडाई सौ योजन की है।

उन छोटे पातालों की समस्त भीतें वज्र-मय और सर्वत्र वरावर हैं। उनकी मोटाई दस योजन की है।

पव्वय-पदं

३६. धायइसडगा ण मदरा दस जोयणसयाइं उव्वेहेण, धरणीतले देसूणाइ दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, उवरिं दस जोयणसयाइ विक्खभेणं पण्णत्ता।

३७ पुक्खरवरदीवड्ढगा ण मंदरा दसजोयणसयाइं उव्वेहेण, एव चेव।

३८ सव्वेवि णं वट्टवेयड्ढपव्वता दस जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसठिता, दस जोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

पर्वत-पदम्

धातकीषण्डका मन्दरा दश योजनशतानि उद्वेधेन, धरणीतले देशोनानि दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

पुष्करवरद्वीपार्धका मन्दरा दश योजनशतानि उद्वेधेन, एव चैव।

सर्वेपि वृत्तवैताढ्यपर्वता दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समानि पल्यकसस्थिता, दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

पर्वत-पद

३६ धातकीषण्ड के मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरे हैं—भूगर्भ मे हैं। भूमितल पर उनकी चौडाई दस हजार योजन से कुछ कम है। वे ऊपर एक हजार योजन चौडे हैं।

३७ अर्द्धपुष्करवर द्वीप के मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरे हैं—भूगर्भ मे हैं। शेष पूर्ववत्।

३८ सभी वृत्तवैताढ्य पर्वतो की ऊपर की ऊचाई एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक हजार गाऊ की है। वे सर्वत्र सम हैं। उनका आकार पल्य जैसा है। उनकी चौडाई एक हजार योजन की है।

खेत्त-पदं

३९. जबुद्दीवे दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवस्से, पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

क्षेत्र-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे दश क्षेत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु।

क्षेत्र-पद

३९ जम्बूद्वीप द्वीप मे दस क्षेत्र हैं—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष, ७ पूर्वविदेह, ८ अपरविदेह, ९ देवकुरा, १० उत्तरकुरा।

पव्वय-पदं

४०. माणुसुत्तरे ण पव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खभेण पण्णत्ते।

४१ सव्वेवि ण अजण-पव्वता दस जोयणसयाइ उव्वेहेण, मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, उवरिं दस जोयणसताइ विक्खभेण पण्णत्ता।

४२ सव्वेवि ण दहिमुहपव्वता दस जोयणसताइ उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसठिता, दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता।

पर्वत-पदम्

मानुषोत्तरो पर्वतो मूले दश द्वाविंशति योजनशत विष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

सर्वेपि अञ्जन-पर्वता दश योजनशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दशयोजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

सर्वेपि दधिमुखपर्वता दश योजनशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समा पल्यकसस्थिता, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

पर्वत-पद

४० मानुषोत्तर पर्वत का मूल भाग १०२२ योजन चौडा है।

४१ सभी अजन पर्वतो की गहराई एक हजार योजन की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई दस हजार योजन की है। ऊपर के भाग मे उनकी चौडाई एक हजार योजन की है।

४२ सभी दधिमुख पर्वतो की गहराई एक हजार योजन की है। वे सर्वत्र सम हैं। उनका आकार पल्य जैसा है। वे दस हजार योजन चौडे हैं।

४३. सव्वेवि ण रतिकरपव्वता दस जोयणसताइ उड्ढ उच्चत्तेणं, दसगाउयसताइ उव्वेहेण, सव्वत्थ समा झल्लरिसठिता, दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता।

सर्वेपि रतिकरपर्वता दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दशगव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समा झल्लरिसंस्थिता, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

४३ सभी रतिकर पर्वतों की ऊपर की ऊंचाई एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक हजार गाऊ की है। वे सर्वत्र सम हैं। उनका आकार झालर जैसा है। उनकी चौडाई दस हजार योजन की है।

४४ रुयगवरे ण पव्वते दस जोयणसयाइ उव्वेहेण, मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, उवरिं दस जोयणसताइं विक्खंभेण पण्णत्ते।

रुचकवर पर्वत दश योजनशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

४४ रुचकवर पर्वत की गहराई एक हजार योजन की है। मूलभाग में उसकी चौडाई दस हजार योजन की है। ऊपर के भाग की चौडाई एक हजार योजन की है।

४५ एवं कुंडलवरेवि।

एव कुण्डलवरोऽपि।

४५ कुण्डलवर पर्वत रुचकवर पर्वत की भांति वक्तव्य है।

दवियाणुओग-पदं

४६ दसविहे दवियाणुओगे पण्णत्ते तं जहा—

दवियाणुओगे, माउयाणुओगे, एगट्ठियाणुओगे, करणाणुओगे, अप्पितणप्पिते, भाविताभाविते, बाहिराबाहिरे, सासतासासते, तहणाणे, अतहणाणे।

द्रव्यानुयोग-पदम्

दशविध द्रव्यानुयोग. प्रज्ञप्त, तद्यथा—

द्रव्यानुयोग, मातृकानुयोग, एकार्थिकानुयोग, करणानुयोग, अर्पितानर्पित, भाविताभावित, बाह्याबाह्य, शाश्वताशाश्वत, तथाज्ञान, अतथाज्ञानम्।

उत्पातपर्वत-पद

४६. द्रव्यानुयोग के दस प्रकार हैं[१८]—

१ द्रव्यानुयोग, २ मातृकानुयोग, ३ एकार्थिकानुयोग, ४ करणानुयोग, ५ अर्पितानर्पित, ६ भाविताभावित, ७ बाह्याबाह्य, ८ शाश्वताशाश्वत, ९ तथाज्ञान, १० अतथाज्ञान।

उप्पातपव्वय-पदं

४७ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिछिकूडे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खभेण पण्णत्ते।

उत्पातपर्वत-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तिगिंछिकूट उत्पातपर्वत मूले दश द्वाविंशति योजनशत विष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

उत्पातपर्वत-पद

४७ असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के तिगिंछिकूट नामक उत्पात पर्वत[१९] का मूलभाग १०२२ योजन चौडा है।

४८ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, दस गाउयसताइ उव्वेहेण, मूले दस जोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ते।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य सोमप्रभ उत्पातपर्वत दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्त।

४९ चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पातपव्वते एव चेव।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य यमस्य महाराजस्य यमप्रभ उत्पातपर्वत एव चैव।

५०. एव वरुणस्सवि।

एव वरुणस्यापि।

५१ एव वेसमणस्सवि।

एवं वैश्रमणस्यापि।

४८-५१ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के लोकपाल महाराज सोम, यम, वरुण और वैश्रमण के स्वनामख्यात—सोमप्रभ, यमप्रभ, वरुणप्रभ और वैश्रमणप्रभ—उत्पात पर्वतों की ऊपर से ऊंचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई एक-एक हजार योजन की है।

५२ बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेण पण्णत्ते।

बले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत मूले दश द्वाविंशति योजनशत विष्कम्भेण प्रज्ञप्त ।

५२. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत का मूलभाग १०२२ योजन चौड़ा है ।

५३ बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स एव चेव, जधा चमरस्स लोगपालाणं त चेव बलिस्सवि ।

बले वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य एव चैव, यथा चमरस्य लोकपालाना तच्चैव बलेरपि ।

५३ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल महाराज सोम, यम, वैश्रमण और वरुण के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतो की ऊपर से ऊचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग में उनकी चौडाई एक-एक हजार योजन की है ।

५४. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो धरणप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण, दस गाउयसताइं उव्वेहेण, मूले दस जोयणसताइ विक्खंभेण ।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य धरणप्रभ उत्पातपर्वत दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनशतानि विष्कम्भेण ।

५४ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के धरणप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊचाई एक हजार योजन की है। उसकी गहराई एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उसकी चौडाई एक हजार योजन की है ।

५५ धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो काल-वालस्स महारण्णो कालवालप्पभे उप्पातपव्वते जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेण एव चेव ।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालपालस्य महाराजस्य कालपालप्रभ उत्पातपर्वत योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन एव चैव ।

५६ एव जाव सखवालस्स ।

एव यावत् शङ्खपालस्य ।

५५, ५६ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के लोकपाल महाराज कालपाल, कोलपाल, शैलपाल और शखपाल के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतो की ऊपर से ऊचाई सौ-सौ योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई एक-एक हजार योजन की है ।

५७ एवं भूताणंदस्सवि ।

एव भूतानन्दस्यापि ।

५७ भूतेन्द्र भूतराज भूतानन्द के भूतानन्दप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊचाई एक हजार योजन की है। उसकी गहराई एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उसकी चौडाई एक हजार योजन की है।

५८. एव लोगपालाणवि से जहा धरणस्स ।

एव लोकपालानामपि तस्य यथा धरणस्य ।

५८ इसी प्रकार इसके लोकपाल महाराज कालपाल, कोलपाल, शखपाल, शैलपाल के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतों की ऊपर से ऊचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई एक-एक हजार योजन की है।

५९. एव जाव थणितकुमाराण सलोगपालाण भाणियव्व, सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिणामगा।

एवं यावत् स्तनितकुमाराणा सलोकपालाना भणितव्यम्, सर्वेपा उत्पातपर्वता- भणितव्या सदृग्नामका ।

५९. इसी प्रकार सुपर्णकुमार यावत् स्तनितकुमार देवो के इन्द्र तथा उनके लोकपालो के स्वनामवाले उत्पात पर्वतो का वर्णन धरण तथा उसके लोकपालो के उत्पात पर्वतो की भाति वक्तव्य है।

६० सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसहस्साइ उड्ढं उच्चत्तेण, दस गाउयसहस्साइं उव्वेहेण, मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ते।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य शक्रप्रभ उत्पातपर्वत दश योजनसहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिसहस्राणि उद्वेधेन, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्त ।

६० देवेन्द्र देवराज शक्र के शक्रप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊचाई दस हजार योजन की है। उसकी गहराई दस हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उसकी चौडाई दस हजार योजन की है।

६१. सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो। जधा सक्कस्स तधा सव्वेसिं लोगपालाण, सव्वेसिं च इदाण जाव अच्चुयत्ति। सव्वेसिं पमाणमेगं।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य। यथा शक्रस्य तथा सर्वेपा लोकपालानाम्, सर्वेपा च इन्द्राणा यावत् अच्युत- इति। सर्वेपा प्रमाणमेकम्।

६१ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के सोमप्रभ उत्पात पर्वत का वर्णन शक्र के उत्पात पर्वत की भाति वक्तव्य है। शेप सभी लोकपालो तथा अच्युत पर्यन्त सभी इन्द्रो के उत्पात पर्वतो का वर्णन शक्र की भाति वक्तव्य है। क्योकि उन सवका क्षेत्र-प्रमाण एक जैसा है।

ओगाहणा-पदं

६२. बायरवणस्सइकाइयाण उक्कोसेणं दस जोयणसयाइ सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

६३. जलचर-पंचिदियतिरिक्खजोणियाण उक्कोसेण दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

६४. उरपरिसप्प-थलचर-पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेण °दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।°

अवगाहना-पदम्

वादरवनस्पतिकायिकाना उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

जलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

उर परिसर्प-स्थलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

अवगाहना-पद

६२ वादर वनस्पतिकायिक जीवो के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

६३ तिर्यग्योनिक जलचर पञ्चेन्द्रिय जीवो के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

६४ तिर्यग्योनिक स्थलचर पञ्चेन्द्रिय उरपरिसर्पो के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

तित्थगर-पदं

६५ संभवाओ ण अरहातो अभिणदणे अरहा दसहिं सागरोवमकोडिसतसहस्सेहिं वीतिक्कतेहिं समुप्पण्णे।

तीर्थंकर-पदम्

सम्भवाद् अर्हत अभिनन्दन अर्हन् दशपु सागरोपमकोटिशतसहस्रेपु व्यतिक्रान्तेपु समुत्पन्न ।

तीर्थंकर-पद

६५ अर्हत् संभव के वाद दस लाख करोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर अर्हत् अभिनन्दन समुत्पन्न हुए।

अणंत-पदं

९६ दसविहे अणतए पण्णत्ते, त जहा—
णामाणतए, ठवणाणंतए,
दव्वाणंतए, गणणाणंतए,
पएसाणतए, एगतोणतए,
दुहतोणतए, देसवित्थाराणतए,
सव्ववित्थाराणतए, सासताणंतए।

अनन्त-पदम्

दशविध अनन्तक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामानन्तक, स्थापनानन्तक,
द्रव्यानन्तक, गणनानन्तक,
प्रदेशानन्तक, एकतोनन्तक,
द्विधानन्तक, देशविस्तारानन्तकं,
सर्वविस्तारानन्तकं, शाश्वतानन्तकम्।

अनन्त-पद

९६ अनन्तक[१०] के दस प्रकार हैं—
१ नाम अनन्तक—किसी वस्तु का अनत ऐसा नाम। २ स्थापना अनन्तक—किसी वस्तु मे अनन्तक की स्थापना [आरोपण]। ३ द्रव्य अनन्तक—परिणाम की दृष्टि से अनन्त। ४ गणना अनन्तक—सख्या की दृष्टि से अनन्त। ५ प्रदेश अनन्तक—अवयवों की दृष्टि से अनन्त। ६ एकत अनन्तक—एक ओर से अनन्त, जैसे—अतीत काल। ७ उभयत अनन्तक—दो ओर से अनन्त, जैसे—अतीत और अनागत काल। ८ देशविस्तार अनन्तक—प्रतर की दृष्टि मे अनन्त। ९ सर्वविस्तार अनन्तक—व्यापकता की दृष्टि से अनन्त। १० शाश्वत अनन्तक—शाश्वतता की दृष्टि से अनन्त।

पुव्ववत्थु-पदं

९७ उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता।
९८ अत्थिणत्थिप्पवायपुव्वस्स णं दस चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

उत्पादपूर्वस्य दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।
अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य दश चूला-वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

९७ उत्पाद पूर्व के वस्तु [अध्याय] दस हैं।
९८ अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के चूला-वस्तु दस हैं।

पडिसेवणा-पद

९९. दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ दप्प पमायऽणाभोगे,
आउरे आवतीसु य।
सकिते सहसक्कारे,
भयप्पओसा य वीमंसा॥

प्रतिषेवणा-पदम्

दशविधा प्रतिषेवणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ दर्प प्रमादोनाभोग,
आतुरे आपत्सु च।
शङ्किते सहसाकारे,
भय प्रदोपाच्च विमर्श॥

प्रतिषेवणा-पद

९९ प्रतिषेवणा के दस प्रकार हैं[११]—
१ दर्पप्रतिपेवणा—दर्प [उद्धतभाव] से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। २ प्रमादप्रतिपेवणा—कपाय, विकथा आदि से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ३ अनाभोग प्रतिषेवणा—विस्मृतिवश किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ४ आतुरप्रतिषेवणा—भूख-प्यास और रोग से अभिभूत होकर किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ५ आपत्प्रतिषेवणा—आपदा प्राप्त होने पर किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ६ शकितप्रतिपेवणा—एपणीय आहार आदि को भी शका सहित लेने से होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ७ सहसाकरणप्रतिपेवणा—अकस्मात् होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ८ भयप्रतिपेवणा—भयवश होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ९ प्रदोपप्रतिपेवणा—क्रोध आदि कपाय से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। १० विमर्शप्रतिपेवणा—शिष्यो की परीक्षा के लिए किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन।

आलोयणा-पदं

७० दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, तं जहा—

१ आकपइत्ता अणुमाणइत्ता,
जं दिट्ठं बायर च सुहुम वा।
छण्णं सद्दाउलगं,
बहुजण अव्वत्त तस्सेवी॥

आलोचना-पदम्

दश आलोचना दोषा: प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१ आकम्प्य अनुमन्य,
यद् दृष्ट बादर च सूक्ष्म वा।
छन्न शब्दाकुलकं,
बहुजन अव्यक्तं तत्सेवी॥

आलोचना-पद

७०. आलोचना के दस दोष हैं[१८]—

१ आकम्प्य—सेवा आदि के द्वारा आलोचना देने वाले की आराधना कर आलोचना करना। २ अनुमान्य—मैं दुर्बल हू, मुझे थोड़ा प्रायश्चित्त देना—इस प्रकार अनुनय कर आलोचना करना। ३ यद्दृष्ट—आचार्य आदि के द्वारा जो दोष देखा गया है—उसी की आलोचना करना। ४ बादर—केवल बड़े दोषों की आलोचना करना। ५ सूक्ष्म—केवल छोटे दोषो की आलोचना करना। ६ छन्न—आचार्य न सुन पाए वैसे आलोचना करना। ७ शब्दाकुल—जोर-जोर से बोलकर दूसरे अगीतार्थ साधु सुने वैसे आलोचना करना। ८ बहुजन—एक के पास आलोचना कर फिर उसी दोष की दूसरे के पास आलोचना करना। ९ अव्यक्त—अगीतार्थ के पास दोषो की आलोचना करना। १० तत्सेवी—आलोचना देने वाले जिन दोषो का स्वय सेवन करते हैं, उनके पास उन दोषो की आलोचना करना।

७१ दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोएत्तए, तं जहा—
जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे, विणयसंपण्णे, णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे, खंते, दंते, अमायी, अपच्छाणुतावी।

दशभि स्थानै सपन्न अनगार अर्हति आत्मदोष आलोचयितुम्, तद्यथा—
जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, विनयसम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न: दर्शनसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न, क्षान्त, दान्त, अमायी, अपश्चात्तापी।

७१ दस स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषो की आलोचना करने के लिए योग्य होता है[१९]—
१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न, ३ विनयसम्पन्न, ४ ज्ञानसम्पन्न, ५ दर्शनसम्पन्न, ६ चारित्रसम्पन्न, ७ क्षात, ८ दात, ९ अमायावी, १० अपश्चात्तापी।

७२. दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—
आयारवं, आहारवं, *ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए,° अवायदंसी, पियधम्मे, दढधम्मे।

दशभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति आलोचनां प्रतिदातुम्, तद्यथा—
आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, अपव्रीडकः, प्रकारी, अपरिस्रावी, निर्यापकः, अपायदर्शी, प्रियधर्मा, दृढधर्मा।

७२. दस स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है—

१. आचारवान्—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य—इन पांच आचारों से युक्त। २. आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोच्यमान समस्त अतिचारों को जानने वाला। ३. व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा धारणा और जीत—इन पांच व्यवहारों को जानने वाला। ४. अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति में, वह लाज या संकोच से मुक्त होकर सम्यक् आलोचना कर सके वैसा, साहस उत्पन्न करने वाला। ५. प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला। ६. अपरिस्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषों को दूसरों के सामने प्रगट न करने वाला। ७. निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके—ऐसा सहयोग देने वाला। ८. अपायदर्शी—प्रायश्चित्त-भङ्ग से तथा सम्यक् आलोचना न करने से उत्पन्न दोषों को बताने वाला। ९. प्रियधर्मा—जिसे धर्म प्रिय हो। १०. दृढधर्मा—जो आपत्काल में भी धर्म से विचलित न हो।

पायच्छित्त-पदं

७३. दसविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
आलोयणारिहे, *पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे,° अणवट्ठप्पारिहे, पारंचियारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

दशविधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्हम्, प्रतिक्रमणार्हम्, तदुभयार्हम्, विवेकार्हम्, व्युत्सर्गार्हम्, तपोर्हम्, छेदार्हम्, मूलार्हम्, अनवस्थाप्यार्हम्, पाराञ्चिकार्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

७३. प्रायश्चित्त दस प्रकार का होता है—

१. आलोचना-योग्य—गुरु के समक्ष अपने दोषों का निवेदन।
२. प्रतिक्रमण-योग्य—'मिथ्या मे दुष्कृतम्'—मेरा दुष्कृत निष्फल हो इसका भावनापूर्वक उच्चारण।
३. तदुभय-योग्य—आलोचना और प्रतिक्रमण।
४. विवेक-योग्य—अशुद्ध आहार आदि का उत्सर्ग।
५. व्युत्सर्ग-योग्य—कायोत्सर्ग।
६. तप योग्य—अनशन, ऊनोदरी आदि।
७. छेद-योग्य—दीक्षा पर्याय का छेदन।
८. मूल-योग्य—पुनर्दीक्षा।
९. अनवस्थाप्य-योग्य—तपस्यापूर्वक पुनर्दीक्षा।
१०. पारांचिक योग्य—भर्त्सना एवं अवहेलना पूर्वक पुनर्दीक्षा।

मिच्छत्त-पदं

७४. दसविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—
अधम्मे धम्मसण्णा,
धम्मे अधम्मसण्णा,
उमग्गे मग्गसण्णा,
मग्गे उम्मग्गसण्णा,
अजीवेसु जीवसण्णा,
जीवेसु अजीवसण्णा,
असाहुसु साहुसण्णा,
साहुसु असाहुसण्णा,
अमुत्तेसु मुत्तसण्णा,
मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

मिथ्यात्व-पदम्

दशविध मिथ्यात्वं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अधर्मे धर्मसंज्ञा,
धर्मे अधर्मसंज्ञा,
उन्मार्गे मार्गसंज्ञा,
मार्गे उन्मार्गसंज्ञा,
अजीवेषु जीवसंज्ञा,
जीवेषु अजीवसंज्ञा,
असाधुषु साधुसंज्ञा,
साधुषु असाधुसंज्ञा,
अमुक्तेषु मुक्तसंज्ञा,
मुक्तेषु अमुक्तसंज्ञा।

मिथ्यात्व-पद

७४ मिथ्यात्व के दस प्रकार हैं—
१ अधर्म में धर्म की संज्ञा।
२ धर्म में अधर्म की संज्ञा।
३ अमार्ग में मार्ग[११] की संज्ञा।
४ मार्ग में अमार्ग की संज्ञा।
५ अजीव में जीव की संज्ञा।
६ जीव में अजीव की संज्ञा।
७ असाधु में साधु की संज्ञा।
८ साधु में असाधु की संज्ञा।
९ अमुक्त में मुक्त की संज्ञा।
१० मुक्त में अमुक्त की संज्ञा।

तित्थगर-पद

७५ चंदप्पभे णं अरहा दस पुव्वसतसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे •बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

७६. धम्मे णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे°।

७७ णमी णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे •बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे°।

तीर्थंकर-पदम्

चन्द्रप्रभ अर्हन् दश पूर्वशतसहस्राणि सर्वायु पालयित्वा सिद्ध बुद्ध मुक्त अन्तकृत परिनिर्वृत सर्वदुःखप्रक्षीण।

धर्म अर्हन् दश वर्षशतसहस्राणि सर्वायु पालयित्वा सिद्ध बुद्ध मुक्त अन्तकृतः परिनिर्वृत सर्वदुःखप्रक्षीण।

नमि. अर्हन् दश वर्षसहस्राणि सर्वायु पालयित्वा सिद्ध बुद्ध मुक्त अन्तकृत परिनिर्वृत. सर्वदुःखप्रक्षीण।

तीर्थंकर-पद

७५ अर्हत् चन्द्रप्रभ दस लाख पूर्व का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखो से रहित हुए।

७६ अर्हत् धर्म दस लाख वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखो से रहित हुए।

७७ अर्हत् नमि दस हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखो से रहित हुए।

वासुदेव-पदं

७८. पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव-पदम्

पुरुषसिंह वासुदेव. दश वर्षशतसहस्राणि सर्वायु. पालयित्वा षष्ठ्या तमाया पृथिव्या नैरयिकतया उपपन्न।

वासुदेव-पद

७८ पुरुषसिंह नामक पाचवें वासुदेव दस लाख वर्ष का पूर्णायु पालकर 'तमा' नामक छठी पृथ्वी मे नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए।

तित्थगर-पदं

७९ णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउय पालइत्ता सिद्धे ॰बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्व-दुक्ख॰प्पहीणे।

तीर्थंकर-पदम्

नेमिः अर्हन् दश धनूषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन दश च वर्षशतानि सर्वायु पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृत' परिनिर्वृ त' सर्वदु खप्रक्षीणः।

तीर्थंकर-पद

७९ अर्हत् नेमि के शरीर की ऊचाई दस धनुष्य की थी। वे एक हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परि-निर्वृत और समस्त दुःखो से रहित हुए।

वासुदेव-पदं

८० कण्हे ण वासुदेवे दस धणूइ उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउय पालइत्ता तच्चाए वालु-यप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव-पद

कृष्ण वासुदेव दश धनूषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश च वर्षशतानि सर्वायु पालयित्वा तृतीयाया वालुकाप्रभाया पृथिव्या नैरयिकतया उपपन्न।

वासुदेव-पद

८० वासुदेव कृष्ण के शरीर की ऊचाई दस धनुष्य की थी। वे एक हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर 'वालुकाप्रभ' नामक तीसरी पृथ्वी मे नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए।

भवणवासि-पदं

८१ दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता, तं जहा—
असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

भवनवासि-पदम्

दशविधा भवनवासिन देवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
असुरकुमारा यावत् स्तनितकुमारा।

भवनवासि-पद

८१ भवनवासी देव दस प्रकार के हैं—
१ असुरकुमार, २ नागकुमार,
३ सुपर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार,
५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार,
७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार,
९ वायुकुमार, १० स्तनितकुमार।

८२. एएसि णं दसविधाणं भवणवासीण देवाण दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषा दशविधाना भवनवासिना देवाना दश चैत्यरुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

८२ इन भवनवासी देवो के दस चैत्य वृक्ष हैं—

संगहणी-गाहा

१ अस्सत्थ सत्तिवण्णे,
सामलि उंबर सिरीस दहिवण्णे।
वंजुल पलास वग्घा,
तते य कणियाररुक्खे॥

संग्रहणी-गाथा

१. अश्वत्थ सप्तपर्ण,
शाल्मल्युदुम्बर शिरीष. दधिपर्ण।
वजुल पलाश व्याघ्रा,
ततश्च कर्णिकाररुक्ष॥

१ अश्वत्थ—पीपल।
२ सप्तपर्ण—सात पत्तो वाला पलाश।
३ शाल्मली—सेमल।
४ उदुम्बर—गूलर।
५ शिरीष।
६ दधिपर्ण।
७ वजुल—अशोक।
८ पलाश—तीन पत्तो वाला पलाश।
९ व्याघ्र[*]—लाल एरण्ड।
१० कर्णिकार—कनेर।

सोक्ख-पदं

८३ दसविधे सोक्खे पण्णत्ते, त जहा—

१ आरोग्ग दीहमाउ,
अड्ढेज्ज काम भोग सतोसे।
अत्थि सुहभोग णिक्खम्म-
मेवतत्तो अणावाहे ॥

सौख्य-पदम्

दशविध सौख्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१. आरोग्य दीर्घमायु,
आढ्यत्व काम. भोग सतोप ।
अस्ति शुभभोग निष्क्रम
एव ततोऽनाबाधः ॥

सौख्य-पद

८३ सुख के दस प्रकार हैं"—

१ आरोग्य,
२ दीघ आयुष्य,
३ आढ्यता—धन की प्रचुरता।
४ काम—शब्द और रूप।
५ भोग—गध, रस और स्पर्श।
६ सन्तोष"—अल्पइच्छा।
७ अस्ति—जब-जब जो प्रयोजन होता है उसकी तब-तब पूर्ति हो जाना।
८ शुभभोग—रमणीय विषयो का भोग करना।
९ निष्क्रमण—प्रव्रज्या।
१० अनाबाध—जन्म, मृत्यु आदि की बाधाओं से रहित—मोक्ष-सुख।

उवघात-विसोहि-पद

८४ दसविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—

उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, •एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते,° परिहरणोवघाते, णाणोवघाते, दसणोवघाते, चरित्तोवघाते, अचियत्तोवघाते, सारक्खणोवघाते।

उपघात-विशोधि-पदम्

दशविध उपघात प्रज्ञप्त, तद्यथा—

उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात, एपणोपघात, परिकर्मोपघात, परिधानोपघात, ज्ञानोपघात, दर्शनोपघात, चरित्रोपघात, अप्रीत्युपघात, सरक्षणोपघात।

उपघात-विशोधि-पद

८४ उपघात के दस प्रकार हैं—

१ उद्गम [भिक्षा सम्बन्धी दोषो] से होने वाला चारित्र का उपघात।
२ उत्पाद [भिक्षा सम्बन्धी दोषो] से होने वाला चारित्र का उपघात।
३ एपणा [भिक्षा सम्बन्धी दोषो] से होने वाला चारित्र का उपघात।
४ परिकर्म [वस्त्र-पात्र आदि सवारने] से होने वाला चारित्र का उपघात।
५ परिहरण [अकल्प्य उपकरणो के उपभोग] से होने वाला चारित्र का उपघात।
६ प्रमाद आदि से होने वाला ज्ञान का अपघात।
७ शका आदि से होने वाला दर्शन का उपघात।
८ समितियो के भग से होने वाला चारित्र का उपघात।
९ अप्रीति उपघात—अप्रीति से होने वाला विनय आदि का उपघात।
१० संरक्षण उपघात—शरीर आदि में मूर्च्छा रखने से होने वाला परिग्रह-विरति का उपघात।

८५. दसविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही,
°एसणाविसोही, परिकम्मविसोही,
परिहरणविसोही, णाणविसोही,
दंसणविसोही, चरित्तविसोही,
अचियत्तविसोही,°
सारक्खणविसोही।

दशविधा विशोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उद्गमविशोधि, उत्पादनविशोधि,
एषणाविशोधि, परिकर्मविशोधि,
परिधानविशोधि, ज्ञानविशोधि,
दर्शनविशोधि, चरित्रविशोधि,
अप्रीतिविशोधि, संरक्षणविशोधि।

८५ विशोधि के दस प्रकार हैं—
१ उद्गम की विशोधि।
२ उत्पादन की विशोधि।
३ एषणा की विशोधि।
४ परिकर्म-विशोधि,
५ परिहरण-विशोधि।
६ ज्ञान की विशोधि।
७ दर्शन की विशोधि।
८ चारित्र की विशोधि।
९ अप्रीति की विशोधि—अप्रीति का निवारण।
१० संरक्षण-विशोधि—संयम के साधन-भूत उपकरण रखने से होने वाली विशोधि।

संकिलेस-असंकिलेस-पद

संक्लेश-असंक्लेश-पदम्

संक्लेश-असंक्लेश-पद

८६ दसविधे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—
उवहिसंकिलेसे, उवस्सयसंकिलेसे,
कसायसंकिलेसे, भत्तपाणसंकिलेसे,
मणसंकिलेसे, वइसंकिलेसे,
कायसंकिलेसे, णाणसंकिलेसे,
दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे।

दशविधः संक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपधिसंक्लेशः, उपाश्रयसंक्लेशः,
कषायसंक्लेशः, भक्तपानसंक्लेशः,
मनःसंक्लेशः, वाक्संक्लेशः,
कायसंक्लेशः, ज्ञानसंक्लेशः,
दर्शनसंक्लेशः, चरित्रसंक्लेशः।

८६ संक्लेश के दस प्रकार हैं—
१ उपधि-संक्लेश—उपधि विषयक असमाधि।
२ उपाश्रय-संक्लेश—स्थान विषयक असमाधि।
३ कषाय-संक्लेश—कषाय से होने वाली असमाधि।
४ भक्तपान-संक्लेश—भक्तपान से होने वाली असमाधि।
५ मन का संक्लेश।
६ वाणी के द्वारा होने वाला संक्लेश।
७ काया से होने वाला संक्लेश।
८ ज्ञान-संक्लेश—ज्ञान की अविशुद्धता।
९ दर्शन-संक्लेश—दर्शन की अविशुद्धता,
१० चारित्र-संक्लेश—चारित्र की अविशुद्धता।

८७ दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—
उवहिअसंकिलेसे,
°उवस्सयअसंकिलेसे,
कसायअसंकिलेसे,
भत्तपाणअसंकिलेसे,
मणअसंकिलेसे,
वइअसंकिलेसे,
कायअसंकिलेसे,
णाणअसंकिलेसे,
दंसणअसंकिलेसे,°
चरित्तअसंकिलेसे।

दशविधः असंक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपध्यसंक्लेशः, उपाश्रयासंक्लेशः,
कषायासंक्लेशः, भक्तपानासंक्लेशः,
मनोऽसंक्लेशः, वागसंक्लेशः,
कायासंक्लेशः, ज्ञानासंक्लेशः,
दर्शनासंक्लेशः, चरित्रासंक्लेशः।

८७ असंक्लेश के दस प्रकार हैं—
१ उपधि असंक्लेश,
२ उपाश्रय-असंक्लेश,
३ कषाय-असंक्लेश,
४ भक्तपान-असंक्लेश,
५ मन-असंक्लेश,
६ वचन-असंक्लेश,
७ काय-असंक्लेश,
८ ज्ञान-असंक्लेश,
९ दर्शन-असंक्लेश,
१० चारित्र-असंक्लेश।

वल-पद

८८. दसविधे बले पण्णत्ते, त जहा—
सोतिंदियवले, •चक्खिदियबले, घाणिंदियवले, जिब्भिदियवले,° फासिंदियवले, णाणवले, दसणवले, चरित्तवले, तववले, वीरियवले।

वल-पदम्

दशविध वल प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियवल, चक्षुरिन्द्रियवल, घ्राणेन्द्रियवल, जिह्वेन्द्रियवल, स्पर्शेन्द्रियवल, ज्ञानवल, दर्शनवल, चरित्रवल, तपोवल, वीर्यवल।

वल-पद

८८ वल [सामर्थ्य] के दस प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रियवल, २, चक्षुइन्द्रियवल, ३ घ्राणइन्द्रियवल, ४ जिह्वाइन्द्रियवल, ५ स्पर्शइन्द्रियवल, ६ ज्ञानवल, ७ दर्शनवल, ८ चारित्रवल, ९ तपोवल, १० वीर्यवल।

भासा-पद

८९. दसविहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा—

सगहणी-गाहा

१ जणवय सम्मय ठवणा,
णामे रूवे पडुच्चसच्चे य।
ववहार भाव जोगे,
दसमे ओवम्मसच्चे य॥

भाषा-पदम्

दशविध सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ जनपद सम्मत स्थापना,
नाम रूप प्रतीत्यसत्य च।
व्यवहार भाव योग,
दशम औपम्यसत्यञ्च॥

भाषा-पद

८९ सत्य के दस प्रकार हैं[11]—
१ जनपद सत्य, २ सम्मत सत्य, ३ स्थापना सत्य, ४ नाम सत्य, ५ रूप सत्य, ६ प्रतीत्य सत्य, ७ व्यवहार सत्य, ८ भाव सत्य, ९ योग सत्य, १० औपम्य सत्य।

९० दसविधे मोसे पण्णत्ते, त जहा—
१ कोधे माणे माया,
लोभे पिज्जे तहेव दोसे य।
हास भए अक्खाइय,
उवघात णिस्सिते दसमे॥

दशविध मृषा प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
१. क्रोधे माने मायाया,
लोभे प्रेयसि तथैव दोषे च।
हासे भये आख्यायिकाया,
उपघाते निश्रित दशमम्॥

९० मृषा-वचन के दस प्रकार हैं[12]—
१ क्रोध निश्रित, २ मान निश्रित, ३ माया निश्रित, ४ लोभ निश्रित, ५ प्रेयस् निश्रित, ६. द्वेष निश्रित, ७ हास्य निश्रित, ८ भय निश्रित, ९ आख्यायिका निश्रित, १० उपघात निश्रित।

९१ दसविधे सच्चामोसे पण्णत्ते, त जहा—
उप्पण्णमीसए, विगतमीसए, उप्पण्ण-विगतमीसए, जीवमीसए, अजीवमीसए, जीवाजीवमीसए, अणतमीसए, परित्तमीसए, अद्धामीसए, अद्धद्धामीसए।

दशविध सत्यमृपा प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पन्नमिश्रक, विगतमिश्रक, उत्पन्न-विगतमिश्रक, जीवमिश्रक, अजीवमिश्रक, जीवाजीवमिश्रक, अनन्तमिश्रक, परीतमिश्रक, अध्वामिश्रक, अध्वाऽध्वामिश्रकम्।

९१ सत्यामृषा [मिश्रवचन] के दस प्रकार हैं—
१ उत्पन्नमिश्रक, २ विगतमिश्रक, ३ उत्पन्नविगतमिश्रत, ४ जीवमिश्रक, ५ अजीवमिश्रक, ६ जीवअजीवमिश्रक, ७ अनन्तमिश्रक, ८. परीतमिश्रक, ९ अद्धा [काल] मिश्रक, १० अद्धा-अद्धा [कालाश] मिश्रक।

दिट्ठिवाय-पदं

९२. दिट्ठिवायस्स णं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
दिट्ठिवाएति वा, हेउवाएति वा,
भूयवाएति वा, तच्चावाएति वा,
सम्मावाएति वा, धम्मावाएति वा,
भासाविजएति वा, पुव्वगतेति वा,
अणुजोगगतेति वा,
सव्वपाणभूतजीवसत्तसुहावहेति वा।

दृष्टिवाद-पदम्

दृष्टिवादस्य दश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दृष्टिवाद इति वा, हेतुवाद इति वा,
भूतवाद इति वा, तत्त्ववाद इति वा,
सम्यग्वाद इति वा, धर्मवाद इति वा,
भाषाविचय इति वा, पूर्वगत इति वा,
अनुयोगगत इति वा,
सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह इति वा।

दृष्टिवाद-पद

९२ दृष्टिवाद के दस नाम हैं—
१ दृष्टिवाद, २ हेतुवाद,
३ भूतवाद, ४ तत्त्ववाद [तथ्यवाद],
५ सम्यग्वाद, ६ धर्मवाद,
७ भाषाविचय [भाषाविजय],
८ पूर्वगत, ९ अनुयोगगत,
१० सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह।

सत्थ-पदं

९३ दसविधे सत्थे पण्णत्ते, त जहा—

संगह-सिलोगो

१ सत्थमग्गी विस लोणं,
सिणेहो खारमविल।
दुप्पउत्तो मणो वाया,
काओ भावो य अविरती॥

शस्त्र-पदम्

दशविध शस्त्र प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

सग्रह-श्लोक

१ शस्त्र अग्नि विष लवण,
स्नेह क्षार आम्लम्।
दुष्प्रयुक्त मनो वाक्,
काय भावश्च अविरति॥

शस्त्र-पद

९३ शस्त्र[१३] के दस प्रकार हैं—
१ अग्नि, २ विष, ३ लवण, ४ स्नेह,
५ क्षार, ६ अम्ल, ७ दुष्प्रयुक्त मन,
८ दुष्प्रयुक्त वचन, ९ दुष्प्रयुक्त काया,
१० अविरति—
ये चारों [७, ८, ९, १०] भाव—आत्म-परिणामात्मक शस्त्र हैं।

दोस-पदं

९४. दसविहे दोसे पण्णत्ते, त जहा—
१. तज्जातदोसे मतिभंगदोसे,
पसत्थारदोसे परिहरणदोसे।
सलक्खण-क्कारण-हेउदोसे,
सक्कामण णिग्गह-वत्थुदोसे॥

दोष-पदम्

दशविध दोष प्रज्ञप्त, तद्यथा—
१ तज्जातदोष मतिभङ्गदोष,
प्रशास्तृदोष परिहरणदोष।
स्वलक्षण-कारण-हेतुदोष,
सक्रामण निग्रह-वस्तुदोष॥

दोष-पद

९४ दोष के दस प्रकार हैं[१४]—
१ तज्जातदोष—वादकाल मे प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर मौन हो जाना।
२ मतिभगदोष—तत्त्व की विस्मृति हो जाना।
३ प्रशास्तृदोष—सभ्य या सभानायक की ओर से होने वाला दोष।
४ परिहरणदोष—वादी द्वारा उपन्यस्त हेतु का छल या जाति से परिहार करना।
५ स्वलक्षणदोष—वस्तु के निर्दिष्ट लक्षण मे अव्याप्त, अतिव्याप्त, असम्भव दोष का होना।
६ कारणदोष—कारण सामग्री के एकाश को कारण मान लेना, पूर्ववर्ती होने मात्र से कारण मान लेना।
७ हेतुदोष—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकातिक आदि दोष।
८ सक्रमणदोष—प्रस्तुत प्रमेय को छोड़ अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना।
९ निग्रहदोष—छल आदि के द्वारा प्रति-वादी को निगृहीत करना।
१० वस्तुदोष—पक्ष के दोष।

विसेस-पद

९५ दसविधे विसेसे पण्णत्ते, त जहा—
१ वत्थु तज्जातदोसे य,
दोसे एगट्ठिएति य ।
कारेण य पडुप्पण्णे,
दोसे णिच्चेहिय अट्ठमे ॥
अत्तणा उवणीते य,
विसेसे ति य ते दस ॥

विशेष-पदम्

दशविध विशेष प्रज्ञप्त, तद्यथा—
१ वस्तु तज्जातदोषश्च,
दोष एकार्थिक इति च ।
कारण च प्रत्युत्पन्न,
दोषो नित्य अधिकोष्टम ॥
आत्मना उपनीत च,
विशेष इति च ते दश ॥

विशेष-पद

९५ विशेष के दस प्रकार हैं''—
१ वस्तुदोषविशेष—पक्ष-दोष के विशेष प्रकार।
२ तज्जातदोषविशेष—वादकाल मे प्रतिवादी से प्राप्त क्षेत्र के विशेष प्रकार।
३ दोषविशेष—अतिभग आदि दोषो के विशेष प्रकार।
४ एकार्थिकविशेष—पर्यायवाची शब्दो मे निरुर्यक्तिभेद से होने वाला अवैशिष्ट्य।
५ कारणविशेष—कारण के विशेष प्रकार।
६ प्रत्युत्पन्नदोषविशेष—वस्तु को क्षणिक मानने पर कृतनाश और आकृत योग नामक दोष।
७ नित्यदोषविशेष—वस्तु को सर्वथा नित्य मानने पर प्राप्त होने वाले दोष के विशेष प्रकार।
८ अधिकदोषविशेष—वादकाल मे दृष्टान्त, निगमन आदि का अतिरिक्त प्रयोग।
९ आत्मनाउपनीतविशेष—उदाहरणदोष का एक प्रकार।
१० विशेष—वस्तु का भेदात्मक धर्म।

सुद्धवायाणुओग-पद

९६ दसविधे सुद्धवायाणुओगे पण्णत्ते, त जहा—
चकारे, मकारे, पिकारे, सेयकारे, सायकारे, एगत्ते, पुधत्ते, सजूहे, सकामिते, भिण्णे।

शुद्धवागनुयोग-पदम्

दशविध शुद्धवागनुयोग प्रज्ञप्त, तद्यथा—
चकार, मकार, अपिकार, सेकार, सायकार एकत्व, पृथक्त्व, सयूथ, सक्रामित, भिन्नम्।

शुद्धवागनुयोग-पद

९६ शुद्धवचन [वाक्य-निरपेक्ष पदो] का अनुयोग दस प्रकार का होता है''—
१ चकार अनुयोग—चकार के अर्थ का विचार।
२ मकार अनुयोग—मकार का विचार।
३ पिकार अनुयोग—'अपि' के अर्थ का विचार।
४ सेयकार अनुयोग—'से' अथवा 'सेय' के अर्थ का विचार।
५ सायकार अनुयोग—'साय' आदि निपात शब्दो के अर्थ का विचार।
६ एकत्व अनुयोग—'एक वचन' का विचार।
७ पृथक्त्व अनुयोग—बहुवचन का विचार।
८ सयूथ अनुयोग—समास का विचार।
९ सक्रामित अनुयोग—विभक्ति और वचन के सक्रमण का विचार।
१० भिन्न अनुयोग—क्रमभेद, कालभेद आदि का विचार।

दाण-पद

९७ दसविहे दाणे पण्णत्ते, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१ अणुकंपा संगहे चेव,
भये कालुणिए ति य।
लज्जाए गारवेण च,
अहम्मे उण सत्तमे ॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते,
काहीति य कतति य ॥

दान-पदम्

दशविध दान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१ अनुकम्पा संग्रहश्चैव,
भय कारुणिक इति च।
लज्जया गौरवेण च,
अधर्म पुन सप्तम ॥
धर्मश्च अष्टम उक्त,
करिष्यतीति च कृतमिति च ॥

दान-पद

९७ दान के दस प्रकार हैं[10]—

१ अनुकम्पादान—करुणा से देना।
२ संग्रहदान—सहायता के लिए देना।
३ भयदान—भय से देना।
४ कारुण्यकदान—मृत के पीछे देना।
५ लज्जादान—लज्जावश देना।
६ गौरवदान—यश के लिए देना, गर्वपूवक देना।
७ अधर्मदान—हिंसा असत्य आदि पापों में आसक्त व्यक्ति को देना।
८ धर्मदान—संयमी को देना।
९ कृतमितिदान—अमुक ने सहयोग किया था, इसलिए उसे देना।
१० करिष्यतिदान—अमुक आगे सहयोग करेगा, इसलिए उसे देना।

गति-पद

९८ दसविधा गती पण्णत्ता, त जहा—
णिरयगती, णिरयविग्गहगती,
तिरियगती, तिरियविग्गहगती,
°मणुयगती, मणुयविग्गहगती,
देवगती, देवविग्गहगती,°
सिद्धिगती, सिद्धिविग्गहगती।

गति-पदम्

दशविधा गति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निरयगति, निरयविग्रहगति,
तिर्यग्गति, तिर्यग्विग्रहगति,
मनुजगति, मनुजविग्रहगति,
देवगति, देवविग्रहगति,
सिद्धिगति, सिद्धिविग्रहगति।

गति-पद

९८ गति के दस प्रकार हैं[11]—
१ नरकगति, २ नरकविग्रहगति,
३ तिर्यञ्चगति, ४ तिर्यञ्चविग्रहगति,
५ मनुष्यगति, ६ मनुष्यविग्रहगति,
७ देवगति, ८ देवविग्रहगति,
९ सिद्धिगति, १० सिद्धिविग्रहगति।

मुंड-पदं

९९ दस मुंडा पण्णत्ता, त जहा—
सोतिंदियमुंडे, °चक्खिदियमुंडे,
घाणिंदियमुंडे, जिब्भिदियमुंडे,°
फासिंदियमुंडे,° कोहमुंडे,
°माणमुंडे, मायामुंडे,° लोभमुंडे,
सिरमुंडे।

मुण्ड-पदम्

दश मुण्डा प्रज्ञप्ता तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड, चक्षुरिन्द्रियमुण्ड,
घ्राणेन्द्रियमुण्ड, जिह्वेन्द्रियमुण्ड,
स्पर्शेन्द्रियमुण्ड, क्रोधमुण्ड, मानमुण्ड,
मायामुण्ड, लोभमुण्ड, सिरोमुण्ड।

मुण्ड-पद

९९ मुण्ड के दस प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड—श्रोत्रेन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
२ चक्षुइन्द्रिय मुण्ड—चक्षुइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
३ घ्राणइन्द्रिय मुण्ड—घ्राणइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
४ जिह्वाइन्द्रिय मुण्ड—रसनइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
५ स्पर्शइन्द्रिय मुण्ड—स्पर्शनइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
६ क्रोध मुण्ड—क्रोध का अपनयन करने वाला। ७ मान मुण्ड—मान का अपनयन करने वाला। ८ माया मुण्ड—माया का अपनयन करने वाला। ९ लोभ मुण्ड—लोभ का अपनयन करने वाला। १० शिर मुण्ड—शिर के केशों का अपनयन करने वाला।

संखाण-पद

१०० दसविधे सखाणे पण्णत्ते, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ परिकम्म ववहारो,
रज्जू रासी कला-सवण्णे य।
जावतावति वग्गो,
घणो य तह वग्गवग्गोवि ।।
कप्पो य०।

१०१. दसविधे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—

१ अणागयमतिक्कत,
कोडीसहिय णियटित चेव।
सागारमणागार,
परिमाणकडणिरवसेस।
सकेयग चेव अद्धाए,
पच्चक्खाण दसविह तु ।।

सख्यान-पदम्

दशविध सख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ परिकर्म व्यवहार,
रज्जु राशि कला-सवर्णं च।
यावत्तावत् इति वर्ग,
घनश्च तथा वर्गवर्गोऽपि ।।
कल्पश्च०।

दशविध प्रत्याख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१ अनागतमतिक्रान्त,
कोटिसहित नियन्त्रित चैव।
सागारमनागार,
परिमाणकृत निरवशेषम् ।।
सकेतक चैव अध्वाया,
प्रत्याख्यान दशविध तु ।।

सख्यान-पद

१०० सख्यान के दस प्रकार है[1]—

१ परिकर्म, २ व्यवहार, ३ रज्जू, ४ राशि, ५ कलासवर्ण, ६ यावत्तावत्, ७ वर्ग, ८ घन, ९ वर्गवर्ग, १० कल्प।

१०१ प्रत्याख्यान के दस प्रकार है[2]—

१ अनागतप्रत्याख्यान—भविष्य मे करणीय तप को पहले करना।

२ अतिक्रान्तप्रत्याख्यान—वर्तमान मे करणीय तप नही किया जा सके, उसे भविष्य मे करना।

३ कोटिसहितप्रत्याख्यान—एक प्रत्याख्यान का अन्तिम दिन और दूसरे प्रत्याख्यान का प्रारम्भिक दिन हो, वह कोटिसहित प्रत्याख्यान है।

४ नियन्त्रितप्रत्याख्यान—नीरोग या ग्लान अवस्था मे भी 'मैं अमुक प्रकार का तप अमुक-अमुक दिन अवश्य करूगा'—इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना।

५ साकारप्रत्याख्यान—[अपवाद सहित] प्रत्याख्यान।

६ अनाकारप्रत्याख्यान—[अपवादरहित] प्रत्याख्यान।

७ परिमाणकृतप्रत्याख्यान—दत्ति, कवल, भिक्षा, गृह, द्रव्य आदि के परिमाण युक्त प्रत्याख्यान।

८ निरवशेषप्रत्याख्यान—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का सम्पूर्ण परित्याग युक्त प्रत्याख्यान।

९ सकेतप्रत्याख्यान—सकेत या चिह्न सहित किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

१० अध्वाप्रत्याख्यान—मुहूर्त्त, पौरुषी आदि कालमान के आधार पर किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

सामायारी-पदं

१०२ दसविहा सामायारी पण्णत्ता, त जहा—

सगह-सिलोगो

१. इच्छा मिच्छा तहक्कारो,
आवस्सिया य णिसीहिया।
आपुच्छणा य पडिपुच्छा,
छदणा य णिमतणा ॥
उवसंपया य काले,
सामायारी दसविहा उ।

सामाचारी-पदम्

दशविधा सामाचारी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१ इच्छा मिथ्या तथाकार,
आवश्यकी च नैषेधिकी।
आप्रच्छना च प्रतिपृच्छा,
छन्दना च निमन्त्रणा ॥
उवसपदा च काले,
सामाचारी दशविधा तु ॥

सामाचारी-पद

१०२ सामाचारी के दस पकार है[1]—

१ इच्छा—कार्य करने या कराने मे इच्छाकार का प्रयोग।
२ मिथ्या—भूल हो जाने पर स्वय उसकी आलोचना करना।
३ तथाकार—आचार्य के वचनो को स्वीकार करना।
४ आवश्यकी—उपाश्रय के वाहर जाते समय 'आवश्यक कार्य के लिए जाता हू' कहना।
५ नैषेधिकी—कार्य से निवृत्त होकर आए तव 'मैं निवृत्त हो चुका हू' कहना।
६ आपृच्छा—अपना कार्य करने की आचार्य से अनुमति लेना।
७ प्रतिपृच्छा—दूसरो का कार्य करने की आचार्य से अनुमति लेना।
८ छन्दना—आहार के लिए सार्धमिक साधुओ को आमन्त्रित करना।
९ निमन्त्रणा—'मैं आपके लिए आहार आदि लाऊँ'—इस प्रकार गुरु आदि को निमन्त्रित करना।
१० उवसपदा—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष प्राप्ति के लिए कुछ समय तक दूसरे आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करना।

महावीर-सुमिण-पद

१०३ समणे भगवं महावीरे छउमत्थ-कालियाए अतिमराइयसी इमे दस महासुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे, त जहा—

१. एगं च ण मह घोररूवदित्तधर तालपिसाय सुमिणे पराजित पासित्ता ण पडिवुद्धे।

२. एग च ण महं सुक्किलपक्खग पुसकोइलग सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे।

महावीर-स्वप्न-पदम्

श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ-कालिक्या अन्तिमरात्रिकाया इमान् दश महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तद्यथा—

१ एक च महान्त घोररूपदीप्तधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध।

२. एक च महान्त शुक्लपक्षक पुस्कोकिलक स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध।

महावीर-स्वप्न-पद

१०३ श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थकालीन अवस्था मे रात के अन्तिम भाग मे दस महास्वप्न देखकर प्रतिवुद्ध हुए[2]।

१ महान् घोररूप वाले दीप्तिमान् एक तालपिशाच [ताड जैसे लम्बे पिशाच] को स्वप्न मे पराजित हुआ देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

२ श्वेत पखों वाले एक वडे पुस्कोकिल को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

३ एग च ण मह चित्तविचित्त-पक्खग पुसकोइल सुविणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

३. एक च महान्त चित्रविचित्रपक्षक पुस्कोकिल स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

३ चित्रविचित्र पखो वाले एक वडे पुम्कोकिल को म्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

४ एग च ण मह दामदुग सव्व-रयणामय सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

४ एक च महद् दामद्विक सर्वरत्नमय स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

४ सर्व रत्नमय दो वडी मालाओ को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

५ एग च णं मह सेत गोवग्ग सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे।

५ एक च महान्त श्वेत गोवर्ग स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

५ एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

६ एग च ण मह पउमसर सव्वओ समता कुसुमित सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

६ एक च महत् पद्मसर. सर्वत समन्तात् कुसुमित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

६ चहु ओर कुसुमित एक वडे पद्मसरोवर को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

७ एग च ण मह सागर उम्मी-वीची-सहस्सकलित भुयाहि तिण्ण सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

७ एक च महान्त सागर उर्म्मि-वीचि-सहस्रकलित भुजाभ्या तीर्ण स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

७ स्वप्न मे हजारो ऊर्मियो और वीचियो से परिपूर्ण एक महासागर को भुजाओ से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

८ एग च णं मह दिणयर तेयसा जलत सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

८ एक च महान्त दिनकर तेजसा ज्वलन्त स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

८ तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

९ एग च ण मह हरि-वेरुलिय-वण्णाभेण णियएणमतेणं माणु-सुत्तर पव्वत सव्वतो समता आवेढिय परिवेढिय सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

९ एक च महान्त हरि-वैडूर्य-वर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुषोत्तर पर्वत सर्वत समन्तात् आवेष्टित परिवेष्टित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्ध ।

९ म्वप्न मे भूरे व नीले वर्ण वाली अपनी आतो से मानुषोत्तर पर्वत को चारो ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देख-कर प्रतिवुद्ध हुए।

१० एगं च ण मह मदरे पव्वते मदरचूलियाए उवरिं सीहासण-वरगयमत्ताण सुमिणे पासित्ता ण पडिवुद्धे।

१० एक च महान्त मदरे पर्वते मन्दर-चूलिकाया उपरि सिंहासनवरगत आत्मन स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध ।

१० स्वप्न मे महान् मन्दर पर्वत की मन्दर-चूलिका पर अवस्थित सिंहासन के ऊपर अपने आपको वैठे हुए देखकर प्रतिवुद्ध हुए।

१ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह घोररूवदित्तधर तालपिसाय सुमिणे पराजितं पासित्ता ण पडिवुद्धे, तण्ण समणेण भगवता महावीरेण मोहणिज्जे कम्मे मूलओ उग्घाइते।

१ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त घोररूपदीप्तधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमणेन भगवता महावीरेण मोहनीय कर्म मूलत उद्घातितम् ।

१ श्रमण भगवान् महावीर महान् घोर-रूप वाले दीप्तिमान् एक तालपिशाच [ताड जैसे लम्वे पिशाच] को स्वप्न मे पराजित हुआ देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने मोहनीय कर्म को मूल से उखाड फेंका।

२ जण्णं समणे भगव महावीरे एग च ण मह सुक्किलपक्खगं °पुसकोइलगसुमिणे पासित्ता ण° पडिबुद्धे, तण्ण समणे भगव महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

२ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त शुक्लपक्षक पुस्कोकिलक स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमण भगवान् महावीर शुक्लध्यानोपगत विहरति।

२ श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पखो वाले एक बडे पुस्कोकिल को देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् शुक्लध्यान को प्राप्त हुए।

३ जण्ण समणे भगवं महावीरे एग च ण मह चित्तविचित्तपक्खग °पुसकोइलग सुविणे पासित्ता ण° पडिबुद्धे, तण्ण समणे भगव महावीरे ससमय-परसमयिय चित्तविचित्त दुवालसग गणिपिडग आघवेति पण्णवेति परुवेति दसेति णिदसेति उवदसेति, त जहा—

आयार, °सूयगड, ठाण, समवाय, विवा [आ ?] हपण्णत्ति, णायधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसुय,° दिट्ठिवायं।

३ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त चित्रविचित्रपक्षक पुस्कोकिल स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमण भगवान् महावीर स्वसमय-परसामयिक चित्रविचित्रक द्वादशाङ्ग गणिपिटक आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति, उपदर्शयति तद्यथा—

आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरणानि, विपाकसूत्र, दृष्टिवादम्।

३ श्रमण भगवान् महावीर चित्र-विचित्र पखो वाले एक वडे पुस्कोकिल को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने स्व-समय और पर-समय का निरूपण करने वाले, द्वादशाग गणिपिटक का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण, किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया।

आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, विवाहप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद॥

४ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह दामदुगं सव्वरयणा°मय सुमिणे पासित्ता ण पडिबुद्धे, तण्ण समणे भगवे महावीरे दुविह धम्म पण्णवेति, त जहा—

अगारधम्म च, अणगारधम्म च।

४. यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महद् दामद्विक सर्वरत्नमय स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमण भगवान् महावीर द्विविध धर्म प्रज्ञापयति, तद्यथा—

अगारधर्मञ्च, अनगारधर्मञ्च।

४ श्रमण भगवान् महावीर सर्वरत्नमय दो वडी मालाओ को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए उसके फलस्वरूप भगवान् ने अगारधर्म [गृहस्थ-धर्म] और अनगार-धर्म [साधु-धर्म]—इन दो धर्मों की प्ररूपणा की।

५ जण्ण समणे भगवं महावीरे एग च ण मह सेत गोवग्ग सुमिणे °पासित्ता ण° पडिबुद्धे, तण्ण समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वणाइण्णे सघे, तं जहा—

समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

५ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त श्वेत गोवर्ग स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमणस्य भगवत महावीरस्य चातुर्वर्णाकीर्ण सघ, तद्यथा—

श्रमणा, श्रमण्य, श्रावका, श्राविका।

५ श्रमण भगवान् महावीर एक महान् श्वेत गोवग को स्वप्न में देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् के चतुर्वर्णात्मक—श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका—सघ हुआ।

६. जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह पउमसर °सव्वओ समता कुसुमित सुमिणे पासित्ता ण° पडिबुद्धे, तण्ण समणे भगव महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, त जहा—
भवणवासी, वाणमतरे, जोइसिए, वेमाणिए।

६ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महत् पद्मसर सर्वत समन्तात् कुसुमित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमण भगवान् महावीर चतुर्विधान् देवान् प्रज्ञापयति, तद्यथा—
भवनवासिन, वानमन्तरान्, ज्योतिष्कान्, वैमानिकान्।

६ श्रमण भगवान् महावीर चहु ओर कुसुमित एक बडे पद्मसरोवर को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने भवनपति, वानमन्तर, ज्योतिष और वैमानिक इन चार प्रकार के देवो की प्ररूपणा की।

७ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह सागर उम्मी-वीची-°सहस्सकलित भुयाहि तिण्ण सुमिणे पासित्ता ण° पडिबुद्धे, त ण समणेण भगवता महावीरेण अणादिए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरते ससारकतारे तिण्णे।

७ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त सागर उर्म्मि-वीचि-सहस्र-कलित भुजाभ्या तीर्णं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमणेन भगवता महावीरेण अनादिक अनवदग्र दीर्घाद्ध्वान चातुरन्त ससारकान्तार तीर्णम्।

७ श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न मे हजारो ऊर्मियो और वीचियो से परिपूर्ण एक महासागर को भुजाओ से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने अनादि, अनन्त, प्रलम्ब और चार अन्तवाले ससार रूपी कानन को पार किया।

८ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह दिणयरं °तेयसा जलत सुमिणे पासित्ता ण° पडिवुद्धे, तण्ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अणते अणुत्तरे °णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर-णाणदसणे° समुप्पण्णे।

८ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त दिनकर तेजसा ज्वलन्त स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमणस्य भगवत महावीरस्य अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्।

८ श्रमण भगवान् महावीर तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न मे देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुए।

९ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह हरि-वेरुलिय-°वण्णाभेण णियएणमतेण माणुसुत्तर पव्वत सव्वतो समता आवेढिय परिवेढिय सुमिणे पासित्ता ण° पडिवुद्धे, तण्ण समणस्स भगवतो महावीरस्स सदेवमणुयासुरे लोगे उराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगा परिगुव्वति—इति खलु समणे भगव महावीरे, इति खलु समणे भगव महावीरे।

९ यत् श्रमण भगवान् महावीर एक च महान्त हरिवैडूर्यवर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुपोत्तर पर्वत सर्वत समन्तात् आवेष्टित परिवेष्टित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिवुद्ध, तत् श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सदेवमनुजासुरे लोके उदारा कीर्ति-वर्ण-शब्द-श्लोका 'परिगुव्वति' (परिगुप्यन्ति)—इति खलु श्रमण भगवान् महावीर; इति खलु श्रमण भगवान् महावीर।

९ श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न मे भूरे व नीले वर्ण वाली अपनी आतो से मानुपोत्तर पर्वत को चारो ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देखकर प्रतिवुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् की देव, मनुष्य और असुरो के लोक मे प्रधान कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा व्याप्त हुई। 'श्रमण भगवान् महावीर ऐसे है, श्रमण भगवान महावीर ऐसे हैं'—ये शब्द सर्वत्र फैल गए।

१०. जण्ण समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदर-चूलियाए उवरिं •सीहासणवरगय-मत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगते केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेति पण्णवेति •परूवेति दसेति णिदंसेति° उवदंसेति।

१० यत् श्रमण भगवान् महावीर एकं च महान्तं मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकाया उपरि सिंहासनवरगतमात्मानां स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्ध, तत् श्रमण भगवान् महावीर सदेवमनुजासुराया परिषदि मध्यगतं केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति उपदर्शयति।

१० श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न मे महान् मन्दर पर्वत की मन्दरचूलिका पर अव-स्थित सिंहासन के ऊपर अपने आपको बैठे हुए देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फल-स्वरूप भगवान् ने देव, मनुष्य और असुर की परिषद् के बीच मे केवलीप्रज्ञप्त धर्म का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया।

रुचि-पद

१०४ दसविधे सरागसम्मद्दसणे पण्णत्ते, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ णिसग्गुवएसरुई,
आणारुई सुत्तबीयरुइ मेव।
अभिगम-वित्थाररुई,
किरिया-संखेव-धम्मरुई॥

रुचि-पदम्

दशविधं सरागसम्यग्दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ निसर्गोपदेशरुचि,
आज्ञारुचि सूत्रबीजरुचिरेव।
अभिगम-विस्ताररुचि,
क्रिया-संक्षेप-धर्मरुचि॥

रुचि-पद

१०४ सराग-सम्यग्दर्शन के दस प्रकार है—

१ निसर्ग रुचि—नैसर्गिक सम्यग्दर्शन।
२ उपदेश रुचि—उपदेशजनित सम्यग्-दर्शन।
३ आज्ञा रुचि—वीतराग द्वारा प्रतिपा-दित सिद्धान्त से उत्पन्न सम्यग्दर्शन।
४ सूत्र रुचि—सूत्र ग्रन्थो के अध्ययन से उत्पन्न सम्यग्दर्शन।
५ बीज रुचि—सत्य के एक अंश के सहारे अनेक अंशो मे फैलने वाला सम्यग्-दर्शन।
६ अभिगम रुचि—विशाल ज्ञानराशि के आशय को समझने पर प्राप्त होने वाला सम्यग्दर्शन।
७ विस्तार रुचि—प्रमाण और नय की विविध भंगियो के बोध से उत्पन्न सम्यग्-दर्शन।
८ क्रिया रुचि—क्रियाविषयक सम्यग्-दर्शन।
९ संक्षेप रुचि—मिथ्या आग्रह के अभाव मे स्वल्प ज्ञान जनित सम्यग्दर्शन।
१० धर्म रुचि—धर्म विषयक सम्यग्दर्शन।

सण्णा-पद

१०५. दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

आहारसण्णा, •भयसण्णा,
मेहुणसण्णा,° परिग्गहसण्णा,
कोहसण्णा, •माणसण्णा
मायासण्णा,° लोभसण्णा,
लोगसण्णा, ओहसण्णा।

संज्ञा-पदम्

दश संज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा,
मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा,
क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा,
मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा,
लोकसंज्ञा, ओघसंज्ञा।

संज्ञा-पद

१०५ संज्ञा के दस प्रकार है—

१ आहारसंज्ञा, २ भयसंज्ञा,
३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रहसंज्ञा,
५ क्रोधसंज्ञा, ६ मानसंज्ञा,
७ मायासंज्ञा, ८ लोभसंज्ञा,
९ लोकसंज्ञा, १० ओघसंज्ञा।

१०६ णेरइयाण दस सण्णाओ एव चेव।
१०७ एवं णिरतर जाव वेमाणियाण।

नैरयिकाणा दश सज्ञा एव चैव।
एव निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।

१०६, १०७ नैरयिकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवों मे दस संज्ञाएं होती है।

वेयणा-पद

१०८ णेरइया ण दसविध वेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—
सीत, उसिणं, खुध, पिवास, कडु, परज्झ, भय, सोग, जर, वाहिं।

वेदना-पदम्

नैरयिका दशविधा वेदना प्रत्यनुभवन्त विहरन्ति, तद्यथा—
शीता उष्णा, क्षुध, पिपासा, कण्डू, परज्झ (परतन्त्रता), भय, शोक, जरा, व्याधिम्।

वेदना-पद

१०८ नैरयिक दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं—
१. शीत, २ उष्ण, ३ क्षुधा, ४ पिपासा, ५ खुजलाना, ६. परतन्त्रता, ७ भय, ८. शोक, ९ जरा, १० व्याधि।

छउमत्थ-केवलि-पद

१०९ दस ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण ण जाणति ण पासति, त जहा—
धम्मत्थिकाय, °अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय,
जीव असरीरपडिवद्ध,
परमाणुपोग्गल, सद्द, गध,° वात,
अय जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति,
अय सव्वदुक्खाणमत करेस्सति वा ण वा करेस्सति।
एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा °जिणे केवली सव्वभावेण जाणइ पासइ—
धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय,
जीव असरीरपडिवद्ध,
परमाणुपोग्गल, सद्द, गध, वात,
अय जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति,°
अय सव्वदुक्खाणमत करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

दश स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिवद्ध,
परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वात,
अय जिनो भविष्यति वा न वा भविष्यति,
अय सर्वदु खाना अन्त करिष्यति वा न वा करिष्यति।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अर्हन् जिन केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिवद्ध,
परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वात,
अयजिन भविष्यति वा न वा भविष्यति,
अय सर्वदु खाना अन्त करिष्यति वा न वा करिष्यति।

छद्मस्थ-केवलि-पद

१०९ दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७ गध, ८ वायु, ९ यह जिन होगा या नहीं? १० यह सभी दुःखो का अन्त करेगा या नहीं?

विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत्, जिन, केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते, देखते हैं—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७ गध, ८ वायु, ९ यह जिन होगा या नहीं? १० यह सभी दु खो का अन्त करेगा या नही?

दसा-पदं

११०. दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कम्मविवागदसाओ,
उवासगदसाओ,
अंतगडदसाओ,
अणुत्तरोववाइयदसाओ,
आयारदसाओ,
पण्हावागरणदसाओ,
बंधदसाओ, दोगिद्धिदसाओ,
दीहदसाओ, संखेवियदसाओ।

दशा-पदम्

दश दशा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कर्मविपाकदशा, उपसाकदशा,
अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा,
आचारदशा, प्रश्नव्याकरणदशा,
बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा,
संक्षेपिकदशा।

दशा-पद

११० दशा—दस अध्ययन वाले आगम दस हैं[४]—
१ कर्मविपाकदशा, २ उपासकदशा,
३ अन्तकृतदशा,
४ अनुत्तरोपपातिकदशा,
५ आचारदशा—दशाश्रुतस्कन्ध,
६ प्रश्नव्याकरणदशा, ७ बंधदशा,
८ द्विगृद्धिदशा, ९ दीर्घदशा,
१० संक्षेपिकदशा।

१११ कम्मविवागदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-सिलोगो

१ मियापुत्ते य गोत्तासे,
अंडे सगडेतियावरे।
माहणे णंदिसेणे,
सोरिए य उदुंबरे॥
सहसुद्दाहे आमलए,
कुमारे लेच्छई इति॥

कर्मविपाकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१ मृगापुत्र च गोत्रास,
अण्ड शकटइति चापर।
माहन नन्दिषेण,
शौरिकश्च उदुम्बर.।
सहसोद्दाह आमरक,
कुमार. लिच्छवीति॥

१११ कर्मविपाकदशा के अध्ययन दस हैं[५]—
१ मृगापुत्र, २ गोत्रास, ३ अण्ड,
४ शकट, ५ ब्राह्मण, ६ नन्दिषेण,
७ शौरिक, ८ उदुम्वर,
९ सहस्रोद्दाह आमरक,
१० कुमारलिच्छवी।

११२ उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१ आणंदे कामदेवे आ,
गाहावतिचूलणीपिता।
सुरादेवे चुल्लसतए,
गाहावतिकुंडकोलिए॥
सद्दालपुत्ते महासतए,
णंदिणीपिया लेइयापिता॥

उपासकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ आनन्द कामदेवश्च,
गृहपतिचूलनीपिता॥
सुरादेव. क्षुल्लशतक,
गृहपतिकुण्डकोलिक।
सद्दालपुत्र महाशतक,
नन्दिनीपिता लेईयकापिता॥

११२ उपासकदशा के अध्ययन दस हैं[६]—
१ आनन्द, २ कामदेव,
३ गृहपति चूलिनीपिता,
४ सुरादेव, ५ चुल्लशतक,
६ गृहपति कुण्डकोलिक,
७ सद्दालपुत्त, ८ महाशतक,
९ नन्दिनीपिता, १०, लेयिकापिता।

११३ अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१ णमि मातंगे सोमिले,
रामगुत्ते सुदंसणे चेव।
जमाली य भगाली य,
किंकसे चिल्लाए ति य॥
फाले अंबडपुत्ते य,
एमेते दस आहिता॥

अन्तकृतदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ नमि मातङ्ग सोमिल,
रामगुप्त सुदर्शनश्चैव।
जमालिश्च भगालिश्च,
किंकष चिल्वक इति च॥
पाल अम्मडपुत्रश्च,
एवमेते दश आहृता॥

११३ अन्तकृतदशा के अध्ययन दस हैं[७]—
१ नमि, २ मातंग, ३ सोमिल,
४ रामगुप्त, ५ सुदर्शन, ६ जमाली,
७ भगाली, ८ किंकष, ९ चिल्वक,
१० पाल अम्बडपुत्र।

११४ अणुत्तरोववातियदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. इसिदासे य धण्णे य,
सुणक्खत्ते कातिए ति य।
सठाणे सालिभद्दे य,
आणंदे तेतली ति य॥
दसण्णभद्दे अतिमुत्ते,
एमेते दस आहिया॥

अनुत्तरोपपातिकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ ऋषिदासश्च धन्यश्च,
सुनक्षत्रश्च कार्तिक इति च।
सस्थान. शालिभद्रश्च,
आनन्द तेतलि इति च॥
दशार्णभद्र अतिमुक्त,
एवमेते दश आहृता।

११४ अनुत्तरोपपातिकदशा के अध्ययन दस हैं—
१. ऋषिदास, २. धन्य, ३ सुनक्षत्र, ४ कार्तिक, ५. सस्थान, ६ शालिभद्र, ७ आनन्द, ८ तेतली, ९ दशार्णभद्र, १० अतिमुक्त।

११५ आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
वीसं असमाहिट्ठाणा,
एगवीसं सबला,
तेत्तीसं आसायणाओ,
अट्ठविहा गणिसंपया,
दस चित्तसमाहिट्ठाणा,
एगारस उवासगपडिमाओ,
बारस भिक्खुपडिमाओ,
पज्जोसवणाकप्पो,
तीसं मोहणिज्जट्ठाणा,
आजाइट्ठाणं।

आचारदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विंशति असमाधिस्थानानि,
एकविंशति शबला,
त्रयस्त्रिंशदाशातना,
अष्टविधा गणिसंपद्,
दश चित्तसमाधिस्थानानि,
एकादश उपासकप्रतिमा,
द्वादश भिक्षुप्रतिमा,
पर्युषणाकल्प,
त्रिंशन्मोहनीयस्थानानि,
आजातिस्थानम्।

११५ आचारदशा [दशाश्रुतस्कन्ध] के अध्ययन दस हैं—
१ बीस असमाधिस्थान,
२ इक्कीस शबलदोष,
३ तेतीस आशातना,
४ अष्टविध गणिसम्पदा,
५ दस चित्त-समाधिस्थान,
६ ग्यारह उपासकप्रतिमा,
७ बारह भिक्षुप्रतिमा,
८ पर्युषणाकल्प,
९ तीस मोहनीयस्थान,
१० आजातिस्थान।

११६ पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
उवमा, संखा,
इसिभासियाइं,
आयरियभासियाइं,
महावीरभासिआइं,
खोमगपसिणाइं,
कोमलपसिणाइं,
अद्दागपसिणाइं,
अंगुट्ठपसिणाइं,
बाहुपसिणाइं।

प्रश्नव्याकरणदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उपमा, संख्या,
ऋषिभाषितानि,
आचार्यभाषितानि,
महावीरभाषितानि,
क्षौमकप्रश्ना,
कोमलप्रश्ना,
अद्दाग (आदर्श) प्रश्ना,
अंगुष्ठप्रश्ना
बाहुप्रश्ना।

११६ प्रश्नव्याकरणदशा के अध्ययन दस हैं—
१ उपमा, २ संख्या, ३ ऋषिभाषित, ४ आचार्यभाषित, ५ महावीरभाषित, ६ क्षौमकप्रश्न, ७ कोमलप्रश्न, ८ आदर्शप्रश्न, ९ अंगुष्ठप्रश्न, १० बाहुप्रश्न।

११७ बंधदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
बधे य मोक्खे य देवड्ढि,
दसारमंडलेवि य।
आयरियविप्पडिवत्ती,
उवज्झायविप्पडिवत्ती,
भावणा, विमुत्ती, सातो, कम्मे।

बन्धदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बन्धश्च मोक्षश्च देवर्द्धि,
दशारमण्डलोऽपि च।
आचार्यविप्रतिपत्ति,
उपाध्यायविप्रतिपत्ति,
भावना, विमुक्ति, सात, कर्म।

११७ बंधदशा के अध्ययन दस हैं[52]—
१ बंध, २ मोक्ष, ३ देवर्द्धि, ४ दशामण्डल, ५ आचार्यविप्रतिपत्ति, ६ उपाध्यायविप्रतिपत्ति, ७ भावना, ८ विमुक्ति, ९ सात, १० कर्म।

११८ दोगेद्धिदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
वाए, विवाए, उववाते, सुखेत्ते,
कसिणे, बायालीस सुमिणा,
तीस महासुमिणा,
बावत्तरिं सव्वसुमिणा,
हारे, रामगुत्ते, य,
एमेते दस आहिता।

द्विगृद्धिदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाद, विवाद, उपपात, सुक्षेत्र,
कृत्स्न, द्वाचत्वारिंशत् स्वप्ना,
त्रिंशत् महास्वप्ना,
द्विसप्ताति सर्वस्वप्ना हार, रामगुप्तश्च,
एवमेते दश आहृता।

११८ द्विगृद्धिदशा के अध्ययन दस हैं[53]—
१ वाद, २ विवाद, ३ उपपात, ४ सुक्षेत्र, ५ कृत्स्न, ६ बयालीस स्वप्न, ७ तीस महास्वप्न, ८ बहत्तर सर्वस्वप्न, ९ हार, १० रामगुप्त।

११९ दीहदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. चंदे सूरे य सुक्के य,
सिरिदेवी पभावती।
दीवसमुद्दोववत्ती,
बहूपुत्ती मंदरेति य॥
थेरे सभूतविजए य,
थेरे पम्ह ऊसासणीसासे॥

दीर्घदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ चन्द्र सूरश्च शुक्रश्च,
श्रीदेवी प्रभावती।
द्वीपसमुद्रोपपत्ति,
बहुपुत्री मन्दरा इति च॥
स्थविर सभूतविजयश्च,
स्थविर पक्ष्मा उच्छ्वासनिश्वास॥

११९ दीर्घदशा के अध्ययन दस हैं[54]—
१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ श्रीदेवी, ५ प्रभावती, ६ द्वीपसमुद्रोपपत्ति, ७ बहुपुत्री मन्दरा, ८ स्थविर सम्भूतविजय, ९ स्थविर पक्ष्म, १० उच्छ्वास-निश्वास।

१२० सखेवियदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—
खुड्डिया विमाणपविभत्ती,
महल्लिया विमाणपविभत्ती,
अगचूलिया, वग्गचूलिया,
विवाहचूलिया, अरुणोववाते,
वरुणोववाते, गरुलोववाते,
वेलधरोववाते, वेसमणोववाते।

सक्षेपिकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति,
महती विमानप्रविभक्ति, अङ्गचूलिका,
वर्गचूलिका, विवाहचूलिका,
अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात,
वेलन्धरोपपात, वैश्रमणोपपात॥

१२० सक्षेपिकदशा के अध्ययन दस हैं[55]—
१ क्षुल्लिका विमानप्रविभक्ति,
२ महती विमानप्रविभक्ति,
३ अग चूलिका—आचार आदि अगो की चूलिका,
४ वर्गचूलिका—अन्तकृतदशा की चूलिका,
५ विवाहचूलिका—भगवती की चूलिका,
६ अरुणोपपात, ७ वरुणोपपात, ८ गरुडोपपात, ९ वेलधरोपपात, १० वैश्रमणोपपात।

कालचक्क-पद

१२१ दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीए।

कालचक्र-पदम्

दश सागरोपमकोटिकोटी काल अवसर्पिण्या।

कालचक्र-पद

१२१ अवसर्पिणी काल दस कोटि-कोटि सागरोपम का होता है।

१२२ दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणीए।

दश सागरोपमकोटिकोटी काल उत्सर्पिण्या।

१२२ उत्सर्पिणी काल दस कोटि-कोटि सागरोपम का होता है।

अणतर-परपर-उववण्णादि-पद

१२३ दसविधा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—
अणतरोववण्णा, परपरोववण्णा,
अणतरावगाढा, परपरावगाढा,
अणतराहारगा, परपराहारगा,
अणतरपज्जत्ता, परपरपज्जत्ता,
चरिमा, अचरिमा।
एव—णिरतर जाव वेमाणिया।

अनन्तर-परम्पर-उपपन्नादि-पदम्

दशविधा नैरयिका. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अनन्तरोपपन्ना., परम्परोपपन्ना,
अनन्तरावगाढा, परम्परावगाढा,
अनन्तराहारका, परम्पराहारका,
अनन्तरपर्याप्ता, परम्परपर्याप्ता,
चरमा, अचरमा।
एवम्—निरतर यावत् वैमानिका।

अनन्तर-परम्पर-उपपन्नादि-पद

१२३ नैरयिक दस प्रकार के हैं—
१ अनन्तर उपपन्न—जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय हुआ।
२ परम्पर उपपन्न—जिन्हें उत्पन्न हुए दो आदि समय हुए हों।
३ अनन्तर अवगाढ—विवक्षित क्षेत्र से अव्यवहित आकाश प्रदेश मे अवस्थित।
४ परम्पर अवगाढ—विवक्षित क्षेत्र से व्यवहित आकाश-प्रदेश मे अवस्थित।
५ अनन्तर आहारक—प्रथम समय के आहारक।
६ परम्पर आहारक—दो आदि समयों के आहारक।
७ अनन्तर पर्याप्त—प्रथम समय के पर्याप्त।
८ परम्पर पर्याप्त—दो आदि समयो के पर्याप्त।
९ चरम—नरकगति मे अन्तिम बार उत्पन्न होने वाले।
१० अचरम—जो भविष्य में नरकगति मे उत्पन्न होंगे।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवों के दस-दस प्रकार हैं।

णरय-पद

१२४ चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए, दस णिरयावाससतसहस्सा पण्णत्ता।

नरक-पदम्

चतुर्थ्यां पकप्रभाया पृथिव्या दश निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

नरक-पद

१२४ चौथी पकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं।

ठिति-पद

१२५ रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण दसवाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

स्थिति-पदम्

रत्नप्रभाया पृथिव्या जघन्येन नैरयिकाणा दशवर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

स्थिति-पद

१२५ रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१२६ चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेण णेरइयाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पङ्कप्रभाया पृथिव्या उत्कर्षेण नैरयिकाणा दश सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१२६ चौथी पकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

१२७ पचमाए ण धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

पञ्चम्या धूमप्रभाया पृथिव्या जघन्येन नैरयिकाणा दश सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१२७ पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है।

१२८ असुरकुमाराण जहण्णेण दसवास-सहस्साइ ठिती पण्णत्ता।
एव जाव थणियकुमाराण।

असुरकुमारणा जघन्येन दशवर्पसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता।
एव यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

१२८ असुरकुमार देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१२९ वायरवणस्स तिकाइयाण उक्कोसेणं दसवाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

वादरवनस्पतिकायिकाना उत्कर्पेण दश-वर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१२९ वादर वनस्पतिकायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१३० वाणमतराण देवाण जहण्णेण दस-वाससहस्साइ ठिनी पण्णत्ता।

वानमन्तराणा देवाना जघन्येन दशवर्ष-सहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्त।

१३० वानमन्तर देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१३१ बंभलोगे कप्पे उक्कोसेण देवाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे उत्कर्षेण देवाना दश सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१३१ ब्रह्मलोककल्प—पाचवें देवलोक के देवो की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

१३२ लतए कप्पे देवाणं जहण्णेण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे देवाना जघन्येन दश सागरोपमाणि स्थिति प्रज्ञप्ता।

१३२ लान्तककल्प—छठे देवलोक मे देवो की जघन्य स्थिति दम सागरोपम की है।

भाविभद्दत्त-पद

१३३. दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसि-भद्दत्ताए कम्म पगरेंनि, त जहा—
अणिदाणताए, दिट्ठिसंपण्णताए,
जोगवाहिताए, खंतिखमणताए,
जितिंदियताए, अमाइल्लताए,
अपासत्थताए, सुसामण्णताए,
पवयणवच्छल्लताए,
पवयणउब्भावणताए।

भाविभद्रत्व-पदम्

दशभि स्थानै जीवा आगमिष्यद्-भद्रतायै कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अनिदानतया, दृष्टिसम्पन्नतया,
योगवाहितया, क्षान्तिक्षमणतया,
जितेन्द्रियतया, अमायितया,
अपार्श्वस्थतया, सुश्रमणतया,
प्रवचनवत्सलतया,
प्रवचनोद्भावनतया।

भाविभद्रत्व-पद

१३३ दस स्थानो से जीव भावी कल्याणकारी कर्म करते हैं—
१ अनिदानता—भौतिक समृद्धि के लिए साधना का विनिमय न करना।
२ दृष्टिसम्पन्नता—सम्यक्दृष्टि की आराधना। ३ योगवाहिता—समाधि-पूर्ण जीवन। ४ क्षान्तिक्षमणता—समर्थ होते हुए भी क्षमा करना। ५ जितेन्द्रियता। ६ ऋजुता। ७ अपार्श्वस्थता—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आचार की शिथिलता न रखना। ८ सुश्रामण्य। ९ प्रवचन वत्सलता—आगम और शासन के प्रति प्रगाढ अनुराग। १० प्रवचन-उद्भावनता—आगम और शासन की प्रभावना।

आससप्पओग-पद

१३४ दसविहे आससप्पओगे पण्णत्ते, त जहा—
इहलोगाससप्पओगे,
परलोगाससप्पओगे,
दुहओलोगाससप्पओगे,
जीवियाससप्पओगे,
मरणाससप्पओगे,
कामाससप्पओगे,
भोगासंसप्पओगे,
लाभासंसप्पओगे,
पूयाससप्पओगे,
सक्काराससप्पओगे।

आशसाप्रयोग-पदम्

दशविध आशसाप्रयोग प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकाशसाप्रयोग,
परलोकाशसाप्रयोग,
द्वयलोकाशसाप्रयोग,
जीविताशसाप्रयोग,
मरणाशसाप्रयोग,
कामाशसाप्रयोग,
भोगाशसाप्रयोग,
लाभाशसाप्रयोग,
पूजाशसाप्रयोग,
सत्काराशसाप्रयोग।

आशसाप्रयोग-पद

१३४ आशसाप्रयोग के दस प्रकार हैं—
१ इहलोक की आशसा करना।
२ परलोक की आशसा करना।
३ इहलोक और परलोक की आशसा करना।
४ जीवन की आशसा करना।
५ मरण की आशसा करना।
६ काम [शब्द और रूप] की आशसा करना।
७ भोग [गध, रस और स्पर्श] की आशसा करना।
८ लाभ की आशसा करना।
९ पूजा की आशसा करना।
१० सत्कार की आशसा करना।

धम्म-पदं

१३५ दसविधे धम्मे पण्णत्ते, त जहा—
गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, सघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे ।

धर्म-पदम्

दशविध धर्म प्रज्ञप्त, तद्यथा—
ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, पाषण्डधर्म, कुलधर्म, गणधर्म, सघधर्म, श्रुतधर्म, चरित्रधर्म, अस्तिकायधर्म ।

धर्म-पद

१३५ धर्म के दस प्रकार हैं—
१ ग्रामधर्म—गाव की व्यवस्था—आचार-परम्परा ।
२ नगरधर्म—नगर की व्यवस्था ।
३ राष्ट्रधर्म—राष्ट्र की व्यवस्था ।
४ पाषण्डधर्म—पाषण्डो—श्रमण सम्प्रदायो का आचार ।
५ कुलधर्म—उग्र आदि कुलो का आचार ।
६ गणधर्म—गण-राज्यो की व्यवस्था ।
७ सघधर्म—गोष्टियो की व्यवस्था ।
८ श्रुतधर्म—ज्ञान की आराधना, द्वादशाङ्गी की आराधना ।
९ चारित्रधर्म—सयम की आराधना ।
१० अस्तिकायधर्म—गति सहायक द्रव्य—धर्मास्तिकाय ।

थेरपदं

१३६ दस थेरा पण्णत्ता, त जहा—
गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, सघथेरा, जातिथेरा, सुअथेरा, परियायथेरा ।

स्थविर-पदम्

दश स्थविरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ग्रामस्थविरा, नगरस्थविरा, राष्ट्रस्थविरा, प्रशास्तृस्थविरा, कुलस्थविरा, गणस्थविरा, सघस्थविरा, जातिस्थविरा, श्रुतस्थविरा, पर्यायस्थविरा ।

स्थविर-पद

१३६ स्थविर दस प्रकार के होते हैं[४]—
१ ग्रामस्थविर, २ नगरस्थविर, ३ राष्ट्रस्थविर, ४ प्रशास्तास्थविर—प्रशासक ज्येष्ठ, ५ कुलस्थविर, ६ गणस्थविर, ७ सघस्थविर,
८ जातिस्थविर—साठ वर्ष की आयु वाला ।
९ श्रुतस्थविर—समवाय आदि अगो को धारण करने वाला ।
१० पर्यायस्थविर—वीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला ।

पुत्त-पद

१३७. दस पुत्ता पण्णत्ता, त जहा—
अत्तए, खेत्तए, दिण्णए, विण्णए, उरसे, मोहरे, सोंडीरे, सवुड्ढे, उवयाइते, धम्मतेवासी ।

पुत्र-पदम्

दश पुत्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आत्मज, क्षेत्रज, दत्तक, विज्ञक, औरस, मौखर, शौण्डीर, सर्वधित, औपयाचितक, धर्मान्तेवासी ।

पुत्र-पद

१३७, पुत्र दस प्रकार के होते हैं[४]—
१ आत्मज—अपने पिता से उत्पन्न ।
२ क्षेत्रज—नियोग-विधि से उत्पन्न ।
३ दत्तक—गोद लिया हुआ ।
४ विज्ञक—विद्या-शिष्य ।
५ औरस—स्नेहवश स्वीकृत पुत्र ।
६ मौखर—वाक्पटुता के कारण पुत्र रूप मे स्वीकृत ।
७ शौंडीर—पराक्रम के कारण पुत्र रूप मे स्वीकृत ।
८ सर्वद्धित—पोपित अनाथ-पुत्र ।
९ औपयाचितक—देवता की आराधना से उत्पन्न पुत्र अथवा सेवक ।
१० धर्मान्तेवासी—धर्म-शिष्य ।

अणुत्तर-पद

१३८ केवलिस्स ण दस अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे, अणुत्तरे मद्दवे, अणुत्तरे लाघवे।

अनुत्तर-पदम्

केवलिन दश अनुत्तराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर चरित्र, अनुत्तर तप, अनुत्तर वीर्यं, अनुत्तर क्षान्ति, अनुत्तरा मुक्ति, अनुत्तर आर्जव, अनुत्तर मार्दव, अनुत्तर लाघवम्।

अनुत्तर-पद

१३८ केवली के दस अनुत्तर होते हैं—
१ अनुत्तर ज्ञान, २ अनुत्तर दर्शन,
३ अनुत्तर चारित्र, ४ अनुत्तर तप,
५ अनुत्तर वीर्य, ६ अनुत्तर क्षान्ति,
७ अनुत्तर मुक्ति, ८ अनुत्तर आर्जव,
९ अनुत्तर मार्दव, १० अनुत्तर लाघव।

कुरा-पदं

१३९ समयखेत्ते ण दसकुराओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पच देवकुराओ, पच उत्तरकुराओ।
तत्थ ण दस महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता, त जहा—
जबू सुदसणा, घायइरुक्खे, महाघायइरुक्खे, पउमरुक्खे, महापउमरुक्खे, पच कूडसामलीओ।
तत्थ ण दस देवा महिड्ढिया जाव परिवसति, त जहा—
अणाढिते जबुद्दीवाधिपती, सुदंसणे, पियदसणे, पोडरीए, महापोडरीए, पच गरुला वेणुदेवा।

कुरु-पदम्

समयक्षेत्रे दशकुरव प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पञ्च देवकुरव, पञ्चोत्तरकुरव।
तत्र दश महातिमहान्त महाद्रुमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जम्बू सुदर्शना, धातकीरुक्ष, महाधातकीरुक्ष, पद्मरुक्ष, महापद्मरुक्ष, पञ्च कूटशाल्मल्य।
तत्र दश देवा महर्द्धिका यावत् परिवसन्ति, तद्यथा—
अनादृत जम्बूद्वीपाधिपति, सुदर्शन प्रियदर्शन, पौण्डरीक, महापौण्डरीक, पञ्च गरुडाः वेणुदेवा।

कुरु-पद

१३९ समयक्षेत्र मे दस कुरा हैं—
पाच देवकुरा। पाच उत्तरकुरा।
यहा दस विशाल महाद्रुम हैं—
१ जम्बू सुदर्शना, २ धातकी,
३ महाधातकी, ४ पद्म,
५ महापद्म और पाच कूटशाल्मली।

वहा महर्द्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी तथा पल्योपम की स्थितिवाले दस देव रहते हैं—
१ जम्बूद्वीपाधिपति अनादृत, २ सुदर्शन,
३ प्रियदर्शन, ४ पौंडरीक,
५ महापौंडरीक और पाच गरुड वेणुदेव।

दुस्समा-लक्खण-पद

१४०. दसहि ठाणेहि ओगाढ दुस्सम जाणेज्जा, त जहा—
अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाहू पूइज्जति, साहू ण पूइज्जति, गुरुसु जणो मिच्छ पडिवण्णो, अमणुण्णा सद्दा, •अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गधा, अमणुण्णा रसा अमणुण्णा° फासा।

दुःषमा-लक्षण-पदम्

दशभि स्थानै अवगाढा दु षमा जानीयात्, तद्यथा—
अकाले वर्षति, काले न वर्षति, असाधव पूज्यन्ते, साधव न पूज्यन्ते, गुरुषु जनो मिथ्यात्व प्रतिपन्न, अमनोज्ञा शब्दा, अमनोज्ञानि रूपाणि, अमनोज्ञा गन्धा, अमनोज्ञा रसा, अमनोज्ञा स्पर्शा।

दुःषमा-लक्षण-पद

१४० दस स्थानो से दुष्षमा काल की अवस्थिति जानी जाती है—
१ असमय मे वर्षा होती है,
२ समय पर वर्षा नही होती,
३ असाधुओ की पूजा होती है,
४ साधुओ की पूजा नही होती,
५ मनुष्य गुरुजनो के प्रति मिथ्या व्यवहार करता है, ६ शब्द अमनोज्ञ हो जाते हैं,
७ रस अमनोज्ञ हो जाते हैं,
८ रूप अमनोज्ञ हो जाते हैं,
९ गध अमनोज्ञ हो जाते हैं,
१० स्पर्श अमनोज्ञ हो जाते हैं।

सुसमा-लक्खण-पद

१४१. दसहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—
अकाले ण वरिसति,
°काले वरिसति,
असाहू ण पूइज्जति,
साहू पूइज्जति,
गुरुसु जणो सम्मं पडिवण्णो,
मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा,
मणुण्णा गंधा, मणुण्णा रसा,°
मणुण्णा फासा।

सुषमा-लक्षण-पदम्

दशभिः स्थानैः अवगाढां सुषमां जानीयात्, तद्यथा—
अकाले न वर्षति, काले वर्षति,
असाधवो न पूज्यन्ते, साधवः पूज्यन्ते,
गुरुषु जनः सम्यक् प्रतिपन्नः,
मनोज्ञाः शब्दाः, मनोज्ञानि रूपाणि,
मनोज्ञाः गन्धाः, मनोज्ञाः रसाः,
मनोज्ञाः स्पर्शाः।

सुषमा-लक्षण-पद

१४१. दस स्थानों से सुषमा काल की अवस्थिति जानी जाती है—
१ असमय में वर्षा नहीं होती,
२ समय पर वर्षा होती है,
३ असाधुओं की पूजा नहीं होती,
४ साधुओं की पूजा होती है,
५ मनुष्य गुरुजनों के प्रति सम्यक्-व्यवहार करता है,
६ शब्द मनोज्ञ होते हैं,
७ रूप मनोज्ञ होते हैं,
८. रस मनोज्ञ होते हैं,
९ गंध मनोज्ञ होते हैं,
१० स्पर्श मनोज्ञ होते हैं।

रुक्ख-पदं

१४२ सुसमसुसमाए णं समाए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, तं जहा—

वृक्ष-पदम्

सुषमसुषमायां समायां दशविधाः वृक्षाः उपभोग्यतायै अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—

वृक्ष-पद

१४२ सुषम-सुषमा काल में दस प्रकार के वृक्ष उपभोग में आते हैं—

संगहणी-गाहा

१ मतंगया य भिंगा,
तुडितंगा दीव जोति चित्तंगा।
चित्तरसा मणियंगा,
गेहागारा अणियणा य॥

संग्रहणी-गाथा

१ मदाङ्गकाश्च भृङ्गाः,
त्रुटिताङ्गाः दीपाः ज्योतिषः चित्राङ्गाः।
चित्ररसाः मण्यङ्गाः,
गेहाकाराः अनग्नाश्च॥

१ मदाङ्गक—मादक रस वाले,
२ भृङ्ग—भाजनाकार पत्ता वाले,
३ त्रुटिताङ्ग—वाद्यध्वनि उत्पन्न करने वाले, ४ दीपाङ्ग—प्रकाश करने वाले,
५ ज्योतिअङ्ग—अग्नि की भांति ऊष्मा सहित प्रकाश करने वाले,
६. चित्राङ्ग—मालाकार पुष्पों से लदे हुए,
७ चित्ररस—विविध प्रकार के मनोज्ञ रस वाले,
८ मणिअंग—आभरणाकार अवयवोंवाले,
९ गेहाकार—घर के आकार वाले,
१० अनग्न—नग्नत्व को ढाकने के उपयोग में आने वाले।

कुलगर-पदं

१४३ जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा हुत्था, त जहा—

संगहणी-गाहा

१ सयंजले सयाऊ य,
अणतसेणे य अजितसेणे य।
कक्कसेणे भीमसेणे,
महाभीमसेणे य सत्तमे ॥
दढरहे दसरहे, सयरहे।

कुलकर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अतीतायां उत्सर्पिण्यां दश कुलकरा अभवन्, तद्यथा—

सग्रहणी-गाथा

१ स्वयजल शतायुश्च,
अनन्तसेनश्च अजितसेनश्च।
कर्कसेनो भीमसेन,
महाभीमसेनश्च सप्तम ॥
दृढरथो दशरथ, शतरथ।

कुलकर-पद

१४३ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी मे दस कुलकर हुए थे—

१ स्वयजल, २ शतायु, ३ अनन्तसेन, ४ अजितसेन, ५ कर्कसेन, ६ भीमसेन, ७ महाभीमसेन, ८ दृढरथ, ९ दशरथ, १० शतरथ।

१४४ जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमीसाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, त जहा—
सीमकरे, सीमधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, समुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्यां दश कुलकरा भविष्यन्ति, तद्यथा—
सीमकर, सीमंधर, क्षेमकर, क्षेमधर, विमलवाहन, सन्मति, प्रतिश्रुत, दृढधनु, दशधनु, शतधनु।

१४४ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी मे दस कुलकर होंगे—
१ सीमंकर, २ सीमंधर, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ विमलवाहन, ६ सन्मति, ७ प्रतिश्रुत, ८ दृढधनु, ९ दशधनु, १० शतधनु।

वक्खारपव्वय-पदं

१४५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेण सीताए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—
मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे, सोमणसे।

१४६ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्याः उभत कूले दश वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
माल्यवान्, चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अञ्जन, माताञ्जन, सौमनस।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः उभत कूले दश वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—]

वक्षस्कारपर्वत-पद

१४५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे महानदी शीता के दोनों तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ माल्यवान्, २ चित्रकूट, ३ पक्ष्मकूट, ४ नलिनकूट, ५ एकशैल, ६ त्रिकूट, ७ वैश्रमणकूट, ८ अञ्जन, ९ माताञ्जन, १० सौमनस।

१४६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में महानदी शीतोदा के दोनों तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत हैं—

विज्जुप्पभे, •अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते,° गंधमायणे ।

विद्युत्प्रभ, अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष, सुखावह, चन्द्रपर्वत, सूरपर्वत, नागपर्वत, देशपर्वत, गन्धमादन ।

१ विद्युत्प्रभ, २ अङ्कावती, ३ पक्ष्मावती, ४ आसीविष, ५ सुखावह, ६ चन्द्रपर्वत, ७ सूरपर्वत, ८ नागपर्वत, ९ देवपर्वत, १० गंधमादन ।

१४७ एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ।

एवं धातकीषण्डपौरस्त्यार्धेऽपि वक्षस्कारा भणितव्या यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे ।

१४७ इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तथा अर्द्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में शीता और शीतोदा महानदियों के दोनों तटों पर दस दस वक्षस्कार पर्वत हैं ।

कप्प-पदं

कल्प-पदम्

कल्प-पद

१४८ दस कप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे, •ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोए, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे, पाणते, अच्चुते ।

दश कल्पा इन्द्राधिष्ठिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, प्राणत, अच्युत ।

१४८ इन्द्राधिष्ठित कल्प दस हैं—
१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ शुक्र, ८ सहस्रार, ९ प्राणत, १० अच्युत ।

१४९ एतेसु णं दससु कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता, तं जहा—
सक्के, ईसाणे, •सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे, पाणते,° अच्चुते ।

एतेषु दशसु कल्पेषु दश इन्द्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शक्र, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, प्राणत, अच्युत ।

१४९. इन दस कल्पों में इन्द्र दस हैं—
१ शक्र, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ प्राणत, १० अच्युत ।

१५० एतेसि णं दसण्हं इंदाणं दस परिजाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
पालए, पुप्फए, •सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे,° विमलवरे, सव्वतोभद्दे ।

एतेषां दशानां इन्द्राणां दश पारियानिकानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त्त, कामक्रम, प्रीतिमन, मनोरम, विमलवर, सर्वतोभद्रम् ।

१५० इन दस इन्द्रों के पारियानिक विमान दस हैं—
१ पालक, २ पुष्पक, ३ सौमनस, ४ श्रीवत्स, ५ नद्यावर्त्त, ६ कामक्रम, ७ प्रीतिमान, ८ मनोरम, ९ विमलवर, १० सर्वतोभद्र ।

पडिमा-पदं

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

१५१ दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं रातिंदियसतेणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासतेहिं अहासुत्तं •अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति ।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एकेन रात्रिं-दिवशतेन अर्धषष्ठैश्च भिक्षाशतैः यथासूत्रं यथार्थं यथातथ्यं यथामार्गं यथाकल्पं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति ।

१५१ दस दशमिका (१० × १०) भिक्षु-प्रतिमा सौ दिन-रात तथा ५५० भिक्षा-दत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथार्थ, यथातथ्य, यथा-मार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है ।

जीव-पदं

१५२ दसविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—
पढमसमयएगिंदिया,
अपढमसमयएगिंदिया,
•पढमसमयबेइंदिया,
अपढमसमयबेइंदिया,
पढमसमयतेइंदिया,
अपढमसमयतेइंदिया,
पढमसमयचउरिंदिया,
अपढमसमयचउरिंदिया,
पढमसमयपंचिंदिया,°
अपढमसमयपंचिंदिया।

१५३. दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
पुढविकाइया, •आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया,° वणस्सइकाइया, बेंदिया, •तेइंदिया, चउरिंदिया,° पचेंदिया, अणिंदिया।

अहवा—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—
पढमसमयणेरइया,
अपढमसमयणेरइया,
•पढमसमयतिरिया,
अपढमसमयतिरिया,
पढमसमयमणुया,
अपढमसमयमणुया,
पढमसमयदेवा,°
अपढमसमयदेवा,
पढमसमयसिद्धा,
अपढमसमयसिद्धा।

जीव-पदम्

दशविधा ससारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमसमयैकेन्द्रिया,
अप्रथमसमयैकेन्द्रिया,
प्रथमसमयद्वीन्द्रिया,
अप्रथमसमयद्वीन्द्रिया,
प्रथमसमयत्रीन्द्रिया,
अप्रथमसमयत्रीन्द्रिया,
प्रथमसमयचतुरिन्द्रिया,
अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिया,
प्रथमसमयपञ्चेन्द्रिया,
अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रिया।

दशविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिका, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिका, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया, अनिन्द्रिया।

अथवा—दशविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिका,
अप्रथमसमयनैरयिका,
प्रथमसमयतिर्यञ्च,
अप्रथमसमयतिर्यञ्च,
प्रथमसमयमनुजा,
अप्रथमसमयमनुजा,
प्रथमसमयदेवा;
अप्रथमसमयदेवा,
प्रथमसमयसिद्धा,
अप्रथमसमयसिद्धा।

जीव-पद

१५२ ससारसमापन्नक जीव दस प्रकार के हैं—
१ प्रथमसमय एकेन्द्रिय।
२ अप्रथमसमय एकेन्द्रिय।
३ प्रथमसमय द्वीन्द्रिय।
४ अप्रथमसमय द्वीन्द्रिय।
५ प्रथमसमय त्रीन्द्रिय।
६ अप्रथमसमय त्रीन्द्रिय।
७ प्रथमसमय चतुरिन्द्रिय।
८ अप्रथमसमय चतुरिन्द्रिय।
९ प्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय।
१० अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय।

१५३ सर्व जीव दस प्रकार के हैं—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक,
३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक,
५ वनस्पतिकायिक, ६ द्वीन्द्रिय,
७ त्रीन्द्रिय ८ चतुरिन्द्रिय,
९ पञ्चेन्द्रिय, १० अनिन्द्रिय।

अथवा—सर्व जीव दस प्रकार के हैं—
१ प्रथमसमय नैरयिक,
२ अप्रथमसमय नैरयिक,
३ प्रथमसमय तिर्यञ्च,
४ अप्रथमसमय तिर्यञ्च,
५ प्रथमसमय मनुष्य,
६ अप्रथमसमय मनुष्य,
७ प्रथमसमय देव,
८ अप्रथमसमय देव,
९ प्रथमसमय सिद्ध,
१० अप्रथमसमय सिद्ध।

सताउय-दसा-पद

१५४ वाससताउयस्स ण पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१ वाला किड्डा मंदा,
बला पण्णा हायणी।
पवचा पब्भारा,
मुम्मुही सायणी तथा॥

शतायुष्क-दशा-पदम्

वर्षशतायुष पुरुषस्य दश दशा: प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. बाला क्रीडा मन्दा,
बला प्रज्ञा हायिनी।
प्रपञ्चा प्राग्भारा,
मृन्मुखी शायिनी तथा॥

शतायुष्क-दशा-पद

१५४ शतायु पुरुष के दस दशाएं होती हैं[1]—

१ बाला, २ क्रीडा, ३ मन्दा,
४ बला, ५ प्रज्ञा, ६ हायिनी
७ प्रपञ्चा, ८ प्राग्भारा, ९ मृन्मुखी,
१० शायिनी।

तणवणस्सइ-पद

१५५ दसविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
मूले, कंदे, °खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते,° पुप्फे, फले, बीये।

तृणवनस्पति-पदम्

दशविधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक्, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीजम्।

तृणवनस्पति-पद

१५५ तृणवनस्पतिकायिक दस प्रकार के होते हैं—
१ मूल, २ कन्द, ३ स्कन्ध,
४ त्वक्, ५ शाखा, ६ प्रवाल,
७ पत्र, ८ पुष्प, ९ फल,
१० बीज।

सेढि-पद

१५६ सव्वाओवि णं विज्जाहरसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

१५७ सव्वाओवि णं आभिओगसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

श्रेणि-पदम्

सर्वा अपि विद्याधरश्रेण्य: दश-दश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

सर्वा अपि आभियोगश्रेण्य: दश-दश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

श्रेणि-पद

१५६ दीर्घवैताढ्य पर्वत के सभी विद्याधरनगरों की श्रेणियां दस-दस योजन चौडी हैं।

१५७ दीर्घवैताढ्य पर्वत के सभी आभियोगिक श्रेणियां[1] [आभियोगिक देवों की श्रेणियां] दस-दस योजन चौडी हैं।

गेविज्जग-पद

१५८ गेविज्जगविमाणा णं दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक-पदम्

ग्रैवेयकविमानानि दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

ग्रैवेयक-पद

१५८ ग्रैवेयक विमानों की ऊपर की ऊंचाई दस सौ योजन की है।

तेयसा भासकरण-पदं

१५९ दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा—
१ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

तेजसा भस्मकरण-पदम्

दशभि: स्थानै: सह तेजसा भस्म कुर्यात्, तद्यथा—
१. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित: सन् परिकुपित: तस्य तेज: निसृजेत्। स तं परितापयति, स तं परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यात्।

तेज से भस्मकरण-पद

१५९ दस कारणों से श्रमण-माहन [अत्याशातना करने वाले को] तेज से भस्म कर डालता है—
१ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

२ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से त परितावेति, से त परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

२ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित सन् देव परिकुपित तस्य तेज निसृजेत्। स त परितापयति, स त परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यात्।

२ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सपन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर अत्याशातना करने वाले पर तेज फेंकता है। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

३. केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते देवेवि य परिकुविते ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। ते त परितावेंति, ते तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

३. कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित सन् परिकुपित देवोपि च परिकुपित तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेज निसृजेताम्। तौ त परितापयत, तौ तं परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्याताम्।

३ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव दोनो कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते हैं। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

४. केइ तहारूव समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

४ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित (सन् ?) परिकुपित तस्य तेज निसृजेत्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, ते स्फोटा भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

४ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। तब वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर मे स्फोट (फोडे) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।

५ केइ तहारूव समण वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

५. कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित (सन् ?) देव परिकुपित तस्य तेज निसृजेत्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, ते स्फोटा भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

५ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर, आशातना करने वाले पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।

६ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छति, •ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा° भास कुज्जा।

६ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित. (सन् ?) परिकुपित देवोपि च परिकुपित तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेज निसृजेताम्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, ते स्फोटा भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

६. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव दोनो कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते हैं। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।

७ केइ तहारूवं समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला समुच्छति, ते पुला-भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

७ कोपि तथारूप श्रमण वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित (सन् ?) परिकुपित तस्य तेज निसृजेत्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा. भिद्यन्ते, तत्र पुला सम्मूर्च्छन्ति, ते पुला भिद्यन्ते, ते पुला भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

७ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सपन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। तब वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं। उनमें पुल [फुसिया] निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

८ •केइ तहारूव समण वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला समुच्छति, ते पुला भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

८ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित (सन् ?) देव परिकुपित तस्य तेज निसृजेत्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, तत्र पुला सम्मूर्च्छन्ति, ते पुला भिद्यन्ते, ते पुला भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

८ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर अत्याशातना करने वाले पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं। उनमे पुल [फुसिया] निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

९ केइ तहारूवं समणं वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला समुच्छंति, ते पुला भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।°

९ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातित (सन् ?) परिकुपित देवोपि च परिकुपितः तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेज निसृजेताम्। तत्र स्फोटा सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, तत्र पुला सम्मूर्च्छन्ति, ते पुला भिद्यन्ते, ते पुला भिन्ना सन्त तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यु।

९ कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव—दोनो कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर, उस पर तेज फेंकते हैं। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं, वे फूटते हैं, उनमे पुल [फुसिया] निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

१० केइ तहारूव समण वा माहणं वा अच्चासातेमाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णो पकम्मति, अंचिअंचिय करेति, करेत्ता आयाहिण-पयाहिण करेति, करेत्ता उड्ढं वेहास उप्पतति, उप्पतेत्ता से णं ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरग अणुदहमाणे-अणुदहमाणे सह तेयसा भास कुज्जा—जहा वा गोसालस्स मखलिपुत्तस्स तवे तेए।

१०. कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयन् तेज निसृजेत्, स च तत्र नो क्रमते, नो प्रक्रमते, आञ्चिताञ्चित करोति, कृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणा करोति, कृत्वा ऊर्ध्वं विहाय उत्पतति, उत्पत्य स तत प्रतिहत प्रतिनिवर्त्तते, प्रतिनिवृत्य तदेव शरीरक अनुदहत्-अनुदहत् सह तेजसा भस्म कुर्यात्—यथा वा गोशालस्य मङ्खलीपुत्रस्य तपस्तेज।

१० कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता हुआ उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उसमे घुस नही सकता। उसके ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आता-जाता है, दाए-बाए प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर आकाश मे चला जाता है। वहा से लौटकर उस श्रमण-माहन के प्रबल तेज से प्रतिहत होकर वापस उसी के पास चला जाता है, जो उसे फेंकता है। उसके शरीर मे प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है। जिस प्रकार मखलीपुत्र गोशालक ने भगवान् महावीर पर तेज का प्रयोग किया था। [वीतरागता के प्रभाव से भगवान् भस्मसात् नही हुए। वह तेज लौटा और उसने गोशालक को ही जला डाला।]

अच्छेरग-पदं

१६०. दस अच्छेरगा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. उवसग्ग गब्भहरणं,
इत्थीतित्थ अभाविया परिसा।
कण्हस्स अवरकका,
उत्तरण चदसूराण॥
२. हरिवसकुलुप्पत्ती,
चमरुप्पातो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्सजतेसु पूआ,
दसवि अणतेण कालेण॥

आश्चर्यक-पदम्

दश आश्चर्यकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ उपसर्गा गर्भहरण,
स्त्रीतीर्थं अभाविता परिषत्।
कृष्णस्य अपरकका,
उत्तरण चन्द्रसूर्यो॥
२ हरिवशकुलोत्पत्ति,
चमरोत्पातश्च अष्टशतसिद्ध।
असयतेषु पूजा,
दशापि अनन्तेन कालेन॥

आश्चर्यक-पद

१६० आश्चर्य दस हैं[११]—

१ उपसर्ग—तीर्थंकरों के उपसर्ग होना।
२ गर्भहरण—भगवान् महावीर का गर्भापहरण।
३ स्त्री का तीर्थंकर होना।
४ अभावित परिषद्—तीर्थंकर के प्रथम धर्मोपदेशक की विफलता।
५ कृष्ण का अपरकका नगरी मे जाना।
६ चन्द्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना।
७ हरिवश कुल की उत्पत्ति।
८ चमर का उत्पात—चमरेन्द्र का सौधर्म-कल्प [प्रथम देवलोक] में जाना।
९ एक सौ आठ सिद्ध—एक समय मे एक साथ एक सौ आठ व्यक्तियो का मुक्त होना।
१० असयमी की पूजा।
—ये दसों आश्चर्य अनन्तकाल के व्यवधान से हुए हैं।

कंड-पदं

१६१. इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए रयणे कडे दस जोयणसयाइ बाहल्लेण पण्णत्ते।

१६२ इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए वइरे कडे दस जोयणसताइ बाहल्लेण पण्णत्ते।

१६३ एव वेरुलिए लोहितक्खे मसारगल्ले हमगब्भे पुलए सोगंधिए जोतिरसे अजणे अजणपुलए रतय जातरुवे अके फलिहे रिट्ठे। जहा—रयणे तहा सोलसविधा भाणितव्वा।

काण्ड-पदम्

अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या रत्न काण्ड दश योजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या वज्र काण्ड दश योजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

एव वैडूर्य लोहिताक्ष मसारगल्ल हसगर्भ पुलक सौगन्धिक ज्योतीरस अञ्जन अञ्जनपुलक रजत जातरूप अङ्क स्फटिक रिष्टम्। यथा—रत्न तथा षोडशविधा भणितव्या।

काण्ड-पद

१६१-१६३ रत्नकाण्ड, वज्रकाण्ड, वैडूर्यकाण्ड, लोहिताक्षकाण्ड, मसारगल्लककाण्ड हंसगर्भकाण्ड, पुलककाण्ड, सौगन्धिककाण्ड, ज्योतिरसकाण्ड, अञ्जनकाण्ड, अञ्जनपुलककाण्ड, रजतकाण्ड, जातरूपकाण्ड, अङ्ककाण्ड, स्फटिककाण्ड और रिष्टकाण्ड—इनमे से प्रत्येक काण्ड दस सौ-दस सौ योजन मोटा है।

उव्वेह-पद

१६४ सव्वेवि ण दीव-समुद्दा दस जोयणसताइ उव्वेहेण पण्णत्ता।

१६५. सव्वेवि ण महादहा दस जोयणाइ उव्वेहेण पण्णत्ता।

१६६ सव्वेवि ण सलिलकुडा दस जोयणाइ उव्वेहेणं पण्णत्ता।

१६७ सीता-सीतोया ण महाणईओ मुहमूले दस-दस जोयणाइ उव्वेहेण पण्णत्ताओ।

उद्वेध-पदम्

सर्वेपि द्वीप-समुद्रा दश योजनशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता।

सर्वेपि महाद्रहा दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता।

सर्वाण्यपि सलिलकुण्डानि दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्तानि।

शीता-शीतोदा महानद्य मुखमूले दश-दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ता।

उद्वेध-पद

१६४ सभी द्वीप-समुद्र दस सौ दस सौ योजन गहरे हैं।

१६५ सभी महाद्रह दस-दस योजन गहरे हैं।

१६६ सभी सलिलकुड [प्रपातकुण्ड] दस-दस योजन गहरे हैं।

१६७ शीता और शीतोदा महानदियो का मुखमूल [समुद्र-प्रवेश स्थान] दस-दस योजन गहरा है।

णक्खत्त-पदं

१६८ कत्तियाणक्खत्ते सव्वबाहिराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चरति।

१६९ अणुराधाणक्खत्ते सव्वब्भतराओ मडलाओ दसमे मडले चार चरति।

नक्षत्र-पदम्

कृत्तिकानक्षत्र सर्वबाह्यात् मण्डलात् दशमे मण्डले चार चरति।

अनुराधानक्षत्र सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलात् दशमे मण्डले चार चरति।

नक्षत्र-पद

१६८ कृत्तिका नक्षत्र चन्द्रमा के सर्व-बाह्यमडल से दसवें मडल मे गति करता है।

१६९ अनुराधा नक्षत्र चन्द्रमा के सर्वाभ्यन्तर मडल से दसवें मडल मे गति करता है।

णाणविद्धिकर-पदं

१७० दस णक्खत्ता णाणस्स विद्धिकरा पण्णत्ता, त जहा—

संगहणी-गाहा

१. मिगसिरमद्दा पुस्सो,
तिण्णि य पुव्वाइ मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्ता य तहा,
दस विद्धिकराइं णाणस्स ॥

कुलकोडि-पदं

१७१. चउप्पयथलयरपंचिदियतिरिक्ख-जोणियाण दस जाति-कुलकोडि-जोणिपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

१७२. उरपरिसप्पथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणियाणं दस जाति-कुल-कोडि-जोणिपमुह-सत्तसहस्सा पण्णत्ता।

पावकम्म-पदं

१७३ जीवा ण दसठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—
पढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयवेइदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयवेइदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयतेइदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयतेइदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयपंचिदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयपंचिदियणिव्वत्तिए।

ज्ञानवृद्धिकर-पदम्

दश नक्षत्राणि ज्ञानस्य वृद्धिकराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. मृगशिरा आर्द्रा पुष्य,
त्रीणि च पूर्वाणि मूलमश्लेषा।
हस्तश्चित्रा च तथा,
दश वृद्धिकराणि ज्ञानस्य ॥

कुलकोटि-पदम्

चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना दश जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

उर परिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकाना दश जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

पापकर्म-पदम्

जीवा दशस्थान निर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैपु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
प्रथमसमयैकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयैकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयद्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयद्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयत्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयत्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयचतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयचतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयपञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्।

ज्ञानवृद्धिकर-पद

१७० ज्ञान की वृद्धि करने वाले नक्षत्र दस हैं—

१ मृगशिरा, २ आर्द्रा, ३ पुष्य,
४ पूर्वाषाढा, ५ पूर्वभाद्रपद,
६ पूर्वफाल्गुनी, ७ मूल,
८ अश्लेषा, ९ हस्त, १० चित्रा।

कुलकोटि-पद

१७१ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर चतुष्पद के योनिप्रवाह में होने वाली कुल-कोटिया दस लाख हैं।

१७२ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर उर-परिसर्प के योनिप्रवाह मे होने वाली कुल-कोटिया दस लाख हैं।

पापकर्म-पद

१७३ जीवों ने दस स्थानो से निर्वतित पुद्गलो का पापकर्म के रूप मे चय किया है, करते है और करेंगे—

१ प्रथमसमय एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। २ अप्रथमसमय एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ३ प्रथमसमय द्वीन्द्रिय-निर्वर्तित पुद्गलो का। ४ अप्रथमसमय द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ५ प्रथम-समय त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ६ अप्रथमसमय त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ७ प्रथमसमय चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ८ अप्रथमसमय चतुरि-न्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। ९ प्रथम-समय पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का। १० अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का।

एव—चिण-उवचिण-बंध उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।	एवम्—चय-उपचय-बन्ध उदीर-वेदा तथा निर्जरा चैव।	इसी प्रकार उनका उपचय, बंधन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।
पोग्गल-पदं	**पुद्गल-पदम्**	**पुद्गल-पद**
१७४. दसपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।	दशप्रदेशिका स्कन्धा अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१७४ दस प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।
१७५ दसपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	दशप्रदेशावगाढा पुद्गला अनन्ता प्रज्ञप्ता।	१७५ दस प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।
१७६. दससमयठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	दशसमयस्थितिका पुद्गला अनन्ता. प्रज्ञप्ता।	१७६ दस समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
१७७ दसगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	दशगुणकालका पुद्गला अनन्ता. प्रज्ञप्ता।	१७७ दस गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।
१७८. एवं वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं दसगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	एवं वर्णैः गन्धैः रसैः स्पर्शैः दशगुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता. प्रज्ञप्ता।	१७८ इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के दस गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

ग्रन्थ परिमाण

अक्षर परिमाण—१६५४४८

अनुष्टुप् श्लोक परिमाण—५१७० अक्षर

टिप्पणियाँ

स्थान–१०

१,२. दीर्घ, ह्रस्व (सू० २)

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त दीर्घ (दीह) और ह्रस्व (रहस्स) शब्दो के दो-दो अर्थ किए हैं[1]—

(१) दीर्घ—दीर्घवर्णाश्रित शब्द ।

(२) दूरश्रव्य—दूर तक सुनाई देने वाला शब्द, किन्तु इसका अर्थ दूरश्रव्य की अपेक्षा प्रलम्बध्वनि वाला शब्द अधिक सगत लगता है।

ह्रस्व—(१) ह्रस्ववर्णाश्रित शब्द ।

(२) लघुध्वनि वाला शब्द ।

३ (सू० ६)

प्रस्तुत सूत्र का प्रतिपाद्य यह है कि शरीर या किसी स्कध से सवद्ध पुद्गल दस कारणो से चलित होता है—स्थानान्तरित होता है।

वृत्तिकार के अनुसार दसों स्थानो की व्याख्या प्रथमा और सप्तमी—दोनो विभक्तियों से की जा सकती है।

१ खाद्यमान पुद्गल अथवा खाने के समय पुद्गल चलित होता है।

२ परिणत होता हुआ पुद्गल अथवा जठराग्नि के द्वारा खल और रस मे परिणत होते समय पुद्गल चलित होता है।

३ उच्छ्वासवायु का पुद्गल अथवा उच्छ्वास के समय पुद्गल चलित होता है।

४ नि श्वासवायु का पुद्गल अथवा नि श्वास के समय पुद्गल चलित होता है।

५ वेद्यमान कर्म-पुद्गल अथवा कर्मवेदन के समय पुद्गल चलित होता है।

६ निर्जीर्यमान कर्म-पुद्गल अथवा कर्म निर्जरण के समय पुद्गल चलित होता है।

७ वैक्रियशरीर के रूप में परिणत होता हुआ पुद्गल अथवा वैक्रिय शरीर की परिणति के समय पुद्गल चलित होता है।

८ परिचर्यमाण (मैथुन मे सम्प्रयुक्त) वीर्य के पुद्गल अथवा मैथुन के समय पुद्गल चलित होता है।

९ यक्षाविष्टशरीर अथवा यक्षावेश के समय पुद्गल (शरीर) चलित होता है।

१० देहगतवायु से प्रेरित पुद्गल अथवा शरीर मे वायु के बढने पर बाह्य वायु से प्रेरित पुद्गल चलित होता है।[2]

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४७ दीर्घो—दीर्घवर्णाश्रितो दूरश्रव्यो वा
ह्रस्वो—ह्रस्ववर्णाश्रयो विवक्षया लघुर्वा ।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४८ ।

४,५ उपकरण संवरसूचीकुशाग्रसंवर (सू० १०)

उपकरणसंवर—उपधि के दो प्रकार हैं—ओघ उपधि और उपग्रह उपधि। जो उपकरण प्रतिदिन काम में आते हैं उन्हें 'ओघ' और जो कोई विशिष्ट कारण उपस्थित होने पर संयम की सुरक्षा के लिए स्वीकृत किए जाते हैं उन्हें 'उपग्रह' उपधि कहा जाता है।[1]

उपकरण संवर का अर्थ है—अप्रतिनियत और अकल्पनीय वस्त्र आदि उपकरणों का अस्वीकार अथवा बिखरे हुए वस्त्र आदि उपकरणों को व्यवस्थित रख देना।

यह उल्लेख औधिक उपधि की अपेक्षा से है।[2]

सूचीकुशाग्रसंवर—सूई और कुशाग्र का संवरण (संगोपन) कर रखना, जिससे वे शरीरोपघातक न हों। ये उपकरण औधिक नहीं होते किन्तु प्रयोजनवश कदाचित् रखे जाते हैं।

सूची और कुशाग्र—ये दो शब्द समस्त औपग्रहिक उपकरणों के सूचक हैं।

प्रस्तुत सूत्र में प्रथम आठ भाव-संवर और शेष दो द्रव्य-संवर हैं।[3]

६ (सू० १५)

प्रस्तुत सूत्र में प्रव्रज्या के दस प्रकार बतलाए गए हैं। प्रव्रज्या ग्रहण के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें से कुछेक कारणों का यहां उल्लेख है। वृत्तिकार ने दसों प्रकार की प्रव्रज्याओं के उदाहरणों का नामोल्लेख मात्र किया है।[4] उनका विस्तार इस प्रकार है—

१ छन्दा—अपनी इच्छा से ली जाने वाली प्रव्रज्या।

(क) एक बौद्ध भिक्षु थे। उनका नाम था गोविंद। एक जैन आचार्य ने उन्हें अठारह बार वाद में पराजित किया। इस पराजय से खिन्न होकर उन्होंने सोचा—'जब तक मैं इनके (जैनों के) सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से समझ नहीं लेता, तब तक इनको वाद-प्रतिवाद में जीत नहीं सकूंगा।'

ऐसा सोचकर वे उन्हीं जैन आचार्य के पास आए, जिन्होंने उन्हें पराजित किया था। उन्होंने ज्ञान सीखना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उन्होंने सारा ज्ञान सीख लिया। इस चेष्टा से ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने पर उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई।

एक बार वे आचार्य के पास गए। अपनी सारी बात उनके समक्ष सरलता से रखते हुए उन्होंने कहा—'आप मुझे व्रत (प्रव्रज्या) ग्रहण करायें।' आचार्य ने उन्हें दीक्षित कर दिया। अन्त में वे सूरि पद पर अधिष्ठित हुए और वे गोविन्द-वाचक के नाम से प्रसिद्ध हुए।[5]

---

१ ओघनिर्युक्ति गाथा ६६८, वृत्ति पृष्ठ ४६९ तत्र ओघोपधि-नित्यमेव यो गृह्यते, अवग्रहोपधिस्तु कारणे आपन्ने संयमार्थं यो गृह्यते सोऽवग्रहोपधिरिति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४८ उपकरणसंवर —अप्रतिनियता-कल्पनीयवस्त्राद्यग्रहणरूपोऽथवा विप्रकीर्णस्य वस्त्राद्युपकरणस्य संवरणमुपकरणसंवर, अयं चौघिकोपकरणापेक्ष।

३ वही, वृत्ति पत्र ४४८ एय तूपलक्षणत्वात्समस्तौपग्रहिकोप-करणापक्षो द्रष्टव्य, इह चान्त्यपदद्वयेन द्रव्यसंवरावुक्ताविति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४९।

५ मुनि पुण्यविजयजी ने गोविंदवाचक का अस्तित्व काल विक्रम की पांचवीं शताब्दी माना है। (महावीर जैन विद्यालय रजत महोत्सव ग्रंथ, पृष्ठ १९९-२०१) इन्होंने 'गोविंदनिर्युक्ति' नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की जिसमें एकेन्द्रिय जीवों की सिद्धि की गई है। (निशीथ भाष्य गाथा ३६५६, चूर्णि)।

बृहत्कल्प के वृत्तिकार दर्शन-विशुद्धि कारक ग्रन्थों का नामोल्लेख करते हुए सन्मतितर्क और तत्त्वार्थ के साथ-साथ गोविंदनिर्युक्ति का भी उल्लेख करते हैं—

(क) बृहत्कल्पभाष्य गाथा २८८०, वृत्ति—दर्शनविशुद्धि-कारणीया गोविंदनिर्युक्ति, आदि शब्दात् सम्म (न्म) ति—तत्त्वार्थप्रभृतीनि च, शास्त्राणि।

(ख) वही, भाष्य गाथा ५४७३, वृत्ति—आवश्यकचूर्णि में भी 'गोविंदनिर्युक्ति' को दर्शन प्रभावक शास्त्र माना है। (आवश्यकचूर्णि), पूर्वभाग, पृष्ठ ३५३ —दंसणेवि दंसणप्पभावगाणि। सत्थाणि जहा गोविंदनिज्जुत्तिमादीणि।

निशीथभाष्य में गोविंदवाचक का उदाहरण 'भावस्तेन' के अन्तर्गत लिया है।

(क) निशीथभाष्य गाथा ३६५६ गोविंदज्जोणाणे।

(ख) वही, गाथा ६२५५ गोविंदपवज्जा।

वृत्ति-भावतेणो जहा गोविंदवायगो। भावस्तेन तीन प्रकार के हैं—ज्ञानस्तेन, दर्शनस्तेन और चारित्र-स्तेन। गोविंदवाचक ज्ञानस्तेन थे—अर्थात् ज्ञान लेने के लिए प्रव्रजित हुए थे।

दशवैकालिक निर्युक्ति में भी गोविंदवाचक का नामोल्लेख हुआ है।

दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा ८२।

(ख) प्राचीन काल में नासिक्य (वर्तमान मे नासिक) नामका नगर था। वहां नद नामका वणिक् रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुन्दरी था। वह उसको अत्यन्त प्रिय थी। क्षणभर के लिए भी वह उससे विलग होना नही चाहता था। इस अत्यन्त प्रीति के कारण लोग उसको 'सुन्दरीनद' के नाम से पुकारने लगे।

नद का भाई पहले ही दीक्षित हो चुका था। उसने अपने छोटे भाई की आसक्ति के विषय में सुना और सोचा कि वह नरकगामी न हो जाए, इसलिए उसको प्रतिबोध देने वहां आया। सुन्दरीनद ने उसे भक्त-पान से परिलाभित किया। मुनि ने उसको अपने पात्र साथ लेकर चलने को कहा। सुन्दरीनद ने सोचा—थोडे समय बाद मुझे विसर्जित कर देगा, किन्तु मुनि उसे अपने स्थान (उद्यान) पर ले गए। मार्ग मे लोगो ने सुन्दरीनद के हाथो मे साधु के पात्र देखकर कहा—सुन्दरीनद ने दीक्षा ले ली है।

मुनि उद्यान मे पहुचे और सुन्दरीनद को प्रव्रजित होने के लिए प्रतिबोध दिया। सुन्दरीनद पर उसका कोई प्रभाव नहीं पडा।

मुनि वैक्रियलब्धि से सम्पन्न थे। उन्होने सोचा—इसको समझाने का अब कोई दूसरा उपाय नही है। मैं इसे कुछ विशेष के द्वारा प्रलोभित करूँ। उन्होंने कहा— चलो, हम मेरु पर्वत पर घूम आए।' सुन्दरीनद अपनी पत्नी को छोड जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। मुनि ने उसे कहा—अभी हम मुहूर्त्त भर मे लौट आयेंगे। उसने स्वीकार कर लिया। मुनि उसे मेरु पर्वत पर ले गए और थोडे समय बाद लौट आए। परन्तु सुन्दरीनद का मन नही बदला।

तब मुनि ने एक वानरयुगल की विकुर्वणा[1] की और सुन्दरीनद से पूछा—'वानरी और सुन्दरी मे कौन सुन्दर है? उसने कहा—भगवन्! यह कैसी तुलना? जितना सरसव और मेरु मे अन्तर है, इतना इन दोनो मे अन्तर है।' तदनन्तर मुनि ने विद्याधर युगल की विकुर्वणा की और वही प्रश्न पूछा। सुन्दरीनद ने कहा—'भगवन्! दोनो तुल्य है' पश्चात् मुनि ने देवयुगल की विकुर्वणा कर वही प्रश्न पूछा। देवागना को देखकर सुन्दरीनद ने कहा—'भगवन्! इसके समक्ष सुन्दरी वानरी जैसी लगती है।' मुनि बोले— देवागना की प्राप्ति थोडे से धर्माचरण से भी हो सकती है।'

यह सुनकर सुन्दरीनद का मन लोभ से भर गया और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।[2]

२ रोष से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

प्राचीन समय में रथवीरपुर नगर के दीपक उद्यान मे आचार्य आर्यकृष्ण सवसृत थे। उसी नगर मे एक मल्ल भी रहता था। उसका नाम था शिवभूति। वह अत्यन्त पराक्रमी और साहसिक था।

एक बार वह राजा के पास गया और नौकर रख लेने के लिए प्रार्थना की। राजा ने कहा—'मैं परीक्षा लूगा। यदि तू उसमे उत्तीर्ण हो गया तो तुझे रख लूगा।'

एक दिन राजा ने उसे बुलाकर कहा—'मल्ल! आज कृष्ण चतुर्दशी है। श्मशान मे चामुडा का मन्दिर है। वहां जाओ और बलि देकर लौट आओ।' राजा ने उसको बलि चढाने के लिए पशु और मदिरा भरे पात्र दिए।

---

१ आवश्यक के टीकाकार मलयगिरि ने यहाँ मतान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वानरयुगल, विद्याधरयुगल और देव-युगल—ये तीनो युगल वहां साक्षात् देखे थे।

आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ५३३

अन्नेभणति सच्चगं चेव दिट्ठ।

बौद्ध लेखक अश्वघोष (ई० चौथी शताब्दी) ने 'सौंदरानद' काव्य लिखा है उसकी कथावस्तु भी इससे मिलती-जुलती है। 'उदान' में आठ वग हैं। उसके तीसरे वग का नाम 'नदवग' है। इसम मुख्य रूपसे महात्मा बुद्ध के मौसेरे भाई नद की कथा है। वह बहुत विलासी था। महात्मा बुद्ध ने उसे विविध प्रकार से समझाकर सांसारिक आसक्ति से मुक्त कर अपने धर्म में दीक्षित किया। यह कथा भी इस कथानक के समान प्रतीत होती है।

२ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पत्र, ५३३,

आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग पृष्ठ ५६६।

दूसरी ओर राजा ने अपने दूसरे कर्मकरों को बुलाकर कहा—'तुम छुपकर वहा जाओ और इसे इस-इस प्रकार से डराने का प्रयास करो।'

राजा की आज्ञा पाकर मल्ल शिवभूति श्मशान मे गया और वलि दे, पशुओ को मारकर वही खा गया।

उधर दूसरे व्यक्ति मिलकर भयकर शब्द करने लगे किन्तु मल्ल शिवभूति के रोमाच भी नहीं हुआ। अपने कार्य से, निवृत्त हो, वह राजा के पास गया। उसके अनूठे साहस की वात राजा के पास पहले ही पहुच चुकी थी। राजा ने उसे अपने पास रख लिया।

एक वार राजा ने अपने सेनापति को बुलाकर कहा—'जाओ, मथुरा को जीत आओ।' सेनापति ने अपनी सेना के साथ वहा से प्रस्थान किया। मल्ल शिवभूति भी साथ मे था। कुछ दूर जाकर शिवभूति ने सेनापति से कहा—हमने राजा से पूछा ही नही कि किस मथुरा को जीतना है—मथुरा या पाडुमथुरा ? सव चिंतित हो गए। राजा को पुन पूछना अपने सिर पर आपत्ति को लेना है। ऐसा सोचकर शिवभूति ने कहा—'दोनो मथुराओ को साथ ही जीत लेना चाहिए।' सेनापति ने कहा—'दल को दो भागो मे नही वांटा जा सकता और एक-एक पर विजय प्राप्त करने मे वहुत समय लग सकता है।' शिवभूति ने कहा—'जो दुर्जेय है वह मुझे दी जाए।' पाडुमथुरा को जीतने का कार्य उसे सौप दिया गया। वह वहा गया और दुर्ग को तोडकर किनारे पर रहने वाले लोगो को उत्पीडन करने लगा। उसके भय से सारा नगर खाली हो गया। नगर को जीतकर वह राजा के पास आया। राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'वोल, तू क्या चाहता है ?' उसने कहा—'राजन् ! आप मुझे यह छूट दें कि मैं जहां चाहू वहा घूम-फिर सकू।' राजा ने उसे वह छूट दे दी। अव वह घूम-फिरकर आधी रात गए घर लौटता। कभी घर आता और कभी आता ही नही। उसकी पत्नी उसके घर पहुचे विना न सोती और न भोजन ही करती। इस प्रकार कुछ दिन वीते। वह अत्यन्त निराश हो गई। एक वार उसने अपनी सासू से सारी वात कही। सासू ने कहा—जा, तू खा-पी ले और सो जा। आज मैं भूखी-प्यासी उसकी प्रतीक्षा मे जागती रहूगी। वह पत्नी सो गई। माँ जागती रही।

आधी रात वीत गई थी। शिवभूति आया और द्वार खोलने के लिए कहा। माता ने उपालभ देते हुए कहा -'जहा इस समय द्वार खुले रहते हो, वहा चला जा।' यह सुन शिवभूति का मन क्रोध से भर गया। वह वहाँ से चला। साधुओ के उपाश्रय के पास आया और देखा कि द्वार खुले हैं। वह भीतर गया। आचार्य वैठे थे। वन्दना कर वह वोला—'आप मुझे प्रव्रजित करें।' आचार्य ने प्रव्रज्या देने की अनिच्छा प्रगट की। तव उसने स्वय लुचन कर डाला। आचार्य ने तव उसे साधु के अन्य उपकरण दिए। अव वे साथ-साथ विहरण करने लगे।[1]

३ गरीवी के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

एक वार आचार्य सुहस्ती कौशाम्वी नगरी मे आए। मुनिजन भिक्षा के लिए नगरी मे घूमने लगे। एक गरीव व्यक्ति ने उन्हें देखा। वह भूखा था। उसने मुनियों के पास जाकर भोजन माँगा। मुनियों ने कहा—'हमारे आचार्य के पास भोजन माँगो। हम वही उपाश्रय में जा रहे हैं।' वह उनके साथ उपाश्रय मे गया और उसके आचार्य से भोजन देने की प्रार्थना की। आचार्य ने कहा—वत्स हम ऐसे भोजन नहीं दे सकते। यदि तुम प्रव्रज्या ग्रहण कर लो, तो हम तुम्हें भरपेट भोजन देंगे।

वह क्षुधा से अत्यन्त पीडित था। उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।[2]

४ स्वप्न के निमित्त से ली जानेवाली प्रव्रज्या—

प्राचीन काल मे गगानदी के तट पर पुष्पभद्र नामका एक सुन्दर नगर था। वहा के राजा का नाम पुष्पकेतु और रानी का नाम पुष्पवती था। वह अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार थी। एक वार उसने एक युगल का प्रसव किया। पुत्र का नाम पुष्पचूल और पुत्री का नाम पुष्पचूला रखा गया। वे दोनों वालक साथ-साथ वढने लगे। दोनो मे वहुत स्नेह था। एक वार राजा ने

---

१ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पत्र, ४१८, ४१६।

२ अभिधानराजेन्द्र, भाग ७, पृष्ठ १६७।

सोचा—"इन दोनो बालको का परस्पर गाढ स्नेह है। यदि ये अलग हो गए तो जीवित नही रह सकेंगे। तो अच्छा है, मैं इनको परस्पर विवाह-सूत्र मे बाध दू।"

राजा ने अपने मित्रो, पौरजनो तथा मन्त्रियो से पूछा—"अन्त पुर मे जो रत्न उत्पन्न होता है, उसका स्वामी कौन है ?" सभी ने एक स्वर से कहा—'राजा उसका स्वामी है।' राजा ने परस्पर दोनों का विवाह कर डाला। रानी ने इसका विरोध किया, परन्तु राजा ने रानी की बात नही सुनी। राजा से अपमानित होने पर रानी ने दीक्षा ग्रहण कर ली। व्रतो का पालन कर वह मृत्यु के बाद देवी बनी।

राजा पुष्पकेतु की मृत्यु के पश्चात् कुमार पुष्पचूल राजा बना और अपनी पत्नी के साथ (बहिन के साथ) भोग भोगता हुआ आनन्द मे रहने लगा।

इधर देवने अवधिज्ञान से अकृत्य मे नियोजित अपनी पुत्री पुष्पचूला को देखा और सोचा—'यह मेरी प्राणप्रिया पुत्री है। इस कुकर्म से कही नरक मे न चली जाए। अत मुझे प्रयत्न करना चाहिए।'

एक बार देव ने पुष्पचूला को नरक के दारुण दु खो से पीडित नारको को दिखाया। पुष्पचूला का मन काप उठा। उसने स्वप्न की बात अपने पति से कही। पुष्पचूल ने इस उपद्रव को शान्त करने के लिए शान्तिकर्म करवाया। परन्तु देव प्रतिदिन पुष्पचूला को नरक के दारुण दृश्य दिखाने लगा।

राजा ने अपने नगर के अन्यतीर्थिको को बुलाकर नरक के विषय मे पूछा। उनसे कोई समाधान न मिलने पर राजा ने आचार्य अन्निकापुत्र को बुला भेजा और वही प्रश्न पूछा। आचार्य ने नरक के यथार्थ स्वरूप का चित्रण किया। रानी का मन आश्वस्त हुआ। उसने नरक गमन का कारण पूछा। आचार्य ने उसके कारणो का निरूपण किया।

कुछ दिन पश्चात् रानी ने स्वप्न मे स्वर्ग के दृश्य देखे। आचार्य अन्निकापुत्र से समाधान पाकर वह प्रव्रजित हो गई।[1]

५ प्रतिश्रुत (प्रतिज्ञा) के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

राजगृह में धन्यक नामका सार्थवाह रहता था। उसका विवाह शालीभद्र की छोटी बहिन के साथ हुआ था। शालीभद्र दीक्षा के लिए तैयार हुआ। यह समाचार उसकी बहिन तक पहुचा। उसने सुना कि उसका भाई शालीभद्र प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का त्याग करता है। वह बहुत दु खी हुई। उस समय वह अपने पति धन्यक को स्नान करा रही थी। उसकी आखें डबडबा आई और दो-चार आसू धन्यक के कधों पर गिरे। धन्यक ने अपनी पत्नि के विवर्ण मुख को देखा और दु ख का कारण पूछा। उसने कहा—मेरा भाई शालीभद्र दीक्षा लेने की तैयारी कर रहा है और प्रतिदिन एक-एक पत्नी का त्याग करता चला जा रहा है। धन्यक ने कहा—'तुम्हारा भाई कायर है, हीनसत्त्व है। यदि दीक्षा लेनी ही है तो एक साथ त्याग क्यो नही कर देता।'

उसने कहा—'कहना सरल है, करना अत्यन्त कठिन। आप दीक्षा क्यों नही ले लेते ?'

धन्यक बोला—हा, तुम्हारा कहना ठीक है। आज मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं शीघ्र ही दीक्षा ले लूगा।' इस प्रतिज्ञा के आधार पर वह शालीभद्र के साथ भगवान् के पास दीक्षित हो गया।

६ जन्मान्तरो की स्मृति से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

विदेह जनपद की राजधानी मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री का नाम मल्लीकुमारी था। उसके पूर्व भव के छह साथी थे। उनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई—

१ साकेत नगरी मे राजा प्रतिबुद्धि के रूप मे।

२ चपा नगरी में राजा चन्द्रच्छाय के रूप मे।

३ श्रावस्ती नगरी मे राजा रुक्मी के रूप मे।

४ वाराणसी नगरी मे शखराज के रूप मे।

५ हस्तिनागपुर नगर मे राजा अदीनशत्रु के रूप मे।

---

१ परिशिष्टपर्व, सर्ग ६, पृष्ठ ९९-१०१

६ कापिल्यपुर मे राजा जितशत्रु के रूप मे ।

इन सबको प्रतिबोध देने के लिए कुमारी ने एक उपाय किया (देखें ७।७५ का टिप्पण) । उन्हें अपने-अपने पूर्वभव की स्मारणा कराई । सभी राजाओ को जाति-स्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ और वे सब मल्ली के साथ दीक्षित हो गए ।

७ रोग के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

एक बार इन्द्र ने चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार के रूप की प्रशसा की । दो देवो ने इसे स्वीकार नही किया और वे परीक्षा करने के लिए ब्राह्मण के रूप में वहा आए । दोनो प्रासाद के अन्दर गए और सीधे राजा के पास पहुच गए । राजा उस समय तैल-मर्दन कर रहा था । ब्राह्मण रूप देवों ने उसके अनावृत रूप को देखा और अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए । वे एकटक उसको निहारने लगे । राजा ने पूछा—आप यहा क्यो आए हैं ? उन्होंने कहा—"तीनो लोक मे आपके रूप की प्रशसा हो रही है । उसे आखो से देखने के लिए हम यहा आए हैं ।" राजा गर्व से उन्मत्त होकर बोला—"मेरा वास्तविक रूप आपको देखना हो तो आप राजसभा मे आए । मैं जब राजसभा मे सजधज कर बैठता हू तब मेरा रूप दर्शनीय होता है ।" दोनो सभा भवन मे आने का वादा कर चले गए ।

राजा शीघ्र ही अभ्यजन सपन्न कर, शरीर के सभी अगोपागो का शृगार कर सभा मे गया और एक ऊचे सिंहासन पर जा बैठा ।

दोनो ब्राह्मण आए । राजा के रूप को देख खिन्न स्वर मे बोले—"अहो ! मनुष्यो का रूप, लावण्य और यौवन क्षणभगुर होता है ।"

राजा ने पूछा—यह आपने कैसे कहा ?

उन्होंने सारी बात बताई ।

राजा ने अपने विभूपित अग-प्रत्यगों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और सोचा—मेरे यौवन का तेज इतने ही समय मे क्षीण हो गया । ससार अनित्य है, शरीर असार है । रूप और यौवन का अभिमान करना मूर्खता है । भोगो का सेवन करना उन्माद है । परिग्रह पाश है, बधन है । यह सोचकर वह अपने पुत्र को राज्य का भार सौंप आचार्य विरत के पास प्रव्रजित हो गया ।

उपर्युक्त विवरण उत्तराध्ययन की वृहद्वृत्ति (अध्ययन १८) के अनुसार है ।

स्थानागवृत्तिकार ने रोग मे ली जाने वाली प्रव्रज्या मे 'सनत्कुमार' के दृष्टान्त की ओर सकेत किया है । किन्तु उत्तराध्ययन वृहद्वृत्तिगत विवरण मे चक्रवर्ती सनत्कुमार के प्रव्रज्या से पूर्व, रोग उत्पन्न होने की बात का उल्लेख नहीं है । प्रव्रज्या के बाद प्रान्त और नीरस आहार करने के कारण उनके शरीर मे सात व्याधिया उत्पन्न होती है—ऐसा उल्लेख अवश्य है ।

परम्परा से भी यही सुना जाता रहा है कि उनके शरीर मे रोग उत्पन्न हुए थे और उन रोगों की ओर ब्राह्मण वेष-धारी देवो ने सकेत भी किया था । इस सकेत से प्रतिवुद्ध होकर चक्रवर्ती सनत्कुमार दीक्षित हो जाते हैं ।

यह सारा कथानक-भेद है ।

८ अनादर के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

मगध जनपद मे नदि नाम का गाव था । वहा गौतम ब्राह्मण रहता था । उसकी पत्नी का नाम धारणी था । एक बार वह गर्भवती हुई । गर्भ के छह मास बीते तब गौतम ब्राह्मण मर गया और धारणी भी एक पुत्र का प्रसव कर मर गई । ऐसी स्थिति मे बालक का पालन उसका मामा करने लगा । उसने उसका नाम नदीषेण रखा । जब बडा हुआ तब वह अपने मामा के यहा ही नौकर के रूप मे रह गया ।

गाव के लोग नदिषेण के विषय मे बातचीत करते और उसे बुरा-भला कहते । वे उसको अनादर की दृष्टि से देखने लगे । यह बात नदिषेण को अखरने लगी । एक दिन उसके मामा ने कहा—वत्स ! लोगो की बातो पर ध्यान मत दे । मैं तुझे कुवारा नही रखूगा । यदि दूसरा कोई अपनी पुत्री नहीं देगा तो मैं अपनी पुत्री के साथ तेरा विवाह कराऊगा । मेरे तीन पुत्रिया है ।

नदिषेण बहुत कुरूप था। अत तीनों पुत्रियो ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया।

नदिषेण को यह बहुत बुरा लगा। 'ऐसे तिरस्कृत जीवन से मरना अच्छा है'—ऐसा सोचकर वह घर से निकला और आत्महत्या करने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय उसका सपर्क एक मुनि से हुआ। उन्होंने उसके विचार परिवर्तित किए और वह नदीवर्द्धन सूरी के पास प्रव्रजित हो गया।[1]

६ देवता के प्रतिबोध से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

इस विषय मे मुनि मेतार्य की कथा प्रसिद्ध है। मेतार्य पूर्वभव मे पुरोहित पुत्र थे। उनकी राजपुत्र के साथ मैत्री थी। राजपुत्र के चाचा सागरचन्द्र प्रव्रजित हो चुके थे। सागरचन्द्र ने दोनो—राजपुत्र और पुरोहित पुत्र को कपट से प्रव्रजित कर दिया। राजपुत्र ने यह सोचकर इस कपट को सहन कर लिया कि चलो, ये मेरे चाचा ही तो हैं। किन्तु पुरोहित पुत्र के मन मे आचार्य सागरचन्द्र के प्रति बहुत दुगुछा पैदा हो गई। एक बार दोनो मित्रो ने आपस मे यह प्रतिज्ञा की कि जो देवलोक से च्युत होकर पहले मर्त्यलोक मे जाएगा, उसे प्रतिबोध देने का कार्य दूसरे को करना होगा। दोनो मर कर देव बने। पुरोहित पुत्र का जीव देवलोक से पहले च्युत हुआ और राजगृह नगर के मेय चाडाल की पत्नी के गर्भ मे आया।

चाडाल की स्त्री की मैत्री एक सेठानी के साथ थी। वह नगर मे मास बेचने के लिए जाया करती थी। एक दिन सेठानी ने कहा—बहिन! तू अन्यत्र मत जा। मैं ही सारा मास खरीद लूगी। चाडालिनी प्रतिदिन वहा आती और मास देकर चली जाती। दोनो की मैत्री सघन होती गई।

सेठानी भी गर्भवती थी। किन्तु उसके सदा मृत सतान ही उत्पन्न होती थी। इस बार भी उसने एक मृत कन्या का प्रसव किया।

इधर चाडालिनी ने पुत्र का प्रसव किया। सेठानी ने अपनी मृत पुत्री उसे दी और उसका पुत्र ले लिया। अति प्रेम के कारण चाडालिनी ने कुछ भी आनाकानी नहीं की। सेठानी ने बच्चे को लेकर चाडालिनी के पैरों पर रखते हुए कहा—तेरे प्रभाव से यह जीवित रहे। उसका नाम मेतार्य रखा।

अब मेतार्य सेठ के घर बढने लगा। उसने अनेक कलाए सीखी और यौवन मे प्रवेश किया। पूर्वभव के देवमित्र को अपनी प्रतिज्ञा (संकेत) का स्मरण हो आया। वह देवलोक से मेतार्य के पास आया और अपने सकेत का स्मरण कराते हुए उसे प्रतिबोध दिया, किन्तु मेतार्य ने उसकी बात नहीं मानी।

अब उसका विवाह आठ धनी कन्याओ के साथ एक ही दिन होना निश्चित हुआ। वह पालकी मे बैठ नगर मे घूमने लगा। तब देव मेय के शरीर मे प्रविष्ट हुआ। मेय जोर-जोर से रोते हुए कहने लगा—'हाय! यदि मेरी पुत्री भी आज जीवित होती तो मैं भी उसके विवाह की तैयारी करता।' उसकी पत्नी ने यह सुना। वह आई और बीती हुई सारी घटना उसे सुनाई। यह सुनकर देव के प्रभाव से चाडाल मेय उठा और सीधा मेतार्य की शिविका के पास गया और मेताय को शिविका से नीचे गिराते हुए कहा—'अरे, तुम एक नीच जाति के होते हुए भी उच्च जाति की कन्याओं के साथ विवाह कर रहे हो।' उसने मेतार्य को एक गढे मे ढकेल दिया। सारे नगर मे मेतार्य की निन्दा होने लगी। आठ कन्याओं ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। तदन्तर देव ने आकर मेतार्य को सारी बात बताई और प्रव्रज्या के लिए तैयार होने के लिए कहा।

मेतार्य ने कहा—'मैं तैयार हू। किन्तु तुम मेरे अवर्णवाद को धो डालो। मैं बारह वर्ष तक यहा रहकर फिर प्रव्रजित हो जाऊगा।'

देव ने पूछा—'अवर्णवाद को मिटाने के लिए मैं क्या कर सकता हू?'

मेतार्य ने कहा—'मेरा विवाह राजकन्या के साथ करा दो। सारा अवर्णवाद मिट जायेगा।'

देवता ने मेतार्य को एक बकरा दिया। वह प्रतिदिन रत्नमय मींगना करता था। मेतार्य ने उन रत्नो से एक थाल भर कर राजा के पास भेजा और राजकुमारी की माग की। राजा ने उसकी माग अस्वीकार कर दी।

---

१ अभिधानराजेन्द्र, भाग ४, पृष्ठ १७५७।

वह प्रतिदिन रत्नो से भरा थाल राजा के पास भेजता रहा। एक दिन अमात्य अभयकुमार ने पूछा—ये इतने रत्न कहा से आए हैं ? उसने कहा—'मेरे घर एक बकरा है। वह प्रतिदिन इतने रत्न देता है।' अभयकुमार ने उसे मगवाया, किन्तु उस बकरे ने वहा गोबर के मिगने दिए। अभयकुमार ने उसका कारण पूछा, तब मेतार्य ने कहा—'यह देव प्रभाव से सोने की मिगनिए देता है। यदि आपको विश्वास न हो तो और परीक्षा कर सकते हैं।'

अभयकुमार ने कहा—'हमारे महाराज प्रतिदिन वैभारगिरि पर्वत पर भगवत् वदन के लिए जाते हैं। उन्हें बडी कठिनाइयो मे पर्वत पर चढना पडता है। अत ऊपर तक रथ-मार्ग का निर्माण करा दे।'

मेतार्य ने अपने देवमित्र से वैसा ही रथ-मार्ग बनवा दिया। (आज भी उसके अवशेष मिलते हैं।)

दूसरी बार अभयकुमार ने कहा—'राजगृह नगर के परकोटे को सोने का बनवाओ।' मेतार्य ने वह भी कार्य पूरा कर डाला।

तीसरी बार अभयकुमार ने कहा—'मेतार्य ! अब तुम यहा एक समुद्र लाकर उसमे स्नान कर शुद्ध हो जाओगे तो राजकुमारी को हम तुम्हें सौप देंगे।'

देव-प्रभाव से मेतार्य इसमे भी सफल हुआ। राजकुमारी के साथ उसका विवाह सपन्न हुआ। वह अपनी नवोढा पत्नी के साथ शिविका मे बैठ कर नगर मे गया।

राजकन्या के साथ मेतार्य के परिणय की वार्ता सारे शहर मे फैल गई। अब आठ कन्याओ के पिताओं ने भी यह सुना और अपनी-अपनी कन्या पुन देने का प्रस्ताव किया। मेतार्य ने उन सब कन्याओं के साथ विवाह कर लिया।

बारह वर्ष बीत गए। देवमित्र आया और प्रव्रजित होने की प्रेरणा दी।

मेतार्य की सभी पत्नियों ने देव से अनुरोध किया कि और बारह वर्ष तक इनका सहवास रहने दें। देव उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर चला गया।

बारह वर्ष और बीत जाने पर मेतार्य अपनी सभी पत्नियो के साथ प्रव्रजित हो गया।[1]

१० पुत्र के अनुबध से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

अवती जनपद मे तुबवन नाम का गाव था। वहा धनगिरि नाम का इभ्यपुत्र रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुनन्दा था। जब वह गर्भवती हुई तब धनगिरि आर्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हो गया। नौ मास पूर्ण होने पर सुनन्दा ने एक बालक को जन्म दिया। बालक को देखने के लिए आगत कुछ महिलाओं ने कहा—'कितना अच्छा होता यदि इस बालक के पिता दीक्षित नही होते।' बालक (जिसका नाम वज्र रखा गया था) ने यह सुना और वह उन्ही वाक्यों को बार-बार स्मरण करने लगा। ऐसा करने से उसे जाति-स्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ। वह अपने पूर्वभव को देखकर रोने लगा और रात-दिन खूब रोते ही रहता। माता इससे बहुत कष्ट पाने लगी। छह महीने बीत गए।

एक बार मुनि धनगिरि तथा आर्यसमित उसी नगर में आए और भिक्षा मागने निकले। वे सुनदा के घर आए। सुनदा ने कहा—'इस बालक को ले जाओ।' मुनि उसे लेना नहीं चाहते थे। तब सुनदा ने पुन कहा—'इतने समय तक मैंने इस बालक की रक्षा की है, अब आप इसकी रक्षा करें।' मुनि ने कहा—कही तुम्हें बाद में पश्चात्ताप न करना पडे ? सुनदा ने कहा—नहीं ! आप इसे ले जाए। मुनि ने साक्ष्यकर उस छह महीने के बालक को ले लिया और अपने पात्र मे रख चोलपट्ट से बाध दिया। बालक ने रोना बद कर दिया।

मुनि धनगिरि उपाश्रय मे आए। झोली को भारी देखकर आचार्य ने हाथ पसारा। धनगिरि ने झोली आचार्य के हाथ थमा दी। अति भारी होने के कारण आचार्य ने कहा—अरे ! यह तो वज्र जैसा भारी-भरकम है। आचार्य ने झोली खोली और देवकुमार सदृश सुन्दर बालक को देखकर कहा—'आर्यो ! इस बालक की रक्षा करो। यह प्रवचन का प्रभावक होगा।'

अत्यन्त भारी होने के कारण बालक का नाम वज्र रखा और साध्वियो को सौंप दिया। साध्वियो ने उस बालक को शय्यातर के घर रखा और वे शय्यातर उसका भरण-पोषण करने लगे।

---

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४७७, ४७८।

एक बार सुनदा ने उस बालक को मागा। शय्यातर ने उसे देने से इन्कार करते हुआ कहा कि यह हमारी धरोहर है। इसे हम नहीं दे सकते। वह प्रतिदिन आती और अपने पुत्र को स्तनपान कराकर चली जाती। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए।

एक बार मुनि धनगिरि विहार करते हुए वहा आए। सुनदा के मन में पुत्र-प्राप्ति की लालसा तीव्र हुई। वह राज-सभा में गई और अपने पुत्र को पुन दिलाने की प्रार्थना की। राजा ने धनगिरि को बुला भेजा। उसने कहा—'इसीने मुझे दान मे दिया था।' सारे नगर ने सुनदा का पक्ष लिया। राजा ने कहा—'मेरा कौन अपना है और कौन पराया ? मेरे लिए सब समान हैं। बालक जिसके पास चला जाए, वह उसीका हो जाएगा।' सबने यह बात मान ली। प्रश्न उठा कि पहले कौन बुलायेगा ? किसी ने कहा कि धर्म पुरुषोत्तम होता है अत पुरुष ही पहले पुकारेगा। किसी ने कहा—नही, माता दुष्करकारिणी होती है, अत उसी का यह अधिकार होना चाहिए।

माता सुनदा ने बालक को प्रलोभित करने के लिए कुछेक खिलौनो को दिखाते हुए कहा—'वज्र ! आ, इधर आ !' बालक ने माता की ओर देखा, किन्तु उस ओर पैर नही बढ़ाए। माता ने तीन बार उसे पुकारा, वह नहीं आया।

तब पिता मुनि धनगिरि ने कहा—'वज्र ! ले, कर्मरज का प्रमार्जन करने के लिए यह रजोहरण ग्रहण कर। बालक दौडा और रजोहरण हाथ मे ले लिया।

राजा ने मुनि धनगिरि को बालक सौंप दिया। उसकी विजय हुई।

सुनदा ने सोचा—मेरे पति, भाई और पुत्र—'सभी प्रव्रजित हो गए हैं, तो भला मैं घर मे क्यों रहू।'

वह भी प्रव्रजित हो गई। अब बालक वज्र उसके पास रहने लगा।[1]

७. (सूत्र १६)

पांचवें स्थान में दो सूत्रों (३४-३५) में दस धर्मों का उल्लेख मिलता है। वहां वृत्तिकार से उनका अर्थ इस प्रकार किया है[2]—

१ क्षाति—क्रोधनिग्रह।
२ मुक्ति—लोभनिग्रह।
३ आर्जव—मायानिग्रह।
४ मार्दव—माननिग्रह।
५ लाघव—उपकरण की अल्पता, ऋद्धि, रस और सात—इन तीनो गौरवों का त्याग।
६ सत्य—काय-ऋजुता, भाव-ऋजुता, भाषा-ऋजुता और अविसवादनयोग—कथनी-करनी की समानता।
७ सयम—हिंसा आदि की निवृत्ति।
८ तप।
९ त्याग—अपने साभोगिक साधुओ को भक्त आदि का दान।
१० ब्रह्मचर्यवास—कामभोग विरति।

१ वृत्तिकार ने दस धर्म की एक दूसरी परम्परा का उल्लेख किया है।[3] यह तत्त्वार्थसूत्रानुसारी परम्परा है। उसके अनुसार दस धर्म के नाम और क्रम मे कुछ अन्तर है।

---

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ३८७, ३८८।
२ स्थानागवृत्ति, पत्र २८२, २८३।
३ वही, पत्र २८३
"खती य मद्दवऽज्जव मुत्ती तवसजमे य बोद्धव्वे।
सच्च सोय आकिंचणं च बभ च जइधम्मो॥

१. उत्तम क्षमा, २ उत्तम मार्दव, ३. उत्तम आर्जव ४ उत्तम शौच, ५ उत्तम सत्य, ६ उत्तम सयम, ७ उत्तम तप, ८ उत्तम त्याग, ९ उत्तम आकिञ्चन्य, १० उत्तम ब्रह्मचर्य।

तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१ क्षमा—क्रोध के निमित्त मिलने पर भी कलुष न होना। शुभ परिणामों से क्रोध आदि की निवृत्ति।[1]

२ मार्दव—जाति, ऐश्वर्य, श्रुत, लाभ आदि का मद नहीं करना, दूसरे के द्वारा परिभव के निमित्त उपस्थित करने पर भी अभिमान नहीं करना।

३ आर्जव—मन, वचन और काया की ऋजुता।

४ शौच—लोभ की अत्यन्त निवृत्ति। लोभ चार प्रकार का है—जीवनलोभ, आरोग्यलोभ, इन्द्रियलोभ और उपभोगलोभ। लोभ के तीन प्रकार और हैं—(१) स्वद्रव्य का अत्याग (२) परद्रव्य का अपहरण (३) धरोहर की हड़प।[2]

५ सत्य।

६ सयम—प्राणीपीडा का परिहार और इन्द्रिय-विजय। सयम के दो प्रकार हैं—(१) उपेक्षासंयम—राग-द्वेषात्मक चित्तवृत्ति का अभाव। (२) अपहृत सयम—भावशुद्धि, कायशुद्धि आदि।

७ तप।

८ त्याग—सचित्त तथा अचित्त परिग्रह की निवृत्ति।

९ आकिञ्चन्य—शरीर आदि सभी बाह्य वस्तुओं में ममत्व का त्याग।

१० ब्रह्मचर्य—कामोत्तेजक वस्तुओं तथा दृश्यो का वर्जन तथा गुरु की आज्ञा का पालन।[1]

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा विरचित 'द्वादशानुप्रेक्षा' के अन्तर्गत 'धर्म अनुप्रेक्षा' में इन दस धर्मों की व्याख्याएँ प्राप्त हैं। वे उपर्युक्त व्याख्याओं से यत्र-तत्र भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. क्षमा—क्रोधोत्पत्ति के बाह्य कारणों के प्राप्त होने पर भी क्रोध न करना।

२ मार्दव—कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत और शील का गर्व न करना।

३ आर्जव—कुटिलभाव को छोडकर निर्मल हृदय से प्रवृत्ति करना।

४ सत्य—दूसरों को सताप देने वाले वचनो का त्याग कर, स्व और पर के लिए हितकारी वचन बोलना।

५ शौच—कांक्षाओं से निवृत्त होकर वैराग्य मे रमण करना।

६ संयम—व्रत तथा समितियो का यथार्थ पालन, दण्ड-त्याग तथा इन्द्रिय-जय।

७ तप—विषयों तथा कषायो का निग्रह कर अपनी आत्मा को ध्यान और स्वाध्याय से भावित करना।

८ त्याग—आसक्ति को छोडकर पदार्थों के प्रति वैराग्य रखना।

९ आकिञ्चन्य—निस्सग होकर अपने सुख-दुःख के भावो का निग्रह कर निर्द्वन्द्व रूप से विहरण करना।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक पृष्ठ ५९३।

२ वही, पृष्ठ ५९३।

३ वही, पृष्ठ ५९५ ६००।

१०. ब्रह्मचर्य—स्त्री के अग-प्रत्यगो को देखते हुए भी उनमे दुर्भाव न लाना।[1]

आवश्यक चूर्णि के अनुसार इन दसों धर्मों का समवतार मूल गुण (महाव्रत) तथा उत्तर गुणो मे होता है—

सयम का प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरति मे,
सत्य का दूसरे महाव्रत मृषावाद विरति मे,
अकिंचनता का तीसरे महाव्रत अदत्त विरति मे,
ब्रह्मचर्य का चौथे महाव्रत मैथुन विरति में तथा
शेष धर्मों का उत्तर गुणो मे समावेश होता है।[1]

८. (सूत्र १७)

वृत्तिकार ने 'वेयावच्चे' के दो सस्कृत रूप दिए हैं 'वैयावृत्य' और वैयापृत्य'। इनका अर्थ है—सेवा करना, कार्य में व्यापृत होना। प्रस्तुत सूत्र मे व्यक्ति-भेद व समूह-भेद से उसके दस प्रकार बतलाए गए हैं। केवल सघ-वैयावृत्य या सार्धमिक-वैयावृत्य से काम चल सकता था किन्तु विशेष व स्पष्ट अवबोध के लिए इन सभी भेद-प्रभेदो का उल्लेख किया गया है। वास्तव मे ये सभी एक ही धर्म-सघ के अग-प्रत्यग हैं।

तत्त्वार्थ ९।२४ मे निर्दिष्ट वैयावृत्य के दस प्रकारो तथा प्रस्तुत सूत्र के दस प्रकारो मे नाम-भेद तथा क्रम-भेद है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार वैयावृत्य का अर्थ तथा भेद और व्याख्या इस प्रकार है—

वैयावृत्य का अर्थ है—आचार्य, उपाध्याय आदि जब व्याधि, परिषह या मिथ्यात्व से ग्रस्त हो तब इन दोषो का प्रतीकार करना। रोग आदि की स्थिति मे उन्हें प्रासुक औषधि, आहार-पान, वसति, पीठ, फलक, सस्तरण आदि धर्मोपकरण उपलब्ध करना तथा उन्हे सम्यक्त्व मे पुन स्थापित करना वैयावृत्य है। बाह्य द्रव्यो की प्राप्ति के अभाव मे अपने हाथ से कफ, श्लेष्म आदि मलो का अपनयन कर अनुकूलता पैदा करना वैयावृत्य है।

वह दस प्रकार का है—

१ आचार्य का वैयावृत्य—भव्य जीव जिनकी प्रेरणा से व्रतो का आचरण करते हैं, उनको आचार्य कहा जाता है। उनका वैयावृत्य करना।

२ उपाध्याय का वैयावृत्य—जो मुनि व्रत शील और भावना के आधार हैं, उनके पास जाकर विनय से श्रुत का अध्ययन करते हैं उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उनका वैयावृत्य करना।

३ तपस्वी का वैयावृत्य—मासोपवास आदि तप करने वाला तपस्वी कहलाता है। उनका वैयावृत्य करना।

४ शैक्ष का वैयावृत्य—जो श्रुतज्ञान के शिक्षण में तत्पर और व्रतों की भावना मे निपुण है उसे शैक्ष कहते हैं। उसका वैयावृत्य करना।

---

१ षट्प्राभृत, द्वादशानुप्रेक्षा, श्लोक ७१-८१।
कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरगं जदि हवेदि सक्खाद।
ण कुणदि किंचि वि कोह तस्स खमा होदि धम्मोत्ति॥
कुलरूवजादिवुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो मद्दवधम्म हवे तस्स॥
मोत्तूण कुडिलभावं णिम्मलहिदयेण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्म तइयो तस्स दु सभवदि णियमेण॥
परसतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयण।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो हवे सच्च॥
कखाभावणिवित्ति किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं॥
वदसमिदिपालणाए दंडच्चाएण इदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा॥
विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तव होदि णियमेण॥
णिव्वेगतिय भावइ मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो इदि भणिद जिणवरिंदेहि॥
होऊण य णिस्सगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहद।
णिद्दंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किंचण्ह॥
सव्वगं पेच्छतो इत्थीण तासु मुयदि दुब्भाव।
सो बम्हचेरभाव सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि॥
सावयधम्म चत्ता जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो।
सो ण य वज्जदि मोक्ख धम्मं इदि चितये णिच्च॥

१ आवश्यकचूर्णि, उत्तर भाग, पृष्ठ ११७।

५ ग्लान का वैयावृत्त्य—जिसका शरीर रोग आदि से आक्रान्त है, वह ग्लान है। उसका वैयावृत्त्य करना।

६ गण का वैयावृत्त्य—स्थविर मुनियो की सगति को गण कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

७ कुल का वैयावृत्त्य—दीक्षा देने वाले आचार्य की शिष्य-परम्परा को कुल कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

८ सघ का वैयावृत्त्य—श्रमण-समूह को सघ कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

९ साधु का वैयावृत्त्य—चिरकाल से प्रव्रजित साधक को साधु कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

१० मनोज्ञ का वैयावृत्त्य—मनोज्ञ के तीन अर्थ हैं—

१ अभिरूप—जो अपने ही सघ के साधु के वेश में है।

२ जो ससार मे अपनी विद्वत्ता, वाक्-कौशल और महाकुलीनता के कारण प्रसिद्ध है।

३ सत्कारी असयत सम्यक्-दृष्टि।

स्थानाग मे उक्त सार्धमिक और स्थविर 'वैयावृत्त्य' का इसमे उल्लेख नहीं है। उनके स्थान पर साधु और मनोज्ञ ये दो प्रकार निर्दिष्ट हैं। स्थानाग वृत्ति में सार्धमिक का अर्थ साधु किया गया है।[१]

वैयावृत्त्य करने के चार कारण बतलाए गए हैं—

१ समाधि पैदा करना।

२ विचिकित्सा दूर करना, ग्लानि का निवारण करना।

३ प्रवचन वात्सल्य प्रकट करना।

४ सनाथता—नि सहायता या निराधारता की अनुभूति न होने देना।[२]

व्यवहार भाष्य मे प्रत्येक वैयावृत्त्य स्थान के तेरह-तेरह द्वार उल्लिखित हैं, वे ये हैं—

१ भोजन लाकर देना।

२ पानी लाकर देना।

३ सस्तारक देना।

४ आसन देना।

५ क्षेत्र और उपधि का प्रतिलेखन करना।

६ पाद प्रमार्जन करना अथवा औषधि पिलाना।

७ आख का रोग उत्पन्न होने पर औषधि लाकर देना।

८ मार्ग में विहार करते समय उनका भार लेना तथा मर्दन आदि करना।

९ राजा आदि के क्रुद्ध होने पर उत्पन्न क्लेश से निस्तार करना।

१० शरीर को हानि पहुचाने वाले तथा उपधि को चुरानेवालों से सरक्षण करना।

११ बाहर से आने पर दड (यष्टि) ग्रहण कर रखना।

१२ ग्लान होने पर उचित व्यवस्था करना।

१३ उच्चार पात्र, प्रश्रवण पात्र और श्लेष्म पात्र की व्यवस्था करना।

प्रस्तुत प्रसग में तीर्थंकर के वैयावृत्त्य का कोई उल्लेख नही है। शिष्य ने आचार्य से पूछा—'क्या तीर्थंकर का वैयावृत्त्य नहीं करना चाहिए ? क्या वैसा करने से निर्जरा नहीं होती ? आचार्य ने कहा—'दस व्यक्तियों के मध्य में आचार्य का ग्रहण किया गया है। इसमें तीर्थंकर समाविष्ट हो जाते है। यहा आचार्य शब्द केवल निर्देशन के लिए है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४९ : समानो धर्म: सधर्मस्तेन चरन्तीति सार्धमिका: साधव ।

२ तत्त्वार्थराजवार्तिक (दूसरा भाग) पृष्ठ ६२४ : समाध्याधान-विचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थम् ।

आचार्य का अर्थ है—स्वय आचार का पालन करना तथा दूसरो से उसका पालन करवाना। इस दृष्टि से तीर्थंकर स्वय आचार्य होते हैं। स्कन्दक ने गौतम गणधर से पूछा—'आपको किसने यह अनुशासन दिया ?'

गौतम ने कहा—'धर्माचार्य ने।'

यहाँ आचार्य का अभिप्राय तीर्थंकर से है।[1]

पांचवें स्थान के दो सूत्रों [४४-४५] में अग्लान भाव से दस प्रकार के वैयावृत्य करने वाला, महान कर्मक्षय करने वाला और आत्यन्तिक पर्यवसान वाला होता है—ऐसा कहा है।

९. (सू० १८)

परिणाम का अर्थ है—एक पर्याय से दूसरे पर्याय मे जाना। इसमें सर्वथा विनाश और सर्वथा अवस्थान—ध्रौव्य नही होता। यह कथन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से परिणम का अर्थ है—सत् पर्याय का विनाश और असत् पर्याय का उत्पाद।

प्रस्तुत सूत्र मे जीव के दस परिणाम बतलाए हैं। वे जीव के परिणमनशील अध्यवसाय या अवस्थाए हैं।

इन दस परिणामों के अवान्तर भेद चालीस हैं—

१ गति परिणाम—चार गतिया—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

२ इन्द्रिय परिणाम—पाच इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

३ कषाय परिणाम—चार कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ।

४ लेश्या परिणाम—छह लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल।

५ योग परिणाम—तीन योग—मन, वचन और काय।

६ उपयोग परिणाम—दो उपयोग—साकार और अनाकार।

७ ज्ञान परिणाम—पांच ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल।

८ दर्शन परिणाम—तीन दर्शन—चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधिदर्शन।

९ चारित्र परिणाम—पाच चारित्र—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसपराय और यथाख्यात।

१०. वेद परिणाम—तीन वेद—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसकवेद।

१० (सू० १९)

पुद्‌गलों के परिणाम (अव्यवस्थान्तर) को अजीव परिणाम कहा जाता है। वह दस प्रकार का है[2]—

१ बधन परिणाम—पुद्‌गलों का परस्पर सम्बन्ध स्निग्धता और रूक्षता के कारण होता है। (देखें—तत्त्वार्थ सूत्र ५।३२-३६)

बधन तीन प्रकार का होता है—

१ प्रयोग बध—जीव के प्रयोग से होने वाला बध।

२ विस्रसाबध—स्वभाव से होने वाला बध।

३ मिश्र बध—जीव के प्रयत्न और स्वभाव—दोनों से होने वाला बध।

२ गति परिणाम—पुद्‌गलों की गति। यह दो प्रकार का है—

१ स्पृशद्‌गतिपरिणाम—प्रयत्न विशेष से क्षेत्र-प्रदेशो का स्पर्श करते हुए गति का होना।

२ अस्पृशद्‌गतिपरिणाम—क्षेत्रप्रदेशों का स्पर्श न करते हुए गति का होना।

---

१ व्यवहारभाष्य १०।१२३-१३३।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र ४५०, ४५१।

जैसे—बहुत ऊचे मकान से पत्थर गिराने पर उसके गिरने का कालभेद तथा अनन्तरत गति करने वाले पदार्थों का देशान्तर प्राप्ति का कालभेद प्राप्त होता है—यह अस्पृशद्गति परिणाम है।

विकल्प से इसके दो भेद और होते हैं—

दीर्घगति परिणाम और ह्रस्वगति परिणाम।

३ सस्थान परिणाम—सस्थान का अर्थ है—आकृति। उसके दो प्रकार हैं—

१ इत्यस्थ—नियत आकार वाला। इसके पाच प्रकार हैं—परिमडल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयात।

२ अनित्यस्थ—अनियत आकार वाला।

४ भेद परिणाम—यह पाँच प्रकार का है—

० खडभेद—मिट्टी की दरार।

० प्रतरभेद—जैसे—अभ्रपटल के प्रतर।

० अनुतटभेद—वास या ईक्षु को छीलना।

० चूर्णभेद—चूर्ण, जैसे—आटा।

० उत्करिकाभेद—काठ आदि का उत्किरण।

तत्त्वार्थवार्तिक मे इसके छह भेद निर्दिष्ट हैं। उनमे इन पाच के अतिरिक्त एक चूर्णिका को और माना है। चूर्ण और चूर्णिका का अर्थ इस प्रकार दिया है—

१ चूर्ण—जौ, गेहू आदि के सत्तू में होनेवाली कणिका।

२ चूर्णिका—उड़द मूंग आदि का आटा।[1]

५ वर्णपरिणाम—इसके पाच प्रकार हैं—कृष्ण, पीत, नील, रक्त और श्वेत।

६ गध परिणाम—इसके दो प्रकार हैं—सुगध और दुर्गन्ध।

७ रस परिणाम—इसके पाच प्रकार हैं—तिक्त, कटु, कसैला, आम्ल और मधुर।

८ स्पर्श परिणाम—इसके आठ प्रकार हैं—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष।

९ अगुरुलघुपरिणाम—अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम। भाषा, मन और कर्म वर्गणा के पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम वाले होते हैं। यह निश्चय नय की अपेक्षा से है। व्यवहार नय की अपेक्षा मे इसके चार भेद होते हैं—

१ गुरुक—पत्थर आदि। इसका स्वभाव है नीचा जाना।

२ लघुक—धूम आदि। इसका स्वभाव है ऊचा जाना।

३ गुरुलघुक—वायु आदि। इसका स्वभाव है—तिर्यग् गति करना।

४ अगुरुलघुक—जो न गुरु होता है और न लघु, जैसे—भाषा आदि की वर्गणाए।

१० शब्द परिणाम—देखें स्थानाग २।२।

इनमें वर्ण, गध, रस और स्पर्श—ये चार पुद्गल के गुण हैं और शेष परिणाम उनके कार्य हैं।

११ (सू० २०, २१)

जैन परम्परा मे अस्वाध्यायिक वातावरण में स्वाध्याय करने का निषेध है। आवश्यक सूत्र (४) के अनुसार अस्वाध्यायिक मे स्वाध्याय करना ज्ञान का अतिचार है। इस निषेध के पीछे अनेक कारण रहे हैं। उनका आकलन व्यवहारभाष्य, निशीथभाष्य तथा स्थानागवृत्ति आदि अनेक ग्रन्थो मे प्राप्त है। निषेध के कुछेक कारण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१ श्रुतज्ञान की अभक्ति। २ लोकविरुद्ध व्यवहार। ३ प्रमत्तछलना। ४ विद्या साधन का वैगुण्य। ५ श्रुतज्ञान के आचार की विराधना। ६ अहिसा। ७ उड्डाह। ८ अप्रीति।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक ५।२४, पृष्ठ ४८९ चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादि। चूर्णिका माषमुद्गादीनाम्।

प्रथम पांच कारण उक्त दोनो भाष्यो मे निर्दिष्ट हैं[1] और शेष तीन कारण भाष्य तथा फलित रूप मे प्राप्त होते हैं।

ग्राममहत्तर की मृत्यु के समय स्वाध्याय का वर्जन न करने पर लोक गर्हा करते थे—

'हमारे गाव का मुखिया चल बसा है और ये साधु पढने मे लगे हुए है। इन्हे उसका कोई दु ख ही नही है।' इस लोक गर्हा से वचने के लिए ऐसे प्रसगो पर स्वाध्याय का वर्जन किया जाता था।[2]

इसी प्रकार युद्ध आदि के समय भी स्वाध्याय का वर्जन न करने पर लोक उड्डाह (अपवाद) करते थे—'हमारे शिर पर आपदाओ के पहाड टूट रहे हैं, पर ये साधु अपनी पढाई मे लीन हैं।' इस उड्डाह से बचने के लिए भी स्वाध्याय का वर्जन किया जाता था।[3]

भाष्य-निर्दिष्ट स्वाध्याय-वर्जन के कारणो का अध्ययन करने पर सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वाध्याय-वर्जन के बहुत सारे कारण उस समय की प्रचलित लौकिक और अन्य साप्रदायिक मान्यताओं पर आधृत हैं व्यवहार पालन की दृष्टि में इन्हे स्वीकार किया गया है। इनमे सामयिक स्थिति की झलक अधिक है।

कुछ कारण ऐसे भी हैं जिनका सबध लोक व्यवहार से नही है, जैसे— कुहासा गिरने पर स्वाध्याय का वर्जन अहिंसा की दृष्टि से किया गया है। कुहासा गिरने के समय सारा वातावरण अप्काय के जीवो से आक्रान्त हो जाता है। उस समय मुनि को किसी प्रकार की कायिकी और वाचिकी चेष्टा नही करनी चाहिए।[4]

व्यन्तर आदि देवताओ के द्वारा या निर्घात आदि के पीछे भी व्यन्तर आदि देवताओं के हाथ होने की कल्पना की गई है। वे व्यन्तर साधु को ठग सकते हैं, इस सभावना से भी वैसे प्रसगों मे स्वाध्याय का वर्जन किया गया है।

अतीत की बहुत सारी मान्यताए, गर्हा के मानदड और अप्रीति के निमित्त आज व्यवहृत नहीं हैं। इसलिए अस्वाध्यायिक के प्रकरण का जितना ऐतिहासिक मूल्य है उतना व्यावहारिक मूल्य नहीं है। प्रस्तुत प्रकरण मे इतिहास के अनेक तथ्य उद्घाटित होते हैं।

इस तथ्य को ध्यान मे रखकर इसे विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत स्थान के वीसवें सूत्र मे दस प्रकार के आतरिक्ष अस्वाध्यायिक बतलाए गए हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. उल्कापात—पुच्छल तारे आदि का टूटना। उल्कापात के समय आकाश मे रेखा दीख पडती है।

निशीथ भाष्य मे निर्दिष्ट है कि कुछ उल्काएँ रेखा खींचती हुई गिरती हैं और कुछ केवल उद्योत करती हुई गिरती हैं।[5]

२ दिग्दाह—पुद्गलो की विचित्र परिणति के कारण कभी-कभी दिशाए प्रज्वलित जैसी हो उठती हैं। उस समय का प्रकाश छिन्नमूल होता है—भूमि पर स्थित नही दिखाई देता। किन्तु आकाश में स्थित दीखता है।

३ गर्जन—बादलो का गर्जन। व्यवहारभाष्य मे इसके स्थान पर गुजित शब्द है। उसका अर्थ है—गुजमान महाध्वनि।[6]

---

१ (क) व्यवहारभाष्य ७।३९६
सुयनाणमि अभत्ती लोगविरुद्धं पमत्तछलणा य।
विज्जासाहणवेगुण धम्मयाए य मा कुणसु॥
(ख) निशीथभाष्य गाथा ६१७१
सुयनाणम्मि अभत्ती लोगविरुद्ध पमत्तछलणा य।
विज्जासाहण वइगुण्ण धम्मयाए य मा कुणसु॥

२ निशीथभाष्य गाथा ६०९७
महतरपगते वहुपक्खिते, व सत्तघरमंतरमते वा।
णिद्दुक्ख त्ति य गरहा, ण करेंति सणीयग वा वि॥

३ निशीथभाष्यगाथा ६०९५
सेणाहिव भोइ महयर, पुसित्थीण य मल्लजुद्धे वा।
लोट्ठादि-भडणे वा, गुज्झमुड्डाहमचियत्तं॥
चूर्णि—अणोभणेज्ज,—अम्हे आवइपत्ताण इमे सज्झाय करेंतित्ति अचियत्तं हवेज्ज

४ व्यवहारभाष्य ७।२७६
पढमंमि सव्वचिट्ठा सज्झातो वा निवारतो नियमा।
सेसेसु असज्झाती चेट्ठा न निवारिया अण्णा॥

५ निशीथभाष्य गाथा ६०८९
उक्का सरेहा पगासजुत्ता वा।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८८
निग्घायगुजिते। वृत्ति—गुञ्जमानो महाध्वनिर्गुंजितम्।

४ विद्युत्—बिजली का चमकना।

५ निर्घात—बादलो से आच्छादित या अनाच्छादित आकाश मे व्यन्तरकृत महान् गर्जन की ध्वनि।[1] यहा गर्जित और विद्युत् की भाति निर्घात भी स्वाभाविक पौद्गलिक परिणति होना चाहिए। इस आधार पर इसका अर्थ होगा—प्रचण्ड शब्द युक्त वायु।

६ यूपक—इसका अर्थ है—चन्द्र-प्रभा और सन्ध्या-प्रभा का मिश्रण।[2]

व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ सध्याच्छेदावरण [सध्या के विभाग का आवरण] किया है।[3]

इसकी भावना यह है कि शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी को चन्द्रमा सध्यागत होता है इसलिए सध्या का यथार्थ ज्ञान नही हो पाता। फलत रात्रि मे स्वाध्याय-काल का ग्रहण नहीं किया जा सकता। अत उस समय कालिक सूत्रों का अस्वाध्यायिक रहता है।[4]

कई आचार्यों का अभिमत है कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया—इन तीन तिथियो मे, सूर्य के उदय और अस्त के समय, ताम्रवर्ण जैसे लाल और कृष्णश्याम अमोघ मोघा [आकाश में प्रलम्ब श्वेत श्रेणिया] होते हैं, उन्हें यूपक कहा जाता है। कुछ आचार्य इसमे अस्वाध्यायिक नही मानते और कुछ मानते हैं। जो मानते हैं उनके अनुसार यूपक में दो प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है।[5]

७ यक्षादिप्त—स्थानागवृत्ति मे इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। व्यवहार भाष्य की वृत्ति के अनुसार इसका अर्थ है—किसी एक दिशा में कभी-कभी दिखाई देने वाला विद्युत् जैसा प्रकाश।[6]

८ धूमिका—यह महिका का ही एक भेद है।

इसका वर्ण धूम की तरह काला होता है।

९ महिका—तुषारापात, कुहासा।

ये दोनों [धूमिका और महिका] कार्तिक आदि गर्भ मासों[7] [कार्तिक, मृगशिर, पौष और माघ] में गिरती हैं।

१० रज उद्घात—स्वाभाविक रूप से चारो ओर धूल का गिरना।

प्रस्तुत स्थान के इक्कीसवें सूत्र मे औदारिक अस्वाध्याय के दस भेद बतलाए हैं। उनमें प्रथम तीन—अस्थि, मास और रक्त—की विचारणा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से इस प्रकार की है।

(१) द्रव्य से—अस्थि, मांस और शोणित। क्वचित्, चर्म, अस्थि, मास और शोणित।

(२) क्षेत्र से—मनुष्य सबधी हो तो सौ हाथ और तिर्यञ्च सम्बन्धी हो तो साठ हाथ।

(३) काल से—मनुष्य सम्बन्धी—मृत्यु का एक अहोरात्र। लड़की उत्पन्न हो तो आठ दिन। लड़का उत्पन्न हो तो सात दिन।

हड्डिया यदि सौ हाथ के भीतर स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु दिन से लेकर बारह वर्षों तक। यदि हड्डिया चिता में दग्ध या वर्षा से प्रवाहित हों तो अस्वाध्यायिक नहीं होता। यदि हड्डिया भूमि से खोदी गई हों तो अस्वाध्यायिक होता है। तिर्यञ्च सम्बन्धी हो तो जन्म-काल से तीसरे प्रहर तक। यदि बिल्ली चूहे आदि का घात करती हो तो एक अहोरात्र तक अस्वाध्यायिक रहता है।

(४) भाव से—नदी आदि सूत्रो के अध्ययन का वर्जन।

४ अशुचिसामन्त—रक्त, मूत्र और मल की गन्ध आती हो और वे प्रत्यक्ष दीखते हो तो अस्वाध्यायिक होती है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५१ निर्घात—साभ्रे निरभ्रे वा गगने व्यन्तरकृतो महागर्जितध्वनि।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५१ सध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च यद् युगपद् भवतस्तत् जुयगोत्ति भणितम्।

३ व्यवहारभाष्य ७।२८६।
संज्झाच्छेयोवरणो उ जुवतो ।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४५१।

५ व्यवहारभाष्य ७।२८६, वृत्तिपत्र ४९।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८४ वृत्ति पत्र ४९ यक्षालिप्त नाम एकस्यांदिशि अन्तरान्तरा यद् दृश्यते विद्युत् सदृश प्रकाश।

७ व्यवहारभाष्य ७।२७८ वृत्ति पत्र ४८ गर्भमासो नाम कार्तिकादि यावत् माघमास।

५ श्मशानसामन्त—शवस्थान के समीप अस्वाध्यायिक होता है।

६-७ चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण—चन्द्रग्रहण में जघन्यत आठ प्रहर और उत्कृष्टत बारह प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है। सूर्यग्रहण मे जघन्यत बारह प्रहर और उत्कृष्टत सोलह प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है।

इनका विस्तार इस प्रकार है—

१ जिस रात्री मे चन्द्रग्रहण होता है उसी रात्री के चार प्रहर और दूसरे दिन के चार प्रहर—इस प्रकार जघन्यत आठ प्रहर का अस्वाध्यायिक होता है। यदि प्रात काल मे चन्द्रग्रहण होता है और चन्द्रग्रहण-काल मे अस्त हो जाता है तो उस दिन के चार प्रहर, उस रात के चार प्रहर और दूसरे दिन के चार प्रहर—इस प्रकार बारह प्रहर होते हैं।

२ यदि सूर्य ग्रहण-काल मे ही अस्त होता है तो उस रात्री के चार प्रहर, चार दूसरे दिन के और चार प्रहर उस रात्री के—इस प्रकार जघन्यत बारह प्रहर होते हैं।

यदि सूर्य-ग्रहण प्रात काल ही प्रारम्भ हो जाता है तो उस दिन-रात के चार-चार प्रहर तथा दूसरे दिन-रात के चार-चार प्रहर—इस प्रकार उत्कृष्टत १६ प्रहर होते हैं।

कई यह मानते हैं कि सूर्य-ग्रहण जिस दिन होता है वह दिन और रात अस्वाध्याय-काल है तथा चन्द्रग्रहण जिस रात मे होता है और उसी रात मे समाप्त हो जाता है, तो वह रात और जब तक दूसरा चन्द्र उदित नही हो जाता तब तक अस्वाध्याय काल है।[1]

व्यवहार भाष्य मे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण को सदैव अस्वाध्याय। (अन्तरिक्ष अस्वाध्याय) मे गिनाया है।[2] स्थानाग सूत्र में वे औदारिक वर्ग मे गृहीत हैं। वृत्तिकार ने बताया है कि ये यद्यपि अन्तरिक्ष से सबधित हैं फिर भी इनके विमान पृथिवीकायिक होने के कारण इन्हे औदारिक माना है।

अन्तरिक्ष वर्ग मे उक्त उल्का आदि आकस्मिक होते हैं और चन्द्र आदि के विमान शाश्वत होते हैं। इस विलक्षणता के कारण ही उन्हे दो भिन्न वर्गों मे रखा गया है।[3] किन्तु पाठ का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आन्तरिक्ष वर्ग वाले सूत्र में दस की सख्या पूर्ण हो जाती है, अत चन्द्रोपराग और सूर्योपराग भी औदारिकता को ध्यान में रखकर उनका समावेश औदारिक वर्ग में किया गया।

८ पतन—राजा, अमात्य, सेनापति, ग्रामभोगिक आदि विशिष्ट व्यक्तियों का मरण।

दडिक के मर जाने पर, जब तक क्षोभ नही मिट जाता तबतक अस्वाध्यायिक रहता है। दूसरे दण्डिक की नियुक्ति हो जाने पर भी एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय-काल रहता है। इसी प्रकार दूसरे-दूसरे विशिष्ट व्यक्तियों के मर जाने पर भी एक अहोरात्र का अस्वाध्याय काल जानना चाहिए।

९ राज-व्युद्ग्रह—राजा आदि के परस्पर विग्रह हो जाने पर जब तक विग्रह उपशान्त नहीं होता तब तक अस्वाध्याय-काल रहता है।

वृत्तिकार ने सेनापति, ग्राममहत्तर, प्रसिद्ध स्त्री-पुरुष आदि के परस्पर कलह हो जाने पर भी अस्वाध्याय-काल माना है।[4]

व्यवहार भाष्य के वृत्तिकार ने यह भी बताया है कि जब दो ग्रामो के बीच परस्पर वैमनस्य हो जाने पर नवयुवक अपने-अपने ग्राम का पक्ष लेकर पथराव करते हैं अथवा हाथापाई करते हैं, तब स्वाध्याय नहीं करना चाहिए तथा मल्लयुद्ध आदि प्रवर्तित होते समय भी अस्वाध्याय-काल रहता है। व्युद्ग्रह के प्रारभ से लेकर उपशान्त न होने तक अस्वाध्याय-काल है। जब सारा वातावरण भयमुक्त हो जाता है तब भी एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय-काल रहता है।[5]

---

१ व्यवहारभाष्य, सप्तमभाग वृत्ति पत्र ४९, ५०।
२ वही, वृत्तिपत्र ५०।
३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५२।
४ वही, पत्र ४५२।
५ व्यवहारभाष्य, सप्तमभाग, पत्र ५१।

१० बस्ती के अन्दर मनुष्य आदि का उद्भिन्न कलेवर हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्यायिक रहता है और अनुद्भिन्न होने पर भी, गंध आदि के कारण सौ हाथ तक अस्वाध्यायिक रहता है। जब उसका परिष्ठापन हो जाता है तब वह स्थान शुद्ध हो जाता है।

व्यवहार सूत्र [उद्देशक ७] में बतलाया गया है कि मुनि अस्वाध्यायिक वातावरण में स्वाध्याय न करे, किन्तु स्वाध्यायिक वातावरण में ही स्वाध्याय करे। भाष्यकार ने अस्वाध्यायिक के दो प्रकार बतलाए हैं—आत्म-समुत्थित और पर-समुत्थित।[1]

अपने शरीर में व्रण आदि से रक्त झरना—यह आत्म-समुत्थित अस्वाध्यायिक है।

परसमुत्थ अस्वाध्यायिक पांच प्रकार का होता है—

१ संयमघाती २ औत्पातिक ३ देवप्रयुक्त ४ व्युद्ग्रह ५ शरीर संबंधी।

१. संयमघाती—इसके तीन भेद हैं—

१ महिका २ सचित्त रज ३ वर्षा —इसके तीन प्रकार हैं—

० बुद्बुद्—जिस वर्षा से पानी में बुलबुले उठते हो।

० बुद्बुद् सहित वर्षा।

० फुआरवाली वर्षा।

निशीथ चूर्णि के अनुसार महिका सूक्ष्म होने के कारण गिरने के समय ही सर्वत्र व्याप्त होकर सब कुछ अप्काय से भावित कर देती है। इसलिए महिका-पात के समय ही स्वाध्याय, गमनागमन आदि चेष्टाएं वर्जनीय हैं।[2]

सचित्त रज यदि निरंतर गिरता है तो वह तीन दिन के पश्चात् सब कुछ पृथ्वीकाय से भावित कर देता है अतः तीन दिन के पश्चात् जितने समय तक सचित्त रज-पात हो उतने समय तक स्वाध्याय वर्जित है।[3]

वर्षा के तीनों प्रकार क्रमशः तीन, पांच और सात दिनों के पश्चात् सब कुछ अप्कायभावित कर देते हैं। अतः तीन, पांच और सात दिनों के पश्चात् जितने दिनों तक वर्षापात हो उतने समय तक स्वाध्याय वर्जित है।[4]

इनका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन चार दृष्टियों से वर्जन किया गया है।

द्रव्य दृष्टि से—महिका, सचित्त रज और वर्षा—ये वर्जनीय हैं।

क्षेत्र दृष्टि से—जिस क्षेत्र में ये गिरते हैं, वह क्षेत्र वर्जनीय है।

कालदृष्टि से—जितने समय तक गिरते हैं, उतने समय तक स्वाध्याय आदि वर्जनीय हैं।

भाव दृष्टि से—गमनागमन, स्वाध्याय, प्रतिलेखन आदि वर्जनीय हैं।[5]

२ औत्पातिक—इसके पांच प्रकार हैं—

(१) पांशुवृष्टि (२) मांस वृष्टि (३) रुधिरवृष्टि (४) केशवृष्टि (५) शिलावृष्टि।

मांस और रुधिर वृष्टि के समय एक अहोरात्र और शेष तीनों में जब तक उनकी वृष्टि होती हो तब तक सूत्र का स्वाध्याय वर्जित है।

३ देवप्रयुक्त—

(१) गन्धर्वनगर—चक्रवर्ती आदि के नगर में उत्पात होने की संभावना होने पर उस उत्पात का संकेत देने के लिए देव उसी नगर पर एक दूसरे नगर का निर्माण करते हैं और वह स्पष्ट दिखाई देता रहता है। (२) दिग्दाह (३) विद्युत् (४) उल्का (५) गर्जित (६) यूपक (७) चन्द्रग्रहण (८) सूर्यग्रहण (९) निर्घात (१०) गुञ्जित।

इनमें गन्धर्व नगर निश्चित ही देवकृत होता है, शेष दिग्दाह आदि देवकृत भी होते हैं और स्वाभाविक भी।[6] देवकृत

---

१ व्यवहार भाष्य ७।२६८ . असज्झाइयं च दुविहं आयसमुत्थं च परसमुत्थं च ॥

२ निशीथभाष्य गाथा ६०८२, ६०८३ चूर्णि—

३,४ वही, गाथा ६०८२, ६०८३।

५ निशीथभाष्य गाथा ६०८३।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८५।

में स्वाध्याय का निषेध है किन्तु जो स्वाभाविक होते हैं उनमे स्वाध्याय का वर्जन नहीं होता। अमुक गर्जन आदि देवकृत हैं अथवा स्वाभाविक इसका निर्णय नही किया जा सकता। इसलिए स्वाभाविक गर्जन आदि मे भी स्वाध्याय आदि का वर्जन किया जाता है।

इसी प्रकार सूर्य के अस्त होने पर (एक मुहूर्त्त तक), आधी रात में सूर्योदय से एक मुहूर्त्त पूर्व और मध्यान्ह मे भी स्वाध्याय वर्जित है।

चैत्र की पूर्णिमा, आषाढ की पूर्णिमा, आसोज की पूर्णिमा और कार्तिक की पूर्णिमा तथा उनके साथ आने वाली प्रतिपदा को भी स्वाध्याय नही करना चाहिए। क्योंकि इन चार तिथियो मे बडे उत्सवों का आयोजन होता है। साथ-साथ जिस देश में जो-जो महान उत्सव जितने दिन तक होते हैं, उतने दिनो तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए। जिस उत्सव में अनेक प्राणियों का वध होता हो, उस महोत्सव के आरम्भ से लेकर पूर्ण होने तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

४ व्युद्ग्रह—दो राजा परस्पर लडते हों, दो सेनापति लडते हो, मल्लयुद्ध होता हो, दो ग्रामो के बीच कलह होता हो, अथवा लोग परस्पर लडते हो—मारपीट करते हो तथा रज पर्व [होली जैसे पर्व] के दिनो मे भी स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए।

राजा की मृत्यु के पश्चात् जब तक दूसरे राजा का अभिषेक नहीं हो जाए, तब तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए। क्योंकि लोगो के मन में, विशेषत राजवर्गीय लोगो के मन मे यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि आज हम तो विपत्ति से गुजर रहे हैं और ये पठन-पाठन कर रहे हैं। राजा की मृत्यु का इन्हें शोक नही है।

इन सभी व्युद्ग्रहो मे, जितने काल तक व्युद्ग्रह रहे उतने दिन तक, तथा व्युद्ग्रह के उपशान्त होने पर एक अहोरात्र तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

ग्राम का स्वामी, ग्राम का प्रधान, बहुपरिवार वाले व्यक्ति अथवा शय्यातर की मृत्यु होने पर [अपने उपाश्रय से यदि सात घर के भीतर हो तो] एक अहोरात्र तक अस्वाध्यायिक रहता है। ऐसी वेला में स्वाध्याय आदि करने पर लोगों मे गर्हा होती है, अप्रीति होती है।

५ शरीर सम्बन्धी—शारीरिक अस्वाध्याय के दो प्रकार हैं—(१) मनुष्य सम्बन्धी, (२) तिर्यञ्च सम्बन्धी।

मनुष्य या तिर्यञ्च का कलेवर, रुधिर आदि पडा हो तो स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए।

कुछ विशेष—

प्रकृति में अनेक प्रकार की विचित्र घटनाए घटित होती हैं। इन घटनाओ की अद्भुतता तथा ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रों में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तनों को शुभ-अशुभ मानने की प्रवृत्ति समूचे ससार मे रही है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वृष्टियो, आकाशगत अनेक दृश्यों एव बिजली से सम्बन्धित घटनाओं से भी शुभ-अशुभ की कल्पनाए होती हैं।

ग्रीस तथा रोम मे भूकम्प, रक्तवर्षा, पाषाणवर्षा तथा दुग्धवर्षा को अत्यन्त अशुभ माना गया है[1]।

जापान मे भूकम्प, बाढ़ तथा आधी को युद्ध का सूचक माना जाता रहा है[2]।

बेबीलोन मे वर्ष के प्रथम मास मे नगर पर धूलि का गिरना तथा भूकम्प अशुभ माने जाते हैं[3]।

ईरान मे मेघ गर्जन, बिजली की चमक तथा धूलि मेघो को अशुभ माना जाता है[4]।

दक्षिण पूर्वी अफ्रीका में अशनिवृष्टि, करकावृष्टि को अशुभ का द्योतक माना जाता रहा है[5]।

इङ्गलैण्ड के देहातों में कडक के साथ बिजली का चमकना ग्राम के प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु का सूचक माना जाता है[6]।

---

1 Dictionary of Greek and Roman antiquities, Page, 417
2 Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol 4, Page 806
3 The Book of the Zodiac, page 119
4 The wild Rue, Pages 99-100
5 The History of the Mankind, Vol I Page 56
6 Encylopedia of Superstitions, Page 196.

अफ्रीका और पोलैण्ड[1] तथा रोम एव चीन[2] मे उल्कादर्शन को अशुभ माना जाता है।

इस्लाम धर्म मे उल्का को भूत-पिशाच तथा दैत्य के रूप मे माना गया है[3]।

अथर्ववेदसहिता मे भूकम्प, भूमि का फटना, उल्का, धूमकेतु, सूर्यग्रहण आदि को अशुभ माना है[4]।

ब्राह्मण ग्रन्थो मे धूलि, मास, अस्थि एव रुधिर की वर्षा, आकाश में गन्धर्व-नगरों का दर्शन अशुभ के द्योतक माने गए हैं[5]।

वाल्मीकि रामायण मे रुधिरवृष्टि को अत्यन्त अशुभ माना गया है[6]।

इसी प्रकार उत्तरवर्ती सस्कृत काव्यो मे भूप्रकम्पन, उल्कापात, रुधिरवृष्टि, करकावृष्टि, दिग्दाह, महावात, वज्रपात, धूलिवर्षा आदि-आदि को अशुभ माना गया है।

लगता है, इन लौकिक मान्यताओं के आधार पर अस्वाध्यायिक की मान्यता का प्रचलन हुआ है।

अस्वाध्यायिक के विशेष विवरण के लिए देखें—

- व्यवहार भाष्य ७।२६६-३२० ।
- निशीथभाष्य गाथा ६०७४-६१७९ ।
- आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १३६५-१३७५ ।

१२ (सू० २४)

देखें—दसवेआलिय ८।१५ के टिप्पण।

१३. (सू० २५)

प्रस्तुत सूत्र मे गगा-सिंधू मे मिलने वाली दस नदियो के नामोल्लेख हैं। प्रथम पाच गगा मे और शेष पाच सिंधू मे मिलने वाली नदिया हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—

१ गगा—इसका उद्गम स्थल हिमालय मे गगोत्री है। यह १५२० मील लम्बी है। यह पश्चिमोत्तर बिहार और बगाल मे बहती हुई बगाल की खाडी मे जा मिलती है।

२ सिंधू—इसका उद्गम-स्थल कैलाश पर्वत का उत्तरीय अचल है। इसकी लम्बाई १८०० मील है और यह भारत के पश्चिम-उत्तर और पश्चिम-दक्षिण मे बहती हुई अरब समुद्र मे जा मिलती है। प्राचीन समय मे यह नदी जिन क्षेत्रो से होकर बहती थी उसे सप्तसिन्धु कहते थे क्योंकि इसमे उस समय छह अन्य नदिया मिलती थीं। उनमे शतद्रु आदि पाच नदिया तथा छठी नदी सरस्वती थी।

३ यमुना—यह गगा मे मिलने वाली सबसे लम्बी नदी है। उद्गम से सगम तक इसकी लम्बाई ८६० मील है। इसका उद्गम हिमालय के यमुनोत्री से हुआ है। यह प्राय विन्ध्य क्षेत्र के पार्वत्य प्रान्तो की उत्तरी सीमा तथा सयुक्त प्रान्त के उपजाऊ मैदानो में बहती हुई इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गगा मे जा मिलती है। इसका जल स्वच्छ तथा कुछ हरा है।

४ सरयू—इसे घाघरा, घग्घर भी कहते हैं। यह ६०० मील लम्बी है और छपरे से १४ मील पूर्व गगा मे जा मिलती है।

---

1 The Golden Bough, Part 3, Page, 65-66.

2 Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol X, Page 371

3 The Golden Bough, Part 3, Page 53

४ अथर्ववेद-सहिता १९।९।८ ।

५ षड्विंशब्राह्मण प्रपाठक ५, खड ८ ।

६ (क) वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड २३।१
तस्मिन् याते जनस्थानादशिवं शोणितोदकम् ।
अभ्यवर्षन् महामेघस्तुमुलो गर्दभारुणः ॥
(ख) वही, युद्धकांड ३५।२५, २६, ४१।३३, ५७।३८, ६६।४१, १०८।२१ ।

५ आपी (राप्ती ?)—राप्ती का उद्गम नेपाल राज्य के उत्तरी ऊची पर्वतमाला से होता है। यह वरहज (?) के पास घाघरा नदी मे जा मिलती है।

६ कोशी—इसके दो नाम और हैं—कौशिकी और सप्त-कौशिकी। सम्भव है, इसका नाम किसी ऋषिकन्या के आधार पर पडा हो। नेपाल के पूर्वी भाग मे हिमालय से निकली हुई अनेक नदियो के योग से इसका निर्माण हुआ है। यह कुल ३०० मील लम्बी है, परन्तु भारत मे केवल ८४ मील तक प्रवाहित होकर, कोलगाव से कुछ उत्तर मे गगा में जा मिलती है। यह नदी अपने वेग, बाढ और मार्ग बदलने के लिए प्रसिद्ध है।

७ मही—यह एक छोटी नदी है जो पटना के पास हाजीपुर मे गगा से मिलती है। गण्डक नदी भी वही गगा मे मिलती है।

८ शतद्रु—इसको 'सतलज' भी कहते हैं। यह नौ सौ मील लम्बी है। इसका उद्गम स्थल मानसरोवर है। यह अनेक धाराओ से मिलती हुई पीठनकोट के पास सिन्धु नदी मे जा मिलती है।

९ वितस्ता—इसका वर्तमान नाम झेलम है। यह नदी कश्मीर घाटी के उत्तरपूर्व मे सीमास्थित पहाडो से निकल कर उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। कई छोटी नदियो को साथ लिए, कश्मीर और पजाव मे वहती हुई, यह नदी झग जिले मे चिनाव नदी मे जा मिलती है और उसके साथ सिन्धू मे जा गिरती है। इसकी लम्बाई ४५० मील है।

१० विपासा—इसे वर्तमान मे व्यास कहते है। यह २९० मील लम्बी है और पजाव की पाचो नदियो मे सबसे छोटी है। यह कपूरथला की दक्षिण सीमा पर सतलज नदी मे जा मिलती है। कहा जाता है कि व्यास की सुन्दर स्तुति सुनकर इस नदी ने सुदामा की सेना को रास्ता दिया था। अत इसका नाम व्यास पडा।

११ ऐरावती—इसका प्राचीन नाम 'परुष्णी' भी था। वर्तमान मे इसे 'रावी' कहते हैं। यह हिमालय के दक्षिण अञ्चल से निकलकर कश्मीर और पजाव मे वहती है। यह ४५० मील लम्बी है। यह सरायसिन्धू से कुछ ही आगे बढने पर चिनाव नदी मे जा मिलती है।

१२ चन्द्रभागा—इसको वर्तमान मे 'चिनाव' कहते हैं। चन्द्रा और भागा—इन दो नदियो से मिलकर यह नदी वनी है। यह अनेक नदियो को अपने साथ मिलाती हुई मुल्तान की दक्षिणी सीमा पर सतलज नदी मे जा मिलती है। इसकी लम्बाई लगभग ९०० मील है।

१४ (सू० २७)

१ चपा—यह अग जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहिचान भागलपुर से २४ मील दूर पर स्थित 'चम्पापुर' और चम्पानगर से की है।

देखें उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३८०, ३८१।

२ मथुरा—यह सूरसेन देश की राजधानी थी। वतमान मथुरा के नैऋत्य कोण मे पाच माइल पर बसे हुए महोली गांव से इसकी पहचान की गई है।

मद्रास प्रान्त मे 'वैगई' नदी के किनारे वसे हुए गांव को भी मथुरा कहा जाता था। वहा पाँड्यराज की राजधानी थी। वर्तमान मे जो 'मदुरा' नाम से प्रसिद्ध है, उसका प्राचीन नाम मथुरा था।

३ वाराणसी—यह काशी जनपद की राजधानी थी। नौवें चक्रवर्ती महापद्म यहाँ से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७६, ३७७।

४ श्रावस्ती—यह कुणाल जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहचान सहेर-महेर से की जाती है। तीसरे चक्रवर्ती 'मघवा' यहा से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३८४, ३८५।

५ साकेत—यह कोशल जनपद की राजधानी थी। प्राचीन काल मे यह जनपद दो भागों में विभक्त था—उत्तर

कोशल और दक्षिण कोशल। सरयू नदी पर बसी हुई अयोध्या नगरी दक्षिण कोशल की राजधानी थी और राप्ती नदी पर बसी हुई श्रावस्ती नगरी उत्तर कोशल की राजधानी थी।

बौद्ध ग्रन्थों मे यह माना गया है कि प्रसेनजित कोशल राजा बिम्बिसार से महापुण्य श्रेष्ठी धनजय को साथ ले अपने नगर श्रावस्ती की ओर जा रहा था। उसकी इच्छा थी कि ऐसे पुण्यवान् व्यक्ति को अपने नगर मे बसाया जाए। जब वे श्रावस्ती से सात योजन दूर रहे तब सध्या का समय हो गया। वे वही रुक गए। धनजय ने राजा प्रसेनजित से कहा—मैं नगर में बसना नही चाहता। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यहीं बस जाऊ।' राजा ने आज्ञा दे दी। धनजय ने वहा नगर बसाया। वहा साय ठहरा गया था, इसलिए उस नये नगर का नाम साकेत रखा गया।[1] भरत और सगर ये दो चक्रवर्ती यहा से प्रव्रजित हुए।

६ हस्तिनापुर—यह कुरु जनपद की राजधानी थी। इसकी पहचान मेरठ जिले के मवाना तहसील मे मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में स्थित हस्तिनापुर गाव से की गई है। इसका दूसरा नाम नागपुर था।

सनत्कुमार चक्रवर्ती तथा शाति, कुथु और अर—ये तीन चक्रवर्ती तथा तीर्थंकर यहा से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७४।

७ काम्पिल्य—यह पाञ्चाल जनपद की राजधानी थी। कन्निघम ने इसकी पहचान उत्तरप्रदेश के फरुखाबाद जिले में फतेहगढ से २८ मील उत्तर-पूर्व, गगा के समीप मे स्थित 'काम्पिल' से की है। कायमगज रेलवे स्टेशन से यह केवल पाच मील दूर है। दसवें चक्रवर्ती हरिषेण यहा से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७३, ३७४।

८ मिथिला—देखें उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७१, ३७२, ३७३।

९ कौशाम्बी—यह वत्स जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहचान इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम में स्थित 'कोसम' गाव से की है।

देखें उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७९, ३८०।

१० राजगृह—यह मगध जनपद की राजधानी थी। महाभारत के सभापर्व मे इसका नाम 'गिरिव्रज' भी दिया है। महाभारतकार तथा जैन ग्रन्थकार यहा पाच पर्वतों का उल्लेख करते हैं। किंतु उनके नामो मे मतभेद है—

महाभारत—वैहार [वैभार], वाहार, वृषभ, ऋषिगिरि, चैत्यक।

वायुपुराण—वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज, रत्नाचल।

जैन—वैभार, विपुल, उदय, सुवर्ण, रत्नगिरि।

सम्भव है इन्हीं पर्वतों के कारण राजगृह को 'गिरिव्रज' कहा गया हो। जयधवला मे उद्धृत श्लोकों तथा तिलोयपण्णत्ती में राजगृह का एक नाम 'पचशैलपुर' और 'पचशैलनगर' मिलता है। उनमे कुछ पर्वतो के नाम भी भिन्न हैं—

विपुल, ऋषि, वैभार, छिन्न और पाडु।[2]

वर्तमान मे इसका नाम 'राजगिर' है। यह बिहार से लगभग १३-१४ मील दक्षिण में है। आवश्यक चूर्णि मे यह वर्णन है कि पहले यहा क्षितिप्रतिष्ठित नाम का नगर था। उसके क्षीण होने पर जितशत्रु राजा ने इसी स्थान पर 'चनकपुर' नगर बसाया। तदनन्तर वहा ऋषभपुर नगर बसाया गया। बाद मे 'कुशाग्रपुर'। इसके पूरे जल जाने के बाद श्रेणिक के पिता प्रसेनजित ने राजगृह नगर बसाया। भगवती २।११२, ११३ मे राजगृह में उष्ण झरने का उल्लेख आता है और उसका नाम 'महातपोपतीरप्रभ' है। चीनी प्रवासी फाहियान और ह्युयेन्सान ने अपनी डायरी मे इन उष्ण झरनो को देखने का उल्लेख करते हैं। बौद्ध ग्रन्थो में इन उष्ण झरनों को 'तपोद' कहा है।

ग्यारहवें चक्रवर्ती 'जय' यहा से प्रव्रजित हुए थे।

---

१ धम्मपद, अट्ठकथा।

२ कषायपाहुड १, पृष्ठ ७३, तिलोयपण्णत्ती १।६४-६७।

१५ (सू० २८)

प्रस्तुत सूत्र मे दस राजधानियो मे दस राजाओ ने मुनिदीक्षा ली, इस प्रकार का सामान्य उल्लेख किया है। किन्तु किस राजा ने कहा दीक्षा ली, इसका कोई उल्लेख नही है और न ही राजधानियो तथा राजाओ का क्रमश उल्लेख है। वृत्तिकार ने आवश्यक निर्युक्ति और निशीथ भाष्य के आधार पर प्रस्तुत सूत्र की स्पष्टता की है। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार चक्रवर्तियो के जन्म-स्थान इस प्रकार हैं[1]—

१ भरत—साकेत। २ सगर—साकेत। ३ मघवा—श्रावस्ती। ४-८ सनत्कुमार, शाति, कुथु अर और सुभूम—हस्तिनागपुर। ९ महापद्म—वाराणसी। १० हरिषेण—कापिल्य। ११ जय—राजगृह। १२ ब्रह्मदत्त—कापिल्य।

इनमे सुभूम और ब्रह्मदत्त प्रव्रजित नहीं हुए थे।[2]

निशीथभाष्य मे प्रस्तुत विषय भिन्न प्रकार से वर्णित है। उसके अनुसार बारह चक्रवर्ती दस राजधानियो मे उत्पन्न हुए थे। कौन चक्रवर्ती किस राजधानी मे उत्पन्न हुआ उसका स्पष्ट निर्देश वहा नही है। वहा केवल इतना सा उल्लेख प्राप्त है कि शाति, कुथु और अर—ये तीन एक राजधानी मे उत्पन्न हुए थे और शेष नौ चक्रवर्ती नौ राजधानियो मे उत्पन्न हुए, यह स्वत प्राप्त हो जाता है।[3]

प्रस्तुत सूत्र मे दस चक्रवर्ती राजाओ के प्रव्रज्या-नगरो का उल्लेख है, किन्तु उनके जन्म-नगरो का उल्लेख नहीं है। वृत्तिकार ने लिखा है कि जो चक्रवर्ती जहा उत्पन्न हुए वहीं प्रव्रजित हुए।[4] इस नियम के आधार पर निशीथभाष्य का निरूपण समीचीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत सूत्र मे दस प्रव्रज्या-नगरो का उल्लेख है और उक्त नियम के अनुसार उनके उत्पत्ति-नगर भी वे ही हैं, तब वे दस होने ही चाहिए। आवश्यक निर्युक्ति मे किस अभिप्राय से चक्रवर्तियो के छह उत्पत्ति नगरो का उल्लेख किया है—यह कहना कठिन है।

उत्तराध्ययन मे इन दसो की प्रव्रज्या का उल्लेख है, किन्तु प्रव्रज्या नगरो का उल्लेख नही है।[5]

१६ गोतीर्थ विरहित (सू० ३२)

गोतीर्थ का अर्थ है—तालाब आदि मे गायो के उतरने की भूमि। यह क्रमश निम्न, निम्नतर होती है। लवण समुद्र के दोनो पार्श्वों मे पिचानवें-पिचानवें हजार योजन तक पानी गोतीर्थाकार (क्रमश निम्न, निम्नतर) है। उनके बीच में दस हजार योजन तक पानी समतल है। उसी को 'गोतीर्थ विरहित' कहा गया है।[6]

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ३९७

जम्मण विणीअउज्झा सावत्थी पच हत्थिणपुरमि।
वाणारसि कपिल्ले रायगिहे चेव कपिल्ले ॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४ द्वौ च सुभूमब्रह्मदत्ताभिधानौ न प्रव्रजितौ।

३ (क) निशीथभाष्य गाथा २५९०, २५९१

चपा महुरा वाणारसी य सावत्थिमेव साएव।
हत्थिणपुर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिह ॥
सती कुथू य अरो, तिण्णि वि जिणचक्की एकहिं जाया।
तेण दस होंति जत्थ व, केसव जाया जणाइण्णा ॥

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४ ये च यत्रोत्पन्नास्ते तत्रैव प्रव्रजिता।

५ उत्तराध्ययन १८।३४-४३।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५५ गवां तीर्थं—तडागादाववतारमार्गो गोतीर्थं, ततो गोतीर्थमिव गोतीर्थं—अवतारवती भूमि', तद्वि-रहितं सममित्यर्थ, एतच्च पञ्चनवतियोजनसहस्राण्य-र्वाग्भागत परभागतश्च गोतीर्थरूपां भूमि विहाय मध्ये भवतीति।

१७. उदकमाला (सू० ३३)

उदकमाला का अर्थ है—पानी की शिखा—वेला। यह समुद्र के मध्य भाग में होती है। इसकी चौड़ाई दस हजार योजन की और ऊंचाई सोलह हजार योजन की है।[1]

१८. (सू० ४६)

अनुयोग का अर्थ है व्याख्या। व्याख्येय वस्तु के आधार पर अनुयोग चार प्रकार का है—

१ चरणकरणानुयोग २ धर्मकथानुयोग ३ गणितानुयोग ४ द्रव्यानुयोग।

द्रव्यानुयोग के दस प्रकार हैं—

१ द्रव्यानुयोग—जीव आदि पदार्थों के द्रव्यत्व की व्याख्या। द्रव्य का अर्थ है—गुण-पर्यायवान पदार्थ। जो सह-भावी धर्म है वे गुण कहलाते हैं और जो काल या अवस्थाकृत धर्म होते हैं वे पर्याय कहलाते हैं। जीव मे ज्ञान आदि सह-भावी गुण और मनुष्यत्व, बालत्व आदि पर्यायिकृत धर्म होते हैं, अत वह द्रव्य है।

२ मातृकानुयोग—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को मातृकापद कहते हैं। इसके आधार पर द्रव्यो की विचारणा करना मातृकानुयोग है।

३ एकार्थिकानुयोग—एकार्थवाची या पर्यायवाची शब्दो की व्याख्या। जैसे—जीव, प्राणी, भूत और सत्त्व—ये एकार्थवाची हैं।

४ करणानुयोग—साधनो की व्याख्या। एक द्रव्य की निष्पत्ति में प्रयुक्त होने वाले साधनों का विचार जैसे—घड़े की निष्पत्ति मे मिट्टी, कुभकार, चक्र, चीवर, दड आदि कारण साधक होते हैं, उसी प्रकार जीव की क्रियाओ मे काल, स्वभाव, नियति, कर्म आदि साधक होते हैं।

५ अर्पित-अनर्पित—इस अनुयोग के द्वारा द्रव्य के मुख्य और गौण धर्म का विचार किया जाता है।

द्रव्य अनेक धर्मात्मक होता है, किन्तु प्रयोजनवश किसी एक धर्म को मुख्य मानकर उसकी विवक्षा की जाती है। वह 'अर्पणा' है और शेष धर्मों की अविवक्षा होती है वह 'अनर्पणा' है। उमास्वाति ने अनेक धर्मात्मक द्रव्य की सिद्धि के लिए इस अनुयोग का प्रतिपादन किया है।[2]

६ भावित-अभावित—द्रव्यान्तर से प्रभावित या अप्रभावित होने का विचार।

भावित—जैसे—जीव प्रशस्त या अप्रशस्त वातावरण से भावित होता है। उसमे ससर्ग से दोष या गुण आते हैं। यह जीव की भावित अवस्था है।

अभावित—वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या मे वज्रतडुल का उदाहरण दिया है। यह या तो ससर्ग को प्राप्त नही होता या ससर्ग प्राप्त होने पर भी उससे भावित नही होता।

७ बाह्य-अबाह्य—वृत्तिकार ने बाह्य और अबाह्य के दो अर्थ किए हैं—

(१) बाह्य—असदृश या भिन्न। जैसे—जीव द्रव्य आकाश से बाह्य है—चैतन्य धर्म के कारण उससे विलक्षण है। वह आकाश से अबाह्य भी है—अमूर्त्त धर्म के कारण उससे सदृश है।

(२) जीव के लिए घट आदि द्रव्य बाह्य हैं तथा कर्म और चैतन्य आन्तरिक (अबाह्य) है।[3]

नदी सूत्र मे अवधिज्ञान का बाह्य और अबाह्य की दृष्टि से विचार किया गया है। इससे इस अनुयोग का यह अर्थ फलित होता है कि द्रव्य के सार्वदिक (अबाह्य) और असार्वदिक (बाह्य) धर्मों का विचार करना।[4]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५५ उदकमाला—उदकशिखा वेलेत्यर्थ, दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भत उच्चैस्त्वेन षोडशसहस्राणीति, समुद्रमध्यभागादेवोत्थितेति।

२ तत्त्वार्थसूत्र ५।३१ अर्पितानर्पित सिद्धे।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५७।

४ नंदीसूत्र (पुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ३१।

८ शाश्वत-अशाश्वत—द्रव्य के शाश्वत, अशाश्वत का विचार।

९ तथाज्ञान—द्रव्य का यथार्थ विचार।

१० अतथाज्ञान—द्रव्य का अयथार्थ विचार।

१९ उत्पात पर्वत (सू० ४७)

नीचे लोक से तिरछे लोक मे आने के लिए चमर आदि भवनपति देव जहा से ऊर्ध्वगमन करते हैं उन्हे उत्पात पर्वत कहा जाता है।

२०. अनन्तक (सू० ९९)

जिसका अन्त नहीं होता उसे अनन्त कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे उसका अनेक सदर्भों मे प्रयोग किया गया है। सदर्भ के साथ प्रत्येक शब्द का अर्थ भी आशिक रूप मे परिवर्तित हो जाता है। नाम और स्थापना के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ का सूचक नही है। इनमे नामकरण और आरोपण की मुख्यता है, किन्तु 'अनन्त' के अर्थ की कोई मुख्यता नहीं है।

वृत्तिकार ने नामकरण के विषय मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामयिक भाषा (आगमिक सकेत) के अनुसार वस्त्र का नाम अनन्तक है।[1]

द्रव्य के साथ अनन्त का प्रयोग द्रव्यो की व्यक्तिश अनन्तता का सूचक है। गणना के साथ अनन्त शब्द के प्रयोग का सबध सख्या से है। जैन गणित मे गणना के तीन प्रकार हैं—सख्यात, असख्यात और अनन्त। सख्यात की गणना होती है। असख्यात की गणना नहीं होती, पर वह सान्त होता है। अनन्त की न गणना होती है और न उसका अन्त होता है। प्रदेश के साथ अनन्त शब्द द्रव्य के अवयवो का निर्धारण करता है। जीव के प्रदेश असख्य होते हैं। आकाश और अनन्त-प्रदेशी पुद्गलस्कधो के प्रदेश अनन्त होते हैं। एकतः और उभयत इन दोनो के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग काल-विस्तार को सूचित करता है।

पाचवें स्थान (सूत्र-२१७) मे वृत्तिकार ने एकत अनन्तक का अर्थ—आयाम लक्षणात्मक अनन्त (एक श्रेणीक क्षेत्र) और उभयत अनन्त का अर्थ—आयाम और विस्तार लक्षणात्मक अनन्त (प्रतर क्षेत्र) किया है।[2] तथा सूत्र की व्याख्या मे एकत अनन्तक का उदाहरण—अतीत या अनागत काल और उभयत अनन्तक का उदाहरण—सर्वकाल दिया है।[3] वस्तुत इनमे कोई विरोध नहीं है। इनकी व्याख्या देश और काल—दोनो दृष्टियो से की जा सकती है।

देशविस्तार और सर्वविस्तार के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग दिग् और क्षेत्र के विस्तार को सूचित करता है। पाचवें स्थान मे वृत्तिकार[4] ने देश विस्तार का अर्थ दिगात्मक विस्तार तथा प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ एक आकाश प्रतर किया है।[5]

इस प्रकार विभिन्न सदर्भों के साथ अनन्त शब्द विभिन्न अर्थों की सूचना देता है। यह अनन्त शब्द की निक्षेप पद्धति का एक उदाहरण है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२९ नामानन्तकं अतनन्कमिति यस्य नाम, यथा समयभाषया वस्त्रमिति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२९ एकत —एकेनांशेनायामलक्षणेनानन्तकमेकतोऽनन्तकम्—एकश्रेणीक क्षेत्रं, द्विधा—आयामविस्ताराभ्यामनन्तक द्विधान तक—प्रतरक्षेत्रम्।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५९ एकतोऽनन्तकमतीताद्धा अनागताद्धा वा, द्विधाऽनन्तक सर्वाद्धा।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२९ क्षेत्रस्य यो रुचकापेक्षया पूर्वाद्यन्यतरदिग्लक्षणो देशस्तस्य विस्तारो—विष्कम्भस्तस्य प्रदेशापेक्षया अनन्तक देशविस्तारानन्तकम्।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५९ देशविस्तारानन्तकं एक आकाशप्रतर।

२१ (सू० ६९)

निशीथभाष्य मे प्रतिषेवणा के दो प्रकार बतलाए गए हैं—दर्प प्रतिषेवणा और कल्प प्रतिषेवणा।[1]

दर्प का अर्थ है—व्यायाम, वल्गन और धावन।[2] निशीथभाष्य की चूर्णि मे व्यायाम के अर्थ की स्पष्टता दो उदाहरणों से की गई है, जैसे—लाठी चलाना, पत्थर उठाना। वल्गन का अर्थ कूदना और धावन का अर्थ दौडना है। बाहुयुद्ध आदि भी इसी प्रकरण मे सम्मिलित हैं।[3] भाष्यकार ने दर्प का एक अर्थ प्रमाद किया है।[4] दर्प मे होने वाली प्रतिषेवणा दर्पिका प्रतिषेवणा कहलाती है। यह प्रमाद या उद्धतता से होने वाला दोषाचरण है। दर्पिका प्रतिषेवणा मूलगुण और उत्तर-गुण दोनो की होती है।

दर्प प्रतिषेवणा निष्कारण की जाने वाली प्रतिषेवणा है। कल्प प्रतिषेवणा किसी विशेष प्रयोजन के उपस्थित होने पर की जाती है।[5] भाष्यकार ने दर्पिका और कल्पिका—इन दोनों को प्रमाद प्रतिषेवणा और अप्रमाद प्रतिषेवणा से अभिन्न माना है। उसके अनुसार प्रमादप्रतिषेवणा ही दर्पिका प्रतिषेवणा है और अप्रमादप्रतिषेवणा ही कल्पिका प्रतिषेवणा है।[6]

प्रस्तुत गाथा मे कल्पिका प्रतिषेवणा या अप्रमाद प्रतिषेवणा का उल्लेख नहीं है किन्तु इसमे आए हुए अनाभोग और और सहसाकार उसी के दो प्रकार हैं।[7]

अनाभोग का अर्थ है—अत्यन्त विस्मृति।[8]

अनाभोग प्रतिसेवी किसी भी प्रमाद से प्रमत्त नहीं होता। किंतु कदाचित् उसे ईर्यासमिति आदि के समाचरण की विस्मृति हो जाती है। यह उसकी अनुपयुक्तता (उपयोग शून्यता) की प्रतिषेवणा है।[9] सहसाकार प्रतिषेवणा मे उपयुक्त अवस्था होने पर भी दैहिक चचलता की विवशता के कारण प्राणातिपात आदि का समाचरण हो जाता है।[10]

कटकाकीर्ण पथ मे चलने वाला मनुष्य सावधान होते हुए भी कही न कही पैर को पूर्ण नियन्त्रित न रखने के कारण बींध लेता है। इसी प्रकार सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करते हुए मुनि से भी शारीरिक चचलता के कारण कहीं न कहीं प्राणाति-पात आदि का समाचरण हो जाता है।[11] इसमें न प्रमाद है और न विस्मृति, किन्तु शारीरिक विवशता है।

आतुर प्रतिषेवणा—

भाष्यकार ने आतुर के तीन प्रकार बतलाए हैं[12]—

(१) क्षुधातुर (२) पिपासातुर (३) रोगातुर।

इससे कामातुर और क्रोधातुर आदि का वर्णन सहज ही प्राप्त हो जाता है।

---

१ निशीथभाष्य गाथा ८८

दप्पे सकारणमि य, दुविधा पडिसेवणा समासेण।
एक्केक्का वि य दुविधा मूलगुणे उत्तरगुणे य ॥

२ निशीथभाष्य गाथा ४६४ -

वायामवग्गणादी, णिक्कारणधावण तु दप्पो तु।

३ निशीथभाष्य गाथा ४६४ चूर्णि—वायामो जहा लगुडि-भमाडणं, उवलयकड्डुण, वग्गण मल्लवत्। आदि सद्दगहणा बाहु-जुद्धकरण चीवरडेवण वा धावणं खड्डुयप्पवणं।।

४ निशीथभाष्य गाथा ९१ दप्पो तु जो पमादो।

५ निशीथभाष्य गाथा ८८ चूर्णि—सकारणमि य त्ति णाण-दसणाणि अहिकिच्च सजमादि-जोगेसु य असरमाणेसु पडिसेव त्ति, सा कप्पे।

६ निशीथभाष्य गाथा ९०

दप्पे कप्प पमत्ताणभोग आहच्चतो य चरिमा तु।
पडिलोम-परूवणता, अत्थेणं होति अणुलोमा ॥

७ निशीथभाष्यगाथा ९० चूर्णि—

जा सा अपमत्त-पडिसेवा सा दुविहा—अणाभोगा आहच्चओ य।

८ निशीथभाष्य गाथा ९५ चूर्णि—अणाभोगो णाम अत्यंतविस्मृति

९. निशीथभाष्यगाथा ९५

ण पमादो कातव्वो, जतण-पडिसेवणा अतो पढम।
सा तु अणाभोगेणं, सहसक्कारेण वा होज्जा ॥

१० निशीथभाष्य गाथा ९७ चूर्णि—सहस्साकरणमेय ति सहसा-करण सहसक्करण जाणमाणस्स परायत्तस्सेत्यर्थ।

११ निशीथभाष्य गाथा १००

असि कटकविसमादिसु, गच्छतो सिक्खिओ वि जत्तेण।
चुक्कइ एमेव मुणी, छलिज्जति अप्पमत्तो वि ॥

१२ निशीथभाष्य गाथा ४७९

पढम बितियदुतो वा बाधितो वा जं सेवे आतुरा एसा।
दव्वादिअलंभे पुण, चउविधा आवती होति ॥

आपद्प्रतिषेवणा—आपत् की व्याख्या चार दृष्टियों से की गई है।[1]

१ द्रव्यत आपत्—मुनि योग्य आहार आदि की अप्राप्ति।

२ क्षेत्रत आपत्—अरण्यविहार आदि की स्थिति।

३ कालत आपत्—दुर्भिक्ष आदि का समय।

४ भावत आपत्—शरीर की रुग्णावस्था।

शकित प्रतिषेवणा—प्रस्तुत सूत्र की सग्रह गाथा मे 'शकितप्रतिषेवणा' का उल्लेख है। निशीथ भाष्य मे इसके स्थान पर 'तितिण' प्रतिषेवणा का उल्लेख है।[2] शकित प्रतिषेवणा का अर्थ वही है जो अनुवाद मे प्राप्त है। तितिण प्रतिषेवणा का अर्थ आहार आदि प्राप्त न होने पर गिडगिडाना।[3]

विमर्श प्रतिषेवणा—चूर्णिकार के अनुसार शिष्यो की परीक्षा के लिए गुरुजन सचित्त भूमि आदि पर चलने लग जाते थे। इस कार्य पर शिष्य की प्रतिक्रिया जान वे उसकी श्रद्धा या अश्रद्धा का निर्णय करते थे।[4]

निशीथभाष्य में प्रतिषेवणा का प्रकरण बहुत विस्तृत है। तात्कालिक धारणा की जानकारी के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

२२ (सू० ७०)

प्रस्तुत सूत्र मे जो सग्रहीत गाथा है वह निशीथभाष्य चूर्णि में भी मिलती है।[5] मूलाचार में भी कुछ शाब्दिक परिवर्तन के साथ यही गाथा प्राप्त है।[6] निशीथ चूर्णि, स्थानागवृत्ति, तत्त्वार्थवार्तिक, मूलाचार की वसुनन्दि कृत वृत्ति आदि का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोषो की अर्थ-परम्परा कही-कहीं विस्मृत हुई है। उस विस्मृत परम्परा का अर्थ शाब्दिक आधार पर किया गया है। इस मत की पुष्टि के लिए दो शब्द —'अणुमाणइत्ता' और 'छन्न' प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अभयदेवसूरि ने 'अणुमाणइत्ता' का अर्थ—आलोचनाचार्य मृदु दड देने वाले हैं या अमृदु दड देने वाले हैं ऐसा 'अनुमान कर' मृदु प्रायश्चित्त की सम्भावना होने पर 'आलोचना करना'—किया है।[7]

निशीथभाष्य चूर्णि में इसका अर्थ—अनुनय कर—किया गया है।[8]

तत्त्वार्थवार्तिक और मूलाचार के अर्थ आगे दिए गए हैं। इनमे 'अनुनय कर' या 'आलोचनाचार्य को करुणार्द्र बनाकर'—यह अर्थ अधिक प्रासगिक लगता है।

स्थानागवृत्ति[9] और निशीथभाष्यचूर्णि[10] मे 'छन्न' का अर्थ है—इतने धीमे स्वर में आलोचना करना, जिसे वह स्वय ही सुन सके, आलोचनाचार्य न सुन पाए।

तत्वार्थवार्तिक तथा मूलाचार मे 'छन्न' का आशय उक्त अर्थ से भिन्न है।

---

१ निशीथभाष्य, गाथा ४७९, चूर्णि।

२ निशीथभाष्य गाथा ४७७
दप्पपमादाणाभोगा आतुरे आवतीसु य।
तितिणे सहस्सक्कारे भयप्पदोसा य वीमसा॥

३ निशीथभाष्य गाथा ४८० चूर्णि—आहारादिसु अलभमाणेसु तिडिविडे।

४ निशीथभाष्य, गाथा ४८० चूर्णि।

५ निशीथभाष्य भाग ४, पृष्ठ ३६३।

६ मूलाचार, शीलगुणाधिकार, गाथा १५
आकपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।
छण्ण सद्दाकुलिय बहुजणमव्वत्त तस्सेवी॥

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६० 'अणुमाणइत्ता' अनुमानं कृत्वा, किमयं मृदुदण्ड उतोग्रदण्ड इति ज्ञात्वेत्यर्थ, अयमभिप्रायोऽस्य—यद्ययं मृदुदण्डस्ततो दास्याम्यालोचनामन्यथा नेति।

८ निशीथ भाष्य, भाग ४, पृष्ठ ३६३ "चरम थोव एस पच्छित्त दाहिति ण वा दाहिति॥
पुव्वामेव आयरिय अणुणेति—'दुब्बलो ह थोव में पच्छित्त देज्जह॥"

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६० प्रच्छन्नमालोचयति यथात्मनैव शृणोति नाचार्यः।

१० निशीथभाष्य भाग ४ पृष्ठ ३६३ चूर्णि—"छण्ण" ति—तहा अवराहे अप्पसद्देण उच्चरइ जहा अप्पणा चेव सुणेति, णो गुरु।

हमने प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद स्थानागवृत्ति और निशीथभाष्यचूर्णि के आधार पर किया है। इसलिए उनके आधार पर शेष शब्दो पर विचार नहीं किया गया है। तत्वार्थवार्तिक मे आलोचना के दस दोषो का विवरण प्राप्त है किन्तु उसमें सब दोषो का नामोल्लेख नही है। केवल तीसरे दोष का नाम 'मायाचार' और चौथे का 'स्थूल' दिया है। मूलाचार तथा उसकी वृत्ति मे इन सभी दोषों का नामोल्लेख पूर्वक विवरण दिया गया है। इन दोनो का तुलनात्मक अध्ययन हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

१ 'गुरु को उपकरण देने से वे मुझे लघु प्रायश्चित्त देंगे'—ऐसा सोचकर उपकरण देना। यह पहला दोष है।

मूलाचार में पहला दोष 'आकम्प्य' है। इसका अर्थ है—आचार्य को भक्त, पान, उपकरण आदि दे अपना आत्मीय बनाकर दोष निवेदन करना।

२ 'मैं प्रकृति से दुर्बल हू, ग्लान हू, उपवास आदि करने में असमर्थ हू, यदि आप लघु प्रायश्चित्त दें तो मैं दोष निवेदन करू'—यह कह कर दोष निवेदन करना। यह दूसरा दोष है।

मूलाचार मे दूसरा दोष 'अनुमान्य' है। इसका अर्थ है—शरीर की शक्ति, आहार और बल की अल्पता दिखाकर, दीन वचनो से आचार्य को अनुमत कर—उनके मन मे करुणा पैदा कर दोष निवेदन करना।

३ दूसरे द्वारा अज्ञात दोषो को छुपाकर केवल ज्ञात दोषो का निवेदन करना—यह मायाचार नामका तीसरा दोष है।

मूलाचार मे इसे तीसरा 'दृष्ट' दोष माना है।

४ आलस्य या प्रमादवश अन्य अपराधों की परवाह न कर केवल स्थूल दोषो का निवेदन करना।

मूलाचार मे इसे चौथा 'बादर' दोष माना है।

५ महादुश्चर प्रायश्चित्त प्राप्त होने के भय से महान दोषों का सवरण कर छोटे प्रमाद का निवेदन करना। यह पाचवा दोष है।

मूलाचार मे इसे पाचवा 'सूक्ष्म' दोष माना है।

६ इस प्रकार का दोष हो जाने पर क्या प्रायश्चित प्राप्त हो सकता है, इसको उपायो द्वारा जानकर गुरु की उपासना कर दोष का निवेदन करना। यह छठा दोष है।

मूलाचार में छठा दोष 'प्रच्छन्न' है। इसका अर्थ है—किसी मिस से दोष-कथन कर स्वय प्रायश्चित ले लेना।

७ पाक्षिक, चातुर्मासिक, सावत्सरिक प्रतिक्रमण के समय अनेक साधु आलोचना करते हैं। उस समय कोलाहल-पूर्ण वातावरण मे दोष-कथन करना। यह सातवा दोष है।

मूलाचार मे इसे सातवा 'शब्दाकुलित' दोष माना है।

८ गुरु के द्वारा दिया गया प्रायश्चित्त युक्त है या नही, आगम विहित है या नहीं—इस प्रकार शकाशील होकर दूसरे साधुओं से पूछताछ करना। यह आठवा दोष है।

मूलाचार मे आठवां दोष 'बहुजन' है। इसका अर्थ है—एक आचार्य को अपने दोष का निवेदन कर, प्रायश्चित्त लेकर उसमे श्रद्धा न करते हुए पुन दूसरे आचार्य के पास उस दोष का निवेदन करना।

९ जिस किसी उद्देश्य से अपने जैसे ही अगीतार्थ के समक्ष अपने दोषों का निवेदन करना।

मूलाचार मे नौंवा दोष 'अव्यक्त' है। इसका अर्थ हैं—लघु प्रायश्चित्त के निमित्त अव्यक्त (प्रायश्चित्त देने मे अकुशल) के समक्ष अपने दोषो का निवेदन करना।

१० 'मेरा दोष इसके दोष के समान है। उसको यही जानता है। इसको जो प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है वही मेरे लिए भी युक्त है'—ऐसा सोचकर अपने दोषों का सवरण करना यह दसवा दोष है।

मूलाचार मे दसवा दोष 'तत्सेवी' है। इसका अर्थ है—जो व्यक्ति अपने समान ही दोषो से युक्त है उसको अपने दोष का निवेदन करना, जिससे कि वह बडा प्रायश्चित्त न दे।

इन दोनो ग्रन्थों मे अनेक स्थलो पर अर्थ-भेद स्पष्ट परिलक्षित होता है।

षट्प्राभृत की श्रुतसागरीय वृत्ति मे आलोचना के दस दोषो का सग्रह गाथा मे उल्लेख है। वह गाथा मूलाचार की है, किन्तु इन दोषो की मूलाचारगत व्याख्या और श्रुतसागरीय-व्याख्या मे कही-कही वहुत वडा मत-भेद है।

मूलाचार की वृत्ति का अर्थ ऊपर दिया जा चुका है। श्रुतसागरीय की व्याख्या निम्न प्रकार से है—

१ आकपित—आचार्य मुझे दड न दे दें—इस भय से आलोचना करना।

२ अनुमानित—यदि इतना पाप किया जाएगा तो उससे निस्तार नही होगा, ऐसा अनुमान कर आलोचना करना।

३ यत्दृष्ट—जो दोष किसी के द्वारा देखा गया है, उसी की आलोचना करना।

४ वादर—केवल स्थूल दोषों का प्रकाशन करना।

५ सूक्ष्म—केवल सूक्ष्म दोषो का प्रकाशन करना।

६ छन्न—गुप्त रूप से केवल आचार्य के पास अपना दोष प्रकट करना, दूसरे के पास नही।

७ शब्दाकुल—जव शोरगुल हो तव अपने दोष को प्रगट करना।

८ वहुजन—जव वहुत वडा सघ एकत्रित हो, तव दोष प्रगट करना।

९ अव्यक्त—दोष को अव्यक्त रूप से प्रगट करना।

१० तत्सेवी—जिस दोष का प्रकाशन किया है, उसका पुन सेवन करना।[1]

२३ (सू० ७१)

मिलाइए—स्थानांग ८।१८, तुलना के लिए देखें निशीथभाष्य, भाग ४, पृष्ठ ३६२ आदि।

२४ (सू० ७२)

प्रस्तुत सूत्र मे आलोचना देने वाले अनगार के दस गुणो का उल्लेख है। आठवें स्थान के अठारहवें सूत्र में आठ गुणो का उल्लेख हुआ है और यहा उनके अतिरिक्त दो गुण और उल्लिखित हैं।

इन दस गुणो में सातवा गुण है—'निर्यापक'। आठवें स्थान मे वृत्तिकार ने इसका अर्थ[2]—'वडे प्रायश्चित्त को भी निभा सके'—ऐसा सहयोग देने वाला, किया है। प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ[3]—ऐसा प्रायश्चित्त देने वाला जिसे प्रायश्चित्त लेने वाला निभा सके—किया है। ये दोनो अर्थ भिन्न हैं।

'निर्यापक' प्रायश्चित्त देने वाले का विशेषण है, इसलिए प्रथम अर्थ ही सगत लगता है।

२५ (सू० ७३)

प्रस्तुत सूत्र मे दस प्रकार के प्रायश्चित्त निर्दिष्ट हैं। इनका निर्देश दोषो की लघुता और गुरुता के आधार पर किया गया है। कई दोष आलोचना प्रायश्चित्त द्वारा, कई प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त द्वारा है और कई पाराचिक प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होते हैं। इसी आधार पर प्रायश्चित्तो का निरूपण किया गया है।

आचार्य अकलक ने वताया है कि जीव के परिणाम असख्येय लोक जितने होते हैं। जितने परिणाम होते हैं उतने ही अपराध होते हैं और जितने अपराध होते हैं उतने ही उनके प्रायश्चित्त होने चाहिए, किन्तु ऐसा नही है। प्रायश्चित्त के जो

---

१ षट्प्राभृत १।९, श्रुतसागरीय वृत्ति पृष्ठ ९।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०२ 'निज्जवए त्ति निर्यापयति तथा करोति यथा गुर्वपि प्रायश्चित्त शिष्यो निर्वाहयतीति निर्यापक इति।

३ वही, वृत्ति, पत्र ४६१ 'निज्जवए' यस्तथा प्रायश्चित्तं दत्ते यथा परो निर्वोढुमल भवतीति।

प्रकार निर्दिष्ट हैं वे व्यवहार नय की दृष्टि से पिंडरूप में निर्दिष्ट हैं।[1]

दिगंबर परम्परानुसारी तत्त्वार्थ सूत्र तथा उसकी व्याख्या—तत्त्वार्थवार्तिक मे प्रायश्चित्त के नौ ही प्रकार निर्दिष्ट हैं[2]—

१ आलोचना २ प्रतिक्रमण ३ तदुभय ४ विवेक ५ व्युत्सर्ग ६ तप ७ छेद ८ परिहार ९ उपस्थापना।

इनमे दसवें प्रायश्चित्त—पाराचिक का उल्लेख नही है। 'मूल' प्रायश्चित्त के स्थान पर 'उपस्थापना' का उल्लेख है। वहा इसका वही अर्थ किया गया है, जो श्वेताम्बर आचार्यों ने 'मूल' का किया है।[3]

तत्त्वार्थवार्तिक मे 'अनवस्थाप्य' का भी उल्लेख नही है, किन्तु उसमें 'परिहार' नामक प्रायश्चित्त का उल्लेख है, जो श्वेताम्बर परम्परा मे प्राप्त नही है। इसका अर्थ है—पक्ष, मास आदि काल-मर्यादा के अनुसार प्रायश्चित्त प्राप्त मुनि को संघ से बाहर रखना।[4]

प्रायश्चित्त प्राप्ति के प्रकरण में अनुपस्थापन और पाराचिक प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। किन्तु उनका अर्थ श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न है।

अपकृष्ट आचार्य के पास प्रायश्चित्त ग्रहण करना अनुपस्थापन है और तीन आचार्यों तक, एक आचार्य से अन्य आचार्य के पास प्रायश्चित्त ग्रहण के लिए भेजना पाराचिक है।[5]

तत्त्वार्थवार्तिक मे प्रायश्चित्त प्राप्ति का विवरण इस प्रकार है[6]—

१ विद्या और ध्यान के साधनो को ग्रहण करने आदि मे विनय के विना प्रवृत्ति करना दोष है, उसका प्रायश्चित्त है आलोचना।

२ देश और काल के नियम से अवश्य करणीय विधानो को धर्म-कथा आदि के कारण भूल जाने पर पुन करने के समय प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त।

३ भय, शीघ्रता, विस्मरण, अज्ञान, अशक्ति और आपत्ति आदि कारणों से महाव्रतों मे अतिचार लग जाना—इसके लिए छेद के पहले के छहों प्रायश्चित्त हैं।

४ शक्ति का गोपन न कर प्रयत्न से परिहार करते हुए भी किसी कारणवश अप्रासुक के स्वय ग्रहण करने या ग्रहण कराने में, त्यक्त प्रासुक का विस्मरण हो जाए और ग्रहण करने पर उसका स्मरण हो जाए तो उसका पुन उत्सर्ग (विवेक) करना ही प्रायश्चित्त है।

५ दु स्वप्न, दुश्चिन्ता, मलोत्सर्ग, मूत्र का अतिचार, महानदी और महा अटवी को पार करने मे व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

६ बार-बार प्रमाद, बहुदृष्ट अपराध, आचार्य आदि के विरुद्ध वर्तन करना, सम्यग्दर्शन की विराधना होने पर क्रमश छेद, मूल अनुपस्थापन और पाराचिक प्रायश्चित्त दिया जाता है।

प्रायश्चित्त के निम्न निर्दिष्ट प्रयोजन हैं[7]—

१ प्रमादजनित दोषो का निराकरण। २ भावो की प्रसन्नता। ३ शल्य रहित होना। ४ अव्यवस्था का निवारण। ५ मर्यादा का पालन। ६ सयम की दृढता। ७ आराधना।

प्रायश्चित्त एक प्रकार की चिकित्सा है। चिकित्सा रोगी को कष्ट देने के लिए नहीं की जाती, किन्तु रोग निवारण के लिए की जाती है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त भी राग आदि अपराधो के उपशमन के लिए दिया जाता है।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक ९।२२ जीवस्यासंख्येयलोकपरिणामा परिणामविकल्पा, अपराधाश्च तावन्त एव, न तेषां तावद्विकल्पं प्रायश्चित्तमस्ति।

२ वही ९।२२।

३ वही ९।२२ पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना।

४ तत्त्वार्थवार्तिक ९।२२ पक्षमासादिविभागेन दूरत परिवर्जनं परिहार।

५ वही ९।२२।

६ वही ९।२२।

७ वही ९।२२।

निशीथभाष्यकार ने तीर्थंकर की धनवतरी से, प्रायश्चित्त प्राप्त साधु की रोगी से, अपराधो की रोगो से और प्रायश्चित्त की औषध से तुलना की है।[1]

२६ मार्ग (सू० ७४)

प्रस्तुत सूत्र मे 'मार्ग' शब्द मोक्ष-मार्ग का सूचक है। सूत्रकृताग [प्रथम श्रुतस्कध] के ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'मार्ग' है। उसमे अहिंसा को 'मार्ग' बताया गया है। उत्तराध्ययन के अठाईसवें अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्गगति' है। उसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मार्ग कहा गया है।[2]

तत्वार्थ के प्रथम सूत्र मे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष मार्ग कहा है।[3]

इन व्याख्या-विकल्पो मे केवल प्रतिपादन-पद्धति का भेद है, किन्तु आशय-भेद नही है।

२७ व्याघ्र (सू० ८२)

प्रस्तुत सूत्र मे दस भवनपति देवो के दस चैत्यवृक्षो का उल्लेख है। उसमे वायुकुमार के चैत्यवृक्ष का नाम 'वप्प' है। आदर्शों तथा मुद्रित पुस्तकों मे 'वप्पा' 'वप्पो' 'वप्पे' ये शब्द मिलते हैं। किन्तु उपलब्ध कोषो में वृक्षवाची 'वप्र' शब्द नहीं मिलता। यहा 'वग्घ' [स० व्याघ्र] शब्द होना चाहिए था। पाइयसद्दमहण्णव मे व्याघ्र शब्द के दो अर्थ किए हैं—

१ लाल एरण्ड का वृक्ष। २ करज का पेड।

आप्टे की सस्कृत इगलिश डिक्शनेरी मे भी 'व्याघ्र' शब्द का अर्थ 'रक्त एरड' किया है। अत यहा 'वग्घ' [व्याघ्र] शब्द ही उपयुक्त लगता है।

२८ (सू० ८३)

वौद्ध परम्परा मे तेरह प्रकार के सुख-युगलों की परिकल्पना की गई है। उन युगलो मे एक को अधम और एक को श्रेष्ठ माना है।[4]

१ गृहस्थ सुख, प्रव्रज्या सुख।
२ कामभोग सुख, अभिनिष्क्रमण सुख।
३ लौकिक सुख, लोकोत्तर सुख।
४ सास्रव सुख, अनास्रव सुख।
५ भौतिक सुख, अभौतिक सुख।
६ आर्य सुख, अनार्य सुख।
७ शारीरिक सुख, चैतसिक सुख।
८ प्रीति सुख, अप्रीति सुख।
९ आस्वाद सुख, उपेक्षा सुख।
१० असमाधि सुख, समाधि सुख।
११ प्रीति आलवन सुख, अप्रीति आलवन सुख।
१२ आस्वाद आलवन सुख, उपेक्षा आलवन सुख।
१३ रूप आलवन सुख, अरूप आलवन सुख।

---

१ निशीथभाष्य, गाथा ६५०७
धण्णतरितुल्लो जिणो, णायव्वो आसुरोवमो साहू।
रोगा इव अवराहा, ओसहसरिसा य पच्छित्ता॥

२ उत्तराध्ययन २८।१
मोक्खमग्गगइ तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्त, नाणदसणलक्खणं॥

३ तत्वार्थ १।१ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग।

४ अंगुत्तरनिकाय, प्रथमभाग, पृष्ठ ८१-८३।

२९ सन्तोष (सू० ८३)

इसका अर्थ है—अल्पेच्छता। वह आनन्दरूप होती है, इसलिए सुख है। ससार के सभी सुख सतोष-प्रसूत होते हैं।

अपने सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ करने के पश्चात् जो फलप्राप्ति होती है उसमे तथा प्राप्त अवस्था मे प्रसन्नचित्त रहना और सब प्रकार की तृष्णाओं को छोड देना सतोष है।

मनुस्मृति मे सतोष को सुख का मूल और असतोष को दुख का मूल माना है।[1]

सतोष और तुष्टि मे अन्तर है। सतोष चित्त की प्रसन्नता है और तुष्टि चित्त का आलस्य और प्रमाद आवरण। साख्यकारिका मे तुष्टि के नौ प्रकार बतलाए हैं। उनमे चार आध्यात्मिक और पाच बाह्य हैं।

'प्रकृति से आत्मा सर्वथा पृथक् है'—ऐसा समझकर भी जो साधक असद् उपदेश से सन्तुष्ट होकर आत्मा के श्रवण, मनन आदि द्वारा उसके विवेकज्ञान के लिए प्रयत्न नही करता, उसके चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ होती हैं—

१ प्रकृति-तुष्टि—प्रकृति स्वयमेव विवेक उत्पन्न कराकर कैवल्य प्रदान करेगी, इस आशा से धारणा, ध्यान आदि का अभ्यास न करना, यह प्रकृतितुष्टि है।

२ उपादान-तुष्टि—विवेकख्याति सन्यास से उत्पन्न होती है। इसलिए ध्यान से सन्यास ग्रहण उत्तम है। यह उपादान-तुष्टि है। इसका दूसरा नाम 'सलिल' है।

३ काल-तुष्टि—फलोत्पत्ति के लिए काल की अपेक्षा होती है। प्रव्रज्या से भी तत्काल निर्वाण नहीं होता। काल के परिपाक से सिद्धि होती है, अत उद्विग्नता मे कोई लाभ नही है। यह काल-तुष्टि है।

४ भाग्य-तुष्टि—विवेकज्ञान न प्रकृति से, न काल से और न प्रव्रज्या ग्रहण मे उत्पन्न होता है। मुक्त होने में भाग्य ही हेतु है, अन्य नही—इस उपदेश से जो तुष्टि होती है, उसे भाग्यतुष्टि कहते हैं।

आत्मा से भिन्न प्रकृति, महान् अहकार आदि को आत्मस्वरूप समझते हुए जीव को वैराग्य होने पर जो तुष्टियाँ होती हैं, वे बाह्य हैं। वे पाच प्रकार की हैं—

१ पार-तुष्टि—'धनोपार्जन के उपाय दु खद हैं'—इस विचार से विषयों के प्रति वैराग्य होना पार-तुष्टि है।

२ सुपार-तुष्टि—'धन के रक्षण मे महान् कष्ट होता है'—इस विचार से विषयो से उपरत होना सुपार-तुष्टि है।

३ पारापार-तुष्टि—'धन भोग से नष्ट हो जाएगा'—इस विचार से विषयो से उपरत होना पारापार-तुष्टि है।

४ अनुत्तमाम्भ-तुष्टि—'विषयों के प्रति वासना भोग से वृद्धिगत होती है और उनकी अप्राप्ति मे कष्ट होता है'—इस विचार से विषयों से उपरत होना अनुत्तमाम्भ-तुष्टि कहलाती है।

५ उत्तमाम्भ-तुष्टि—'भूतो को पीडा दिए विना विषयों का उपभोग नहीं हो सकता—इस विचार से हिसा से उपरत होना उत्तमाम्भ-तुष्टि है।[2]

३०. (सू०८६)

देखें—३।४३८ का टिप्पण।

३१. (सू० ८९)

भगवान् ने कहा—'आर्यो! सत्य दस प्रकार का होता है—

---

१ स्थानागवृत्ति' पत्र ४६३ सतोष—अल्पेच्छता तत् सुखमेव आनन्दानुरूपत्वात् सतोषस्य, उक्त च—
आरोगसारियं माणसुत्तण सच्चसारिओ धम्मो।
विज्जा निच्छयसारा सुहाइं सन्तोससराइ॥

२ मनुस्मृति ४।१२ : संतोषमूल हि सुख, दुःखमूल विपर्यय।

३ सांख्यकारिका ५०, तत्त्वकौमुदीव्याख्या, पृष्ठ १४५-१४८।
आध्यात्मिकाश्चतस्र प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्या।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नवतुष्टयोऽभिमता॥

१ जनपद सत्य २ सम्मत सत्य ३ स्थापना सत्य ४ नाम सत्य ५ रूप सत्य ६ प्रतीत्य सत्य ७. व्यवहार सत्य ८ भाव सत्य ९ योग सत्य १० औपम्य सत्य।

१. आर्यो ! किसी जनपद के निवासी पानी को 'नीरु' (कन्नड) कहते हैं और किसी जनपद के निवासी पानी को 'तण्णी' (तमिल) कहते हैं।

आर्यो ! नीरु और तण्णी के अर्थ दो नहीं है। केवल जनपद के भेद से ये शब्द दो हैं। पानी को नीरु और तण्णी कहना जनपद सत्य है।

२ आर्यो ! कमल और मेंढक—दोनो कीचड मे उत्पन्न होते हैं, फिर भी कमल को पकज कहा जाता है, मेंढक को नहीं कहा जाता।

आर्यो ! जिस अर्थ के लिए जो शब्द रूढ़ होता है वही उसके लिए प्रयुक्त होता है। आर्यो ! यह सम्मत सत्य है।

३ आर्यो ! एक वस्तु मे दूसरी वस्तु का आरोपण किया जाता है। शतरज के मोहरो को हाथी, ऊट, वजीर आदि कहा जाता है। आर्यो ! यह स्थापना सत्य है।

४ आर्यो ! किसी का नाम लक्ष्मीपति है और किसी का नाम अमरचन्द। लक्ष्मीपति को भीख मागते और अमरचन्द को मरते देखा है।

आर्यो ! गुणविहीन होने पर भी किसी व्यक्ति या वस्तु को उस नाम से अभिहित किया जाता है। आर्यो ! यह नाम सत्य है।

५ आर्यो ! एक स्त्रीवेषधारी पुरुष को स्त्री, नट वेषधारी पुरुष को नट और साधु वेषधारी पुरुष को साधु कहा जाता है।

आर्यो ! किसी रूप विशेष के आधार पर व्यक्ति को वही मान लेना रूप सत्य है।

६ आर्यो ! अनामिका अगुलि कनिष्ठा की अपेक्षा मे बडी है और वह मध्यमा की अपेक्षा से छोटी है। छोटा होना और बडा होना सापेक्ष है। पत्थर लोह से हल्का है और काठ से भारी है। हल्का होना और भारी होना सापेक्ष है। एक वस्तु की तुलना मे छोटी-बडी या हल्की-भारी होती है। आर्यो ! यह प्रतीत्य सत्य है।

७ आर्यो ! कहा जाता है—पर्वत जलता है, मार्ग जाता है, गाव आ गया। परन्तु यथार्थ में ऐसा कहा होता है।

आर्यो ! क्या पर्वत कभी जलता है ? क्या मार्ग चलता है ? क्या गाव एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता है ?

आर्यो ऐसा नहीं होता। पर्वत पर रहा ईंधन जलता है, मार्ग पर चलने वाला पथिक जाता है, गाव की ओर जाने वाला मनुष्य वहां पहुच जाता है। आर्यो ! यह व्यवहार सत्य है।

८ आर्यो ! प्रत्येक वस्तु मे अनन्त पर्याय होते हैं। कुछ पर्याय व्यक्त होते हैं और शेष अव्यक्त। काल-मर्यादा के अनुसार व्यक्त पर्याय अव्यक्त हो जाते हैं और अव्यक्त पर्याय व्यक्त। वस्तु का प्रतिपादन व्यक्त पर्याय के आधार पर किया जाता है। दूध सफेद है। क्या उसमे दूसरे वर्ण नहीं हैं ? उसमे पाचों वर्ण हैं। किन्तु वे सब व्यक्त नही है। केवल श्वेत वर्ण व्यक्त है। इसलिए कहा जाता है कि दूध सफेद है। आर्यो ! यह भाव सत्य है।

९ आर्यो ! एक आदमी इधर से आ रहा है। दूसरा उसे पुकारता है—'दडी' इधर आओ, और वह आ जाता है। ऐसा क्यो होता है ? उसके पास दड है, इसलिए वह अपने आप को दडी समझता है, दूसरे भी उसे दडी समझते हैं आर्यो ! यह योग सत्य है।

१० आर्यो ! कहा जाता है—आखें कमल के समान हैं। आँखें विकस्वर हैं और कमल भी विकस्वर होता है। इस समान धर्म के आधार पर आखो को कमल से उपमित किया गया है। आर्यो ! यह औपम्य सत्य है।

तत्वार्थवार्तिक मे दस प्रकार के सत्य-सदभावों के नाम और विवरण प्राप्त हैं। उनमे क्रमभेद, नामभेद और व्याख्या भेद है।

वह इस प्रकार है—

स्थानाग	तत्वार्थवार्तिक
१ जनपद सत्य	नाम सत्य
२ सम्मत सत्य	रूप सत्य
३ स्थापना सत्य	स्थापना सत्य
४ नाम सत्य	प्रतीत्य सत्य
५ रूप सत्य	सवृति सत्य
६ प्रतीत्य सत्य	सयोजना सत्य
७ व्यवहार सत्य	जनपद सत्य
८ भाव सत्य	देश सत्य
९ योग सत्य	भाव सत्य
१० औपम्य सत्य	समय सत्य

तत्वार्थवार्तिक के अनुसार उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१ नाम सत्य—किसी भी सचेतन या अचेतन वस्तु के गुणविहीन होने पर भी, व्यवहार के लिए उसकी वह सज्ञा करना।

२ रूप सत्य—वस्तु की अनुपस्थिति मे भी रूप मात्र से उसका उल्लेख करना, जैसे—पुरुष के चित्र को देखकर उसमे चैतन्य गुण न होने पर भी उसे पुरुष शब्द से व्यवहृत करना।

३ स्थापना सत्य—मूल वस्तु के न होने पर भी किसी मे उसका आरोपण करना। जैसे—शतरज में हाथी, घोड़े, वजीर की कल्पना कर मोहरो को उन-उन नामो से बुलाना।

४ प्रतीत्य सत्य—आदि-अनादि औपशमिक आदि भावों की दृष्टि से कहा जाने वाला वचन।

५ सवृति सत्य—लोक व्यवहार मे प्रसिद्ध प्रयोग के अनुसार कहा जाने वाला वचन। जैसे—पृथ्वी, पानी आदि अनेक कारणो से उत्पन्न होने पर भी कमल को पकज कहना।

६ सयोजना सत्य—धूप, उबटन आदि मे तथा कमल, मकर, हस, सर्वतोभद्र, क्रौंचव्यूह आदि मे सचेतन, अचेतन द्रव्यो के भाव, विधि आकार आदि की योजना करने वाला वचन।

७ जनपद सत्य—आय और अनार्य रूप मे विभक्त बत्तीस देशो मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला वचन।

८ देश सत्य—ग्राम, नगर, राज्य, गण, मत, जाति, कुल, आदि धर्मों के उपदेशक वचन।

९ भाव सत्य—छद्मस्थता के कारण यथार्थ न जानते हुए भी सयती या श्रावक को सर्व धर्म पालन के लिए—'यह प्रासुक है' 'यह अप्रासुक है'—ऐसा बताने वाला वचन।

१० समय सत्य—आगमो मे वर्णित पदार्थों का यथार्थ निरूपण करने वाला वचन।[1]

३२. (सू० ९०)

आर्यो! झूठ बोलने के दस कारण हैं—

१ तत्वार्थवार्तिक १।२०।

१ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ प्रेम ६ द्वेष ७ हास्य ८ भय ९ आख्यायिका १० उपघात।

आर्यो! कुछ मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे कभी-कभी अपने मित्र को भी शत्रु वता देते हैं। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! क्रोध के आवेश मे उन्हें यह भान नहीं रहता कि यह मेरा मित्र है या शत्रु।

आर्यो! कुछ मनुष्य मान के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे निर्धन होने पर भी अपने आपको धनवान् वता देते हैं। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! वे मान के आवेश मे उद्धत होकर अपने को धनवान् वताते हैं।

आर्यो! कुछ मनुष्य माया के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। एक नकटा यह कहते हुए घूम रहा है—'नाक कटालो, भगवान् का दर्शन हो जाएगा।' एक मद्य विक्रेता यह कहते हुए घूम रहा है—मद्यपान करो, सब चिन्ताओ से मुक्ति मिल जाएगी। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! माया के आवेश में मनुष्यो को यह भान नही रहता कि दूसरो को ठगना कितना बुरा होता है।

आर्यो! कुछ मनुष्य लोभ के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। एक मनुष्य अल्पमूल्य वस्तु को वहुमूल्य वताता है। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! लोभ के आवेश मे वह भूल जाता है कि दूसरों के हित का विघटन करना कितना वडा पाप है।

आर्यो! कुछ मनुष्य प्रेम के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे अपने व्यक्ति के समक्ष यह कह देते हैं—"मैं तो आपका दास हू।" ऐसा क्यो होता है? आर्यो! प्रेम मे व्यक्ति अधा हो जाता है। उसे नही दीखता कि मैं किसके सामने क्या कह रहा हू।

आर्यो! कुछ मनुष्य द्वेष के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे कभी-कभी गुणवान् को निर्गुण वता देते हैं। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! द्वेष मे व्यक्ति दूसरे को नीचा दिखाने मे ही अपना गौरव समझता है।

आर्यो! कुछ मनुष्य हास्य के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे कभी-कभी मजाक मे एक दूसरे की चीज उठा लेते हैं और पूछने पर नकार जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? आर्यो! वे मन वहलाने के लिए ऐसा करते हैं।

आर्यो! कुछ मनुष्य भय के वशीभूत होकर झूठ वोलते हैं। वे यह सोचते हैं कि—यदि मैं ऐसा करूगा तो वह मुझे मार डालेगा। इस भय से वे सत्य नही वोलते। ऐसा क्यों होता है? आर्यो! भय मनुष्य को असमजस मे डाल देता है।

आर्यो कुछ मनुष्य आख्यायिका के माध्यम से झूठ वोलते हैं। ये आख्यायिका मे अयथार्थ का गुफन कर झूठ वोलते हैं। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! वे सरसता के सहारे असत् को सत् रूप मे प्रस्तुत करना चाहते हैं।

आर्यो! कुछ मनुष्य उपघातकारक (प्राणी पीडाकारक) वचन वोलते हैं। वे चोर को चोर कहकर उसे पीडा पहुचाने का यत्न करते हैं। ऐसा क्यो होता है? आर्यो! दूसरो को पीडा देने की भावना जाग जाने पर वे ऐसा करते हैं।

उमास्वाती ने असत् के प्रतिपादन को अनृत कहा है।[1]

अनृत के दो अग होते हैं—विपरीत अर्थ का प्रतिपादन और प्राणी-पीडाकर अर्थ का प्रतिपादन।[2] प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित मृषा के दस प्रकारो में प्रारम्भ के नौ प्रकार विपरीत अर्थ के प्रतिपादक हैं और दसवा प्रकार प्राणी पीडाकर अर्थ का प्रतिपादक है।

स्थानाग के वृत्तिकार ने अभ्याख्यान के सदर्भ मे उपघात मिश्रित की व्याख्या की है। इसलिए उन्होने अचोर को चोर कहना—इस अभ्याख्यान वचन को उपघात-निश्रित मृषा माना है।[3] हमने उपघात-निश्रित की व्याख्या दशवैकालिक ७/११ के सन्दर्भ मे की है। उसके अनुसार अचोर को चोर कहना उपघात-निश्रित मृपा नही है, किन्तु चोर को चोर कहना उपघात-निश्रित मृषा है।[4]

---

१ तत्त्वार्थ सूत्र ७।१४ असदभिधानमनृतम्।

२ तत्त्वार्थराजवार्तिक ७।१४ असदिति पुनरुच्यमाने अप्रशस्तार्थं यत् तत्सवमनृतमुक्तं भवति। तेन विपरीतार्थस्य प्राणिपीडाकरस्य चानृतत्वमुपपन्न भवति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६५ उवघायनिस्सिए त्ति उपघाते—प्राणिवधे निश्रितं—आश्रित दशम मृपा, अचौरेऽप्यमित्यभ्याख्यानवचनम्।

४ दशवैकालिक ७।१२, १३

तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगि त्ति तेणं चोरे त्ति नो वए॥
एएणन्नेण अट्ठेण परो जेणुवहम्मई।
आयार भाव-दोसन्नू न तं भासेज्ज पन्नवं॥

३३ शस्त्र (सू० ९३)

वध या हिंसा के साधन को शस्त्र कहा जाता है। वह दो प्रकार का होता है—द्रव्य शस्त्र और भाव शस्त्र। प्रस्तुत सूत्र मे दोनो प्रकार के शस्त्रों का सकलन है। इनमे प्रथम छह द्रव्य शस्त्र है, शेष चार भाव शस्त्र हैं—आन्तरिक शस्त्र हैं।

३४ (सू० ९४)

वाद का अर्थ है गुरु-शिष्य के बीच होने वाली ज्ञानवर्धक चर्चा अथवा वादी और प्रतिवादी के बीच जयलाभ के लिए होने वाला विवाद।[1]

प्रस्तुत सूत्र मे वादकाल मे होने वाले दोषो का निरूपण है।

१ तज्जातदोष—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं—

(१) गुरु आदि के जाति, आचरण आदि विषयक दोष बतलाना।

(२) वादकाल मे प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर मौन हो जाना।[2] अनुवाद द्वितीय अर्थानुसारी है। इसकी तुलना न्याय-दर्शन सम्मत 'अननुभाषण' नामक निग्रहस्थान से की जा सकती है। तीन बार सभा के कहने पर भी वादी द्वारा विज्ञान तत्त्व का उच्चारण न करना 'अननुभाषण' नामक निग्रह स्थान है।[3]

२ मतिभगदोष—इसकी तुलना 'अप्रतिभा' नामक निग्रह स्थान से की जा सकती है। प्रतिपक्षी के आक्षेप का उत्तर न सूझने पर वादी का मौन रह जाना अथवा भय, प्रमाद, विस्मृति या सकोचवश उत्तर न दे पाना 'अप्रतिभा' नामक निग्रह-स्थान है।[4]

३ प्रशास्तृदोष—सभानायक और सभ्य—ये प्रशास्ता कहलाते हैं। वे झुकाव या अपेक्षा के वश प्रतिवादी को विजयी बना देते हैं। प्रमेय की विस्मृति होने पर उसे याद दिला देते हैं। इस प्रकार के कार्य प्रशास्ता के लिए अनाचरणीय होते हैं। इसलिए इन्हे प्रशास्तृदोष कहा जाता है।

४ परिहरणदोष—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए है[5]—

(१) अपने दर्शन की मर्यादा या लोकरूढि के अनुसार अनासेव्य का आसेवन नही करना।

(२) वादी द्वारा उपन्यस्त हेतु का सम्यक् परिहार न करना। उदाहरण स्वरूप—बौद्ध तार्किक ने पक्ष की स्थापना की —

'शब्द अनित्य है क्योकि वह कृत है, जैसे घट। इस पर मीमासक का परिहार यह है—तुम शब्द की अनित्यता सिद्ध करने के लिए घटगत कृतत्व को साधन बता रहे हो या शब्दगत कृतकत्व को ? यदि घटगत कृतकत्व को साधन बता रहे हो तो वह शब्द मे नही है, इसलिए तुम्हारा हेतु असाधारण अनैकांतिक है।[6]

इस प्रकार का परिहरण सम्यक् परिहार नही है। यह (परिहरण दोष) मतानुज्ञा निग्रहस्थान से तुलनीय है। उसका अर्थ है—अपने पक्ष मे लगाए गए दोष का समाधान किए बिना दूसरे पक्ष मे उसी प्रकार के दोष का आरोपण करना मतानुज्ञा निग्रह स्थान है।[7]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६७।

२ वही, वृत्तिपत्र ४६७ तस्य गुर्वादेर्जात—जाति प्रकारो वा जन्ममर्मकर्मादिलक्षण तज्जात तदेव दूषणमितिकृत्वा दोष-स्तज्जातदोष तथाविधकुलादिना दूषणमित्यर्य, अथवा तस्मात्-प्रतिवाद्यादे सकाशाज्जात क्षोभा मुखस्तम्भादि लक्षणो दोष-स्तज्जातदोष ।

३ न्यायदर्शन ५।२।१७ विज्ञातस्य परिषदात्रिरभिहितस्याप्यनुच्चारणमननुभाषणम्।

४ न्यायदर्शन ५।२।१९
उत्तरस्याऽप्रतिपत्तिरप्रतिभा।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६७

परिहरण—आसेवा स्वदर्शनस्थित्या लोकरूढ्या वा अनासेव्यस्य तदेव दोष परिहरणदोष, अथवा परिहरण—अनासेवन समारूढ्या सेव्यस्य वस्तुनस्तदेव तस्माद्वा दोष परिहरणदोष, अथवा वादिनोपन्यस्तस्य दूषणस्य असम्यक्-परिहारो जात्युत्तर परिहरण दोष इति।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ४६७।

७ न्यायदर्शन ५।२।२१ स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसग। मतानुज्ञा।

५ लक्षणदोष—

अव्याप्त—जो लक्षण लक्ष्य के एक देश मे मिलता है, वह अव्याप्त लक्षणदोष है। जैसे पशु का लक्षण विपाण।

अतिव्याप्त—जो लक्षण लक्ष्य और अलक्ष्य दोनो मे मिलता है वह अतिव्याप्त लक्षणदोष है। जैसे—वायु का लक्षण गतिशीलता।

असभव—जो लक्षण अपने लक्ष्य मे अशत भी नही मिलता, वह असभव लक्षण-दोप है। जैसे—पुद्गल का लक्षण चैतन्य।[1]

६ कारण दोप—मुक्त जीव का सुख निरुपम होता है—इस वाक्य में सर्वविदित साध्य और साधन धम से अनुगत दृष्टान्त नही है, इसलिए यह उपपत्ति मात्र हैं। परोक्ष अर्थ का निर्णय करने के लिए प्रयुक्त उपपत्ति को कारण कहाजाता है।

७ हेतुदोप—

असिद्ध—अज्ञान, सदेह या विपर्यय के कारण जिम हेतु के स्वरूप की प्रतीति नही होती, वह असिद्ध हेतुदोप है। जैसे—शब्द अनित्य है, क्योकि वह चाक्षुप है।

विरुद्ध—विवक्षित साध्य से विपरीत पक्ष मे व्याप्त हेतु विरुद्ध हेतु दोष है। जैसे शब्द नित्य है, क्योंकि वह कृतक है।

अनैकान्तिक—जो हेतु साध्य के अतिरिक्त दूसरे साध्य मे भी घटित होता है, वह अनैकान्तिक हेतु दोप है। जसे यह असर्वज्ञ है, क्योकि वोलता है।[2]

८ सक्रमण दोष—प्रस्तुत प्रमेय को छोडकर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना, परमत द्वारा असम्मत तत्त्व को उसका मान्य तत्त्व वतलाना या प्रतिवादी के पक्ष को स्वीकार करना।

यह हेत्वन्तर और अर्थान्तर निग्रहस्थान से तुलनीय है। हेत्वन्तर का अर्थ है—अपने पहले हेतु को छोडकर दूसरे हेतु को उपस्थित करना। अर्थान्तर का अर्थ है—प्रस्तुत अर्थ से असम्वद्ध अर्थ का प्रतिपादन करना।[3]

९ निग्रहदोप—इसका अनुवाद वृत्ति के आधार पर किया गया है। न्याय दर्शन के अभिप्राय से भी इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। वादी के निग्रहस्थान मे न पडने पर भी प्रतिवादी द्वारा उसको निग्रहस्थान मे पडा हुआ कहना निग्रहदोष है। न्यायदर्शन की भाषा मे इसे 'निरनुयोज्यानुयोग' कहा जाता है।[4]

१० वस्तुदोप—पक्ष के दोप पाँच हैं—

१ प्रत्यक्षनिराकृत—शब्द अश्रावण है (श्रवण का विषय नही है)। २ अनुमान निराकृत—शब्द नित्य है।

३. प्रतीति निराकृत—शशी चंद्र नही है। ४ स्ववचन निराकृत—मैं कहता हू वह मिथ्या है।

५ लोकरूढिनिराकृत—मनुष्य की खोपडी पवित्र है।

३५. (सूत्र ९५)

जिस धर्म के द्वारा अभिन्नता का वोध होता है उसे सामान्य और जिससे भिन्नता का वोध होता है उसे विशेष कहा जाता है। सामान्य सग्राहक और विशेष विभाजक होता है। प्रस्तुत सूत्र मे दस विशेष सगृहीत हैं। मूल पाठ मे दस विशेषों के नाम उल्लिखित नही हैं। उनका प्रतिपादन एक सग्रह गाथा के द्वारा किया गया है। वह गाथा कहाँ से सगृहीत है, यह अभी ज्ञात नहीं हो सका है। इसलिए इसके सक्षिप्त नामो का ठीक-ठीक अर्थ लगाना बडा जटिल है। वृत्तिकार ने इनके अर्थ किए हैं, किन्तु स्थान-स्थान पर प्रदर्शित विकल्पो से ज्ञात होता है कि उनके सामने इनकी निर्णायक अर्थ-परम्परा नही

---

१ भिक्षुन्यायकर्णिका १।७,८,९।

२ भिक्षुन्यायकर्णिका ३।१७,१८,१९।

३ न्यायदर्शन ५।२।६,७।

४ वही, ५।२।२३ अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोग।

थी। उदाहरण के लिए हम 'अत्तणा उवणीते य' इस पद को लेते हैं। वृत्तिकार ने दोनो में शेष का अध्याहार कर इनकी व्याख्या की है।[1] किन्तु अन्य स्थलो के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'अत्तणा उवणीते' (स० आत्मना उपनीत) यह विशेष का एक ही प्रकार होना चाहिए। चौथे स्थान (सूत्र ५०२) से आहरणतद्दोष (साध्यविकल उदाहरण) का तीसरा प्रकार 'अत्तोवणीत' (स० आत्मोपनीत) है। परमत मे दोष दिखाने के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाए और उससे स्वमत दूषित हो जाए, उसे 'आत्मोपनीत' नामक आहरणतद्दोष कहा जाता है।

ऐसा करने पर विशेष की सख्या नौ रह जाती है। इस सग्रहगाथा के चतुर्थ चरण में 'विसेसे' और 'ते' ये दो शब्द हैं। वृत्तिकार ने इस विशेष को भावनावाक्य माना है और 'ते' को विशेष का सर्वनाम।[2] उन्होंने 'अत्तणा' और 'उवणीत' को पृथक् माना इसलिए उन्हें ऐसा करना पडा। यदि इन्हें दो नही माना जाता तो विशेष का दसवां प्रकार 'विशेष' होता। इसका अर्थ विशेष नामक वस्तु-धर्म किया जा सकता है। वस्तु मे दो प्रकार के धर्म होते हैं—सामान्य और विशेष। विशेष के दो प्रकार हैं—गुण और पर्याय।[3]

इसी प्रकार प्रत्युत्पन्न का वृत्तिगत अर्थ भी विचारणीय है। वृत्तिकार के अनुसार इसका अर्थ है—वस्तु को केवल वार्तमानिक या प्रत्युत्पन्न मानने पर कृतकर्म के प्रणाश और अकृत कर्म के भोग की आपत्ति होना। गाथा मे 'पडुपन्न' शब्द पडुप्पन्नविणासी' का सक्षिप्त रूप हो सकता है। 'पडुप्पन्नविणासी' आहारण का एक प्रकार है। उसका अर्थ है—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त।

प्रस्तुत सूत्र मे विशेष का वर्गीकरण है। विशेष सामान्य के प्रतिपक्ष मे होता है। इससे यह फलित होता है कि इन दसों विशेषो के प्रतिपक्ष मे दस सामान्य होने चाहिए जैसे—

वस्तुदोषविशेष	—	वस्तुदोषसामान्य
तज्जातदोषविशेष	—	तज्जातदोषसामान्य
दोषविशेष	—	दोषसामान्य
एकार्थिकविशेष	—	एकार्थिक सामान्य आदि-आदि।

सूत्रकार के सामने निर्दिष्ट वर्गीकरण के सामान्य और विशेष क्या रहे हैं, इसे जानने के साधन सुलभ नही हैं। फिर भी यह अनुसधेय अवश्य है। वृत्तिकार ने दोष विशेष के अन्तर्गत पूर्व सूत्र निर्दिष्ट मतिभग, प्रशास्तृ, परिहरण, स्वलक्षण, कारण, हेतु, सक्रमण, निग्रह आदि दोषो का सग्रह किया है। उनके अनुसार प्रस्तुत सूत्र में ये विशेष की कोटि मे आते हैं।

एकार्थिक विशेष की व्याख्या समभिरूढ नय की दृष्टि से की जा सकती है। साधारणतया शब्दकोषों मे एक वस्तु के अनेक नामो को एकार्थक या पर्यायवाची माना जाता है। किन्तु समभिरूढ नय की दृष्टि से शब्द एकार्थक नहीं होते। वह निरुक्ति की भिन्नता के आधार पर प्रत्येक शब्द का स्वतन्त्र अर्थ स्वीकार करता है,[4] जैसे—भिक्षा करने वाला भिक्षु, मौन करने वाला वाचयम, इन्द्रिय और मन का दमन करने वाला दान्त।

अधिक दोष विशेष न्यायदर्शन के 'अधिक' नामक निग्रहस्थान से तुलनीय है।[5]

३६ (सू० ९६)

१ चकार अनुयोग—चकार शब्द के अनेक अर्थ हैं—

(१) समाहार—महति, एक ही तरह हो जाना।

(२) इतरेतरयोग—मिलित व्यक्तियो या वस्तुओ का सम्बन्ध।

(३) समुच्चय—शब्दो या वाक्यो का योग।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६६
असत्त्वंति आत्मना कृतमिति शेष।
उपनीत अर्पितं परेणेति शेष॥

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६६ चकारयोर्विशेषशब्दस्य च प्रयोगो भावनावाक्ये दर्शित।

३ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार ५।६ विशेषोऽपि द्विरूपो गुण पर्यायश्च।

४ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार ७।३६ पर्यायशब्देषु निरुक्ति-भेदेन भिन्नमर्थमभिरोहन् समभिरूढ।

५ न्यायदर्शन ५।२।१३ 'हेतूदाहरणाधिकमधिकम्।

(४) अन्वाचय—मुख्य काम या विषय के साथ गौण काम या विषय जोड़ना।

(५) अवधारण—निश्चय।

(६) पादपूरण—पदपूर्ति।

जैसे—'इत्थियो समणाणि य'—यहां 'च' शब्द समुच्चय के अर्थ मे प्रयुक्त है।

२ मकार अनुयोग—जेणामेव तेणामेव यहां 'मकार' का प्रयोग आगमिक है, अलाक्षणिक है—प्राकृत व्याकरण से सिद्ध नही है। उसके अनुसार इसका रूप 'जेणेव' 'तेणेव' होता है।

३ पिंकार अनुयोग—'अपि' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—सम्भावना, निवृत्ति, अपेक्षा, समुच्चय, गर्हा, शिष्या-मर्षण—विचार, अलकार तथा प्रश्न। 'एवपि एगे आसासे'—यहां 'अपि, का प्रयोग, ऐसे भी' और, अन्यथा भी'—इन दो प्रकारान्तों का समुच्चय करता है।

४ सेयकार अनुयोग—'से' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—अथ, वह, उसका आदि। 'से भिक्खु'—यहां से का अर्थ अथ है।

'न से चाइत्ति वुच्चइ'—यहां से का अर्थ वह (वे) है।

अथवा 'सेय' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—श्रेयम्—कल्याण।

एष्यत्काल—भविष्यत काल आदि।

'सेय मे अहिज्जिऊ अज्झयण'—यहां 'सेय' शब्द 'श्रेयस्' के अर्थ मे प्रयुक्त है।

'सेय काले अकम्म वावि भवइ'—यहां 'सेय' शब्द भविष्यत काल का द्योतक है।

५ सायकार अनुयोग—'साय' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—सत्य, सद्भाव, प्रश्न आदि।

६ एकत्व-अनुयोग—

'नाण च दसण चेव, चरित्ते य तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पन्नत्तो, जिणेहि वरदसिहि ॥ उत्तरा ॥२८।२

यहां ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप के समुदितरूप को ही मोक्ष-मार्ग कहा है। इसलिए बहुतों के लिए भी 'मग्ग' यह एकवचन का प्रयोग है।

७ पृथक्त्व अनुयोग—जैसे—धम्मत्थिकाये, धम्पत्थिकायदेसे,धम्मत्थिकायप्पदेसा—

यहां—धम्मत्थिकायप्पदेसा—इसमे दो के लिए बहुवचन नही है किन्तु धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का असख्यत्व बतलाने के लिए है।

८ सयूथ अनुयोग—'सम्मत्तदसणसुद्ध' इस समासान्त पद का विग्रह अनेक प्रकार से किया जा सकता है, जैसे —

(१) सम्यग्दर्शन के द्वारा शुद्ध (तृतीया)

(२) सम्यग्दर्शन के लिए शुद्ध (चतुर्थी)

(३) सम्यग्दर्शन से शुद्ध (पचमी)

९ सक्रामित अनुयोग—जैसे—'साहूण वदणेण नासति पाव असकिया भावा' साधु को वदना करने से पाप का नाश होता है और साधु के पास रहने से भाव अशकित होते हैं। यहां वदना के प्रसग मे 'साहूण' षष्ठी विभक्ति है। उसका भाव अशकित होने के सम्बन्ध मे पचमी विभक्ति के रूप मे सक्रमण कर लेना चाहिए।

वचन-सक्रमण—जैसे—'अच्छदा जे न भुजति, न से चाइत्ति वुच्चइ'—यहां 'से चाई' यह बहुवचन के स्थान मे एक-वचन है।

१० भिन्न अनुयोग—जैसे—'तिविह तिविहेण'—यह सग्रह-वाक्य है। इसमे (१) मणेण वायाए कायेण (२) न करेमि, न कारवेमि, करत पि अन्न न समणुजाणामि—इन दो खंडो का सग्रह किया गया है। द्वितीय-खड 'न करेमि' आदि तीन वाक्यो मे 'तिविहेण' का स्पष्टीकरण है और प्रथम खड 'मणेण' आदि तीन वाक्याशो मे 'तिविहेण' का स्पष्टीकरण है। यहां 'न करेमि' आदि बाद मे हैं और 'मणेण' आदि पहले। यह क्रम-भेद है।

कालभेद—जैसे 'सक्के देविंदे देवराया वदति नमसति'—यहां अतीत के अर्थ मे वर्तमान की क्रिया का प्रयोग है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि १०।९४,९५,९६—ये तीन सूत्र अत्यन्त गम्भीर होने के कारण दूसरे प्रकार से भी विमर्शनीय हैं। यह दूसरा प्रकार क्या हो सकता है यह अन्वेषणीय है।[1]

३७ (सू० ९७)

भारतीय सस्कृति मे दान की परम्परा बहुत प्राचीन है। दान का अर्थ है—देना। इस देने की पृष्ठभूमि मे अनेक प्रेरणाए काम करती रही हैं। वे प्रेरणाए एक जैसी नही हैं। कुछ व्यक्ति दूसरो की दीन-दशा से द्रवित होकर दान देते हैं, भय से प्रेरित होकर दान देते हैं और कुछ अपनी ख्याति के लिए दान देते हैं।

प्रस्तुत सूत्रगत दस दानो का निरूपण तत्कालीन समाज मे प्रचलित प्रेरणाओं का इतिहास है।

वाचकमुख्य उमास्वाति ने उनकी व्याख्या इस प्रकार की है।

१ अनुकम्पादान—

'कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकम्पा तद्भवेद्दानम्॥

—कृपण, अनाथ, दरिद्र, दु खी, रोगी और शोकग्रस्त व्यक्ति पर करुणा लाकर जो दान दिया जाता है, वह अनुकम्पा दान है।

२ सग्रहदान—

'अभ्युदये व्यसने वा यत्किञ्चिद्दीयते सहायार्थम्।
तत् सग्रहतोऽभिमत, मुनिभिर्दान न मोक्षाय॥

किसी भी व्यक्ति को उसके अभ्युदयकाल या कष्टदशा मे सहायता देने के लिए जो दान दिया जाता है, वह सग्रह दान है।

३ भयदान—

'राजारक्षपुरोहितमधुमुखमावल्लदण्डपाशिषु च।
यद्दीयते भयार्थात् तद्भयदान बुधैर्ज्ञेयम्॥'

—जो दान राजा, आरक्षक, पुरोहित, मधुमुख, चुगलखोर और कोतवाल आदि के भय से दिया जाता है, वह भयदान है।

४ कारुण्यदान—कारुण्य का अर्थ शोक है। अपने प्रियजन का वियोग होने पर उसके उपकरण—वस्त्र, खटिया, आदि दान मे देते हैं। इसके पीछे एक लौकिक मान्यता है कि उसके उपकरण दान मे देने पर वह जन्मान्तर मे सुखी होता है। इस प्रकार का दान कारुण्यदान कहलाता है। वास्तव में यह कारुण्यजन्य (शोकजन्य) दान है। फिर भी कार्यकारण का अभेद मानकर इसकी सज्ञा कारुण्यदान की गई है।

५ लज्जादान—

"अभ्यर्थित परेण तु यद्दान जनसमूहमध्यगत।
परचित्तरक्षणार्थं लज्जायास्तद्भवेद्दानम्॥"

जनसमूह के बीच कोई किसी से याचना करता है तब वह दाता दूसरे की बात रखने के लिए दान देता है, यह लज्जादान है।

६ गौरवदान—

'नटनर्त्तमुष्टिकेभ्यो दान सबधिबधुमित्रेभ्य।
यद्दीयते यशोर्थं गर्वेण तु तद् भवेद्दानम्॥'

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७० इदं च दोपादि सूत्रत्रयम यद्यपि विमर्शनीय गम्भीरत्वादस्येति।

जो दान अपने यश के लिए नट, नृत्यकार, मुक्केबाजो तथा अपने सम्बन्धि, बन्धु और मित्रों को दिया जाता है, वह गौरव दान है।

७ अधर्मदान—

'हिंसानृतचौर्योद्यतपरदारपरिग्रहप्रसक्तेभ्य ।
यद्दीयते हि तेषा तज्जानीयादधर्माय ॥'

जो व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और सग्रह मे आसक्त हैं, उन्हे जो दान दिया जाता है, वह अधर्म दान है।

८ धर्मदान—

'समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दान दीयते सुपात्रेभ्य ।
अक्षयमतुलमनन्त, तद्दान भवति धर्माय ॥'

जो तृण, मणि और मुक्ता में समभाव वाले हैं, जो सुपात्र हैं, उन्हे दिया जाने वाला दान धर्मदान है। यह दान अक्षय है, अतुल है और अनन्त है।

९ करिष्यतिदान—भविष्य मे यह मेरा उपकार करेगा, इस बुद्धि से किया जाने वाला दान करिष्यतिदान है।

१० कृतमिति दान—

'शतश कृतोपकारो दत्त च सहस्रशो ममानेन ।
अहमपि ददामि किञ्चित् प्रत्युपकाराय तद्दानम् ॥'

'इसने मेरा सैकडो वार उपकार किया है और इसने मुझे हजारो वार दिया है। मैं भी इसका कुछ प्रत्युपकार करू।' इस भावना से दिया जाने वाला दान कृतमिति दान है।[१]

३८. (सू० ९८)

विग्रहगति—यहाँ वृत्तिकार ने इसका अर्थ—आकाश विभाग का अतिक्रमण कर होने वाली गति—किया है।[२]

भगवती में एक-सामयिक, द्वि-सामयिक, त्रि-सामयिक और चतु सामयिक विग्रहगति का उल्लेख मिलता है।[३] एक-सामयिक विग्रहगति मे जो विग्रह शब्द है उसका अर्थ वक्र या घुमाव नही है। वहाँ बताया है कि एक-सामयिक विग्रहगति से वही जीव उत्पन्न होता है जिसका उत्पत्ति-स्थान ऋजु-आयात श्रेणी मे होता है।[४]

ऋजु श्रेणी मे उत्पन्न होने वाले की गति ऋजु होती है। उसमे कोई घुमाव नही होता। तत्वार्थ टीका मे इस विग्रह का अर्थ अवच्छेद या विराम किया गया है।[५]

प्रथम चार गतियों में उत्पन्न होने वाले जीव ऋजु और वक्र—इन दोनो गतियो से गमन करते हैं। वृत्तिकार का यह आशय है कि प्रत्येक गति के दूसरे पद मे 'विग्रह' का प्रयोग है, इसलिए प्रथम पद की व्याख्या ऋजु गति के आधार पर की जानी चाहिए।

सिद्धगति मे उत्पन्न होने वाले जीव केवल ऋजु गति से ही गमन करते हैं। उनके विग्रहगति नही होती। फलत. 'सिद्धि विग्गहगति' यह दसवा पद ही नही बनता। वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'सिद्धि अविग्गहगती' इस पाठ के आधार पर

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४७०, ४७१।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४७१ विग्रहात्—क्षेत्र विभागात् अतिक्रम्य गति गमनम्।

३ भगवती ३४।२ गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा ।

४ भगवती ३४।३ उज्जुआययाए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा।

५ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र २।२९, वृत्ति पत्र १८३, १८४ एक समयेन वा विग्रहेणोत्पद्येतेति, विग्रहशब्दोऽत्रावच्छेदवचनो न वक्रतामिधायीत्यतोऽयमर्थ —एक समयेन वाऽवच्छेदन विरामेण। कस्यावच्छेदेनेति चेत् ? सामर्थ्याद् गतेरेव, एकसमय-परिणामगतिकालोत्तरभाविनाऽवच्छेदेनोत्पद्येत।

किया है। इस अर्थ को स्वीकार करने पर सिद्धि गति के दोनों पदों का एक ही अर्थ हो जाता है। इस समस्या का समाधान हमे भगवती सूत्र के उक्त पाठ से ही मिल सकता है। वहां विग्रह शब्द ऋजु और विग्रह गति वाली परम्परा से सम्बन्धित नही है। वह उस परम्परा से सम्बन्धित है जिसमें पारलौकिक गति के लिए केवल विग्रह शब्द ही प्रयुक्त होता है। जहां ऋजु और विग्रह—ये दोनो गतियां विवक्षित हैं, वहां एक-समय की गति को ऋजुगति और द्विसमय आदि की गति को वक्रगति माना जाता है। इस परम्परा मे एक सामयिक गति को भी विग्रह गति माना गया है।

उक्त अर्थ-परम्परा को मान्य करने पर नरकगति का अर्थ नरक नामक पर्याय और नरकविग्रहगति का अर्थ नरक मे उत्पन्न होने के लिए होनेवाली गति—होगा। शेष सभी गतियों की अर्थ-योजना इसी प्रकार करणीय है।

३९ (सू० १००)

प्रस्तुत सूत्र में गणित के दस प्रकार निर्दिष्ट हैं—

१ परिकर्म—यह गणित की एक सामान्य प्रणाली है। भारतीय प्रणाली में मौलिक परिकर्म आठ माने जाते हैं—(१) सकलन [जोड] (२) व्यवकलन [बाकी], (३) गुणन [गुणन करना], (४) भाग [भाग करना], (५) वर्ग [वर्ग करना] (६) वर्गमूल [वर्गमूल निकालना] (७) घन [घन करना] (८) घनमूल [घनमूल निकालना]। परन्तु इन परिकर्मों मे से अधिकाश का वर्णन सिद्धान्त ग्रन्थो मे नही मिलता।

ब्रह्मगुप्त के अनुसार पाटी गणित मे वीस परिकर्म हैं—(१) सकलित (२) व्यवकलित अथवा व्युत्कलित (३) गुणन (४) भागहर (५) वर्ग (६) वर्गमूल (७) घन (८) घनमूल (९-१३) पाच जातिया[1] (अर्थात् पाच प्रकार के भिन्नो को सरल करने के नियम) (१४) त्रैराशिक (१५) व्यस्तत्रैराशिक (१६) पचराशिक (१७) सप्तराशिक (१८) नवराशिक (१९) एकदसराशिक (२०) भाण्ड-प्रति-भाण्ड[2]।

प्राचीन काल से ही हिन्दू गणितज्ञ इस वात को मानते रहे हैं कि गणित के सव परिकर्म मूलत दो परिकर्मों—सकलित और व्यवकलित—पर आश्रित हैं। द्विगुणीकरण और अर्धीकरण के परिकर्म जिन्हें मिस्र, यूनान और अरव वालो ने मौलिक माना हैं। ये परिकर्म हिन्दू ग्रन्थो मे नही मिलते। ये परिकर्म उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण थे जो दशमलव पद्धति से अनभिज्ञ थे।[3]

२ व्यवहार—ब्रह्मदत्त के अनुसार पाटीगणित मे आठ व्यवहार हैं—

(१) मिश्रक-व्यवहार (२) श्रेढी-व्यवहार (३) क्षेत्र-व्यवहार (४) खात-व्यवहार (५) चिति-व्यवहार (६) क्राकचिक व्यवहार (७) राशि-व्यवहार (८) छाया-व्यवहार।[4]

पाटीगणित—यह दो शब्दो से मिलकर वना है—(१) पाटी और (२) गणित। अतएव इसका अर्थ है। वह गणित जिसको करने मे पाटी की आवश्यकता पडती है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्ततक कागज की कमी के कारण प्राय पाटी का ही प्रयोग होता था और आज भी गावो मे इसकी अधिकता देखी जाती है। लोगो की धारणा है कि यह शब्द भारतवर्ष के सस्कृतेतर साहित्य से निकलता है, जो कि उत्तरी भारतवर्ष की एक प्रान्तीय भाषा थी। 'लिखने की पाटी' के प्राचीनतम सस्कृत पर्याय 'पलक' और 'पट्ट' हैं, न कि पाटी।[5] 'पाटी', शब्द का प्रयोग सस्कृत साहित्य मे प्राय ५वी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। गणित-कर्म को कभी-कभी धूली कर्म भी कहते थे, क्योंकि पाटी पर धूल विछा कर अक लिखे जाते थे। वाद के कुछ लेखकों ने 'पाटी गणित' के अर्थ मे 'व्यक्त गणित' का प्रयोग किया है, जिससे कि वीजगणित से, जिसे वे अव्यक्त गणित कहते थे पृथक् समझा जाए। जब सस्कृत ग्रन्थो का अरवी में अनुवाद हुआ तव पाटीगणित और धूली कर्म शब्दो का भी अरवी मे अनुवाद कर लिया गया। अरवी के सगत शब्द क्रमश 'इल्म-हिसाव-अलतख्त' और 'हिसाव-अलगुवार'[6] है।

---

१ पाच जातियां ये हैं—१ भाग जाति, २ प्रभाग जाति, ३ भागानुवन्ध जाति, ४ भागापवाद जाति, ५ भाग-भाग जाति।

२ वाह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय १२, श्लोक १।

३ हिंदूगणित, पृष्ठ ११८।

४ बाह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय १२, श्लोक १।

५ अमेरिकन मैथेमेटिकल मथली, जिल्द ३५, पृष्ठ ५२६।

६ हिन्दूगणितशास्त्र का इतिहास भाग १ पृष्ठ ११७, ११९,

पाटीगणित के कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ—(१) वक्षाली हस्तलिपि (लगभग ३०० ई०), (२) श्रीधरकृत पाटी गणित और त्रिशतिका (लगभग ७५० ई०), (३) गणित सार सग्रह (लगभग ८५० ई०), (४) गणित तिलक (१०३९ ई०), (५) लीलावती (११५० ई०) (६) गणितकौमुदी (१३५६ ई०) और मुनिश्वर कृत पाटीसार (१६५८ ई०)—इन ग्रन्थो मे उपर्युक्त वीस परिकर्मो और आठ व्यवहारो का वर्णन है। सूत्रो के साथ-साथ अपने प्रयोग को समझाने के लिए उदाहरण भी दिए गए हैं—भास्कर द्वितीय ने लिखा है कि लल्ल ने पाटीगणित पर एक अलग ग्रन्थ लिखा है।

यहा श्रेणी व्यवहार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। सीढी की तरह गणित होने से इसे सेढी-व्यवहार या श्रेणी-व्यवहार कहते है। जैसे—एक व्यक्ति किसी दूसरे को चार रुपये देता है, दूसरे दिन पाच रुपये अधिक, तीसरे दिन उससे पाच रुपये अधिक। इस प्रकार पन्द्रह दिन तक वह देता है। तो कुल कितने रुपये दिये ?

प्रथम दिन देता है उसे 'आदि घन' कहते हैं। प्रतिदिन जितने रुपये वढाता है उसे 'चय' कहते हैं। जितने दिनो तक देता है उसे 'गच्छ' कहते हैं। कुल धन को श्रेणी-व्यवहार या सवर्धन कहते हैं। अन्तिम दिन जितना देता है उसे 'अन्त्यधन' कहते है। मध्य मे जितना देता है उसे 'मध्यधन' कहते हैं।

विधि—जैसे—गच्छ ३५ हैं। इनमे एक घटाया १५ — १ = १४ रहे। इसको चय से १४ × ५ गुणा किया—७० आये। इसमे आदि घन मिलाया ७० + ४ = ७४। यह अन्त्य धन हुआ। ७४ + ४ आदि धन = ७८ का आधा ३९ मध्य धन हुआ।

३९ × १५ गच्छ = ५८५ सवर्धन हुआ।

इसी प्रकार विजातीय अक एक से नौ या उससे अधिक सख्या की जोड, उस जोड की जोड, वर्गफल और घनफल की जोड, इसी गणित के विपय हैं।

३ रज्जु—इसे क्षेत्र-गणित कहते हैं। इससे तालाव की गहराई, वृक्ष की ऊचाई आदि नापी जाती है।

भुज, कोटि, कर्ण, जात्यत्रिस्र, व्यास, वृत्तक्षेत्र और परिधि आदि इसके अग हैं।

४ राशि—इसे राशि-व्यवहार कहते हैं। पाटीगणित मे आए हुए आठ व्यवहारो मे यह एक है। इससे अन्त की ढेरी की परिधि से उसका 'घनहस्तफल' निकाला जाता है।

अन्न के ढेर में बीच की ऊचाई को वेध कहते हैं। मोटे अन्न चना आदि मे परिधि का १/१० भाग वेध होता है। छोटे अन्न मे परिधि का १/११ भाग वेध होता है। शूर धान्य मे परिधि का १/९ भाग वेध होता है। परिधि का १/६ करके उसका वर्ग करने के वाद परिधि से गुणन करने से घनहस्तफल निकलता है। जैसे—एक स्थान पर मोटे अन्न की परिधि ६० हाथ की है। उसका घनहस्तफल क्या होगा ?

६० — १० = ६ वेध हुआ।

परिधि ६० — ६ = १० इसका वर्ग १० × १० = १०० हुआ। १०० × ६ वेध = ६०० घनहस्तफल होगा।

५. कलासवर्ण—जो सख्या पूर्ण न हो, अशो मे हो—उसे समान करना 'कलासवर्ण' कहलाता है। इसे समच्छेदीकरण, सवर्णन और समच्छेदविधि भी कहते हैं (हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ १७९)। सख्या के ऊपर के भाग को 'अश' और नीचे के भाग को 'हर' कहते हैं।

जैसे—१/२ और १/३ है। इसका अर्थ कलासवर्ण ३/६ २/६ होगा।

६ यावत् तावत्—इसे गुणकार भी कहते हैं[1]।

पहले जो कोई सख्या सोची जाती है उसे गच्छ कहते हैं। इच्छानुसार गुणन करने वाली सख्या को वाञ्छ या इष्ट-सख्या कहते हैं।

गच्छ सख्या को इष्ट-सख्या से गुणन करते हैं। उसमे फिर इष्ट मिलाते हैं। उस सख्या को पुन गच्छ से गुणा करते हैं। तदनन्तर गुणनफल मे इष्ट के दुगुने का भाग देने पर गच्छ का योग आता है। इस प्रक्रिया को 'यावत् तावत्' कहते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७१ जावं तावति वा गुणकारोत्ति या एगट्ठा।

जैसे—कल्पना करो कि इष्ट १६ है, इसको इष्ट १० से गुणा किया—१६ × १० = १६०। इसमे पुन इष्ट १० मिलाया (१६० + १० = १७०)। इसको गच्छ से गुणा किया (१७० × १६ = २७२०) इसमे इष्ट की दुगुनी सख्या से भाग दिया २७२० — २० = १३६, यह गच्छ का योगफल है। इस वर्ग को पाटी गणित भी कहा जाता है[1]।

७ वर्ग—वर्ग शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'पक्ति' अथवा 'समुदाय'। परन्तु गणित मे इसका अर्थ 'वर्गघात' तथा 'वर्गक्षेत्र' अथवा उसका क्षेत्रफल होता है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने इसकी व्यापक परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'समचतुरस्र' (अर्थात् वर्गाकार क्षेत्र) और उसका क्षेत्रफल वर्ग कहलाता है। दो समान सख्याओ का गुणन भी वर्ग है[2]। परन्तु परवर्ती लेखकों ने इसके अर्थ को सीमित करते हुए लिखा है—"दो समान सख्याओ का गुणनफल वर्ग है[3]। वर्ग के अर्थ मे कृति शब्द का प्रयोग भी मिलता है, परन्तु बहुत कम[4]। इसे समद्विराशिघात भी कहा जाता है। भिन्न-भिन्न विद्वानो ने इसकी भिन्न-भिन्न विधियों का निरूपण किया है।

८ घन—इसका प्रयोग ज्यामितीय और गणितीय—दोनों अर्थो मे अर्थात् ठोस घन तथा तीन समान सख्याओ के गुणनफल को सूचित करने मे किया गया है। आर्यभट्ट प्रथम का मत है—तीन समान सख्याओ का गुणनफल तथा बारह बराबर कोणो (और भुजाओ) वाला ठोस भी घन है[5]। श्रीधर[6], महावीर[7] और भास्कर द्वितीय[8] का कथन है कि तीन समान सख्याओ का गुणनफल घन है। घन के अर्थ मे 'वृन्द' शब्द का भी यत्र-कुत्र प्रयोग मिलता है। इसे 'समत्रिराशिघात' भी कहा जाता है। घन निकालने की विधियों मे भी भिन्नता है।

९ वर्ग-वर्ग—वर्ग को वर्ग से गुणा करना। इसे 'समचतुर्घात' भी कहते हैं। पहले मूल सख्या को उसी सख्या से गुणा करना। फिर गुणनफल की सख्या को गुणनफल की सख्या से गुणा करना। जो सख्या आती है उसे वर्ग-वर्ग फल कहते हैं। जैसे—४ × ४ = १६ × १६ = २५६। यह वर्ग-वर्ग फल है।

१० कला गणित में इसे 'क्रकच-व्यवहार' कहते हैं। यह पाटीगणित का एक भेद है। इससे लकडी की चिराई और पत्थरों की चिनाई आदि का ज्ञान होता है। जैसे—एक काष्ठ मूल मे २० अगुल मोटा है और ऊपर में १६ अगुल मोटा है। वह १०० अगुल लम्बा है। उसको चार स्थानो मे चीरा तो उसकी हस्तात्मक चिराई क्या होगी? मूल मोटाई और ऊपर की मोटाई का योग किया—२० + १६ = ३६। इसमे २ का भाग दिया ३६ — २ = १८। इसको लम्बाई से गुणा किया—१०० × १८ = १८००। फिर इसे चीरने की सख्या से गुणा किया १८०० × ४ = ७२००। इसमे ५७६ का भाग दिया ७२०० — ५७६ = १२ १/२। यह हस्तात्मक चिराई है।

स्थानाग वृत्तिकार ने सभी प्रकारों के उदाहरण नही दिए हैं। उनका अभिप्राय यह है कि सभी प्रकारो के उदाहरण मन्द बुद्धि वालों के लिए सहजतया ज्ञातव्य नही होते अत उनका उल्लेख नही किया गया है।[9]

सूत्रकृताग २।१ की व्याख्या के प्रारभ मे 'पौंडरीक' शब्द के निक्षेप के अवसर पर वृत्तिकार ने एक गाथा उद्धृत की है, उसमे गणित के दस प्रकारो का उल्लेख किया है[10]। वहा नौ प्रकार स्थानाग के समान ही हैं। केवल एक प्रकार भिन्न रूप से उल्लिखित है। स्थानाग का कल्प शब्द उसमें नही है। वहा 'पुद्गल' शब्द का उल्लेख है, जो स्थानाग मे प्राप्त नहीं है।

४० (सू० १०१)

प्रस्तुत सूत्र मे विभिन्न परिस्थितियो के निमित्त से होने वाले प्रत्याख्यान का निर्देश किया गया है। मूलाचार मे कुछ

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७१ इद च पाटीगणितं तं श्रूयते।
२ आर्यभटीय, गणितपाद, श्लोक ३।
३ त्रिशतिका, पृष्ठ ५।
४ हिन्दूगणितशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ १४०।
५ आर्यभटीय, गणितपाद, श्लोक ३।
६ त्रिशतिका, पृष्ठ ६।
७ गणित-सारसग्रह, पृष्ठ १४
८ लीलावती, पृष्ठ ५।
९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७२।
१० सूत्रकृतांग २।१, वृत्तिपत्र ४
परिकम्म रज्जु रासी ववहारे तह कलासवण्णे य।
पुग्गल जाव तावं घणे य घणवग्ग वग्गे य॥

नाम-परिवर्तन के साथ इनका निर्देश मिलता है। उसकी अर्थ-परम्परा भी कुछ भिन्न है। स्थानाग वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने अनागत प्रत्याख्यान का प्रयोजन इस प्रकार वतलाया है—

'पर्युषण पर्व के समय आचार्य, तपस्वी, ग्लान आदि के वैयावृत्य में सलग्न रहने के कारण मैं प्रत्याख्यान-तपस्या नही कर सकूंगा'—इस प्रयोजन से अनागत तप वर्तमान मे किया जाता है।

मूलाचार के वृत्तिकार वसुनदि श्रमण के शब्दो मे चतुर्दशी आदि को किया जाने वाला तप त्रयोदशी आदि को कर लिया जाता है।

इसी प्रकार विशिष्ट प्रयोजन उपस्थित होने पर पर्युषण पर्व आदि मे करणीय तप नही किया जा सका, उसे बाद मे किया जाता है।

वसुनदि श्रमण के शब्दो मे चतुर्दशी आदि को किया जाने वाला उपवास प्रतिपदा आदि तिथियो मे किया जा सकता है। यह अतिक्रान्त प्रत्याख्यान भी सम्मत रहा है।

कोटि सहित प्रत्याख्यान की अर्थ-परम्परा दोनो मे भिन्न है। अभयदेवसूरि के अनुसार इसका अर्थ है—प्रथम दिन के उपवास की समाप्ति और दूसरे दिन के उपवास के प्रारभ के बीच समय का व्यवधान न होना।

वसुनदि श्रमण के अनुसार यह सकल्प समन्वित प्रत्याख्यान की प्रक्रिया है। किसी मुनि ने सकल्प किया—'अगले दिन स्वाध्याय-वेला पूर्ण होने पर यदि शक्ति ठीक रही तो मैं उपवास करूगा, अन्यथा नही करूंगा।'

स्थानाग मे प्रत्याख्यान के चौथे प्रकार का नाम 'नियत्रित' है मूलाचार मे चौथे प्रत्याख्यान का नाम 'विखडित' है।

यहां नाम-भेद होने पर भी अर्थ-भेद नहीं है। स्थानाग वृत्ति में एक सूचना यह प्राप्त होती है कि यह प्रत्याख्यान वज्रऋषभनाराच सहनन वाले चौदह पूर्वधर, जिनकल्पी और स्थविरो के होता था। वर्तमान मे यह व्युच्छिन्न माना जाता है।

पांचवें और छठे प्रत्याख्यान का दोनो में अर्थ-भेद है। अभयदेवसूरि ने 'आकार' का अर्थ अपवाद और वसुनदि श्रमण ने उसका अर्थ भेद किया है। अनाभोग (विस्मृति), सहसाकार (आकस्मिक) महत्तर की आज्ञा आदि प्रत्याख्यान के अपवाद होते हैं। अभयदेवसूरि ने बताया है कि साकार प्रत्याख्यान मे सभी अपवाद व्यवहार मे लाए जा सकते हैं। अनाकार प्रत्याख्यान मे 'महत्तर' की आज्ञा आदि अपवाद व्यवहार मे नही लाए जा सकते। अनाभोग और सहसाकार की छूट उसमे भी रहती है।

वसुनदी श्रमण ने भेद का आशय इस प्रकार स्पष्ट किया है—'अमुक नक्षत्र मे अमुक तपस्या करनी है' इस प्रकार नक्षत्र आदि के भेद के आधार पर दीर्घकालीन तपस्याए करना साकार प्रत्याख्यान है। नक्षत्र आदि का विचार किए बिना स्वेच्छा से उपवास आदि करना अनाकार प्रत्याख्यान है। मूलाचार में 'परिणामकृत' के स्थान पर 'परिणामगत' शब्द है। स्थानाग वृत्तिकार ने इसे दत्ति, कवल आदि के उदाहरण से समझाया है और मूलाचार वृत्तिकार ने इसे तपस्या के काल-परिणाम के उदाहरण के द्वारा समझाया है। इनके मूल आशय मे कोई भेद प्रतीत नही होता।

स्थानाग मे आठवें प्रत्याख्यान का नाम 'निरवशेष' है और मूलाचार मे 'अपरिशेष' है। वसुनदि श्रमण ने इसका अर्थ—यावज्जीवन सपूर्ण आहार का परित्याग किया है। श्वेताम्बर साहित्य मे यावज्जीवन का अर्थ अभिहित नही है।

स्थानाग मे प्रत्याख्यान का नवा प्रकार है 'सकेतक' और दसवा प्रकार है 'अध्वा'। मूलाचार मे नवा प्रत्याख्यान है 'अध्वानगत' और दसवा है 'सहेतुक'।

नवें और दसवें प्रत्याख्यान के विषय मे दोनों परपराओ मे क्रमभेद, नामभेद और अर्थभेद—तीनों हैं। अभयदेवसूरी ने 'सकेतक' की जो व्याख्या की है, उसके आधार पर यह फलित होता है कि इन्होंने मूलपाठ 'सकेतक' माना है।[1] सकेत

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७३ केतन केत—चिह्नमङ्गुष्ठमुष्टि-ग्रन्थिगृहादिक स एव केतक सह केतकेन सकेतक ग्रन्थादि-सहितमित्यर्थ।

प्रत्याख्यान की व्याख्या इस प्रकार मिलती है—कोई गृहस्थ खेत पर गया हुआ है। उसके प्रहर दिन तक का प्रत्याख्यान है। प्रहर दिन बीत गया। भोजन न मिलने पर वह सोचता है—मेरा एक भी क्षण बिना त्याग के न जाए, इसलिए वह प्रत्याख्यान करता है कि—'जब तक यह दीप नहीं बुझेगा या जब तक मैं घर नही जाऊगा या जब तक पसीने की बूदें नही सूखेंगी या जब तक मेरी मुट्ठी नहीं खुलेगी तब तक मैं कुछ भी न खाऊँगा और न पीऊँगा।

अभयदेवसूरि ने अद्धा प्रत्याख्यान का अर्थ—पौरुषी आदि कालमान के आधार पर किया जाने वाला प्रत्याख्यान किया है। वसुनदि श्रमण ने अध्वानजगत प्रत्याख्यान का अर्थ मार्ग विषयक प्रत्याख्यान किया है। यह अटवी, नदी आदि पार करते समय उपवास आदि करने की पद्धति का सूचक है। सहेतुक प्रत्याख्यान का अर्थ है—उपसर्ग आदि आने पर किया जाने वाला उपवास।

इस प्रकार की पूर्ण जानकारी के लिए स्थानाग वृत्ति पत्र ४७२, ४७३, भगवती ७।२, आवश्यक निर्युक्ति अध्ययन ६ और मूलाचार षड् आवश्यकाधिकार गाथा १४०, १४१ द्रष्टव्य हैं।

दोनों परपराओ मे कुछ पाठो और अर्थों का भेद सचमुच आश्चर्यजनक है। इसकी पृष्ठभूमि मे पाठ-परम्परा का परिवर्तन और अर्थ-परपरा की विस्मृति अन्वेषणीय है। सकेत और अद्धा प्रत्याख्यान के स्थान पर सहेतुक पाठ और उसका अर्थ तथा अध्वानजगत का अर्थ जितना स्वाभाविक और उस समय की परपरा के निकट लगता है उतना सकेत और अद्धा का नही लगता।

४१ (सू० १०२)

भगवती (२५।५५५) मे इन सामाचारियो का क्रम यही है, किन्तु उत्तराध्ययन [अध्ययन २६] मे उनका क्रम भिन्न है। क्रमभेद के अतिरिक्त एक नाम भेद भी है। 'निमत्रणा' के स्थान पर 'अभ्युत्थान' है। किन्तु इनके तात्पर्यार्थ मे कोई अन्तर नहीं है। उत्तराध्ययन की निर्युक्ति मे 'निमतणा' ही है।[1] अभ्युत्थान का अर्थ है—गुरुपूजा। शान्त्याचार्य ने इसका अर्थ गौरवार्ह आचार्य, ग्लान, बाल आदि मुनियो के लिए यथोचित आहार, भेषज आदि लाना—किया है।[2]

मूलाराधना तथा मूलाचार मे 'आवस्सिया' के स्थान पर 'आसिया' शब्द का प्रयोग मिलता है। अर्थ मे कोई भेद नही है।[3]

मूलाचार मे 'निमतणा' के स्थान पर 'सनिमतणा' का प्रयोग मिलता है।

विशेष विवरण के लिए देखें—

उत्तरज्झयणाणि २६।१-७ का टिप्पण।

४२ (सू० १०३)

भगवान् महावीर अपने जन्मस्थान कुण्डपुर से अभिनिष्क्रमण कर ज्ञातखड उपवन मे एकाकी प्रव्रजित हुए। वह मृगशीर्ष कृष्णा दशमी का दिन था। आठ मास तक विहार कर वे अपने पिता के मित्र के आश्रम मे पर्युषणाकल्प के लिए ठहरे। वहा दो महीने रहकर, वे अकाल मे ही वहा से निकल कर अस्थिग्राम सन्निवेश के बाहिर शूलपाणि यक्षायतन मे ठहरे। वहा शूलपाणि ने उन्हें अनेक कष्ट दिए। तब व्यन्तर देव सिद्धार्थ ने उसे भगवान् महावीर का परिचय दिया। शूलपाणि का क्रोध उपशात हुआ। वह भगवान् की भक्ति करने लगा।

शूलपाणि यक्ष ने भगवान् को रात्री के [कुछ समय कम] चारो प्रहर तक परितापित किया। अतिम रात्री में भगवान् को कुछ नींद आई और तब उन्होंने दस स्वप्न देखे।

---

१ उत्तराध्ययन नियुक्ति गाथा ४८२

२ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र ५३४,५३५।

३ (क) मूलाराधना गाथा २०५६।

(ख) मूलाचार, समाचाराधिकार गाथा १२५।

यहा अतिम रात्रि का अर्थ है—रात्री का अवसान, रात्री का अतिम भाग ।'[1]

'छउमत्थकालियाए अतिमराइयसि'—इस पाठ को देखने पर यही धारणा बनती है कि छद्मस्थकाल की अतिम रात्री मे भगवान् महावीर ने दस स्वप्न देखे। किंतु आवश्यकनिर्युक्ति आदि उत्तरवर्ती ग्रन्थो तथा व्याख्याग्रन्थो के साथ इस धारणा की सगति नही बैठती। वृत्तिकार ने जो अर्थ किया है वह प्रस्तुत पाठ और उत्तरवर्ती ग्रन्थो की सगति बिठाने का प्रयत्न है।

एक बार भगवान् महावीर अस्थिग्राम गए। वहा एक वाणव्यन्तर का मदिर था। उसमे शूलपाणि यक्ष की प्रभावशाली प्रतिमा थी। जो व्यक्ति उस मन्दिर मे रात्रिवास करता, वह यक्ष द्वारा मारा जाता था। लोग वहा दिनभर रहते और रात को अन्यत्र चले जाते। वहाँ इन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण पुजारी रहता था। वह भी दिन-दिन मे मदिर मे रहता और रात मे पास वाले गाव में अपने घर चला जाता।

भगवान् महावीर वहा आए। बहुत सारे लोग एकत्रित हो गए। भगवान् ने मदिर मे रात्रिवास करने की आज्ञा मागी। देवकुलिक (पुजारी) ने कहा—मैं आज्ञा नही दे सकता। गाँववाले जानें। भगवान् ने गाँववालो से पूछा। उन्होने कहा—'यहा नहीं रहा जा सकता। आप गाँव मे चलें।' भगवान् ने कहा—'नही, मुझे तुम आज्ञा मात्र दे दो। मैं यही रहना चाहता हू।' तब गाववालो ने कहा—अच्छा, आप जहा चाहें वहा रहे।' भगवान् मदिर के अदर गए और एक कोने मे कायोत्सर्ग मुद्रा कर स्थित हो गए।

पुजारी इन्द्रशर्मा मदिर के अदर गया। प्रतिमा की पूजा की और भगवान् को सबोधित कर कहा—'चलो, यहाँ क्यो खडे हो? अन्यथा मारे जाओगे।' भगवान् मौन रहे। व्यन्तर देव ने सोचा—'देवकुलिक और गाव के लोगो द्वारा कहने पर भी यह भिक्षु यहाँ से नही हट रहा है। मैं भी इसे अपने आग्रह का मजा चखाऊँ।'

साझ की वेला हुई। शूलपाणि ने भीषण अट्टहास कर महावीर को डराना चाहा। लोग इस भयानक शब्द से काप उठे। उन्होंने सोचा—'आज देवार्य मौत के कवल बन जाएँगे।'

उसी गाव मे एक पार्श्वापत्यिक परिव्राजक रहता था। उसका नाम उत्पल था। वह अष्टाग निमित्त का जानकार था। उसने सारा वृत्तान्त सुना। किन्तु रात मे वहा जाने का साहस उसने भी नही किया।

शूलपाणि यक्ष ने जब देखा कि उसका पहला वार खाली गया है, तब उसने हाथी, पिशाच और भयकर सर्प के रूप धारण कर भगवान् को डराना चाहा। भगवान् अब भी अडोल खडे थे। यह देख यक्ष का क्रोध उभर आया। उसने एक साथ सात वेदनाए उदीर्ण कीं। अब भगवान् के सिर, नासा, दात, कान, आख, नख और पीठ मे भयकर वेदना होने लगी। एक-एक वेदना भी इतनी तीव्र थी कि उससे मनुष्य मृत्यु पा सकता था। सातों का एक साथ आक्रमण अत्यन्त अनिष्टकारी था किन्तु भगवान् अडोल थे। वे ध्यान की श्रेणी मे ऊपर चढ रहे थे।

यक्ष अत्यन्त श्रान्त हो गया। वह भगवान् के चरणो में गिर पडा और बोला—'भट्टारक! मुझ पापी को आप क्षमा करें।' भगवान् अब भी वैसे ही मौन खडे थे।

इस प्रकार उस रात के चारो प्रहरों मे भगवान को अत्यन्त भयानक कष्टो का सामना करना पडा। रात के पिछले प्रहर के अतिम भाग मे भगवान् को नीद आ गई। उसमे उन्होंने दस महास्वप्न देखे। स्वप्न देख वे प्रतिबुद्ध हो गए।

प्रस्तुत सूत्र मे दस स्वप्न तथा उनकी फलश्रुति निर्दिष्ट है।

प्रात काल हुआ। लोग आए। अष्टाग निमित्तज्ञ उत्पल तथा देवकुलिक इन्द्रशर्मा भी वहाँ आए। वहाँ का सारा वातावरण सुगधमय था। वे मदिर में गए। भगवान् को देखा। सब उनके चरणो में गिर पडे।

उत्पल आगे बढा और बोला—'स्वामिन्! आपने रात के अतिम भाग मे दस स्वप्न देखे हैं। उनकी फलश्रुति मैं अपने ज्ञान-बल से जानता हूँ। आप स्वय उसके ज्ञाता हैं। भगवान्! आपने जो दो मालाएँ देखी थी उस स्वप्न की फलश्रुति मैं नहीं जान पाया। आप कृपा कर बताए।'

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४७६ अतिमराइयसि त्ति अन्तिमा—अतिमभागरूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिमरात्रिका तस्या रात्रेरवसान इत्यर्थ ।

भगवान् ने कहा—'उत्पल ! जो तुम नहीं जानते, वह मैं जानता हूं ! इस स्वप्न का अर्थ यह है कि मैं दो प्रकार के धर्मों की प्ररूपणा करूंगा—आगार धर्म और अनगार धर्म।'

उत्पल भगवान् को वंदन कर चला गया। भगवान् ने वहां पहला वर्षावास बिताया।[1]

बौद्ध साहित्य में भी बुद्ध के पांच स्वप्नों का उल्लेख है।

जिस समय तथागत बोधिसत्व ही थे, बुद्धत्व लाभ नहीं हुआ था, तब उन्होंने पांच महान् स्वप्न देखे—

१ यह महापृथ्वी उनकी महान् शैय्या बनी हुई थी; पर्वतराज हिमालय उनका तकिया था; पूर्वीय समुद्र बायें हाथ से पश्चिमीय समुद्र दाहिने हाथ से और दक्षिण समुद्र दोनों पावों से ढका था।

२ उनकी नाभी से तिरिया नामक तिनके ने उगकर आकाश को जा छुआ था।

३. कुछ काले सिर तथा श्वेत रंग के जीव पांव से ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते घुटनों तक ढंककर खड़े हो गए।

४ विभिन्न वर्णों के चार पक्षी चारों दिशाओं से आए और उनके चरणों में गिरकर सभी सफेद वर्ण के हो गए।

५ तथागत गूथ पर्वत पर ऊपर-ऊपर चलते हैं और चलते समय उससे सर्वथा अलिप्त रहते हैं।

इनकी फलश्रुति इस प्रकार है—

१ अनुपम सम्यक् संबोधि को प्राप्त करना।

२ आर्य अष्टांगिक मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर, उसे देव-मनुष्यों तक प्रकाशित करना।

३ बहुत से श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ प्राणान्त होने तक तथागत के शरणागत होना।

४ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण वाले तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित हो अनुपम विमुक्ति को साक्षात् करेंगे।

५ तथागत चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय और भैषज्य-परिष्कारों को प्राप्त करने वाले हैं। तथागत इनके प्रति अनासक्त, मूर्च्छित रहते हैं। वे इनमें बिना उलझे हुए, इनके दुष्परिणामों को देखते हुए मुक्त-प्रज्ञ हो इनका उपभोग करते हैं।[2]

दोनों श्रमण नेताओं द्वारा दृष्ट स्वप्नों में शब्द-साम्य नहीं है, किन्तु उनकी पृष्ठभूमि और तात्पर्य में बहुत सामीप्य प्रतीत होता है।

४३. (सू० १०४)

देखें—उत्तरज्झयणाणि २८।१६ का टिप्पण।

४४ (सू० १०५)

प्रस्तुत प्रकरण में संज्ञा के दो अर्थ किए गए हैं—आभोग [संवेगात्मक ज्ञान या स्मृति] और मनोविज्ञान।[3] संज्ञा के दस प्रकार निर्दिष्ट हैं। उनमें प्रथम आठ प्रकार संवेगात्मक तथा अंतिम दो प्रकार ज्ञानात्मक हैं। इनकी उत्पत्ति बाह्य और आन्तरिक उत्तेजना से होती है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं की उत्पत्ति के चार-चार कारण चतुर्थ स्थान में निर्दिष्ट हैं।[4] क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार संज्ञाओं की उत्पत्ति के कारणों का निर्देश भी प्राप्त होता है।[5]

ओघसंज्ञा—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—सामान्य अवबोध क्रिया, दर्शनोपयोग या सामान्य प्रवृत्ति—किया है।[6] तत्वार्थ भाष्यकार ने ज्ञान के दो निमित्तों का निर्देश किया है। इन्द्रिय के निमित्त से होने वाला ज्ञान और अनिन्द्रिय के

---

१ आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २६९, २७०।

२ अंगुत्तरनिकाय, द्वितीय भाग, पृष्ठ ४२५-४२७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७८ संज्ञानं संज्ञा आभोग इत्यर्थः मनोविज्ञानमित्यन्ये।

४ स्थानांग ४।५७९-५८२

५ स्थानांग ४।८०-८३

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७९ मतिज्ञानावरणक्षयोपशमाच्छब्दाद्यर्थगोचरा सामान्यावबोधक्रियैव संज्ञायतेऽनयेत्योघसंज्ञा, तथा तद्विशेषावबोधक्रियैव संज्ञायते अनयेति लोकसंज्ञा।

निमित्त से होने वाला ज्ञान। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द का ज्ञान स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय से होता है। यह इन्द्रिय निमित्त से होनेवाला ज्ञान है। अनिन्द्रिय के निमित्त से होने वाले ज्ञान के दो प्रकार हैं—मानसिक ज्ञान और ओघज्ञान। इन्द्रियज्ञान विभागात्मक होता है, जैसे—नाक से गध का ज्ञान होता है, चक्षु से रूप का ज्ञान होता है। ओघज्ञान निर्विभाग होता है। वह किसी इन्द्रिय या मन से नही होता। किन्तु वह चेतना की, इन्द्रिय और मन से पृथक्, एक स्वतन्त्र क्रिया है।[1]

सिद्धसेनगणि ने ओघज्ञान को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया है—वल्ली वृक्ष आदि पर आरोहण करती है। उसका यह आरोहण-ज्ञान न स्पर्शन इन्द्रिय से होता है और न मानसिक निमित्त से होता है। वह चेतना के अनावरण की एक स्वतन्त्र क्रिया है।[2]

वर्तमान के वैज्ञानिक एक छठी इन्द्रिय की कल्पना कर रहे हैं। उसकी तुलना ओघसज्ञा से की जा सकती है। उनकी कल्पना का विवरण इन शब्दो मे है[3]—

सामान्यतया यह माना जाता है कि हमारे पाच ज्ञानेन्द्रिया हैं,—आख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा।

वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि इन पाच ज्ञानेन्द्रियो के अतिरिक्त एक छठी ज्ञानेन्द्रिय भी है।

इसी छठी इन्द्रिय को अग्रेजी मे 'ई-एस-पी' (एक्स्ट्रासेन्सरी पर्सेप्शन) अथवा अतीन्द्रिय अत करण कहते हैं।

कई वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि प्रकृति ने यह इन्द्रिय बाकी पाचो ज्ञानेन्द्रियों से भी पहले मनुष्य को उसके पूर्वजो को तथा अनेक पशु-पक्षियो को प्रदान की थी। मनुष्य मे तो यह शक्ति जब तक ही प्राकृतिक रूप मे पाई जाती है, क्योकि सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसने इसका 'अभ्यास' त्याग दिया। अनेक पशु-पक्षियों मे यह अब भी देखने मे आती है। उदाहरण के लिए—

१ भूकप या तूफान आने से पहले पशु-पक्षी उसका आभास पाकर अपने बिलो, घोसलो या अन्य सुरक्षित स्थानो मे पहुच जाते है।

२ कई मछलिया देख नहीं सकतीं, परन्तु सूक्ष्म विद्युत् धाराओ के जरिए पानी में उपस्थित रुकावटो से बचकर सचार करती हैं।

आधुनिक युग में आदिम जातियो के मनुष्यो मे भी यह छठी इन्द्रिय काफी हद तक पायी जाती है। उदाहरण के लिए—

१ आस्ट्रेलिया के आदिवासियो का कहना है कि वे धुए के सकेत का प्रयोग तो केवल उद्दिष्ट व्यक्ति का ध्यान खीचने के लिए करते हैं और इसके बाद उन दोनो मे विचारो का आदान-प्रदान मानसिक रूप से ही होता है।

२ अमरीकी-आदिवासियों मे तो इस छठी इन्द्रिय के लिए एक विशिष्ट नाम का प्रयोग होता है और वह है 'शुम्फो।'

लोकसज्ञा—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—विशेष अवबोध क्रिया, ज्ञानोपयोग और विशेष प्रवृत्ति—किया है।[4]

ओघसज्ञा के सदर्भ मे इसका अर्थ विभागात्मक ज्ञान [इन्द्रियज्ञान और मानसज्ञान] किया जा सकता है।

शीलाकसूरी ने आचाराग वृत्ति मे लोकसज्ञा का अर्थ लौकिक मान्यता किया है।[5] किन्तु वह मूलस्पर्शी प्रतीत नही होता।

१ तत्त्वार्थभाष्य १।१४ तत्रेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनादीना पञ्चाना स्पर्शादिषु पञ्चस्वेव स्वविषयेषु। अनिन्द्रियनिमित्त मनोवृत्तिरोघज्ञान च।

२ तत्त्वार्थसूत्र, भाष्यानुसारिणी टीका १।१४, पृ० ७९ ओघ—सामान्य अप्रविभक्तरूप यत्र न स्पर्शनादीनीन्द्रियाणि तानि मनोनिमित्तमाश्रीयन्ते, केवल मत्यावरणीयक्षयोपशम एव तस्य ज्ञानस्योत्पत्तौ निमित्त, यथा—वल्ल्यादीनां नीव्राद्यभिसपणज्ञान न स्पर्शननिमित्त न मनोनिमित्तमिति, तस्मात् तत्र मत्यज्ञानावरणक्षयोपशम एव केवलो निमित्तीक्रियते ओघज्ञानस्य।

३ नवभारत टाइम्स (बम्बई) २४ मई १९७०।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४७९।

५ आचारांगवृत्ति पत्र ११ लोकसज्ञा स्वच्छन्दघटितविकल्परूपा॰ लौकिकाचरिता।

आचाराग निर्युक्ति मे सज्ञा के चौदह प्रकार मिलते हैं[1]—

१ आहार सज्ञा, २ भय सज्ञा, ३ परिग्रह सज्ञा, ४ मैथुन सज्ञा, ५ सुख-दुःख सज्ञा, ६ मोह सज्ञा, ७ विचिकित्सा सज्ञा, ८ क्रोध सज्ञा, ९ मान सज्ञा १० माया सज्ञा, ११ लोभ सज्ञा, १२ शोक सज्ञा, १३ लोक सज्ञा, १४ धर्म सज्ञा।

प्रस्तुत प्रसग मे कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्य भी ज्ञातव्य हैं। मनोविज्ञान ने मानसिक प्रतिक्रियाओं के दो रूप माने हैं—भाव (Feeling) और सवेग [Emotion]

भाव सरल और प्राथमिक मानसिक प्रतिक्रिया है। सवेग जटिल प्रतिक्रिया है।

भय, क्रोध, प्रेम, उल्लास, ह्रास, ईर्ष्या आदि को सवेग कहा जाता है। उसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में होती है और वह शारीरिक और मानसिक यत्न को प्रभावित करता है।

संवेग के कारण बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। बाह्य परिवर्तनों मे ये तीन मुख्य हैं—

१ मुखाकृति अभिव्यजन (Facial expression)

२ स्वराभिव्यजन (Vocal expression)

३ शारीरिक स्थिति (Bodily posture)

आन्तरिक परिवर्तन—

१ श्वास की गति में परिवर्तन (Changes in respiration)

२ हृदय की गति में परिवर्तन (Changes in heart beat)

३ रक्तचाप मे परिवर्तन (Changes in blood pressure)

४ पाचनक्रिया में परिवर्तन (Changes in gastro intestinal or digestvie function)

५ रक्त में रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes in blood)

६ त्वक् प्रतिक्रियाओ तथा मानस-तरगो मे परिवर्तन (Changes in psychogalvanic responses and Brain waves)

७ ग्रन्थियो की क्रियाओ मे परिवर्तन (Changes in the activities of the glands)

मनोविज्ञान के अनुसार सवेग का उद्गम स्थान हाइपोथेलेमस (Hypothalamus) माना जाता है। यह मस्तिष्क के मध्य भाग मे होता है। यही सवेग का सचालन और नियन्त्रण करता है। यदि इसको काट दिया जाए तो सारे सवेग नष्ट हो जाते हैं।

भाव रागात्मक होता है। उसके दो प्रकार हैं—सुखद और दुःखद। उसकी उत्पत्ति के लिए बाह्य उत्तेजना आवश्यक नही होती।

४५ (सू० ११०)

दशा—यह शब्द दस से निष्पन्न हुआ है। जिसके ग्रन्थ में दस अध्ययन हैं उसे दशा कहा गया है। इसका अर्थ है—शास्त्र।[2] प्रस्तुत सूत्र मे दस दशाओ [दस अध्ययन वाले शास्त्रों] का उल्लेख है और इसके अगले सूत्र में उनके अध्ययनों के नाम हैं।

१ कर्म विपाक दशा—ग्यारहवें अग का प्रथम श्रुतस्कध। इसमें अशुभ कर्मों के विपाक का प्रतिपादन है।

२ उपासकदशा—यह सातवा अग है। इसमें भगवान् महावीर के प्रमुख दस उपासकों—श्रावकों का वर्णन है।

---

१ आचारांग निर्युक्ति गाथा ३९
आहार भय परिग्गह मेहुण सुखदुक्ख मोह वितिगिच्छा।
कोह माण माया लोहे सोगे लोगे य धम्मोहे॥

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८० दशाधिकाराभिधायकत्वाद्दशा शास्त्रस्याभिधानमिति।

३ अन्तकृतदशा—यह आठवा अग है। इसके आठ वर्ग हैं। इसके प्रथम वर्ग में दस अध्ययन हैं। इनमें अन्तकृत—ससार का अन्त करने वाले व्यक्तियो का वर्णन है।

४ अनुत्तरोपपातिकदशा—यह नौवा अग है। इसमें पाच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले जीवो का वर्णन है।

५ आचारदशा—इसका रूढ नाम है—दशाश्रुतस्कध। इसमें पाच प्रकार के आचारों—ज्ञानआचार, दर्शनआचार, तपआचार और वीर्यआचार का वर्णन है।

६ प्रश्नव्याकरणदशा—यह दसवा अग है। इसमें अनेकविध प्रश्नो का व्याकरण है।

७-१०—वृत्तिकार ने शेप चार दशाओं का विवरण नही दिया है। 'अस्माक अप्रतीता'—'हमें ज्ञात नहीं हैं'—ऐसा कहकर छोड़ दिया है।[1]

४६ (सू० १११)

कर्मविपाकदशा—वृत्तिकार के अनुसार यह ग्यारहवें अग 'विपाक' का प्रथम श्रुतस्कध है।[2]

विपाक के दो श्रुतस्कध हैं—दु खविपाक और सुखविपाक। प्रत्येक में दस-दस अध्ययन हैं।

वर्तमान में उपलब्ध विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध [दु खविपाक] के दस अध्ययन ये हैं—

१ मृगापुत्र २ उज्झितक ३ अभग्नसेन ४ शकट ५ वृहस्पतिदत्त ६ नदिवर्द्धन [नदिषेण] ७ उम्वरदत्त ८ शौरिकदत्त ९ देवदत्त १० अजू।

दूसरे श्रुतस्कध [सुखविपाक] के दस अध्ययन ये हैं—

१ सुवाहु २ भद्रनदी ३ सुजात ४ सुवासव ५ जिनदास ६ वैश्रमण ७ महावल ८ भद्रनदि ९ महश्चन्द्र १० वरदत्त।

प्रस्तुत सूत्र में आए हुए नाम विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध (दु ख विपाक) के दस अध्ययनो के हैं। दूसरे श्रुतस्कध के अध्ययनो की यहा विवक्षा नही की है। इससे पूर्ववर्ती सूत्र (१०।११०) की वृत्ति में वृत्तिकार ने इसका उल्लेख करते हुए द्वितीय श्रुतस्कध के अध्ययनो की अन्यत्र चर्चा की वात कही है।[3]

पूर्ववर्ती सूत्र की वृत्ति से यह भी प्रतीत होता है कि विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध का नाम 'कर्मविपाकदशा है।'[4]

कर्मविपाक दशा के अध्ययन	उपलब्धविपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के अध्ययन
१ मृगापुत्र	मृगापुत्र
२ गोत्रास	उज्झितक
३ अण्ड	अभग्नसेन
४ शकट	शकट
५ ब्राह्मण	वृहस्पतिदत्त
६ नदिषेण	नदिवर्द्धन
७ शौरिक	उम्वरदत्त
८ उदुवर	शौरिकदत्त
९ सहस्रोद्दाह आमरक	देवदत्ता
१० कुमार लिच्छई	अजू

१ दस्थानागवृत्ति, पत्र ४८० तथा बन्धदशा द्विगृद्धिदशा दीघदशा स्क्षेपिक-दशास्वास्माक मप्रतीता इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८० कमविपाकदशा, विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्ध।

३ वही, पत्र ४८० द्वितीयश्रुतस्कन्धोऽप्यस्य दशाध्ययनात्मक एव, न चासाविहाभिमत, उत्तरत्र विवरिष्यमाणत्वादिति।

४ स्थानांग वृत्ति ४८० कर्म्मण —अशुभस्य विपाक'—फल कमविपाक तत्प्रतिपादका दशाध्ययनात्मकत्वाद्दशा कर्म्म विपाकदशा विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्ध।

दोनो के अध्ययन से नामो का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। विपाक सूत्र मे अध्ययनों के कई नाम व्यक्ति परक और कई नाम वस्तु परक [घटना परक] है।

प्रस्तुत सूत्र मे वे नाम केवल व्यक्ति परक हैं। दो अध्ययनो में क्रम-भेद हैं। प्रस्तुत सूत्र मे जो आठवा अध्ययन है वह विपाक का सातवा अध्ययन है और इसका जो सातवा अध्ययन है वह विपाक का आठवा अध्ययन है। सभी अध्ययनों से सम्बन्धित घटनाए इस प्रकार है—

१ मृगापुत्र—प्राचीन समय मे मृगगाम नाम का नगर था। वहा विजय नाम का क्षत्रिय राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगा था। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम मृगापुत्र रखा गया।

एक बार महावीर के समवसरण मे एक जात्यन्ध व्यक्ति आया। उसे देखकर गौतम ने भगवान् से पूछा—'भदन्त ! क्या इस नगर मे भी कोई जात्यन्ध व्यक्ति है ?' भगवान् ने उन्हे मृगापुत्र की बात कही, जो जन्म से अन्धा और आकृति रहित था। गौतम के मन में कुतूहल हुआ और वे भगवान की आज्ञा ले उसे देखने के लिए उसके घर गए। गौतम का आगमन सुन मृगादेवी बाहर आई। वन्दना कर आगमन का कारण पूछा। गौतम ने कहा—'मैं तेरे पुत्र को देखने के लिए आया हू।' मृगावती ने भौंहरे का द्वार खोला और गौतम को अपना पुत्र दिखाया। गौतम उस अत्यन्त घृणास्पद प्राणी को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वे भगवान् के पास आए और पूछा—'भगवन् ! यह पिछले जन्म में कौन था ?' भगवन् ने कहा—'पुराने जमाने मे विजयवर्द्धमान' नाम का एक खेट (क्षुद्र गाव) था। वहा मकायी नाम का राष्ट्रकूट[1] (गवर्नर) था। वह रिश्वत, भेंट आदि लेता था। लोगो को वह बहुत पीडित करता था। एक बार वह अनेक रोगो से ग्रस्त हुआ और मर कर नरक गया। वहाँ से च्युत होकर वह यहा मृगावती के गर्भ से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ है। वह केवल लोडे के आकार का इन्द्रिय-विहीन और अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है। यहा से मरकर यह पुन नरक मे जाएगा।

२ गोत्रास—हस्तिनागपुर मे भीम नाम का पशु चोर (कूटग्राह) रहता था। उसकी भार्या का नाम उत्पला था। एक बार वह गर्भवती हुई। तीन मास पूर्ण होने पर उसे पशुओं के विभिन्न अकपायो का मास खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने अपने पति भीम से यह बात कही। पति ने उसे आश्वासन दिया। एक रात्रि मे वह भीम घर से निकला और नगर मे जहा गोवाडा था वहा आया। उसने अनेक पशुओ के विभिन्न अवयव काटे और घर आ उन्हें अपनी स्त्री को खिलाया। दोहद पूरा हुआ। नौ मास व्यतीत होने पर उसने एक पुत्र का प्रसव किया। जन्मते ही बालक जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर अनेक पशु भयभीत हो, इधर-उधर दौडने लगे। माता-पिता ने उसका नाम 'गोत्रास'[2] रखा। युवा अवस्था मे उसने अनेक बार गोमास खाया, अनेक दुराचार सेवन किए और अनेक पशुओ के अवयवों से अपनी भूख शात की। इन पाप कर्मो से वह दूसरे नरक में नारक के रूप मे उत्पन्न हुआ। वहा से च्युत होकर वह वाणिज्यग्राम नगर के सार्थवाह विजय की भार्या भद्रा के गभ मे आया। उसका नाम उज्झितक रखा गया। युवा अवस्था मे वह कामध्वज गणिका में आसक्त हो गया। एक बार वह गणिका के साथ काम-भोग भोग रहा था। राजा भी वहा जा पहुचा। उसने 'उज्झितक' को देखा। उसका क्रोध उभर आया। उसने उसे पकड कर खूब पीटा। तिल-तिल कर उसके मास का छेदन कर उसे खिलाया और चौराहे पर उसकी विडम्बना कर उसे मार डाला। मरकर वह नरक मे गया।

प्रस्तुत सूत्र मे इस अध्ययन का नाम पूर्वभव के नाम के आधार पर 'गोत्रास' रखा गया और विपाक सूत्र मे अगले भव के नाम के आधार पर उज्झितक रखा गया है।

३ अड—पुरिमतालपुर मे निन्नक नाम का एक व्यापारी रहता था। वह अनेक प्रकार के अडो का व्यापार करता था। उसके पुरुष जगल मे जाते और अनेक प्रकार के अडे चुरा ले आते थे। इस प्रकार निन्नक ने बहुत पाप सचित किए। मरकर वह नरक मे गया। वहा से निकलकर वह चोरों के सरदार विजय की पत्नी खडश्री के गर्भ मे आया। नौ मास पूर्ण होने पर खडश्री ने पुत्र का प्रसव किया। उसका नाम 'अभग्नसेन' रखा गया। युवा होने पर उसका विवाह आठ सुन्दर

---

१ विवागसुयं पृष्ठ ८८ राष्ट्रकूट—A royal officer who is the head of the province is the Governer

२ यहाँ 'गो' शब्द सामान्य पशुवाची है। इसका अर्थ है—पशुओं को त्रास देनेवाला।

कन्याओ से किया। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह चोरो का अधिपति हुआ। वह लूट-खसोट करने लगा। जनता त्राहि-त्राहि करने लगी। पुरिमताल की जनता अपने राजा महाबल के पास गई और सारी बात कही। राजा ने युक्ति से अभग्नसेन को पकडवाया। उसके तिल-तिल मास का छेदन कर उसे खिलाया और उसे उसी का रक्त पिलाकर उसकी कदर्थना की। वह मरकर नरक गया।

प्रस्तुत सूत्र में अध्ययन का 'अड' नाम पूर्वभव के व्यापार के आधार पर किया गया है और विपाक सूत्र मे अग्रिम-भव के नाम के आधार पर 'अभग्नसेन' रखा है।

४ शकट—शाखाजनी नगर मे सुभद्रा नाम का सार्थवाह रहता था। उसकी भार्या का नाम भद्रा था। उसके पुत्र का नाम 'शकट' था। युवा अवस्था मे वह सुदर्शना नाम की गणिका मे अनुरक्त हो गया। एक बार वहाँ के अमात्य सुषेण ने उसे वहा से भगा कर स्वय सुदर्शना गणिका के साथ भोग भोगने लगा। एक बार शकट पुन वहा आया और गणिका के साथ भोग भोगने लगा। अमात्य ने यह देखा। उसने गणिका और शकट को पकडवा कर मरवा डाला। वह नरक मे गया।

५ ब्राह्मण—प्राचीन काल मे सर्वतोभद्र नाम का नगर था। वहा जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके पुरोहित का नाम महेश्वरदत्त था। राजा ने अपने शत्रुओ पर विजय पाने के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ मे अनेक ब्राह्मण नियुक्त किए गए। महेश्वरदत्त उसमें प्रमुख था। उस यज्ञ मे प्रतिदिन चारो वर्ण का एक-एक लडका, अष्टमी आदि मे दो-दो लडके, चातुर्मास मे चार-चार छह मास मे आठ-आठ और वर्ष मे सोलह-सोलह तथा प्रतिपक्ष की सेना आने पर आठ सौ-आठ सौ लडकों की वलि दी जाती थी। इस प्रकार का पाप-कर्म कर महेश्वरदत्त नरक मे उत्पन्न हुआ।

वहा से निकल कर वह कौशाम्बी नगरी मे सोमदत्त पुरोहित की भार्या वसुदत्ता के गर्भ मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम वृहस्पतिदत्त रखा।

कुमार वृहस्पतिदत्त वहा से राजा उदयन का पुरोहित हुआ। यह रनिवास मे आने-जाने लगा। उसके लिए कोई प्रतिवन्ध नही था। एक वार राजा ने उसे पद्मावती रानी के साथ सहवास करते देख लिया। अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा ने उसे मरवा डाला।

६ नदीषेण—प्राचीन काल मे सिंहपुर नाम का नगर था। वहा सिंहरथ राजा राज्य करता था। दुर्योधन उसका काराध्यक्ष था। वह चोरों को वहुत कष्ट देता था और उन्हे विविध प्रकार की यातनाए देता था। उस क्रूरता के कारण वह मरकर नरक में गया।

वहा से निकल कर वह मथुरा नगरी के राजा श्रीदाम के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम नदिषेण (नदिवर्द्धन) रखा। एक बार उसने राजा को मारकर स्वय राजा बनने का षडयंत्र रचा। षडयंत्र का पता लगने पर राजा ने उसे राजद्रोह के अपराध के कारण दडित किया। राजा ने उसे पकडवाकर नगर के प्रमुख चौराहे पर भेजा। वहा राज-पुरुषो ने उसे गरम पिघले हुए लोहे से स्नान कराया, गरम सिंहासन पर उसे विठाया और क्षारतेल से उसका अभिषेक किया और मरकर नरक मे गया।

७ शौरिक—पुराने जमाने मे नदीपुर नाम का नगर था। वहा मित्र नाम का राजा राज्य करता था। उसके रसोइए का नाम श्रीक था। वह हिंसा मे रत, मासप्रिय और लोलुपी था। मरकर वह नरक मे गया।

वहा से निकलकर वह शौरिक नगर मे शौरिकदत्त नाम का मछुआ हुआ। उसे मछलियों का मास वहुत प्रिय था। एक वार उसके गले मे मछली का काटा अटक गया। उसे अतुल वेदना हुई। उस तीव्र वेदना मे मरकर वह नरक में गया।

विपाक सूत्र में यह आठवा अध्ययन है और सातवा अध्ययन है—'उवरदत्त'।

८ उवरदत्त—प्राचीन काल मे विजयपुर नगर मे कनकरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसके वैद्य का नाम धन्वन्तरी था। वह मासप्रिय और मास खाने का उपदेश देता था। मरकर वह नरक मे गया।

वहा से निकलकर वह पाडलीषण्ड नगर के सार्थवाह सागरदत्त के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम उदुम्बर

रखा। एक वार उसे सोलह रोग[1] हुए। उनकी तीव्र वेदना से मरकर वह नरक मे गया।

९ सहस्सोद्दाह—प्राचीन समय मे सुप्रतिष्ठ नगर मे सिंहसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके पाच सौ रानिया थीं। वह श्यामा नाम की रानी मे बहुत आसक्त था। इससे अन्य ४९९ रानियों की माताओं ने श्यामा को मार डालने का षड्यन्त्र रचा। राजा सिंहसेन को इस षड्यन्त्र का पता चला। उसने अपने नगर के बाहर एक बड़ा घर बनवाया। उसमे खान-पान की सारी सुविधाए रखी। एक दिन उसने उन ४९९ रानी-माताओं को आमन्त्रित किया और उस घर मे ठहराया। जब सब आ गई तब उसने उस घर मे आग लगवा दी। सब जल कर राख हो गई। राजा मरकर नरक में गया।

वहां से निकल कर वह जीव रोहितक नगर मे दत्तसार्थवाह के घर पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम देवदत्त रखा गया। पुष्पनदी राजा के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। राजा पुष्पनदी अपनी माता का बहुत विनीत था। वह हर समय उसकी भक्ति करता और उसी के कार्य मे रत रहता था। देवदत्ता ने अपनी सास को अपने आनन्द में विघ्न समझकर उसे मार डाला। राजा को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उसने विविध प्रकार से देवदत्ता की कदर्थना कर उसे मरवा डाला।

सैकड़ो व्यक्तियों को एक साथ जला देने के कारण, अथवा सहसा अग्नि लगाकर जला देने के कारण उसका नाम 'सहस्सोद्दाह' अथवा सहसोदाह है।

इस कथानक की मुख्य नायिका देवदत्ता होने के कारण विपाक सूत्र में इस अध्ययन का नाम 'देवदत्ता' है।

१० कुमार लिच्छई—प्राचीन समय मे इन्द्रपुर नगर मे पृथिवीश्री नाम की गणिका रहती थी। वह अनेक राज-कुमारो और वणिक् पुत्रों को मत्र आदि से वशीभूत कर उसके साथ भोग भोगती थी। वह मरकर छठी नरक मे गई। वहां से निकल कर वह वर्द्धमान नगर के सार्थवाह धनदेव के घर पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुई। उसका नाम अजू रखा। उसका विवाह राजा विजय के साथ हुआ। वह कुछ वर्ष जीवित रही और योनिशूल से मृत्यु को प्राप्त कर नरक में गई।

इस अध्ययन का नाम 'कुमार लिच्छई' मीमासनीय है। प्रस्तुत सूत्र मे इसका नाम लिच्छवी कुमारों के आचार पर रखा गया है। विपाक सूत्र मे इसका नाम 'अजू' है। जो कथानक की मुख्य नायिका है। इन सबका विस्तृत विवरण विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध से जानना चाहिए।

४७ (सू० ११२)

भगवान् महावीर के दस प्रमुख श्रावक थे। उनका पूरा विवरण उपासकदशा सूत्र मे प्राप्त है। सक्षेप में वह इस प्रकार है—

१ आनन्द—यह वाणिज्यग्राम [वनियाग्राम] मे रहता था। यह अतुल वैभवशाली और साधन-सम्पन्न था। भगवान महावीर से बोधि प्राप्त कर इसने बारह व्रत स्वीकार किए तदनन्तर श्रावक की ग्यारह प्रतिमाए सम्पन्न की। उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम गणधर ने इस पर विश्वास नहीं किया और वे आनन्द से इस विषय मे विवाद कर बैठे। भगवान् ने गौतम को आनन्द से क्षमायाचना करने के लिए भेजा।

२ कामदेव—यह चम्पानगरी का वासी श्रावक था। एक देवता ने इसकी धर्म-दृढता की परीक्षा करने के लिए उप-सर्ग किए। यह अविचलित रहा।

---

१ सोलह रोग ये हैं—

१ श्वास, २ खासी, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ उदरशूल, ६ भगदर, ७ अर्श, ८ अजीर्ण, ९ भ्रमापन, १० शिरःशूल, ११ अरुचि, १२ अक्षिवेदना, १३ कर्णवेदना, १४ खुजली, १५ जलोदर, १६ कोढ।

३ चुलनीपिता—यह वाराणसी [बनारस] का वासी धनाढ्य श्रावक था। एक वार यह भगवान् के पास धर्म प्रवचन सुन प्रतिवुद्ध हुआ। वारह व्रत स्वीकार किए। तत्पश्चात् प्रतिमाओ का वहन किया।

एक वार पूर्वरात्र मे उसके सामने एक देव प्रकट हुआ और अपनी प्रतिज्ञाओ का त्याग करने के लिए कहा। चुलनीपिता ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। तव देव ने उसकी दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए उसके सामने उसके छोटे-बडे पुत्रों को मार डाला। अन्त मे देवता ने उसकी माता को मार डालने की धमकी दी। तव चुलनीपिता अपने व्रत से विचलित हो गया और उसको पकडने के लिए दौडा। देव आकाशमार्ग से उड गया। चुलनीपिता के हाथ मे केवल खम्भा आया और वह जोर से चिल्ला उठा। यथार्थता का ज्ञान होने पर उसने अतिचार की आलोचना की।

४. सुरादेव—यह वाराणसी मे रहने वाला श्रावक था। इसकी पत्नी का नाम धन्ना था। इसने भगवान् महावीर से श्रावक के वारह् व्रत स्वीकार किए। एक वार वह पौषध मे स्थित था। अर्द्ध रात्रि के समय एक देव प्रकट हुआ और वोला—'देवानुप्रिय! यदि तू अपने व्रतो को भग नही करेगा तो मैं तेरे सभी पुत्रो को मारकर उवलते हुए तेल की कडाही मे डाल दूगा और एक साथ सोलह रोग उत्पन्न कर तुझे पीडित करूगा।' यह सुन सुरादेव विचलित हो गया और वह उसे पकडने दौडा। देव अन्तर्हित हो गया। वह चिल्लाने लगा। यथार्थ ज्ञात होने पर उसने आलोचना कर शुद्धि की।

५ चुल्लशतक—यह आलभीनगरी का वासी था। एक वार यह पौषधशाला मे पौषध कर रहा था। एक देव ने उसे धर्म छोडने के लिए कहा। चुल्लशतक अपने धर्म मे दृढ रहा। जव देवता उसका सारा धन अपहरण कर ले जाने लगा तब वह च्युत हुआ और उसे पकडने दौडा। अन्त मे देवमाया को समझ वह आश्वस्त हुआ। वह प्रायश्चित्त ले शुद्ध हुआ।

६ कुण्डकोलिक—यह कापिल्यपुर का वासी श्रावक था। एक वार वह मध्याह्न मे अशोकवन मे आया और शिलापट्ट पर बैठ धर्मध्यान मे स्थित हो गया। उस समय एक देव आया और उसे गोशालक का मत स्वीकार करने के लिए कहा—कुण्डकोलिक ने इसे अस्वीकार कर डाला। वाद-विवाद हुआ। अन्त मे देव पराजित होकर चला गया। कुण्डकोलिक अपने सिद्धान्त पर वहुत ही दृढ हुआ।

७. सद्दालपुत्त—यह पोलासपुर का निवासी कुम्भकार आजीवक मत का अनुयायी था। एक वार मध्याह्न के समय अशोकवन मे धर्म्यध्यान मे स्थित था। उस समय एक देव प्रगट होकर वोला—'कल यहाँ त्रिकालज्ञाता, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी महामानव आयेंगे। तुम उनकी भक्ति करना। दूसरे दिन भगवान् महावीर वहाँ आये। वह उनके दर्शन करने गया और प्रतिवुद्ध हो उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। गोशालक को यह वात मालूम हुई। वह पुन उसे अपने मत मे लाने के लिए प्रयास करने लगा। शकडाल तनिक भी विचलित नही हुआ।

एक वार वह प्रतिमा में स्थित था। एक देव उसकी दृढ़ता की परीक्षा करने आया और उसकी भार्या को मार डालने की वात कही। उससे डरकर वह व्रतच्युत हो गया।

८ महाशतक—यह राजगृह नगर का निवासी श्रावक था। इसके तेरह पत्निया थी। इसकी प्रधान पत्नी रेवती ने अपनी वारह सौतो को मार डाला।

एक वार महाशतक पौषध कर रहा था। रेवती वहाँ आई और कामभोग की प्रार्थना करने लगी। महाशतक ने उसे कोई आदर नही दिया।

एक वार वह श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओ का पालन कर रहा था। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इसी बीच रेवती पुन वहाँ आई और उसने भोग की प्रार्थना की, किन्तु वह विचलित नहीं हुआ।

९ नन्दिनीपिता—यह श्रावस्ती का निवासी श्रावक था। चौदह वर्ष तक श्रावक के व्रतो का पालन कर पन्द्रहवें वर्ष में वह गृहस्थी से विलग हो धर्म्य-ध्यान मे समय विताने लगा। उसने बीस वर्ष पर्यन्त श्रावक-पर्याय का पालन किया।

१० लेयिकापिता—यह श्रावस्ती नगरी का निवासी था। इसने बीस वर्ष पर्यन्त श्रावक-पर्याय का पालन किया।

४८ (सू० ११३)

प्रस्तुत सूत्र मे अन्तकृतदशा के दस अध्ययनो के नाम दिये गये हैं।

वर्तमान मे उपलब्ध इस सूत्र के आठ वर्ग हैं। पहले दो वर्गों मे दस-दस, तीसरे में तेरह, चौथे-पाचवें में दस-दस, छठे में सोलह, सातवें मे तेरह और आठवें मे दस अध्ययन हैं।

वृत्तिकार के अनुसार नमि आदि दस नाम प्रथम दस अध्ययनो के नाम हैं। ये नाम अन्तकृत साधुओं के हैं, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध अन्तकृतदशा के प्रथम वर्ग के अध्ययन-संग्रह मे ये नाम नहीं पाए जाते। वहां इनके बदले ये नाम उपलब्ध होते हैं—

१ गौतम,	२ समुद्र,	३ सागर,	४ गम्भीर,	५ स्तिमित,
६ अचल,	७ कापिल्य,	८ अक्षोभ्य,	६ प्रसेनजित्,	१० विष्णु।

इसलिए सम्भव है कि प्रस्तुत सूत्र के नाम किसी दूसरी वाचना के हैं। ये नाम जन्मान्तर की अपेक्षा से भी नहीं होने चाहिए, क्योकि उनके विवरणो मे जन्मान्तरो का कथन नहीं हुआ है[1]।

छठे वर्ग के सोलह उद्देशकों मे 'किंकर्मा' और 'सुदर्शन' ये दो नाम आए हैं। ये दोनो यहां आए हुए आठवें और पाचवें नाम से मिलते हैं। चौथे वर्ग मे जाली और मयाली नाम आये हैं जो कि प्रस्तुत सूत्र मे जमाली और भगाली से बहुत निकट हैं।

तत्त्वार्थवार्तिक मे अन्तकृतदशा के विषयवस्तु के दो विकल्प प्रस्तुत हैं—(१) प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे होने वाले दस-दस केवलियों का वर्णन है जिन्होंने दस-दस भीषण उपसर्ग सहन कर सभी कर्मो का अन्त कर अन्तकृत हुए थे।

(२) इसमें अर्हत् और आचार्यों की विधि तथा सिद्ध होने वालो की अन्तिम विधि का वर्णन है। महावीर के तीर्थ मे अन्तकृत होने वालो के दस नाम ये हैं—नमि, मतग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कम्बल, पाल और अम्बष्ठपुत्र[2]। प्रस्तुत सूत्र के कुछ नाम इनसे मिलते हैं।

४६ [सू० ११४]

अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग मे दस, दूसरे में तेरह और तीसरे में दस अध्ययन है।

प्रस्तुत सूत्र मे दस अध्ययनो के नाम हैं—ये सम्भवत तीसरे वर्ग के होने चाहिए। वर्तमान मे उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक सूत्र के तीसरे वर्ग के दस अध्ययनो के प्रथम तीन नाम प्रस्तुत सूत्र के प्रथम तीन नामो से मिलते है। उनमें क्रम-भेद अवश्य है। शेष नाम नही मिलते। उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक के तीसरे वर्ग के दस अध्ययनो के नाम इस प्रकार हैं—

१ धन्य,	२ सुनक्षत्र,	३ ऋषिदास,	४ पेल्लक,	५ रामपुत्र,
६ चन्द्रमा,	७ प्रोष्ठक[3]	८ पेढालपुत्र,	६ पोट्टिल,	१० विहल्ल [वेहल्ल]।

प्रस्तुत सूत्र के नाम तथा अनुत्तरोपपातिक के नाम किन्ही दो भिन्न-भिन्न वाचनाओ के होने चाहिए।

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे ये दस नाम इस प्रकार हैं—ऋषिदास, वान्य,[4] सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र। विषयवस्तु के दो विकल्प हैं—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३ इह चाष्टौ वर्गास्तत्र प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि, तानि चामूनि—'नमी' त्यादि सार्द्ध रूपकम्, एतानि च नम्यादिकान्यन्तकृत्साधुनामानि अन्तकृद्दशाङ्ग प्रथमवर्गेऽध्ययनसंग्रहेनोपलभ्यन्ते यतस्तत्राभिधीयते—

"गोयम, १ समुद्द, २ सागर, ३ गभीर, ४ चेव होइ थिमिए, ५ य।

अयले ६ कपिल्ले ७ खलु अक्खोभ ८ पसेणई ६ विण्हू १०॥ इति ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयाम, न च जन्मान्तरनामापेक्षयैतानि, भविष्यन्तीति वाच्य, जन्मान्तराणां तत्रानभिधीयमानत्वादिति॥

२ तत्त्वार्थराजवार्तिक १।२०।

३ वृत्तिकार ने 'पोट्टिले इय' पाठ मानकर उसका संस्कृत रूप 'पोष्ठक इति' दिया है। प्रकाशित पुस्तक मे पिट्ठिमाइय' पाठ और उसका अर्थ 'पृष्टिमातृक' मिलता है।

४ इसके स्थान पर 'धन्य' पाठान्तर दिया हुआ है। वस्तुत मूलपाठ धन्य ही होना चाहिए। ऐसा होने पर दोनों परम्पराओं में एक ही नाम हो जाता है।

१ महावीर के तीर्थ से अनुत्तरोपपातिक विमानो मे उत्पन्न होने वाले दस मुनियो का वर्णन।

२ अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होने वाले जीवो का आयुष्य, विक्रिया आदि का वर्णन[1]।

दस मुमुक्षुओं का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ ऋषिदास—यह राजगृह का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। इसने ३२ कन्याओ के साथ विवाह किया तथा प्रव्रज्या ग्रहण कर, मासिक सलेखना से देहत्याग कर सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुआ।

२ धन्य—काकदी मे भद्रा नामक सार्थवाह रहती थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था धन्य। उसका विवाह ३२ कन्याओ के साथ हुआ। भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर वह दीक्षित हो गया। प्रव्रज्या लेकर वह तपोयोग मे सलग्न हो गया। उसने वेले-वेले (दो-दो दिन के उपवास) की तपस्या और पारणे मे आचाम्ल प्रारभ किया। विकट तपस्या के कारण उसका शरीर केवल ढाचा मात्र रह गया। एक बार भगवान् महावीर ने मुनि धन्य को अपने चौदह हजार शिष्यो मे 'दुष्कर करनी' करने वाला बताया।

३ सुनक्षत्र—यह काकदी का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण कर इसने ग्यारह अगो का अध्ययन किया और अनेक वर्षो तक श्रामण्य का पालन किया।

४ कार्तिक—भगवती १८।३८-५४ मे हस्तिनागपुरवासी कार्तिकसेठ का वर्णन है। उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और वह मरकर सौधर्म कल्प मे उत्पन्न हुआ। वृत्तिकार का कथन है कि वह कोई अन्य है और प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित कार्तिक कोई दूसरा होना चाहिए।[2] इसका विवरण प्राप्त नही है।

५ सट्ठाण [स्वस्थान]—विवरण अज्ञात है।

६ शालिभद्र—यह राजगृह का निवासी था। इसके पिता का नाम गोभद्र और माता का नाम भद्रा था। शालिभद्र ने ३२ कन्याओं के साथ विवाह किया और बहुत ऐश्वर्यमय जीवन जीया। इसके पिता गोभद्र मरकर देवयोनि मे उत्पन्न हुए और शालिभद्र के लिए विविध भोग-सामग्री प्रस्तुत करने लगे।

एक बार नेपाल का व्यापारी रत्नकबल बेचने वहा आया। उनका मूल्य अधिक होने के कारण किसी ने उन्हें नही खरीदा। राजा ने भी उन्हे खरीदने से इन्कार कर दिया।

हताश होकर व्यापारी अपने देश लौट रहा था। भद्रा ने सारे कबल खरीद लिए। कबल सोलह थे और भद्रा की पुत्र-वधुए ३२ थीं। उसने कबलो के बत्तीस टुकडे कर उन्हें पोछने के लिए दे दिए।

राजा ने यह बात सुनी। वह कुतूहलवश शालिभद्र को देखने आया। माता ने कहा—'पुत्र! तुम्हें देखने स्वामी घर आए हैं।' स्वामी की बात सुन उसे वैराग्य हुआ और जब भगवान् महावीर राजगृह आए तब वह दीक्षित हो गया।

प्रस्तुत सूत्र में इसी शालिभद्र का उल्लेख होना सभव है, किन्तु उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे इस नाम का अध्ययन प्राप्त नहीं है। तत्त्वार्थवार्तिक से भी अनुत्तरोपपातिक के 'शालिभद्र' नामक अध्ययन की पुष्टि होती है।[1]

७ आनद—भगवान् के एक शिष्य का नाम 'आनद' था। वह वेले-वेले की तपस्या करता था। एक बार वह पारणा के दिन गोचरी के लिए निकला। गोशाल ने उससे बातचीत की। भिक्षा से निवृत्त हो आनद भगवान् के पास आया और सारी बातें उन्हें कही।

इसका विशेष विवरण प्राप्त नही है।

आनद नामक मुनि का एक उल्लेख निरयावलिका के 'कप्पवर्डिसिया' के नौवें अध्ययन मे प्राप्त होता है। किन्तु वहाँ उसे दशवें देवलोक मे उत्पन्न माना है तथा महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होने की बात कही है। अत यह प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित आनद से भिन्न है।

८ तेतली—ज्ञाताधर्मकथा [१।१४] मे तेतलीपुत्र के दीक्षित होने और सिद्धगति प्राप्त करने की बात मिलती है।

---

१ तत्त्वार्थराजवार्तिक १।२०।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८३ यो भगवत्यां श्रूयते सोऽन्य एव अय पुनरन्योऽनुत्तर सुरेषूपपन्न इति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८३ सोऽयमिह सम्भाव्यते, केवल-मनुत्तरोपपातिकाङ्गे नाधीत इति।

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित 'तेतली' से यह भिन्न है। इसका विशेष विवरण प्राप्त नहीं है।[1]

९ दशार्णभद्र—दशार्णपुर नगर के राजा का नाम दशार्णभद्र था। एक बार भगवान् महावीर वहां आए। राजा अपने ठाट-बाट के साथ दर्शन करने गया। उसे अपनी ऋद्धि और ऐश्वर्य पर बहुत गर्व था। इन्द्र ने इसके गर्व को नष्ट करने की बात सोची। इन्द्र भी अपनी ऋद्धि के साथ भगवान् को वन्दन करने आया। राजा दशार्णभद्र ने इन्द्र की ऋद्धि देखी। उसे अपनी ऋद्धि क्षीण प्रतीत हुई। वैराग्य बढ़ा और वह वहीं भगवान् के पास दीक्षित हो गया।

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित यही दशार्णभद्र होना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे इसका नामोल्लेख नहीं है। कहीं-कहीं इसके सिद्धगति प्राप्त करने का उल्लेख भी मिलता है।[2]

१० अतिमुक्तक—पोलासपुर नगर मे विजय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'श्री' था। उसके पुत्र का नाम अतिमुक्तक था। जब वह छह वर्ष का था, तब एक बार गणधर गौतम को भिक्षा-चर्या के लिए घूमते देखा। वह उनकी अगुली पकड अपने घर ले गया। भिक्षा दी और उनके साथ-साथ भगवान् के पास आ दीक्षित हो गया।

उपर्युक्त विवरण अन्तकृतदशा के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन मे प्राप्त है।

प्रस्तुत सूत्र का अतिमुक्तक मुनि मरकर अनुत्तरोपपातिक मे उत्पन्न होता है। अत दोनों दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति होने चाहिए।[3]

अनुत्तरोपपातिक सूत्र के तीनो वर्गों मे कही भी इसका उल्लेख नहीं है।

५० (सू० ११५)

प्रस्तुत सूत्र मे दशाश्रुतस्कध के दस अध्ययनो के विषयों का सूचन है। इनमे से कई एक विषय समवायाग मे भी आए हैं।

१ बीस असमाधिस्थान	समवाय २०
२ इक्कीस सबल	समवाय २१
३ तेतीस आशातना	समवाय ३३
४ दस चित्तसमाधिस्थान	समवाय १०
५ ग्यारह उपासक-प्रतिमा	समवाय ११
६ बारह भिक्षु-प्रतिमा	समवाय १२
७ तीस मोहनीय स्थान	समवाय ३०

दशाश्रुतस्कध गत इन विषयों के विवरणों मे तथा समवायाग गत विवरणो मे कहीं-कहीं क्रम-भेद, नाम-भेद तथा व्याख्या-भेद प्राप्त होता है। इन सबकी स्पष्ट मीमासा हम समवायाग सूत्र के सानुवाद सस्करण मे तत्-तत् समवाय के अन्तर्गत कर चुके हैं।

१ असमाधिस्थान—असमाधि का अर्थ है—अप्रशस्तभाव। जिन क्रियाओ से असमाधि उत्पन्न होती है वे असमाधिस्थान हैं। वे बीस हैं।

देखें—समवायाग, समवाय २०।

२ शबल—जिस आचरण द्वारा चरित्र धब्बो वाला होता है, उस आचरण या आचरणकर्ता को 'शबल' कहा जाता है। वे इक्कीस हैं।

देखें—समवायाग, समवाय २१।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८३ तेतलिसुत इति यो ज्ञाताध्ययनेषु श्रूयते, स नाय, तस्य सिद्धिगमनश्रवणात्।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८४ सोऽयं दशार्णभद्र सम्भाव्यते, परमनुत्तरोपपातिकांगे नाधीत, क्वचित् सिद्धस्तु श्रूयते इति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८४ इह त्वयमनुत्तरोपपातिकेपु दशमाध्ययनतयोक्तस्तदपर एवाय भविष्यतीति।

३ आशातना—जिन क्रियाओं से ज्ञान आदि गुणों का नाश किया जाता है, उन्हे आशातना कहते हैं। अशिष्ट और उद्दंड व्यवहार भी इसी के अन्तर्गत है। आशातना के तेतीस प्रकार हैं।

देखें—समवायाग, समवाय ३३।

४ गणि सपदा—इसका अर्थ है—आचार्य की अतिशायी विशेषताए अर्थात् आचार्य के आचार, ज्ञान, शरीर, वचन आदि विशेष गुण।

५ चित्त-समाधि—इसका अर्थ है—चित्त की प्रसन्नता। इसकी विद्यमानता मे चित्त की प्रशस्त परिणति होती है।

देखें—समवायाग, समवाय १०।

६ उपासक-प्रतिमा—श्रावको के विशेष व्रत।

देखें—समवायाग, समवाय ११।

७ भिक्षु-प्रतिमा—मुनियो के विशेष अभिग्रह।

देखें—समवायाग, समवाय १२।

८ पर्युपणाकल्प—मूल प्राकृत शब्द है 'पज्जोसवणाकप्प'।

वृत्तिकार ने 'पज्जोसवणा' के तीन सस्कृत रूप दिये हैं—

(१) पर्यास्रवना—जिससे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सबधी ऋतुबद्ध-पर्यायो का परित्याग किया जाता है।

(२) पर्युपशमना—जिसमे कपायो का उपशमन किया जाता है।

(३) पर्युषणा—जिसमे सर्वथा एक क्षेत्र मे जघन्यत सतरह दिन और उत्कृष्टत छह मास रहा जाता है।[1]

९ मोहनीयस्थान—मोहनीय कर्म बध की क्रियाए। ये तीस हैं।

देखें—समवायाग, समवाय ३०।

१० आजातिस्थान—आजाति का अर्थ है—जन्म। वह तीन प्रकार का होता है—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपात।

५१ (सू० ११६)

स्थानाग मे निर्दिष्ट प्रश्नव्याकरण का स्वरूप वर्तमान मे उपलब्ध प्रश्नव्याकरण से सर्वथा भिन्न है।[2]

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित दस अध्ययनो के नामो से समूचे सूत्र के विषय की परिकल्पना की जा सकती है। इस सूत्र में प्रश्न-विद्याओ का प्रतिपादन था। इन विद्याओं के द्वारा वस्त्र, काच, अगुष्ठ, हाथ आदि-आदि मे देवता को बुलाया जाता था और उससे अनेक विध प्रश्न हल किए जाते थे।[3]

इस विवरण वाला सूत्र कब लुप्त हुआ यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता और वर्तमान रूप का निर्माण किसने, कब किया यह भी स्पष्ट नही है। यह तो निश्चित है कि वर्तमान मे उपलब्ध रूप 'प्रश्नव्याकरण' नाम का वाहक नही हो सकता।

उपलब्ध प्रश्नव्याकरण के अध्ययन ये हैं—

१ प्राणातिपात	६ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद	७ मृषावाद विरमण
३ अदत्तादान	८ अदत्तादान विरमण
४ मैथुन	९. मैथुन विरमण
५ परिग्रह	१० परिग्रह विरमण

दिगबर साहित्य में भी प्रश्नव्याकरण का वर्ण्य-विषय वही निर्दिष्ट है जिसका निर्देश यहा किया गया है।[4]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५ प्रश्नव्याकरणदशा इहोक्तरूपा न दृश्यन्ते दृश्यमानास्तु पञ्चाश्रवपञ्चसवरात्मिका इति।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५ प्रश्नविद्या यकाभि क्षौमकादिपु देवतावतार: क्रियते इति।

४ तत्वार्थवार्तिक १।२०।

५२, ५३, ५४ (सू० ११७-११९)

वृत्तिकार ने बंधदशा के विषय मे लिखा है कि वह श्रौत-अर्थ से व्याख्येय है।[1] द्विगृद्धिदशा और दीर्घदशा को उन्होंने स्वरूपत अज्ञात बतलाया है और दीर्घदशा के अध्ययनो के विषय मे कुछ सभावनाए प्रस्तुत की हैं।[2] नदी की आगम सूची में भी इनका उल्लेख नहीं है। दीर्घदशा मे आये हुए कुछ अध्ययनो का निरयावलिका के कुछ अध्ययनो के नाम साम्य हैं। जैसे—

दीर्घदशा	निरयावलिका
चन्द्र	चन्द्र [तीसरा वर्ग पहला अध्ययन]
सूर्य	सूर्य [,, ,, दूसरा अध्ययन]
शुक्र	शुक्र [,, ,, तीसरा अध्ययन]
श्रीदेवी	श्रीदेवी [चौथा वर्ग पहला अध्ययन]
प्रभावती	
द्वीपसमुद्रोपपत्ति	
वहुपुत्रीमदरा	वहुपुत्रिका [तीसरा वर्ग चौथा अध्ययन]
सभूतविजय	
पक्ष्म	
उच्छ्वास नि श्वास	

वृत्तिकार ने निरयावलिका के नाम-साम्य वाले पाच तथा अन्य दो अध्ययनो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के बाद शेष तीन अध्ययनो को [छठा द्वीपसमुद्रोपपत्ति, नौवा स्थविर पक्ष्म तथा दसवा उच्छ्वासनि श्वास] 'अप्रतीत' कहा है—शेषाणि त्रीण्यप्रतीतानि।[3]

उनके अनुसार सात अध्ययनो का विवरण इस प्रकार है—

१ चन्द्र—एक वार भगवान् महावीर राजगृह मे समवसृत थे। ज्योतिष्कराज चन्द्र वहा आया। भगवान् को वदन कर, नाट्य-विधि का प्रदर्शन कर चला गया। गणधर गौतम ने भगवान् से उसके विषय मे पूछा। तब भगवान् वोले—यह पूर्वभव मे श्रावस्ती नगरी मे अगजित् नाम का श्रावक था। यह पार्श्वनाथ के पास दीक्षित हुआ। श्रामण्य की एक वार विराधना की। वहा से मरकर यह चन्द्र हुआ है।

२ सूर्य—यह पूर्व भव मे श्रावस्ती नगरी मे सुप्रतिष्ठित नाम का श्रावक था। इसने भी पार्श्वनाथ के पास सयम ग्रहण किया, किन्तु उसे कुछ विराधित कर सूर्य हुआ।

३ शुक्र—एक वार शुक्र ग्रह राजगृह मे भगवान् को वदना कर लौटा। गौतम के पूछने पर भगवान् ने कहा—'यह पूर्व भव मे वाराणसी में सोमिल नामक ब्राह्मण था। एक वार यह लौकिक धर्म-स्थानो का निर्माण करा कर 'दिक्प्रोक्षक' तापस बना। विविध तप करने लगा। एक वार इसने यह प्रतिज्ञा की कि जहां कही मैं गड्ढे में गिर जाऊगा वही प्राण छोड दूंगा। इस प्रतिज्ञा को ले, काष्ठमुद्रा से मुह को बाध उत्तर दिशा की ओर इसने प्रस्थान किया। पहले दिन एक अशोक वृक्ष के नीचे होम आदि से निवृत्त हो बैठा था। एक देव ने वहा आवाज दी—'अहो सोमिल ब्राह्मण महर्षे! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' पाच दिन तक भिन्न-भिन्न स्थानो मे यही आवाज सुनायी दी। पाचवें दिन इसने देव से पूछा—मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५ बन्धदशानामपि बन्धाद्यध्ययनानि श्रौतेनार्थेन व्याख्यातव्यानि।

२ वही, पत्र ४८५ द्विगृद्धिदशाश्चस्वरूपतो ऽप्यनवसिता। दीर्घदशा स्वरूपतोऽनवगता एव, तदध्ययनानि तु कानिचिन्नरकावलिकाश्रुतस्कन्धे उपलभ्यन्ते।

३ वही, वृत्ति पत्र ४८६।

क्यो है ? देव ने कहा—'तूने अपने गृहीत अणुव्रतो की विराधना की है। अभी भी तू पुन उन्हें स्वीकार कर।' तापस ने वैसे ही किया। श्रावकत्व का पालन कर वह शुक्र देव हुआ है।

४ श्रीदेवी—एक बार श्रीदेवी सौधर्म देवलोक से भगवान् महावीर को वदना करने राजगृह मे आई। नाटक दिखाकर जब वह लौट गई तब गौतम ने इसके पूर्वभव के विषय मे पूछा। भगवान् ने कहा—'इस राजगृह मे सुदर्शन सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'प्रिया' था। उसकी सबसे बड़ी पुत्री का नाम 'भूता' था। वह पार्श्वनाथ के पास प्रव्रजित हुई, किन्तु उसका अपने शरीर के प्रति बहुत ममत्व था। वह उसकी सार-सभाल मे लगी रहती थी। उसने अतिचार की आलोचना नही की। मरकर वह देवलोक मे उत्पन्न हुई।

५ प्रभावती—यह चेटक महाराजा की पुत्री थी। इसका विवाह वीतभयनगर के राजा उद्रायण के साथ हुआ। यह निरयावलिका सूत्र मे उपलब्ध नहीं है।

६ बहुपुत्रिका—यह सौधर्म देवलोक से भगवान् को वदना करने राजगृह मे आई। भगवान् ने इसका पूर्वभव बताते हुए कहा—'वाराणसी नगरी मे भद्र नाम का सार्थवाद रहता था। उसकी यह भार्या यह सुभद्रा थी। यह वध्या थी। इसके मन में सतान की प्रबल इच्छा रहती थी। एक बार कई साध्विया इसके घर भिक्षा लेने आई। इसने पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। उन्होंने धर्म की बात कही। वह प्रव्रजित हो गई। दीक्षित हो जाने पर भी वह दूसरों की सन्तानो की देख-रेख मे दिलचस्पी लेने लगी। इस अतिचार का उसने सेवन किया। मरकर वह सौधर्म मे देवी हुई।

७ स्थविर सभूतविजय—ये भद्रबाहु स्वामी के गुरुभ्राता और स्थूलभद्र तथा शकडालपुत्र के दीक्षा-गुरु थे।

५५ (सू० १२०)

वृत्तिकार ने सक्षेपिकदशा सूत्र के स्वरूप को अज्ञात माना है।[1]

नदीसूत्र मे कालिक-श्रुत की सूची मे इन सभी अध्ययनो के नाम मिलते है।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि नदी मे प्राप्त दस ग्रन्थो का एक श्रुतस्कध के रूप मे सकलन कर उन्हे अध्ययनो का रूप दिया गया है।

१ क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति—

२ महतीविमानप्रविभक्ति—जिस ग्रन्थपद्धति मे आवलिका मे प्रविष्ट तथा इतर विमानो का विभाजन किया जाता है उसे विमानप्रविभक्ति कहा जाता है।[3] ग्रन्थ के छोटे और बडे रूप के कारण इन्हें 'क्षुल्लिका' और 'महती' कहा गया है।

३ अगचूलिका—आचार आदि अगों की चूलिका।

४ वर्गचूलिका—अन्तकृतदशा की चूलिका।

५ व्याख्याचूलिका—भगवती सूत्र की चूलिका।

व्यवहारभाष्य की वृत्ति मे अगचूलिका और वर्गचूलिका का अर्थ भिन्न किया है। उपासकदशा आदि पाच अगो की चूलिका को अगचूलिका और महाकल्पश्रुत की चूलिका को वर्गचूलिका माना है।[4]

इन पाचो—दो विमान प्रविभक्तिया तथा तीन चूलिकाओ को ग्यारह वर्ष की सयम-पर्याय वाला मुनि ही अध्ययन कर सकता है।[5]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८६ सक्षेपिकदशा अप्यनवगतस्वरूपा एव।

२ नदी सूत्र ७८।

३ नदी, मलयगिरीयावृत्ति, पत्र २०६ आवलिकाप्रविष्टानामितरेषां वा विमानानां प्रविभक्ति प्रविभजन यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा विमानप्रविभक्ति।

४ व्यवहार उद्देशक १०, भाष्यगाथा १०७, वृत्ति पत्र १०८
अगाणमगचूली महकप्पसुयस्स वग्गचूलिओ
अगानामुपासकदशाप्रभृतीनां पञ्चाना चूलिका निरावलिका अगचूलिका, महाकल्पश्रुतस्य चूलिका वर्गचूलिका।

५ व्यवहारभाष्य १०।२६।

इसके अनुमार निरयावलिका के पाच वर्गों का नाम अगचूलिका होता है।

६ अरुणोपपात [अरुण+अवपात]—अरुण नामक देव का वर्णन करने वाला ग्रन्थ। इस ग्रन्थ का परावर्तन करने से अरुण देव का उपपात (अवपात) होता है—वह परावर्तन करनेवाले व्यक्ति के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

नदी के चूर्णिकार ने एक घटना से इमे म्पष्ट किया है—

एक वार श्रमण अरुणोपपात ग्रन्थ के अध्ययन मे सलग्न होकर उसका परावर्तन कर रहा था। उस समय अरुणदेव का आसन चलित हुआ। उसने त्वरता के साथ अवधिज्ञान का प्रयोग कर सारा वृतान्त जान लिया। वह अपने पूर्ण दिव्य ऐश्वर्य के साथ उस श्रमण के पास आया, उसे वन्दना कर हाथ जोड कर, भूमि से कुछ ऊचा अधर मे वैठ गया। उसका मन वैराग्य से भरा था और उसके अध्यवसाय विशुद्ध थे। वह उस ग्रन्थ का स्वाध्याय सुनने लगा। ग्रन्थ का स्वाध्याय ममाप्त होने पर उसने कहा—'भगवन्! आपने वहुत अच्छा म्वाध्याय किया, वहुत अच्छा स्वाध्याय किया। आप कुछ वर मागें।' मुनि ने कहा—'मुझे वर से कोई प्रयोजन नही है।' यह सुन अरुण देव के मन मे वैराग्य की वृद्धि हुई और वह मुनि को वन्दना-नमस्कार कर पुन अपने स्थान पर लौट गया।[1]

इसी प्रकार शेप चार—वरुणोपपात, गरुडोपपात, वेलधरोपपात और वैश्रमणोपपात—के विपय मे भी वक्तव्य है।[2]

५६ योगवाहिता (सू० १३३)

वृत्तिकार ने योगवहन के दो अर्थ किए हैं[3]—

१ श्रुतउपधान करना, २ समाधिपूर्वक रहना।

प्राचीन समय मे प्रत्येक आगम के अध्ययन-काल में एक निश्चित विधि से 'योगवहन' करना होता था। उसे श्रुत-उपधान' कहते थे।

देखें—३।८८ का टिप्पण।

५७ (सू० १३६)

स्थविर का अर्थ है—ज्येष्ठ। वह जन्म, श्रुत, अधिकार, गुण आदि अनेक सदर्भों मे होता है।

ग्राम, नगर और राष्ट्र की व्यवस्था करनेवाले वुद्धिमान्, लोकमान्य और सशक्त व्यक्तियो को क्रमश ग्रामम्थविर, नगरस्थविर और राष्ट्रस्थविर कहा जाता है।

४ प्रशम्तास्थविर—धर्मोपदेशक।

५-७ कुलस्थविर, गणस्थविर, सघस्थविर—वृत्तिकार ने सूचित किया है कि कुल, गण और सघ की व्याख्या लौकिक और लोकोत्तर दोनों दृष्टियो से की जा सकती है।[4] कुल, गण और सघ ये तीनों शासन की इकाइयां रही है। सर्व-प्रथम कुल की व्यवस्था थी। उसके पश्चात् गणराज्य और मघराज्य की व्यवस्था भी प्रचलित हुई थी। इसमे जिस व्यक्ति पर कुल आदि की व्यवस्था तथा उसके विघटनकारी का निग्रह करने का दायित्व होता, वह स्थविर कहलाता था। यह लौकिक व्यवस्था-पक्ष है।

लोकोत्तर व्यवस्था के अनुसार एक आचार्य के शिष्यो को कुल, तीन आचार्य के शिष्यो को गण और अनेक आचाय के शिष्यों को मघ कहा जाता है।

---

१ (क) नदी, चूर्णि पृष्ठ ४६।
(ख) नदी, मलयगिरीयावृत्ति, पत्र २०६, २०७।
(ग) स्थानागवृत्ति, पत्र ४८६।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८६ एवं वरुणोपपातादिष्वपि भणितव्य-मिति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८७।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८९ ये कुलस्य गणस्य सघस्य लौकिकस्य लोकोत्तरस्य च व्यवस्थाकारिणस्तद्‌भक्तुश्च निग्राहकास्ते तथोच्यन्ते।

इनमे जिस व्यक्ति पर शिष्यों मे अनुत्पन्न श्रद्धा उत्पन्न करने और उनकी श्रद्धा विचलित होने पर उन्हें पुन धर्म में स्थिर करने का दायित्व होता है वह स्थविर कहलाता है।

८ जाति स्थविर—जन्म पर्याय से जो साठ वर्ष का हो।

९. श्रुत स्थविर—स्थानाग और समवायाग का धारक।[1]

१० पर्याय स्थविर—बीस वर्ष की नयम-पर्याय वाला।

व्यवहार भाष्य मे इन तीनो स्थविरो की विशेष जानकारी देते हुए बताया है कि—जाति स्थविरो के प्रति अनुकम्पा, श्रुत स्थविर की पूजा और पर्याय स्थविर की वन्दना करनी चाहिए।

जाति स्थविर को काल और उनकी प्रकृति के अनुकूल आहार, आवश्यकतानुसार उपधि और वसति देनी चाहिए। उनका सन्तारक मृदु हो और जव एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना पडे तो दूसरा व्यक्ति उसे उठाए। उन्हें यथास्थान पानी पिलाए।

श्रुत स्थविर को कृतिकर्म और वन्दनक देना चाहिए तथा उनके अभिप्राय के अनुसार चलना चाहिए। जब वे आयें तब उठना, उन्हें बैठने के लिए आसन देना तथा उनका पाद-प्रमार्जन करना, जब वे सामने हो तो उन्हें योग्य आहार ला देना, यदि परोक्ष मे हो तो उनकी प्रशसा और गुणकीर्त्तन करना तथा उनके सामने ऊचे आसन पर नही बैठना चाहिए।

पर्याय स्थविर चाहे फिर वे गुरु, प्रव्राजक या वाचनाचार्य न भी हो, फिर भी उनके आने पर उठना चाहिए तथा उन्हें वन्दना कर उनके दड (लाठी) को ग्रहण करना चाहिए।[2]

५८ (सू० १३७)

प्रस्तुत सूत्र मे दस प्रकार के पुत्रों का उल्लेख है। वृत्तिकार ने उनकी व्याख्याए प्रस्तुत की हैं। उन्होंने आत्मज पुत्र की व्याख्या मे आदित्ययशा का उदाहरण दिया है। इससे आत्मज का आशय स्पष्ट होता है।

क्षेत्रज की व्याख्या मे उन्होने पाडवों का उदाहरण दिया है। लोकरूढि के अनुसार युधिष्ठिर आदि कुन्ति के पुत्र नियोग तथा धर्म आदि के द्वारा उत्पन्न माने जाते हैं।

वृत्ति मे 'उवजाइय' पाठ उद्धृत है। उसकी व्याख्या औपयाचितक और आवपातिक—इन दो रूपो मे की है। औपयाचितक का अर्थ वही है जो अनुवाद मे दिया हुआ है। आवपातिक का अर्थ होता है—सेवा से प्रसन्न होकर स्वीकार किया हुआ पुत्र।[3]

मनुस्मृति मे बारह प्रकार के पुत्र बतलाए गए हैं—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयदत्त और शौद्र। इसकी व्याख्या इस प्रकार है—[4]

१ औरस—विवाहित पत्नी से उत्पन्न पुत्र।

२. क्षेत्रज—मृत, नपुसक अथवा सन्तानावरोधक व्याधि से पीडित मनुष्य की स्त्री में, नियोग विधि से कुल के मुख्यो की आज्ञा प्राप्त कर उत्पन्न किया जाने वाला पुत्र।

बोधायन धर्मसूत्र के अनुसार पति के मृतक, नपुसक अथवा रोगी होने पर उसकी पत्नी नियोग-विधि से पुत्र प्राप्त कर सकती थी, यह नियोग दो पुत्रो की प्राप्ति तक ही सम्मत था[5]। विधवा की सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए भी लोग कभी-कभी नियोग स्थापित कर लेते थे, किन्तु यह सम्मत नही था,[6] नियोग द्वारा प्राप्त पुत्र वैध व धर्म्य नही माना जाता।[7]

---

१ स्थानांग सूत्र ३।१८७ में स्थानांग और समवायाग के धारक को श्रुत स्थविर कहा है। प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या में वृत्तिकार ने 'श्रुतस्थविरा —समवायाद्यङ्गधारिण' (वृत्तिपत्र ४८६) समवाय आदि अंगो को धारण करनेवाला श्रुत स्थविर होता है—ऐसा लिखा है आदि से उन्हें क्या अभिप्रेत था यह स्पष्ट नहीं है।

व्यवहार सूत्र में भी स्थानांग और समवायांगधर को श्रुतस्थविर माना है। (ठाणसमवायधरे सुयथेरे—व्यवहार १०। सूत्र १५)

२ व्यवहार १०।१५, भाष्यगाथा ४६-४९, वृत्तिपत्र १०१।

३ स्थानागवृत्ति पत्र ४८९ 'उवजाइय' त्ति उपयाचिते—देवताराधने भव औपयाचितक, अथवा अवपात—सेवा सा प्रयोजनमस्येत्यावपातिक—सेवक इति हृदयम्।

४ मनुस्मृति ९।१६५-१७८।

५ बोधायन धर्मसूत्र २।२।१७, २।२।६८-७०।

६ वसिष्ठ धर्मसूत्र १७।५७।

७ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।१०।२७।४-७।

३ दत्त (दत्रिम)—गोद लिया हुआ पुत्र।

४ कृत्रिम—जो गुण-दोष मे विचक्षण पुत्रगुणयुक्त समान-जातीय है उसे अपना पुत्र बना लिया जाता है—वह कृत्रिम पुत्र कहलाता है।

५ गूढोत्पन्न—जिसका उत्पादक बीज ज्ञात न हो वह गूढोत्पन्न पुत्र कहलाता है।

६ अपविद्ध—माता-पिता के द्वारा त्यक्त अथवा दोनो मे से किसी एक के मर जाने पर किसी एक द्वारा त्यक्त पुत्र को पुत्र रूप मे स्वीकृत किया जाता है, वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।

७ कानीन—कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र।

८ सहोढ—ज्ञात या अज्ञात अवस्था मे जिस गर्भवती का विवाह संस्कार किया जाता है, उससे उत्पन्न पुत्र को सहोट कहा जाता है।

९ क्रीतक—खरीदा हुआ पुत्र।

१० पौनर्भव—पति द्वारा परित्यक्त, विधवा या पुनर्विवाहित स्त्री के पुत्र को पौनर्भव कहा जाता है।

११ स्वयदत्त—जिसके माता-पिता मर गए हों, अथवा माता-पिता ने बिना ही कोई कारण जिसका त्याग कर दिया हो, वह पुत्र स्वयदत्त कहलाता है।

१२ शौद्र (पारशव)—ब्राह्मण के द्वारा शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र को शौद्र कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे गिनाए गए दस नाम तथा मनुस्मृति के १२ नामों में केवल तीन नाम समान हैं—क्षेत्रज, दत्तक और औरस। प्रस्तुत सूत्र का 'सवर्द्धित पुत्र' और मनुस्मृति का 'अपविद्धपुत्र'—इन दोनो की व्याख्या समान है। 'दत्तक' की व्याख्या मे दोनो एकमत हैं, किन्तु क्षेत्रज और औरस की व्याख्या भिन्न-भिन्न है।

कौटलीय अर्थशास्त्र में भी प्राय मनुस्मृति के समान ही पुत्रों के प्रकार निर्दिष्ट हैं।[1]

५६ (सू० १५४)

भारतीय साहित्य मे सामान्यतया मनुष्य को शतायु माना गया है। वैदिक ऋषि जिजीविषा के स्वर मे कहता है—हम वर्धमान रहते हुए सौ शरद्, सौ हेमन्त और सौ वसन्त तक जीए।[2] प्रस्तुत सूत्र मे शतायु मनुष्य की दस दशाओं का प्रतिपादन है। प्रत्येक दशा दस-दस वर्ष की है। दशवैकालिक निर्युक्ति (गाथा १०) मे भी इन दस दशाओ का निरूपण प्राप्त है। इनकी व्याख्या के लिए हरिभद्रसूरि ने दशवैकालिक की टीका मे पूर्व मुनि रचित दस गाथाए उद्धृत की हैं। वे ही गाथाए अभयदेवसूरि ने स्थानाग वृत्ति मे उद्धृत की हैं। उनके अनुसार दस दशाओं के स्वरूप और कार्य का वर्णन इस प्रकार है—

१ बाला—यह नवजात शिशु की दशा है। इसमे सुख-दु ख की अनुभूति तीव्र नही होती।

२ क्रीडा—इसमे खेलकूद की मनोवृत्ति अधिक होती है, कामभोग की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न नहीं होती।

३ मन्दा—इस दशा में मनुष्य में काम-भोग भोगने का सामर्थ्य हो जाता है। वह विशिष्ट बल-बुद्धि के कार्य-प्रदर्शन में मन्द रहता है।

४ बला—इसमे बल-प्रदर्शन की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

५ प्रज्ञा—इसमे मनुष्य स्त्री, धन आदि की चिन्ता करने लगता है और कुटुम्बवृद्धि का विचार करता है।

६ हायनी—इसमे मनुष्य भोगो से विरक्त होने लगता है और इन्द्रियबल क्षीण हो जाता है।

७ प्रपञ्चा—इसमें मुह से थूक गिरने लगता है, कफ बढ जाता है और बार-बार खासना पडता है।

८ प्राग्भारा—इसमे चमडी में झुरिया पड जाती हैं और बुढापा घेर लेता है। मनुष्य नारी-वल्लभ नही रहता।

---

१ कौटलीय अर्थशास्त्र ३।६, पृष्ठ १७५।

२ ऋग्वेद, १०।१६१।४ शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्ता-ञ्छतमुवसन्तान्।

९ मृन्मुखी—इसमे शरीर जरा से आक्रान्त हो जाता है, जीवन-भावना नष्ट हो जाती है।

१० शायनी—इसमे व्यक्ति हीनस्वर, भिन्नस्वर, दीन, विपरीत, विचित्त (चित्तशून्य), दुर्वल और दुखित हो जाता है। यह दशा व्यक्ति को निद्राघूर्णित जैसा वना देती है।[1]

हरिभद्रसूरि ने नवी दशा का सस्कृत रूप 'मृन्मुखी' और दसवी का 'शायिनी' किया है।[2]

अभयदेवसूरि ने नवी दशा का सस्कृतरूप 'मुङ्मुखी' और दसवी का 'शायनी' और 'शयनी' किया है।[3]

६० आभियोगिक श्रेणिया (सू० १५७)

ये आभियोगिक देव सोम आदि लोकपालो के आज्ञावर्ती हैं। विद्याधर श्रेणियो से दस योजन ऊपर जाने पर इनकी श्रेणिया हैं।

६१ (सू० १६०)

प्रस्तुत सूत्र मे दस आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी घटित होने वाली घटना। जो घटना सामान्यतया नही होती, किन्तु स्थिति-विशेष मे अनन्तकाल के बाद होती है, उसे आश्चर्य कहा जाता है। जैन शासन मे आदिकाल से भगवान् महावीर के काल तक दस ऐसी अद्भुत घटनाए घटी, जिन्हे आश्चय की सज्ञा दी गई है। वे घटनाए भिन्न-भिन्न तीर्थंकरो के समय मे घटित हुई हैं। इनमे १, २, ४, ६, और ८ भगवान् महावीर से तथा शेष भिन्न-भिन्न तीर्थंकरो के शासनकाल से सम्वन्धित हैं। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ उपसग—तीर्थंकर अत्यन्त पुण्यशाली होते हैं। सामान्यतया उनके कोई उपसर्ग नही होते। किन्तु इस अवसर्पिणीकाल मे तीर्थंकर महावीर को अनेक उपसर्ग हुए। अभिनिष्क्रमण के पश्चात् उन्हे मनुष्य, देव और तिर्यञ्च कृत उपसर्गों का सामना करना पडा। अस्थिक ग्राम मे शूलपाणि यक्ष ने महावीर को अट्टहास से डराना चाहा, हाथी, पिशाच और सप का रूप धारण कर डराया और अन्त मे भगवान् के शरीर के सात अवयवो—शिर, कान, नाक, दात, नख, आंख और पीठ—मे भयकर वेदना उत्पन्न की।

एक बार महावीर म्लेच्छदेश दृढभूमि 'के' वहिर्भाग मे आए। वहा पेढाल उद्यान के पोलासचैत्य मे ठहरे और तेले की तपस्या कर एक रात्रि की प्रतिमा मे स्थित हो गए। उस समय 'सगम' नामक देव ने एक रात मे २० मारणान्तिक कष्ट दिए।

---

१ दसवकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ८, ९
आसा च स्वरूपमिदमुक्तं पूर्वमुनिभि —
जा यमित्तस्स जतुस्स जा सा पढमिया दसा।
ण तत्थ सुहदुक्खाइ, वहु जाणति वालया॥१॥
विययं च दस पत्तो, णाणाकिड्डाहि किड्डइ।
न तत्थ कामभोगेहि, तिव्वा उप्पज्जई मई॥२॥
तयइ च दस पत्तो पच कामगुणे नरो।
समत्थो भुजिउ भोए, जइ से अत्थि घरे धुवा॥३॥
चउत्थी उ वला नाम, ज नरो दसमस्सिओ।
समत्थो वल दरिसिउ जइ होइ निरुवद्दवो॥४॥
पचमि तु दस पत्तो, आणुपुव्वीइ जो नरो।
इच्छियत्थ विचितेइ, कुडुवं वाऽभिकंखई॥५॥
छट्ठी उ हायणी नाम, जं नरो दसमस्सिओ।
विरज्जइ य कामेसु, इदिएसु य हायई॥६॥
सत्तमि च दस पत्तो, आणुपुव्वीइ जो नरो।
निट्ठुहइ चिक्कण खेल, खासइ य अभिक्खण॥७॥
सकुचियवलीचम्मो, सपत्तो अट्ठमि दस।
णारीणमणभिप्पेओ, जराए परिणामिओ॥८॥
णवमी मम्मुही नाम, ज नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्सतो, जीवो वसइ अकामओ॥९॥
हीणभिन्नसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ।
दुव्वलो दुक्खिओ सुवइ, सपत्तो दसमि दस॥१०॥

२ दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ८।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४९३ मोचन मुक् जराराक्षसी समाक्रान्तशरीरगृहस्य जीवस्य मुच प्रति मुख—आभिमुख्य यस्यां सा मुङ्मुखीति, शाययति स्वापयति निद्रावन्तं करोति या शेते वा यस्यां सा शायनी शयनी वा।

केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद तीर्थंकरो के कोई उपसर्ग नही होते। किन्तु भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्ति के बाद गोशालक ने अपनी तेजोलब्धि से बहुत पीडित किया—यह एक आश्चर्य है।[1]

२ गर्भापहरण—भगवान् महावीर देवानदा ब्राह्मणी के गर्भ मे आषाढ शुक्ला ६ को आए, तब उसने चौदह स्वप्न देखे थे। बयासी दिन के बाद सौधर्म देवलोक के इन्द्र ने अपने पैदल सेना के अधिपति 'हरिनैगमेषी' को बुला कर कहा—'तीर्थंकर सदा उग्र, भोग, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य और हरिवश आदि विशाल कुलो मे उत्पन्न होते हैं। भगवान् महावीर अपने पूर्व कर्मों के कारण ब्राह्मण कुल मे आए हैं। तुम जाओ, और उस गर्भ को सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी त्रिशला के गर्भ में रख दो।' वह देव तत्काल वहा गया। उस दिन आश्विन कृष्णा त्रयोदशी थी। रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। दूसरे प्रहर के अन्त मे उसने हस्तोत्तरा नक्षत्र में गर्भ का सहरण कर त्रिशला के गर्भ मे रख दिया।[2]

गर्भ-सहरण का उल्लेख स्थानाग[3], समवयाग,[4] कल्पसूत्र[5], आचारचूला[6] और रायपसेणइय[7]—इन आगमो तथा निर्युक्ति साहित्य मे मिलता है। भगवतीसूत्र[8] मे गर्भ-सहरण की प्रक्रिया का उल्लेख है, किन्तु महावीर के गर्भ-सहरण का उल्लेख नहीं है। देवानदा के प्रकरण मे भगवान् महावीर ने देवानदा को अपनी माता और स्वय को उसका आत्मज बतलाया है।[9] इसमे गर्भ-सहरण का सकेत अवश्य मिलता है फिर भी उसका प्रत्यक्ष उल्लेख वहा नही है।

दिगम्बर साहित्य मे इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है।

इस घटना का प्रथम स्रोत कल्पसूत्र प्रतीत होता है। अन्य सभी आगमो मे वही स्रोत सक्रान्त हुआ है। कल्पसूत्रकार ने किस आधार पर इस घटना का उल्लेख किया, इसका पता लगाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उसके शोध के उपादान अभी प्राप्त नहीं हैं। इस घटना का वर्णन कल्पसूत्र जितना प्राचीन तो है ही। कल्पसूत्र की रचना वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी मे हुई है। यह काल श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के पृथक्करण का काल है। यह सम्भव है कि इस काल में लिखित आगम की घटनाओं को दिगम्बर आचार्यों ने महत्त्व न दिया हो। यह भी हो सकता है कि आगमो के अस्वीकार के साथ-साथ दिगम्बर साहित्य मे अन्य घटनाओ की भाति इस घटना का विलोप हो गया हो। यह भी हो सकता है कि इस पौराणिक घटना का आगमो मे सक्रमण हो गया हो। क्षत्रियो और ब्राह्मणो के बीच स्पर्धा चलती थी। ब्राह्मणो के जातिमद को खडित करने के लिए इस घटना की कल्पना की गई हो, जैसा कि हरमन जेकोबी ने माना है।[10]

इस प्रकार इस घटना के विषय में अनेक सम्भावित विकल्प किये जा सकते हैं।

यहा गर्भ-सहरण का विषय विचारणीय नही है। उसकी पुष्टि आगम-साहित्य, आयुर्वेद-साहित्य, वैदिक-साहित्य और वर्तमान के वैज्ञानिक-साहित्य मे भी होती है। यहा विचारणीय विषय है—महावीर का गर्भ-सहरण।

भगवान् महावीर का जीवनवृत्त किसी भी प्राचीन आगम में उल्लिखित नहीं है। आचाराग में उनके साधक जीवन का सक्षेप में बहुत व्यवस्थित वर्णन है। उनके गृहस्थ जीवन की घटनाओ का उसमे वर्णन नहीं है। आयारचूला के 'भावना अध्ययन' मे भगवान् महावीर के गृहस्थ जीवन का वृत्त उल्लिखित है, पर वह कल्पसूत्र का ही परिवर्तित सस्करण प्रतीत होता है। क्योंकि भावनाध्ययन का वह मुख्य विषय नही है। कल्पसूत्र पहला आगम है, जिसमें महावीर का जीवनवृत्त सक्षिप्त किन्तु व्यवस्थित ढग मे मिलता है।

बौद्ध और वैदिक विद्वान् अपने-अपने अवतारी पुरुषो के साथ दैवी चमत्कारो की घटनाए जोड रहे थे। इस कार्य मे जैन विद्वान् भी पीछे नहीं रहे। सभी परम्परा के विद्वानों ने पौराणिक साहित्य की सृष्टि की और अपने अवतारी पुरुषो को अलौकिक रूप प्रदान किया। हरिनैगमेषी देवता के द्वारा भगवान् महावीर का गर्भ-सहरण होना उस पौराणिक युग का एक प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है।

---

१ विशेष विवरण के लिए देखें—आचाराग ९।६, आवश्यक-निर्युक्ति, अवचूर्णि, भाग १, पृष्ठ २७३-२९३।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि, प्रथमभाग, पृष्ठ २६२, २६३।

३ स्थानांग १०।१६०।

४ समवायाग, ८२।२, ८३।१।

५ कल्पसूत्र, सू० २७।

६ आचारचूला १५।१,३,५,६।

७ रायपसेणिय, सूत्र ११२।

८ भगवती, ५।७६,७७।

९ भगवती, ९।१४८।

10. The Sacred Book of the East, Vol.XXII. Page 31

भगवान् महावीर देवानदा को अपनी माता और स्वय को उसका आत्मज बतलाते हैं—यह एक विचारणीय प्रश्न है। यह हो सकता है कि देवानदा महावीर के पालन-पोषण मे धायमाता के रूप मे रही हो और गर्भ-सहरण की पुष्टि के लिए अर्थवादी शैली मे उसे माता के रूप मे निरूपित किया गया हो। आगम-सकलन काल मे इस प्रकार के प्रयत्न की सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता।

३ स्त्रीतीर्थंकर—सामान्यत तीर्थंकर पुरुष ही होते है, ऐसा माना जाता है। इस अवसर्पिणी मे मिथिला नगरी के अधिपति कुभकराज की पुत्री मल्ली उन्नीसवें तीर्थंकर के रूप मे विख्यात हुई। उसने तीर्थ का प्रवर्तन किया। दिगम्बर आचार्य इससे सहमत नहीं हैं वे मल्ली को पुरुष मानते हैं।

४ अभावित परिषद्—बारह वर्ष और साढे छह मास तक छद्मस्थ रहने के पश्चात् भगवान् को वैशाख शुक्ला दशमी को जृम्भिका गाव के बहिर्भाग मे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उस समय महोत्सव के लिए उपस्थित चतुर्विध देवनिकाय ने समवसरण की रचना की। भगवान ने देशना दी। किसी के मन मे विरति के भाव उत्पन्न नही हुए। तीर्थंकरो की देशना कभी खाली नहीं जाती। किन्तु यह अभूतपूर्व घटना थी।[1]

उनकी दूसरी देशना मध्यमपापा मे हुई और वहा गौतम आदि गणधर दीक्षित हुए।

५ कृष्ण का अपरकका नगरी में जाना—धातकीखड की अपरकका नगरी मे राजा पद्मनाभ राज्य करता था। एक वार नारद ने उनसे द्रौपदी की बहुत प्रशसा की। उसने अपने मित्र देव की सहायता से द्रौपदी का अपहरण कर दिया। इधर नारद ने इस अपहरण का वृत्तान्त कृष्ण वासुदेव को सुनाया। कृष्ण ने लवण समुद्र के अधिपतिदेव सुस्थित की आराधना की और पाचों पाडवों को साथ ले अपरकका की ओर चल पडे। वहा पद्मनाभ के साथ घोर सग्राम हुआ। वहा वासुदेव कृष्ण ने शखनाद किया। तत्पश्चात् पद्मनाभ को युद्ध मे हराकर द्रौपदी को ले द्वारका मे आ गए।

उसी धातकीखड मे चपा नाम की नगरी थी। वहा कपिल वासुदेव रहते थे। एक वार अर्हत् मुनिसुव्रत वहा पुण्यभद्र चैत्य मे समवसृत हुए। वासुदेव कपिल धर्मदेशना सुन रहे थे। इतने मे ही उन्हें कृष्ण का शखनाद सुनाई दिया। तब उन्होंने मुनिसुव्रत से शखनाद के विषय में पूछा। मुनिसुव्रत ने उन्हे कृष्ण सबधी जानकारी देते हुए कहा—एक ही क्षेत्र मे, एक ही समय मे दो अरहत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव नही हुए, नहीं हैं और नही होंगे।

उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब वासुदेव कपिल वासुदेव कृष्ण को देखने गए। तब तक कृष्ण लवण समुद्र मे बहुत दूर तक चले गए थे। वासुदेव कपिल ने कृष्ण के ध्वज के अग्रभाग को देखा और शखनाद किया। जब कृष्ण ने यह शखनाद सुना तब उन्होंने इसके प्रत्युत्तर पुन शखनाद किया। दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के दो वासुदेवों का शखनाद से मिलना हुआ।

इस प्रसग में प्रस्तुत सूत्र में वासुदेव कृष्ण का अपरकका राजधानी में जाने को आश्चर्य माना है। सामान्य विधि यह है कि वासुदेव अपनी क्षेत्र-मर्यादा को छोडकर दूसरे वासुदेव की क्षेत्र मर्यादा मे नहीं जाते। भरत क्षेत्र के वासुदेव कृष्ण का धातकीखड के वासुदेव कपिल की क्षेत्र मर्यादा मे जाना एक अनहोनी घटना थी, इसलिए इसे आश्चर्य माना गया है।

ज्ञाताधर्मकथा (अ० १६) के आधार पर दो वासुदेवो का परस्पर मिलन भी एक आश्चर्य है। धातकीखड के वासुदेव कपिल के पूछने पर मुनिसुव्रत कहते हैं—यह कभी नही हुआ, न है और न होगा कि दो अरहत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव कभी परस्पर मिलते हो। कपिल ने कहा—'मैं उनसे मिलना चाहता हू। मेरे घर आए अतिथि का मैं स्वागत करना चाहता हू।'

मुनिसुव्रत ने कहा—एक ही स्थान मे दो अर्हत्, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव नहीं होते। यदि कारणवश एक दूसरे की सीमा मे आ जाते हैं तो वे कभी मिलते नही। किंतु कपिल का मन कुतूहल मे भरा था। वह कृष्ण को देखने समुद्रतट पर गया और समुद्र के मध्य जाते हुए कृष्ण के वाहन की ध्वजा को देखा। तब कपिल ने शखनाद किया। शख-शब्द से कृष्ण को यह स्पष्टतया जताया कि 'मैं कपिल वासुदेव तुम्हे देखने के लिए उत्कठित हू अत पुन लौट आओ।' कृष्ण ने

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ५३६, अवचूर्णि, प्रथमभाग पृ० २६६।

शख-शब्द के माध्यम से यह वात जानी। तब उन्होंने शखनाद कर उसे यह बताया कि 'हम बहुत दूर आ गए हैं। तुम कुछ मत कहो।' इस प्रकार शख-समाचारी के माध्यम से दोनो का मिलन हुआ।[1]

स्थानाग में वासुदेव के क्षेत्रातिक्रमण को आश्चर्य माना है। और ज्ञाताधर्मकथा मे दो वासुदेवो के परस्पर मिलन को आश्चर्य माना है।

६ चन्द्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना—एक वार भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी मे विराज रहे थे। उस समय दिन के अन्तिम प्रहर मे चन्द्र और सूर्य अपने-अपने मूल शाश्वत-विमानो सहित समवसरण मे भगवान् महावीर को वदना करने आए। शाश्वत विमानो सहित आना—एक आश्चर्य है। अन्यथा वे उत्तरवैक्रिय द्वारा निर्मित विमानो मे आते हैं।[2]

७ हरिवश कुल की उत्पत्ति—प्राचीन समय मे कौशावी नगरी मे सुमुख नाम का राजा राज्य करता था। एक वार वसत ऋतु मे वह क्रीडा करने के लिए उद्यान मे गया। रास्ते मे उसने माली वीरक की पत्नी वनमाला को देखा। वह अत्यन्त सुन्दर और रूपवती थी। दोनो एक दूसरे मे आसक्त हो गए। राजा उसे एकटक निहारने लगा और वहीं स्तब्ध सा खड़ा हो गया। तब उसके सचिव सुमति ने उसे आगे चलने के लिए कहा। ज्यो-त्यों वह लीला नामक उद्यान मे आया और अपनी सारी मनोकामना सचिव के समक्ष रखी। सचिव ने उसे आश्वस्त किया और आत्रेयिका नामकी परिव्राजिका को वनमाला के पास भेजा। परिव्राजिका वनमाला के पास गई और उसे भी चिन्तामग्न दशा मे देखकर उससे सारी वात जान ली। उसने सचिव से आकर कहा—राजा और वनमाला का मिलन प्रातःकाल हो जाएगा। सचिव ने राजा से यह वात कही। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

प्रातःकाल परिव्राजिका वनमाला को लेकर राजा के पास आई। राजा ने वनमाला को अपने महलो मे रखा और उसके साथ सुख-भोग करने लगा।

वनमाला को घर मे न पाकर उसका पति वीरक ग्रथिल सा इधर-उधर घूमने लगा। एक वार वह महलों के नीचे से गुजर रहा था। उस समय राजा वनमाला के पास बैठा था। उसके कानो मे 'हा! वनमाला! हा! वनमाला!'—ये शब्द पडे। उसने सोचा, अहो! हमने बहुत दुष्कर्म किए हैं। इसके फलस्वरूप हमे नरक प्राप्ति होगी। इस प्रकार वह आत्म-निंदा करने लगा। इतने मे ही आकाश मे विजली चमकी और वह महलो पर आ गिरी। राजा-रानी दोनो मर गए।

वहा से मरकर दोनों हरिवर्ष क्षेत्र मे हरि और हरिणी के नाम से—युगलरूप मे उत्पन्न हुए। वे दोनों वहा सुख-पूर्वक रहने लगे।

इधर वनमाला का पति वीरक भी मरकर सौधर्म देवलोक में किल्विषिक देव हुआ। उसने अवधिज्ञान से अपना पूर्व-भव देखा और अपने शत्रु हरि और हरिणी को जाना। उसने सोचा—यदि ये दोनो यहा मरेंगे तो यौगलिक होने के कारण अवश्य ही देवलोक मे जायेंगे। अतः मैं इन्हे दूसरे क्षेत्र मे रख दूं ताकि वे यहा दुःख भोगें—यह सोचकर उसने दोनो को उठाकर भरतक्षेत्र के चम्पापुरी मे ला छोडा।

उस समय चम्पापुरी के राजा चन्द्रकीर्ति की मृत्यु हो गई थी। मत्री दूसरे राजा की टोह मे इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय आकाशस्थित देव ने कहा—'पुरुषो! मैं आपके लिए हरिवर्ष से एक युगल लाया हू। वह राजा-रानी होने के लिए योग्य हैं। इस युगल को आप लोग कल्पद्रुम के फलो के साथ-साथ पशु और पक्षियो का मास भी देना।'

प्रजा ने देव की वात स्वीकार कर हरि को अपना राजा स्वीकार किया। देव ने अपनी शक्ति से उस युगल की आयु स्थिति कम कर दी तथा उनकी अवगाहना भी केवल सौ धनुष्यमात्र रखी। देव अन्तर्हित हो गया।

हरि राजा हुआ। उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया। उसके नाम से हरिवश का प्रचलन हुआ।[3]

---

१ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २५७, २५८।

२ वही, पत्र २५८।

३ क—प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र २५८, २५६।
ख—वसुदेवहिण्डी, दूसरा भाग, पृष्ठ ३५६, ३५७।

८ चमर का उत्पात—प्राचीन समय मे विभेल सन्निवेश मे पूरण नाम का एक धनाढ्य गृहपति रहता था। एक वार उसने सोचा—'पूर्वभव मे किए हुए तप के प्रभाव से मुझे यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, सम्मान मिला है। अत भविष्य मे और विशेष फल की प्राप्ति के लिए मुझे गृहवास छोडकर विशेष तप करना चाहिए।' उसने अपने सवधियो से पूछा और अपने ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार देकर दाणाम' नामक तापसव्रत स्वीकार कर लिया। उस दिन से वह यावज्जीवन तक दो-दो दिन की तपस्या मे सलग्न हो गया। पारने के दिन वह चार पुट वाले लकडी के पात्र को लेकर मध्याह्न वेला मे भिक्षा के लिए जाता। पात्र के प्रथम पुट मे पडी भिक्षा वह पथिकों को वाट देता, दूसरे पुट की भिक्षा कौए आदि पक्षियो को खिला देता, तीसरे पुट की भिक्षा मछली आदि जलचरो को खिला देता और चौथे पुट मे प्राप्त भिक्षा को स्वय खाता। इस प्रकार उसने वारह वर्ष तक कठोर तप तपा और अत मे एक माम का अनशन कर चमरचपा मे असुरकुमारो के इद्ररूप मे उत्पन्न हुआ। उसने अवधिज्ञान से ऊपर स्थित सौधर्मावतसक विमान मे सौधर्मेन्द्र को देखा। उसका क्रोध प्रवल हो उठा। उसने अपने अनुचर देवो से कहा—'अरे! यह दुरात्मा कौन है जो मेरे शिर पर वैठा हुआ है! उन्होंने कहा—स्वामिन्! यह सौधर्मदेवलोक का इन्द्र है, जिसने अपने पूर्व अर्जित पुण्यो के प्रभाव से विपुल ऋद्धि और अतुल पराक्रम प्राप्त किया है। इतना सुनते ही चमरेन्द्र का क्रोध और अधिक प्रवल हो गया। उसने उसके साथ युद्ध करने के लिए उत्सुक हो वहा से अपना शस्त्र ले प्रस्थान किया। सभी देवो ने ऐमा न करने के लिए आग्रह किया, परन्तु उसने अपना हठ नही छोडा।

'वह पराक्रमी है। यदि मैं किसी भी प्रकार से उससे पराजित हो जाऊगा तो किसकी शरण लूगा'—यह सोचकर चमरेन्द्र सुसुमारपुर मे आया। वहाँ भगवान् महावीर प्रतिमा में स्थित थे। वह भगवान् के पास आकर वोला—'भगवन्! मैं आपके प्रभाव से इन्द्र को जीत लूगा—ऐसा कहकर उसने एक लाख योजन का वैक्रिय रूप वनाया। चारों ओर अपने शस्त्र को घुमाता हुआ, गर्जन करता हुआ, उछलता हुआ, देवो को भयभीत करता हुआ, दर्प से अन्धा होकर सौधर्मेन्द्र की ओर लपका। एक पैर उसने सौधर्मावतसक विमान की वेदिका पर और दूसरा पैर सुधर्मा (सभा) मे रखा। उसने अपने शस्त्र से इन्द्रकील पर तीन वार प्रहार किया और सौधर्मेन्द्र को वुरा-भला कहा।

सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से सारी वात जान ली। उसने चमरेन्द्र पर प्रहार करने के लिए वज्र फेंका। चमरेन्द्र उसको देखने में भी असमर्थ था। वह वहाँ से डर कर भागा। वैक्रिय शरीर का सकोच कर भगवान् के पास आया और दूर से ही—'आपकी शरण है, आपकी शरण है'—ऐसा चिल्लाता हुआ, अत्यन्त सूक्ष्म होकर भगवान् के पैरो के वीच मे प्रवेश कर गया। शक्र ने सोचा—'अर्हद् आदि की निश्रा के विना कोई भी असुर वहाँ नही जा सकता'। उसने अवधिज्ञान से सारा पूर्व वृत्तान्त जान लिया। वज्र भगवान् के अत्यन्त निकट आ गया। जव वह केवल चार अगुल मात्र दूर रहा, तव इन्द्र ने उसका सहरण कर डाला। भगवान् को वदना कर वह वोला—'चमर! भगवान् की कृपा से तुम वच गए। अव तुम मुक्त हो, डरो मत! इस प्रकार चमर को आश्वासन देकर शक्र अपने स्थान पर चला गया। शक्र के चले जाने पर चमर वाहर आया और अपने स्थान की ओर लौट गया[1]।

९ एक सौ आठ सिद्ध—वृत्तिकार ने इसका कोई विवरण नही दिया है।

वसुदेवहिण्डी के अनुसार भगवान् ऋषभ अपने ९९ पुत्र तथा आठ पौत्रों के साथ परिनिर्वृत हुए थे[1]। इस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक साथ एक सौ आठ (९९+८+१) सिद्ध हुए।

उत्तराध्ययन सूत्र मे तीन प्रकार से एक साथ एक सौ आठ सिद्ध होने की वात कही है—

१ निर्ग्रन्थ वेश मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५२)।

२ मध्यम अवगाहना मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५३)।

३ तिरछे लोक मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५४)।

प्रस्तुत सूत्र मे जो आश्चर्य माना गया है, वह इसलिए कि भगवान् ऋषभ के समय मे उत्कृष्ट अवगाहना थी। उत्कृष्ट

---

१ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २५९, २६०।

१ वसुदेवहिण्डी, भाग १, पृष्ठ १८५ एगूणपुत्तसएव अट्ठहि य
वत्तुएहि सह एगसमयेण निव्वुओ।

अवगाहना में एक साथ केवल दो ही व्यक्ति सिद्ध हो सकते हैं[1]। प्रस्तुत सूत्र मे एक सौ आठ व्यक्ति उत्कृष्ट अवगाहना मे मुक्त हुए—इसलिए उसे आश्चर्य माना है[2]।

आवश्यकनिर्युक्ति मे ऋषभ के दस हजार व्यक्तियो के साथ सिद्ध होने का उल्लेख मिलता है[3]। इसकी आगमिक सदर्भ के साथ कोई सगति नही बैठती। वसुदेवहिण्डी के एक प्रसग के सदर्भ मे एक अनुमान किया जा सकता है कि निर्युक्तिकार ने सक्षिप्त और सापेक्ष प्रतिपादन किया, इसलिए वह भ्रामक लगता है।

वसुदेवहिण्डी के अनुसार ऋषभ के दस हजार अनगार [१०८ कम] भी उसी नक्षत्र मे, बहुत समय बाद तक, सिद्ध हुए हैं[4]।

प्रवचनसारोद्धार मे भी वसुदेवहिण्डी को उद्धृत करते हुए इसी तथ्य की पुष्टि की गई है[5]।

इन उद्धरणो के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि दस हजार अनगारो के एक ही नक्षत्र मे सिद्ध होने के कारण उनका भगवान् ऋषभ के साथ सिद्ध होना बतलाया गया है।

१० असयति पूजा—तीर्थंकर सुविधि के निर्वाण के बाद, कुछ समय बीतने पर, हुण्डावसर्पिणी के प्रभाव से साधु-परम्परा का विच्छेद हुआ। तब लोगो ने स्थविर श्रावको को, धर्म के ज्ञाता समझकर, धर्म के विषय मे पूछा। श्रावकों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म की प्ररूपणा की। लोगो को कुछ समाधान मिला। वे धर्म-कथक स्थविर श्रावको को दान देने लगे, उनकी पूजा, सत्कार करने लगे। अपनी पूजा और प्रतिष्ठा होते देख धर्म कथक स्थविरो के मन मे अहभाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने नये शास्त्रो की रचना की और भूमि, शय्या, सोना, चांदी, गो, कन्या, हाथी, घोड़े आदि के दान की प्ररूपणा की तथा यह भी घोषित किया कि—'ससार मे दान के अधिकारी हम ही हैं, दूसरे नहीं।' लोगों ने उनकी बात मान ली। धर्म के नाम पर पाखण्ड चलने लगा। लोग विप्रतारित हुए। दूसरे धर्म-प्ररूपकों के अभाव मे वे गृहस्थ ही धर्मगुरु का विरुद वहन करते हुए अपनी-अपनी इच्छानुसार धर्म की व्याख्या करने लगे। तीर्थंकर शीतल के तीर्थ-प्रवर्तन से पूर्व तक यही स्थिति रही, असयति पूजा का बोल-बाला रहा।

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार का अभिमत है कि उपरोक्त दस आश्चर्य केवल उपलक्षण मात्र हैं। इनके अतिरिक्त इसी प्रकार की विशेष घटनाए समय-समय पर होती रही है[6]। दस आश्चर्यों मे से कौन-कौन से किसके समय मे हुए, इसका विवरण इस प्रकार है[7]—

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के समय मे—एक साथ १०८ सिद्ध होना।

दसवें तीर्थंकर शीतल के समय मे—हरिवश की उत्पत्ति।

उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली का स्त्री के रूप मे तीर्थंकर होना।

बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समय मे—कृष्ण वासुदेव का कपिल वासुदेव के क्षेत्र [अपरकङ्का] मे जाना अथवा दो वासुदेवो का मिलन।

चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के समय में—

१ गर्भापहरण, २ उपसर्ग, ३ चमरोत्पाद, ४ अभावित परिषद, ५ चन्द्र और सूर्य का अवतरण।
[ये पाचो क्रमश हुए हैं]

नौवें तीर्थंकर सुविधि से सोलहवें तीर्थंकर शान्ति के काल तक—असयति पूजा।

वृत्तिकार का अभिमत है कि असयति पूजा प्राय सभी तीर्थंकरो के समय मे होती रही है, किन्तु नौवें तीर्थंकर सुविधि से सोलहवें तीर्थंकर शान्ति के समय तक सर्वथा तीर्थच्छेदरूप असयति पूजा हुई है[8]।

---

१ उत्तराध्ययन ३६।५३।

२ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २६० एतदाश्चर्यमुत्कृष्टावगाहनायामेव ज्ञातव्यम्।

३ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ३११
दसहि सहस्सेहि उसभो

४ वसुदेवहिण्डी, भाग १, पृष्ठ १८५ सेसाण वि य अणगाराण दस सहस्साणि अट्ठसयऊणगाणि सिद्धाणि तम्मि चेव रिक्खे समयतरेसु बहुसु।

५ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २६०।

६ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र २६१ उपलक्षण चैतान्याश्चर्याणि, अतोऽन्येऽप्येवमादयो भावा अनन्तकालभाविन आश्चर्यरूपा द्रष्टव्या।

७ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ८८८, ८८९
रिसहे अट्ठहियसयं सिद्ध सीयलजिणमि हरिवसो।
नेमि जिणेऽवरकंकागमण, कण्णहस्स सपन्न॥
इत्थीतित्थं मल्ली पूया असजयाण नवमजिणे।
अवसेसा अच्छेरा वीरजिणिदस्स तित्थमि॥

८ प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र २६१।

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

विशेषनामानुक्रम

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

परिशिष्ट-२

प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद
अनुयोगद्वार
अनुयोगद्वार चूर्णि
अनुयोगद्वार वृत्ति
अभिधानचिन्तामणि
अभिधान राजेन्द्र
अल्प परिचित शब्दकोष
आचाराग
आचाराग चूर्णि
आचारांग निर्युक्ति
आचाराग वृत्ति
आप्टे डिक्शनरी
आयारचूला
आयारो
आर्यभट्टीय गणितपाद
आवश्यक चूर्णि
आवश्यकनिर्युक्ति
आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि
आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका
आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य
आवश्यक भाष्य
आवश्यक मलयगिरि वृत्ति
इसिभासिय
उत्तराध्ययन
उत्तराध्ययन निर्युक्ति
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उपासकदशा वृत्ति
उवासगदसाओ
ओघनिर्युक्ति
ओघनिर्युक्ति वृत्ति
औपपातिक (ओवाइय)
औपपातिक वृत्ति
अगसुत्ताणि
अगुत्तरनिकाय
कठोपनिषद्
कल्पसूत्र
कल्याण
कसायपाहुड
काललोकप्रकाश
कौटिल्य अर्थशास्त्र
गणितसार सग्रह
गोम्मट्टसार
चरक
छान्दोग्य उपनिषद्
जीवाभिगम
तत्त्वार्थ
तत्त्वार्थभाष्य
तत्त्वार्थराजवार्तिक
तत्त्वार्थवार्तिक
तत्त्वार्थसूत्र
तत्त्वार्थसूत्र भाष्य
तत्त्वार्थसूत्र भाष्यानुसारिणी टीका
तत्त्वार्थसूत्र वृत्ति
तत्त्वार्थाधिगम सूत्र
तत्त्वानुशासन
तत्त्वोपप्लवसिंह
त्रिशतिका
तुलसी रामायण
थेरगाथा
दशवैकालिक
दशवैकालिक : एक समीक्षात्मक अध्ययन

दशवैकालिक चूर्णि
दशवैकान्लिक हारिभद्रीयावृत्ति
दसवेआलिय
दीघनिकाय
देशी नाममाला
धम्मपद
ध्यानशतक
न्यायदर्शन
न्यायसूत्र
नयोपदेश
नारदीशिक्षा
निशीथ
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निसीहज्झयण
नीतिवाक्यामृत
नदी
नदी वृत्ति
परिशिष्ट पर्व
पाइयसद्दमहण्णव
पातजल योगदर्शन
पातजल योगप्रदीप
पचसग्रह
प्रज्ञापना
प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार
प्रवचनसारोद्धार
प्रवचनसारोद्धार वृत्ति
प्राचीन भारत के वाद्ययत्र
वाह्य स्फुट सिद्धान्त
वृहत्कल्प
वृहत्कल्पचूर्णि
वृहत्कल्पभाष्य
वृहदारण्यक
वृहदारण्यकभाष्य
वौद्धधर्मदर्शन
भगवती
भगवद्गीता
भद्रवाहुसहिता
भरत
भरत का सगीत सिद्धान्त
भरत कोश (प्रो० रामकृष्ण कवि)
भरत कोश (मतंग)
भरत नाट्य
भारतीय ज्योतिष
भारतीय सगीत का इतिहास
भावसग्रह
भिक्षु न्यायकर्णिका
मज्झिमनिकाय
मनुस्मृति
महावीर चरित्र (श्री गुणचन्द्र कृत)
माण्डुक्यकारिका भाष्य
मूलाचार
मूलाचार दर्पण
मूलाराधना
यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन
याज्ञवल्क्यस्मृति
योगदर्शन
रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ
राजप्रश्नीय
लीलावती
लोकप्रकाश
लकावतार सूत्र
वसुदेवहिण्डी
वाल्मीकि रामायण
विवागसुय
विशुद्धि मग्ग
विशेषावश्यक भाष्य
विष्णु पुराण
वैशेषिक दर्शन
व्यवहार भाष्य
व्यवहार सूत्र
शतपथ ब्राह्मण
शाकर भाष्य, ब्रह्म सूत्र
षट्खडागम
षट्प्राभृत
षट्प्राभृत (श्रुतसागरीय वृत्ति)
षट्प्राभृतादि सग्रह
षट्विंश ब्राह्मण
सन्मति प्रकरण
समवायाग
समवायाग वृत्ति
साहित्यदर्पण

साख्यकारिका
साख्यकारिका (तत्त्वकौमुदी व्याख्या)
सुश्रुतसहिता
सूत्रकृताग
सूत्रकृतांगनिर्युक्ति
सूत्रकृताग वृत्ति
सगीतदामोदर
सगीतरत्नाकर (मल्लीनाथ टीका)
स्थानाग
स्थानाग वृत्ति
स्याद्वाद मजरी
स्वरूप सबोधन
हिन्दु गणित
हिन्दु गणित शास्त्र का इतिहास

- American Mathematical Monthly
- A Sanskrit English Dictionary
- Dictionary of Greek and Roman Antiquities
- Encyclopedia of Religion and Ethics
- Encyclopedia of Superstitions
- Journal of Music Academy, Madras
- Mackrindle
- The Book of the Zodiac
- The History of Mankind
- The Wild Rule
- The Sacred Books of the East, Vol 22
- The Golden Bough